

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
	की प्रतिज्ञा करना	२१९	५७	राजा पौरवकी कथा	३१९
३६	अभिमन्युका चक्रव्यूहमें प्रवेश	२२३	५८	शिविकी कथा	३२१
३७	अभिमन्युका पराक्रम	२३०	५९	दशरथपुत्र रामकी कथा	३२३
३८	कौरवोंका घवड़ाना	२३६	६०	राजा भगीरथकी कथा	३२७
३९	अभिमन्यु और दुःशासन का मुचैटा	२३९	६१	राजा दिलीपकी कथा	३२९
४०	दुःशासन और कणका पराजय	२४३	६२	राजा मान्धाताकी कथा	३३१
४१	कर्णके भाईका वध	२४९	६३	राजा ययातिकी कथा	३३४
४२	जयद्रथका शिवजीसे वरपाना	२५२	६४	राजा अश्वमेधीकी कथा	३३६
४३	जयद्रथका पांडवोंको चक्रव्यूहमें प्रवेश करनेसे रोकना	२५६	६५	राजा शशविन्दुकी कथा	३३८
४४	वसन्तीयका वध	२५८	६६	राजा गयकी कथा	३४०
४५	दुर्योधनका पलायन	२६१	६७	राजा रन्तिदेवकी कथा	३४३
४६	लक्ष्मण, काशिके पुत्रका वध	२६५	६८	महाराज भरतकी कथा	३४६
४७	बृहद्वलका नाश	२६९	६९	राजा पृथुकी कथा	३४९
४८	अधर्मकी रचना	२७३	७०	परशुरामकी कथा	३५३
४९	अभिमन्युका वध	२७९	७१	सृञ्जयके मरेहुए पुत्रका जीवित होना	३५७
५०	युद्धभूमिका वर्णन	२८४	प्रतिज्ञा-पर्व		
५१	युधिष्ठिरका शोक	२८७			
तेरहवें दिनकी रात्रि—			७२	अर्जुनका शोक	३६२
५२	अकम्पनकी कथा	२९१	७३	अर्जुनकी प्रतिज्ञा	३७३
५३	मृत्युकी उत्पत्ति	२९७	७४	जयद्रथका घवड़ाना	३८२
५४	मृत्यु और प्रजापतिकी संवाद	३००	७५	श्रीकृष्णके वचन	३८७
५५	राजा भरतकी कथा	३१०	७६	अर्जुनकी दृढ़ता	३९१
५६	राजा सुहोत्रकी कथा	३१७	७७	सुभद्रा और श्रीकृष्ण	३९५
			७८	सुभद्राका विलाप	३९९
			७९	श्रीकृष्ण-दासक-सम्वाद	४०६
			८०	अर्जुनका स्वप्न शिव-स्तुति	४१२

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
८१	पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति	४२१	१०२	दुर्योधनका अर्जुनके	
	चौदहवें दिनका प्रयात-			सामने जाना	५५१
८२	युधिष्ठिरका आहिक-कर्म	४२४	१०३	दुर्योधनका पलायन	५५६
८३	युधिष्ठिर-श्रीकृष्ण-सम्वाद	४२९	१०४	घोर युद्ध	५६४
८४	अर्जुनका प्रयाण	४३३	१०५	ध्वजाओंका वर्णन	५६८
	जयद्रथवध-पूर्व		१०६	युधिष्ठिरका पीछे हटना	५७४
	चौदहवाँ दिन-		१०७	सहदेवका पराक्रम	५८०
८५	धृतराष्ट्रकी चिन्ता	४३८	१०८	भीम और अलम्बुष	५८५
८६	सञ्जयका धृतराष्ट्रको ताना		१०९	अलम्बुषवध	५९१
	देना	४४६	११०	युधिष्ठिरकी घबड़ाहट	५९७
८७	शकटचक्र-पद्मसूचीव्यूहकी		१११	सात्यकिका उत्तर	६११
	रचना	४५०	११२	सात्यकिका शत्रुसेनामें	
८८	अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेश	४५५		प्रवेश	६१८
८९	कौरवोंकी हस्तिसेनाका संहार	४५९	११३	सात्यकि और कृतवर्मा	६३०
९०	दुःशासनका पराजय	४६३	११४	कृतवर्माकी धूमधाम	६३९
९१	द्रोण और अर्जुनका युद्ध	४६८	११५	जलसन्धका वध	६५३
९२	श्रुतायुध और सुदक्षिणका वध	४७४	११६	दुर्योधनका पराजय	६६२
९३	अम्बष्ठका वध	४८५	११७	सात्यकिका पराक्रम	६६९
९४	दुर्योधनकवचवन्धन	४९५	११८	सुदर्शनका वध	६७४
९५	घोरयुद्ध	५०६	११९	यवनोंका पराजय	६७७
९६	संकुलयुद्ध	५१३	१२०	दुर्योधनका पलायन	६८५
९७	द्रोण और धृष्टद्युम्नका युद्ध	५१७	१२१	सात्यकिका सेनामें प्रवेश	६९२
९८	द्रोण और सात्यकिका युद्ध	५२२	१२२	द्रोणका घमसान मचाना	७००
९९	अर्जुनका रणमें सरोवर बना-		१२३	दुःशासनका पराजय	७१०
	कर घोड़ोंको जल पिलाना	५३०	१२४	संकुलयुद्ध	७१५
१००	कौरवोंका आश्चर्य	५३९	१२५	द्रोणाचार्यका अद्भुत पराक्रम	७२५
१०१	कौरवोंका घबड़ाना	५४४	१२६	युधिष्ठिरकी चिन्ता	

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
१२७	भीमका भारती सेनामें प्रवेश		१४५	संकुलयुद्ध	८७१
	और पराक्रम	७४०	१४६	जयद्रथका वध	८८५
१२८	भीमका द्रोणके रथोंको		१४७	कृपकी मूर्च्छा	९०५
	उठाकर पटकदेना	७५१	१४८	अर्जुनको अभिनन्दन	९१७
१२९	कर्णका पराजय	७५९	१४९	युधिष्ठिरका श्रीकृष्णके यश	
१३०	दुर्योधनका शुधामन्युऔर			गाना	९२६
	उत्तमौजाके साथ युद्ध	७६४	१५०	दुर्योधनका संताप	९३५
१३१	कर्णका पराजय	७७१	१५१	द्रोणके नम्र वचन	९४१
१३२	भीम और कर्णका युद्ध	७७९	१५२	दुर्योधनका झपाटा	९४७
१३३	भीम और कर्णका युद्ध	७८५	घटोत्कचवध-पर्व		
१३४	कर्णका भागना	७९१	१५३	दुर्योधनका पराजय	९५३
१३५	धृतराष्ट्रका संताप	७९६	चौदहवें दिनकी रात्रि—		
१३६	भीमका धृतराष्ट्रके सात		१५४	पाण्डव तथा सृजयोंका	
	पुत्रोंका संहार करना	८०२		धाचा करना	९५९
१३७	विकर्ण और चित्रसेनका		१५५	द्रोणका पाण्डवोंकी सेना	
	वध	८०७		में घुसना	९६५
१३८	भीम-कर्णका भयंकर युद्ध	८१५	१५६	सात्यकि और घटोत्कच	
१३९	भीमका हाथियोंकी लोथों			का पराक्रम	९७२
	में छिपना	८१९	१५७	वाहीका वध	१०००
१४०	अलम्बुषका वध	८३६	१५८	कर्ण और कृपाचार्यकी	
१४१	अर्जुनका सात्यकिको देखना	८४०		झपट	१००६
१४२	सात्यकि और भूरिशवाका		१५९	कर्ण और अश्वत्थामा	
	युद्ध	८४५		की बातचीत	१०१६
१४३	भूरिशवाका वध	८५५	१६०	अश्वत्थामाका पराक्रम	१०३१
१४४	सात्यकि और भूरिशवाके		१६१	कौरवसेनामें भागड़ पड़ना	१०३९
	देरका कारण	८६७	१६२	सोमदत्तका वध	१०४२

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
१६३	दीपकोंके प्रकाशमें युद्ध	१०५०	१८५	पिछली रात	१२१९
१६४	द्रोणका युद्ध	१०५७		प्रभात—	
१६५	युधिष्ठिरका भागना	१०६२	१८६	विराट और द्रुपदका वध	१२२४
१६६	भीम और दुर्योधन	१०६८		पन्द्रहवाँ दिन—	
१६७	सहदेव और (दूसरे)		१८७	नकुलका पराक्रम	१२२३
	अलम्बुषका भागना	१०७७	१८८	दुःशासन और सहदेव	१२४१
१६८	छोटेरे योधाओंका युद्ध	१०८४	१८९	दुर्योधन-सात्यकि-संवाद	१२४९
१६९	मारकाट	१०९०	१९०	नरो वा कुञ्जरो वा	१२५९
१७०	धृष्टद्युम्न पर बाणवृष्टि	१०९७	१९१	द्रोणका खिन्न होना	१२६८
१७१	परस्पर संहार	११०७	१९२	द्रोणका वध	१२७६
१७२	कर्ण और द्रोणका पांडव			नारायणास्त्रप्रेत-पर्व	
	सेनाको भगाना	१११४	१९३	कृपाचार्य अश्वत्थामा	
१७३	घटोत्कचका रणमें आना	११२१		संवाद	१२८८
१७४	(दूसरे) अलम्बुषका नाश	११३१	१९४	धृतराष्ट्रका प्रश्न	१२९८
१७५	घटोत्कचकी धूमधाम	११३७	१९५	अश्वत्थामाका कोप	१३०१
१७६	अलायुषका रणमें आना	११५४	१९६	युधिष्ठिर-अर्जुन-संवाद	१३०८
१७७	भीम और अलायुष	११५७	१९७	भीमसेन और धृष्टद्युम्नके	
१७८	अलायुषवध	११६४		वाक्य	१३१६
१७९	घटोत्कचवध	११७०	१९८	धृष्टद्युम्न और सात्यकि	
१८०	श्रीकृष्णका हर्ष	११८२		की मृपट	१३२३
१८१	श्रीकृष्णके किये पाण्डवों		१९९	नारायणास्त्र	१३३३
	के हितकार्योंका वर्णन	११८८	२००	नारायणास्त्रको निष्फल	
१८२	दैवकी क्रीड़ा	११९३		करना	१३४२
१८३	युधिष्ठिरका शोक	१२०१	२०१	अस्त्रयत्नका निष्फल जाना	
	द्रोणवध-पर्व			अश्वत्थामाका आश्चर्य	१३६२
१८४	सेनाका रणमें सोना	१२११	२०२	शिवस्वरूपवर्णन	१३७७
	द्रोणपर्वकी विषयसूची समाप्त ।				



* श्रीहरि *

सं. म. पुस्तक

11436

Vol. No.

महाभारत

द्रोणपर्व

द्रोणाभिषेक-पर्व

नारायण नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्

नरोत्तमम् नरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

जनमेय उवाच । तमप्रतिमसत्सौजोबलवीर्यसमन्वितं । हतं देव-
व्रतं श्रुत्वा पांचान्येन शिखिण्डिना ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रस्ततो राजा
शोकव्याकुललोचनः । किमचेष्टत विप्रर्षे हते पितरि वीर्यवान् ॥ २ ॥
तस्य पुत्रो हि भगवान् भीष्मद्रोणमुखै रथैः । पराजित्य महेष्वा-
सान् पांडवान् राज्यमिच्छति ॥ ३ ॥ तस्मिन् हते तु भगवन् केतौ
सर्वधनुष्मताम् । यदचेष्टत कौरव्यस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ४ ॥
वैशम्पायन उवाच । निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।

पुरुषोंमें श्रेष्ठ नर, नारायण और सरस्वती देवीको प्रणाम
करके जयका उच्चारण करे ॥ १ ॥ जनमेयने वृष्णा कि-हे विप्रर्षे !
उन अनुपम सत्त्व (बड़ी भारी आपत्ति पड़ने पर भी दुःखरहित
रहना) मानसिकबल, शरीरके बल, शत्रुओंका तिरस्कार करने
की सामर्थ्यसे युक्त भीष्मपितामहको पश्चात्तवशी शिखण्डीसे मारे
गए सुनकर जिसके नेत्र शोकसे व्याकुल होगए थे उस पराक्रमी
राजा धृतराष्ट्रने क्या किया ? ॥ १—२ ॥ तथा हे तपोधन !
भीष्म और द्रोण आदि मुख्य २ महारथियोंसे महाधनुर्धर
पाण्डवोंको हराकर राज्य करनेकी इच्छा रखनेवाले दुर्योधनने
उन सब धनुर्धरोंकी ध्वजारूप भीष्मजीके मारेजाने पर क्या २
किया, यह मुझसे कहिये ॥ ३—४ ॥ वैशम्पायनजी कहने लगे
कि—हे जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र भीष्मजीको मराहुआ सुनकर,

लेभे न शान्तिं कौरव्याश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ ५ ॥ तस्य चिन्त-
यतो दुःखमन्तिंशं पार्थिवस्य तत् । आजगाम विशुद्धात्मा पुन-
र्गावल्गयिस्तदा ॥ ६ ॥ शिविरात् सञ्जयं प्राप्तं निशि नागाद्वयं
पुरम् । अम्बिकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत् ॥ ७ ॥ श्रुत्वा
भीष्मस्य निधनमपहृष्टमना भृशम् । पुत्राणां जयमाकांक्षन्विल्ला-
पातुगे यथा ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । संशोच्य तु महात्मानं भीष्मं
भीमपराक्रमम् । क्रियकापुः परं तात कुरवः कालचोदिताः ॥ ९ ॥
तस्मिन्निनिहते शूरे दुराधर्षे महात्मनि । किन्तुस्त्रिक्लृण्वाऽका-
पुर्निमग्नः शोकसागरे ॥ १० ॥ तदुदीर्य परत् सैन्यं त्रैलोक्य-
स्यापि सञ्जय । भयमुत्पादयेत्तीव्रं पांडवानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥
को हि दुर्योधने सैन्ये पुमानासीन्महारथः । यं माप्य समरे वीरा
न व्रस्यन्ति महाभये ॥ १२ ॥ देवव्रते तु निहते कुरुणामृगभे तदा ।

चिन्ता और शोकमें डूबकर वायलासाधन गया, रातदिन उस दुःख
का ही विचार करने लगा । इतनेमें विशुद्ध हृदय वाला सञ्जय
कौरवोंकी द्वावनीमेंसे रात्रिको हस्तिनापुरमें आया । हे महा-
राज ! अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रने (उससे शुद्धस्थलके) समाचार
धूमने, उत्तरमें भीष्मकी मृत्युको सुनकर उसके मनमें बड़ा खेद
हुआ, पुत्रोंकी जीत चाहनेवाला वह राजा आतुरकी समान बड़ा
विलाप करने लगा ॥ ५—८ ॥ भीमपराक्रमी महात्मा भीष्मके
लिये खूब रो धोकर धृतराष्ट्रने सञ्जयसे धूमना कि-हे तात सञ्जय !
शूरवीर, दुराधर्ष, महात्मा भीष्मके मारेजाने पर शोकसागरमें
डूबते हुए और जो कालसे प्रेरित होकर लड़ रहे थे उन कौरवोंने
क्या २ किया ॥ ९—१० ॥ हे सञ्जय ! महात्मा पाण्डवोंका वह
बड़ा भारी सेनाबल तीनों लोकोंको भी तीव्र भय देनेवाला है
॥ ११ ॥ अब दुर्योधनकी सेनामें ऐसा कौन महारथी है कि-जिसके
नीचे रहकर बड़ा भारी भय पड़ने पर भी वीरपुरुष डरें नहीं ?
हे सञ्जय ! कुरुकुलमें श्रेष्ठ भीष्मजीके मारे जाने पर कौरवपक्ष

किमकार्षुर्नृपतयस्तन्माचक्ष्व संजय ॥ १३ ॥ संजय उवाच ।
 शृणु राजन्नेकमना वचनं ब्रूवतो मम । यत्ते पुत्रास्तदाकार्षुर्हते
 देवव्रते मृधे ॥ १४ ॥ निहते तु तदा भीष्मे राजन् सत्यपराक्रमे ।
 तावकाः पांडवेयाश्च प्राध्यायन्त पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥ विस्मि-
 ताश्च महृष्टाश्च क्षत्रधर्मं निशम्य ते । स्वधर्मं निंद्यमानास्ते प्रणिपत्य
 महात्मने ॥ १६ ॥ शयनं कल्पयामासुर्भीष्मायामितकर्मणे । सोप-
 धानं नरव्याघ्र शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १७ ॥ विधाय रक्षां भीष्माय
 समाभाष्य परस्परम् । अनुमान्य च गाङ्गेयं कृत्वा चापि प्रदक्षि-
 णम् ॥ १८ ॥ क्रोधसरक्तनयनाः संवेत्य परस्परम् । पुनर्युद्धाय
 निज्जगमुः क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ १९ ॥ ततस्तूर्य्यनिनादैश्च

के राजाओंने क्या किया यह सुझसे कह ॥ १२-१३ ॥ संजय
 बोला कि—हे राजन् ! तुम्हारे मरनका मैं उत्तर देता हूँ तुम्हारे
 पुत्रोंने भीष्मजीके संग्राममें मारे जाने पर जोर किया उसको तुम
 ध्यान देकर सुनो ॥ १४ ॥ उस समय सत्यपराक्रमी भीष्मजी
 के मारे जाने पर हे राजन् ! कौरव और पांडव अलग २ विचार
 करने लगे अर्थात् कौरव हार और पांडव विजयका ध्यान करने
 लगे ॥ १५ ॥ वे राजा क्षत्रधर्मको सुनकर विस्मय और आन-
 न्दमें भ्रमण (विस्मित इस लिये हुए कि—युद्धमें सामने पड़ने
 पर घड़ेको मारनेमें दोष नहीं है तथा आनन्दित इस लिये हुए
 कि—(युद्धमें मरनेसे स्वर्ग मिलता है) अपने क्षत्रधर्मकी निन्दा करते
 हुए उन्होंने अमितपराक्रमी भीष्मजीको प्रणाम किया तदनन्तर
 अच्छी तरह तरह नमी हुई गाँठ वाले बाणोंके तकियेवाली शय्या
 को रचकर तथा उनकी रक्षाके लिये रक्षकोंको बैठाकर, आपस
 में घातचीत कर गंगापुत्र भीष्मजीकी परिक्रमा कर तथा उनसे
 आज्ञा लेकर, कालके प्रेरणा करे हुए वे क्षत्रिय राजे क्रोध
 के कारण लाल २ नेत्रवाले तुम्हारे और पांडुके पुत्र एक दूसरे
 से मिलकर युद्धके लिये तत्पर हो गए । तदनन्तर तुरही और

भेरीणां निनदेन च । तावकानामनीकानि परेषां चैव निर्ययुः ॥ २० ॥
 व्यावृत्तेर्ज्येष्ठिण राजेन्द्र पतिते जाह्नवीसुने । अमर्षवशमापन्नाः
 कालोपहतचेतसः ॥ २१ ॥ अनादृत्य वचः पथ्यं गान्धेयस्य महा-
 त्मनः । निर्ययुर्भरतश्रेष्ठाः शस्त्राण्यादाय सत्वरः ॥ २२ ॥ मोहा-
 त्तव सपुत्रस्य वधाञ्छान्तनवस्य च । कौरव्या मृत्युसाद्रभृता सद्विता
 सर्वराजभिः ॥ २३ ॥ अज्ञावय इत्रागोपा वने श्वापदसंकुले ।
 भृशमुद्विग्नमनसो हीना देवव्रतेन ते ॥ २४ ॥ पतिते भरतश्रेष्ठे
 बभूव कुरुवाहिनी । द्यौरिवापेतनक्षत्रा हीनं खमिव चायुना ॥ २५ ॥
 विपन्नशस्येव मही वाक् चैत्रासंस्कृता यथा । आसुरीव यथा सेना
 निगृहीते नृपे वली ॥ २६ ॥ विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा ।
 वृकैरिव वने रुद्धा पृथ्वी हतयूथपा ॥ २७ ॥ शरभा हतसिंहेव

भेरियोंकी ध्वनियोंके साथ २ छावनीमेंसे तुम्हारी और पाण्डवों
 की सेनाएं लड़नेके लिये निकल पड़ी ॥ १६—२० ॥ हे राजे-
 न्द्र ! गंगापुत्र भीष्म सूर्यनारायणके क्षिप्त समय युद्धमें गिरे थे,
 उन महात्मा गाण्धेयके हिनकारी वचनका अनादर करके, कालने
 मूढ़ बना दिया है चित्तको जिनके ऐसे वे भरतवंशमें श्रेष्ठ क्षत्रिय
 क्रोधमें भरकर शीघ्र ही आयुष्योंको लेकर लड़नेके लिये निकल
 पड़े ॥ २१—२२ ॥ तुम्हारी और तुम्हारे पुत्रकी मूर्खतासे और
 भीष्मके वधसे कौरव और सब राजे मृत्युके मुखमें आपड़े हैं और
 भीष्मके न रहनेसे वे हिंसक पशुओंसे भरे हुए वनमें बिना ग्वा-
 लियोंके भेड़ बकरियों जैसे मनमें उदास होजाती हैं, तैसे उदास
 होगए हैं ॥ २३—२४ ॥ इतना ही नहीं किन्तु नक्षत्रोंके बिना
 जैसे आकाश, वायुके बिना जैसे मेघ, धान्यसे रहित जैसे पृथ्वी,
 बिना संस्कार (व्याकरण) के जैसे चाणी, वलीके कैद होजाने
 पर जैसे उसकी सेना, पतिके मरने से विधवा हुई सुन्दरी स्त्री,
 जलके बिना नदी, भेड़ियोंसे वनमें रोकी हुई चित्रमृगी और समूह

महती गिरिकंदरा । भारती भरतश्रेष्ठे पतिसे जाह्नवीसुते ॥२८॥
 विष्वक्वाताह्मतरुणा नौरिवासीन्महार्णवे । वलिभिः पांडवैर्वीरै-
 र्लब्धलक्ष्यैर्भृशार्दिता ॥२९॥ सा तदासीद् भृशं सेना व्याकुलारव-
 रथद्विपा । विपन्नभूयिष्ठनरा कृपणा ध्वस्तमानसा ॥ ३० ॥ तस्यां
 नस्ता नृपतयः सैनिकाश्च पृथग्विधाः । पाताल इव मञ्जन्तो हीना
 देवव्रतेन ते ॥ ३१॥ कर्णं हि कुरऽवोस्माधुः स हि देवव्रतोपमः ।
 सवशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवातिथिम् ॥ ३२ ॥ बन्धुमापद्-

से विछड़ी हुई मृगी, शरभसे* मारेहुए सिंहवाली शून्य पड़ी हुई
 गुफा जैसे निस्तेज होजाती है तैसे ही कुरुवंशकी सेना भी गंगा-
 पुत्र भीष्मके गिरनेसे निस्तेज होगई है ॥ २५-२८ ॥ जब वली
 पांडव निशाना ताक कर कौरवोंका सेनाको अच्छी प्रकार मारने
 लगे तब चारों ओरसे पवनके झपटेसे ढांढाडोल होती हुई नौका
 जैसे कांपती है, तैसे ही कौरवोंकी सेना भी कांपने लगी ॥ २९॥
 उस समय कौरवोंकी सेनामें घोड़े, रथ और हाथी अत्यन्त घबड़ा
 गए थे, बहुतसे योधा मर गए थे तथा बहुतसे दयाजनक स्थिति
 में आपड़े थे और बहुतसे मूर्छित होगए थे ॥ ३० ॥ उस सेनामें
 भीष्मजीके न रहनेसे बहुतसे योधा और राजे डर गए थे तथा
 पातालमें डबे जाते हों इस प्रकार दुःख भोग रहे थे ॥ ३१ ॥
 कौरवोंने इस समय कर्णका स्मरण किया क्योंकि-वह भीष्मजी
 की समान बलवान् था, किसी आपत्तिके पड़ने पर, जैसे
 अपने बन्धु पर ध्यान जा पड़ता है तैसे उस समय सब
 कौरवोंका मन सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विद्या तथा तपसे
 शोभायमान अग्निकी समान कर्णके ऊपर ही गया, और

* शरभ एक प्राणी है । इसके अगठ पैर होते हैं यह सिंहसे
 भी बलवान् होता है, और सिंहके सामने पहुँचने ही पूँछसे
 अपने सूत्रके छींटे सिंहकी आँखों पर उड़ाता है इससे सिंह अन्धा
 होजाता है और शरभ बलवान् पड़जाता है ।

गतस्येव तमेवोपागमन्मनः । चुक्रुशुः कर्णं कर्णेति तत्र भारत
 पार्थिवाः ॥ ३३ ॥ राधेयं हितमस्माकं सूतपुत्रं तनुत्यजम् । स हि
 नायुध्यत तदा दशाहानि महायशाः ॥ ३४ ॥ सामात्यबन्धुः
 कर्णो वै तमानयत मा चिरम् । भीष्मेण हि महाबाहुः सर्वक्षत्रस्य
 पर्यतः ॥ ३५ ॥ रथेषु गण्यमानेषु बलविक्रमशालिषु । संख्या-
 तोऽर्धरथः कर्णो द्विगुणः सन्नरर्षभः ॥ ३६ ॥ रथातिरथसंख्यायां
 योऽग्रणीः शूरसम्मतः । सामुरानपि देवेशान् रथो यो योद्धु-
 म्भुत्सहेत् ॥ ३७ ॥ स तु तेनैव कोपेन राजन् गाङ्गेयमुक्तवान् ।
 त्वयि जीवति कौरव्य नाहं योत्स्ये कदाचन ॥ ३८ ॥ त्वया तु
 पाण्डवेष्वेषु निहतेषु महायुधे । दुर्योधनमनुज्ञाप्य वनं यास्यामि

हे भारत ! भरतवंशी राजा उस समय अपने हितैषी और युद्धमें
 शरीरको भी त्याग देनेवाले सूतनन्दन राधापुत्र कर्णको कर्ण !
 कर्ण ! इस प्रकार चिन्ता कर बुलाने लगे, क्योंकि-भीष्मपिता-
 मह जब युद्ध करते थे तब दश दिन तक उस महायशस्वी कर्णने
 युद्ध नहीं किया था ॥ ३२-३४ ॥ “कर्णको उसके मंत्री तथा
 वांछवों सहित शीघ्र ही बुला लाओ देर मत करो” इस प्रकार
 कौरव राजे आज्ञा देनेलगे जब भीष्मजीने बली तथा पराक्रमी रथी
 और महारथियोंकी गिनतीकी थी उस समय कर्णको कि-जो द्विगुण
 रथी था, सब राजाओंके सामने अर्धरथी ठहराया था ! ३५-३६
 कर्ण रथियोंमें तथा अतिरथियों में अग्रग्रा और शूरवीरोंमें मान-
 नीय था, इतना ही नहीं किन्तु वह युद्धमें अमुरोंसे और देवता-
 ओंके स्वामियोंसे भी युद्धकरनेके साहस वाला था तो भी भीष्म-
 जीने उसको अर्धरथी गिना, उस समय हे राजन् ! उसने क्रोध
 में भर कर भीष्मजीसे यह कहा था कि-हे भीष्म ! तुम जब तक
 जावित हो तबतक मैं कदापि युद्ध न-करूँगा यदि महासंग्राममें
 तुम पाण्डवोंको मारोगे तो मैं दुर्योधनसे आज्ञा लेकर वनमें चला
 जाऊँगा और पाण्डवोंने तुम्हें मार डाला उस समय तुम्हारे

कीरव ॥ ३६ ॥ पाण्डवैर्वा हते भीष्मे त्वयि स्वर्गमुपेयुषि । हंता-
 रम्येकरथेनैव कृत्स्नान् यान्मन्यसे रथान् ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वा
 महाबाहुर्दशाहानि महायशाः । नायुध्यत ततः कर्णः पुत्रस्य तव
 सम्मतेः ॥ ४१ ॥ भीष्मः समरविक्रान्तः पाण्डवेयस्य भारत ।
 जघान समरे योधानसंख्येयपराक्रमः ॥ ४२ ॥ तस्मिंस्तु निहते
 शूरे सत्यसन्धे महौजसि । त्वत्पुताः कर्णमस्मापुस्तर्तुं कामां इव
 प्लवम् ॥ ४३ ॥ तोवकास्तव पुत्राश्च सहिताः सर्वराजभिः । हा
 कर्ण इति चाक्रन्दन् कालोऽयमिति चाब्रुवन् ॥ ४४ ॥ एवं ते स-
 हि राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् । चुक्रुशुः सहिता योधास्तत्र तत्र
 महाबलाः ॥ ४५ ॥ जामदग्न्याभ्यनुज्ञातमस्त्रे दुर्वारपौरुषम् ।

स्वर्ग को चले जाने पर कि-जिनको तुम रथी मानते हो उन सब
 रथियोंको मैं अपने एक रथकी सहायतासे ही मारूँगा ! यह
 कह कर महायशस्वी, महाबाहु कर्ण, तुम्हारे पुत्रकी सम्पत्तिके
 अनुसार दश दिन नहीं लड़ा था, हे भारत ! अपार युद्धमें
 पराक्रम करनेवाले पराक्रमी भीष्मने रणभूमिमें युधिष्ठिरके योधाओं
 का संहार कर डाला था ॥ ३७ - ४२ ॥ परन्तु जब शूरवीर,
 महामाय, बली और सत्य प्रतिज्ञा वाले भीष्म युद्धमें गिरे तब
 समुद्रको तरनेकी इच्छा वाले जैसे नौकाको चाहते हैं तैसे ही
 युद्ध-सागरको तरना चाहने वाले तुम्हारे पुत्र कर्णका स्मरण
 करने लगे, तुम्हारे पुत्र तथा दूसरे राजे इकट्ठे होकर कर्ण ! कर्ण !!
 इस प्रकार ऊँचे स्वरसे कर्णका आह्वान करने लगे और कहने
 लगे कि-कर्णके लड़नेका समय अब ही आया है, इस प्रकार
 जब महाबलवान् योधा इकट्ठे होकर अपने शरीरको भी जोड़
 सकनेवाले सूतपुत्र कर्णको बुलाने लगे और आपसमें कहने लगे
 कि-परशुरामके पास सीखनेसे अस्त्रविद्यामें जिसके बलको रोकना
 कठिन है उस कर्णके प्रति हम सब योधाओंका मन ऐसे लगा है

अगमन् नो मनः कर्णः बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ ४६ ॥ स हि शक्तो
 रणे राजंस्त्रातुमस्मान् महाभयात् । त्रिदशानिव गोविन्दः सततं
 सुमहाभयात् ॥ ४७ ॥ वैशम्पायन उवाच । तथा तु सञ्जयं कर्णं
 कीर्त्तयन्तं पुनः पुनः ॥ आशीविष्वदुच्छ्वस्य धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ४८
 धृतराष्ट्र उवाच । यत्तद्वैवर्त्तनं कर्णमगमद्वो मनस्तदा । अप्यपश्यत्
 राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ४९ ॥ अपि तन्न मृषाकापी त् कश्चित्
 सत्यपराक्रमः । संभ्रातानां तदार्त्तानां त्रस्तानां त्राणमिच्छताम् ५०
 अपि तत् पूरयाञ्चके धनुर्धरवरो युधि । यत्तद्विनिहते भीष्मे कौर-
 वाणामपाकृतम् ५१ तत्खण्डं पूरयन् कर्णः परेपामादधद्वयम् । स
 हि वै पुरुषव्याघ्रो लोके संजय कथ्यते ॥ ५२ ॥ आर्त्तानां बाध-
 वानां च क्रंदता च विशेषतः । परित्यज्य रणे प्राणांस्तत्प्राणार्थं च

जैसे-आपत्ति पड़ने पर मनुष्यका सहायता करनेवालेकी ओरको
 मन जांपड़ता है ॥ ४३-४६ ॥ हे राजन् जैसे गोविन्द देवताओंकी
 महाभयसे सदा रक्षा करते हैं तैसे ही वह भी हमारी बड़े भारी
 भयमें भी रक्षा करनेकी शक्ति रखता है ॥ ४७ ॥ वैशम्पायन
 कहते हैं कि-हे जनमेजय ! इसप्रकार बारम्बार कर्ण की
 प्रशंसा करते हुए सञ्जयसे राजा धृतराष्ट्रने सांपकी समान र्वास
 लेकर यह कहा कि-॥ ४८ ॥ धृतराष्ट्रने वृष्ठा कि-हे सञ्जय ! जब
 तुम्हारा मन सूतपुत्र, राधेय, संग्राममें शरीरकी भी परवाह न करने
 वाले कर्णकी ओर झुका था तब क्या वह आया था ? और
 सत्यपराक्रमी कर्णने घबड़ाए और डरे हुए तथा रक्षा चाहनेवाले
 तुम्हारी आशाको उसने झूठी तो नहीं किया था ? कौरवोंके
 संरक्षक भीष्मके मारेजाने पर जो पद खाली होगया था क्या
 धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कर्णने उसको युद्धमें भरा था ? हे सञ्जय ! कर्ण
 मनुष्योंमें पुरुषव्याघ्र कहाता है अतः उसने रणमें रेतें हुऐ अपने
 बान्धवोंकी रक्षाथ अपने प्राणोंको और सुखको त्यागकर क्या

शर्म च । कृतवान् मम पुत्राणां जयाशां सफलामपि ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि

धृतराष्ट्रप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच । हतं भीष्ममथाधिरथिर्विदित्वा भिन्नां नावमि-
वात्यगाधे कुरूणाम् । सोदर्यवद्वयसनात् सूतपुत्रः सन्तारयिष्यंस्तव
पुत्रसेनाम् ॥ १ ॥ श्रुत्वा तु कर्णः पुरुषेन्द्रमच्युतं निपातितं शान्त-
नवं महारथम् । अथोपयायात् सहस्रारिकर्षणो धनुर्धराणां प्रव-
रस्तदानुषा ॥ २ ॥ हते तु भीष्मे रथसत्तमे परैर्निमज्जतीं नावमिवार्यावे
कुरुन् । पितेव पुत्रांस्त्वरितोऽभ्ययात्ततः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रसेनाम्
॥ ३ ॥ कर्ण उवाच । यस्मिन् धृतिबुद्धिपराक्रमौजः सत्यं स्मृति-
वीरगुणाश्च सर्वे । अस्त्राणि दिव्यान्यथ संनतिर्हीः प्रिया च
वागनसूया च भीष्मे ॥ ४ ॥ सदा कृतज्ञे द्विजशत्रुघातके सनातनं

मेरे पुत्रोंकी विजयकी अभिलाषाको सफल भी किया था ?

॥ ४६-५३ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ * ॥ * ॥

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् ! महारथ तथा धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ और
सब शत्रुओंको सहनेवाले कर्णको ज्ञात हुआ कि-भीष्म मारे गए
हैं तब, जैसे अतीव अगाध समुद्रमें टूटी हुई नाव डूबनेलगी है
तैसे ही रणभूमिमें भागद पड़नेसे डूबनेको तयार हुई तुम्हारे पुत्र
की सेनाको सहोदरकी समान, दुःखमेंसे उबारनेकी अभिलाषाकर
पिता जैसे अपने पुत्रोंकी रक्षाके लिये आता है तैसे ही कर्ण भी
समुद्रमें डूबती हुई नावकी समान रणभूमिमें नाश पानेको उद्यत हुई
तुम्हारे पुत्रकी सेनाको तारनेकी इच्छासे शीघ्रताके साथ कौरवों
के पास आगया और कहने लगा ॥ १ ॥ कर्ण बोला कि-जैसे
चन्द्रमामें चिन्ह सनातनसे है, तैसे ही कृतज्ञ और शत्रुओंका नाश
करनेवाले भीष्मजीमें धैर्य, बुद्धि, पराक्रम, ओज, सत्य, स्मृति,
वीरोचित सकल गुण, दिव्य अस्त्र, नम्रता, लज्जा, प्रियवाणी
और अद्वेष आदि गुण भी सदासे थे, ऐसे, सदा करे हुएको

चन्द्रप्रसीव लक्ष्म । स चेत् प्रशान्तः परवीरहन्ता मन्ये हतानेव
 च सर्ववीरान् ॥ ५ ॥ नेह ध्रुवं किञ्चन जातु विद्यते लोके
 हस्मिन् कर्मणोऽनित्ययोगात् । सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो
 भावं कुर्वीतार्यमहाव्रते हते ॥ ६ ॥ वसुप्रभावे वसुवीर्यसम्भवे
 गते वसूनेव वसुन्धराधिपे । वसूनि पुत्राश्च वसुन्धरां तथा कुरुंश्च
 शोचध्वमिमाश्च बाहिनीम् ॥ ७ ॥ सञ्जय उवाच । महाप्रभावे वरदे
 निपातिते लोकेश्वरे शास्तरि चापितौजसि । पराजितेषु भरतेषु
 दुर्मनाः कर्णो भृशं न्यश्वसदश्रु वर्त्तयन् ॥ ८ ॥ इदं च राधेयवचो
 निशम्य सुताश्च राजंस्तव सैनिकाश्च ह । परस्परं चुक्रुशुरात्तिजं

माननेवाले, ब्राह्मणद्वेषियोंके घातक भीष्मजीके युद्धमें गारे जानेपर
 मैं सब ही वीरोंको मरा ही समझता हूँ ॥ ४—५ ॥ कर्मवी
 रगतिके अनित्य होनेसे इस जगत्में कोई भी वस्तु अचल नहीं है
 हे आर्य ! जब स्वच्छन्दमृत्युवाले महाव्रत भीष्मसरीखे भी इस
 युद्धमें घायल होगए तब फिर सूर्योदय होगा (और हम उसे
 देखेंगे) इस बातका दृढ़ विश्वास कौन करसकता है ? हे राजन् !
 वसुओंकी समान प्रभाववाले वसुकी समान पराक्रमवाले शान्तलुके
 वीर्यसे उत्पन्न हुए भीष्म भी जब वसु नामक देवताओंके पास चले
 गए तब तुम्हें धन, पुत्र, पृथ्वी, कौरव और इस सेनाके भी शोक
 करनेका समय आगया है अर्थात् यह भी वचसकेनी अधवा नहीं
 इसको कौन कहे ? अतः अब तुम स्त्री पुत्रादिमें मोहको त्यागकर
 यदि मृत्यु हो तो उससे भी लड़ो ॥ ६—७ ॥ सञ्जयने कहा कि—हे
 राजन् धृतराष्ट्र ! अपारवली लोकोंके स्वामी, शत्रुओंको दण्ड देने
 वाले और वरदान देनेवाले महाप्रभावशाली भीष्मजीको पाण्डवोंके
 गिरा देने पर और भरतवंशी राजाओंके हराये जानेपर कर्ण मन
 में खिन्न हुआ और धामुओंको गिराता हुआ लम्बे २ रश्वास
 लेने लगा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! कर्णके ऐसे वचनोंको सुनकर तुम्हारे
 पुत्र और सैनिक परस्पर शोकके उद्गार प्रकट करनेलगे और

मुहुस्तदाश्रुनेत्रैर्मुमुक्षुश्च शब्दवत् ॥ ६ ॥ प्रवर्त्तमाने तु पुनर्महा-
हवे विगाह्यमानासु चमूषु पार्थिवैः । अथाब्रवीद्धर्षकरं तदा वचो
रथर्षभान् सर्वमहारथर्वभः ॥ १० ॥ जगत्यनित्ये सततं प्रधावति
प्रचिंतयन्नस्थिरमद्य लक्षये । भवत्सु तिष्ठत्स्विह पातितो मृधे गिरि-
मकाशः कुरुपुङ्गवः कथम् ॥ ११ ॥ निपातिते शान्तनवे महारथे
दिवाकरे भूतलमास्थिते यथा । न पार्थिवाः सोढुमलं धनञ्जयं
गिरमवोढारमिवानिलं द्रुमाः ॥ १२ ॥ इतप्रधानं त्विदमात्तरूपं परै-
र्हतोत्साहमनाथमद्य वे । यया कुरूणां परिपाल्यमाहवे वलं यथा
तेन महांमना तथा ॥ १३ ॥ समाहितं चात्मनि भारमीदृशं जग-
त्तथानित्यमिदञ्च लक्षये । निपातितश्चाहवशौण्डमाहवे कथं तु
कुर्यामहमीदृशे भयम् ॥ १४ ॥ अहन्तु तान् कुरुवृषभानजिह्मगैः
ढींख फोड़कर रोनेलगे, तदनन्तर राजाओंके अपनी २ सेनामें
उपस्थित हो युद्धके दुवारा आरंभ होजाने पर सब महारथियों
में श्रेष्ठ कर्ण युद्धमें वढ़े २ महारथियोंसे हर्ष देनेवाले बचन बोला
कि—यह जगत् सदा अनित्य है तथा मृत्युकी ओर दौड़ा करता
है, इस बातको विचारने पर मैं किसी वस्तुको भी नित्य नहीं
देखता तुम सभीपमें खड़े हुए थे तो भी पर्वतकी समान
कुचकुलश्रेष्ठ भीष्मजी युद्धमें कैसे मारे गए ? ॥ ६-११ ॥
पृथ्वीमें सूर्यकी समान शान्तलुनन्दन महारथी भीष्मको जब
शत्रुओंने गिरा दिया तब जैसे पर्वत उखाड़ने वाले वायु को
हत्त नहीं सह सकते हैं तैसे राजे अर्जुनको नहीं सह सकेंगे,
परन्तु भीष्मके गिरनेसे सेनापतिशून्य दुःखसे घबड़ाई हुई,
शत्रुओंसे पीडित सेनाकी मैं भीष्मकी समान ही रक्षा करूँगा
मुझ पर सेनाका भार आपड़ा है उसको मैं स्वीकार करता हूँ,
मैं जानता हूँ कि—यह जगत् नाशवान् है और यह भी मैंने देखा
है कि—रणवतुर भीष्म युद्धमें गिर पड़े हैं, तब मुझे अपना
कर्तव्य वंजानेमें क्यों भय करना चाहिये ? ॥ १२-१४ ॥ मैं

प्रवेशयन् यमसदनं चरन् रणे । यशः परं जगति विभाव्य वर्त्तितां
 परैर्हतां भुवि शयितां वा पुनः ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरो धृतिमति-
 सत्यसत्त्ववान् वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः । तथार्जुनस्त्रिदश-
 वरात्मजो युवा न तद्वलं युजयमिहामरैरपि ॥ १६ ॥ यमौ रणे यत्र
 यमोपमौ बले ससात्यकिर्यत्र च देवकीसुतः । न तद्वलं कापुरुषोऽ-
 भ्युपेयिवान् निवर्त्तते मृत्युमुखान्न चासुभृत् ॥ १७ ॥ तपोऽभ्युदीर्णो
 तपसैव बाध्यते बलं बलेनैव तथा मनस्विभिः । मनश्च मे शत्रुनिवा-
 रणे ध्रुवं स्वरक्षणे चाचलवद्वचस्थितम् । एवं चैषां बाधमानः प्रभावं
 गत्वैवाहं तान् जयाम्यद्य सून । मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं भग्ने
 सैन्ये यः समेयात् स मित्रम् ॥ १८ ॥ कर्त्तास्म्येतत् सत्पुरुषार्य-

युद्धस्थलमें घूमकर सीधे जानेवाले बाण मारता हुआ पाण्डवोंको
 यमपुरीमें भेजदूंगा और जगत्में अपने यशको प्रकट करके रहूंगा
 अथवा शत्रुओंसे मारा जाकर भूमि पर शयन करूंगा ॥ १५ ॥
 युधिष्ठिरमें धैर्य, बुद्धि, सत्य और सत्त्व है, भीमसेनमें सौ हाथि-
 योंके समान बल है, अर्जुन इन्द्रपुत्र है और तरुण है, देवता भी
 उसको बलको सहजमें नहीं जीत सकते ॥ १६ ॥ जहाँ पर यमकी
 समान बलवान् नकुल सहदेव हैं, और जहाँ सात्यकि तथा देवकी-
 पुत्र कृष्ण भी हैं ऐसे सेनादलमें यदि कोई कायर पुरुष प्रवेश
 करे तो मृत्युके मुखमें प्रवेश करनेवाले प्राणीकी समान वह वच ही
 नहीं सकता ॥ १७ ॥ परन्तु मैं कायरपुरुष नहीं हूँ, तपस्वी जैसे तपसे
 तपका काट करते हैं तैसे ही मनस्वी पुरुष अपनी सेनासे शत्रुसेना
 का पराजय करते हैं, मेरा मन भी शत्रुओंको हटानेमें जुटा हुआ
 है तथा अपनी रत्तामें भी पर्वतकी समान दृढ़ है ॥ १८ ॥ ओ
 सारथि ! अब जब मेरा मन मेरे अनुकूल है मैं शत्रुओंके पास
 जाकर उनके प्रभावको रोकता हुआ उनको आज ही जीतूंगा
 और उनका पराजय करूंगा मित्रद्रोह मुझसे सख्त नहीं है, सेनामें
 भागदण्डने पर जो सामने आये वह ही मित्र है ॥ १९ ॥ अतः मैं

कर्म त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि भीष्मम् । सर्वान्संख्ये शत्रुसंघान्
 हनिष्ये हतस्तैर्वा वीरलोकं प्रपत्स्ये ॥ २० ॥ सम्या क्रुष्टे रुदित-
 स्त्रीकुभारे पराहते पौरुषे धार्तराष्ट्रे । मया कृत्यमिति जानामि
 सूत तस्माद्राज्ञस्त्वद्य शत्रून् विजिष्ये ॥ २१ ॥ कुरुन् रत्तन् पांडु-
 पुत्रान् जिघांसंस्त्यक्त्वा प्राणान् घोररूपे रणेऽस्मिन् । सर्वान्
 संख्ये शत्रुसंघान्निहत्य दास्याम्यहं धार्तराष्ट्राय राज्यम् ॥ २२ ॥
 निवध्यतां मे कवचं विचित्रं हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि । शिरस्त्राणं
 चार्कसमानभासं धनुः शरांश्चाग्निविषाहिकल्पान् ॥ २३ ॥
 उपासज्ज्ञानं षोडश योजयंतु धनूंषि दिव्यानि तथाहरन्तु ।
 अर्सांश्च शक्तीश्च गदाश्च गुर्वीः शंखश्च जाम्बूनदचित्रनालम् ॥ २४ ॥

सत्पुरुषोचित सत्कर्म करूँगा और प्राणोंको त्यागकर भीष्मके
 पीछे जाऊँगा अर्थात् यातो रणमें सकल शत्रुओंके समूहोंको नष्ट
 करूँगा नहीं तो शत्रुओंसे मरण पाकर वीरपुरुषोंके लोकमें जा-
 ऊँगा ॥ २० ॥ जब कोई भी मुझ रत्ताके लिये पुकारे, जब स्त्री और
 बच्चे रोते हों और जब दुर्व्योधनका पराक्रम नष्ट होता हो तब
 मुझें युद्ध करना चाहिये ऐसा मेरा मत है, अतः हे सूत ! मैं रण
 में शत्रुओं पर विजय पाऊँगा ॥ २१ ॥ मैं घोर युद्धमें प्राणों की
 भी परवाह न करता हुआ कौरवोंकी रक्षा करूँगा, पाण्डवों का
 संहार करूँगा और सब शत्रुओंको मारहालनेके अनन्तर दुर्व्योधन
 को राज्य दूँगा ॥ २२ ॥ अतः अब तू मेरे लिये मणि तथा रत्नोंसे
 जड़ा चमकता हुआ विचित्र जातिका कवच लाकर मुझें
 पहिरा, मस्तक पर सूर्यकी समान चमकीले टोपको पहिरा, मेरे
 धनुषको और अग्निकी समान तथा जहरीले सापोंकी समान
 बाणों तथा सोलह भायोंको भी रथमें यथास्थान ठीक-२ करके
 रखतैसे ही और २ दिव्य धनुष, तलवार, शक्ति, बड़ी भारी गदा
 सुवर्णसे मढ़े होनेसे जिनका नाल विचित्र दीखता है ऐसे

इमां रौक्मीं नागकक्ष्यां विचित्रां ध्वजं चित्रं दिव्यमिन्दीवरांकम् ।
 श्लक्ष्णैर्वस्त्रैर्विपमृज्यानयन्तु चित्रां मालाञ्चारुवद्धां सलाजाम् ॥ २५ ॥
 अश्वानग्रयान् पाण्डुराश्रमकाशान् पुष्टान् स्नातान् मन्त्रपूताभि-
 रद्भिः । तप्तैर्वाग्दहैः काञ्चनैरभ्युपेतान् शीघ्रान् शीघ्रं सूतपुत्रानयस्व
 ॥ २६ ॥ रथं चाग्रं हेममालाननद्धं रत्नैश्चित्रं सूर्यचन्द्रमकाशैः । द्रव्यै-
 र्युक्तं सम्प्रहारोपपन्नैर्वाहैर्युक्तं तूर्णभावचर्यम् ॥ २७ ॥ चित्राणि
 चापानि च वेगवन्ति ज्याश्रोतपाः सन्नह्नोपपन्नाः । तूर्णैश्च
 पूर्णान्महतः शराणामासाद्य गात्रावरणानि चैव ॥ २८ ॥ प्राया-
 त्रिकं चानयताशु सर्वं दध्ना पूर्णं वीर कांस्यञ्च हैमम् । आनीयं
 मालामवबध्य चाङ्गे प्रवादयन्त्याशु जयाय भेरीः ॥ २९ ॥ प्रयाहि
 सूताशु यतः किरीटी वृकोदरो धर्मघृतो यमौ च । तान् वा

शंख, चान्दीकी विचित्र जंजीर, कमलके चित्रसे विचित्र दीखती
 हुई ध्वजा, और अज्जी तरह गुथी हुई भात्तरवाली मालाको
 स्वच्छवस्त्रोंसे साफ करके ला ॥ २३-२५ ॥ और हे सारथिपुत्र !
 स्वेत घेंघोंकी समान प्रकाशवाले, धौले रंगके उतावली चालके
 हृष्ट पुष्ट घोड़ोंको मंत्रोंसे पवित्र किये हुए जलसे स्नान कराकर
 और सोनेके गहने पहिरा कर शीघ्रतासे ला ॥ २६ ॥ और सूर्य तथा
 चन्द्रमाकी समान चमकीले रत्नोंसे विचित्र दीखते हुए सुवर्णकी
 मालावाले उत्तम रथको युद्धकी सब सामग्रियोंसे सजाकर, तथा
 उन घोड़ोंको जोड़ कर शीघ्र ही ला ॥ २७ ॥ वेगवाले विचित्र
 वाण, मजबूत प्रत्यङ्गायें, वाणोंसे लवालप्र भरे भाधे, शरीर परके
 कवच आदिको भी शीघ्र ला ॥ २८ ॥ युद्धयात्रामें उपयोगी
 सम्पूर्ण शुभ वस्तुओंको भी शीघ्र ला और दहीसे भरे कांसी
 तथा सोनेके पात्र भी ले आ मेरे गलोंमें विजयमाला पहिरा,
 विजयके लिये भट्ट पट भेरियोंका नाद करवा ॥ २९ ॥ तद-
 नन्तर हे सूतपुत्र ! त मुझ रथमें बैठाकर जहां अर्जुन, भीमसेन,
 धर्मपुत्र युधिष्ठिर और नकुल सहदेव हों तहां ले चल

हनिष्यामि समेत्य संख्ये भीष्माय गच्छामि हतो द्विपद्भिः ॥ ३० ॥
 यस्मिन् राजा सत्यवृत्तियु धिष्ठिरः समास्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
 वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च मन्ये बलं तदजय्यं महीपैः ॥ ३१ ॥
 तश्चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत् सदाऽपमत्तः समरे किरीटिनम् ।
 तथापि हन्तास्मि समेत्य संख्ये यास्यामि वा भीष्मपेथा यमाय
 ॥ ३२ ॥ न त्वेवाहं न गमिष्यामि तेषां मध्ये शूराणां तत्र चाहं
 ब्रवीमि । मित्रद्रुहो दुर्बलभक्तयो ये पापात्मानो न ममैते महायाः
 ॥ ३३ ॥ सञ्जय उवाच । समृद्धिमन्तं रथमुत्तमं ददं सकृदरं हेम-
 परिष्कृतं शुभम् । पताकिनं वातजवैर्हयोत्तमैर्युक्तं समास्थाय
 ययौ जयाय ॥ ३४ ॥ संपूज्यमानः कुशभिर्महात्मा रथर्षभो
 देवगणैर्यथेन्द्रः । ययौ तदा योधनमुग्रधन्वा यत्रावसानं भरतर्षभस्य

जिससे कि-मैं युद्धमें उनसे भेटा करके उनका संहार करूँ अथवा
 शत्रुओंसे मरण पाकर मैं ही भीष्मके पास जाऊँ ॥ ३० ॥ जिस
 सेनामें सत्य और धैर्यवाले राजा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल
 सहदेव, सात्यकि और श्रीकृष्ण हों उस सेनाको राजे नहीं जीत
 सकते, ऐसा मेरा दृढ़विश्वास है ॥ ३१ ॥ सबका संहारका करने
 वाला काल भी सदा सावधान होकर रणमें अर्जुनकी रक्षा करेगा
 तो भी मैं रणमें अर्जुनका सामान होते ही उसको मार डालूँगा
 अथवा मैं स्वयं भी भीष्मके मार्गसे यमराजके दर्शन करनेको जाऊँ-
 गा ॥ ३२ ॥ मैं उन शूरवीरोंके बीचमें अवश्य जाऊँगा और जानेसे
 पहिले कहता हूँ कि-जो मित्रद्रोही दुर्बल भक्तिवाले तथा पापात्मा
 हैं, उनको मैं अपना सहायक नहीं मानता ॥ ३३ ॥ सञ्जयने
 कहा कि-ऐसा कहनेके अनन्तर कर्ण युद्धकी सामाग्रीसे भरे
 सुवर्णकी पत्तोंसे जड़े हुए, मजबूत ध्वजा, पताका वाले तथा
 पवनवेगी उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठकर जय करनेके लिये
 निकला ॥ ३४ ॥ देवता जैसे महात्मा इन्द्रकी पूजा करते हैं तैसे
 ही कौरवोंने भी उस समय महात्मा और महारथी कर्णकी पूजा

॥ ३५ ॥ बलुथिना महता सध्वजेन सुवर्णमुक्तामणिरत्नमालिना
सदश्वयुक्तेन रथेन कर्णो मेघस्रनेनार्क इवा मितौनाः ॥ ३६ ॥
हुताशनोऽसुतः स हुताशनमग्ने शुभः शुभे वैश्वरथे धनुर्धरः । स्थितो
रराजाधिरथिर्महारथः स्वयं विमाने मुरराडिवास्थितः ॥ ३७ ॥ * ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णनिर्याणे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच । शरतन्पे महात्मानं शयानममितौजसं । महा-
वातसमूहेन समुद्रमिव शोषितम् ॥ १ ॥ दृष्ट्वा पितामहं भीष्मं
सर्वज्ञातकं गुरुम् । दिव्यैरस्त्रैर्महेष्वासं पातितं सव्यसाचिना । २ ।
जयाशा तत्र पुत्राणां संभग्ना शर्म वर्म च । अपाराणामिव द्वीप-
मगाधे गाधमिच्छतां ॥ ३ ॥ स्रोतसा यामुनेनैव शरीत्रेण परिप्लुतं ।

की, तदनन्तर जहाँ पर भरतवंशश्रेष्ठ भीष्म पड़े थे उस रणभूमि
में उग्रधनुर्धर कर्ण गया, भूयकी समान अपार बलवाला कर्ण
ध्वजावाले, सुवर्ण, रत्न, मोती और मणियोंकी मालावाले तथा
उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए श्रेष्ठ रथमें बैठा था तथा वह रथ मेघकी
समान गर्जना कर रहा था ॥ ३५-३६ ॥ अपने अग्निकी समान
भलभलाते हुए उत्तम रथमें बैठा हुआ तथा अग्निकी समान
तेजस्वी महारथी कर्ण उस समय विमानमें बैठे हुए इन्द्रकी समान
शोभा पारहा था ॥ ३७ ॥ द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! कर्ण रथमें बैठकर
जहाँ भरतवंशके पितामह महाबलशाली महात्मा भीष्म बाणशय्या
पर पड़े हुए थे तहाँ पर गया और देखा तो सकल क्षत्रियोंके
संहारकर्ता भीष्म सव्यसाचीके दिव्य अस्त्रोंके प्रहारोंसे घायल
होकर बाणशय्या पर पड़े हुए हैं ॥ १-२ ॥ भीष्मके पतनसे
तुम्हारे पुत्रोंकी विजायाशा, कन्याएँ तथा रक्षण आदि सब नष्ट
होगएँ, निराधार और अगाध सैन्यसागरमें आश्रयको चाहने
वाले तुम्हारे पुत्रोंके आधाररूप अकेले भीष्म ही थे ॥ ३ ॥ यमुना

महेन्द्रेणैव मैनाक्रमसहं भुवि पातितं ॥ ४ ॥ नभश्च्युतमिवादित्यं
पतितं धरणीतले । शतक्रतुमिवाचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निजितम् ॥ ५ ॥
मोहनं सर्वसैन्यस्य युधि भीष्मस्य पातनं । ककुदं सर्वसैन्यानां लक्ष्य
सर्वधनुष्मता ॥ ६ ॥ धनञ्जयशरैर्व्याप्तं पितरं मे महाव्रतं । तं
वीरशयने वीरं शयानं पुरुषर्षभं ॥ ७ ॥ भीष्ममाधिरथिर्दृष्ट्वा
भरतानां महाद्युतिः । अवतीर्य रथादाचो वाष्पव्याकुलितान्तरं च
अभिवाद्यांजलिं घृष्ट्वा वंदमानोऽभ्यभाषत । कर्णोऽहमस्मि भद्रं ते
वद मामग्निं भारत ॥ ८ ॥ पुण्यया क्षेम्यया वाचा चक्षुषा चाव-
लोक्य । न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित्समश्नुते ॥ १० ॥ यत्र
धर्मपरो वृद्धः शोते भुवि भवानिह । कोशसंचयने मंत्रे व्यूहे महार-

के प्रवाहकी समान वाणोंके झुण्डसे भीष्मजी चारों ओर से
विंधे हुए थे, जैसे महेन्द्रने असह्य मैनाक्रमको भूमि पर गिराया था
तैसे ही अर्जुनने भीष्मजीको रणभूमिमें ढा दिया ॥ ४ ॥ भूतल
पर पड़े हुए पितामह आकाशमेंसे गिरे हुए आदित्यमे मालूम
होते थे, पहिले जैसे वृत्रने इन्द्रको अचानक जीत लिया था तैसे
ही अर्जुनने भी पितामहको अचानक जीत लिया ॥ ५ ॥ रणमें
भीष्मजीका गिरना था, कि—सब सेना घबड़ा गयी, सब सेना
के नायक और धनुषधारियोंके आभूषणरूप महाव्रतधारी भीष्म
जी अर्जुनके वाणोंसे विंधकर वीरशय्या पर सो गये, उनको
देखकर महाक्रान्ति वाला तथा भरतवंशी राजाओंमें महारथी
अधिरथका पुत्र कर्ण घबड़ा गया और दोनों हाथ जोड़े हुए
भीष्मजीको प्रणाम करके नेत्रोंमें आंसू भर लाया और अद-
खड़ाती हुई वाणीमें कहने लगा, कि—हे भरतवंशके पितामह !
मैं कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ, आप मेरी ओरको कृपादृष्टि
करिये, और पवित्र तथा कल्याणकारी भाषण करिये, आपका
कल्याण हो, हे कुरुवंशके महापुरुष ! आपसरीखे धर्मपरायण
कौरवोंके वृद्ध पुरुषको आज इसप्रकार रणभूमिमें पड़े हुए देख

येषु च ॥ ११ ॥ नाहमन्यं प्रपश्यामि कुरुणां कुरुपुत्रय । वृद्ध्या
 विशुद्धया युक्तो य कुरुंस्तारयेद्भयात् ॥ १२ ॥ योधास्तु बहुधा हत्वा
 पितृलोकं गमिष्यति । अद्यप्रभृति संक्रुद्धा व्याघ्रा इव मृगक्षयं १३
 पाण्डवा भरतश्रेष्ठ करिष्यन्ति कुरुक्षयम् । अद्य गांढीवयोपस्य
 वीर्यज्ञा सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥ कुरवः संगसिष्यन्ति वज्रपाणे-
 रिवासुराः । अद्य गांढीवमुक्तानामशनीनामिव स्यनः ॥ १५ ॥
 प्रासयिष्यति बाणानां कुरुनन्याश्च पार्थिवान् । समिष्टोऽग्निर्यथा
 चीर महाज्वालो द्रुमान्दहेत् ॥ १६ ॥ धार्तराष्ट्रान्प्रथच्यात् तथा बाणाः
 किरीटिनः । येन येन हस्तरतो वाय्वग्नी सृष्टिर्तां घने १७ तेन तेन
 प्रसरतो भूरि शुम्भसृणुष्वान् । यादृशोऽग्निः समुद्रभूतस्तादृक्

कर मुझे प्रतीत होता है कि—जगद्में किसी मनुष्यको भी
 उसके अच्छे कर्मोंका फल नहीं मिलता, राजकीय जनभण्डारको
 इकट्ठा करनेमें, राष्ट्रसम्पत्ती विचार करनेमें, व्यर्थोंको रचनेमें
 और युद्ध करनेमें हे कुरुकुलपुत्रय ! मैं आपकी समान किसीको
 भी नहीं देखता हूं, जो विशुद्ध बुद्धि वाला कौरवोंको भयसे
 मुक्त करे ॥ ६-१२ ॥ ऐसे आज आप रणमें अनेकों योधाओं
 का संहार कर पितृलोकमें जानेको तयार हुए हो, इस ही दिन
 से जैसे कोपमें भरे हुए शत्रु युद्धोंका संहार करते हैं तैसे ही
 पांडव भी कौरवोंका संहार ढालेंगे और जैसे अश्वर इन्द्रसे डरते
 हैं तैसे ही हे भरतवंशके पितामह भीष्मजी ! आजसे कौरव कि-
 जिनको सव्यसाची अर्जुनके गाण्डीव धनुषका ज्ञान है वह भी
 अर्जुनसे घबड़ाने लगेंगे, और अर्जुनके गाण्डीव धनुषमेंसे
 छूटने वाले वज्रकी समान बाणोंकी ध्वनि सकल कौरवोंको तथा
 अन्य राजाओंको भी भयभीत कर ढालेगी तथा जैसे अग्नि अपनी
 वही २ लपटोंसे वृक्षोंको जलाकर भस्म कर ढालता है तैसे ही
 अर्जुनके बाण कौरवोंका नाश कर ढालेंगे । यन्में वायु और
 अग्नि दोनों एक साथ मिल कर जैसे २ आगे २ को बढ़ते चले

पार्थो न संशयः ॥१८॥ यथा वायुर्नरव्याघ्रतथा कृष्णो न संशयः ।
 नदतः पाञ्चजन्यस्य रसतो गाढिवस्य च ॥१९॥ श्रुत्वा सर्वाणि
 सैन्यानि त्रासं यास्यन्ति भारत । कपिध्वजस्योत्पततो रथस्याभिन्न-
 कर्षिणः ॥ २० ॥ शब्दं सोढुं न शक्यन्ति त्वामृते वीर पार्थिवः ।
 को ह्यर्जुनं योषयितुं त्वदन्यः पार्थिवोऽर्हति ॥२१॥ यस्य दिव्यानि
 कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः । अमालुषैश्च संग्राह्यमव्यक्तेण महा-
 त्मना ॥२२॥ तस्माच्चैव वरं प्राप्तो दुष्प्रापमकृतात्मभिः । कोऽन्यः
 शक्तो रणे जेतुं पूर्वं यो न जितस्त्वया ॥२३॥ जितो येन रणे रामो
 भवता वीर्यशालिना । क्षत्रियान्तकरो घोरो देवदानवदर्पहा ॥२४॥
 तमघाहं पाण्डवं युद्धशौण्डमसृष्यमाणो भवता चालुशिष्टः । अशी-

जाते हैं तैसे २ ही अनेकों आड़ भंकार और दृढ़ोंको जलाते
 चलते जाते हैं, तैसे ही धनञ्जय, वहे हुए अग्निकी समान है
 और श्रीकृष्ण वायुकी समान है, निःसन्देह श्रीकृष्णके रथके
 और अर्जुनके गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनकर सब सेना
 घबड़ा जायगी और हे वीर ! तुम्हारे बिना दूसरे राजे शत्रुओंका
 संहार करते हुए कपिध्वज अर्जुनके ध्वजसे चलते हुए रथके
 शब्दको भी सहन नहीं कर सकते, आपके सिवाय दूसरा ऐसा
 कौन है जो अर्जुनके साथ युद्ध कर सके ? ॥१३-२१॥ विद्वान्
 कहते हैं, कि—उसके दिव्य अस्त्र हैं, उसने निचातकवच आदि
 के साथ और महात्मा महादेवके साथ युद्ध किया था तथा उसने
 शंकरसे दुर्लभ वरदान पाया था और क्षत्रियोंका संहार करने
 वाले, देवता तथा दानवोंका गर्व ढाने वाले महाभयंकर परशु-
 रामको जिन्होंने रणभूमिमें जीता था ऐसे अर्जुनको आप पहिले
 रणमें नहीं जीत सके थे, फिर उसको रणमें दूसरा कौन जीत
 सकता है ? युद्धचतुर अर्जुनको मैं भी नहीं सहसकता, तो भी
 आप आज्ञा दें तो आज ही विषधर सर्पकी समान श्रद्धिसे हरण

विपं दृष्टिहरं सुघोरं शूरं शच्याम्यस्त्रवलान्निहन्तुम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि

कर्णवाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच । तस्य लालप्यमानस्य कुरुवृद्धः पितामहः ।
देशकालोचितं वाक्यमब्रवीत्पीतिमानसः ॥ १ ॥ समुद्र इव
सिन्धूनां ज्योतिषामिव भास्करः । सत्यस्य च यथा सन्तो
वीजानामिव चोवरा ॥ २ ॥ पर्जन्य इव भूतानां प्रतिष्ठा गृह्णा
भव । बान्धवास्त्वानुजीयन्तु सहस्राक्षमिवामराः ॥ ३ ॥ मान्हा
भव शत्रूणां मित्राणां नन्दिवर्द्धनः । कौरवाणां भव गतिर्यथा
विष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ४ ॥ स्वबाहुवलवीर्येण धर्तराष्ट्रजयैपिणा ।
कण राजपुरं गत्वा क्राम्योजा निर्जिज्ञतास्त्वया ॥ ५ ॥ गिरिव्रज-
गताश्चापि नग्नजित्प्रमुखा नृपाः । अन्वगताश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च
करने वाले महाभयानक और वीर अर्जुनको बलसे मार सकूँगा
॥ २२—२५ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ * ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! कुरुकुलवृद्ध भीष्मपिता-
मह कर्णके वचनोंको बारम्बार सुनकर मनमें प्रसन्न होते हुए देश
कालके अनुकूल कहने लगे, कि—जैसे समुद्र महानदियोंका, जैसे
सूर्य तेजस्वी नक्षत्रोंका, जैसे सत्पुरुष सत्यका, जैसे अतिसुन्दर
भूमि धीजका तथा जैसे मेघ सधावर जङ्गम प्राणियोंका आश्रय
है, तैसे ही स्नेही तेरा आश्रय लें । जैसे देवता इन्द्रके भरोसे
पर जीवन धारण करते हैं तैसे ही तेरे बान्धव तेरे ऊपर आजी-
विका करै ॥ १—३ ॥ तू शत्रुओंके मानको तोड़नेवाला, मित्रोंको
प्रसन्न करनेवाला तथा जैसे विष्णु देवताओंके आधार हैं तैसे
तू कौरवोंका आधार होगा ॥ ४ ॥ हे कर्ण ! धृतराष्ट्रनन्दन दुर्यो-
धनकी विजय चाहनेवाले तूने राजपुरमें जाकर अपनी भुजाके
बल और वीरतासे क्राम्योज देशके राजाओंको जीता था ॥ ५ ॥
तूने गिरिव्रजमें जाकर नग्नजित् आदि राजाओंको तथा अम्बष्ठ

जितास्त्वया ॥ ६ ॥ हिमवद्दुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः ।
 दुर्योधनस्य व्रशगास्त्वया कर्ण पुरा कृताः ॥ ७ ॥ उत्कला मेकलाः
 पौण्ड्राः कलिङ्गाध्राश्च संयुगे । निषादाश्च त्रिगर्त्ताश्च बान्हीकाश्च
 जितास्त्वया ॥ ८ ॥ तत्र तत्र च संग्रामे दुर्योधनहितैषिणा
 बहवश्च जिताः कर्ण त्वया वीरा महौजसाः ॥ ९ ॥ यथा दुर्योधन-
 स्तात सङ्गातिकुलवान्धवः । तथा त्वमपि सर्वेषां कौरवाणां
 गतिर्भव ॥ १० ॥ शिवेनापि वदामि त्वां गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः ।
 अनुशाधि कुरुन् संख्ये धत्स्व दुर्योधने जयम् ॥ ११ ॥ भवान्
 पौत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा । तवापि धर्मतः सर्वे यथा
 तस्य वयं तथा ॥ १२ ॥ यौनात्सम्बन्धकाल्लोके विशिष्टः सङ्गतं
 सताम् । सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १३ ॥ स
 सत्पसङ्गतो भूत्वा ममेदमिति निश्चितः । कुरुणां पालय वलं

विदेह और गान्धारोंको जीता था ॥ ६ ॥ हे कर्ण ! तूने पहिले
 हिमालयके किलोंमें रहनेवाले तथा रणमें बड़े कठिन पढ़नेवाले
 किरातोंको दुर्योधनके वशमें करदिया था ॥ ७ ॥ तूने संग्राममें
 उत्कल, मेकल, पौण्ड्र, कलिङ्ग, आंध्र, निषाद, त्रिगर्त्त और बान्हीक
 राजाओंको जीतलिया था ॥ ८ ॥ हे महाबली कर्ण ! तूने दुर्योधन
 का हित करनेकी इच्छासे जहाँ तहाँ अनेकों संग्रामोंमें बहुतसे वीरों
 को जीता था ॥ ९ ॥ हे तात ! जैसे दुर्योधन सब कौरवोंका आधार
 है, तैसे ही तू भी जाति परिवार और बान्धवों सहित कौरवोंको
 आश्रय देना ॥ १० ॥ मैं तुझे आशीर्वाद देता हुआ कहता हूँ,
 कि—जा, शत्रुओंके साथ युद्ध कर, कौरवोंको रण करनेकी आज्ञा
 दे और दुर्योधनको जय प्राप्त करा ॥ ११ ॥ जैसे दुर्योधन है तैसे
 ही तू भी हमारे पोतेकी समान है जैसे हम दुर्योधनके हित हैं तैसे
 ही धर्मसे तेरे भी हैं ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! विद्वान् कहते हैं, कि—
 जगत्में एक कुटुम्बमें उत्पन्न होना रूप यौन सम्बन्धसे सत्पुरुषों
 के सङ्गका सम्बन्ध विशेष है ॥ १३ ॥ इसलिये तू भी सत्यका

यथा दुर्योधनस्तथा ॥ १४ ॥ निशम्य वचनं तस्य चरणावभि-
वाद्य च । ययौ वैकर्त्तनः कर्णः समीपं सर्वधन्विनाम् ॥ १५ ॥
सोऽभिवीक्ष्य नरीघाणां स्थानमप्रतिमं महत् । व्यूढप्रहरणोरस्कं
सैन्यं तत्समवृंहयत् ॥ १६ ॥ हृषिताः कुरवः सर्वे दुर्योधन-
पुरोगमाः । उपागतं महाबाहुं सर्वानीकपुरःसरम् ॥ १७ ॥ कर्णं
दृष्ट्वा महात्मानं युद्धाय समुपस्थितम् । च्वेहितास्फोटितरथैः
सिंहनादरवैरपि । धनुशब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन् ॥ १८ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णारवासे
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच । रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम् ।
हृष्टो दुर्योधनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ सनाधनिव मन्येऽहं
भयता पाण्डितं बलम् । अत्र किं नु समर्थं यद्विनं तत् सम्प्रधार्य-

सङ्गी होकर और यह मेरे है ऐसा निश्चय करके जैसे दुर्योधन
तैसे ही तू कौरवसेनाकी रक्षा कर ॥ १४ ॥ भीष्मजीकी इस
बातको सुनकर तथा उनके घरणोंमें प्रणाम करके विकर्त्तनका पुत्र
कर्ण सब धनुषधारियोंके पास गया ॥ १५ ॥ यह तहां मनुष्यों
के प्रदार्शोंके अनुपम रणस्थानको देख कर व्यूहचरनामें शस्त्र
लढाये खड़े हुए सेनादलको उत्साह दिलाने लगा ॥ १६ ॥ सब
सेनाके आगे २ चलते आये हुए महाबाहु कर्णको देखकर
दुर्योधन आदि सब कौरव बड़े प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ युद्धके लिये
आयेहुए महात्मा कर्णको देखकर कौरव भुजदण्डोंपर ताल देते
हुए सिंहनाद की समान शब्दोंसे और नानाप्रकार की धनुषकी
टङ्कारोंसे कर्णका स्वागत करने लगे ॥ १८ ॥ चौथा अध्याय
समाप्त ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ *

सञ्जय कहता है, कि-वे राजन् धृतराष्ट्र ! पुरुषोंमें सिद्धतमान
कर्णको, रथमें बैठकर लड़नेके लिये आयाहुआ देखकर दुर्योधन
ने प्रसन्न होकर यह कहा कि-जब तू रक्षा करता है तो मैं अपनी

ताम् ॥ २ ॥ कर्ण उवाच । ब्रूहि नः पुरुषव्याघ्र त्वं हि माहृतयो
 नृप । यथा चार्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः ॥ ३ ॥ ते स्म
 सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर । नान्पाय्यं हि भवान् वाक्यं
 ब्रूयादिति मतिर्मम ॥ ४ ॥ दुर्योधन उवाच । भीष्मः सेना-
 प्रणोतासीद् वयसा विक्रमेण च । श्रुतेन चोपसम्पन्नः सर्वैर्योध-
 गणैस्तथा ॥ ५ ॥ तेनातिशया कर्णं धनत्रा शत्रुगणान्मम ।
 सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्मो महात्मना ॥ ६ ॥ तस्मिन्-
 सुकरं कर्म कृतवत्यास्थिते दिवम् । कं तु सेनाप्रणेतारं मन्यसे
 तदनन्तरम् ॥ ७ ॥ न विना नायकं सेना मुहूर्त्तमपि तिष्ठति ।
 आहवेष्वहवश्रेष्ठ कर्णं हीनेषु नौज्ज्वले ॥ ८ ॥ यथा ह्यकर्णधारा

सेनाको सनाथ मानता हूं, अब हमको कौनसा हितकारी काम
 करना चाहिये, उसका विचार करना उचित है ॥ २ ॥ कर्णने
 कहा, कि—हे पुरुषसिंह दुर्योधन ! तुम बड़े बुद्धिमान् राजा हो,
 इसकारण तुम ही उचित समिति देसकते हो, मुख्य राजा जैसा
 कामको समझता है तैसा दूसरा नहीं समझता ॥३॥ हे राजन् !
 अब हम सब तुम्हारी ही बात-सुनना चाहते हैं, मेरी समझमें आप
 अनुचित बात कहेंगे ही नहीं ॥४॥ दुर्योधन बोला कि—हे कर्ण !
 अज्ञस्था, पराक्रम और शास्त्राभ्यास आदि गुणोंसे युक्त भीष्मजी
 हमारी सेनाके नायक थे, हे कर्ण ! उन महाकान्तिमान्ने सब
 योधाओंको साथमें लेकर मेरे शत्रुओंका संहार किया और दस
 दिन बराबर उत्तम सेनापतिके रूपमें संग्राम करके उन महात्माने
 हमारी रक्षाकी ॥ ५ ॥ ६ ॥ महाकठिन पराक्रम करनेवाले वह तो
 स्वर्गको पधारने वाले हैं, उनके अमन्तर हे कर्ण ! अब तुम
 सेनापति किसको बनाना उचित समझते हो ॥७॥ विना नायकके
 तो सेना एक मुहूर्त्तकी भी नहीं ठहर सकती, हे युद्ध करनेवालों
 में श्रेष्ठ ! जैसे कि—विना मल्लाहकी नायकत्वमें जरादेर भी नहीं
 टिकसकती ॥ ८ ॥ जैसे विना मल्लाहकी नौका और विना

नौ रथश्चासारथिर्यथा । द्रवेद्यथेष्टं तद्वत्स्यादृते सेनापतिं बलम्
 ॥ ९ ॥ अदेशिको यथा सार्थः सर्वकृच्छ्रं समृच्छति । अनायका
 तथा सेना सर्वान् दोषान् समृच्छति ॥ १० ॥ स भवान् वीक्ष्य
 सर्वेषु मामकेषु महात्मसु । पश्य सेनापतिं युक्तमनुशान्तनवादिह
 ॥ ११ ॥ यं हि सेनामणेतारं भवान् वक्ष्यति संयुगे । तं वयं
 सहिता सर्वे करिष्यामो न संशयः ॥ १२ ॥ कर्ण उवाच । सर्व
 एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः । सेनापतित्वमर्हन्ति नात्र कार्या
 विचारणा ॥ १३ ॥ कुलसंहननज्ञानैर्वलविक्रमबुद्धिभिः । युक्ताः
 श्रुतज्ञा धीमन्त आहवेष्बनिवर्तिनः ॥ १४ ॥ युगपन्नतु ते शक्याः
 कर्तुं सर्वे पुरांसरा । एक एव तु कर्तव्यो यस्मिन् वैशेषिका
 गुणाः ॥ १५ ॥ अन्योऽन्यस्पर्धिनां द्वेषां यद्येकं यं करिष्यसि ।

सारथीका रथ चाहे तिघरको जाने लगते हैं तैसे ही बिना सेना-
 पतिकी सेनाकी दशा होती है ॥ ९ ॥ जैसे बिना नेताका सब
 सार्थ (गिरोह) महाकष्ट पाता है तैसे ही बिना नायककी सेना
 सब ही प्रकारके दुःखोंको भोगती है ॥ १० ॥ इस लिये अब
 तू मेरे सब महात्मा पुरुषों पर दृष्टि डालकर शान्तनुनन्दन के
 अनन्तर योग्य सेनापतिका चुनाव कर ॥ ११ ॥ रणमें जिसको
 सेनापति बनानेके लिये कहेगा, निःसन्देह हम सब मिलकर उसको
 ही सेनापति बनादेंगे ॥ १२ ॥ कर्णने कहा कि—ये सब ही राजे
 महात्मा और पुरुषोंमें परमश्रेष्ठ हैं तथा सेनापति बननेके योग्य हैं
 इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १३ ॥ क्योंकि—
 ये सब राजे कुल, शारीरिकबल, ज्ञानबल, पराक्रम तथा बुद्धि-
 बलसे युक्त हैं, शास्त्रके ज्ञाता हैं और रणमें पीछेको नहीं हट
 सकते ॥ १४ ॥ परन्तु इन सबोंको ही एकसाथ नायक नहीं
 बनाया जासकता, अतः जिसमें विशेष गुण हों उस एकको
 ही नायक बनाना चाहिये ॥ १५ ॥ ये सब एक दूसरेके
 समान हैं, अतः इनमेंसे किसी एकको सेनापति नियत

शेषा विमनसा व्यक्तं न येत्स्यन्ति हितास्तव ॥ १६ ॥ अथश्च
सर्वयोधानमाचार्यः स्थविरो गुरुः । युक्तः सेनापतिः कर्तुं द्रोणः
शस्त्रभृताम्बरः ॥ १७ ॥ को हि तिष्ठति दुर्धने द्रोणे शस्त्रभृताम्बरे
सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात् ॥ १८ ॥ न च
सोऽप्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत । द्रोणं यः समरे यात-
मनुयास्यति संयुगे ॥ १९ ॥ एष सेनाप्रणेतृणामेष शस्त्रभृतामपि
एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन् गुरुस्तव ॥ २० ॥ एवं दुर्योधना-
चार्यमाशु सेनापतिं कुरु । जिगीषन्तो मुरान् संख्ये कर्त्तिकेय
मित्रावराः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सञ्जय उवाच । कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।

करूँगा तो एक दूसरेकी स्पर्धाके कारण तुम्हारे हितैषी
होकर भी उदास हो बैठेंगे और जी लगाकर युद्ध नहीं
करेंगे ॥ १६ ॥ इसलिये इन सब राजाओंके आचार्य गुरु वृद्ध
अवस्थावाले और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको सेनापति
बनाना उचित है ॥ १७ ॥ शुक्र और बृहस्पतिकी समान, शस्त्रधा-
रियोंमें श्रेष्ठ किसीसे न दबनेवाले तथा ब्रह्मवेत्ता द्रोणाचार्यके जीते
हुए दूसरा कौन सेनापति होसकता है ? ॥ १८ ॥ हे भारत !
सब राजाओंमें दूसरा ऐसा एक भी योधा नहीं है जो युद्ध करने
को चढ़ेहुए द्रोणके पीछे २ न जाय ॥ १९ ॥ हे राजन् ! द्रोण
इन सेनापतियोंमें मुख्य है, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ है, बुद्धिमानोंमें
उत्तम है तथा तुम्हारे गुरु है ॥ २० ॥ इसलिये हे दुर्योधन !
जैसे देवताओंने युद्धमें विजय पानेकी इच्छासे स्वामिकर्त्तिकेयको
सेनापति बनाया था तैसे ही तुम भी द्रोणाचार्यको शीघ्र ही सेना-
पति बनाओ ॥ २१ ॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ * ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! राजा दुर्योधन कर्ण

सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ दुर्योधन उवाच ।
 धृष्टश्रैष्ठ्यात् कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया । वीर्यादास्याद-
 धृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात् ॥ २ ॥ तपसा च कृतज्ञत्वाद्
 वृद्धः सर्वगुणैरपि । युक्तो भवत्सपो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते
 ॥ ३ ॥ स भवान् पातु नः सर्वान् देवानिव शतक्रतुः । भग्ननेत्राः
 परान् जेतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ ४ ॥ रुद्राणामिव कापाली
 वसूनामिव पावकः । कुबेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥ ५ ॥
 वशिष्ठ इव विषाणां तेजसामिव भास्करः । पितृणामिव धर्मद्रो
 यादसामिव चाम्बुराट् ॥ ६ ॥ नक्षत्राणामिव शशी दितिजाना-
 मिवोशनाः । श्रेष्ठः सेनाप्रणेतृणां स नः सेनापतिभव ॥ ७ ॥
 अक्षौहिण्यौ दशैका च वशगार्ः सन्तु तेऽनघ । तामिः शत्रून्

की बात सुनकर उसी समय सेनाके मध्यमें खड़े हुए द्रोणाचार्य
 के पास जाकर यह बात कही ॥ १ ॥ दुर्योधन बोला, कि—
 श्रेष्ठधर्मा ब्राह्मणजाति होनेसे, उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेसे शास्त्र
 का ज्ञान होनेसे, तथा वृद्ध अवस्था, बुद्धि, वीरता चतुराई, नि-
 र्भीकता, बातको समझना, नीतिका ज्ञान, अनेकों बार विजय
 पाना, तप और कृतज्ञता होनेके कारण आप सब ही गुणोंसे
 सम्पन्न और वृद्ध हैं, इस कारण इन सब राजाओंमें आपकी
 समान सेनापति बननेकी योग्यता वाला और कोई नहीं है २-३
 सो जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करता है तैसे आप हमारी रक्षा
 करिये, हे द्विजेन्द्र ! हम आपको अपना सेनापति बनाकर शत्रुओं
 को जीतना चाहते हैं ॥ ४ ॥ जैसे रुद्रोंमें कापाली, जैसे वसुओं
 में पावक, जैसे यक्षोंमें कुबेर, जैसे मरुतोंमें वासव ॥ ५ ॥ जैसे
 ब्राह्मणोंमें वशिष्ठ, जैसे तेजोंमें सूर्य, जैसे पितरोंमें धर्मराज, जैसे
 जलचरोंमें वरुण ॥ ६ ॥ जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, और जैसे दैत्योंमें
 शक्र हैं तैसे ही आप सकल सेनापतियोंमें श्रेष्ठ हैं, इस कारण
 आप हमारे सेनापति बनिये ॥ ७ ॥ हे अनघ ! ये ग्यारह अक्षौ-

प्रतिव्यूह जहीन्द्रो दानवानिव ॥८॥ प्रयातु नो भवानग्रे देवाना-
मिव पावकः । अनुयास्यामहे त्वानौ सौरभेषा इवर्षभम् ॥ ९ ॥
उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन् धनुः । अग्रे भवं त्वान्तु
दृष्ट्वा नाजुनः महरिष्यति ॥ १० ॥ ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये साजु-
बन्धं सवान्धवम् । जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान् सेनापतिर्यदि
॥११॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्ते ततो द्रोणः जयेत्युचुर्नराधिपाः ।
सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवात्मजम् ॥ १२ ॥ सैनिकाश्च मुदा
युक्ता वर्षयन्ति द्विजोत्तमम् । दुर्योधनं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्तो मह-
यशः । दुर्योधनं ततो राजन् द्रोणो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥ *
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रोत्साहने
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिणी सेना आपके आधीन है, इनसे घिरकर शत्रुओंको मार-
ढालिये, जैसे दानवोंको इन्द्रमारता है ॥ ८ ॥ हे द्रोण ! जैसे
देवताओंके आगे २ स्वाभिकात्तिकेय चलते हैं तैसे ही आप
हमारे आगे २ चलिये जैसे मुरभिके पुत्र अपने दत्तपति
वृषभके पीछे २ जाते हैं तैसे ही हम रणमें आपके पीछे २
जायँगे ॥ ९ ॥ बड़े उग्र धनुषको धारण करनेवाला अजुन दिव्य
धनुषके ऊपर टङ्गार देता हुआ चढ़ आवेगा, परन्तु आपको
आगे देखकर महार नहाँ करेगा ॥ १० ॥ हे पुरुषसिंह ! यदि
आप सेनापति बनजायँगे तो निःसन्देह रणमें परिवार और
बान्धवों सहित युधिष्ठिरको जीतलूँगा ॥ ११ ॥ सञ्जयने कहा,
कि-हे धृतराष्ट्र ! इसप्रकार तुम्हारे पुत्रके कहने पर कौरव सेना
के राजाओंने बड़ा भारी सिंहनाद करके तुम्हारे पुत्रको हष
उत्पन्न करते हुए द्रोणाचार्यकी जयजयकार पुकारी ॥ १२ ॥
और सैनिक भी बड़ा भारी यश चाहते हुए दुर्योधनको आगे
करके हर्षमें भरेहुए द्रोणाचार्यके उत्साहको बढ़ानेलगे, उस समय
द्रोणने दुर्योधनसे इसप्रकार कहा ॥१३॥ छठा अध्याय समाप्त ६

द्रोण उवाच । वेदं पठन् वेदाहमर्थविद्याञ्च मानवीम् । त्रैव्य-
म्बकमथेष्वस्त्रं शस्त्राणि विविधानि च ॥ १ ॥ ये चाप्युक्ता मयि
गुणा भवद्भिर्ज्येष्ठांतिभिः चिकीर्षुस्तानहं सर्वान् योषयिष्यामि
पाण्डवान् ॥ २ ॥ पार्षतन्तु रणे राजन् न हनिष्ये कथञ्चन ।
स हि सृष्टो वधार्थाय ममैव पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥ योषयिष्यामि
सैन्यानि नाशयन् सर्वसोपकान् । न च मां पाण्डवा युद्धे योष-
यिष्यन्ति इषिताः ॥ ४ ॥ सञ्जय उवाच । स एवमभ्यनुह्यतश्चक्र
सेनापतिं ततः । द्रोणं तव सुतो राजन् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥
अथाभिपिपिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृषाः । सेनापत्ये यथा स्कन्दं
पुरा शक्रमुखाः सुराः ॥ ६ ॥ ततो वादित्रघोषेण शस्त्राताञ्च
महास्वनैः । प्रादुरासीत् कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥ ७ ॥

द्रोणने कहा, कि-हे दुर्योधन ! मैं ब्रह्म अर्हो सहित वेदको मनु
की कहीं अर्थविद्याको, शिवकी दी हुई वाणविद्याको और अनेकों
प्रकारके शस्त्रोंको जानता हूँ ॥ १ ॥ जय चाहनेवाले तुमने जो
गुण मुझमें बताये हैं उन सब गुणोंको चाहता हुआ मैं पाण्डवों
के साथ युद्ध करूँगा ॥ २ ॥ परन्तु हे राजन् ! मैं रणमें धृष्टद्युम्न
को कदापि नहीं मारसकूँगा, क्योंकि—वह पुरुषश्रेष्ठ मेरे ही
वधके लिये उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥ मैं सब सोपकोंका नाश
करताहुआ सेनाओंके साथ लड़ूँगा परन्तु पाण्डव रणमें मेरे साथ
प्रसन्नतासे नहीं लड़ेंगे ॥ ४ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् !
इसप्रकार द्रोणके कहने पर तुम्हारे पुत्रने शास्त्रोक्त विधिसे द्रोणा-
चार्यको सेनापतिके पद देनेका निश्चय करलिया ॥ ५ ॥ जैसे
पहिले इंद्र आदि देवताओंने स्वामिकार्त्तिकेयका सेनापतिके पदपर
अभिषेक किया था तैसे ही अब दुर्योधन आदि राजाओंने द्रोणा-
चार्यका अभिषेक किया ॥ ६ ॥ द्रोणको सेनापतिके पद पर
स्थापित करने पर बाजोंके शब्द और शंखोंकी महाध्वनियोंसे
उस समय हर्ष प्रकट किया गया और पुण्याहवाचनके घोषसे

ततः युण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च । संस्तवैगीतशब्दैश्च
 सूतमागधवन्दिनाम् ॥ ८ ॥ जयशब्दैर्द्विजाग्रचायां सुभगानर्तितै-
 स्तथा । सत्कृत्य विधिना द्रोणं मेनिरे पाण्डवान् जितान् ॥ ९ ॥
 सञ्जय उवाच । सैन्यपत्यन्तु सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः । युयु-
 त्सुव्यूहं सैन्यानि प्रायात्तव सुतैः सह ॥ १० ॥ सैन्धवश्च कलिङ्गरश्च
 विकर्णश्च तवात्मजः । दक्षिणं पार्श्वमास्थाय समतिष्ठन्त दंशिताः
 ॥ ११ ॥ प्रपन्नः शकुनिस्तेषां प्रवरैर्हयसादिभिः । ययौ गान्धारकैः
 सार्धं विमलप्रासयोधिभिः ॥ १२ ॥ कृपश्च कृतवर्मा च चित्रसेना
 विविंशतिः । दुःशासनमुखा यत्ताः सव्यं पक्षमपालयन् ॥ १३ ॥
 तेषां प्रपन्नाः काम्बोजाः सुदक्षिणपुरासराः । ययुरश्वैर्महावेगैः
 शकाश्च यवनैः सह ॥ १४ ॥ मद्रास्त्रिगर्त्ताः साम्बध्वाः प्रतीच्योदी-

स्वस्तिवाचनकी ध्वनिसे, सूत मागध वन्दीजनोंकी स्तुतियोंके
 तथा गीतोंके शब्दोंसे, उत्तम ब्राह्मणोंके जय जय शब्दोंसे, सौभा-
 ग्यवती नर्तकियोंके नृत्यसे विधि पूर्वक द्रोणाचार्यका सत्कार
 किया तथा कौरव समझने लगे, कि—अब हमने पाण्डवोंको
 जीतलिया ॥ ७—९ ॥ सञ्जय कहता है, कि—महारथी द्रोण
 सेनापतिका अधिकार पाजाने पर लड़नेकी इच्छासे सेनाको
 व्यवहरचनामें गूँथकर तुम्हारे पुत्रोंको साथ लियेहुए लड़नेको चल-
 पड़े ॥ १० ॥ उनके दाहिने बाजू पर सिन्धुराज, कलिङ्गराज,
 और आपकी पुत्र विकर्ण कवच पहन कर चल रहे थे ॥ ११ ॥
 उत्तम घुड़सवार तथा निर्मल प्रासोंसे लड़नेवाले गान्धारों सहित
 शकुनि, उन योधाओंके पीछे २ चल रहा था ॥ १२ ॥ कृप,
 कृतवर्मा, चित्रसेन और विविंशति, दुःशासनको आगे करके
 और युद्धकी पोशाकसे सजकर द्रोणके चामभाग की रक्षा करते
 हुए चल रहे थे ॥ १३ ॥ उन योधाओंके पीछेके भागमें यवन
 और शक काम्बोजके राजा सुदक्षिणको आगे करके बड़े वेग
 वाले घोड़े पर सवार हो चल रहे थे ॥ १४ ॥ मद्र, त्रिगर्त्त, अम्बध्व,

च्यमालवाः । शिष्यः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलदः सह ॥ १५ ॥
 सौवीराः कितवाः प्राच्याः दक्षिणात्याश्च सर्वशः । तवात्पुत्रं पुर-
 स्कृत्य ह्युतपुत्रस्य पृष्ठतः ॥ १६ ॥ हर्षयन्तः स्वसैन्यानि यमुस्तव
 सृजैः सह । प्रवरः सवयोधानां घलेषु बलमादधत् ॥ १७ ॥ ययौ
 वैकर्त्तनः कर्णः प्रमुखे सर्वधन्विनाम् । तस्य दीप्तो महाकायः स्वा-
 न्यनीकानि हर्षयन् ॥ १८ ॥ हस्तिरुद्धयो महाकेतुर्बर्मा सूर्य-
 समद्युतिः । न भीष्मव्यसनं कश्चिद् दृष्ट्वा कर्णममन्यत ॥ १९ ॥
 विशोकाश्चाभवन् सर्वे राजानः कुलभिः सह । हृष्टाश्च बहवो योधा-
 स्तत्राजल्पन्तर्विगतः ॥ २० ॥ नृदि कर्णं रणे दृष्ट्वा युधि स्यास्य-
 न्ति पाण्डवाः । कर्णो हि समरे शक्तो जेतुं देवान् सवासवान् २१
 किमु पाण्डुसुतान् युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् । भीष्मेण तु रणे

मतीच्य, उदीच्य, मालव, शिषि, शूरसेन, शूद्र, मलद, सौवीर,
 कितव, प्राच्य और दक्षिणात्य आपके पुत्र दुर्योधनको आगे करके
 कर्णको पृष्ठरक्षक बनकर चल रहे थे ॥ १५ ॥ १६ ॥ और मृत-
 पुत्र कर्ण सेनाओंके बलको और सेनाओंके हर्षको बढ़ाता हुआ
 सब धनुषधारी मण्डलके आगे ही आगे चलता था, उसका बड़े
 आकारका, अतिप्रकाशवान् सूर्यकी समान चमकता हुआ हस्ति-
 कर्त्त नामका बड़ाभारी भण्डा उस सेनाको हर्ष देता हुआ पवनमें
 फहरा रहा था, कर्णको देखकर सब लोग भीष्मजीके पतनके
 दुःखको भूल गये ॥ १७-१८ ॥ सब राजे और कौरव कर्णको
 देखकर शोकरहित हो गये और बहुतसे योधा इकट्ठे होकर हर्षसे
 आपसमें कहने लगे, कि—रणमें कर्णको लड़नेके लिये आया
 हुआ देखकर पांडव खड़े भी नहीं रह सकेंगे, कर्ण रणमें इन्द्रसहित
 देवताओंको भी जीत सकता है फिर वीरता और पराक्रमहीन
 पांडवोंको जीतना तो बात ही क्या है ? धनुषबलधारी भीष्मने रण
 में पार्थकी रक्षाकी है, परन्तु कर्ण तीखे बाण धारकर पांडवोंका
 युद्धमें नाश ही करेगा, हे राजन् ! इसप्रकार बहुतसे योधा आपस

पार्थाः पालिता बाहुशालिना ॥ २२ ॥ तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णै-
र्नाशयिष्यति संयुगे । एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योऽन्यं दृष्टरूपां विशाम्पते २३
राघेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः । अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन
विहितोऽभवत् ॥ २४ ॥ परेषां क्रौञ्च एवासीद् व्यूहो राजन् महा-
त्मनाम् । प्रीयमाणेन विहितो धर्मराजेन भारत ॥ २५ ॥ व्यूह-
प्रमुखतस्तेषां तस्थतुः पुरुषर्षभौ । वानरध्वजमुच्छ्रित्य विष्वक्सेन-
धनञ्जयौ ॥ २६ ॥ ककुदं सर्वसैन्यानां धाम सर्वधनुष्मता । आदि-
त्यपथगः केतुः पार्थस्यामिततेजसः ॥ २७ ॥ दीपयामास तत्
सैन्यं कौरव्यस्य महात्मनः । यथा मज्जलितः सूर्यो युगान्ते वै
वसुन्धराम् ॥ २८ ॥ दीप्यन् दृश्येत हि तथा केतुः सर्वत्र धीमतः
योधानामर्जुनः श्रेष्ठो गाढीवं धनुषां वरम् ॥ २९ ॥ वासुदेवश्च

में हर्ष के साथ बातें करते और राधापुत्र कर्णको मान देते हुए
तथा उसकी प्रशंसा करते हुए लड़नेके लिये बढ़चले, इस युद्धके
समय द्रोणाचार्यने अपनी सेनाका शकटव्यूहमें गूँथा था
और हे राजन् ! शत्रुपक्ष पांडवोंकी सेनाका महात्मा धर्मराजने
प्रसन्न मनसे क्रौञ्चव्यूह रचा था ॥ २०—२६ ॥ उस
व्यूहके मुहाने पर पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण तथा धनञ्जय अपने
रथ पर वानरकी ध्वजाको फहराते हुए खड़े थे ॥ २६ ॥ अपार
तेजस्वी पार्थके रथकी ध्वजाको युधिष्ठिर सब सेनामें श्रेष्ठ और
सब धनुषधारियोंका आश्रयस्थान गिनते थे, वह सूर्यके मार्ग
पर्यन्त ऊँचा था ॥ २७ ॥ और महात्मा पाण्डवोंकी सेनाको
शोभायमान कर रहा था, युगके मलयकालमें जैसे सूर्य पृथ्वीको
दीप्त करता हुआ प्रतीत होता है तैसे ही बुद्धिमान् पार्थकी ध्वजा
भी सेनाको दीप्त करती हुई दीखती थी ॥ २८ ॥ सब धनुष-
धारियोंमें अर्जुन श्रेष्ठ है, सब धनुषोंमें गाण्डीव श्रेष्ठ है, प्राणि-
मात्रमें वासुदेव श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं और चक्रोंमें सुदर्शन श्रेष्ठ है २९
इन चारों तेजोंको धारण किये हुए अर्जुनका सफेद घोड़ोंसे जुता

भूतानां चक्रार्णां च सुदर्शनम् । चत्वार्य्येतानि तेजांसि ब्रह्मन् श्वेत-
हयो रथः ॥ ३० ॥ परेपामग्रतस्तस्थौ कान्तचक्रमिवोद्यतम् । एवं
तौ सुमहात्मानौ बलसेनाग्रगोभौ ॥ ३१ ॥ तावकानां मुखे कर्णः
परेपाश्च धनञ्जयः । ततो जयाभिसंरब्धौ परस्परवधैर्पिणौ ॥ ३२ ॥
अवेक्ष्येतां तदान्योऽन्यं समरे कर्णपाण्डवौ । ततः प्रयाते सहसा
भारद्वाजे महारथे ॥ ३३ ॥ आर्त्तनादेन घोरेण वसुधा समकम्पत ।
यतस्तुमुलपाकाशमावृणोत् सदिवाकरम् ॥ ३४ ॥ वातोद्धतं रज-
स्तीव्रं कौशेयनिकरोपमम् वर्षं घौरनभ्रापि मांसास्त्रिदधिरा-
धयुत ॥ ३५ ॥ गृध्राः श्येना वक्राः कङ्का वायसाश्च सहस्रशः ।
उपय्युपरि सेनान्ते तदा पर्यपतन्तृष ॥ ३६ ॥ गोमांयवश्च माको-
शन् भयदान् दारुणान् रवान् । अकार्षुर्पसव्यश्च बहुशः पुनर्ना
तव ॥ ३७ ॥ चित्वादिपन्तो मांसानि पिपासन्तश्च शोणितम् ।

रथ, उदय हुए काल चक्रकी समान शत्रुओंके आगे आकर खड़ा
होगया ॥ ३० ॥ हमारी सेनाके मुहानेपर कर्ण खड़ा था, शत्रुकी
सेनाके मुहाने पर धनञ्जय था, दोनों महात्मा सेनाके अग्रभाग
में स्थित थे ॥ ३१ ॥ कर्ण और अर्जुन युद्धमें एक दूसरेके ऊपर
जय पानेकी इच्छासे क्रोधमें भरे हुए थे, एक दूसरेका प्राणतंहार
करना चाहते थे और एक दूसरेकी ओरको टकटकी लगाये देख-
रहे थे ॥ ३२ ॥ इतनेमें ही शीघ्रतासे एकायकी महारथी द्रोणा-
चार्य चढ़ आये, उस समय पृथिवी घोर आर्त्तनादसे कांप उठी ३३
तीव्र और तुमुल संग्राममेंसे रेशमके ढेरोंकी समान उड़ेहुए धूलि
के ढेरोंने पहाड़की समान ऊपरको उठकर सूर्य और आकाशको
छालिया, बिना ही बादलोंके आकाशमेंसे मांस हड्डी और रुधिर
की वर्षा होने लगी ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ हजारों गिद्ध, शिकरे,
चगले और कङ्क कौरवसेनाके ऊपर दल बाँधकर गिरने लगे
॥ ३६ ॥ गीदहियें भयदायक दारुण शब्द करनेलगीं, मांसखाने
और रुधिर पीनेकी इच्छासे तुम्हारे पुत्रकी सेनाके दाहिने भागमें
बारंबार गिरनेलगे ॥ ३७ ॥ संग्रामभूमि पर बलती हुई उल्लूकियों

अपतद्दीप्यमाना च सजिघाता संकम्पना ॥३८॥ उल्का ज्वलन्ती
संग्रामे पुच्छेनावृत्य सर्वशः । परिवेषो महाश्वापि सविद्युस्तनयि-
त्तुमान् ॥ ३९ ॥ भास्करस्याभवद्राजन् प्रयाते बोहिनीपतौ । एते
चान्ये च बहवः प्रादुरासन् सुदारुणाः ॥ ४० ॥ उत्पाता युधि
वीराणां जीवितक्षयकारिणः । ततः प्रवृत्ते युद्धं परस्परवधैषि-
णाम् ॥ ४१ ॥ कुरुगण्डवसैन्यानां शब्देनापूरयज्जगत् । ते त्व-
न्योऽन्यं सुसंरब्धाः पाण्डवाः कौरवैः सह ॥ ४२ ॥ अभ्यघ्नन्ति-
शितैः शस्त्रैर्जयशृङ्गाः प्रहारिणः । स पाण्डवानां महतीं महेश्वासो
महाद्युतिः ॥ ४३ ॥ वेगेनाभ्यद्रवत्सेनां किरञ्ज्वरशितैः शतैः ।
द्रोणमभ्युद्यतं दृष्ट्वा पाण्डवाः सह सञ्जयैः ॥४४॥ प्रत्यशृङ्खलस्तदा

पिछले भागको संकुचित करके शब्द करती और कम्पायमान
होती हुई आपकी सब सेनाके सामने (आकाशमेंसे) प्रकाशके साथ
गिरने लगी ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जिस समय सेनापतिने युद्धके लिये
यात्रा की, उस समय सूर्यके बड़े भारी कुण्डलके ऊपर विजलियों
वाला बड़ा भारी मेघपण्डल आकर गर्जना करता हुआ छागया ३९
वे तथा और भी बहुतसे, वीर पुरुषोंके नाशकी सूचना देनेवाले
महादारुण उत्पात रणभूमिमें होने लगे ॥ ४० ॥ एक दूसरेका नाश
करना चाहनेवाले कौरव और पांडवोंकी सेनामें तुमुल युद्ध आरम्भ
होगया, उनके शब्दोंसे जगत् अत्यन्त ही भरगया ॥ ४१ ॥ महा-
क्रोधमें भरे हुए प्रहार करनेवाले तथा विजय चाहनेवाले कौरव और
पांडव तेज किये हुए शस्त्रोंसे आपसमें प्रहार करने लगे ॥ ४२ ॥
महाधनुषधारी और परमकान्तिमान् द्रोणाचार्य, सैकड़ों तेज वाण
लेकर पांडवोंकी बड़ी भारी सेनाके ऊपर बड़े वेगसे जा चढ़े और
वाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४३ ॥ द्रोणाचार्यको चढ़कर आये हुए
देखकर पांडव सृञ्जयोंके साथ इकट्ठे होकर द्रोणाचार्यके ऊपर
भाँतिरके वाणोंकी तल्ले ऊपर वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥ जैसे पवन

राजञ्जलवर्षैः पृथक् पृथक् । वित्तोभ्यमाणा द्रोणेन भिद्यमाना
महाचमूः ॥ ४५ ॥ व्यशोर्यत सपञ्चाला वातेनेव बलाहकाः ।
बहूनीह विकुर्वाणो दिव्यान्यस्त्राणि संपुणे ॥ ४६ ॥ अपीडयत्त-
णैव द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् । ते वध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव
दानवाः ॥ ४७ ॥ पञ्चालाः समकम्पन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ४८ ॥ अभिनच्छर-
वर्षेण द्रोणानीकमनेकधा । द्रोणस्य शरवर्षाणि शरवर्षेण पार्षतः ४९
सन्निवार्य ततः सर्वान् कुरुनप्यवधीद्वली । संयम्य तु ततो द्रोणो
समवस्थाप्य चाहवे ॥ ५० ॥ स्वमनीकं महेष्वासः पार्षतं समुपा-
द्रवत् । स याणवर्षं सुमहदसृजत् पार्षतं मति ॥ ५१ ॥ मघवान्
समभिक्रुद्धः सहसा दानवानिव । ते कम्पमानाः द्रोणेन वाणैः

मध्यमण्डलोंको बखेरदेता है तैसेही द्रोणाचार्यकी बखेरीहुई पांचा-
लोंकी सेना अत्यन्त व्याकुल और क्षिन्नभिन्न होगई ॥ ४५ ॥
द्रोणाचार्यने युद्धमें अनेकों बड़े दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करके क्षण
भरमें पाण्डव और सृञ्जयोंको घबड़ाडाला ४६ जैसे इन्द्र दानवोंका
नाश करता है तैसेही द्रोणाचार्य शत्रुओंका नाश करने लगे, उस
समय धृष्टद्युम्न आदि पंचाल देशके योधा बंहुतही काँपने लगे ॥ ४७ ॥
इसके अनन्तर दिव्य अस्त्रोंको जाननेवाला शूर धृष्टद्युम्न वाणोंकी
वर्षासे द्रोणकी सेनाको अनेकोंप्रकारसे पीड़ित करने लगा ॥ ४८ ॥
द्रोणकी वाणोंकी बौछारको अपने वाणोंकी बौछारसे रोककर
वली धृष्टद्युम्न सब कौरवोंको मारने लगा ॥ ४९ ॥ यह देख
द्रोण अच्छी प्रकार तयार होकर और अपनी सेनाको भली
प्रकार व्यूहरचनासे खड़ी करके पृथपुत्रके सामने जाचढ़े ॥ ५० ॥
जैसे इन्द्र एकाएकी क्रोधमें भरकर दैत्योंपर वाण बरसाने लगते
हैं इसीप्रकार द्रोणने दुपदपुत्रके ऊपर वाणोंकी बड़ी भारी वर्षा
की ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार सिंहसे अन्य पशु भागने लगते हैं ऐसे

पाण्डव सञ्जयाः ॥ ५२ ॥ पुनः पुनरभ्यन्त सिंहेनेवेतरे मृगाः ।
तथा पर्यचरद् द्रोणः पाण्डवानां बले बली ॥ अलातचक्रवद्राज-
स्तदद्भुतामित्राभवत् ॥ ५३ ॥ खचरनगरकल्पं कल्पितं शास्त्र-
दृष्ट्या चलदनिलपताकं ह्लादनं वलिताश्वं । स्फटिकविमलकेतुं
त्रासनं शात्रवाणां रथवरमधिरूढः सञ्जहारारिसेनाम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणभिषेकपर्वणि

द्रोणपराक्रमे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सञ्जय उवाच । तथा द्रोणमभिघ्नन्तं साश्वसूतरथद्विपान् ।
व्यथिताः पाण्डवा दृष्ट्वा न चैनं पर्यवारयन् ॥ १ ॥ ततो युधिष्ठिरो
राजा धृष्टद्युम्नघनञ्जयौ । अब्रवीत् सर्वतो यत्तैर्कुम्भयोनिर्निवा-
र्यनाम् ॥ २ ॥ तत्रैनमर्जुनश्चैव पार्षितश्च सहानुगः । प्रत्यगृह्णात्ततः

ही द्रोणके बाणोंसे सञ्जय और पाण्डव कांपनेलगे और उनकी
सेना बारम्बार भागनेलगी ॥ ५२ ॥ द्रोण प्रज्वलित उलकाकी
समान पाण्डवोंकी सेनामें घूमते थे, हे राजन् ! यह दृश्य आश्चर्य-
जनक प्रतीत होता था ॥ ५३ ॥ द्रोणाचार्य आकाशी नगरकी
समान, सैनिक नियमसे रचे हुए शास्त्रानुसार पवनसे फड़कती
हुई ध्वजांवाले, नृत्यकी गतिसे चलने वाले घोड़ोंसे जुते हुए,
अतीव प्रकाशवान् स्फटिक-मणिकी समान निर्मल ध्वजावाले
उत्तम रथमें बैठकर शत्रुकी सेनाको त्रास देते थे और उसका
संहार कर रहे थे ॥ ५४ ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

सञ्जयने कहा कि-द्रोणको इसप्रकार घुड़सवार, सारथी,
घोड़े, रथ और हाथीसवारोंको मारते देखकर पाण्डव-खिन्न
होगये और उपाय करने पर भी उनको रोक न सके ॥ १ ॥
तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने अर्जुन और धृष्टद्युम्नसे कहा कि-तुम
सब चारों ओरसे सावधान रहकर द्रोणको रोको ॥ २ ॥ यह
सुनकर अर्जुन और अनुचरों सहित धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके ऊपर

सर्वे समापेतुर्महारथाः ॥३॥ कैकया भीमसेनश्च सांभद्रोऽथ घटो-
त्कचः । युधिष्ठिरौ यमौ मत्स्या द्रुपदस्यात्मजास्तथा ॥ ४ ॥ द्रौप-
देयाश्च सहृष्टा धृष्टकेतुः ससात्यकिः । चेकितानश्च संक्रुद्धो युयु-
त्सुश्च महारथः ॥ ५ ॥ ये चान्ये पार्थिव राजन् पांडवस्यानुया-
यिनः । कुलवीर्यान्तरुपाणि चक्रुः कर्मायनेकशः ॥ ६ ॥ संरच्य-
माणां तां दृष्ट्वा दाहिनीं पांडवै रणे । व्यावृत्त्य चक्षुर्पी कोपाद्भार-
द्वाजोन्ववैक्षत ॥ ७ ॥ स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्जयः ।
व्यथयत् पांडवानीकमभ्राणीव सदागतिः ॥ ८ ॥ रथानश्वान्नरा-
न्नागान्नभिश्चावन्नितस्ततः । चचारोन्मत्तवद् द्रोणो दृद्धोऽपि तरुणो
यथा ॥ ९ ॥ तस्य शोणितदिग्धाद्वा शोणास्ते वातरंदसः । आजा-
नेया हया राजन्नविश्रान्ता ध्रुवं ययुः ॥१०॥ तमन्तकमिव कुद्ध-

धावा करदिया, तदनन्तर दूसरे महारथी केकय, भीम और
अभिपन्यु, घटोत्कच, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव, मत्स्य देशके
राजे, द्रुपदके पुत्र हपमें भरे द्रौपदीके पुत्र सात्यकि, धृष्टकेतु,
क्रोधमें भराहुआ चेकितान और महारथी युयुत्सु तथा हे राजन् !
और भी जो राजे पाण्डवोंके पक्षमें थे, वे सब द्रोणाचार्यके ऊपर
दौड़ पड़े और अपने २ कुल और वीर्यके अनुसार उन्होंने बड़े-
पराक्रम किये ॥ ३-६ ॥ जब इसप्रकार पाण्डव अपनी सेनाकी
रक्षा कर रहे थे उस समय द्रोणाचार्य क्रोधसे आँखें फाड़कर
उनको देखने लगे ॥ ७ ॥ युद्धमें दुर्जय द्रोणाचार्य, परम
क्रोधमें भरकर, बाण जैसे बादलोंको बखेर देता है तिसी प्रकार
द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाका रथमें बैठे २ ही संहार करने
लगे ॥ ८ ॥ द्रोण दृढ़ होने पर भी तरुणोंकी समान दृढ़ रहे थे
वह उन्मत्तसे होकर रथ, घोड़े, मनुष्य, और हाथियोंके ऊपर
इधर उधर दौड़ रहे थे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! उनके लाल रक्तके
पवनवेगी घोड़े रुधिरसे भीगेहुए बिना विश्राम लिये ही रणभूमिमें

मापतन्त्रं यतव्रतम् । दृष्ट्वा सम्प्राद्ववन् योधाः पांडवस्य ततस्ततः ॥ ११ ॥
 तेषां प्राद्ववतां भीमः पुनरापर्ततामपि । पश्यतां तिष्ठतां चासीच्छ-
 व्दः परमदारुणः ॥ १२ ॥ शूराणां हर्षजननो भीरूणां भयवर्धनः ।
 द्यावापृथिव्योर्विवरं पूरयामास सर्वतः ॥ १३ ॥ ततः पुनरपि
 द्रोणो नाम विश्रावयन् युधि । अकरोद्रौद्रमात्मानं किरञ्जरशतैः
 परान् ॥ १४ ॥ स तथा तेष्वनीकेषु पांडुपुत्रस्य मारिष । काल-
 वद् व्यचरद् द्रोणो युत्रेव स्थविरो बली ॥ १५ ॥ उत्क्रुत्य च
 शिरांस्युग्रान् बाहूनपि सुभूषणान् । कुत्वा शून्यान् रथोत्पथानु-
 दक्रोशन्महारथान् ॥ १६ ॥ तस्य हर्षप्रणादेन वाणवेगेन वा विभो ।
 प्राकम्पतः रणे योधा गावः शीतादिता इव ॥ १७ ॥ द्रोणस्य
 रथघोषेण मौर्वीनिष्पेणेन च । धनुःशब्देन चाकाशे शब्दः समभ-

वे रोकटोकके घूम रहे थे ॥ १० ॥ व्रतधारी द्रोणको क्रोधमें भरे
 हुए कालकी समान चढ़कर आयाहुआ देखते ही पाण्डवोंके
 योधा इधर उधरको भागने लगे ॥ ११ ॥ भागते, फिर
 लौटते, रुककर पीछेको देखते और खड़े होतेहुए वे योधा परम
 भयंकर और दारुण शब्द करने लगे ॥ १२ ॥ उस शूरीको हर्ष
 देनेवाले और डरपोकीको हृदयोंको दहलाने वाले शब्दसे पृथ्वी
 और स्वर्गके बीचका स्थान भर गया ॥ १३ ॥ फिर द्रोणाचार्य
 ने रणभूमिमें अपने नामको सुनाते हुए शत्रुओंको सैकड़ों वाणोंसे
 ढककर अपना भयानकरूप दिखाया ॥ १४ ॥ हे आर्य! वह बली
 द्रोणाचार्य वृद्ध होने पर भी युवककी समान पाण्डुपुत्रोंकी सेनामें
 यमकी समान घूमने लगे ॥ १५ ॥ उन्होंने शत्रुओंके मस्तकों
 और गहनोंसे सजी हुई भुजाओंको काट डाला और महारथोंकी
 बैठकोंको खाली कर बड़ी भारी गर्जना की ॥ १६ ॥ हे प्रभो !
 उनकी हर्षभरी हुंकारसे और वाणोंके वेगके सनसन शब्दसे
 युद्धमें योधा, शीतसे पीड़ितहुई गौओंकी समान कांपनेलगे १७

वन्महान् ॥ १८ ॥ अथास्य धनुषो वाणा निश्चरन्तः सहस्रशः ।
 व्यप्य सर्वा दिशः पेतुर्नागाश्चरथपत्तिषु ॥ १९ ॥ तं कामुक-
 महावेगमस्त्रज्वलितपावकम् द्रोणमासादयाञ्चक्रुः पंचालोः पांडवैः
 सह ॥ २० ॥ तान् सकुञ्जरपत्त्यश्वान् प्राहिणोद्यमसादनम् ।
 चक्रेऽचिरेण च द्रोणो महीं शोणितकर्दमाम् ॥ २१ ॥ तन्वता
 परमास्त्राणि शरान् सततमस्यता । द्रोणेन विहितं दिक्षु शरजाल-
 महश्यत ॥ २२ ॥ पदातिषु रथाश्वेषु वारणेषु च सर्वशः । तस्य
 त्रिद्युदिवाभ्रेषु चरन् केतुरदृश्यता ॥ २३ ॥ स केकयानां प्रवर्गश्च पञ्च
 पंचालराजञ्च शरैः प्रमथ्य ॥ युधिष्ठिरानीकमदीनसत्त्वो द्रोणोऽ-
 भ्ययात् कामुकवाणपाणिः ॥ २४ ॥ तं भीमसेनश्च धनञ्जयश्च

द्रोणके रथकी घरघराहटसे, मत्पञ्चाश्रोंके टकरानेसे और
 धनुषोंकी टङ्कारोंसे आकाशमें बड़ा शब्द होउठा ॥ १८ ॥ द्रोणा-
 चार्यके धनुषसे निकलते सहस्रों वाण सब दिशाओंको भर कर
 हाथी घोड़े, रथ और पैदलों पर पड़ने लगे ॥ १९ ॥ इस समय
 पञ्चाल राजाओंने पाण्डवोंके साथमें होकर महावेगसे धनुषोंसे
 काम लेतेहुए, अस्त्रोंसे प्रज्वलित अग्नि सरीखे द्रोणाचार्यको घेर
 लिया ॥ २० ॥ परन्तु द्रोणने हाथी, घोड़े, और पैदलों सहित
 उन योधाओंको यमलोकमें भेज दिया १ और थोड़े ही समयमें
 पृथ्वी पर रुधिरकी कींच करदी ॥ २१ ॥ ऊपर नीचे दिव्य
 अस्त्रोंको फैलाते हुए और सटासट वाणोंको छोड़ने वाले
 द्रोणने चारों दिशाओंमें वाणोंका जालसा पूरदिया, यह दृश्य
 सबोंने देखा ॥ २२ ॥ जैसे बादलोंमें विजली चमकती हुई दीखती
 है ऐसे ही उनकी घूमती हुई श्वजा पैदल घोड़े रथ हाथी सबोंमें
 दीखती थी ॥ २३ ॥ हाथमें धनुष और वाण लिये बली द्रोणा-
 चार्य केकयोंमें श्रेष्ठ पाँच महापुरुषोंको और राजा द्रुपदको
 वाणोंसे व्यथित कर राजा युधिष्ठिरकी सेना पर दूट पड़े ॥ २४ ॥

शिनेश्च नम्रा द्रुपदात्मजश्च ॥ शैव्यात्मजः काशिपतिः शिविश्च
 दृष्ट्वा नदन्तो व्यक्रञ्छरौघैः ॥ २५ ॥ तेषामथ-द्रोणधनुर्विमुक्ता
 पतत्रिणः काञ्चनचित्रपुंखाः । भित्त्वा शरीराणि गजाश्वयुनां
 जगमुर्महीं शोणितदिग्धवाजाः ॥ २६ ॥ सायोधसंघैश्च रथैश्च
 भूमिः शरैर्त्रिभिन्नैर्गजवाजिभिश्च । प्रच्छाद्यमाना पतितैर्बभूव समा-
 वृता द्यौरिव कालमेघैः ॥ २७ ॥ शैनेयभीमार्जुनवाहिनीशं
 सौभद्रपाञ्चालसकाशिराजम् । अन्यांश्च वीरान् समरे ममर्द द्रोणः
 सुतानां तव भूतिकामः ॥ २८ ॥ एतानि चान्यानि च कौरवेन्द्र
 कर्माणि कृत्वा समरे महात्मा । प्रताप्य लोकानिव कालसूर्यो द्रोणो
 गतः स्वर्गमितो हि राजन् ॥ २९ ॥ एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा
 शतसहस्रशः । पाण्डवानां रणे योधान् पार्षतेन निपातितः ३०

यह देख भीम, अर्जुन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शैव्यके पुत्र, काशी-
 पति और राजा शिवि इन सबोंने गर्जना करके बाणोंके समूहसे
 द्रोणाचार्यको ढकदिया ॥ २५ ॥ परन्तु द्रोणके धनुषमेंसे छूटे
 हुए, सुवर्णकी पूंछवाले बाण हाथी घोड़े और सैनिकोंके शरी-
 रोंको तोड़कर रुधिरसे सनेहुए पृथ्वीमें घुसगए ॥ २६ ॥ उन
 बाणोंसे कटकर गिरेहुए योधा, रथ, हाथी और घोड़ोंसे ढकी
 हुई भूमि प्रलयकालके मेघोंसे घिरे हुए आकाशकी समान दीखने
 लगी ॥ २७ ॥ तदनन्तर तुम्हारे पुत्रोंका हित चाहनेवाले द्रोणाचार्य
 ने सात्यकि, भीम, अर्जुन, सेनापति धृष्टद्युम्न, अभिपन्यु, काशि-
 राज तथा दूसरे राजाओं पर प्रहार करना आरम्भ करदिया २८
 हे राजन् ! इस प्रकार यह तथा और भी बहुतसे पराक्रम करके
 लोगोंको प्रलय कालके सूर्यकी समान संताप देकर महात्मा द्रोणा-
 चार्य स्वर्गलोकको प्रस्थान करगए २९ धैर्यधारी वीर सुवर्णके
 रथमें बैठनेवाले द्रोणाचार्य इसप्रकार सैकड़ों और सहस्रों योधा-
 ओंका संहार करके धृष्टद्युम्नके हाथसे मारेगए, युद्धमें पीछे न हटने

अक्षौहिणीमभ्यधिकां शूराणामनिवर्तिनाम् । निहत्य पञ्चाद-
धृतिमानगच्छत्परमां गतिम् ॥ ३१ ॥ पाण्डवैः सह पञ्चालै-
रशिवैः क्रूरकर्मभिः । हतो रुक्मरथो राजन् कृत्वा कर्म सुदुष्क-
रम् ॥ ३२ ॥ ततो निनादो भूतानामाकाशे समजायत । सैन्यानां
च ततो राजन्नाचार्ये निहते युधि ॥ ३३ ॥ आं धरां खं दिशो
चापि प्रदिशश्चानुनादयन् । अहो धिमिति भूतानां शब्दः सम-
भवद् भृशम् ॥ ३४ ॥ देवताः पितरश्चैव पूर्वे ये चास्य वान्ववाः ।
ददृशुर्निहतां तत्र भारद्वाजं महारथम् ॥ ३५ ॥ पाण्डवास्तु जयं
लब्ध्वा सिंहनादान् प्रचक्रिरे । सिंहनादेन महता समकम्पत
मेदिनी ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि

द्रोणवधश्रवणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । किं कुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डसृञ्जयाः ।

वाले द्रोणाचार्यने अक्षौहिणीसे अधिक सैनिकोंका संहार कर
परमगति पाई ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! सुवर्णके रथमें बैठेहुए
द्रोणाचार्यने बड़ा भारी पराक्रम करके क्रूरकर्मा पांचाल और पांड-
वोंके हाथसे मृत्यु पायी ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! रणमें द्रोणाचार्यके
मारेजाने पर प्राणियों और सेनाओंका शब्द आकाशमें
होनेलगा, कि- ॥ ३३ ॥ "अरे धिक्कार है !" इसप्रकार पृथिवी,
आकाश, स्वर्ग, 'दशाण' और दिशाओंके कोनोंको प्रतिध्वनित
करताहुआ प्राणियोंका बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ ३४ ॥ उस
समय, देवता पितर और उनके पहले कुटुम्बियोंने द्रोणको रण-
भूमिमें मराहुआ देखा ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पाण्डव जय पाकर
सिंहकी समान गर्जना करनेलगे और उनके बड़े भारी सिंहनाद
से पृथ्वी काँप उठी ॥ ३६ ॥ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्रने वृष्णा, कि-सब शस्त्रधारी योधाओंमें, युद्ध करनेमें

तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रभृतामपि ॥ १ ॥ रथभङ्गो बभूवस्य धनुर्वाशीर्यतास्यतः । प्रपन्नो बाभूवद् द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान् २ कथं नु पार्षतस्तात शत्रुभिर्दुष्पथर्षणम् । किरन्तमिषुसंघातान् रुक्मपुंखाननेकशः ॥ ३ ॥ क्षिप्रहस्तं द्विजश्रेष्ठं कृतिनं चित्रयोधिनम् । दूरेषुपातिनं दान्तमस्त्रयुद्धेषु पारगम् ॥ ४ ॥ पाञ्चालपुत्रो न्यषधीद्विव्यास्त्रधरमच्युतम् । कुर्वाणं दारुणं कर्म रणे यत्तं महा-रथम् ॥ ५ ॥ व्यक्तं हि दैवं बलवत्पौरुषादिति मे मतिः । यद् द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महात्मना ॥ ६ ॥ अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत्प्रतिष्ठितम् । तमिष्वस्त्रधराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम् ॥ ७ ॥ श्रुत्वा हतं रुक्मरथं वैयाघ्रपरिवारितम् ।

चतुर मानेहुए, द्रोणाचार्यने ऐसा कौनसा कर्म किया था, कि-पांडव और सृजय उनका नाशकरसके ? ॥ १ ॥ युद्धमें उनका रथ टूट गया था ? या बाण छोडते समय उनका धनुष टूट गया था ? अथवा वह असावधान थे, कि-जिससे मारेगये ? ॥ २ ॥ हे तात ! इन महारथीको तो शत्रु दवा नहीं सकते थे, वह रणमें सोनेकी पूंछवाले अनेकों बाण छोडते थे, उनका हाथ बड़ा ही फुरतीला था और अपने काममें सावधान रहते थे, युद्धकी अनेकों सीतियों जानते थे, उनके बाण बड़ीदूर तक पहुँचते थे, इन्द्रियों को वशमें रखनेवाले, अस्त्रयुद्धके पारगामी, दिव्य अस्त्रोंको छोडना जाननेवाले रणमेंसे पीछेको न हटनेवाले घोर पराक्रमी, युद्धमें सावधान रहनेवाले, महारथी द्रोणाचार्यको घृष्टद्युम्नने कैसे मार-डाला ? ॥ ३-५ ॥ महात्मा घृष्टद्युम्नने वीर द्रोणाचार्यको जब मारडाला तब मुझे स्पष्ट मालूम होता है, कि-पुरुषार्थसे मारव्य बलवान् है और इस लिये ही जो वीर चार प्रकारकी अस्त्र विद्या जानता था, उस धनुषचारियोंके आचार्य द्रोणाचार्यके मारेजानेका समाचार तू मुझे सुना रहा है ॥ ६ ॥ ७ ॥ हाय !

जातरूपपरिष्कारं नाद्य शोकमुपाददे ॥ ८ ॥ न नूनं
परदुःखेन म्रियते कोऽपि सञ्जय । यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं
जीवामि मन्दधीः ॥ ९ ॥ दैवमेव परं मन्ये नन्वनर्थं हि पौरुषम् ।
अश्मसारमयं नूनं हृदयं मुद्वहं मम ॥ १० ॥ यच्छ्रुत्वा निहतं द्रोणं
जतथा न विदीर्यते । ब्राह्मे दैवं तथेवस्त्रे यमुपासन् गुणार्थिनः ११
ब्राह्मणा राजपुत्राश्च सकथं मृत्युना हतः । शोपणं सागरस्येव
मेरोरिव विसर्पणम् ॥ १२ ॥ पतनं भास्करस्येव न मृत्युं द्रोण-
पातनम् । दृष्टानां प्रतिपेक्षासीद्दार्मिकाणाञ्च रक्षिता ॥ १३ ॥ योऽहा-
सीत्कृपणस्यार्थे प्राणानपि परन्तपः । मन्दानां मम पुत्राणां जयाशा
यस्य विक्रमे ॥ १४ ॥ बृहस्पत्युशनस्तुल्यो बुद्ध्या स निहतः कथम् ।

सोनेके रथमें बैठेहुए, बाघाम्बर ओढ़े हुए और सोनेके गहनोंसे
सजेहुए द्रोणके मरणको सुनकर आज मैं अपने शोकको शान्त
नहीं करसकता हूँ ॥ ८ ॥ हे सञ्जय ! निःसन्देह कोई भी पुरुष
दूसरेके दुःखसे कदापि मर नहीं जाता, क्योंकि-तू देखले-मैं मन्द-
बुद्धि, द्रोणके मरणको सुनकर भी अभी जीवित हूँ ॥ ९ ॥ इस
लिये मैं प्रारब्धको ही बढ़कर मानता हूँ और पुरुषार्थको निरर्थक
जानता हूँ, मेरा हृदय भी निःसन्देह लोहेका बनाहुआ और
बड़ा मजबूत मालूम होता है ॥ १० ॥ यदि ऐसा न होता तो द्रोणके
मरणको सुनकर उसके सैकड़ों टुकड़े क्यों न होगये होते ?
गुणोंको सीखना चाहनेवाले ब्राह्मणोंके तथा क्षत्रियोंके पुत्र
ब्रह्मास्त्र और देवास्त्र सीखनेके लिये जिनकी सेवा किया करते
थे, वे द्रोणाचार्य कैसे मारेगये ? समुद्रके सूखनेकी समान, मेरु
पर्वतके ढगमगानेकी समान और सूर्यके टूट पडनेकी समान मैं
द्रोणके नाशको नहीं सहसकता, वह तो दुष्टोंको दण्ड देनेवाले
और धर्मात्माओंके रक्षक था ॥ ११-१३ ॥ ओः शत्रुओंको सन्ताप
देनेवाले द्रोणने एक कृपण पुरुषके लिये अपने प्राण भी त्याग

ते च शोणा बृहन्तोऽश्वाश्छन्ना जालैर्हिरण्यैः ॥ १५ ॥ रथे
 वातजवा युक्ताः सर्वशस्त्रातिगारणो । वलिनो हृषिणो दान्ताः
 सैधवाः साधुवाहिनः ॥ १६ ॥ दृढाः संग्राममध्येषु कचिदासन्न-
 विह्वलाः । कणिष्ठा बृंहता युद्धे शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ १७ ॥
 ज्याक्षेपशरवर्षाणां शस्त्राणाञ्च सहिष्णवः । आशंसन्तः परान्
 जेतुं जितश्वासा जितव्यथाः ॥ १८ ॥ हयाः पराजिताः शीघ्रा
 भारद्वाजरथोद्गताः । ते स्म रुक्मरथे युक्ता नरवीरसमाहताः ६
 कथं नाभ्यतरस्तात पाण्डवानामनीकिनीम् । जातरूपपरिष्कार-
 मास्थाय रथ उत्तमम् ॥ २० ॥ भारद्वाजः किमेकरोद्युधि सत्य-
 पराक्रमः । विद्यां यस्योपजीवन्ति सर्वलोकधनुर्धराः ॥ २१ ॥ स

दिये ! मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनको विजयकी आशा, उनके ही परा-
 क्रमके भरोसे पर थी ! वह बृहस्पति और शुक्राचार्यकी समान
 बुद्धिमान थे तो भी उनकी मृत्यु कैसे होगयी ? लालरङ्ग और
 बड़े शरीरवाले, सुनहरीकूले ओढ़े और वायुकी समान वेगवाले,
 रणमें सब शस्त्रोंके प्रहारको भी कुछ न गिननेवाले और बलवान्
 हिनहिनानेवाले और शिक्षा पायेहुए ऐसे उनके रथमें जुतेहुए
 सिंधुदेशके मजबूत घोड़े रणभूमिमें घबड़ा तो नहींगये थे? वे घोड़े
 तो युद्धमें हाथियोंकी चिंघाड़ोंकी शङ्खोंकी और दुन्दुभियोंकी
 ध्वनिको, धनुषकी डोरीके शब्दको, बाणोंकी और शस्त्रोंकी वर्षा
 को सहलेनेवाले, शत्रुओंकी पराजयको चतानेवाले और श्वास
 तथा पीड़ाके बिना जीतनेवाले थे क्या वे थकगये थे ? या पीड़ित
 होगये थे ? ॥ १४-१८ ॥ वे घोड़े द्रोणाचार्यके शीघ्रताकी चाल
 चलने वाले सोनेके रथमें जुतेहुए थे, अजय और नरवीर
 पुरुषके सावधान कियेहुए थे इसलिये उन घोड़ोंको शत्रु जीतलें,
 यह तो सम्भव ही नहीं था, द्रोणाचार्यके ऐसे घोड़े, हे तात !
 पांडवोंकी सेनारूप समुद्रके पार क्यों नहीं पहुँचे ? ॥ १६ ॥ २० ॥

सत्यसन्धो बलवान् द्रोणः किमकरोद्युधि । दिवि शक्रमिव श्रेष्ठं
 महामात्रं धनुर्भूताम् ॥ २२ ॥ के नु तं रौद्रकर्माणं युद्धे मत्पश्य
 रथाः । ननु रुक्मरथं दृष्ट्वा प्राद्वन्ति स्म पाण्डवाः ॥ २३ ॥ दिव्य-
 मस्त्रं विकुर्वाणं रणे तस्मिन्महाबलम् । उताहो सर्वसैन्येन धर्मराजः
 सहानुजः ॥ २४ ॥ पाञ्चाल्यप्रग्रहो द्रोणं सर्वतः समवारयत् ।
 नूनमावारयत्पार्थो रथिनोऽज्यान्निहार्गैः ॥ २५ ॥ ततो द्रोणं
 समारोहत् पार्षतः पापकर्मकृत् । न हाहं परिपश्यामि वधे कञ्चन
 शुष्मिणः ॥ २६ ॥ धृष्टद्युम्नादृते रौद्रात्पाण्ड्यमानात् किरीटिनः ।
 तैर्वृतः सर्वतः शूरः पाञ्चाल्यपतदस्ततः ॥ २७ ॥ केकयैश्चेदि-
 कारूपैर्मत्स्यैरन्यैश्च भूमिपैः । व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुगं

जो युद्धमें उत्तम पराक्रम करके दिखलाते थे उन द्रोणाचार्यने
 सोनेसे सजेहुए उत्तम रथमें बैठकर युद्धमें कैसा पराक्रम किया
 था, यह तू मुझे सुना जगत्के सब धनुषधारी योधा जिनकी
 विद्याके आधार पर आजीविका करते हैं उन बलवान् और सच्चा
 पराक्रम दिखानेवाले द्रोणाचार्यने युद्धमें कैसा पराक्रम किया था ?
 स्वर्गमें जैसे इन्द्र श्रेष्ठ है ऐसे ही संसारमें द्रोण श्रेष्ठ है ऐसे सब
 धनुषधारियोंके महाभयानक और भयानक पराक्रम करनेवाले
 द्रोणाचार्यके पीछे युद्धमें कौन २ महारथी चढ़े ? सोनेके रथमें बैठे
 हुए दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करनेवाले महाबली द्रोणको देखकर
 इस संग्राममें पहले तो पाण्डव भागगये थे, परन्तु पीछेसे धृष्टद्युम्न
 के छोटे भाइयोंको और सब सेनाको साथमें लेकर धर्मराजने द्रोण
 को चारों ओरके कैसे घेरलिया । मुझे मालूम होता है कि—
 आरम्भमें अर्जुनने हमारे पक्षके सब योधायोंको सीधे जानेवाले
 बाणोंसे घेर लिया होगा ॥ २१-२५ ॥ और फिर पाप कर्म
 करनेवाले धृष्टद्युम्नने द्रोणको घेरलिया होगा । अर्जुनकी रक्षामें
 रहनेवाले धृष्टद्युम्नके सिवाय दूसरे किसीको भी मैं ऐसा नहीं

यथा ॥ २८ ॥ कर्मण्यमुकरे सक्तं जघानेति मतिर्मम । योधीत्य-
चतुरो वेदान् सांगानाख्यानपञ्चमान् ॥ २९ ॥ ब्राह्मणानां प्रति-
ष्ठासीत् स्रोतसामिव सागरः । क्षत्रं च ब्रह्म चैवेह योऽभ्यतिष्ठत्
परन्तपः ॥ ३० ॥ स कथं ब्राह्मणो वृद्धः शस्त्रेण वधमाप्नुवान् ।
अमर्षिणा मर्षितवान् क्लिश्यमानान् सदा मया ॥ ३१ ॥ अन-
र्हमाणान् कौन्तेयान् कर्मणस्तस्य तत्फलम् । यस्य कर्मानुजीव-
न्ति लोके सर्वधनुभूतः ॥ ३२ ॥ स सत्यसन्धः सुकृती श्रीकामै-
र्निहतः कथम् । दिवि शक्र इव श्रेष्ठो महासत्त्वो महाबलः ॥ ३३ ॥

देखता, कि-जो तेजस्वी द्रोणको मारसके मुक्त मतीत होता है,
कि-पाण्डवालोंमें नीच वीर धृष्टद्युम्न, केकेय, चेदी, कुरूप, मत्स्य और
दूसरे राजाओंको व्याकुल करनेवाले महापराक्रमको करनेमें
द्रोणाचार्य लगरहे होंगे उस समय ही जैसे चींटियोंके समूहसे
व्याकुलहुए साँपको हर कोई मार सकता है, तैसे ही उनको मार
ढाला होगा ॥ २९-३० ॥ जैसे महासागर सब नदियोंका आश्रय
है तैसेही जो द्रोणाचार्य अंगों सहित चारों वेदोंको तथा इतिहासको
पढ़कर ब्राह्मण आदि सबोंके आश्रयरूप होगये थे, तथा जो
द्रोणाचार्य ब्राह्मण धर्म और क्षत्रिय धर्म दोनोंके आधार और
शत्रुओंको संताप देनेवाले थे वह वृद्ध ब्राह्मण शस्त्रसे कैसे मरगये?
मैं कुन्तीके पुत्रोंको देखकर मनमें जला करता था और उनको
सदा दुःख दिया करता था, परन्तु वे दुःख देनेके योग्य नहीं
हैं, ऐसा जानकर द्रोणाचार्य उनके ऊपर प्रेम रखते थे, क्या ऐसे
वर्त्तावका उनको यही फल मिला ? सब धनुषधारी जगत्में
जिनसे शस्त्रविद्या और अस्त्रविद्या सीखकर आजीविका करते
हैं उन सत्यप्रतिज्ञा और पुण्यकर्म करनेवाले द्रोणको पाण्डवोंने
राज्यलक्ष्मीकी आशासे कैसे मारढाला जैसे स्वर्गमें इन्द्र श्रेष्ठ
माना जाता है ऐसे ही जगत्में द्रोणाचार्य श्रेष्ठ महापराक्रमी

स कथं निहतः पार्थः क्षुद्रमत्स्यैर्यथा तिमिः । क्षिप्रहस्तश्च बलवान्
 दृढधन्वारिपर्दनः ॥ ३४ ॥ न यस्य विजयाकांक्षी विजयं प्राप्य
 जीवति । यं ह्रीं न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन ॥ ३५ ॥
 ब्राह्मश्च वेदकामानां ज्याघोषश्च धनुष्मताम् । अदीनं पुरुषव्याघ्रं
 हीमन्तमपराजितम् ॥ ३६ ॥ नाहं मृष्ये हतं द्रोणं सिंहद्विरदविक्रमम् ।
 कथं सञ्जय दुर्धर्पमनाधृष्ययशोबलम् ॥ ३७ ॥ पश्यतां पुरुष-
 न्द्राणां सङ्गरे पार्थतोऽवधीत् । के पुरस्तादयुध्यन्त रक्षतो द्रोण-
 मन्तिकात् ॥ ३८ ॥ के तु पश्चादवर्तन्त गच्छतो दुर्गमां
 गतिम् । केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं सव्यं के च महात्मनः ॥ ३९ ॥

और महाबली माने जाते थे तो भी जैसे छोटी छोटी मछलियें
 एक बड़े मच्छको मार डालें, क्या ऐसे ही द्रोणाचार्य भी मारे
 गये ? ॥ २६-३४ ॥ पुरतीले हाथवाले, बलवान्, मजबूत धनुषको
 धारण करनेवाले शत्रुनाशक और कोई भी पुरुष विजयकी
 आशासे उनके ऊपर चढ़ाई करके आवे तो वह जीता लौटकर
 नहीं जा सकता था ऐसे बलवान् थे तथा वेदकी इच्छावाले
 ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि और धनुर्वेद सीखनेकी इच्छावाले राजाओं
 के धनुषोंकी डोरियोंकी टंकार दोनों शब्दोंने जबतक द्रोणाचार्य
 जीवित रहे तबतक उनको एक दिन भी नहीं त्यागा था, ऐसे
 उदारचित्त, पुरुषोंमें श्रेष्ठ, लज्जाशील, अजित, सिंह और
 हाथीकी समान पराक्रमी द्रोणाचार्यका मरण सुभ्रसे सहा नहीं
 जाता ! हे सञ्जय ! जिनको कोई दवा नहीं सकता था, जिनका
 कोई तिरस्कार नहीं कर सकता था ऐसे यशपानेवाले और
 बलवान् द्रोणको युद्धमें धृष्टद्युम्नने सब राजाओंके देखते हुए
 कैसे मार डाला ? द्रोणकी रक्षा करनेके लिये उनके पास खड़े
 होकर किसने पहिले युद्ध किया था ? ॥ ३५-३८ ॥ और
 दुर्लभ गतिको पानेवाले किनसे पुरुषोंने उनके पीछे खड़े होकर

पुरस्तात्के च वीरस्य युध्यमानस्य संयुगे । के च तस्मिंस्तनू-
स्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाब्रजन् ॥ ४० ॥ द्रोणस्य समरे वीराः केऽ-
कुर्वन्त परां धृतिम् । कच्चिन्नैनं भयान्मन्दाः क्षत्रिया व्यजहन् रणे ४१
रक्षितारस्ततः शून्ये कच्चित्निहतः परैः । न स पृष्ठपरे स्त्रासा-
द्रणे शौर्यात्प्रदं शयेत् ४२ परामप्यापदं प्राप्य स कथं निहतः परैः ।
एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वाप्तु सञ्जय ॥ ४३ ॥ पराक्रमेद्य-
थाशक्त्या तच्च तस्मिन्प्रतिष्ठितम् । मुह्यते मे मनस्तात कथा तावन्नि-
वार्यताम् ॥ ४४ ॥ भूयस्तु लब्धसङ्गस्त्वां परिपृच्छामि सञ्जय ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि

धृतराष्ट्रशोके नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

युद्ध किया था ? किन्तु पुरुषोंने उन महात्माके रथके दाँये और
बाँये पहियोंकी रक्षा की थी ? जब वीर द्रोण युद्ध कर रहे थे,
उस समय कौनसे वीर उनके आगे आगे चले थे ? कौनसे पुरुष
तहाँ अपने देहको त्याग कर प्रतिकूल मृत्युके मुखमें पड़े थे ३६-४०
उनके युद्धमें किन्तु २ वीर पुरुषोंने परमगति पाई थी ? उनकी रक्षा
करनेके लिये नियत कियेहुए मन्द बुद्धिवाले क्षत्रिय कहीं भयके
मारे उनको रणमें छोड़कर तो नहीं भागगये थे ? क्या किसीने
उनकी रक्षा की ही नहीं थी ? या रक्षकके न होने पर शत्रुओंने
उनको अकेला पाकर मार डाला था ? द्रोण तो परम आपत्तिमें
आपड़ने पर भी अपनी वीरताके कारणसे शत्रुसे डरकर कभी
पीठ दिखानेवाले नहीं थे ! ऐसे द्रोणको शत्रुओंने कैसे मार डाला
हे सञ्जय ! दुःखदायक आपत्तियोंमें आर्य पुरुषको अपनी शक्ति
भर पराक्रम करना चाहिये और द्रोणाचार्य इस कर्तव्यको सम्-
भरते थे हे तात ! अब मेरा चित्त चक्कर खाता है इसलिये अब
तू कथाको बन्द कर हे सञ्जय ! जब मेरा चित्त सावधान होजायगा
तब तुझसे फिर वृक्षूंगा ॥ ४१-४५ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच । एतत्पृष्ठा सूतपुत्रं हृच्छोकेनादितो भृशम् ।
जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत् क्षितौ ॥ १ ॥ तं विसर्जं
निपतितं सिपिचुः परिचारिकाः । जलेनात्यर्थशीतेन वीजन्त्यः
पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥ पतितं चैनमालोक्य समन्ताद्भरतस्त्रियः ।
परिवर्तुर्महाराजमस्पृशंश्चैव पाणिभिः ॥ ३ ॥ उत्थाप्य चैनं शनकै
राजानं पृथिवीतलात् । आसनं प्रापयामासुर्वाप्यकण्ठ्यो वराननाः ॥
आसनं प्राप्य राजा तु मूर्ख्याभिपरिमुतः । निश्चेष्टोऽतिष्ठत् सदा
वीज्यमानः समन्ततः ॥ ४ ॥ स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो मही-
पतिः । पुनर्गावलाणि सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ६ धृतराष्ट्र उवाच ।
यः स ह्यग्निवादित्यो ज्योतिषा मण्डस्तमः । अजातशत्रुमायान्तं

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार सूतपुत्र
सञ्जयसे वृक्षकर धृतराष्ट्रके मनमें बड़ा संताप होने लगा और
अपनेपुत्रोंके विजयकी आशा न देख निराश होकर पृथिवी पर
ढहपड़े ॥ १ ॥ उनको मूर्छित हो पृथिवी पर पड़ा देखकर सेवकों
ने उनके ऊपर शीतल जल लाकर छिड़का तथा पवित्र गन्धवाले
पक्षोंसे पवन डुलाने लगे ॥ २ ॥ धृतराष्ट्रको पृथिवी पर पड़ा हुआ
देखकर हे राजन् ! महाराजकी रानियोंनेभी उनको चारों ओरसे
घेर लिया और उनके ऊपर हाथ फेरनेलगीं ॥ ३ ॥ रोते २
रानियोंने राजाको पृथिवी परसे धीरेसे उठाकर आसन पर
बैठाया, तो भी राजाकी मूर्खा दूर न हुई वह बिना कुछ चेष्टा
किये ही बैठे रहे, तब चारों ओरसे उनकी हवा की गई, धीरे २, जब
होश आया तो राजा धृतराष्ट्रने काँपते २ फिर रखमें क्या २
हुआ, यह वृत्तान्त, सूतपुत्र गावलाणि सञ्जयसे यथोचित रीति
से वृक्षा ॥ ४—६ ॥ धृतराष्ट्रने कहा कि—जैसे सूर्य अपने प्रकाशसे
अन्धकारका नाश करके उदय होता है, तैसे ही अजातशत्रु
युधिष्ठिर, द्रोणाचार्यके सामने चढ़ आये उस समय, मदरहित,

कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७ ॥ अभिन्नमिव मातङ्गं यथा क्रुद्धं तर-
स्विनम् । प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा प्रतिद्विरदगामिनम् ॥ ८ ॥ वासितासङ्गमे
यद्वत् अजय्यं गजयूथपैः । निजघान रणे वीरान् वीरः पुरुष-
सत्तमः ॥ ९ ॥ यो ह्येको हि महावीर्यो निर्दहेद्दोरचक्षुषा । कृत्स्नं
दुर्योधनबलं धृतिमान् सत्यसंगरः ॥ १० ॥ चक्षुर्हणं जये सक्तमि-
ष्वासधरमच्युतम् । दान्तं बहुमतं लोके के शूराः पर्यवारयन् ११
के दुष्पथर्षं राजानमिष्वासधरमच्युतम् । समासेदुर्नरव्याघ्रं कौन्तेयं
तत्र मामकाः ॥ १२ ॥ तरसैवाभिपद्याथ यो वै द्रोणमुपाद्रवत् ।
यः करोति महत् कर्म शत्रूणां वै महाबलः ॥ १३ ॥ महाकायो
महोत्साहो नागायुतसमो बले । तं भीमसेनमायान्तं के शूराः पर्य-
क्रोधमै भरेहुए, वेगवान्, मदीप्त, चित्तसे काम सिद्ध करना चाहने
वाले तथा ऋतुमती हथिनीके साथ समागम करनेके लिए सामनेके
हाथीपर प्रहार करनेवाले और चढकर आयेहुए यूथपतिके भी
जीतनेमें न आनेवाले हाथीकी समान प्रसन्नमुख युधिष्ठिरको
देखकर, कौनसा योधा उनको द्रोणके पाससे दूर ले गया था? हे
पुरुषश्रेष्ठ! वीर धैर्यधारी और सत्यवादी राजा युधिष्ठिरने अकेले
ही सब भीरोंका नाश किया होता, वह अकेले ही यदि मनमें
विचारें तो अपनी क्रोध भरी दृष्टिसे दुर्योधनकी सब सेनाको
जलाकर भस्म कर सकते हैं ऐसे, विजयके उद्योगमें लगेहुए, धनु-
षधारी, जितेन्द्रिय और लोकोंमें प्रतिष्ठा पाये हुए युधिष्ठिरको
रणमें किन् २ वीरोंने घेरा था ॥ ७-११ ॥ और मेरी सेनाके
कौन २ से योधा, किसीसे, न दबनेवाले मनुष्योंमें व्याघ्रसमान,
अक्षय वीर तथा धनुषधारी कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके पासगये
थे? जिस महाबली, बड़ी कायावाले, महाउत्साही, दश हजार
हाथियोंकी समान पराक्रमवाले भीमसेनने, शत्रुकी सेनामें बड़ा भारी
पराक्रम करके दिखलाया था और जिसने बड़े वेगसे चढकर

वारयन् ॥ १४ ॥ यदायाज्जलदप्रख्यो रथः परमवीर्यवान् ।
 पर्जन्य इव वीभत्सुस्तुमुलामशनीं घृजन् ॥ १५ ॥ विसृजञ्छरजालानि
 वर्षाणि मघवानिव । अक्वस्फूर्जन् दिशः सर्वास्तलनेमिस्वनेन च ॥ १६ ॥
 चापविद्युत्प्रभो घोरो रथगुल्मवत्ताहकः । सनेमियोपस्तनितः शर-
 शब्दातिवन्धुरः ॥ १७ ॥ रोपनिर्जितजीमूतो मनोऽभिप्रायशीघ्रगः ।
 मर्मातिगो बाणधरस्तुमुलः शोणितोदकैः ॥ १८ ॥ संसावयन्
 दिशः सर्वा मानवैरास्तरन् महीम् । भीमनिःस्वनितो रौद्रो दुर्योधन-
 पुरोगमान् ॥ १९ ॥ पृष्ठेऽभ्यपिञ्चद्विजयो गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
 गाँडीवं धारयन् धीमान् कीदृशं वो मनस्तदा ॥ २० ॥ इषुसम्बा-
 धमाकाशं कुर्वन् कपिवरध्वजः । यदायात् कवमासीत्तु तदा पार्थ

द्रोणाचार्यके ऊपर धावाकिया था, उस भीमसेनको आताहुआ देखकर हमारी सेनाके किन २ वीरोंने उसको घेरलिया था ? ॥ १२-१४ ॥ रथी, परम पराक्रमी, धनुषरूपी विजयकी कांति वाला, भयानक, रथके गुल्मरूप मेघका आश्रय लेनेवाला, रथके पहियोंके शब्दरूप गर्जनावाला, बाणोंके शब्दोंसे सब दिशाओंको भरता और भयानक शब्द करता, बुद्धिमान् क्रोधरूप पवनसे मेघको भी बखेरदेनेवाला, मनके सङ्कल्पकी समान, शीघ्रगामी, मर्मस्थानमें प्रहार करनेवाला गाँडीव और बाणधारी अर्जुनरूप मेघ, जिस समय जैसे इन्द्र जल बरसाता है तैसे बाणोंकी वर्षा करता हथेली और रथके पहियोंके शब्दोंसे सब दिशाओंको भरता रुधिररूप जलसे सब दिशाओंको सराबोर करता और धनुष्योंसे पृथिवीको ढकता हुआ, गिज पत्तीके परोंवाले और सान पर धरकर तेजकियेहुए, बाण, दुर्योधन आदिके मारनेलगा उस समय तुम्हारे मनमें क्या २ विचार उठे थे ? ॥ १५-२० ॥ जिसकी ध्वजा में उत्तम धानर है ऐसा अर्जुन, जब बाणोंसे आकाशको ढकता हुआ चढ़ आया उस समय उसको देखनेसे तुम्हारे मनमें क्या

समीक्षताम् ॥ २१ ॥ कच्चिद्राडीवशब्देन न प्रणश्यति वै
बलम् । यद्वाः स भैरवं कुर्वन्नुर्जुनो भृशमन्वयात् ॥ २२ ॥ कच्चि-
न्नापोनुदत् प्राणानिषुभिर्बो धनञ्जयः । वातो वेगादिवाध्यन् मेघा-
ञ्छरगणैर्नृपान् ॥ २३ ॥ को हि गाण्डीवधन्वानं रणे सोढुं
नरोऽर्हति । यमुपश्रुत्य सेनाग्रे जनः सर्वो विदीर्यते ॥ २४ ॥ पत्सेनाः
समकम्पन्त यद्दीरानस्पृशद्भयम् । के तत्र नाजहुर्द्रोणं के क्षुद्राः
प्राद्वन् भयात् ॥ २५ ॥ के वा तत्र तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्यु-
मात्रजन् । अमानुषाणां जेतारं युद्धेष्वपि धनञ्जयम् ॥ २६ ॥ न
च वेगं सिताश्वस्य विसहिष्यन्ति मामकाः । गाण्डीवस्य च
निर्घोषं प्रावृद्धजलदनिःस्वनम् ॥ २७ ॥ विश्वक्सेनो यस्य यन्ता-

विचार उठा था ? अर्जुनने गांडीव धनुषके शब्दसे तो हमारी
सेनाका नाश नहीं कर डाला था ? अर्जुन गांडीवका महाभयानक
शब्द करता करता तुम्हारी सेनाके पास आया था और जैसे
पवन अपने वेगसे मेघमंडलके टुकड़े कर डालता तैसे ही अर्जुनने
वालोंके प्रहारसे तो तुम्हारा नाश नहीं कर डाला था ॥ २१-२३ ॥
ऐसा कौनसा पुरुष रणमें था कि—जो गांडीव धनुषधारी अर्जुनके
वालोंकी मारको सहसके ? अर्जुनका नाम सुनते ही सेनाके
मुहाने पर खड़े हुए सब मनुष्य भागने लगते हैं उस अर्जुनको
सेनाके मुहाने पर देखकर सेना काँप उठी होगी और वीरपुरुषों
को डरलगा होगा ! युद्धके समय कौन २ से योधा रणमें द्रोण
को छोड़कर नहीं गए थे और कौन २ से क्षुद्रयोधा डरके मारे
रणमेंसे भागगये थे तथा कौन २ से योधा देवताओंको भी जीतने
वाले अर्जुनके सामने युद्ध करके शरीरकी परवाह न करते हुए
कटमरे थे ? ॥ २४-२६ ॥ मेरे पुत्र अर्जुनके वेगको तथा उसके
गांडीव धनुषकी वर्षाको और कालके मेघकीसी गर्जनाको सहसकें
ऐसे नहीं हैं २७ कृष्ण जिसका सारथी है और अर्जुन जिसका

यस्य योद्धा धनञ्जयः। अशक्यः स रथो जेतुं मन्ये देवाः सुरैरपि २८
 युक्कुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः । मेधावी निपुणो धीमान्
 युधि सत्यपराक्रमः ॥ २९ ॥ आरावं विपुलं कुर्वन् व्यथयन् सर्व-
 सैनिकान् । यदायान्नकुलो द्रोणं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३० ॥
 आशीविष इव क्रुद्धः सहदेवो यदाभ्ययात् । कदनं करिष्यन्
 शत्रूणां तेजसा दुर्जयो युधि ॥ ३१ ॥ आर्यव्रतममोघेषु हीमन्त-
 मपराजितम् । सहदेवं तमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥
 यस्तु सौवीराजस्य प्रमथ्य महतीं चमूम् । आदत्त महिषीं भोजां
 काम्यां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३३ ॥ सत्यं धृतिश्च शौर्यञ्च ब्रह्म-
 चर्यं च केवलम् । सर्वाणि युयुधानेऽस्मिन्नित्यानि पुरुषर्षभे ॥ ३४ ॥

योधा हैं ऐसे रथको तो मेरी समझमें देवता और असुरभी नहीं
 जीत सकते ॥ २८ ॥ अतिसुकुमार तरुण, धीर, देखने योग्य,
 बुद्धिमान्, निपुण, युद्धमें सच्चापराक्रम दिखानेवाला और बुद्धिमें
 प्रबल नकुल जिस समय बड़ी भारी गर्जना करके सब योधाओं
 को व्याकुल करता हुआ द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़ आया उस समय
 कौन २ से वीरोंने उसको घेर लिया था ? ॥ २९ ॥ ३० ॥
 विपैले साँपकी समान क्रोधमें भरा हुआ, तेजके कारण जिसको
 युद्धमें कोई नहीं जीतसकता ऐसा, आर्यव्रतधारी, सफल बाण
 वाला, लज्जाशील और अजित सहदेव जिस समय शत्रुओंका
 संहार करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़ आया उस समय
 कौन २ से वीरोंने उसको घेर लिया था ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जिसने
 सौवीरराजकी बड़ी भारी सेनाका संहार करके सर्वाङ्गसुन्दरी
 और चाहने योग्य भोजाको अपनी पटरानी बनाया था, जिस
 महात्मामें सत्य, वीरता, शूरता, और ब्रह्मचर्य आदि निवास
 किये रहते हैं, जो बलवान्, सत्य कर्म करनेवाला, अदीन, अजित
 श्रीकृष्णकी समान युद्ध करनेमें प्रवीण हैं, जिसने अर्जुनके उप-

बलिनं सत्यकर्माणमदीनमपराजितम् । वासुदेवसमं युद्धे वासुदेवा-
दनन्तस्म ॥ ३५ ॥ धनञ्जयोपदेशेन श्रेष्ठमिन्द्रस्त्रकर्मणि । पार्थेन
सममस्त्रेषु कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ३६ ॥ वृष्णीनां प्रवरं शरं
वीरं सर्वधनुष्मताम् । रामेण सममस्त्रेषु यशसा विक्रमेण च ३७
सत्यं धृतिर्मतिः शौर्यं ब्राह्मं चास्त्रमनुत्तमम् । सात्वते तानि सर्वाणि
त्रैलोक्यमिव केशवे ॥ ३८ ॥ तमेवं गुणसम्पन्नं दुर्वारमपि दैवतैः ॥
समासाद्य महेष्वासं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३९ ॥ पञ्चालेषूत्तमं
वीरमुत्तमाभिजनप्रियम् । नित्यमुत्तमकर्माणमुत्तमौजसमाहवे ४०
युक्तं धनञ्जयहिते ममानर्थार्थमुत्थितम् । यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्र-
वरुणोपमम् ॥ ४१ ॥ महारथं समारूपातं द्रोणायोद्यतमाहवे ।
त्यजन्तं समरे प्राणान् के शूराः समवारयन् ॥ ४२ ॥ एकोपसृत्य

देशसे बाणविद्या और अस्त्रविद्यामें बड़ी चतुरता पाई है और
जो अस्त्रविद्यामें अर्जुनकी समान है उस युयुधान सात्यकीको
द्रोणके ऊपर चढ़ाई करतेमें किसने रोका था ? ३५ ॥ ३६ ॥
वह सात्यकी वृष्णिवंशमें श्रेष्ठ, वीर, और सब धनुषधारियोंमें
शूर गिनाजाता है, अस्त्रविद्या, यश और पराक्रममें रामकी
समान है, जैसे कृष्णमें तीनोंलोक रहते हैं तैसे ही सात्यकीमें सत्य,
धीरज बुद्धि वीरता और परम उत्तम ब्रह्मास्त्र विद्यमान है ३७-३८
देवता भी जिसको पीछेको नहीं हटा सकते ऐसे बलवान् महा-
धनुषधारी सात्यकीको रणमें किन् २ वीरोंने घेरा था ? ३९
पञ्चाल राजाओंमें उत्तम, वीर बान्धवोंको अत्यन्त प्यारा, नित्य
उत्तम पराक्रम करनेवाला, युद्धमें श्रेष्ठ ओज दिखाने वाला,
अर्जुनके हितमें तत्पर और मेरा अशुभ करनेके लिए
उत्पन्न हुआ, यम कुबेर आदित्य, महेन्द्र और वरुणकी
समता रखनेवाला और रणमें प्राण त्यागनेको तयारहुआ महा-
रथी घृष्टशुम्न जिस समय रणमें द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़कर आया

चेदिभ्यः पाण्डवान् यः समाश्रितः । धृष्टकेतुं समायान्तं द्रोणं
 कस्तं न्यवारयत् ॥ ४३ ॥ योज्वधीत् केतुमान् वीरो राजपुत्रं दुरा-
 सदम् । अपरान्तगिरिद्वारे कस्तं द्रोणान्न्यवारयत् ॥ ४४ ॥ स्त्री-
 पुंसयोर्नरव्याघ्रो यः स वेद गुणागुणान् । शिखण्डिनं याज्ञसेनि-
 पत्नानमनसं युधि ॥ ४५ ॥ देवव्रतस्य सम्प्रे हेतुं मृत्योर्महात्मनः ।
 द्रोणायाभिमुखं यान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ४६ ॥ यस्मिन्नभ्य-
 धिका वीरे गुणाः सर्वे धनञ्जयात् । यस्मिन्नस्त्राणि सत्यञ्च
 ब्रह्मचर्यञ्च सर्वदा ॥ ४७ ॥ वासुदेवसमं वीर्यं धनञ्जयसमं बले ।
 तेजसादित्यसदृशं बृहस्पतिसमम्मतौ ॥ ४८ ॥ अभिमन्युं महा-
 त्मानं व्यात्ताननमिवांतकम् । द्रोणायाभिमुखं यांतं के शूराः सम-
 था उस समय कौन २ से वीरोंने उसको रोका था ? ॥ ४०-४२ ॥
 जिस अकेलेने अपने बान्धव चेदियोंको त्याग कर पाण्डवोंका
 आश्रय लिया था वह धृष्टकेतु जब द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़ कर
 आया तब उसको किसने रोका था ? ॥ ४३ ॥ जिस शूर
 केतुमानने अपरान्त नामके गिरिद्वारमें जिसको कोई न जीत सके
 ऐसे दुर्जय राजपुत्रको मार डाला था, वह द्रोणके ऊपर चढ़
 कर आया तब उसको किसने रोका था ? ॥ ४४ ॥ जो नर-
 व्याघ्र अपनेमें रहनेवाले स्त्रीके और पुरुषके गुण और अवगुण को
 जानता है तथा जो युद्धका उत्साही है और जिसने रणमें महा-
 त्मा भीष्मको मार डाला वह याज्ञसेनका पुत्र शिखण्डी जब द्रोणा-
 चार्यके ऊपर चढ़ कर आया तो रणमें कौन २ से शूरोंने उसको
 रोका था ? ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिस वीरमें सकल गुण अर्जुनसे
 भी अधिक हैं, जिसमें अस्त्रोंका ज्ञान, सत्य और ब्रह्मचर्य सदा
 रहता है, जो पराक्रममें कृष्णकी समान, बलमें अर्जुनकी समान,
 तेजमें सूर्यकी समान और बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान है, वह
 कालके खुत्रे हुए मुखकी समान महात्मा अभिमन्यु जब द्रोणा-

वारयन् ४६ तरुणस्तरुणप्रज्ञः सौमद्रः परवीरहा । यदाभ्यधावद्वै
द्रोणं तदासीदो मनः कथम् ॥ ५० ॥ द्रौपदेया नरव्याघ्रा समुद्र-
मिव सिन्धवः । यद् द्रोणमाद्रवन् संख्ये के शूरास्तान्नघवारयन् ५१
एते द्वादशवर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः । अस्त्रार्थमवसन् भीष्मं
विभ्रतो व्रतमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ क्षत्रजयः क्षत्रदेवः क्षत्रवर्मा च
मानदः । धृष्टद्युम्नात्मजा वीराः के तान् द्रोणादवारयन् ॥ ५३ ॥
शताद्विशिष्टं यं युद्धे सममन्यन्त वृष्णयः । चेकितानं महेष्वासं कर्त्ता
द्रोणादवारयत् ॥ ५४ ॥ बार्धक्षिभिः कलिगानां यः कन्यामाहरद्
युधिः । अनाधृष्टिरदीनात्मा कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५५ ॥ आतरः

चार्यके ऊपर चढ़कर आया तब उसको किसने रोका था ? ४७
॥ ४६ ॥ शत्रुका नाश करनेवाला और बुद्धिमान सुभद्राका जवान
पुत्र जब द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़कर आया तब तुम्हारे मनमें
कैसा विचार उठा था ? ॥ ५० ॥ पुरुषोंमें सिंह समान द्रौपदीके
पुत्र, जैसे बड़े २ नद समुद्रकी ओरको दौड़े चलेजाते हैं तैसे ही
जब युद्धमें द्रोणाचार्यकी ओरको झपटकर आए उस समय उनको
कौनसे शूरोंने रोका था ? ॥ ५१ ॥ धृष्टद्युम्नका सम्मान करने
वाले क्षत्रजय, क्षत्रदेव, तथा क्षत्रवर्मा नामवाले जो पुत्र बारह
वर्षतक क्रीडाके अङ्गन्दको छोड़कर उत्तम ब्रह्मचर्यव्रतका पालन
करतेहुए अस्त्रविद्या सीखनेके लिए भीष्मजीके पास रहे थे वे
जब द्रोणके ऊपर चढ़कर आये तो उनको किसने रोका था ?
॥ ५२ ॥ ५३ ॥ वृष्णिवंशके राजे जिसको युद्धमें सब योधाओंसे
श्रेष्ठ गिनते थे उस महाधनुषधारी चेकितानको द्रोणके ऊपर चढ़ाई
करते समय किसने रोका था ? ॥ ५४ ॥ जिसने युद्धमें कलिङ्ग
राजाओंसे कन्या छीनली थी वह वृद्धसेनका अनाधृष्टि नाम-
वाला उदारचित्त पुत्र जब द्रोणके ऊपर चढ़ आया तब उसको
कौन २ से शूरोंने रोका था ? धर्मात्मा सच्चा पराक्रम दिखाने

पञ्च कैकया धार्मिकाः सत्यविक्रमाः । इन्द्रगोपकसङ्काशा रक्त-
वर्मायुधध्वजाः ॥ ५६ ॥ मातृवृक्षः सुता वीराः पाण्डवानां जया-
र्थिनः । तान् द्रोणं हन्तुमायातान् के वीराः पर्यवारयन् ॥ ५७ ॥
यं योधयन्तो राजानो नाजयन् वारणावते । पण्मासानपि संरब्धा
जिघांसन्तो युधां पतिम् ॥ ५८ ॥ धनुष्मतां वरं शूरं सत्यसन्धं
महाबलम् । द्रोणात् कस्तं नरव्याघ्रं युयुत्सुं पर्यवारयत् ॥ ५९ ॥
यः पुत्रं काशिराजस्य वाराणस्यां महारथम् । समरे स्त्रीषु मृध्यन्तं
भल्लेनापाहरद्रथात् ॥ ६० ॥ धृष्टद्युम्नं महेष्वासं पार्थानां मन्त्र-
धारिणम् । युक्तं दुर्योधनानर्थे सृष्टं द्रोणनधाय च ॥ ६१ ॥ निर्दहन्तं
रणे योधान् दारयन्तञ्च सर्वतः । द्रोणाभिमुखमायान्तं के शूराः
पर्यवारयन् ॥ ६२ ॥ उत्सङ्ग इव संवृद्धं रुपदस्यास्त्रवित्तमम् ।

वाले, लाल २ कवच शस्त्र और ध्वजाको धारण करनेसे इन्द्र-
गोप कीड़ेकी समान दीखनेवाले, पांडवोंकी मौसीके पुत्र पाँच
केकय भाई पांडवोंको विजय दिलानेकी इच्छासे द्रोणाचार्यको
मारनेके लिए चढ़कर आये उस समय उनको किसने रोका
था ? ॥ ५५—५७ ॥ वारणावत नगरमें जिसको
मार डालनेकी इच्छासे छः महीने तक राजे क्रोध
में भरकर लड़े थे, परन्तु जिसको जीत नहीं सके थे, वह धनुष-
धारियोंमें श्रेष्ठ, वीर, सत्यप्रतिज्ञावाला, मातृवृक्षी, नरव्याघ्र युयु-
त्सु जब द्रोणके ऊपर चढ़कर आया, उस स्थिति कौनसे वीरने
उसको घेरलिया था? ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ जिसने वनारसमें कन्याका हरण
करनेके लिये, कन्याको चाहनेवाले महारथी काशिराजके पुत्रको
भाला मारकर रथमेंसे नीचे गिरादिया था, वह पांडवोंका मंत्री
महाधनुषधारी, दुर्योधनका अशुभ करनेके लिये तत्पर रहनेवाला
और द्रोणको मारनेके लिये उत्पन्न हुआ धृष्टद्युम्न रणमें चारों
ओर योधाओंका संहार करताहुआ द्रोणके ऊपर चढ़आया, उस
समय किनसे वीरोंने उसको चारों ओरसे रोका था? ॥ ६०-६२ ॥

शैखण्डिनं शस्त्रगुप्तं के च द्रोणाद्वारयन् ॥ ६३ ॥ य इमां
पृथिवीं कृत्स्नां चर्मवत्समवेष्टयेत् । महता रथघोषेण मुख्याग्निघ्नो
महारथः ॥ ६४ ॥ दशश्वमेधानाजडे स्वन्नपानासदक्षिणान् ।
निरर्गलान् सर्वमेधान् पुत्रवत् पालयन् प्रजाः ॥ ६५ ॥ गङ्गास्रोतसि
यावत्यः सिकता अप्यशेषतः । तावतीर्गा ददौ वीर उशीनरसुतो-
ध्वरे ॥ ६६ ॥ न पूर्वं नापरे चक्रुरिदं केचन मानवाः । इतीदं
चुक्रुशुर्देवाः कृते कर्मणि दुष्करे ॥ ६७ ॥ पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न
तं संस्थास्तु चारिषु । ज्ञातं चापि जनिष्यन्तं द्वितीयञ्चापि
साम्प्रतम् ॥ ६८ ॥ अन्यमौशीनरश्चैव्यादुरो वोढारमित्युत । गतिं
यस्य न यास्यन्ति मानुषा लोकत्रासिनः ॥ ६९ ॥ तस्य नसार-

द्रुपदकी गोदमें पलकर बड़ा हुआ अस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, शस्त्रों
स रक्षा किया हुआ शिखण्डी जब द्रोणके ऊपर चढ़कर आया
तब उसको किसने रोका था ? ॥ ६३ ॥ जिस शत्रुओंका संहार
करनेवाले महारथीने बड़े भारी रथकी घरघराहटसे सब पृथिवीको
चमड़ेकी समान लपेटलिया था ॥ ६४ ॥ जिसने प्रजाका पुत्रकी
समान पालन करके, बड़े उत्तम अन्नपानवाले तथा पूरी दक्षि-
णावाले दश अश्वमेध यज्ञ और सर्वमेध नामके यज्ञ किये थे ६५ उस
उशीनर राजाके पुत्रने, गङ्गाके प्रवाहमें जितनी रेतियें हैं उतनी
गौओंका ब्राह्मणोंको दान दिया था और जिसके महादुष्कर कर्मों
को देखकर देवता भी कहनेलगे, कि-पहले किसीभी मनुष्यने
ऐसा कर्म नहीं किया था, और अब आगेको भी कोई मनुष्य
ऐसा कर्म नहीं करसकेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस शिववंशके राजा
उशीनरकी समान धर्मकी धुराको धारण करनेवाला जिलोकीभर
के स्थावर जङ्गलोंमें दूसरा कोई उत्पन्नही नहीं हुआ और न कोई
आगेको ऐसा उत्पन्न होगा तथा लोकमें रहनेवाले मनुष्य उसकीसी
गति भी नहीं पावेंगे, ऐसे उशीनरका पोता शैव्य, कालकी समान

मायान्तं शैव्यं कः समवारयत् । द्रोणायाभिमुखं यत्तं व्यात्तानन-
मिवांतकम् ॥ ७० ॥ विराटस्य रथानीकं मत्स्यस्याभिप्रधातिनः ।
प्रेप्सन्तं समरे द्रोणं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ७१ ॥ सधो वृको-
दराज्जातो महाबलपराक्रमः । मायावी राक्षसो वीरो यस्मान्मम
महज्जयम् ॥ ७२ ॥ पार्थानां जयकामं तं पुत्राणां मम कण्टकम् ।
घटोत्कचं महात्मानं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७३ ॥ एते चान्ये च
बहवो येषामर्थाय सज्जय । त्यक्तारः संयुगे प्राणान् किन्तेपामजितं
युधि ॥ ७४ ॥ येषाञ्च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः ।
हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः ॥ ७५ ॥ लोकानां
गुरुरत्यर्थं लोकनाथः सनातनः । नारायणो

मुख फाड़कर युद्धकी सब सामग्रीके साथ द्रोणके ऊपर चढ़कर
आया तब उसको किसने रोका था? ६८-७० शत्रुका नाश करने
वाले विराटदेशके मत्स्यराजकी रथसेना रणमें द्रोणके ऊपर चढ़
कर आयी, उस समय कौनसे शूरोंने उसको घेरलिया था? ७१
भीमसेनसे तुरन्तही हिडिम्बाके पेटमें उत्पन्न हुआ * महाबली
और परमपराक्रमी, वीर, मायावी राक्षस घटोत्कच, कि-जिससे
मुझे बड़ा भय लगता है, जो पांडवोंकी विजय करवाना चाहता है
और जो मेरे पुत्रोंका शत्रु है, वह महात्मा घटोत्कच जब द्रोणके
ऊपर चढ़कर आया तब उसको किसने पीछेके हटाया था? ७२-७३
हे सज्जय ! ये और दूसरे जो योधा पांडवोंकी विजयके लिये युद्धमें
प्राण देनेको तयार हुए थे वे पांडव युद्धमें किसको नहीं जीत
सकते थे? ७४ ॥ लोकोंके गुरु, लोकोंके नाथ, सनातन, नारा-
यण, दिव्यमूर्ति और शार्ङ्ग-धनुषधारी (श्रीकृष्ण) जब पांडवों

(१) पुराणोंमें लिखा है, कि-राक्षसी अप्सरा आदि अज्ञौ-
किक स्त्रियों गर्भ धारण करनेके साथही सन्तान उत्पन्न करदेती
है, और वह सन्तान उत्पन्न होतेही तरुण होजाती है ।

रणे नाथो दिव्यो दिव्यात्मकः प्रभुः ॥ ७६ ॥ यस्य दिव्यानि
कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः । तान्यहं कीर्तयिष्यामि भक्त्या
स्थैर्यार्थमात्मनः ॥ ७७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि

धृतराष्ट्रवाक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य सञ्जया-
कृतवान् यानि गोविन्दो यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ॥ १ ॥
संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना । विख्यापितं बलं बाहोस्त्रिषु
लोकेषु सञ्जय ॥ २ ॥ उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे । जघान
हयराजन्तं यमुनावनवासिनम् ॥ ३ ॥ दानवं घोरकर्माणं गवां

के आधार हैं तब पांडवोंकी पराजय कैसे हो सकती है? ७५ ७६ ।
वासुदेवके जित दिव्य कर्मोंका विद्वान् गान करते हैं, उन दिव्य
कर्मोंका मैं अपने मनको स्थिर करनेके लिये भक्तिके साथ कीर्तन
करूंगा ॥ ७७ ॥ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! मैं तुझे वासुदेव (कृष्ण)
के दिव्य कर्म सुनाता हूँ, तू उनको सुन, श्रीकृष्णने जो कर्म
किये हैं, उन कर्मोंको दूसरा कोई भी पुरुष कभी नहीं कर
सकेगा ॥ १ ॥ हे सञ्जय ! महात्मा श्रीकृष्णने बालकपनमें गोपके
कुतुम्भ (नन्दके घर) पलते समय अपना भुजबल तीनों लोकोंमें
प्रसिद्ध करदिया था ॥ २ ॥ इन्होंने उच्चैःश्रवा नामक दिव्य
घोड़ेके समान बलवान् वेगमें वायुकी समान, यमुनाके वनमें रहने
वाले, मायावी हयराजका *नाश किया था ॥ ३ ॥ मानो गौओंका

* हयराज अश्वोंका राजा असुर था, जिसका दूसरा नाम
केशी दैत्य था, वह अपनी आसुरी मायासे महाबली घोड़ेका रूप
धर लिया करता था और कंसका मित्र था ।

मृत्युमिवोत्थितम् । वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह ४
 प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम् । मुखचान्तकसङ्काश-
 मवधीत् पुष्करेक्ष्णः ॥ ५ ॥ तथा कंसो महातेजा जरासन्धेन
 पालितः । त्रिक्रमेणैव कृष्णेन सगणः पातितो रणे ॥ ६ ॥ सुनामा
 रणविक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः । भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता
 कंसस्य वीर्यवान् ॥ ७ ॥ बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनाभिन्नघातिना ।
 तरस्वी समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट् ॥ ८ ॥ दुर्वासा नाम
 विप्रर्षिस्तथा परमकोपनः । आराधितः सदारेण स चास्मै प्रददौ
 वरान् ॥ ९ ॥ तथा गान्धारराजस्य सुतां वीरः स्वयम्बरे । निर्जित्य
 पृथिवीपालानावहत् पुष्करेक्ष्णः ॥ १० ॥ अमृष्यमाणा राजानो

नाश करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ हो ऐसे वृषभरूपधारी घोर
 कर्म करनेवाले वृषभासुरको इन्होंने बालक अवस्थामें ही दोनों
 हाथोंसे पकड़ कर मार डाला था ॥ ४ ॥ कमलकी समान नेत्र
 वाले श्रीकृष्णने प्रलम्ब, नरक, जम्भ, महादैत्य पीठ तथा काल
 समान मुखो भी बालक अवस्थामें ही मार डाला था ॥ ५ ॥
 और जरासन्धकी रक्षामें राज्य करनेवाले महातेजस्वी कंसको
 भी उसके योधाओंके सहित लड़ाईमें अपने बलसे ही (विना
 शस्त्रके) मार डाला था ॥ ६ ॥ शत्रुनाशी श्रीकृष्णने बलरामकी
 सहायतासे भोजराज कंसके बन्धु, महापराक्रमी, पूरी
 अक्षौहिणी सेनाके स्वामी, युद्धमें महावेगसे लड़नेवाले शूरसेन
 देशके सुनामा राजाको भी सेनाके सहित मार डाला था ॥ ७-८ ॥
 श्रीकृष्णने अपनी स्त्रीको साथमें लेकर महाक्रोधी विप्रर्षि दुर्वासा
 की आराधना की थी, इस पर दुर्वासाने उनको वरदान दिया ६
 उन ही कमलनयन वीर कृष्णने स्वयंवरमेंसे गान्धारराजकी
 कन्याको हरकर राजाओंको जीता था और उस कन्याके साथ
 विदाह किया था ॥ १० ॥ उच्चजातिके घोड़ोंकी समान श्रीकृष्णके

यस्य जात्या हया इव । रथे वैवाहिके युक्ताः प्रतोदेन कृतव्रणाः ११
 जरासन्धं महाबाहुमुपायेन जनार्दनः । परेण घातयामास संप्रग्रा-
 त्तौहिणीपतिम् ॥ १२ ॥ चेदिराजञ्च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली ।
 अर्धे विवदमानञ्च जघान पशुवत्तदा ॥ १३ ॥ सौभं दैत्यपुरं
 खस्थं शाल्वगुप्तं दुरासदम् । समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास
 माधवः ॥ १४ ॥ अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गांश्च मागधान् काशिकोस-
 लान् । वात्स्यगार्ग्यं कुरूपांश्च पौण्ड्रान् अप्यजयद्रणो ॥ १५ ॥ आव-
 न्त्यान् दक्षिणात्यंश्च पार्वतीयान् देशेरकान् । काश्मीरकानौर-
 सिकान् पिशाचांश्च समुद्रतान् ॥ १६ ॥ काम्बोजान् वाटधानांश्च चोलान्
 पाण्ड्यांश्च सञ्जय । त्रिगर्त्तान् मालवांश्चैव दरदांश्च सुदुर्जयान् ७१

उत्कर्षको तहाँ आयेहुए राजे सड़ नहीं सके, इसलिये उस समय
 श्रीकृष्णने उनको विवाह में लायेहुए रथमें (घोड़ोंकी जगह)
 जोतकर चाबुककी मारसे घायल करदिया था ॥ ११ ॥ और
 इन्होंने महाबाहु जरासन्धको उसकी सम्पूर्ण अत्तौहिणी सेनाके
 सहित युक्ति करके दूसरेसे मरबाडाला था ॥ १२ ॥ इन ही महा-
 पराक्रमी श्रीकृष्णने राजसूय यज्ञमें राजाओंके सेनापति और
 पराक्रमी चेदिराज (शिशुपाल) को अर्घ देते समय विवाद करने
 पर पशुकी समान मारडाला था ॥ १३ ॥ आकाशमें फिरनेवाले
 सौभनामक दैत्योंके नगरकी रक्षा शाल्व किया करता था और
 उसको कोई भी बशमें नहीं करसकता था उसको भी
 कृष्णने पराक्रम करके समुद्रमें डुवादिया था ॥ १४ ॥
 और अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मागध, काशिकोसल, वात्स्य, गार्ग्य,
 कुरू, पौण्ड्र, अवनती, दक्षिणावासी, पर्वतवासी, देशेरक, काश-
 मीर, अनौरसिक, पिशाच, मुद्गल, काम्बोज, वाटधान, चोल,
 पाण्ड्य, त्रिगर्त्त, मालव, अरिदुर्जय-दरद तथा दूसरे अनेकों दिशा-
 ओंसे आयेहुए राजे, खरा शक आदि देशोंके तथा जातिथोंके

नानादिभ्यश्च सम्प्राप्तान् स्वशास्त्रं च शर्कास्तथा । जितवान् पुण्डरी-
काक्षो यधनञ्च सहायुगम् ॥ १८ ॥ प्रविश्य मकरावासं यादोगण-
निपेक्षितम् । जिगाय वरुणं संख्ये सलिलान्तर्गतं पुरा ॥ १९ ॥
युधि पञ्चजनं हत्वा दैत्यं पातालवासिनम् । पाञ्चजन्यं हृषीकेशो
दिव्यं शंखमवाप्तवान् ॥ २० ॥ खाण्डवे पार्थसहितस्तोषयित्वा
हुताशनम् । आग्नेयमस्त्रं दुर्धर्पं चक्रं लेभे महाबलः ॥ २१ ॥
चैनतेयं सपारुह्य त्रासयित्वा मरावतीम् । महेन्द्रभवनाद्वीरः पारि-
जातमुपानयत् ॥ २२ ॥ तच्च मर्षितवान् शक्रो जानंस्तस्य परा-
क्रमम् । राज्ञां चाप्यजितं कञ्चित् कृष्णेनेह न शुश्रुम ॥ २३ ॥
यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम सञ्जय । कृतवान् पुण्डरीकाक्षः
कस्तदन्य इहार्हति ॥ २४ ॥ यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्ण-

भिन्न २ राजाओंको तथा भाइयों सहित कालयवनको कमलनयन
श्रीकृष्णने जीतलिया था ॥ १५-१८ ॥ पहले समयमें इन्होंनेही
जलचरोंके समूहोंसे भरेहुए समुद्रमें घुमकर जलमें रहनेवाले
वरुणदेवको भी युद्धमें जीतलिया था ॥ १९ ॥ युद्धमें पातालवासी
पञ्चजन नामके दैत्यको मारकर हृषीकेशने पांचजन्य नामका
दिव्य शङ्ख पाया था ॥ २० ॥ इन महाबली केशवने अर्जुनके
साथमें होकर खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त कर उससे दुराधर्प
अययस्त्रसरीखा सुदर्शनचक्र पाया था ॥ २१ ॥ और वीर श्रीकृष्ण
विनताके पुत्र गरुड़के ऊपर चढ़कर अमरावतीको भयभीत करते
हुए महेन्द्रके भवनमेंसे (देवताओंके वृत्त) पारिजातको लाये
थे ॥ २२ ॥ इन्द्र श्रीकृष्णके पराक्रमको जानता था, इसलिये वह
श्रीकृष्णके इस पराक्रमको सहन करगया था, राजाओंमें कोई
ऐसा राजा हमने सुनाही नहीं जिसको श्रीकृष्णने न जीता हो २३
हे संजय ! कमलनेत्र श्रीकृष्णने हमारी राजसभामें जो आश्चर्य
में डालनेवाला काम किया था, ऐसा कर्म दूसरा कौन करसकता

मीश्वरम् । तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चागमम् ॥२५॥ नान्तो
विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः । कर्मणां शक्यते गन्तुं
हृषीकेशस्य सञ्जय ॥ २६ ॥ तथा गदश्च शाम्बश्च प्रद्युम्नोऽथ
विदूरथः । अगानहोनिरुद्धश्च चारुदेष्णः ससारणः ॥ २७ ॥
उल्मुको निशठश्चैव भिल्लीवभ्रुरश्च वीर्यवान् । पृथुश्च विपृथुश्चैव
शमीकोथारिमेजयः । २८ ॥ एतेन्ये बलवन्तरश्च वृष्णिवीराः महा-
रिणः । कथञ्चित् पाण्डवानां कं श्रयेयुः समरे स्थिताः ॥ २९ ॥
आहूता वृष्णिवीरेण केशवेन महात्मना । ततः संशयितं सर्वं
भवेदिति मतिर्मम ॥३०॥ ना गायुतबलो वीरः कैलासशिखरोपमः ।
वनमाली हली रामस्तत्र यत्र जनार्दनः ॥ ३१ ॥ यमाहुः सर्वपितरं
वासुदेवं द्विजातयः । अपि वा ह्येष पाण्डूनां योत्स्यतेर्थाय सञ्जय ॥३२॥

हे ! ॥ २४ ॥ उस समय मैंने भक्तिके साथ श्रीकृष्णकी शरणमें
जाकर उन परमात्माके दर्शन किये थे तबसे शास्त्रमें लिखीहुई
सब बातें मुझे प्रत्यक्षसी देखने लगी हैं ॥ २५ ॥
हे संजय ! पराक्रमी और बुद्धिमान हृषीकेश श्रीकृष्णके कर्मोंका
पार पाया ही नहीं जासकता ॥ २६ ॥ गद, शाम्ब,
प्रद्युम्न, विदूरथ, अगानह, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सारण ॥२७॥
उल्मुक, निशठ, पराक्रमी भिल्ली, वभ्रु, पृथु, विपृथु, शमीक, अरि-
मेजय, ॥ २८ ॥ ये बलवान् और महार करनेमें चतुर
वृष्णवंशमें वीर पुरुष, वृष्णियोंमें वीर महात्मा श्रीकृष्णके
निमन्त्रणसे पाण्डवोंकी सेनाका आश्रय लेकर युद्ध करें तो मेरी
समझमें हमारी सब सेना भयभीत होजाया ॥२९॥ जहाँ श्रीकृष्ण
होंगे तहाँही दशहजार हाथियोंकी समान बलवाले, वीर, कैलास
पर्वतके शिखरकी समान ऊँचे, वनमालाधारी हलधर बलराम
भी होंगेही ॥३०॥ हे सञ्जय ! ब्राह्मण, वासुदेव श्रीकृष्णको सब
का पिता कहते हैं वासुदेवभी पाण्डवोंके लिये युद्धकरेंगे ही ! ॥३१॥

स यदा तात सन्नह्येत् पाण्डवार्थाय सञ्जय । न तदा प्रनिसंगो ह्य
 भविता तत्र कश्चन ॥ ३३ ॥ यदि स्म कुरवः सर्वे जयंयुर्नाम
 पाण्डवान् । बाण्ये पोथाय तेषां वै गृह्णीयाच्चक्षत्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥
 ततः सर्वान्नरव्याघ्रो हत्वा नरपतीन् रणे । कौरवांश्च महाबाहुः
 कुन्त्यै दद्यात् स मेदिनीम् ॥ ३५ ॥ यस्य यन्ता हृषीकेशो यो ह्य
 यस्य धनञ्जयः । रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद्रथः ३६
 न केनचिदुपायेन कुरूणां दृश्यते जयः । तस्मान्मे सर्वपाचक्ष
 यथा युद्धमवर्त्तन ॥ ३७ ॥ अर्जुनः केशवस्यात्मा कृष्णोऽप्यात्मा
 किरीटिनः । अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती ३८
 सर्वेष्वपि च लोकेषु वीर्यसुरपराजितः । प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः
 केशवे गुणाः ॥ ३९ ॥ मोहाद् दुर्योधनः कृष्णं यो न वेत्तीह

हे तात संजय ! जब श्रीकृष्ण पाण्डवोंके लिये शस्त्र धारण करेंगे
 उस समय उनके सामने युद्ध करनेके लिये हममेंसे कोई पुरुष भी
 बाहर नहीं निकलेगा ॥ ३३ ॥ जब सब कौरव संग्राममें पांडवोंको
 हरा देंगे तब वृष्णिवंशी श्रीकृष्ण पांडवोंके लिये उत्तम शस्त्र उठा-
 वेंगे और रणमें महाबाहु तथा पुरुषोंमें सिंह समान श्रीकृष्ण सब
 राजे और कौरवोंको रणमें मारकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको सब
 पृथिवी अर्पण करदेंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ जिसके सारथी श्रीकृष्ण हैं
 और जिसका योधा धनञ्जय है उस रथके सामने रणमें लड़नेको
 कौनसा महारथी आगे बढ़ सकता है ? ॥ ३६ ॥ किसीभी उपायसे
 कौरवोंकी विजय होती नहीं दीखती, तो भी कौरव पांडवोंका युद्ध
 किस प्रकार हुआ था, वह सब तू मुझे सुना ॥ ३७ ॥ अर्जुन
 श्रीकृष्णका आत्मा है और श्रीकृष्ण अर्जुनके आत्मा हैं, अर्जुन
 में नित्य विजयका निवास है और श्रीकृष्णमें सनातनकालसे
 कीर्ति विद्यमान है ॥ ३८ ॥ सब लोकोंमें अर्जुनको कोई नहीं जीत
 सकता और श्रीकृष्णमें प्रधानरूपसे सकल अमेय गुण रहते

केशवम् । मोहितो दैवयोगेन मृत्युपाशपुरस्कृतः ॥ ४० ॥ न वेद
कृष्णं दाशार्हमर्जुनं चैव पाण्डवम् । पूर्वदेवौ महात्मानौ नरनारा-
यणाबुधौ ॥ ४१ ॥ एकात्मानौ द्विधा भूतौ दृश्येते मानवैस्तु वि ।
मनसापि हि दुर्धर्षौ सेनामेतां यशस्विनौ ॥ ४२ ॥ नाशयेता-
मिहच्छन्तौ मानुषत्वाच्च नेच्छतः । युगस्येव विपर्यासो लोकाना-
मिव मोहनम् ॥ ४३ ॥ भीष्मस्य च वधस्तात द्रोणस्य च महा-
त्मनः । न ह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च ॥ ४४ ॥
न क्रियाभिर्न चास्त्रेण मृत्योः कश्चिन्निवार्यते । लोकसम्भावितौ
वीरौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ॥ ४५ ॥ भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा किञ्च
जीवामि सञ्जय । यान्तां श्रियमसूयामः पुरा दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ४६

हैं ॥ ३६ ॥ मूर्ख दुर्योधन प्रारब्धवश मोहमें फँसा हुआ और मृत्युकी
फाँसीमें बँधा हुआ था इसलियेही वह श्रीकृष्णको नहीं पहिचान
सका ॥ ४० ॥ दाशार्हवंशी श्रीकृष्ण और अर्जुन पूर्वकालके
देवता महात्मा नरनारायण हैं, इस बातको दुर्योधन नहीं जानता
था ॥ ४१ ॥ वे दोनों एक रूपही हैं, परन्तु मृत्युलोकके मनुष्य
जनको दो रूपमें देखते हैं इन दोनोंका कोई मनसेभी पराजय नहीं
करसकता, यह दोनों कीर्त्तिमान् पुरुष यदि चाहें तो इस सेनाका
संहार करडालें परन्तु मनुष्यके रूपमें प्रकट हो रहे हैं इसलिये
ऐसा करना नहीं चाहते, हे तात ! महात्मा भीष्मकी मृत्यु और
महात्मा द्रोणका जो संहार हुआ है यह युगके उलट फेरको
दिखलाता है और मनुष्योंको मोहमें डालता है, कोई भी मनुष्य
ब्रह्मचर्य वेदपाठ, यज्ञ यागकी क्रिया अथवा अस्त्रसे मृत्युको पीछे
को नहीं लौटा सकता भीष्म और द्रोण सब लोकोंके मान्य, वीर,
अस्त्रविद्यामें चतुर और युद्धमें दुर्मद थे, उनके मरणको सुनकर मैं
क्यों जीरहा हूँ ? हम युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मीको देखकर डाह किया
करते थे परन्तु भीष्म और द्रोणके मरणसे पराधीन हुए हमको

अथ तामनुजानीषो भीष्मद्रोणवधेन ह । मत्कृते चाप्यनुप्राप्तः कुरु-
णामेव संक्षयः ॥ ४७ ॥ पञ्चानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणा-
न्युताः । अनन्तमिदमैश्वर्यं लोके प्राप्तो युधिष्ठिरः ॥ ४८ ॥ यस्य
कोपान्महात्मानो भीष्मद्रोणौ निपातितौ । प्राप्तः प्रकृतितो धर्मो न
धर्मो मामकान् प्रति ॥ ४९ ॥ क्रूरः सर्वविनाशाय फालोसौ नाति-
वर्त्तते । अन्यथा चिन्तिता ह्यर्था नरैस्तात मनस्विभिः ॥ ५० ॥
अन्यथैव प्रपद्यन्ते दैरादिति परिनिर्मम । तस्मादपरिदार्येण सम्प्राप्ते
कृच्छ्र उत्तमे । अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथाभूतं प्रचक्ष्व मे ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि

धृतराष्ट्रविलापे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच । हर्त ते कथयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदृशिवान् ।

बह लक्ष्मी पांडवोंके अर्पण करना आवश्यक होरही है, निःसन्देह
कौरवोंका नाश मेरे कारणसेही हुआ है ॥ ४२-४७ ॥ हे सूत !
जब मनुष्योंका काल आता है तब तिनके भी उनका नाश करनेके
लिये वज्रवनजाते हैं, जिसके क्रोधसे महात्मा भीष्म और द्रोण
का नाश हुआ है उस राजा युधिष्ठिरने लोकमें अनन्त ऐश्वर्य
पाया है और धर्मका पालनभी स्वाभाविक रीतिसे उसनेही किया
है, इधर मेरे पुत्रोंमें अधर्मकी लता फैली है, इसलिये क्रूरकाल
हम सबोंका नाश करनेके लिये हमारे पास आपहुँचा है। हे तात !
मेरी समझमें समझदार पुरुष स्वयं कुछ और ही विचार करते
हैं परन्तु दैवयोगसे उसका फल कुछ और ही होता है ४८-५०
इसकारणही जिसको कोई टालही नहीं सकता था और जिसका
पार कोई पाहा नहीं सकता था ऐसी यह महादुःखदायक और
अचिन्तनीय घटना होगई है, अब आगेको रणमें जिसप्रकार जोर
वात हुई हो वह तू सुझेसुना ॥ ५१ ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ११
संजय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! मैंने सब प्रत्यक्ष देखा है

यथा सन्यपतद् द्रोणः मुदितः पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥ सेनापतित्वं सम्पाप्ता भारद्वाजो महारथः । मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ यत् कौरवाणामृषभादापगेयादनन्तरम् । सैन्यपत्येन यद्राजन्मामय कृतवानसि ॥ ३ ॥ सहर्षां कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि भारत । करोमि कामं कन्तेव मृष्टणीष्व यमिच्छसि ॥ ४ ॥ ततो दुर्योधनो राजा कर्णदुःशासनादिभिः । समन्व्योवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम् ॥ ५ ॥ ददासि चेद्वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम् । गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीपमिहानय ॥ ६ ॥ ततः कुरुणाचार्यः श्रुत्वा पुत्रस्य ते वचः । सेनां प्रहर्षयन् सर्वामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ धन्यः कुन्तीसुतो राजन् यस्य ग्रहणमिच्छसि ।

और मैं आपको युद्धकी सब कथा सुनाऊँगा, पांडव और सृजयों के महारथसे रणमें द्रोणाचार्य कैसे मारे गये यह कथा भी कहूँगा ॥ १ ॥ महारथी द्रोणाचार्यने सेनापतिका पद स्वीकार करलेनेपर सब सेनाके बीचमें तुम्हारे पुत्रसे कहा कि—॥ २ ॥ हे राजन् ! कौरवों के पितामह समुद्रगामिनी गंगाके पुत्र भीष्मजीके बाद मुझे सेनापतिका पद दिया गया है इसलिये मैं भी अपने अधिकारके अनुसार काम करके तुम्हें संतुष्ट करूँगा, वता अबमें तेरी कौनसी इच्छा पूरी करूँ, जो इच्छा हो वह वर माँगले ॥ ३ ॥ ४ ॥ इस पर राजा दुर्योधनने कर्ण दुःशासन आदि राजाओंके साथ खूब विचार करके विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ और किसीसे न दबने वाले आचार्यसे कहा कि—यदि आप मुझे वरदेना चाहते हैं तो महारथी युधिष्ठिरको मेरे पास जीताहुआ पकड़कर लेआइये ५-६-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-३२-३३-३४-३५-३६-३७-३८-३९-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६-४७-४८-४९-५०-५१-५२-५३-५४-५५-५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५-६६-६७-६८-६९-७०-७१-७२-७३-७४-७५-७६-७७-७८-७९-८०-८१-८२-८३-८४-८५-८६-८७-८८-८९-९०-९१-९२-९३-९४-९५-९६-९७-९८-९९-१००-१०१-१०२-१०३-१०४-१०५-१०६-१०७-१०८-१०९-११०-१११-११२-११३-११४-११५-११६-११७-११८-११९-१२०-१२१-१२२-१२३-१२४-१२५-१२६-१२७-१२८-१२९-१३०-१३१-१३२-१३३-१३४-१३५-१३६-१३७-१३८-१३९-१४०-१४१-१४२-१४३-१४४-१४५-१४६-१४७-१४८-१४९-१५०-१५१-१५२-१५३-१५४-१५५-१५६-१५७-१५८-१५९-१६०-१६१-१६२-१६३-१६४-१६५-१६६-१६७-१६८-१६९-१७०-१७१-१७२-१७३-१७४-१७५-१७६-१७७-१७८-१७९-१८०-१८१-१८२-१८३-१८४-१८५-१८६-१८७-१८८-१८९-१९०-१९१-१९२-१९३-१९४-१९५-१९६-१९७-१९८-१९९-२००-२०१-२०२-२०३-२०४-२०५-२०६-२०७-२०८-२०९-२१०-२११-२१२-२१३-२१४-२१५-२१६-२१७-२१८-२१९-२२०-२२१-२२२-२२३-२२४-२२५-२२६-२२७-२२८-२२९-२३०-२३१-२३२-२३३-२३४-२३५-२३६-२३७-२३८-२३९-२४०-२४१-२४२-२४३-२४४-२४५-२४६-२४७-२४८-२४९-२५०-२५१-२५२-२५३-२५४-२५५-२५६-२५७-२५८-२५९-२६०-२६१-२६२-२६३-२६४-२६५-२६६-२६७-२६८-२६९-२७०-२७१-२७२-२७३-२७४-२७५-२७६-२७७-२७८-२७९-२८०-२८१-२८२-२८३-२८४-२८५-२८६-२८७-२८८-२८९-२९०-२९१-२९२-२९३-२९४-२९५-२९६-२९७-२९८-२९९-३००-३०१-३०२-३०३-३०४-३०५-३०६-३०७-३०८-३०९-३१०-३११-३१२-३१३-३१४-३१५-३१६-३१७-३१८-३१९-३२०-३२१-३२२-३२३-३२४-३२५-३२६-३२७-३२८-३२९-३३०-३३१-३३२-३३३-३३४-३३५-३३६-३३७-३३८-३३९-३४०-३४१-३४२-३४३-३४४-३४५-३४६-३४७-३४८-३४९-३५०-३५१-३५२-३५३-३५४-३५५-३५६-३५७-३५८-३५९-३६०-३६१-३६२-३६३-३६४-३६५-३६६-३६७-३६८-३६९-३७०-३७१-३७२-३७३-३७४-३७५-३७६-३७७-३७८-३७९-३८०-३८१-३८२-३८३-३८४-३८५-३८६-३८७-३८८-३८९-३९०-३९१-३९२-३९३-३९४-३९५-३९६-३९७-३९८-३९९-४००-४०१-४०२-४०३-४०४-४०५-४०६-४०७-४०८-४०९-४१०-४११-४१२-४१३-४१४-४१५-४१६-४१७-४१८-४१९-४२०-४२१-४२२-४२३-४२४-४२५-४२६-४२७-४२८-४२९-४३०-४३१-४३२-४३३-४३४-४३५-४३६-४३७-४३८-४३९-४४०-४४१-४४२-४४३-४४४-४४५-४४६-४४७-४४८-४४९-४५०-४५१-४५२-४५३-४५४-४५५-४५६-४५७-४५८-४५९-४६०-४६१-४६२-४६३-४६४-४६५-४६६-४६७-४६८-४६९-४७०-४७१-४७२-४७३-४७४-४७५-४७६-४७७-४७८-४७९-४८०-४८१-४८२-४८३-४८४-४८५-४८६-४८७-४८८-४८९-४९०-४९१-४९२-४९३-४९४-४९५-४९६-४९७-४९८-४९९-५००-५०१-५०२-५०३-५०४-५०५-५०६-५०७-५०८-५०९-५१०-५११-५१२-५१३-५१४-५१५-५१६-५१७-५१८-५१९-५२०-५२१-५२२-५२३-५२४-५२५-५२६-५२७-५२८-५२९-५३०-५३१-५३२-५३३-५३४-५३५-५३६-५३७-५३८-५३९-५४०-५४१-५४२-५४३-५४४-५४५-५४६-५४७-५४८-५४९-५५०-५५१-५५२-५५३-५५४-५५५-५५६-५५७-५५८-५५९-५६०-५६१-५६२-५६३-५६४-५६५-५६६-५६७-५६८-५६९-५७०-५७१-५७२-५७३-५७४-५७५-५७६-५७७-५७८-५७९-५८०-५८१-५८२-५८३-५८४-५८५-५८६-५८७-५८८-५८९-५९०-५९१-५९२-५९३-५९४-५९५-५९६-५९७-५९८-५९९-६००-६०१-६०२-६०३-६०४-६०५-६०६-६०७-६०८-६०९-६१०-६११-६१२-६१३-६१४-६१५-६१६-६१७-६१८-६१९-६२०-६२१-६२२-६२३-६२४-६२५-६२६-६२७-६२८-६२९-६३०-६३१-६३२-६३३-६३४-६३५-६३६-६३७-६३८-६३९-६४०-६४१-६४२-६४३-६४४-६४५-६४६-६४७-६४८-६४९-६५०-६५१-६५२-६५३-६५४-६५५-६५६-६५७-६५८-६५९-६६०-६६१-६६२-६६३-६६४-६६५-६६६-६६७-६६८-६६९-६७०-६७१-६७२-६७३-६७४-६७५-६७६-६७७-६७८-६७९-६८०-६८१-६८२-६८३-६८४-६८५-६८६-६८७-६८८-६८९-६९०-६९१-६९२-६९३-६९४-६९५-६९६-६९७-६९८-६९९-७००-७०१-७०२-७०३-७०४-७०५-७०६-७०७-७०८-७०९-७१०-७११-७१२-७१३-७१४-७१५-७१६-७१७-७१८-७१९-७२०-७२१-७२२-७२३-७२४-७२५-७२६-७२७-७२८-७२९-७३०-७३१-७३२-७३३-७३४-७३५-७३६-७३७-७३८-७३९-७४०-७४१-७४२-७४३-७४४-७४५-७४६-७४७-७४८-७४९-७५०-७५१-७५२-७५३-७५४-७५५-७५६-७५७-७५८-७५९-७६०-७६१-७६२-७६३-७६४-७६५-७६६-७६७-७६८-७६९-७७०-७७१-७७२-७७३-७७४-७७५-७७६-७७७-७७८-७७९-७८०-७८१-७८२-७८३-७८४-७८५-७८६-७८७-७८८-७८९-७९०-७९१-७९२-७९३-७९४-७९५-७९६-७९७-७९८-७९९-८००-८०१-८०२-८०३-८०४-८०५-८०६-८०७-८०८-८०९-८१०-८११-८१२-८१३-८१४-८१५-८१६-८१७-८१८-८१९-८२०-८२१-८२२-८२३-८२४-८२५-८२६-८२७-८२८-८२९-८३०-८३१-८३२-८३३-८३४-८३५-८३६-८३७-८३८-८३९-८४०-८४१-८४२-८४३-८४४-८४५-८४६-८४७-८४८-८४९-८५०-८५१-८५२-८५३-८५४-८५५-८५६-८५७-८५८-८५९-८६०-८६१-८६२-८६३-८६४-८६५-८६६-८६७-८६८-८६९-८७०-८७१-८७२-८७३-८७४-८७५-८७६-८७७-८७८-८७९-८८०-८८१-८८२-८८३-८८४-८८५-८८६-८८७-८८८-८८९-८९०-८९१-८९२-८९३-८९४-८९५-८९६-८९७-८९८-८९९-९००-९०१-९०२-९०३-९०४-९०५-९०६-९०७-९०८-९०९-९१०-९११-९१२-९१३-९१४-९१५-९१६-९१७-९१८-९१९-९२०-९२१-९२२-९२३-९२४-९२५-९२६-९२७-९२८-९२९-९३०-९३१-९३२-९३३-९३४-९३५-९३६-९३७-९३८-९३९-९४०-९४१-९४२-९४३-९४४-९४५-९४६-९४७-९४८-९४९-९५०-९५१-९५२-९५३-९५४-९५५-९५६-९५७-९५८-९५९-९६०-९६१-९६२-९६३-९६४-९६५-९६६-९६७-९६८-९६९-९७०-९७१-९७२-९७३-९७४-९७५-९७६-९७७-९७८-९७९-९८०-९८१-९८२-९८३-९८४-९८५-९८६-९८७-९८८-९८९-९९०-९९१-९९२-९९३-९९४-९९५-९९६-९९७-९९८-९९९-१०००

न वधार्थं सुदुर्धर्षं वरमद्य प्रयाचसे ॥ ८ ॥ किमथञ्च नरव्याघ्र
 न वधं तस्य काँक्षसे । नाशंससि क्रियामेतां मत्तो दुर्योधन ध्रुवम् ६
 आहांस्वित्थर्मराजस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते । यदीच्छसि त्वं जीवन्तं
 कुलं रक्षसि चात्मनः ॥ १० ॥ अथवा भरतश्रेष्ठ निजित्य युधि
 पाण्डवान् । राज्यं सम्पन्नि दत्त्वा च सौभ्रात्रं कर्तुमिच्छसि ११
 धन्यः कुन्तीसुतो राजा सुजातञ्चास्य धीमतः । अजातशत्रुता सत्या
 तस्य यत् स्निह्यते भवान् ॥ १२ ॥ द्रोणेन चैवमुक्तस्य तव पुत्रस्य
 भारत । सहसा निःसृतो भावो योस्य नित्यं हृदि स्थितः ॥ १३ ॥
 नाकारो भूदित्तुं शक्यो बृहस्पतिसमैरपि । तस्मात्तव सुतो राजन्
 ग्रहणो वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥ वधे कुन्तीपुत्रस्याजो नाचार्यं विजयो
 मम । हते युधिष्ठिरे पार्था हयुः सर्वान् हि नो ध्रुवम् ॥ १५ ॥

भाग्यवान् हैं ॥ ८ ॥ हे दुर्योधन ! तू युधिष्ठिरको मेरे हाथसे मरवा
 डालना क्यों नहीं चाहता ? अथवा जब उनका कोई शत्रुही नहीं
 है तो फिर उनको क्यों मारना चाहिये ? तू राजा युधिष्ठिरको
 जीवित पकड़कर कैद करके रखना चाहता है, यह तू अपने कुल
 की रक्षा कर रहा है ॥ ९ ॥ १० ॥ अथवा हे भरतवंशमें श्रेष्ठ
 राजन् ! तू युद्धमें पांडवोंको जीतनेके अनन्तर युधिष्ठिरको राज
 देकर भ्रातृप्रेम दिखाना चाहता है क्या ? ॥ ११ ॥ तेरा धर्मराज
 के ऊपर स्नेह है, इसलिये कुन्तीपुत्र धर्मराज भाग्यशाली है उस
 का जन्म भी कृतार्थ है तथा उसका अजातशत्रु नाम भी सत्यही
 है ॥ १२ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारे पुत्रसे द्रोणाचार्यने ज्योंही
 ऐसा कहा कि—उसके हृदयमें नित्य रहनेवाला भाव एकायकी
 बाहर निकल पड़ा ॥ १३ ॥ बृहस्पति भी अपने हृदयके भावको
 नहीं छिपासकता इसलिये हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र प्रसन्न होकर
 बोले उठा कि—॥ १४ ॥ हे आचार्य ! रणमें कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको
 मार डालनेसे मेरी विजय नहीं होसकती ! यदि युधिष्ठिरको मार

न च शक्या रणे सर्वे निहन्तुमपरैरपि । य एव तेषां शेषः स्यात्
 स एवास्मान्न शेषयेत् ॥ १६ ॥ सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्युतेन
 निर्जिते । पुनर्यास्यन्त्यरण्याय पाण्डवास्तमनुव्रताः ॥ १७ ॥ सोयं
 मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति । अतो न वधमिच्छामि
 धर्मराजस्य कर्हिचित् ॥ १८ ॥ तस्य जिह्वमभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽ-
 र्यतत्त्ववित् । तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ सञ्चिन्त्य बुद्धिमान् ॥ १९ ॥
 द्रोण उवाच । न चेद्युधिष्ठिरं वीरं पालयत्यर्जुनो युधि । मन्यस्व
 पाण्डवश्रेष्ठमानीतं वशमात्मनः ॥ २० ॥ न हि शक्यो रणे पार्थः
 सेन्द्रैर्वासुरैरपि । प्रत्युद्यातुमतस्तात नैतदामर्ष्याम्यहम् ॥ २१ ॥
 असंशयं स मे शिष्यो मत्पूर्वश्चास्त्रकर्मणि । तरुणः सुकृतैर्युक्त

दिया जायगा तो अर्जुन हम सर्वोको अवश्यही मार डालेगा १५
 रणमें देवताभी पांडवोंको नहीं मार सकते, ऐसे पांडवोंमेंसे जो
 पुरुषभी जीवित रहजायगा, वह हममेंसे किसीको भी जीता नहीं
 छोड़ेगा ॥ १६ ॥ राजा युधिष्ठिर सत्यप्रतिज्ञावाले हैं, उनको
 यहाँ लाकर फिर जुआ खिलाकर जीतलूँगा, तब उनकी आज्ञा
 में चलनेवाले पांडव फिर युधिष्ठिरके साथ वनमें चलेजायँगे १७
 इसप्रकार चिरकाल तक स्पष्टरीतिसे मेरी विजय होजायगी, इस
 कारणही मैं किसीप्रकारभी धर्मराजको मार डालना नहीं चाहता १८
 व्यवहारकुशल और बुद्धिमान् द्रोण, दुर्योधनके कपटभरे अभि-
 प्रायको जानकर विचारपूर्वक दुर्योधनको विघ्नभरा वरदान देते
 हुए बोले ॥ १९ ॥ द्रोणाचार्यने कहा, कि-यदि वीर अर्जुन
 युधिष्ठिरको नहीं बचावेगा तो तू पांडव-श्रेष्ठ युधिष्ठिरको
 अपने वशमें आयादी समझ ॥ २० ॥ हे तात ! देवताओं सहित
 इन्द्र और असुर भी अर्जुनके ऊपर चढ़ायी नहीं कर सकते यह
 काम करनेका साहस मुझमें नहीं है ॥ २१ ॥ निःसन्देह अर्जुन
 मेरा शिष्य और मैं उसका गुरु हूँ, परन्तु वह अवस्थामें तरुण,

एकायनगतश्च ह ॥ २२ ॥ अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयः स सम-
 वाप्तवान् । अमर्षितश्च ते राजंस्ततो नामर्पयाम्यहम् ॥ २३ ॥
 स चापक्रम्यतां युद्धाद्येनोपायेन शक्यते । अपनीते ततः पार्थे
 धर्मराजो जितस्त्वया ॥ २४ ॥ ग्रहणे हि जयस्तस्य न वधे पुरु-
 षर्षभ । एतेन चाप्युपायेन ग्रहणं समुपैष्यसि ॥ २५ ॥ अहं गृहीत्वा
 राजानं सत्यधर्मपरायणम् । आनयिष्यामि ते राजन् वशमद्य न
 संशयः ॥ २६ ॥ यदि स्थास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेघतः । अप-
 नीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ॥ २७ ॥ फाल्गुनस्य समीपे
 तु न हि शक्यो युधिष्ठिरः । ग्रहीतुं समरे राजन् सेन्द्रैरपि सुरा-
 सुरैः ॥ २८ ॥ सञ्जय उवाच । सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन
 निग्रहे । गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुवालिशाः ॥ २९ ॥ पांडवे-

पुण्यात्मा और जीतना या मरना इन दोनोंमेंसे एक बातका हट
 निश्चय कियेहुए है ॥ २२ ॥ फिर उसने इन्द्रसे और शिवजीसे
 पूरी अस्त्रविद्या सीखी है तथा तेरे ऊपर क्रोधमें भराहुआ है,
 अतः हे राजन् ! (उसके सामने) यह काम मुझसे नहीं होस-
 केगा ॥ २३ ॥ अतः जिस उपायसे भी होसके उसको घुट्टसे दूरले
 जाना चाहिये, अर्जुनके हटजाने पर तू युधिष्ठिरको जीतसकेगा ॥ २४
 हे पुरुषसत्तम ! युधिष्ठिरके कैद होजानेसेही जय है मारेजानेमें
 नहीं, और इस उपायसे तू उनको पकड़सकेगा ॥ २५ ॥ हे राजन् !
 आज मैं सत्य और धर्ममें तत्पर रहनेवाले राजा युधिष्ठिरको पकड़
 कर निःसन्देह तुम्हारे अधीन करदूंगा ॥ २६ ॥ कुन्तीपुत्र नर-
 व्याघ्र अर्जुनको हटाकर दूर लेजानेपर यदि युधिष्ठिर संग्राममें क्षण
 भरको भी मेरे पास खड़े रहेंगे तो मैं उन्हें पकड़लूंगा ॥ २७ ॥ अर्जु-
 नके समीप होनेपर हे राजन् ! युधिष्ठिरको देवता और दानवों सहित
 इन्द्रभी समरमें नहीं पकड़सकते ॥ २८ ॥ सञ्जयने कहा, कि-द्रोणा-
 चार्यके राजा युधिष्ठिरको कैद करनेके लिये इसप्रकार विघ्नधरी

येषु सापेक्षं द्रोणं जानाति ते सुतः । ततः प्रतिज्ञास्थैर्यार्थं स
मन्त्रो बहुलीकृतः ॥ ३० ॥ ततो दुर्योधनेनापि ग्रहणं पाण्ड-
वस्य तत् । सैन्यस्थानेषु सर्वेषु सुघोषितपरिन्दम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि

द्रोणप्रतिज्ञायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सञ्जय उवाच । सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे । ततस्ते
सैनिकाः श्रुत्वा तं युधिष्ठिरनिग्रहम् ॥ १ ॥ सिंहनादरवांश्चक्रुर्वा-
हुशब्दांश्च कृत्स्नशः । तच्च सर्वं यथान्यायं धर्मराजेन भारत ॥ २ ॥
आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाजचिकीर्षितम् । ततः सर्वान् समानान्य-
आतनन्यांश्च सर्वशः ॥ ३ ॥ अब्रवीद् धर्मराजस्तु धनञ्जयमिदं वचः ।
श्रुतन्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याद्य चिकीर्षितम् ॥ ४ ॥ यथा तन्न
भवेत् सत्यं तथा नीतिर्विधीयताम् । सान्तरं हि प्रतिज्ञातं द्रोणे-

प्रतिज्ञा करनेपर, तुम्हारे मूर्ख पुत्र राजा युधिष्ठिरको पकड़ाहुआ
ही समझने लगे ॥ २६ ॥ तुम्हारा पुत्र द्रोणाचार्यको पाँडवों पर
प्रीति रखनेवाले जानता था अतः, उसने द्रोण प्रतिज्ञा पर स्थिर
रहै इसलिये बहुतसे मनुष्योंको इस प्रतिज्ञाका समाचार दे दिया ३०
हे शत्रुदमन ! तदनन्तर दुर्योधनने, युधिष्ठिरके द्रोणाचार्य द्वारा
पकड़े जानेकी बात सेनाओंके सब लश्करोंमें प्रकट करादी ॥ ३१ ॥
बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! द्रोणने अमुक नियमके
अनुसार राजा युधिष्ठिरको कैद करनेकी प्रतिज्ञा की है, यह सुन
कर सेनाके योधा सिंहकी समान गर्जना करनेलगे और बारस्ताल
ठोकनेलगे, हे भारत ! राजा युधिष्ठिरने द्रोणकी इस प्रतिज्ञाको
बिरबासपात्र दूतोंसे सुनकर सब भाइयों और राजाओंको बुल-
वाया और ॥ १-३ ॥ धर्मराज अर्जुनसे यह कहनेलगे, कि-हे
नरव्याघ्र ! तूने द्रोणकी आजकी प्रतिज्ञाको सुना ? ॥ ४ ॥ शत्र-

नामित्रकर्पिणा ॥ ५ ॥ तच्चान्तरं महेष्वास त्वयि तेन समा-
हितम् । स त्वमद्य मग्नावाहो युध्यस्व मदनन्तरम् ॥ ६ ॥ यथा दुर्यो-
धनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात् । अर्जुन उवाच । यथा मे न वधः
कार्यश्चाचार्यस्य कदाचन ॥ ७ ॥ तथा तव परित्यागो न मे राज-
श्चिकीर्षितः । अप्येवं पाण्डव प्राणानुत्सृजेयमहं युधि ॥ ८ ॥
प्रनीपो नाहमाचार्ये भवेयं वै कथञ्चन । त्वां निगृह्याहवे राज्यं धार्त-
राष्ट्रो यमिच्छति ६ न स तं जीवलोकेस्मिन् कामं प्राप्येत् कथञ्चन
प्रपतेत् श्रीः सनत्तत्रा पृथिवी शकजी भवेत् ॥ १० ॥ न त्वां द्रोणो
निगृह्णोयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम् । यदि तस्य रणे साह्यं कुरुते
वज्रभृत् स्वयम् ॥ ११ ॥ विष्णुर्वा सहितो देवैर्न त्वां प्राप्स्यत्यसौ
मृधे । मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ द्रोणा-

पीढ़क द्रोणने अन्तराय भरी प्रतिज्ञाकी है, अतः अब ऐसी नीतिसे
चलना चाहिये जिससे उनकी प्रतिज्ञा सत्य न हो ॥ ५ ॥ वह अन्त-
राय (बहाना) द्रोणाचार्यने तेरे ऊपर रख छोड़ा है, अतः हे
महाशुन ! आज तू मेरे पास खड़ा होकर युद्ध कर ॥ ६ ॥ जिससे
कि-दुर्योधन अपनी अभिलाषाको द्रोणाचार्यके द्वारा पूरी न कर
सके, अर्जुनने उत्तर दिया कि-मैं जैसे किसी प्रकारभी द्रोणका
वध करना नहीं चाहता, तैसेही हे राजन ! मुझे आपको छोड़कर
जानेकी इच्छाभी नहीं है, हे पाण्डव ! ऐसा करनेमें चाहे मुझे प्राण
भी छोड़ने पड़ें ॥ ७ ॥ ८ ॥ मैं आचार्यके विरुद्ध किसी प्रकारभी
नहीं होऊँगा और जो दुर्योधन युद्धमें आपको कैद करना चाहता
है, यह उसकी कामना भी कभी पूरी नहीं होगी, चाहे नक्षत्रों
सहित आकाश गिरपड़े और चाहे पृथिवीके टुकड़े हो जायें ९-१०
तथापि जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक द्रोणाचार्य आपको कैद नहीं
करसकते चाहे युद्धमें स्वयं इन्द्रभी आकर उनकी सहायता करे ११
अथवा विष्णुभी देवताओंके सहित आकर द्रोणाचार्यकी सहायता

दस्त्रभृतां श्रेष्ठात् सर्वशस्त्रभृतामपि । अन्यच्च ब्रूयां राजेन्द्र प्रतिज्ञां
मम निश्चलाम् ॥ १३ ॥ न स्मराम्यनृतन्तावनं न स्मरामि परा-
जयम् । न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किञ्चिदप्यनृतं कृतम् ॥ १४ ॥
सञ्जय उवाच । ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदाङ्गाश्चानकैः सह । प्रावा-
द्यन्त महाराज पाण्डवानां निवेशने ॥ १५ ॥ सिंहनादश्च सञ्जज्ञे
पाण्डवानां महात्मनाम् । धनुर्ज्यातलशब्दश्च गगनस्पृक् सुभै-
रवः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा शङ्खस्य निर्घोषं पाण्डवस्य महौजसः । त्वदी-
येष्वध्यनीकेषु वादित्राण्यभिजघ्निरे ॥ १७ ॥ ततो व्यूढान्यनीकानि
तव तेषां च भारत । शनैरुपेयुरन्योन्यं योध्यमानानि संयुगे ॥ १८ ॥
ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । पाण्डवानां कुरूणां च द्रोण-
पांचाल्ययोरपि ॥ १९ ॥ यत्तमानाः प्रयत्नेन द्रोणानीकविशातने ।

करें तो भी द्रोणचार्य आपको नहीं पकड़ सकेंगे, हे राजन् ! जब
तक मैं जीवित हूँ तब तक सब शस्त्रास्त्रधारियोंसे श्रेष्ठ द्रोणसे
आपको डरना नहीं चाहिये, अधिक क्या कहूँ तुम मेरी प्रतिज्ञा
को अटल जानना ॥ १२ ॥ १३ ॥ मुझ्में ऐसा स्मरण नहीं आता
कि मैंने कभी झूठ बोला हो अथवा पराजय पाई हो और इस
बातका भी मुझ्में स्मरण नहीं आता कि-कभी मैंने प्रतिज्ञा करके
उसको मिथ्या किया हो ॥ १४ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे महाराज !
तदनन्तर पाण्डवोंकी छावनीमें भी शंख भेरी मृदङ्ग और नगाड़े बजने
लगे ॥ १५ ॥ महात्मा पाण्डव सिंहनाद करने लगे, उनके धनुष
की टंकारका शब्द और हाथकी तालियोंका भयानक शब्द
आकाशमें टकराने लगा ॥ १६ ॥ महातेजस्वी पाण्डवोंकी छावनी
के शंखघोषको सुनकर तुम्हारी सेनाओंमें भी बाजें बजनेलगे ॥ १७ ॥
तदनन्तर हे भारत ! व्यूहरचनासे खड़ीहुई तुम्हारी और पाण्ड-
वोंकी सेनाएँ धीरे २ युद्धभूमि में पहुँकर लड़नेलगीं ॥ १८ ॥
तदनन्तर कौरव पाण्डवोंका तथा द्रोण और पांचालोंका रौंगटे खड़े

न शोकः सृज्या युद्धे तद्धि द्रोणेन पालितम् ॥ २० ॥ तथैव तत्र
पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिण । न शोकः पाण्डवों सेनां पाल्यमानां
किरीटिना ॥ २१ ॥ आस्तान्ते-स्तिमिते सेने रचयमाणे परस्परम् ।
सम्प्रसृप्ते यथा नक्तं वनराजी सुपुष्पिते ॥ २२ ॥ ततो रुक्मरथो
राजन् अर्कणेत्र विराजता । वरूथिनो विनिष्पत्य व्यचरत् पृत-
नामुत्वे ॥ २३ ॥ तमुद्यतं रथेनैकपाशुकारिणमाहवे । अनेकमिव
सन्त्रासान्मेनिरे पाण्डुसृजयाः ॥ २४ ॥ तेन मुक्ताः शरा घोरा
विचेरुः सर्वतो दिशम् । त्रासयन्तो महाराज पाण्डवेयस्य बाहिनीं १
मध्यंदिनमनुपाप्तो गभस्तिशरसंवृतः । यथा दृश्येत घर्माशुस्तथा द्रोणो-
प्यदृश्यत ॥ २६ ॥ न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छ्वनोति भारत ।

करनेवाला घोर युद्ध होने लगा ॥ १६ ॥ सृञ्जय द्रोणकी सेनाको
नष्ट करनेके लिये उत्कट उद्योग करते थे परन्तु द्रोण उसके रक्षक
थे, अतः सृञ्जय उसका रणमें नाश न करसके २० ऐसेही तुम्हारे
पुत्रके महारथी योधा इच्छा करने पर भी अर्जुनसे रक्षित पाँड-
वोंकी सेनाको नष्ट न करसके ॥ २१ ॥ अपनी २ रक्षा करती,
रुकीहुई वे दोनों सेनाएँ पुष्पोंसे सुशोभित और पत्रोंको रात्रिमें
संकुचित करनेवालीं दो वनराजियोंके स्थिर रहनेकी समान स्थिर
दीखनेलगीं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर सुवर्णरथी महात्मा
द्रोण, सूर्यकी समान दमकते रथमें विराजमान होकर रणभूमिके
मुहाने पर घूमने लगे ॥ २३ ॥ रथमें अकेले बैठे बाणोंको फुर्तीसे
फेंकतेहुए द्रोणको पाँडव ! और सृञ्जय धवड़ाकर अनेक रूप
मानने लगे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! द्रोणके छोड़ेहुए भयंकर बाण
पाँडवोंकी सेनाको सब दिशाओंमें त्रास देतेहुए घूमनेलगे ॥ २५ ॥
जैसे मध्याह्नकालमें सहस्र किंरणोंसे घिरेहुए सूर्य दीखते हैं तैसेही
तेजस्वी द्रोण दीखने लगे ॥ २६ ॥ हे भारत ! पाँडवोंकी सेना
मेंसे कोईभी द्रोणाचार्यकी ओरको न देखसका, जैसे समरमें क्रुद्ध

धीक्षितुं समरे क्रुद्धं महेंद्रमिव दानवाः ॥ २७ ॥ मोहयित्वा ततः
सैन्यं भारद्वाजः प्रतापवान् । धृष्टद्युम्नबलं तूर्णं व्यधमन्निशतेः
शरैः ॥ २८ ॥ स दिशः सर्वतो रुध्वा सद्रत्य स्वमजिह्वगैः । पार्षतो
यत्र तत्रैव ममूदे पाण्डुवाहिनीम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अर्जुनकृत-
युधिष्ठिराश्वासने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सृञ्जय उवाच । ततः स पाण्डुवानीके जनयन्सुमहद् भयम् ।
व्यचरत् पृतनां द्रोणो दहनं कक्षमिवानलः ॥ १ ॥ निर्दहन्तमनी-
कानि साक्षादग्निमिवोत्थितम् । दृष्ट्वा रुक्मरथं क्रुद्धं समकम्पन्त
सृञ्जयाः ॥ २ ॥ सततं कृष्यतः संख्ये धनुषो स्वाशुकारिणः ।
व्याघ्रोपं शुश्रुवेत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ ३ ॥ रथिनः सादि-
नश्चैव नागानश्चान् पदातिनः । रौद्रा हस्तवता युक्ताः समृद्धन्ति
स्म सायकाः ॥ ४ ॥ नानद्यमानः पर्जन्यः प्रवृद्धः शुचिसंक्षये ।

हुए इन्द्रको दानव नहीं देख सकते ॥ २७ ॥ तदनन्तर प्रतापी
भारद्वाज पांडवोंकी सेनाको मूर्छित करके, शीघ्रही तीक्ष्ण बाणों
से धृष्टद्युम्नकी सेनाको बीधनेलगे ॥ २८ ॥ वह सीधे जानेवाले
बाणोंसे सब दिशाओंको ढककर जहाँ धृष्टद्युम्न खड़ा था वहाँ
पांडवोंकी सेनाको मसलने लगे ॥ २९ ॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त
सृञ्जयने कहा, कि—तदनन्तर वह द्रोणाचार्य, घासको जलाने
वाले अग्निकी समान पांडवोंकी सेनामें भय उपजातेहुए घूमने
लगे ॥ ३० ॥ साक्षात् अग्निकी समान सोनेके रथमें बैठकर
सेनाओंको भस्म करतेहुए—द्रोणाचार्यको देखकर सृञ्जय बड़ी
जोरसे काँप उठे ॥ २ ॥ जब फुर्तीले द्रोणाचार्य युद्धमें निरन्तर
धनुषको, खेंच रहे थे उस समय उनकी प्रत्यश्वाका शब्द वज्रकी
ध्वनिकी समान सुनाई देता था ॥ ३ ॥ द्रोणके छोड़े हुए भय-
ङ्कर बाण रथी, घुड़सवार, हाथ घोड़े, और पैदलोंका संहार

अश्मवर्षमिवावर्षत् परेपापावहज्जयम् ॥ ५ ॥ विचरन् स तदा
 राजन् सेनां सङ्क्षोभयन् प्रभुः । वर्धयामास सन्त्रासं शात्रवाणा-
 ममालुपम् ॥ ६ ॥ तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् । अम-
 द्रथाम्बुदे चास्मिन् दृश्यते स्म पुन पुनः ॥ ७ ॥ स वीरः सत्य-
 वान् प्राज्ञो धर्मनित्यः सदा पुनः । युगान्तकालवद् घोरां रौद्रां
 प्रावर्त्तयन्नदीम् ॥ ८ ॥ अपर्षवेगप्रभवां क्रव्यादगणसङ्कुलाम् ।
 बलौघैः सर्वतः पूर्णां ध्वजवृत्तापहारिणीम् ॥ ९ ॥ शोणितोदां
 रथावर्त्तां हस्त्यश्वकुतरोधसम् । कवचोद्भुपसंयुक्तां मांसपङ्क्तसमाकु-
 लाम् ॥ १० ॥ मेदामज्जास्थिसिकतामुष्णीपचयफेनिलाम् ।
 संग्रामजलदापूर्णां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ॥ ११ ॥ नरनागाश्वक-
 लिलां शरवेगौघवाहिनीम् । शरीरदारुसंघट्टां रथकच्छसङ्कु-

करनेलगे ॥ ४ ॥ ग्रीष्मके अनन्तर घिराहुआ और गर्जता हुआ
 मेघ जैसे ओलोंको वर्षाता है तैसे ही द्रोणाचार्य बाणोंकी वर्षा
 से शत्रुओंको भयभीत करने लगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! उस समय
 रणमें घूमते हुए द्रोणाचार्यने शत्रुकी सेनामें खलबली डालकर
 उनको अतीव क्रुद्ध कर दिया ॥ ६ ॥ सुवर्णसे मढा हुआ उनका
 धनुष मेघोंमें बिजलीकी समान, रथरूप घनघटामें घूमता हुआ
 बार २ दीखनेलगा ॥ ७ ॥ सत्यवादी धर्मनिष्ठ, बुद्धिमान् और
 वीर द्रोणाचार्यने लड़ते २ प्रलयकालकी भयङ्कर नदीकी समान
 (रक्तकी) घोर नदी बहादी ॥ ८ ॥ यह नदी क्रोधके वेगसे
 उत्पन्न हुई, राक्षसोंसे भरीहुई, चागों और सेनाओंके पडावोंसे
 पूर्ण रक्तके जलवाली, ध्वजारूप वृत्तोंको उखाड़ने वाली, रथों
 के भँवर वाली, हाथी और घोड़ेरूप किनारोंवाली, कवचरूप
 नाँकावाली, मांसरूप कीचवाली, मज्जा मेदा और हड्डियोंकी
 रेतीवाली, पगडियोंके समूहरूप भागवाली, संग्रामरूपी मेघसे
 लल २ फेरती हुई, प्रासरूपी मत्स्योंसे भरपूर, मनुष्य हाथी, और
 घोड़ेरूप, सिंवारवाली, बाणोंके वेगरूप प्रवाहसे बहने वाली,

लाम् १२ उत्तर्गैः पङ्कजननीं निस्त्रिशङ्गसंकुलाम् । रथनाग-
हृदोपेतां नानाभरणभूषिताम् ॥ १३ ॥ महारथशतावर्त्ता भूमिरे-
णमिमालिनीम् महावीर्यवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् १४ शरीर-
शतसम्बाधां कङ्कगृध्रनिषेविताम् । महारथसहस्राणि नयन्तीं यमसा-
दनम् ॥ १५ ॥ शूरव्यालसमाकीर्णा प्राणिनाजिनिषेविताम् ।
खिन्नछत्रमदाहंसां मुकुटाण्डजसेविताम् ॥ १६ ॥ चक्रकूर्माङ्गदा-
नकां शरत्तुद्रभवाकुलाम् । चक्रगृध्रशृगालानां घोरसङ्घेनिषे-
विताम् ॥ १७ निहतान् प्राणिनः संख्ये द्रोणेन बलिना रणे ।
बहन्तीं पितृलोकाय शतशो राजसत्तम ॥ १८ ॥ शरीरशतसम्बाधां
केशशैवलशाद्वलाम् । नदीं पात्रर्त्तयद्वाजन् भीरुणां भयवर्द्धनीम् १९
तज्जयन्तमनीकानि तानि तानि महारथः । सर्वतोभ्यद्रवन्द्रोणं युधि-

शरीररूपी लकड़ियोंके समूहवाली, रथरूपी कछुओंसे संकुल, मस्तक-
रूपी कमलिनी वाली, तलवारोंरूपी नाकोंसे भयङ्कर, रथ और हाथी-
रूप इदवाली, बहुतसे आभूषणोंसे विभूषित, महारथीरूप सैकड़ों
भैरवोंवाली, पृथ्वीकी धूलरूप तरंगोंवाली, युद्धमें महाबलवानोंसे
सहजमें और डरपोकोंसे कठिनसे तरने योग्य, सैकड़ों शरीरसे
ढटी, गिद्ध और कौओंसे सेवित, सहस्रों महारथियोंको यमराजके
घर लेजाती हुई, भालेरूप सपोंसे ढकी हुई प्राणिरूप पक्षियोंसे
सेवित टूटे छत्ररूप बड़े २ हंसोंवाली, मुकुटरूप पक्षियोंसे सेवित
पहियेरूप कछुओंवाली और बाजुबन्दरूप नाकोंवाली, बाणोंरूप
मञ्जलियोंसे भरी, बगले गिज्ज और गीदड़के भयंकर समूहोंसे
सेवित, हे राजन् ! बलवान् द्रोणके हाथसे युद्धमें मारेगये असंख्य
प्राणियोंको पितृलोकको लेजानेवाली और सैकड़ों शत्रुओंसे व्याप्त
थी हे राजन् ! डरपोकोंके भयको बढ़ानेवाली ऐसी रुधिरकी नदी
द्रोणाचार्यने रणभूमिमें बहायी थी ॥ १६-१९ ॥ शत्रुकी सेनाओं
का तिरस्कार करनेवाले महारथी द्रोणाचार्यके ऊपर युधिष्ठिर

ष्ठिरपुगेगमाः २० तानभिद्रवतः शूरान् तावका दृढविक्रमाः । सर्वतः
प्रत्यगृह्णन्त तदभून्लोमहर्षणम् - १ शमायस्तु शकुनिः सहदेवं समा-
द्रवत् । सनियन्तु ध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः २२ तस्य माद्रीसुतः
केतुं धनुः सूतं हयानपि । नानि कुहुः शरैश्छित्त्वा पृथ्वा विव्याध
सौबलम् ॥ २३ ॥ सौबलस्तु गदां गृह्णन् चत्स्कन्द रथोत्तमात् । स तस्य
गदया राजन् रथात् सूतमपातयत् ॥ २४ ॥ ततस्तौ विरथा राजन्
गदाहस्तौ महाबलौ । धिक्कीडन् रणे शूरां समृज्ज्वा विव पर्वतौ २५
द्रोणः पांचालराजानं विध्वा दशभिराशुगैः । बहुभिस्तेन चाभ्यर्च्य-
स्तं विव्याध ततोऽधिकैः ॥ २६ ॥ विविंशतिं भीमसेनो विंश-
त्या निशितैः शरैः । विध्वा नाकम्पयद्दीरस्तदद्भुतमिवाभवत् २७
विविंशतिस्तु सहसा वपश्चकेतुशरासनम् । भीमं चक्रे मदराज ततः

आदि चारों ओर से टूट पड़े ॥ २० ॥ परन्तु दृढ़ पराक्रमी तुम्हारे
योधाओं ने चढ़कर आगे हुए उन योधाओं को चारों ओर से घेर
लिया, वह युद्ध रोमांच खड़े करने वाला हुआ था ॥ २१ ॥
कपटों का शाता शकुनि सहदेव पर झपटा और उसको सारथी,
ध्वजा और रथसहित बाणों से वींध डाला २२ माद्रीनन्दन सह-
देव ने अधिक क्रोध न करके उसके धनुष, सारथी ध्वजा और
उसको भी साठ बाणों से वींध डाला २३ तब शकुनि गदा लेकर
श्रेष्ठ रथपर से कूद पड़ा हे राजन् ! उसने गदा से उसके सारथी को
रथपर से गिरा दिया ॥ २४ ॥ तदनन्तर रथहीन हुए वे दोनों महा-
बली गदाधारी योद्धा रणमें खड़े होकर शिखरवाले दो पर्वतों की
समान लड़ने लगे ॥ २५ ॥ द्रोण ने द्वादश बाण मारे फिर
द्रुपद ने द्रोण के बहुत से बाण मारे, फिर द्रोण ने द्रुपद के उससे
भी अधिक बाण मारे ॥ २६ ॥ भीमसेन ने विविंशतिके बीस तेज
बाण मारे, परन्तु यह अचरज सा हुआ कि—वह वीर उससे काँपा
तक नहीं २७ हे राजन् ! विविंशति ने एकाएकी बाणों से भीमसेन को,

सैन्यान्पूजयन् ॥ २८ ॥ स तं न ममूषे वीरः शत्रोर्विक्रममाहवे ।
 ततोऽस्य गदया दान्तान् हयान् सर्वानपातयत् ॥ २९ ॥ हताश्वात्
 स रथाद्राजन् गृह्य चर्म महाबलः । अभ्ययाद्भीमसेनन्तु मत्तो मत्त-
 मिव द्विपम् ॥ ३० ॥ शन्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्त्रीयं प्रियमात्मनः ।
 विव्याध प्रहसन् बाणैर्लालयन् कोपयन्निव ॥ ३१ ॥ तस्याश्वा-
 नातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः । निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं दध्मौ
 प्रतापवान् ॥ ३२ ॥ धृष्टकेतुः कृपेणास्तान् खित्वा बहुविधाङ्क-
 रान् । कृपं विव्याध सप्तत्या लक्ष्य चास्याहर्तृत्रिभिः ॥ ३३ ॥
 तं कृपः शरवर्षेण महता सप्रवारयत् । विव्याध च रणे विभो धृष्ट-
 केतुममर्षणम् ॥ ३४ ॥ सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे ।

घोड़े, रथ और धनुषसे हीनकर दिया, यह देखकर सेनाएं धन्य २
 कहने लगीं २८ युद्धमें शत्रुका यह पराक्रम भीमसे सहा नहीं गया,
 इस कारण उसने गदासे उसके सब शिल्लित घोड़ोंको गिरा
 दिया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! मरे हुए घोड़ों वाले रथमेंसे कूदकर
 वह महाबली विविंशति ढाल लेकर, मत्तवाला हाथी जैसे मत्तवाले
 हाथीको मारनेके लिये जाता हो तैसेही भीमसेनके ऊपरको
 दौड़ा ॥ ३० ॥ वीरे शन्यने भी अपने प्यारे भाँजे नकुलको
 जैसे लाड़ करता हो इसप्रकार हँसते २ बाणोंसे वीधना आरम्भ
 कर दिया ॥ ३१ ॥ प्रतापी नकुलने शन्यके छत्र धनुष, घोड़े
 ध्वजा, सूत और धनुषको काटकर युद्धमें शंख बजाया ॥ ३२ ॥
 धृष्टकेतुने कृपाचार्यके छोड़े हुए अनेकों प्रकारके बाणोंको काट
 कर सत्तर बाणोंसे कृपाचार्यको वीध दिया और तीन बाणोंसे उन
 की ध्वजाके चिन्हको काट डाला ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण कृपाचार्यने
 भी क्रोधी धृष्टकेतुको बाणोंकी वर्षा करके हटाया और रणमें
 उसको बाणोंसे वीध डाला ॥ ३४ ॥ सात्यकिने कृतवर्माकी
 छातीमें बाण मारे, फिर हँसते हुए दूसरे सत्तर बाणोंसे वीध

विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः स्मयन्निव ॥ ३५ ॥ तं भोजः
सप्तसप्तत्या विध्वाशु निशितैः शरैः । नाकमयत शौनेयं शीघ्रो
वायुरिवाचलम् ॥ ३६ ॥ सेनापतिः सुशर्माण भृशं मर्मस्वताडयत्
स चापि तं तोमरेण जत्रुदेशेभ्यताडयत् ॥ ३७ ॥ वैकर्त्तनन्तु
समरे विराटः प्रत्यवारयत् । सह मत्स्यैर्महावीर्यैस्तदद्भुतमिवा-
वत् ॥ ३८ ॥ तत् पौरुषमभूत्तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम् । यत् सैन्यं
वारयापास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३९ ॥ द्रुपदस्तु स्वयं राजा
भगदत्तेन सङ्गतः । तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् ॥ ४० ॥
भगदत्तस्तु राजानं द्रुपदं नतपर्वभिः । सनियन्तुध्वजरथं विव्याध
पुरुषपर्वभिः ॥ ४१ ॥ द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो भगदत्तं महारथम् । आ-
घानोरसि क्षिप्रं शरेणानतपर्वणा ॥ ४२ ॥ युद्धं योधवरो लोके

दिया ॥ ३५ ॥ भोजराजने शीघ्रताके साथ हाथ चलाकर सत्तर
बाणोंसे सात्यकीको बीधडाला, परन्तु उन बाणोंसे जैसे वेगवान्
वायुसे पर्यत नहीं हिलता, तैसे सात्यकि हिला तर्क नहीं ॥ ३६ ॥
द्रोणने सुशर्माके मर्मस्थानोंमें बड़ी पीड़ा पहुँचाई, तब सुशर्माने
भी सेनापतिकी हँसलीमें तोमर मारा ॥ ३७ ॥ महावीर मत्स्य-
देशवासियोंको साथमें लेकर द्रुपदराजने कर्णके ऊपर धावा किया
उस समय अचरजभरा युद्ध हुआ ॥ ३८ ॥ सूतपुत्रने नभीहुई
गाँवोंवाले बाण मार पुरुषार्थ करके विराटकी सेनाको रोककर
दारुण कर्म किया ॥ ३९ ॥ राजा द्रुपद भगदत्तसे भिड़गया
हे महाराज ! उनका युद्ध भी आश्चर्यजनक हुआ ॥ ४० ॥
पुरुषश्रेष्ठ भगदत्तने नभीहुई गाँवोंवाले बाणोंसे सारथी, ध्वजा,
और रथसहित राजा द्रुपदको बीधदिया ॥ ४१ ॥ तब द्रुपदने
क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे महारथी भगदत्तकी छातीमें नभीहुई गाँव
वाला बाणमारा ॥ ४२ ॥ दूसरी ओर अश्वविद्यामें क्षत्र, संसार
के योधाओंमें श्रेष्ठसोमदत्तका पुत्र शिखण्डी, प्राणियोंको प्रास

सौमदत्तिशिखंडिनौ । भूतानां त्रासजननं चकातेऽस्त्रविशारदौ ४३
भूरिश्रवा रणो राजन् याज्ञसेनिं महारथम् । महता सायकौघेन-
च्छादयामास वीर्यवान् ॥ ४४ ॥ शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौम-
दत्तिं विशाम्पते । नवत्या सायकानान्तु कम्पयामास भारत ४५
राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैदिम्बालम्बुषाबुधौ । चकातेऽत्यद्भुतं युद्धं
परस्परजयैषिणौ ॥ ४६ ॥ मायाशतसृजौ हृष्टौ मायाभिरितरे-
तरम् । अन्तर्हितौ चेरतुस्तौ भृशं विस्मयकारिणौ ॥ ४७ ॥
चेकितानानुविन्देन युयुधे चातिभैरवं । यथा देवासुरे युद्धे बलशकौ
महाबलौ ॥ ४८ ॥ लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद् भृशम् ।
यथा विष्णुः पुरा राजन् हिरण्याक्षेण संयुगे ॥ ४९ ॥ ततः
प्रचलिताश्वेन विधिवत् कल्पितेन च । रथेनाभ्यपतद्वाजन् सौमद्र
पौरवो नदन् ॥ ५० ॥ ततोभ्ययात् स त्वरितो युद्धार्काक्षी महा-

देनेवाला युद्ध करने लगा ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! बलवान् भूरिश्रवाने
युद्धमें महारथी घृष्टयुग्मको बड़ेभारी बाणजालसे ढक दिया ॥ ४४ ॥
हे राजन् ! क्रोधमें भरेहुए द्रुपदपुत्र शिखण्डीने नवभू बाणोंसे
सौमदत्तके पुत्रको कँपा दिया ॥ ४५ ॥ आपसमें एक दूसरेको
जीतना चाहनेवाले भयंकर पराक्रमी दोनों राक्षस घटोत्कच
और अलम्बुष अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ ४६ ॥
वे दोनों योधा सैकड़ों मायाओंको रचनेवाले और अहंकारी थे,
वे दोनों अतीव आश्चर्य उपजातेहुए अन्तर्धान होकर युद्ध करने
लगे ॥ ४७ ॥ जैसे देवासुरसंग्राममें बल और महाबली इन्द्र लड़े
थे इसीप्रकार चेकितानने अनुविन्दके साथ भयंकर युद्ध किया ४८
जैसे पहिले हिरण्याक्ष और विष्णुका युद्ध हुआ था तैसे लक्ष्मण
और क्षत्रदेवका भारी युद्ध होने लगा ॥ ४९ ॥ पौरवराज, गर्जना
करताहुआ विधिपूर्वक तयार कियेहुए और जुतेहुए घोड़ोंवाले
रथमें बैठकर अभिमन्युको ऊपर चढ़ाया ॥ ५० ॥ युद्ध चाहनेवाला

वत्तः । तेन चक्रे महद्युद्धमभिमन्युररिन्दमः ॥ ५१ ॥ पौरवस्त्वय
सौभद्रं शरव्रातैरवाकिरत् । तस्यार्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपात-
यत् ॥ ५२ ॥ सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विध्वा सप्तभिराशुगैः । पञ्चभिस्त-
स्य विव्याध हयान् सूतञ्च सायकैः ॥ ५३ ॥ ततः महर्षय नृसेनां
सिंहवदिनदन्मुहुः । समादत्तार्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम् ५४ तं तु
सन्धितमाज्ञाय सायकं घोरदर्शनम् । द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिकयश्चि-
च्छेद सशरं धनुः ॥ ५५ ॥ तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्धवर्हं सितं खड्गमाददानः शरावरम् ॥ ५६ ॥ स तेनानेकता-
रेण चर्मणा कृतहस्तवत् । भ्रान्तासिना चरन्मार्गान् दर्शयन् वीर्य-
मात्मनः ॥ ५७ ॥ भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधृतं पुनरुत्थितम् ।

महाबली पौरव शीघ्रतासे अभिमन्युकी ओरको बढ़ा यह देखकर
शत्रुतापन अभिमन्युने उसके साथ बड़ा भयंकर युद्ध किया ॥ ५१ ॥
इसके बाद पौरवने अभिमन्युको बाणोंकी वर्षासे ढकदिया, तब
सुभद्रानन्दनने उसके धनुष, ध्वजा और छत्रको काटकर पृथिवीमें
गिरादिया ॥ ५२ ॥ अभिमन्युने और सात बाण मारकर पौरवको
बीध दिया तथा फिर पाँच बाण मारकर उसके सूत और घोड़ोंको
घायल करदिया ५३ तदनन्तर बारम्बार गर्जना कर अपनी सेनाको
हर्षातेहुए अभिमन्युने शीघ्रही पौरवका अन्त करनेवाला बाण
छड़ाया ॥ ५४ ॥ उस देखनेमें भयावने बाणको चेढ़ायाहुआ देख
कर हार्दिकयने दो बाणोंसे उसके बाणसहित धनुषको काटदाला ५५
तब शत्रु वीरोंके कालरूप सुभद्रानन्दनने कटेहुए धनुषको फेंककर
चमकतीहुई तलवार म्यानमेंसे खैचली और दूसरे हाथमें ढाल
लेली ॥ ५६ ॥ इसप्रकार अनेकों फुन्धियोंवाली ढाल और
तलवार हाथमें लेकरही फुरतीले हाथसे ढाल तलवारको
घुमातेहुए अभिमन्युने अपना पराक्रम दिखाया ॥ ५७ ॥ हे राजन् !
उस समय अभिमन्युकी घुमाईहुई, फिर उठाईहुई अलभनातीहुई

चर्मनिस्त्रिशो, सजन् निर्विशेषमहरयत् ॥५८॥ स पौरवरथस्ये-
षामासुत्य सहसा नदन् । पौरवं रथमास्थाय केशपत्ते परामृशत् ५९
अथानास्य पदा मृतमसिनापातयद् ध्वजम् । विद्योभ्याम्भोनिधि
तार्क्ष्यस्तन्नागमिव चाक्षिपत् ॥ ६० ॥ तमागलितकेशान्तं ददृशुः
सर्वपार्थिवाः । वृक्षाणमिव सिंहेन पात्यमानमचेतसम् ॥ ६१ ॥
तमार्जुनिवशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत् । पौरवं पातितं दृष्ट्वा नामृ-
ह्यत जयद्रथः ॥ ६२ ॥ स बहिर्बर्हिषिततं किङ्किणीशतजालवत् ।
चर्म चादाय खड्गञ्च नदन् पर्यपतद्रथात् ॥ ६३ ॥ ततः सैन्धव-
मालोक्य कार्ष्णिरुत्प्लुज्य पौरवम् । वत्पपात रथासूर्यं श्येनवन्मि-
पपात च ॥ ६४ ॥ प्रासपट्टिशनिस्त्रिशोऽञ्जुभिः सम्प्रचोदितान् ।

और लपकाई हुई ढाल तथा तलवार दोनों एकाकार दीखती
थीं ॥ ५८ ॥ अभिमन्यु गर्जकर एकसाथ पौरवके रथके जुपपर
कूद पड़ा और तहाँ खड़े होकर उसके बालोंको पकड़ लिया ५९
और लात मारकर उसके सारथीको ढकेल दिया तथा तलवारसे
ध्वजाको काटहाला, जैसे गरुड समुद्रको खलभला देता है इसी
प्रकार सेनादलको खलभलाकर सर्पकी समान पौरवको घसीट
लिया ६० जैसे अचेत बैलको सिंह पटक देता है, इसीप्रकार अभि-
मन्युने सब राजाओंके सामने पौरवको चोटी पकड़कर पटक
दिया ॥ ६१ ॥ इसप्रकार अभिमन्युके वशमें आकर अनाथकी
समान पौरवको घसितेहुए देखकर जयद्रथसे सहा नहीं गया ६२
वह मोरके पंखोंसे ढकी और सँकड़ों पुँघरु लगीहुई ढाल और
तलवारको लेकर गर्जना करताहुआ रथपरसे कूदपड़ा ॥ ६३ ॥
जयद्रथको आतेहुए देखकर अभिमन्युने पौरवको छोड़दिया और
रथमेंसे बाजकी समान उल्लकर भूमिपर आकूदा ॥ ६४ ॥ इतने
में शत्रुने अभिमन्युके ऊपर प्रास पट्टिश और तलवार आदिकी
बौछार करहाली, उसको अभिमन्युने तलवारसे काटहाला और

चिच्छेद चासिना कार्ष्णिग्यर्मणा संसरोष च ॥ ६५ ॥ स दर्शयित्वा सैन्यानां स्वबाहुवदमात्मनः । तमुद्यम्य महाखड्गं चर्मचाथ पुनर्वली ॥ ६६ ॥ दृढक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम् । ससाराभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ६७ ॥ तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ । हृष्टवत् संप्रजहाते व्याघ्रकेसरिणाविव ॥ ६८ ॥ सम्पातेष्वभिभातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः । न तयोरन्तरं कश्चिद्दर्श नरसिंहयोः ॥ ६९ ॥ अवक्षेपोसिनिर्हादः शस्त्रान्तरनिर्दर्शनम् । बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत ७० ब्राह्मभयन्तरञ्चैव चरन्तौ मार्गमुत्तमम् । ददृशाते महात्मानौ सपत्ताविव पर्वतौ ॥ ततो विक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः । शरावरणपत्नान्ते प्रजहार जयद्रथः ॥ ७२ ॥ रुक्मपत्रान्तरे सक्तस्त-

कुञ्जको ढालसे रोकलिया ॥ ६५ ॥ महाबली अभिमन्युने इस प्रकार अपने भुजबलका सेनादलको परिचय देतलवार और ढालको हाथमें उठाया था ॥ ६६ ॥ और जैसे हाथीके सामने सिंह झपटता हो तैसे, पिताके षड़ेभारी बैरी जयद्रथके सामनेको झपटा ॥ ६७ ॥ दाँत और नखरूप आयुधवाले बाघ और केसरी जैसे आपसमें युद्ध करते हों तैसेही वे दोनों योधा हर्षमें भरकर वड़ेही वेगसे आपसमें तलवारके प्रहार करनेलगे ॥ ६८ ॥ उन पुरुषसिंहोंका तलवार और गदाको उठातेमें प्रहार करतेमें और नीचेको झुकातेमें किसीने जराभी अन्तर नहीं देखा ॥ ६९ ॥ उन दोनोंका नीचेको गिरना, तलवार फेंकनेकी ध्वनि, शस्त्रोंका अवकाशदान और शस्त्रोंका भीतर बाहरके प्रदेशोंमें गिरना एकसा था ७० वे दोनों महात्मा, युद्धकी सर्वश्रेष्ठीतिसे भीतर और बाहर घूमतेहुए परबाले पर्वतसे दीखते थे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर यशस्वी अभिमन्युके तलवारका प्रहार करनेके लिये समीपमें आने पर जयद्रथने ढाल पर तलवार मारी ॥ ७२ ॥ सिंधुराजके जोरसे

स्मिरचर्मणि भास्वरे । सिन्धुराजबलोद्भूतः सोमज्यत महानसिः ७३
 भग्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवसृत्य पदानि षट् । अदृश्यत निमेषेण
 स्वरथं पुनरास्थितः ॥ ७४ ॥ तं कार्त्तिकसमरान्मुक्तमास्थितं रथ-
 मुत्तमम् । सहिताः सर्वराजानः परिवन्तुः समन्ततः ॥ ७५ ॥ तत-
 श्चम च खड्गञ्च समुत्तिष्ठ्य महाबलः । ननादार्जुनदायादः प्रेक्ष-
 माणो जयद्रथम् ॥ ७६ ॥ सिंधुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा ।
 तापयामास तत्सैन्यं ध्रुवनं भास्करो यथा ॥ ७७ ॥ तस्य सर्वा-
 यसीं शक्तिं शल्यः कनकभूषणाम् । चित्तेषु समरे घोरां दीप्ता-
 मग्निशिखाभिः ॥ ७८ ॥ तामवप्लुत्य जग्राह विकीर्णं चाकरो-
 दसिम् । वैनतेयो यथा कार्त्तिकः पतन्तमुरगोत्तमम् ॥ ७९ ॥ तस्य
 लाघवमाज्ञाय सत्त्वश्चामिततेजसः । सहिताः सर्वराजानः सिंह-
 नादमथानदन् ॥ ८० ॥ ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा ।

महारं करनेके कारण वह तलवार सेनेकी पत्तरसे मढ़ी हुई और
 चमकीली ढालमें उलझकर टूटगयी ॥ ७३ ॥ अपनी तलवारको
 टूटी हुई देखकर वह क्षणभरमें छः पग पीछेको कूदकर अपने
 रथमें बैठा हुआ दीखा ॥ ७४ ॥ इसप्रकार युद्धसे थोड़ासा श्रव-
 काश मिलते ही अभिमन्युभी अपने रथ पर चढ़ गया, यह देखकर
 कौरवपक्षके सब राजाओंने उसको घेर लिया ॥ ७५ ॥ तदनन्तर
 महाबली अभिमन्यु जयद्रथकी ओरको घूरता हुआ तलवार और
 ढालको हाथमें उठा गर्जना करने लगा ७६ शत्रुनाशी अभिमन्युने
 जयद्रथको छोड़कर जैसे सूर्य संसारको तपाता है तैसे ही
 शत्रुओंकी सेनाओंको तपाना आरम्भ कर दिया ॥ ७७ ॥ इतनेमें
 ही शल्यने प्रज्वलित अग्निशिखाकी समान सुवर्णके घण्टोंवाली
 शुद्ध लोहेकी शक्तिको अभिमन्युके ऊपर फेंका ॥ ७८ ॥ जैसे गरुड़
 उड़ते हुए सर्पको पकड़ लेता है तैसे ही अभिमन्युने उस शक्तिको
 उछलकर पकड़ लिया और म्यानमेंसे तलवार निकाल ली ॥ ७९ ॥
 अभिमन्युकी फुर्ती और बलको देखकर सब राजाओंने सिंहकी

युधोच्च भुजवीर्येण वैदूर्यविकृताशिताम् ८१ सा तस्य रथमासाद्य
निर्मुक्तभुजगोपमा । सूतं जघान शन्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ८२
ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः । सात्यकिः केकया भीमो
धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ८३ ॥ ययौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति
चुक्रुशुः । वाणशब्दाश्च विविधा सिंहनादाश्च पुष्कलाः ॥ ८४ ॥
मादुरासन् हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् । तन्नामृष्यन्त पुत्रास्ते
शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ ८५ ॥ अथैनं सहसा सर्वे सपन्तान्निशितैः
शरैः । अभ्याकिरन् महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ ८६ ॥ तेषां च
मियमन्विच्छन् सूतस्य च पराभवम् । आर्त्तायनिरमित्रघ्नः क्रुधुः
सौभद्रमभ्ययात् ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिप्रेकपर्वणि अभिमन्यु-
पराक्रमे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

समान गर्जना की ॥ ८० ॥ शत्रुनाशी अभिमन्युने उस ही वैदूर्यसे
भूषित शक्तिको भुजबलसे शन्यके ऊपर फेंका ॥ ८१ ॥ विना
कैवल्यकी सर्पकी समान उस शक्तिने रथमें पहुँच कर शन्यके
सारथीको मार उसको रथपरसे नीचे लुढ़का दिया ॥ ८२ ॥ यह
देखकर राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, युधिष्ठिर, सात्यकी, पाँच
केकय भाई, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, शिखण्डी, नकुल, सहदेव और
द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंने साधु २ शब्दोंसे आकाशको भर दिया और
युद्धमें न भागनेवाले अभिमन्युको हर्षित करतेहुए बहुतसे सिंहनाद
और वाणोंके शब्द किये, तुम्हारे पुत्र, शत्रुकी उन गर्जनाओंको
शत्रुकी विजयरूप मानकर सह न सके ॥ ८३—८५ ॥ परन्तु
हे महाराज! जैसे पर्वत पर मेघ जलकी बर्षा करते हैं उसीप्रकार सब
कौरवोंने इकट्ठे होकर इसके ऊपर चारोंओरसे वाण बरसाने आरंभ
कर दिये ॥ ८६ ॥ शत्रुहन्ता शन्य कौरवोंका मिय करनेकी इच्छासे
और अपने सारथिके अपमानका ध्यान करके क्रोधमें भराहुआ
अभिमन्युके सामने लड़नेको आया ८७ चौदहवाँ अध्याय समाप्त

धृतराष्ट्र उवाच । बहुनि सुविचित्राणि द्रुपदयुद्धानि सञ्जय ।
 त्वयोक्तानि निशम्याहं स्पृहयामि सचक्षुषाम् ॥ १ ॥ आश्चर्यभूतं
 लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः । कुरुणां पाण्डवानाञ्च युद्धं देवा-
 सुरोपमम् ॥ २ ॥ न हि मे दृष्टिरस्तीह शृण्वतो युद्धमुत्तमम् ।
 तस्मादार्त्तायनेयुद्धं सौभद्रस्य च शंस मे ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच ।
 सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शन्यः सर्वायसीं गदाम् । समुत्तिष्ठ्य नदन-
 क्रुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ४ ॥ तं दीप्तमिव कालाग्निं दण्ड-
 हस्तमिवागतम् । जवेनाभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ सौभद्रो-
 प्यशनिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम् । पक्षोहीत्यब्रवीच्छन्यं यत्नाद्भी-
 मेन वारितः ६ वारयित्वा तु सौभद्रं भीमसेनः प्रतापवान् । शन्य-
 मासाद्य समरे तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ७ ॥ तथैव मद्वराजोपि भीमं

धृतराष्ट्र ने कहा कि—हे सञ्जय ! तेरे कहेहुए बहुतसे विचित्र
 युद्धोंको सुनकर मैं समाखोंको भाग्यवान् मानता हूँ, कि—वे अपने
 नेत्रोंसे युद्धोंको देखते होंगे ? ॥ १ ॥ मनुष्य देवासुरसंग्रामकी
 समान कौरवों और पाण्डवोंके संग्रामको संसारमें अचरजके
 साथ कहेंगे ॥ २ ॥ इस भ्रेष्ठ युद्धको सुनते-२ मेरा मन नहीं भरता,
 अतः सुभद्रानन्दन अभिमन्यु और आर्त्तायनके पुत्र शन्यके युद्धको
 मुझे सुना ॥ ३ ॥ सञ्जयने कहा कि—अपने सारथीको मराहुआ
 देख, शन्यने क्रोधमें भरकर लोहेकी ठोस गदाको उठाया और
 अपने बड़े भारी रथ परसे गर्जनाके साथ कूद पड़ा ॥ ४ ॥ प्रदीप्त
 कालाग्निकी समान और हाथमें दण्ड लियेहुए यमराजकी समान
 शन्यको अभिमन्युके सामने झपटता देखकर भीम बड़ी भारी गदा
 को लेकर शीघ्रतासे तहाँ आयहुँचा ॥ ५ ॥ अभिमन्युभी बज्रकी
 समान बड़ी भारी गदाको लेकर शन्यको “आओ आओ” कहकर
 पुकारने लगा, परन्तु भीमसेन उसको रोककर युद्धमें अबल पर्वत
 की समान, शन्यके सामने जा खड़ा होगया ॥ ६ ॥ ७ ॥ जैसे

दृष्ट्वा महावज्रः । ससाराभिमुखं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ८८ ॥
 ततस्तूर्यनिनादाश्च शंखानाञ्च सहस्रशः । सिंहनादाश्च संजज्ञुर्भे-
 रीणाञ्च महास्वनाः ॥ ८९ ॥ पर्यतां शतशो ह्यासीदन्योन्यमभि-
 धावनाम् । पाण्डवानां कुरुणाञ्च साधु साध्विति निःस्वनः १०
 न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत । सोढुमुत्सहते वेगं भीम-
 सेनस्य संयुगे ॥ ११ ॥ तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
 सोढुःसहते लोके युधि कोन्यो वृकोदरात् ॥ १२ ॥ पट्टैर्जाम्बूनदै-
 र्वह्ना बभूव जनपिहणी । मज्जशाल तदा विह्वा भीमेन महती गदा १३
 तथैव चरतो मार्गान् मण्डलानि च सर्वशः । महाविश्रुत्पतीकाशा
 शन्यस्य शुशुभे गदा ॥ १४ ॥ तौ वृषाविव नर्दन्तां मण्डलानि
 विचरेतुः । आवर्तितगदायुक्तावुभौ शन्यवृकोदरी ॥ १५ ॥ मण्ड-

हाथीको देखकर सिंह झपटता है तैसेही महावली भीमसेनको
 देखकर शन्यभी शीघ्रतासे उसके सामने जाकर डटगया ॥ ८८ ॥
 तदनन्तर तुरही और सैं हडों शंखोंके शब्द, सिंहनाद और भेरि-
 योंकी महाध्वनि होनेलगी ॥ ८९ ॥ युद्ध देखनेवाले और एक दूसरे
 के ऊपर आक्रमण करनेवाले कौरव तथा पाण्डवपक्षके सैंकड़ों
 राजे साधु शकड़कर गर्जना करनेलगे ॥ ९० ॥ हे भारत ! सब
 राजाओंमें एक मद्रराजको छोड़कर भीमसेनके वेगको सहनेवाला
 दूसरा कोई नहीं है ॥ ९१ ॥ तथा युद्धमें महात्मा मद्रराज शन्य
 की गदाके वेगको भी लोकमें भीमसेनके सिवाय दूसरा कौन सह
 सकता है ॥ ९२ ॥ सुनहरी वस्त्रोंसे बँधीहुई मनुष्योंको हर्षित
 करनेवाली शन्यकी बड़ीभारी गदाको मण्डलाकारसे विचित्र
 मार्गोंमें फिरनेवाले भीमसेनने तोड़हाला, मण्डलाकारसे घुमतीहुई
 गदारूपी सींगवाले शन्य और भीमसेन, दो बैलोंकी समान युद्ध
 करतेहुए गर्जना करते हुए, मण्डलाकारसे फिररहे थे, और वे
 दोनों पुरुष मण्डलाकारसे गदाको घुमातेर युद्ध कररहे थे, उन

लावर्त्तपागेषु गदाविहरणेषु च । निर्विशेषमधुयुद्धं तयोः पुरुष-
सिंहयोः ॥ १६ ॥ ताडिता भीमसेनेन शल्यस्य महती गदा । साग्नि-
ज्वाला-महारीद्रा तदा तूर्णमशीर्यत ॥ १७ ॥ तथैव भीमसेनस्य
द्विषताभिहता गदा । वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्दृष्टो वृक्ष इवाबभौ ॥ १८ ॥
गदा क्षिप्ता तु समरे मद्राजेन भारत । व्योम दीपयमाना सा
ससृजे पावकं मुहुः १९ तथैव भीमसेनेन द्विषते प्रेषिता गदा । ताप-
यामास तत्सैन्यं महोन्का पतती यथा ॥ २० ॥ ते गदे गदिनां
श्रेष्ठे समासाद्य परस्परम् । श्वसन्त्यौ नागकन्येव ससृजाते विभा-
वसुम् ॥ २१ ॥ नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ । तौ
विचेरतुरासाद्य गदाग्रयाभ्यां परस्परम् ॥ २२ ॥ ततो गदाग्राभि-
हतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ । ददृशाते महात्मानौ किंशुकाविष

दोनोंका युद्ध समानरीतिसे होरहा था, उन दोनोंमें कोई चढ़ा वा
उतरा हुआ नहीं मालूम होता था ॥ १३-१६ ॥ शल्यकी अग्नि
की समान प्रज्वलित महाभयंकर और बड़ीभारी गदाके भीमसेनने
टुकड़े कर डाले ॥ १७ ॥ इसीप्रकार शल्यके हाथसे टूटीहुई
भीमसेनकी गदा, वर्षाकालमें सायंकालके समय पटबीजनोंसे
घिरेहुए वृक्षकी समान शोभा पानेलगो ॥ १८ ॥ हे भारत !
शल्यके द्वारा बारम्बार फेंकीहुई गदानें अग्निको उत्पन्न करके
आकाशको प्रकाशित कर दिया ॥ १९ ॥ तथा भीमसेनके
द्वारा शत्रुके ऊपर फेंकीहुई गदा, आकाशसे गिरती हुई
बड़ी भारी उल्कीकी समान, शत्रुकी सेनाको दुःख देनेलगो
॥ २० ॥ गदाधारियोंमें श्रेष्ठ उन दोनोंकी गदाएँ आपसमें टकराकर
श्वासोज्झास करतीहुई नागकन्याओंकी समान अग्निको उगलने
लगी ॥ २१ ॥ जैसे दो सिंह नखोंसे युद्ध करते हैं और जैसे
दो हाथी दाँतोंसे लड़ते हैं तैसेही वे दोनों श्रेष्ठ गदाओंसे
लड़ते हुए रणाङ्गणमें घूम रहे थे ॥ २२ ॥ थोड़ी ही देर बाद

पुष्पितौ ॥ २३ ॥ शुश्रुवे दिक्षु सर्वास्तु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
 गदाभिघातसंहादः शकाशनिरवापमः ॥ २४ ॥ गदया मद्राजेन
 सव्यदक्षिणमाहतः । नाकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाचलः २५
 तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो महाबलः । धैर्यान्मद्राधिपस्तरथौ
 वज्रैर्गिरिरिवाहतः ॥ २६ ॥ आपेतुर्महावेगौ समुच्छितगदावुर्धौ ।
 पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २७ ॥ अथासुत्य पदा-
 न्यष्टौ सन्निपत्य गजाविव । सहसा लोहदण्डाभ्यामन्योन्यमभि-
 जघ्नतुः ॥ २८ ॥ तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्याञ्च भृशार्हतौ । युग-
 पत् पेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव ॥ २९ ॥ ततो विह्वलमानं तं
 निःश्वसन्तं पुनः पुनः । शल्यमभ्यपतत्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ३०

गदाके अग्रभागसे लोहलुहान हुए वे दोनों महात्मा, खिले हुए
 पुष्पोंवाले टेसूके वृक्षोंकी समान दीखनेलगे ॥ २३ ॥ उन दोनों
 पुरुषसिंहोंकी गदाओंके टकरानेका शब्द इन्द्रके वज्रकी समान
 सब दिशाओंमें सुनाई आता था ॥ २४ ॥ तदनन्तर शल्यने
 भीमके दायीं और बायीं ओरसे बहुतसी गदाएं मारीं परन्तु
 भीमसेन उनसे घायल होकर भी पर्वतकी समान अचल खड़ा
 रहा ॥ २५ ॥ इसीप्रकार भीमसेनकी गदासे पिटा हुआ मद्र-
 राज धैर्य धारण करके, वज्रासे ताड़े हुए पहाड़की समान अचल
 डटा रहा ॥ २६ ॥ महावेगवान् वे दोनों कुछ मार्ग देकर और
 गदाको घुमाकर उठाये हुए एक दूसरेसे जो भिड़े ॥ २७ ॥ तदन-
 न्तर दो हाथियोंकी समान आठ पग पीछेको हटकर फिर पास
 आने पर वे दोनों एक दूसरेको लोहेकी गदाओंसे मारने
 लगे ॥ २८ ॥ वे दोनों वीर पुरुष वेगमें भरजानेके कारण
 बहुत घायल होकर दो इन्द्रध्वजोंकी समान एकसाथ भूमि पर
 गिरपड़े ॥ २९ ॥ हे महाराज ! उस समय शल्य, गदाके महारसे
 मूर्छित हो ऊर्ध्वश्वास लेनेलगा, विह्वल होगया और सर्पकी

दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाभिनिपीडितम् । विचेष्टन्तं यथा नागं
 मूर्च्छयाभिपरिप्लुतम् ॥ ३१ ॥ ततः स्वरथमासोप्य मद्राणामधिपं
 रणे । अपोवाह रणात्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३२ ॥ जीववद्वि-
 हलो वीरो निमेवात् पुनरुत्थितः । भीमोपि सुमहाबाहुर्गदापाणि-
 रहस्यतः ॥ ३३ ॥ ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः परांमुखम् ।
 स नागपत्तञ्चश्वरथाः समकम्पन्त मारिषः ॥ ३४ ॥ ते पाण्डवैरर्घ्य-
 मानास्तावका जितकाशिभिः । भीता दिशोन्वपद्यन्त वातानुना-
 घना इव ॥ ३५ ॥ निर्जित्य धार्तराष्ट्रास्तु पाण्डवेया महारथाः ।
 व्यरोचन्त रणे राजन् दीप्यमाना इवाग्नयः ॥ ३६ ॥ सिंहनादान्
 भृशं चक्रुः शंखान् दध्मुश्च हर्षिताः । भेरीश्च वादयामासुर्मृदङ्गा-
 श्चानकैः सह ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि

शल्योपपाने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

समान तड़फने लगा, यह देख महारथी कृतवर्मा उसके पास
 आया और उसको अपने रथमें बैठा लेकर तुरंत ही रणभूमिसे
 बाहर ले गया ॥ ३०-३२ ॥ महाबाहु भीमसेन भी मदमत्तकी
 समान थोड़ी देरको विहल होगया, परन्तु क्षणभरमें ही फिर उठ
 बैठा और उसने सबके देखते हुए हाथमें गदा उठा ली ॥ ३३ ॥
 हे महाराज ! मद्राज शल्यको इसप्रकार भागाहुआ देखकर
 तुम्हारे पुत्र, और उनके हाथी, घोड़े, सवार तथा पैदल काँपने
 लगे ॥ ३४ ॥ तुम्हारे सैनिक विजयसे शोभायमान पाण्डवोंसे
 पीड़ित होकर पवनसे छिन्न भिन्न हुए बादलोंकी समान डेरकर
 चारों दिशाओंमेंको भागनेलगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! रणमें
 तुम्हारे पुत्रोंको जीतकर पाण्डवोंके महारथी प्रदीप्त अग्निकी
 समान दिपने लगे ॥ ३६ ॥ वे हर्षमें भरकर बड़े जोरसे सिंह-
 नाद करने लगे शंखोंको बजाने लगे और नरसिंहे, मृदंग तथा
 जगाड़ोंको बजाने लगे ॥ ३७ ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच । तद्वत् सुमहद्दीर्घं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान् ।
 दधारैको रणे राजन् वृषसेनोऽस्त्रमायया ॥ १ ॥ शरा दश दिशो
 मुक्ता वृषसेनेन संयुगे । विचेरुस्ते विनिर्मिथ नरवाजिरथद्विपान् २
 तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चेरुः सहस्रशः । भानोरिव महाराज
 घर्मकाले मरीचयः ॥ ३ ॥ तेनार्दिता महाराज रथिनः सादिन-
 स्तथा । निपेतुरुर्व्या सहसा वातभग्ना इव द्रुमाः ॥ ४ ॥ ह्यौघांश्च
 रथौघांश्च गजौघांश्च महारथः । अपातयद्रुणो राजन् शतशोथ
 सहस्रशः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तमेकं समरे विचरन्मभीतवत् । सहिताः
 सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ६ ॥ नाकुलिरस्तु शतानीको
 वृषसेनं समभ्ययात् । विव्याध चैनं दशभिर्नाराचैर्मर्मभेदिभिः ७
 तस्य कर्णात्मजश्चापं छित्वा केतुमपातयत् । तं आतरं परीप्सन्तो

सञ्जयने कहा, कि-तुम्हारी बड़ीभारी सेनाको इसप्रकार
 भागती हुई देखकर अकेले वृषसेनने उसको अस्त्रबलसे रोका । १।
 युद्धमें वृषसेनके छोड़े हुए बाण, मनुष्य, हाथी, रथ और घोड़ोंको
 को छेदते हुए दशों दिशाओंमें घूमने लगे ॥ २ ॥ हे महाराज !
 जैसे ग्रीष्मऋतुमें सूर्यकी किरणें निकलती हैं तैसे ही उसके
 धनुषमेंसे प्रकाशवान् सहस्रों बाण निकलने लगे ॥ ३ ॥ उस
 बाणवर्षासे पीड़ित होकर हे महाराज ! एकसाथ बहुतसे रथी
 और पैदल पवनसे तोड़े हुए वृत्तोंकी समान भूमि पर ढहने
 लगे ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार वृषसेन रणभूमिमें सैंकड़ों
 और हजारों घुड़सवार, रथी और हाथियोंका चूरा करने
 लगा ॥ ५ ॥ इस प्रकार उसको युद्धमें निर्भयकी समान अकेला
 विचरता हुआ देखकर पाण्डवपक्षके सब राजाओंने चारों ओर
 से घेर लिया ॥ ६ ॥ नकुलपुत्र शतानीकने वृषसेनके सामने
 आकर मर्मभेदी दश बाणोंसे उसको घायल कर दिया ॥ ७ ॥
 परन्तु कर्णपुत्र वृषसेनने उसके धनुषको काटकर ध्वजाको भी

द्रौपदेयाः सपत्न्ययुः ॥ ८ ॥ कर्णात्मजं शरव्रातैरदृश्यं चक्रु रञ्जसा ।
 तान्नदन्तोभ्यधावन्त द्रोणपुत्रमुखा रथाः ॥ ९ ॥ छादयन्तो
 महाराज द्रौपदेयान् महारथान् । शरैर्नानाविधैस्तूर्णैः पर्वतान्
 जलदा इव ॥ १० ॥ तान् पांडवाः प्रत्यगृह्णन्स्वरिताः पुत्रगृह्णिनः ।
 पञ्चालाः कैकया मत्स्याः सुञ्जयाश्चोद्यन्तायुधाः ॥ ११ ॥ तद्युद्ध-
 मभवद् धोरं सुमहलोमहर्षणम् । त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव
 दानवैः ॥ १२ ॥ एवं युयुधिरे वीराः संरथाः कुरुपांडवाः ।
 परस्परमुदीक्षन्तः परस्परकुतांसः ॥ १३ ॥ तेषां ददृशिरे
 कोपाद्गूष्पमिततेजसाम् । युयुत्मूनामिवाकाशे पतत्रिवर-
 भोगिनाम् ॥ १४ ॥ भीमकर्णकृपद्रोणद्रौणिपार्षतसात्यकैः ।
 वभासे स रणोद्देशः कालसूर्य इवोदितः ॥ १५ ॥ तदासीत् तुमुलं

काटडाला, उसकी रक्षा करनेकी इच्छासे द्रौपदीके पाँचों पुत्र
 झपट आये और उन्होंने शीघ्रताके साथ कर्णपुत्रको बाणोंके
 जालसे ढकदिया, यह देख द्रोण आदि रथी गरजतेहुए उनके
 ऊपर चढ़ आये और जैसे मेघ वर्षासे पर्वतोंको ढकदेते हैं, तैसेही
 महारथी द्रौपदीके पाँच पुत्रोंको बाणोंसे ढकतेहुए चढ़ आये-१०
 और पुत्रोंकी रक्षा करनेकी इच्छावाले पांडव, पाञ्चाल, कैकय,
 मत्स्य तथा सुञ्जयोंने उनको घेरलिया ॥ ११ ॥ इस समय तुम्हारे
 योधाओंमें और पांडवोंमें देवासुरसंग्रामकी समान रौंगटे खड़े
 करनेवाला युद्धहुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार एक दूसरेका अपराध
 करनेवाले, क्रोधमें भरेहुए कौरव और पांडव आपसमें घूरतेहुए
 युद्ध करनेलगे ॥ १३ ॥ अतितेजस्वी क्रोधमें भरेसे युद्ध करनेकी
 इच्छावाले उन योधाओंके शरीर आकाशमें युद्ध करतेहुए उड़ने
 सर्प और गरुड़की समान दीखते थे ॥ १४ ॥ उस समय रण-
 भूमि भी भीम, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न
 और सात्यकिके कारण, उदय हुए कालसूर्यकी समान प्रतीत होती

युद्धं निघ्नतामितरेतरम् । महाबलानां बलिभिर्दानवानां यथा
सुरैः ॥ १६ ॥ ततो युधिष्ठिरानीकमुद्रधृतार्णवनिःस्वनम् । त्वदीय-
मवधीत् सैन्यं सम्प्रद्रुतमहारथम् ॥ १७ ॥ तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा
शत्रुभिर्भृशमर्दितम् । अलं द्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोभ्यभाषत ॥
ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त-इव द्विपः । प्रविश्य पाण्डवानीकं
युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ १८ ॥ तत्राविध्यच्छित्तैर्वाणैः कंकपत्रैर्युधिष्ठिरः ।
तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा तं द्रुतं समुपाद्रवत् ॥ २० ॥ चक्ररत्नः
कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः । दधार द्रोणमायान्तं वेल्लेव
सरितां पतिम् ॥ २१ ॥ द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा कुमारेण द्विजर्षभम् ।
सिंहनादरवो ह्यासीत् साधु साध्विति भाषितम् ॥ २२ ॥ कुमार-

थी ॥ १५ ॥ महाबली, आपसमें एक दूसरे पर प्रहार करनेवाले
कौरव पांडवोंका, बली दैत्य और देवताओंके युद्धकी समान तुल्य
युद्ध होनेलगा ॥ १६ ॥ तदनन्तर ज्वारभाटेवाले समुद्रकी समान
शब्द करती हुई युधिष्ठिरकी सेना तुम्हारे सैनिकोंको मारनेलगी
और तुम्हारे महारथी इधर उधरको भागनेलगे ॥ १७ ॥ शत्रुओं
से अतिपीड़ा पाकर भागती हुई सेनाको देखकर द्रोणाचार्यने कहा,
कि-अरे शूरा ! वस अब रणमेंसे मत भागो ! मत भागो ॥ १८ ॥
तदनन्तर लालरङ्गके घोड़ोंवाले रथमें बैठे हुए द्रोणाचार्य क्रोधमें
भरकर चार दौतोंवाले हाथीकी समान पांडवोंकी सेनामें घुसकर
युधिष्ठिरके ऊपरको दौड़े ॥ १९ ॥ युधिष्ठिरने गिज्जके परावाले
वाणोंसे द्रोणको घायल करदिया, तब द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरके
धनुषको काटडाला फिर शीघ्रतासे उनके ऊपर लपके ॥ २० ॥
उस समय युधिष्ठिरके रथके पहियोंकी रक्षा करनेवाले, पञ्चालों
के यशको बढ़ानेवाले, कुमारने, किनारा जैसे समुद्रको रोके रहता
है नैसेही द्रोणको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ २१ ॥ कुमारके द्वारा
ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यको रुका हुआ देखकर पांडवसेनाके सब

स्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे । विव्याधोरसि संकुटुः सिंह-
वच्च नदन्मुहुः ॥ २३ ॥ संवार्य च रणे द्रोणं कुमारस्तु महा-
बलः । शरैरनेकसाहस्रैः कृतहस्तो जितश्रमः ॥ २४ ॥ तं शूर-
मार्यव्रतिनं मन्त्रास्त्रेषु कृतश्रमम् । चक्ररक्षं परामृदनात् कुमारं द्विज-
पुङ्गवः ॥ २५ ॥ स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन् दिशः ।
तव सैन्यस्य गोप्तासीद् भारद्वाजो द्विजर्षभः ॥ २६ ॥ शिखण्डिनं
द्वादशभिर्विशत्याः चोत्तमौजसम् । नकुलं पञ्चभिर्विध्वा सहदेवञ्च
सप्तभिः ॥ २७ ॥ युधिष्ठिरं द्वादशभिर्द्रौपदेयां स्त्रिभिस्त्रिभिः । सात्यकिं
पञ्चभिर्विध्वा मत्स्यञ्च दशभिः शरैः ॥ २८ ॥ व्यक्तोभयद्रणे योधान्
यथामुख्यमभिद्रवन् । अभ्यवर्तत सम्प्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् २९
युगन्धरस्ततो राजन् भारद्वाजं महारथम् । वारयामास संकुटुं

योधा धन्य है ! धन्य है ! ऐसा कहकर सिंहोंकी समान गर्जनेलगे २३
फिर कुमारने क्रोधमें भरकर महायुद्धमें द्रोणको छातीमें बाण मार
कर घायल कर दिया, और वारम्बार सिंहकी समान गरजा २३
तथा जितश्रम महाबली कुमारने हाथकी फुर्तीसे सैकड़ों और
सहस्रों बाण छोड़कर द्रोणको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २४ ॥
द्रोणाचार्यने भी श्रेष्ठ व्रतधारी वेदविद्या और अस्त्रविद्याके पार-
गामी, युधिष्ठिरके चक्ररक्षक कुमारको बाणोंसे पीड़ित करना
आरम्भ कर दिया ॥ २५ ॥ और द्विजश्रेष्ठ द्रोण सेनाके मध्यमें
जाकर सब दिशाओंमें फिर २ कर तुम्हारी सेनाओंकी रक्षा
करनेलगे ॥ २६ ॥ तथा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको पकड़नेकी इच्छासे
मुख्य २ योधाओंके सामनेको झपटनेलगे, उन्होंने शिखण्डीके
बारह बाण और उत्तमौजाके बीस बाण नकुलके पाँच, सहदेवके
सात, युधिष्ठिरके बारह बाण, द्रौपदीके पुत्रोंके तीन २ बाण, सात्यकि
के पाँच और मत्स्यराजके दश बाण मारकर बँध डाला ॥ २७-२८ ॥
हे महाराज ! युगन्धरने, पवनसे उड़लतेहुए महासागरकी समान

वातोद्धृतमिवाणवम् ॥ ३० ॥ युधिष्ठिरं स विध्वा तु शरैः सन्नत-
 पर्वभिः । युगन्धरन्तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३१ ॥ ततो
 विराट्द्रुपदौ कैकयाः सात्यकिः शिविः । व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः
 सिंहसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥ एते चान्ये च बहवः परीप्सन्तो
 युधिष्ठिरम् । आबन्नुस्तस्य पन्थानं किरन्तः सायकान् बहून् ३३
 व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः । पञ्चाशता
 शितैराजंस्तत उच्चुकुशुर्जनाः ॥ ३४ ॥ त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं
 विध्वा महारथम् । प्राहसत् सहसा हृष्टस्त्रासयन् वै महारथान् ३५
 ततो विस्फार्य नयने धनुर्व्यामवमृज्य च । तलशब्दं महत् कृत्वा
 द्रोणस्तं समुपाद्रवत् ॥ ३६ ॥ ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात्
 सकुण्डलम् । व्याघ्रदत्तस्य चाक्रम्य भल्लाभ्यामाहरद्वली ॥ ३७ ॥

क्रोधके आवेशमें भरेहुए महारथी द्रोणाचार्यको आगे बढ़नेसे
 रोकदिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर द्रोणाचार्यने नमीहुई गांठवाले बाणों
 से युधिष्ठिरको घायल करके युगन्धरको भाला मारकर रथकी
 बैठकसे गिरादिया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर युधिष्ठिरको चाहनेवाले,
 विराट् द्रुपद, कैकय, सात्यकि, शिवि पांचाल, व्याघ्रदत्त, और
 बलवान् सिंहसेनने तथा और बहुतोंने बहुतसे बाण छोड़कर
 द्रोणाचार्यके मार्गको रोकदिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ पांचालदेशी व्याघ्र-
 दत्तने पचास तीक्ष्ण बाण मारकर द्रोणको घायल करदिया,
 यह देख मनुष्योंने कोलाहल मचादिया ॥ ३४ ॥ और सिंहसेन
 भी बाणोंसे द्रोणाचार्यको बीचकर महारथियोंको डराता हुआ
 एक साथ हर्षमें भरकर हँसनेलगा ॥ ३५ ॥ इतनेमेंही बली द्रोणा-
 चार्य आँखें फाड़ धनुषकी प्रत्यंजाकी खेंच और तालियोंका बड़ा
 शब्द करके फिर उसके पीछे पड़े ॥ ३६ ॥ और बलवान्
 द्रोणाचार्यने सिंहसेन और व्याघ्रदत्तके कुण्डलसहित मस्तकों
 को फाटकर पृथिवीपर गिरादिया ॥ ३७ ॥ और पांडवों

तान् प्रमृश्य शरव्रातैः पाण्डवानां महारथान् । युधिष्ठिरस्थाभ्याशे
तस्थौ मृग्युरिवान्तकः ॥ ३८ ॥ ततोभवन्महाशब्दो राजन् यौधि-
ष्ठिरे बले । हतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥ ३९ ॥ अब्रु-
वन् सैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम् । अथ राजा धार्तराष्ट्रः
कृतार्थो वै भविष्यति ॥ ४० ॥ अस्मिन् मुहूर्ते द्रोणस्तु पाण्डवं
गृह्य हर्षितः । आगमिष्यति नो जूनं धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ४१ ॥
एवं सञ्जल्पतां तेषां तावकानां महारथः । आयाज्जवेन कौन्तेयो
रथघोषेण नादयन् ॥ ४२ ॥ शोणितोदां रथावर्त्ता कृत्वा विशसते
नदीम् । शूरास्थिचयसंकीर्णां प्रेतकुंलापहारिणीम् ॥ ४३ ॥ तां
शरौघमहाफेनां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् । नदीमुत्तीर्य वेगेन कुर्वन्
विद्राव्य पाण्डवः ॥ ४४ ॥ ततः किरीटी सहसा द्रोणानीकमुपा-

के दूसरे महारथियोंको वाणजालोंसे रोककर द्रोणाचार्य
युधिष्ठिरके रथके सामने नाश करनेवाले कालकी समान जाकर
खड़े होगये ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! उस समय युधिष्ठिरकी सेनामें “राजा
मरेगये, राजा मारेगये” इसप्रकार बड़ाभारी क्रोलाहल होरहा
था, उस समय द्रोणाचार्य युधिष्ठिरके रथके सामने खड़े थे ॥ ३९ ॥
द्रोणाचार्यके ऐसे पराक्रमको देखकर सब सैनिक कहनेलगे, कि
आज दुर्योधन निश्चयही कृतार्थ होगा ॥ ४० ॥ और युद्धमें इस
ही क्षणमें द्रोण युधिष्ठिरको पकड़कर हर्षित होतेहुए हमारे महा-
राज दुर्योधनके पास लावेंगे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार तुम्हारी ओरके
महारथी कह रहे थे, कि इतनेमेंही कुन्तीका पुत्र महारथी अर्जुन
रथके शब्दसे रणभूमिको गुञ्जारताहुआ, वेगके साथ तहाँ आप-
हुँचा ॥ ४२ ॥ रुधिररूपी जल, रथरूपी भँवरवाली, शूरोंकी
अस्थियोंसे भरीहुई, प्रेतरूपी किनारेको तोड़नेवाली, वाणोंके
समूहरूप भागोंवाली, मुद्गररूपी मच्छोंसे भरपूर रणनदीको
शीघ्रताके साथ तर कर कौरवोंको युद्धमेंसे भगाने लगा ॥ ४३-४४ ॥

द्रवत् । छादयन्निपुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४५ ॥ शीघ्रमभ्य-
स्यतो वाणान् सन्दधानस्य चानिशम् । नान्तरं ददृशे कश्चित्
कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥ ४६ ॥ न दिशो नान्तरिक्षञ्च न धौर्नैव
च मेदिनी । अदृश्यन्त महाराज वाणभूता इवाभवन् ॥ ४७ ॥
नादृश्यत तदा राजस्तत्र किञ्चन संयुगे । वाणान्धकारे महति कृते
गाण्ढीवधन्वना ॥ ४८ ॥ सूर्ये चास्तमनुपाप्ते तमसा चाभिसंवृते ।
नाज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च करचन ॥ ४९ ॥ ततोवहारं चक्रु-
स्ते द्रोणदुर्योधनादयः । तान् विदित्वा पुनस्त्रस्तानयुद्धमनसः
परान् ॥ ५० ॥ स्वान्यनीकानि यीमत्सुः शनकैरवहारयत् । ततो-
भितुष्टुः पार्थ प्रहृष्टाः पांडुसृजयाः ॥ ५१ ॥ पञ्चालाश्च मनोज्ञा-

और शत्रुओंको अचेत करता हुआ अर्जुन वाणोंके घडेपारी जाल
से द्रोणकी सेनाको ढकता हुआ उनके शिरपर आपहुँचा ॥ ४५ ॥
यशस्वी अर्जुन जब शीघ्रतासे वाणोंको फेंकता और सदा-
सद चढ़ाता था, उस समय, क्या कर रहा है, यह
किसीको भी प्रतीत नहीं होता था ॥ ४६ ॥ हे राजन् !
दिशाएँ, अन्तरिक्ष, आकाश, पृथ्वी ये सब वाणोंसे द्वाजानेके
कारण नहीं दीखते थे, किन्तु सब वाणमय ही हो रहा था ॥ ४७ ॥
हे राजन् ! जब अर्जुनने वाणोंसे घोर अंधकार कर दिया था
उस समय तहाँ कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥ ४८ ॥ इतनेमें
सूर्य अस्त हुआ और आकाश धूलिके अन्धकारसे भर गया, इस
कारण तहाँ शत्रु या मित्र कोई भी मालूम नहीं होता था ॥ ४९ ॥
उस समय द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदिने अपनी सेनाको युद्ध
बन्द करनेकी आज्ञा दी, शत्रुपक्षके योधाओंको त्रस्त तथा युद्ध
करनेमें मन न लगाते देखकर धनञ्जय अपनी सेनाको धीरे-
धीरे वावनीकी ओरको लेचला, उस समय अतिप्रसन्न हुए पाण्डव
सृजय और पञ्चाल जैसे अपि सूर्यकी स्तुति करते हैं तैसेही

भिर्वाग्भिः सूर्यमिवर्षयः । एवं स्वशिविरं प्रायाजिज्जत्वा शत्रून् धन-
ञ्जयः ॥ ५२ ॥ पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै सकेशवः ॥ ५३ ॥
मसारगन्धर्वकुन्वर्णरूप्यैर्वज्रप्रवालस्फटिकैश्च मुख्यैः । चित्रे रथे
पाण्डुसुतो बभासे नक्षत्रचित्रे वियतीव चन्द्रः ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि

प्रथमदिवसावहारे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

समाप्तञ्च द्रोणाभिषेकपर्व

अथ संशसकवधपर्व

सञ्जय उवाच । ते सेने शिविरं गत्वा न्यविशेतां विशाम्पते ।
यथाभागं यथान्यायं यथाशुल्मञ्च सर्वशः ॥ १ ॥ कृत्वावहारं
सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मेनाः ॥ दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सब्रीडमिदमब्रवीत् २
उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनञ्जये । शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे

मनोहर बाणीसे पार्थकी स्तुति करनेलगे, तब शत्रुओंको जीतकर
प्रसन्न होताहुआ अर्जुन, श्रीकृष्णके साथ सब सेनाके पीछे २
अपनी छावनीमें चलागया, उस समय इन्द्रनील, पद्मराग, सुवर्ण,
हीरे, मूंगे तथा स्फटिकोंसे शोभायमान रथमें बैठाहुआ अर्जुन
नक्षत्रोंसे विचित्र प्रतीत होतेहुए आकाशमें चन्द्रमाकी समान
शोभा पारहा था ॥ ५०-५४ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

द्रोणाभिषेक पर्वसमाप्त

* अथ संशसकवधपर्व *

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! वे दोनों पक्षकी सेनायें और
सेनापति अपनी २ छावनियोंमें जाकर विभागके अनुसार अपने २
सेनाविभागमें विश्राम लेनेलगे ॥ १ ॥ अत्यन्त खिन्न मनवाले
द्रोणाचार्य सेनाको लौटाकर दुर्योधनको देख लजाते हुए यह
वचन बोले, कि-॥ २ ॥ मैंने यह पहिले ही कहा था, कि-संग्राममें
अर्जुनके पास रहने पर देवता भी युधिष्ठिरको नहीं पकड़

देवैरपि युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ इति तद्वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे ।
 मा विशङ्कीर्ष्यो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ४ ॥ अपनीते तु
 योगेन केनचिच्छवेतवाहने । तत एष्यति ते राजन् वशमपि युधि-
 स्थिरः ॥ ५ ॥ कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु । तमजित्वा
 न कौन्तेयो निवर्त्तत कथञ्चन ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शुन्ये धर्म-
 राजमहं वृष । ग्रहीष्यामि चमूं भित्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ ७ ॥
 अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम् । मामुपायातमालोक्य
 गृहीतं विद्धि पाण्डवम् ॥ ८ ॥ एवन्तेहं महाराज धर्मपुत्रं युधि-
 स्थिरं । समानेष्यामि सगणं वशमद्य न संशयः ॥ ९ ॥ यदि तिष्ठति
 संग्रामे मृदुर्त्तमपि पाण्डवः । अथापयाति संग्रामाद्विजयात्तद्विशि-
 ष्यते ॥ १० ॥ सञ्जय उवाच । द्रोणस्य तद्वचः श्रुत्वा त्रिगर्ताधि-

सकृते ॥ ३ ॥ तुम सवने यज्ञ किया, परन्तु अर्जुनके युधिष्ठिरके
 पास आजाने पर वह सब निष्फल होगया, मेरे इस वचन पर
 सन्देह न करना, कि-कृष्ण और अर्जुन अजेय हैं ॥ ४ ॥
 यदि किसी उपायसे अर्जुनको युधिष्ठिरके पाससे दूर ले जासको
 तो राजा युधिष्ठिर तुम्हारे वशमें आजानेगे ॥ ५ ॥ कोई युद्धमें
 अर्जुनको बुलाकर उसको दूसरे स्थान पर लेजाय, तो कुन्तीपुत्र
 अर्जुन उसको जीते विना पीछेको लौटनेवाला नहीं है ॥ ६ ॥
 इस बीचमें मैं धर्मराजको, अकेला पाकर धृष्टद्युम्नकी आँखोंके
 सामने सेनाको भेदकर पकड़ूँगा ॥ ७ ॥ अर्जुनके हटजाने पर
 यदि धर्मराज युधिष्ठिर मुझे आताहुआ देखकर रणको छोड़कर
 नहीं भागेगा तो तू उसको पकड़ाहुआ ही जानना ॥ ८ ॥ राजा
 युधिष्ठिर संग्राममें दो घड़ा खड़े रहें, भागें नहीं, तो हे महाराज !
 निःसन्देह सेनासहित राजा युधिष्ठिरको वशमें हुआ जान और
 ऐसा होने पर मैं उसको जीतसे अधिक महत्त्वकी बात मानता
 हूँ ॥ ९-१० ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! द्रोणाचार्यकी

पतिस्तदा । आतृभिः सहितो राजन्तिदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥
 वयं विनिकृता राजन् सदा गाण्डीवधन्वेना । अजन्मः स्वपि आग-
 स्तत् कृतमस्मासु तेन वै ॥ १२ ॥ ते वयं स्मरमाणास्तान् विनिका-
 रान् पृथग्विधान । क्रोधाग्निना दह्यमाना न शोमहि सदा निशि १३
 स नो दिष्ट्यास्त्रिसम्पन्नश्चक्षुर्विषयमागतः । कर्तारः स्म वयं कर्म
 यच्चिकीर्षाम हृदयतम् ॥ १४ ॥ भवतश्च प्रियं यत्स्यादस्माकञ्च
 यशस्करम् । वयमेनं हनिष्यामो निकृष्यामो धनाद्वहिः ॥ १५ ॥
 अद्यास्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्त्ताथ वा पुनः । सत्यं ते प्रतिजानीमो
 नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥ १६ ॥ एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यवर्मा
 च भारत । सत्यव्रतश्च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च ॥ १७ ॥
 सहिता आतारः पञ्च रथानामयुतेन च । न्यवर्त्तत महाराज कृत्वा
 शपथमोहवे ॥ १८ ॥ मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।

इस बातको सुनकर भाइयों सहित त्रिगर्तराजने यह बात कही,
 कि—॥ ११ ॥ हे राजन् ! अर्जुन सदा हमारा अपमान किया
 करता है, हे राजन् ! हम निरपधियोंका भी वह अनिष्ट किया
 करता है ॥ १२ ॥ हम उन भोगेहुए तिरस्कारोंको सोचकर
 क्रोधाग्निसे भस्म हो रहे हैं, और हमें रात्रिमें निद्रा भी नहीं आती
 है ॥ १३ ॥ इसलिये यदि प्रारब्धवश अस्त्रधारी अर्जुन हमारे
 नेत्रोंके सामने पड़ गया तो जो हमारे चित्तमें है उसको पूरा
 करेंगे ॥ १४ ॥ यह काम आपको प्रिय होगा और हमें यश देने
 वाला होगा, इस प्रकार हम अर्जुनको रणमेंसे बाहर ले जाकर
 उसका वध करेंगे ॥ १५ ॥ हम सत्यकी सौगन्ध खाकर कहते
 हैं, कि—“आज पृथ्वी या तो त्रिगर्तोंसे रहित होगी या अर्जुनसे
 ही रहित होगी” इसमें उलटफेर नहीं होसकता ॥ १६ ॥
 हे राजन् ! सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मने
 सौगन्ध खाकर कहा, कि—“हम दश हजार रथियोंको साथ लेकर

सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ॥ १६ ॥ मावेन्नलकैर्ल-
लित्यैश्च सहितो मद्रकैरपि । रथानामयुतेनैव सोगमत् भ्रातृभिः
सह ॥ २० ॥ नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः । समुत्थितं
विशिष्टानां शपथार्थमुपागमत् ॥ २१ ॥ ततो ज्वलनमानर्च्य हुत्वा
सर्वे पृथक् पृथक् । जगृहुः कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च २२
ते च बद्धतनुत्राणां घृताक्ताः कुशचीरिणः । मौर्वीमेखलिनी वीराः
सहस्रशतदक्षिणाः ॥ २३ ॥ यज्वानः पुत्रिणो लोक्याः कृतकृत्या-
स्तनुत्यजः । योक्ष्यमाणास्तदात्मानं यशसा विजयेन च ॥ २४ ॥
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः । प्राप्यान् लोकान् सुयु-
द्धेन क्षिप्रमेव यियासवः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च निष्का-
न्दत्वा पृथक् पृथक् । गारुच वासांसि च पुनः समाभाष्य परस्प-

युद्ध करेंगे" ॥ १७-१८ ॥ मालवराज और तुण्डिकेरोंने तीस
हजार रथियोंको साथमें लेकर युद्धमें जानेकी प्रतिज्ञा की; नरव्याघ्र
सुशर्माने और प्रस्थलपति त्रिगर्तने मावेन्नलक, ललित्य, मद्रक और
भाइयों सहित दश सहस्र रथ साथमें ले जाकर लड़नेकी प्रतिज्ञा
की, तदनन्तर श्रेष्ठ २ दश सहस्र महारथी अलग २ शपथ करने
को उठे ॥ १६-२१ ॥ इसप्रकार, सर्वोंने इकट्ठे होनेके अनन्तर
शरीरों पर शकुनके लिये घी मला, स्नान किया और शुद्ध होकर
कुश तथा वस्त्र धारण करके अग्निदेवका पूजन किया, तदनन्तर
शरीरके ऊपर मये २ वस्त्र, मुञ्जमेखला और कवच धारण किये
तथा सैकड़ों सहस्रों सुवर्णकी मुहरें ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दीं ॥ २२-२३ ॥
यज्ञ करनेवाले, पुत्रवान्, पवित्रलोकमें जानेयोग्य, कृतकृत्य और
युद्धमें शरीरकी भी अपेक्षा न करनेवाले, यश तथा विजयको
पानेकी इच्छावाले वे वीर पुरुष ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन और बड़ी
बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे प्राप्त होने योग्य लोकोंको युद्धके द्वारा
शीघ्र ही जानेके मनोरथ कर रहे थे ॥ २४-२५ ॥ उन त्रिगर्तदेशके

रम् ॥ २६ ॥ प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपगम्य रणव्रतम् । तस्मि-
न्नग्नौ तदा चक्रुः प्रतिज्ञां दृढनिश्चयाः ॥ २७ ॥ मृतवतां सर्व-
भूतानामुच्चैर्वाचो बभाषिरे । सर्वे धनञ्जयवधे प्रतिज्ञां चापि
चक्रिरे ॥ २८ ॥ ये वै लोकाश्चाव्रतिनां ये चैव ब्रह्मघातिनां । मद्यपस्य
च ये लोका गुरुदाररतस्य च ॥ २९ ॥ ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राज-
पिडापहारिणः । शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा धनतः ३०
अंगारदाहिनाञ्चैव ये च गां निघ्नतामपि । अपकारिणाञ्च ये लोका
ये च ब्रह्मद्विषामपि ॥ ३१ ॥ स्वभार्यापृतुकालेषु मोहाद्वै नाभिगच्छ-
ताम् । श्राद्धमैथुनिकानाञ्च ये चाप्यात्मापहारिणाम् ॥ ३२ ॥

वीरोंने ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त करके दक्षिणामें सुवर्णकी मुहरें,
गोएँ और वस्त्र दिये, फिर आपसमें सम्भाषण किया, तदनन्तर
रणव्रत (केसरिया व्रत) को धारण करके और अग्निको प्रज्व-
लित कर उसके सामने खड़े होकर दृढनिश्चयवाले त्रिगताँने सब
मनुष्योंको सुनातेहुए उच्च स्वरसे प्रतिज्ञा की, कि-यदि हम अर्जुन
को बिनापारे लौटें अथवा उसके पीड़ा देने पर व्रस्त होकर
भागें तो व्रत न करनेवालोंको जो लोक मिलते हैं, ब्रह्मघातियोंको
जो लोक मिलते हैं, जिन लोकोंमें शराबी, गुरुपत्नीगामी,
ब्राह्मणके धनको छीननेवाले, राजाके पिण्डको लुप्त करनेवाले,
शरणागतको त्यागनेवाले, माँगनेवालेके ऊपर प्रहार करनेवाले
जाते हैं और जिन लोकों (नरकों) में मकानोंमें आग देनेवाले,
गौहत्यारे, हितू पुरुषका अपकार करनेवाले और ब्रह्मद्वेषी पड़ते
हैं, उन लोकोंमें हम पड़ें और जिन लोकोंमें ऋतुकालके समय
अपनी स्त्रीके पास न जानेवाले और रजस्वलासे समागम करने
वाले तथा श्राद्धके दिन भी मैथुन करनेवाले, अपनी जातिको
छुपानेवाले, धरोहरको हड़प जानेवाले और वेदका उल्टा अर्थ करके
उसको नष्ट करनेवाले और नपुंसकोंसे युद्ध करनेवाले, नीचोंका

न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयताञ्च ये । क्लीबेन युध्यमानानां
 ये च नीचानुसारिणाम् ॥ ३३ ॥ नास्तिकानाञ्च ये लोका ये नि-
 मातृपितृत्यजाम् । तानानुयामहे लोकान् ये च पापकृतामपि ३४
 यद्यहन्ता वयं युद्धे निवर्त्तेम धनञ्जयम् । तेन चाभ्यर्दितास्त्रासाञ्ज-
 वेमहि परांमुखाः ॥ ३५ ॥ यदि त्वमुक्तरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे ।
 इष्टाल्लोकान् प्राप्नुयामो वयमद्य न संशयः ॥ ३६ ॥ एवमुक्त्वा
 तदा राजंस्तेभ्यवर्त्तन्त संयुगे । आहूयन्तार्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं
 प्रति ॥ ३७ ॥ आहूतस्तेन रव्याघ्रैः पार्थ । परपुरञ्जयः । धर्मराज-
 मिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ३८ ॥ आहूतो न निवर्त्तेयमिति
 मे व्रतमाहितम् । संशप्तकाश्च मां राजन्नाह्वयन्ति महामृधे ॥ ३९ ॥
 एष च भ्रातृभिः सार्द्धं मुशर्माह्वयते रणे । वधाय सगणस्यास्य
 मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४० ॥ नैतच्छक्नोमि संसोदुमाह्वानं पुरुषर्षभ ।
 सत्यं ते प्रतिजानामि हतान् विद्धि परान् युधि ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिर

अनुसरण करनेवाले, नास्तिक अग्निहोत्र त्यागनेवाले तथा पापी
 माता पिताको त्यागनेवाले, पढ़ते हैं उन लोकों (नरकों) में हम
 पढ़ें ॥ ३६-३५ ॥ और यदि आज हम युद्धमें महादुष्कर कर्म
 करके विजय पावें तो निःसन्देह हमारा पवित्र लोकोंमें निवास
 हो ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार कहकर वे अर्जुनको बुलाते हुए
 दक्षिणदिशाकी ओर युद्ध करनेके लिये चलेगये ॥ ३७ ॥ शत्रु-
 पुरञ्जय अर्जुनने उन नरव्याघ्रोंके बुलाने पर धर्मराजसे शीघ्रताके
 साथ यह बात कही कि-॥ ३८ ॥ हे राजन् ! मेरा यह व्रत है
 कि-किसीके युद्ध करनेको बुलाने पर मैं हटता नहीं हूँ, और
 संशप्तक मुझे बुलारहे हैं ॥ ३९ ॥ यह भाइयों सहित मुशर्मा मुझे
 युद्धमें बुलारहा है, अतः सेनासहित इसका वध करनेकी मुझे
 आज्ञा दाजिये ॥ ४० ॥ हे पुरुषर्षभ ! मुझे उनका यह बुलावा
 असह्य होरहा है, हे राजन् ! यह तुम सत्य जानो, कि-मैं युद्ध

उवाच । श्रुतं ते तत्त्वतस्तत् यद् द्रोणस्य चिकीर्षितम् । यथा तद-
 वृतं तस्य भवेत् त्वं समाचर ॥ ४२ ॥ द्रोणो हि बलवान् शूरः
 कृतास्त्रश्च जितश्रमः । प्रतिज्ञातञ्च तेनैतत् ग्रहणं मे महारथ ॥ ४३ ॥
 अर्जुन उवाच । अयं वै सत्यजिद्राजन्नेव त्वां रक्षिता युधि ।
 ध्रियमाणो तु पाञ्चाल्ये नाचार्यः काममाप्स्यति ॥ ४४ ॥ इते
 तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो । सर्वैरपि समेतैर्वा न स्थातव्यं
 कथञ्चन ॥ ४५ ॥ सञ्जय उवाच । अमुज्ञातस्ततो राशा परिष्व-
 क्तश्च फाल्गुनः । प्रेम्णा दृष्टश्च बहुधा हाशिषश्चास्य योजिताः ४६
 विहायैनं ततः पार्थस्त्रिगर्तान् प्रत्ययाद्वली । लुपितः लुब्धितातार्थं
 सिंहो मृगगणान्निव ॥ ४७ ॥ ततो दुर्योधनं सैन्यं मुदा परमया
 मै शत्रुओंको मारडालूंगा ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-हे तात
 तुमने द्रोणकी इच्छाको भलीप्रकार सुनलिया है, अतः अब जैसे
 यह विध्या होजाय, वह उपाय कर ॥ ४२ ॥ द्रोण बलवान् है,
 शूर है, अस्त्रविद्यामें पारङ्गत है, परिश्रमको कुछ न समझनेवाले है,
 हे महारथ ! उन्होंने मुझे पकड़नेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ४३ ॥
 अर्जुनने कहा कि-हे राजन् ! आज युद्धमें यह सत्यजित् तुम्हारी
 रक्षा करेगा, सेनाका भार जबतक सत्यजित्के हाथमें रहेगा तब
 तक द्रोणाचार्यका मनोरथ सिद्ध नहीं होगा ॥ ४४ ॥ हे प्रभो !
 पुरुषव्याघ्र सत्यजित्के मारेजाने पर चाहे हमारे पक्षके सब योधा
 तुम्हारे पास इकठे हों तो भी तुम युद्धमें कदापि न रुकना ॥ ४५ ॥
 सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! तदनन्तर धर्मराजने अर्जुनको
 हृदयसे लगाया वारम्बार प्रेमपूर्वक उसकी ओरको देखा
 और आशीर्वाद देकर जानेकी आज्ञा दी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर जैसे
 भूखा सिंह मृगोंके ऊपर दौड़ता है तैसेही बलवान् अर्जुन अपने
 भाइयोंके पाससे त्रिगर्तोंके ऊपर झूपटा ॥ ४७ ॥ अर्जुनके चले
 जाने पर दुर्योधनकी सेना आनन्दमें भर गई और क्रोधमें भरकर

युतम् । ऋतेर्जुनं भृशं क्रुद्धं धर्मराजस्य निग्रहे ४८ ततो न्योन्येन ते
सैन्ये समाजगमतुरोजसा । गङ्गायमुनद्वद्रेगात् प्रावृषीवोल्बणोदके ४९
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
धनञ्जययाने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच । ततः संशप्तका राजन् समे देशे व्यवस्थिताः ।
व्यूहानीकं रथैरेव चन्द्राकारं मुदा युताः ॥ १ ॥ ते किरीटिनमा-
यान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष । उदकोशननरव्याघ्राः शब्देन महता तदा २
स शब्दः प्रदिशः सर्वा दिशः खञ्ज समावृणोत् । आवृतत्वाच्च लोकस्य
नासीत्तत्र प्रतिस्वनः ॥ ३ ॥ सोऽतीव सम्प्रहृष्टास्तानुपलभ्य धनं-
जयः । किञ्चिदभ्युत्सम्यन् कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥ पर्यै-
तान् देवकीमातर्मुमूर्षूनद्य संयुगे । आतस्त्रैगर्त्तकानेवं रोदितव्ये
प्रहर्षितान् ॥ ५ ॥ अथवा हर्षकालोयं त्रैगर्त्तानामसंशयम् । कुनरै-

धर्मराजको पकडनेका उद्योग करने लगी ॥ ४८ ॥ तदनन्तर वे
दोनों सेनाएँ जैसे वर्षाकालमें भयंकर जलवाली गङ्गा और यमुना
मिलती हैं, तैसेही एक दूसरीसे टकरा गई ॥ ४९ ॥ सत्रहवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ छ

संजयने कहा, कि—हे राजन् ! तदनन्तर चौरस भूमिमें संशप्तकों
ने अपनी सेनाके रथोंको चन्द्राकारसे खड़ा किया और आनन्दमें
भरकर खड़े हो गये ॥ १ ॥ हे महाराज ! उन नरव्याघ्रोंने
अर्जुनको आताहुआ देखकर हर्षके साथ बड़ा भारी कोलाहल
मचाया ॥ २ ॥ उस शब्दसे दिशाएँ और दिशाओंके कोने भर
गए, संसारभरमें गूँज जानेके कारण उसकी प्रतिध्वनि भी नहीं
हुई ॥ ३ ॥ अर्जुनने उनको बड़े भारी हर्षमें भराहुआ देख कुछ
हँसकर श्रीकृष्णसे कहा, कि—॥ ४ ॥ हे देवकीनन्दन ! इन मरने
वाले त्रिगर्त्तवन्धुओंको तो देखो, ऐसे युद्धके समयमें इनको रोना
चाहिये था परन्तु ये हर्ष मनारहे हैं ॥ ५ ॥ अथवा यह इनके

दुरवापान् हि लोकान् प्राप्स्यन्त्यनुत्तमान् ॥ ६ ॥ एवमुक्त्वा
महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः । आससाद रणे व्यूढां त्रिगर्ताना-
मनीकिनीम् ॥ ७ ॥ स देवदशमादाय शंखं हेमपरिष्कृतम् । दध्मौ
वेगेन महता घोषेणापूरयन् दिशः ॥ ८ ॥ तेन शब्देन विवस्ता
संशप्तकवरुथिनी । विचेष्टावस्थिता संख्ये ह्यस्मसारमयी यथा ह
वाहास्तेषां विवृत्ताक्षाः स्तब्धकर्णशिरोधराः । विवृब्धचरणा मूत्रं
रुधिरञ्च प्रसुप्तवुः ॥ १० ॥ उपलभ्य ततः संज्ञामवस्थाप्य च वाहि-
नीम् । युगपत् पाण्डु पुत्राय चित्तिपुः कङ्कपत्रिणः ११ तान्यर्जुनः
सहस्राणि दशपञ्चभिराशुगैः । अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाशु
पराक्रमी ॥ १२ ॥ ततोऽर्जुनं शितैर्वाणैर्दशभिर्दशभिः पुनः ।
प्राविध्यन्तः ततः पार्थस्तानविध्यत् त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १३ ॥ एकै-

हंसनेका ही समय है, क्योंकि—ये दुष्टात्मा कठिनतासे मिलनेवाले
श्रेष्ठ लोकोंमें जावेंगे ॥ ६ ॥ महाबाहु अर्जुन श्रीकृष्णसे इस
प्रकार कहताहुआ रणमें व्यूहचरणासे खड़ीहुई त्रिगर्तोंकी सेनाके
पास पहुँचगया ॥ ७ ॥ और उसने सुवर्णको पत्थरोंसे मढ़ेहुए
देवदत्त नामक शंखको ऐसे वेगसे बजाया कि—उस बड़े भारी
शब्दसे दिशाएँ गूँजने लगीं ॥ ८ ॥ संशप्तकोंकी सेना अर्जुनके
शंखसे सहम कर युद्धमें निश्चेष्ट हो पत्थरकी समान रह गई । ९ ।
और उनके हाथी घोड़ोंकी आँखें फैल गई तथा कान और केश
स्तब्ध होगये, पैर मुन्न होगये और वे घबड़ाकर मृतनेलगे तथा
रुधिर ओकनेलगे ॥ १० ॥ कुछ समयके बाद त्रिगर्तोंको भान
हुआ और उन्होंने अपनी सेनाको ठीक करके एक साथ अर्जुनके
ऊपर कंकपत्रवाले बाणोंकी बौझार कर दी ॥ ११ ॥ फुर्तीले
पराक्रमी अर्जुनने आतेहुए उन सहस्रों बाणोंको मार्गमें ही
बाणोंसे काटकर फेंक दिया ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन्होंने दश २
बाण मारकर अर्जुनको बँध डाला, तब अर्जुनने उनके ऊपर

कस्तु ततः पार्थ राजन् विव्याध पञ्चभिः । स च तान् प्रतिवि-
 च्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमी ॥ १४ ॥ भूय एव तु संकुटम्ब-
 ज्जुनं सहकेशवम् । आपूरयन् शरैस्तीक्ष्णैस्तडागमिव वृष्टिभिः १५
 ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नज्जुनं प्रति । भ्रमराणामिव आताः फुल्ल-
 द्रुमगणं बने ॥ १६ ॥ ततः सुबाहुस्त्रिंशद्भिरद्रिसारमयैः शरैः ।
 अविध्यदिपुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम् ॥ १७ ॥ तैः किरीटी
 किरीटस्थैर्हमपुं खैरजिह्वगैः । शातकुम्भमयापीडो बभौ सूर्य इवो-
 त्थितः ॥ १८ ॥ हस्तावापं सुबाहोस्तु भवलेन युधि पाण्डवः ।
 चिच्छेद तज्जैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥ ततः सुशर्मा
 दशभिः सुरथस्तु किरीटिनम् । सुधर्मा सुधनुश्चैव सुबाहुरच समा-
 र्पयन् ॥ २० ॥ तांस्तु सर्वान् पृथग्वाणैर्वानरप्रवरध्वजः । प्रत्य-

तीन तीन बाण छोड़े ॥ १३ ॥ उनमेंसे एक २ने पाँच पाँच बाण
 मारकर अर्जुनको बीधदिया और अत्युत्कट बली अर्जुनने भी
 उनमेंसे हर एकके दो २ बाण मारे ॥ १४ ॥ जैसे तालावके ऊपर
 बूँदें पड़ती हैं इसीप्रकार फिर भी क्रोधमें भरेहुए त्रिगतोंने श्रीकृष्ण
 सहित अर्जुनको तीक्ष्ण बाणोंसे ढकदिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर
 अर्जुनके ऊपर सैंकड़ों बाण ऐसे गिरनेलगे जैसे कि-वनमें खिले
 हुए वृक्षोंपर भीरोंके झुण्ड टूट पड़ते हैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर सुबाहु
 ने पर्वतकेसे तीस बाण जोरके साथ मारकर अर्जुनके किरीटको
 बीधडाला ॥ १७ ॥ सीधे जानेवाले, सुवर्णकी पूँछवाले किरीटमें
 स्थित उन बाणोंसे अर्जुन, सुवर्णका मुकुट पहनकर उदय होतेहुए
 सूर्यकी समान प्रकाशित हुआ ॥ १८ ॥ तदनन्तर रणाङ्गणमें
 अर्जुनने सुबाहुके हाथके दस्तानेको भालेसे काटडाला और
 फिर उसको बाणोंकी वर्षासे ढकदिया ॥ १९ ॥ तदनन्तर सुधन्वा,
 सुगर्मा, सुरथ, सुधनु और सुबाहुने अर्जुनके दश २ बाणमारे २०
 वानरध्वज अर्जुनने उन बाणोंको भल्ल नामक बाणोंसे अलग २

विध्यत् ध्वजाश्चैषां भल्लैश्चिच्छेद सायकान् ॥ २१ ॥ सुधन्वनो
धनुश्छित्त्वा हयारचास्यावधोच्छरैः । अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः
कायादपातयत् ॥ २२ ॥ तस्मिन्निपतिते वीरे त्रस्तास्तस्य पदा-
नुगाः । व्यद्रवन्त भयाद्भीता यत्र दौर्योधनं बलम् ॥ २३ ॥
ततो जघान संकुद्धो वासविस्तो महाबलम् । शरजालैरविच्छिन्नै-
स्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥ २४ ॥ ततो भग्ने बले तस्मिन् विप्रलीने-
समन्ततः । सव्यसाचिनि संकुद्धे त्रिगतां भयमाविशत् ॥ २५ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन शरैः सन्नतपर्वभिः । अमुह्यस्तत्र तत्रैव त्रस्ता
मृगगणा इव ॥ २६ ॥ ततस्त्रिगर्त्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान् ।
अलं द्रुतेन वः शूरा न भयं कर्तुं मह्यम् ॥ २७ ॥ शप्त्वाथ शप-

काटकर फेंकदिया और इनकी ध्वजाको भी बाणोंसे काटकर
गिरादिया ॥ २१ ॥ फिर अर्जुनने बाणोंसे सुधन्वाके धनुषके
टुकड़े २ करदिये तथा उसके घोड़ोंको मारडाला और उसके
टोपसहित मस्तकको घडसे अलग करदिया ॥ २२ ॥ वीर सुधन्वाके
गिरजाने पर उसके साथी भयभीत होगए और डरकर दुर्यो-
धनकी सेनाको ओरको दौड़नेलगे ॥ २३ ॥ उस समय क्रोधमें
भरेहुए अर्जुनने लगातार बाण मारकर उस सेनाका इसप्रकार
नाश करदिया कि-जैसे सूर्य किरणोंसे अन्धकारको नष्ट कर
हालता है ॥ २४ ॥ तदनन्तर त्रिगर्त्तोंकी सेनामें भागड़ पड़ गई
चारों ओर भग्न होगया और अर्जुन बड़े भारी क्रोधमें भरगया
यह देखकर त्रिगर्त्त भयभीत होगये अर्जुन नमी हुई गांठोंवाले
बाणोंसे त्रिगर्त्तोंके ऊपर प्रहार कर रहा था, इसलिये वे डरेहुए
मृगोंके झुण्डकी समान जहाँके तहाँ ही मूर्छित होगए ॥ २६ ॥
यह देखकर क्रोधमें भरेहुए त्रिगर्त्तराजने उन-महारथियोंसे कहा
कि-अरे बस बहुत भागचुके ! हे शूरों ! तुमको डरना नहीं
चाहिये ॥ २७ ॥ बताओ तो तुमने सकल सेनाके सामने घोर

थान् घोरान् सर्वसैन्यस्य पश्यतः । गत्वा दुर्योधनं सैन्यं किं वै
वक्ष्यथ मुह्यशः ॥ २८ ॥ नावहास्याः कथं लोके कर्मणानेन
संयुगे । भवेम सहिताः सर्वे निवर्त्तध्वं यथावलम् ॥ २९ ॥ एव-
मुक्तास्तु ते राजन्नुदकोशन्मुहुर्मुहुः । शङ्कांश्च दधिपरे वीरा इर्ष-
यन्तः परस्परम् ॥ ३० ॥ ततस्ते सन्यवर्त्तन्त संशप्तकगणाः
पुनः । नारायणाश्च गोपाला मृत्युं कृत्वाऽनिवर्त्तनम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि

सुधन्ववधे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच । दृष्ट्वा तु सन्निवृत्तांस्तान् संशप्तकगणान् पुनः ।
वासुदेवं महात्मानमर्जुनः समभाषत ॥ १ ॥ चोदयस्वान् हृषी-
केश संशप्तकगणान् प्रति । नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे
मतिः ॥ २ ॥ पश्य मेऽस्त्रवलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च । अघौ-

शपथ खाई है तो फिर अब दुर्योधनकी सेनामें जाकर उनको क्या
उत्तर दोगे ? ॥ २८ ॥ अरे ! हम सब ऐसा करनेसे संसारमें
हास्यके पात्र कैसे नहीं होंगे ? अतः हम सबोंको इकट्ठा होना
चाहिये और शक्तिके अनुसार पराक्रम दिखाना चाहिये ॥ २९
॥ हे राजन् ! त्रिगर्तराजके ऐसा कहनेपर वे वीर आपसमें एक
दूसरेको प्रसन्न करते हुए कोलाहल मचाने लगे तथा बारम्बार
शंखोंको बजाने लगे ॥ ३० ॥ तदनन्तर वे संशप्तक और नारा-
यण नामक ग्वाले मृत्युकी परवाह न करते हुए लड़नेको लौट
आए ॥ ३१ ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

उन संशप्तकगणोंको फिर लौटा हुआ देखकर अर्जुनने महात्मा
श्रीकृष्णसे कहा, कि—॥ १ ॥ हे हृषीकेश ! संशप्तकोंकी ओर
घोड़ोंको बढ़ाइये मेरा ऐसा ध्यान है कि—ये जीते जी तो संग्राम
को छोड़ेंगे नहीं ॥ २ ॥ आज आप मेरे अस्त्रवलको, सुगन्धवलको
और भयङ्कर अस्त्रोंको फेंकनेके बलको देखिये मैं इनको आज

तान् पातयिष्यामि क्रुद्धो रुद्रः पशुनिव ॥ ३ ॥ ततः कृष्णस्मितं
 कृत्वा प्रतिनन्द्य शिवेन तम् । प्रावेशयत दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदजुनः ४
 स रथो आजतेत्यर्थमुल्लमानो रणे तदा । उल्लमानमिवाकाशे
 विमानं पाण्डुरैर्हयैः ॥ ५ ॥ मण्डलानि ततश्चक्र गतप्रत्यागतानि
 च । यथा शक्ररथो राजन् युद्धे देवासुरे पुरा ॥ ६ ॥ अथ नारा-
 यणाः क्रुद्धा विविधायुधपाणयः । ह्यदयन्तः शरव्रातैः परिवव्रुर्धन-
 झयम् ॥ ७ ॥ अदृश्यञ्च मुहूर्त्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ । कृष्णेन
 सहितं युद्धे वृन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ८ ॥ क्रुद्धस्तु फाल्गुनः संख्ये
 द्विगुणीकृतविक्रमः । गाण्डीवं धनुरामृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे ९
 बध्वा च भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्थं प्रतिलक्षणम् । देवदत्तं महाशङ्खं

ऐसे नष्ट करूँगा जैसे रुद्र प्रलयके समय प्राणियोंका संहार करते
 हैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णने मुसकराकर अर्जुनको अभि-
 नन्दन करते हुए कहा कि—तेरा कन्याण हो तदनन्तर अर्जुनने
 जहाँ रथ लेचलेनेको कहा तहाँ रथ लेगए ॥ ४ ॥ उस समय
 श्वेत घोड़ोंसे शोभायमान आकाशमें चलायेहुए दैवी विमानकी
 समान अर्जुनका श्वेत घोड़ोंसे जुताहुआ रथ रणमें शोभा पारहा
 था ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जैसे पहिले देवासुर युद्धमें इन्द्रका रथ
 आता जाता था तैसे ही अर्जुनका रथ इस युद्धमें मण्डलाकारसे
 घूमनेलगा ॥ ६ ॥ तदनन्तर अनेकों आयुधोंको हाथमें ले क्रोधमें
 भरे और बाणोंकी बौछार करते हुए नारायणोंने चारों ओरसे
 अर्जुनको घेरलिया ॥ ७ ॥ हे भरतसत्तम ! उन्होंने क्षण भरमें
 श्रीकृष्णसहित अर्जुनको युद्धमें (बाणोंसे छाकर) अदृश्य
 करदिया ॥ ८ ॥ तब अर्जुनको बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने दुगना
 पराक्रम कर क्रोधसूचक भ्रुकुटि चढ़ाई, गाण्डीव नामक धनुषको
 तयार किया और देवदत्त शंखको बजा, शत्रुसमूहको नष्ट करने
 वाले विश्वकर्मा नामक अस्त्रको त्रिगर्तोंकी सेनाके ऊपर फेंका

पूरयामास पाण्डवः ॥ १० ॥ अथास्त्रपरिसंघघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः । ततो रूपसहस्राणि प्रादुरासन् पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥ आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः । अन्योन्येनार्जुनं मत्वा स्वयात्मानञ्च जघ्निरे ॥ १२ ॥ अयमर्जुनोयं गोविन्द इमौ पाण्डवयादवौ । इति ब्रुवाणाः सम्मूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ १३ ॥ मोहिताः परमास्त्रेण क्षयं जग्मुः परस्परम् । अशोभन्त रणे योधाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ १४ ॥ ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात् । कृत्वा तदस्त्रं तान् वीराननयद्यमसादनम् ॥ १५ ॥ अथ महस्य बीभत्सुर्ललित्यान्मालवानपि । मावेल्लकास्त्रिगर्ताश्च यौधेयांश्चाहंश्चरैः ॥ १६ ॥ ते हन्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः । व्यसृजञ्छरजालानि पार्थे नानाविधानि च ॥ १७ ॥ न ध्वजो नार्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः । प्रत्यदृश्यत घोरेण शर-

देखते २ उसमेंसे वासुदेव और धनञ्जयके सहस्रो भिन्न २ रूप प्रकट होगये त्रिगर्त योधा कृष्ण और अर्जुनके अनेकों रूपोंको देखकर मोहमें पड़ गए और परस्परमें एक दूसरेको श्रीकृष्ण तथा अर्जुन मानकर यह गोविन्द है यह अर्जुन है यह यदुवंशी है, यह पाण्डुपुत्र है इसप्रकार कहते २ युद्धमें एक दूसरेको मारने लगे और मोह पाकर एक दूसरेसे लड़ते २ मर गए, उस समय युद्धमें घायल हुए योधा पुष्पयुक्त लोधके पेड़की समान शोभित हो रहे थे ॥ ८-१४ ॥ तदनन्तर वह अस्त्र उनके छोड़े हुए सैंकड़ों अस्त्रोंको भस्म करके उन वीरोंको थमलोकमें ले गया १५ तब तो अर्जुनने हँसकर ललित्य, मावेल्लक, मालव, त्रिगर्त और यौधेयोंको भी बाणोंसे पीड़ित करना आरम्भ कर दिया १६ उस वीरसे पीड़ा पाकर कालका निमन्त्रण पाये हुए वे क्षत्रिय भी अर्जुनके ऊपर नाना प्रकारकी बाणोंके जाल पूरने लगे १७ उस बाणवर्षासे दकजाने पर तहाँ न अर्जुन दिखाई देता था न

वर्षेण सम्प्लुतः ॥ १८ ॥ ततस्ते लब्धलक्षत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः ।
 हतौ कृष्णाविति प्रीत्या वासांस्यादुधुयुस्तदा ॥ १९ ॥ भेरीमृदङ्ग-
 शङ्खाश्च दध्नुर्वीराः सहस्रशः । सिंहनादरवाश्चोग्राश्चक्रिरे तत्र
 मारिष ॥ २० ॥ ततः प्रसिस्त्रिदे कृष्णः खिन्नश्चार्जुनमब्रवीत् ।
 कवासि पार्थ न पश्ये त्वां कच्चिज्जीवसि शत्रुहन् ॥ २१ ॥ तस्य
 तज्ज्ञापितं श्रुत्वा त्वरमाणो धनञ्जयः । वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शर-
 वृष्टिमपाहरत् ॥ २२ ॥ ततः संशप्तकब्राह्मणं सारवद्वीपरथायुधानम् ।
 उवाच भगवान् वायुः शुष्कपर्णवयानिव ॥ २३ ॥ ब्रह्ममानास्तु ते
 राजन् ब्रह्मशोभन्त वायुना । प्रदीनाः पक्षिणः काले वृत्तेभ्य इव
 मारिष ॥ २४ ॥ तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनञ्जयः ।
 जघान निशितैर्बाणैः सहस्राणि शतानि च ॥ २५ ॥ शिरांसि

श्रीकृष्ण दिखाई पड़ते थे और न कहीं रथ ही दिखाई पड़ता
 था ॥ १८ ॥ जब अपने मारने योग्य कृष्ण और अर्जुन बाणों
 के समूहसे ढक गए, उस समय त्रिगर्त बड़े हर्षसे कहने लगे कि-
 श्रीकृष्ण और अर्जुन मारे गए तथा आनन्दमें भरकर आपसमें
 वस्त्र उज्जालने लगे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! वे वीर सहस्रों भेरी और
 मृदङ्गोंको बजाने लगे तथा सिंहनाद करने लगे ॥ २० ॥ परिश्रमसे
 पसीनेमें सराबोर हो खिन्न होतेहुए श्रीकृष्णने अर्जुनको पुकार
 कर कहा कि-हे अर्जुन ! तू कहाँ है तू मुझे दिखाई नहीं देता,
 हे शत्रुनाशन ! तू जीवित तो है ? ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णके ऐसे वचनों
 को सुनकर अर्जुनने शीघ्रताके साथ उनकी की हुई बाणवृष्टिको
 वायव्यास्त्रसे बखेर दिया ॥ २२ ॥ उस समय भगवान् पवनदेव,
 हाथी घोड़े और रथसहित त्रिगर्तोंको सूखेहुए पत्तोंके ढेरकी
 समान उड़ाकर लेगये ॥ २३ ॥ हे राजन् ! उस समय वायुसे उड़े
 हुए त्रिगर्त वृत्तोंपरसे उड़तेहुए पक्षियोंकी समान बड़े अच्छे मालूम
 होते थे ॥ २४ ॥ उनको इसप्रकार व्याकुल करके अर्जुनने

भल्लैरहनद्वाहूनपि च सायुधान् । हस्तिहस्तोपमाश्चोरून् शरै-
 र्वर्यामपातयत् ॥ २६ ॥ पृष्ठच्छिन्नान् विवरणान् बाहुपार्श्वक्ष-
 णाकुलान् । नानाज्ञावयवैर्हीनाश्चकारारीन् धनञ्जयः ॥ २७ ॥
 गन्धर्वनगराकारान् विधिवत् कल्पितान् रथान् । शरैर्विशकली
 कुर्वन् चक्रे व्यश्वरथाद्विपान् ॥ २८ ॥ मुण्डतालवनानीन् तत्र
 तत्र चक्राशिरे । छिन्ना रथध्वजव्राताः केचित्त्रक्वचित् क्वचित् २९
 सोत्तरायुधिनो नागाः सपताकांकुशध्वजाः । पेतुः शक्राशनिहना
 हुमवन्त इवाचलाः ॥ ३० ॥ चामरापीडकवचाः सस्तान्नयना-
 स्तथा । सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थवाणहताः क्षितौ ३१ ॥ विप्र-
 विद्धासिनखराशिक्षन्नवर्षपृष्ठशक्तयः । पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणाः

शीघ्रताके साथ बाण छोड़कर सदसों और सैंकड़ों त्रिगर्तोंको मार डाला ॥ २५ और भल्लोंमेंसे उनके शिरोंको काटलिया तथा बाणोंसे ही उनके हथियार सहित हाथोंको और हाथीकी नुँड की समान जंघाओंको पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ २६ ॥ तदनन्तर अर्जुन ने शत्रुओंके हाथ पैर, पसंजी और नेत्र आदि शरीरके अवयवों को काटकर उनको व्याकुल कर दिया ॥ २७ गन्धर्व नगरोंकी समान तथा बड़ी चतुरतासे बनाएहुए उनके रथोंके बाणोंसे धुरे बखेर कर अर्जुनने त्रिगर्तोंको हाथी घोड़े और रथोंसे शुन्य कर दिया ॥ २८ ॥ इधर उधर पड़ेहुए छिन्नभिन्न रथ और ध्वजाओंके समूह वनमें टूट कर पड़े हुए तालके समूहोंके समान शोभा पारहे थे ॥ २९ ॥ हाथी और उनके ऊपर बैठेहुए घोडा, पताका अंकुश और ध्वजायें भी अर्जुनके प्रहारसे रणमें ऐसे गिररहे थे, जैसे इन्द्रके वज्रका प्रहार होनेसे वृत्तोंके सहित पर्वत गिरते हैं ३० अर्जुनके बाणोंके प्रहारसे चमर, मुकुट, कवच और घुडसवारों सहित जिनकी आँते और आँखें निकलपड़ी थीं ऐसे घोड़े पृथ्वी में गिरनेलगे ॥ ३१ ॥ पैदलोंकी तलवारें और बाघनखके टुकड़े २

शरते हताः ॥ ३२ ॥ तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि । अम-
द्भिर्निष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं वभौ ॥ ३३ ॥ रजश्च सुमहज्जातं
शान्तं रुधिरवृष्टिभिः । मही चाप्यभवद् दुर्गा कबन्धशतसकुला ३४
तद्भौ रौद्रवीभत्सं वीभत्सोर्यानिमाहवे । आक्रीडमिव रुद्रस्य घ्नतः
कालात्यये पशून् ॥ ३५ ॥ ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्वरथ-
द्विपाः । तमेवाभिमुखाः क्षीणाः शक्ररयातिथितां गताः ॥ ३६ ॥
सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः । आस्तीर्णा सम्बभौ सर्वा
प्रेतीभूतैः समन्ततः ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे चैव प्रपत्ते सन्व्यसा-
चिनि । व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥ तं

होगए शरीर परके कन्नच फटगये और योधा बाणोंके महारसे
मरकर भूमिमें ढहपड़े ॥ ३२ ॥ इस प्रकार अर्जुनके मारेहुए, मरकर
भूमिमें पड़ेहुए, गिरतेहुए, चारों ओर घूमते और चिन्ताते हुए
योधाओंसे रणस्थल भयंकर होरहा था ॥ ३३ ॥ उड़ती हुई धूलि
भी रक्तकी वर्षासे दबगई थी और सैकड़ों मनुष्योंके घड़ोंसे भर
जानेके कारण पृथ्वी पर चलना भी कठिन होगया था ॥ ३४ ॥
प्रलयके समय प्राणियोंका संहार करतेहुए शिवकी क्रीड़ा जैसे
वीभत्स और रौद्रससे भरीहुई होती है ऐसे ही इस समय
अर्जुनकी युद्धक्रीड़ा वीभत्स और रौद्रससे भरीहुई थी ३५
अर्जुनके हाथसे मरे हुए वे त्रिगर्त और उन्नके घोड़े रथ तथा
हाथी व्याकुल होगए और घबड़ाहटके कारण अर्जुनकी ओरको
ही दौड़ते हुए मरकर इन्द्रके अतिथि वनगए ॥ ३६ ॥ हे भरत-
श्रेष्ठ ! रणमें मरकर प्रेतरूप पड़ेहुए महारथियोंसे ढकीहुई यह सब
रणभूमि बड़ी अच्छी मालूम होती थी ॥ ३७ ॥ इसप्रकार अर्जुन
मदमें मरकर त्रिगर्तोंको माररहा था, यह देख द्रोणाचार्य अपनी
सेनाको व्यूहरचनामें लाकर राजा युधिष्ठिरके ऊपर दूटपड़े ॥ ३८ ॥

प्रत्यगृह्यंस्त्वरिता व्यूढानीकाः महारिणः । युधिष्ठिरं परीप्सन्त-
स्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि अर्जुन-
संशप्तकयुद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच । परिणाम्य निशान्तां तु भारद्वाजो महारथः ।
उक्त्वा सुबहु राजेन्द्र वचनं वै सुयोधनम् ॥ १ ॥ विधाय योगं
पार्थेन संशप्तकगणैः सह । निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं
प्रति ॥ २ ॥ व्यूढानीकस्तनो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम् । अभ्य-
याद्भरतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया ॥ ३ ॥ व्यूढं दृष्ट्वा सुपर्णन्तु भार-
द्वाजकृतं तदा । व्यूहेन मण्डलाद्धेन प्रत्यव्यूहद युधिष्ठिरः । मुखं
त्वासीत् सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः ॥ ४ ॥ शिरो दुर्योधनो राजा
सोदर्यैः सानुगैर्वृतः । चक्षुषी कृतवर्मासीत् गौतमश्चास्यतां वरः ५

इतनेमेंही युधिष्ठिरकी रक्षा करनेवाले भी शीघ्रतासे व्यूहरचना
करके द्रोणके सामने लड़नेके तयार होगये और उन दोनोंमें घोर
युद्ध होनेलगा ॥ ३६ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे राजेन्द्र ! महारथी द्रोणाचार्यने वह रात
वितादी, दूसरे दिन दुर्योधनसे बहुतसे वचन कहे ॥ १ ॥ तथा
संशप्तकगणोंके साथ अर्जुनके लड़नेका ढङ्ग बनाया, जिससे कि
संशप्तकोंका वध करनेके लिये अर्जुन चलागया ॥ २ ॥ हे भरत-
श्रेष्ठ ! यह अवसर पा द्रोणाचार्य अपनी बड़ीभारी सेनाको
गरुड़-व्यूहमें रचकर धर्मराजको पकड़ने की इच्छासे पाण्डवोंकी
सेना पर जाचढे ॥ ३ ॥ द्रोणाचार्यके रचे हुए गरुड़-
व्यूहको देखकर राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाका मण्डला-
र्थव्यूह रचा, गरुड़व्यूहके मुखपर महारथी द्रोणाचार्य खड़ेहुए ॥ ४ ॥
और राजा दुर्योधन अपने छोटे भाइयों और अनुयायियोंके साथ
में लेकर उसके मस्तकपर खड़ा हुआ, उस व्यूहमें नेत्रोंके स्थानमें

भूनशर्मा क्षेमशर्मा करकाक्षश्च वीर्यवान् । कलिङ्गाः सिंहलाः
 प्राच्याः शूरा भीरा दशेरकाः ॥ ६ ॥ शका यवनकाम्बोजास्तथा
 हंसपथाश्च ये । ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः ॥ ७ ॥
 गजाश्वरथपत्न्योघास्तस्थुः परमदंशिताः । भूरिश्रवास्तथा शल्यः
 सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ ८ ॥ अक्षौहिण्या वृता वीरा दक्षिणं
 पार्श्वमाश्रिताः । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ९
 वामं पार्श्वं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रतः स्थिताः । पृष्ठे कलिङ्गाः
 साम्बघ्ना मागधाः पौण्ड्रमद्रकाः ॥ १० ॥ गन्धाराः शकुनाः प्राच्याः
 पार्वतीयाः वसातयः । पुच्छे वैकर्त्तनः कर्णः सपुत्रज्ञातिर्बाधवः ११
 महत्या सेनया तस्थौ नानाजनपदोत्थरा । जयद्रथो भीमरथः
 सम्पातिर्ऋषभो जयः ॥ १२ ॥ भूमिञ्जयो वृषः काथो नैपथश्च

कृतवर्मा और बाण छोड़नेमें श्रेष्ठ कृपाचार्य खड़ेहुए थे और परा-
 कर्मी भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, करकाक्ष कलिङ्ग, सिंहल, पुरविये, शूर-
 देशवाले, आभीर, दाशेरक शक, यवन, काम्बोज, हंसपथ, शूर-
 सेन, दरद, मद्र, केकय, ये परमचतुर राजे अपने-२ सैकड़ों सहस्रों
 हाथी, घोड़े और पैदलोंकी सेनाओंको लेकर उस व्यूहके ग्रीवा-
 स्थानमें खड़े थे, ये सब वैरभावका बड़ाही डाह रखते थे, उस व्यूहकी
 दाहिनी करवटमें एक अक्षौहिणी सेनाको साथमें लेकर वीर भूरि-
 श्रवा, शल्य, सोमदत्त, और नाल्हीक खड़ेहुए, उस व्यूहकी बाईं
 करवटमें उज्जैनके विन्द, अनुविन्द, कांबोज और सुदक्षिण खड़े थे,
 उनके पीछे अश्वत्थामा खड़ा था, और पिछले भागमें कलिङ्ग,
 अम्बघ्ना, मागध, पौण्ड्र, मद्रक, गन्धार, शकुन, प्राच्य, पहाड़ी और
 वसाति आदि खड़े थे, अपने जातिवाले और कुटुम्बवालोंको और
 नानादेशोंकी बड़ी सेनाको साथमें लेकर कर्ण उस व्यूहके पुच्छ-
 भागमें खड़ा था, हे राजन् ! ब्रह्मलोकमें मान्य, युद्धकुशल, जय-
 द्रथ, भीमरथ, सम्पाति, ऋषभ, जय, भूमिञ्जय, वृष, काथ, और

महाबलः । वृता बलेन महता ब्रह्मलोकपरिष्कृताः ॥ १३ ॥ व्यूह-
स्योरसि ते राजन् स्थिता युद्धविशारदाः । द्रोणेन विहितो व्यूहः
पदात्पश्वरथद्विपैः ॥ १४ ॥ चातोदधूतार्णवाकारः ममृत्त इव
लक्ष्यते । तस्य पक्षपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ॥ १५ ॥
संविद्युत्सन्नित्ता मेवाः सर्वदिग्भ्य इवोष्णगे । तस्य प्राग्ज्योतिषो
मध्ये विधिवत् कल्पितं गजम् ॥ १६ ॥ आस्थितः शुशुभे
राजन्नुपानुदये यथा । मान्यदामवता राजन् श्वेतच्छत्रेण
धार्यता ॥ १७ ॥ कृत्तिकायोगयुक्तेन पौर्णमास्यामिवेन्दुना ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यो मदन्धो द्विरदो वर्षी ॥ १८ ॥ अतिवृष्टो
महामैर्यथा स्यात् पर्वतो महान् । नानानृपतिभिर्वीरैर्विधिधा-
युधभूषणैः ॥ १९ ॥ समन्वितः पार्वतीयैः शक्रो देवगणैरिव ।

महाबली नैपथ्य बड़ी भारी सेनाके साथ गरुडव्यूहके हृदयभागमें
खड़े थे; इसप्रकार पैदल, घोड़े, रथ, और हाथियोंके द्वारा द्रोणा-
चार्यका रचाहुआ गरुडव्यूह वायुसे झुकेले खातेहुए समुद्रकी
समान नाचता हुआसा प्रतीत होता था, जैसे ग्रीष्मऋतुके बीतने
पर हरएक दिशा और विदिशाओंमेंसे गडगडातेहुए और विजली
चमकातेहुए मेघ उठते हैं, तैसेही उस व्यूहके पंखों और परपंखों
मेंसे गर्जतेहुए योधा लड़नेके लिये बाहर निकले पड़ते थे, उस व्यूहके
मध्यभागमें अञ्जीप्रकार सजाएहुए हाथीके ऊपर बैठाहुआ प्राग्-
ज्योतिष देशका राजा भगदत्त उदय होतेहुए सूर्यकी समान प्रका-
शित होरहा था, हे राजन् ! पुष्पोक्ती मालावाले श्वेतवृजसे वह
राजा भगदत्त, शरदऋतुमें कृत्तिका नक्षत्रका योग होनेपर पूर्णिमा
के चन्द्रमाकी समान शोभा पारहा था, काले सुरमेके पहाड़की
समान उसका मदमत्त हाथी घोर वर्षा होनेसे धुलेहुए (काले)
महापर्वतकी समान शोभा पारहा था, और वह राजा नानाप्रकारके
गहने तथा आयुधोंको धारण करनेवाले बहुतसे देशोंके राजाओंसे

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुपमम् ॥ २० ॥ अजयपरिभिः
 संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत् । ब्राह्मणस्य वशं नाहमिथामद्य यथा
 प्रभो । पारावतसवर्णारिव तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥ धृष्ट-
 द्युम्न उवाच । द्रोणस्य यत्मानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत । अह-
 मावापरिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम् ॥ २२ ॥ मयि जीवति कौरव्य
 नोद्वेगं कर्तुमर्हसि । न हि शक्नो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथ-
 श्चन ॥ २३ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा किरन् वाणान् द्रुप-
 दस्य सुतो बली पारावतसवर्णारिवः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ २४ ॥
 अनिष्टदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम् । क्षणेनैवाभवद् द्रोणो
 नातिहृष्टमना इव ॥ २५ ॥ तन्तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रु-
 कर्षणः । मियं चिकीर्षुर्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत् ॥ २६ ॥ स

तथा पहाडियोंसे घिरकर, देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी समान शोभा
 पारहा था, राजा युधिष्ठिरने उस अलौकिक व्यूहको देखकर युद्ध
 में शत्रुओंसे अजेय पृथ्वुत्र धृष्टद्युम्नसे कहा, कि-हे कवूतरोंकेसे
 रङ्गके घं डेवाले समर्थ धृष्टद्युम्न ! अब तुम ऐसा उपाय करो, कि
 जिससे मैं द्रोणाचार्यके हाथमें न पडूँ ॥ ५-२१ ॥ धृष्टद्युम्नने
 कहा, कि-हे सुव्रत ! द्रोण चाहै लाख प्रयत्न करें परन्तु मैं तुम्हें
 उनके वशमें नहीं पडने दूँगा, आज मैं स्वयं द्रोणको और उनके
 अनुयायियोंको आगे बढ़नेसे रोकूँगा ॥ २२ ॥ हे कुरुपुत्र ! जब
 तक मैं जीता हूँ, तबतक आपको घबडाना नहीं चाहिये, द्रोण
 रणमें मुझे किसीतरह नहीं जीतसकते ॥ २३ ॥ सञ्जयने कहा,
 कि-इतना कहकर महाबली कवूतरोंकेसे रङ्गके घोड़ोंशाला द्रुपदपुत्र
 धृष्टद्युम्न स्वयंही वाणोंकी वृष्टि करता हुआ द्रोणके सामने
 जाबढ़ा ॥ २४ ॥ सामनेही अनिष्टरूप (अपना मारक होनेसे)
 धृष्टद्युम्नको देख क्षणभरमेंही द्रोण खिन्न होगये ॥ २५ ॥ ऐसी दशा
 देखकर तुम्हारे पुत्र दुर्मुखने द्रोणाचार्यका प्रिय करनेकी इच्छासे

संहारस्तुमुलः सुघोरः समपद्यत । पार्षतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य
 च भारत ॥ २७ ॥ पार्षतः शरजालेन क्षिप्रं प्रच्छाद्य दुर्मुखम् ।
 भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत् ॥ २८ ॥ द्रोणमावारितं
 दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवात्मजः । नानालिंगैः शरव्रातैः पार्षतं समो-
 हयत् ॥ २९ ॥ तयोर्विपक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययाः ।
 द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं बहुधा व्यधमच्छरैः ॥ ३० ॥ अनिलेन
 यथाभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः । तथा पार्थस्य सैन्यानि विच्छि-
 न्नानि क्वचित् क्वचित् ॥ ३१ ॥ मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुर-
 दर्शनम् । तत उन्मत्तवद्राजन् निर्मय्यादमवर्त्तत ॥ ३२ ॥ नैव स्वे न
 परे राजन्नाज्ञायन्त परस्परम् । अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत् सम-
 वर्त्तत ॥ ३३ ॥ चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वपि वर्मसु । तेषा-

धृष्टद्युम्नको आगे बढनेसे रोकदिया ॥ २६ ॥ हे भारत ! तब वीर
 धृष्टद्युम्न और दुर्मुखका महाभयंकर तुमुल युद्ध होनेलगा ॥ २७ ॥
 धृष्टद्युम्नने शीघ्रताके साथ बाणोंके जालसे दुर्मुखको छादिया
 और बाणोंकी महावृष्टि करके द्रोणाचार्यको आगे बढनेसे रोक
 दिया ॥ २८ ॥ पुत्रने द्रोणाचार्यको रोकालेआ देखकर बड़ेपरिश्रम
 से नाना प्रकारके बाणोंके जालोंसे धृष्टद्युम्नको महामोहमें डाल
 दिया ॥ २९ ॥ इसप्रकार धृष्टद्युम्न और दुर्मुखका युद्ध चलरहा था,
 इसी अवसरमें द्रोणने बाणोंके प्रहारसे युधिष्ठिरकी सेनाका संहार
 करडाला ॥ ३० ॥ जैसे वायुसे बादल छिन्न भिन्न होजाते हैं, जैसे धी
 युधिष्ठिरकी सेनाको बहुतसी जगहोंसे छिन्न भिन्न करके व्याहको
 खोलदिया ॥ ३१ ॥ वह युद्ध क्षणभरको बड़ा ही मधुर मालूम
 हुआ, परन्तु पीछेसे पागलोंकी समान मर्यादाको छोड़कर होने
 लगा ॥ ३२ ॥ वे योधा आपसमें अपने परायेको भूलकर मोहान्ध
 हो लड़नेलगे अतःका युद्ध केवल अनुमान और नामके ऊपर ही
 चलनेलगा ॥ ३३ ॥ उस समय योधाओंके मुकुट, आभूषण,

मादित्यवर्णाभा रश्मयः प्रचकाशिरे ॥ ३४ ॥ तत् प्रकीर्णपता-
कानां रथवारणवाजिनाम् । बलाकाशबलाभ्रामं ददृशे रूपमा-
हवे ॥ ३५ ॥ नरानेव नरा जघ्नुर्दशरश्च हया हयान् । रथरश्च
रथिनो जघ्नुर्वारणा वरवारणान् ॥ ३६ ॥ समुच्छ्रितपताकानां
गजानां परमद्विपैः । क्षणेन तुमुलो घोरः संग्रामः समपद्यत ३७
तेषां संसक्तगात्राणां कर्षतामितरतरेम् । दन्तसंघातसंघर्षात्सधूमो-
ग्निरजायत ॥ ३८ ॥ विप्रकीर्णपताकास्ते विषाणजनिताग्रयः ।
बभूवुः खं समासाद्य सविद्युत इवाम्बुदाः ॥ ३९ ॥ त्रिक्षिपद्भिर्न-
दद्भिश्च निपतद्भिश्च वारणैः । सम्बभूव मही कीर्णा मेघैर्द्यौरिव
शारदी ॥ ४० ॥ तेषामाहन्यमानानां बाणतोमरश्चष्टिभिः । वार-
णानां रवो जशे मेघानामिव संसवे ॥ ४१ ॥ तोमराभिहतः

निष्क और कवचोंकी किरणें सूर्यकी किरणोंकी समान प्रकाशित
हो रही थीं ॥ ३४ ॥ जिनके ऊपर पताकाएं फहरा रही थीं
ऐसे हाथी, घोड़े और रथोंका रूप बगुलियोंवाले मेघोंकी समान
शोभा पारहा था ॥ ३५ ॥ उस समय पैदलोंने पैदलोंको और
मदोत्कट हाथियोंने हाथियोंको मारा, रथियोंको रथी मारनेलगे
तथा घोड़े घोड़ोंको मारनेलगे ॥ ३६ ॥ क्षणभरमें ही बड़े बड़े
हाथियोंका झण्डियोंवाले हाथियोंके साथ तुमुल युद्ध होनेलगा ३७
युद्ध करतेमें हाथियोंके शरीर आपसमें सटगए और वे एक दूसरे
को घसीटनेलगे, तथा दांतोंको दांतोंसे टकराने लगे इससे धुएं
वाला अग्नि सुलग उठा ॥ ३८ ॥ जिनके ऊपर झण्डे फहरा
रहे थे, और जिनके दांतोंके लड़नेसे अग्नि निकल रही थी ऐसे
हाथी आकाशमें बिजलीवाले मेघोंकी समान दीखते थे ॥ ३९ ॥
जैसे शरदऋतुमें आकाश बादलोंसे घिरजाता है वैसेही बिघाड़ते,
महार करते और मरकर गिरतेहुए हाथियोंसे पृथ्वी ढकवाई ४०
बाण, तोमर और श्रष्टियोंसे घायलहुए उन हाथियोंकी बिघाड़

केचिद्वाणैश्च परमद्विपाः । वित्रेयुः सर्वनागानां शब्दमेवापरेऽव-
जन् ॥ ४२ ॥ विपाणाभिहताश्चापि केचित्तत्र गजा गजैः ।
चक्रुरार्त्तस्वनं घोरमुत्पातजलदा इव ॥ ४३ ॥ प्रतीपाः क्रियमा-
णाश्च वारणा वरवारणैः । उन्मथ्य पुनराजग्मुः प्रेरिताः परमा-
कुशैः ॥ ४४ ॥ महापात्रैर्महामात्रास्ताडिताः शरतोमरैः । गजेभ्यः
पृथिवीं जग्मुर्मुक्तप्रहरणांकुशाः ॥ ४५ ॥ निर्मलुष्यार्च मातङ्गा
विनदन्तस्ततस्ततः । क्षिन्नाभ्राणीव सम्पेतुः सम्प्रविश्य परस्प-
रम् ॥ ४६ ॥ हतान् परिवहन्तश्च पतितान् पतितायुधान् । दिशो
जग्मुर्महानागाः केचिदेकचरा इव ॥ ४७ ॥ ताडितास्ताड्यमानाश्च

प्रलयकालके मेघोंकी गडगडाहटकी समान मालूम होती थी ४१
वाणों और तोमरोंसे घायलहुए बहुतसे हाथी घबडारहे थे और
बहुतसे हाथी उन हाथियोंका शब्द सुनकर भाग रहे थे ॥ ४२ ॥
कितनेही दांतोंके महारोंसे घायलहुए हाथी, उत्पातके समयके
मेघोंकी समान चीत्कार कर रहे थे ॥ ४३ ॥ कितनेही बड़े हाथी
दूसरे हाथियोंको अपना शत्रु बनाकर रौंदने लगे महावतोंने उनको
अंकुशोंसे पीछेको हटा फिर लड़ादिया ॥ ४४ ॥ बड़े हाथियोंके
महावत छोटे हाथियोंके महावतोंको बाण और तोमरोंसे मारने
लगे, इससे महावतोंके हाथमेंसे अंकुश और तोमर गिरनेलगे
और वे हाथियों परसे जमीनपर लुढ़कपड़े ॥ ४५ ॥ बिना महा-
वतोंके वे हाथी चिंघाड़ते आपसमें लड़कर क्षिन्न भिन्नहुए मेघों
की समान पृथिवीपर गिरपड़े ॥ ४६ ॥ कितनेही योधा हाथि-
योंके ऊपरहीं मर गए, कितनेही हाथियों परसे लुढ़कपड़े कितनेही
योधाओंके हथियार गिरपड़े भरकर अपने ऊपर पड़ेहुए उन
मनुष्योंको लादकर ऐसे भागे कि-मानो दूसरे हाथियोंकी मार
को न सहकर एकान्तवास करने जा रहे हैं ॥ ४७ ॥ उस घोर संहार
में कितनेही हाथी तोमर, अष्टि और फरसोंसे पीड़ा पाते

तोमरद्विपरश्वयैः । पेतुरार्त्तस्वनं कृत्वा तदा विशसने गजाः ४८
 तेषां शैलोपमैः कायैर्निपतद्भिः समन्ततः । आहता सहसा भूमि-
 श्चकम्पे च ननाद च ॥ ४९ ॥ सादितैः सगजारोहैः सपताकैः
 समन्ततः । मातङ्गैः शुशुभे भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ॥ ५० ॥
 गजस्थाश्च महापात्रा निर्भिन्नहृदया रणे । रथिभिः पातिता भल्लै-
 विकीर्णाङ्कुशतोमराः ॥ ५१ ॥ कौञ्चवद्दिनदन्तोन्ये नाराचाभि-
 हता गजाः । परान् स्वांश्चापि मृदुनन्तः परिपेतुर्दिशो दश ॥ ५२ ॥
 गजाश्वरथयोधानां शरीरौघसमाहृता । बभूव पृथिवी राजन् मांस-
 शोणितकर्मणा ॥ ५३ ॥ प्रमथ्य च विषाणाग्रैः समुत्तिप्ताश्च
 वारणैः । सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः ॥ ५४ ॥ रथाश्च
 रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च बाजिनः । हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो

हुए बड़ी भारी चीत्कारके साथ रणभूमिमें गिरपड़े ॥ ४८ ॥ पर्वत
 केसे शरीरोंवाले चारों ओर गिरतेहुए उन हाथियोंसे धमाका
 पाकर पृथिवी काँपने लगी और उसमेंसे शब्द निकलनेलगा ४९
 झण्डोंवाले तथा सवारों सहित भरकर पड़ेहुये हाथियोंसे पृथ्वी
 बिलखेहुये पर्वतोंवालीसी शोभा पारही थी ॥ ५० ॥ हाथियों पर
 बैठेहुये महावतोंका हृदय रथियोंने भालोंसे फोड़ उनको गिरादिया
 उनके हाथोंमेंसे अंकुश और तोमर गिरकर बिखरगये ॥ ५१ ॥
 कितनेही हाथी बाणोंसे घायल होकर कौंचकी समान गर्जनाकर
 अपने और दूसरोंको कुचलतेहुए चारों दिशाओंमें गिरनेलगे ५२
 हे राजन् ! हाथी, घोड़े, रथ और योधाओंकी लाशोंसे छाईहुई
 पृथिवीपर मांस और रुधिरकी कीचहोगई ॥ ५३ ॥ हाथियोंके
 दाँत मारकर तोड़े हुए पहियोंसे रहित अथवा पहियों वाले
 रथमें बैठेहुए महारथी, रथीरहित रथ, सवारोंसे रहित घोड़े,
 महावतोंसे रहित हाथी भयसे घबडाकर चारों ओरको भागने
 लगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इस युद्धमें पिता पुत्रको मारनेलगा और

जगमुभंयातुराः ॥५५॥ जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
 इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५६ ॥ आशुल्फेभ्यो-
 वसीदन्ते नरा लोहितकर्दमैः । दीप्यमानैः परिक्षिता दारैरिव
 महाद्रुमाः ॥ ५७ ॥ शोणितैः सिच्यमानानि घस्त्राणि कवचानि
 च । छत्राणि च पताकारश्च सर्वे रक्तमदृश्यत ॥ ५८ ॥ हयोघाश्च
 रथोघाश्च नरोघाश्च निपातिताः । संक्षुण्णाः पुनरावृत्य बहुधा
 रथनेमिभिः ॥५९॥ स गजौघमहावेगः परासुनरशैबलः । रथोय-
 तुमुत्तावर्तः प्रवभौ सैन्यसागरः ॥ ६० ॥ तं वाहनमहानाभि-
 योधा जयधनैर्पिणः । अवगाह्याथ मज्जन्तो नैव मोहं प्रचक्रिरे६१
 शरवर्षाभिवृष्टेषु योधेष्वंचितलक्ष्मासु । न तेष्वचिरातां लेभे कश्चि-

पुत्र पिताको मारनेलगा तथा यह युद्ध ऐसा तुमुल हुआ, कि-
 क्या हो रहा है यह कुछ भी नहीं मालूम होता था ॥ ५६ ॥ पड़ी
 तक रुधिरकी कीचमें फँसमानेसे मनुष्य इसप्रकार पीड़ा पाते थे
 जैसे धधकती हुई दौंकी अग्निसे घिरजाने पर पेड़ झुलस जाते हैं ५७
 लोहसे भीगी हुई पताकाएं, वस्त्र, कवच और छत्र, सब लाल हो
 लाल दिखाई देते थे ॥५८॥ घोड़े, रथी रथ और योधाओंके मृत
 शरीरोंके ढेरके ढेर पड़े थे, वे रथोंके आनेजानेके कारण पहियों
 की धारसे दुसराकर कटजाते थे ॥५९॥ हाथियोंके समूहरूप वेग-
 वाला, मरे हुए मनुष्योंके शरीरोंके समूहरूप सिवारवाला रथोंके
 समूहरूप भयंकर भँवरवाला सेनारूपी समुद्र दिपनेलगा ॥ ६० ॥
 योधारूपी व्यापारी जयरूप धनको पानेकी इच्छासे घोड़ेरूप नावमें
 बैठकर तैरतेर उस सेनासागरमें गोते खाजाने पर भी वेदोश
 नहीं होते थे ॥६१॥ बाणोंकी वर्षासे योधाओंके बिन्होंका नाश
 हो गया था, इससे उनको यह नहीं मालूम होता था कि—अपना
 और पराया कौन है ? ॥ ६२ ॥ जब इसप्रकार महाभयंकर घोर

दाहतलक्षणः ॥ ६२ ॥ वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयङ्करे ।
मोहयित्वा परान् द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संज्ञकवधपर्वणि

संकुलयुद्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

संजय उवाच । ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वा तिकमुपागतम् । महता
शरवर्षेण सत्ययुद्धादभीतवत् ॥ १ ॥ ततो हलहलाशब्द आसीद्युधि-
ष्ठिरे बले । जिघृक्षति महासिंहे गजानामिव यूथपं ॥ २ ॥ दृष्ट्वा
द्रोणं ततः शरः सत्यजित्सत्यविक्रमः । युधिष्ठिरमभिर्ममुराचार्यं
समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥ तत आचार्यपांचाल्यो युयुधाते महाबलौ ।
विजोभयन्तौ तत्सैन्यमिद्वैरोचनाविव ॥ ४ ॥ ततो द्रोणं महेष्वासः
सत्यजित्सत्यविक्रमः । अविध्यन्निशिताग्रेण परमास्त्रं विदर्शयन्
तथास्य सारथेः पञ्च शरान्सर्पविषोपपानम् । अमुं च दत्तकप्रख्यानमुपो-

युद्ध चल रहा था उस समय द्रोणाचार्य शत्रुओंको मोहित करके
युधिष्ठिरकी ओरको बढ़ते चलेजाते थे ॥ ६३ ॥ बीसवाँ अध्याय
समाप्त ॥ २० ॥ ख ॥ ख ॥ ख ॥

संजयने कहा, कि-राजा युधिष्ठिर द्रोणको समीपमें आया
देखकर निडर हो बाणोंसे उनका सामना करनेलगे ॥ १ ॥ सिंह
जैसे हाथियोंके यूथपति नागराजको पकड़नेको आता है तैसे ही
द्रोणाचार्यके युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये आने पर, युधिष्ठिरकी सेना
में बड़ा भारी कोलाहल प्रचगया ॥ २ ॥ यह देखकर शूर सत्य-
पराक्रमी सत्यजित् युधिष्ठिरको बचानेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके
सामने चढ़आया ॥ ३ ॥ वे महाबली पाञ्चाल और द्रोणाचार्य
सेनाको व्याकुल करतेहुए इन्द्र और विरोचनकी समान युद्ध
करनेलगे ॥ ४ ॥ तदनन्तर महाबली सत्यपराक्रमी सत्यजित्ने
अपनी अस्त्रकुशलता दिखातेहुए अस्त्रकी तेज नोकसे द्रोणको
घायल करदिया ॥ ५ ॥ और उनके सारथीको भी सर्पके विषकी

हस्यसारथिः ६ अथास्य सदसाविध्यद्वयान्दशभिराशुगैः । दशभि-
र्दशभिः क्रुद्ध उभौ च पाण्डिसारथीऽमंडलं तु समावृत्य विचरन्पुत-
नामुखे ध्वजं विच्छेद च क्रुद्धो द्रोणस्याभिन्नकर्पणः—द्रोणस्तु तत्स-
मालोक्य चरितं तस्य संयुगे । मनसा चिंतयामास प्राप्तकालमरि-
न्दमः ॥ ६ ॥ ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः । अवि-
ध्यच्छीघ्रमाचार्यश्चित्वास्य सशरं धनुः ॥ १० ॥ स शीघ्रतरपा-
दाय धनुरन्यत्पतापवानो द्रोणमभ्यहनद्राजंस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ११
दृष्ट्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाहवे । वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः
पांचाल्यो द्रोणमार्दयत् ॥ १२ ॥ संझाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा
महारथम् । चुक्रुशुः पाण्डवा राजन् वस्त्राणि दुधुवुश्च ह ॥ १३ ॥
वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं पृथ्वा स्तर्नातरे । विव्याध चलवान् राजन्-

समान तीखे और कालकी समान भयानक पाँच बाण मारकर
मूर्छित कर दिया ॥ ६ ॥ तदनन्तर उसने शत्रुनाशी द्रोणके
घोड़ोंको दश बाण मारकर बाँध डाला और क्रोधमें भरकर दश २
बाणोंसे दोनों पार्श्वरत्नकोंको बाँध दिया और सेनाके मुहानों पर
क्रोधमें भरकर उसने मण्डलाकारसे घूमकर द्रोणकी ध्वजाको
काट डाला ॥ ७-८ ॥ शत्रुनाशी द्रोणाचार्यने युद्धमें उसके
चरित्रको देखकर अपने मनमें यह समझा कि—इसका समय
आ गया है ॥ ६ ॥ और मर्मभेदी दश तीक्ष्ण बाणोंसे उसको
बाँधकर उसके धनुष बाणको काट डाला ॥ १० ॥ परन्तु हे
राजन् ! उसने शीघ्रतासे दूसरा धनुष लेकर कङ्कपत्रवाले तीस
बाण मारकर द्रोणाचार्यको बाँध डाला ११ इसप्रकार द्रोणको सत्य-
जितके द्वारा दूबतेहुए देखकर पांचाल वृकने भी सौ बाणोंसे द्रोणा-
चार्यको पीड़ित किया १२ युद्धमें द्रोणको बाणोंसे ढका हुआ देखकर
पाण्डव हर्षसे वस्त्र उछालने लगे और आनन्दध्वनि करने लगे १३
हे राजन् ! वृकने बड़े भारी क्रोधमें भरकर द्रोणकी छातीमें साठ

स्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४ ॥ द्रोणस्तु शरवर्षेणच्छाद्यमानो महा-
 रथः । वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुदृत्य चक्षुषी ॥ १५ ॥ ततः
 सत्यजितश्चापं धित्वा द्रोणो वृकस्य च । षड्भिः समूतं सहयं शरै-
 र्द्रोणोवधीद वृकम् ॥ १६ ॥ अथान्यद्गुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम् ।
 साश्वं समूतं विशखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजम् ॥ १७ ॥ स तं न
 ममूषे द्रोणः पाञ्चाल्येनादितो मृधे । ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं
 व्यसृजञ्छरान् ॥ १८ ॥ हयान् ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णि-
 सारथी । अवाकिरत्ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः ॥ १९ ॥ तथा
 संबिद्यमानेषु कामुकेषु पुनः पुनः । पार्ष्णाव्यः परमस्त्रज्ञः शोणा-
 श्वं समपोधयत् ॥ २० ॥ स सत्यजितमालोक्य तथोदीर्णं महा-
 हवे । अर्द्धचन्द्रेण विच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ तस्मिन्

बाण मारे, यह एक अचरजसा हुआ ॥ १४ ॥ महारथी वेगवान्
 द्रोणाचार्य जब इसप्रकार बाणोंसे टुकड़े तो उन्होंने क्रोधमें भर
 अपने नेत्रोंको फाड़कर पराक्रम करना आरम्भ कर दिया ॥ १५ ॥
 द्रोणाचार्यने सत्यजित् और वृकके धनुषको काट डाला और छः
 बाणोंसे घोड़े और सारथिसहित वृकको मार डाला ॥ १६ ॥
 परन्तु सत्यजित्ने वेगवान् दूसरे धनुषको लेकर द्रोणाचार्यको
 और उनके घोड़े, सारथी तथा ध्वजाको भी बाँध दिया ॥ १७ ॥
 द्रोणाचार्य उस पाञ्चाल्यसे पीड़ित होने पर जल उठे और उसके
 मारनेके लिये शीघ्रताके साथ बाण छोड़ने लगे ॥ १८ ॥ द्रोणने
 उसके घोड़े, ध्वजा धनुष, मुट्ठी और दोनों पार्श्वरत्नों पर
 नानाप्रकारसे सहस्रों बाण छोड़े ॥ १९ ॥ पाञ्चालदेशी सत्य-
 जित् इसप्रकार बारम्बार धनुषोंके टुकड़े हो जाने पर भी लाल
 रंगके घोड़ेवाले द्रोणाचार्यके सामने लड़ता ही रहा ॥ २० ॥
 द्रोणाचार्यने उस महापुद्गमें सत्यजित्को बहुत बढ़ा हुआ देख अर्ध-
 चन्द्राकार बाणसे उसके शिरको उड़ा दिया ॥ २१ ॥ पाञ्चालोंमें

इते महामात्रे पंचालानां महारथे । अपायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणात् अस्तो
 युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥ पंचालाः केकया मत्स्याश्चेदिकारूपकोसलाः ।
 युधिष्ठिरमभीप्सन्तो दृष्ट्वा द्रोणमुपाद्रवन् ॥ २३ ॥ ततो युधिष्ठिरं
 प्रेषुराचार्यः शत्रुपूगहा । व्यधमत्तान्यनीकानि तूलराशिगिवा-
 नलः ॥ २४ ॥ निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः । द्रोणं
 मत्स्यादवरजः शतानीकोभ्यवर्त्तत ॥ २५ ॥ सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः
 कर्मारपरिमांजितैः । पट्टभिः समृतं सहयं द्रोणं विध्वाऽनदद्
 भृशम् ॥ २६ ॥ कुराव कर्मणं युक्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् । अवा-
 किरच्चरशतैर्भारद्वाजं महारथम् ॥ २७ ॥ तस्य नानदतो द्रोणः
 शिरः कायात् सकुण्डलम् । क्षुरेणापाहरत्तूर्णं ततो मत्स्याः प्रदु-
 द्रुवुः ॥ २८ ॥ मत्स्यान् जित्वाऽजयच्चेदीन् करुणान् केकयानपि ।

महारथी उस महापुरुषके मारेजाने पर द्रोणाचार्यसे डरेहुए युधि-
 स्थिर तेज घोड़ोंवाले रथमें बैठकर भागगए ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरको
 बचानेकी इच्छावाले, पंचाल, केकय, मत्स्य, चेदि, कारूप, कोसल
 द्रोणके ऊपर चढ़गए ॥ २३ ॥ परन्तु शत्रुओंकी पंक्तिकों नष्ट
 करनेवाले द्रोणाचार्य युधिष्ठिरको पकड़नेकी इच्छासे शत्रुओंकी
 सेनाको, जैसे अग्नि रुईको जलाता है तैसे, भस्म करनेलगे २४
 इसप्रकार बाणवर्षासे बारम्बार सेनाओंको भस्म करते हुए द्रोणा-
 चार्यके सामने मत्स्यका छोटा भाई शतानीक चढ़आया ॥ २५ ॥
 सूर्यकी किरणोंकी समान, कारीगरोंके तेज किये हुए छः
 बाणोंसे सारथी और घोड़ोंसहित द्रोणाचार्यको बीच कर शता-
 नीक जोरसे गरजत ॥ २६ ॥ दुष्कर कर्म करना चाहनेवाले क्रूर
 कर्ममें तत्पर शतानीकने महारथी द्रोणको सैंकड़ों बाणोंसे ढक
 दिया ॥ २७ ॥ जब कि—वह इसप्रकार बारम्बार गर्जता ही जाता
 था तो द्रोणाचार्यने क्षुरनामक बाणसे उसके मुकुटसहित मस्तक
 को उड़ादिया यह देखकर मत्स्य भागने लगे ॥ २८ ॥ द्रोणाचार्यने

पञ्चालान् सृञ्जयान् पाण्डून् भारद्वाजः पुनः पुनः ॥ २६ ॥ तं
 दहन्तमनीकानि क्रुद्धपग्निं यथा वनम् । दृष्ट्वा स्वमरथं वीरं सम-
 कम्पन्त सृञ्जयाः ॥ २७ ॥ उत्तमं ह्याददानस्य धनुस्स्याशुकारिणः ।
 ज्याघोषो निघ्नतोऽमित्रान् दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥ २८ ॥ नागान-
 श्वान् पदातींश्च रथिनो गजसादिनः । रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रम-
 थनन्ति स्म सायकाः ॥ २९ ॥ नानद्यमानः पञ्जर्ज्यो मिश्रवातो
 हिमात्यये । अश्मवर्षमित्रावर्षन् परेषां भयमादधत् ॥ ३० ॥ सर्वा
 दिशाः समचरत् सैन्यं विज्ञोभयन्निव । वली शूरो महेष्वासो मित्रा-
 णामभयंकरः ॥ ३१ ॥ तस्य त्रिद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
 दिक्षु सर्वासु पश्यामो द्रोणस्यामिततेजसः ॥ ३२ ॥ शोभमानां
 ध्वजे चास्य वेदीपद्राक्ष्म भारत । हिमवच्छिन्नखराकारां चरतः संपुगे

मत्स्योंको जीतनेके अनन्तर चेदि, कारुष, केकय, पञ्चाल, सृञ्जय
 और पाण्डवोंको बारम्बार जीता ॥ २६ ॥ सोनेके रथमें बैठे हुए और
 जैसे अग्नि वनको जलाता हो तैसे ही सेनाको भस्म करते हुए
 द्रोणको क्रोधमें भरा देख सृञ्जय काँपने लगे ॥ २७ ॥ इन फुर्तीले
 द्रोणाचार्यके श्रेष्ठ धनुषको लेकर शत्रुओंके संहार करने पर चारों
 दिशाओंमें मत्स्यञ्चाका ही शब्द सुनाई पड़ता था ॥ २८ ॥
 फुर्तीले द्रोणाचार्यके द्वारा छोड़े भयङ्कर बाण हाथी, घोड़े, पैदल
 रथी और हाथीसवारोंको मथनेलगे ॥ २९ ॥ जैसे गिशिरऋतुमें
 वायुसहित गर्जना करता हुआ मेघ ओले वर्षाता है तैसे ही द्रोणा-
 चार्य बाण वर्षाकर शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करनेलगे ॥ ३० ॥
 वली, शूरवीर, महाधनुर्धर, शत्रुओंको भयदायक द्रोणाचार्य
 सेनाको खलभलाते हुएसे सब दिशाओंमें घूमने लगे ॥ ३१ ॥
 महातेजस्वी द्रोणाचार्यका सुवर्णसे सजा हुआ धनुष सत्र दिशाओं
 में प्रेधोंमें विजलीकी समान दीखता था ॥ ३२ ॥ हे भरतवंशी
 राजन् ! सेनामें बारम्बार घूमते हुए द्रोणाचार्यकी ध्वजायें स्थित

भृशम् ॥ ३६ ॥ द्रोणस्तु पाण्डवानीके चकार कन्दनं महत् । यथा
 दैत्यगणे विष्णुः सुरासुरनमस्कृतः ॥ ३७ ॥ स शूरः सत्यवाक्
 ग्राहो बलवान् सत्यविक्रमः । महानुभावः कल्पान्ते राट्नां भीरुवि-
 भीषणाम् ॥ ३८ ॥ कवचोर्मिध्वजावत्ता मर्त्यकृत्पापहारिणीम् ।
 गजवाजिमहाग्राहामसिमीनां दुरासदाम् ॥ ३९ ॥ वीरास्थिशर्करां
 राट्नां भेरीमुरजकच्छपाम् । चर्मवर्मसवां घोरां केशशैवलशाद-
 लाम् ॥ ४० ॥ शरीरिणीं धनुःस्रोतां बाहुपन्नगसंकुलाम् । रण-
 भूमिवहां तीव्रां क्रूरसृज्यवाहिनीम् ॥ ४१ ॥ मनुष्यशीर्षपापाणां
 शक्तिमीनां गदोडपाम् । उष्णीपफेनवसनां विक्रीणां च सूर्य-
 पाम् ॥ ४२ ॥ वीरापहारिणीमुग्रां मांसशोणितकर्दमाम् । हस्ति-
 ग्राहां केतुवृक्षां क्षत्रियाणां निमज्जनीम् ॥ ४३ ॥ क्षूरां शरीरसं-

हिमालयके शिखरकी समान शोभायमान बंदी भी हमें दिखाई
 दी थी ॥ ३६ ॥ देव दानवोंके वन्दनीय विष्णुने जैसे दैत्योंका
 संहार किया था तैसे ही द्रोणने पाण्डवोंकी सेनाका घोर संहार
 किया ॥ ३७ ॥ वीर, सत्यवादी, बुद्धिमान्, बली, सत्यपराक्रमी,
 महानुभाव द्रोणने मलयकान्तकी भयङ्कर नदीकी समान, डर-
 पोकोको डरानेवाली, कवचकी लहरोंवाली, ध्वजोंके भँवरवाली,
 मनुष्यरूप किनारोंको तोड़नेवाली, हाथीघोंड़ेरूप नाकोंवाली,
 तलवाररूप मछलियोंवाली, दुःखसे तरनेयोग्य, वीरोंकी हड्डियों-
 रूप रेतवाली, भेरी और मुरजरूप कछुयोंवाली, भयङ्कर, ढाल
 तथा कवचरूप नौकावाली पेशरूप सिवारसे भरी भयङ्कर बाण-
 रूप ओघवाली धनुषरूप स्रोतवाली, भुजारूपी सर्पवाली, रण-
 भूमिमें बहनेवाली, प्रबलवेगवती, कौरव और सृज्योंको बहाने
 वाली, मनुष्योंके शिररूप पत्थरोंसे युक्त, शक्तिरूप मछलियों
 वाली, गदारूप डोंगेवाली, पगडियेंरूप भागवाली, चारों ओर
 फैली हुई आतोंरूप सर्पोंवाली, वीरोंको हरनेवाली, भयङ्कर, रक्त-

घटां सादिनकां दुरत्ययाम् । द्रोणः प्रावर्त्तयत्तत्र नदीमन्तकगामि-
नीम् ॥ ४४ ॥ ऋज्यादगणसञ्जुष्टां श्वश्रुगालगणायुताम् । निपे-
वितां महारौद्रैः पिशिताशैः सयन्ततः ॥ ४५ ॥ तं दहन्तमनीकानि
रथोदारं कृतान्तवत् । सर्वतोभ्यद्रवन् द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः ४६
ते द्रोणं सहिताः शूराः सर्वतः प्रत्यवारयन् । गभस्तिभिरिवादित्यं
तपन्तं शुवनं यथा ॥ ४७ ॥ तन्तु शूरं महेष्वसं तावकाभ्युद्यता-
युधाः । राजानो राजपुत्राश्च सयन्तात् पर्यवारयन् ॥ ४८ ॥
शिखण्डी तु ततो द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः । क्षत्रवर्मा च विंशत्या
वसुदानश्च पञ्चभिः ॥ ४९ ॥ उत्तमौजास्त्रिभिर्वाणैः क्षत्रदेवश्च
सप्तभिः । सात्यकिश्च शतेनाजौ युधामन्युस्तथाष्टभिः ॥ ५० ॥ युधि-
ष्ठिरो द्वादशभिर्द्रोणं विन्वाथ सायकैः । धृष्टद्युम्नश्च दशभिश्चेकि-
तानस्त्रिभिः शूरैः ॥ ५१ ॥ ततो द्रोणः सत्यसन्धः प्रभिन्न इव

मांसभी कीचड़वाली, हाथियोंरूप नाकोंवाली, ध्वजारूप वृक्षों-
वाली, क्षत्रियोंको डुवानेवाली, क्रूर, शरीरों (लोथों) से लुवा-
लव भरी हुई, घुड़सवाररूप नाकोंसे दुरत्यय, यमलोककी ओर
को जानेवाली, राजासोंके समूह, कुत्ते, गीदड़ आदि महाभयङ्कर
मांसभक्षियोंसे सेवित नदी बहादी, महारथी द्रोणाचार्यको यमराज
की समान सेनाको भस्म करते हुए देखकर युधिष्ठिर आदि
बहुतसे वीरोंने उनको चारों ओरसे घेरलिया, और किरणोंसे
पृथिवीको तपानेवाले सूर्यको जैसे बादल घेरलेते हैं तैसे ही
शत्रुतापी द्रोणको भी सब वीरोंने इकट्ठे होकर चारों ओरसे
घेरलिया ॥ ४८-४८ ॥ तदनन्तर शिखण्डीने नमीहुई गांठवाले
पाँच बाणोंसे द्रोणाचार्यको बीधा तथा क्षत्रवर्माने बीस और वसु-
दानने पाँच, उत्तमौजाने तीन, क्षत्रदेवने सात, सात्यकिने सौ,
युधामन्युने आठ, युधिष्ठिरने बारह, धृष्टद्युम्नने दश और चेकि-
तानने तीन बाणोंसे द्रोणाचार्यको युद्धमें बीध दिया ॥ ४९-५१ ॥

कुञ्जरः । अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत् ॥ ५२ ॥ ततो
 राजानमासाद्य प्रहरन्तमभीतयत् । अधिव्यन्नवभिः क्षेमं स हतः
 प्रापतद्रथात् ॥ ५३ ॥ स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्
 विश्वाः । ज्ञाता ह्यभवदन्येषां न ज्ञातव्यः कथंचन ॥ ५४ ॥ शिख-
 ण्डिनं द्वादशभिर्विश्लत्या चोत्तमौजसम् । वसुदानं च भल्लेन प्रैष-
 यद्यमसादनम् ॥ ५५ ॥ अशीत्या क्षत्रवर्माणं पङ्क्तिश्लत्या सुदक्षिणम् ।
 क्षत्रदेवन्तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५६ ॥ युधामन्युं चतु-
 ष्पट्या त्रिशता चैव सात्यकिम् । विध्वा रुक्मरथस्तूर्णं युधिष्ठिर-
 मुपाद्रयत् ॥ ५७ ॥ ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं गुरुतो राजसत्तमः ।
 अपायाज्जवनैरश्यैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात् ॥ ५८ ॥ तं द्रोणः
 सधनुष्कन्तु सारथ्यन्तारमाक्षिणात् । स हतः प्रापतद्रथं रथा-

तत् सत्यप्रतिज्ञावाले द्रोणाचार्य मदवाले हाथीकी समान रथ-
 सेनाकी लाँचिकेर आँखोंसे बड़े और उन्होंने बाण मारकर दृढसेनको
 गिरादिया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरके पास पहुँच
 निडर हो नौ बाणोंसे क्षेमको मारा, वह मरकर पड़ा अपने रथमेंसे
 लुढ़कपड़ा ॥ ५३ ॥ फिर द्रोणाचार्य सेनाके मध्यमें पहुँचकर सब
 दिशाओंमें घूमतेहुए दूसरोंकी रक्षा करनेलगे परन्तु उनका रक्षक
 कोई नहीं था ॥ ५४ ॥ उन्होंने शिखण्डीके वारह, उत्तमौजाके
 बीस बाण मारे और भाला मारकर वसुदानको घमेलोक भेज
 दिया ॥ ५५ ॥ फिर उन्होंने क्षत्रवर्माके अस्सी, सुदक्षिणके
 छब्बीस बाण मारे और क्षत्रदेवको भाला मारकर रथकी बैठकसे
 नीचे गिरादिया ॥ ५६ ॥ युधामन्युको चौंसठसे और सात्यकि
 को तीस बाणोंसे बाँधकर सुवर्णरथी द्रोणाचार्य युधिष्ठिरकी
 ओरको बढ़गये ॥ ५७ ॥ यह देखते ही युधिष्ठिर अपने घोड़ोंको
 हँकवाकर तहाँसे भागगये और पाञ्चालपुत्र द्रोणके सामने
 आकर खड़ा होगया ॥ ५८ ॥ द्रोणाचार्यने उसका, उसके धनुष,

उज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ५६ ॥ तस्मिन् हते राजपुत्रे पंचालानां
 यशस्करो । हत द्रोणं हत द्रोणमित्यासीन्निःस्वनो महान् ॥ ६० ॥
 तास्तथा भृशसंरब्धान् पञ्चालान् मत्स्यकेकयान् । सृञ्जयान् पाण्ड-
 वाश्चैव द्रोणो व्यक्तोभयद्वली ॥ ६१ ॥ सात्यकिं चेकितानं च
 धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ । वार्धत्तेमिं चैत्रसेनिं सेनाविन्दुं सुवर्चसम् ६२
 एतश्चान्यश्च सुवहून्नानाजनपदेश्वरान् । सर्वान् द्रोणोऽजयद्युद्धे
 कुचभिः परिवारितः ॥ ६३ ॥ तावकाश्च महाराज जयं लब्ध्वा
 महाहवे । पाण्डवेयान् रणे जघ्नुर्द्रवमाणान् समन्ततः ॥ ६४ ॥
 ते दानवा इवेन्द्रेण वध्यमाना महात्मना । पंचालाः केकया मत्स्याः
 समकपन्त भारत ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि

द्रोणयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

घोड़े और सारथिका नाश किया तथा वह मरकर रथमेंसे ऐसे
 गिरपड़ा जैसे आकाशमेंसे नक्षत्र खस पड़ता है ॥ ५६ ॥ पञ्चालोंके
 यशको बटानेवाले उस राजपुत्रके मारे जाने पर सेनामें “द्रोणको
 मारो द्रोणको मारो” इसप्रकार बड़ाभारी कोलाहल मचगया ६०
 महाक्रोधमें भरेहुए पंचाल, केकय, मत्स्य, सृञ्जय और पांडवों
 को द्रोणने घबड़ादिया ॥ ६० ॥ सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न
 शिखण्डी, दृढक्षेमके पुत्र, चित्रसेनके पुत्र, सेनाविन्दु, सुवर्चस
 तथा और बहुतसे देशोंके राजाओंको द्रोणने कौरवोंको साथमें
 लेकर जीता ॥ ६२-६३ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे पक्षके योधा
 इस महायुद्धमें जय पाकर चारों ओरको भागते हुए पांडवोंके
 योधाओंको मारनेलगे ॥ ६४ ॥ हे भारत ! पंचाल, केकय और
 मत्स्य द्रोणसे ऐसे काँपनेलगे जैसे इन्द्रसे मारखाते हुए राजस
 काँपते हैं ॥ ६५ ॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । भारद्वाजेन भग्नेषु पाण्डवेषु महामुधे । पञ्चालेषु च सर्वेषु कश्चिदन्योऽभ्यवर्त्तत ॥ १ ॥ आर्या युद्धे मतिं कृत्वा क्षत्रियाणां यशस्करीम् । असेवितानां कापुरुषैः सेवितानां पुरुषर्षभैः २ स हि वीरोन्नतः शूरो यो भग्नेषु निवर्त्तते । अहो नासीत् पुमान् कश्चिद् दृष्ट्वा द्रोणं व्यवस्थितम् ॥ ३ ॥ जुष्ममाणमिव व्याघ्रं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् । त्यजन्तपाण्डवे प्राणान् सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ४ महेष्यासं नरव्याघ्रं द्विपतां भयवर्धनम् । कृतज्ञं सत्यनिरतं दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ५ ॥ भारद्वाजं तथानीके दृष्ट्वा शूरमवस्थितम् । के शूराः संयवर्त्तन्त तन्मपाचक्ष्व सञ्जय ॥ ६ ॥ सञ्जय उवाच । तान् दृष्ट्वा चलितान् संख्ये प्रणुन्नान् द्रोणसायकैः । पञ्चालान् पाण्डवान् मत्स्यान् सृञ्जयांश्चेदिकेकयान् ॥ ७ ॥ द्रोणाचार्य-

धृतराष्ट्र ने बुझा, कि-हे सञ्जय । इस महायुद्धमें जब द्रोण ने पाण्डव और पंचालोंकी सेनाओंको बिन्न भिन्न कर डाला, सब लड़नेको आगे कौन बढ़ा था ? ॥ १ ॥ जो वीर क्षत्रियोंके यश को बढ़ानेवाली, डरपोकोंकी त्यागी हुई और श्रेष्ठपुरुषोंसे सेवित युद्ध करनेकी श्रेष्ठ बुद्धिको अङ्गीकार करके रणमेंसे नहीं भागता है उसको बढ़ा वीरपुरुष समझो शोक ! पाण्डवोंमें एकभी ऐसा पुरुष नहीं था कि-जो द्रोणका सामना करसके सिंहकी समान जँभाई लेतेहुए और मद भरते हाथीकी समान, युद्धमें प्राणोंकी परवाह न करके युद्धमें डटनेवाले, चित्रयोधी, महाधनुषधारी, नरव्याघ्र, शत्रुभयवर्धन, कृतज्ञ, सत्यवादी, दुर्योधनका हित चाहने वाले वीर द्रोणको देखकर कौन २ वीर रणमेंसे न भागकर लड़नेको सामने आये थे ? उनको बता ॥ २-६ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि-हे धृतराष्ट्र । जैसे सिंधनदीके महानेगवाले प्रवाहमें ढोंगे यह जाते हैं, तैसेही द्रोणाचार्यके धनुषमेंसे छूटतेही नाश करने वाले प्राणोंके समूहसे चलायमान होकर भागतेहुए पञ्चाल,

मुक्तेन शरौघेणाशुहारिणा । सिन्धोरिव महौघेन हियमाणान्
 यथा प्लवान् ॥ ८ ॥ कौरवाः सिंहनादेन नानावाद्यस्वनेन च ।
 रथद्विपनराशचैव सर्वतः समवारयन् ॥ ९ ॥ तान् पश्यन् सैन्य-
 मध्यस्थो राजा स्वजनसंवृतः । दुर्योधनोववीत् कर्णं प्रहृष्टः प्रह-
 सन्निव ॥ १० ॥ दुर्योधन उवाच । पश्य राधेय पञ्चालान् प्रणु-
 र्गान् द्रोणसायकैः । सिंहेनेव मृगान् वन्यास्त्रासितान् दृढधन्वनाः ११
 नैते जातु पुनर्युद्धमीहेयुरिति मे मतिः । यथा तु भग्ना द्रोणेन
 वातेनेव महाद्रुमाः ॥ १२ ॥ अर्यमाना शरैरेते रुक्मपुत्रैर्महात्मना ।
 पथा नैकेन गच्छन्ति घूर्णमानास्ततस्तनतः ॥ १३ ॥ संनिवृद्धाश्च कौर-
 व्यैर्द्रोणेन च महात्मना । एतेऽन्ये मण्डली भूताः पावकेनेव
 कुञ्जराः ॥ १४ ॥ अमरैरिव चाविष्टा द्रोणस्य निशतैः शरैः ।

पाण्डव, मत्स्य, मुरुजय, चेदि और केकय भागनेलगे यह देख
 कौरव सिंहनाद करके तथा नानाप्रकारके बाजे बजाकर शत्रुपक्षके
 भागतेहुए रथ, हाथी, और मनुष्योंको चारों ओरसे रोकनेलगे ७-९
 इस समय अपने इष्टमित्रोंके साथ सेनाके मध्यमें बैठाहुआ राजा
 दुर्योधन बड़ाही प्रसन्न हो हँसकर कर्णसे कहनेलगा ॥ १० ॥
 दुर्योधनने कहा, कि—हे राधेय ! जैसे सिंहके भयसे वनके हिरन
 भागजाते हैं तैसेही दृढधनुषधारी द्रोणके बाणोंसे त्रास पाकर
 पञ्चाल भागरहे हैं ? जरा देख ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है
 कि—ये पञ्चाल अब फिर लड़नेको नहीं आवेंगे, जैसे आंधीसे
 बड़े-२ वृक्ष पृथिवीपर ढह पड़ते हैं तैसे ही महात्मा द्रोणके सुवर्ण
 की पूँछवाले बाणोंके प्रहारसे क्षिन्न भिन्न हुए ये पाण्डव
 विहल हो इधर उधरको भाग रहे हैं ॥ ११—१३ ॥ कौरवोंकी
 सेनाने और द्रोणने पाण्डवोंके योधाओंको रोक रक्खा है और
 जैसे अग्निके रोकेहुए हाथी मण्डलाकारसे खड़े होजाते हैं तैसे ही
 पाण्डवोंके योधा भी मण्डलाकारमें खड़े हैं ॥ १४ ॥ इनके शरीरों

अन्योन्यं समलीयन्त पलायनपरायणाः ॥ १५ ॥ एष भीमो महा-
क्रोधी हीनः पाण्डवसृज्यैः । मदीयैरावृतो योधैः कर्णं नन्दयतीव
माय् ॥ १६ ॥ व्यक्तं द्रोणमयं लोकमद्य पश्यति दुर्मतिः । निराशो
जीवितान्नूनमद्य राज्याच्च पाण्डवः ॥ १७ ॥ कर्ण उवाच । नैष
जातु महाबाहुर्जीरन्नाहवमुत्सृजेत् । न चेभान् पुरुषव्याघ्रः सिंह-
नादान् सहिष्यति ॥ १८ ॥ न चापि पाण्डवा युद्धे भज्येरन्निति
मे मतिः । शूराश्च वलवन्तश्च कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ १९ ॥ विपा-
त्रिधूतसंकलेशान् वनवासश्च पाण्डवाः । स्मरमाणा न हास्यन्ति
संग्राममिति मे मतिः ॥ २० ॥ निवृत्तो हि महाबाहुरमितौजा वृकोदरः ।
वरान् वरान् हि कौन्तेयो रथोदारान् हनिष्यति ॥ २१ ॥ असिना
धनुषा शक्त्या हयैर्नागैर्नरै रथैः । आयसेन च दण्डेन ब्रातान्

मैं द्रोणके बाण भौरोंकी समान लगरहे हैं तथा देख ये भागतेमें
आपसमें ही एक दूसरेकी गोदीमें घुसेजाते हैं ॥ १५ ॥ हे कर्ण !
पाण्डव और सृज्योंसे विलग हुआ यह महाक्रोधी भीम मेरे
योधोंऔसे घिरजानेके कारण मुझे आनन्द देरहा है ॥ १६ ॥
हे कर्ण ! राज्य और जीवनसे निराश हुआ दुर्मति भीम आज
संसारको द्रोणमय ही देखता होगा ॥ १७ ॥ कर्णने कहा, कि-
हे पुरुषव्याघ्र ! यह महाबाहु भीमसेन जीता हुआ तो युद्धमेंसे
कभी नहीं भागेगा तथा यह हमारे सिंहनादोंको भी नहीं सहेगा १८
और मेरा तो यह भी निश्चय है कि-पाण्डव भी युद्धमेंसे नहीं
भागेंगे वे वीर हैं, बली हैं, अस्त्रकुशल हैं तथा युद्धदुर्मद हैं १९
वे लोग विप, लाखाभवनकी अग्नि और जुएके क्लेश तथा
वनवासके दुःखोंको याद करके संग्रामको कभी नहीं छोड़ेंगे १९-२०
महाबाहु, परम पराक्रमी भीमसेन जब रणमें घुमेगा तब छद्म २
महारथियोंको मारडालेगा ॥ २१ ॥ तथा तलवार, धनुष, शक्ति,
घोड़े, हाथी, रथ तथा लोहदण्डसे तुम्हारी सेनाकी टोलियोंकी

ब्रातान् हनिष्यति ॥ २२ ॥ तमेनमनुवर्तन्ते सात्यकिप्रमुखा रथाः ।
 पञ्चाला केकया मत्स्याः पाण्डवाश्च विशेषतः ॥ २३ ॥ शूराश्च
 वलवन्तश्च विक्रान्ताश्च महारथाः । विनिघ्नन्तश्च भीमेन संरब्धे-
 नाभिचोदिताः ॥ २४ ॥ ते द्रोणमभिवर्तन्ते सर्वतः कुरुपुङ्गवाः ।
 वृकोदरं परीप्सन्तः सूर्य्यमभ्रगणा इव ॥ २५ ॥ एकायनगता ह्येते
 पीडयेयुर्यतव्रतम् । अरक्षमाणं शलभा यथा दीपं मुमूर्षवः ॥ २६ ॥
 असंशयं कृतास्त्राश्च पर्याप्ताश्चापि वारणे । अतिभारमहं मन्ये भार-
 द्वाजे समाहितम् ॥ २७ ॥ शीघ्रमनुगमिष्यामो यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ।
 कोका इव महानागं मा वै हन्युर्यतव्रतम् ॥ २८ ॥ सञ्जय उवाच ।
 राधेयस्य वचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः । भ्रातृभिः सहितो

दोलिर्योको मसल डालेगा २२ सात्यकि आदि महारथी तथा वीर-
 बलवान् महापराक्रमी तथा महारथी पञ्चाल, केकय, मत्स्य, पाण्डव
 तथा दूसरे राजे, भीमसेनका साथ देनेवाले हैं, वे भी क्रोधमें भरे भीम-
 सेनकी आज्ञासे आपकी सेनाका नाश करना आरम्भ करेंगे और
 मेघ जैसे सूर्यकी रक्षा करते हैं तैसे ही वे योधा भीमकी रक्षा
 करेंगे और चारों ओरसे द्रोण पर टूट पड़ेंगे यदि हम व्रतधारी
 द्रोणाचार्यकी रक्षा न करेंगे तो मरणकी इच्छावाले पतङ्गे जैसे
 दीपक पर टूट पड़ते हैं तैसे ही पाण्डवोंके योधा द्रोण पर टूट
 पड़ेंगे और उन्हें बहुत ही दुःख देंगे ॥ २३-२४ ॥ पाण्डवपक्षके
 योधा वास्तवमें शस्त्रनिपुण और प्रतिपक्षियोंको रोकनेमें समर्थ
 हैं, यह मैं स्वीकार करता हूँ, कि-द्रोण पर युद्धका बड़ा बोझ आ
 पड़ा है जैसे मदमत्त हाथीको भेड़िये फाड़ डालते हैं तैसे ही जब
 तक पाण्डव सदाचारी द्रोणको मार न डालें, उससे पहिले ही उनके
 पास पहुँचजावे ॥ २७-२८ ॥ सञ्जयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र !
 राजा दुर्योधन कर्णकी इस बातको सुन भाइयोंको साथमें ले

राजन् प्रायाद् द्रोणरथं प्रति ॥२६॥ तत्रारावो महानासीदेकं द्रोणं
जिघांसताम् । पाण्डवानां निवृत्तानां नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणार्णवणि संशप्तकवधपर्वणि

द्रोणयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । सर्वेषामेव मे ब्रूहि रथचिन्हानि सञ्जय । ये
द्रोणमभ्यवर्त्तन्त क्रुद्धा भीमपुरोगमाः ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच ।
ऋक्षवर्णैर्हयैर्दृष्ट्वा व्यायच्छन्तं वृकोदरम् । रजतारवस्ततः शूरः
शौनेयः सन्नयवर्त्तत ॥२॥ सारङ्गाश्वो युधामन्युः स्वयं मत्वरयन्
हयान् । पर्यवर्त्तत दुर्धर्षः क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ३ ॥ पारावत-
सवर्णैस्तु हेमभाण्डैर्महाजवैः । पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नो
न्यवर्त्तत ॥ ४ ॥ पितरन्तु परिप्रेप्सुः क्षत्रधर्मा यतव्रतः । सिद्धि-

द्रोणके रथकी ओर बढ़ा ॥ २६ ॥ उस समय अनेकों वर्णके
घोड़ों पर चढ़ एक द्रोणको मारना चाहनेवाले पाण्डवोंके युद्ध-
भूमिमें घूमने पर वहाँ दुन्द मचगया ॥ ३० ॥ वाईसवाँ अध्याय
समाप्त ॥ २२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! क्रोधमें भरे भीम आदि जो
योधा द्रोणके ऊपर चढ़कर आये थे, उन सबके रथ, घोड़े और
ध्वजा पताका आदि कैसे थे, यह मुझसे कह ॥ १ ॥ सञ्जयने
कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! रीछ कैसे रङ्गके घोड़ों वाले
भीमसेनको चढ़ता हुआ देखरूपहले घोड़ोंवाला शूर सात्यकि भी
द्रोणाचार्यके ऊपर लौट पड़ा ॥ २ ॥ क्रोधमें भरा हुआ युधामन्यु
चितकवरे घोड़ोंवाले रथमें बैठसंय ही घोड़ोंको शीघ्रतासे हाँकता
हुआ द्रोणाचार्यके रथके सामने आगया ॥ ३ ॥ पञ्चालराजका
पुत्र धृष्टद्युम्न कवूतरोंकेसे रङ्गवाले सुवर्णके घुँघुर्छोंवाले, तेज
घोड़ोंके रथमें बैठ द्रोणाचार्यकी ओरको बढ़ा ॥४॥ अपने पिता
को वचानेकी इच्छासे तथा उनको महासिद्धि दिलानेकी इच्छासे

इवास्य परां काङ्क्षन् शोणारवः सन्नयवर्त्तत ॥ ५ ॥ पद्मपत्र-
निभांश्चाश्वान् मल्लिकाञ्चान् स्वलङ्कृतान् । शैखण्डिः क्षत्रदेवस्तु
स्वयं प्रत्वरयन् ययौ ॥ ६ ॥ दर्शनीयास्तु काम्बोजाः शुकपत्र-
परिच्छदाः । वहन्तो नकुलं शीघ्रं तावकानभिदुद्रुधुः ॥ ७ ॥ कृष्णा-
स्तु मेघसङ्काशा अवहन्नुत्तमौजसम् । दुर्धर्षायाभिसन्धाय क्रुद्धं
युद्धाय भारत ॥ ८ ॥ तथा तिचिरकल्पाषा हया वातसमा जवे ।
अत्रहस्तमुले युद्धे सहदेवमुदायुधम् ॥ ९ ॥ दन्तवर्णास्तु राजानं
कालवालां युधिष्ठिरम् । भीमवेगा नरव्याघ्रमवहन् वातरंहसः १०
हेमोत्तमपतिच्छन्नैर्हयैर्वातसमैर्जवे । अभ्यवर्त्तन्त सैन्यानि सर्वा-
ण्येव युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥ राज्ञस्त्वनन्तरं राजा पञ्चाल्यो द्रुपदो-
भवत् । जातरूपमयच्छत्रः सर्वैस्तैरभिरक्षितः ॥ १२ ॥ ललामैर्हरि-

व्रतधारी क्षत्रधर्मा लाल रङ्गवाले घोड़ोंके रथमें बैठ रणभूमिमें
दौड़आया ॥ ५ ॥ शिखण्डीका पुत्र क्षत्रदेव कमलपत्रके रङ्गवाले
निर्मल नेत्रोंवाले, और आभूषणोंसे सुशोभित घोड़ोंवाले रथको
स्वयं शीघ्रतासे रणमें ले आया ॥ ६ ॥ देखने योग्य काम्बोजदेशी
रङ्गकी, तोतेकेसे रङ्गकी झूलोंवाले घोड़े नकुलको तुम्हारे पुत्रकी
सेनाकी ओरको ले आये ॥ ७ ॥ हे भारत ! क्रोधमें भरेहुए
उत्तमौजाको मेघकेसे काले घोड़े दुर्धर्ष द्रोणके सामने ले आए ८
हाथमें शस्त्र उठायेहुए सहदेव वायुवेगी तीतरकेसे रङ्गके घोड़ों
वाले रथमें बैठ युद्धमें आगया ॥ ९ ॥ नरव्याघ्र युधिष्ठिर दाँतों
की समान श्वेत वायुवेगी, काले केशोंवाले घोड़ोंके रथमें बैठ
युद्धस्थलमें आडटे ॥ १० ॥ युधिष्ठिरके पीछे, उनकी सेनाके
मनुष्य भी वेगमें वायुकी समान सुवर्णकी झूलोंवाले घोड़ोंसे
जुते रथोंमें बैठकर चढ़आये ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरके पीछे
पञ्चालराज द्रुपद, सुवर्णका छत्र लगाकर चल रहा था, चारों
ओरसे योधा उसको रक्षा कर रहे थे वह महापुरुषधारी पञ्चाल-

भिर्युक्ताः सर्वशब्दक्षमैर्युधि । राज्ञां मध्ये महेश्वासः शान्तभीरभ्य-
वर्त्तत ॥ १३ ॥ तं विराटोन्वयाच्छीघ्रं सह सर्वैर्महारथैः । केकयाश्च
शिखण्डी च धृष्टकेतुस्तथैव च ॥ १४ ॥ स्वैः स्वैः सैन्यैः परिवृता-
मत्स्यराजानमन्वयुः । तन्तु पाटलिपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः १५
बहमाना व्यराजन्त मत्स्यस्यामित्रघातिनः । हरिद्रासमवर्णास्तु
जवना हेममालिनः ॥ १६ ॥ पुत्रं विराटराजस्य सत्वरं समुदावहन् ।
इन्द्रगोपकवर्णैश्च भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥ १७ ॥ जातरूपसमाभासाः
सर्वे लोहितकध्वजाः । ते हेममालिनः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः १८
वर्षन्त इव जीमूताः प्रत्यदृश्यन्त दंशिताः । आमपात्रनिकाशारतु
पांचान्यममितौजसम् ॥ १९ ॥ दत्तास्तुमुखा दिव्याः शिख-
ण्डिनमुदावहन् । तथा द्वादश साहस्राः पञ्चालानां महारथाः २०

राज तोप वन्दूक आदिके शब्दोंको सहनेवाले घोडोंके रथमें
बैठ सब राजाओंके बीचमें निर्भय होकर चल रहा था १२-१३
पञ्चालराजके पीछे राजा विराट बहुतसे महारथियोंसे घिरकर
चल रहे थे, केकय, शिखण्डी और धृष्टकेतु अपनी २ सेनाओंके
साथ विराटके पीछे २ चले, शत्रुघाती मत्स्यराज विराटके रथको
पाटलोंके फूलोंकी समान गुलाबी रङ्गके घोड़े खेंच रहे थे हल्दी
केसे रङ्गके फुर्तीले, सुवर्णकी मालाएँ पहिरेहुए घोड़े राजा विराट
के पुत्रको लिये फिरते थे, केकय नामक पाँचों भाई इन्द्रगोपके
समान लाल रङ्गके घोडोंवाले रथमें बैठ युद्धभूमिमें आये थे, इन
पाँचों भाइयोंका शरीर चाँदीकी समान श्वेत था, उनकी ध्वजाएँ
लाल २ थीं, वे सोनेकी हथेलें पहिन रहे थे, शूर युद्धमें चतुर
और शुद्ध लोहेके कवच पहिरेहुए युद्धमें मेघोंकी समान बाण
वर्षा करतेहुए घुस आये तुम्बुरुके दिय हुए कच्चे पात्रके रङ्गके
से घोडोंवाले रथमें बैठकर शिखण्डी युद्धस्थलमें आया था,
पञ्चालोंके बारह सहस्र महारथी युद्धमें आये थे, उनमेंसे ऋःसहस्र

तेषान्तु षट् सहस्राणि ये शिखण्डिनमन्त्रयुः । पुत्रन्तु शिशुपालस्य
 नरसिंहस्य पारिष ॥ २१ ॥ आक्रीडन्तो बहन्ति स्म सारङ्गशवला
 हयाः । धृष्टकेतुस्तु चेदीनामृषभोतिवल्गोदिनः ॥ २२ ॥ काम्बोजैः
 शबलैरश्वैरभ्यवर्त्तत दुर्जयः । बृहत्तत्रन्तु कैकेयं सुकुमारं हयोत्तमाः २३
 पलालधूपसङ्काशाः सैन्यवाः शीघ्रमावहन् । मल्लिकाज्ञाः पञ्चवर्णा
 बालिहजाताः स्वलंकृताः ॥ २४ ॥ शूरं शिखण्डिनः पुत्रमृत्तदेव-
 मुदावहन् । रुक्मभाण्डपतिच्छन्नाः कौशेयसदृशा हयाः ॥ २५ ॥
 क्षपावन्तोऽवहन् संख्ये सेनाविन्दुमरिन्दमम् । युवानपवहन् युद्धे
 क्रौञ्चवर्णा हयोत्तमाः ॥ २६ ॥ काश्यस्याभिभुवः पुत्रं सुकुमारं
 महारथम् । श्वेतास्तु प्रतिविध्यन्तं कृष्णग्रीवा मनोजवाः । यन्तुः
 प्रेक्ष्यकरा राजन् राजपुत्रमुदावहन् ॥ २७ ॥ सुतसोमंतु यः सौम्यं
 पार्थ पुत्रमजीजनत् । माषपुष्पसवर्णास्तमवहन् वाजिनो रणे ॥ २८ ॥

शिखण्डीके पीछे चलते थे, हे राजन् ! पुरुषसिंह शिशुपालकुमार
 खेलते हुए मृगकीसी छलांगे भरनेवाले घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर
 आया था चेदियोंमें श्रेष्ठ महाबली, अजेय धृष्टकेतु काम्बोज देशके
 चितकवरे घोड़ोंके रथमें बैठकर युद्ध करनेको द्रोणके सामने आया
 था, सुकुमार केकयवंशी बृहत्तत्र पिरालके धुएँकेसे वर्णवाले सिन्धु-
 देशी घोड़ोंके रथमें बैठकर युद्धमें आया था, शिखण्डीका पुत्र
 वीर ऋत्तदेव मल्लिकाकी समान नेत्रोंवाले कमलकी समान गोरे और
 पीले रङ्गके, बाल्हीक देशमें उत्पन्न हुए, भली प्रकार सजाएहुए
 घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर युद्धमें आया था ॥ १४-२५ ॥ तरुण
 अरिन्दम, सेनाविन्दु क्रौञ्चकेसे वर्णवाले घोड़ोंके रथमें बैठकर
 युद्धस्थलमें आया था ॥ २५ ॥ काशीके राजा अभिभूका सुकु-
 मार और महारथी पुत्र प्रतिविध्य, श्वेनवर्णके, काली गर्दनवाले,
 मनकी समान वेगवाले सारथीकी इच्छानुसार चलनेवाले घोड़ों
 के रथमें बैठकर आया था ॥ २७ ॥ उड़दके फूलोंकी समान पीले

सहस्रसोमप्रतिमो वभूव पुरे कुरूणामुदयेन्दु नाम्नि । तस्मिन् जातः
 सोमसंकन्दमध्ये यस्मात्तस्मात् सुतसोमोभवत् सः ॥ २६ ॥ नाकु-
 लिन्तु शतानीकं शालपुष्पनिभा हयाः । आदित्यतरुणप्रख्याः
 शलाघनीयमुदावहन् ॥ २७ ॥ काञ्चनापिहितैर्योक्त्रैर्मयूरग्रीवसन्निभाः ॥
 द्रौपदेयं नरव्याघ्रं श्रुतकर्माणमाहवे ॥ २८ ॥ श्रुतकीर्त्तिं श्रुतनिधिं
 द्रौपदेयं ह्योत्तमाः । ऊहुः पार्थसमं युद्धे चापपत्रनिभा हयाः ॥ २९ ॥
 यमाहुरध्वर्द्धगुणं कृष्णात् पार्थाच्च संयुगे । अभिमन्युं पिशाङ्गास्तं
 कुमारमवहन् रणे ॥ ३० ॥ एकस्तु धार्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवान् यः समा-
 श्रितः । तं बृहन्तो महाकाया युयुत्सुमवहन् रणे ॥ ३१ ॥ पलाल-
 काण्डवर्णास्तु बार्हत्तमिं तरस्विनम् । ऊहुः सुतुमुले युद्धे हयाः

रङ्गके घोड़ेवाले रथमें बैठकर अर्जुनका पुत्र शान्त स्वभाव सुत-
 सोम आया था ॥ २६ ॥ ये घोड़े अर्जुनने सोम (चन्द्रमा) से
 पाए थे, सहस्र सोम (चन्द्रमा) की समान सौम्य अर्जुनका
 पुत्र कौरवोंके उदयेन्दु (इन्द्रप्रस्थ) में सोमलताके पत्रमें उत्पन्न
 हुआ था, इससे उसका नाम सुतसोम पड़ा था, ॥ २७ ॥ प्रशं-
 सनीय नकुलपुत्र शतानीक शालके पुष्पकी समान रङ्गके (लाल
 और पीले) तथा तरुण सूर्यकी समान लाल रङ्गके घोड़ोंके रथमें
 बैठकर रणभूमिमें आया था ३० पुरुषव्याघ्र (भीमसेनसे उत्पन्न
 हुआ) द्रौपदीका पुत्र श्रुतकर्मा सुवर्णकी रासोंवाले मोरके कंठ
 की समान रङ्गके घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर युद्धमें आया था ३१
 पपहियेके परोंके समान वर्णवाले घोड़े शास्त्रीके खजानेरूप, द्रौपदी
 के पुत्र श्रुतकीर्त्तिको अर्जुनकी समान युद्धमें लेचले ॥ ३२ ॥
 रणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनसेभी अधिक वीर अभिमन्यु पीले
 बणके घोड़ोंवाले रथमें बैठकर रणमें आया था ॥ ३३ ॥ जो
 अपनी सेनामेंसे पाण्डवोंकी सेनामें चला गया था, वह आपका
 पुत्र युयुत्सु महाकाय घोड़ोंवाले रथमें बैठकर लड़नेको आया

कृष्णाः स्वलंकृताः ॥ ३५ ॥ कुमारं शितिपादास्तु रुक्मचित्रैरुच्छदैः ।
 सौचिचिपवहन् युद्धे यन्तुः प्रेक्ष्यकरा हयाः ॥ ३६ ॥ रुक्मपीठाव-
 कीर्णास्तु कौशेयसदृशा हयाः । सुवर्णमालिनः क्षान्ताः श्रेणिमन्त-
 मुदावहन् ॥ ३७ ॥ रुक्ममालाधराः शूरा हेमपृष्ठाः स्वलंकृताः ।
 काशिराजं नरश्रेष्ठं श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३८ ॥ अस्त्राणाञ्च
 धनुर्वेदे ब्राह्मे वेदे च पारगम् । तं सत्यधृतिमायान्तमरुणाः समुपा-
 वहन् ॥ ३९ ॥ यः स पाञ्चालसेनानी द्रोणमंशमकल्पयत् । पारा-
 वतसवर्णास्तं धृष्टद्युम्नमुदावहन् ॥ ४० ॥ तमन्वयात् सत्यधृतिः
 सौचिचित्पुद्गदुर्मदः । श्रेणिमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चा-
 भिभूः ॥ ४१ ॥ युक्तैः परमकाम्बोजैर्ज्वनैर्हैममालिभिः । भीष-

था ॥ ३४ ॥ पिरालकी समान पीले और काले वर्णके गहनोंसे
 सजे घोड़े महातुमुल युद्धमें वेगवान् वृद्धक्षेत्रके पुत्रको लेचले ॥ ३५ ॥
 सारथीके वशमें रहनेवाले, काले पैरोंवाले और सुवर्णकी चित्र-
 कारीवाले उरच्छदोंसे युक्त, बड़े शरीरोंवाले घोड़े सुचित्तके पुत्र
 राजकुमारको युद्धमें लेचले ॥ ३६ ॥ सुनहरी भूलोंवाले, रेशमी
 वर्णके, सोनेकी मालाएँ पहिरे, चतुर घोड़े श्रेणिमन्तको चढ़ा
 कर लेचले ॥ ३७ ॥ नरश्रेष्ठ प्रशंसनीय काशिराजको, सुवर्णकी
 मालायें, सुनहरी भूलें और आभूषणोंसे सजेहुए घोड़ोंने, रण-
 भूमिमें पहुँचाया ॥ ३८ ॥ अस्त्रविद्या, शस्त्रविद्या और वेदशास्त्रमें
 निपुण रणमें आतेहुए सत्यधृतिको लाल वर्णके घोड़े लेचले ३९
 जिस पञ्चालदेशी सेनापतिने द्रोणको अपना भाग कल्पना
 किया था, उस धृष्टद्युम्नको कवूतरोंकेसे रंगके घोड़े युद्धमेंको लेकर
 चलरहे थे ॥ ४० ॥ यम और कुवेरकी समान सत्यधृति, युद्धके
 मदसे मत्त सुचित्तका पुत्र, श्रेणिमान्, वसुदान, काश्यका पुत्र
 अभिभू, सुवर्णकी मालाएँ धारण करनेवाले काम्बोजदेशी घोड़ों
 से जुते रथोंमें बैठ शत्रुओंकी सेनाओंको डरातेहुए धृष्टद्युम्नके

यन्तो द्विपत्सैन्यं यमवैश्रवणापमाः ॥४२॥ प्रभद्रकास्तु काम्बोजाः
 पद्मसहस्राण्युदायुधाः । नानावर्णैर्हयैः श्रेष्ठैर्मवर्णैरथध्वजाः ॥४३॥
 शरनातैर्विधुन्वन्तः शत्रून् व्रिततकाम्यकाः । समानमृत्यवो भूत्वा
 धृष्टद्युम्नं समन्वयुः ॥४४॥ वभ्रुर्हौशयवर्णास्तु सुवर्णवरमालिनः ।
 ऊहुरम्लानमनसश्चेकितानं हयोत्तमाः ॥ ४५ ॥ इन्द्रायुधसवर्णस्तु
 कुन्तिभोजो हयोत्तमैः । आयात् सदश्वैः पुरुजिन्मातुलः सध्व-
 साजिनः ॥४६॥ अन्तरिक्षसवर्णास्तु तारकाशिव्रिता इव । राजानं
 रोचमानं ते हयाः संख्ये सयावहन् ॥४७॥ कर्तुराः शितिपादास्तु
 स्वर्णजालपरिच्छदाः । जारासंधिं हयाः श्रेष्ठाः सहदेवमुदावहन् ४८
 ये तु पुष्करनालस्य समवर्णा हयोत्तमाः । जवे श्येनसमाशिव्रिताः
 सुदामानमुदावहन् ॥ ४९ ॥ शशलोहितवर्णास्तु पांडुरोद्गततरा-
 जयः । पाञ्चानन्यं गोपतेः पुत्रं सिंहसेनमुदावहन् ॥५०॥ पञ्चालानां

पीछे चल रहे थे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ काम्बोजदेशी प्रभद्रक नाम
 वाले द्वे सहस्र योधा, आयुधोंको उठाकर, सुनहरी ध्वजावाले
 तथा श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते रथोंमें बैठकर रथमें आये थे, वे धनुषोंको
 तानकर बाणोंकी बौछार करतेहुए मृत्युसमान बनकर धृष्टद्युम्न
 के पीछे चल रहे थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ सुवर्णकी मालाएँ पहरे, प्रसन्न
 मनवाले तथा पीले और गौर वर्णके श्रेष्ठ घोड़े चेकितानको ले
 चले ॥ ४५ ॥ अर्जुनका मामा कुन्तिभोज पुरुजित् इन्द्रधनुषकी
 समान तीन रङ्गके घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ युद्धमें आया ॥ ४६ ॥
 राजा रोचमानको तारोंसे चितेहुए आकाशकी समान वर्णवाले
 घोड़े युद्धमें लेचले ॥ ४७ ॥ जरासंधके पुत्र सहदेवकी चित-
 कवरे, काले पैरोंवाले और सुवर्णके भूषणोंसे शोभायमान घोड़े
 युद्धकी ओर लेचले ॥ ४८ ॥ जो घोड़े वेगमें बाजकी समान
 और वर्णमें कमलनालकी समान थे, वे सुदामाको लिये जारहे
 थे ॥ ४९ ॥ पञ्चालके राजा गोपतिका पुत्र सिंहसेन सफेद और
 लाल रङ्गवाले तथा श्वेत रोमावाली बालें घोड़ोंपर युद्धमें आया

नरव्याघ्रो यः ख्यातो जनमेजयः । तस्य सर्षपपुष्पाणां तुल्यवर्णा
 हयोत्तमाः ॥ ५१ ॥ माषत्रणोश्च जवना बृहन्तो हेममालिनः ।
 दधिपृष्ठाश्चित्रमुखाः पाञ्चाल्यमवहन् द्रुतम् ॥ ५२ ॥ शूराश्च भद्रका-
 र्श्चैव शरकाण्डनिभा हयाः । पञ्चकिञ्जल्कवर्णाभा दण्डधारमु-
 दावहन् ॥ ५३ ॥ रासभाखण्डवर्णाभाः पृष्ठतो मूषिकप्रभाः ।
 बलान्त इव संयत्ता व्याघ्रदत्तमुदावहन् ॥ ५४ ॥ हरयः कालका-
 श्चित्राश्चित्रमालयविभूषिताः । सुवन्वानं नरव्याघ्रं पाञ्चाल्यं समुदा-
 वहन् ॥ ५५ ॥ इन्द्राशानिसमस्पर्शा इन्द्रगोपकसन्निभाः । काये
 चित्रान्तराश्वित्राश्चित्रायुधमुदावहन् ॥ ५६ ॥ विश्रतो हेममालास्तु
 चक्रवाकोदरा हयाः । कोसलाधिपतेः पुत्रं सुत्तत्रं वाजिनोऽवहन् ५७
 शबलास्तु बृहन्तोश्वा दान्ता जाम्बूनदलजः । युद्धे सत्यधृतिं क्षेमि-

था ॥ ५० ॥ पञ्चालोंमें जनमेजय नामसे मसिद्ध राजाको सरसों
 के फूल और उड़दकी समान वर्णवाले, तेज, हमेलें पहिरेहुए,
 दही-नीसी भूल और चितकवरे मुखोंवाले घोड़े लेकर चलरहे
 थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ राजा दण्डधार वीर, सुन्दर शिरवाले, चम-
 कतेहुए सेंदोंकी समान सुन्दर, कमलके परागकी समान वर्णवाले
 घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ युद्ध करनेको चढा था ॥ ५३ ॥ राजा
 व्याघ्रदत्त फीके लालरङ्गको समान कान्तिवाले तथा पीठमें मलिन
 श्वेत मजबूत घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ युद्ध करनेके लिये आया
 था ॥ ५४ ॥ पञ्चालदेशी नरव्याघ्र सुवन्वाको काले मस्तक
 वाले, चितकवरे, नानाप्रकारके फूलोंसे विभूषित घोड़े लेकर
 चलरहे थे ॥ ५५ ॥ छूनेमें विजलीकी समान, इन्द्रगोपकेसे वर्णवाले
 विचित्रवर्णी अद्भुतदर्शनीय घोड़े चित्रायुधको लेकर चले ॥ ५६ ॥
 सुवर्णकी हमेलोंको पहरे चक्रके पेटकी समान रङ्गके घोड़े कोसल
 देशके राजकुमार सुत्तत्रको लेकर चले ॥ ५७ ॥ चितकवरे,
 चतुर, सुवर्णकी मालाओंवाले बड़े २ घोड़े युद्धमें सच्चे वीर

भवहन् प्रांशवः शुभाः ॥ ५८ ॥ एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च । अश्वैश्च धनुषा चैव शुक्लैः शुक्लो न्यवर्त्तत ॥ ५९ ॥ समुद्र-
सेनपुत्रन्तु समुद्रा रुद्रतेजसम् । अश्वाः शशाङ्कसदृशाश्चन्द्रसेनमुदा-
वहन् ॥ ६० ॥ नीलोत्पलसत्रवर्णास्तु तपनीयविभूषिताः । शैव्यं
चित्ररथं संख्ये चित्रमान्यावहन् हयाः ॥ ६१ ॥ कलायपुष्पवर्णास्तु
श्वेतलोहितराजयः । रथसेनं हयश्रेष्ठाः समूहयुद्धदुर्मदम् ॥ ६२ ॥
यन्तु सर्वमनुज्येभ्यः प्राहुः शूरतरं नृपम् । तं पटच्चरदन्तारं शुक्-
वर्णावहन् हयाः ॥ ६३ ॥ चित्रायुधं चित्रमाल्यं विप्रवर्मायुधध्वजम् ।
ऊहुः किंशुकपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥ ६४ ॥ एकवर्णेन
सर्वेण ध्वजेन कवचेन च । धनुषा रथवाहैश्च नीलैर्नीलोभ्यव-
र्त्तत ॥ ६५ ॥ नानारूपै रत्नचिह्नैर्वरुधरथकार्मुकैः । वाजिध्वजपता-

ज्ञेयिको लेकर चलरहे थे ॥ ५८ ॥ एकही रङ्गके ध्वजा, कवच,
धनुष और सफेद घोड़ोंवाला राजा शुक्ल युद्ध करनेको चलरहा
था ॥ ५९ ॥ मचण्ड तेजवाले, समुद्रसेनके पुत्र चन्द्रसेनको समुद्र
से उत्पन्नहुए चन्द्रवर्णी घोड़े लेकर जारहे थे ॥ ६० ॥ नील-
कमलकेसे वर्णवाले, सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित, नानाप्रकार
की चित्रविचित्र मालाओंवाले घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर शिविके
पुत्र चित्ररथने युद्धमें प्रवेश किया ॥ ६१ ॥ युद्धदुर्मद रथसेन,
मटरके फूलोंकी समान वर्णवाले, लाल और श्वेत ग्रीवाके केशों
वाले श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ युद्ध करनेको आया था ॥ ६२ ॥
जिसको सब मनुष्योंसे अधिक शूर कहते हैं उस पटच्चरनामक
असुरको मारनेवाले समुद्रदेशके स्वामीको तोतेकेसे वर्णवाले घोड़े
युद्धमें लेकर चले ॥ ६३ ॥ डेमूके फूलोंकेसे वर्णवाले श्रेष्ठ घोड़े,
विचित्र प्रकारके, कवच, ध्वजा, आयुध तथा मालाओं धारण करने
वाले चित्रायुधको लेकर चले ॥ ६४ ॥ जिसकी ध्वजा, कवच,
धनुष तथा घोड़े आदि सबही एक नीले रङ्गके थे, वह राजा

काभिरिचवैरिचत्रोभ्यवर्त्तत ॥ ६६ ॥ ये तु पुष्करवर्णस्य तुल्य-
वर्णा इयोत्तमाः । ते रोचमानस्य सुतं हेमवर्णमुदावहन् ॥ ६७ ॥
योऽश्वश्च भद्रकाराश्च शरदण्डानुदण्डयः । श्वेताण्डाः कुक्कुटा-
ण्डाश्च दण्डकेतुं हयावहन् ॥ ६८ ॥ केशवेन हते संख्ये पितर्यथ
नराधिपे । भिन्ने कपाटे पाण्डवानां विद्वतेषु च वन्धुषु ॥ ६९ ॥
भीष्मादवाप्य चास्त्राणि द्रोणाद्रामात् कृपात्तथा । अस्त्रैः सम्पत्वं
सम्प्राप्य रुक्मिकर्णार्जुनाभ्युतैः ॥ ७० ॥ इयेष द्वारकां हन्तुं कृत्स्नां
जेतुञ्च मेदिनीम् । निवारितन्ततः प्राज्ञैः सुहृद्भिर्हितकाम्यया ७१
वैरातुवन्धुमुत्सृज्य स्वराज्यमनुशास्ति यः । स सागरध्वजः पाण्ड्य-
श्चन्द्रशमनिभैर्हयैः ॥ ७२ ॥ वैदूर्यजालसञ्जनैर्वीर्यद्रविणमाश्रितः ।

नील भी युद्ध करनेको चलदिया ॥ ६५ ॥ तथा राजा चित्र, नाना-
प्रकारके पैदल, तथा रत्नजड़ित रथ, धनुष हाथी, घोड़े और
तरहर की ध्वजा तथा पताकाओंके साथ युद्धमें चढ़ाया ॥ ६६ ॥
आसंमानी रङ्गके श्रेष्ठ घोड़े रोचमानके पुत्र हेमवर्णको लेकर चल
दिये ॥ ६७ ॥ युद्ध करनेमें सपर्य्य श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, सेटोंकी
चमककी समान पृष्ठवंश और श्वेत अण्डकोशवाले, मुर्गीके अंडे
केसे रङ्गके घोड़े दण्डकेतुको ले जारहे थे ॥ ६८ ॥ देशके स्वायी
अपने पिताके, श्रीकृष्णके हाथसे मारे जाने पर और पाण्ड्यदेश
के फाटकके टूट जाने पर तथा बान्धवोंके भाग जाने पर ॥ ६९ ॥
जिसने भीष्म, द्रोण, और परशुरामसे अस्त्रविद्या सीखी और
उससे रुक्मि, कर्ण तथा अर्जुन एवं श्रीकृष्णकी समानता प्राप्त
कर द्वारिकाको नष्ट करना तथा समग्र भूमण्डलको जीतना चाहा
था तथा जिसको हितैषी भाइयोंने ऐसा करनेसे रोका था ७०-७१
तथा जो अपने देशमें (पीछे) वैरभावको छौड़कर शासन करता
था वह वीर्य और धनका धनी पाण्ड्य देशका राजा सागर-
ध्वज चन्द्रपाकी किरणोंकेसे श्वेत, वैदूर्यमणिके आभूषणों वाले

दिव्यं विस्फारयंश्चापं द्रोणमभ्यद्रवद्वली ॥ ७२ ॥ आटरूपक-
वर्णाभा इयाः पांड्यानुयायिनाम् । अवहन् रथमुख्यानामयुतानि
चतुर्दश ॥ ७३ ॥ नानावर्णेन रूपेण नानाकृतिमृत्वा इयाः । रथ-
चक्रध्वजं वीरं घटोत्कचमुदावहन् ॥ ७४ ॥ भरतानां समेतानां-
मुत्सृज्यैको मतानि यः । गतो युधिष्ठिरं भक्त्या त्यक्त्वा सर्वगभी-
षितम् ॥ ७५ ॥ लोहितान्नं महाबाहुं ब्रुवन्तं तमरट्टजाः । मद्रा-
सत्वा महाकायाः सौवर्णस्यन्दने स्थितम् ॥ ७६ ॥ सुवर्णवर्णा
धर्मज्ञमनीकस्थं युधिष्ठिरम् । राजश्रेष्ठं हयश्रेष्ठाः सर्वतः पृष्ठताञ्ज्वयुः
॥ ७७ ॥ वर्णैरुत्चावचैरन्यैः सदृशानां प्रभद्रकाः । संन्यवर्तन्त
मुद्धाय बहवो देवरूपिणः ॥ ७८ ॥ ते यत्ता भीमसेनेन सहिताः

घोड़ोंके रथमें बैठ अपने दिव्य चापको चढ़ाता हुआ द्रोणकी ओर
चढ़ आया ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ चौदह सदस्य महारथी घोषा अट्टसे
के वर्णवाले घोड़ोंके रथोंमें बैठकर पाण्डवके पीछे चलते थे ७४
नानाप्रकारके रूप, आकृति और मुखवाले घोड़े रथियोंके मंडलमें
ध्वजारूप घटोत्कचको लेकर चल रहे थे ७५ इकट्ठे हुए भरतवंशी
राजाओंके मतका तथा सकल इच्छित वस्तुओंको त्यागकर जो
भक्तिसे युधिष्ठिरके आश्रयमें चला गया था वह लाल नेत्रोंवाला
महाबाहु महाबली, महाकाय, राजा वीरदन्ता अङ्गदेशी घोड़ोंसे
जुते सुनहरी रथमें बैठकर रणभूमिमें आया ॥ ७६-७७ ॥ सुन-
हरी रत्नके श्रेष्ठ घोड़े सेनाके मध्यमें स्थित, राजाओंमें श्रेष्ठ, धर्म-
वेत्ता राजा युधिष्ठिरके पीछे उनको चारों ओरसे घेरकर चलते
थे ॥ ७८ ॥ देवताओंकी समान रूपा धारण करनेवाले बहुतसे
प्रभद्रक भी, चढ़ते उतरते रत्नवाले श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ
कर युद्ध करनेको रणभूमिमें आये ॥ ७९ ॥ हे राजेन्द्र ! युद्धके
साजसे सजे हुए, सुनहरी ध्वजाओंवाले वे प्रभद्रक वीर भीमसेन
के साथमें थे और इन्द्रके साथ जैसे देवता रहते हैं तैसे भीमके

काञ्चनध्वजाः । प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र सेन्द्रा इव दिवौकसः ८०
 अत्यरोचत तान् सर्वान् धृष्टद्युम्नः समागतान् । सर्वाण्यति च
 सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचत ॥ ८१ ॥ अतीव शुशुभे तस्य ध्वजः
 कृष्णाजिनोत्तरः । कपण्डलुर्महाराज जातरूपमयः शुभः ॥ ८२ ॥
 ध्वजन्तु भीमसेनस्य वैदूर्यमणिजोचनम् । भ्राजमानं महासिंहं राजतं
 दृष्ट्वानहम् ॥ ८३ ॥ ध्वजन्तु कुरुराजस्य पाण्डवस्य महौजसः ।
 दृष्ट्वानस्मि सौवर्ण्यं सोमं प्रहगणान्वितम् ॥ ८४ ॥ मृदङ्गौ चात्र
 विपुलौ दिव्यौ नन्दोपनन्दकौ । यन्त्रेणाहन्यमानौ च सुस्वनौ
 हर्षवर्धनौ ॥ ८५ ॥ शरभं पृष्ठसौवर्ण्यं नकुलस्य महा-
 ध्वजम् । अपश्याम रथेत्युग्रं भीषणमवस्थितम् ॥ ८६ ॥ हंसस्तु
 राजतः श्रीमान् ध्वजे घण्टापताकवान् । सहदेवस्य दुर्धर्षो द्विषतां
 शोकवर्धनः ॥ ८७ ॥ पञ्चानां द्रौपदेयानां प्रतिमाध्वजभूषणम् ।

साथ रहते थे ॥ ८० ॥ इन सब प्रभद्रकोंके आगे खड़ाहुआ
 धृष्टद्युम्न उन सबसे अधिक प्रदीप्त प्रतीत होता था, तैसही सब
 सेनाके मुहान्ते पर खड़े द्रोणाचार्य भी बड़े दिपरहे थे ॥ ८१ ॥
 हे महाराज ! उनकी काले मृगचर्मकी ध्वजा, और पताका तथा
 सुवर्णका शुभ कपण्डलु अत्यन्त शोभा देरहा था ॥ ८२ ॥
 महासिंहके चित्रवाली, वैदूर्यमणिसे जड़ी भीमसेनकी ध्वजा भी
 मैंने चमकती हुई देखी थी ॥ ८३ ॥ सुनहरी चन्द्रमा और तारा-
 गणोंसे चित्रित महाबली कुरुराज पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी ध्वजाको
 भी मैंने देखा था ॥ ८४ ॥ रणभूमिमें नन्द तथा उपनन्द नामके
 दो बड़े २ मृदङ्ग रक्खे थे, जो यन्त्रसे बजाये जाते थे और बजने
 पर बड़ा सुन्दर तथा हर्ष बढ़ानेवाला शब्द करते थे ॥ ८५ ॥
 नकुलके रथके ऊपर महाउग्र शरभके चिन्हसे चित्रित, भयङ्कर
 और सुवर्णसे जड़ी हुई ध्वजा हमारे देखनेमें आयी ॥ ८६ ॥ शत्रुओं
 के शोकको बढ़ानेवाली, सबको असह्य, हंसके चिन्हसे चित्रित,

धर्ममाकृतशकाणामश्विनोश्च महात्मनोः ॥ ८८ ॥ अभिमन्योः
कुमारस्य शार्ङ्गपक्षी हिरण्यः । रथे ध्वजधरो राजस्तप्तधामी-
करोज्ज्वलः ॥ ८९ ॥ घटोत्कचस्य राजेन्द्र ध्वजे गृध्रो व्यरोचत ।
अश्वाश्च कामगास्तस्य रावणस्य पुरा यथा ॥ ९० ॥ माहेन्द्रञ्च
धनुर्दिव्यं धर्मराजे युधिष्ठिरे । वायव्यं भीमसेनस्य धनुर्दिव्यमभू-
न्नुप ॥ ९१ ॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थाय ब्रह्मणा सृष्टमायुधम् ।
तद्विव्यमजरञ्चैव फाल्गुनार्थाय वै धनुः ॥ ९२ ॥ वैष्णवं
नकुन्तायाथ सहदेवाय चारित्रजम् । घटोत्कचाय पौलस्त्यं धनु-
र्दिव्यं भयानकम् ॥ ९३ ॥ रौद्रमाग्नेयकौबेरं याम्यं गिरिशमेव
च । पञ्चानां द्रौपदेयानां धनूरत्नानि भारत ९४ रौद्रं धनुर्वरं श्रेष्ठं

घटोत्वाली ध्वजा सहदेवके रथपर फहरा रही थी ॥ ८७ ॥
द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी सुवर्णकी ध्वजाओं पर धर्म, मरुत, इन्द्र
और आश्विनीकुमारोंके चित्र बने हुए थे, कुमार अभिमन्युकी
ध्वजामें शार्ङ्गपक्षीका चिन्ह था, यह चिन्ह तपेहुए सुवर्णकी समान
चमकता था ॥ ८८-८९ ॥ हे राजेन्द्र ! घटोत्कचकी ध्वजामें गिज्जका
चिन्ह था और उसके घोड़े रावणके घोड़ोंकी समान इच्छानुकूल
चलनेवाले थे ॥ ९० ॥ हे राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिरके पास माहेन्द्र
और भीमसेनके पास वायव्य नामक धनुष था ॥ ९१ ॥ पहिले
ब्रह्माने तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये जिस आयुधको रचा
था, वह दिव्य, अजर तथा अमर आयुध अर्जुनके पास था ॥ ९२
नकुलके लिये वैष्णव नामक धनुष और सहदेवके लिये अश्वि-
नीकुमारका बनाया हुआ धनुष था, और घटोत्कचके लिये पौल-
स्त्य नामक धनुष बनाया गया था ॥ ९३ ॥ द्रौपदीके पाँचों
कुमारोंके लिये रौद्र, आग्नेय, कौबेर, याम्य और गिरीश ये पाँच
धनुष रचे गए थे, जो उनके पास थे ॥ ९४ ॥ रोहिणीनन्दन नल-
रामने जिस रौद्र और श्रेष्ठ धनुषको पाया था उसको उन्होंने

लोभे यद्रोहिणीसुतः । तत्तुष्टः प्रददौ रामः सौमद्राय महात्मने ६५
एते चान्ये च बहवो ध्वजा हेमविभूषिताः । तत्रादृश्यन्त शूराणां
द्रिषतां शोकवर्धनाः ॥ ६६ ॥ तदभूद् ध्वजसम्बाधमकापुरुषसन्वितम् ।
द्रोणानीकं महाराज पटे चित्रभिवापितम् ॥ ६७ ॥ शुश्रुवुर्नामगोत्राणि
वीराणां संयुगे तदा । द्रोणमाद्रवनां राजन् स्वयम्बर इवाहवे ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकप्रथमपर्वणि हय-

ध्वजादिकथने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि सञ्जय । आहवे
ये न्यवर्तन्त वृकोदरमुखा नृपाः ॥ १ ॥ संप्रयुक्तः किलैवायं दिष्टै-
र्भवति पूरुषः । तस्मिन्नेव च सर्वार्थाः प्रदृश्यन्ते पृथग्विधाः ॥ २ ॥

प्रसन्न होकर अभिमन्युको दे दिया था ॥ ६५ ॥ इसप्रकार शूर-
वीरोंके रथोंपर फहरातीहुई ये तथा दूसरी असंख्यो ध्वजाएँ
शत्रुओंके मनमें शोकको बढारही थीं ॥ ६६ ॥ हे महाराज ! इसी
प्रकार बहुतसी ध्वजा, पताका और शूरोंके समूहोंसे युक्तद्रोणकी
सेना, परदे पर खिंचेहुए चित्रसी दीखती थी ॥ ६७ ॥ इस
समय हे राजन् ! द्रोणके ऊपर चढ़ाई करके आनेवाले वीर
राजाओंके गोत्र और नाम ऐसे सुनाई पड़ते थे, जैसे स्वयम्बरमें
सुनाई आरहे हों ॥ ६८ ॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-जो भीमसेनआदि राजे द्रोणाचार्यसे
लड़ने आए थे, वे तो देवताओंकी सेनामें भी खलबली डाल
सकते थे ॥ १ ॥ सचमुच पुरुष कर्मोंके भोगों (दैव) से बँधा

टिप्पणी-महाभारतके समयमें यह नियम था कि-योधा जब
एक दूसरेसे लड़नेको जाते थे, उस समय अपना, वंश, गोत्र
एक दूसरेको सुनाकर लड़ते थे, अर्थात् चाहे जिसके साथ नहीं
लड़ते थे, किन्तु अपने समानके साथ ही रण करते थे और इस
प्रकार बोले हुए नामोंसे ही सञ्जयने यह वर्णन सुनाया है ।

दीर्घं विप्रोषितः कालमरणे जटिलोऽग्निनी । अज्ञातश्चैव लोकस्य
विजहार युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ स एव महतीं सेनां समावर्त्तयदाहवे ।
किमन्यदैवसंयोगान्मम पुत्रस्य चाभवत् ॥ ४ ॥ युक्त एव हि भाग्येन
ध्रुवमुत्पद्यते नरः । स तथा कृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ५
ध्रुवव्यसनमासाद्य क्लेशितो हि युधिष्ठिरः । स पुनर्भागधेयेन सहा-
यानुपलब्धवान् ॥ ६ ॥ अद्य मे कैकया लब्धाः काशिकाः कोस-
लाश्च ये । चेदयश्चापरे वज्रा मामेव समुपोथिताः ॥ ७ ॥ पृथिवी
भूयसी तात मम पार्थस्य नो तथा । इति मामब्रवीत् सूत मन्दो
दुर्योधनः पुरा ॥ ८ ॥ तस्य सेनासमूहस्य मध्ये द्रोणः सुरक्षितः ।

हुआ ही उत्पन्न होता है और सब कार्योंका आधार भी देव पर
ही है ॥ २ ॥ क्योंकि-जो युधिष्ठिर जटा बढा मृगचर्म ओढ़कर
बहुत समय तक जङ्गलमें रहे थे और जो ऐसे छिपकर विचरे थे
कि-उनको कोई मनुष्य पहिचान ही न सका ॥ ३ ॥ वही युधि-
ष्ठिर आज बड़ीभारी सेनाको युद्धमें चला रहे हैं, इसको देवके
सिवाय और क्या कहा जाय ? तथा मेरे पुत्रको जो राज्यका
लोभ हुआ था उसमें भी देव ही कारण था ॥ ४ ॥ यह निश्चय है
कि-मनुष्य प्रारब्धसे बँधा हुआ ही उत्पन्न होता है, वह अपनी
इच्छासे कुछ भी नहीं करसकता, किन्तु देवके आधीन हो, उसकी
इच्छासे ही सब काम करता है ॥ ५ ॥ दुर्भाग्यके कारण युधि-
ष्ठिरने जुएमें फँसकर कष्ट भोगा और अब सौभाग्यका उदय
होने पर उसने उत्तम सहायकोंको पाया है ॥ ६ ॥
हे सूत ! पहिले मन्दबुद्धि दुर्योधनने मुझसे कहा था, कि—
हे पिताजी ! आज काशी, कौसल, चेदि और वज्रदेशके तथा
दूसरे राजाओंने भी मेरा आश्रय लिया है तथा जितनी विशाल-
भूमि मेरे अधीन है उननी अर्जुनके वशमें नहीं है ॥ ७-८ ॥
ऐसे दुर्योधनकी सेनाके बीचमें सुरक्षित द्रोणाचार्यको द्रुपदपुत्रने

त्रितः । निहतः पार्षतेनाजौ किमन्यद्वागधेयतः ॥ ६ ॥ मध्ये राज्ञां
महाबाहुं सदा युद्धाभिनन्दिनम् । सर्वास्त्रपारगं द्रोणं कथं त्वय्युत्पे-
यिवान् ॥ १० ॥ समनुप्राप्तकृच्छ्रोहं मोहं परममागतः । भीष्मद्रोणौ
हतौ श्रुत्वा नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥ यन्मां क्षत्तावधीक्षात
प्रपश्यन् पुत्रगृह्णिनम् । दुर्योधनेन तत्सर्वं प्राप्तं सूत मया सह १२
वृशंसन्तु परं नु स्यात् त्यक्त्वा दुर्योधनं यदि । पुत्रशेषं चिकीर्षेयं
कृत्स्नं न मरणं व्रजेत् ॥ १३ ॥ यो हि धर्मं परित्यज्य भवत्यर्थ-
परो नरः । सोऽस्माच्च ह्रीयते लोकात् क्षुद्रभावञ्च गच्छति ॥ १४ ॥
अद्य चाप्यस्य राष्ट्रस्य हतोत्साहस्य सञ्जय । अवशेषं न पश्यामि
ककुदे मृदिते सति ॥ १५ ॥ कथं स्यादवशेषो हि धुर्ययोर्भ्यती-

युद्धमें मारवाला इसे भाग्यके सिवाय क्या समझा जाय ॥ ६ ॥
सदा युद्धका अभिनन्दन करनेवाले सकल अस्त्रोंके पारगामी महा-
बाहुद्रोणाचार्यको सब राजाओंके मध्यमें मौत कैसे आगई !
हा ॥ १० ॥ अरेरे ! मैं बड़े कष्टमें आपड़ा हूँ, मुझे मूर्खोंसी
आती है, ओह ! द्रोण और भीष्मको मराहुआ सुनकर मैं जीना
नहीं चाहता ॥ ११ ॥ हे सूत ! मुझे पुत्रोंसे प्रेम करतेहुए देख विदुर
ने जो २ कहा था, वह सब मुझे और दुर्योधनको भोगना पड़ा
है ! ॥ १२ ॥ यदि आज मैं दुर्योधनको त्याग दूँ तो यह अति-
निन्दनीय काम होगा, परन्तु ऐसा करनेसे मेरे पुत्र जीवित रह-
जायँ और सब लोगभी न मरें ॥ १३ ॥ जो मनुष्य धर्मकी
ओर न देख धनकी ओरकोही देखता है, वह इस लोकसे अलग
हो जाता है और मरणके अनन्तर अधोगति पाता है ॥ १४ ॥
हे सञ्जय ! मुख्यपुरुष द्रोणके मारे जानेसे हतोत्साह हुए मुझे
इस राज्यका आज कल्याण नहीं दीखता ॥ १५ ॥ जिन दो
क्षमावान् बौद्धोंके सम्हालनेवाले पुरुष श्रेष्ठोंसे हम नित्य आजी-
विका चल्लाते थे वे जब परलोकको चले गए तो इस राज्यका

तयोः । यौ नित्यमुपजीवामः क्षमिणीं पुरुषर्षभौ ॥ १६ ॥ व्यक्तमेव च
मे शंस यथा युद्धमवर्त्तत । केयुध्यन् के व्यपाकुर्वन् के जुदाः प्रादु-
रवन् भयात् ॥ १७ ॥ धनञ्जयञ्च मे शंस यद्यच्चक्रे रथर्षभः ।
तस्मान्नयं नो भूयिष्ठं भ्रातृव्याच्च वृकोदरात् ॥ १८ ॥ यथासीच्च
मिदृत्तेषु पाण्डवेषु सञ्जय । मम सैन्यावशेषस्य सन्निपातः सुदा-
रुणः ॥ १९ ॥ कथञ्च वा मनस्तात निवृत्तेष्वभवत्तदा । मामका-
नाञ्च ये शूराः के कांस्तत्र न्यवारयन् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि

धृतराष्ट्रवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सञ्जय उवाच । महद्भैरवमासीन्नः सन्निवृत्तेषु पाण्डुषु । दृष्ट्वा
द्रोणं द्वाद्यमानं तैर्भास्करमिवाम्बुदैः ॥ १ ॥ तैश्चोद्धृतं रजस्तीव्र-
मवचक्रे चमूं तव । ततो हतममंस्याम द्रोणं दृष्टिपथे इतो ॥ २ ॥ तांस्तु

कल्याण कैसे होसकता है ॥ १६ ॥ हे सञ्जय ! यह मुझे स्पष्ट-
रूपसे बता, कि-युद्ध कैसे २ हुआ था, उसमें कौन २ लड़े थे ?
किस २ ने प्रहार किया था ? और कौन २ नीच ढरके मारे
भाग गए थे ॥ १७ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने जो २ काम किये
हों उन सबको मुझे सुना क्यों कि-मुझे उससे तथा और अपने
शत्रु भीमसेनसे बड़ा डर है ॥ १८ ॥ हे सञ्जय ! पाण्डवोंके युद्ध
करनेको लौट पड़ने पर हमारी बचीखुची सेनाका घोर संहार
जिस प्रकार हुआ था सो सुना ॥ १९ ॥ तथा पाण्डवोंके लौट पड़ने
पर तुम्हारे चित्तमें क्या २ विचार उठे थे ? तथा मेरे किन २
वीरोंने कौन २ से पाण्डवोंके योधाओंको रोका था ॥ २० ॥
पञ्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

सञ्जयने कहा कि-पाण्डवोंने लौट कर द्रोणको, जैसे मेघ मूर्य
को ढकदेता है तैसे चारों ओरसे घेरलिया यह देख हमारे
मनमें बड़ा भय उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ उस समय सेनाके पैरोंसे

शूरान् महेश्वासान् क्रूरं कर्म चिकीर्षतः । दृष्ट्वा दुर्योधनस्तूर्णं स्व-
सैन्यं सम्पचूचुदत् ॥३॥ यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं नराधिपाः ।
वारयध्वं यथायोगं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ४ ॥ ततो दुर्मर्षणो
भीममभ्यगच्छत् सुतस्तव । आराद् दृष्ट्वा किरन् बाणैर्जिघृक्षुस्तस्य
जीवितम् ॥५॥ तं बाणैरवनस्तार क्रुद्धो मृत्युरिवाहवे । तच्च भीमो-
ऽतुदद्राणैस्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ६ ॥ ते ईश्वरसमादिष्टाः प्राज्ञाः
शूराः प्रहारिणः । राज्यं मृत्युभयं त्यक्त्वा प्रत्यतिष्ठन् परान्युधि ७
कृतवर्मा शिनेः पौत्रं द्रोणं प्रेषुं विशापते । पर्यवारयदायातं शूरं
समरशोभिनम् ॥८॥ तं शौनेयः शरत्रातैः क्रुद्धः क्रुद्धमवारयत् ।

उड़ीहुई धूलिने तुम्हारी सेनाको ढकदिया और द्रोणाचार्यका
दीखनी भी बन्द होगया उस समय हमें पहले ऐसा प्रतीत हुआ
कि-द्रोणाचार्य मारेगए ॥३॥ तदनन्तर उन शूरोंको क्रूर कर्म करना
चाहेतुए देखकर दुर्योधन अपनी सेनाको शीघ्रताके साथ प्रेरणा
करनेलगा कि-॥ ३ ॥ हे राजाओं ! तुम जैसे हो वैसे अपनी
शक्ति उत्साह और बल लगाकर शत्रुकी सेनाको आगे बढ़नेसे
रोकदो ॥ ४ ॥ तदनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षणने भीमसेनको आगे
बढ़ता देख द्रोणाचार्यके प्राणोंको बचानेकी इच्छासे उसके ऊपर
बाण वर्षाना आरम्भ करदिया ॥ ५ ॥ क्रोधमें भरे मृत्युकी
समान दुर्मर्षणने रणमें उसको बाणोंसे ढकदिया तदनन्तर भीम-
सेनने भी उसके घर्मस्थानोंमें बहुतसे बाण मारे इसप्रकार उन
दोनोंमें तुमुल युद्ध हुआ ॥ ६ ॥ इतनेमें बुद्धिमान् वीर प्रहार
करनेमें कुशल कौरवपक्षके राजे, राज्य और मृत्युके भयको छोड़
कर दुर्योधनकी आज्ञानुसार शत्रुओंसे युद्ध करनेको व्यूहचरणासे
खड़े होगए ॥ ७ ॥ हे राजन् ! वीर, समरशोभी शिनिपुत्र
सात्यकी, द्रोणके पकड़नेको आरहा था, उसको कृतवर्माने रोक
दिया ॥ ८ ॥ क्रोधमें भरेहुए सात्यकीने क्रोधमें भरेहुए कृत-

कृतवर्मा च शैनेयं मत्तो मत्तमिव द्वयम् ॥६॥ सैन्यवः क्षत्रवर्माण-
मायातं निशितैः शरैः । उग्रधन्वा भद्रेष्वासं यत्तो द्रोणादवार-
यत् ॥ १० ॥ क्षत्रवर्मा सिंधुपतेश्छित्वा केतनकाशुके । नाराचैर्द-
याभिः क्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ११ ॥ अथान्यद् धनुरादाय सैन्यवः
कृतहस्तयत् । विन्याध क्षत्रवर्माणं रणे सर्वायसैः शरैः ॥ १२ ॥
युयुत्सुः पाण्डवाय यत्मानं महारथम् । सुबाहुर्भारतं शूरं यत्तो
द्रोणादवारयत् ॥ १३ ॥ सुबाहोः सुधनुर्वाणामस्यतः परिवोपमौ ।
युयुत्सुः शितपीताभ्यां क्षुराभ्यामच्छिनद् भुजां ॥ १४ ॥ राजानं
पाण्डवश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् । वेल्लेव सागरं क्षन्धं मद्वराद्
समवारयत् ॥ १५ ॥ तं धर्मराजो बहुधर्ममभिद्धिरवाकिरत् । मद्वरा-

वर्माको बाणोंकी वर्षासे रोकदिया और कृतवर्मा भी मदवाला
हाथी जैसे दूसरे मदनगत् हाथीको हटाता है तैसे सात्यकीको
हटाने लगा ॥ ६॥ महाधनुषधारी क्षत्रवर्मा द्रोणके ऊपर चढ़ा आ
रहा था उसको उग्रधन्वा डट कर खड़ेहुए सिन्धुराज जयद्रथने
तीक्ष्ण बाण मारकर रोकदिया ॥ १० ॥ क्रोधमें भरे क्षत्रवर्माने
सिंधुराजके धनुष और ध्वजाको काटकर दश बाणोंसे उसके
मर्मस्थानोंको वींधदिया ॥ ११॥ सिंधुराजने जैसे हाथमें ही रक्खा
था, इसप्रकार छुर्तीसे दूसरा धनुष लेकर निरे लोहेके बाणोंसे
क्षत्रवर्माको वींधना आरम्भ करदिया ॥ १२ ॥ पाण्डवोंके लिये
प्रयत्न करतेहुए भरतवंशी वीर, महारथी युयुत्सुको सुबाहुने साव-
धानीसे द्रोणके पास जानेसे रोकदिया ॥ १३ ॥ श्रेष्ठ धनुष पर
बाणोंको चढ़ाकर फेंकते हुए सुबाहुकी परिवसमान दोनों भुजा-
ओंको युयुत्सुने काले तथा पीले रंगके दो क्षुरानामक बाणोंसे
काटडाला १४ इतनेमें पाण्डवश्रेष्ठ धर्मात्मा युधिष्ठिर द्रोणके ऊपर
चढ़ आए, परन्तु जैसे किनारा समुद्रको आगे बढ़नेसे रोकता है
तैसे ही मद्वराजने धर्मराजको आगे बढ़नेसे रोकता ॥ १५॥ धर्मराजने

स्तं चतुःषष्ट्या शरैर्विधाऽनदद् भृशम् ॥ १६ ॥ तस्य नानदतः
 केतुमुच्चकर्त्तुं च कार्मुकम् । लुराभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्तत उच्चक्रु-
 शुर्जनाः ॥ १७ ॥ तथैव राजा बान्हीको राजानं द्रुपदं शरैः । आद्रवन्तं
 सहानीकः सहानीकं न्यवारयत् १८ तद्युद्धमभवद्भोरं वृद्धयोः सहसे-
 नयोः । यथा महायूथपयोद्विपयोः सम्प्रभिन्नयोः १९ विन्दाजुविन्दा-
 वावन्त्यौ विराटं मत्स्यमाच्छ्विताम् । सहसैन्यौ सहानीकं यथेन्द्राग्नी
 पुरा बलिम् ॥ २० ॥ तदुत्पिञ्जलकं युद्धमासीद्देवासुरोपमम् ।
 मत्स्यानां केकयैः सार्धमभीताश्वरथद्विपम् ॥ २१ ॥ नाकुलिन्तु
 शतानीकं भूतकर्मा सभापतिः । अस्यन्तमिपुजालानि यातं द्रोणा-
 दवारयत् ॥ २२ ॥ ततो नकुलदायादस्त्रिभिर्भलैः सुसंशितैः ।

बहुतासे मर्मभेदी बाणोंसे मद्राजको बीधा तब मद्राजने भी उनके
 चौंसठ बाण मारकर बड़ी जोरसे गर्जनाकी १६ उसके गर्जना करतेमें
 ही पाण्डवश्रेष्ठ धर्मराजने लुरनामक दो बाणोंसे मद्राजकी ध्वजा
 और धनुषको काटदिया यह देख सैनिकोंने दुन्द मचाडाला १७
 सेनाको साथमें लेकर द्रोणकी ओर बढ़तेहुए राजा द्रुपदको राजा
 बान्हीकने अपनी सेनाके साथ बाणोंकी वर्षा करके रोकदिया १८
 जैसे मदोन्मत्त गजयूथोंके स्वामी दो हाथी परस्पर युद्ध करते हैं
 तैसे ही सेनासहित उन दोनों वृद्ध राजाओंका घोर युद्ध
 होनेलगा १९ पहिले जैसे इन्द्र और अग्नि बलिके ऊपर चढ़गए थे,
 तैसे ही अवन्तिदेशके स्वामी सेनासहित विन्द और अनुविन्दने
 सेना—सहित विराटको घेरलिया ॥ २० ॥ उन दोनोंमें देवासुर
 संग्रामकी समान महातुम्बल युद्ध हुआ था तैसे ही मत्स्य और
 केकयोंका भी तुम्बल युद्ध हुआ था संग्राममें हाथी, घोड़े, रथी,
 तथा सत्तार निर्भय होकर लड़ते थे ॥ २१ ॥ बाणोंके जालको फैलाते
 हुए नकुलके पुत्र शतानीकको सभापति नामक भूतकर्माने द्रोणके
 पास जानेसे रोकदिया ॥ २२ ॥ यह देख नकुलने रणमें शान

चक्रं विवाहुशिरसं भूतकर्माणमाहवे ॥ २३ ॥ सुतसोमन्तु विक्रा-
न्तमायान्तं तं शरौघिणम् । द्रोणायाभिमुखं वीरं विविंशतिरवा-
यत् २४ सुतसोमस्तु संक्रुद्धः स्वपितृव्यमजिह्मगैः । विविंशतिं शरै-
र्भित्वा नाभ्यवर्त्तत दंशितः ॥ २५ ॥ अथ भीमरथः शाल्वमाशुगै-
रायसैः शितैः । पद्भिः साश्वनियन्तारमनयद्यमसानम् ॥ २६ ॥
श्रुतकर्माणमायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः । चैत्रसेनिर्महाराज तव पौत्रं
न्यवारयत् ॥ २७ ॥ तौ पौत्रौ तव दुर्धर्षौ परस्परवधैर्पिणौ । पित-
र्यामर्थसिद्धयर्थं चक्रतुयुद्धमुत्तमम् ॥ २८ ॥ तिष्ठन्तमग्रे तं दृष्ट्वा
प्रतिविध्यं महाहवे । द्रौणिर्मानं पितुः कुर्वन् मार्गणैः समवारयत् २९
तं क्रुद्धं प्रतिविध्याथ प्रतिविन्धयः शितैः शरैः । सिंहलांगूलज्जन्तमाणं
पितुरर्थं व्यवस्थितम् ॥ ३० ॥ प्रवपन्निव बीजानि बीजकाले नर-

पर धरेहुए तीन भालोंसे भूतकर्माको शिर और भुजाओंसे विहीन
कर दिया ॥ २३ ॥ महापराक्रमी वीर सुतसोम बहुतसे बाणों
को लेकर द्रोणके ऊपर चढ़ आया उसको विविंशतिने रोक दिया
॥ २४ ॥ कवचधारी क्रोधमें भरे सुतसोमने अपने चाचाको सीधे
जानेवाले बाणोंसे बाँध दिया और निश्चल खड़ा रहा ॥ २५ ॥
इतनेमेंही भीमसेनने कड़े लोहेके तेज छः बाणोंसे सारथिसहित
शाल्वको यमलोकमें भेज दिया ॥ २६ ॥ हे महाराज ! मोरकी समान
वर्णवाले घोड़ोंके रथमें बैठ द्रोणकी ओरको चढ़तेहुए तुम्हारे
पोते श्रुतकर्माको चित्रसेनके पुत्रने रोक लिया ॥ २७ ॥ पिताका मनोरथ
सिद्ध करनेके लिये वे दुर्धर्ष तुम्हारे दोनों पोते एक दूसरेको मारने
की इच्छासे भयङ्कर युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥ इतनेमें ही उस महायुद्धमें
अर्जुनके पुत्र प्रतिविध्यको द्रोणके सामने खड़ा देखकर अश्वत्थामा
ने पिताका मान रखतेहुए प्रतिविन्ध्यको बाणोंसे रोक दिया २९
सिंहकी पूँछके बिन्हवाले, पिताके लिये लड़नेवाले अश्वत्थामा
को प्रतिविन्ध्यने तेज बाणोंसे बाँध दिया ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ !

र्वभ । द्रौणायनि द्रौपदेयाः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३१ ॥ अर्जुनि
श्रुतकीर्तिन्तु द्रौपदेयं महारथम् । द्रोणायभिमुखं यातं दौःशास-
निरवारयत् ॥ ३२ ॥ तस्य कृष्णसमः कार्णिणस्त्रिभिर्मल्लैः सुसं-
शितैः । धनुर्ध्वजञ्च सूतञ्च क्षित्वा द्रोणातिकं ययौ ॥ ३३ ॥
यस्तु शूरतमो राजन्नुभयोः सेनयोर्मतः । तं पटच्चरहन्तारं लक्ष्मणः
समवारयत् ॥ ३४ ॥ स लक्ष्मणस्येष्वासनं क्षित्वा लक्ष्म च भारत ।
लक्ष्मणे शरजालानि विमृजन् बह्वशोभत ॥ ३५ ॥ विकर्णस्तु
महाप्राज्ञो याज्ञसेनि शिखण्डिनम् । पर्यवारयदायान्तं युवानं समरे
युवा ॥ ३६ ॥ ततस्तमिषुजालेन याज्ञसेनिं समावृणोत् । विधूय तद्वा-
णजालं बभौ तव सुतो बली ॥ ३७ ॥ अङ्गदोभिमुखं वीरमुत्तमौ-

द्रौपदीके पुत्रोंने, जैसे किसान बोते समय बीज बखेरता है तैसे
वाणोंकी अविराम वर्षासे अश्वत्थामाको ढकदिया ॥ ३१ ॥ अर्जुनसे
द्रौपदीमें उत्पन्न हुए द्रोणकी ओर बढ़ते हुए महारथी श्रुतकीर्ति
को दुःशासनके पुत्रने आगे बढ़नेसे रोकदिया ३२ कृष्णकी समान
पराक्रमी अर्जुनका पुत्र श्रुतकीर्ति धारदार तीन भालोंसे उसके
धनुष, ध्वजा और सारथीको काटकर द्रोणकी ओर बढ़ गया ३३
हे राजन् ! जो दोनों सेनाओंमें बहुत माना जाता था उस पटच्चर
नामक राक्षसको मारनेवाले समुद्राधिपको लक्ष्मणने रोकलिया ३४
पटच्चरको मारनेवाला लक्ष्मणके धनुष और ध्वजाको काटकर
उसके ऊपर वाणवर्षा करता हुआ बड़ा सुशोभित होरहा
था ॥ ३५ ॥ रणमें बढ़तेहुए द्रुपदके पुत्र तरुण शिखण्डीको
महाबुद्धिमान तरुण विकर्णने रोक लिया ॥ ३६ ॥ यज्ञसेनके
पुत्र शिखण्डीने विकर्णको वाणोंके जालोंसे ढकदिया, परन्तु
तुम्हारे बलवान् पुत्रने उन वाणोंको काटकर अपूर्व शोभा पायी ३७
शूर उत्तमौजा युद्धमें द्रोणके सामने बढ़ता चला जाँरहा था, कि-
आगदने उसके सामने पहुँच वाण वर्षा करके उसको आगे

जसमाहवे । द्रोणायाभिमुखं यान्तं शरीरं न्यवारयत् ॥ ३८ ॥
 स सम्पहारस्तुपुलस्तयोः पुरुषसिंहयो । सैनिकानाञ्च सर्वेषां तयोश्च
 प्रीतिवर्धनः ॥ ३९ ॥ दुर्मुखस्तु महोपासो वीरं पुरुजितं वली ।
 द्रोणायाभिमुखं यान्तं वत्सदन्तैरवारयत् ॥ ४० ॥ स दुर्मुखं
 भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनाभ्यनाडयत् । तस्य तद्धि वर्षां वक्त्रं सनालमिव
 पङ्कजम् ॥ ४१ ॥ कर्णस्तु केकयान् भ्रातृन् पञ्च लोहितकध्वजान् ।
 द्रोणायाभिमुखं यातान् शरवर्षैरवारयत् ॥ ४२ ॥ ते चैनं धृगसन्तप्ताः
 शरवर्षैरवाकिरन् । स च तांश्छादयामास शरजालैः पुनः पुनः ॥ ४३ ॥
 नैव कर्णो न ते पञ्च ददृशुर्नाणसमृताः । सारवसूतध्वजरथाः पर-
 स्परशराचिताः ॥ ४४ ॥ पुत्रास्ते दुर्जयश्चैव जयश्च विजयश्च
 ह । नीलकाश्यजयत्सेनांस्त्रयस्त्रीन् प्रत्यवारयन् ॥ ४५ ॥ तद्युद्धम-

बढ़नेसे रोकदिया ॥ ३८ ॥ उन दोनोंकी वह तुपुल मारकाट सब
 सैनिक और उन दोनों पुरुषसिंहोंके भी हथको बढ़ानेवाली
 हुई ॥ ३९ ॥ महाभयपथारी वली दुर्मुखने वत्सदन्त नामक बाणोंसे
 द्रोणकी ओरको जातेहुए वीर पुरुजित्को रोकदिया ॥ ४० ॥
 तदनन्तर पुरुजित्ने बाण तानकर दुर्मुखकी भोंदोंके बीचमें मारा,
 इससे उसका मुख नालवाले कमलसा दिपनेलगा ॥ ४१ ॥ कर्णने
 द्रोणकी ओर बढ़तेहुए लालध्वजा वाले पाँचों केकय भाइयोंको
 बाणोंकी वर्षासे रोकदिया ॥ ४२ ॥ इससे उन पाँचोंने बड़े क्रोधमें
 भरकर बाणकी वर्षासे कर्णको ढकादिया, तब कर्ण भी उनको
 बारम्बार बाणोंसे ढकनेलगा ॥ ४३ ॥ परस्पर बाणोंकी इननी
 मारामार हुई, कि-बाणोंके समूहसे ढकजाने पर कर्ण और पाँचों
 केकय तथा उनके रथ, सारथी, घोड़े और ध्वजा आदिका भी
 दीखना बन्द होगया ॥ ४४ ॥ तुम्हारे दुर्जय, विजय और जय
 नामक तीन पुत्रोंने नील, काश्य और जयत्सेन नामवाले राजाओं
 को बढ़नेसे रोकदिया ॥ ४५ ॥ सिंह, व्याघ्र और चीतोंका जैसे

भवद् घोरभीक्ष्णित्वातिवर्धनम् । सिद्ध्यप्राप्ततरङ्गणां यथर्क्षमहिष-
 र्षभैः ॥ ४६ ॥ क्षेमधूर्तिबृहन्तौ तु आतरौ सात्वतं युधि । द्रोणा-
 याभिमुखं यान्तं शरैस्तीक्ष्णैस्ततस्ततः ॥ ४७ ॥ तयोस्तस्य च तद्यु-
 द्धमत्यदञ्जुतमिवाभवत् । सिंहस्य द्विपशुखाभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा
 बने ॥ ४८ ॥ राजानन्तु तथाभ्यष्टमेकं युद्धाभिनन्दिनम् । चेदि-
 राजा शरानस्यन् क्रुद्धो द्रोणादवासरत् ॥ ४९ ॥ ततोभ्यष्टोस्थि-
 भेदिन्या निरभियच्छलाकया । स त्यक्त्वा सशरं चापं रथात्
 भूमिमुपागमत् ॥ ५० ॥ वार्धक्षेमिन्तु बाष्ण्यं कृपाः शारदतः शरैः ।
 अलुद्रः क्षुद्रकैर्बाणैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५१ ॥ युध्यन्तौ कृप-
 बाष्ण्यौ येऽपश्यंश्चित्रयोधिनौ । ते युद्धासक्तमनसो नान्यां वुबुधिरे-
 क्रियाम् ॥ ५२ ॥ सौमदत्तिस्तु राजानं मणिमन्तमतन्द्रितम् । पर्य-

रीक्ष, मैंसे और बैलोंसे युद्ध होता है तैसे ही उन छःहोंका युद्ध
 होरहा था, यह घोर युद्ध दर्शकोंके चावको बढ़ाता था ॥ ४६ ॥
 रणाङ्गणमें द्रोणकी ओर बढ़तेहुए सात्यकिको क्षेमधूर्ति और
 बृहत् नामक भाइयोंने तीक्ष्ण बाणोंसे घायल करदिया ॥ ४७ ॥
 जैसे वनमें सिंह और दो मदमत्त हाथियोंका युद्ध होता है तैसे ही
 सात्यकि तथा क्षेमधूर्ति और बृहत्में अञ्जुत युद्ध होरहा था ४८-
 क्रोधमें भरकर बाणोंको छोड़तेहुए चेदिराजने, द्रोणाचार्यके साथ
 अकेले ही युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा करनेवाले अम्बष्ठको रोक
 दिया ॥ ४९ ॥ यह देख अम्बष्ठने हड्डियोंको तोड़नेवाली शलाका
 से चेदिराजको बीधदिया, उस समय चेदिराज हाथमेंसे धनुष
 बाणको छोड़ रथमेंसे पृथ्वीपर कूदपड़ा ॥ ५० ॥ क्रोधकी मूर्ति,
 वृष्णिवंशी, वृद्धक्षेमके पुत्रको, महानुभाव शरद्धानके पुत्र कृपा-
 चार्यने छोटे २ बाण मारकर रोकदिया ॥ ५१ ॥ जिन्होंने अञ्जुत
 रीतिसे युद्ध करनेवाले इन कृप और बाष्ण्यको युद्ध करते देखा
 वे युद्धमें इतने तन्मय होगए, कि— उनको किसी दूसरी बातका

वारधवायान्तं यशो द्रोणस्य वर्धयन् ॥ ५३ ॥ स सोमदत्तस्त्व-
रितश्चित्रेष्वसनकेतने । पुनः पताकां सूक्ष्मं चक्रं चापातयद्रथात् ५४
अथाप्लुत्य रथात् तूष्णीं युपकेतुरगित्रहा । सारथ्यमूतध्वजस्वतं चकत्
वरासिना ॥ ५५ ॥ रथञ्च स्वं समास्थाय धनुसादाय चापरम् ।
स्वयं यच्छन् हयान राजन् व्यधमत् पाण्डवो चमृषु ॥ ५६ ॥
पाण्ड्यभिद्रमिवायान्तमसुरान् प्रति दुर्जयम् । समर्थः सायकाद्येन
वृषसेनो न्यवारयत् ॥ ५७ ॥ गदापरिघनिस्त्रिशपट्टिशायोधनो-
पलैः । कदंगैर्भृशुण्डीभिः प्रासैस्तोमरसायकैः ॥ ५८ ॥ मृसलैर्मु-
द्गरैश्चक्रैर्भिन्दिपालपरश्वधैः । पांशुवाताग्निसलिलैर्मस्मलोष्ठवृण-
द्रुमैः ॥ ५९ ॥ आतुदन् प्ररुजन् भञ्जन् निघ्नन्विद्राव यन् क्षिपन् ।

ध्यान ही न रहा ॥ ५२ ॥ द्रोणकी और बढ़तेहुए आलस्य-
रहित राजा मणिमान्को द्रोणकी कीर्तिको बढ़ानेवाले सोमदत्तके
पुत्रने रोकदिया ॥ ५३ ॥ राजा मणिमानने सोमदत्तके पुत्रके
धनुष, ध्वजा, सारथी और चक्रको काटकर उसको रथपरसे गिरा
दिया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर जिसकी ध्वजामें यज्ञस्तम्भका चिन्ह है
उस सोमदत्तके पुत्रने शीघ्र ही रथमेंसे कूद धारदार तलवारसे,
घोड़े, सारथी, ध्वजा और रथसहित मणिमान्को काटढाला ५५
फिर स्वयं ही अपने रथ पर चढ़ बैठा तथा दूसरे धनुषको ले अपने
आप ही घोड़ोंको हाँकता हुआ पाण्डवोंकी सेनाको नष्ट करने
लागा ॥ ५६ ॥ असुरों पर चढ़ाई करतेहुए इन्द्रकी समान दुर्जय
पाण्ड्यको शक्तिमान् वृषसेनने बाणोंकी वर्षा करके आगे बढ़नेसे
रोकदिया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर द्रोणका नाश करनेकी इच्छासे
घटोत्कच हमारी सेना पर गदा, परिघ, तलवार, मृसल, मुद्गर,
चक्र, भिन्दिपाल, फरसे, पट्टिश, धूलि, बाधु, अग्नि, जल, भस्म,
मट्टी, तिनके तथा वृक्षोंसे प्रहार करता, पीड़ा पहुँचाता, मर्मस्थलोंको
बीधता, मसलता, सेनाको नष्ट करता, और भगाता तथा

सेनां विभीषयन्नायाद् द्रोणप्रेम्पुर्प्रदोत्कचः ॥ ६० ॥ तन्तु नाना-
प्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः । राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने हल-
म्बुधः ॥ ६१ ॥ तयोस्तदभवद्युद्धं रक्षोग्रामिणिमुख्ययोः । तादृग्या-
द्वक् पुरा वृत्तं शम्बरामरराजयोः ॥ ६२ ॥ एवं द्वन्द्वशतान्यासन्
रथवारणवाजिनाम् । पदातीनाञ्च भद्रन्ते तद तेषां च सङ्कुले ६३
नैवाद्दृशो दृष्टपूर्वः संग्रामो नैव च श्रुतः । द्रोणस्याभावभावे तु प्रस-
क्तानां यथाभवत् ॥ ६४ ॥ इदं घोरमिदं चित्रमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
तत्र युद्धान्यदृश्यन्त प्रततानि बहूनि च ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशतसकथपर्वणि

द्वन्द्वयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तेष्वेवं सन्निवृत्तेषु प्रत्युद्योतेषु भागशः । कथं
युयुधिरे पार्था मामकार च तरस्विनः ॥ १ ॥ किमर्जुनश्चाप्यकरोत्

हराताहुआ आगेको बढनेलगा ॥ ५८-६० ॥ तब राक्षसको
राक्षस अलम्बुधुष ही नाना प्रकारके आयुध और युद्धकी सोप-
ग्रियोंसे मारनेलगा ॥ ६१ ॥ राक्षसोंके अधिपति उन दोनोंका
घोर युद्ध शम्बर और इन्द्रके युद्धकी समान हुआ ॥ ६२ ॥ हे
राजन् ! तुम्हारा कन्याण द्वो ! इसप्रकार तुम्हारी तथा पांडवोंकी
सेनाके रथी, हाथीसवार तथा घुड़सवारोंके इस घमासानमें सैकड़ों
युद्ध हुए ॥ ६३ ॥ द्रोणको मारने और बचानेके लिये जैसा इन
दोनों सेनाओंमें युद्ध हुआ तैसा युद्ध पहिले मैंने आँखोंसे भी नहीं
देखा और कानोंसे भी नहीं सुना ॥ ६४ ॥ हे प्रभो ! कहीं घोर
कहीं आश्चर्यजनक और कहीं रौद्ररससेपूर्ण इसप्रकार तहाँ असंख्यों
युद्ध दिखाई पड़ते थे ॥ ६५ ॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र ने बूझा, कि-हे सज्जय ! जब पांडव इसप्रकार लौट
कर युद्धके लिये सन्नद्ध होगए और हमारी सेना भी यथाविभाग
खड़ी होगई तब वेगों भरे हुए कौरव पाण्डव कैसे लड़े थे ?

संशप्तकवलं प्रति । संशप्तका वा पार्थस्य किमकुर्वत सञ्जय ॥२॥
 सञ्जय उवाच । तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्योतेषु भागशाः । स्वयम-
 भ्यद्रवद्भीमं नागानीकेन ते सुतः ॥ ३ ॥ स नाग इव नागेन
 गोदृषेणैव गोदृषः । समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत् ॥४॥
 स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चान्वितः । अभिनत् कुंजरानी-
 कमचिरेणैव मारिष ॥ ५ ॥ ते गजा गिरिसङ्काशाः क्षरन्तः सर्वतो
 मदम् । भीमसेनस्य नाराचैर्बिभ्रुत्वा विप्रदीकृताः ॥ ६ ॥ विप्र-
 येदभ्रजालानि यथा वायुः समुद्धतः । व्यधमत्तान्यनीकानि तथैव
 पद्मनात्मजः ॥ ७ ॥ स तेषु विसृजन् वाणान् भीमो नागोप्यशो-
 भत । भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः ॥ ८ ॥ ते भीम-

और अर्जुनने संशप्तकोंके साथ कैसा युद्ध किया था और संश-
 प्तकोंने नर्जुनके साथ कैसा युद्ध किया ॥ २ ॥ सञ्जयने कदा
 कि-जब इस प्रकार पांडव लौटकर युद्धके लिये सन्नद्ध होगए
 और कौरव भी उनके सामने यथाविभाग खड़े होगए, उस समय
 तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने हाथियोंकी सेनाको साथमें ले स्वयं ही
 भीमके ऊपर धावा बोलदिया ॥३॥ उसने भीमसेनको लटनेके लिये
 बुलाया, हाथी हाथीके सामने और बैल बैलके सामने जैसे युद्ध
 करते हैं तैसे ही भीमसेन हाथियोंकी सेनाके सामने लटनेको आया ४
 हे राजन् ! युद्धकुशल पृथापुत्र भीमसेनने थोड़े ही समयमें हस्ति-
 सेनाके व्यूहको तोड़दिया ॥ ५ ॥ भीमसेनके वाणोंके प्रहारसे,
 पहाड़के समान शरीरवाले और चारों ओरसे मद टपकानेवाले,
 उन हाथियोंका मद उतरगया और वे मुख फेरकर भागनेलगे ६
 जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको तित्तर चित्तर कर देता है तैसे ही
 भीमसेनने उन सेनाओंको छिन्न भिन्न करदिया ॥७॥ और हाथियों
 के ऊपर वाणोंको छोड़ताहुआ भीमसेन, उदय होकर त्रिलोकीमें
 फिरणोंको फैलानेवाले सूर्यकी समान शोभा पारहा था ॥ ८ ॥

वाणाभिहताः संस्पृता विवर्णजाः । गमस्तिभिरिवाकैश्च व्योम्नि
 नानाबलाहकाः ॥ ६ ॥ तथा गजानां कदनं कुर्वाणमनिलात्मजम् ।
 क्रुद्धो दुर्योधनोऽप्येत्य प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ १० ॥ ततः
 क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः । क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध
 पत्रिभिः ॥ ११ ॥ स शराक्षिनसर्वाङ्गः क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम् ।
 नाराचैर्कण्ठगतैर्भीमसेनं स्पयन्निव ॥ १२ ॥ तस्य नागं मणि-
 मयं रत्नचित्रं ध्वजे स्थितम् । भल्लाभ्यां कामुकञ्चैव क्षिप्रं
 विच्छेदं पाण्डवः ॥ १३ ॥ दुर्योधनं पीडयमानं दृष्ट्वा भीमेन
 मारिष । चुत्तोभयिषुरभ्यागादङ्गो मातङ्गमास्थिनः ॥ १४ ॥
 तमापन्नन्तं नागेन्द्रमम्बुदप्रतिमस्वनम् । कुम्भान्तरे भीमसेनो
 नाराचैरार्द्रवद् भृशम् ॥ १५ ॥ तस्य कायं विनिर्भिद्य न्य-

भीमसेनसे मारे हुए और जिनके शरीरोंमें बाण गुप्त रहे थे ऐसे
 हाथी, आकाशमें सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे अपूर्व शोभा वाले
 मेघोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ ६ ॥ प्रवनपुत्र भीमसेनको इस
 प्रकार हाथियोंका संहार करते देखकर दुर्योधनने उसको तेज
 बाणोंसे बीधना आरम्भ करदिया ॥ १० ॥ परन्तु क्षणभरमें ही
 लाल २ नेत्रोंवाले भीमसेनने दुर्योधनको मारनेकी इच्छासे उसको
 तेज बाणोंसे बीधना आरम्भ करदिया ॥ ११ ॥ भीमके बाणों
 से बिंधेहुए सकल अंगोंवाले क्रोधी दुर्योधनने हँसते २ भीमसेन
 को सूर्यकी किरणोंकी समान बाणोंसे बीधडाला ॥ १२ ॥
 भीमसेनने भी दो भाले मारकर शीघ्रतासे दुर्योधनकी मणियोंसे
 विचित्र दीखती हुई ध्वजामें स्थित मणिमय हाथीको और धनुष
 को काटडाला ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार दुर्योधनको भीमके
 द्वारा पीड़ा पाताहुआ देखकर अङ्गराज हाथी पर बैठकर सेना
 को दुःख देता हुआ तहाँ आगया ॥ १४ ॥ मेघकी गड़गड़ाहटकी
 समान शब्दवाले हाथीको आताहुआ देखकर भीमसेनने उसके

मञ्जुह्वरीतले । ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाचलः ॥ १६ ॥
 तस्यावर्जितनागस्य म्लेच्छस्याधः पतिष्यतः । शिरश्चिच्छेद भस्मलेन
 क्षिपकारी वृकोदरः ॥ १७ ॥ तस्मिन्निपतिते वीरे सम्पाद्रवत
 सा चमूः । सम्भ्रान्ताश्चद्विपरथा पदातीनवपृद्वनती ॥ १८ ॥
 तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समन्ततः । प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं
 कुञ्जरेण समाद्रवत् ॥ १९ ॥ येन नागेन मघवानजयदैत्यदान-
 वान् । तदन्वयेन नागेन भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २० ॥ स नागमवरो
 भीमं सहसा समुपाद्रवत् । चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण
 च ॥ २१ ॥ व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथन्नन्निव पाण्डवम् । वृको-
 दररथं साश्वपविशोपमचूर्णयत् ॥ २२ ॥ पद्भ्यां भीमोप्यथो-
 धावंस्तस्य गात्रेष्वलीयत । जानन्नञ्जलिकावेधं नापाकामत

गण्डस्थजमें बाण मारकर बहुत ही पीड़ा दी ॥ १५ ॥ बाणोंके
 प्रहारसे उसका शरीर ऐसा विभगया कि—वह इन्द्रके वज्रसे टूटने
 हुए पर्वतकी समान अड़इड़ शब्द करता हुआ पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ १६ ॥
 गिरते हुए हाथीके साथ ही अपनेआप भी नीचेको लुठकते हुए
 अङ्गराजके मस्तकको फुंतीले भीमसेनने भालेसे काटडाला ॥ १७ ॥
 वीरवर अङ्गराजके गिरते ही उसकी सेना घबड़ाकर घोड़े, हाथी,
 रथी और पैदलोंको पीचती हुई भागने लगी ॥ १८ ॥ जब व्यूह-
 रचनाएं टूटकर सेनाएं भागनेलगीं उस समय प्राग्ज्योतिष देशका
 राजा हाथी पर बैठकर भीमसेनके ऊपरको दौड़ा ॥ १९ ॥ जिस
 हाथी पर बैठकर इन्द्रने असुरोंको जीता था—उसी वंशके हाथीपर
 बैठकर प्राग्ज्योतिष देशका राजा भीमसेनके ऊपर दौड़ा ॥ २० ॥
 ओधमें भराहुआ वह हाथी एकाएक भीमसेनके ऊपर दौड़ आया
 और मानों प्रलय ही कर डालेगा, इसप्रकार उसने आगेके दोनों
 चरणोंसे तथा मूंड और दाँतोंसे भीमसेनके रथके टुकड़े २ कर
 डाले ॥ २१—२२ ॥ भीमसेन अञ्जलिकावेधको जानता था इस

पाण्डवः ॥ २३ ॥ गात्राभ्यन्तरं गो भूत्वा करेणाताडयन्मुहुः ।
 लालयामास तं नागं वधकाक्षिणमव्ययम् ॥ २४ ॥ कुलालचक्र-
 वन्नागस्तदा तूर्णमथाभ्रत् । नागायुतवजः श्रीमान् कालयानो
 वृकोदरम् ॥ २५ ॥ भीमोपि निष्कम्पात्ततः सुप्रतीकाग्रतोभवत् ।
 भीमं करेणावनम्य जानुभ्यामभ्यताडयत् ॥ २६ ॥ ग्रीवायां वेष्ट-
 यित्वैनं स गजो हन्तुमैहत । करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्वा व्य-
 मोचयत् ॥ २७ ॥ पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः । यावत्
 प्रतिगजायातं स्वबले मत्प्रवैक्षत ॥ २८ ॥ भीमोपि नागगात्रेभ्यो

कारण भागा नहीं किन्तु वह पैदल ही दौडकर हाथीके शरीरसे
 चिपटगया ॥ २३ ॥ उसके नीचे पहुँचकर भीमसेनने उसे हाथोंसे
 उन्पीडित करना आरम्भ करदिया और अपनेको मारना चाहने
 वाले उस हाथीको वह मानो खेल खिलाने लगा ॥ २४ ॥ दश
 सहस्र हाथियोंकी समान बल रखनेवाला वह शोभावान् हाथी
 भीमसेनको कालकी शरणमें पहुँचानेके लिये कुँभारके चाककी
 समान घूमने लगा ॥ २५ ॥ इतनेमें भीमसेन उस हाथीके नीचे
 से निकलकर उसके सामने आगया, तब हाथी उसके पीछे दौड
 उसको सूँडमें लपेटकर घुटनेसे मसलने लगा ॥ २६ ॥ उस हाथीने
 उसके गलेको सूँडमें लपेटकर उसको मारना चाहा, परन्तु भीमसेन
 गोलाकारसे फिरकर सूँडसे छूटगया और तुरंत ही दूसरी बार
 हाथीके शरीरके नीचे घुसगया ॥ २७ ॥ और अपनी सेनामेंसे
 उसके समान ही बली हाथीके आनेकी बात देखने लगा ॥ २८ ॥

टिप्पणी—हाथीके पेटका एक भाग ऐसा है कि—उसमें दोनों
 मुक्के मारनेसे हाथीके गुलगुली होती है और वह उसको अच्छी
 लगती है फिर हाथी महावतके कितने ही मारने पर भी आगेको
 नहीं बढ़ता, इस विद्याका नाम अंजलिकावेध विद्या है, इस विद्या
 को भीमसेन जानता था ।

विनिःसृत्यापयाज्जनात् । ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवन्
महान् ॥ २९ ॥ अहो धिङ् निहतो भीमः कुञ्जरेणति मारिष ।
तेन नागेन सञ्चरन् पाण्डवानामनीकिनी ॥ ३० ॥ सहस्राभ्य-
द्रवद्वाजन् यत्र तस्यौ वृकोदरः । तनो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा
वृकोदरम् ॥ ३१ ॥ भगदत्तं सपाञ्चाल्यः सर्वतः समवारयत् । तं रथ-
रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य परन्तपाः ॥ ३२ ॥ अवाकिरन् शरैस्ती-
क्ष्णैः शतशोथ सहस्रशः । स त्रिघातं पृथक्कानामङ्कुशेन समाह-
रन् ॥ ३३ ॥ गजेन पाण्डुञ्चालान् व्यधमत् पर्वतेश्वरः । तद-
द्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे ॥ ३४ ॥ तथा वृहस्य चमितं कुञ्ज-
रेण विशास्यते । ततो राजा दशार्णानां प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ३५
तिर्यग्गतेन नागेन समदेनाशुगामिना । तयोर्बुद्धं समभवन्ननागयो-
र्भीमरुरयोः ॥ ३६ ॥ सपत्नयोः पर्वतयोर्यथा सद्रुमयोः पुरा ।

फिर उसके शरीरसे छूटकर भीमसेन वेगसे भागा यह देखकर
सकल सेनामें बड़ा भारी कोलाहल होने लगा कि—॥ २९ ॥ अरेरे ।
हाय ॥ हाय ॥ हाथीने भीमसेनको मार डाला ! पाण्डवोंकी सेना
हाथीसे डरकर जहाँ भीमसेन खड़ा था तहाँ पहुँच गई, तदनन्तर
भीमसेनको मरा हुआ समझकर युधिष्ठिर, पञ्चालदेशके राजे और
दूसरे परंतप महाराजाओंने भगदत्तको चारों ओरसे घेरकर उसके
ऊपर सैकड़ों तथा सहस्रों बाणोंकी वृष्टि करना आरंभ कर दी, परन्तु
पर्वतेश्वर भगदत्तने उस बाणवर्षाको अङ्कुशसे नष्ट कर डाला और
हाथीसे पाण्डव तथा पंचालोंको भी रौंदने लगा; रणमें हाथीके द्वारा
किया हुआ वृह भगदत्तका यह युद्ध आश्चर्यजनक था, हे राजन् ।
तदनन्तर दशार्णराज शीघ्र चलनेवाले, मदोन्मत्त हाथीपर बैठ भग-
दत्त पर चढ़ आया, उन दोनों हाथियोंका युद्ध पूर्वसमयके परोवाले
और वृत्तोंवाले दो पर्वतोंकी समान हुआ, तदनन्तर भगदत्तके
हाथीने पीछेकी हड्डीकर दशार्णराजके हाथीको अपनी ओरकी

मागज्योतिषपतेर्नागः सन्निवृत्त्यापसृत्य च ॥ ३७ ॥ पार्श्वे दशा-
र्णाधिपतेर्भित्त्वा नागमपातयत् । तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोद्य
सप्तभिः ॥ ३८ ॥ जघान द्विरदस्थं तं शत्रुं प्रचलितासनम् । व्य-
वच्छिद्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥ रथानीकेन
महता सर्वतः पर्यवारयत् । स कुञ्जरस्थो रथिभिः शुशुभे सर्वतो
वृतः ॥ ४० ॥ पर्वते वनमध्यस्थो ज्वलन्निव हुताशनः । मङ्गलं
सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥ ४१ ॥ किरतां शरवर्षाणि
स नागः पर्यवर्तत । ततः मागज्योतिषो राजा परिगृह्य महागजम् ४२
प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति । शिनेः पौत्रस्य तु रथं परि-
गृह्य महाद्विपः ॥ ४३ ॥ अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत् ।
बृहतः सैन्धवानश्चान् सप्तुत्थाप्याथ सारथिः ॥ ४४ ॥ तस्थौ सत्या-

खैचा तथा उसकी दोहिनी कोखको फाड़कर उसे पृथ्वीपर गिरा
दिया, इतनेमें भगदत्तने सूर्यकी किरणोंकी समान चमकीले सात
भालोंसे, हाथी पर बैठेहुए और जिसका आसन खसक रहा था
ऐसे अपने शत्रु दशार्णराजको मारडाला तदनन्तर युधिष्ठिरने
बड़ी भारी रथसेनाके द्वारा भगदत्तको चारों ओरसे घेरलिया
और उसको भालोंसे बीधडाला उस समय रथियोंसे घिरा हुआ
और हाथीपर बैठा हुआ भगदत्त पर्वत परके वनमें धधकती हुई
अग्निकी समान दीखता था, तदनन्तर भगदत्तके हाथीने चारों
ओर खचाखच भरेहुए भयङ्कर धनुषवाले और बाणोंको फेंकते
हुए रथियोंके मण्डलका चकर देना आरम्भ करदिया फिर भग-
दत्तने अपने हाथीको हटाकर एक साथ युयुधानके रथके ऊपर
दौड़ादिया उस हाथीने युयुधानके रथको उठाकर वेगसे फेंक
दिया परन्तु युयुधान रथको पकड़ते ही उसमेंसे भाग गया था,
अतः वचगया, युयुधानका रथ दूर जापड़ा कुछ समयके अनन्तर
सारथीने सिंधुदेशमें उत्पन्न हुए घोड़ोंको शान्त कर खड़ा किया

किमासाद्य संप्लुतस्तीं रथं प्रति । स तु लब्धवान्तरं नागस्त्वरितो रथ-
मण्डलात् ॥ ४५ ॥ निश्चक्राम ततः सर्वान् परिचिक्षेप पार्थिवान् ।
ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः ॥ ४६ ॥ तमेकं द्विरदं
संख्ये मेनिरे शतशो द्विपान् । ते गजस्थेन काल्यन्ते भगदत्तेन
पाण्डवाः ॥ ४७ ॥ ऐरावतस्थेन यथा देवराजेन दानवाः । तेषां
प्रद्ववतां भीमः पञ्चालानामितस्ततः ॥ ४८ ॥ गजवाजिकृतः शब्दः
सुमहान् समजायत । भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ४९ ॥
प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात् । तस्याभिद्रवतां बाहान्
हस्तमुक्तेन वारिणा ॥ ५० ॥ सिक्त्वा व्यत्रासयन्नगस्ते पार्थ-
महरंस्ततः । ततस्तमभ्ययात् तूष्णीं रुचिपर्वा कृतीषुता ॥ ५१ ॥
समघ्नञ्छरवर्षेण रथस्थोन्तकसन्निभः । ततः स रुचिपर्वाणं शर-
णानतपर्वणा ॥ ५२ ॥ सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्यतत्तयम् ।

घोड़ोंका डर निकल जाने पर उनको रथमें जोड़कर सारथी
सात्यकिके पास पहुँचगया इतनेमें वह हाथी भी दम ले रथमण्डल
मेंसे बाहर निकलकर घूमनेलगा और सब राजाओंको फेंकने
लगा, उस शीघ्रगामी हाथीसे डरेहुए उन राजाओंने उस एक
हाथीको सहस्र हाथियोंकी समान माना भगदत्त हाथीपर बैठा
हुआ जैसे ऐरावत पर बैठा हुआ इन्द्र दानवोंको खदेड़ता है तैसे
पांडवोंको खदेड़नेलगा पञ्चालोंकी दौंड भागसे हाथी तथा घोड़े
भयंकर शब्द करनेलगे, जब भगदत्त समरमें इस प्रकार पांडवोंको
सतानेलगा तब भीमसेन क्रोधमें भर दूसरी बार भगदत्तके सामने
आया भीमसेनको वेगसे आताहुआ देखकर भगदत्तके हाथीने
उसके घोड़ों पर सूँडका जल छिड़क दिया, इससे घबड़ाकर
घोड़े भीमसेनको बहुत दूर तक भंगालेगए, तदनन्तर कृतीपुत्र रथ-
पर्वा शीघ्रतासे भगदत्तपर चढ़आया और रथमें बैठे कालकी समान
रथपर्वाने बाणोंकी झड़ी लगादी, तदनन्तर सुन्दर अवयवोंवाले

तस्मिन्निपतिते वीरे सौमद्रो द्रौपदीसुतः॥५३॥चेकितानो धृष्टकेतु-
युः युत्सुश्चार्दयन् द्विपम् । त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तौयदाः॥५४॥
सिषिचुर्भैरवान्नादान् विनदन्तो जिघांसयः । ततः पाण्डुर्यकुशां-
गुष्ठैः कृतिना चोदितो द्विपः ॥ ५५ ॥ प्रसारितकरः प्रायात् स्त-
ब्धकर्णेक्षणो द्रुतम् । सोधिष्ठाय पदा बाह्वान् युयुत्सोः सूतमारु-
जत् ॥ ५६ ॥ युयुत्सुस्तु रथाद्राजन्नपाक्रमात् त्वरान्वितः । ततः
पाण्डवयोधास्ते नागराजं शरैर्द्रुतम् ॥ ५७ ॥ सिषिचुर्भैरवान्ना-
दान् विनदन्तो जिघांसयः । पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तः सौमद्रस्या-
प्लुतो रथम् ॥ ५८ ॥ स कुञ्जरस्थो विसृजन्निधूनरिषु पार्थिवः ।
वथौ ररपीनित्रादिस्थो भुवनेषु समुत्सृजन् ॥ ५९ ॥ तमार्जुनिर्द्वाद-
शभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः । त्रिभिस्त्रिभिर्द्रौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः॥

पर्वतेश्वर भगदत्तने नभी हुई गाँठोंवाले बाणसे उसको यमसदन
में पहुँचा दिया, उस वीरके गिरजाने पर भय जैसे जलधाराओंसे
पर्वतको उत्पीड़ित करते हैं तैसे ही अभिमन्यु द्रौपदीके पुत्र चेकि-
तान, धृष्टकेतु, युयुत्सु आदि सब योधा उस हाथीको मारनेकी
इच्छासे भयङ्कर गर्जनाएँ करतेहुए उसपर अनेकों बाणोंकी वृष्टि
करनेलगे भगदत्तने पार्णिण, अंकुश और अंगूठा मारकर हाथीको
आगे बहाया, तब हाथी अपनी सूँडको ऊँची करके और नेत्र
कानोंको स्थिर करके शत्रुओंके सामने जाडटा और पैरोंसे घोड़ों
को दबाकर उसने सात्यकिके सारथीके टुकड़े २ करडाले ३०-५६
हैं राजन् । युयुत्सु रथपरसे एक साथ कूदकर भाग गया तदनन्तर
उस महाहस्तीको मारना चाहने वाले पाण्डवोंके योधा भयङ्कर
गर्जना कर बाणोंको छोड़नेलगे, यह देख तुम्हारे पुत्रने क्रोधमें
भर अभिमन्युके ऊपर धावा किया ५७॥ ५८॥ इस समय हाथीपर बैठ
शत्रुओंपर बाणोंको छोड़ा हुआ राजा भगदत्त संसारमें किरणों
को फैलाते हुए सूर्यकी समान प्रतीत हो रहा था ॥ ५९ ॥ उसको

सोऽस्ति यन्नर्पितैर्वाणैराचितो द्विरदो वर्षा । संस्यूत इव सूर्यस्य
 रश्मिभिर्जलदो महान् ॥ ६१ ॥ नियन्तुः शिल्पयत्नाभ्यां मेरि-
 तोरिशरादितः । परिचित्तेषु तान्नागः स रिपून् सव्यदक्षिणमुदर-
 गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान् वने । आवेष्टयत तां सेनां
 भगदत्तस्तथा मुहुः ॥ ६३ ॥ क्षिप्रं श्येनाभिपन्नानां वायसाना-
 मिव स्वनः । बभूव पाण्डवयानां भृशं विद्रवतां स्वनः ॥ ६४ ॥
 स नागराजः प्रवरांकुशाहतः पुरा सपत्नोद्विरो यथा नृप । भयं
 तदा रिपुषु समादधद् भृशं बणिग्जनानां क्षुभितो यथार्णवः ६५
 ततोऽध्वनिर्द्विंदरथाश्वपार्थिवैर्भयाद् द्रवद्भिर्जनितोऽतिभैरवः । क्षितिं

अभिमन्युने बारह, सात्यकिने दश और द्रौपदीके पुत्र तथा धृष्ट-
 केतुने तीन २ बाण मारकर बँध दिया ॥ ६० ॥ महापरिश्रमसे
 छोड़े हुए बाणोंसे छिदा हुआ उसका हाथी, सूर्यकी किरणोंसे
 छाये हुए महामेघकी समान शोभा पारहा था ॥ ६१ ॥ शत्रुओंके
 बाणोंसे उत्पीडित हुआ और महाव्रतकी चतुरता तथा परिश्रमसे
 बढाया हुआ वह हाथी शत्रुओंको मूँडसे उठा २ कर दाहिनी
 ओर फेंकने लगा ॥ ६२ ॥ जैसे गालिया जंगलमें लकड़ोसे
 गौओंको इकट्ठा करदेता है तैसे ही भगदत्तने भी हाथीके द्वारा
 सब सेनाको बारम्बार घेरघार कर एक स्थानमें इकट्ठी कर चारों
 ओरसे घेरलिया ॥ ६३ ॥ हाथीसे डरकर भागते हुए पांडवोंके
 सैनिकोंका शब्द वाजके पीछे पडजाने पर काँव २ करके भागते
 हुए कौओंकी समान होरहा था ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! बड़े अंकुशसे
 मारा हुआ वह हाथी शत्रुओंको पूर्वकालके परोंचाले पर्वतोंकी
 समान और समुद्रमें यात्रा करनेवाले व्यापारियोंको खलभला-
 हटसे डराते हुए समुद्रकी समान भय देने लगा ॥ ६५ ॥
 हे राजन् ! इस क्षत्रियोंके युद्धमें डरकर भागते हुए हाथी, छोड़े,
 रथी और राजाओंके चीत्कारके शब्दने भयानक रूप धारण कर

वियत्थां विदिशो दिशस्तथा समावृणोत् पार्थिवसंयुगे ततः ६६
 स तेन नागप्रवरेण पार्थिवो भृशं जगार्ह द्विषतामनीकिनीम् ।
 पुरा मुगुप्तां विबुधैरिवाहवे विरोचनो देवरूथिनीमिव ॥ ६७ ॥
 भृशं बभौ ज्वलनसखो वियद्रजः समावृणोन्मुहुःपि चैव सैनिकान् ।
 तमेव नार्गं गणशो यथा गजान् समन्ततो द्रुतमथ मेनिरे जनाः ६८
 इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे
 षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

संजय उवाच । यन्मां पार्थस्य संग्रामे कर्माणि परिपृच्छसि ।
 तच्छृणुष्व महाबाहो पार्थो यदकरोद्रेण ॥ १ ॥ रजो दृष्ट्वा समु-
 दधूतं श्रुत्वा च गजनिःस्वनम् । भगदत्ते विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्ण-
 मब्रवीत् ॥ २ ॥ यथा प्राग्ज्योतिषो राजा गजेन मधुसूदन । त्वर-
 लिया, वह पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, दिशा, उपदिशाओंमें भर
 गया ॥ ६६ ॥ राजा भगदत्तने उस श्रेष्ठ हाथीके द्वारा शत्रुओं
 की सेनाको इसप्रकार बीँधडाला, कि-जैसे पूर्वसमयमें देवताओंकी
 सुरक्षित सेनाका विरोचनने विध्वंस करडालाथा ॥ ६७ ॥ इस समय
 वायु बड़े वेगसे चलरहा था, धूलिसे आकाश तथा सैनिक अत्यन्त
 दहकगये थे और वह अद्वितीय हाथी चारों ओर इसप्रकार दौड़ता
 था, कि-मनुष्य उसको एक होनेपरभी हाथियोंकी धाँगकी समान
 मानते थे ॥ ६८ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे महाबाहो ! आपने मुझसे प्रश्न किया,
 कि-अर्जुनने संग्राममें कैसे पराक्रम किये ? अतः पार्थने संग्राम
 में जो किया उसको सुनिये ॥ १ ॥ अर्जुनने आकाशमें धूलि
 उड़तीहुई देखकर तथा हाथीके शब्दको सुनकर और भगदत्तको
 अनेकों पराक्रम करते देखकर श्रीकृष्णसे कहा, कि-॥ २ ॥ हे
 मधुसूदन ! प्रतीत होता है, कि-प्राग्ज्योतिदेशका राजा भगदत्त
 हाथी पर बैठ फुरतीके साथ हमारी सेनापर टूटपड़ा है, यह जो

माणो विनिष्कान्तो ध्रुवं तस्यैष निस्वनः ॥ ३ ॥ इन्द्रादनवरः
 संख्ये गजयानविशारदः । प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे
 मतिः ॥ ४ ॥ स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदा प्रतिगजो युधि । सर्वश-
 स्त्रातिगः संख्ये कृतकर्मा जितक्लमः ॥ ५ ॥ सहः शस्त्रनिपाता-
 नामग्निस्पर्शस्य चानघ । स पाण्डववलं सर्वमघ्नो नाशयिष्यति द-
 न चावाभ्यामृतेन्योस्ति शक्तस्तं प्रतिवाधितुम् । त्वरमाणस्ततो
 याहि यतः प्राग्ज्योतिषाधिपः ॥ ७ ॥ दत्तं संख्ये द्विषवलाद्वयसा
 चापि विस्मितम् । अथैनं प्रेषयिष्यामि बलदन्तुः प्रियातिथिम् ८ वच-
 नादथ कृष्णस्तु प्रययौ सच्यसाचिनः । दीर्यते भगदत्तेन यत्र
 पाण्डववाहिनी ॥ ९ ॥ तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः ।

कोलाहल सुनाई दे रहा है यह निःसन्देह उसका ही है ॥ ३ ॥
 मेरी समझमें यह युद्धमें इन्द्रकी समान, हाथीको सवारी करनेमें
 चतुर और हस्तियोधाओंमें प्रथमश्रेणीका है ॥ ४ ॥ और इसका
 हाथ भी युद्धमें इक्कड़, सब शस्त्रोंको सहनेवाला, युद्धकुशल और
 परिश्रमको कुछ भी न गिननेवाला है ॥ ५ ॥ तथा हे निष्पाप
 कृष्ण ! उसके ऊपर चाहे जितने शस्त्र पड़ें, यह उनको सहता ही
 रहेगा और आग बरसती रहेगी तब भी वह पीछेको नहीं हटेगा,
 इसलिये आज यह अकेलाही हमारी सब सेनाको नष्ट कर
 डालेगा ॥ ६ ॥ हम दोनोंके सिवाय ऐसा और कोई नहीं है, जो
 उसको हटासके, अतः शीघ्रताके साथ उसी ओर चलिये, कि-
 जहाँ भगदत्त है ॥ ७ ॥ युद्धमें हाथीके बलपर अहंकार करनेवाले
 तथा अपनी वृद्धावस्थाके कारण अभिमानी बनेहुए इस भगदत्त
 को आज मैं बलनामक दैत्यके नाशक इन्द्रका प्यारा पाहुना
 बनानेके लिये अभी स्वर्गमें भेजदूँगा ॥ ८ ॥ तदनन्तर अर्जुनके
 कहनेसे श्रीकृष्णने जहाँ-पर भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाका संहार
 कर रहा था उधरको रथ दौड़ाया ॥ ९ ॥ जब अर्जुन उधरको

संशप्तकाः समारोहन् सहस्राणि चतुर्दश ॥ १० ॥ दशैव तु सह-
स्राणि त्रिगर्त्तानां महारथाः । चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य
चानुगाः ॥ ११ ॥ दीर्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष । आहू-
यमानस्य च तैरभवद्बुधदयं द्विधा ॥ १२ ॥ किं नु श्रेयस्करं कर्म
भवेदद्येति चिन्तयन् । इह वा विनिवर्तेयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम् १३
तस्य बुद्ध्या विचार्यैवमर्जुनस्य कुरुद्वह । अभवद् भूयसी बुद्धिः
संशप्तकवधे स्थिरा ॥ १४ ॥ स सन्निवृत्तः सहसा कपिप्रवर-
केतनः । एको रथसहस्राणि निहतुं वासवी रणे ॥ १५ ॥ सा
हि दुर्योधनस्यासीन्मतिः कर्णस्य चोभयोः । अर्जुनस्य वधोपाये
तेन द्वैधमकल्पयत् ॥ १६ ॥ स तु दोलायमानोभूद् द्वैधीभावेन

जाने लगा उस समय उसको रोकनेके लिये चौदह सहस्र महारथी
संशप्तक, दश सहस्र महारथी त्रिगर्त और चार सहस्र नारायणी
सेनाके योधा अर्जुनको घेरकर उससे युद्ध करनेको कहने
लगे ॥ १०-११ ॥ हे राजन् ! एक ओर भगदत्तके द्वारा अपनी सेना
का संहार होता देख और दूसरी ओर इन योधाओंके बुलानेसे
अर्जुनका मन द्विविधामें पड़ गया ॥ १२ ॥ वह विचारने लगा,
कि-मैं इन संशप्तकोंके ऊपर फिर चढ़ाई करूँ या राजा युधिष्ठिर
की सहायताको जाऊँ, आज इन दोनोंमें कौनसा काम कल्याणकारी
होगा ॥ १३ ॥ हे कुरुकुलोत्पन्न ! मनमें इसप्रकार विचार करके
उसने संशप्तकोंका वध करनेका ही हृद् निश्चय किया ॥ १४ ॥
कपिकेतन अर्जुन एकसाथ अकेलाही सहस्रों रथियोंको मारने
के लिये लौटपड़ा ॥ १५ ॥ इससमय दुर्योधन और कर्णकी
इच्छाभी अर्जुनके वधका उपाय सोचनेको हुई, उन दोनोंने यह
निश्चय किया, कि-एक ओर संशप्तक और अर्जुनका तथा
दूसरी ओर भगदत्त और पाण्डवोंका युद्ध हो ॥ १६ ॥ शत्रुकी
ओरके द्वैधीभावसे अर्जुनका मन दोलायमान होने लगा; परन्तु

पाण्डवः । वधेन तु नराग्रधाणापक्रोत्तां मृषा तदा । १७ ॥
 ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् । अमृजन्नर्जुनं राजन्
 संशप्तकमहारथाः ॥ १८ ॥ नैव कुन्तीपुत्रः पार्थो नैव कृष्णो जना-
 र्दनः । न हया न रथो राजन् दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः ॥ १९ ॥
 तदा मोहममुपाप्तः सिध्विदे हि जनार्दनः । ततस्तान् प्रापशः पार्थो
 ब्रह्मास्त्रेण निजघ्नितवान् ॥ २० ॥ शतशः पाण्यश्चिन्ताः सेषु-
 ज्यातलकामृकाः । केतवो वाजिनः मृता रथिनश्चापतनू चित्ता २१
 द्रुपाचलाग्राम्बुधरैः समकायाः सुकल्पिताः । हतारोहाः चित्ता
 पेतुर्दिपा पार्थशराहताः ॥ २२ ॥ विप्रविद्धकुथा नागाश्चिन्न-
 भाण्डाः परासवः । सारोहास्तु रणो पेतुर्मथिता मार्गलैर्धृशम् २३

अन्तमें उसने नरश्रेष्ठ संशप्तकोंके वधका विचार करके दोलाय-
 मान बुढ़को त्यागदिया ॥ ७ ॥ हे राजन् ! संशप्तक महारथियों
 ने नमीहुई गाँठवाले सैंकड़ों और सहस्रों बाण अर्जुनके ऊपर
 छोड़ना आरम्भ करदिये ॥ १८ ॥ उन बाणोंसे दूक जानेके
 कारण हे राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुन, जनार्दन श्रीकृष्ण, उनके
 घोड़े और रथ अदृश्य होगये ॥ १९ ॥ यह देखकर श्रीकृष्ण
 मोहित होगए, उनके शरीरमें पसीना आगया, परन्तु अर्जुनने
 उन बाणोंको ब्रह्मास्त्रसे नष्ट करदिया ॥ २० ॥ सहस्रों हाथ
 धनुष बाण और चमड़ेके मौजे सहित कटकर गिरपड़े तथा उस
 ब्रह्मास्त्रसे बहुतसी ध्वजाएँ, घोड़े और सारथी, कटकर पृथ्वीपर
 गिरनेलगे ॥ २१ ॥ अर्जुनके बाणके प्रहारसे वृक्ष, पर्वतके शिखर
 और मेघोंकी समान शरीरवाले बड़े २ हाथी और उनके महाव्रत
 मरकर पृथिवीपर गिरनेलगे ॥ २२ ॥ हाथियोंकी भूलोंकी घञ्जिएँ
 उड़गई, गहने टूटगये और वे बाणोंसे अत्यन्त घायल होनेके
 कारण सवारों सहित प्राणोंको छोड़कर रणमें गिरपड़े ॥ २३ ॥

सर्पिःप्रोसासिनखराः समुद्रगरपरश्वधाः । विच्छिन्ना बाहवः पेतु-
 नृणां भल्लैः किरीटिना ॥ २४ ॥ बालादित्याम्बुजेन्दुनां तुल्य-
 रूपाणि मारिष । संच्छिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्व्यां पमेदिरे २५
 जज्वालालंकृता सेना पत्रिभिः प्राणिभोजनैः । नानारूपैस्तदामित्रान्
 क्रुद्धे निघ्नति फाल्गुने ॥ २६ ॥ क्षोभयन्तं तदा सेना द्विरदं
 नलिनीमिव । धनञ्जयं भूतगणाः साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ २७ ॥
 दृष्ट्वा तत् कर्म पार्थस्य वासवस्येव माधवः । विस्मयं परमं गत्वा
 प्राञ्जलिस्तमुवाच ह ॥ २८ ॥ कर्मैतत् पार्थ शक्रेण यमेन धन-
 देन च । दुष्करं समरे यत्ते कृतमद्येति मे मतिः ॥ २९ ॥ युग-
 पच्चैव संग्रामे शतशोथः सहस्रशः । पतिता एव मे दृष्टा संशप्तक-
 महारथाः ॥ ३० ॥ संशप्तकास्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः ।

अर्जुनके बाणोंसे कटकर ऋष्टि, प्रांस, तलवार, समुद्रगर, और फरसों
 वाले हाथ पृथिवीपर गिरनेलगे ॥ २४ ॥ हे राजन् ! बालसूर्य, कमल
 और चन्द्रमाकी समान शत्रुओंके मस्तक अर्जुनके बाणोंसे कटकर
 पृथिवीमें गिरपड़े ॥ २५ ॥ क्रोधमें भराहुआ अर्जुन जब इस
 प्रकार शत्रुओंको मारनेलगा, उस समय नानाप्रकारके प्राणियोंका
 भोजन करनेवाले पक्षियोंसे वह सेना एक साथ दमक उठी ॥ २६ ॥
 जैसे हाथी कमलिनीको नष्टभ्रष्ट करडालता है तैसे ही सेनाको
 बिलादतेहुए अर्जुनकी प्राणियोंने साधु, साधु शब्दसे प्रशंसा
 की ॥ २७ ॥ अर्जुनके इन्द्रकी समान, इस कर्मको देखकर श्री-
 कृष्ण भी बड़ा अचरज करनेलगे और दोनों हाथ जोड़कर बोले,
 कि—॥ २८ ॥ हे पार्थ ! आज तूने मेरी सम्भूममें इन्द्र, बरुण, कुवेर
 और यमसे भी कठिनातासे होनेयोग्य काम किया है ॥ २९ ॥
 मैंने रणमें एकसाथ सहस्रों और सैंकड़ों संशप्तक महारथियोंको
 गिरतेहुए प्रत्यक्ष देखा है ॥ ३० ॥ जो तहाँ पर खड़े थे उन

भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयत् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि

संशप्तकवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच । यियासतस्तनः कृष्णः पार्थस्याश्वान् मनो-
जवान् । सम्प्रेषीद्वेमसञ्छन्नान् द्रोणानीकाय स त्वरन् ॥ १ ॥
तं प्रयांतं कुरुश्रेष्ठं स्वान् भ्रातन् द्रोणतापितान् । सुशर्मा भ्रातृभिः
सार्वं युद्धार्थी पृष्ठतोन्वयात् ॥ २ ॥ ततः श्वेतहयः कृष्णमग्नवीद-
जितञ्जनयः । एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माद्वयतेऽच्युता ॥ ३ ॥ दीर्यते
चोत्तरेणैव तत् सैन्यं मधुगूदन । द्वैधी भूतं मनो मेघ कृतं संशप्तक-
रिदम् ॥ ४ ॥ किन्तु संशप्तकान् हन्मि स्वान् रत्ताम्यहितादितान् ।
इति मे त्वं मतं वेत्ति तत्र किं सुकृतं भवेत् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तु

बहुतसे संशप्तकोंको मारकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि अब
भगदत्तकी ओरको चलिये ॥ ३१ ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त २७

सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! आगे घड़नेकी इच्छावाले
अर्जुनके, सुवर्णकी भूले ओढ़े मनकी समान वेगवाले घोड़ोंको
श्रीकृष्णने शीघ्रताके साथ द्रोणकी सेनाकी ओरको हॉकदिया १
इसप्रकार कुरुश्रेष्ठ अर्जुन, द्रोणके सतायेहुए अपने भाइयोंकी
सहायताकेलियेजाने लगा, यह देख सुशर्मा अपने भाइयोंको साथमें
लेकर अर्जुनके पीछे दौड़ा ॥ २ ॥ तदनन्तर अजितोंको जीतने
वाले और श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि—
हे अच्युत ! देखिये यह सुशर्मा अपने भाइयोंसहित मुझे लड़नेके
लिये बुलारहा है ॥ ३ ॥ यह हमारा सेना उत्तरकी ओरको
भागरही है और इन संशप्तकोंने मेरे मनको द्विविधामें डालदिया
है ॥ ४ ॥ मैं संशप्तकोंको मारूँ या शत्रुसे पीड़ा पातेहुए अपने
भाइयोंकी रक्षा करूँ मेरे मनमें यह उलट पलट होरही है, इसको
आप जानते ही हैं, इनमेंसे कौनसा काम करनेसे कल्याण होगा

दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्त्तयत् । येन त्रिगर्त्ताधिपतिः पाण्डवं समु-
पाह्वयत् ॥ ६ ॥ ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः । ध्वजं
धनुश्चास्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत ॥ ७ ॥ त्रिगर्त्ताधिपतेश्चापि
भ्रातरं षड्भिराशुगैः । सारवं समूतं त्वरितः पार्थः प्रैषीद्यम-
न्तयम् ॥ ८ ॥ ततो भुजगसङ्काशां सुशर्मा शक्तिमायसीम् । चित्ते-
पार्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम् ॥ ९ ॥ शक्तिं त्रिभिः शरैश्छि-
त्त्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः । सुशर्माणं शरव्रातैर्भोदयित्वा न्यवर्त्तयत् १०
तं वासवमिवार्थातं भूरिवर्षं शरौघिणम् । राजंस्ताववसैन्यानां
नोग्रं कश्चिदवारयत् ॥ ११ ॥ ततो धनञ्जयो बाणैः सर्वानेव महा-
रथान् । आयाद्विनिघ्नन् कौरव्यान् दहन् कक्षमिवानलः ॥ १२ ॥
तस्य वेगमसह्यं तं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः । नाशकमुवंस्ते संसोढुं

यह मुझे बताइये ५ श्रीकृष्ण यह सुनते ही रथको लौटाकर जिधर
अर्जुनको त्रिगर्तपति सुशर्मा बुलारहा था उधरको लेगये ॥ ६ ॥
तब अर्जुनने सात बाणोंसे सुशर्माको वीध दो क्षुरोंसे उसकी
ध्वजा और धनुषको काटडाला ॥ ७ ॥ फिर त्रिगर्ताधिपतिके
भाईको घोड़े और सारथि सहित छः बाणोंसे यमपुर भेजदिया ८
तदनन्तर सुशर्माने लक्ष्य कर सर्पकी समान लोहेकी शक्ति अर्जुन
पर और तोमर श्रीकृष्णके ऊपर फेंका ॥ ९ ॥ अर्जुन तीन २
बाणोंसे शक्ति और तोमरके टुकड़े २ कर, बाणोंकी वर्षासे सुशर्मा
को मूर्छित करके पीछेको लौट पड़ा ॥ १० ॥ महावर्षा करनेवाले
इन्द्रकी समान, तुम्हारी सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते
हुए भयङ्कर अर्जुनके सामने तुम्हारी सेनामेंसे कोई भी खड़ा
नहीं रहसका ॥ ११ ॥ जैसे अग्नि फूँसको भस्म करडालता है
तैसे ही अर्जुन बाणवृष्टिसे सब महारथियोंको मारता हुआ चला
जाना था ॥ १२ ॥ जैसे मनुष्य अग्नि के स्पर्शको नहीं सह सकते
तैसे ही बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र अर्जुनके वेगको कोई भी नहीं सह

स्पर्शमग्नेरिव प्रजाः ॥ १३ ॥ संवेष्टयन्ननीकानि शरवर्षेण पांडवः ।
 सुपर्णपातवद्राजन्नायात् प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १४ ॥ यत्तदा नाम
 यज्जिष्णुर्भरतानामपापिनाम् । धनुः क्षेप्रकरं संख्ये द्विपतामश्रुवर्ध-
 नम् ॥ १५ ॥ तदेव तव पुत्रस्य राजन् दुर्द्युतदेविनः । कृते क्षत्र-
 विनाशाय धनुरायच्छदजुनः ॥ १६ ॥ तथा विज्ञोभ्यमाणा सा
 पार्थेन तव वाहिनी । व्यशीर्येत महाराज नौरिवासाद्य पर्वतम् १७
 ततो दशसदस्याणि न्यवर्त्तन्त धनुष्पताम् । मतिं कृत्वा रणे क्रूरां
 वीरा जयपराजये ॥ १८ ॥ व्यपेतहृदयत्रासा आवब्रुस्तां महारथाः ।
 आर्च्छत्पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि ॥ १९ ॥ यथा नलवन्
 क्रुद्धः प्रभिन्नः पट्टिहायनः । मृदनीयात्तद्वदायस्तः पार्थोऽमृदना-

सका ॥ १३ ॥ हे राजन् ! अर्जुन भी वाणवृष्टिसे सेनाओंको
 ढकता हुआ गरुडकी समान प्राग्ज्योतिषपुरके राजाके सामने जा
 पहुँचा ॥ १४ ॥ और अर्जुनने युद्धमें शत्रुओंके आँसुओंको
 बँढाने वाले तथा निष्पाप भरतोंका कल्याण करनेवाले जिस
 धनुषको नमाया था उस ही धनुषको हे राजन् ! कपटयूत खेलने
 वाले तुम्हारे पुत्रके कारण अर्जुनने क्षत्रियोंका नाश करनेके
 लिये फिर धारण किया ॥ १५-१६ ॥ तथा हे महाराज !
 अर्जुनसे घबड़ायी हुई तुम्हारी सेना जैसे समुद्रमें तैरती हुई नाव
 पर्वतसे टकरा कर टुकड़े २ होजाती है, तैसे ही छिन्न भिन्न
 होगई ॥ १७ ॥ तदनन्तर दश सहस्र वीर धनुषधारी महारथी
 हृदयमेंसे भयको त्याग कर जय तथा पराजयके विषयमें क्रूरभाव
 धारण कियेहुए युद्ध करनेके लिये रणमें उतर पड़े और उन
 सबोंने अर्जुनको घेरलिया परन्तु युद्धमें सब प्रकारकी टक्करोंको
 सह सकनेवाला अर्जुन उस बड़ी भारी टक्करको झेलनेके लिये
 उद्यत होगया ॥ १८-१९ ॥ जैसे मदनमत्त क्रोधमें भराहुआ
 साठ वर्षका हाथी नलोंके वनोंको कुचलढालता है तैसे ही

च चम् तव ॥ २० ॥ तस्मिन् प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः ।
 तेन नागेन सहसा धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥ तं रथेन नरव्याघ्रः
 प्रत्यगृह्णादुनञ्जयः । स सन्निपातस्तुमुलो बभूव रथनागयोः २२
 कल्पिताभ्यां यथाशास्त्रं रथेन च गजेन च । संग्रामे चैरतुर्वीरौ
 भगदत्तधनञ्जयौ ॥ २३ ॥ ततो जीमूतसङ्काशान्नागादिन्द्र इव
 प्रभुः । अभ्यवर्षच्छरौघेण भगदत्तो धनञ्जयम् ॥ २४ ॥ स चापि
 शरवर्षं तं शरवर्षेण वासविः । अप्राप्तमेव चिच्छेद भगदत्तस्य
 वीर्यवान् ॥ २५ ॥ ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवारयत् ।
 शरैर्ज्जघ्ने षट्पादाहुं पार्थं कृष्णञ्च मारिषः ॥ २६ ॥ ततस्तु शर-
 ज्जालेन महताभ्यवकीर्य तौ । चोदयामास तं नागं वधायाच्युत-
 पार्थयोः ॥ २७ ॥ तमापनन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवान्तकम् । चक्रोऽ-

अर्जुन तुम्हारी सेनाको नष्ट करने पर फैल पड़ा ॥ २० ॥ जब
 अर्जुनने भगदत्तकी सेनाको नष्ट करडाला तब उस ही हाथी
 पर बैठा भगदत्त एक साथ अर्जुनके ऊपर चढ़ आया ॥ २१ ॥
 अर्जुन भी रथ पर बैठकर उसके सामने डटगया उस समय रथ
 तथा हाथीमें घोर संग्राम हुआ ॥ २२ ॥ वीर भगदत्त और अर्जुन
 हाथी और रथमें बैठकर शास्त्रमें लिखी रीतिसे रचीहुई रण-
 भूमिमें युद्ध करनेलगे ॥ २३ ॥ उस समय मेघकी समान श्याम-
 वर्णके हाथी पर बैठे हुए इन्द्रकी समान भगदत्तने अर्जुनके ऊपर
 बाणोंकी वर्षाकी ॥ २४ ॥ भगदत्तकी उस बाणोंकी वर्षाको परा-
 कर्मी इन्द्रपुत्र अर्जुनने मार्गमें ही अपनी बाणवर्षा करके काट
 दिया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! प्राग्ज्योतिष देशका स्वामी भगदत्त
 अपने बाणोंसे अर्जुनके बाणोंको पीछेको लौटाकर श्रीकृष्ण
 और अर्जुनको बाणोंसे वींधने लगा ॥ २६ ॥ तदनन्तर भगदत्तने
 उन दोनोंको बाणवर्षासे ढककर उनका नाश करनेकी इच्छासे
 हाथीको उनके ऊपरको बढ़ादिया ॥ २७ ॥ क्रोधमें भरे यमराज

पसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥ २८ ॥ संप्राप्तमपि नेयेष
परावृत्तं महाद्विषम् । सारोहं मृत्युसात् कर्तुं स्मरन् धर्मं धन-
ञ्जयः ॥ २९ ॥ स तु नागो द्विपरथान् हयांश्चामृष्य मारिष ।
माहिणोन्मृत्युलोकाय ततः क्रुद्धो धनञ्जयः ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि

भगदत्तयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा क्रुद्धः किमकरोद्भगदत्तस्य पाण्डवः ।
प्राग्ज्योतिषो वा पार्थस्य तन्मे शंस यथातथम् ॥ १ ॥ सञ्जय
उवाच । प्राग्ज्योतिषेण संसक्ताबुधो दाशार्हपाण्डवौ । मृत्युदंष्ट्रा-
न्तिकं प्राप्तौ सर्वभूतानि मेनिरे ॥ २ ॥ तथा तु शरचर्पाणि पात-
यत्यनिशं प्रभो । गजस्कन्धान्महाराज कृष्णयोः स्यन्दनस्थयोः ।
अथ काष्णायसैर्वाणैः पूर्णकामुर्निःसृतैः । अविध्यदेवकीपुत्रं

की समान अग्ने ऊपर भूषटकर आतेहुए हाथीको देखकर अर्जुन
ने अपने रथको हाथीकी दाईं करचटमें खड़ा करदिया ॥ २८ ॥
इस समय अर्जुन यदि चाहता तो भगदत्तसहित हाथीको मार
हालता, परन्तु उसने क्षत्रियके धर्मको याद करके ऐसा नहीं
किया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! उस हाथीने हाथी, घोड़े और रथि-
योंको रौंदकर यमलोकमें भेजदिया, तब तो अर्जुन क्रोधमें भर
गया ॥ ३० ॥ अष्टादसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! अर्जुनने क्रोधमें भरकर भग-
दत्तका क्या किया ? और भगदत्तने अर्जुनका क्या किया ? यह
मुझे ठीकर सुना ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि—जब श्रीकृष्ण और
अर्जुन भगदत्तके साथ लड़ने लगे तब सब प्राणियोंने यह समझा,
कि—अब ये दोनों मृत्युकी डाढ़में हिलगए ॥ २ ॥ भगदत्तने
हाथीके ऊपर बैठे ही रथमें बैठेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके
ऊपर बाणोंकी झड़ी लगादी ॥ ३ ॥ राजा भगदत्तने सुवर्णकी

हेमपुंखैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥ अग्निस्पर्शसमाक्रीर्णा भगदत्तेन
चोदिताः । निर्भिद्य देवकीपुत्रं क्षितिं जग्मुः सुवाससः ॥ ५ ॥ तस्य
पार्थो धनुश्छित्वा परिवारं निहत्य च । लालयन्निव राजानं भग-
दत्तमयोधयत् ॥ ६ ॥ सोर्करश्मिः नर्भास्तीक्ष्णास्तोमरान् वै चतु-
र्दश । अमेषयत् सव्यसाची द्विर्धैकैकमथाच्छिनत् ॥ ७ ॥ ततो
नागस्य तद्रम्यं व्यधयत् पाकशसनिः । शरजालेन महता तद्र व्य-
शीर्यत भूतले ॥ ८ ॥ शीर्णवर्मा स तु गजः शरैः सुभृशमर्दितः ।
बभौ धारानिपाताक्तो व्यभ्रः पर्वतराडिव ॥ ९ ॥ ततः प्राग्व्यो-
तिषः शक्तिं हेमदण्डामयस्मयीम् । व्यसृजद्वासुदेवाय द्विधा ताम-
र्जुनोच्छिनत् ॥ १० ॥ ततश्छत्रं ध्वजञ्चैव छित्वा राज्ञोर्जुनः शरैः ।
विष्याध दशभिस्तूर्णमुत्स्मयन् पर्वतेश्वरम् ॥ ११ ॥ सोतिविद्धो-

पूँछवाले पाषाण पर तेज-कियेहुए, लोहेके बाण कानतक
धनुषको खैचकर श्रीकृष्णके मारे ॥ ४ ॥ भगदत्तके छोड़े हुए
अग्निके स्पर्शकी समान वे बाण श्रीकृष्णके शरीरको फोड़कर
सराटेके साथ पृथिवीमें घुस गए ॥ ५ ॥ उस समय अर्जुनने
उसके धनुषको काटडाला और रत्नकोंको मारडाला तथा खेल
खिलाता हुआ सा भगदत्तके साथ लड़ने लगा ॥ ६ ॥ भगदत्तने
सूर्यकी-^{दृष्ट} की समान तीक्ष्ण चौदह तोमर अर्जुनके ऊपर
फेंके, परन्तु अर्जुनने उनमेंसे हरएकके दोर टुकड़े करदिये ॥ ७ ॥
तदनन्तर अर्जुनने बाणोंकी वर्षासे हाथीके कवचको बीचदिया,
तब वह कवच टूटकर भूमिमें गिरपड़ा ॥ ८ ॥ टूटेहुए कवच
वाला वह हाथी बाणोंसे बिंधकर, जलकी धाराओंके पड़नेसे
गीले हुए, बिना मेघके पर्वतकी समान शोभा पानेलगा ॥ ९ ॥
तदनन्तर भगदत्तने सोनेके दण्डेवाली लोहेकी बनीहुई शक्तिही
वासुदेवके ऊपर फेंकी, तब अर्जुनने बीचमेंही उसके दो टुकड़े
करदिये ॥ १० ॥ फिर अर्जुनने बाणोंसे भगदत्तके छत्र और

अर्जुनशरैः सुपुंखैः कङ्कपत्रिभिः । भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य
जनाधिपः ॥ १२ ॥ व्यसृजत्तोमरान्मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च ।
तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्त्तितम् ॥ १३ ॥ परिवृत्तं किरीटं
तद्यमयन्नेव पाण्डवः । सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत् १४
एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पाण्डवम् ॥ अभ्यवर्षद्गोविदं धनुरा-
दाय भास्वरं ॥ १५ ॥ तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा तूणीरान्सन्निकृत्य
च । त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ १६ ॥ विद्धस्ततो-
ऽतिव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन् । अभिमन्याकुशं क्रुद्धो व्य-
सृजत्पाण्डवोरसि ॥ १७ ॥ विसृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वधाति वै ।
उरसा प्रतिजग्राह पार्थ संच्छाद्यकेशवः ॥ १८ ॥ वैजयंत्यभवन्माला

ध्वजाको काट उसको विस्फित कर शीघ्रतासे दश बाणमारे ॥ ११ ॥
कंकपत्र और सुन्दर पूँछवाले अर्जुनके बाणोंसे अश्वत्थ विंधकर
राजा भगदत्त क्रोधमें भरगया ॥ १२ ॥ उसने अर्जुनके तोमर
मारे और हँसा, इस समय तोमरोंकी गड़बड़ीमें अर्जुनका मुकुट
खिसक गया ॥ १३ ॥ अर्जुननेभी उसके मुकुटको खिसकादिया
और उससे कहा, कि—अब तू पवित्रलोकमें जानेके लिये तयार
होजा ॥ १४ ॥ यह सुनकर भगदत्त क्रोधमें भरगया और उसने
चमकीले धनुषको ले श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके ऊपर ^{विष्णवास्त्र} अश्वत्थावर्षा
करना आरम्भ करदी ॥ १५ ॥ अर्जुनने शीघ्रताके साथ उसके
धनुषको काटहाला और भार्योंको गिरादिया तथा वहचार बाण
मारकर उसके सब मर्मस्थानोंको बीधदिया ॥ १६ ॥ विंधनेके
कारण अतीव पीड़ा पा क्रोधमें भरे भगदत्तने वैष्णवास्त्र छोड़ने
के लिये अंकुशको मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके अर्जुनकी छाती
की ओरको फेंका ॥ १७ ॥ भगदत्तके फेंकेहुए उस सर्वनाशी
अस्त्रको श्रीकृष्णने, अर्जुनको ढककर, अपनी छातीपर ले
लिया ॥ १८ ॥ वह अस्त्र श्रीकृष्णके हृदय पर कमलके कोशसे

तदस्त्रं केशवोरसि । पद्मकोशविचित्राढ्या सर्वत्र कुसुमोत्कटा ॥ १६ ॥
 ज्वलनार्केन्दुवर्णाभा पादकोज्ज्वलपल्लवा । तथा पद्मपलाशिन्या
 वातकम्पितपत्रया ॥ २० ॥ शुशुभेभ्यधिकं शौरिरतसीपुष्पसन्निभः ।
 ततोर्जुनः क्लृप्तमनाः केशवं प्रत्यभाषत ॥ २१ ॥ अयुध्यमानस्तुर-
 गान्संयतास्मीति चानघ । इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न
 रक्षसि ॥ २२ ॥ यद्यहं व्यसनी वा स्यामशक्तो वा निवारणे ।
 तत्तत्त्वयैवं कार्यं स्यान्न तत्कार्यं मयि स्थिते ॥ २३ ॥ सवाणः
 सधुनश्चाहं समुरासुरमानुषान् । शक्तो लोकानिमान् जेतुं तच्चापि
 विदितं तव ॥ २४ ॥ ततोऽर्जुनं वासुदेवः प्रत्युवाचार्थवद्ब्रुवः । शृणु गुह्य-
 मिदं पार्थ पुरा वृत्तं यथानघ ॥ २५ ॥ चतुर्मुर्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमु-

विचित्र दीखतीहुई सुगन्धित पुष्पोंसे महकतीहुई, अग्नि, सूर्य
 तथा चन्द्रमाकी समान कान्तिवाली अग्निके समान लालवर्णके
 पत्तोंसे शोभित वैजयन्ती मालाकी समान शोभा देने लगा और
 अलसीके पुष्पकी समान श्यामवर्णवाले श्रीकृष्ण भी, कमलके
 पत्तोंवाली और पवनसे जिसके पत्ते हिलरहे थे ऐसी मालासे
 अत्यंत दिपरहे थे परंतु इससे अर्जुनके चित्तको बड़ा क्रेश पहुँचा,
 उसने श्रीकृष्णसे कहा, कि—॥ १६-२१ ॥ हे निर्दोष कृष्ण !
 हे कमलपुत्र ! आपने प्रतिज्ञा की थी, कि—मैं युद्ध नहीं करूँगा
 किन्तु आपके घोड़ोंको हाँकूँगा फिर आप अपनी प्रतिज्ञाको पालते
 क्यों नहीं ? ॥ २२ ॥ यदि मैं आपत्तिमें पड़जाऊँ अथवा शत्रुको
 हरानेमें असमर्थ होजाऊँ, तब आपको ऐसा करना चाहिये था,
 परन्तु जब कि—मैं अच्छी दशामें हूँ तब आपको ऐसा करना
 उचित नहीं था ॥ २३ ॥ यह भी आप जानते हैं, कि—मैं धनुष
 और बाणको लेकर देवता और असुरों सहित इन लोकोंको
 जीत सकता हूँ ॥ २४ ॥ यह सुनकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे अर्थभरा
 यह वचन कहा, कि—हे अनघ अर्जुन ! मैं तुम्हें अति प्राचीनकाल

मतः । आत्मानं प्रविभज्येह लो ज्ञानां हितमादधे ॥ २६ ॥ एका मूर्तिस्त-
पश्र्यां कुरुते मे भुवि स्थिता । अपरा पश्यति जगत् कुर्वाणं साध्व-
साधुनी ॥ २७ ॥ अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता । शोते
चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकीं ॥ २८ ॥ यासौ वर्षसहस्राति मूर्ति-
रुत्तिष्ठते यम । वराहोभ्यो वराञ्छुष्टास्तस्मिन् कोले ददाति सा २९
तन्तु कालमनुमासं विदित्वा पृथिवी तदा । अयाचत वरं यन्मां
नरकार्थाय तच्छृणु ॥ ३० ॥ देवानां दानवानां च अवध्य-
स्तनयोस्तु मे । उपेतो वैष्णवास्त्रेण तन्मे त्वं दातुमर्हसि ॥ ३१ ॥
एवं वरमहं श्रुत्वा जगत्यास्तनये तदा । अमोघमस्त्रे प्रायच्छं वैष्णवं
परमं पुरा ॥ ३२ ॥ अयोचं चैतदस्त्रं वै क्षमोघं भवतु तमे ।

की एक गुप्त-कथा सुनाता हूँ तू उसको सुन ॥ २५ ॥ मैं चतुर्भुजि
हूँ, सर्वदा लोकोंकी रक्षामें तत्पर रहता हूँ और अपने स्वरूपका
विभाग करके उन मूर्तियोंसे संसारका हित करता हूँ ॥ २६ ॥
मेरी एक मूर्ति मृत्युलोकमें रहकर तप क्रिया करती है, दूसरी मूर्ति
मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मोंको देखती रहती है ॥ २७ ॥ तीसरी
मूर्ति मनुष्यलोकमें मनुष्योंमें रहकर नानाप्रकारके कर्म करती
है, चौथी मूर्ति सहस्र वर्षकी निद्रा धारण करके शयन करती
है ॥ २८ ॥ जो मेरी मूर्ति सहस्र वर्षके बाद उठती है उस समय
वह वर पाने योग्य प्राणियोंको श्रेष्ठ वर देती है ॥ २९ ॥ उस
समय जाग्रत होनेके समयको जानकर पृथिवीने नरकासुरके लिये
जो वर मांगा था उसको सुन ॥ ३० ॥ पृथिवीने वर मांगा कि
मेरा पुत्र (नरकासुर) देवता तथा असुरोंसे अवध्य हो तथा
उसके पास वैष्णवास्त्र रहे यह वर आपको मुझसे देना चाहिये ॥ ३१ ॥
पृथ्वीकी इस प्रार्थनाको सुनकर मैंने पहिले पृथ्वीके पुत्रको अमोघ
वैष्णवास्त्र दिया था ॥ ३२ ॥ और उससे कहा था कि—“हे पृथ्वी!
यह अस्त्र नरकासुरकी रक्षाके लिये समर्थ हो । अब कोई भी

नरकस्याभिरक्षार्थं नैनं कश्चिदधिष्यति ॥ ३३ ॥ अनेनास्त्रेण ते
 गुप्तः सुतः परबलार्दनः । भविष्यति दुराधर्षः सर्वलोकेषु सर्वदा ३४
 तथेत्युक्त्वा गता देवी कृतकामा मनस्विनी । स चाध्यासीद् दुरा-
 धर्षो नरकः शत्रुतापनः ॥ ३५ ॥ तस्मात्प्राग्ज्योतिषं प्राप्तं तदस्त्रं
 पार्थ मामकम् । नास्यावध्येस्ति लोकेषु सैद्रुद्रेषु मारिष ॥ ३६ ॥
 तन्मया त्वत्कृते चैतदन्यथा व्यपनामि तम् । विभुक्तं परमास्त्रेण
 जहि पार्थ महासुरम् ॥ ३७ ॥ वैरिणं जहि दुर्धर्षं भगदत्तं सुरद्विषम् ।
 यथाहं जघ्निष्यान्पूर्वं हितार्थं नरकं तवा ॥ ३८ ॥ एवमुक्तस्तदा पार्थः
 केशवेन महात्मना । भगदत्तं शितैर्वाणैः सहसा समवाकिरत् ३९
 ततः पार्थो महाबाहुरसंभ्रातो महापनाः । कुम्भयोरन्तरे नागं ना-
 राचेन समर्पयत् ॥ ४० ॥ स समासाद्य तं नागं बाणो वज्रइवा-

जसको नहीं मारेगा ॥ ३३ ॥ इस अस्त्रसे तेरे पुत्रकी रक्षा होगी
 तेरा पुत्र शत्रुओंकी सेनाका संहार करेगा और लोकमें सर्वदा
 जसकी बड़े अच्छे प्रकारसे पूजा होगी ॥ ३४ पृथ्वी 'ठीक है'
 यह कह कृतकाम होकर चली गई और नरकासुर भी दुराधर्ष
 होकर शत्रुओंको तपाने लगा ॥ ३५ ॥ वह अस्त्र नरकासुरसे भग-
 दत्तको मिल गया हे तात ! इस अस्त्रसे शिव और इन्द्रलोकके
 निवासी भी मारे जा सकते हैं ॥ ३६ ॥ हे पार्थ ! तुझे वचानेके
 लिये मैंने इस अस्त्रको छाती पर भेला है और प्रतिज्ञा तोड़ी है
 इस महा-असुरके हाथसे अब वह अस्त्र निकल गया अतः अब
 तू इसको नष्ट कर ॥ ३७ ॥ तू इस दुराधर्ष देवद्वेषी भगदत्तको
 ऐसे मार दे जैसे मैंने नरकासुरको मारा था ॥ ३८ ॥ महात्मा
 श्रीकृष्णने अर्जुनसे यह बात कहो तब अर्जुनने एकसाथ तीक्ष्ण
 बाणोंसे भगदत्तको ढक दिया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उदार और
 शान्त मनवाले महाबाहु अर्जुनने हाथीके दोनों कुम्भस्थलोंके बीचमें
 बाण मारा ॥ ४० ॥ वह बाण जैसे पर्वतमें वज्र प्रवेश करता है

चलम् । अभ्यगात्सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ॥ ४१ ॥ स करी
भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः । न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव
योषिता ॥ ४२ ॥ स तु विष्टभ्य गात्राणि दंताभ्यामवनिं ययौ ।
नदन्नार्त्तस्वनं प्राणानुत्ससर्ज महाद्रिपः ॥ ४३ ॥ ततो गाण्डीव-
धन्वानमभ्यभापत केशवः । अयं महत्तरः पार्थ पलितेन समा-
वृतः ॥ ४४ ॥ वली संखन्ननयनः शूरः परमदुर्जयः । अक्षोर-
न्मीलनार्थाय वदुपटो ह्यसौ नृप ॥ ४५ ॥ देववाक्यात्प्रचिच्छेद
शरेण भृशमर्जुनः । छिन्नमात्रेशुके तस्मिन् रुदनेत्रो बभूव सः ४६
तमोमयं जगन्मेने भगदत्तः प्रतापवान् । ततश्चन्द्रार्धविवेन बाणेन
नतपर्वणा ॥ ४७ ॥ विभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः ।

अथवा जैसे सर्प बिलमें प्रवेश करता है तैसे पूंछसहित हाथीके
कुम्भस्थलोंमें घुसगया ॥ ४१ ॥ उस समय भगदत्तने हाथीको
बढानेका बारम्बार यत्न किया, परन्तु उसने जैसे दरिद्रकी स्त्री
अपने पनिका कहना नहीं मानती है तैसे ही भगदत्तके यत्न पर
कुछ ध्यान नहीं दिया ॥ ४२ ॥ किन्तु अपने दाँतोंको पृथ्वीमें
टेक उनके ऊपर अपने शरीरका बोझ ढालदिया और अन्तमें
उस महागजने दयाजनक स्वरसे गर्जना करके प्राणोंको छोड़
दिया ॥ ४३ ॥ उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि—हे राजन्
इसकी अवस्था बहुत ही अधिक है इसके शिरके बाल पकगये
हैं ॥ ४४ ॥ इसके नेत्र लटकते हुए पलकोंसे ढकगये हैं, इसने ।
नेत्रोंके खुले रहनेके लिये मस्तक पर पलकोंको पट्टीसे बाँधरक्खा
है, यह वैसे वीर और परम दुर्जय है अतः तू पहले इसके मस्तक
की पट्टीको नष्ट कर ॥ ४४-४५ ॥ अर्जुनने श्रीकृष्णके कहनेसे
बाण मारकर माथेकी पट्टीको काटदिया, उस पट्टीके कटते ही
उस राजाके नेत्र एकसाथ वन्द होगए ॥ ४६ ॥ उस समय प्रतापी
भगदत्त सब जगत्को अन्धकारमय मानने लगा, फिर अर्जुनने

स भिन्नहृदयो राजा भगदत्तः किरीटिना ॥४८॥ शरासनं शरां-
श्चैव गतासुः प्रमुपोच ह । शिरसस्तस्य विभ्रष्टं पपात च वरां-
शुकम् । नालताडनविभ्रष्टं पलाशं नलिनादिव ॥ ४९ ॥ स हेम-
माली तपनीयभाण्डात् पपात नागाद् गिरिसन्निकाशात् । सु-
पुष्पितो मारुतवेगरूपो महीधराग्रादिव कर्णिकारः ॥५०॥ निहत्य
तं नरपतिमिन्द्रविक्रमं सखायमिन्द्रस्य तदैन्द्रिराहवे । ततो परांस्तव
जयकाक्षिणो नरान्वभञ्ज वायुर्वलवान्द्रुमानिव ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि

भगदत्तवधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सञ्जय उवाच । प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितीजसम् ।
हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रक्षिणमवर्त्तत ॥ १ ॥ ततो गान्धार-

अर्धचन्द्राकर और नमीहुई गाँठवाला बाण मारकर राजा भग-
दत्तके हृदयको फोड़दिया भगदत्त मर गया उसने हाथमेंसे धनुष
वाणको छोड़दिया और जैसे कमलकी नालको काट देनेसे कमल
नीचे गिर पड़ता है तैसे ही भगदत्तके शिरपरसे उसकी पगड़ी
पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥ ४७-४९ ॥ और जैसे पुष्पोंसे भराहुआ
कनेरका वृक्ष पवनके वेगसे झटका खाकर पर्वतके शिखर परसे
नीचे गिर पड़ता है तैसे ही सुवर्णकी मालावाला वह राजा
सुवर्णके आभूषणोंसे सजाए हुए पर्वतकी समान ऊँचे हाथीके
ऊपरसे पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ५० ॥ इसप्रकार युद्धमें इन्द्रपुत्र
अर्जुनने, इन्द्रकी समान पराक्रमी, इन्द्रके मित्र भगदत्तको मार डाला
तथा बलवान् वायु जैसे वृत्तोंका नाश करता है तैसे ही अर्जुन
ने तुम्हारे पक्षके दूसरे विजय चाहनेवाले शत्रुओंका नाश कर
डाला ॥ ५१ ॥ अन्तीमर्वा अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन्- ! इन्द्रके प्रिय मित्र अतुलित
बलशाली प्राग्ज्योतिष देशके राजा भगदत्तका नाश करके अर्जुन

राजस्य सुतौ परपुरञ्जयौ ॥ अर्देतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृप-
काचलौ ॥ २ ॥ तौ समेत्यार्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ ।
अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्भृशम् ॥ ३ ॥ वृपकस्य हयान्
सृतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम् । तिलशो व्यधप्रत् पार्थः सौवल्लस्य शितैः
शरैः ॥ ४ ॥ ततोज्जुनः शरव्रातैर्नानाभरणैरपि । गांधारानाकुलां-
श्चक्रौ सौवल्लप्रमुखान् पुनः ॥ ५ ॥ ततः पञ्चशतान् वीरान् गांधा-
रानुद्यतायुधान् । प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो बाणैर्धनञ्जयः ॥ ६ ॥
इताश्वात्तु रथात्तूर्णमवतीर्य महाभुजः । आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च
धनुराददे ॥ ७ ॥ तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृपकाचलौ । शर-
वर्षेण वीभत्सुमविध्येतां मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥ श्यालौ तव महात्मानौ

दक्षिण दिशाकी ओरको घूमा ॥१॥ उधर गान्धारराजके शत्रु-
तापी वृपभ और अचल नामक पुत्र रणभूमिये आए और वे दोनों
भाई अर्जुनको बाणोंसे बंधने लगे ॥ २ ॥ उन दोनों धनुर्धर
वीरोंने इकट्ठे होकर अर्जुनको आगे पीछेसे घेरलिया और महा-
वेगवाले तथा तेज किये हुए बाण मारकर उसको बहुत ही पीड़ित
करनेलगे ॥३॥ अर्जुनने भी तेज कियेहुए बाण मारकर वृपकके
घोड़े सारथि, धनुष, छत्र, रथ और ध्वजाके तिलोंकी समान
टुकड़े करडाले ४ अर्जुनने तदनन्तर बहुतसे बाण तथा नानाप्रकारके
शस्त्र मारकर सुवल्लके पुत्र आदि गान्धार देशके राजाओंको
बहुतही घबड़ा दिया ५ तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए अर्जुनने बाणोंके
महारसे शस्त्र उठाकर लड़नेको सामने आयेहुए पाँच सौ वीरोंको
यमलोकमें भेजदिया ॥ ६ ॥ भरेहुए घोड़ोंवाले रथमेंसे कूदकर
महानाहु वृपक अपने भाईके रथ पर जा बैठा और उसने दूसरा
धनुष उठालिया ॥ ७ ॥ एक ही रथमें बैठेहुए उन दोनों भाई
वृपक और अचलने बाणोंके द्वारा अर्जुनको बारम्बार बंधा ८ ।
तुम्हारे साले महात्मा वृपक और अचल नामक राजाओंने, अर्जुन

राजानौ वृषकाचलौ । भृशं विजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रवलावित्र ६
 लब्धलक्षौ तु गान्धाराव्रहतां पाण्डवं पुनः । निदाघवार्पिकौ मासौ
 लोकं घर्माशुभिर्यथा ॥ १० ॥ तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृष-
 काचलौ । संश्लिष्टाङ्गौ स्थितौ राजन् जघानैकेषुणार्जुनः ॥ ११ ॥
 तौ रथात् सिंहसंकाशौ रंहिताक्षौ महाभुजौ । राजन् संपेततुर्वीरौ
 सोदर्यावेकलक्षणी ॥ १२ ॥ तयोर्भूमिं गतौ देहौ रथाद्
 बन्धुजनप्रियौ । यशो दश दिशः पुण्यं गमयित्वा व्यवस्थितौ
 ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ । भृशं
 मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तत्र विशाम्पते ॥ १४ ॥ निहतौ भ्रातरौ
 दृष्ट्वा मायाशतविशारदः । कृष्णौ सम्मोहयन्मायां विदधे शकुनि-
 स्ततः ॥ १५ ॥ लगुडायोगुडाश्मानः शतघ्न्यश्च सशक्तयः । गदा-

को ऐसा पीड़ित किया, कि—जैसे बल और वृत्र नामक असुरोंने
 इन्द्रको पीड़ित किया था ॥ ६ ॥ जैसे चैत्र तथा वैशाख मास
 लोकोंको प्रचण्ड किरणोंसे जलाते हैं, तैसे ही समयको ताकनेवाले
 गान्धारदेशके राजे भी पाण्डवोंको बाणोंके प्रहारसे दग्ध करने
 लगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! मनुष्योंमें व्याघ्रसमान वृषक और
 अत्रल एक दूसरेसे सटकर रथमें बैठे हुए थे, अर्जुनने उन दोनोंको
 एक ही बाणसे मार डाला ॥ ११ ॥ हे राजन् ! वे दोनों सिंहकी
 समान बली, लाल रंग के नेत्रोंवाले, एक ही चिन्हवाले, महाभुज, सगे
 भाई रथमेंसे नीचे गिर पड़े ॥ १२ ॥ बन्धुबान्धवोंके प्रिय वे दोनों
 भाई दश दिशाओंमें अपने पवित्र यशको फैलाकर रणभूमिमें
 सो गए ॥ १३ ॥ हे राजन् ! युद्धमें न भागनेवाले, अपने मामाओंको
 मरा हुआ देख तुम्हारे पुत्र जोरसे रोने लगे ॥ १४ ॥ सैकड़ों माया
 करनेमें चतुर शकुनिने अपने भाइयोंको मरा हुआ देखकर श्रीकृष्ण
 और अर्जुनको मोहमें डालनेके लिये मायाकी रचना आरम्भ
 कर दी ॥ १५ ॥ तुरन्त ही दिशाओं और उपदिशाओंमेंसे लाठियें,

परिघनिस्त्रिशशूलमुद्गरपट्टिशाः ॥१६॥ सकम्पनद्विनखरा मुस-
लानि परश्वधाः । क्षुराः क्षुप्रनालीका वत्सदन्तास्थिसन्धयः १७
चक्राणि विशिखाः प्रासा विविधान्यायुधानि च । प्रपेतुः शतशो
दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यश्चार्जुनं प्रति ॥ १८ ॥ खरोष्ट्रमहिषाः सिंहाः
व्याघ्राः सुपरचित्रकाः । ऋक्षा शालावृका गृध्राः कपयश्च सरी-
सृपाः ॥ १९ ॥ विविधानि च रक्षांसि क्षुधितान्यर्जुनं प्रति ।
संकुट्टान्यभ्यधावन्त विनिधानि त्रयांसि च ॥ २० ॥ ततो दिक्पा-
लविच्छूरः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । विसृजन्निपुजालानि सहसा
तान्यताडयत् ॥ २१ ॥ ते हन्यमानाः शूरेण पवराः सायकैर्ददौः ।
विरुवन्तो महारावान् धिनेशुः सर्वतो हताः ॥ २२ ॥ ततस्तमः
प्रादुरभूदर्जुनस्य रथं प्रति । तस्माच्च तमसो वाचः क्रूराः पार्थ-
मभर्त्सयन् ॥ २३ ॥ तत्तमो भैरवं घोरं भयकर्तृ महाहवे । उत्त-

लोहेके गोले, पत्थर, तोप, शक्ति, गदा, परिघ, तलवार, शूल,
मुगदर पट्टिश, डण्डे, ऋष्टि, नखर, मूसल, छुरे, फरसे, क्षुरप्र,
बग्नूकोंमें भरनेकी गोलियों, बखड़ेके दातोंकी समान भाले, हड्डियोंके
चक्र, बाण, प्रास तथा नानाप्रकारके सहस्रों आयुध अर्जुनके
ऊपर बरसनेलगे ॥ १६-१७ ॥ और भूँखसे घबड़ाए हुए, कूट,
भैसे, शेर, बघरे, गवय, गुलदार, रीछ, कुत्ते, गिद्ध, चन्दर,
साँप तथा नाना प्रकारके पक्षी क्रोधमें भरकर अर्जुनकी ओरको
भपटनेलगे, दिव्यअस्त्रोंके प्रयोगोंको जाननेवाले कुन्तीपुत्र वीर
अर्जुनने उनके ऊपर एकाएकी बाणोंकी वृष्टि करके उनके मारना
आरम्भ करदिया ॥ १८-२१ ॥ अर्जुनकी दृढ़ तथा बड़े बाणोंकी
मारसे सब प्राणी, वही जोरसे रोरे कर चारों ओरको भागने
लगे ॥ २२ ॥ इतनेमें ही अर्जुनके रथमें अंधेरा छागया, उस
अंधेरेमेंसे अर्जुनका तिरस्कार करतीहुई क्रूर बाणियों सुनाई आने
लगीं ॥ २३ ॥ परन्तु अर्जुनने इस महासंग्राममें ज्योतिष नामक

मास्त्रेण महता ज्योतिषेणार्जुनोऽवधी ॥२४॥ हते तस्मिन् जलौ-
घास्तु प्रादुरासन् भयानकाः । अम्भसस्तस्य नाशार्थमादित्यास्त्र-
मथार्जुनः ॥ २५ ॥ प्रायुक्ताभस्ततस्तेन प्रायशोस्त्रेण शोषितम् ।
एवं बहुविधा मायाः सौबलस्य कृताः कृताः ॥२६॥ जघानास्त्रवले-
नाशु प्रहसन्नर्जुनस्तदा । तदा हतासु मायासु त्रस्तोऽर्जुनशरा-
हतः ॥ २७ ॥ अपायाज्जवनैरश्वैः शकुनिः प्राकृतो यथा । ततोऽ-
र्जुनोऽस्त्रविच्छेद्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिषु ॥२८॥ अभ्यवर्षच्छरौघेण
कौरवाणामनीकिनीम् । सा हन्यमाना पार्थेन तव पुत्रस्य वाहिनी २९
द्वैधी भूता महाराज गंगेवासाद्य पर्वतम् । द्रोणमेवान्वपद्यन्त केचि-
त्तत्र नरर्षभाः ॥ ३० ॥ केचिद् दुर्योधनं राजन्नर्धमाना किरी-
टिना । नापश्यामस्ततस्त्वेनं सैन्यं वै रजसावृते ॥ ३१ ॥ गांडीव-

बड़ा भारी अस्त्र छोड़कर उस भयंकर और घोर अन्धकारका नाश
कर दिया ॥ २४ ॥ जब अंधेरा दूर होगया तो जलकी भयानक
धारे गिरने लगीं अर्जुनने जलके ओघका नाश करनेके लिये आ-
दित्यास्त्र छोड़ा, उस अस्त्रसे सब जलको चूँस लिया, इस प्रकार
शकुनिने अनेकों मायाएं रचीं और अर्जुनने अपने अस्त्रबलसे
उनका नाश कर दिया ॥ २५-२६ ॥ अर्जुनने अस्त्रोंके बलसे
शत्रुकी मायाका नाश किया और शकुनिको भी बंध डाला, तब
शकुनिके चित्तमें भय उत्पन्न होगया और वह साधारण मनुष्यकी
समान, वेगवाले घोड़ोंको दौड़ाकर रणभूमिमेंसे भाग गया तद-
नन्तर शस्त्रवेत्ता अर्जुनने शत्रुओंको फुरती दिखानेके लिये
कौरवसेना पर असंख्यो वाणोंकी वर्षा कर डाली, हे महाराज !
अर्जुनके वाणोंसे घायल हुई तुम्हारी सेना, जैसे गंगा पर्वतको
पाकर दो भागोंमें विभक्त होजाती है तैसे ही दो भागोंमें विभक्त
होगई, अर्जुनसे पीड़ा पाकर कोई वीर द्रोणके पास जा पहुँचे
और कोई दुर्योधनके पास जा दुपके, इससमय सेनामें इतनी धूलि

स्य च मिर्घोषः श्रुतो दक्षिणतो मया । शंखदुन्दुभिनिर्घोषं वादि-
 प्राणां च निःस्वनम् ॥ ३२ ॥ गाण्डीवस्य तु निर्घोषो व्यतिक्रम्या-
 स्पृशदिवम् । ततः पुनर्दक्षिणतः सङ्ग्रामश्चित्रयोधिनाम् ॥ ३३ ॥
 सुयुद्धं चार्जुनस्यासीदहन्तु द्रोणमन्वियाम् । यौधिष्ठिराभ्यनीकानि
 प्रहरन्ति ततस्ततः ॥ ३४ ॥ नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव
 भारत । अर्जुनो ध्यधमत् काले दिवीवाभ्राणि मारुतः ॥ ३५ ॥
 तं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् । महेष्वासा नरव्याघ्रा
 नोग्रं केचिदवारयन् ॥ ३६ ॥ ते हन्यमानाः पार्थेन त्वदीया व्यथिता
 भृशम् । स्वानेव बहवो जघ्नुर्विद्रवन्तस्ततस्ततः ॥ ३७ ॥ तेर्जुनेन
 शरा मुक्ताः कङ्कपत्रास्तनुच्छिदः । शलभा इव सम्पेतुः संवृण्वाना-

उद्दी, कि-अर्जुनका दीखना बन्द होगया ॥ ३७-३१ ॥ परन्तु
 कुछ ही देरमें दक्षिण दिशाकी ओर गाण्डीव, शंख, दंद्दुभि और
 बाजोंका शब्द सुनाई दिया, अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी ध्वनि सब
 शब्दोंकी दवा आकाशमें जाकर गूँजने लगी तदनन्तर दक्षिण
 दिशामें युद्धकलामें कुशल योधाओंका अर्जुनके साथ महा-
 युद्ध होनेलगा इससमयमें द्रोणाचार्यके पीछे चलागया था तहाँ
 मैंने देखा, कि-युधिष्ठिरकी सेनाके योधा शत्रुओंको चारों ओरसे
 मार रहे थे ॥ ३२-३४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जैसे समय
 पाकर वायु मेघोंको चित्तर वित्तर करदेता है, तैसे ही अर्जुनने
 अवसर पाकर तुम्हारी सेनाओंको छिन्न भिन्न करडाला ॥ ३५ ॥
 वह इन्द्रकी समान बड़ीभारी बाणवर्षा करता हुआ आगेको
 बढ़ा, परन्तु बड़े २ धनुषधारी नरव्याघ्रोंमेंसे उसको कोई नहीं
 रोक सका ॥ ३६ ॥ अर्जुनकी मारसे अतीव घबड़ायेहुए तुम्हारे
 सैनिक इधर उधर दौड़कर अपने ही सैनिकोंको मारनेलगे ॥ ३७ ॥
 इस अवसरमें अर्जुनने कंकपत्रकी पूंछवाले बाण मारने आरम्भ
 किये, वे बाण टीढियोंकी समान दशों दिशाओंमें फैलकर शत्रु-

दिशो दश ॥ ३८ ॥ तुरङ्गं रथिनं नागं पदातिमपि मारिष ।
 विनिर्मिद्य क्षितिं जग्मुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ३९ ॥ न च द्वितीयं
 व्यसृजन् कुञ्जराश्वनरेषु सः । पृथगेकशरारुग्णा निपेतुस्ते गता-
 सवः ॥ ४० ॥ हतैर्मनुष्यैर्द्विरदैश्व सर्वतः शराभिसृष्टैश्च हयैर्नि-
 पातितैः । तदाश्वगोमायुषलाभिनादितं विचित्रमायोधशिरो बभूव
 तत् ॥ ४१ ॥ पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत् तथैव पुत्रः पितरं
 शरातुरः । स्वरक्षणे कृतमृत्यस्तदा जनास्त्यजन्ति बाहानपि
 पार्थपीडिताः ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशस्रवधपर्वणि

शकुनिपलायने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तेष्वनीकेषु भग्नेषु पाण्डुपुत्रेण सञ्जय ।

आँके शरीरोंको छेदते हुए उनके ऊपर पटापट पड़ने लगे ॥ ३८ ॥
 हे राजन् ! वे बाण घोड़े, रथी, हाथी और पैदलोंको भी भेद
 कर पृथ्वीमें इसप्रकार घुस गए जैसे बर्षामें सर्प घुसजाते हैं ॥ ३९ ॥
 अर्जुनने हाथी, घोड़े और मनुष्योंके ऊपर एकको छोड़ दूसरा
 बाण तक नहीं छोड़ा वे एक ही बाणसे छिन्न भिन्न होकर प्राण-
 रहित हो भूमिमें गिरपड़े ॥ ४० ॥ बाणोंके प्रहारसे मरेहुए मनुष्य
 हाथी, और घोड़ोंसे तथा उनको खानेके लिये आए हुए गीदड़ों
 और कुत्तोंकी टोलियोंके शब्दसे वह युद्धभूमिका मुहाना बड़ा
 विचित्र दीखता था ॥ ४१ ॥ उस समय पिता पुत्र का ध्यान नहीं
 रखता था, मित्र मित्रको छोड़ रहा था तैसे ही-बाणकी पीड़ासे
 आतुर होकर पुत्र पिताको छोड़ रहा था अर्थात् वे सब अर्जुनके
 बाणोंसे पीडित होकर अपनी-२ रक्षा करनेमें ही व्यस्त थे उन्होंने
 अपनी सवारियों तक का ध्यान छोड़ दिया ॥ ४२ ॥ तीसवाँ
 अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

धृतराष्ट्रने बूझा कि-हे सञ्जय ! जब पाण्डुपुत्र अर्जुनने

चलितानां द्रुतानां च कथमासीन्मनो हि वः ॥ १ ॥ अनीकानां
प्रमथानामवस्थानमपश्यताम् । दुष्करं प्रतिसन्धानं तन्ममाचक्ष्व
सञ्जय ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । तथापि तव पुत्रस्य प्रियकामा
विशाम्पते । यशःप्रवीरा लोकेषु रत्नन्तो द्रोणमन्वयुः ॥ ३ ॥
समुद्यतेषु चास्त्रेषु संपाप्ते च युधिष्ठिरे । अकुर्वन्नार्यकर्पाणि भैरवे
सत्यपीतवत् ॥ ४ ॥ अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्ममितांजसः ।
सात्यकेश्वैव वीरस्य धृष्टद्युम्नस्य वा विभो ॥ ५ ॥ द्रोणं द्रोण-
मिति क्रूराः पञ्चाला समचोदयन् । मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून्
सर्वानचोदयन् ॥ ६ ॥ द्रोणं द्रोणमिति लोके मा द्रोणमिति

तुम्हारी सेनामें भगगी डालदी उस समय तुम्हारे चित्तमें क्या विचार
उठा था ? और तुम्हारी सेना जब बिन्न भिन्न होकर भागने
लगी तथा उसको कहीं भी आश्रय नहीं मिला, तब उनको बड़ी
कठिनातासे किसप्रकार रोकागया यह मुझे सुना ॥ १-२ ॥
सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! यद्यपि तुम्हारी सेनामें
भगगी पड़ गई तथापि तुम्हारे पुत्रका भला चाहनेवाले और संसार
में अपने यशकी रक्षा करनेवाले शूर अपने यशको फैलानेके
लिये द्रोणके पीछे २ गये और सब योधा अपने हथियारोंको
ऊँचा करके, भयङ्कर रणमें, निर्भय हो आर्य पुरुषोंके योग्य परा-
क्रम करने लगे, राजा युधिष्ठिर, रणभूमिमें आए कि—महाबली
भीमसेन, वीर सात्यकि और धृष्टद्युम्नकी भूतका लाभ पाकर
कौरव योधा उनके ऊपर टूटपड़े ॥ ३-५ ॥ तुरन्त ही रणमें क्रूर
स्वभाववाले पञ्चाल 'द्रोणको मारो २' इसप्रकार कहकर अपने
योधाओंको उकसाने लगे और तुम्हारे पुत्रोंने अपने योधाओंसे
कहा कि—द्रोणकी रक्षा करो ॥ ६ ॥ एक 'द्रोणको मारो, द्रोण
को मारो' इसप्रकार कह रहे थे तो दूसरे यह कह रहे थे कि—
'द्रोणको बचाओ, द्रोणको बचाओ' इसप्रकार कौरव पाण्डवोंमें

चापरे । कुरूणां पाण्डूनां च द्रोणयूतमवर्त्तत ॥ ७ ॥ यं यं
 प्रमथते द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजम् । तत्र तत्र तु पाञ्चाल्यो
 धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्त्तत ॥ ८ ॥ तथा भागवित्पर्यासे संग्रामे भैरवे
 सति । वीराः समासदन वीरान् कुर्वन्तो भैरवं रवम् ॥ ९ ॥ अक-
 म्पनीयाः शत्रूणां बभूवुस्तत्र पांडवाः । अकम्पयन्त्यनीकानि स्म-
 रन्तः क्लेशमात्मनः ॥ १० ॥ तेऽमर्षवशसम्प्राप्ता हीमन्तः सत्त्व-
 चोदिताः । त्यक्त्वा प्राणान् न्यवर्त्तन्त द्यन्तो द्रोणं महाहवे ११
 अयसामिव सम्पातः शिलानामिव चाभवत् । दीव्यतां तुमुले युद्धे
 प्राणैरमिततेजसाम् ॥ १२ ॥ न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथा
 विषम् । दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा ॥ १३ ॥ प्राकम्पते च
 पृथिवी तस्मिन् वीरावसादने । निवर्त्तता बलौघेन प्रहता भार-

द्रोणयूत (द्रोणके लिये युद्ध) चल रहा था ॥ ७ ॥ युद्धमें द्रोणा-
 चार्य जहाँ पञ्चाल महारथियोंके ऊपर दूटते थे तहाँ धृष्टद्युम्न
 उनके सामने जाकर दटजाता था ॥ ८ ॥ इसप्रकार महाभयङ्कर
 युद्ध चल रहा था उस समय शूर भयङ्कर हुंकारें मारते हुए अपनी
 अपनी पंक्तियोंमेंसे निकल कर शरोंसे लड़ रहे थे ॥ ९ ॥ उस
 समय पाण्डव शत्रुओंसे कम्पायमान न होकर अपने क्लेशोंको
 बारम्बार स्मरण करते हुए सेनाओंको कँपाने लगे ॥ १० ॥
 पाण्डव लज्जाशील थे, तथापि अपने ऊपर वीते हुए दुःखोंको
 याद कर क्रोधमें भरजानेके कारण अपने प्राणोंको भी परवाह
 न करते हुए महासंग्राममें द्रोणको मारनेकी इच्छासे युद्ध करनेलगे ११
 प्राणोंका दौंव लगा कर युद्ध करनेवाले उन योधाओंकी भिद्यन्त
 का शब्द पत्थर और लोहेके टकरानेकी समान हो रहा था १२
 बड़े २ वृद्धोंको भी इस बातकी याद नहीं आती कि-पहिले कभी
 हमने ऐसा संग्राम सुना या देखा हो ॥ १३ ॥ उस वीरको
 समाप्त करनेवाले युद्धमें योधाओंके इधर उधर घूमनेके बडेभारी

पीडिता ॥ १४ ॥ घूर्णतोऽपि बलीयस्य दिवस्तन्ध्वेव निःस्वनः ।
 अजातशत्रोस्तत् सैन्यमाविशेश सुभैरवः ॥ १५ ॥ तमासाद्य तु
 पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः । द्रोणेन चरता संख्ये प्रभशानि
 शितैः शरैः ॥ १६ ॥ तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनाद्भुतकर्मणा । पर्य-
 वारयदायस्तो द्रोणं सेनापतिः स्वयम् ॥ १७ ॥ तदद्भुतमभूद्
 युद्धं द्रोणपाञ्चाल्ययोस्तदा । नैव तस्योपमा काचिदिति मे निश्चिता
 मतिः ॥ १८ ॥ ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुत्वाहिनीम् । शर-
 स्फुल्लिङ्गश्चापाच्चिर्दहनं कक्षमिवानलः ॥ १९ ॥ तं दहन्तमनी-
 कानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान् । पूर्वाभिभाषी मुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽ-
 भ्यमापत ॥ २० ॥ नील किम्बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शराच्चिषा ।
 भयैकेन हि युध्यस्व क्रुद्धः प्रहर चाशु माम् ॥ २१ ॥ तं पश्यन्नि-

भारसे पृथ्वी डगमगाने लगी ॥ १२ ॥ चारों ओर घूमती हुई सेना
 का भयंकर शब्द आकाशको छूकर युधिष्ठिरकी सेनामें जा गूँ जा ॥ १५ ॥
 द्रोणने युद्धमें घूमकर पाण्डवोंकी सेनाओंको तेज बाणोंसे छिन्न
 भिन्न कर डाला ॥ १६ ॥ अद्भुतपराक्रमी द्रोणके द्वारा इसप्रकार
 सेनाके नष्ट होने पर सेनापति धृष्टद्युम्न उनके सामने गया और
 उनको घेर लिया ॥ १७ ॥ पञ्चालदेशी धृष्टद्युम्न और द्रोणका
 वह युद्ध अद्भुत हुआ, मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि—उस युद्धकी
 कोई उपमा नहीं दी जा सकती ॥ १८ ॥ ज्वालारूपी धनुष और
 चिनगारीरूपी बाणोंजाला अग्नि जैसे फूँसको जला डालता है
 तैसे ही नील धनुष और बाणोंसे कौरवोंकी सेनाको भस्म करने
 लगा ॥ १९ ॥ नीलको इसप्रकार सेनाको भस्म करते हुए देख
 कर प्रतापी द्रोणपुत्रने मन्द २ मुसकराकर अपने आप ही पहिले
 योत्तनेका आरम्भ कर कोमल बाणोंमें नीलसे कहा कि—॥ २० ॥
 हे नील ! तू बाणोंसे बहुतसे योधाओंको मारे डालता है, इससे
 तुझे क्या मिलेगा ? यदि तुझे लड़ना हो तो अबले मेरे साथ

कराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम् । व्याकोशपद्माभिमुखो नीलो विव्याध
 सायकैः ॥ २२ ॥ तेनापि विदुः सहसा द्रौणिर्भन्तैः शितैस्त्रिभिः ।
 धनुर्ध्वजञ्च छत्रञ्च द्विपतः समकुन्तत ॥ २३ ॥ सोऽवप्लुत्य रथा-
 तस्मान्नीलश्चर्मवरासिभृत् । द्रौणायनेः शिरः कायाद्दुर्मुच्यत
 पतत्रिवत् ॥ २४ ॥ तस्योन्नतासं मुनसं शिरः कायात् सकुण्डलम् ।
 भन्तेनापाहरद द्रौणिः स्मयमान इवानघ ॥ २५ ॥ सम्पूर्णचन्द्रा-
 भमुखः पद्मपत्रनिभेक्षणः । पांशुरुत्पलपत्राभो निहतो न्यपतत्
 क्षितौ ॥ २६ ॥ ततः प्रविष्यथ सेना पाण्डवी भृशमाकुला ।
 आचार्यपुत्रेण हते नीजे ज्वलिततेजसि ॥ २७ ॥ अचिन्तयंश्च ते सर्वे
 पाण्डवानां महारथाः । कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति

लड़ और मेरे ऊपर क्रोधमें भरकर प्रहार कर ॥ २१ ॥ यह मुन
 खिलेहुए कमलकी शोभाकी समान मुखवाले नीलने, कमलकी
 समान गौरवर्णी और कमलकी समान नेत्रोंवाले अश्वत्थामाको
 बाणोंसे बीधदिया ॥ २२ ॥ द्रोणपुत्रने भी तुरन्त ही तीन बाण
 मारकर उसके धनुष, छत्र और ध्वजाको काढाला ॥ २३ ॥ तुरन्त
 ही नील ढाल तलवारको हाथमें लेकर पक्षी की समान रथमेंसे कूद
 पड़ा और यह चाहने लगा कि-किसी प्रकार अश्वत्थामाका शिर
 उतार लूँ २४ वे निर्दोष राजन् ! परंतु अश्वत्थामाने हँसते-२ उसके कंधे
 और ऊँची नाक वाले कुंडलसहित मस्तकको भालेसे काटदिया २५
 पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान मुखवाला, कमलनयन और उन्नत
 कमलपत्रके समान कान्तिवाला नील पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ २६ ॥
 प्रचण्ड तेजवाले नीलके द्रोणपुत्रके हाथसे मारेजाने पर पांडवों
 की सेनामें घबड़ाहट पड़ गई और वह खेद करने लगी ॥ २७ ॥ इस
 समय पांडवोंके सब महारथी चिन्तामें पड़ गए और विचारने लगे
 कि-अर्जुन इस समय दक्षिणमें बचे हुए संशप्तक और नारायण

मारिष ॥ २८ ॥ दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं वली । संशप्त-
कावशेषस्य नारायणवल्लस्य च ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
नीलवधे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

सञ्जय उवाच । प्रतिघातन्तु सैन्यस्य नामृष्यत वृकोदरः । सोऽ-
भ्याहनद् गुरुं पृथ्वा कर्णञ्च दशभिः शरैः ॥ १ ॥ तस्य द्रोणः शितै-
र्बाणैस्तीक्ष्णधारैरजिह्मगैः । जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्गर्माण्याशु जघान
ह ॥ २ ॥ आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः षड्विंशत्या समापयत् । कर्णो द्वादश-
भिर्बाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ ३ ॥ षडभिर्दुर्योधनो राजा तत एन-
मथाकिरन् । भीमसेनोऽपि तान् सर्वान् प्रत्यविध्यन्महाबलः ॥ ४ ॥
द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णञ्च दशभिः शरैः । दुर्योधनं द्वादशभिर्द्रोणि
चाष्टपिराशुगैः ५ आरावं तुमुलं कुर्वन्भवत्तत तद्रणे । तस्मिन्सन्त्य-
जति प्राणान् मृत्युसाधारणीकृते ॥ ६ ॥ अजातशत्रुस्तान् योधान्

नामक ग्वालोंका संहार कर रहा है, बह बलवान् यहाँ आकर हमारी
रक्षा क्यों नहीं करता । २८-२९ । इकतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३१ ।

सञ्जयने कहा कि—भीमसेनसे सेनाका नाश न देखा गया,
उसने द्रोणके साठ और कर्णके दश बाण मारे ॥ १ ॥ द्रोणा-
चार्यने उसके प्राण लेनेकी इच्छासे उसके मर्मस्थानोंमें तीखी
धारवाले और सीधे जानेवाले बाण मारे ॥ २ ॥ तथा बाणोंकी
मार चलती रखनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यने फिर उसके छद्मकीस
बाण मारे और कर्णने बारह बाण मारे तथा अश्वत्थामाने सात
बाण मारे ॥ ३ ॥ तदनन्तर दुर्योधनने भीमसेनको छः बाणोंसे
वेधा, तदनन्तर महाबली भीमसेनने भी उनको बाणोंसे बीधा ४
उसने द्रोणके पचास, कर्णके दश, दुर्योधनके बारह और अश्व-
त्थामाके आठ बाण मारे ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर मृत्युको साधा-
रण मानकर वह प्राणोंपर खेल भयङ्कर शब्द करता हुआ उनकी

भीमं त्रातेत्यथैव दयत् । ते ययुर्भीमसेनस्य समीपममितौजसः । ७ ।
युयुधानप्रभृतयो मीद्रुपुत्रौ च पाण्डवौ । ते समेत्य सुसंरब्धाः
सहिताः पुरुषर्षभाः ॥ ८ ॥ महेष्वासवरैर्युग्मं द्रोणानीकं त्रिभित्सवः ।
समापेतुर्महावीर्या भीमप्रभृतयो रथाः । ९ ॥ तान् प्रत्यगृह्णादव्यग्रो
द्रोणोऽपि रथिनां वरः । महारथानतिवलान् वीरान् समरयोधिनः १०
व । ह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावका पाण्डवान् ययुः । सादिनः सादि-
नोऽभ्यघ्नन्स्तथैव रथिनो रथान् ॥ ११ ॥ आसीच्छक्त्यसिसम्पातो
युद्धमासीत् परश्वधैः । प्रकृष्टमसियुद्धञ्च वभूव कटुकोदयम् ॥ १२ ॥
कुञ्जराणाञ्च सम्पाते युद्धमासीत् सुदारुणम् । अपतत् कुञ्जरा-
दन्यो ह्यादन्यस्त्ववाक्शिराः ॥ १३ ॥ नरो बाणविनिर्भिन्नो रथा-
दन्यश्च मारिषः । तत्रान्यस्य च संभर्षे पतितस्य विवर्मणः ॥ १४ ॥

ओरको दौड़ा ॥ ६ ॥ यह देख युधिष्ठिरने राजाओंसे भीमसेन
की रक्षाके लिये कहा, तुरत ही महाबली पुरुषर्षभ, युयुधान,
नकुल, सहदेव आदि बड़े क्रोधमें भर, इकट्ठे हो भीमसेनके पास
पहुँच गए ॥ ७ ॥ ८ ॥ महापराक्रमी भीमसेन आदि रथी,
महाधनुर्धरोंकी रक्षाकी हुई द्रोणकी सेनाका नाश करनेके
लिये चढ़ गए ॥ ९ ॥ उस समय महारथी द्रोण तनिक भी
न घबड़ाकर उन महारथी, अतिवली मदसे भरकर युद्ध
करनेवाले समरयोधी योधाओंके सामने डट गए ॥ १० ॥
पाण्डव भी मृत्युके भयको बाहरी भय मानकर तुम्हारे योधाओं
पर टूट पड़े, घुड़सवार घुड़सवारोंसे तथा रथी रथियोंसे युद्ध करने
लगे ॥ ११ ॥ शक्ति और तलवारें एक दूसरेके ऊपर पड़नेलगीं,
फरसे फड़कनेलगे तथा उस समय श्रेष्ठ तलवारोंसे भी युद्ध हुआ
जिसका परिणाम बड़ा भयङ्कर हुआ ॥ १२ ॥ हाथियोंका भी
महाघोर युद्ध हुआ, उस समय कोई हाथीपरसे और कोई रथ
परसे औंधा होकर गिर रहा था, तथा हे राजन् ! कोई बाणोंसे

शिरः प्रध्वंसयामास वत्सस्याक्रम्य कुञ्जरः । अपराधापरेऽमृदुनन्
 वारणाः पतितान् नरान् ॥ १५ ॥ विषाणैश्चात्रनिं गत्वा व्यभिन्दन्
 रथिनो बहून् । नरात्रैः केचिदपरे विषाणालग्नसंश्रयैः ॥ १६ ॥
 बभ्रमुः समरे नागा मृदुनन्तः शतशो नरान् । काष्ण्यायसतनुत्रा-
 णान्नराश्वरथकुञ्जरान् ॥ १७ ॥ पतितान् पोथयाञ्चक्रुर्द्विषाः
 स्थूलनलानिव । गृध्रयत्राधिवासांसि शयनानि नराधिपाः ॥ १८ ॥
 हीमन्तः कालसम्कोपात् सुदुःखान्यनुशेरते । हन्ति स्मात्र पिता पुत्र
 रथेनाभ्येत्य संयुगे ॥ १९ ॥ पुत्रश्च पितरं मोहान्निर्मर्यादमवर्त्तत ।
 रथो भग्नो ध्वजश्छिन्नश्छत्रमृग्यां निपातितम् ॥ २० ॥ युगार्थं
 छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः । सासिर्बाहुर्निपतितः शिरश्छिन्नं
 सकुण्डलम् ॥ २१ ॥ गजेनाक्षिप्य बलिना रथः संचूर्णितः क्षितौ ।

भिदकर रथपरसे गिररहा था, उस समय भूपाटेमें आकर गिरेहुए
 एक कवचहीन पुरुषके हृदय पर पैर रखकर हाथीने उसके शिर
 को कुचलडाला, तैसे ही दूसरे हाथी पृथ्वीपर गिरेहुए योधाओं
 को खूँदने लगे ॥ १३-१५ ॥ बहुतसे हाथी दाँतोंसे पृथ्वीमें
 प्रहार करके रथियोंको चीरनेलगे, कितने ही हाथी मनुष्योंकी
 आँतडियोंसे लिपटेहुए दाँतोंसे सैकड़ों मनुष्योंको रौंदतेहुए रणमें
 घूमनेलगे, बहुतसे हाथी लोहेके कवचत्राले भूमिमें गिरेहुए, हाथी
 घोड़े, और मनुष्योंको नलोंकी सभान कुचलनेलगे, बहुतसे लज्जा-
 बान् राजे कालके वशमें हो बड़े दुःखके साथ गिद्धोंके परोंके
 विस्तरवाली शय्याओं पर सोरहे थे, पिता रथमें बैठकर पुत्रको
 मारनेलगा और पुत्र भी मूर्खतासे अमर्याद हो पितासे लड़ने
 लगा, इस युद्धमें रथोंके टुकड़े २ होगए, ध्वजाओंकी धज्जिर्
 होगई, छत्र पृथ्वीपर पटापट गिरगये, तथा घोड़े आधे खलड़ेहुए
 घमको लेकर भागनेलगे, हाथ तलवारके सहित गिरपड़े और शिर
 मुकुटसहित गिरपड़े ॥ १६-२१ ॥ बलवान् हाथीने रथको पृथिवी

रथिना ताडितो नागो नाराचेनापतत्तितौ ॥ २२ ॥ सारोहश्चा-
पतद्वाजी गजेनाभ्याहतो भृशम् । निर्मर्यादं महद्युद्धमवर्त्तत सुदा-
रुणम् ॥ २३ ॥ हा तात हा पुत्र सखे क्वासि तिष्ठ क्व धावसि ।
ग्रहराहर जहोनं स्मितच्चेदितगर्जिताः ॥ २४ ॥ इत्येवमुच्चरन्ति
स्म श्रूयन्ते विविधा गिरः । नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत
शोणितम् ॥ २५ ॥ उपाशाश्वद्वजो भौमं भोरुन् कश्मलमाविशत् ।
चक्रेण चक्रमासाद्य वीरो वीरस्य संयुगे ॥ २६ ॥ अतीतेषुपथे काले
जहार गदया शिरः । आसीत् केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम् २७
नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम् । तत्राच्छिद्यत शूरस्य

पर पटककर उसका चूरी २ करदिया और हाथी रथियोंके बाण
खाकर पृथ्वी पर गिरनेलगे २२ हाथियोंसे बड़ी भारी चोट खाकर
घोड़े सवारोंके सहित पृथ्वी पर गिरनेलगे, उस समय मर्यादाको
छोड़कर भयङ्कर युद्ध होरहा था ॥ २३ ॥ रणमें योधा चिल्ला
रहे थे, कि-हे तात ! हे पुत्र ! हे मित्र ! तुम कहाँ हो ? खड़ेरहो
कहाँको दौड़ेजाते हो ? अरे ! इसे मारो, इसका संहार करो,
इसप्रकार हास्य, लीला और गर्जनावाली सैकड़ों बाणियें रणमें
सुनाई आरही थीं, तहाँ हाथी, घोड़े और मनुष्योंका रुधिर मिल
कर एकाकार होगया था २४-२५ उस रुधिरके कारण पृथिवी पर
उड़ती हुई धूलि शान्त होगई, डरपोकोंके मनमें भय उत्पन्न होगया
वीरपुरुष अपने रथका पहिया शत्रु वीरके रथके पहियेसे अटका
कर युद्ध करनेलगे, युद्धमें जहाँ बाण छोड़नेका अवसर नहीं होता
था वहाँपर योधा शत्रुके शिरको गदासे तोड़देते थे, बहुतसे वीर
परस्परमें केश खेंचरहे थे बहुतसे दारुण मुष्टियुद्ध (मुक्कामुक्की)
कररहे थे ॥ २६-२७ । निराधार रणस्थलमें आधार खोजनेवाले
कितने ही वीर दाँतोंसे काट रहे थे और नाखूनोंसे नोचरहे थे,
कितनेही वीर शत्रुके खड्ग धनुष, अंकुश और बाण सहित उठाये

सखद्गो बाहुरुद्यतः ॥ २८ ॥ सधनुश्चापरस्यापि सशरः सांकु-
शस्तथा । आक्रोशदन्यमन्योत्र तथान्यो विमुखोऽद्रवत् ॥ २९ ॥
अन्यः प्राप्तस्य चान्यस्य शिरः कायादपाहरत् । स शब्दमद्रवच्चा-
न्यः शब्दादन्योऽत्रसदृ भृशम् ॥ ३० ॥ स्वानन्योथ परानन्यो
जघान निशितैः शरैः । गिरिशृङ्गोपमश्वात्र नाराचेन निपातितः ३१
मातङ्गो न्यपतद् भूमौ नदीरोध इवोष्णगे । तथैव रथिनं नागः क्षरन्
गिरिरिवारुजन् ॥ ३२ ॥ अभ्यतिष्ठत् पदा भूमौ सहाश्वं सहसा
रथिम् । शूरान् महरतो दृष्ट्वा कृतास्त्रान् रुधिरोज्जितान् ॥ ३३ ॥
घहनप्याविशन्मोहो भीरून् हृदयदुर्बलान् । सर्वमाविग्ममभवन्न
प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ३४ ॥ सैन्येन रजसा ध्वस्तं निर्मर्यादमव-
र्त्तत । ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन् ॥ ३५ ॥ नित्या-

हुए हाथको काट रहे थे तहाँ बहुतसे वीर युद्ध करनेके लिये
शत्रुओंको बुलारहे थे तो बहुतसे मुख फेरकर भागे जारहे थे तथा
कोई पास आयेहुए दूसरेके गिरको घडसे काटरहे, थे कोई किल्ली
मारकर भागरहे थे, कोई डरपोक शत्रुकी हुङ्कारको मुनकर काँप
रहे थे, कोई तेज बाणोंसे अपने संबन्धियोंको तथा कोई शत्रुओं
को काटरहे थे, कोई तहाँ पर्वतके शिखरकी समान ऊँचे हाथीको
धनुषसे माररहे थे, वे हाथी वर्षा ऋतुमें नदीके तटकी समान
गिररहे थे, पर्वतकी समान मदको टपकातेहुए कोई हाथी घोड़े रथ
और सारथी सहित सवारोंको पाँवोंसे पृथ्वीमें कुचलरहे थे, अस्त्र-
वेत्ता शूर शत्रुओंके ऊपर भयङ्कर प्रहार कर रहे थे और स्वयं
रुधिरसे भीगरहे थे यह देखकर अतिदुर्बल चित्तवाले डरपोक
भुङ्कित होरहे थे, सर्वत्र मार २ काट २ का ही शब्द सुनाई आ
रहा था और कुछ भी सुनाई नहीं आता था, इस प्रकार मर्यादा-
हीन युद्ध चलरहा था, सेनाके पैरोंकी धमधमाहटसे सर्वत्र धूलि
ही धूलि दिखाई पडती थी, उस समय धृष्टद्युम्नने कहा कि-यह

भित्तिरितानेव त्वरयापास पाण्डवान् । कुर्वन्तः शासनं तस्य पा-
ण्डवा बाहुशालिनः ॥ ३६ ॥ सरो हंसा इनापेतुर्धनन्तो द्रोणरथं
मति । गृहीताद्रयतान्पोन्यं विभीषा विनिकृन्तत ॥ ३७ ॥ इत्या-
सत्तुमुलेः शब्दो दुर्द्धर्षस्य रथं प्रति । ततो द्रोण कृपः कर्णो द्रौणी
राजा जयद्रथः ॥ ३८ ॥ विन्दामुविन्दावावन्त्यौ शल्यश्च तानन्य-
वारयन् । ते त्वार्यधर्मसंरक्ष्या दुर्निवारा दुरासदः ॥ ३९ ॥ शरार्चा
न जहृद्रौणं पञ्चालाः पाण्डवैः सह । ततो द्रोणोतिसंक्रुद्धो विसृजन्
शशः शरान् ॥ ४० ॥ चेदिपञ्चालपाण्डू नामकरोत् कदनं महत् ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषः शुश्रवे दिक्षु मारिष ४१ वज्रसंहादसङ्काशस्त्रा-
सयन्मानवान् बहून् । एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्जित्वा संशप्तकान् बहून्

समय ही द्रोणाचार्यको मारनेका है, यह कहकर उसने सदा फुर्तीले
रहनेवाले पाण्डवोंको और भी फुर्ती दिखानेके लिये उकसाया,
बाहुबली पाण्डव उसकी आज्ञाका पालन करके द्रोणके ऊपर
इसप्रकार टूटपड़े जैसे हंस सरोवर पर टूटपड़ते हैं निर्भय होकर
द्रोणको पकड़लो उनके पीछे पड़जाओ, उनके टुकड़े-२ करहालो
इसप्रकार प्रचण्ड द्रोणाचार्यके रथके पीछे बड़ा भारी कोलाहल
होनेलगा, उस समय आगे बढ़तेहुए पाण्डवोंको कृपाचार्य, अश्व-
त्थामा, जयद्रथ, उड्डैयनके विन्द, अनुविन्द तथा शल्य रोकनेलगे,
परन्तु श्रेष्ठ धर्मके आवेशमें भरेहुए, अडियल, दुर्जय पाण्डव और
पांचालोंने बाणोंसे पीड़ित होकर भी द्रोणका पीछा न छोड़ा यह
देखकर द्रोण को बड़ा भारी क्रोध आगया और उन्होंने सैकड़ों
बाण छोड़कर चेदि, पांचाल तथा पाण्डवोंका घोर संहार कर
डाला, हे राजन् ! इस समय द्रोणके धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द
सब दिशाओंमें सुनाई आरहा था और उस वज्रकी समान प्रत्य-
श्चाकी ध्वनिको सुन कर बहुतसे मनुष्य थर्रा गए, इतनेमें ही
बहुतसे संशप्तकोंको जीतकर अर्जुन जहाँ द्रोण पाण्डवोंका संहार

॥ ४२ ॥ अभ्ययात्तत्र यत्रासौ द्रोणः पाण्डून् प्रमदति । तान् शरौघान्महावर्तान् शोणितोदान्महाहवान् ॥ ४३ ॥ तीर्णः संशप्तकान् हत्वा प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः । तस्य क्रीर्त्तिमनो लक्ष्य सूर्यमतिमतेजसः ॥ ४४ ॥ दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम् । संशप्तकसमुद्रं तमुच्छ्रोष्यास्वगभस्तिभिः ॥ ४५ ॥ स पाण्डवयुगान्तार्कः कुरुनृप्यभ्यतीतपत् । प्रददोह कुरुन् सर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा ४६ युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः । तेन वाणसहस्रावैर्गजाश्चरथयोधिनः ॥ ४७ ॥ ताड्यमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तकेशाः शरादिताः । केचिदार्त्तस्वनं चक्रुर्विनेशुरपरे पुनः ॥ ४८ ॥ पार्थवाणहताः केचिन्निपेतुर्विगतासवः । तेषामुत्पतितान् क्वाञ्चित् पतितांश्च पराङ्मुखान् ॥ ४९ ॥ न जवानार्जुनो योधान् योधव्रतमनुस्म

कर रहे थे तहाँ आ पहुँचा, कौरवरूपी मलयमें सूर्यसमान अर्जुन संशप्तकोंका नाश करके बहुतसे बाणोंके ओघवाली और बड़े २ भँवरोंवाली रक्तकी धाराओंको पार करके इय सर्वाँको दिखाई दिया सूर्यकी समान तेजस्वी और यशस्वी अर्जुनकी वानरकी छाया वाली ध्वजाभी हमने देखी, पाण्डववंशमें सूर्यकी समान प्रकाश करताहुआ अर्जुन शस्त्रोरूपी किरणोंसे संशप्तकसमुद्रको सोख कर कौरवसेना पर चढ़ आया, सब प्राणियोंको नष्ट करनेवाले मलयकालमें उदयहुए धूमकेतुकी समान अर्जुन सब कौरवोंको शस्त्रोंके तेजसे भस्म करनेलगा उसके सहस्रों बाणोंकी वर्षासे ताडना पाकर हाथी घोड़े और रथ पर चढ़कर युद्ध करने वाले बहुतसे वीर बाणोंसे पीड़ा पानेके कारण बाल बिखरेहुए भूमिपर गिरपड़े, उस समय कोई डकरानेलगे, कितने ही मरगए, कितनेही अर्जुनके बाणोंके लगते ही प्राणोंको छोड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े, कितने ही खड़े हो पीठ दिखाकर भागनेलगे, इस समय योधाओंके व्रतको याद करके अर्जुनने उनको नहीं मारा, किन्तु

रन् । ते विकीर्णरथारिचक्राः प्रायशश्च पराङ्मुखाः ॥५०॥ कुरवः
कर्णं कर्णेति हा हेति च विचुक्रुशुः । तमाधिरधिराकटं विज्ञाय
शरणैषिणाम् ॥५१॥ मा भैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोर्जुनम् ।
स भारतस्थश्रेष्ठः सर्वभारतहर्षणः ॥ ५२ ॥ प्रादुश्चक्रे तदाश्रेय-
मस्त्रमस्त्रविदां वरः । यस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापघरस्य च ५३
शरौघान् शरजालेन विदुषाव धनञ्जयः । तथैवाधिरथिस्तस्य
बाणान् ज्वलिततेजसः ॥ ५४ ॥ अस्त्रमस्त्रेण सम्वार्य प्राणदद्वि-
सृजन् शरान् । धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः ॥५५॥
विषयधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्वगैः । अर्जुनास्त्रं तुराधेयः
संवार्य शरवृष्टिभिः ॥ ५६ ॥ तेषां त्रयाणां चापानि चिच्छेद
विशिखैस्त्रिभिः । ते निकृत्तायुधाः शूरा निर्विषा भुजगा इव ५७

भागनेदिया, टूटेहुए रथवाले भागते हुए कौरव कर्णकी दुहाई
देनेलगे और हाय २ करनेलगे, शरणमें आनेकी इच्छावाले
कौरवोंकी इस रोदनध्वनिको सुनकर डरो मत २ इसप्रकार धैर्य
देकर कर्ण अर्जुनकी ओरको बढ़ा, तदनन्तर सकल भरत-
वंशी राजाओंको हर्षित करनेवाले, महारथी और बड़े अस्त्रवेत्ता
कर्णने जलताहुआ आग्नेयास्त्र अर्जुनके माता, परन्तु अर्जुनने
बड़े प्रकाशवाले धनुषको धारण करनेवाले और महातेजस्वी
बाणधारी कर्णके बाणोंको काटडाला, इसीप्रकार कर्णने भी
अस्त्रोंका प्रहार कर अर्जुनके प्रकाशवान्, तेजस्वी बाणोंको
और अस्त्रोंको रोकदिया और गरज कर शत्रुके बाण
मारे, धृष्टद्युम्न, भीम और सात्यकिने भी सीधे जानेवाले
तीन तीन बाण मारकर कर्णको बीधा, कर्णने अर्जुनकी
बाणवर्षाको अपनी बाणवर्षासे रोककर उन तीनोंके धनुषोंको
तीन बाणोंसे काटडाला, आयुधोंके कटजानेसे वे तीनों शूर विप-
हीन सर्पकी समान निस्तेज होगए ॥२८-५७॥ उन तीनोंने रथों

रथशक्तीः समुत्तिष्ठ्य धृशं सिंहा इवानदन् । ता भुजाग्रैर्महावेगा
 विस्फुप्ता भुजगोपमाः ॥ ५८ ॥ दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुरा-
 धिरथि प्रति । ता निहृत्य शरान्नैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्वगैः ॥ ५९ ॥
 ननाद वज्रवान् कर्णः पार्थाय विस्मृजन् शरान् । अर्जुनश्चापि
 राधेयं विध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ६० ॥ कर्णादवरजं बाणैर्जघान
 निशितैः शरैः । ततः शत्रुञ्जयं हत्वा पार्थः षड्भिरजिह्वगैः ६१
 जहार सद्यो भल्लेन विपाटस्य शिरो रथात् । पश्यतां धार्तराष्ट्रा-
 णामेकेनैव किरीटिना ॥ ६२ ॥ प्रमुखे मृतपुत्रस्य सोदर्या निहता-
 स्त्रयः । ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथाद्वैनतेयवत् ॥ ६३ ॥ वरा-
 सिना कर्णपत्तान् जघान दश पञ्च च । पुनस्तु रथमास्थाय धनु-
 रादाय चापरम् ॥ ६४ ॥ विव्याध दशभिः कर्णं मृतमरुताश्च
 पञ्चभिः । धृष्टशुम्नोप्यसिवरं चर्म चादाय भास्वरम् ॥ ६५ ॥
 जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्तत्रञ्च नैपथम् । ततः स्वरथमास्थाय

पर शक्तियें फेंककर सिंहाकी समान गर्जना की, उनकी भुजाओंसे
 छूटती हुई सर्पकी समान महावेगवालीं चमकती हुई वे शक्तियें कर्ण
 की ओरको जानेलागीं, उन शक्तियोंको बली कर्ण सीधे जानेवाले
 तीन २ बाणोंसे काटकर अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करताहुआ
 गर्जना करनेलागा, तब अर्जुनने भी कर्णके सात बाण मारे २८-१०
 फिर कर्णके छोटे भाईके तेज बाण मारे, तदनन्तर अर्जुनने
 कर्णके छोटे भाई शत्रुञ्जयको छः बाणोंसे मार शीघ्रही भाला मार
 कर विपाटके शिरको काटदिया, अकेले अर्जुनने सब कौरवोंके
 देखते हुए और कर्णके सामने कर्णके तीन भाइयोंको मारडाला
 तदनन्तर भीमसेन गरुड़की समान अपने रथ परसे कूदकर
 कर्णकी ओरके पन्द्रह मनुष्योंके शिर तलवारसे काटकर फिर
 अपने रथपर आगया और उसने धनुष लेकर कर्णके दश और
 सारथी तथा घोड़ोंके पाँच बाण मारे धृष्टशुम्नने भी चमकतीहुई
 तेज तलवार और ढाल लेकर चन्द्रवर्मा और निपथ देशके राजा

पाञ्चाल्योन्यच्च कार्मुकम् ॥ ६६ ॥ आदाय कर्णं विव्याध त्रिस-
प्तत्या नदन् रणे । शैनेयोप्यन्यदादाय धनुस्त्रिन्दुसमद्युतिः ॥ ६७ ॥
सुतपुत्रञ्चतुःपट्या विध्वा सिंह इषानदत् । भल्लाभ्यां साधु-
मुक्ताभ्यां क्षित्वा कर्णस्य कार्मुकम् ॥ ६८ ॥ पुनः कर्णं त्रिभि-
र्वाणैर्बाहोरुरसि चार्पयत् । ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जय-
द्रथः ॥ ६९ ॥ निमज्जमानं राधेमुज्जहः सात्यकार्यवात् । पश्य-
श्वरथमातङ्गास्त्वदीयाः शतशोपरे ॥ ७० ॥ कर्णमेवाभ्यधावन्त
त्रास्यमाना प्रहारिणः । घृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोर्जुन एव
च ॥ ७१ ॥ नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुप्सु रणे । एवमेव
महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम् ॥ ७२ ॥ तावकानां परेषाञ्च
त्यक्त्वा प्राणानभूदणः । पदातिरथनागाश्वा गजाश्वरथपक्षिभिः ७३

बृहत्क्षत्रकोमारडाला, तदनन्तर रथमें बैठकर हाथमें धनुष ले
तिहत्तर बाणोंसे कर्णको रणमें वींघडाला और गर्जनेलगा,
सात्यकि भी चन्द्रमाकी समान ज्योति वाले धनुषको ले कर्णको
चौलठ बाणोंसे वींघकर सिंहकी समान गर्जनेलगा और जोरसे
दो भाले मारकर उसने कर्णके धनुषको तोड़डाला, तदनन्तर
सात्यकिने तीन बाण कर्णकी छाती और भुजाओंमें मारे, फिर
सात्यकिरूपी समुद्रमें कर्णको डूवता हुआ देखकर दुर्योधन, जयद्रथ
और द्रोणने उसको बचाया, तुम्हारी ओरके हाथीसवार घुड-
सवार रथी और पैदल मनमें डरते २ कर्णकी ओरको दौड़नेलगे
दूसरी ओर घृष्टद्युम्न, भीमसेन, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु नकुल और
सहदेव सात्यकिकी रक्षा करनेको खड़े होगए, इसप्रकार सब
धनुषधारियोंने महाभयानक और संहारकारी युद्ध किया था तुम्हारे
और शत्रुपक्षके योधा प्राणोंकी भी अपेक्षा न करके युद्ध करनेलगे
इस युद्धमें पैदल पैदलोंके साथ रथी रथियोंके साथ, घुडसवार
घुडसवारोंके साथ और हाथी सवार हाथीसवारोंके साथ युद्ध
करने लगे ६१-७३ तहाँ बहुतसे रथी, हाथीसवार घुडसवार और

रथिनो नागपत्तयश्चै रथपत्नी रथद्विपैः । अश्वैरश्वा गजैर्नागा रथिनो
 रथिभिः सह ॥ ७४ ॥ संयुक्ताः समदृश्यन्त पत्तयश्चापि
 पत्तिभिः । एवं सुकलिलं युद्धमासीत् कव्यादहर्षणम् ॥ मह-
 द्भिस्तैरभीतानां यमराष्ट्रविवर्द्धनम् ॥ ७५ ॥ ततो हता नररथ-
 बाणिकुञ्जरैरनेकशो द्विपरथपत्तिवाजिनः । गजैर्गजा रथिभिरुदा-
 युधा रथै हयैर्हयाः पत्तिगणैश्च पत्तयः ॥ ७६ ॥ रथैर्द्विपा द्विरदव-
 रैर्महाहया हयैर्नरा वररथिभिश्च वाजिनः । निरस्तजिह्वा दशनेक्षणाः
 क्षितौ क्षयं गताः प्रमथितवर्मभूषणाः ॥ ७७ ॥ तथापरैर्वहुकरणै-
 र्वरायुधैर्हता गताः प्रतिभयदर्शनाः क्षितिम् । विपोथिता हयगजपाद-

पैदलोंसे रथी और पैदल रथी और हाथीसवारोंसे लड़
 रहे थे कहीं घुड़सवारोंका आपसमें युद्ध हो रहा था
 कहीं हाथी सवारोंका, तो कहीं रथियोंका आपसमें युद्ध हो
 रहा था तथा कहीं पैदलोंसे पैदल भिड़ेहुए दीखते थे
 इसप्रकार निर्भय पुरुषोंका महापुरुषोंके साथ, मांसाहारी प्राणि-
 योंका आनन्द देनेवाला और यमराजके राज्यको बढ़ानेवाला
 युद्ध हुआ ॥ ७४-७५ ॥ इस युद्धमें मनुष्य रथी और घुड़सवार
 तथा हाथी सवारोंसे बहुतसे हाथी घोड़े और रथोंपर बैठनेवाले
 तथा पैदल मारे गए, तैसे ही हाथी हाथियोंसे, आयुध लियेहुए
 रथी रथियोंसे घोड़े घोड़ोंसे और पैदलोंसे पैदल मारे गए ७६
 रथियोंसे हाथी, हाथियोंसे घोड़े घोड़ोंसे मनुष्य और श्रेष्ठ
 रथियोंसे घोड़े मारे गए योधाओंके जीभ दाँत और नेत्र नष्ट
 होगए शरीर परके कवच और आभूषण टूटगये और वे योधा
 पृथ्वीमें गिरकर मर गए ॥ ७७ ॥ अनेकों प्रकारकी युद्धकी सामग्रियों
 वाले और बहुमूल्य शस्त्रोंवाले योधाओंने जिन सामनेके बहुतसे
 योधाओंको मारकर पृथ्वीपर गिरादिया था वे पड़े २ बड़े भयङ्कर
 दी ब्रते थे, बहुतसे योधा हाथी और घोड़ोंके पैरोंसे कुचलकर
 मर गए कितनेही रथोंके पहियोंसे दबकर मर गए थे इसप्रकार

ताडिता भृशाकुलारथमुखनेमिभिः क्षताः ॥ ७८ ॥ प्रमोदने
श्वापदपक्षिरक्षसां जनक्षये वर्त्तति तत्र दारुणे । महाबलास्ते कुपिताः
परस्परं निषूदयन्तः प्रविचेरुरोजसा ॥ ७९ ॥ ततो बले भृश-
लुलिते परस्परं निरीक्षमाणे रुधिरौघसंप्लुते । दिवाकरेऽस्तं
गिरिमास्थिते शनैरुभे प्रयाते शिविराय भारत ॥ ८० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि

द्वितीयदिवसावहारे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

-समाप्तश्च संशप्तकवधपर्वः

॥ अभिमन्यु-वधपर्व ॥

संजय उवाच । पूर्वमस्मासु भग्नेषु फाल्गुनेनामितौजसा । द्रोणे
च मोघसङ्कल्पे रक्षिते च युधिष्ठिरे ॥ १ ॥ सर्वे विध्वस्तकवचा-
स्तावका युधि निर्जिताः । रजस्वला भृशोद्विग्ना वीक्षमाणा दिशो
दश ॥ २ ॥ अवहारं ततः कृत्वा भारद्वाजस्य सम्पते । लब्धलक्षैः

कुत्ते, गिद्ध और राक्षसोंके हर्षको घटानेवाले इस दारुण युद्धके
समय महाबली योधा क्रोधमें भरकर बलात्कारसे एक दूसरेको
उत्पीडित करतेहुए रणमें घूमनेलगे ॥ ७८-७९ ॥ हे भरतवंशी
राजन् ! इतनेमें ही सूर्य अस्ताचल पर जानेको उद्यत होगए तब
बहुत थकीहुई तथा लोहलुहान-हुई दोनों ओरकी सेनाएं पर-
स्परको देखती हुई धीरे २ अपनी २ छावनियोंकी ओरको लौटने
लगीं ॥ ८० ॥ वत्सीसर्ग अध्याय समाप्त ॥ ३२ ।

॥ अभिमन्युवधपर्व ॥

सञ्जयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! अगाधबलवाले अर्जुनने
प्रथम हमारी सेनाका पराजय किया और युधिष्ठिरकी रक्षाकी
तथा द्रोणके सङ्कल्पको निष्फल करदिया ॥ १ ॥ इससे रणमें
तुम्हारे योधा कवचोंको फाड़कर अपना पराजय माननेलगे
वे धूलिमें अदरहे थे, तथा घबड़ाकर दशों दिशाओंमेंको देखरहे

शरैर्भिन्नाः शृणावहसिता रणे ॥ ३ ॥ श्लाघमानेषु भूतेषु फाल्गु-
नस्यामितान् गुणान् । केशवस्य च सौहार्दे कीर्त्यमानेऽर्जुनं प्रतिष्ठ
अभिशस्ता इवाभूवन् ध्यानमूकत्वमोस्थिताः । ततः प्रभातसमये
द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ प्रणयादभिमानाच्च द्विपददृष्ट्या
च दुर्मनाः । शृण्वतां सर्वयोधानां संरब्धो वाक्यकोविदः ॥ ६ ॥
नूनं वयं वध्यपक्षे भवतो द्विजसत्तम । तथा हि नाग्रहीः प्राप्तं समीपे-
ऽद्य युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥ इच्छतस्ते न मुच्येत चक्षुःप्राप्तो रणे रिपुः ।
जिवृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥ वरं दत्त्वा मम
प्रीतः पश्चाद्विकृतवानसि । आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्यार्याः
कथंचन ॥ ९ ॥ ततोऽपीतस्तथोक्तः सन् भारद्वाजो ब्रवीन्नुभम् ।

थे ॥ २ ॥ उनके शरीर बाणोंसे बिधगए थे, तथा वे युद्धमें बहुत
ही हास्यके पात्र हुए थे, उस समय द्रोणकी सम्मतिसे सब अपनी
अपनी छात्रनियोंकी ओरको चलनेलगे ॥ ३ ॥ उस समय सेनापति
अर्जुनके अपार गुणोंका बखान कर रहे और श्रीकृष्णकी अर्जुनके
ऊपर प्रीतिका वर्णन कर रहे थे, यह सुनकर अपनी ओरके योधा
शाप पाए हुएसे होगए उनके मुख सिमगए दूसरे दिन प्रातः-
कालके समय वक्ताओंमें श्रेष्ठ दुर्योधनने शत्रुओंकी उन्नतिको देख
मनमें उदास तथा क्रुद्ध होकर सब योधाओंके सामने प्रणय तथा
अभिमानके साथ द्रोणाचार्यसे कहा, कि—हे द्विजसत्तम ॥ ४-६ ॥
हम वास्तवमें आपके शत्रु ही हैं, क्योंकि—कल युधिष्ठिरके पासमें
आजाने पर भी आपने उनको नहीं पकड़ा ॥ ७ ॥ शत्रु युद्धमें सामने
पड़जाय और तुम उसे पकड़ना चाहो तो पाण्डव देवताओंकी
सहायतासे भी उसको बचना चाहें तो नहीं बचा सकते तो भी आप
आँख बचागये ॥ ८ ॥ तुमने प्रसन्न होकर मुझे वर दिया था, कि—
“मैं युधिष्ठिरको पकड़ूँगा” परन्तु तुम उस अपनी बातसे
फिरगए महात्मा पुरुष भक्तकी आशाको तोड़ते नहीं हैं ॥ ९ ॥

नार्हसे मां तथा शतुं घटमानं तव प्रिये ॥ १० ॥ समुभासुर-
गन्धर्वाः सयत्नोरगराक्षसाऽनालं लोकारणे जेतुं पाल्यमानं किरी-
टिनां ॥ ११ ॥ विश्वसृग्यत्र गोविन्दः पृतनानीस्तथार्जुनः । तत्र
कस्य बलं क्रामेदन्यत्र व्यम्बकात् प्रभोः ॥ १२ ॥ सत्यं तात
ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत् । अद्यैकं प्रवरं कंचित् पातयिष्ये
महारथम् ॥ १३ ॥ तंश्च व्यूहं त्रिधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि ।
योगेन केनचिद्वाजन्नर्जुनस्त्वपनीयताम् ॥ १४ ॥ न ह्यज्ञातमसा-
ध्यं वा तस्य संख्येस्ति किञ्चन । तेन ह्युपात्तं सकलं सर्वज्ञानमित-
स्ततः ॥ १५ ॥ द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तकगणाः पुनः । आह-
यन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १६ ॥ ततोऽर्जुन-
स्याथ परैः सार्धं समभवद्रणः । तादृशो यादृशो नान्यः श्रुतो

द्रोणने यह सुन मज्जमें खिन्न होकर दुर्योधनसे कहा, कि-मैं तेरा
हित करनेका सदा उद्योग किया करता हूँ, अतः तुझे ऐसा नहीं
समझना चाहिये ॥ १० ॥ परन्तु अर्जुन जिसकी रक्षा करता हो
उसको देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और नाग भी नहीं
जीत सकते ॥ ११ ॥ जहाँ जगत्कर्त्ता गोविन्द और अर्जुन सेनापति
हैं, तहाँ भगवान् व्यम्बक (शिव) को छोड़कर और किसका
बल चलसकता है ? ॥ १२ ॥ हे तात ! मैं यह सत्य कहता हूँ
कि-आज रणमें किसी एक बड़े महारथीका नाश करूँगा ॥ १३ ॥
मैं आज सेनाके ऐसे व्यूहकी रचना करूँगा, कि-जिसे देवता भी
भंग न कर सकेंगे; परन्तु हे राजन् ! किसी उपायसे अर्जुनको रण
मेंसे दूर लेजाना चाहिये, ॥ १४ ॥ युद्धवी ऐसी कोई भी कला
नहीं है जिसको अर्जुन न जानना हो, तथा उसको कुछ भी करना
अशक्य नहीं है उसने मुझसे तथा दूसरोंसे सब कुछ सीखलिया
है ॥ १५ ॥ द्रोणके ऐसा कहते ही संशप्तकोंने फिर अर्जुनको
युद्ध करनेके लिये बुलाया, और उसको दक्षिणकी ओर लेगए ॥ १६

दृष्टोपि वा क्वचित् ॥ १७ ॥ तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन्
 व्यरोचत । चरन् मध्यन्दिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः ॥ १८ ॥
 तञ्चाभिमन्युर्वचनात् पितृर्ज्येष्ठस्य भारत । विभेदं दुर्भेदं संख्ये
 चक्रव्यूहमनेकधा ॥ १९ ॥ स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान्
 सहस्रशः । षट्सु वीरेषु संसक्तो दौवशासनिवशङ्कतः ॥ २० ॥
 सौभद्रः पृथिवीपाल जहौ प्राणान् परन्तपाधयं परमसंहृष्टाः पांडवाः
 शोककर्षिताः । सौभद्रे निहतं राजन्नवहारमकुर्महि ॥ २१ ॥ धृत-
 राष्ट्र उवाच । पुत्रं पुरुषसिंहस्य सञ्जयाप्राप्तयौवनम् । रणे विनिहतं
 श्रुत्वा भृशं मे दीर्यते मनः ॥ २२ ॥ दारुणः क्षत्रघर्षोयं विहितो

उस समय अर्जुनका शत्रुओंसे ऐसा युद्ध हुआ, कि-ऐसा युद्ध
 पहले कभी कहीं हुआ होयह हमने न सुना न देखा है १७हे राजन् !
 इधर द्रोणाचार्यने भी ऐसा सुन्दर व्यूह रचा था, कि-जो शत्रुओंको
 ऐसा सन्ताप देता था, कि-जैसे मध्याह्नकालका सूर्य दुखती हुई
 आँखवालोंको महादुःख देता है ॥ १८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस
 चक्रव्यूह को अभिमन्युने अपने बड़े ताऊ युधिष्ठिरके कहनेसे
 दुर्भेद्य होने पर भी अनेकों प्रकारसे विन्न भिन्न कर दिया था १९
 हे राजन् ! उस समय अभिमन्युने सहस्रों वीरोंको मारकर बड़ा
 दुष्कर कर्म किया था तब द्रोण, अश्वत्थामा, कृप, कर्ण, भोज
 और शल्य इन छहोंने इकट्ठे होकर उसको घेर लिया और दुःशा-
 सनके पुत्रने उसको पकड़ लिया था ॥ २० ॥ हे परन्तप राजन् ! तहाँ
 अभिमन्युने लड़ते अपने प्राणोंको त्याग दिया, इससे हम बड़े
 प्रसन्न हुए और पाण्डव शोकमें डूब गए अभिमन्युके मारेजाने
 पर हे राजन् ! हम विश्राम करनेको अपनी सेनाको छावनीकी
 ओर ले गए ॥ २१ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! पुरुषोंमें
 सिंहकी समान अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु जिसने अभी पूरा तरुणता
 भी नहीं पायी थी, जो अभी बालक ही था, उसको मरा हुआ

धर्मकतुभिः । यत्र राज्येऽसवः शूरा बाले शस्त्रमपातयन् ॥ २३ ॥
 बालमत्यन्तसुखिनं विचरन्तमभीतवत् । कृतास्त्रा बहवो जघ्नुर्ब्रूहि
 गावन्गणो कथम् ॥ २४ ॥ विभित्सता रथानीकं सौभद्रेणामितौ-
 जसा । विक्रीडितं यथा संख्ये तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २५ ॥
 सञ्जय उवाच । यन्वां पृच्छसि राजेन्द्र सौभद्रस्य निपातनम् । तत्ते
 कात्स्न्येन वक्ष्यामि शृणु राजन् समाहितः ॥ २६ ॥ विक्रीडितं
 कुमारेण तथानीकं विभित्सता । आरुणाश्च यथा वीरा दुःसा-
 ध्याश्चापि विस्रवे ॥ २७ ॥ दात्राग्न्यभिपरीतानां भूरिशुल्भतृण-
 द्रुमे । वनौकसामिवारण्ये त्वदीयानामभूज्यम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्यु-
 वधसंक्षेपकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

सुनकर मेरो हृदय फटाजाता है ॥ २२ ॥ अहह ! धर्मको रचने
 वालोंने क्षत्रियका धर्म बड़ा ही दारुण बनाया है, कि-जिसके
 वशमें होकर राज्यके लोभी शूरोंने बालकके ऊपर शस्त्र छोड़
 दिया ॥ २३ ॥ हे सञ्जय ! अस्त्रविद्यामें प्रवीण बहुतसे योधाओंने
 युद्धमें निर्भय होकर विचरतेहुए अत्यन्त सुखी बालक अभि-
 मन्युको किस प्रकार मारा यह मुझे सुना और हे सञ्जय ! अतु-
 लित बली अभिमन्युने रथसेनाको तोड़नेके लिये किसप्रकार बल
 लगाया था, यह भी मुझसे कह ॥ २५ ॥ सञ्जयने कहा, कि-
 हे राजेन्द्र ! सुभद्राके पुत्र अभिमन्युका संहार, रथसेनाको नष्ट
 करनेके लिये अभिमन्युके कियेहुए पराक्रम और उसने वीर
 दुर्धर्ष योधाओंको युद्धमें कैसे घायल किया इत्यादि जो कुछ आपने
 ब्रूभा है वह सब मैं कहता हूँ आप ध्यान देकर सुनिये २६-२७
 बहुतसी लताएं तिनके तथा फाड़ भंकाड़वाले वनमें रहनेवाले
 वनवासियोंको वनमें अग्नि लगनेसे जैसे भय लगता है, तैसे ही
 अभिमन्युके युद्ध करने पर तुम्हारी ओरके योधाओंको भय लगता
 था ॥ २८ ॥ तैतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ ख ॥

सञ्जय उवाच । सपरेऽत्युग्रकर्माणः कर्माभिव्यञ्जितश्रमाः ।
 सकृष्णाः पाण्डवाः पञ्च देवैरपि दुरासदाः ॥ १ ॥ सत्यकर्मन्व-
 यैर्बुध्या कीर्त्या च यशसा श्रिया । नैव भूतो न भविता नैव
 तुल्यगुणः पुमान् ॥ २ ॥ सत्यधर्मन्तो दान्तो विप्रपूजादिभिर्गुरोः ।
 सदैव त्रिदिवं प्राप्तो राजा किञ्च युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ युगान्ते चान्तको
 राजन् जामदग्नयश्च वीर्यवान् । रथस्थो भीमसेनश्च कथ्यन्ते
 सदृशास्त्रयः ॥ ४ ॥ प्रतिज्ञाकर्मदत्तास्य रणे गाण्डीवधन्वनः ।
 उपमां नाधिगच्छामि पार्थस्य सदृशीं क्षितौ ॥ ५ ॥ गुरुवात्सल्य-
 मत्यन्तं नैर्घृत्यं विनयो दमः । नकुलेऽप्रातिरूपश्च शौर्यश्च नित्य-
 तानि पट् ॥ ६ ॥ श्रुतगाम्भीर्यमाधुर्यसत्यरूपपराक्रमैः । सदृशो
 देवयोर्वीरः सहदेवः फिलाश्विनोः ॥ ७ ॥ ये च कृष्णे गुणाः

सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्ण तथा पाँचों पांडव
 युद्धमें अतीव उग्र कर्म करनेवाले, हे वे देवताओंसे भी नहीं हार
 सकते, उनका परिश्रम उनके कार्योंसे ही भलकता है, बल,
 कर्म, वंश, बुद्धि, कीर्ति, यश और लक्ष्मी ये सब गुण
 युधिष्ठिरमें हैं उनके समान न कोई पुरुष हुआ है और न
 कोई होगा ही ॥ १-२ ॥ सत्यधर्ममें परायण जितेन्द्रिय राजा
 युधिष्ठिर ब्राह्मणोंकी पूजा करना आदि गुणोंके कारण सदा
 स्वर्गमें रहनेके योग्य हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! प्रलयकालके यमराज,
 वीर्यवान् परशुराम और रथमें बैठाहुआ भीमसेन ये तीनों एक
 समान मानेजाते हैं ॥ ४ ॥ प्रतिज्ञाका पालन करनेमें कुशल गाण्डीव
 धनुषधारी अर्जुनकी उपमा क्या पृथिवीमें किसीसे दी जा सकती
 है ? ॥ ५ ॥ परम गुरुभक्ति, कियेहुए और कर्तव्य कामको गुप्त
 रखना, विनय, दम, रूप और शूरता ये छः गुण नकुलमें नित्य
 निवास करते हैं ॥ ६ ॥ वीर, सहदेव शास्त्रज्ञान, गम्भीरता,
 बल, रूप और पराक्रममें अश्विनीकुमारोंकी समान है ॥ ७ ॥

स्फीताः पांडवेषु च ये गुणाः । अभिमन्यौ किलैकस्था हरयन्ते
 गुणसञ्चयाः ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च ।
 कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥ ९ ॥ धनञ्जनस्य रूपेण
 विक्रमेण श्रुतेन च । विनयात् सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च १०
 धृतराष्ट्र उवाच । अभिमन्युमहं सूत सौभद्रमपराजितम् । श्रोतुमि-
 च्छामि कांस्त्वेन कथमायोधने हतः ॥ ११ ॥ सञ्जय उवाच ।
 स्थिरो भव महाराज शोकं धारय दुर्धरम् । महान्तं बन्धुनाशन्ते
 कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ १२ ॥ चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाभि-
 कल्पितः । तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः ॥ १३ ॥
 अरास्थानेषु विन्यस्ताः कुमाराः सूर्यवर्चसः । सङ्घातो राजपुत्राणां
 सर्वेषामभवत्तदा ॥ १४ ॥ कृताभिसमयाः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ।

जो उत्तम गुण पाण्डवोंमें हैं और जो गुण श्रीकृष्णमें हैं, वे सब गुण
 एक अभिमन्युमें इकट्ठे दीखते हैं ॥ ८ ॥ अभिमन्युका बल युधि-
 स्थिरकी समान, चरित्र श्रीकृष्णकी समान, कर्म भयंकर कर्म
 करने वाले भीमकी समान, रूप पराक्रम और शास्त्रज्ञान अर्जुन
 की समान, तथा विनय नकुल और सहदेवकी समान था ॥ ९ ॥
 धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सूत ! सुभद्राके पुत्र अपराजित अभिमन्यु
 के पूरे चरित्रको सुननेकी मुझे इच्छा है अतः अभिमन्युने रण
 में किस प्रकार मृत्यु पाई यह मुझे सुना ॥ ११ ॥ सञ्जयने कहा
 कि-हे महाराज ! सावधान हो जाइये और बड़े भारी शोकको
 दबाकर रखिये मैं आपको सम्बन्धियोंके घोर संहारका वृत्तान्त
 सुनाता हूँ उसको सुनिये ॥ १२ ॥ हे महाराज ! द्रोणाचार्यने चक्र-
 व्यूह रचा और उसमें इन्द्रकी समान राजाओंको यथास्थानपर
 खड़ा करदिया ॥ १३ ॥ चक्रव्यूहके प्रवेशमार्गों पर सूर्यकी समान
 तेजस्वी राजाकुमारोंको खड़ा करदिया उन सब राजकुमारोंने
 इकट्ठे रहनेकी प्रतिज्ञाकी थी इन सबकी ध्वजाएँ सुवर्णसे मढ़ी

रक्तावरधराः सर्वे सर्वे रक्तविभूषणाः ॥ १५ ॥ सर्वे रक्तपता-
काश्च सर्वे वै हेममालिनः । चन्दनागुरुदिग्धाङ्गाः स्रग्विणः
सूक्ष्मवाससः ॥ १६ ॥ सहिता पर्यधावन्त काष्णिं प्रति
युयुत्सवः । तेषां दशसहस्राणि वभूवुर्दृढधन्विनाम् ॥ १७ ॥
पौत्रं तव पुरस्कृत्य लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् । अन्योन्यसमदुःखास्ते
अन्योन्यसमसाहसाः ॥ १८ ॥ अन्योन्यं स्पर्धमानाश्च अन्यो-
न्यस्य हिते रता । दुर्योधनस्तु राजेन्द्र सैन्यमध्ये व्यवस्थितः १९
कर्णदुःशासनकृपैवृत्तो राजा महारथैः । देवराजोपमः श्रीमान् श्वेत-
च्छत्राभिसंवृतः ॥ २० ॥ चामरव्यजनाक्षपैरुदयन्निव भास्करः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोवस्थितनायकः २१ सिन्धुराजस्तथाऽति-
ष्ठच्छ्रीमान्मेरुरिवाचलः । सिन्धुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरो-

हुई थी, वे सब लाल वस्त्र और लाल आभूषण पहिरे हुए थे,
सबोंके कण्ठोंमें सुवर्णकी मालाएँ पड़ी हुई थीं, शरीरों पर चन्दन
लगा हुआ था, सूक्ष्म वस्त्र पहिरे हुए थे तथा सबके कण्ठोंमें
पुष्पमालाएँ पड़ी हुई थीं, ये सब योधा प्रतिज्ञाके अनुसार लड़ने
की इच्छासे अभिमन्युके ऊपर एकसाथ टूट पड़े, ये सब दृढ़ धनुष-
धारी योधा दश सहस्र थे ॥ १४-१७ ॥ परस्पर एकसा दुःख
सहसकनेवाले, एकसे साहसवाले, परस्परमें स्पर्धा रखनेवाले तथा
एक दूसरेका हित करनेवाले वे योधा तुझारे पोते प्रियदर्शन
लक्ष्मणको आगे करके अभिमन्युके ऊपर टूटपड़े हे राजेन्द्र! श्रीमान्
राजा दुर्योधन इस व्यूहके मध्यमें महारथी कर्ण कृपाचार्य और
दुःशासनकी साथमें लेकर खड़ाहुआ इन्द्रकी समान शोभा पारहा
था उसके दोनों ओर चमर और बड़े २ पंखे ढल रहे थे उसके मस्तक
पर श्वेत छत्र लगाहुआ था इस कारण वह उदय होतेहुए सूर्य
की समान मालूम होता था उस व्यूहके मुहानेपर सेनापति द्रोणा-
चार्य और सिन्धुदेशका राजा जयद्रथ सुमेरु पर्वतकी समान खड़ा

गमाः ॥ २२ ॥ सुतास्तव महाराज त्रिशत्तिदशसन्निभाः ।
गांधारराजः कितवः शल्यो भूरिश्रवास्तथा ॥ २३ ॥ पार्श्वतः
सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः । ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुलं लोम-
हर्षणम् ॥ २४ ॥ तावकानां परेपाञ्च मृत्युं कृत्वा निधर्त्तनम् २५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

चक्रव्यूहनिर्माणे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

सञ्जय उवाच । तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम् । पार्थाः
समभ्यवर्त्तन्त भीमसेनपुरोगमाः ॥ १ ॥ सात्यकिश्चेकितानश्च
धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महा-
रथः ॥ २ ॥ आर्जुनिः क्षत्रधर्मा च बृहत्क्षत्रश्च वीर्यवान् । चेदिपो
धृष्टकेतुश्च माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः ॥ ३ ॥ युधामन्युश्च विक्रान्तः
शिखण्डी चापराजितः । उत्तमौजाश्च दुर्धर्षो विराटश्च महारथः ४
द्रौपदेयाश्च संरन्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान् । केकयाश्च महा-

था हे महाराज ! देवताओंकी समान आपके तीस पुत्र अश्व-
त्थामाको आगेकर सिन्धुराज जयद्रथकी करवटमें खड़े थे जयद्रथ
की दूसरी करवटमें मायावी गन्धार देशका जुआरी राजा शकुनि,
शल्य और भूरिश्रवा ये तीन महारथी खड़े थे, तदनन्तर मृत्युको
सामने रखकर तुम्हारे पुत्रोंका तथा पांडवोंका रोमाञ्चकारी
तुमुल युद्ध आरम्भ होगया ॥ १-२५ ॥ चौतीसवाँ अध्याय
समाप्त ॥ ३४ ॥

सञ्जयने कहा, कि-द्रोणसे रक्षित तथा किसीसे दवाव न
खानेवाले उस व्यूह पर भीमसेनको आगे करके पाण्डव दूटपड़े।
सात्यकि, चेकितान, पृथपुत्र धृष्टद्युम्न, महापराक्रमी कुन्तिभोज,
महारथी द्रुपद, अभिमन्यु, क्षत्रधर्मा, वीर्यवान् बृहत्क्षत्र, चेदिराज
धृष्टकेतु, नकुल, सहदेव, घटोत्कच, बलवान् युधामन्यु, शिखण्डी,
अपराजित उत्तमौजा दुरार्धर्ष और महारथी विराट, क्रोधमें भर

वीर्या सृजयश्च सहस्रशः ॥५॥ एते चान्ये च सगणाः कृतास्त्रा
युद्धदुर्मदाः । समभ्यधावन सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः ॥ ६ ॥
समीपे वर्त्तमानांस्तान् भारद्वाजोऽतिवीर्यवान् । असम्भ्रान्तः शरौ-
घेण महता समचारयत् ॥ ७ ॥ महौघः सलिलस्येव गिरिमासाद्य
दुर्भिदम् । द्रोणं तेनाभ्यवर्त्तन्त वेतामिव जलाशयाः ॥८॥ पीडय-
मानाः शरै राजन् द्रोणचापत्रिभिःसृतैः । न शक्नुः प्रमुखे स्थातुं
भारद्वाजस्य पाण्डवाः ॥ ९ ॥ तदद्रभुजमपरयाम द्रोणस्य भुजयो-
र्वलम् । यदेनं नाभ्यवर्त्तन्त पञ्चालाः सृजयैः सह ॥ १० ॥ तमा-
यान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः । बहुधा चिन्तयापास द्रोणस्य
प्रतिचारणम् ॥ ११ ॥ अशक्यन्तु तमन्येन द्रोणं मत्वा युधिष्ठिरः ।

हुए द्रौपदीके पाँचों पुत्र, बली शिशुपालका पुत्र, महाबली कंकय,
महापराक्रमी सहस्रों सृजय तथा और भी बहुतसे युद्धदुर्मद
शस्त्रविद्यामें निपुण योधा अपने २ नायकों की छाया (रक्षा) में
रहकर एकसाथ द्रोणोचार्यके ऊपर टूटपड़े ॥२-६॥ उनके समीप
में आनेपर अतिबली द्रोण घबड़ाए नहीं किन्तु उन्होंने बड़ी भारी
बाणवर्षा कर उनको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥७॥ जलका बड़ा
भारी रेला जैसे दुर्भेद्य पर्वतसे टकराकर रुकजाता है और जैसे
बड़ा भारी जलाशय किनारेसे टकरा कर आगेको नहीं बढ़ता है
तैसे ही द्रोणके सामने पहुँचकर पाण्डव आगेको न बढ़सके ॥८॥
हे राजन् ! द्रोणके धनुषसे निकलेहुए बाणोंसे पीड़ा पाकर पाण्डव
उनके सामने खड़े न रहसके ॥९॥ हमने द्रोणकी भुजाओंका
ऐसा अचरज भरा बल देखा कि—सृजय और पांडव मिलकर
भी द्रोणके सामने टिक न सके ॥ १० ॥ अपनी ओर क्रोधमें
भरकर बढ़ते हुए द्रोणको देखकर युधिष्ठिर उनको हटानेको बड़े
विचार करनेलगे ॥ ११ ॥ उन्होंने विचारा कि—अभिमन्युके
सिंहाय इनको और कोई रोक नहीं सकना यह मानकर उन्होंने

अत्रिपहं गुरुं भारं सौभद्रे समवाष्टनम् ॥ १२ ॥ वासुदेवादन-
वरं फाल्गुनाच्चामितौजसम् । अत्रवीत् परवीरघ्नमभिमन्युमिदं
वचः ॥ १३ ॥ एतं नो नार्जुनो गर्ह्यथा तात यथा कुरु ।
चक्रव्यूहस्य न वयं विद्यो भेदं कथञ्चन । १४ ॥ त्वं नार्जुनो वा
कृष्णो वा भिन्धात् प्रद्युम्न एव वा । चक्रव्यूहं महाबाहो पञ्चमो
नोपपद्यते ॥ १५ ॥ अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि ।
पितॄणां मातुलानाञ्च सैन्यानां चैव सर्वशः ॥ १६ ॥ धनञ्जयो हि
नस्नात् गर्हयेदेत्य संयुगात् । क्षिप्रमस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशा-
तय ॥ १७ ॥ अभिमन्युरुवाच । द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकपवरं
युधि । पितॄणां जयमाकांक्षन्नवगाहेऽविलम्बितम् ॥ १८ ॥ उप-
दिष्टो हि मे पित्रा योगोनीकविशातने । नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं

अभिमन्युके ऊपर यह असह्य भार रखनेका विचार किया १२
और श्रीकृष्णकी समान शुद्ध चरित्रवाले अर्जुनकी समान बली
शत्रुनाशक अभिमन्युसे युधिष्ठिरसे कहा कि—॥ १३ ॥ हे तात ।
जिससे कि—अर्जुन रणमेंसे आकर हमारी निन्दा न करे, ऐसा
करो, चक्रव्यूहको कैसे तोड़नाय इस बातको हम जरा भी नहीं
जानते ॥ १४ ॥ हे महाबाहो ! तू, कृष्ण अर्जुन और प्रद्युम्न ये
चार ही चक्रव्यूहको कैसे तोड़जाता है इसको जानते हैं पाँचवाँ
पुरुष इस कामको नहीं करसकना ॥ १५ ॥ अतः हे तात !
अभिमन्यु ! तुम प्रार्थना करनेवाले चाचा नाऊ मामाऔर सैनिकों
के मनोरथको पूरा करो ॥ १६ ॥ और शीघ्र ही शस्त्र लेकर
द्रोणके चक्रव्यूहको तोड़डालो. नहीं तो अर्जुन संग्रामसे लौटकर
हमें ताना देगा ॥ १७ ॥ अभिमन्युने कहा, कि—मैं अपने चाचा
ताउओंकी विनय होनेकी इच्छासे दृढ़ और अतिभयङ्कर द्रोणकी
महासेनामें घुसना हूँ ॥ १८ ॥ मुझे पिताजीने चक्रव्यूहको तोड़ना
ही बताया है, परन्तु उससे बाहर निकलनेका उपाय नहीं

कस्याश्चिदापदि ॥ १६ ॥ युधिष्ठिर उवाच । मिथ्यनीकं युधां
 श्रेष्ठ द्वारं सञ्जनयस्व नः । वयं त्वानुगमिष्यामो येन त्वं तात
 यास्यसि ॥ २० ॥ धनञ्जयसमं युद्धे त्वां वयं तात संपुगे । प्रणि-
 धायानुयास्यामो रत्नन्तः सर्वतो मुखाः ॥ २१ ॥ भीम उवाच ।
 अहं त्वानुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः । पञ्चालाः केकया
 मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः ॥ २२ ॥ सकृद्भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र
 पुनः पुनः । वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान् वरान् ॥ २३ ॥
 अभिमन्युरुवाच । अहमेतत् प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम् ।
 पतङ्ग इव संकुट्रो ज्वलन्तं जातवेदसम् ॥ २४ ॥ तत्कर्माद्य करि-
 ष्यामि हितं यद्वंशयोर्द्वयोः । मातुलस्य च यत्प्रीतिं करिष्यति पितुश्च
 मे ॥ २५ ॥ शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि संघशः । द्रक्ष्यन्ति

वताया है अतः मैं किसी प्रकारकी आपत्तिमें फँस गया तो निकल
 नहीं सकूँगा ॥ १६ ॥ यह सुन युधिष्ठिर कहनेलगे, कि-हे
 योधाओंमें श्रेष्ठ ! तू चक्रव्यूहको तोड़ और उसमें हमारे घुसने
 को द्वार बना, जिस मार्गसे तू चक्रव्यूहमें प्रवेश करेगा उस ही
 मार्गसे हम भी तेरे पीछे २ घुस आवेंगे ॥ २० ॥ हे तात ! तू
 धनञ्जयकी समान पराक्रमी है अतः हम तुझे आगे करके तेरे
 पीछे २ चलेंगे और मार्गमें चारों ओरसे तेरी रक्षा करेंगे २१
 भीमसेन कहनेलगा कि-मैं, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, पञ्चाल, केकय,
 मत्स्य तथा सब प्रभद्रक तेरे पीछे २ आवेंगे और तू जहाँ २ चक्र-
 व्यूहको एकबार तोड़देगा तहाँ २ हम प्रवेश करके बड़े २ योधाओं
 को नष्ट कर डालेंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ अभिमन्युने कहा कि क्रोधमें
 भरे पतंगे जैसे जलतेहुए अग्निके ऊपर जापड़ते हैं, तैसे ही मैं भी
 जिसमें घुसना कठिन है ऐसी द्रोणकी सेनामें घुसनाऊँगा २४
 आज ऐसा पराक्रम करूँगा कि जिससे ननसाल और ददसाल
 दोनों कुलका हित होगा तथा पिताजी और मामाजी उससे प्रसन्न

सर्वभूतानि द्विपत्सैन्यानि वै मया ॥ २६ ॥ नाहं पार्थेन जातः
स्यां न च जातः सुभद्रया । यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाद्य
मुच्यते ॥ २७ ॥ यदि चैकार्थेनाहं समग्रं क्षत्रमण्डलम् । न करो-
म्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥ २८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ।
एवन्ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धताम् । यत्समुत्सहसे भेतुं
द्रोणानीकं दुरासदम् ॥ २९ ॥ रक्षितं पुरुषव्याघ्रर्महेश्वरसैर्महा-
बलैः । साध्यरुद्रमरुतुल्यैर्वस्वग्न्यादित्यविक्रमैः ॥ ३० ॥ सञ्जय
उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स यन्तारमचोदययत् ॥ ३१ ॥ सुमित्रा-
श्वान् रणे क्षिपं द्रोणानीकाय चोदय ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

अभिमन्युप्रतिज्ञायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सञ्जय उवाच । सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।

होंगे, मैं अकेला हूँ और बालक हूँ, तो भी शत्रुओं की सेनाका संहार
कर डालूँगा, इसको सब प्राणी देखेंगे २५-२६ मेरे जीतेजी यदि कोई
शत्रु जीता जागता वचजाय तो मैं अर्जुनका पुत्र नहीं ॥ और
सुभद्राके पेटसे जन्मा नहीं ॥ २७ ॥ यदि एक रथमें बैठकर मैं
सम्पूर्ण क्षत्रियोंके समूहके आठ टुकड़े न कर दूँ तो मैं अर्जुनसे
पैदा ही नहीं हुआ ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि—हे सुभद्रानन्दन !
महाधनुषधारी साध्य, रुद्र और पवनकी समान बली सूर्यकी
समान पराक्रमी पुरुषोंसे रक्षित होनेके कारण महादुर्गम द्रोणकी
सेनाको तोड़नेका तू उत्साह करता है और प्रतिज्ञा करता है ।
ऐसा कहनेवाले तेरा बल बढ़े ॥ २९-३० ॥ सञ्जयने कहा कि
युधिष्ठिरके ऐसे वचनोंको सुनकर अभिमन्युने सारथीसे कहा,
कि—हे सुमित्र ! अपने घोड़ोंको द्रोणकी सेनाकी ओरको बढ़ाओ
॥ ३१ ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥

सञ्जयने कहा कि—हे भारत ! बुद्धिमान् धर्मराजकी इस बात

अचेदयत् यन्तारं द्रोणाजीकाय भारत ॥ १ ॥ तेन संचायमानस्तु याहि याहीति सारथिः । प्रयुवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २ ॥ अतिमारोग्यमायुष्मन्नाहितस्त्वपि पाण्डवैः । सम्प्रधार्य क्षणं बुद्ध्या तनरत्वं योद्धमर्हसि ॥ ३ ॥ आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः । अत्यन्तसुखसंतुष्टस्त्वञ्चायुद्धविशारदः ४ ततोभिमन्युः प्रहसन् सारथिं वाक्यमब्रवीत् । सारथे कोन्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥ ५ ॥ ऐरावतगतं शकं सहामरगणैरहम् । अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणार्चितम् । योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ॥ ६ ॥ न ममैतद् द्विपत्सैन्यं कलामर्हति पोडशीम् । अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य मृतज ॥ ७ ॥ पितरं

को सुनकर अभिमन्युने सारथीसे द्रोणकी सेनाकी ओरको चलने को कहा ॥ १ ॥ अभिमन्युके चारम्बार चल २ कहने पर हे राजन् ! सारथिने अभिमन्युसे यह बात कही ॥ २ ॥ पाण्डवोंने आपके ऊपर बड़ा भारी बोझा डाल दिया है अतः आप क्षण भर बुद्धिके साथ उसको विचार लो फिर युद्ध करनेके लिये चतना ॥ ३ ॥ द्रोणाचार्य बड़े शक्तिमान् हैं उन्होंने शस्त्र-विद्या में बड़ा भारी परिश्रम किया है और तुम बड़े सुखमें पलते रहे हो तथा युद्धमें उनकी समान निपुण भी नहीं हो अभिमन्युने खिलखिलाके हँसकर सारथिसे कहा कि-अरे ! यह द्रोण और क्षत्रियोंका समूह क्या है ? ॥ ५ ॥ यदि ऐरावत हाथी पर चढ़ कर स्वयं इन्द्र भी देवताओंको साथमें लेकर लड़नेको आवे अथवा भूतगणोंको साथमें लेकर ईशान शिव भी लड़नेको आवें तो मैं उनसे भी लड़ूँगा, इन राजाओं को देखकर मुझे आश्चर्य नहीं होता है ये मेरे सोलहवें भागकी बराबर भी नहीं है, हे मृत ! अधिक क्या कहूँ, यदि युद्धमें विश्वजित मामा श्रीकृष्ण और पिता अर्जुनसे भी सामना हो

चाञ्चुर्न युद्धे न भीर्माद्युपयास्यति । अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थी-
कृत्य सारथेः ॥ ८ ॥ याहीत्येवावधीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम् ।
ततः संनोदयामास हयानां त्रिहायनान् ॥ ९ ॥ नातिहृष्टमनाः
सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् । ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय
वाजिनः ॥ १० ॥ द्रोणमभ्यद्रवन् राजन् महावेगपराक्रमम् । तमु-
दीक्ष्य तथायान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः । अभ्यवर्त्तन्त कौरव्याः पांड-
वाश्च तमन्वयुः ॥ ११ ॥ स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः सुवर्णवर्मा-
र्जुनिरर्जुनाद्वरः । युयुत्सया द्रोणमुखान् महारथान् समासदत्
सिंहशिशुर्यथा द्विभान् ॥ १२ ॥ ते विंशतिपदे यत्ताः सम्प्रहारं
प्रचक्रिरे । आसीद् गाङ्गा इवावर्त्तो मुहूर्त्तमुदधाविव ॥ १३ ॥ शूराणां

जाय तो भी मैं डरनेवाला नहीं हूँ इसप्रकार अभिमन्युने सारथी
की बातका तिरस्कार कर सारथिसे द्रोणकी ओरको शीघ्रतासे
रथ बढ़ानेको कहा, यह सुनकर सारथी मनमें प्रसन्न तो नहीं
हुआ परन्तु सुनहरी आभूषणोंवाले तीन वर्षके घोड़ोंको द्रोणकी
ओर बढ़ाया ॥ ७-१० ॥ हे राजन् ! वे घोड़े महापराक्रमी और
वेगवाले द्रोणकी सेनाकी ओरको दौड़गये इसप्रकार अभिमन्युको
अपनी ओर घटता हुआ देखकर द्रोण आदि कौरवपक्षके सब
योधा उसके सामने होगए, पाण्डव अभिमन्युके पीछे २ चत्तरहे
थे ॥ ११ ॥ बड़े भारी कनेरके वृत्तकी समान ऊँची ध्वजावाला,
सुवर्णके कवचको पहिरे अर्जुनसे भी बड़ा चढ़ा अर्जुनका पुत्र
युद्ध करनेकी इच्छासे द्रोण आदि महारथियोंके सामने इस
प्रकार डटगया, जैसे हाथियोंमें सिंहका वच्चा जा डटता है १२
अभिमन्युको चक्रव्यूहमें प्रवेश करते हुए देखकर, चक्रव्यूहके
रक्तक उसके ऊपर एकसाथ टूटपड़े समुद्रमें गंगाके मिलने पर
जैसे क्षण भरको गङ्गामें भँवरियें पड़ती हैं तैसे ही रणमें वालोंका
प्रहार होनेलगा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! एक दूसरेका संहार करने

युध्यमानानां निघ्नतापिनरेतम् । संग्रामस्तुमुलो राजन् प्रावर्त्तन्
 मुदारुणः ॥ १४ ॥ प्रवर्त्तमाने संग्रामे तस्मिन्नविभयङ्करे । द्रोणस्य
 मिषतो व्यूहं भित्त्वा प्राविशदार्जुनिः ॥ १५ ॥ तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं
 शत्रुसंघान् महाबलम् । हस्त्यश्वरथपत्तयोधाः परिवव्रुर्द्वयुधाः १६
 नानावादित्रनिनदैः द्रोडिजोत्क्रुष्टगर्जितैः । हुङ्कारैः सिंहनादैश्च
 तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥ १७ ॥ घोरैर्हलहलाशब्दैर्मृगास्तिष्ठेहि
 मामिति । असावहममित्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥ वृंहितैः
 शिञ्जितैर्द्वासैः करनेमिस्वनैरपि । सन्नादयन्तो वभ्रुवामभिदुद्रु-
 रार्जुनिम् ॥ १९ ॥ तेषामापतत्रां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः ।
 क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन् मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥ ते हन्यमाना

वाले योधाओंका आपसमें मद्दादारुण संग्राम होनेलगा ॥ १४ ॥
 महाभयङ्कर संग्राम चल रहा था, उस समय द्रोणके देखते हुए
 भी महाबली अभिमन्यु चक्रव्यूहको तोड़कर उसके भीतर घुस
 गया ॥ १५ ॥ तहाँ प्रवेश कर घुडसवार रथी और पैदल शत्रुओं
 की बड़ीभारी सेनाका संहार करतेहुए अभिमन्युको हाथोंमें
 हथियार उठाये हुए हाथीसवार घुडसवार रथी और पैदलोंने
 घेरलिया ॥ १६ ॥ नानाप्रकारके शब्द उपहास तथा हाथोंके
 शब्द करके तथा मार डालो ऐसी गर्जना और हुङ्कारे तथा सिंह-
 नाद करके ठहर जा २ घेरे सामने आ, मैं तेरा शत्रु यह खड़ा हूँ,,
 ऐसी बकवादके साथ वे अभिमन्युको लड़नेके लिये बार-बारलाने
 लगे, गर्जना, भूनाभूनाहट, हास्य, तालियें और रथके पहियोंके
 शब्दोंसे पृथ्वीको गुंजारते हुए कौरव योधा अभिमन्यु पर दृढ़
 पड़े ॥ १७-१९ ॥ हे राजन् ! महाबली मर्मस्थानोंको जानने
 वाले शीघ्रतासे युद्ध करनेवाले और शस्त्रोंका उपयोग जाननेवाले
 अभिमन्युने भी सामने आयेहुए उन योधाओंके मर्मस्थानोंमें मर्म-

विवशा नानालिङ्गैः शितैः शरैः । अभिपेतुः सुबहुशः शलाभा इव
 पावकम् ॥ २१ ॥ ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः । सन्त-
 स्नार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदीमिवाध्वरे ॥ २२ ॥ बहुगोधांगुलिजा-
 णान् सशरासनसायकान् । सासिचर्माकुशाभीषून् सतोमरपरश्व-
 धान् ॥ २३ ॥ सगदायोगुडप्रासान् सष्टितोमरपट्टिशान् । सभिन्दि-
 पालपरिधान् सशक्तिवरकम्पनान् ॥ २४ ॥ सस्यतोदमहाशंखान्
 सकुन्तान् सकचग्रहान् । समुद्रगरक्षणीयान् सपाशपरिवोप-
 लान् ॥ २५ ॥ समेयूरोद्गदान् बाहून् हृद्यगन्धानुलेपनान् । संचि-
 च्छेदार्जुनिवृत्ता त्वदीयानां सहस्रशः ॥ २६ ॥ तैः स्फुरद्भिर्महा-
 राज शुशुभे भूः सुलोहितैः । पञ्चास्यैः पन्नगैश्छिन्नैर्गण्डनेव
 मारिष ॥ २७ ॥ मुनासाननकेशान्तैरब्रणैश्चारुकुण्डलैः । सन्दष्टौ-

भेदी बाण मारकर उनको वींघ डाला ॥ २० ॥ तेजक्रिये हुए नाना
 प्रकारके लक्ष्णोंवाले बाणोंसे घायल हुए बहुतसे योधा विवश
 होकर जैसे पतङ्गे अग्निमें गिरते हैं, तैसे ही भूमिमें गिरने लगे २१
 अभिमन्युने थोड़ी ही दूरमें योधाओंके शरीर और शरीरके अङ्गों
 से पृथ्वीको इसप्रकार ढकदिया जैसे यज्ञमें वेदीको कुशोंसे ढक
 देते हैं ॥ २२ ॥ चमड़ेके दस्तानेवाले, धनुष, बाण, ढाल, तलवार
 अंकुश, भाथे, तोमर, फरसी, मुद्गर, गोफनी, फाँसे, परिघ, पत्थर,
 गदा, अयोगुड, प्रास, श्रृष्टि, तोमर, पट्टित, भिन्दिपाल और परिघ
 शक्ति, श्रेष्ठ कम्पन, चातुक बड़े २ शंख, भाले, अंकुश, बाजूबन्द
 और पहुँची धारण करनेवाले हृदय पर यथारुचि चन्दनका लेप
 करनेवाले तुम्हारे सैन्हों योधाओंके हाथोंको अभिमन्युने
 फुरतीसे काट डाला ॥ २३-२६ ॥ हे राजन् ! लोहलुहान
 हुए लाल २ इधर उधर लुढ़कती हजारों भुजाओंसे पृथ्वी
 ऐसी शोभा पागही थी जैसे पाँच मुखोंवाले सर्पोंको गरुडजीने
 काटकर फेंक दिया हो ॥ २७ ॥ अर्जुनके पुत्र अभिमन्युने शत्रु-

एषुष्टैः क्रोधात् क्षरद्भिः शोणितं बहु ॥ २८ ॥ स चारुमुकटोष्णी-
पैर्मणिरत्नविभूषितैः । विनालनलिनाकारैर्दिवाकरशशिप्रभैः २९
हितप्रियंवदैः काले बहुभिः पुण्यगन्धिभिः । द्विपच्छिरोभिः पृथिवीं
स वै तस्तार फाल्गुनिः ॥ ३० ॥ गन्धर्वनगराकारान् विधिवत्
कल्पितान् रथानाईषामुखान् द्वित्रिवेणून् न्यस्तदण्डकवन्धुरान् ३१
विजंघाकूचरास्तत्र विनेमिदशनानपि । विचक्रोपस्करोपस्थान् भग्नो-
पकरणानपि ॥ ३२ ॥ प्रपानितोपस्तरणान् हतयोधान् सहस्रशः ।
शरैर्विशकलीकुर्वन् दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ॥ ३३ ॥ पुनर्द्विपान् द्विपा-
रोहान् वैजयन्त्यंकुशध्वजान् । तूणान् वर्माण्यथो कच्या ग्रैवेयाश्च
सकन्वतान् ॥ ३४ ॥ घण्टाः शुण्डा विपाणाग्रान् क्षत्रमालाः

आँके मस्तकोंसे पृथिवीको ढकदिया वे मस्तक सुन्दर नाक मुख
और केशोंवाले, घावरहित सुन्दर कुण्डलोंसे शोभायमान दाँतोंसे
क्रोधसे आँठोंको काटतेहुए मुखोंसे रक्त आँकनेवाले, सुन्दर मुकुट
और पगड़ी धारण किये, मणि और रत्नोंसे विभूषित, डंडीरहित
कमलोंकी समान, सूर्य और चन्द्रमाकी समान कान्तिवाले, हिंद
कारी और प्यारी बातें कहनेवाले और श्रेष्ठ सुगन्धयुक्त थे
॥ २८-३० ॥ अभिमन्युने गन्धर्वनगरोंकी समान आकारवाले,
शास्त्रानुसार बनायेहुए जुएके अग्रभागरूप मुखवाले, दो या
तीन पाँसोंवाले, टेकनी पर टिकेहुए सैकड़ों रथोंको तोडडाला
उन रथोंकी जंघा और कूवर टूटे पड़े थे (नेमि) पहियोंकी धार-रूप
दाँत टूटे पड़े थे, पहिये दूसरे अवयव ढज्जे तथा अन्यभाग टूट
गए, गदियें फटगई, और उनमें बैठनेवाले हजारों योधा मर गए थे
उस समय बाणोंका प्रहार करता हुआ अभिमन्यु सब दिशाओंमें
समायाहुआ सा दीखता था ॥ ३१-३३ ॥ अभिमन्युने फिर
शत्रुके हाथोंवाले अंकुश वैजयन्ती माला, ध्वजा, भाथे, कवच
हाथियोंकी कमरपेटी, गलेके बन्धन, झूलें, घण्टे, सूँड दाँतोंके

पदानुगान् । शरीरनिशितधागग्रैः शात्राणामशानयत् ॥ ३५ ॥
 वनायुजान् पार्वतीयान् काम्बोजानाथ बाल्हीकान् । स्थिरबाल-
 विकर्णक्षान् जवनान् साधुवाहिनः ॥ ३६ ॥ आरुढान् शिन्तितै-
 र्योधैः शक्त्यष्टिप्रासयोधिभः । विध्वस्तचामरमुखान् विप्रविद्रुमकी-
 र्णकान् ॥ ३७ ॥ निरस्तजिह्वानयनान् निष्कीर्णान्त्रयकृदधनान् ।
 हतारोहांच्छिन्नघण्टान् कव्यादगणमोदकान् ॥ ३८ ॥ निकृत्तचर्म-
 कवचान् शकुन्मूत्रासृगाप्लुतान् । निपातयन्नरश्वरास्तावकान् स
 व्यरोचत् ॥ ३९ ॥ एको विष्णुरिवाचिन्त्यं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
 तथा निर्मथितां तेन त्र्यंगं तव बलं मदत् ॥ ४० ॥ यथासुरबलं

अग्रभाग, छत्री, माला और पीछे चलनेवाले पुरुषोंको धारवाले
 तेज बाणोंसे काटडाला ॥ ३४-३५ ॥ वनायु, वनवासी, पर्वती,
 काम्बोज और बाल्हीक देशमें उत्पन्न हुए, सुन्दर अयालवाले और
 नेत्र तथा कानोंवाले, शीघ्रगामी अच्छी सवारी देनेवाले और
 जिनके ऊपर शक्ति, ऋष्टि तथा तोमरोंसे युद्ध करनेवाले चतुर
 योधा सवार थे तुम्हारे ऐसे घोड़ोंकी भी अभिमन्युने काटडाला
 और अभिमन्युने कितने ही घोड़ोंकी ग्रीवाके बाल और मुखोंको
 काटडाला, कितने ही घोड़ोंके शरीरके अवयव जिह्वा तथा नेत्रोंको
 काटडाला, कितने ही घोड़ोंके शरीरोंमेंसे बाणोंके प्रहारसे आँते
 और जिगर निकल पड़े बहुतोंके सवार मारे गए तथा बहुतोंके
 कण्ठोंमेंके घुँघुरू कट गए इसप्रकार घोड़ोंके नाशसे मांसाहारी
 पक्षी और राजसोंको बड़ा हर्ष हुआ था, अभिमन्युने तुम्हारे
 घोड़ोंके चमड़ेके कवचोंको काटडाला उस समय बहुतसे घोड़े
 भयके मारे लीद कर रहे बहुतसे मृत रहे बहुतरे रक्तमें न्हागये
 इसप्रकार अभिमन्यु बीच सेनामें घोड़ोंका संहार करता हुआ बड़ी
 शोभा पारहा था ॥ ३६-३९ ॥ हे राजन् ! अकेले अभिमन्युने
 विष्णुकी समान अभिन्तनीय और भयानक पराक्रम किया था

चोरं व्यम्बकेन महौजसा कृत्वा कर्म रणोऽसहं परैराजुनि-
 राहवे ॥ ४१ ॥ अभिनच्च पदात्पयोधांस्त्वदीयानेव सर्वशः ।
 एवमेकेन तां सेनां सौमद्रेण शितैः शरैः ॥ ४२ ॥ भृशं विप्रहतां
 दृष्ट्वा स्कन्देनेवांसुरीं चमूम् । त्वदीयास्तव पुत्राश्च वीज-
 माणा दिशो दश ॥ ४३ ॥ संशुष्कास्याथलन्नेत्राः प्रस्विन्ना रोम-
 हर्षिणः । पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विपञ्चये ॥ ४४ ॥
 गोत्रनामभिरन्योन्यं क्रन्दन्तो जीवितैर्षिणः । इतान् पुत्रान् पितॄन्
 भ्रातॄन् बन्धून् सम्बन्धिनस्तथा ॥ ४५ ॥ प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य
 त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

अभिमन्युपराक्रमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सञ्जय उवाच । तां प्रभग्नां चमू दृष्ट्वा सौमद्रेणामितौजसा ।

और असुरोंकी भयानक सेनाका नाश किया था तैसे ही अभि-
 मन्युने भी तुम्हारी तीन अङ्गवाली सेनाका संहार कर डाला और
 शत्रुओंसे सहा न जाय ऐसा महापराक्रम दिखाया जैसे स्वामी
 कार्तिकेयने असुरोंकी सेनाका नाश कर डाला था तैसे ही अकले
 ही अभिमन्युने तेज बाणोंसे पैदलोंका नाश कर डाला यह देख
 कर तुम्हारे योधा और पुत्र दशों दिशाओंमेंको भाँकनेलगे उनके
 मुख मुखगए, आँखें डगमगागईं पसीना आगया, रोंगटे खड़े
 होगए और शत्रुओंको जीतनेमें उत्साहहीन हो भागना चाहनेलगे
 जीते रहनेकी इच्छासे वे परेहुए पुत्र, पिता, भाई, बन्धु और
 सम्बन्धियोंको छोड़, अपने नाम तथा गोत्र कह २ कर दूसरोंको
 भी बुलातेहुए, शीघ्रतासे घोड़े और हाथियोंको हाँक २ कर
 रणमेंसे भाग गए ॥ ४०-४६ ॥ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

सञ्जयने कहा, कि परम पराक्रमी अभिमन्युने सेनाको निरु-
 त्तर हुई देखकर दुर्योधनको बड़ा क्रोध आया अतः वह स्वयं

दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात् ॥ १ ॥ ततो राजान-
मावृत्तं सौभद्रं प्रति संपुगे । दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्योधान् परोऽसध्वं
नराधिपम् ॥ २ ॥ पुरामिषन्युर्लक्षं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान् ।
तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम् ॥ ३ ॥ ततः कृतज्ञाः वलिनः
सुहृदो जिनकाशिनः । त्रास्यमाना भयादीरं परिव्रुस्तवात्मजम् ४
द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौवलः । बृहद्रथो मद्राजो
भूरिभूरिश्रवा शलः प्रपौरवो वृषसेनश्च विमृजन्तः शराञ्छितान् ।
सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन् ॥ ६ ॥ सम्भोदयित्वा तमथ दुर्यो-
धनमपोचयन् । आस्याद् ग्रासमित्राक्षिप्तं ममृषे नार्जुनात्मजः ७ ॥
तान् शरौवेय महता साश्वमूतान्महस्थान् । विमुखीकृत्य सौभद्रः
सिंहनादमथानदत्तात्तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवामिपेपिणः ।

ही अभिमन्युके सामनेको जा पहुँचा ॥ १ ॥ इस युद्धमें दुर्योधनको
सुभद्रानन्दनकी ओरको बढ़ता हुआ देखकर द्रोणाचार्यने योष-
ओंसे कहा कि—तुम दुर्योधनकी रक्षा करो ॥ २ ॥ क्योंकि—वली
अभिमन्यु हमारे देखते हुए पहले ही लक्ष्य बनाकर योषाओंका
नाश कर रहा है इसलिये दुर्योधनके पीछे २ जाकर भट उसकी
रक्षा करो और डरना मत ॥ ३ ॥ यह सुनकर कृतज्ञ वली और
विजय पानेवाले संबन्धी तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी भयसे रक्षा
करनेके लिये उसके चारों ओर होलिये ॥ ४ ॥ इतनेमें ही द्रोण
अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, सुवलपुत्र, कृतवर्मा, बृहद्रथ, मद्र-
राज, भूरिश्रवा, पौरव, शल, वृषसेन ये अभिमन्युके ऊपर
वाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ५—६ ॥ उन सबोंने इसप्रकार अभि-
मन्युको गडवडीमें डालकर दुर्योधनको बचालिया, मुखमेंसे निकाले
हुए ग्रासकी समान दुर्योधनका छूटना अभिमन्युसे सहा नहीं
गया ॥ ७ ॥ उसने बड़ीभारी वाणवर्षा कर सारथी और घोड़ों
सहित उन महारथियोंको भगाकर सिंहनाद किया ॥ ८ ॥ मांस-

नामृण्यंत सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखो रयाः ॥ १६ ॥ न एनं कोष्ठकीकृत्य
 रथवंशेन मारिष । व्यसृजन्निपुंनान्तालानि नानालिङ्गानि सद्यशः ॥ १७ ॥
 तान्यन्तरिक्षे विच्छेद पौत्रतेर्निशतैः शरैः । तांश्चैव प्रतिविन्याध
 तदद्भुतप्रिवाभवत् ॥ १८ ॥ तस्ते कोपितास्तेन शरैराशीनिपोपमैः ।
 परिवव्रुर्जिघांसन्तः सौभद्रमपराजितम् ॥ १९ ॥ समुद्रमिव पर्य-
 स्तं त्वदीयं तं वल्लार्णवम् । दधारैर्कोर्जुर्निर्घाणैर्वलेव भरतर्षभ ॥ २० ॥
 शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् । अभिमन्योः परेपाञ्च
 नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः ॥ २१ ॥ तस्मिंस्तु घोरैः संग्रामे वर्त्त-
 माने भयङ्करे । दुःसहो नवभिर्वाणैरभिमन्युमविध्यत ॥ २२ ॥
 दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वत्स्त्रिभिः । द्रोणस्तु सप्तदशभिः
 शरैराशीनिपोपमैः ॥ २३ ॥ विविंशतिस्तु सप्तत्या कृतवर्मा च
 चाहनेवाले सिंहकी समान अभिमन्युके नादको द्रोण आदि सह
 न सके और वे क्रोधमें भरगए ॥ २४ ॥ हे राजन् ! वे उसको रथों
 से चारों ओरसे घेरकर अनेकों प्रकारके चिन्होंवाले बाणोंके
 जालोंको उसके ऊपर छोड़नेलगे ॥ २५ ॥ परन्तु तुम्हारे
 पौत्र अभिमन्युने तेज शस्त्रोंके प्रहारसे उस बाण-जालके
 टुकड़े २ करके उन महारथियों को भी घायल करदिया यह एक
 अद्भुतसा काम हुआ ॥ २६ ॥ अभिमन्युके सपोंकी समान
 बाणोंके प्रहारोंसे कोपमें भरेहुए उन महारथियोंने अभिमन्युको
 मारनेकी इच्छासे चारों ओरसे घेरलिया ॥ २७ ॥ हे भरतर्षभ !
 उस समय तुम्हारी सेना समुद्रकी समान उफन पड़ी उसको अभि-
 मन्युने बाणोंके द्वारा किनारेकी समान रोकदिया ॥ २८ ॥ एक
 दूसरेका वध करते हुए वीर योधा और अभिमन्यु इनमेंसे किसी
 ने भी पीछेको पैर नहीं रक्खा ॥ २९ ॥ उस भयानक घोर
 संग्रामके समय दुःसहने अभिमन्युके नौ बाण मारे ॥ ३० ॥
 दुःशासनने बारह, कृपाचार्यने तीन, द्रोणने सपोंकी समान सत्रह
 बाण अभिमन्युके मारे ॥ ३१ ॥ और विविंशतिने सत्तर, कृतवर्मा

सप्तभिः । बृहद्भलस्तथाष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ १७ ॥ भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्मद्रेशः षड्भिराशुगैः । द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः ॥ १८ ॥ स तु तान् प्रतिविज्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः । नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान् ॥ १९ ॥ ततोऽभिमन्युः संक्रुद्धस्त्रास्यमानस्तवात्मजैः । विदर्शयन् वै सुमहच्छिखोरसकृतं बलम् ॥ २० ॥ गरुडानिलरंहोभिर्भ्यन्तुर्वक्त्रिकरैर्यैः । दान्तैरश्मकदायादस्त्वरमाणो ह्यवारयत् ॥ २१ ॥ विज्याधं दशभिर्बाणैस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् । तस्याभिमन्युदशभिर्हयान् मृतं ध्वजं शरैः ॥ २२ ॥ बाहू धनुः शिरश्चोर्व्या स्मयमानोभ्यपातयत् । ततस्तस्मिन् हते वीरे सौभद्रेणाश्मकेश्वरे ॥ २३ ॥ सञ्चंचाल

ने सात, बृहद्भलने आठ और अश्वत्थामाने सात बाण मारे १७ भूरिश्रवाने तीन, शन्यने शीघ्र जानेवाले छः, शकुनिने दो और राजा दुर्योधनने अभिमन्युके तीन बाण मारे ॥ १८ ॥ परन्तु हे महाराज ! प्रतापी अभिमन्युने हाथमें धनुष लेकर जैसे नाच रहा हो इसप्रकार घूम घूम कर उन सब बाणोंको सीधे जानेवाले तीन तीन बाणोंसे काट डाला ॥ १९ ॥ तथापि तुम्हारे पुत्र उसको भय दिखारहे थे, इस कारण क्रोधमें भरेहुए अभिमन्युने उनको अपनी बड़ी भारी अस्त्रशिक्षाका बल दिखाना आरंभ कर दिया २० अश्मक देशका राजा सारथिके कहनेमें चलनेवाले, गरुड़ और वायुकी समान वेगवाले तथा चतुर घोड़ोंको हाँक कर शीघ्रतासे अभिमन्युके समीपमें आया और उसको रोकनेके लिये दश बाण मारकर अभिमन्युसे कहने लगा, कि-अरे ! खड़ा रह ॥ खड़ा रह ॥ परन्तु अभिमन्युने हँसते २ दश बाणोंसे उसके घोड़े, सारथी, ध्वजा, दोनों भुजाओं, धनुष और शिरको भूमिमें गिरा दिया, उस वीर अश्मक राजाके अभिमन्युके हाथसे मारे जाने पर सब सेना विचलित होकर भागनेको उद्यत होगई । इतनेमें ही कर्ण,

बलं सर्वं पलायनपरायणम् । ततः कर्णः कृपो द्रोणा द्रोणिर्गा-
धारराट् शलः ॥ २४ ॥ शल्यो भूरिश्रवाः काथः सोमदत्तो विवि-
शतिः । वृषसेनः सुपेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः ॥ २५ ॥ वृन्दारको
ललितश्च प्रवाहुर्दीर्घलोचनः । दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवा-
किरन् ॥ २६ ॥ सोतिविद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्वगैः । शर-
मादत्त कर्णाय वर्मकायावभेदिनम् ॥ २७ ॥ तस्य भित्वा तनुत्राणं
देहं निर्भिद्य चाशुगः । प्राविशद्वरणीं वेगाद् बलमीकमिव पन्नगः २८
स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव । सञ्चचाल रणे कर्णः
क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ २९ ॥ तथान्यैर्निशितैर्वाणैः सुपेणं दीर्घ-
लोचनम् । कुण्डभेदिञ्च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद्वली ॥ ३० ॥
कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्षयत् । अश्वत्थामा च
विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ३१ स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धः शक्रात्म-

कृप, द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि, शल, शल्य, भूरिश्रवा, काथ,
सोमदत्त, विविशति, वृषसेन, सुपेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक,
ललितश्च, प्रवाहु, दीर्घलोचन और दुर्योधन क्रोधमें भरकर अभि-
मन्युके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २१-२६ ॥ उन महा-
धनुषधारियोंके छोड़ेहुए सीधे जानेवाले उन बाणोंसे अभिमन्यु
बहुतही विधगया परन्तु उसने कवच और शरीरको फोड़नेवाला
बाण कर्णके मारा ॥ २७ ॥ वह बाण सर्पके विलमें घुसनेकी
समान कर्णके कवच और शरीरको फोड़कर बड़े वेगसे पृथ्वीमें
घुसगया ॥ २८ ॥ उस महाप्रहारके कारण कर्णको बड़ी पीड़ा
हुई और भूकम्पके समय पृथ्वीके ढगमगानेकी समान वह रण-
भूमिमें काँपउठा ॥ २९ ॥ कर्णके बाण मारा तैसे ही बलवान्
अभिमन्युने क्रोधमें भरकर तीन बाणोंसे सुपेण, दीर्घलोचन और
कुण्डभेदीको घायल करदिया ॥ ३० ॥ कर्णने पञ्चीस, अश्व-
त्थामाने बीस और कृतवर्माने सात नाराच बाण अभिमन्युके

जाम्बजः । विचरन् दृष्टो सैन्ये पाशहस्त इवान्तकः ॥ ३२ ॥
 शल्यश्च शरवर्षेण सपीपस्थमवाकिरत् । उदक्रोशन्महाबाहुस्तव
 सैन्यानि भीषयन् ॥ ३३ ॥ ततः स विद्वोस्त्रविदा मर्मभिन्निरजि-
 ह्मणैः । शल्यो राजन् रथोऽस्थे निपसाद मुमोह च ॥ ३४ ॥
 तं हि दृष्ट्वा तथा विद्वं सौभद्रेण यशस्विना । सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा
 भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥ संप्रेक्ष्य तं महाबाहुं रुक्मपुङ्गवः समा-
 वृतम् । त्वदीयाः प्रपलायन्ते मृगाः सिंहादिता इव ॥ ३६ ॥ स तु
 रणयशसाभिपूज्यमानः पितृसुरचारणसिद्ध्यत्तसंधैः । अवनितल-
 गतैश्च भूतसंघैरतिविबभौ हुतभृग्यथाज्यसिक्तः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

अभिमन्युपराक्रमे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

मारो ॥ ३१ ॥ रणमें घूमना हुआ बाणोंसे छिड़े हुए सकल
 अज्ञोंवाला, इन्द्रके पुत्रका पुत्र, (अभिमन्यु) क्रोधमें भराहुआ
 पाशधारी यमकी समान दिखाई दे रहा था ॥ ३२ ॥ महाबाहु
 अभिमन्युने पासमें खड़ेहुए शल्यको बाण वरसा कर छादिया
 और तुम्हारी सेनाको डरानेके लिये बड़ी गर्जना की ॥ ३३ ॥
 अस्त्रवेत्ता अभिमन्युके सीधे जानेवाले बाणोंसे भिदाहुआ शल्य
 रथका दण्डा पकड़कर बैठ गया और मूर्छित होगया ॥ ३४ ॥
 यशस्वी अभिमन्युने इसप्रकार बाणोंके प्रहारसे शल्यको मूर्छित
 करदिया, यह देखकर द्रोणाचार्यके देखते हुए ही सब सेना
 भागनेलगी ॥ ३५ ॥ सुवर्णकी पूँछोंवाले बाणोंसे शल्य विधगया
 तब सिंहके सतायेहुए मृगोंकी समान कौरवसेना रणमेंसे भागने
 लगी ॥ ३६ ॥ इस समय पितर, देवता, चारण, सिद्ध, यत्त तथा
 पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्य अभिमन्युके पराक्रमका गान करके
 उसकी पूजा करनेलगे और अग्निमें घी डालनेसे जैसी अग्नि
 प्रदीप्त होती है तैसे ही अभिमन्यु भी इससे अधिक शोभा पाने
 लगा ॥ ३७ ॥ सैतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगैः ।
 आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन् ॥१॥ सञ्जय उवाच ।
 शृणु राजन् कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत् । विभित्सतो रथानीकं
 भारद्वाजेन रक्षितम् ॥२॥ मद्रेण सादितं दृष्ट्वा सौमद्रेणाशुगै रणे ।
 शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन् वाणान् समभ्ययात् ॥३॥ स विध्वा
 दशभिर्बाणैः सारथ्यतारमार्जुनित् । उदकोशन्महाशब्दं तिष्ठ
 तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४ ॥ तस्यार्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनु-
 र्हयान् । छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च ॥ ५ ॥ चक्रं
 युगं च तूणीरं ह्यनुकर्पश्च सायकैः । पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोप-
 करणानि च ॥ ६ ॥ लघुहस्तः प्रविच्छेद ददृशे तं न कश्चन
 स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः ॥७॥ वायुनेव महाशैलः

धृतराष्ट्रने वृक्ता, कि-हे सञ्जय ! इसप्रकार महाधनुषधारियों
 का सीधे जानेवाले बाणोंसे अभिमन्यु नाश करने लगा, उस समय
 उसको रणभूमिमें कौरवोंमेंसे किसने रोका था ? ॥ १ ॥ सञ्जय
 ने कहा, कि-हे राजन् ! द्रोणाचार्य जिस रथसेनाकी रक्षा कर रहे
 थे उस सेनाको नष्ट करनेके लिये कुमार अभिमन्युके कियेहुए
 परोक्षप्रको सुनो ॥ २ ॥ जब शल्यके छोटे भाईने सुना, कि-मेरे
 बड़े भाईको अभिमन्युने बाण मारकर अशक्त कर दिया है, तब
 वह तुरन्त क्रोधमें भर बाणोंको बरसाताहुआ अभिमन्युके ऊपर
 चढ़आया ॥ ३ ॥ वह दश बाणोंसे अभिमन्युको सारथि और
 घोड़ों सहित बंधकर बड़ीमारी गर्जना करके कहने लगा, कि-अरे
 ओ अभिमन्यु ! खड़ा रह, यह सुनकर फुर्तीले हाथवाले अभिमन्यु
 ने बाणोंसे शल्यके भाईका शिर, गला, हाथ, पैर, धनुष, घोड़े,
 छत्र, ध्वजा, सारथी, जुआ, बैठक, पहिये, धुरी, भाथा, धनुष,
 प्रत्यङ्गा, बाण, ध्वजा, पहियोंके रक्षक और रथमेंकी सबप्रकार
 की सामग्रीको ऐसी सफाईसे काटडाला कि-उसको ऐसा करते

सम्भयोपिततेजसा । भ्रुगास्तस्य विवस्ताः प्राद्वन सर्वतो
 दिशः ॥ ८ ॥ आज्जुनेः कर्म तद् दृष्ट्वा सम्पणेदुः समन्ततः ।
 नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत ॥ ९ ॥ शल्यभ्रातृव्य-
 थारुणं बहुशस्तस्य सैनिकाः । कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तो-
 र्जुनात्मजम् ॥ १० ॥ अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
 रथैरश्वैर्गजैश्चान्ये पद्भिश्चान्ये बलोत्कटाः ॥ ११ ॥ बाणशब्देन
 महता रथनेमिस्वनेन च । हुङ्कारैः च्वेदितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः स-
 गर्जितैः ॥ १२ ॥ ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गज्जन्तोर्जुननन्दनम् ।
 ब्रुवन्तश्च न नो जीवन्मोक्षसे जीवितादिति ॥ १३ ॥ तांस्तथा
 ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव । यो योस्मै माहरत् पूर्वं तं तं
 विव्याध पत्रिभिः ॥ १४ ॥ संदर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि

हुए कोई देखही नहीं सका, तदनन्तर महातेजस्वी अभिमन्युके
 द्वारा चीख होकर वह भूमिपर इसप्रकार गिरा, कि-जैसे वायुसे
 पर्वत टूटकर गिरपड़ता है, तब उसके अनुचर डरकर दशों दिशा-
 ओमेंको भागगये ॥ ५-८ ॥ हे भारत ! अभिमन्युके ऐसे अद्भुत
 कर्मको देखकर सब ओरके मनुष्य साधुसाधु(शावास२)की गर्जना
 करनेलगे ॥ ९ ॥ जब शल्यका भाई मरगया तब उसकी सेनाके
 बहुतसे योधा क्रोधमें भरगए, वे हाथोंमें नानाप्रकारके आयुध ले
 रथ, हाथी और घोड़ोंपर बैठकर अपने कुल, नाम तथा निवास-
 स्थानोंको सुनातेहुए अभिमन्युके सामने आकर खड़े होगएइनमें
 बहुतसे योधा पैदलही दौडकर आये थे, और बहुतसे बाणोंका
 बडाभारी शब्द करते, रथके पहियोंकी गड़गड़ाहट करते हुए
 हुम् २ करते, सिंहनाद करते, चीखते. प्रत्यञ्चा तथा तालियें
 बजातेहुए अभिमन्युके ऊपर चढ़आये और कहनेलगे, कि-
 अब वच्चा जीते जागते नहीं बचेगे ॥ १०-१३ ॥ अभिमन्यु
 उन योधाओंके वचन सुनकर हँसा और जिन्होंने इसके ऊपर

लघूनि च । आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत ॥१५॥ वासु-
देवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनञ्जयात् । अदर्शयत तत् कार्णिणः कृष्णा-
भ्यामविशेषवत् ॥१६॥ दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसञ्च पुनः पुनः ।
सन्दधद्विष्टजञ्चैषून् निर्विशेषमदृश्यत ॥१७॥ चापमण्डलमैवास्व
विस्फुरद्विचवदृश्यत । सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा १८
ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तल्लशब्दश्च दारुणः । महाशनिमुचः काले
पयोदस्येव निस्वनः ॥१९॥ हीमानमर्षी सौमद्रो मानकृत् मिय-
दर्शनः । सस्मिमानयिषुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाप्ययुध्यत ॥२०॥ मृदुर्भूत्वा
महाराज दारुणः समपद्यत । वर्षाभ्यतीतो भगवान् शरदीव
दिवाकरः ॥ २१ ॥ शरान् विचित्रान् सुबहून् रुक्मपुत्रान् शिला-

प्रहार किया था उसको इसने बाणोंसे वींघहाला ॥ १४ ॥
और नानाप्रकारके शस्त्र छोड़कर अपनी फुरती दिखानेके लिये
आरम्भमें सुकुमारतासे लड़नेलगा ॥ १५ ॥ उसने श्रीकृष्ण और
अर्जुनसे जिन२ अस्त्रोंको पाया था उन अस्त्रोंका श्रीकृष्ण और
अर्जुनकी समानही प्रयोग करके दिखाया ॥ १६ ॥ बड़ेभारी
भार और भयको दूर करके अभिमन्यु कब बाणोंको चढाता है
और कब छोडता है यह मालूमही नहीं होता था ॥ १७ ॥ जैसे
शरद ऋतुमें अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्य दिशाओंमें घूमताहुआ दीखता
है, तैसेही अभिमन्युका धनुषमण्डल भी दिशाओंमें घूमताहुआ
दीखता था ॥ १८ ॥ अभिमन्युके धनुषकी टङ्कार और हथेलियों
का दारुण शब्द वर्षाऋतुमें वज्रपात करनेवाले मेघकी गर्जनाकी
समान सुनाई पड़ता था ॥ १९ ॥ लज्जानवान्, क्रोधी, अभिमानी,
देखनेवालोंके मनको लुभाने वाला और दर्शनीय अभिमन्यु वीरों
को नमार्नेके लिये धनुष और बाणोंसे युद्ध कर रहा था ॥ २० ॥
जैसे वर्षाऋतुके वीतजाने पर शरत्कालमें सूर्यनारायण प्रचण्ड
होजाते हैं तैसेही अभिमन्युभी पहिले सुकुमार बनकर पीछेसे बड़ा

शितान् । सुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥ २२ ॥
चतुरभ्रैर्वत्सदन्तैश्च त्रिपाठैश्च महायशाः । नाराचैर्द्व्यर्धचन्द्राभैर्भन्तै-
रञ्जलि कैरपि ॥ २३ ॥ अत्राकिरद्रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः
ततस्तत्सैन्यमभवद्विमुखं शरपीडितम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्यु-
पराक्रमे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । द्वैधी भवति मे चित्तं भिया तुष्टया च सञ्जय ।
मम पुत्रस्य यत्सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥ १ ॥ विस्तरेणैव मे
शंस सर्वं गावत्गणे पुनः । विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवासुरैः
सह ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विपर्दयति-
दाखणं । एकस्य च बहूनाञ्च यथासीत्तुमुलो रणः ॥ ३ ॥ अभि-
मन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिन्दमान् । रथस्थो रथिनः सर्वा-

दाखण होगया ॥ २१ ॥ पथरों पर तेज कियेहुए, सुनहरी पूँछ
वाले बहुतसे विचित्र बाणोंको छोड़ता हुआ अभिमन्यु लोकोंपर
किरणों डालनेवाले सूर्यनारायणसा प्रतीत होता था ॥ २२ ॥
उस महायशस्वी अभिमन्युने द्रोणके सामनेही उनकी रथसेना पर
चतुरभ्र वत्सदन्त, त्रिपाठ, नाराच, अर्धचन्द्राकार, भाले और अञ्ज-
लिक नामके अनेकों बाण मारे, उन बाणोंके प्रहारसे रथसेना
रणभूमिमेंसे भाग गई ॥ २३-२४ ॥ अठतीसवाँ अध्याय समाप्त ३८

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! सुप्रदानन्दनने हमारी सेना
को रणमें भगादिया, इससे मेरा चित्त भय और सन्तोषसे दोल-
यमान होता है ॥ १ ॥ अतः हे सञ्जय ! जैसे कार्तिकेयने असुरों
के साथ युद्ध किया था, तैसेही अभिमन्युने जो कौरवोंके साथ
पराक्रम दिखाया था उसको मुझ विस्तारसे सुना ॥ २ ॥ सञ्जय
ने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! जिसप्रकार अकेले अभिमन्युका बहुतों
के साथ तुमुल युद्ध हुआ उस दाखण संग्रामको मैं कहता हूँ ॥ ३ ॥

स्तावकानभ्यर्चयत् ॥४॥ द्रोणं कर्णं कृपं शन्यं द्रौणिं भोजं बृहद-
बलं । दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिञ्च महाबलम् ॥ ५ ॥ नाना-
वृषान् वृषसुतान् सैन्यानि विविधानि च । अलातचक्रवत् सर्वा-
श्चरन् बाणैः समार्षयत् ॥ ६ ॥ निघ्नन्मित्रान् सौभद्रः परमास्त्रैः
प्रतापवान् । अदर्शयत् तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७ ॥ तद्
दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्यापितौजसः । समकम्पन्त सैन्यानि
त्वदीयानि सहस्रशः ॥ ८ ॥ अथाब्रवीन्महामाशौ भारद्वाजः प्रताप-
वान् । हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९ ॥ घटय-
न्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत । अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा
रणविशारदम् ॥ १० ॥ एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् राजानञ्च युधिष्ठिरं ॥ ११ ॥ नकुलं सह-
देवञ्च भीमसेनञ्च पाण्डवम् । बन्धुन् सम्बन्धिनश्चान्यान्मध्यस्थान्

रथमें बैठेहुए उत्साही अभिमन्युने तुम्हारी ओरके रथमें बैठेहुए
उत्साही योधाओंके ऊपर बाणवर्षा करना आरम्भ करदी ॥४॥
अभिमन्युने वरेंटीकी समान घूमकर द्रोण, कृप, कर्ण, शन्य,
अश्वत्थामा, भोज, बृहद्वल, दुर्योधन, सौमदत्ति, महाबली शकुनि
तथा और भी राजे राजकुमार तथा सेनाओंके ऊपर बाण वर-
साये ॥५॥ हे भारत ! उस समय प्रतापी तेजस्वी अभिमन्यु दिव्य
अस्त्रोंसे शत्रुओंको मारताहुआ चारों दिशाओंमें दीव्रता था ७
अमितपराक्रमी सुभद्रानन्दनके ऐसे चरितको देखकर तुम्हारे सहस्रों
सेनादल काँपउठे ॥ ८ ॥ हे भारत ! प्रतापी और परमबुद्धिमान्
द्रोणाचार्यके नेत्र रण-विशारद अभिमन्युको देखकर खिलगए
और वे तुरत कृपाचार्यसे दुर्योधनके मर्मभागोंको काटते हुएसे
कहनेलगे, कि-पांडवोंका प्रसिद्ध तरुण कुमार अभिमन्यु अपने
सब मित्र राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीमसेन, सब बन्धु-
बान्धव और दूसरे मध्यस्थ मित्रोंको आनन्द देता हुआ हमारी

सुहृदस्तथा १२ नास्य युद्धे समं मन्ये कश्चिदन्यं धनुर्धरं । इच्छन्
हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥ १३ ॥ द्रोणस्य प्रीति-
संयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवात्मजः । अर्जुनिं प्रति संकुटो द्रोणं
दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥ १४ ॥ अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद्वाहिकं
नृपः । दुःशासनं मदराजं तांस्तथान्यान्महारथान् १५ सर्वमूर्धाभि-
पिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तपः । अर्जुनस्य सुतं मूढं नायं हन्तुमिहे-
च्छति १६ न ह्यस्य समरे युध्येदन्तकोप्याततायिनः । किमंग
पुनरेवान्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥ अर्जुनस्य सुतं त्वेष
शिष्यत्वादभिरक्षति । शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यञ्च धर्मि-
णाम् ॥ १८ ॥ संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः । आत्म-

सेनापर चढ़ा चला आरहा है ॥ ६-१२ ॥ मेरी समुझसे युद्धमें
इसकी समान और कोई धनुषधारी नहीं है यह चाहे तो इस
सेनाका का नाश कर डाले, परन्तु न जाने यह ऐसा क्यों नहीं
करता है ? ॥ १३ ॥ तुम्हारा पुत्र द्रोणके ऐसे प्रीतिभरे वाक्यको
सुनकर अभिमन्युके ऊपर अतीव क्रोधमें भर गया और द्रोणको
देखकर आश्चर्यसे कहने लगा ॥ १४ ॥ और उसने कर्ण, राजा
बान्हीक, मदराज तथा दूसरे भी महारथियोंसे कहा, कि-सब
मूर्धाभिपिक्त राजाओंके आचार्य ये द्रोण अर्जुनके मूढ़ पुत्रको
मारना नहीं चाहते ॥ १५-१६ ॥ और कहते हैं कि-यदि यह
आततायी वन जाय तो काल भी युद्धमें इसके सामने नहीं ठहर
सकता, फिर मनुष्यकी तो गणना ही क्या है ? यह मैं सत्य
कहता हूँ, ॥ १७ ॥ परन्तु अभिमन्यु अर्जुनका पुत्र है और
अर्जुन द्रोणआचार्यका शिष्य है अतः अभिमन्युको अपना शिष्य
जानकर आचार्य उसकी रक्षा करते हैं, क्योंकि-धर्मात्माओंको
अपने शिष्य, पुत्र और उनकी सन्तान पर स्नेह होता है ॥ १८ ॥
इसलिये ही द्रोण इसकी रक्षा करते हैं परन्तु अहंभाव रखने

सम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीन पाचिरम् ॥१६॥ एवमुक्तास्तु ते राजा
 सात्वतीपुत्रमभ्ययुः । संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः
 ॥ २० ॥ दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा । अब्रवीत्
 कुरुशार्दूलो दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१ ॥ अहमेनं हनिष्यामि
 महाराज ब्रवीमि ते । मित्रतां पांडुपुत्राणां पञ्चालानाञ्च पश्यतां २२
 असिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरं । उत्क्रश्य चाब्रवी-
 द्वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥ २३ ॥ श्रुत्वा कृष्णो मया ग्रस्तं सौभद्र-
 मतिमानिनौ । गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकात् संशयः ॥ २४ ॥
 तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पांडोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः । एकान्धा समु-
 हर्द्दगाः कलैव्याद्धास्यन्ति जीवितम् ॥ २५ ॥ तस्मादस्मिन् हते
 शत्रौ हताः सर्वेहितास्तव । शिवेन ध्याहि मां राजन्नेप हन्मि

वाला मूढ़ अभिमन्यु इसमें अपना पराक्रम मानता है, तुम इसका
 शीघ्र ही नाश करो ॥ १६ ॥ राजा दुर्योधनसे इसप्रकार आज्ञा
 पा वे योधा क्रोधमें भर शत्रुको मारनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके
 देखते हुए ही, अभिमन्युके ऊपर जाचढ़े ॥ २० ॥ हे कुरुशार्दूल!
 दुर्योधनके वचनको सुनकर दुःशासनने दुर्योधनसे यह बात कही,
 कि ॥ २१ ॥ हे महाराज ! मैं आपसे यह कहता हूँ, कि—“सब
 पाञ्चाल और पाण्डवोंके देखते हुए ही मैं इस अभिमन्युको मार
 डालूँगा ॥ २२ ॥ मैं अभिमन्युको ऐसे निगल जाऊँगा जैसे राहु
 चन्द्रमाको निगल जाता है तथा उसने फिर भी चिन्ता कर
 कुरुराजसे यह कहा कि—॥ २३ ॥ अभिमन्युको मेरे हाथसे मरा
 हुआ सुनकर अर्जुन और श्रीकृष्ण निःसन्देह जीवलोकसे
 प्रेतलोकमें पहुँच (मर) जायँगे ॥ २४ ॥ उन दोनोंको मराहुआ
 सुनकर पाण्डुके क्षेत्रज पुत्र भी अपने सगे संबंधियों सहित नपुंसक-
 पनेसे मर जायँगे ॥ २५ ॥ इसलिये इस एक शत्रुके मारेजाने
 पर तुम अपने सब ही शत्रुओंको मरा समझना अतः हे भरत-

रिपूँस्तव ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वानन्दद्राजन् पुत्रोः दुःशासनस्तव ।
 सौमद्रमभ्ययात् क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २७ ॥ तपतिक्रुद्धमायान्तं
 तव पुत्रमरिन्दम अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः पट्विंशत्या समार्पयत् २८
 दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः । अयोधयत् सौमद्रम-
 भिमन्युश्च तं रणे ॥ २९ ॥ तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्य-
 दक्षिणम् । चरमाणावयुध्येतां रथशिक्षाविशारदौ ॥ ३० ॥ अथ
 पणवमृदंगदुन्दुभीनां क्रकचमहानकभेरिभर्भराणाम् निनदमति-
 भृशं नगाः प्रचकुर्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥ ३१ ॥
 इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुःशासनयुद्धे
 एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सञ्जय उवाच । शरविक्षतगात्रस्तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् । अभिमन्युः

वंशी राजन् ! तुम मेरे कल्याण की कामना करो मैं अभी तुम्हारे
 शत्रुओंको मारे डालता हूँ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र
 दुःशासन यह कहकर बड़ी जोरसे गरजा और क्रोधमें भरकर
 बाण वरसाता हुआ अभिमन्युके ऊपर चढ़ गया ॥ २७ ॥ बढ़े
 क्रोधमें भरकर आते हुए दुःशासनके शत्रुनाशी अभिमन्युने
 छब्बीस बाण मारे २८ मद भरनेवाले हाथीकी समान दुःशासन
 को भी क्रोध आगया और वह अभिमन्युसे लड़ने लगा तथा अभि-
 मन्यु उससे लड़ने लगा ॥ २९ ॥ रथशिक्षामें निपुण दुःशासन और
 अभिमन्यु रथोंसे दाहिनी और बाई ओर विचित्र घेरा बांधते हुए
 घूम ० कर लड़ने लगे ॥ ३० ॥ इस समय मनुष्य पणव, मृदङ्ग,
 दुन्दुभि, क्रकच, नगाड़े, भेरी और भर्भरोंको बढ़े वेगसे बजाने
 लगे और बीचमें सिंहनाद भी करने लगे ॥ ३१ ॥ उनतालीसवाँ
 अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! बाणोंसे घायल हुए शरीर
 वाला बुद्धिमान् अभिमन्यु सामने खड़े हुए शत्रु दुःशासनसे हँसते

स्मयन् भीमान् दुःशासनमयाव्रवीत् ॥ १ ॥ दिष्ट्या पश्यामि
 संग्रामे मानिनं शूरमागतम् निष्ठुरन्त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम्
 यत् सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः । कोपितः परुषैर्वा-
 न्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ जयोन्यत्तेन भीमश्च बह्वहं भभा-
 पितः । अक्षकूटं समाश्रित्य सौवलस्यात्मनो बलम् ॥ ४ ॥ तत्त्व-
 येदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः । परवित्तापहारस्य क्रोधस्या-
 प्रशमस्य च ॥ ५ ॥ लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्यात्पाहितस्य च ।
 पितृणां मम राजस्य हरणस्योद्ग्रधन्विनां । ६ ॥ तत्त्वयेदमनुप्राप्तं
 प्रकाशद्वै महात्मनाम् । स तस्योग्रधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ७
 शासितास्पद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः । अद्याहमनृणस्तस्य
 हंसते कहनेलगा कि-॥ १ ॥ मानी, शूरा, क्रूरकर्मा, क्षत्रियधर्मको
 त्यागनेवाले और निन्दापरायण तुम्हें आज मैं रणमें सामने
 खड़ा देखता हूँ, यह अच्छा हुआ ॥ २ ॥ तूने सभामें राजा
 धृतराष्ट्रके सुनते हुए कठोर वचन कह कर धर्मराजको कष्ट
 दिया था ॥ ३ ॥ इतना ही नहीं किन्तु शकुनिके कपटचूतके
 बलका आश्रय ले विजयसे उन्मत्त हो कर तूने भीमसेनसे भी
 बहुतसे असम्बद्ध वचन कहकर उनको भी कुपित कर दिया
 था ॥ ४ ॥ उन महात्माओंके कोपके कारण, दूसरेके धनको
 हरनेके कारण तथा क्रोध और आशक्तिके कारण तुम्हें यह फल
 मिला है कि-तू मेरे सामने मरनेके लिये लड़नेको आया है ॥ ५ ॥
 लोभ, अज्ञान, द्रोह और साहसके कारण उग्र धनुषधारी मेरे
 बड़ोंके राज्यको फोकटमें ही हरलेनेके कारण तथा उन महात्मा-
 ओंको कुपित करनेके कारण तुम्हें यह दिन देखना पड़ा है !
 हे दुर्मते! आज तुम्हें ऐसे भयङ्कर अधर्मका भयानक फल अवश्य
 मिलेगा ॥ ६-७ ॥ सब सेनाके सामने मैं तुम्हें बाणोंके प्रहारसे
 फल-चखाऊँगा और आज अपने पिताके कोपके क्रणको चुका-

कोपस्य भविता रणे ॥ ८ ॥ अयं विजयाः कृष्णायाः काङ्क्षित-
 तस्य च मे पितुः । अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यचनृणो युधि ६
 न हि मे मोक्षयसे जीवन् यदि नोत्सृजते रणम् । एवमुक्त्वा महा-
 बाहुर्वाणं दुःशासनान्तरुम् ॥ १० ॥ सन्दधे परवीरघ्नः काला-
 ग्न्यग्निं तवर्चसम् । तस्योरस्तूर्णपासाद्य जघ्रुदेशं विभिद्य तम् ॥ ११ ॥
 जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकं भिव पन्नगः । अथैनं पञ्चविंशत्या
 पुनरेव समर्पयत् ॥ १२ ॥ शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्ण्यसमचोदितैः ।
 स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १३ ॥ दुःशासनो
 महाराज कश्मलं चाविशन्महत् । सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासन-
 मचेतनम् ॥ १४ ॥ रणमध्यादयोत्राह सौभद्रशरपीडितं । पांडवा
 द्रौपदेयाश्च त्रिराटश्च समीच्य तम् ॥ १५ ॥ पञ्चालाः केकया-
 ज्ञगा ॥ ८ ॥ हे कुरुपुत्र ! आज मैं क्रोधमें भरिहुई द्रौपदी और
 उसके कारणसे बैरका बदला लेनेकी इच्छा वाले अपने
 पिता और भीमसेनके ऋणसे युद्धभूमिमें मुक्त होजाऊंगा
 ॥ ६ ॥ अरे ! यदि तू रणमेंसे भागेगा नहीं तो मैं आज तुझे
 जीता नहीं जानेदूंगा यह कह कर शत्रुनाशक महाबाहु
 अभिमन्युने दुःशासनका अन्त करनेवाला कालाग्नि और काल-
 वायुकी समान तेजस्वी महाबाण तार्क कर दुःशासनकी छातीमें
 मारा वह बाण दुःशासनकी छातीपर हो उसकी हँसलीको तोड़ता
 हुआ, सर्प जैसे बिलमें घुसता है, तैसे पूँछसहित पृथिवीमें
 घुसगया, अभिमन्युने फिर भी धनुषको कानतक खेंचकर अग्निकी
 समान प्रज्वलित पच्चीस बाणमारे उससे दुःशासनका शरीर
 बहुन्ही बिगगया, और वह ओँ ! ओँ करके रथकी बैठकमें दह
 पड़ा ॥ १०-१३ ॥ जिस समय दुःशासन अभिमन्युके बाणकी
 पीडासे बहुतही मूर्छित होगया, और अति पीडा पानेलागा उस
 समय सारथी उसको युद्धमेंसे दूर लेगया, यह देखकर पाण्डव,

श्चैव सिंहनादमथानदन् । वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि
 सर्वशः ॥ १६ ॥ प्रावादयन्त संहृष्टाः पांडूनां तत्र सैनिकाः ।
 अपश्यन् स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ॥ १७ ॥ अत्यन्त-
 वैरिणं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् । धर्ममारुतशक्राणामरिबन्धोः
 प्रतिमास्तथा ॥ १८ ॥ धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः ।
 सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ १९ ॥ केकया
 धृष्टकेतुश्च मत्स्या पञ्चालसृञ्जयाः । पांडवाश्च युदा युक्ता युधि-
 छिरपुरोगमाः ॥ २० ॥ अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं विभित्सवः ।
 ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ २१ ॥ जयमाकांक्ष-
 माणानां शूराणामनिवर्तिनाम् । तथा तु वर्तमाने वै संग्रामेतिभ्य-
 ङ्कुरे ॥ २२ ॥ दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् । पश्य दुःशासनं
 वीरमभिमन्युवशं गतम् ॥ २३ ॥ प्रतपन्तमिवादित्यं निघ्नन्तं शास्त्र-

द्रौपदीके पाँचों पुत्र, विराट, पञ्चाल और केकय सिंहनाद करने
 लगे और पाण्डवोंके सैनिक हर्षमें भरकर नानाप्रकारके बजे
 बजाने लगे, तथा हँसते-२ अभिमन्युके पराक्रमको देखने लगे ॥ १४ ॥ १७
 वड़े घमण्डी शत्रुको हराया हुआ देखकर, धर्म, पवन, इन्द्र और
 अश्विनीकुमारोंकी प्रतिमाओंको ध्वजामें धारण करनेवाले युधि-
 छिर आदि पाण्डव, महारथी द्रौपदीके पुत्र, सात्यकि, चेकितान,
 धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकय, धृष्टकेतु, मत्स्य, पञ्चाल, और
 सृञ्जय वड़े आनन्दमें भर द्रोणकी सेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे
 भीघ्रतासे आगे बढ़ आये और तुम्हारे योधा तथा शत्रुओंका
 महायुद्ध होने लगा ॥ १८-२१ ॥ युद्धमें पीछेको न हटनेवाले
 विजयाभिलाषी शूराका भयंकर युद्ध होने पर ॥ २२ ॥ हे महा-
 राज ! दुर्योधन राधापुत्र कर्णसे कहने लगा, कि-देखो रणमें
 शत्रुओंका संहार करनेमें प्रचण्ड सूर्यकी समान दीखनेवाले अभि-
 मन्युने शूर दुःशासनको हरा दिया है, यह बातें कर रहे थे कि

वान् रणो । अयं चैते सुसंख्याः सिंहा इव बलोत्कटाः ॥२४॥
 सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पांडवाः । ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णै-
 रभिमन्युं दुरासदम् ॥ २५ ॥ अभ्यवर्षत संकुटः पुत्रस्य हित-
 कृत्स्नम् । तस्य चानुचरैस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेष्ठिभिः ॥ २६ ॥
 अवशः पूर्वकं शूः सौभद्रस्य रणाजिरे । अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिस-
 सत्या शिलीमुखैः ॥ २७ ॥ अविध्यत् त्वरितो राजन् द्रोणं प्रेम्सु-
 र्महामनाः । तं तथा नाशकत् कश्चिद् द्रोणाद्वारयितुं रथी २८
 आरुजन्तं रथआतानं बज्रहस्तात्मजात्मजम् । ततः कर्णो जयप्रसु-
 र्मानी सर्वधनुष्मताम् ॥ २९ ॥ सौभद्रं शतशोविध्यदुत्तमास्त्राणि
 दर्शयन् । सोस्त्रैस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
 समरे शत्रुदुर्धर्ममभिमन्युमपीडयत् । स तथा पीड्यमानस्तु राधे-
 येनास्त्रवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥ समरेऽमरसंकाशः सौभद्रो न व्यशीर्यत ।

इतनेमेंही बलोत्कट सिंहांकी समान क्रोधमें भरेहुए पाण्डव अभि-
 मन्युकी रक्षा करनेको चढ़आये यह देख तुम्हारे पुत्रका हित
 करने वाला कर्ण क्रोधमें भरकर दुरासद अभिमन्युके ऊपर तीक्ष्ण
 बाणोंकी वर्षा करनेलगा और रणमें अभिमन्युका तिरस्कार करके
 उसके सैनिकोंको बढ़ेर बाणोंसे घेरनेलगा, द्रोणको पकड़ना
 चाहतेहुए उदारचेता अभिमन्युने कर्णके तिहत्तर बाण मारे और
 द्रोणकी ओरकी बढ़नेलगा, उस समय द्रोणकी ओर बढ़तेहुए
 और रथोंकी पंक्तियोंको नष्ट करतेहुए, इन्द्रके पौत्र अभिमन्यु
 को कोईभी रथी न रोकसका, तदनन्तर विजय चाहनेवाले,
 सकल धनुषधारियोंमें मानी, अस्त्र वेत्ताओंमें श्रेष्ठ और परशुरामके
 शिष्य प्रतापी कर्णने सैंकड़ों अस्त्रोंसे समरमें दुर्धर्म शत्रु अभिमन्यु
 को घायल करदिया, और दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करकेभी
 उसको पीड़ा दी, परन्तु अभिमन्यु समरमें कर्णकी अस्त्रवर्षाओंसे
 पीड़ित होकर भी देवताओंकी समान गभराया नहीं, किन्तु

ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भल्लैरानतपर्वभिः ॥३२॥ त्रित्वा धनुं पि
 शूराणामार्जुनिः कर्णमादीयत् । धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैरा-
 शीविपोपमैः ॥ ३३ ॥ सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वपाशु स्मयन्निवा-
 कर्णोपि चास्य चित्तोप वाणान् सन्नतपर्वणः ॥३४॥ असम्भ्रा-
 न्तरच तान् सर्वानगृह्णात् फाल्गुनात्मजः । ततो मुहुर्त्तति कर्णस्य
 वाणेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ सध्वजं कामुकं वीरश्छित्वा भूमा-
 वपातयत् । ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥ ३६ ॥
 सौभद्रपथ्ययात्तूर्णं दृढमुग्रम्य कामुकम् । तत उच्चुक्रुशुः पार्था-
 स्तेषां चातुचरा जनाः । वादित्राणि च सज्जधनुः सौभद्रञ्चापि
 तुष्टवुः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुःशासन-
 कर्णपराजये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

शिलाओं पर तेज कियेहुए नमी हुई गांठवाले तेज भल्लोंसे
 शूरोँके धनुषोंको काटकर धनुर्मण्डलमेंसे निकलेहुए विपथर
 सोंकी समान वाणोंसे कर्णको खूबही घायल किया और मुस्क-
 रातेर उसके छत्र, ध्वजा, सारथी और घोड़ोंको भी बड़ी शीघ्रता
 से बीधडाला; कर्णने भी इसके ऊपर नमीहुई गांठोंवाले बाण छोड़े
 अर्जुननन्दन अभिमन्युने उनको बिना घबड़ायेहुए अपने ऊपर
 भेललिया और एक मुहूर्तमें ही पराक्रमी शूर अभिमन्युने एक
 ही बाणसे कर्णकी ध्वजा और धनुषको काटकर पृथ्वीमें गिरा
 दिया, इसप्रकार कर्णको विपत्तिमें फँसा देखकर कर्णका छोटा
 भाई दृढ धनुषको उठाकर अभिमन्युके ऊपर चढ़ाया, यह देख
 कर पाण्डव और उनके अनुगामी हर्षसे गर्जनेलगे, बाजे बजाने
 लगे तथा अभिमन्युकी प्रशंसा करनेलगे ॥ २३-३७ ॥ चाली-
 सवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥

सञ्जय उवाच । सोतिगर्जनं धनुष्पाणिज्यौ विकर्पन् पुनः
पुनः । तयोर्महात्मनोस्तूर्णं स्थान्तरमवापतत् ॥१॥ सोविध्यदश-
भिर्वाणैरभिमन्युं दुरासदम् । सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु
स्मयन्निव ॥ २ ॥ पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुपम् । दृष्टादितं
शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताभवन् ॥ ३ ॥ तस्याभिमन्युरायस्य
स्मयन्नेकेन पत्रिणा । शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात् प्रापतद् भुवि ४
कर्णिकारमिवाधृतं वातेनापतितं नगात् । भ्रातरं निहितं दृष्ट्वा राजन्
कर्णो व्यथां ययौ ॥ ५ ॥ विमुखीकृत्य कर्णन्तु सौभद्रः कंक-
पत्रिभिः । अन्यानपि महेश्वासांस्तूर्णमेवाभिदुद्रवे ॥ ६ ॥ तत-
स्तद्विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमतम् । क्रुद्धोभिमन्युरभिनत्तिग्मतेजा

सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! कर्णका छोटा भाई धनुषको
हाथमें ले बड़ा गरजताहुआ और बारम्बार प्रत्यञ्चाको खेंचता
हुआ उन दोनों महात्माओंके रथोंके बीचमें आकर खड़ा होगया ।
तथा मुख मलकाकर उसने दुर्धर्प अभिमन्युको छत्र, ध्वजा, सारथी
और घोड़ों सहित दश वाणोंसे बीचडाला ॥२॥ अपने पिता और
पितामहकी समान अपमानुषिक (दिव्य) कर्म करनेवाले अभि-
मन्युको वाणोंसे पीड़ितहुआ देखकर तुम्हारे पुत्र प्रसन्न होने
लगे ॥ ३ ॥ अभिमन्युने मुस्कराकर धनुषको नमाया और एक
ही वाणसे उसके शिरको काट गिराया, उसका शिर रथ परसे
पृथिवीमें ऐसे गिरपड़ा जैसे वायुसे झकोला खाकर कनेरका वृक्ष
पर्वत परसे गिरपड़ता है, हे राजन् ! भाईको मराहुआ देखकर
कर्णको बड़ा खेद हुआ ॥ ४ ॥ ५ ॥ फिर अभिमन्युने गिद्ध
पक्षी के परोवाले वाणोंसे कर्णको रणमेंसे पीछेको हटादिया, फिर
दूसरे महारथियों पर भी शीघ्रतासे दूटपड़ा ॥ ६ ॥ फिर प्रचण्ड
प्रतापी महारथी अभिमन्यु क्रोधमें भरकर, रथ, घोड़े और हाथि-
योंवाली, फैलीहुई उस सेनाका संहार करनेलगा ॥ ७ ॥ अभि-

महारथः ॥ ७ ॥ कर्णस्तु बहुभिर्वाणैर्यमानोभिमन्युना । अपा-
याज्जवनैरश्वैस्ततोनीकमभज्यत ॥ ८ ॥ शलभैरिव चाकाशे
धाराभिरिव चावृते । अभिमन्योः शरैः राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन
तावकानान्तु योयानां वध्यनां निशितैः शरैः । अन्यत्र सेन्धवा-
द्राजन् न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥ १० ॥ सौभद्रस्तु ततः शंखं प्रध्माप्य
पुरुषर्षभः । शीघ्रमभ्यपतत् सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥ ११ ॥
स कल्हेग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् । मध्ये भारतसैन्याना-
मार्जुनिः पर्यवर्तत ॥ १२ ॥ रथनागाश्वमनुजानर्दयन्निशितैः
शरैः । सम्प्रविश्याकरोद् भूमिं कवन्धगणसंकुलाम् ॥ १३ ॥ सौ-
भद्रचापमभवर्निकृत्ताः परमेषुभिः । स्वानेवामिमुखान् दनन्तः
प्राद्रवन् जीवितार्थिनः ॥ १४ ॥ ते घोराः सौद्रकर्माणो विपाठा बहवः

मन्युके बहुतसे बाणोंसे पीड़ित होकर कर्ण तेज चलनेवाले घोड़ों
पर बैठकर भाग गया, इतनेमें व्यूह टूट गया ॥ ८ ॥ हे राजन् !
उस समय आकाश टीढ़ियोंसे अथवा मेघधाराओंसे छा गया हो
इसप्रकार अभिमन्युके बाणोंने ढक गया, इसलिये तहाँ कुछ भी
दिखाई नहीं पड़ता था ॥ ९ ॥ जिस समय अभिमन्यु तीक्ष्ण
बाणोंसे तुम्हारे सैनिकोंका संहार कर रहा था, उस समय जयद्रथ
को छोड़ वहाँ कोईभी रथी खड़ा नहीं रहा ॥ १० ॥ हे भरतर्षभ !
उस समय पुरुषश्रेष्ठ अभिमन्यु शंख बजाकर तुरन्तही भारतीसेना
(चक्रव्यूह)में घुस गया ॥ ११ ॥ अभिमन्यु फूसमें फेंकेहुए
अग्निकी समान बलसे शत्रुओंको भस्म करताहुआ चक्रव्यूहमें
घूमनेलगा ॥ १२ ॥ उसने भारतकी चक्राकार व्यूहसेनामें घुसकर
तीक्ष्ण बाणोंसे रथी, घुड़सवार, हाथीसवार और पैदलोंको नष्ट
करके अनेक घड़ोंसे पृथ्वीको ढक दिया ॥ १३ ॥ इस समय
बहुतसे योधा अभिमन्युके धनुषमेंसे छूटेहुए बाणोंके लगनेसे
व्याकुल हो जीवनकी आशासे भागनेलगे और उस समय मार्गमें

शिताः । निघ्नन्तो रथनागाश्वान् जग्मुराशु वसुन्धराम् ॥ १५ ॥
 सायुधाः सांगुलित्राणाः सगदाः साङ्गदाः रणे । दृश्यन्ते बाह-
 वशिखन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १६ ॥ शराश्चापानि खड्गाश्च
 शरीराणि शिरांसि च । सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन् सह-
 स्रशः ॥ १७ ॥ सोऽयस्करैरधिष्ठानैरीपादण्डैश्च धन्धुरैः । अक्षै-
 र्विमथितैश्चकैर्वहुधा पतितैर्युगैः ॥ १८ ॥ शक्तिचापसिभि-
 श्चैव पतितैश्च महाध्वजैः । चर्मचापशरैश्चैव व्यपकीर्णैः समन्ततः १९
 निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारिण्यैश्च विशाम्पते । अगम्यरूपा पृथिवी
 क्षणेनासीत् सुदारुणा ॥ २० ॥ बध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दता-
 मितरेतरम् । प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्द्धनः ॥ २१ ॥ स
 शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत् । सौभद्रश्चाद्रवत् सेनां घ्नन्
 वराश्वरयद्रिपान् २२ कक्षमग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।

सामने पड़तेहुए अपने योधाओंको ही मारनेलगे ॥ १४ ॥
 अभिमन्युके बिपाठ नायक, तेज कियेहुए भयंकर कर्म करनेवाले
 बाण, रथी, घुडमवार और हाथीसवारोंको नष्ट कर शीघ्रतासे
 पृथ्वीमें घुसरहे थे ॥ १५ ॥ रणमें आयुध, चमड़ेके मोजे, गदा,
 और बाजूबन्दोंको धारण करनेवाले हाथ कटेहुए, पड़े दीखते
 थे ॥ १६ ॥ पृथिवी पर बाण, धनुष, खड्ग और मुकुट तथा
 मालाओं सहित हजारों शिर और शरीर पड़े थे ॥ १७ ॥ टूटे-
 हुए धुरे, पहिये, और गिरेहुए जुए, तथा शक्ति, धनुष, तलवार
 बड़ीर ध्वजायें, ढालें, धनुष, बाण तथा मरेहुए राजे और हाथि-
 योंसे व्याप्त होनेके कारण पृथिवी क्षणभरमें दारुण और अगम्य
 होगई ॥ १८-२० ॥ उस समय डरपोकोंको दहलाने वाला
 आपसमें मारनेवाले राजपुत्रोंके डकरानेका भयंकर शब्द
 होनेलगा ॥ २१ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उस शब्दसे
 दिशाएं गूँजने लगीं और अभिमन्यु श्रेष्ठर घोड़े, रथ और

मध्ये भारतसैन्यानां जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥ २३ ॥ विचरन्तं दिशः सर्वाः । प्रदिशश्चापि भारत । तं तदा नानुपश्याम सैन्येन रजसा हृते ॥ २४ ॥ आददानं गजाश्वानां नृणाञ्चायूः पि भारत । क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यन्दिने यथा ॥ २५ ॥ अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विपद्मान् । स वासवसमः संख्ये वासवस्यात्मजात्मजः । अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

अभिमन्युपराक्रमे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । बालमत्यन्तसुखिनं स्वबाहुबलदर्पितम् । युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तलुत्यजम् ॥ १ ॥ गाहमानमनीकानि सद-

हाथियोंको मारता हुआ भागती हुई सेनाके पीछे पड़ गया ॥ २२ ॥ चक्रव्यूहमें घूमकर बलात्कारसे शत्रुओंको नष्ट करता हुआ अभिमन्यु फूसमें लगे हुए अग्नि की समान प्रतीत हो रहा था ॥ २३ ॥ हे राजन् ! अभिमन्यु दिशाओं और दिशाओंके कोनों तकमें घूम रहा था, परन्तु सेनामें धूल झाजानेके कारण हम उसको देख न सके ॥ २४ ॥ हे राजन् ! क्षण भरके बाद ही हाथी, घोड़े और पैदलोंके प्राण हरता हुआ और शत्रुमण्डलको तपाता हुआ अभिमन्यु हमे मध्यान्हके सूर्य की समान फिर दिखाई दिया, इन्द्र की समान बली इन्द्रके पुत्रका कुमार अभिमन्यु हे महाराज ! उस समय राजाओंकी सेनाके बीचमें शोभा पारहाँ था ॥ २५-२६ ॥ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि बालक, अत्यन्त सुखी, अपने बाहुबलका भरोसा रखनेवाला, युद्धकुशल, वीर, युद्धके समय शरीरकी परवाह न रखनेवाला अभिमन्यु जब तीन वर्षकी अवस्थावाले घोड़ों से जुते रथमें बैठकर चक्रव्यूहको तोड़ कर बसेनामें घुसा, उस समय युधिष्ठिरकी सेनामेंसे कौन २ बली, वीर याधा उसके पीछे

श्वैश्च त्रिहायणैः । अपि यौधिष्ठिरात् सैन्यात् कश्चिदन्वपतद्वली २
 सञ्जय उवाच । युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ ।
 धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयाः ॥ ३ ॥ धृष्टकेतुश्च
 संरब्धो मत्स्याश्चाभ्यपतन् रणे । तेनैव तु पथायांतः पितरो
 मातुलैः सह ॥ ४ ॥ अभ्यद्रवन् परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
 तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरास्त्वदीया विमुखाभवन् ॥ २ ॥ ततस्तद्विमुखं
 दृष्ट्वा तव सूनोर्महद्वलम् । जामाता तव तेजस्वी संस्तम्भयिषुराद्रवत् ६
 सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः । स पुत्रगृद्धिनः पार्थिव
 सह सैन्यानवारयत् ॥ ७ ॥ उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
 वार्द्धक्षत्रिरुपासेधत् प्रवणादित्र कुंजरः ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच ।
 अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे सञ्जयाहितम् । यदेकः पांडवान् कुडान्

कौरवसेनामें गये थे ॥ १-२ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज !
 युधिष्ठिर, भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल, सहदेव, धृष्ट-
 द्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय, धृष्टकेतु और मत्स्य आदि दोषा
 जो अभिमन्युके मामा और चाचा ताऊ आदि थे, वे अभिमन्यु
 की रक्षा करनेके लिये व्यूहरचनासे सेनाको संगठित करके उसके
 पीछेही पीछे चलरहे थे (वे अब द्वारपर पहुँचे ही थे, कि-)उन
 को चढ़कर आतेहुए देखकर तुम्हारे सैनिक भागनेलगे ॥ ३-५ ॥
 तुम्हारे पुत्रकी बड़ीभारी सेनाको लौटतीहुई देखकर तुम्हारे जमाई
 सिन्धुराजके पुत्र तेजस्वी जयद्रथने, भागतीहुई सेनाको रोकनेकी
 इच्छासे, पुत्रकी रक्षाके लिये चढ़कर आतेहुए पाण्डवोंको उनकी
 सेना सहित बढनेसे रोकदिया ॥ ६-७ ॥ जैसे हाथी नीची भूमि
 में शत्रुको आगे बढनेसे रोकदेता है तैसेही दृढक्षत्रके पुत्र, उग्र-
 धनुषधारी, जयद्रथने दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करके पाण्डवोंको
 आगे बढनेसे रोकदिया ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय !
 मेरी समझमें जयद्रथके ऊपर बड़ाभारी भार डालदिया था, जो

पुत्रप्रेम्सूनवारयत् ॥ ६ ॥ अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्यञ्च सैन्धवे
 तस्य प्रव्रूहि मे वीर्यं कर्म चाग्रथं महात्मनः ॥ १० ॥ किं दत्तं हुत-
 मिष्टं वा किं सुतप्तपथो तपः । सिन्धुराजो हि येनैकः पांडवान्
 समवारयत् ॥ ११ ॥ सञ्जय उवाच । द्रौपदीहरणं यत्तद्भीमसे-
 नेन निजितः । मानात् स तप्तवान् राजा वरार्थी सुमहत्तपः ॥ १२ ॥
 इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः सन्निवर्त्तय सः । क्षुत्पिपासा-
 तपसहः कृशो धमनि सन्ततः ॥ १३ ॥ देवमाराधयच्छ्वं गृणन् ब्रह्म
 सनातनम् । भक्तानुकम्पी भगवान् तस्य चक्रो ततो दयाम् ॥ १४ ॥
 स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाह हरः सिन्धुपतेः सुतम् । वरं वृष्णीव प्रीतोऽस्मि
 जयद्रथ किमच्छसि ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः ।
 अकेला होने पर भी उसने क्रोधमें भरे और पुत्रकी रक्षा करनेको
 आगे बढ़तेहुए पाण्डवोंको रोकदिया ॥ ६ ॥ मैं विश्वास करता
 हूँ, कि-सिन्धुराजमें बड़ा बल और शूरता है, उस महात्माका
 श्रेष्ठ कर्म और उत्तम वीरता मुझे सुना ॥ १० ॥ जयद्रथने ऐसा
 कौनसा तप, यज्ञ, होम अथवा दान किया था, जिसके प्रभावसे
 उसने अकेलेही पाण्डवोंको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ ११ ॥
 सञ्जयने कहा, कि-जिस समय जयद्रथने द्रौपदीका हरण किया
 था उस समय भीमसेनने उसको जीतलिया था तब जयद्रथको
 बहुत बुरा मालूम हुआ और उसने वर पानेकी इच्छासे बड़ा भारी
 तप किया था ॥ १२ ॥ उसने तपके आरम्भमें इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके
 प्यारे विषयोंसे हटाकर तप किया था और भूख, प्यास तथा धूप
 को सहा था, इससे उसका शरीर दुर्बल होगया था और नसेही
 नसे रहगयी थीं, इसप्रकार वह सनातन ब्रह्मके नामका स्मरण
 करताहुआ शिवकी पूजा करने लगा, यह देख भक्तवत्सल शिवने
 उसके ऊपर कृपा की ॥ १३-१४ ॥ और स्वप्नमें शिवजीने
 सिन्धुराजसे कहा, कि-हे जयद्रथ ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, तू क्या
 चाहता है ? वर माँग ॥ १५ ॥ हे भारत ! शिवजीकी इस बात

उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥ १६ ॥ पाण्डवेयानहं
संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान्। वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत १७
एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाब्रवीत् । दद्यामि ते वरं सौम्य विना
पार्थं धनञ्जयम् ॥ १८ ॥ वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पांडुनन्द-
नान् । एवमस्ति रति देवेशमुक्त्वाबुध्यत पार्थिवः । १९ ॥ स तेन
वरदानेन दिव्येनास्त्रबलेन च । एकः संवारयामास पांडवानाम-
नीकिनीम् ॥ २० ॥ तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रिणान् भयमाविशत् ।
परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥ २१ ॥ दृष्ट्वा तु
क्षत्रिया भारं सैन्यवे सर्वमाहितम् । उत्क्रुश्याभ्यद्रवन् राजन् येन
यौधिष्ठिरं बलम् ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

जयद्रथयुद्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

को सुनकर विनीतात्मा सिंधुराज जयद्रथने दोनों हाथ जोड़ प्रणाम
करके शिवजीसे कहा कि-‘मैं अकेलाही रथमें बैठ भयङ्कर परा-
क्रमी पाण्डवोंको सेनासहित रणमेंसे भगादूँ’ यह वरदान
दीजिये ॥ १६-१७ ॥ जयद्रथके ऐसा कहने पर शिवजीने उससे
कहा, कि-‘हे सौम्य ! मैं तुम्हें वर देता हूँ कि तेरी अभिलाषा
पूरी होगी, परन्तु धनञ्जय अर्जुनको तू नहीं जीत सकेगा । १८।
लड़ाईमें पीछेको केवल पाण्डुके चारों पुत्रोंको ही तू हटा सकेगा’
शंकरकी इस बातको सुन जयद्रथने कहा, ‘तथास्तु’ तदनन्तर
शंकर अन्तर्धान होगए और राजा जागपड़ा, । १९ ॥ जयद्रथने
उस वरदान और दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे अकेले होतेहुए भी
पाण्डवोंकी सेनाको हीछेको हटादिया ॥ २० ॥ जयद्रथके धनुष
की प्रत्यङ्गवाके शब्दसे शत्रुके योधाओंको भय लगा और आपकी
सेनाको बड़ाभारी हर्ष हुआ ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जयद्रथके ऊपर
सब भरको देखकर क्षत्रिय लोग कोलाहल करतेहुए पाण्डवोंकी
सेनाकी ओर दूटपड़े ॥ २२ ॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त । ४२।

सञ्जय उवाच । यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्र-
मम् । शृणु तत् सर्वमाख्यास्ये यथा पांडू न्योधयत् ॥ १ ॥ तमुह-
र्वाजिनो वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः । विकुर्वाणा बृहन्तोश्वाः
श्वसनोपमरंहसः ॥ २ ॥ गन्धर्वनगराकारं विधिवत् कल्पितं
रथम् । तस्याभ्यशोभयत् केतुर्वराहो राजतो महान् ॥ ३ ॥ श्वेत-
च्छत्रपताकाभिशचामरव्यजनेन च । स चभौ राजलिंगैस्तैस्तारा-
पतिरिवाम्बरे ॥ ४ ॥ मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितन्तमयस्मयम् ।
वरुथं विवभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवावृतम् ॥ ५ ॥ स विस्फार्य
महचापं किरन्निपुणान् बहून् । तत्खंडं पूरयामास यद्यद्वारयदा-
ज्जुनिः ॥ ६ ॥ सः सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टाभिशच वृकोदरम् ।

सञ्जयने कहा, कि-आपने जो सिंधुराजके पराक्रमका सुभ्रसे
बुझा था, अतः जयद्रथ पाण्डवोंसे जिसप्रकार लड़ा था, वह सब
मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥ १ ॥ सिन्धुगजका रथ गन्धर्वनगरकी
समान रमणीय और बहुतही सजाहुआ था, उस रथको वशमें
रहनेवाले, विकारी, ऊंचे और पत्रनवेगी सिंधुदेशी घोड़े खंचते
थे, उस रथपर वराहके चिन्हवाली रुपहली ध्वजा फहरारही
थी ॥ २-३ ॥ ऐसे रथमें जयद्रथ बैठा था, उसके ऊपर
श्वेत छत्र लगरहा था, श्वेत झण्डी फहरारही थी, चमर और
पंखे ढलरहे थे, ऐसे चिन्होंसे वह आकाशमें उदित हुए चन्द्रमा
की समान शोभा पारहा था ॥ ४ ॥ हीरे, मोती, वज्र और सुवर्ण
से भूषित उसका लोहेका रथका आवरण, नक्षत्रोंसे घिरे आकाश
सा शोभित होरहा था ॥ ५ ॥ जयद्रथ ऐसे रथमें बैठकर
रणमें आया और उसने बड़ेभारी धनुष पर टङ्कार दे बहुतसे
बाण मारकर अभिमन्युने जहाँके योधाओंको मारडाला था उस
भागको योधाओंसे फिर भरदिया ॥ ६ ॥ उसने सात्यकिके तीन
भीमसेनके आठ, धृष्टद्युम्नके साठ और विराटके दश बाण मारे

धृष्टद्युम्नं तथा पृथ्या विराटं दशभिः शरैः ॥ ७ ॥ द्रुपदं पञ्च-
 भिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम् । केकयान् पञ्चविंशत्या
 द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरन्तु सप्तत्या ततः शेषान-
 पानुदत् । इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥ अथास्य
 शितपीतेन भल्लेनादिश्य कामुकम् । चिच्छेद ग्रहसन् राजा धर्म-
 पुत्रः प्रतापवान् ॥ १० ॥ अक्षोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कामु-
 कम् । विव्याध दशभिः पार्थ तांश्चैवान्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ११ ॥
 तत्तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः । धनुर्ध्वजञ्च
 छत्रञ्च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १२ ॥ सोऽन्यदादाय बलवान् सज्यं
 कृत्वा च कामुकम् । भीमस्यापातयत् केतुं धनुरश्वांश्च मारिप १३
 स हताश्वदबलुत्य क्षिन्नधन्वा रथोत्तमात् । सात्यकेराप्लुतो
 यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥ १४ ॥ ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु

और द्रुपदको पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे, शिखण्डीको सातसे,
 केकयोंको पच्चीससे, द्रौपदीके पुत्रोंको तीन २ बाणोंसे
 और युधिष्ठिरको साठ बाणोंसे पीड़ा दी औरों को
 भी बड़ी भारी बाणोंकी वर्षासे पीड़ा दी, यह एक आश्चर्यका
 काम हुआ ॥ ७-९ ॥ इतनेमें प्रतापी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने
 हँसतेर "अभी बाणसे तेरे बाणोंको काटे डालता हूँ" यह कहकर
 पानी पिण्डहुए तेज बाणसे, उसके धनुषको काटडाला ॥ १० ॥
 जयद्रथने पलक मारतेमेंही दूसरा धनुष ले युधिष्ठिरके दश और
 दूसरोंके तीन २ बाण मारे ॥ ११ ॥ उसके हाथकी फुरतीको देख
 कर भीमने तीन २ भल्लोंसे उसकी ध्वजा, धनुष और छत्रको
 तुरन्त भूमिमें गिरादिया ॥ १२ ॥ हे महाराज ! उस बलवान्ने
 दूसरा धनुष ले डोरी चढ़ा, भीमसेनकी ध्वजा, धनुष और घोड़ों
 को गिरादिया ॥ १३ ॥ धनुषके कटनेपर भीमसेन मरेहुए घोड़ोंवाले
 रथमेंसे कूदकर सात्यकिके रथपर, पर्वतके शिखर पर छल्लाँग मारने

साध्विति वादिनः । सिन्धुराजस्य तत् कर्म प्रेक्ष्याश्रद्धेयमद्रु-
तम् ॥ १५ ॥ संकुहान् पांडवानो यद्वधारास्त्रतेजसा । तत्तस्य
कर्म भूतानि सर्वाण्येवाभ्यपूजयन् ॥ १६ ॥ सौभद्रेण हतैः पूर्वं
सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः । पांडूनां दर्शितः पन्थाः सैन्येन निवा-
रितः १७ यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चा जकेकयाः । राण्डवाश्चान्व-
पद्यन्त प्रतिशेकुर्न् सैन्यवम् ॥ १८ ॥ यो यो हि यतते भक्तुं द्रोणा-
नीकं तवाहितः । तन्तमेव वरं प्राप्य सैन्यवः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

जयद्रथपुढे त्रिचत्वारिंशाध्यायः ॥ ४३ ॥

सञ्जय उवाच । सैन्येन निरुद्धेषु जयद्रथिषु पांडुषु । सुप्रारम्भ-
भयचुङ्गं त्वदीयानां परैः सह ॥ १ ॥ प्रविश्याथाज्जुनिः संनां सत्य-

वाले सिंहकी समान, जापहुंवा ॥ १४ ॥ तुम्हारे सैनिक सिन्धुराजके
अद्भुत और जिसका विश्वास कठिनसे हो ऐसे कर्मको देखकर
साधु कहने लगे ॥ १५ ॥ अकेला जयद्रथ अस्त्रके तेजसे क्रोधमें
भरेहुए पांडवोंको आगे बढ़नेसे रोक रहा, उसके इस कर्मकी सब
लोगोंने प्रशंसा की ॥ १६ ॥ इतनेमें सुभद्रानन्दनने उत्तरकी ओर
हाथीसवारोंको मारकर पांडवोंको मार्ग दिखाया, परन्तु जयद्रथ
ने आकर उस मार्गको भी रोकलिया ॥ १७ ॥ उस समय मत्स्य,
पञ्चाल, केकय और पांडवोंने बड़ा उद्योग किया, परन्तु वे जय-
द्रथको हटा न सके ॥ १८ ॥ शत्रुपक्षका जो २ श्रेष्ठ पुरुष द्रोणकी
सेनाको तोड़ता था, उसको ही जयद्रथ वरदान पानेके कारण
हटा देता था ॥ १९ ॥ तैंवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

सञ्जयने कहा, कि - हे राजेन्द्र ! विजयके अभिलाषी पांडवों
को जब सिन्धुराजने रोकदिया तब तुम्हारे योधाओं का शत्रुओं
के साथ घोर युद्ध होनेलगा ॥ १ ॥ सत्यप्रतिज्ञ दुर्धर्ष अभिमन्यु
चक्रव्यूहमें घुसकर जैसे तेजस्वी मगर समुद्रको घंघोलडालता है

सन्धो दुरासदः । व्यक्तोभयततेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २ ॥
 तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तरिन्दमम् । यथाप्रधानाः सौभद्रगन्धर्व-
 रथसत्तमाः ॥ ३ ॥ तेषां तस्य च सम्पर्द्धो दारुणः सपपद्यत ।
 सृजतां शरचर्पाणि प्रसक्तममितौजसाम् ४ रथव्रजेन संरुद्धस्तैर-
 मित्रैस्तथाज्जुनिः । वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ५
 तस्य विव्याध बलवान् शरैरश्वानजिह्वगैः । क्षालयमानैरथ-
 तैरश्वैरपहतो रणात् ॥ ६ ॥ तेनान्तरेणाभिमन्योर्यन्तापासारय-
 द्रयम् । रथव्रजनास्ततो हृष्टाः साधु साध्विति चक्रुशुः ॥ ७ ॥ तं
 सिंहमिव संकुद्धः प्रयत्नन्तं शरैररीन् । आरादायान्तमभ्येत्य वसा-
 तीयोभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ८ ॥ सोभिषग्युं शरैः पण्ड्या रुक्मपुंस्त्रै-
 रवाकिरत् । अववीच न मे जीवन् जीवितो युधि मोक्ष्यसे ॥ ९ ॥

तैसेही सेनाको घंघोलेनेलगा ॥ २ ॥ जब शत्रुदमनकर्त्ता अभि-
 मन्यु बाणोंसे सेनाको व्याकुल करनेलगा तब प्रधान श्रेष्ठ
 महारथी उसके ऊपर चढ़आये ॥ ३ ॥ महाबली औरच और
 अभिमन्यु परस्पर बाणोंसे युद्ध करनेलगे और उन दोनोंमें दारुण
 युद्ध होनेलगा ॥ ४ ॥ तुम्हारे रथियोंने अभिमन्युको रथोंके
 घेरेमें लेलिया तब भी अभिमन्युने वृषसेनके सारथीको मारकर
 उसके धनुषको काटडाला ॥ ५ ॥ बली वृषसेनने अभिमन्युके
 घोड़ोंको सीधे जानवाले बाणोंसे घायल करदिया, इससे वायुभी
 समान वेगवाले घोड़े विदककर भागनेलगे, एकाएक इस आपत्ति
 को आयीहुई देखकर अभिमन्युका सारथी उसके रथको रणमेंसे
 दूर लेगया यह देख रथी प्रसन्न होकर कहनेलगे, कि-ठीक
 हुआ ठीक हुआ ॥ ६-७ ॥ फिर अभिमन्यु सिंहकी समान क्रोधमें
 भर बाणोंसे शत्रुओंको मारताहुआ सेनाके पास आ पहुँचा, कि-
 तुरन्तही वसन्तीय उसके ऊपर चढ़आया ॥ ८ ॥ उसने सुनहरी
 पूंछवाले सौ बाण अभिमन्युके मारे और कहा, कि-यदि युद्धमें मैं

तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना । विव्याध हृदि सौभद्रः स
 पपात व्यसुः क्षितौ ॥ १० ॥ वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रिय-
 पुङ्गवाः । परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिवांसवः ॥ ११ ॥ विस्फा-
 रयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः । तद्युद्धमभवद्रौद्रं सौभद्रन्या-
 रिभिः सह ॥ १२ ॥ तेषां शरान् सेष्वसनान् शरीराणि शिरांसि
 च । सकृदङ्गलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ १३ ॥
 सखङ्गाः सांगुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः । अपश्यन्त भुजा-
 शिखन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १४ ॥ क्षत्रिभराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च
 महाभुजैः । वर्मभिश्चमभिर्दारैर्गुट्टैश्चत्रचामरैः ॥ १५ ॥ उपस्क-
 रैरधिष्ठानैरीपादण्डकवन्धुरैः । अर्क्षैर्विमथितैश्चकैर्भग्नैश्च वनुधा
 युगैः ॥ १६ ॥ अनुकूर्पैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः । रथैश्च
 भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णैर्भवन्मही ॥ १७ ॥ निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नाना-

जीता रहा तो तू मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जासकेगा । ६।
 लोहेका कवच पहरनेवाले वसातीयके हृदयमें अभिमन्युने दूर
 जानेवाला एक बाण मारा, तब तो वसातीय प्राणरहित होकर
 भूमिमें गिरपड़ा ॥ १० ॥ वसातीयको मराहुआ देखकर बड़े २ क्षत्रिय
 राजे क्रोधमें भर गए, और हे राजन् ! उन्होंने तुम्हारे पोतेको मारने
 की इच्छासे उसको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ११ ॥ वे नाना-
 प्रकारके धनुषों पर टंकारें देने लगे और अभिमन्युके साथ उनका
 महाभयंकर युद्ध हुआ ॥ १२ ॥ अभिमन्युने क्रोधमें भरकर उनके
 बाण, धनुष, शरीर, पुष्पमाला और कुण्डलों वाले मस्तक सटा-
 सट उड़ा दिये ॥ १३ ॥ खड्ग, चमड़ेके मौजे, पट्टिश, फरसे और
 सोनेके आभूषणोंवाली सैकड़ों भुजाएँ कटी हुई दीखने लगीं १४।
 पुष्पमालाएँ, गहने, वस्त्र, बड़ी २ भुजाएँ, कवच, ढाल, हार, मुकुट,
 छत्र, चमर, सामग्री, रथोंके गद्दे, ईपा, दण्डे, धुरे, टूटे हुए पहिये,
 बहुतसे जुए, अनुकूर्प, फण्डे, सारथि, घोड़े, रथ, हाथी, मरे हुए

जनपदेश्वरैः । जयमृद्वैर्वा भूमिर्दारुणा सपपद्यत ॥ १८ ॥
दिशो विचरतस्तस्थ सर्वाश्च प्रदिशस्तथा । रणेऽभिमन्योऽक्रुदुस्य ।
रूमन्तरधीयत ॥ १९ ॥ काञ्चनं यद्यदस्यासीद्वर्मः चाभरणानि
च । धनुषश्च शराणाञ्च तदपश्याम केवलम् ॥ २० ॥ तं तदा
नाशकत् कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभित्रीक्षितुम् । आददानं शरैर्योधान्
मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्राणपर्वणि अभिमन्युवधर्वाणि अभिमन्यु-
पराक्रमे चतुरचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

सञ्ज्ञय उवाच । आददानस्तु शृणामायां प्यभवदार्जुनिः ।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान् काल इयागते ॥ १ ॥ स शक्र इव
यिक्रान्तः शक्रमूनोः सुतो वली । अभिमन्युस्तदानीकं लोढयन्
समदृश्यत ॥ २ ॥ प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः । सत्य-
श्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोत्खणः ॥ ३ ॥ सत्यश्रवसि चाक्षिप्ते

क्षत्रिय तथा मरेहुए भिन्न २ अनेकों देशोंके राजाओंसे व्याधीहुई
पृथ्वी डरावनी होगई ॥ १५-१८ ॥ अभिमन्यु क्रोधमें भरकर रणमें
दशों दिशाओंमें घूमरहा था, उस समय उसका शरीर तिलकुल
नहीं दीखता था केवल उसके धनुष, बाण और शरीरके सोनेके
गहने ही दीखते थे ॥ १९-२० ॥ बाणोंसे शत्रुओंके प्राणोंको
हरतेहुए, अभिमन्युको सूर्यकी समान, कोई आँखोंसे न देख-
सका ॥ २१ ॥ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ ॥

सञ्ज्ञपने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! समय आजाने पर जैसे काल
सब प्राणियोंको नष्ट करदेता है तैसेही अभिमन्यु भी समय पाते
ही शूरवीरोंके प्राणोंको हरलेता था ॥ १ ॥ इन्द्रकी समान परा-
क्रमी इन्द्रके पुत्रका पुत्र बलवान् अभिमन्यु सेनाको घेरोलता
हुआसा दीखा ॥ २ ॥ चक्रव्यूहके प्रथमद्वारमें प्रवेशकर परशुरामकी
समान पराक्रमी अभिमन्युने पहिले, जैसे भयङ्कर बाघ हिरनको

त्वरमाणा महारथाः । प्रगृह्यं त्रिपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ४
 अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुङ्गवाः । स्पर्धमानाः समानमर्जुजि-
 वांसन्नीलुनात्मजम् ॥ ५ ॥ क्षत्रियाणां मनीषाणि मद्रतान्यभिधा-
 वताम् । जग्राह तिमिरासाद्य ह्युद्रमत्स्यानिवारणवे ॥ ६ ॥ ये केचन
 गतास्तस्य समीपमलायिनः । न ते प्रतिन्यवर्तन्त समुद्राद्रिव
 सिन्धवः ॥ ७ ॥ महाग्राहगृहीतेव चातवेगभयाद्विता । सम-
 कम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवारणवे ॥ ८ ॥ अथ रुक्मरथो नाम
 मद्रेश्वरसुतो बली । वस्तामाशवासयन् सेनामवस्तो वाक्यमब्रवीत् ६
 अलं त्रासेन वः शूरा नैव कश्चिन्मपि स्थिते । अहमेनं ग्रहीष्यामि
 जीवग्राहं न संशयः ॥ १० ॥ एवमुक्तरतु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्य-

द्वोच लेता है तैसेही सत्यश्रवाको पकड़लिया ॥ ३ ॥ सत्यश्रवा
 के पकड़े जानेपर उसको छुड़ानेकी शीघ्रतामें भर महारथी शस्त्रों
 को उठा २ कर अभिमन्युके ऊपर चढ़आये ॥ ४ ॥ वे क्षत्रियश्रेष्ठ
 पहिले, "मैं मारूँ" २ कहतेहुए अर्जुनके पुत्रको मारनेकी इच्छासे
 उसके पास पहुँचगए ॥ ५ ॥ इस समय, जैसे महामत्स्य समुद्रकी
 छोटी २ मच्छियोंको पकड़लेता है तैसेही अभिमन्युने भागतेहुए
 राजाओंकी सेनाको (भूपाटोंमें) पकड़लिया ॥ ६ ॥ जो भागे
 नहीं और उसके पास खड़े रहें वे समुद्रमें गिरनेवाली नदियोंकी
 समान फिर नहीं लौटें अर्थात् उस लड़ाईमें मारेगए ॥ ७ ॥ मार्ग
 भूलीहुई और जिसका बड़े २ ग्राह पीछा कररहे हों और जो आँधी
 के चलनेसे झोटे खारही हैं ऐसी नौकाकी समान भारतीय सेना
 भी अभिमन्युरूप ग्राहके हाथमें पड़जानेसे काँपनेलगी ॥ ८ ॥
 रुक्मरथ नामवाला मद्रनरेशका बली पुत्र निडर होकर सेनाको
 आशवासन देताहुआ कहनेलगा, कि—॥ ९ ॥ हे शूरा ! अब तुम
 मत डरो, मेरे जीतेहुए अभिमन्यु कौन बस्तु है ? मैं निःसन्देह
 इसे जीताहुआ ही पकड़ लूँगा ॥ १० ॥ अभिमन्युके विषयमें ऐसा

वान् । सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥ ११ ॥ सोमि-
मन्युं त्रिभिर्वाणैर्विध्वा वत्सस्यथानदत् । त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ
सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥ १२ ॥ स तस्येज्वसनं छित्वा फाल्गुनिः
सव्यदक्षिणौ । भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा रुक्मरथं रुक्मं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् । जीवग्राहं जिघृक्षन्तं
सौभद्रेण यशस्विना ॥ १४ ॥ संग्रामदुर्मदा राजन् राजपुत्राः महा-
रिणः । वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १५ ॥ ताल-
मात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः । आर्जुनि शरवर्षेण सम-
न्तात् पर्यवारयन् ॥ १६ ॥ शूरैः शिक्तावलोपेतैस्तरुणैरत्यम-
र्षणैः । दृष्ट्वाकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७ ॥ द्वाद्यमानं
शरव्रातैर्दृष्टो दुर्योधनोभवत् । वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यन् १८

कहकर मद्राज अच्छीप्रकार रचेहुए शोभायमान रथमें बैठकर
अभिमन्युके ऊपर दौड़ा ॥ ११ ॥ और तीन बाण अभिमन्युकी
बातीमें, तीन बाण दाहिनी भुजामें, और तीन तेज बाण बाईं
भुजामें मारकर गर्जने लगा ॥ १२ ॥ अभिमन्युने फुर्तीसे रुक्मरथ
का, धनुष, दाहिनी बाईं भुजा, शिर, नेत्र और भौएं काटकर
उसको पृथिवीमें गिरा दिया ॥ १३ ॥ और यशस्वी अभिमन्युने शल्यके
अभिमानी पुत्र रुक्मरथको जीताही पकड़ना चाहा यह देखकर १४
हे राजन् ! शल्यपुत्रके मित्र राजकुमार जो संग्रामके लिये
मदसे मतवाले फिरनेवाले और सुनहरी ध्वजावाले थे उन्होंने
ताड़की समान धनुषों पर बाण चढ़ा उनको खेंचकर अभिमन्युके
ऊपर चारों ओरसे बाणोंकी वृष्टि करके उसको घेर लिया १५-१६
अस्त्रशिक्तामें चतुर, बली और महाक्रोधी इन तरुण शूरोंने अकेले
लड़तेहुए अजेय अभिमन्युको बाणोंकी वृष्टिसे ढक दिया, यह देख
कर दुर्योधनको बड़ा हर्ष हुआ और उसने समझा, कि-वस
अब अभिमन्यु यमलोकमें पहुँच गया ॥ १७-१८ ॥ उन राजपुत्रों

सुवर्णपुंखैरिषुभिर्नाशितैः सुतेजनैः । अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्नि-
 मेषात्ते नृपात्मजाः ॥ १९ ॥ समुताश्वध्वजं तस्य स्थन्दनं तश्च
 मारिष । आचितं समपश्याम श्वाविधं शल्ललैरिव ॥ २० ॥ स
 गाढविद्वः क्रुद्धश्च तान्नैर्गज इवार्हिनः । गान्धर्वमस्त्रमायच्छदय-
 मायाञ्च भारत ॥ २१ ॥ अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदा-
 ह्वम् । तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनामोहयताहितान् ॥ २२ ॥ एकधा
 शनधा राजन् दृश्यते स्म सहस्रधा । अज्ञातचक्रवत् संख्ये क्षिप्र-
 मस्त्राणि दर्शयन् ॥ २३ ॥ रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परंतपः ।
 विभेद शनधा राजन् शरीराणि महीक्षितान् ॥ २४ ॥ प्राणाः
 प्राणभृतां संख्ये प्रेषिताः निशितैः शरैः । राजन् प्रापुरमु लोकं
 शरीराण्यवनिं ययुः ॥ २५ ॥ धनूंष्यश्वान्नियन्तृश्च ध्वजान्

ने एक निमेषमात्रमें सुवर्णकी पूँछवाले, अनेकों प्रकारके बड़े ही
 तेज बहुतसे बाणोंसे अभिमन्युको ढकदिया ॥ १९ ॥ हे राजन् !
 उस समय काटोंसे ढकी हुई सेईकी समान सारथी, घोड़े, ध्वजा,
 और रथसहित अभिमन्युको बाणोंसे छायाहुआ देखा ॥ २० ॥
 अभिमन्युने अत्यन्त विधजानेसे, अंकुशोंसे पीड़ा पानेपर क्रोधमें
 भरे हाथीकी समान क्रोधमें भरकर गान्धर्वास्त्र छोड़ा और वह
 जाननेमें न आवै ऐसी रथको घुमानेकी युक्तियें करने लगा २१
 तथा कर तुम्बुरु आदि गन्धर्वोंसे अर्जुनने इस अस्त्रको पाया था
 और शत्रुओंको मोहित करदिया था ॥ २२ ॥ हे राजन् ! युद्ध-
 भूमिमें उसका छोड़ाहुआ वही गन्धर्व अस्त्र वरेंटीकी समान घूमता
 था, और वह एक, अनेक तथा सहस्रों प्रकारसे अस्त्रोंके समूहों
 को फुरतीसे छोड़ता दिखाई देता था ॥ २३ ॥ हे राजन् ! अभि-
 मन्युने रथकी घुमानेकी युक्ति और अस्त्रोंकी मायासे मोहमें डाल
 कर राजाओंके शरीरोंके सैकड़ों टुकड़े करडाले ॥ २४ ॥ हे राजन् !
 इस युद्धमें तेज बाणोंके प्रहारोंसे अनेकों प्राणियोंके प्राण पयान

बाहूँश्च सांगदान् । शिरांसि च सितैर्वाणैस्तेषां विच्छेद फाल्गुनिः २६
 चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः । राजपुत्रशतं तद्वत्
 सौभद्रेण निपातितम् ॥ २७ ॥ क्रुद्धाशीविपसंकाशान् सुकुमा-
 रान् सुखोचितान् । एकेन निहतान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् २८
 रथिनः कुञ्जरानश्चान् पदार्तीश्चापि मञ्जतः । दृष्ट्वा दुर्योधनः
 क्षिप्रमुपायात्तममर्षितः ॥ २९ ॥ तयोः क्षणमिवापूर्णः संग्रामः सम-
 पद्यत । अथाभवत्ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः ॥ ३० ॥
 इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुर्योधनपराजये
 पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह ।
 संग्रामं तुमुलं घोरं जयञ्चैव महात्मनः ॥ १ ॥ अथ ह्ययमिवाश्चर्यं

करगए और शरीर पृथ्वी पर गिरपड़े ॥ २५ ॥ अभिमन्युने
 उनकी ध्वजा, धनुष, घोड़े, सारथी, बाजूबन्दवाली झुजायें और
 शिरोंको तेज बाणोंसे काटडाला ॥ २६ ॥ पाँच वर्षका फलोंसे लदा
 आमोंके पेड़ोंका बाग जैसे वायुसे पेड़ोंके गिरजाने पर दीखता
 है तैसेही अभिमन्युके गिराएहुए सैकड़ों राजपुत्र दिखाई देते थे २७
 क्रोधित विपथर सपोंकी समान, अत्यन्त, सुकुमार और सुख
 भोगने योग्य राजकुमारोंको अकेले अभिमन्युने मारडाला, यह देख
 कर दुर्योधन डरगया ॥ २८ ॥ रथी, घुडसवार हाथीसवार तथा
 पैदलोंको टपाटप गिरतेहुए देखकर दुर्योधन क्रोधमें भरगया और
 अभिमन्युकी ओरको झपटा ॥ २९ ॥ उन दोनोंका संग्राम क्षण
 भर ही हुआ, परन्तु वह अधूराही रहा, क्योंकि-तुम्हारा पुत्र सैकड़ों
 बाणोंसे बिंध जानेके कारण रणभूमिमेंसे पलायमान होगया ३०
 पैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा कि-हे सूत ! तू कहता है, कि-अकेले महा-
 त्मा अभिमन्युने असंख्योंके साथ घोर संग्राम किया और उसमें

सौभद्रस्याथ विक्रमम् । किन्तु नात्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपा-
श्रयः ॥ २ ॥ दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते । सौभद्रे प्रति-
पत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । संशुष्का-
स्याश्चलन्नेत्राः, प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः । पलायनकृतोत्साहा
निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४ ॥ हतान् आतन् पितन्पुत्रान्सुहृत्संवंधि-
वान्धवान् । उत्सृज्योत्सृज्य संजग्मुस्त्वरयन्तो ह्यद्विषान् ॥ ४ ॥
तान्यभगनांस्तथा हृष्टा द्रोणो द्रौणिर्वृद्धद्वलः । कृपो दुर्योधनः
कर्णः कृतवर्मा सौव्रलः ॥ ६ ॥ अभ्यधावन्मुसंक्रुद्धाः
सौभद्रमपराजितम् । ते तु पौत्रेण ते राजन्प्रायशो विमुक्ती
कृताः ॥ ७ ॥ एकस्तु सुखसंवृद्धो बान्यादर्पाच्च निर्भयः । इष्वस्त्र
विन्महातेजा लक्ष्मणोर्जुनिर्मभ्ययात् ॥ ८ ॥ तमन्वगेवास्य पिता

विजय पाई, अभिमन्युके इस आश्चर्यकारी पराक्रम पर विश्वास
नहीं होता, परन्तु जो धर्म पर चलते हैं उनके विषयमें ऐसा होना
अधिक अचरज भी नहीं है ॥ १-२ ॥ दुर्योधनके पीठ
दिखाकर भागजाने पर, और सैंकड़ों राजपुत्रोंके मारे जाने पर
मेरे योधाओंने अभिमन्युको मारनेके लिये कौनसा उपाय
किया था ? ॥ ३ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! उनके
मुख सूखगये, नेत्र ढगमगाने लगे, पसीना आगया, रोंगटे खड़े
होगये और वे शत्रुओंको जीतनेका उत्साह त्याग भागनेको
तयार होगये ॥ ४ ॥ वे मरेहुए भाई, पिता, पुत्र, मित्र, और
बन्धुबान्धवोंको छोड़ तेजीसे हाथी घोड़ोंको दौड़ाकर भागगए ॥
उनको इसप्रकार हतोत्साह हुआ देखकर द्रोण, अश्वत्थामा,
बुद्धद्वल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि क्रोधमें
भर अजित अभिमन्यु पर चढ़गए, हे राजन् ! तुम्हारे पोतेने उन्हें
बहुत बार पीछेको हटाया ॥ ६ ॥ ७ ॥ अकेला लक्ष्मण, जो बालक-
पनसे सुखमें पलाथा और घमण्डसे निर्भय था, वह महातेजस्वी

पुत्रगृही न्यवर्त्तन । अनुदुर्योधनं चान्ये न्यवर्त्तन्त महारथाः ६
 तं तेभिपिपितुर्बाणैर्मैघा गिरिमिवाद्बुभिः । स तु तान् प्रमथयैको
 विष्वग्भ्रतो यथाबुदान् ॥ १० ॥ पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं मिय-
 दर्शनम् । पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकामुकम् ११ अत्यन्तमुख-
 संदृढं धनेश्वरसुतोपमम् । आससाद रणे कार्पण्यमन्तो मत्तमिव
 द्विपम् ॥ १२ ॥ लक्ष्मणेन तु संगम्य सौमद्रः परवीरहा । शरैः
 सुनिशितैस्त्रीक्ष्णैर्बाह्वोरसि चापयत् ॥ १३ ॥ संक्रुद्धो वै महाराज
 दंडाहत इवोरगः । पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥ १४ ॥
 सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यसुं लोकं गमिष्यसि । पश्यतां चाश्रवानां

लक्ष्मणही अभिमन्युके सामने डटा खड़ा रहा ॥ ८ ॥
 उसके पीछे पुत्रप्रेमसे दुर्योधन भी आकर खड़ा हो गया तथा दुर्यो-
 धनके पीछे और महारथी भी रणाङ्गणमें आकूदे । ६ ॥ जैसे
 मेघ जलसे पर्वतको नष्ट या देता है तैसेही सब महारथी अभिमन्यु
 के ही ऊपर बाण बरसाने लगे, परन्तु चारों ओरको बहनेवाला
 वायु जैसे मेघोंको तित्तर वित्तर कर डालता है तैसेही अभिमन्युने
 अकेलेही उन सबोंको छिन्न भिन्न कर दिया ॥ १० ॥ उस समय
 दुर्धर्ष देखनेमें प्यारा लगनेवाला तुम्हारा पोता लक्ष्मण धनुषको
 उठाकर दुर्योधनके पास खड़ा था, उस बड़ेभारी सुखमें पलेहुए
 कुवेरके पुत्रकी समान सुन्दर लक्ष्मणके सामने अभिमन्यु इस
 प्रकार आया जैसे मतवाले हाथीके सामने मतवाला हाथी आता
 है ॥ ११-१२ ॥ शत्रुनाशक अभिमन्युने लक्ष्मणसे भिड़कर
 तेज धार वाले अति तेज बाण लक्ष्मणकी भुजाओंमें मारे ॥ १३ ॥
 और हे महाराज ! लकड़ीमें मारेहुए सर्पकी समान क्रोधमें भर
 कर तुम्हारा पोता (अभिमन्यु) तुम्हारे पीछे (लक्ष्मणसे) बोला,
 कि— ॥ १४ ॥ (इस जगत्में) तुम्हें जो कुछ देखना हो भली
 प्रकार देख ले, क्योंकि— मैं तुम्हें तेरे वन्धुओंके सामने ही यगलोक

त्वां नयामि यमसादनम् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा ततो भल्लं सोमदः
 परवीरहा । उद्धवर्ह महाबाहुर्निमुक्तोरगसन्निभम् ॥ १६ ॥ स तस्य
 भुजनिमुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम् । मुनसं मृश्रु केशांतं शिरो-
 ऽहार्पीत्सकुण्डलम् ॥ १७ ॥ लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुकु-
 र्जनाः । ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रियपुत्रे निपातिते ॥ १८ ॥ हतन-
 मिति चुकोश क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः । ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोण-
 पुत्रो बृहद्बलः ॥ १९ ॥ कृतवर्मा च हार्दिक्यः पट्टधाः पर्यवारयन् ।
 तांस्तु विध्वा शितैर्वाणैर्विमुखीकृत्य चार्जुनिः ॥ २० ॥ वेगेनाभ्य-
 पतत् क्रुद्धः सैन्धवस्य महद्बलम् । श्रावद्वुस्तस्य पन्थानं गजानी-
 केन दंशिताः ॥ २१ ॥ कलिगाश्च निपादारच काथपुत्रश्च वीर्यवान् ।
 तत् प्रसक्तमिवात्यर्थं युद्धमासीद्विशाम्पते २२ ततस्तत् कुञ्जगानीकं
 व्यधमद्रष्टुमार्जुनिः । यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदान् शतशोम्बरे २३

में भेज दूँगा ॥ १५ ॥ यह कहकर शत्रुनाशक महाबाहु सुभद्रा-
 नन्दनने कैचलीरहित सर्पकी समान भल्ल नामक बाणको धनुष
 पर चढ़ाया ॥ १६ ॥ उस बाणके छूटने पर लक्ष्मणके दीखनेमें
 सुन्दर, सुन्दर नाक, भौं और केशोंवाला मस्तक मुकुटसहित दूर
 जा गिरा ॥ १७ ॥ लक्ष्मणको मराहुआ देख मनुष्य हाहाकार करने
 लगे और प्रियपुत्रके मारेजानेसे क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ दुर्योधन भी “अरे
 अभिमन्युको मार डालो मार डालो” इसप्रकार चिल्लाकर क्षत्रियोंको
 उकसाने लगा तब द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण बृहद्बल, और
 हार्दिक्य कृतवर्मा इन छः महारथियोंने अभिमन्युको घेरलिया,
 परन्तु अर्जुनका पुत्र उन सबोंको तेज बाणोंसे भगाकर क्रोधमें भर
 बड़े वेगसे सिन्धुराजकी सेना पर जाचढ़ा, यह देख वीर्यवान्
 काथपुत्र कलिङ्ग और निपादोंने हाथियोंकी सेनासे अभिमन्युके
 मार्गको रोकदिया इन सबोंने परमभयङ्कर युद्धकिया ॥ १८-२२ ॥
 अर्जुनकुमारने उस हीठ तस्तिसेनाको इसप्रकार नष्ट करदिया जैसे

ततः काथः शरव्रातैरार्जुनि समवाकिम् । अथेनरे सन्निवृत्ताः
पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ २४ ॥ परमास्त्राणि धुन्नानाः सौभद्रमभि-
दुद्रयुः । तान्निर्वार्यार्जुनिर्वाणैः काथपुत्रमथार्दयत् ॥ २५ ॥ शरी-
षेणाप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया । सधनुर्वाणकेयूरौ बाहू समु-
कुटं शिरः ॥ २६ ॥ सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाश्वान्यपातयत् ।
कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चास्त्रबलेन च । युक्ते तस्मिन् हते
वीराः प्रायशो विमुखाभवन् ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि काथपुत्रवधे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् । कुला-
नुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपराजितम् ॥ १ ॥ आजानेयैः सुबलिभि-

नित्य चलनेवाला बाघ आकाशमें बादलोंके सैकड़ों टुकड़े कर
हालता है ॥ २३ ॥ तदनन्तर काथने बाणोंके समूहकी अभिमन्युके
ऊपर वर्षा की, इतनेमें ही भागेहुए द्रोण आदि महारथी भी अपने
अपने महाधनुषों पर टंकार देतेहुए फिर अर्जुनके पुत्र पर टूटपड़े
अभिमन्यु उनको फिर भी बाणोंसे विमुख कर काथपुत्रको
उत्पीड़ित करनेलगा ॥ २४-२५ ॥ अभिमन्युने उसको मारनेकी
इच्छासे फुरतीके साथ असंख्यों बाणोंकी वर्षाकर उसके धनुष,
बाण, और बाजूबन्दसहित दोनों भुजा, मुकुटसहित शिर, छत्र,
ध्वजा, सारथी, घोड़े और रथको तथा उसको भी भूमिमें गिरादिया,
कुल, कीर्ति, शास्त्र और बलवाले काथपुत्रके मारेजाने पर बहुतसे
वीर मुँह फेरकर भागनेलगे ॥ २६-२७ ॥ छियालीसवाँ अध्याय
समप्त ॥ ४६ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-कुलीन, बली और तीन वर्षकी आयुवाले
घोड़ोंके रथसे आकाशमें कून्ते हुएसे आतेहुए, कुलके योग्य कर्म
करनेवाले संग्राममें न हारेहुए अपराजित अभिमन्युके चक्रव्यूहमें

यान्तमश्वैर्द्विहायनैः । सवमानमिवाकाशे के शूराः समवायन् २
सञ्जय उवाच । अभिमन्युः प्रविश्यैतास्तावकान्निशितैः शरैः ।
अकरोद्विमुखान् सर्वान् पार्थिवान् पाण्डुनन्दनः ॥ ३ ॥ तं तु
द्रोणः क्रुपः कर्णो द्रौणिश्च सवृद्धजलः । कृतवर्मा च हादिक्वः
पट्टधाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा तु सैन्यवे भारपतिमात्रं समाहि-
तम् । सैन्यं तत्र महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ सौभद्रमितरे
वीरपुरुषवर्षञ्छ्वरास्त्रुभिः । तालमात्राणि चायानि विकर्षन्तो महा-
वनाः ॥ ६ ॥ तांस्तु सर्वान् महोष्वासान् सर्वविद्याम् निष्ठितान् ।
व्यष्टभयद्रोणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ ७ ॥ द्रोणं पञ्चाशता-
विध्यत् विशत्था च वृद्धजलम् । अशीत्या कृतवर्माणं क्रुपं षष्ट्या
शिलीमुखैः ॥ ८ ॥ रुक्मपुंस्त्वैर्षावैर्गैराकर्णसमचोदितैः । अवि-
ध्यदशभिर्वाणैरश्वत्यामानमाजुनिः ॥ ९ ॥ स कर्णं कर्णिना

प्रवेश करने पर किन २ वीरोंने उसको रोका था ॥ १-२ ॥
सञ्जयने कहा, कि-पाण्डुनन्दन अभिमन्यु चकव्यूहमें प्रवेश कर
तेज बाणोंसे सब राजाओंको विमुख करने लगा ॥ ३ ॥ तुरन्त
ही द्रोण, अश्वत्थामा, क्रुप, कर्ण, वृद्धजल और हादि-
क्व-कृतवर्मा इन छः रथियोंने उसको घेर लिया ॥ ४ ॥ हे महाराज !
तुम्हारी सेना, जयद्रथ पर बड़ा भारी आपड़ा है यह
देखकर युधिष्ठिर पर टूट पड़ी ॥ ५ ॥ दूसरे महावीर ताड़की समान
बड़े धनुषों पर टंकार देकर वीर अभिमन्युके ऊपर बाणोंको
बरसाने लगे ६ सकल विद्याओंमें निपुण शत्रुओंके साथ महाधनुष-
धारियोंको, वीरोंको कुचलनेवाले अभिमन्युने मुन्न कर दिया
॥ ७ ॥ तदनन्तर उसने कानतक धनुषको खेंचकर द्रोणको पचास,
वृद्धजलको बीस, कृतवर्माको अस्सी, कृपाचार्यको साठ और
अश्वत्थामाको बड़े वेगवाले तथा सुनहरी पूछोंवाले दश बाणोंसे
घायल कर दिया ॥ ८-९ ॥ अर्जुनके पुत्र अभिमन्युने शत्रुओंके

कर्णे पीतेन च शितेन च । फाल्गुनिर्दिष्टानां मध्ये निव्याध परमे-
 पुणा ॥ १० ॥ पातयित्वा कुरस्याश्वांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
 अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ११ ॥ ततो वृन्दा-
 रकं वीरं कुरुणः क्षीतिवर्द्धनम् । पुत्राणां तत्र वीराणां पश्यताम-
 वधीद्वली ॥ १२ ॥ तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या लुद्रकाणां समार्प-
 यत् । चरं वरमभिवाणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३ ॥ स तु बाणैः
 शितैस्तूर्णैः प्रत्यविध्यत् मारिष । पश्यतां चार्त्तराष्ट्राणामश्वत्थामा-
 नमाञ्जुनिः ॥ १४ ॥ पृथ्वा शराणां तं द्राणिस्तिग्मधारैः सुते-
 जनैः । उग्रैर्नाकम्पयद्दिध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५ ॥ स तु
 द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुंस्वैरभिह्वयैः । प्रत्यविध्यन्महातेजा वज्र-
 वानपकारिणम् ॥ १६ ॥ तस्मिन् द्रोणो बाणशतं पुत्रगृही न्यपा-
 तयत् । अश्वत्थामा तथाष्टौ च परीप्तन्पितरं रणे ॥ १७ ॥ कर्णो

वीचमें कण के कानको तेज, पानी पिलाएहुए कर्णि नामक बाणसे
 घायल करदिया ॥ १० ॥ तथा उसने कृपके घोड़े, पार्श्वरक्षरु
 और सारथिको गिराकर कृपाचार्यकी छातीमें दश बाण मारे ११
 तदनन्तर वली अभिमन्युने तुम्हारे पुत्रोंके देखते रहनेपर भी कौरवों
 की कीर्तिवढ़ानेवाले वीर वृन्दारकको यमलोकमें भेजदिया ॥ १२ ॥
 अश्वत्थामाने शत्रुओंके छद्मा २ योधाओंका निर्भय हो संहार करते
 हुए अभिमन्युको लुद्रक नामक पंचोस बाणोंसे वींधदिया ॥ १३ ॥
 परन्तु हे राजन् ! अर्जुनपुत्रने तुम्हारे पुत्रोंके सामने शीघ्र ही
 तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाको वेधदिया ॥ १४ ॥ अश्वत्थामाने
 अत्यन्त चमचमाते साठ तेज बाणोंसे अभिमन्युको वींधडाला,
 परन्तु मैनाक पर्वतकी समान अटल अभिमन्युको कँपा न सका १५
 वली महातेजस्वी अभिमन्युने सुनहरी पूं डवाले और सीधे जाने
 वाले तिहत्तर बाणोंसे अश्वत्थामाको वींधदिया ॥ १६ ॥ पुत्रपर
 प्रेम रखनेवाले द्रोणने अभिमन्युके सौ बाण मारे और पिताको

द्वाविंशति भञ्जान् कृतवर्मा च विंशतिम् । वृद्ध तस्तु पञ्चाशत् कृपः
 शारद्वतो दश ॥ १८ ॥ तास्तु प्रत्यग्धीर् सर्वान् दशभिर्दशभिः
 शरैः । तैरर्चमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥ १९ ॥ तं
 कोसलानामधिपः कर्णिना ताडयद्रथेति । स तस्याश्वान् ध्वजं चापं
 सूतञ्चापातयत् क्षितौ ॥ २० ॥ अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्ग-
 चर्मयुतः । इषेप फाल्गुनेः कावाच्छिरो हतुः सकुण्डलम् ॥ २१ ॥
 स कोसलानामधिपं राजपुत्रं वृद्धजम् । हृदि विन्याध बाणं न
 स भिन्नहृदयोऽयतत ॥ २२ ॥ वनञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां
 महात्मनाम् । सृजतामशिवा वाचः खड्गकामु कधारिणाम् ॥ २३ ॥
 तथा वृद्धलं हत्वा सौभद्रो व्यवद्रेण । व्यष्टभयन्महेष्वासान्
 योधांस्तत्र शराम्बुभिः ॥ २४ ॥ सप्तवत्वारिंशाऽध्यायः ॥ ४७ ॥

ब्रजानेमें उत्सुक अश्वत्थामाने भी उसके आठ बाण मारे १७
 और कर्णेने वाईस, कृतवर्माने बीस, वृद्धलने पचास और
 कृपाचार्यने भञ्ज नामक दश बाण अभिमन्युके मारे ॥ १८ ॥
 इसप्रकार सब ओरसे उन तेज बाणोंके द्वारा पीड़ित होतेहुए
 अभिमन्युने उन सबोंको दश २ बाणोंमें घायल किया १९ फिर
 कोसल देशके राजाने अभिमन्युके हृदयमें कर्णिनामका बाण
 मारा, तब तो अभिमन्युने उसके घोड़े ध्वजा, धनुष और
 सारथिको काटकर पृथिवी पर गिरादिया ॥ २० ॥ तब रथहीन
 हुए कोसलराजने हाथमें ढाल तलवार ले अभिमन्युके मुकुट
 सहित शिरको धड़से अलग करना चाहा ॥ २१ ॥ कि-इतनेमें
 ही अभिमन्युने कोसलेश्वर राजकुमार वृद्धलके हृदयमें बाण मारा
 तब वह विदीर्ण हुए हृदयसे ढूढ़गया २२ फिर अभिमन्युने अपवित्र
 बाणों कहने (गाली देने) वाले धनुषधारी दश हजार बड़े २
 राजाओंको मारडाला २३ महाधनुषधारी अभिमन्यु इसप्रकार वृद्ध-
 लको मारनेके अनन्तर तुल्लारे योधाओंको बाणरूपी जलकी वर्षा
 से रोककर रखमें घूमनेलगा २४ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ४७

सञ्जय उवाच । स कर्णं कर्णिना कर्णं पुनर्विव्याध फाल्गुनिः ।
 शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत्कोपयन् भृशम् ॥ १ ॥ मतिविव्याध
 राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः । शरैराचितसर्वांगो बद्धशोभत भारत २
 कर्णञ्चाप्यकरोत् क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम् ॥ कर्णोपि विवर्ध
 शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः ॥ ३ ॥ तावुभौ शरचित्रांगौ रुधिरेण
 समुत्तितौ । वभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥ अथ
 कर्णस्य सचिवान् पट् शूराश्चित्रयोधिनः । सारवसूतध्वजरथान
 सौभद्रो निजघान ह ॥ ५ ॥ तथेतरान् महेश्वासान् दशभिर्दशभिः
 शरैः । प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥ मागधस्य
 तथा पुत्रं हत्वा पट्भिरजिह्वगैः । सार्वं समूतं तरुणमश्वकेतुम-
 पातयत् ॥ ७ ॥ मार्त्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् । लुर-

सञ्जयने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! अभिमन्युने कर्ण
 नामक बाणसे कर्णके कानको फिर घायल करदिया और
 पचास बाण मारकर इसको बहुत ही क्रुपित करदिया ॥ १ ॥
 तब राधाके पुत्र कर्णने इतनेमें ही बाणोंसे अभिमन्युको चींधदिया
 सब शरीरमें बाण गुभजाने पर अभिमन्यु बहुत ही शोभा पाने
 लगा ॥ २ ॥ अभिमन्युने बड़े क्रोधमें भर बाण मार कर्णको
 लोहूलुहान करदिया, रक्तमें न्हाआहुआ कर्ण तब बड़ा शोभाय-
 मान हुआ ॥ ३ ॥ उन दोनों महात्माओंके शरीरमें बाणछिदे हुए
 थे और वे लोहूलुहान होरहे थे इस कारण वे फूटोवाले टेम्के
 वृत्तोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ ४ ॥ तदनन्तर अभिमन्युने
 विविध प्रकारसे लडनेवाले कर्णके छः शूर मंत्रियोंको घोड़े सारथी
 और ध्वजासहित नष्ट कर दिया ५ और जराभी न घबडाकर दूसरे
 बड़े २ धनुषधारियोंको भी दश-बाण मारकर चींधडाला यह काम
 आश्चर्यकारक हुआ था ६ तथा अभिमन्युने मागधराजके पुत्रको
 सीधेजानेवाले छःबाणोंसे मारकर घोड़े और सारथिसहित तरुण

प्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजन् शरान् ॥ ८ ॥ तस्य दौःशासनि-
र्विध्वा चतुर्भिरचतुरो हयान् । सूतमेकेन विव्याध दशभिरचालु-
नात्मजम् ॥ ९ ॥ ततो दौःशासनिं कार्णिणर्विध्वा सप्तभिराशुगैः ।
संरम्भाद्रक्तनयनो वाक्यमुच्चैरयाग्रवीत् ॥ १० ॥ पिता तवाहवं
त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा । दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं
न त्वय मोक्ष्यसे ॥ ११ ॥ एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमाजि-
तम् । नाराचं विससर्जस्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२ ॥
तस्याजुर्निध्वजं क्षित्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् । तं शल्यो नवभि-
र्वाणैर्गार्भपत्रैरताडयत् ॥ १३ ॥ हृद्यसंभ्रान्तवद्राजं तादद्भुतमि-

अश्वकेतुको भी मार गिराया ७ और जिसकी ध्वजामें हाथीका
चिन्ह था ऐसे मार्तिकावतक देशके राजा भोजको झुरप नामक
बाणसे मारकर बाणोंकी वर्षा करता हुआ अभिमन्यु गर्जनेलगा
तुरन्तही दुःशासनके पुत्रने चार-बाणोंसे अभिमन्युके चारों घोटों
को घायल कर एक बाणसे उसके सारथीको तथा दश बाणोंसे
अभिमन्युको घायल करदिया ॥ ९ ॥ अभिमन्युने सात बाणोंसे
दुःशासनके पुत्रको वीधदिया और क्रोधसे लाल २ आँखे करके
दुःशासनके पुत्रसे चिन्ताकर कहनेलगा कि-१० अरे ! ओ ॥
तेरा पिता तो कापुरुषोंकी समान रणको छोड़कर भाग गया और
अब तू लड़नेको आया है यह बड़े भाग्यकी बात है, परन्तु यह
जान रख, कि-आज तू जीता नहीं जासकेगा ११ इतना कह
लुहारके धार चढ़ाये हुए बाणको दुःशासनके पुत्रके ऊपर छोड़ा
परन्तु अश्वत्थामाने सामनेसे तीन बाण मारकर उसको काट डाला
॥ १२ ॥ अजु न पुत्रने अश्वत्थामाकी ध्वजाको काटकर शल्यके तीन
बाण मारे, हे राजन् ! शल्यने निहट होकर अभिमन्युके हृदयमें
गीधके परोबाले नौ बाण मारे, यह अचरजसा हुआ, अभि-
मन्युने बाणोंके महारसे उसकी ध्वजाको काट डाला और उसके

वाभवत् । तस्यार्जुनिर्ध्वजं हित्वा हत्वोर्भी पार्थिणसारथी १४
 तं विन्याधायसैः पद्भिः सोपाक्रामद्रथान्तरम् । शत्रुञ्जयं चन्द्र-
 केतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥ १५ ॥ सूर्यभासञ्च पञ्चैतान् हत्वा
 विन्याध सौबलम् । तं सौवजस्त्रिभिर्विध्वा दुर्योधनमथाम्रवीत् १६
 सर्व एनं प्रमथ्नीमः पुरैकैकं दिनस्ति नः । अथाम्रवीत्पुनर्द्रोणं
 कर्णो वैकर्त्तनो रणे ॥ १७ ॥ पुरा सर्वान् प्रमथ्नाति ब्रह्मस्य
 वधमाशु नः । ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वास्तान् प्रत्यभाषत १८
 अस्ति वास्यान्तरं किञ्चित् कुमारस्यापि पश्यत । अथैवमस्यान्तरं
 ह्यथ चरतः सर्वतो दिशम् ॥ १९ ॥ शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवे-
 यस्य पश्यत । धनुर्मण्डलमेवास्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥ २० ॥

दोनों पार्श्वरक्षक तथा सारथीको मारकर उसको भी लोहेके छः
 बाणोंसे वीधदिया, शन्य तुरन्त ही दूसरे रथ पर कूदगया फिर
 अभिमन्युने शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास
 इन पाँचोंको मारकर शकुनिको घायल करदिया, शकुनिने उस
 को तीन बाणोंसे घायल करके दुर्योधनसे कहा कि-१३-१६
 इसको सब मिलकर कुचतूदो, यदि अलग २ होकर लड़ोगे तो
 यह एक २ करके सबोंको मारडालेगा तदनन्तर वैकर्त्तन कर्णने
 द्रोणसे कहा कि-॥१७॥ यह पहिलेसे ही हम सबोंको मसले
 डालता है इसको मारनेका उपाय आप शीघ्र ही बताइये तब
 महाधनुषधारी द्रोणने उन सबोंसे कहा कि-१८ तुममें कोई ऐसा
 है जो इस कुमारको मारनेका क्षणभरका भी अवसर देखता हो
 मनुष्योंमें सिंहकी समान पाण्डवपुत्र अभिमन्यु चारों दिशाओंमें
 घूमरहा है इसकी फुर्तीको तो देखो, यह कुमार इतनी फुर्तीसे
 बाणोंको चढ़ाता और छोड़ता है, कि-रथोंके बीचमें केवल धनुष
 का मण्डल ही दिखाई देता है परन्तु यह कहाँ है, यह प्रतीत ही
 नहीं होता यह शत्रुनाशक सुभद्रानन्दन मेरे प्राणोंको पीटा दे

सन्दधानस्य विशिखान् शीघ्रञ्चैव विमुञ्चनः । आरुजन्नपि मे
 प्राणान् मोहयन्नपि सायकैः ॥ २१ ॥ महर्षयति मां भूयः सौभद्रः
 परवीरहा । अति मां नन्दयत्येव सौभद्रो विचरन् रणे ॥ २२ ॥
 अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः । अस्यतो लघुहस्तस्य
 दिशः सर्वा महेषुभिः ॥ २३ ॥ न विशेषं प्रपश्यामि रणे गांडीव-
 धन्वनः । अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहार्जुनिशराहतः ॥ २४ ॥ स्थान-
 व्यमिति तिष्ठामि पीडयमानोभिमन्युना । तेजस्विनः कुमारस्य
 शराः परमदारुणाः ॥ २५ ॥ क्षिपन्ति हृदयं मेघ घोराः पावक-
 तेजसः । तमाचार्योब्रवीत् कर्णं शनकैः महसन्निव ॥ २६ ॥
 अभेद्यमस्य कवचं युवा चाशुपराक्रमः । उपदिष्टा मथा चास्य पितुः
 कवचधारणा ॥ २७ ॥ तापेप निखिली वेत्ति ध्रुवं परपुरञ्जयः ।

रहा है और मुझे घबडाये देता है तो भी मुझे बहुत ही प्रसन्न कर
 रहा है, अभिमन्युका पराक्रम देखकर मुझे बडाही हर्ष होताहै,
 अभिमन्यु रणमें घूँपकर मुझे परम प्रसन्न कर रहा है १६--२२
 जोभमें भरजानेपर भी महारथी इसका एक भी छिद्र नहीं देखपाते
 हैं, यह युद्धमें बड़े २ अस्त्रोंको चारों ओर फेंक रहा है, अतः अर्जुन
 में और इसमें मुझे कुछ भी अन्तर नहीं मालूम होता तदनन्तर
 अभिमन्युके बाणोंके मदारसे घायल हुए कर्णने द्रोणसे फिर कहा
 कि--॥ २३ ॥ २४ ॥ अभिमन्युके बाणोंसे पीडा पाने पर मैं इस
 लिये ही खडा हूँ कि मुझे खडा रहना चाहिये आज तेजस्वी
 अभिमन्यु कुमारके परमदारुण अश्विनी समान तेजवाले बाण मेरे
 हृदयको चीरे डालते हैं, यह सुन द्रोणाचार्य खिल खिलाकर
 हँसपडे और फिर धीरेसे कर्णसे कहा कि--॥ २५--२६ ॥
 इसका कवच अभेद्य है और यह तरुण कुमार बडा पराक्रमी है,
 मैंने इसके पिताको कवच धारण करने ही जो विद्या सिखाई थी,
 उस सब विद्याको यह शत्रुके नगरको जीतनेवाला कुमार भली

शम्यं त्वस्य धनुश्छेतुं ज्या च वाणः समहितैः ॥ २८ ॥ अभी-
 पूंश्च हयांश्चैव तथाभौ पाणिंसारथी । एतत् कुरु महेंद्रवास राधेय
 यदि शक्यसे ॥ २९ ॥ अथैनं त्रिमुलीकृत्य पश्चात् पहरणं कुरु ।
 सधनुष्को न शक्योयमपि जेतुं सुरासुरैः ॥ ३० ॥ विरथं विधनु-
 ष्कञ्च कुरुष्वैनं यदीच्छसि । तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्त्तन-
 स्त्वरन् ॥ ३१ ॥ अस्यनो लघुहस्तस्य पृष-कैर्धनुरान्छिनत् ।
 अश्वानस्यावधीद्धोजो गौतमः पाणिंसारथी ॥ ३२ ॥ शोपा-
 स्तुच्छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् । त्वरमाणास्त्वरालाले विरथं
 पण्यहारथाः ॥ ३३ ॥ शरवर्षैरकुरुषा वालमेकमवाकिरन् ।
 सच्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ३४ ॥ खड्गचर्मधरः
 श्रीमानुत्पपान विहायसा । मार्गैः स कौशिकाद्यैश्च लाघवेन वलेन

प्रकार जानता है, अतः हे महाधनुर्धर राधापुत्र कर्ण ! तू यदि
 वाणोंको स्थिर करके इसके धनुष, प्रत्यञ्चा, रथकी रास, दंनों
 घोड़े, पार्श्वरक्षक और सारथिको काट सकता हो तो काट डाल
 ॥ २७-२९ ॥ फिर इसको रणमेंसे भगा और पीछेसे इसका नाश
 कर, परन्तु जबतक इसके हाथमें धनुष है तबतक देवता और असुर
 इकट्ठे होकर भी इसको नहीं जीतसकते, ॥ ३० ॥ यदि तेरी इच्छा
 हो तो इसको रथ और धनुषहीन करदे, आचार्यभी इस बातको
 सुनकर सूर्यपुत्र कर्णने शीघ्रता कर, फुर्तीसे वाणोंको छोड़नेवाले
 अभिमन्युके धनुषको वाणोंसे काटडाला, कृतवर्माने इसके घोड़ोंको
 और कृपाचार्यने पार्श्वरक्षकोंको तथा सारथीको मारडाला ३१-३२
 बाकी महारथी एकसाथ रथ और धनुषरहित अभिमन्युके ऊपर
 वाणोंकी वृष्टि करनेलगे; निर्दयी ब्रः महारथी इकट्ठे होकर बालक
 पर वाण बरसानेलगे, टूटेहुए धनुषवाले रथहीन अभिमन्युने तो
 भी अपने धर्मको पालन किया ॥ ३३-३४ ॥ श्रीमान् अभिमन्यु
 डाल तलवार ले सर्वतोभद्र आदि मण्डलोंसे, फुर्तीके साथ बलसे

च ॥ ३५ ॥ आर्जुनिर्व्यचरद्दधोऽग्निं भृशं वैपत्तिरादिव । मय्येव
निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ॥ ३६ ॥ विव्यधुस्तं महेष्वासं
समरे छिद्रदर्शिनः । तस्य द्रोणोच्छिन्नमृष्टौ खड्गं मणिमयत्स-
रम् ॥ ३७ ॥ क्षुरमेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् । राधेयो
निशितैर्वाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥ ३८ ॥ व्यसिरचमेषु पूर्णाङ्गः
सोन्तरिक्षात् पुनः क्षितिम् । आस्थितश्चक्रघृष्टम्य द्रोणं क्रुद्धोभ्य-
धावत ॥ ३९ ॥ स चकरेणूज्वलशोभिताङ्गो बभावतीवोज्ज्वलचक्र-
पाणिः । रणेभिमन्युः क्षणमास रौद्रः स वासुदेवानुकृतिं प्रकु-
र्वन् ॥ ४० ॥ स तरुधिरकृतैकरागवस्त्रो भ्रुकुटिपुटाकुलितोतिसिंह-

गरुडकी समान, आकाशमें उड़कर घूमने लगा, इससमय छिद्र
देखनेवाले योधाओंने आकाशकी ओरको ऊँची दृष्टिकी, और
यह तलवार मेरे ही ऊपर टूट पड़ेगी, ऐसा विचार कर उस महा-
धनुषधारीके ऊपर बाणोंका प्रहार करनेलगे शत्रुका पराजय
करनेवाले महातेजस्वी द्रोणने क्षुरम नामक बाण मारकर उसके
हाथकी मुट्ठीमें ही मणिमय मूठनाली तलवारके टुकड़े टुकड़े कर
ढाले ॥ ३५-३७ ॥ शत्रुजित् महातेजस्वी राधापुत्र कर्णने क्षुरम
नामक बाणसे अभिमन्युकी उत्तम ढालको काटढाला ॥ ३८ ॥
ढाल तलवारके नष्ट होजाने पर और सब शरीरमें बाण शुभजाने
पर भी अभिमन्यु आकाशसे उतरभर पृथ्वी पर खड़ा होगया
और चक्र लेकर द्रोणचार्यकी ओरको दौड़ा ॥ ३९ ॥ इससमय
चक्रके प्रकाश तथा रणकी धूलिसे अभिमन्युका शरीर शोभा
पारहा था, उसके हाथमें चमचमाता हुआ चक्र था और उसकी
मूरत भयानक दीख रही थी उसने क्षणभरके लिये रणमें चक्र-
पाणि श्रीकृष्णका अनुकरण किया था ॥ ४० ॥ रुधिरसे लाल र-
वस्त्रोंवाला, टेढ़ी भ्रुकुटिसे व्याकुलसा प्रतीत होताहुआ, सिंहकी

नादः । प्रभुरभिनवलो रणेभिमन्युर्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ४१
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्यु-
विरथकरणे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच । विष्णोः स्वसुनन्दकरः स विष्णवायुधभूषणः ।
रराजातिरथः संख्ये जनार्दन इवापरः ॥ १ ॥ मारुतोद्धतकेशान्त-
मुद्यतारिवरायुधम् । वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपिर-
तत्तकं भृशमुद्विग्नाः सञ्चिच्छिदुरनेकधा । महारथस्ततः कार्णिणः
संजग्राह महागदाम् ॥ ३ ॥ विधत्तुः स्यन्दनासिस्तैर्विवकरचारिभिः
कृतः । अभिमन्युर्गदापाणिंरश्वत्यापानमार्दयत् ॥ ४ ॥ स गदा-
मुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव । अपाक्रामद्रथोपस्थाद्विक्रमास्त्री-
न्नरर्षभः ॥ ५ ॥ तस्याश्वान् गदया हत्वा तथोभौ पाणिंसारथी ।

समान गर्जता हुआ सपर्य अभिमन्यु इस समय राजाओंके मध्यमें
खड़ा हुआ बड़ी ही शोभा पारहा था ॥ ४१ ॥ अङ्गतालीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-श्रीकृष्णकी वहनका पुत्र और विष्णुके
आयुध (चक्र) को धारण करनेवाला अतिरथी अभिमन्यु दूसरे
चक्रपाणि (कृष्ण) सा शोभा पाने लगा ॥ १ ॥ उस समय
अभिमन्युके केश उड़ रहे थे वह ऊँची उठाई हुई भुजा में चक्र नामके
उत्तम आयुधको धारण किये हुए था और उस समय उसका
शरीर ऐसा तप्ततमा रहा था, कि-देवता भी उसकी ओरको नहीं
देख सकते थे, उसके ऐसे रूपको देखकर राजे घबड़ा गए, परन्तु
उन्होंने अभिमन्युके चक्रके सैकड़ों टुकड़े कर डाले जब शत्रुओंने
धनुष, तलवार और रथ तथा चक्रके टुकड़े कर डाले, तब महा-
रथी अभिमन्युने हाथसे बड़ी भारी गदा उठाई और अश्वत्यामाके
पारी ॥ २-४ ॥ परन्तु अश्वत्यामा, जलते हुए वज्रकी समान
गदाको अपने ऊपर आती हुई देख रथके ऊपरसे तीन पैर पीछे की

शराचितांगः सौभद्रः रवाविद्वत्समदृश्यत ॥ ६ ॥ ततः सुबलदा-
यादं कालिकेयमपोथयत् । जघान चास्यानुचरान् गांधारान् सप्त-
सप्ततिम् ॥ ७ ॥ पुनश्चैव वसानीयान् जघान रथिनो दश । केक-
यानां रथान् सप्त इत्या च दश कुञ्जगान् ॥ ८ ॥ दौःशासनि-
रथं सारथं गदया समपोथयत् । ततो दौःशासनिः क्रुद्धो
गदापुत्रम् मारिष ॥ ९ ॥ अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाव्र-
वीत् । तावुच्चतगदौ वीरावन्योन्यवयवार्क्षिणौ ॥ १० ॥ भ्रातृभ्यां
सम्भजहोते पुरेव व्यम्बकान्धकौ । तावन्यान्धं गदाग्राभ्यामाहत्य
पतितौ क्षितौ ॥ ११ ॥ इन्द्रध्वजान्वितोत्सृष्टौ रणमध्ये परन्तपौ ।
दौःशासनिरथोत्थाय कुरुणां कीर्त्तिवर्धनः ॥ १२ ॥ उत्तिष्ठमानं

हटगया ॥ ५ ॥ इतने पर भी अभिमन्युने गदासे उसके घोड़े,
सारथी और पार्वरक्षकोंको मार डाला, इससमय वालोंसे भरेहुए
शरीरवाला अभिमन्यु सेईकी समान दीखता था ॥ ६ ॥ तदनन्तर
अभिमन्युने सुबलके पुत्र कालिकेयको तथा उसके अनुचर सत्तर
गान्धारोंको गदामे मार डाला ॥ ७ ॥ फिर अभिमन्युने दश
वसतीय महारथियोंको मार डाला, सात केकय महारथियोंका
संहार कर डाला और दश हाथियोंको कुचल डाला ॥ ८ ॥ तद-
नन्तर अभिमन्युने गदासे दुःशासनके पुत्रके रथको और घोड़ोंको
मार डाला, हे राजन् ! तब तो दुःशासनके पुत्रको बड़ा क्रोध चढा और
वह गदा उठाकर अभिमन्युके ऊपर झपटा और अभिमन्युसे कहने
लगा, कि—खडा रह २ ! वे दोनों वीर शत्रु एक दूसरेको मारने
की इच्छासे गदाओंको उठाकर पहिले व्यम्बक (शिव) और
अन्धकासुर जैसे लड़े थे तैसे लड़ने लगे, वे दोनों आपसमें गदाके
अग्रभागसे एक दूसरेको मारकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ९-११ ॥
जैसे इन्द्रकी ध्वजा गिरजाय तैसे ही वे दोनों गिर पड़े,
परन्तु कुलकुलकी कीर्त्ति बढ़ानेवाला दुःशासनका पुत्र एकसाथ

सौभद्रं गदया मूर्धन्यताडयत् । गदावेगेन महता व्यायामेन च
मोहितः ॥ १३ ॥ विचेता न्यपतद् भूमौ सौभद्रः परवीरहा । एवं
विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ १४ ॥ क्षोभयित्वा चम्पू
सर्वा नलिनीमिव कुञ्जरः । अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो
यथा ॥ १५ ॥ तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् । दावं
दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये ॥ १६ ॥ विमृद्य नग-
शृंगाणि सन्निवृत्तमिवानिलम् । अस्तं गतमिवादित्यं तप्त्वा भारत-
वाहिनीम् ॥ १७ ॥ उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृत्ताक्षिकम् ॥ १८ ॥ तं भूमौ पतितं
दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः । मुदा परमया युक्ताश्चक्रुः सिंहव-

उठकर खड़ा होगया और उसने पृथिवी परसे उठते क्षणही अभि-
मन्युके शिरमें गदामारी, बड़े वेगवाली गदाके प्रचण्ड प्रहारसे और
परिश्रमके कारण शत्रुसंहारकर्त्ता अभिमन्यु व्याकुल और मूर्छित
होकर पृथिवीपर गिरपड़ा इसप्रकार है राजन् ! बहुतसे योधाओं
ने मिलकर अभिमन्युको रणमें मारा था ॥ १२-१४ ॥ वनका
हाथी कमलनियोंको नष्ट करनेके अनन्तर जैसे व्याधोंके हाथसे
मारा जाकर शोभापाता है तैसेही सब सेनाका संहार करनेके अन-
न्तर योधाओंके हाथसे मराहुआ अभिमन्यु रणमें पड़ाहुआ शोभा
पारहा था ॥ १५ ॥ ग्रीष्म ऋतुमें वनको भस्म करके शान्तहुए
दावानलकी समान सेनाका संहार कर घिरेहुए, अभिमन्युको
तुम्हारे योधाओंने घेरलिया ॥ १६ ॥ पर्वतोंके शिखरोंको तोड़कर
शांतहुए वायु और सूर्यकी समान भारतीय सेनाको सन्ताप देकर
अस्तहुए अभिमन्युको तुम्हारे योधाओंने घेरलिया ॥ १७ ॥ राहु
से ग्रसेहुए चन्द्रमा और सूखेहुए समुद्रकी समान पड़ेहुए पूर्ण
चन्द्रमाकी समान मुख वाले और शिरकी अलकोंसे ढकीहुई
आँखोंवाले अभिमन्युको घेरकर तुम्हारे योधा सिंहकी समान

मनुहुः ॥१६॥ आसीत् परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते । इतरे-
 पान्तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २० ॥ अन्तरिक्षे च
 भूतानि प्राक्रोशन्त विशाम्पते । दृष्ट्वा निपतितं शूरं च्युतं चन्द्रमि-
 वाम्बरात् ॥ २१ ॥ द्रोणकर्णमुखैः पङ्क्तिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
 एकोयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥ २२ ॥ तस्मिन् विनि-
 हते वीरे बह्वशोभत मेदिनी । द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमा-
 लिनी ॥ २३ ॥ रुक्मपुत्रैश्च सम्पूर्णा रुधिराप्रपरिप्लुता । उत्त-
 मागैश्च शूराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥ २४ ॥ विचित्रैश्च परि-
 स्तोमैः पताकाभिश्च संवृता । चामरैश्च कुशाभिश्च प्रविद्धैश्चाव-
 रोत्तमैः ॥ २५ ॥ तथाश्वनरनागानामलङ्कारैश्च सुप्रभैः । खड्गैः
 सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥ २६ ॥ चापैश्च विविधैश्चिह्नैः
 शक्यदृष्टिमासकम्पनैः । विविधैश्चायुधैश्चान्यैः संवृता भूरशोभत ॥ २७

वारम्बार गर्जनेलगे ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इस समय तुम्हारे
 योधाओंको बड़ा हर्ष हुआ और दूसरे वीरोंके नेत्रोंमेंसे आँसू टप-
 कनेलगे ॥ २० ॥ आकाशमेंसे टूटकर गिरेहुए चंद्रमाकी समान अभि-
 मन्युको गिराहुआ देखकर आकाशमेंके प्राणी विलापकर कहने
 लगे, कि—॥ २१ ॥ धृतराष्ट्रके द्रोण कर्ण आदि छः महारथियोंने इकट्ठे
 होकर अकेले राजकुमारको मार डाला, यह भूमिपर पड़ा है, इसे हम
 धर्म नहीं समझते ॥ २२ ॥ इस वीर पुरुषके मारे जानेपर पूर्ण-
 चंद्रमासे नक्षत्रोंके समूहरूप मालावाला आकाश जैसे शोभापाता
 है तैसेही पृथिवीभी इस वीरसे शोभा पाने लगी है ॥ २३ ॥ सुनहरी
 पूँछवाले बाणोंसे, रुधिरके प्रवाहोंसे, वीरोंके कुण्डलोंवाले शोभा
 पातेहुए मस्तकोंसे, विचित्र भाले, पताकायें, झूलें, फटेहुए उत्तम
 वस्त्र, घोड़े मनुष्य, हाथी, तथा उनके चमकतेहुए गहनोंसे, कैचुली
 रहित सर्पकी समान तेज पानी पिलायेहुए खुले खड्गोंसे और नाना-
 प्रकारके टूटेहुए धनुष, अष्टि, प्रास, कम्पन तथा नानाप्रकारके

वाजिभिश्चापि निर्जीवैः श्वसद्भिः शोणितोज्झितैः । सारोर्देविषमा
भूमिः सौभद्रेण तिपातितैः ॥ २८ ॥ सांकुशैः समहामात्रैः सव-
र्मायुधकेतुभिः । पर्वतरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥ २९ ॥
पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यवसारथियोधिभिः । हर्दैरिव प्रक्षुभितैर्ह-
तनागै रथोत्तमैः ॥ ३० ॥ पदातिसंघैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
भीरुणां त्रासजननी घोररूपाभवन्मही ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं
भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् । तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनाञ्चा-
भवद्वद्यथा ॥ ३२ ॥ अभिमन्यौ हते राजन् शिशकेऽप्राप्तयौवने ।
सम्प्राद्रवच्चसूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥ दीर्यमाणं बलं
दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते । अज्ञातशत्रुस्तान् वीरान्निदं वचनमब्र-
वीत् ॥ ३४ ॥ स्वर्गमेव गतः शूरो यो हनो न पराङ्मुखः । संस्त-

शस्त्रोंसे ढकी हुई पृथिवी शोभा पाने लगी ॥ २४-२७ ॥ अभिमन्यु
के मारे हुए, जीवित श्वास लेने और लोहलुहान हुए घोड़े और
घुड़सवारोंसे पृथिवी बड़ी ऊँची नीची दीखती थी ॥ २८ ॥ अभि-
मन्युके बाणोंसे मरे हुए पर्वतारार अंकुश हाथीवान, कवच, और
पताकाओंवाले हाथियोंके प्राणरहित हुए सारथियोंसे, योधाओंसे
तथा क्षुभित हुए सरोवरोंकी समान जोषको प्राप्त हुए बड़े हाथि-
योंका नाश करनेवाले महारथियोंसे तथा भौतिके आभूषणोंवाले
पैदलोंके समूहोंसे भयानक दीखती हुई रणभूमि ढरपोंके मनमें
ढर उपजाने लगी ॥ २८-३१ ॥ चन्द्र और सूर्यकी समान कानि
वाले अभिमन्युको इस प्रकार पृथिवीपर पड़ा हुआ देखकर तुम्हारे
योधाओंको परम हर्ष और पाण्डवोंके मनमें परम खेद हुआ ३२
जिसको अभी पूरा २ यौवन भी प्राप्त नहीं हुआ था ऐसे बालक
अभिमन्युके मारे जानेपर युधिष्ठिरके देखते २ सब सेना भागने
लगी ॥ ३३ ॥ अभिमन्युके मारे जानेसे सब सेनाको भागनी हुई देख
कर अज्ञानशत्रु युधिष्ठिरने उन वीरोंसे यह बात कही, कि-३४

भयत माभैष्ट विजेष्यापो रणे रिपून् ॥३५॥ इत्येवं स महातेजा
दुःखितेभ्यो महाद्युतिः । धर्मराजो युधा श्रेष्ठो ब्रुवन्दुःखमपाजु-
दत् ॥ ३६ ॥ युद्धे ह्याशीविषाकारान् राजपुत्रान् रणे रिपून् । पूर्वं
निहत्य संग्रामे पश्चादाजुर्निरभ्ययात् ॥ ३७ ॥ हत्वा दशसह-
स्राणि कौसल्यञ्च महारथम् । कृष्णाजुर्नसमः कार्त्तिकः शक-
लोकं गतो ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ रथाश्वनरमातङ्गान् विनिहत्य सह-
स्रशः । अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् । गतः पुण्य-
कुतल्लोकान् शाश्वतान् पुण्यनिर्जितान् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

अभिमन्युवधे एकोनपंचाशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सञ्जय उवाच । वयन्तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः ।
निवेशायाभ्युपायामः सायान्हे रुधिरोत्तितोः ॥ १ ॥ निरीक्षमा-

रणमें मरनेका अवसर आने पर भी अभिमन्युने पीठ नहीं दिखाई
इससे वह स्वर्गमें गया है, हे वीरों ! तुम ढरो मत, धीरज धरो,
हम शत्रुओंको जीतेंगे ॥ ३५ ॥ महातेजस्वी योधाओंमें श्रेष्ठ धर्म-
राजने दुःखितहुए योधाओंसे ऐसा कहकर उनके दुःखको दूर
किया ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुनकी समान परा-
क्रमी अभिमन्यु युद्धमें जहरीले सपोंकी समान दशसहस्र राजकुमार
और महारथी कौसलीको मारकर मरा है अतः यह निःसन्देह
स्वर्गलोकको गया है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सहस्रों रथ, घोड़े, मनुष्य
और हाथियोंको मारने पर भी अभिमन्युको तृप्ति नहीं हुई थी,
अतः पुण्यकर्म करनेवाला अभिमन्यु, पुण्यसे प्राप्त होनेवाले
पुण्यवानोंके अक्षय्य लोकोंमें गया है, इसलिये वह शोक करनेके
योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥ उदञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे महाराज धृतराष्ट्र ! हम उस श्रेष्ठपुरुष
को मारकर शत्रुओंके बाणोंसे पीड़ित तथा लोहलुहान होकर

णास्तु वयं परे चायोधनं शनैः । अपयाना महाराज ग्लानिं प्राप्ता
 विचेतसः ॥ २ ॥ ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः शिवार्त्ताः
 सन्धिरवर्त्तताद्भुतः । कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे विलम्बमानेऽस्त-
 मुपेत्य पर्वतम् ॥ ३ ॥ वरासशक्त्यृष्टिवरुथचर्मणां विभूषणा-
 नाञ्च समाक्षिपन् प्रभाः । दिवं च भूमिञ्च समानयन्निव प्रियां
 तनुं भानुरूपेति पावकम् ॥ ४ ॥ मठाभ्रकूटाचलशृंगसन्निभैर्गज-
 रनेकैरिव वज्रपातितैः । सवैजयन्त्यकुशवर्मयन्तुभिर्निपातितैर्नष्टग-
 तिरिचिता क्षितिः ॥ ५ ॥ इतेश्वरैश्चूर्णिपत्पुष्करैर्हताश्वभूतै-
 र्विपताककेतुभिः । महारथैर्भूः शुशभे विचूर्णितः पूरैरिवामित्रहतै-
 र्नाधिप ॥ ६ ॥ रथाश्ववृन्दैः सहसादिभिर्हतैः प्रविद्धभाण्डाभरणैः

सायङ्कालके समय छावनीकी ओरको चलदिये ॥ १ ॥ और
 जाते हमने देखा, कि-शत्रु उदास मन और अचेतसे होकर
 धीरे-अपनी छावनीकी ओरको जारहे थे ॥ २ ॥ सूर्य कमलाकार
 मुकुटरूप होकर अस्ताचलका आश्रय लेनेलगा और अशुभ गीद-
 डियोंका शब्द होनेलगा, इससे मालूम हुआ, कि-दिनरात्रिकी
 अद्भुत सन्धिरूप अमङ्गल संध्या होगई ॥ ३ ॥ सूर्यने श्रेष्ठतल-
 वार, शक्ति, ऋष्टि, वरुथ, ढाल और आभूषणोंकी कांतिको
 हरलिया है और आकाश तथा पृथिवीको एकाकार करवाला है
 और अपनी प्यारी मूर्ति अग्निमें स्वयं प्रवेश कर रहा है ॥ ४ ॥
 इस समय वज्रसे गिरायेहुए महामेघ और पर्वतोंके शिखरोंकी
 समान आकार वाले, वैजयन्ती माला, अंकुश, कवच और हाथी-
 वानों सहित अनेकों हाथियोंसे भरजानेके कारण रणभूमि पर
 चलना कठिन होगया ॥ ५ ॥ हे राजन ! मारेहुए सेनापति,
 चूर-हुए, पैदलोंके सामान, जिनके घोड़े और सारथी मारेगये ऐसे
 झण्डी तथा केतुशून्य मठाथ नष्ट होकर पृथिवीमें पड़े थे, वे
 शत्रुओंके नष्ट कियेहुए नगरोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ ६ ॥

पृथग्विधैः । निरस्तजिह्वादशनात्रलोचनैर्धरा बभौ घोरविरूप-
दर्शना ॥ ७ ॥ प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा विपन्नहस्त्यश्वरथा-
नुगा नराः । महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा क्षितावनाथा इव
शेरते हताः ॥ ८ ॥ अतीवहृष्टाः श्वश्रृगालवायसा वंकाः सुपर्णाश्च
वृकास्तरक्षवः । वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसा गणाः पिशाचसंघाश्च
सुदारुणा रणे ॥ ९ ॥ त्वचो विनिर्भिद्य पिवन् वसामसृक् तथैव
मज्जाः पिशितानि चाशुबन् । वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गांति च
प्रकर्षमाणाः कुण्ठान्यनेकशः ॥ १० ॥ शरीरसंघातवहा ह्यसृग्जला
रथोदुपा कुञ्जरशैलसंकटा । मनुष्यशीर्षोपलमांसरुदमा प्रविद्ध-
नानाविधशस्त्रमालिनी ॥ ११ ॥ भयावहा वैतरणीव दुस्तरा प्रव-

जिनकी जीभ दाँत, आँतडियें और नेत्र बाहरको निकल रहे थे,
तथा जिनके वस्त्राभूषण बिंधरहे थे, ऐमे सवारों सहित मारेहुए
घोड़े और रथोंसे रणभूमि विह्वल प्रतीत होती थी ॥ ७ ॥ छिन्न
भिन्न कवच, गद्दने, अम्बारियें और आयुधवाले तथा विपत्तिमें
फँस गए हैं हाथी, घोड़े, रथ और अनुचर जिनके ऐसे बहुमूल्य
शय्याओं पर शयन करनेके योग्य पुरुष मरकर अनाथोंकी समान
पृथिवी पर शयन कर रहे थे ॥ ८ ॥ कुछही देरमें उनको दे बकर
कुत्ते, गीदड़, कौए, बगले, गीध भेडिये, मृगोंको खानेवाले तथा
दूसरे रक्त पीनेवाले पक्षी, राजस और महाभयङ्कर पिशाचोंके
ठठके टठ अत्यन्त प्रसन्न हो खालको चीरकर रक्त पीनेलगे, वसा,
मज्जा मांस और वपाको हँसतेर खानेलगे तथा लोथोंकी आपस
में खँच तान करनेलगे ॥ ९ ॥ १० ॥ शरीरोंकी ढेरियोंको वहाने
वाली, रक्तरूप जलवाली, रथरूप नावोंवाली, हाथीरूप पर्वतों
से भरी, मनुष्योंके शिररूप लुढ़कते पत्थरोंवाली, मांसरूप
कीचड़वाली, छिन्न भिन्न हुए नानाप्रकारके शस्त्रोंकी मालावाली
वैतरणीकी समान कठिनसे तरने योग्य, रणके मध्यमें योधाओं

क्षिता योधवरैस्तदा नदी । उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं भगा-
वहा जीवमृतमवाहिनी ॥ १२ ॥ पिवन्ति चारुनन्ति च यत्र दुर्दशाः
पिशाचसंघास्तु नदन्ति भैरवाः । सुनन्दिताः प्राणभृता क्षयंकराः
समानभक्ताः श्वसृगालपक्षिणः ॥ १३ ॥ तथा तदायोधनमुग्रद-
र्शनं निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम् । निरीक्षमाणाः शनैर्कैर्जहु-
र्नराः समुत्थितानृतकवन्धसंकुलम् ॥ १४ ॥ अपेतविध्वस्तमहार्ह-
भूषणं निपातितं शक्रसमं महाबलम् । रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा
जना व्यपोढह्वयं सदसीव पावकम् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

सपरभूमिवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

सञ्जय उवाच । हते तस्मिन् महावीर्ये सांभद्रे रथगृथपे ।
विमुक्तस्थसन्नादाः सर्वे निक्षिप्तहार्मुकाः ॥ १ ॥ उपोपविष्टा

की बहाई हुई भयंकर रक्तही नदी जीवित मृतक सबको बहाने
लगी ॥ ११ ॥ १२ ॥ दुष्ट दृष्टिवाले भयंकर पिशाच, मनुष्योंका
नाश करनेवाले और मांसाहारी कुत्ते, गीदड़ तथा पक्षी हर्षमें
भरकर रुधिर पीरहे थे, और मांस खारहे थे ॥ १३ ॥ यम-
लोकको बहानेवाले और जिसमें बहुतसे घड़ नाचरहे थे ऐसे रणा-
ङ्गणको देखकर योधा धीरे-२ अपनी छात्रनियोंमें चले गए ॥ १४ ॥
इस समय अभिमन्युके शरीरपरके बहुमूल्य आभूषण टूटगये थे,
इन्द्रकी समान महाबली अभिमन्यु रणभूमिमें पड़ा था, वह देखने
वालोंको, वेदी पर विराजमान आहुतिरहित महाउज्ज्वल अग्निसा
मालूम होता था ॥ १५ ॥ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

सञ्जय कहता है कि—हे धृतराष्ट्र ! महारथियोंका पति महा-
वीर अभिमन्यु मारा गया, तब सब योधा रथमेंसे नीचे उतरपड़े
और धनुषोंको रखकर राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर
बैठगये, और वे उसही युद्ध पर ध्यान देतेहुए शोकके साथ

राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम् । तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगत-
मानसाः २ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः । अभिमन्यौ
हते वीरे भ्रातृपुत्रे महारथे ॥ ३ ॥ द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रिय-
चिकीर्षया । भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ४ ॥
यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे । प्रभग्ना विनिवर्त्तन्ते
कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५ ॥ अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः
शरैः । क्षिप्तं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥ ६ ॥ स
तीर्त्वा दुस्तरं धीरो द्रोणानीकमहारणवम् । प्राप्य दौःशासनिं
कार्ष्णिः प्राप्तो वैवस्वतक्षयम् ॥ ७ ॥ कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे
निहतेऽर्जुनम् । सुभद्रां वा महाभार्गां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥ ८ ॥
किंस्विद्वयमपेतार्थमक्लिष्टमसंमञ्जसम् । तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषी-

अभिमन्युको याद करनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ राजा युधिष्ठिर अपने
भाईके पुत्र महारथी अभिमन्युके मरणसे बड़े ही खिन्न होकर
विलाप करनेलगे कि-॥ ३ ॥ ओः ! जैसे केहरी सिंह गौओंके
समूहमें घुसजाता है, ऐसे ही मेरा प्यारा भतीजा मेरा प्रिय करनेके
लिये द्रोणकी सेनामें व्यूहको तोड़कर घुसगया और किसीके
रोकनेपरभी नहीं रुका ॥ ४ ॥ और अस्त्रविद्यामें चतुर तथा युद्ध
करनेमें समर्थ जो महाधनुषधारी वीर उसकी रथसेनाकी ओर
लड़नेको गए थे वे सब उससे डरकर भागगये ॥ ५ ॥ और
जिसने हमारे परमशत्रु दुःशासनको सामने आनेपर बाणोंसे मूर्च्छित
कर रणमेंसे भगादिया था ॥ ६ ॥ वह वीर अभिमन्यु कठिनसे
तरने योग्य द्रोणसेनारूप बड़ेभारी समुद्रको तरकर दुःशासनके
पुत्रके सामने लड़ताहुआ यमलोकको चलागया ! हा ! ॥ ७ ॥
हाय ! अभिमन्युके मारे जानेपर मैं अर्जुनको कैसे मुह दिखाऊँगा
और प्यारे पुत्रको न देखतीहुई सुभद्राको किसप्रकार मुख दिखा-
ऊँगा ॥ ८ ॥ अरेरे ! श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मैं ऐसे असमञ्जस

केशधनञ्जयौ ॥ ९ ॥ अहमेव सृमद्रायाः केशवार्जुनयोरपि ।
 प्रियकामो जयाकांक्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥ १० ॥ न लुब्धो
 बुध्यते दोषान् लोभान् मोहात् प्रवर्त्तते । मधुलिप्सुर्हि नापश्यं प्रपात-
 महीदृशम् ॥ ११ ॥ यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च ।
 भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥ १२ ॥ कथं हि
 बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः । सदश्व इव सम्बाधे विपमे
 क्षेममर्हति ॥ १३ ॥ नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनुशयीमहि । वीभत्सोः
 कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥ १४ ॥ अलुब्धो मतिमान्
 हीमान् क्षमावान् रूपवान्वली । वपुष्मान्मानकृद्भीरुः प्रियः सत्यप-
 राक्तमः ॥ १५ ॥ यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्युजितकर्मणः ।

कठोर और निरर्थक अभिमन्युके मरणके वृत्तांतको कैसे कहूंगा? ९
 हाय ! शुभ फल और विजयकी इच्छासे मैंने ही सुभद्रा, श्रीकृष्ण
 और अर्जुनका अप्रिय काम किया है ॥ १० ॥ लोभी पुरुष अपने
 दोषोंको नहीं देखता और लोभ तथा मोहसे कार्यसिद्धिमें ही
 लगा रहता है, जैसे मनुष्य मधुके लोभसे पर्वत पर चढ़ते समय
 यह नहीं देखता, कि-यहाँसे गिरपड़ूंगा तो क्या होगा ? अहाहा !
 मैंने भी अपने ऐसे अधःपातका विचार ही नहीं किया ? अरेरे !
 जिस बालकको भोजन, सवारी, शयन, और गहनोंसे सजानेमें
 आगे करना चाहियेथा उसे हमने युद्धमें आगे धरदिया (और मर-
 वादिया) ॥ १२ ॥ युद्धके विषयमें अनजान एक तरुण कुमारको
 भयङ्कर युद्धमें मजबूत मोड़की समान लड़नेको भेजदिया फिर वह
 कुशलसे कैसे लौटता ? ॥ १३ ॥ यदि हम भी अभिमन्युके पीछे
 न मर जायेंगे तो अर्जुनकी क्रोधमयी क्रूरदृष्टिसे भस्म होजायेंगे ? ४
 बुद्धिमान्, निर्लोभ, लज्जावान् क्षमावान्, रूपवान्, बलवान्,
 गठीले शरीरवाले मान देनेवाले, वीर, प्रिय, सत्यपराक्रमी
 और प्रचण्डपराक्रमी जिस अर्जुनके कर्माँकी देवता भी प्रशंसा

निवातकवचान् जघ्ने कालकेर्याश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥ महेन्द्रशत्रवो
 येन हिरण्यपुरवासिनः । अक्षोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा
 हताः ॥ १७ ॥ परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः ।
 तस्यास्माभिर्न शक्तिस्त्रातुमप्यात्मनो वली ॥ १८ ॥ भयन्तु
 सुमहत् प्राप्तं धार्तराष्ट्रान्महाबलान् । पार्थः पुत्रवधात्कुटुः कौर-
 वान् शोषयिष्यति ॥ १९ ॥ लुद्रः लुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयका-
 रकः । व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन् हास्यति जीवितम् ॥ २० ॥
 न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं न चामरत्वं न सुरैः सलोकता ।
 इमं समीक्ष्याप्रतिवीर्यपौरुषं निपातितं देववरात्मजात्मजम् ॥ २१ ॥
 इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
 युधिष्ठिरविलापे एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

करते हैं, कि-इस पराक्रमीने निवातकवच और कालकेर्योंको
 नष्ट कर डाला और जिसने पलक मारने मात्रके समयमें
 ही हिरण्यपुरमें रहनेवाले इन्द्रके शत्रुओंको अनुचरों सहित मार
 डाला और जो अभय चाहनेवाले शत्रुओंको भी अभय देता
 है उस अर्जुनके पुत्रकी हमसे रक्षा न होसकी ॥ १५-१८ ॥
 और महाबली धृतराष्ट्रके पुत्र भी अब घड़ी आपत्तिमें फँस गए
 हैं, क्योंकि-पुत्रके मारेजानेसे क्रोधमें भराहुआ अर्जुन कौरवोंको
 सुखाढालेगा ॥ १९ ॥ नीचोंसे सहायता पानेवाला अपने ही
 पक्षका नाश करनेवाला नीच दुर्योधन यह सब देखकर अवश्य
 ही शोकके साथ अपने प्राणोंको छोड़देगा ॥ २० वीर्य और पुरु-
 षार्थमें इककड़ इन्द्रके पुत्र अर्जुनके पुत्रको मराहुआ देखकर अब
 युके विजय अच्छी नहीं लगती और अब देवता होना वा देवताओं
 का सहवास भी अच्छा नहीं लगता ॥ २१ ॥ इक्यावनवाँ अध्याय
 समाप्त ॥ ५१ ॥

सञ्जय उवाच । अथैनं विलपन्तां तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
 कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृपिः ॥ १ ॥ अर्चयित्वा यथा-
 न्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः । अन्नवीक्ष्योक्तसन्तप्तो भ्रातुःपुत्रवधेन
 च ॥ २ ॥ अथर्मयुक्तैर्वह्निभिः परिवार्य महारथैः । युध्यमानो महे-
 ष्वारसैः सौभद्रो निहतो रणे ॥ ३ ॥ बालश्च बालबुद्धिश्च सौभद्रः
 परवीरहा । अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥ ४ ॥ मया
 प्रोक्तः स संग्रामे द्वारं सञ्जनयस्व नः । प्रविष्टेभ्यन्तरे तस्मिन्
 सन्धेयेन निवारिताः ॥ ५ ॥ ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजी-
 विभिः । इदञ्चैवासमं युद्धमीदृशं यत् कुनं परैः ॥ ६ ॥ तेनास्मि
 भृशसन्तप्तः शोकवाष्पसमाकुलः । शर्म नैवाधिगच्छामि चिन्तयानः

सञ्जयने कहा, कि-कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर इसप्रकार विलाप कर
 रहे थे, उस समय महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास तहाँ आपहुँचे १
 युधिष्ठिरने उनकी यथायोग्य पूजा की और जब वह बैठ गए तब
 भोज्यके परनेके शोकसे सन्तप्त युधिष्ठिरने उनसे कहा, कि-२
 हे व्यासजी महाराज ! सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु महाधनुशायी
 महारथियोंके साथ लड़ रहा था, उसको छः अश्वर्षी महारथियोंने
 इकट्ठे हो रणमें घेरकर मार डाला ॥ ३ ॥ अभिमन्यु बड़ा समर्थ
 था, तो भी बालक और बालबुद्धि था, इसलिये रणमें उपायको
 बिना विचारे ही लड़ रहा था, मैंने उससे कहा, कि-इस चक्रव्यूहमें
 घुसनेके लिये द्वार बना उसने व्यूहके एक भागको तोड़कर द्वार
 बना दिया और उसमें घुसने लगा, उसके पीछे हम भी घुसने
 लगे, परन्तु उस समय जयद्रथने हमें भीतर जानेसे रोक दिया ४-५
 योधाओंको अपनी बराबरी वालेसे युद्ध करना चाहिये, परन्तु
 कौरवोंके अश्वर्षी महारथियोंने विषम (अनुचित) युद्ध किया है ६
 इसकारण मैं बड़ा दुःखित हो रहा हूँ और शोकके मारे आँसू
 भर आते हैं तथा बारम्बार विचार करने पर भी मेरे मनको

पुनः पुनः ॥ ७ ॥ सञ्जय उवाच । तं तथा विलपन्तं वै शोक-
व्याकुलमानसम् । उवाच भगवान् व्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः ॥
व्यास उवाच । युधिष्ठिर महाभाज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । व्यसनेपु
न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ ॥ ६ ॥ स्वर्गमेव गतः शूरः शत्रून्
हत्वा बहून् रणे । अयातलसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः ॥ १० ॥
अनतिक्रमणीयो वै विधिरेव युधिष्ठिर । देवदानवगन्धर्वान्मृत्यु-
र्हरति भारत ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर उवाच । इमे वै पृथिवीपालाः शरते
पृथिवीतले । निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महाबलाः ॥ १२ ॥
नागायुतबलाश्चाण्ये वायुवेगवलास्तथा । त एते निहताः संख्ये
तुल्यरूपा नरैर्नराः ॥ १३ ॥ नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे
क्वचित् । विक्रमेणोपसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ १४ ॥ जेत-

शान्ति नहीं होती ७ सञ्जयने कहा, कि-इसप्रकार शोकसे
व्याकुलचित्त हो विलाप करतेहुए युधिष्ठिरसे भगवान् व्यासजीने
यह बात कही-व्यासजीने कहा कि-हे महाभाज्ञ ! सर्वशास्त्रविशा-
रद भरतर्षभ युधिष्ठिर ! तुम्हारे समान पुरुष आपत्ति पड़नेपर
सूढ़ नहीं बनजाते हैं ॥ ६ ॥ पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर अभिमन्युने रणमें
बहुतसे शत्रुओंको मारकर महान् पुरुषकेसा काम किया है और
वह स्वर्गको गया है ॥ १० ॥ हे भरतवंशी युधिष्ठिर ! मृत्यु तो देवता
राक्षस तथा गन्धर्वोंको भी नाश करता है, इसको कोई टाल नहीं
सकता ॥ ११ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-यह महाबली राजे परकर
पृथ्वीमें सोरहे हैं तथा दश सहस्र हाथियोंका बल रखनेवाले और
वायुकी समान वेगवाले अन्य राजे भी रणमें पड़े हैं, इनको रणमें
इनकी समान रूपधारी मनुष्योंने ही मारा है ॥ १२-१३ ॥ ये
सब पराक्रमी और तपोबलसे युक्त थे, इनको संग्राममें मारने
वाला कोई मनुष्य हो यह मैं नहीं देखता अर्थात् इनको कोई
मनुष्य नहीं मारसकता ॥ १४ ॥ जिन योधाओंके चित्तमें नित्य

व्यमिति चान्योन्यं येषां नित्यं हृदि स्थितम् । अथ चेमे हताः
 प्राज्ञाः शरते विगतायुवः ॥ १५ ॥ मृता इति च शब्दोऽयं वर्तते च
 ततोऽर्थवत् । इमे मृता महीपालाः प्रायशां भीमविक्रमाः ॥ १६ ॥
 निश्चेष्टा निरभीमानाः शूराः शत्रुवशं गताः । राजपुत्राश्च संरञ्धा
 वैश्वानरमुखं गताः ॥ १७ ॥ अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा
 मृता इति । कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः कथं संहर्ते प्रजाः ? न हर्त्यमर-
 संकाशं तन्मे ब्रूहि पितामह । सञ्जय उवाच । तन्तथा परिपृच्छन्तं
 कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः १८
 व्यास उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम् । अकम्प-
 नस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥ २० ॥ स चापि राजा राजेन्द्र
 पुत्रव्यसनमुत्तमम् । अप्रसह्यतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः २१

विजय पानेकी ही धुन सवार रहती थी वे बड़े बुद्धिमान् योधा
 भी आयु क्षीण होजानेसे भरकर पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ १५ ॥ इनके
 विषयमें 'मरगए' यह शब्द सार्थक हुआ है, शूर राजकुमार जोध
 में भरकर युद्ध करते २ शत्रुओंके वशमें पड़कर मरगए और अब
 इनका अभिमान गल गया तथा ये हाथ पैर भी नहीं हिला सकते
 १६-१७ यहाँ पर मुझे सन्देह होता है कि 'मरगए' यह नाम कैसे
 पड़ा और किसकी मृत्यु होती है ? मृत्यु कौन है ? मृत्यु कैसे
 होती है और प्रजाओंका संहार किसप्रकार करती है ? १८ हे देव-
 समान पितामह ! और यह मृत्यु परलोकतो किसप्रकार लेजाती
 है, यह मुझे बताइये ? सञ्जयने कहा, कि-कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने इस
 प्रकार ब्रूया, तब भगवान् वेदव्यासने शोकको शान्त करनेवाले
 वचन कहे ॥ १९ ॥ व्यासजीने कहा, कि-हे राजन् ! इस विषयमें
 एक प्राचीन इतिहासको लोग कहा करने हैं, उसको पहले नारद
 जीने राजा अकम्पनसे कहा था ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र ! मेरी समझमें
 उस राजाको भी इस लोकमें असह्य पुत्रशोक सहना पड़ा था २१

तदहं संप्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् । ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात्
 स्नेहवन्धनसंश्रयात् ॥ २२ ॥ समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्त्तयतो
 मम । धन्यमाख्यानमायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ २३ ॥ पवित्र-
 मरिसंघघ्नं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । यथैत्र वेदाध्ययनमुपाख्यान-
 मिदन्तथा ॥ २४ ॥ श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं द्विजोत्तमैः ।
 पुत्रानायुष्मतो राज्यमीदमानैः श्रियन्तथा ॥ २५ ॥ पुरा कनयुगे
 तात ह्यासीद्राजा ह्यकम्पनः । स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राम-
 मूर्द्धनि ॥ २६ ॥ तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बली । श्रीमान्
 कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो बली ॥ २७ ॥ स शत्रुभिः परि-
 वृतो बहुधा रणमूर्द्धनि । व्यस्यन् बाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु
 च ॥ २८ ॥ स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः । शत्रुभि-
 निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर ॥ २९ ॥ स राजा प्रेतकृत्यानि

जस मृत्युकी श्रेष्ठ उत्पत्तिको मैं तुमसे कहता हूँ जिसको
 सुनकर तू दुःख और मोहके बन्धनसे छूटजायगा ॥ २२ ॥
 यह आख्यान सकल पापोंको नष्ट करनेवाला, सुख देनेवाला,
 आयु बढ़ानेवाला, शोकहर, पुष्ट करनेवाला, शत्रुसमूहका नाशक,
 महामङ्गलकारी और वेदाध्ययनकी समान पवित्र तथा फलदायक
 है ॥ २३-२४ ॥ चिरञ्जीवी पुत्र, राज्य और लक्ष्मीको चाहने
 वाले उदार राजाओंको यह कथा सर्वदा प्रातःकालमें सुननी
 चाहिये ॥ २५ ॥ हे तात ! पहिले सत्ययुगमें अकम्पन नामका
 एक राजा था, वह संग्राममें शत्रुओंके वशमें पड़गया २६ उसके
 हरि नामका एक पुत्र था, वह पुत्र बलमें नारायणकी समान श्रीमान्
 अस्त्रविद्यामें कुशल बुद्धिमान और युद्ध करनेमें इन्द्रकी समान था
 २७ वह रणके मुहाने पर शत्रुओंसे घिरगया, उससमय वह कुमार
 गोधा और हाथियों पर सहस्रों बाण बरसाने लगा २८ वह शत्रु-
 तापन रणमें दुष्करकर्म करके सेनाके बीचमें शत्रुओंके हाथसे मारा

तस्य कृत्वा शुचान्वितः । शोचन्नहनि रात्रौ च नालभत्सुखमा-
त्मनः ॥ ३० ॥ तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम् ।
आजगामाथ देवर्षिनारदोऽस्य समीपतः ॥ ३१ ॥ स तु राजा महा-
भागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम् । पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथय-
त्तदा ॥ ३२ ॥ तस्य सर्वं समाचष्ट यथावृत्तं नरेश्वरः । शत्रुभि-
र्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ॥ ३३ ॥ मम पुत्रो महावीर्यं
इन्द्रविष्णुसमद्युतिः । शत्रुभिर्वहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो बली ३४
क एष मृत्युर्भगवन् किम्वीर्यवलपौरुषः । एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं
मतिमताम्बर ॥ ३५ ॥ तस्य तद्वचनं श्रत्वा नारदो वरदः प्रभुः ।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ॥ ३६ ॥ नारद उवाच ।

गया २६ इससे उसके पिताको बड़ा शोक हुआ, वह उसके प्रे-
कृत्य करके शुद्ध तो होगया परन्तु तबसे रातदिन शोकमें ही रहने
लगा; उसे कहीं भी सुख नहीं मिलता था ३० राजा अकम्पन पुत्र
शोकसे व्याकुल हो रहा है, यह जानकर देवर्षि नारद उसके पास
आये ॥ ३१ ॥ उस महाभागवान् राजाने देवर्षियोंमें श्रेष्ठ नारद
जीको देख उनकी यथायोग्य पूजा करके उनको अपना वृत्तान्त
सुनाया ॥ ३२ ॥ उस राजाने जिसप्रकार शत्रुओंसे हार हुई थी
और पुत्रका वध हुआ था वह सब सुनाया ॥ ३३ ॥ और कहा,
कि—मेरा पुत्र इन्द्र और विष्णुकी समान कान्तिमान् और
महाबली था, उसको युद्धमें बहुतसे शत्रुओंने पराक्रम करके मार
ढाला ॥ ३४ ॥ अतः हे भगवन् ! यह मृत्यु क्या है ? और इसका
बल तथा वीर्य कैसा है ? हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! यह बात मैं
यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥ ३५ ॥ राजाकी इस बातको
सुनकर वर देनेवाले शक्तिमान् नारदजीने उस राजासे इस शोक
को दूर करनेवाले बड़ेमारी आख्यानको कहा था ॥ ३६ ॥
नारदजीने कहा, कि—हे महाबाहु राजन् ! यह बहुत लम्बा आख्यान

शृणु राजन्महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम् । यथावृत्तं श्रुतं चैव
 मयापि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥ प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे
 पितामहः । असंहृतं महातेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥ ३८ ॥ तस्य
 चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव । चिंतयन्नखसौ वेद संहारं
 वसुधाधिप ॥ ३९ ॥ तस्य रापान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत ।
 तेन सर्वा दिशो व्याप्ताः सान्तर्देशा दिव्यक्षता ॥ ४० ॥ ततो दिवं
 भुवं चैव ज्वालामालासमाकुलम् । चराचरं जगत् सर्वं ददाह भग-
 वान् प्रभुः ॥ ४१ ॥ ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
 महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ॥ ४२ ॥ ततो रुद्रो जटी
 स्थाणुर्निशाचरपतिर्हरः । जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ४३
 तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया । अब्रवीत् परमो देवो
 जिसप्रकार हुआ है और जिसप्रकार मैंने सुना है, वह तुझसे
 कहता हूँ, सुन ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जगत्के पितामह ब्रह्माजी
 आदिसर्गमें प्रजाको रचकर उसको नष्ट न होती हुई देख हे
 पार्थिव ! उसका संहार करनेके लिये चिन्ता करने लगे; परन्तु
 महातेजस्वी ब्रह्मा विचार करने पर भी उसका संहार कैसे किया
 जाय, यह न जानसके ॥ ३८-३९ ॥ अतः उनको क्रोध आगया
 उस क्रोधके कारण आकाशमें अग्नि उत्पन्न होगई, उस भस्म
 करनेवाली अग्निसे कोने-२ सहित सब दिशाएँ भरगई ॥ ४० ॥
 समर्थ ब्रह्माजीने अग्निकी लपटोंसे व्याप्त हुए आकाश और
 पृथिवीमें रहनेवाले चराचर जगत्को भस्म करना आरम्भ कर
 दिया ॥ ४१ ॥ वीर्यवान् ब्रह्माने त्रास दे-२ कर चराचर भूतोंको
 बड़ेभारी क्रोधसे भस्म करदिया ॥ ४२ ॥ यह देखकर जटाधारी,
 निशाचरपति रुद्रदेव परमेष्ठी ब्रह्मदेवकी शरणमें गए ॥ ४३ ॥
 शिवके आने पर प्रजाके हितकी इच्छासे अग्निकी समान दमकते

ज्वलन्निव महागुनिः ॥ ४४ ॥ किं कुर्म कामं कामार्हं कामाज्जा-
तोसि पुत्रक । करिष्यामि प्रियं सर्वं ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि ४५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

स्थाणुस्त्वाच । मजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो ।
त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः ॥१॥ तास्तवेह पुनः
क्रोधात् मजा दहन्ति सर्वशः । ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भग-
वन् प्रभो ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच । संहर्तुं न च मे कामो एनदेवं भवे-
दिति । पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत् ॥ ३ ॥ इयं
हि मां सदा देवी भारार्चा समचूचुदत् । संहारार्थं महादेव भारे-
णाभिहता सती ॥ ४ ॥ ततोहं नाधिगच्छामि तथा बहुविधं तदा ।

हुए परमगुनि ब्रह्माजीने शिवजीसे कहा, कि-॥४४॥ हे पुत्र रुद्र !
तू अपनी इच्छासे उत्पन्न हुआ है और वर पानेका पात्र है अतः
जो तेरी इच्छा हो उसे प्रकट कर, तुझे जो अभीष्ट होगा मैं
उसको पूर्ण करूँगा ॥ ४५ ॥ वाचनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥

शिवजीने कहा, कि-हे व्यापक ब्रह्मदेव ! आपने मजाको रचनेके
लिये बड़ा परिश्रम किया है और नानाप्रकारके प्राणियोंको उत्प-
न्न किया है तथा उनकी अब वृद्धि भी होगई है ॥ १ ॥ अब वे
सब मजा आपके क्रोधसे भस्म होरही है, उनको देखकर मुझे
दया आती है, हे प्रभो ! हे भगवन् ! प्रसन्न हूजिये ॥ २ ॥
ब्रह्माजी बोले कि-मेरी इच्छा मजाओंका संहार करनेकी नहीं थी
किन्तु मेरी इच्छा थी कि-यह ऐसी ही बनी रहें, किन्तु पृथ्वीका
हित करनेके लिये मुझे क्रोध आगया ॥ ३ ॥ हे महादेव ! पृथ्वी
देवीने भारसे पीड़ित होकर मुझसे संहार करनेकी प्रार्थना की
थी ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर इस अनन्त और नानाप्रकारके जगत्का
संहार करनेके लिये मैंने बड़ा विचार किया, परन्तु मुझे कोई

संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥ ५ ॥ रुद्र उवाच ।
 संहारार्थं प्रसीद त्वं मा रुधो वसुधाधिप । मा प्रजाः स्थावराश्चैव
 जङ्गमाश्च व्यनीनशः ॥ ६ ॥ तव प्रसादाद्भगवन्निदं वर्त्तेत्तथा
 जगत् । अनागतमतीतञ्च यच्च सम्प्रतिवर्त्तते ॥ ७ ॥ भगवन् क्रोध-
 संदीप्तः क्रोधादग्निपवासृजत् । स ददित्यश्मकूटानि द्रुमांश्च सरि-
 तस्तथा ॥ ८ ॥ पल्वलानि च सर्वाणि सर्वे चैव तृणोरुपाः ।
 स्थावरं जङ्गपञ्चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥ ९ ॥ तदेतद्भस्मसाद्
 भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम् । प्रसीद भगवन् स त्वं रोषो न स्या-
 द्रो मम ॥ १० ॥ सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथञ्चन ।
 तस्मान्निवर्त्ततां तेजस्तपयेवेदं प्रलीयताम् ॥ ११ ॥ तत् पश्य
 देव सृष्टृशं प्रजानां दितकाम्यया । यथेमे प्राणिनः सर्वे निवर्त्तेर-
 उपाय न मृक्ता तव मुक्ते क्रोध चदध्याया (और उस क्रोधसे
 उत्पन्न हुई अग्निसे यह संसार भस्म होरहा है) ॥ ५ ॥ शङ्कर
 बोले कि—हे वसुधाधिप ! तुम प्रजाका संहार करनेके लिये क्रोध
 न करो, प्रसन्न होजाओ ! तथा इस जङ्गम और स्थावर प्रजाको
 नष्ट न करो ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! आपकी कृपासे भूत भविष्यत् और
 वर्तमान इसप्रकार तीनप्रकारसे जगत् सदा रहे ऐसा करो, उसको
 समूल ही नष्ट न करो ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! आप क्रोधमें भरगए
 थे उस क्रोधने आपने अग्निको उत्पन्न किया यह अग्नि, पत्थर,
 शिखर, वृक्ष, नदियें, सब जलाशय, सकल तृण और स्थावर
 जङ्गमात्मक इस सब जगत्को जलाकरहा है ॥ ८—९ ॥ इससे यह
 स्थावर जंगमरूप सब जगत् भरमसा होगया है, हे भगवन् ! आप
 प्रसन्न हजिये और क्रोध न करनेका मुझे वर दीजिये ॥ १० ॥
 तुम्हारी रचीहुई यह सब सृष्टि नष्ट होरही है, हे देव ! कोई ऐसा
 उपाय करिये जिससे यह आपका तेज आपमें ही लय हो
 जाय ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! आप प्रजाओंके दितकी इच्छासे बहुत

स्तथा कुरु ॥ १२ ॥ अभावं नेह गच्छेयुस्तस्मिन्नजननाः प्रजाः ।
 आदिदेव निपुक्तोस्मि त्वया लोकेषु लोककृत् ३मा विनश्येज्जग-
 न्नाथ जगत् स्थावरजङ्गमम् । प्रसादाभिमुखं देव तस्मादेवं
 व्रवीम्यहम् ॥ १४ ॥ नारद उवाच । श्रुत्वा हि वचनं देवः
 प्रजानां हितकाम्यया । तेजः सन्धारयामास पुनरेवान्तरा-
 त्मनि ॥ १५ ॥ ततोऽग्निपुपसंहृत्य भगवान्लोकसत्कृतः । प्रवृत्तञ्च
 निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः १६ उपसंहरतस्तरय तमग्निं रोपजं
 तथा । प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः ॥ १७ ॥
 कृष्णारक्ता तथा पिङ्गा रक्तजिह्वास्त्यलोचना । कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र
 तप्ताभ्यां तप्तभूषणा ॥ १८ ॥ सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां

शीघ्र ऐसे उपायको देखिये, सोचिये, जिससे ये सब प्राणी नष्ट
 होनेसे बचें ॥ १२ ॥ और यह क्षीण सन्तान वाली प्रजा नष्ट न
 हो, हे आदिदेव! आपने लोगों का संहार करनेका काम तो मुझे
 सौधा है, अतः आपका ऐसा करना अनुचित है ॥ १३ ॥ अतः
 हे जगन्नाथ ! प्रसन्न हुए आपसे मैं यह कहता हूँ कि-यह स्था-
 वरजंगमः त्मरु जगत् नष्ट न हो, ऐसा करिये ॥ १४ ॥
 नारदजीने कहा, कि-ब्रह्माजीने शङ्करकी इस बातको सुनकर
 प्रजाका हित करनेके लिये फिर उस तेजको आनेमेंही लीन कर
 लिया ॥ १५ ॥ लोकोंमें सत्कार पायेहुए भगवान् ब्रह्माजीने
 अग्निका उपसंहार कर शंकरको जगत्की उत्पत्ति और लयका
 वृत्तान्त विस्तारसे सुनाया ॥ १६ ॥ क्रोधसे उत्पन्न हुई अग्निको
 अपनेमें लय करते समय महात्मा ब्रह्माजीकी सब इन्द्रियोंमेंसे एक
 स्त्री प्रकट हुई ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! उसका वर्ण कान्ता, लाल
 और पीला था, तथा नेत्र, जिह्वा और मुख लाल रंग थे, कानोंमें
 कुण्डल थे तथा उसके शरीर पर दमकतेहुए आभूषण थे ॥ १८ ॥
 वह स्त्री ब्रह्माजीकी इन्द्रियोंमेंसे प्रकट होतीही ब्रह्माजी और शंकर

दिशमाश्रिता । स्मयमाना च सावेक्ष्य देवौ विश्वेश्वराबुधौ ॥१६॥
तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः । मृत्यो इति महीपाल जहि
चेमाः प्रजा इति ॥ २० ॥ त्वं हि संहारबुद्ध्याथ प्रादुर्भूता रूपो
मम । तस्मात्संहार सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः ॥२१॥ मम
त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि । एवमुक्ता तु सा तेन
मृत्युः कमललोचना ॥ २२ ॥ दध्यौ चात्यर्थमवला प्ररुद च
सुस्वरम् । पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः । सर्वभूत-
हितार्थाय तां चाप्यनुनयत्तदा ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युकथने
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

नारद उवाच । विनीय दुःखमवला आत्मन्येव प्रजापतिम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेनावर्जिता पुनः ॥ १ ॥ मृत्युरुवाच ।

को देखकर हँसती २ दक्षिण दिशाकी ओरको जानेलगी ॥१६॥
लोकोंके पितामह और संहारकर्ता ब्रह्माने उसको बुलाकर कहा,
कि—हे मृत्यु ! (दूसरोंके प्राणोंको वियुक्त करना चाहनेवाली)
तू इस प्रजाका नाश कर ॥ २० ॥ मैंने लोकोंका संहार करनेकी
इच्छासे क्रोध किया था, उससे तेरा जन्म हुआ है, अतः तू स्थो-
वरजङ्गमात्मक सब जगत्का नाश कर ॥ २१ ॥ तू मेरी आज्ञाको
मानेगी तो तेरा कल्याण होगा, ब्रह्माजीके ऐसा कहने पर
कमलके समान नेत्रोंवाली वह मृत्यु बारम्बार विचार करनेके
अनन्तर डीक फोड़कर रोनेलगी, ब्रह्माजीने उसके आँसुओंको
हाथोंमें लेलिया और सब प्राणियोंका हित करनेके लिये उससे
कहनेलगे ॥ २२-२३ ॥ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥

नारदजीने कहा, कि हे महाराज! वह अवला (प्राणहारिणी
मृत्युदेवी) अपने दुःखको अपने मनमें ही दबाकर दोनों हाथजोड़
लताकी समान नम्र हो ब्रह्माजीसे फिर कहनेलगी ॥ १ ॥ मृत्यु

त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदताम्बर । क्रूरं कर्माहितं कृत्यो
तदेव किमु जानती ॥ २ ॥ विभेम्यहमधर्माद्धि प्रसीद भगवन्
प्रभो । प्रियान् पुत्रान् वयस्यांश्च भ्रातन् मातः पितन् पतीन् ॥ ३ ॥
अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेष्वेभ्यो विभेम्यहम् । कृपणानां हि रुदतां
ये पतन्त्यश्रुविन्दवः ॥ ४ ॥ तेभ्योहं भगवन् भीता शरणं त्वाह-
मागता । यमस्य भवने देव न गच्छेयं न सुरोत्तम ॥ ५ ॥ कायेन
विनयोपेता मूर्ध्नोदग्रनखेन च । एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोक-
पितामह ॥ ६ ॥ इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तं प्रजेश्वर । प्रदिश-
मम्बरं देव त्वं गह्यं भगवन् प्रभो ॥ ७ ॥ त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि
धेनुकाश्रममुत्तमम् । तत्र तप्स्ये तपस्तीव्रं तवैवाराधने रता ॥ ८ ॥
न हि शक्यामि देवेश प्राणान् प्राणभृतां प्रियान् । हर्तुं विलाप-

ने कहा, कि—हे श्रेष्ठवक्ता ! तुमने (मुझे) ऐसी (क्रूर) नारी
क्यों बनाया ? मैं जानकर ऐसे अहित और क्रूर कर्मको कैसे
कर सकूँगी ? ॥ २ ॥ मैं अधर्मसे डरती हूँ, हे प्रभो ! मेरे ऊपर प्रसन्न
हूजिये, हे देव ! मैं यदि मनुष्योंके प्रिय पुत्र, मित्र, भाई, माता,
पिता और पतियोंका नाश करूँगी, तो वे अन्तःकरणसे मेरा
बुरा चीतेंगे ! इससे मैं डरती हूँ, लोग दुःखी होकर रोवेंगे उनके
आँसुओंको याद करके मुझे फुरैरी आती है, हे भगवन् ! मैं
तुम्हारी शरणमें आई हूँ, तुम मुझे इस पापसे बचाओ ! हे देवोंमें
श्रेष्ठ ब्रह्मदेव ! मैं प्राणियोंको लेकर यमलोकमें नहीं जाऊँगी ३-५
हे पितामह ! मैं विनयपूर्वक शरीर और शिर झुका हाथ जोड़कर
आपसे विनय करती हूँ, कि—॥ ६ ॥ हे प्रजाओंके स्वामिन् ! मैं
आपकी कृपासे तप करना चाहती हूँ, हे प्रभो ! हे भगवन् !
हे देव ! तुम मुझे ऐसा वर दो ॥ ७ ॥ आपके आज्ञा देने पर
हे भगवन् ! मैं धेनुकाश्रममें जाकर आपकी ही आराधनामें लगकर
तीव्र तप करूँगी ॥ ८ ॥ हे देव ! मैं विलाप करतेहुए प्राणियोंके

मानानामधर्मादभिरक्ष माम् ॥६॥ ब्रह्मोवाच । मृत्यो संकल्पितासि
 त्वं प्रजासंहारहेतुना । गच्छ संहार सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचा-
 रणा ॥ १० ॥ भविता त्वेतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
 भवत्वनिदिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥ ११ ॥ नारद उवाच ।
 एवमुक्ताभवत् प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी । संहारे नाकरोद् बुद्धि
 प्रजानां हितकाश्यया ॥ १२ ॥ तूष्णीमासीत्तदा देवः प्रजानामी-
 श्वरेश्वरः । प्रसादञ्चागमत् क्षिप्रमात्मानैव प्रजापतिः ॥ १३ ॥
 स्मयमानश्च देवेशो लोकान् सर्वानवेक्ष्य च । लोकास्त्वासन्यथा
 पूर्वं दृष्टास्तेनापमन्युना ॥ १४ ॥ निवृत्तरोपे तस्मिंस्तु भगवत्य-
 पराजिते । सा कन्यापि जगामाथ समीपात्तस्य धीमतः ॥ १५ ॥
 अपहृत्याप्रतिश्रुत्य प्रजासंहारणं तदा । त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्यु-

प्यारे प्राण नहीं हरसकूँगी, इस अधर्मसे मेरी रक्षा करिये ॥६॥
 ब्रह्माजीने कहा, कि-हे मृत्यो ! मैंने तुझी प्रजाका नाश करनेकी
 इच्छासे ही रचा है, अतः तू जाकर प्रजाका संहार कर और कुछ
 विचार न कर ॥ १० ॥ यह ऐसा ही होगा, इस मेरे कहनेमें
 कुछ भी अन्तर नहीं होगा, तू मेरे कहनेके अनुसार संहार करने
 पर भी निन्दाकी पात्र नहीं होगी ॥ ११ ॥ नारदजी बोले, कि
 हे राजन् ! ब्रह्माजीके ऐसा कहने पर उनकी ओरको मुख करके
 हाथ जोड़े बैठी हुई मृत्युदेवी प्रसन्न होगई, परन्तु उसने प्रजा-
 ओका हित करनेकी इच्छासे प्रजाके संहारकी इच्छा नहीं की और
 चुप होगई इस समय प्रजाके ईश्वरेश्वर प्रजापति ब्रह्मा स्वयं
 प्रसन्न होगए ॥१२॥१३॥ और कोपको शान्त कर लोकोंको
 देखा, तो पहिलेकी समान ही सब लोक दीखे (कोई परा हुआ
 नहीं दीखा) ॥१४॥ अपराजित भगवान् ब्रह्माजीके प्रसन्न होने
 पर वह कन्या भी उन बुद्धिमानके पाससे चलीगई ॥ १५ ॥
 हे राजेन्द्र! वह प्रजाका संहार करनेकी प्रतिज्ञा बिना किये ही वहाँ

हेतुकमभ्यगात् ॥ १६ ॥ सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमृत्तमम् ।
सा तदा लोकपादेन तस्थौ पद्मानि षोडशः । १७ ॥ पञ्च चाब्दानि
कारुण्यात् प्रजानां तु हितैषिणी । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः
सन्निवृत्य सा ॥ १८ ॥ ततस्त्वेकेन पादेन पुण्यपाण्यानि सप्त वै ।
तस्थौ पद्मानि षट् चैव सप्त चैकञ्च पार्थिवः १९ ततः पद्मायुतन्तात
मृगैः सह चचार सा । पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलो-
दकां ॥ २० ॥ अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकञ्च सानयत् । धार-
यित्वा तु नियमं नन्दायां व्रीतकल्मषा ॥ २१ ॥ सा पूर्वं कौशिकीं
पुण्यां जगाम नियमैर्धृता । तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं
पुनः ॥ २२ ॥ पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च । तपो-
विशेषैर्वहुभिः कर्षयद्देहमात्मनः ॥ २३ ॥ ततो गत्वा तु सा गङ्गां
महामेरुञ्च केवलम् । तस्थौ चाशमेव निश्चेष्टा प्राणायामवरा-

से हटकर शीघ्रतासे धेनुकाश्रममें चली गई ॥ १६ ॥ प्रजाकी हित
चाहनेवाली मृत्युने प्रजापर करुणा कर इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके प्रिय
भोगोंसे हटाकर एक पैरसे खड़ी हो इक्कीस पद्म वर्ष तक तप
किया ॥ १७-१८ तदनन्तर हे राजन्! उसने फिरभी इक्कीस पद्म
वर्ष तक एक पैरसे खड़ी होकर तप किया ॥ १९ ॥ फिर वह
दशसहस्र पद्म वर्षों तक मृगोंके साथ फिरती रही; फिर वह निर्मल
और ठण्डे जलवाली नन्दा नदी पर जा उत्तम नियमोंको धारण
कर आठ सहस्र वर्ष तक नन्दा नदीके जलमें खड़ी होकर तप
करती रही २०-२१ इसप्रकार नियमोंमें बड़ी हुई मृत्युदेवी नन्दा
नदीसे कौशिकीनदी परजा तहाँ वायु और जलको आहारकर नियम
पालनेलगी २२ वह पुण्यवती कन्या पञ्चगङ्गा और सिंधु आदि
नदियोंपर जा तहाँ बहुतसे तपकर अपने शरीरको सुखानेलगी २३
फिर वह कन्या गङ्गा और मेरु पर्वत पर जा पत्थरकी समान
निश्चेष्ट हो प्राणायाम चढ़ाकर तप करनेलगी ॥ २४ ॥ फिर

यया ॥ २४ ॥ पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुरायजन् । तत्रा-
 गुप्तेन सा तस्थौ निखर्व परमा शुभा ॥ २५ ॥ पुष्करेण्यथ गोकर्णे
 नैमिषे मलये तथा । अपाकर्षत् स्वकं देहं नियमैर्मनसाम्रियैः २६
 अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्त्या पितामहे । तस्थौ पितामहञ्चैव तोष-
 यामास धर्मतः ॥ २७ ॥ ततस्ताम्रव्रीत् प्रीतो लोकानां प्रभवो-
 व्ययः । सौम्येन मनसा राजन् प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥ २८ ॥
 मृत्यो किमिदमत्यंतं तपोसि चरसीति ह । ततोव्रवीत् पुनर्मृत्युर्भ-
 गवन्तं पितामहम् ॥ २९ ॥ नाहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाक्रोश-
 तीस्तथा । एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥ ३० ॥ अधर्म-
 भयभीतास्मि ततोहं तप आस्थिता । भीतायास्तु महाभाग प्रय-
 च्छाभयमव्यय ॥ ३१ ॥ आर्त्ता चानागसी नागी याचामि भव

देवताओंने जहाँ पहिले यज्ञ किया था उस हिमवान् पर्वत पर
 उस परम कल्याणीने एक अगूँ ठेसे खड़े होकर निखर्व वर्ष तक
 तप किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर पुष्कर, गोकर्ण, नैमिष और मल-
 याचल आदि तीर्थों पर जा इच्छानुसार नियम पालकर शरीरको
 कुश करनेलगी ॥ २६ ॥ वह और देवताओंका आश्रय छोड़कर
 नित्य ब्रह्माकी ही दृढ़ भक्ति करनेलगी और खड़ी हो धर्मानु-
 सार तपश्चर्या कर ब्रह्माजीको सन्तुष्ट करनेलगी ॥ २७ ॥ तद-
 नन्तर हे राजन् ! जगत्को रचने वाले अविनाशी ब्रह्मा प्रसन्न
 हुए और उन्होंने शान्त मनसे उस स्त्रीसे कहा कि- ॥ २८ ॥ हे
 मृत्यो ! इसप्रकार तू बड़ा भारी तप क्यों कर रही है ? यह सुन
 मृत्युने भगवान् ब्रह्माजीसे फिर कहा कि- ॥ २९ ॥ हे देव ! मैं
 यह वर चाहती हूँ, कि-मैं शान्त और रुदन करती हुई प्रजाका
 नाश न करूँ ॥ ३० ॥ अधर्मसे डरकर मैं तप कर रही हूँ, हे
 अव्यय ! हे महाभाग ! मुझ डरीहुईको अभयदान दो ॥ ३१ ॥
 हे देव ! मैं पीड़ा पार ही हूँ और निरपराध हूँ आप मेरी गति

मे गतिः । तामब्रवीत्ततो देवो भूतभव्यमविष्यवित् ॥३२॥ अथर्मो
नास्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः । मया चोक्तं मृषा भद्रे
भविता न कथञ्चन ॥ ३३ ॥ तस्मात् संहर कल्याणि प्रजाः सर्वा-
श्चतुर्विधाः । धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥ ३४ ॥
लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते । अहञ्च विबुधाश्चैव
पुनर्दास्याम ते वरम् ॥ ३५ ॥ यथा त्वमेनसा मुक्ता विरजाः
रूपातिमेष्यसि । सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिरिदं विभुम् ॥ ३६ ॥
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं प्रसाद्य शिरसा तदा । यद्येवमेतत् कर्त्तव्यं मया
न स्याद्दिना विभो ॥३७॥ तवाज्ञा मर्दिन मे न्यस्ता यत्ते वक्ष्यामि
तच्छृणु । लोभः क्रोधोभ्यसूर्याच द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥३८॥
अहीश्वान्योन्यपरुषा देहं भिन्दुः पृथग्विधाः । ब्रह्मोवाच । तथा

हृजिये रक्षाकरो) यह सुन भूत भविष्यत् और वर्तमानको जानने
बाले ब्रह्माजीने उससे कहा, कि-॥ ३२ ॥ हे मृत्यो ! प्रजाका
संहार करने पर तुझे पाप नहीं लगेगा, हे कल्याणि ! मेरा कहा
हुआ वचन किसीप्रकार मिथ्या न होगा ॥३३॥ हे कल्याणि ! तू
चारों प्रकारकी सकल प्रजाका संहारकर, सनातनधर्म तुझै सर्वथा
पवित्र करेगा ॥३४॥ लोकपाल, यम और व्याधियें तुझै सहायता
देगी और देवता तथा मैं तुझै फिर भी वरदेंगे ॥ ३५ ॥ ऐसा
होने पर तू पापसे रहित होकर प्रसिद्धि पावेगी, हे महाराज !
जब ब्रह्माजीने यह कहा, तब वह ब्रह्माजीको शिरसे प्रणाम कर
हाथ जोड़ प्रसन्न करके फिर कहनेलगी, कि-हे प्रभो ! यदि यह
ऐसा काम है कि-मेरे बिना पूर्ण ही न होगा, तो आपकी आज्ञा
मेरे शिरपर है और जो मैं आपसे कहती हूँ उसको सुनिये, लोभ,
असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और परस्परमें तीक्ष्ण वाणी
का प्रयोग, इतनी वस्तुएं मनुष्योंके देहका नाश करें यह मुझे
वरदे ॥३६-३८॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-हे मृत्यो ! ऐसा ही होगा अब

भविष्यते मृत्यो साधु संहर भोः प्रजाः । अधर्मस्ते न भविता
 नापध्यास्याम्यहं शुभे ॥३६॥ यान्यश्रुविन्दूनि करे ममासंस्ते व्या-
 धयः प्राणिनामात्मजाताः । ते मारयिष्यन्ति नरान् गतामृन्नाय-
 र्मस्ते भविता मा स्म भैषीः ॥ ४० ॥ नाधर्मस्ते भविता प्राणिनां
 वै त्वं वै धर्मस्त्वं हि धर्मस्य चेशा । धर्म्या भूत्वा धर्मनित्या धरित्रो
 तस्मात् प्राणान् सर्वथेभानियच्छ ॥ ४१ ॥ सर्वेषां वै प्राणिनां
 कामरोषौ सन्त्यज्य त्वं संहरस्वेह जीवान् । एवं धर्गस्त्वां भवि-
 ष्यत्यनन्तो मिथ्यावृतान् मारयिष्यत्यधर्मः ॥ ४२ ॥ तेनात्मानं
 पावयस्वात्मना त्वं पापेत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात् । तस्मात् कामं
 रोषमप्यागतं त्वं सन्त्यज्यान्तः संहरस्वेति जीवान् ॥ ४३ ॥ नारद
 उवाच । सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशाच्छापाप्राप्तीता वादपित्यत्रवी-

तू प्रजाका भलीमकार संहार कर दे शुभे ! प्रजाका संहार करनेसे
 तुझे पाप नहीं लगेगा और मैं तेरी अशुभचिन्तना नहीं
 करूँगा ॥३६॥ तेरे आँसुओंकी जो बूँदें मेरे हाथोंमें आई थीं वे
 प्राणियोंके शरीरमें व्याधि बनकर प्राणियोंको नष्ट करेंगी तू
 हरे मत, तुझे अधर्म नहीं होगा ॥ ४० ॥ तुझे पाप नहीं
 लगेगा, किन्तु तू प्राणियोंके लिये एक गुरुरूप होजायगी, तू
 धर्मकी स्वामिनी, नित्य धर्म कर्म करनेवाली, धर्मस्वरूप और
 सबकी स्वामिनी होगी, जा तू सबके प्राणोंको हर ॥ ४१ ॥ तू
 प्राण हरते समय कामना और क्रोधको त्यागकर सब प्राणियोंके
 प्राणोंको हर ऐसा करनेसे तुझे अनन्त धर्मका लाभ होगा और
 अधर्म स्वयं ही पाप करनेवालोंको नष्ट करेगा ॥ ४२ ॥ तू स्वयं
 ही अपनी आत्माको पवित्र कर ! मनुष्य असत्य भाषण कर
 अपनी २ आत्माको पापमें डालते हैं, अतः तू चढ़े हुए क्रोध और
 कामको भी त्यागकर अन्तकालके समय प्राणियोंके प्राणोंको
 हरना ॥ ४३ ॥ नारदजीने कहा कि ब्रह्माजीके उपदेशसे, शाप

राम् । सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले कामक्रोधौ त्यज्य हरत्य-
सक्ता ॥ ४४ ॥ मृत्युस्त्वेपां व्याधयस्तत् ममृता व्याधी रोगो
रुज्यते येन जन्तुः । सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते तस्मा-
च्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम् ॥ ४५ ॥ सर्वे देवाः प्राणिभिः
प्रायणान्ते गत्वा वृक्षाः सन्निवृक्षास्तथैव । एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र
गत्वा वृक्षा देवा मर्त्यवद्राजसिंह ॥ ४६ ॥ वायुर्भीमो भीमनादो
महीजा भेत्ता देहान् प्राणिनां सर्वगोऽसौ । नो वावृत्ति नैव वृत्ति
कदाचित् प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजो विशिष्टः ॥ ४७ ॥ सर्वे देवा मर्त्य-
संज्ञाविशिष्टास्तस्मात् पुत्रं मा शुचो राजसिंह । स्वर्गं प्राप्तो मोदते

से डरी हुई उस स्त्रीने कहा, कि-ऐसा ही करूंगी, उस दिनसे
वह क्रोध और कामको त्यागकर अन्त समयमें प्राणियोंके प्राणों
को हरती है और स्वयं असक्त (निष्पाप) रहती है ॥ ४४ ॥
मृत्यु जीवित प्राणियोंको हरती है और जीतेहुए प्राणियोंको ही
मृत्युसे उत्पन्न होनेवाली व्याधिएं लगजाती हैं, व्याधि रोगका
नाम है जिससे प्राणी पीड़ा पाता है, सब प्राणी कर्मभोग और
आयु पूरी होनेपर मरते हैं अतः तू निष्फल शोकको न कर ४५
हे राजसिंह ! प्राणियोंके मरणके पीछे उनकी सब इन्द्रियों जैसे
परलोकमें अपनी २ वृत्तियोंके साथमें जाती हैं और कर्मफलका
उपभोग करके फिर इस लोकमें आती हैं तैसे ही सब प्राणी
भी मरणके पीछे परलोकमें जाते हैं और तहाँसे वृत्तियोंके साथ
ही इस लोकमें उतरते हैं, इन्द्रादिक देवता भी मनुष्योंकी समान
परलोकमें जाते हैं और कर्मका भोग भोगनेके लिये फिर इस
मृत्युलोकमें उत्पन्न होते हैं ॥ ४६ ॥ महाबली भयानक शब्द करने
वाला, सर्वत्र व्यापक अनन्त तेजयुक्त असाधारण वायु भयङ्कर
और उग्ररूप धारण करके प्राणियोंके देहका नाश करता है
वह गति प्रत्यागतिको प्राप्त नहीं होता अर्थात् स्वर्गकी समान

ते तनूजो नित्यं रम्यान् वीरलोकानवाप्य ॥४८॥ त्यक्त्वा दुःखं
सङ्गतः पुण्यकृद्भिरेषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम् । प्राप्ते काले संहरन्ती
यथावत् स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानां ॥४९॥ आत्मानं वै प्राणिनो
घ्नन्ति सर्वे नैतान् मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति । तस्मान्मृतान्नाजुशो-
चन्ति धीरा मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसूत्रम् । इत्थं सृष्टिं देवकल्मसां
विदित्वा पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व ॥ ५० ॥ द्वैपायन उवाच ।
एतच्छ्रुत्वार्थब्रह्मकथं नारदेन प्रकाशितम् । उवाचाकम्पनो राजा
सखायं नारदन्तथा ॥ ५१ ॥ व्यपेतशोकः प्रीतोस्मि भगवन्पु-
सत्तम । श्रुन्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये ॥ ५२ ॥

पृथिवीमें भी व्याप्त है अतः कहाँका जावे और कहाँसे आवे ॥४७॥
हे राजसिंह ! सब देवता भी मर्त्य नापको धारण करनेवाले हैं
अतः तू अपने पुत्रका शोक न कर, तेरा पुत्र नित्य रमणीय
वीरोंके लोकमें गया है और स्वर्गमें आनन्द करता है ॥ ४८ ॥
तथा (इस लोकके) दुःखको त्यागकर पुण्यवानोंके साथ रहता
है, ब्रह्मदेवने स्वयं ही मृत्युको प्रजाके प्राणोंको हरनेके लिये उत्पन्न
किया है, अतः प्राणियोंका अन्तिम समय निकट आनेपर देवकी
रचीहुई मृत्यु प्राणियोंके प्राणोंको हरती है ॥ ४९ ॥ बहुतसे
प्राणी (पापकर्म करनेके कारण) स्वयं ही अपना नाश करते
हैं, दण्डपाणि (यम) उनको नष्ट नहीं करता । ब्रह्माकी रची
हुई मृत्यु ही प्राणियोंका नाश करती है, यह जावकर धीर पुरुष
मरे हुएका शोक नहीं करते हैं, इसप्रकार सृष्टिको ब्रह्माकी
रचीहुई जानकर तू नष्ट हुए पुत्रके शोकको बिना विलम्बके
त्याग दे ॥ ५० ॥ व्यासजीने कहा, कि-नारदजीकी कही अर्थ
भरी इस उपदेशकी बातको सुनकर राजा अकम्पनने मित्र नारद
जीसे कहा, कि-॥ ५१ ॥ हे भगवन् ! हे अपिसत्तम ! मेरा शोक
दूर होगया, मैं प्रसन्न हूँ, हे भगवन् ! आपसे इस आख्यानको

तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः । जगाम नन्दनं शीघ्रं
 देवर्षिरमितात्मवान् ॥ ५३ ॥ पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यञ्च धन्यमा-
 युष्यमेव च । अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ॥ ५४ ॥
 एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिरः । क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां
 च परां गतिम् ॥ ५५ ॥ सम्प्राप्तोऽसौ महावीर्यः स्वर्गलोकं महारथः ।
 अभिमन्युः परान् हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥ ५६ ॥ युध्यमानो
 महेष्वसो हतः सोभिमुखो रणे । असिना गदया शक्त्या धनुषा
 च महारथः ॥ ५७ ॥ विरजाः सोममूनुः सः पुनस्तत्र प्रलीयते ।
 तस्मात् परां धृतिं कृत्वा भ्रातृभिः सह पाण्डव । अप्रमत्तः सुस-
 न्नद्धः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजा-
 पतिसंवादे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

सुनकर मैं कृतार्थ होगया तथा आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥
 इसप्रकार राजाने कहा तब ऋषिवर अपार ज्ञानवान् देवर्षि नारद
 तुरन्त ही नन्दन वनकी ओरको चलेगए ५३ हे राजन् ! इस इति-
 हासका सुनना सुनाता पुण्य यश स्वर्ग धन और आयुका देने
 वाला है ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इस सार्थक आख्यानको सुननेसे
 क्षत्रियके धर्मका ज्ञान होता है और शूरावीरोंकी परमगति मिलती
 है ५५ सर्वधनुषधारियोंके सामने महारथी महावीर्यवान् अभिमन्यु
 शत्रुओंका नाश करके स्वर्गमें गया है ॥ ५६ ॥ महारथी महा-
 धनुषधारी अभिमन्यु रणमें लड़ता २ ही तलवार, गदा, शक्ति
 और धनुषसे मरणको प्राप्त हुआ है और पापरहित वह चन्द्रवंशी
 राजकुमार फिर चन्द्रमामें ही लीन होगया है, अतः हे पांडुपुत्र !
 तू सावधान हो शस्त्रादिको धारण कर अपने भाइयोंको साथमें
 ले शत्रुओंसे लड़नेके लिये शीघ्र ही सन्नद्ध होजा ॥ ५७—५८ ॥
 चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च ।
 धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाधनमयाववीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ।
 गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिपत्तिकर्माः । स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्-
 नथाः सत्यवादिनः ॥ २ ॥ भूय एव तु मां तथैवैवाभिरभि-
 बृंहय । राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्माणि ॥ ३ ॥ किय-
 न्त्यो दक्षिणा दत्ता कैश्च दत्ता महात्मभिः । राजर्षिभिः पुण्यकृद्भि-
 स्तद्भवान् प्रब्रवीदु मे ॥ ४ ॥ व्यास उवाच । शैब्यस्य वृषभः
 पुत्रः सुञ्जयो नाम नामतः । सखायौ तस्य चैत्राभौ ऋषी पर्वत-
 नारदौ ॥ ५ ॥ तौ कदाचिद् गृहं तस्य प्रविष्टौ नद्विदुजया । विवि-
 वच्चाचितौ तेन प्रीतौ तत्रोपतुः सुखम् ॥ ६ ॥ तं कदा-
 चित्सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता । दुहिताभ्यागमन् कन्या
 सुञ्जयम्बरवर्णिनी ॥ ७ ॥ तथाभिवादिताः कन्यामभ्यनदधया

सञ्जयने कहा कि—हे धृतराष्ट्र ! धर्मराजने व्यासजीसे मृत्यु
 की उत्पत्ति तथा उसके कर्मोंको सुनकर उनको प्रणाम आदिसे
 प्रसन्न किया और यह कहा ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने वृष्णा कि—हे
 भगवन् ! इन्द्रकी समान पराक्रमी, पुण्य कर्म करनेवाले, महात्मा
 सत्यवादी, प्राचीनकालके राजर्षियोंने जेः कर्म किए हों, उन
 कर्मोंको मुझसे फिर विस्तार और व्याख्यानसे कहकर मुझे
 आनन्द दीजिये तथा दादसँ बँधाइये ॥ २-३ ॥ किन्तु महात्मा
 पुण्यवान् राजर्षियोंने किन्तनी दक्षिणाएं दी थीं, यह मुझसे
 कहिये ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा, कि—राजा शैब्यके सुत्रय नामक
 पुत्र था तथा पर्वत और नारद ये दो ऋषि उसके मित्र थे ॥ ५ ॥
 वे दोनों ऋषि एक समय उसको देखनेके लिये उसके घर गए,
 सुञ्जयने शास्त्रानुसार उनकी पूजा की इससे प्रसन्न होकर वे
 सानन्द उसके यहाँ ठहर गए ॥ ६ ॥ एक समय राजा उन दोनोंके
 साथ आनन्दसे बैठा था कि उसकी पवित्र दास्य और सुन्दर

विधि । तत्सल्लिगाभिराशीभिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ८॥ तां नि-
रीक्ष्यान्नवीद्वाक्यं पर्वतः महसन्निव । कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्व-
लक्षणसम्पन्ना ॥ ९ ॥ उताहोभाः स्निदर्कस्य उवलनस्य शिखा
त्वियम् । श्रीर्हीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥ १० ॥
एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोन्नवीत् । प्रमेयं भगवन् कन्या
मत्तो वरमभीप्सति ॥ ११ ॥ नारदस्त्वन्नवीदेनं देहि महामिमां
नृप । भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुञ्चेदिच्छसे नृप ॥ १२ ॥ ददा-
नीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम् । पर्वतस्तु सुसंकुद्धो नारदं
वाक्यमन्नवीत् ॥ १३ ॥ हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृत्तवानसि ।
यस्माद् वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया ॥ १४ ॥ एव-

अङ्गवाली कन्या अपने पिताके पास आई । ७। सृञ्जयने, प्रणाम
करके सामने खड़ी हुई कन्याको उसके योग्य प्रिय आशीर्वादों
से सत्कार किया ८ उस कन्याको देखकर पर्वतने हैसकर वृक्षा
कि—यह चञ्चल कटाक्षवाली सर्वलक्षणोंसे युक्त कन्या किस
की है ? ९ क्या यह सूर्यकी प्रभा है अथवा अग्निकी शिखा है ?
अथवा यह श्री, लज्जा, कीर्ति, धृति, पुष्टि, सिद्धि या चन्द्रमाकी
प्रभा है १० इसप्रकार कहतेहुए देवर्षि पर्वतसे राजा सृञ्जयने
कहा, कि—हे भगवन् ! यह मेरी कन्या है और मुझसे
पतिको पानेकी इच्छा करती है ॥ ११ ॥ नारदजीने उससे कहा
कि—हे राजन् ! यदि तू उत्तम कन्याएँ चाहता है तो इस कन्याको
मेरे साथ विवाह दे ॥ १२ ॥ यह सुनते ही सृञ्जयने प्रसन्न
होकर नारदजीसे कहा, कि—मैं तुम्हारे साथ इसका विवाह कर
दूँगा, इतनेमें ही पर्वतने बड़े क्रोधमें भरकर नारदजीसे कहा,
कि— ॥ १३ ॥ अरे! मैंने तो इसको अपने हृदयसे पहिले ही वर
लिया था, तो भी तू मेरी बरीहुई कन्याको वरनेके लिये तयार
होगया और इसप्रकार मेरा अपमान करता है अतः तू इच्छानुसार

मुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः । मनोवाग्बुद्धिसम्भाषा दत्ता
चोदकपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम् ।
न त्वेषा निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ॥ १६ ॥ अनुत्पन्ने
च कार्यार्थे मान्स्व व्याहृतवानसि । तस्माच्चमपि न स्वर्गं गमिष्यसि
मया विना ॥ १७ ॥ अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा ।
अथ सोऽपि वृषो विप्रान् पानाच्छादनभोजनैः ॥ १८ ॥ पुत्रकामः
परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः । तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः
कदाचित् पुत्रमीप्सवः ॥ १९ ॥ तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्ग-

स्वर्गमें नहीं जासकेगा ॥ १४ ॥ जब पर्वतने यह कहा तब नारदजीने
उत्तर दिया कि-यह मेरी भार्या है ऐसा वरको ज्ञान होना, और
यह मेरी भार्या है, ऐसा कहना तथा कन्यादाताका बुद्धिपूर्वक दिया
हुआ दान, लौकिकाचारके अनुसार कन्यादाता और कन्याग्र-
हीताके संभाषणके द्वारा वरकन्याका मिलाप, जलके मोक्षणपूर्वक
कन्याका दाँन, वरका किया पाणिग्रहण और विवाहविधिके मंत्र,
ये सात बातें होनेपर विवाह हुआ माना जाता है इतना ही नहीं
किन्तु जबतक सप्तपदी न हो तबतक इतनी बातोंके होने पर भी
वह भार्या नहीं मानी जाती, अतः इस कन्याके ऊपर तेरा भार्या-
रूपसे अधिकार नहीं है तो भी तूने निष्कारण मुझे शाप दिया
है अतः मैं भी तुम्हें शाप देता हूँ, कि-“तुम भी मेरे विना
स्वर्गको नहीं जासकेगे” ॥ १५-१७ ॥ इसप्रकार वे दोनों आपसमें
शाप देकर तहाँही ठहर गए, तदनन्तर पुत्र चाहनेवाले राजा
सृञ्जयने शुद्धभावसे अपनी शक्तिके अनुसार स्नान, पान और
बस्त्रादिसे उन ऋषियोंकी सेवा करनी आरम्भ करदी, एक समय
इस राजाके पुत्र होजाय ऐसी इच्छावाले वेदवेदाङ्गके पारङ्गत तप
और स्वाध्यायमेंही लगे रहनेवाले उसके यहाँके ब्राह्मणोंने प्रसन्न
होकर नारदजीसे कहा, कि-इसको इसकी इच्छानुसार पुत्र

पारगाः । सहिता नारदं प्राहुर्देहस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥२०॥ तथेत्यु-
क्त्वा द्विजैस्तैः सुञ्जयं नारदोब्रवीत् । तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्र-
मीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥ २१ ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते यादृशं पुत्र-
मीप्सितम् । तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् २२
यशस्विनं कीर्तिमन्तन्तेजस्विनमरिन्दमम् । यस्य मूत्रं पुरीषञ्च
क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥ २३ ॥ सुवर्णघ्नीविरित्येवं तस्य नामा-
भवत् कृतम् । तस्मिन् वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥ २४ ॥
कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम् । गृहप्राकारदुर्गाणि
ब्राह्मणावसथान्यपि ॥ २५ ॥ शय्यासनानि यानानि स्थालीपि-
ठरभाजनम् । तस्य राज्ञोपि यद्वेश्म बाह्याश्चोपस्करारच ये ॥२६॥

दीजिये ॥ १८-२० ॥ ब्राह्मणोंके ऐसा कहने पर नारदजीने ब्राह्मणोंसे
कहा, कि-ऐसाही होगा, तदनन्तर नारदजीने राजा सुञ्जयसे
कहा, कि-हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर यह
चाहते हैं, कि-तुम्हारे पुत्र हो २१ हे "राजन् ! तू इच्छानुसार पुत्रका
वर माँगले तेरा कल्याण हो" यह सुन राजाने हाथ जोड़कर नारद
जीसे कहा, कि-शुभै गुणवान्, यशस्वी, कीर्तिमान् तेजस्वी,
शत्रुओंका दमन करनेवाले और जिसका मूत्र, पुरीष तथा पसीना
सुवर्णका हो ऐसा पुत्र दीजिये ॥ २२-२३ ॥ नारदजीने कहा
कि-"तथास्तु" तदनन्तर पुत्र होने पर उसका नाम सुवर्णघ्नी
रक्खागया और वरदानके प्रभावसे राजाके यहाँ अपार धन बढ़ने
लगा ॥ २४ ॥ तब राजाने भी इच्छानुसार घर, परकोटे, किले
और ब्राह्मणोंके घर तक सुवर्णके वनवादिये ॥ २५ ॥ उस राजाके
पलंग, सिंहासन, थाली, टोप, वरतन, घर और बाहरकी जितनी
वस्तुएँ थीं सब सुवर्णकी होगई, कुछ समय बीत जानेपर यह सब बढ़
गया, इसके उपरान्त चोरोंको यह बात मालूम हुई और वे उसे
अपनी आँखोंसे वैसाही पा, गोल बाँधकर उस राजाका अपकार

सर्वं तत् काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् । अथ दस्युगणाः श्रुत्वा
 दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ॥ २७ ॥ सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धा-
 श्विकीर्षितम् । केचित्त्रात्रुवन् राज्ञः पुत्रं शृङ्गीम् वै स्वयम् ॥ २८ ॥
 सोस्याकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नञ्चरामहे । ततस्ते दस्यवो
 लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ॥ २९ ॥ राजपुत्रं तथा जडुः सुवर्ण-
 णीविनं बलात् । शृङ्गैनमतुपायज्ञा नीत्वारण्यमचेतसः । ३० ॥ इत्वा
 विशस्य चापश्यन् लुब्धा वसु न किञ्चन । तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य
 नष्टन्तद्वरदं वसु ॥ ३१ ॥ दस्यत्ररच तदान्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचे-
 तसः । इत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाद्भुतं भुवि ॥ ३२ ॥ अस-
 म्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकायिणः । तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं
 महातपाः ॥ ३३ ॥ विललाप सुदुःखार्तो बहुधा करुणं नृप ।
 विलपन्तं निश्शम्याथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४ ॥ प्रत्यदृश्यत

करनेके लिये उसके ऊपर चढ़ाई करनेको तयार होगये उनमेंसे
 कोई कहनेलगे, कि-हम राजपुत्रकोही उठाकर लेचलें तो ठीक है,
 क्योंकि-वही तो सुवर्णका भण्डार है, हमें उसको ही हाथमें करने
 का यत्न करना चाहिये, तदनन्तर उन लोभी डाकुओंने राजाके
 भवनमें घुसकर सुवर्णणीवीको बलात्कारसे पकड़लिया और वे उसे
 जंगलमें लेगये, उन उपायको न जाननेवाले मूर्खोंने उस राजकुमार
 को मारकाट डाला, परन्तु उन्हें उसमेंसे जराभी सुवर्ण न मिला,
 क्योंकि-प्राणरहित होजाने पर उसके शरीरमेंसे सुवर्ण निकलनेका
 वर नष्ट होगया था ॥ २९-३१ ॥ उस पृथिवीमें अद्भुत कुमारको
 मारकर वे मूर्ख डाकू भी आपसमें एक दूसरेको मारकर नष्ट
 होगए ॥ ३२ ॥ वे क्रूरकर्षी असंभाव्य नामक घोर नरकमें पड़े,
 उस वरदानसे मिलेहुए पुत्रको मराहुआ देखकर महातपस्वी राजा
 सृञ्जय बड़ा ही व्याकुल होकर बड़ा करुणाजनक रीतिसे विलाप
 करनेलगा, (राजा पुत्रशोकसे मूढसा होकर विलाप कर रहा है,) यह

देवर्षिनारदस्तस्य सन्निधौ । उवाच चैनं दुःखार्त्तं विलपन्तम-
चेतसम् ॥ ३५ ॥ सृञ्जयं नारदोभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठिरं ।
कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ३६ यस्य चैते वयं गेहेऽपिता
ब्रह्मवादिनः । अविज्ञितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३७ ॥
सम्बर्त्तो याजपामोस स्पर्द्धया वै बृहस्पतेः । यस्मै राजर्षये प्रादा-
ह्ननं स भगवान्प्रभुः ॥ ३८ ॥ हैमं हिमवनः पादं यियत्तोर्विविधैः
सर्वैः । यस्य सेन्द्रोमरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ३९ ॥ देवा
विरवसृजः । सर्वे चासन् समासतो यज्ञवाटस्य सांयर्णाः । सर्वे चासन्
परिच्छदाः ॥ ४० ॥ यस्य सर्वं तदा ह्यन्नमनोभिप्रायगं शुचि ।
कामतो बुभुजुर्विषाः सर्वे चान्नार्थिनो द्विजाः ॥ ४१ ॥ पयोदधिघृतं
क्षौद्रम्भक्ष्यम्भोज्यञ्च शोभनम् । यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभर-

सुनकर देवर्षि नारद उसके पास आए; व्यासजी कहते हैं, कि हे
युधिष्ठिर ! दुःखसे व्याकुल तथा अचेत होकर विलाप करते हुए
राजासे नारदजीने जो २ बातें कही थीं, उनको तुम सुनो, नारदजीने
कहा, कि-हे सृञ्जय ! तू अपनी इच्छाओंको बिना पूरी कियेही
मरजायगा, हम ब्रह्मवादीभी जिसके घर रहते थे वह अविज्ञितका
पुत्र मरुत्तभी मर गया, ऐसा हम सुनते हैं, तो फिर तेरो क्या विसात
है, ॥ ३३-३७ ॥ सम्बर्तने बृहस्पतिसे डाह करके मरुत्तको महायज्ञ
कराया था, बहुतसे यज्ञोंको करना चाहनेवाले राजर्षि मरुत्तको शङ्करने
हिमालयके उत्तम सुवर्णका एक शिखर दिया था, उसके यज्ञमण्डप
में इन्द्र आदि देवगण और बृहस्पति आदि देवता तथा सब प्रजा-
पति बैठे थे और उसके यज्ञमण्डपकी सब वस्तुएँभी सुवर्णकी ही
थीं ॥ ३८-४० ॥ उसके यज्ञमण्डपमें अन्नार्थी, ब्राह्मण, क्षत्रिय
और वैश्य यथेच्छ मनमाना पवित्र और स्वादिष्ट भोजन पाते थे ३१
उसके सब यज्ञोंमें वेदपारङ्गत ब्राह्मणोंको हर्षसे दूध दही, घी,
मधु स्वादिष्ट भक्ष्य, भोज्य तथा इच्छानुसार वस्त्र और आभू-

णानि च ॥ ४२ ॥ ईप्सितान्युपतिष्ठन्त प्रहृष्टान् वेदपारगान् ।
 मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याभवन् मृदोः ॥ ४३ ॥ आविर्जितस्य राजर्षेर्विश्वे-
 देवाः सभासदः । यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या शस्यसम्पदः ॥ ४४ ॥
 हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक्कलूषैर्दिवाकसः ॥ ऋषीणां च पितृणाञ्च
 देवानां सुखजीविनाम् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वेर्दानैश्च सर्वदा ।
 शयनासनपानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥ ४६ ॥ तत् सर्वम-
 मितं वित्तं दत्तं विश्रेभ्य इच्छया । सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वा
 निरामयाः ॥ ४७ ॥ श्रद्धधानो जिताञ्जलोकान् गतः पुण्यदुष्टोऽ-
 क्षयान् । सप्रजः सनृपापात्प सदारापत्यवान्धवः ॥ ४८ ॥ यौवनेन

पण दिये जाते थे; आविर्जितके पुत्र राजर्षि मरुत्तके घर यज्ञ होने
 पर मरुत् (पवन) भोजन परोसते थे, विश्वेदेवता उसके सभा-
 सद् हुए थे, और उस वीर्यवान् राजाके राज्यमें अच्छी वृष्टि होने
 से बहुत अन्न होता था ॥ ४२-४४ ॥ तथा उस राजाने यज्ञमें
 बहुतसे वलिदान देकर तथा ब्रह्मचर्य पालकर, वेदाध्ययन करके
 तथा सब प्रकारके दान देकर सदा सुखमग जीवनको बिताया था,
 तैसेही देवता, ऋषि और पितरोंको यज्ञ आहु तथा स्वाध्यायसे
 तृप्त किया था, उसने ब्राह्मणोंको तथा दूसरोंको भी बहुतसे
 विद्याने, आसन, जल पीनेके पात्र और सुवर्णके ढेरदिये थे ४५-४६
 उस राजाके पास जो अपरम्पार धन था, वह सब उसने ब्राह्मणों
 की इच्छानुसार ब्राह्मणोंको देदिया था, इन्द्र भी उसका भला
 चाहता था, उस राजाने प्रजाको बड़ा सुख दिया था और वह
 श्रद्धापूर्वक पुण्यवान् लोकोंको जीतकर उनमें गया था, उस राजा
 मरुत्तने प्रजा, मन्त्री, स्त्री, पुत्र तथा बन्धुओंके साथ तरुण अवस्थामें
 एक सहस्रवर्ष तक राज्य किया था, हे सज्जन ! वह महामतापी
 राजा धर्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इन चारोंमें तुझसे और तेरे
 पुत्रसे बड़ा चढ़ा था, तो भी परणको प्राप्त हुआ, अतः उससे

सहस्राब्दं मरुतो राज्यमन्वशात् । स चेन्मार सृजय चतुर्भद्रतर-
स्त्वया ॥ ४६ ॥ पुत्रात् पुत्र्यारस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्पयाः । अय-
ज्जानमदाक्षिण्यमभिरक्षेतेति व्याहरन् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

पोदशराजकीये पंचपंचाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

नारद उवाच । सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृजय शुश्रुम । एक-
वीरमशक्यन्तममरैरभिवीक्षितुम् ॥ १ ॥ यः प्राप्य राज्यं धर्मेण
ऋत्विक्ब्रह्मपुरोहितान् । अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्ट्वा तेषां मते
स्थितः ॥ २ ॥ प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः ।
एतत् सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद्भनागमम् ॥ ३ ॥ धर्मेणाराधयन्
देवान् वाणैः शत्रून् जयंस्तथा । सर्वाण्यपि च भूतानि स्वगुणै-
रप्यरंजयत् ॥ ४ ॥ यो भुक्त्वेमां वसुमतीं म्लेच्छाटविकवर्जिताम् ।

कम योग्यतावाले तथा यज्ञादि न करनेवाले और चतुरतारहित
पुत्रका हे सृजय ! तू शोक न कर, नारदजीने ऐसा उपदेश
दिया था ॥ ४७-५० ॥ पंचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥

नारदजीने कहा, कि-हे सृजय ! हमने सुना है, कि-सुहोत्र
नामक राजा भी मर गया, उस अद्वितीय वीर राजाकी ओरको
देवता भी आँख उठाकर नहीं देख सकते थे ॥ १ ॥ उस राजाने
धर्मसे राज्यको पाकर ऋत्विज, ब्राह्मण और पुरोहितोंसे ब्रूमा
था, कि-मेरा कल्याण किसप्रकार हो, इसपर उन्होंने उसको
कल्याणका मार्ग बताया, तब यह राजा वैसाही वर्त्ताव करने लगा
राजा सुहोत्र प्रजापालन, धर्म, दान, यज्ञ, शत्रुओंको जीतना इतनी
वस्तुएं कल्याणकारा हैं, यह जानकर धर्मसे धन प्राप्त करनेकी
इच्छा रखता था ॥ ३ ॥ धर्मसे देवताओंकी पूजा करता था
वाणोंसे शत्रुओंको जीतता था और सब प्राणियोंको अपने गुणों
से प्रसन्न रखता था ॥ ४ ॥ जिसने म्लेच्छोंका और लुटेरोंका

यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान् ॥ ५ ॥ हिरण्यास्तत्र
वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन् पुरा । ग्राहान् कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्च
विविधान् बहून् ॥ ६ ॥ कामान् वर्पति पर्जन्यो रूपाणि विवि-
धानि च । सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः ॥ ७ ॥
सहस्रं वामनान् कुञ्जान् नकान् मकरकच्छपान् । सौवर्णान् विहि-
तान् दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा ॥ ८ ॥ तत् सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः
कुरुजाङ्गले । ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ९ ॥ सोश्व-
मेधसहस्रेण राजसूयशतेन च । पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवर-
दक्षिणैः ॥ १० ॥ काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टाङ्गतिमवाप्तवान् । स

नाश करके शान्तिसे पृथ्वीका राज्य किया था और जिसकी
प्रसन्नताके लिये मेघोंने कितनेही वर्षोंतक उसके राज्यमें सुवर्ण
की वर्षा की थी ॥ ५ ॥ और जिसके देशमें सुवर्णकी नदियें
इच्छानुसार बहती थीं और मनुष्य इच्छानुसार उनको काममें
लाते थे तथा (जिसके राज्यमें) मेघराज सुवर्णके नाके, कछुए
और नानाप्रकारके मत्स्योंको तथा दूसरी भी नानाप्रकारकी श्रेष्ठ
वस्तुओंको वरसाकर उसकी कामनाको पूर्ण करता था, (उसके
राज्यमें) एक २ कोस लम्बी सोनेकी वावड़ियें थीं, उनमें कुम्हड़े
और बौने सहस्रों सुवर्णके मगर, मच्छ और कछुए घूमते थे, उनको
देखकर उस समय उस राजर्षिको आश्चर्य होता था ॥ ६-८ ॥

(जिस) राजर्षिने कुरुजाङ्गल देशमें अनेकों यज्ञ करके वह
अपार धन ब्राह्मणोंको दिया था ॥ ९ ॥ उस राजाने एक हजार
अश्वमेधयज्ञ और सौ राजसूययज्ञ तथा बहुतसी दक्षिणा वाले पवित्र
क्षत्रिययज्ञ और नित्य नैमित्तिक यज्ञ किये थे, वह धर्मात्मा राजा
भी मरकर परलोकमें गया था, व्यासजीने कहा, कि—हे युधिष्ठिर !
नारदजी राजा सृञ्जय ऐसा कहकर फिर, हे श्वित्यपुत्र ! इस
प्रकार सम्बोधन देकर बोले, कि—वह राजा सुहोत्र दानयुक्त धन,

चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥ पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्य
मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्ज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वेत्येति व्याहरन् १२
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

नारद उवाच । राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रूष । सहस्रं
यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ॥ १ ॥ तस्याश्वमेधे राजर्षे-
देशादेशात् समीयुषाम् । शिञ्जित्तरविधिज्ञानां नासीत् संख्या
विपरिचिताम् ॥ २ ॥ वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः ।
सभिन्नाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ॥ ३ ॥ नटनर्तकगन्धर्वैः
पूर्णैर्कैर्वर्धमानकैः । नित्योद्योगैश्च कीडद्भिस्तत्र स्म परिहर्षिताः ४

गर्वरहित ज्ञान, क्षमायुक्त, शूरता और संगरहित भोग इसप्रकार
चार बातोंमें तेरे पुत्रसे श्रेष्ठ और पुण्यवान् था, हे सृञ्जय !
ऐसे राजाको भी जब मृत्युने नहीं छोड़ा तब यज्ञ और दान
आदि न करनेवाला जो तेरा पुत्र मर गया है, उसके लिये तू
शोच मतकर ॥ १०-१२ ॥ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

नारदजीने कहा, कि-हे सृञ्जय ! सुनते हैं, वीरवर पौरव-
राज भी मर गया, उसने श्वेत वर्णके एक स्र सहस्र घोड़ोंका सहस्र
वार दान किया था ॥ १ ॥ उस राजर्षिके अश्वमेध यज्ञमें देश
देशान्तरोंसे वेदपाठी और ब्रह्मानुष्ठानमें चतुर इतने विद्वान् आते
थे, कि-उनकी गिनती होना असम्भव है ॥ २ ॥ व्रतस्नान विद्या-
स्नान और विद्याव्रतस्नान ऐसे तीन प्रकारके तथा उदारस्वभाव
और सुन्दर आकृतिवाले ब्राह्मणोंको अच्छे २ पक्वान्न, सुन्दर
बस्त्र और घर तथा अच्छे २ पलंग, आसन और भोजन देकर
(सन्तुष्ट किया गया था) इतहीं सुवर्णकी कलगीवाले पत्नीके आकार
के आरतीके पात्र हाथमें लेकर नट नर्तक और गन्धर्वरूप गायक
नाच गाकर आगन्तुक ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते थे ४ उस राजाने

यज्ञे यशो यथाकालं दक्षिणाः सोत्यकालयत् । द्वािा दशसहस्रास्याः
 प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥ ५ ॥ सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेम-
 मयास्तथा । यः सहस्रं सहस्राणि कन्याहेमभिभूषिताः ॥ ६ ॥
 धूर्युजाश्वगजारूढाः स्वगृह्णन्तेत्रगोशनाः । शतं शतसहस्राणि स्वर्ण-
 माली महात्मनां ॥ ७ ॥ गवां सहस्रानुचरान् दक्षिणामत्यकाल-
 यत् । हेमशृङ्ग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥ ८ ॥
 दासीदासखरोप्राश्च प्रादादाजाविकं बहु । रत्नानां विविधानां च
 विविधाश्चान्नपर्वतान् ॥ ९ ॥ तस्मिन् संवितते यशो दक्षिणामत्य-
 कालयत् । तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणत्रिदो जनाः ॥ १० ॥
 अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः । गुणोत्तरास्तु कृतव-
 स्तस्यासन् सार्वकामिकाः ॥ ११ ॥ स चेन्मार सृज्य चतुर्भद्र-

प्रत्येक यशमें समयोजिन दक्षिणा दी थी, सुवर्णकी समानकान्ति-
 वाले दश सहस्र हाथी दश सहस्र खिपे और ध्वजा, पताका दश
 सहस्र सुवर्णके रथ दानमें दिये थे तथा सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित
 एक लाख कन्याएँ हाथी, घोड़े और रथों पर बैठाकर दानमें दी
 थीं और उनको घर, खेत तथा सैकड़ों गौएँ भी दानमें दी थीं
 सुवर्णकी हमेलों पहिरेहुए और जिनके सींगोंपर सुवर्ण महरहा
 था तथा जिनके खुरों पर चाँदी चढ़रही थी, ऐसी लाखों सवत्सा
 गौएँ तथा कांसीके दुहनेके वर्त्तन भी दानमें दिये थे ॥ ५-८ ॥
 और उसने बहुतसे दासी दास, खच्चर, ऊँट वकरे तथा जातिरके,
 रत्न और अन्नके पहाड़ महायशमें दान दिये थे, पुराण जानने
 वाले मनुष्य अब भी उस राजाके विषयमें कहते हैं, कि—॥ ९-१० ॥
 यश करनेवाले राजा अङ्गके सब यश धर्मानुसार हुए थे और वे
 शुभसूचक, गुणशाली तथा सबकी सकल कामनाओंको पूर्ण करने
 वाले थे ॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा, कि—हे युधिष्ठिर ! नारद
 जीने राजा सृञ्जयसे इसप्रकार कहकर फिर कहा, कि—हे शिवत्व-

तरस्त्वया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्पद्यथा । अयञ्जान-
मदाक्षिण्यमभिरुचैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

षोडशराजकीये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

नारद उवाच । शिविमौशीनरञ्चापि मृतं सृज्जय शुश्रुम । य
इमां पृथिवीं सर्वाश्वपर्वत् पर्यवेष्टयत् ॥ १ ॥ साद्रिद्वीपार्णववनान् रथघो-
पेण नादयन् । स शिविर्वै रिपून्नित्यं मुख्यान्नघ्नन् सपत्नजित् ॥ २ ॥
तेन यशैर्वहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः । स राजा वीर्यवान् धीमा-
नवाप्य वसु पुष्कलम् ॥ ३ ॥ सर्वमूर्धाभिपिक्तानां सम्मतः सोऽ-
भवद्युधि । अयजच्चाश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४ ॥

पुत्र ! वह राजर्षि पौरव दानयुक्त धनसे, गर्वरहित ज्ञानसे, क्षमा-
युक्त शूरता और सङ्गरहितसे भोग इन चार बातोंमें तुझसे और तेरे
पुत्रसे श्रेष्ठ और पुण्यवान् था, हे सृज्जय ! वह राजा भी जब मर
गया तो यज्ञ आदिसे रहित अपने पुत्रके मरणका शोक न कर १२
सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ ॥ छ ॥

नारदजीने कहा कि-हे सृज्जय! जिसने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको चमड़े
की समान लपेट लिया था वह उशीनरका पुत्र राजा शिवि भी मर
गया ऐसा हमने सुना है, कि-॥ १ ॥ शत्रुनाशक राजा शिविने रथमें
बैठकर उसकी भूतकारसे पर्वत, द्वीप, समुद्र और वनसहित
पृथ्वीको प्रतिध्वनित कर मुख्य-२ शत्रुओंको मार डाला था और
जगत्में सपत्नजित् नाम पाया था ॥ २ ॥ उस वीर्यवान् और बुद्धि-
मान् राजाने बहुतसा धन पाकर भरपूर दक्षिणा वाले बहुतसे
यज्ञ किये थे ॥ ३ ॥ युद्धमें सब राजाओंका पराजय कर उनमें
मान्य होगया था, करोड़ों और सहस्रों हूहरोको दान
करने वाले उस शिविने पृथिवीको जीतकर निर्विघ्न रूपसे महा-
फलदायक अश्वमेध यज्ञ किये थे और उन यज्ञोंमें रायी, घोड़े,

निरगलैर्वहुफलैर्निष्कक्रोदिसहस्रदः । हस्तयश्चपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गो-
जाविभिस्तथा ॥ ५ ॥ विविधां पृथिवीं पुण्यां शिविर्ब्राह्मणसा-
त्करोत् । यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥ ६ ॥
यावत्यः सिकता गांग्यो यावत्पेरोर्महोपलाः । उदन्वति च याव-
न्ति रत्नानि गाणिनोपि च ॥ तावतीरददद् गा णं शिविराशानरो-
ध्वरे ॥ ७ ॥ नो यन्तारं धुरस्तस्य कञ्चिदन्यं प्रजापतिः । भूतं
भव्यं भवन्तं वा नाध्यगच्छन्नरोत्तमम् ॥ ८ ॥ तस्यासन् विविधा
यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः ॥ ९ ॥ हेमयूपासनगृहा ह्येवमाकारतो-
रणाः । शुचिस्वाद्गन्धपानञ्च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ॥ १० ॥
नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाहदाः । तस्यासन् यज्ञवाटेषु नयः
शुभ्रान्नपर्वताः ॥ ११ ॥ पिवत स्नात खादध्वमिति यद्रोचते

पशु, धान्य, मृग, बैल, भेड़ वकरे आदि सहित नानाप्रकारकी
पवित्र पृथ्वी ब्राह्मणोंको दानमें देदी थी, वर्षाकी जितनी बूँदें हैं,
आकाशमें जितने तारे हैं, गङ्गाकी रेतीके जितने कण हैं, मेरुपर्वत
की जितनी शिलाएं हैं और समुद्रमें जितने रत्न तथा (जलचर)
प्राणी हैं, उतनी गौएं उसीनरके पुत्र राजा शिविने यज्ञमें ब्राह्मणों
को दीं थीं ॥ ४-७ ॥ प्रजापतिने भी उसकी समान कार्यभारके
जुएको उठानेवाला कोई दूसरा महापुरुष भूत भविष्यत् वर्तमानमें
नहीं पाया अर्थात् उसकी समान कार्य करनेवाला न हुआ न
होगा और न है ॥ ८ ॥ उसके सब यज्ञोंमें याचकोंकी सब
इच्छाएँ पूर्ण की जाती थीं ॥ ९ ॥ उसके यज्ञोंमें यज्ञस्तम्भ, आसन,
मन्दिर किले तथा द्वारोंकी चौखटें सुवर्णकी थीं, खाने पीनेके
पदार्थ पवित्र और स्वादिष्ट थे, हजारों और लाखों ब्राह्मण सुन्दर
बातें करतेहुए भोजन पारहे थे उसके यज्ञके वाड़ेमें दूध दहीके बड़े-
कुण्ड भरेहुए थे और उनकी नदियें बहरही थीं तथा श्वेत अन्नोंके
पर्वतोंकी समान ढेरलगे हुए थे ॥ ११ ॥ इस राजाके यज्ञमें सबसे कहा

जनाः । यस्मै प्रादाद्वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२ ॥ अक्षयं
ददतो वित्तं श्रद्धां कीर्तिस्तथा क्रियाः । यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं
स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥ एतान्त्वद्वा वरानिष्टान् शिविः काले दिव-
ङ्गतः । स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्धद्रतरस्त्वया ॥ १४ ॥ पुत्रात्
पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्पयथाः । अयञ्जानमदाक्षिण्यमभिर्श्वै-
त्येति व्याहरन् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

पोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

नारद उवाच । रामं दाशरथिञ्चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम । यं
प्रजा अन्वभोदन्तं पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ १ ॥ असंख्येया गुणा
यस्मिन्नासन्नमिततेजसि । यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात् पितुरच्युतः २

जाता था, कि-हे मनुष्यों ! स्नान करो तथा जो मनमें आवे सो
खाओ पीओ, उस दानी राजाके पुण्यकर्मसे प्रसन्न होकर शिव-
जीने उसको वरदान दिया था कि-तू इच्छानुसार दान देगा तो
भी तेरा धन कम नहीं होगा, तेरी श्रद्धा कीर्ति और सत्क्रिया
अक्षय रहेगी, तेरे कहनेके अनुसार प्राणी तेरे ऊपर प्रीति करेंगे
और तुझै उत्तम स्वर्ग मिलेगा ॥ १२-१३ ॥ इन इच्छित वरोंको
पाकर राजा शिवि समय आतेही परलोकको चला गया, हे सृञ्जय !
जब ऐसा राजा भी मर गया जो कि-तेरे पुत्रसे चार बातोंमें
अधिक था, तो तू दान और यज्ञसे शून्य अपने पुत्रका शोक न
कर ॥ १४ ॥ अष्टावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥

नारदजीने कहा; कि-हे सृञ्जय ! हमने सुना है, कि-जो प्रजाको
पुत्रकी समान प्रसन्न रखते थे वे दशरथपुत्र राम भी परलोकको
पधार गये ॥ १ ॥ उन अमितपराक्रमी रामचन्द्रमें असंख्यों गुण थे वट
वृक्षचित्त राम पिताकी आज्ञासे स्त्री और लक्ष्मणके साथ १४ वर्ष
तक वनमें रहे थे और उन पुरुषश्रेष्ठने तपस्वियोंकी रक्षाके लिये

वने वनितया सार्धमवसलक्ष्मणाग्रजः । जघान च जनस्थाने राज्ञ-
सान् प्रनुजर्षभः ॥ ३ ॥ तपस्विनां रत्नार्थं सहस्राणि चतुर्दश ।
तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राज्ञसः ॥ ४ ॥ जहार भार्या
वैदेहीं सम्पोर्ह्वांनं सदानुजम् । तमागस्कारिणं रामं पौलस्त्यमजितं
परैः ॥ ५ ॥ जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोन्धकम् । सुरा-
सुरैरवध्यन्तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ६ ॥ जघान स महाबाहुः
पौलस्त्यं सगणं रणे । स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥ ७ ॥
व्याप्य कृत्स्नं जगत् कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः । स प्राप्य विविधं
राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥ आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण
पालयन् । निरर्गलं सजारूढ्यमश्वमेधञ्च तं विभुः ॥ ९ ॥
आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमादरत् । अन्यैश्च विविधैर्वैद्विरीजे

जनस्थानमें रहकर चौदह सहस्र राजसोंको मारा था, तहाँ रहते
समय ही भाई सहित इनको धोखा देकर रावण नामक राज्ञस
इनकी स्त्री सीताको हरकर लेगया, तब रामको क्रोध आगया
और पहले जैसे देव, दानवोंसे अवध्य एवं देवता तथा ब्राह्मणों
को कठिनी समान दुःख देनेवाले अन्धकासुरको शिवने मारा था
तैसेही सुर असुरोंसे अवध्य, ब्राह्मण और देवताओंके फंटकरूप
शत्रुओंके अजेय अपराधी रावणको रागने मार डाला ॥ २-६ ॥
प्रजाके ऊपर अनुग्रह कर महाबाहु रामनेमहाबली रावणको मार
डाला, तब देवताओंने उनकी पूजा की थी ॥ ७ ॥ उनकी कीर्ति
सब जगत्में फैलगयी थी, देवता और ऋषि उनकी सेवा करते थे,
और वह बड़ाभागी राज्य पाकर सब प्राणियोंके ऊपर दया करते
थे ॥ ८ ॥ धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करनेवाले उन रामने तले ऊपर
जारूढ्य(दक्षिणायनके दिनोंमें जिसमें तीन बार सूर्यकी पूजा की
जाती है उस कर्क) के साथ अश्वमेध नामका महायज्ञ
किया था, तथा हविसे इन्द्रके मनको प्रसन्न किया था,

बहुगुणैर्नृपः ॥ १० ॥ क्षुत्पिपासेऽज्यद्रावः सर्वरोगांश्च देहि-
नाम् । सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥ अति-
सर्वाणि भूतानि रापो दाशरथिर्वभौ । ऋषीणां देवतानां च मानु-
षाणां च सर्वशः । पृथिव्यां सह वासोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति १२
नाहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा । प्राणोपानः समा-
नश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥ १३ ॥ पर्यद्दीप्यन्त तेजांसि तदा-
नर्थाश्च जाभवन् ॥ १४ ॥ दीर्घायुपः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते
तदा । वैदेशचतुर्भिः सुपीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥ १५ ॥ हव्यं
कव्यञ्च विविधं निष्पूर्तं हुतमेव च । अदंशमशका देशा नष्टव्याल-
सरीसृपाः ॥ १६ ॥ नाप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाकाले ज्वलनो-

तदनन्तर और भी बहुतसे गुणोंवाले यज्ञोंसे परमात्माका पूजन
किया था ॥ ६ ॥ १० ॥ रामने भूख प्यासको जीतलिया था
तथा मनुष्योंके सब रोगोंको नष्ट किया था, वे स्वयं सदा गुण-
वान् थे और अपने तेजसे प्रदीप्त रहते थे ॥ ११ ॥ वह दशरथ-
पुत्र राम सब प्राणियोंसे अधिक तेजस्वी थे, रामके शासनकाल
में देवता, ऋषि और मनुष्य पृथ्वी पर एक साथ रहते थे १२।
उनके राज्यकालमें प्राणियोंके प्राण, अपान, समान आदि प्राण
रोगादिसे विकार पाकर क्षीण नहीं होते थे, तेजस्वी पदार्थ भी
तेजसे दिपते थे और अनर्थ नहीं होते थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस
समय सब प्रजा लम्बी आयु भोगती थी, जवान नहीं मरते थे,
स्वर्गवासी देवता और पितर वेदोंकी विधियोंसे प्रसन्न होकर
हव्य कव्यको ग्रहण करते थे तथा तालाव बाग आदि वनवाना
पुण्यकर्म और होमको ग्रहण करके उसका फल देते थे उनके
राज्यमेंसे डाँस, मच्छर और जहरीले सर्प भी नष्ट होगये थे १५
उनके समयमें जलमें डूबनेसे प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती थी,
अग्नि भी असमयमें नहीं जलाता था तथा उनके समयमें अधर्म

ददत् । अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाभवन्स्तदा ॥ १७ ॥
 शिष्टेष्टप्राज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाभवन् । स्वर्धा पूजाञ्च रत्नोभि-
 र्जनस्थाने प्रणाशिताम् ॥ १८ ॥ प्रादान्निहत्य रत्नांसि पितृ-
 देवेभ्य ईश्वरः । सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥ १९ ॥ न च
 ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन् । श्यामो युवा लोहिताक्षो
 मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २० ॥ आजानुवाहुः सुशुभः सिंहस्कन्धो
 महाबलः । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१ ॥ सर्वभूत-
 मनःकान्तो रामो राज्यमकारयत् । रामो रामो राम इति प्रजानाम-
 भवत् कथा ॥ २२ ॥ रामाद्रामं जगदभूद्रामे राज्यं प्रशासति ।
 चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥ २३ ॥ आत्मानं

में प्रीति रखनेवाले, लोभी अथवा मूर्ख भी नहीं रहे थे ॥ १७ ॥
 उनके राज्यकालमें सब वर्ण शिष्ट और बुद्धिमान थे, और यज्ञ-
 कर्म करते थे, जनस्थानमें जो रत्नसोंने स्वाहा स्वधारूपी देवता
 और पितरोंकी पूजाको नष्ट कर दिया था उन रत्नसोंका नाश
 करके रामने देवता तथा पितरोंको हव्य और कव्य दिलावाया
 था, उस समय एक २ पुरुषके सहस्र २ पुत्र होते थे और वे
 सहस्र वर्षकी अवस्था तक जीते थे, उस समय बड़े भाइयोंको
 छोटेके श्राद्ध नहीं करने पड़ते थे, (क्योंकि-बड़ोंसे पहले छोटे नहीं
 मरते थे) श्यामवर्ण, रक्तनयन, तरुण, गदोन्मत्त हाथीकी समान
 पराक्रमी, घुटनों तक लम्बी और सुन्दर भुजाओंवाले और सिंह
 की समान कन्धे वाले तथा सब प्राणियोंके चित्तोंको प्रिय लगने
 वाले रामने ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य किया था, प्रजामें भी
 राम ही रामकी ही बातें होती थीं ॥ १८-२२ ॥ रामके राज्य-
 कालमें सब जगत् सौन्दर्यमय होगया था, अन्तमें राम अपने
 और तीनों भाइयोंके अंशरूप दो दो पुत्रोंके द्वारा आठ प्रकारके
 राजवंशको जगत्में स्थापित करके चारों वर्णोंकी प्रजाको सदेह

सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहापृथा । स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रर-
स्त्वया ॥ २४ ॥ पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्पथाः । अय
ज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

पोडशराजकीये एकोनपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

नारद उवाच । भगीरथञ्च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रम । येन
भागीरथी गङ्गा चयनैः कांचनैश्चिता । १ ॥ यः सहस्रं सहस्राणां
कन्या हेमविभूषिताः । राजश्च राजपुत्राश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
सर्वा रथगता कन्या रथाः सर्वे चतुर्ध्वजः ॥ २ ॥ रथे रथे शतं नागाः
सर्वे वै हेममालिनः ॥ ३ ॥ सहस्रपश्वाश्चैकैकं राजानं पृष्ठतोऽ-
न्वयुः । अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम् ॥ ४ ॥
तेनाक्रान्ता जलौघेन दक्षिणा भृगुसीर्ददत् । उपहरेति व्यथिता

साथ ले स्वर्गको चलेगये, इतना कहकर नारदजीने कहा, कि-
सृञ्जय ! चारों बातोंमें तेरे पुत्रसे श्रेष्ठ और अधिक पुण्यात्मा
वह राम ही जब न रहे, तो तू यज्ञ न करनेवाले तथा दक्षिणा
न देनेवाले अपने पुत्रका शोक न कर ॥ २३-२५ ॥ उनसठवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ छ ॥ छ ॥

नारदजी बोले, कि-हे सृञ्जय ! राजा भगीरथ भी मरगए,
हमने सुना है, कि-उन्होंने गङ्गाके दोनों किनारे सुवर्णकी ईंटोंसे
चिनवा दिये थे ॥ १ ॥ उसने राजा तथा राजपुत्रोंको कुछ न
गिनकर सुवर्णसे भूषित एक लाख कन्याएँ ब्राह्मणोंको दान
दी थीं, वे सब कन्याएँ रथोंमें बैठी हुई थीं, उनमें चार २ घोड़े
जुत रहे थे और हरएक रथके पीछे सुवर्णकी मालाएँ पहिरे सौ
सौ हाथी चलते थे और प्रत्येक हाथीके पीछे सहस्र २ घोड़े
चलते थे और हरएक घोड़ेके पीछे सौ सौ गौएँ चलती थीं और
और हरएक गौके पीछे बहुतसी भेड़ बकरियाँ चलती थीं २-४

तस्याङ्गे निपासाद् ह ॥५॥ तथा भार्गीथी गङ्गा उर्वशी चाथर्व
पुरा । दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत्तदा ॥६॥ तान्तु गाथां
जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः । पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां
वज्रगुवादिनः ॥ ७ ॥ भगीरथं यजमानमैच्छाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥८॥ तस्य सैन्द्रैः सुरगणै-
र्देवैर्यज्ञः स्वर्लंकृतः । सम्यक्परिशृङ्गीतरच शान्तविघ्नो निगमयः ६
यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्रात्मनः प्रियम् । भगीरथस्तदा प्रीत-
स्तत्र तत्राददद्गङ्गा ॥ १० ॥ नादेयं ब्राह्मणस्यासीद्यस्य यत् स्यात्

इसप्रकार राजा भगीरथने गङ्गाजीके तटपर खड़े होकर यज्ञके
समय बहुत सी दक्षिणाएँ दी थीं उस समय इनने मनुष्य इकट्ठे
हुए थे, कि-उनकी भीड़से पीड़ा पाकर “गङ्गा मेरी रक्षा करो,
मेरी रक्षा करो” इसप्रकार कहती २ भगीरथकी गोदीमें आपदी
थी अर्थात् मनुष्योंकी भीड़से गङ्गाका किनारा नीचा होकर गङ्गा
भगीरथकी गोदी तक आगई थी, गङ्गा राजाके उस प्रदेशमें बैठी
थी इस कारण तहाँ उर्वशीरूप होगई अर्थात् तहाँ उर्वशी नीर्थ
होगया, गङ्गाने इस राजाकी गोदमें बैठकर इसके पूर्वजोंका
उद्धार किया था, इससे यह उसके पुत्र और पुत्रीपनको प्राप्त हुई ६
इसकारण सूर्यकी समान तेजस्वी प्रियभाषी गन्धर्वोंने प्रसन्न होकर
देवता, पितर और मनुष्योंके मुनतेहुए नीचेलिखी गाथाको गाया
था॥७॥समुद्रगामिनी गंगादेवीने बहुतसी दक्षिणा देनेवाले यजमान
इच्छाकुके पुत्र भगीरथको पिता कहकर पुकारा था ॥८॥ उसका
यज्ञ इन्द्रादि देवताओंसे शोभायमान हुआ था और उन्होंने उस
यज्ञको भली भाँति स्वीकार किया था उसके यज्ञमें विघ्न शान्त
होगये थे, अतः वह निर्विघ्न समाप्त हुआ था ॥ ९ ॥ जिस २
ब्राह्मणने अपनी इच्छानुसार जो २ वस्तु माँगी वह २ वस्तु योगी
भगीरथने बड़ी-प्रसन्नतासे उसको दी ॥ १० ॥ जो वस्तु जिस

प्रियं धनम् । सोपि विप्रमसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥ ११ ॥
 येन यातो मखमुखो दिशाशाविहपादपाः । तेनावस्थातुमिच्छन्ति
 तं गत्वा राजमीश्वरम् ॥ १२ ॥ स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतर-
 स्त्वया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्पयाः ॥ १३ ॥ अय-
 ज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वेत्येति व्याहरन् ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
 षोडशराजकीये पट्टिमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

नारद उवाच । दिलीपं वै चैलविलं मृतं सृज्य शुश्रुम । यस्य
 यज्ञशतेष्वासन् प्रयुतायुतशो द्विजाः ॥ १ ॥ तन्त्रज्ञानार्थसम्पन्ना
 यज्वानः पुत्रपौत्रिणः । य इमां वसुसम्पूर्णां वसुधां वसुधाधिपः ।
 ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥ दिलीपस्य तु

ब्राह्मणको प्यारी थी वह उसके लिये अर्पण नहीं थी, वह राजा
 भी ब्राह्मणोंकी कृपासे ब्रह्मलोकको गया था ॥ ११ ॥ सूर्य और
 चन्द्रमा किरणोंके द्वारा सब दिशाओंमें फैलकर जिस मार्गसे
 आनाजाना किया करते हैं, उस मार्गमें यदि भूतलके दूसरे राजा-
 ओंको जानेआनेकी इच्छा हो तो उनको सब विद्याओंको जानने
 वाले तेजस्वी राजा भगीरथका अनुकरण करना चाहिये ॥ १२ ॥
 हे सृज्य ! जब वह राजा भी मरगया जो कि—तेरे पुत्रसे पूर्वोक्त
 चारों बातोंमें और पुण्यमें भी अधिक था तो हे शिवत्यपुत्र ! तू
 जिसने न दक्षिणा दी थी और न यज्ञ किये थे, ऐसे पुत्रका
 शोक न कर ॥ १३ ॥ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥

नारदजीने कहा, कि—हे सृज्य ! जिस राजाके सैंकड़ों
 यज्ञोंमें लाखों करोड़ों ब्राह्मण आते थे उस इलविलके पुत्र राजाके
 विषयमें हमने सुना है कि—वह भी मरगया ॥ १ ॥ उसके यज्ञों
 में आनेवाले ब्राह्मण तन्त्रज्ञानमें कुशल, यज्ञ करानेवाले तथा
 वेटे पोतेवाले थे, विस्तारवाले यज्ञ करते समय दिलीपने यह धन-

यज्ञेषु कृतः पन्था हिरण्यमयः । तं धर्म इव कुर्वाणाः सेन्द्रा देवाः
समागमन् ॥ ३ ॥ सहस्रं यत्र मान्त्रा गच्छन्ति पर्वतोपमाः ।
सौवर्णं चाभस्तसर्वं सदः परमपास्वरम् ॥ ४ ॥ रसानां चाभय-
न्कुल्या भक्ष्याणां चापि पर्वताः । सहस्रज्यामा नृपते नृपाश्चासन्दि-
रण्यमयाः ॥ ५ ॥ चपालं प्रचपालं च यस्य नृपे हिरण्यमे । नृगन्ते-
प्सरसस्तस्य पट्सहस्राणि सप्तथा ॥ ६ ॥ यत्र वीणां वादयति
प्रीत्या विश्वावसुः स्वयम् । सर्वभूतान्यमन्यन्त राजानं सत्यशालि-
नम् ॥ ७ ॥ रागखाण्डवभोज्यैश्च मत्ताः पथिषु शरते । तदेतदद्भुतं
मन्ये अन्यैर्न सहस्रं नृपैः ॥ ८ ॥ यदण्डं युध्यमानस्य चक्रे न
परिपेततु । राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥

पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणोंको दे दी थी ॥ २ ॥ राजा दिलीपके यज्ञमें सोनेकी सहस्र वनाई गई थी और इन्द्रादिक देवता उसको धर्म की समान मानकर उसके यहाँ आए थे ॥ ३ ॥ उसके यज्ञमें पर्वत-कार सहस्र हाथी घूम रहे थे और उसका सभास्थल शुद्ध सोने का वनाहुआ था तथा दमक रहा था ॥ ४ ॥ उसके यज्ञमें रसों की नदियाँ और अन्नके पहाड़ थे तथा सहस्र कालिया मोटे सोनेके यज्ञस्तम्भ बने थे ॥ ५ ॥ और यज्ञस्तम्भके चपाल तथा प्रचपाल सुवर्णके बने थे और उसकी यज्ञसभाके स्थानमें छः सहस्र अप्सराएँ सात प्रकारसे नृत्य करती थीं ॥ ६ ॥ और उसके यहाँ विश्वावसु प्रसन्न होकर अपने आप वीणाको बजाना था और उस राजाको सब मनुष्य सत्यवादी मानते थे ॥ ७ ॥ उसके यज्ञमें रागखाण्डव (लहडू पापड़ खड़ी आदि) भोजन पानेसे मत्तहुए मनुष्य सहस्रों पर शयन करते थे, एक बात और आश्चर्यजनक थी कि—जो दूसरे राजाओंमें हो ही नहीं सकती ८ कि—जलमें शुद्ध करने पर उसके रथके पहिये जलमें नहीं डूबते थे, सत्यवादी, दृढधन्वा, बहुतसी दक्षिणा देनेवाले राजा दिलीपको

येपश्यन् भूरिदाक्षिण्यंतेपि स्वर्गजितो नराः । पञ्च शब्दा न जीर्यन्ति
खट्वांगस्य निवेशने ॥ १० ॥ स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताशनीत
खादत । स चेन्ममार सृजय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥ पुत्रात्पुण्य-
तरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्चैत्येति
व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडश-
राजकीये एकपट्टिनमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

नारद उवाच । मान्धाता चैर्घोवनाश्वो मृतः सृजय शुश्रूष ।
देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी तृपः ॥ १ ॥ यं देवावश्विनौ
गर्भात् पितुः पूर्वञ्चकपेतुः । मृगर्यां विचरन् राजा तृपितः क्लान्त-
बाहनः २ धूमं दृष्ट्वागमत् सत्रं पृषदाज्यमवाप सः । तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य
जो मनुष्य देख भी लेते थे, वे भी स्वर्गमें चलेजाते थे खट्वांग
(दिलीप) के घरमें पाँच शब्द जीर्ण (कम) नहीं होते थे, वे
शब्द ये हैं—स्वाध्याय, प्रत्यंवाका घोष, खाओ, पिओ और भोक्ष्य
को खाओ रस पिओ, हे सृजय ! चारों बातोंमें तेरे पुत्रसे अधिक
तथा अधिक पुण्यात्मा वह राजा ही जेव मरगया तो हे श्वित्य-
पुत्र ! तू अपने यज्ञ और दक्षिणा देनेसे शून्य पुत्रके शोकसे
सन्नप्त न हो ॥ ६-१२ ॥ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥

नारदजीने कहा, कि—राजा मान्धाता मरगया, उसके विषय
में सुना है, कि उस विजयी राजाने देवता, मनुष्य और दैत्य तथा
तीन लोकोंको जीतलिया था ॥ १ ॥ अश्विनीकुमार नामक देव-
ताओंने उस राजाको पिताके गर्भमेंसे खींचा था (इसकी कथा
इसप्रकार है, कि—) राजा युवनाश्व शिकार खेलने गया, तहाँ
उसका घोड़ा थकगया और उसको पिलास लगी ॥ २ ॥ इनमें
ही उसको यज्ञका धुआँ दाँखा, वह धुआँ देखकर यज्ञस्थानमें
गया और उसने तहाँ इकट्ठे कियेहुए घोड़ेको पीलिया, इससे

जठरे मृदुतां गतम् ३ गर्भाद्धि जहत्तु देवा अश्विनीं भिषजान्भरौ । तं
 दृष्ट्वा पितृस्तुतङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥१॥ अन्योन्यमब्रुवन् देवा
 कमयं धास्यतीति वै । मापेवायं धयत्वग्रे इति ह स्माह वासवः ॥१॥
 ततो गुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरालीव पथोमृतम् । मां धास्यतीति कान-
 रयाद्यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत् ॥६॥ तस्मात्तु मान्यानात्येवं नाम तस्या-
 द्रुतं कृतम् । ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥
 तस्यास्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चान्नवत् । अपिबन् पाणि-
 मिन्द्रस्य स चाप्यन्नाभ्यवर्धत ॥ ८ ॥ सोषवद् द्वादशसप्तो द्वादशा-
 हेन वीर्यवान् । इमाञ्च पृथिवीं कृत्स्नामेकान्दा स व्यजीजयन् ॥९॥
 धर्मात्मा धृतिमान् वीरः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः । जनमेजयं सुध-

उसके पेटमें गर्भ रह गया, जब अश्विनीकुमारोंने यह देखा, कि-
 राजा युवनाश्वकं गर्भ है, तब वैद्यश्रेष्ठ देवता अश्विनीकुमारोंने
 पेट चीरकर उसमेंसे पुत्रको निकाला, इस देवताओंकी समान
 कान्तिवाले पुत्रको पिताकी गोदमें लेतेदृष्ट देखकर देवता आपसमें
 कहनेलगे, कि-यह कुमार किसका स्तन पियेगा, उस समय इन्द्रने
 कहा, कि-यह मेरा दूध पियेगा, ऐसा कह उस कुमारके मुखमें अंगुली
 देदी, तब इन्द्रकी अंगुलीसे दुग्ध और वीकी धारा निकलनेलगी,
 इन्द्रने दया करके 'मां धास्यति' मुझको (से) पियेगा; यह कह
 कर उस बालक पर दया की थी, इसकारण उसका मान्याना
 ऐसा अद्भुत नाम पड़ा था, तदनन्तर इन्द्रकी भुजा युवनाश्वकं पुत्र
 के मुखमें थी और दूधकी धाराको टपकानेलगी, वह बालक इन्द्र
 की भुजाको चोड़नेसे एक दिनमेंही बड़ गया ॥ २-८ ॥ तथा
 दूध पीनेर वह बारह दिनमें बारहवर्षकासा होगया, उस वीर्यवान्
 मान्यानाने एक दिनमें ही सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतलिया था ॥९॥
 धर्मात्मा धैर्यधारी, वीर, सत्यप्रतिज्ञ मनुष्य जातिके मान्यानाने
 जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरु, बृहद्रथ, असित और राजा नृगको

नानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ॥ १० ॥ अयिनञ्च नृगञ्चैव माधाना
मनुजोऽजयत् । उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ॥ ११ ॥
तत् सर्वं यौवनारवस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते । सोऽश्वमेधशतैरिष्टा
राजसूयशतेन च ॥ १२ ॥ अददद्गोहितान्मत्स्यान् ब्राह्मणेभ्यो
विशाम्पते । हैरण्यान् योजनोत्सेधानायतान् शतयोजनम् ॥ १३ ॥
बहुप्रकारान् सुस्वादून् भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान् । अतिरिक्तं
ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ॥ १४ ॥ भक्ष्यान्नपाननिचयाः
शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः । घृतहृदाः सूपपङ्क्ता दधिकेना गुडोदकाः १५
रुधुः पर्वतान् नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः । देवामृता नरा यज्ञा
गन्धर्वोरगपक्षिणः ॥ १६ ॥ विभास्तत्रागताश्चासन् वेदवेदांग-
पारगाः । ब्राह्मणा ऋषयश्चापि नासन्तत्राविपश्चितः ॥ १७ ॥

जीता था, जहाँसे सूर्य उदय होता है तहाँसे लेकर अस्त होनेतक
के स्थान तक राजा मान्धाता का राज्य था, हे राजन् ! मान्धाताने
सौ अश्वमेध यज्ञ करके पञ्चराग की और सुवर्ण की खानवाला, अन्य
देशोंसे ऊँची भूमिवाला चारसौ कोस लम्बा मत्स्य देश ब्राह्मणों
को दक्षिणामें दिया था ॥ १०-१३ ॥ और जातिर के स्वादिष्ट
भक्ष्य तथा भोज्य अन्नोंके पर्वत भी ब्राह्मणोंको दिये थे, यह
अन्न इतना अधिक था, कि—आदमी खातेर थकजाते थे परन्तु
अन्न कम नहीं होता था खान पानसे भरे अन्नके पर्वत (उसके
यज्ञमें) शोभा पारहे थे, घीके सरोवर, दालभातकी कीच, दही
रूप भाग और गुडरूप जलवाली तथा शहद और दूधको बहाने
वाली नदियोंने (उन) पर्वतोंको चारों ओरसे घेर रक्खा था,
उसके यज्ञमें देवता, असुर, मनुष्य, यज्ञ, गन्धर्व, सर्प और पक्षी
तथा वेदवेदाङ्गके पारगामी ब्राह्मण भी आये थे, ऋषि तथा श्रेष्ठ
श्रेष्ठ ब्राह्मणभी आये थे, उसकी सभामें मूर्खका चिन्ह भी नहीं
था ॥ १४-१७ ॥ वह धनादिसे पूर्ण समुद्रतककी भूमि ब्राह्मणों

समुद्रान्तां वसुपतीं वसुपूर्णीन्तु सर्वतः । स तं ब्राह्मणसात् कृत्वा
जगामास्तं तदा नृपः ॥ १८ ॥ गतः पुण्यकृतान्लोकान् व्याप्य
स्वयशसा दिशः । स चेन्ममार सृजय चतुर्भद्रनरस्त्वया ॥ १९ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्पथाः । अयज्वानमदाक्षिण्य-
मभिरवैत्येति व्याहरन् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडश-

राजकीये द्विपण्डितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

नारद उवाच । ययातिं नाहुषश्चैव मृतं सृजय शुश्रुम । राज-
सूयशतैरिष्टा सोश्वमेयशतेन च ॥ १ ॥ पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेय-
शतैस्तथा । अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः । अग्निष्टोमैश्च
चिविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः २ अत्राह्मणानां यद्विदं पृथिव्या-
मस्ति किञ्चन । तत् सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ३
सरस्वती पुण्यतमा नदीनां तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च ।

को अर्पण करके मरगया ॥ १८ ॥ वह अपने यशसे दिशाओं को
भरकर पुण्यात्माओंके लोकोंमें गया, हे सृजय ! जब तेरे पुत्रसे
(पूर्वोक्त) चारों वातोंमें अधिक और पुण्यात्मा राजा भी मर
गया तो हे शिवत्यपुत्र ! तू जिसने न दक्षिणा दी थी, न यज्ञ
किये थे ऐसे पुत्रके शोकको त्यागदे ॥ १९-२० ॥ वासठवाँ अध्याय
समाप्त ॥ ६२ ॥ छ ॥ छ ॥

नारदजीने कहा, कि-हमने सुना है, कि-नहुषका पुत्र राजा
ययाति भी मरगया था, उसने सौ राजसूय, सौ अश्वमेध, सहस्र
पुण्डरीक, सैंकड़ों वाजपेय, सहस्र अतिरात्रयज्ञ, चातुर्मास्य यज्ञ
तथा अग्निष्टोम आदि नानाप्रकारके बहुतसे दक्षिणावाले यज्ञोंके।
सत्यभावसे किया था और उन यज्ञोंमें ब्राह्मणोंके द्वेषी म्लेच्छ
आदिके पास जो धन था वह सब उनसे छीनकर ब्राह्मणोंको दे दिया
था ॥ १-२ ॥ नदियोंमें महापवित्र प्ररस्वतीने, समुद्रोंने तथा पर्वतों

ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे घृतं पयो दुदुहूर्नाहुषाय ॥ ४ ॥ व्यूढं
 देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम् । चतुर्था व्यभजत् सर्वा चतुर्भ्यः
 पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥ यज्ञैर्नानाविधैरिष्टा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम् ।
 देवयान्याञ्चौशनस्यां शर्मिष्ठायाञ्च धर्मतः ॥ ६ ॥ देवारण्येषु सर्वेषु
 विजहारामरोपमः । आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ७
 यदा नाभ्यगमच्छान्तिं कामानां सर्ववेदवित् । ततो गाथामिमां
 गीत्वा सदारः प्राविशद्वनम् ॥ ८ ॥ यत् पृथिव्यां त्रीहियवं हिर-
 ण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शर्मं व्रजेत् ९
 एवं कामान् परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च । पूरं राज्ये प्रतिष्ठाप्य
 प्रयातो वनमीश्वरः ॥ १० ॥ स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्तव्या।

सहित दूसरी नदियोंने भी राजा ययातिको घी दध दिया था ॥ ४ ॥
 देवताओंकी समान राजा ययातिने देवासुरसंग्रामके समय दे-
 ताओंकी सहायता करके पृथ्वीको जीता था, फिर नानाप्रकारके
 यज्ञोंसे परमात्माका पूजन कर उस पृथ्वीके चार विभाग करके
 ऋत्विज, अध्वर्यु, होता और उद्गाता इन चारोंको बाँट दिया
 था और उसने शुकाचार्यकी पुत्री देवयानि तथा शर्मिष्ठामें श्रेष्ठ
 सन्तान उत्पन्न करके सब देववनोंमें इन्द्रकी समान इच्छानुसार
 विहार किया था ॥ ५-७ ॥ इतना होने पर भी जब उसे शांति
 नहीं मिली तब वह निम्नलिखित गाथाको गाताहुआ स्त्रीसहित
 जंगलमें चला गया ॥ ८ ॥ पृथ्वीमें जितने धान, जौ, मृग, पशु
 और स्त्रियें हैं उनसे एक मनुष्यको भी सन्तोष नहीं होता अर्थात्
 हर एक मनुष्य जितना मिलता है उससे अधिक ही चाहता है, ९
 राजा ययाति इसप्रकार कामनाओंको त्यागकर और धैर्यके साथ
 अपने पुत्र पुरुको राजसिंहासन पर बैठा कर वनको चला गया
 था ॥ १० ॥ हे सृञ्जय ! तेरे पत्रसे चारों बातोंमें अधिक श्रेष्ठ
 और पुण्यवान् वह राजा ययाति भी जब मर गया, तो हे दिव्य-

पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मां पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्य-
मभिश्वेत्येति व्याहरन् ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

पोद्दशराजक्रीये त्रिपष्टितमोध्यायः ॥ ६३ ॥

नारद उवाच । नाभागमम्बरीपञ्च मृतं सृञ्जय शुश्रुम । यः
सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकरत्वयोधयत् १ जिगीषमाणाः संग्रामे
सम्पन्ताद्वैरिणोऽभ्ययुः । अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाशिवा
गिरः ॥ २ ॥ बललाघवशिक्षाभिरतेषां सोऽस्त्रवलेन च । छत्रायुध-
ध्वजरथांश्छित्त्वा प्रासान्गतव्यथः ॥ ३ ॥ त एनं मुक्तसन्नाहाः
प्रार्थयन् जीवितैषिणः । शरण्यमीयुः शरणं तवास्म इति धादिनः ४
स तु तान् वशगान् कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम् । ईजे यज्ञशतै-
रिष्टैर्यथाशास्त्रं तथानघ ॥ ५ ॥ वंभुजुः सर्वसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः

पुत्र ! तू जो न यज्ञ करपाया था और न दक्षिणा देसका था
ऐसे पुत्रके शोकसे सन्तप्त न हो ॥ १ ॥ तिरैसठवाँ अध्याय समाप्त
नारदजीने कहा, कि-हमने सुना है, कि-हे सृञ्जय ! नाभा-
गका पुत्र राजा अम्बरीष भी मरगया, जो अकेला ही एकलाख
योधाओंसे लड़ा था ॥ १ ॥ संग्राममें राजा अम्बरीषको जीतने
की इच्छासे अस्त्रविद्यामें चतुर नौरियोंने गालियें देकर उसको
चारों ओरसे घेरलिया तब उसने बल, फुर्ती और अस्त्रविद्याकी
कुशलता तथा शस्त्रबलसे शत्रुओंके छत्र, आयुध, ध्वजा और
रथोंके टुकड़े कर डाले और स्वयं बिना पीड़ा पाये ही रणमें
खड़ा रहा ॥ ३ ॥ उस समय सब वैरी कवच उतारकर जीवनकी
आशासे शरणागतरक्तक अम्बरीषकी शरणमें आकर उससे
कहनेलगे, कि-हम तुम्हारी शरण हैं ॥ ४ ॥ राजा अम्बरीषने
उनको वशमें करके इस पृथिवीको जीतलिया, हे अनघ ! उसने
शास्त्रानुसार सौ यज्ञ करके ईश्वरकी पूजा की ॥ ५ ॥ उन यज्ञोंमें

सदा । तस्मिन् यज्ञे तु त्रिमेन्द्राः संवृत्ताः परमार्चिताः ॥६॥ मो-
दकान् पूरिकापूपान्स्वादुपूर्णार्च शङ्कुनीः । करम्भान् पृथुम-
द्रीका अन्नानि सुकृतानि च ॥ ७ ॥ मूपान् मैरेयकापूपान् राग-
खाण्डवपानकान् । मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ८
घृतं मधुपयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च । फलं मूलञ्च सुस्वादु
द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ॥९॥ मादनीयानि पापानि विदित्वा चात्मनः
सुखम् । अपिवन्त यथाकामं पानपा गीतवादितैः ॥ १० ॥ तत्र
स्म गाथा गायन्ति क्षीवा हृष्टाः पठन्ति च । नाभागस्तुतिसंयुक्ता
नवृतश्च सहस्रशः ॥ ११ ॥ तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्य-
कालयत् । राज्ञां शतसहस्राणि दशमयुतार्जिनाम् ॥ १२ ॥

वड़े २ ब्राह्मण तथा दूसरे पुरुष भी सब रसोंसे भरे भोजन करके
वड़े प्रसन्न हुए थे, तथा राजाने बड़ा सत्कार किया था ॥ ६ ॥
उसके यज्ञमें ब्राह्मण लड्डू, पूरी, गुलगुले, घीमें उतरी हुई मीठी
पूरियें, दहीमें मिले हुए सत्तू, काला जीरा मिजी हुई दाखें, और
सुन्दर बनाए हुए अन्न, दाल नशीले हुए, रागखाण्डव पानक
कढ़ी आदि चरपरी कोमल और सुगन्धित वस्तुएँ, घी, शहद,
दूध, जल, दही, रसीले पदार्थ और सुन्दर स्वादवाले फल
फूलोंको खाकर प्रसन्न हो रहे थे ॥ ७-९ ॥ तहाँ “मादक वस्तुएँ
पापदायक होती हैं” यह जानकर भी मादक पदार्थोंके प्रेमी लोग
अपने आनन्द और सुखके लिये मदकारक पानी और मादक
पदार्थोंको इच्छानुसार गीत गाते और वाजे बजाते हुए खा पीरहे
थे ॥ १० ॥ मादक वस्तुओंको पीकर हर्षमें भरे हुए सहस्रों मनुष्य
नाभागकी स्तुतिगाथाको गा २ कर नाच रहे थे ॥ ११ ॥
राजा अम्बरीषने अपने इन यज्ञोंमें दश प्रयुत यज्ञ करनेवाले
ब्राह्मणोंको दश लाख माण्डलिक राजाओंके राज्य दक्षिणामें
दिये थे ॥ १२ ॥ वे राजे सुवर्णका कवच पहरनेवाले, श्वेत छत्रों

हिरण्यकवचान् सर्वान् श्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान् । हिरण्यं स्यन्दना-
 रुढान् सानुयात्रपरिच्छदान् ॥ १३ ॥ ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणा-
 मत्यकालयत् । मूर्धाधिपिक्ताश्च नृपान् राजपुत्रशतानि च ॥ १४ ॥
 सददंकोशनिचयान् ब्राह्मणेभ्यो ह्यभ्ययत् । नैवं पूर्वं जनाश्चक्रुर्न
 करिष्यन्ति चापरे ॥ १५ ॥ यदम्बरीपो नृपतिः करोत्यपित-
 दक्षिणः । इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥ १६ ॥ स
 चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्तया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा
 पुत्रमनुत्पथाः । अयञ्जानमदान्नैवमभिश्वेत्येति व्याहरन् १७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

पोद्गशराजकीये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

नारद उवाच । शशविन्दुं च राजानं मृतं सुञ्जय शुश्रुप । ईजे
 स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान् सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥ तस्य भार्गव सह-

से शोभायमान थे, सुवर्णके रथोंमें बैठनेवाले थे, उन सबके पास
 युद्धकी सामग्री और सेवक थे, राजा अम्बरीपने सैंकड़ों राज्यके
 अङ्ग, राजकुमार राज्यदण्ड और राज्यकोष सहित उन सब
 राजाओंको ब्राह्मणोंको अर्पण करदिया था, उससे मद्यपि उसके
 ऊपर प्रसन्न हो उसको अभिनन्दन देतेहुए कहनेलगे, कि-राजा
 अम्बरीपने अपार दक्षिणाके साथ जैसा यज्ञ किया है, ऐसा यह
 न कोई करसका है और न करसकेगा ॥ १३-१६ ॥ जब ऐसा
 राजा मरगया हे सृञ्जय ! जो तेरे पुत्रसे चारों बातोंमें अधिक
 और श्रेष्ठ था, तो हे श्वेत्यपुत्र ! तू उस यज्ञ न करनेवाले और
 दक्षिणा न देनेवाले अपने पुत्रके शोकको त्यागदे ॥ १७ ॥
 चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ ॥ छ ॥

नारदने कहा, कि-हे सृञ्जय ! राजा शशविन्दु भी मरगया,
 जिसके विषयमें हमने सुना है, कि-उस सत्यपराक्रमी श्रीमान्
 शशविन्दुने बहुतसे यज्ञोंसे परमात्माकी पूजा की थी ॥ १५ ॥ उस

स्राणां शतमासीन्महात्पनः । एकैकस्याञ्च भार्यायां सहस्रं तन-
याभवन् ॥ २ ॥ ते कुमारः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः ।
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ॥ ३ ॥ हिरण्यकवचाः
सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः । सर्वेऽश्वमेधैरीजानाः कुमारः शाश-
विन्दवः ॥ ४ ॥ तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽदत्त पिता ।
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोन्वयुः ॥ ५ ॥ राजपुत्रं तदा कन्या-
स्तपनीयस्वलंकृताः । कन्या कन्या शतं नागा नागे नागे शतं
रथाः ॥ ६ ॥ रथे रथे शनञ्चाश्वा वलिनो हेममालिनः । अश्वे
अश्वे गोसहस्रज्ञां पञ्चाशदाविकाः ॥ ७ ॥ एतद्धनप्रपर्याप्त-
मश्वमेधे महामखे । शशविन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यता ॥ ८ ॥
वार्त्ताश्च यूपा यावन्तः अश्वमेधे महामखे । ते तथैव पुनश्चान्ये
तावन्तः कांचनाभवन् ॥ ९ ॥ भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः

महात्माके एक लाख स्त्रियें थीं और एक २ स्त्रीके एक २ सहस्र
पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ वे रहे थे ॥ कुमार महापराक्रमी, सहस्र यज्ञ
करनेवाले, वेदवेदाङ्ग सार ॥ ३ ॥ उनका ब्राह्मणों के साथ धन
धारण करनेवाले, पारगांमी, सैनिक ॥ ४ ॥ वे
राजा शशविन्दु और अश्वमेध यज्ञ करनेवाले थे ॥ ५ ॥ हे
उत्तरेह्य और तने अश्वमेध यज्ञमें उन सर्वोंका ब्राह्मणोंको सङ्ग्रह
करदिया, इन कुमारोंमें प्रत्येक राजकुमारके पीछे २ सौ २ रथ और
सौ २ हाथी चलते थे ॥ ६ ॥ प्रत्येक राजकुमारके साथ सुवर्णसे
भूषित सौ २ कन्याएं और प्रत्येक कन्याके साथ सौ २ हाथी
और प्रत्येक हाथीके पीछे सौ २ रथ दिए गए थे ॥ ७ ॥ और
एक २ घोड़ेके साथ सहस्र २ गौ और प्रत्येक गौके साथ
पचास २ भैंसे दी गई थीं ॥ ८ ॥ महाभाग शशविन्दुने महायज्ञ
अश्वमेधमें ब्राह्मणोंको इतना धन देने पर भी यह समझा, कि-
अभी कम दिया गया है ॥ ९ ॥ उस महायज्ञ अश्वमेधमें जितने
वृत्तोंके यज्ञस्तम्भ थे, उतने ही स्वर्णके यज्ञस्तम्भ बनाए गए थे ६

क्रोशमुच्छ्रिताः । तस्याश्चमेधे निवृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥ १० ॥
 हुष्टपुष्टजनाक्रीर्णा शान्तविद्वानामनामया । शशविन्दुरिषां भूमिं
 चिरं श्रुत्वा दिवं गतः ॥ ११ ॥ स चेन्ममार सृज्य चतुर्धद्रत-
 स्त्वया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं पा पुत्रमनुत्पद्यथाः । अयज्जान-
 मदान्निएयमभिश्वेत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

षोडशराजकीये पञ्चपटितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

नारद उवाच । गयञ्चामूर्त्तरयसं मृतं सृज्य शुश्रूम् । यो वै
 वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनोऽभवत् ॥ १ ॥ तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादा-
 त्ततो वद्रे वरं गयः । तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥ २ ॥
 गुरुणाञ्च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम् । स्वयमेवाविदिंस्या-

उस राजाके यहाँ यज्ञमें एकत्र कोस ऊँचे अन्न, पान आदिके
 ढेर लगा दिए गए थे, यज्ञके अन्तमें उनमेंसे नरह ढेर वचे थे १०
 हुष्ट पुष्ट और सन्तुष्ट मन्त्रार्थ, राजा अर्जुन की राग और शान्त-
 विज्ञान, राजाके अन्तर्भाव पर बहुत दिन राजाके राजा शशविन्दु

राजाके चला गया ॥ ११ ॥ जब ऐसा पुण्यात्मा राजा ही मर गया
 जो तेरे पुत्रसे (पूर्वोक्त) चारों बातोंमें अधिकार पुण्यात्मा
 था तो हे सृज्य ! तू जिसने न दक्षिणा देपाई थी नौर जो न
 यज्ञ कर सका था, ऐसे पुत्रके शोकको त्याग दे ॥ १२ ॥ षष्ठठवाँ
 अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥

नारदजीने कहा, कि—हे सृज्य ! हमने सुना है कि—

अमृतारयका पुत्र राजा गय भी मर गया जिसने सौ वर्ष तक होम
 करनेसे बचे हुए अन्नको ही खाया था ॥ १ ॥ होम करनेसे
 अवशिष्ट अन्नको खानेसे अग्निदेवने उससे वर माँगनेको कहा,
 तब गयने वरदान माँगा कि—“मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और
 गुरुओंके प्रसादसे वेदोंको जानना चाहता हूँ, बिना दूसरेको

पखे ॥ ११ ॥ जाम्बूनदमया यूताः सर्वे रत्नपरिच्छदाः । गय-
स्यासन् समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥ सर्वकामसमृद्धं च
प्रादादन्नं गयस्तदा । ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव
च ॥ १३ ॥ स समुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च । नगरेषु च राष्ट्रेषु
दिवि व्योम्नि च येषसन् ॥ १४ ॥ भूतग्रामाश्च विविधाः संतप्ता
यज्ञसम्पदा । गयस्य सदृशो यज्ञो नास्त्यन्य इति तेऽब्रुवन् ॥ १५ ॥
षट्त्रिंशद्योजनायामां त्रिंशद्योजनमायता । पश्चात् पुरश्चतुर्विंशद्वेदी
ह्यासीद्विरण्मयी ॥ १६ ॥ गयस्य यजमानस्य मुक्तावज्रमणि-
स्तृता । प्रादात् स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च ॥ १७ ॥
यथोक्ता दक्षिणाश्चान्यां विभ्रेभ्यो भुवि दक्षिणः । यत्र भोजनशि-
ष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥ १८ ॥ कुल्याः कुशलवाहिन्यो रसा-

रेतेवाली, सुवर्णकी पृथिवी वनाकर ब्राह्मणोंकी दी थी ॥ ११ ॥
राजा गयके यज्ञमें सुवर्णके स्तम्भोंमें रख लगेहुए कपड़े टंगेहुए
थे, वे सब प्राणियोंके चित्ते, राजा गयके थे ॥ १२ ॥ महायज्ञमें
प्रसन्नतनुमानों तथा सब मनुष्यों की भी राजा गयने
कामनायें पूरी करनेवाला श्रेष्ठ भोजन दिया था ॥ १३ ॥
समुद्र, नदी, वन, नद, द्वीप, नगर, राष्ट्र तथा आकाश में सब
गर्भमें रहनेवाले प्राणी गयके यज्ञकी सम्पत्तिसे तृप्त होकर कहते थे,
कि—“गयके यज्ञसा कोई यज्ञ नहीं हुआ” ॥ १४-१५ ॥ यज्ञ
करनेवाले राजा गयने मुक्ता और हीरोंसे जड़ीहुई छत्तीस योजन
चौड़ी तीस योजन लम्बी पूर्व पश्चिममें चौबीस योजन लम्बी
सोनेकी बनीहुई यज्ञवेदी ब्राह्मणोंको दी थी और बहुतसे कपड़े
तथा गहने दिये थे ॥ १६-१७ ॥ उसने शास्त्रमें लिखी हुई और
भी बहुतसी दक्षिणायें ब्राह्मणोंको दी थीं उसके यज्ञके अन्तमें
अन्नके पच्चीस ढेर बचे थे ॥ १८ ॥ इस यज्ञके समय रसोंकी
छोटी बड़ी नदियें बह रही थीं और बस गहने तथा सुगन्धित

नामभवंस्तदा । ब्रह्माभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥ १६ ॥
 यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । वट्टश्चाक्षय्यकरणः
 पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ॥ २० ॥ स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतर-
 स्त्वंया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्जानमदा-
 क्षिण्यमभिश्रैत्येति व्याहरन् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

पोडशराजकीये पट्पष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

नारद उवाच । सांकुर्ति रन्तिदेवञ्च मृतं सृज्य शश्रुम । यस्य
 द्विंशत्साहस्रा आसन् मृदा महात्मनः ॥ १ ॥ गृहानभ्यागतान्
 विप्रानतिथीन् परिवेषकाः । पक्वापक्वं दिवारान्नं वरान्नममृतो-
 पमम् ॥ २ ॥ न्यायेनाधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत । वेदा-
 नधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विपतो वशे ॥ ३ ॥ उपस्थिताश्च पशवः
 स्वयं यं शंसितव्रतम् । बहवः स्वर्गमिच्छन्तो विधिवत् सत्रयाजि-

पदार्थोंके भी ढेर लग रहे थे ॥ १६ ॥ इन कर्मोंके प्रभावसे राजा
 गय तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगया था, उसका स्मारकरूप वट्टवृक्ष
 और पवित्र ब्रह्मसरोवर तीनों लोकमें प्रसिद्ध है ॥ २० ॥ हे
 सृज्य ! जब ऐसा दानी राजा मरगया तो उससे चारों बातोंमें
 उतरेहुए और जिसने यज्ञ-दक्षिणा आदि नहीं दी ऐसे पुत्रके
 शोकको त्याग दे ॥ २१ ॥ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥

नारदजीने कहा कि—सुना है, कि—संकुतिका पुत्र रन्तिदेव
 भी मरगया, उसके यहाँ दो लाख ब्राह्मण तो रसोइये ही थे ॥ १ ॥
 वे रसोइये घरपर आएहुए अतिथि ब्राह्मणोंको रातदिन अमृत
 समान कच्चा पक्का अन्न देते रहते थे ॥ २ ॥ उसने न्यायसे
 पायाहुआ द्रव्य ब्राह्मणोंके अर्पण करदिया और धर्मानुसार
 वेदोंको पढ़कर शत्रुओंको जीतलिया था ॥ ३ ॥ शास्त्रानुसार
 यज्ञ करनेवाले शंसितव्रत राजा रन्तिदेवके पास स्वर्गमें जानेकी

नम् ॥ ४ ॥ नदी महानसाद्यस्य प्रवृत्ता चर्मराशितः । तस्माच्चर्म-
 एवती पूर्वमग्निहोत्रेऽभवत् पुरा ॥ ५ ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददन्निष्कान्
 सौवर्णान्स प्रभावतः । तुभ्यं निष्कं तुभ्यन्निष्कमिति ह स्म प्रभाषते
 तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादानिष्कान् निष्कान् सहस्रशः । ततः पुनः
 सभाश्वस्य निष्कानेव प्रयच्छति ॥ ७ ॥ अन्प दत्तं मयाद्येति
 निष्ककोटिं सहस्रशः । एकाह्वा दास्यति पुनः कोन्यस्तत् सम्पदा-
 स्यति ॥ ८ ॥ द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत् । भवि-
 ष्यति न सन्देह एवं राजाददद्वसु ॥ ९ ॥ सहस्रशश्च सौवर्णान्
 वृषभान् गोशतानुगान् । साष्टं शतं सुवर्णानां निष्क आहुर्दुर्नं
 तथा ॥ १० ॥ अध्यर्द्धमासमददद् ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः । अग्नि-
 होत्रोपकरणं यज्ञोपकरणञ्च यत् ॥ ११ ॥ ऋषिभ्यः करकान्

(कि-तुम यज्ञ करके हमें इस देहसे छुड़ाकर स्वर्गमें भेजो)
 इच्छासे बहुतसे पशु अपने आपही चले आते थे ॥ ४ ॥ और
 अग्निहोत्रकी शालारूप हुए उसके रसोई घरमें (यज्ञीय पशुओंके)
 चमड़ेका इतना ढेर लगा, कि-उसमेंसे चर्मएववती नदी निकली
 थी ॥ ५ ॥ तुम्हें निष्क दूँ, तुम्हें निष्क दूँ" इसप्रकार पुकार-
 कर उसने ब्राह्मणोंको सुवर्णके निष्क दिये थे ॥ ६ ॥ करोड़ों
 निष्कोंका दान करके आज तो मैंने थोड़े ही निष्क दानमें दिये
 हैं, ऐसा कहकर उसने सहस्रों ब्राह्मणोंको बार-बार निष्कोंका दान
 दिया था, वह एक दिनमें जितने निष्कों (सोनेके सिक्कों)
 का दान करता था, उतना दान मनुष्य पूरे जन्ममें भी नहीं दे
 सकता ॥ ७-८ ॥ राजा रन्तिदेव यदि दान देनेके लिये ब्राह्मण
 नहीं मिलता था, तो कहता था, कि-अब चिरकालको महादुःख
 आपड़ेगा, इसप्रकार कहते-वह धनका दान करता था ॥ ९ ॥
 यह राजा सौ वर्ष तक आधे २ महीनेमें सुवर्णसे सजाई हुई सौ
 गौएँ, कि-जिनके पीछे एक २ सहस्र सजेहुए बैल होते थे, और

कुम्भान् स्थालीः पिठरमेव च । शयनासनयानानि प्रासादाश्च
 शृङ्गाणि च ॥ १० ॥ वृक्षांश्च विविधान् दद्यादन्नानि च धनानि
 च । सर्वं सौवर्णमैवासीदन्तिदेवस्य धीमतः ॥ १३ ॥ तत्रास्य गाथा
 गायन्ति ये पुराणविदो जनाः । रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमति-
 मानुषीम् ॥ १४ ॥ नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि । धनञ्च-पूर्य-
 माणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥ १५ ॥ व्यक्तं वस्त्रोक्तसारेयमित्यूचु-
 स्तत्र विस्मिताः । साङ्कृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् १६
 आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः । तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति
 सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १७ ॥ सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मांसं
 यथा पुरा । रन्तिदेवस्य यत् किञ्चित् सौवर्णमभवत्तदा ॥ १८ ॥

यज्ञ तथा अग्निहोत्रकी सामग्री ब्राह्मणोंको देता था ॥ १०-११ ॥
 इतना ही नहीं, किन्तु वह राजा ऋषियोंको कण्ठलु, घड़े,
 थाली, लोहे, पलङ्क, आसन, सवारी, महल, घर, नानाप्रकारके
 वृक्ष, अन्न और धन आदि अर्पण करता था, बुद्धिमान् राजा
 रन्तिदेवकी सब वस्तुएँ सुवर्णकी ही थीं ॥ १२-१३ ॥ पुराणवेत्ता
 लोग रन्तिदेवकी अलौकिक समृद्धिको देखकर इसप्रकार गाथा
 गाते हैं कि- ॥ १४ ॥ इतना धन तो हमने कुबेरके भवनोंमें भी
 नहीं देखा, फिर मनुष्योंके पास तो राजा रन्तिदेवकी समान
 धन हो ही कैसे सकता है ? ॥ १५ ॥ उसके घरोंको देखकर
 विस्मितहुए मनुष्य कहते थे, कि-इस राजाके घर वास्तवमें सोने
 के ही हैं, संकृतिके पुत्र राजा रन्तिदेवके घर जिस रातको अतिथि
 ठहरते थे, उस रात्रिमें इक्कीस सहस्र बैलोंका आलम्भन होता
 था, कानोंमें मणिजटित सुन्दर कुण्डल पहिरने वाले राजाके रसो-
 इये, जोरसे पुकार कर कहते थे, कि-आज तुम आनन्दसे खूब
 खाओ आजकेसा मांस पहिले कभी नहीं बना था, राजा रन्ति-
 देवके यहाँ जो कुछ था वह सब सुवर्णका ही था, उसने उस

तत् सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यन्यत । मृत्युञ्जं तस्य हव्यानि
प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ १९ ॥ कव्यानि पितरः काले सर्वकामान्
द्विजोत्तमाः । स चेन्मपार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २० ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं पा पुत्रमनुत्पद्यथाः । अयञ्जानमदाक्षिण्यम-
मभिश्वेत्येति व्याहरन् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

षोडशराजकीये सप्तपट्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

नारद उवाच । दौष्यंति भरतञ्चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
कर्पाण्यमुकराण्यन्यैः कुनवान् यः शिशुर्वनं ॥ १ ॥ हिमावदा-
तान् दाः सिंहान्नखदंष्ट्रायुधान् वली । निर्वीर्यास्तरसा कृत्वा
विचक्र कर्प वनन्ध च ॥ २ ॥ क्रूराश्चोग्रवरान् व्याघ्रान् दमित्वा

सबको यज्ञ करने पर ब्राह्मणोंको दे दिया, उसके हविको देवता
मृत्युञ्ज होकर ग्रहण करते थे ॥ १९-१९ ॥ पितर मृत्युञ्ज आकर
कव्य ग्रहण करते थे, उत्तम ब्राह्मण समयके अनुसार उस राजासे
अपनी सब कामनायें पूरी करते थे, हे सृञ्जय ! जो तेरे पुत्रसे
चारों बातोंमें अधिक था वह रन्तिदेव ही मर गया ॥ २० ॥ वह
तो तेरे पुत्रसे पुण्यमें बड़ा चढ़ा था, तो तू अपने यज्ञ-दक्षिणा-
शून्य पुत्रके शोकसे सन्तप्त न हो ॥ २१ ॥ सरसठवाँ अध्याय
समाप्त ॥ ६७ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

नारदजीने कहा, कि-हे सृञ्जय ! हम दुष्यन्तके पुत्र भरतको
भी मरा हुआ सुनते हैं, उसने वनमें रहकर बाल्यावस्थामें दूस-
रोंसे न हो सकें, ऐसे काम किये थे ॥ १ ॥ वली राजा भरत
बाल्यावस्थामें बरफकी समान श्वेत रङ्गके और नख तथा डाढ़-
रूप आयुधवाले सिंहोंको बलात्कारसे पकड़कर बलहीन कर
डालता था और अपनी ओरको घसीटकर बाँधलेता था ॥ २ ॥
लाख लगी हुई मेनसिलकी समान लालर बुन्दकीवाले लाल

चाकरोदृशे । मनःशिलाइव शिलाः संयुक्ता जतुराग्निभिः ॥ ३ ॥
 व्यालादींश्चातिवलयान् सुप्रतीकान् गजानपि । दंष्ट्रास्तु गृध्र विमु-
 खान् शुष्कास्यानकरोदृशे ॥ ४ ॥ महिषानप्यतिवलो वलिनो
 विचकर्ष ह । सिंहानां च मुहसानां शतान्याकर्षयद्वलात् ॥ ५ ॥
 वलिनः सृमरान् खड्गान्नानासत्त्वानि चाप्युत । कृच्छ्रप्राणं वने
 बध्वा दमयित्वाप्यवासृजत् ॥ ६ ॥ तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनास्य
 कर्मणा । तम्प्रत्यपेधञ्जननी मा सत्त्वानि त्रिजीजहि ॥ ७ ॥ सोश्व-
 मेधशतेनेष्टा यमुनामनुवीर्यवान् । त्रिशताश्वान् सरस्वत्या गङ्गा-
 मनु चतुःशतान् ॥ ८ ॥ सोश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
 पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ९ ॥ अग्निष्टोमातिरात्रा-

पीले रङ्गके क्रूरस्वभाव व्याघ्रोंको दवाकर भरतने अपने वशमें
 कर लिया था ॥ ३ ॥ अतिवली सर्प आदि और सुप्रतीक आदि
 हाथियोंके दाँत पकड़कर उनके मुख मुखा देता था, और उन्हें
 वशमें करलेता था ॥ ४ ॥ वह राजा अतिवली भैंसों (के सींगों)
 को पकड़कर खेंचलेता था और अतिघमण्डी सौ २ सिंघोंको
 खेंचकर पृथिवी पर पटक देता था ॥ ५ ॥ वह राजा वनमें अपने
 प्राणोंको भी जोखममें डालकर वनवान् चीते और गेंडोंको तथा
 नानाप्रकारके प्राणियोंको (वृत्तोंसे) बाँध खूब पीटकर छोड़
 देता था ॥ ६ ॥ उसके ऐसे कर्मोंको देखकर ब्राह्मण उसको
 सर्वदमन नामसे पुकारने लगे थे, उसकी माता उसे ऐसा करने
 से रोककर कहती थी, कि—हे बेटा ! तू—प्राणियोंको मत मार ७
 महापराक्रमी राजा भरतने यमुना नदीपर सौ अश्वमेध यज्ञ करके
 सरस्वती नदी पर तीन सौ और गङ्गाजी पर चार सौ अश्वमेध
 यज्ञ किये थे ॥ ८ ॥ उसने फिर भी सहस्र अश्वमेध, सौ राज-
 सूय—महायज्ञ किये और उनमें बहुतसी दक्षिणाएं दीं ॥ ९ ॥
 फिर उसने अग्निष्टोम, अतिरात्र, उक्थ, विश्वजित् और अच्छे २

भ्यामिष्टा विश्वजिता अपि । वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः १०
 इष्टा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान् धनैः । सहस्रं यत्र पद्मानां
 कण्वाय भरतो ददौ ॥ ११ ॥ जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य
 महायशाः । यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥ १२ ॥
 सप्तागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः । अलंकृतान् राजपा-
 नान् सवरत्नैर्मनोहरैः ॥ १३ ॥ हैरण्यानश्वान् द्विरदान् रथानु-
 घ्नानजाविकम् । दासीदासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः १४
 ग्रामान् गृहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान् । कोटीशतायुतां-
 श्चैत्र ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ १५ ॥ चक्रवर्ती ह्यदीनात्मा जिता-
 रिहजितः परैः । स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्तवया ॥ १६ ॥
 पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्सयाः । अयज्ज्वानमदाक्षिण्य-
 मभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १७ ॥ अष्टपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

मन्त्रोंसे रक्षित एक लाख वाजपेय यज्ञ किये थे, शाकुन्तलाके पुत्रने
 इन सब यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको धनसे तृप्त किया था इस महायशस्वी
 भरतने एक हजार पद्मके मूल्यका जाम्बूनद जातिका सोना कण्व
 मुनिको दिया था, उसका यज्ञस्तम्भ सौ कौलिया ऊँचा और
 ठोस सोनेका था, उसको ब्राह्मण और इन्द्र सहित देवताओंने
 खड़ा किया था, चक्रवर्ती, महापना, शत्रुञ्जय और शत्रुओंसे
 अजित राजा भरतने सब प्रकारके मनोहर रत्नोंसे सजायेहुए
 और शोभा पातेहुए कराडों तथा लाखों घोड़े, हाथी, रथ, ऊँट,
 भेड़े, बकरे, दास, दासी, धन, धान्य गौ, सवत्सा दुधारी गौ, ग्राम,
 घर, खेत्त और नानाप्रकारके ओढ़नेके करोडों, सैकडों तथा दश
 सहस्र वस्त्र दानमें दिये थे ॥ १०-१५ ॥ हे सृञ्जय ! तेरे पुत्रसे चारों
 बातोंमें अधिक श्रेष्ठ और पुण्यात्मा वह राजा भरत भी जब न
 बचा तो हे श्वित्यपुत्र ! तू यज्ञ दक्षिणा आदिसे शून्य अपने पुत्रके
 वियोगसे दुःखी क्यों होता है ॥ १६ ॥ १७ अट्ठमठर्वा अध्याय समाप्त ॥

नारद उवाच । पृथुं वै न्यञ्च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
 यमभ्यपिञ्चन् साम्राज्ये राजसूये महर्षयः ॥ १ ॥ यत्नतः प्रधि-
 तेत्यूचुः सर्वानभिभवन् पृथुः । ज्ञानान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽ-
 भवत् ॥ २ ॥ पृथुं वै न्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् । ततो
 रजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥ ३ ॥ अकृष्टपच्या पृथिवी
 आसीद्वैन्यस्य कामधुक् । सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके
 मधुऽ आसन् हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः । तेषां चीराणि
 सम्वीना प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥ ४ ॥ फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि
 च मधूनि च । तेषामासीत्तदाहारो निराहाराश्च नाभवन् ॥ ५ ॥
 अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुनोभयाः । न्यवसन्त यथाकामं

नारदजीने कहा, कि-हे सृञ्जय । जिसका महर्षियोंने राज-
 सूयके समय साम्राज्यके सिंहासन पर अभिषेक किया था, वह
 राजा वेनका पुत्र पृथु भी मर गया, उसके विषयमें हमने सुना है,
 कि-॥ १ ॥ उसने सबका तिरस्कार करके पृथ्वीको प्रसिद्ध
 किया था, इसलिये लोगोंने उसका नाम पृथु रक्खा था और यह
 सब आपत्तियोंमें हमारी रक्षा करेगा ऐसा विचारकर उसको सब
 क्षत्रिय कहते थे, पृथुको देखकर प्रजा कहती थी कि-हम इसके ऊपर
 बड़े प्रसन्न हैं, इसकारण तथा प्रजाके अनुरागके कारण उसका
 नाम "राजा" पड़ा था ॥ २-३ ॥ पृथ्वी वेनके पुत्र पृथुकी काम-
 नाओंको पूर्ण करती थी, अतः उसके यहाँ बिना जुते ही खेती
 होती थी और गौएं यथेच्छ दूध देती थीं, तथा उसकी कामधे-
 नुएं प्रत्येक पात्रमें मधु टपकाती थीं ॥ ४ ॥ इसके यहाँ कुश सुख
 देनेवाले स्पर्शमें आनन्द देनेवाले और सुवर्णके थे, अतः प्रजा
 उनके ही वस्त्रोंको पहिरती थी और उन पर ही सोती थी ॥ ५ ॥
 फल अमृतकी समान स्वादिष्ट और मीठे होते थे, प्रजा उनको
 खाती थी और उसके राज्यमें भूखा कोई नहीं रहता था ॥ ६ ॥

वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७ ॥ प्रविभांगो न राष्ट्राणां पुराणाञ्चाभव-
त्तेदा । यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥ ८ ॥ तस्य
संस्तम्भिता ह्यापा समुद्रमभियास्यतः । पर्वतोश्च ददुर्मार्गं ध्वज-
भङ्गश्च नाभवत् ॥ ९ ॥ तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः ।
सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥ १० ॥ पितरश्च सुखा-
सीनमभिगम्येदमब्रुवन् । सम्राट्सि क्षत्रियोसि राजा गोप्ता पितासि
नः ॥ ११ ॥ देहस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान् वरान् ।
यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्तीर्वर्त्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२ ॥ तथेत्युत्वा
पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाजगवं धनुः । शरांश्चाप्रतिमान् घोरान्श्चिन्तयि-
त्वाब्रवीन्महीम् ॥ १३ ॥ एषोहि वसुधे क्षिप्रं क्षरैभ्यः क्वचित्तं

मनुष्य नीरोग, और सकल सफल मनोरथोंवाले थे, उनको कहीं
भी भय नहीं था, अतः वे वृक्ष तथा गुफाओंमें रहते थे ॥ ७ ॥
उस समय देश और नगरोंका विभाग नहीं था अतः मनुष्य
सुखपूर्वक यथेच्छ जहाँ चाहे तहाँ रहते थे ॥ ८ ॥ राजा पृथु जिस
समय समुद्र पर चलता था उस समय जल स्तम्भित होजाता था,
और पर्वत उसके लिये मार्ग छोड़देते थे उसकी ध्वजा कहीं भी
नहीं टूटी थी ॥ ९ ॥ सुखपूर्वक बैठेहुए राजा पृथुके पास वन-
स्पति, पर्वत, देवता, असुर, मनुष्य, सर्प, सातों ऋषि, राक्षस,
गन्धर्व, अप्सराएं और पितरोंने आकर कहा, कि-तुमही चक्र-
वर्ती हो, क्षत्रिय हो, राजा हो, हमारे रक्षक और पिता भी तुम
ही हो ॥ १०-११ ॥ हे महाराज ! आप हमें वर दें, जिससे
हम अनन्तकाल तक वृत्ति और सुख पावें ॥ १२ ॥ यह सुनकर
वेनपुत्र पृथुने कहा, कि “तुम्हारी इच्छानुसार ही होगा” तद-
नन्तर वह आजगव नामका धनुष और अप्रतिम घोर बाणोंको
ले पृथिवीसे बोला, कि ॥ १३ ॥ हे वसुधे ! तू शीघ्रही मेरे पास
आकर इनके मुखमें इच्छित द्रव्यकी धार छोड़, तदनन्तर मैं जिसको

पयः । ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम् ॥ १४ ॥
 वसुधोवाच । दुहितृत्वेन मां वीर सङ्कल्पयितुमर्हसि । तथेत्सुक्त्वा
 पृथुः सर्वं विधानमकरोद्वशी ॥ १५ ॥ ततो भूतनिकायास्तां वसुधां
 दुदुहुस्तदा । तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुत्तवः ॥ १६ ॥
 सातिष्ठत्सला वत्सं दोग्धपात्राणि चेच्छती । वत्सोऽभूत् पुष्पितः
 शालः सतो दोग्धाभवत्तदा ॥ १७ ॥ द्विन्नपरोदणं दुग्धं पात्र-
 मौदुम्बरं शुभम् । उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः १८
 रत्नान्योपधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तदा । दोग्धा चासीत्तदा देवो
 दुग्धमूर्जस्करं प्रियम् ॥ १९ ॥ असुरा दुदुहूर्मायामामपात्रे तु ते
 तदा । दोग्धा द्विर्नृधा तत्रासीद्वत्सश्चासीद्विरोचनः ॥ २० ॥
 कृपिञ्च शस्यश्च नरा दुदुहुः पृथिवीतले । स्वायम्भुवो मनुर्वत्स-

जैसा अन्न अच्छा लगेगा, उसको तैसा ही अन्न दूँगा तेरा
 कन्याग्रहो ॥ १४ ॥ वसुधा बोली कि—हे वीर ! तुम मुझे
 दुहिता करनेकी इच्छा करते हो ? वशी पृथुने कहा, कि—“हाँ”
 और पृथिवीको दुहने लगे, प्रथम वनस्पति पृथ्वीको दुहनेको
 वद्यत हुए, परन्तु वत्सला पृथ्वी बछड़े और दुहनेवालेकी अपेक्षा
 करतीहुई खड़ी ही रही, उस समय पुष्पित शालका वृक्ष बछड़ा
 हुआ, पिलखन दुहनेवाला हुआ और वृक्ष कटनेपर गिरताहुआ
 क्षीर दूध हुआ तथा गूलरके शुभ पात्रमें दुहागया (फिर पर्वतों
 ने पृथिवीको दुहा उसमें) उदयाचल वत्स हुआ महागिरि मेरु
 पर्वत दुहनेवाला हुआ ॥ १५-१८ ॥ रत्न और औषधिरूप दुग्ध,
 पत्थररूप पात्रमें दुहागया, तदनन्तर दुहनेवाला देवहुआ बछड़ा भी
 देव हुआ और देवताओंने मन्त्ररूपी पात्रमें तेजस्वी बली अमृतको
 दुहा ॥ १९ ॥ असुरोंने कच्चे पात्रमें मायारूपी दूध दुहा
 उसमें दुहनेवाला द्विर्नृधा और बछड़ा विरोचन हुआ था ॥ २० ॥
 पृथ्वीतलमें मनुष्योंने कृपि और धान्यको दुहा, उस समय स्व-

स्तेषां दोग्धाऽभवत् पृथुः ॥ २१ ॥ अलाहुपात्रे च तथा विपदुग्धा
 वसुन्धरा । धृतराष्ट्रोऽभवद्दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः ॥ २२ ॥
 सप्तपिंभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाक्षित्पृक्कर्मभिः । दोग्धा बृहस्पतिः
 पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट् ॥ २३ ॥ अन्तर्धानं चामपात्रे दुग्धा
 पुण्यजनैर्विराट् दोग्धा वैश्राणस्तेषां वत्सश्चासीद् वृषध्वजः ॥ २४ ॥
 पुण्यगन्धान् पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदृहन् । वत्सश्चित्ररथस्तेषां
 दोग्धा त्रिश्वरुचिः प्रभुः ॥ २५ ॥ स्वर्धां रजतपात्रेषु दुदुहृः पित-
 रश्च ताम् । वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दांघान्तकस्तदा ॥ २६ ॥
 एवं निकायैस्ते दुग्धा पयोभीष्टं हि सा विराट् । यैर्वर्त्तयन्ति ते ह्यथ
 पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः ॥ २७ ॥ यज्ञैश्च विविधैरिष्टा पृथुर्वैन्पः प्रताप-
 वान् । सन्तर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कर्ममनःप्रियैः ॥ २८ ॥

यम्भू मनु बछड़े बने और पृथु दोग्धा बने ॥ २१ ॥ सप्तोने रामतुरई
 (तुम्बी) रूपी पात्रमें पृथ्वीमेंसे विपरूप दूध दुग्धा, उस समय धृतरा-
 ण्ण (सर्प) दोग्धा था और तक्षक वत्स बना ॥ २२ ॥ उत्तम
 कर्म करनेवाले सप्तऋषियोंने ब्रह्मरूपी दूध दुहा, उस समय बृह-
 स्पति दोग्धा, छन्द पात्र, और सोमराट् बछड़ा दुग्धा पुण्यजनो
 (विद्याधरो) ने कुबेरको दोग्धा और वृषध्वजको वत्स बनाकर
 आमपात्रमें अन्तर्धानरूपी दूध दुहा था ॥ २३-२४ ॥ गन्धर्व
 और अप्सराओंने कमलरूपी पात्रमें पवित्रगन्धरूप दुग्धको दुहा,
 उस समय चित्ररथ बछड़ा और प्रभु त्रिश्वरुचि दोग्धा बने ॥ २५ ॥
 पितरोंने चाँदीके पात्रोंमें सूर्यको बछड़ा और यमराजको दोग्धा
 बनाकर पृथ्वीमेंसे स्वधारूपी दूधको दुहा ॥ २६ ॥ इसप्रकार उन
 नियुक्त पुरुषोंने अपनी इच्छानुकूल पृथिवीमेंसे दूधको दुहा था
 और वे अब भी उन पात्र तथा बछड़ोंसे नित्य दूधको दुहा
 करते हैं और नित्य ऐसे ही दुहा करेंगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार
 पृथ्वीको दुहकर वेनके प्रतापी पुत्र राजा पृथुने नानाप्रकारके यज्ञ

हैरण्यानकरोद्राजा ये केचित् पार्थिवा भुवि । तान् ब्राह्मणेभ्यः
प्रायच्छदश्चेधे महामखे ॥ २६ ॥ पट्टिनागपट्टसाणि पट्टिनाग-
शतानि च । सौवर्णानकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान् ददौ ॥ ३० ॥
इमां च पृथिवीं सर्वां मणिरत्नविभूषिताम् । सौवर्णीमकरोद्राजा
ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ॥ ३१ ॥ स चेन्मभार सृञ्जय चतुर्भद्रतर-
स्त्वया । पुत्रात् पुण्यातरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्पद्यथाः । अयज्ज्वानमदा-
क्षिण्यमभिश्वेत्येति व्याहरन् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

पोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

नारद उवाच । रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः । जामद-
ग्न्योप्यनियशा अचित्सो परिष्यति ॥ १ ॥ यस्माद्यमनुपर्येति भूमिं

कर प्राणियोंकी मनःमिय सब कामनाओंको पूर्ण करके सबको
तप्त किया था ॥ २८ ॥ इस राजाने पृथ्वीके सब पदार्थोंको
सुवर्णके वनवाकर अश्वमेध यज्ञमें उन सबको ब्राह्मणोंके अर्पण
करदिया था ॥ २९ ॥ उसने साठ सहस्र छः सौ सौनेके हाथी
बनाकर ब्राह्मणोंको दानमें दिये ॥ ३० ॥ तैसेही उसने सम्पूर्ण
पृथिवीको मणि रत्नोंसे विभूषित और सुवर्णमयी करके ब्राह्मणों
को देदिया ॥ ३१ ॥ हे सृञ्जय ! तेरे पुत्रोंमें चारों बातोंमें
अधिक और पुण्यात्मा जब वह राजा भी मरागया तब हे
शिवत्यपुत्रात् अपने दान यज्ञ आदिसे हीन पुत्रके शोकसे सन्तप्त
मत हो ॥ ३२-३३ ॥ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥

नारदजीने कहा कि—हे सृञ्जय ! जमदग्नि के पुत्र परशुराम
महातपस्वी हैं, शूवीर हैं, और प्राणी उनका सत्कार करते हैं
ऐसे महायशस्वी परशुराम भी अतृप्त ही मर जावेंगे ॥ १ ॥
उन्होंने पृथिवी परसे उपद्रवों को नष्ट कर शान्ति फैलाई सत्ययुगके
धर्मोंका स्थापन किया तथा अनुपम लक्ष्मी पाने पर भी उनके

कुर्वन्निर्मां सुखाम् । न चासीद्विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् २
यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चानुवन् । ततोवधीत् कार्तवीर्य-
मजितं समरे परैः ॥ ३ ॥ क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः ।
तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाजयत् ॥ ४ ॥ ब्रह्मद्विपाञ्चाथ
तस्मिन् सहस्राणि चतुर्दश । पुनरन्याग्निजग्राह दन्तक्रूरं जघान
ह ॥ ५ ॥ सहस्रं युसलेनाहन् सहस्रमसिनावधीत् । उद्धन्धनात्
सहस्रञ्च सहस्रमुदके धृतं ॥ ६ ॥ दन्तान् भङ्क्त्वा सहस्रस्य कर्णा-
न्नासान्यकृन्तत । ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥ ७ ॥
शिष्टान्ब्रध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च । गुणावतीमुत्त-
रेण खाण्डवाक्षिणेन च ॥ गिर्यन्ते शतसाहस्रा ह्येहयाः समरे

मनमें विकार (लोभ आदि) नहीं आया ॥ २ ॥ जब क्षत्रियों ने
ने उनके प्रिय पिताको मार डाला और कामदुधाको हर लिया,
तब उन्होंने बिना बोलेचाले शत्रुओंसे युद्ध करके अजेय कार्त-
वीर्यको मार डाला ॥ ३ ॥ उन्होंने मृत्युके पास पहुँचेहुए छः लाख
चालीस सहस्र शत्रुओंको एक धनुषसे ही जीतकर मार डाला
था ॥ ४ ॥ परशुरामने इस युद्धमें ब्रह्मद्वेपी चौदह सहस्रराजाओंको
तथा औरोंको भी कैद कर लिया था और दन्तक्रूरदेशके अधि-
पतिराजा को मार डाला था ॥ ५ ॥ और इस युद्धमें परशुरामने हजार
क्षत्रियोंको मूसलसे मार डाला, हजारको तलवारसे काट डाला,
एक हजार राजाओंको पेड़की शाखाओंमें टांग कर तथा एक
हजार राजाओंको जलमें डुबा कर मार डाला था; एक सहस्र
राजाओंके दाँत तोड़कर नाक कान काट लिये थे और सात हजारको
कटुआ धुआँ पिलाकर मार डाला था तथा बाभी बचेहुओंको बाँध
उनके शिर फोड़कर मार डाला था और गुणावती नगरीसे उत्तरकी
ओर खाण्डव वनसे दक्षिणकी ओर पहाड़के अन्तिम भागमें हुए
युद्धमें परशुरामने दश-सहस्र हैहयोंको मार डाला था ॥ ६-८ ॥

हताः ॥८॥ सरथाश्चगजा वीरा निहनास्तत्र शेरतः । पितृवैधान्म-
पितेन जामदग्नयेन धीपता ॥ ९ ॥ निजघ्ने दशसाहस्रान् रामः
परशुना तदा । न ह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ॥१०॥
भृगौ राधाभिधावन्ति यदाकन्दन् द्विजोत्तमाः । ततः काश्मीरदर-
दान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥ ११ ॥ अङ्गवङ्गकलिङ्गारच विदेहा-
स्ताम्रलिप्तकान् । रक्षोवाहान् वीतिहोत्रांस्त्रिगर्तान् मार्तिकाव-
तान् ॥ १२ ॥ शिवीनन्याश्च राजन्यान् देशान्देशान् सहस्रशः ।
निजघ्नान् शितैर्वाणैर्जामदग्नयः प्रतापवान् ॥ १३ ॥ कोटीशत-
सहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः । इन्द्रगोपकवर्णस्य वन्धुजीव-
निभस्य च ॥ १४ ॥ रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च ।
सर्वानष्टादश द्वीपान् वशयानीय भार्गवः ॥ १५ ॥ ईजे कतुशतैः
पुण्यैःसमाप्तवरदक्षिणैः । वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनि-

पिताके वधसे क्रोधमें भरे हुए परशुरामके हाथसे परशुको प्राप्त
हुए हाथी, घोड़े और रथोंसहित सैंकड़ों वीर तहाँ पड़े थे ॥ ८ ॥
इन क्षत्रियोंकी गालियोंको न सह सकनेके कारण परशुरामने
फरसेसे दशहजार क्षत्रियोंको मार डाला ॥ १० ॥ जब श्रेष्ठ २
ब्राह्मण यह कह कर चिल्लाने लगे, कि—(हमारी रक्षाके
लिये) हे भृगुपुत्र परशुराम ! धावा करो २ ! तब जमदग्निके पुत्र
प्रतापी परशुरामने तेज किये हुए बाणोंसे काश्मीर, दरद कुन्ती,
क्षुद्रक, मालवा, अंग, वंग, कलिङ्ग विदेह, तांभ्रलिप्त, रक्षोवाह,
वीतिहोत्र, त्रिगर्त, मार्तिकावत, शिव तथा दूसरे देशोंके सैंकड़ों,
सहस्रों और अनन्त करोड़ों क्षत्रियोंको तेज बाणोंसे नष्ट कर
दिया था और इन्द्रगोप (वीर बहूटी) और जपाके फूलकी
समान रक्तवर्णके रुधिरप्रवाहोंसे सरोवरोंको भर कर भृगुनन्दनने
अठारह द्वीपोंको अपने वशमें कर लिया था ॥ ११-१५ ॥ तद-
नन्तर परशुरामने लौ दशपत्रिचक्र किये, इनमें ब्राह्मणोंको

मिताम् ॥ १६ ॥ सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम् ।
 ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णञ्च महीमिमाम् ॥ १७ ॥ रामस्य
 जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः । ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान्
 हेमभूषणान् ॥ १८ ॥ निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम् ।
 कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥ १९ ॥ त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं
 कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः । इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत २०
 सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः । रामं प्रोवाच निर्गच्छ
 वसुधातो ममाज्ञया ॥ २१ ॥ स कश्यपस्य वचनात् प्रोत्सार्य सरितां
 पतिम् । इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन् ब्राह्मणशासनम् ॥ २२ ॥
 अध्यावसद्विरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् । एवं गुणशतैर्युक्तो भृगुणां
 कीर्त्तिवर्धनः ॥ २३ ॥ जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः ।

बड़ी २ दक्षिणायें दी थीं तथा नानाप्रकारके सैंकड़ा रत्नोंसे जड़े हुए और सौ पताकाओंकी मालाओंसे सुशोभित तथा विधिपूर्वक बनाई हुई बत्तीस हाथ ऊँची तथा पशुओंसे भरपूर पृथ्वी कश्यप को दानमें दी थी, परशुरामने अश्वमेध महायज्ञमें सुवर्णके आभूषणोंवाले एक लाख हाथी तथा चोरोंका नाश करनेके उपरान्त इष्ट, शिष्ट लोगोंसे भरीहुई पृथ्वी कश्यपजीके अर्पण करदी थी ॥ १६-१९ ॥ महात्मा परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियशून्य करके सौ यज्ञ किये थे और उन यज्ञोंमें कश्यप तथा ब्राह्मणोंको सात द्वीपवाली पृथ्वी दानमें दी थी, उस समय मरीचिके पुत्र कश्यपने परशुरामसे कहा था, कि-तुम मेरी आज्ञा से इस पृथ्वी परसे चले जाओ ॥ २० ॥ २१ ॥ कश्यपजीके वचन सुन और ब्राह्मणोंकी आज्ञाको मान महायोद्धा परशुराम समुद्रका लोचकर एक धनुषपातकी समान दूर गिरिश्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर चले गए और अब भी तहाँ ही रहते हैं, नारदजीने कहा कि-हे सुज्य ! सैंकड़ों गुणोंसे भरेहुए, भृगुओंकी कीर्त्तिको

त्वया चतुर्भद्रतरः पुत्रात् पुण्यतरस्तव ॥ २४ ॥ अयञ्जानमदा-
क्षिएयं मा पुत्रमनुत्पद्यथाः । एते चतुर्भद्रनरास्त्वया भद्रशताधिकाः ।
मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

व्यास उवाच । पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजिकम् ।
अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत् स सृञ्जयः ॥ १ ॥ तमब्रवीत्तथा-
सीनं नारदो भगवानृषिः । श्रुतं कीर्तयतो मह्यं गृहीतन्ते महाद्युतेः
आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव । स एवमुक्तः प्रत्याह
प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा ॥ २ ॥ एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यान-

बढानेवाले, महायशस्वी महाकान्तिवान् परशुरामजी जो तुझसे
और तेरे पुत्रसे धन, शरता, ज्ञान और भोगमें अधिक और परम
पुण्यवान् हैं, वे भी मरेंगे अतः हे स्वैत्य ! तू यज्ञ न करनेवाले
और दानरहित अपने पुत्रका शोक न कर, हे राजश्रेष्ठ सृञ्जय ।
ये राजे चारों गुणोंमें तुझसे श्रेष्ठ थे और दूसरे गुणोंमें भी तुझ
से परमश्रेष्ठ थे परन्तु मर गए और आगेको दूसरे भी मरेंगे, (क्यों-
कि-सब मरनेके लिये ही जन्मे हैं) ॥ २२-२५ ॥ सत्तरवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ छ ॥ छ ॥

व्यासजीने कहा, कि-हे युधिष्ठिर ! इस आयुर्वर्धक और
पवित्र सोलह राजाओंके आख्यानोको सुनकर राजा सृञ्जय कुछ
न बोला, चुपचाप ही बैठा रहा ॥ १ ॥ उसे इसप्रकार बैठा देख
कर देवर्षि नारदजी कहने लगे, कि हे महाद्युते ! मैंने तुझे जो
सोलह राजाओंका चरित्र सुनाया, तूने उसका कुछ सार समझा
अथवा शूद्र स्त्रीके पतिको श्राद्धमें जिमानेसे जैसे वह श्राद्ध व्यर्थ
जाता है तैसे ही मेरा कहना भी कहीं मट्टीमें तो नहीं मिलगया ?
नारदजीकी इस बातको सुन राजा सृञ्जय दोनों हाथ जोड़कर

मुत्तमम् । राजर्षीणां पुराणानां यज्वर्ना दक्षिणावताम् ॥ ४ ॥
 त्रिस्मयेन हृते शोके तमग्नीवार्कतेजसा । त्रिपाप्मास्म्यव्यथोपेतो
 ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच । दिष्ट्याऽपन्हुत-
 शोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि । तत्तत् प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषा-
 वादिनो वयम् ॥ ६ ॥ सृञ्जय उवाच । एतेनैव प्रतीतोहंप्रसन्नो
 यज्जवान्मम । प्रसन्नो यस्य भगवान् न तस्यास्तीह दुर्लभम् ॥ ७ ॥
 नारद उवाच । मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा । उद्धृत्य
 नरकात् कष्टात् पशुवत् प्रोक्षितं यथा ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ।
 प्रादुरासीत्ततः पुत्रः सृञ्जयस्याद्भुतप्रभः । प्रमन्नेनर्षिणा दत्तः
 कुबेरतनयोपमः ॥ ९ ॥ ततः सङ्गम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नुपः ।

उनसे बोला कि-॥ २ ॥ ३ ॥ हे महाबाहो ! यज्ञ करनेवाले,
 दक्षिणा देनेवाले इन महात्मा प्राचीन राजर्षियोंके उत्तम और
 धन धान्य देनेवाले आख्यानोको सुननेसे मेरा शोक इसप्रकार
 दूर होगया जैसे सूर्यसे अन्धकार दूर होजाता है अतः पाप और
 पीडारहित हुआ मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ ? ४-५
 नारदजी बोले कि-प्रारब्धसे तेरा शोक दूर होगया अब तुम्हें
 जो इच्छा हो उसके लिये वर माँग, तू जो कुछ भी माँगेगा वह
 सब ही तुम्हें मिलेगा और यह ध्यान रख, कि-हम झूठे लोग
 नहीं हैं ॥ ६ ॥ सृञ्जयने कहा, कि-आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो
 एन इससे ही मुझे आनन्द होता है, आप जिस पर प्रसन्न हों
 उसे संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होता ॥ ७ ॥ नारदजीने कहा
 कि-चोरोंने तेरे पुत्रको वृथा ही पशुकी समान मारडाला वह
 नरकमें पड़ा दुःख पारहा है इसलिये मैं प्रोक्षित पशु की समान
 तेरे पुत्रको नरकमेंसे निकाल कर तुम्हें फिर देता हूँ ॥ ८ ॥
 व्यासजीने कहा, कि-इतना कहते ही प्रसन्न हुए ऋषिका दिया
 हुआ कुबेरके पुत्रकी समान सृञ्जयका अलौकिक कान्तिवाला

ईजे च कृतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १० ॥ अकृतार्थश्च
भीतरश्च न च सान्नाहिको हतः । अयञ्चा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ
जीवितः पुनः ॥ ११ ॥ शूरो वीरः कृतार्थश्च मनाप्यारीन् सह-
स्रशः । अभिमन्युर्गतो वीरः पृथनाभिमुखो हतः ॥ १२ ॥ ब्रह्म-
चर्येण यान् काश्चित् प्रज्ञया च श्रुतेन च । इष्टैश्च कृतुभिर्यान्ति
तांस्ते पुत्रोक्तयान् गतः ॥ १३ ॥ विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः स्वर्ग-
भीहन्ति नित्यशः । ननु स्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः १४
तस्मात् स्वर्गगतं पुत्रमर्जुनस्य हतं रणे । न चेहानयितुं शक्यं
किञ्चिदप्राप्यभीहितम् ॥ १५ ॥ यां योगिनो ध्यानविविक्तदर्शनाः
प्रयान्ति याश्चोत्तमयज्जिनो जनाः । तपोभिरिद्वैरनुयान्ति यान्तया

पुत्र तहाँ प्रकट होगया ॥६॥ राजा सृञ्जय पुत्रसे मिलकर बड़ा
प्रसन्न हुआ और उसने बड़ी२ दक्षिणाओंवाले पुण्यदायक यज्ञ
किये ॥१०॥ राजा सृञ्जयका पुत्र कृतार्थ नहीं हुआ था, भीरु था
और युद्धके लिये तयार होकरभी नहीं मरा था उसने यज्ञ नहीं किया
था और सन्तानहीन था, परन्तु उसको चोरोंने एकाएकी मार डाला
था, इसलिये नारदजीने उसे फिर जीवित कर दिया था ॥११॥ और
अभिमन्यु तो कृतार्थ होगया था, वह वीर सहस्रों शत्रुओंको मारकर
रणारणमें मरकर स्वर्गको गया है ॥ १२ ॥ तुम्हारा भतीजा
उन अज्ञेय लोकोंमें गया है कि-जिनमें प्रपुण्य ब्रह्मचर्य, शास्त्रीय
प्रज्ञा और शास्त्रानुसार यज्ञ करनेके अनन्तर जासकते हैं ॥१३॥
विद्वान् पुरुष सदा पुण्यकर्म करके स्वर्गमें ही जाना चाहते हैं स्वर्ग
में रहनेवाला तो कोई भी प्राणी मृत्युलोकमें आना नहीं
चाहता ॥ १४ ॥ रणमें मरण होनेके कारण अर्जुनन्दन स्वर्ग
में गया है, उसको इसलोकमें लाना सदन नहीं है, किसी प्यागी
और अप्राप्य वस्तुको उद्योग करदेनेसे, नहीं पायाजासकता ॥१५॥
योगी ध्यानसे परब्रह्मका दर्शन करके जिस गतिको पाते हैं तथा

तमन्नायां ते तनयो गतो गतिम् ॥ १६ ॥ अन्तात् पुनर्भाविगतो
 विराजते राजेव वीरो ह्यमृतात्मरश्मिभिः । तामैन्दवीमात्मतनुं
 द्विजोचितां गतोभिमन्युर्न स शोकमर्हति ॥ १७ ॥ एवं ज्ञात्वा
 स्थिरो भूत्वा जह्वरीन् धैर्यमाप्नुहि । जीवन्त एव नः शोच्या न तु
 स्वर्गगतानघ ॥ १८ ॥ शोचतो हि महाराज अप्रमेयाभिवर्द्धते ।
 तस्माच्छोकं परित्यज्य श्रेयसे प्रयतेद् बुधः ॥ १९ ॥ प्रहर्षमभि-
 मानञ्च सुखप्राप्तिञ्च चिन्तयन् । एतद् बुध्वा बुधाः शोकां न
 शोकः शोक उच्यते ॥ २० ॥ एवं विद्वन् समुत्तिष्ठ प्रयतो भव
 मा शुचः । श्रुतस्ते सम्भवो मृत्योस्तपांस्यनुपमानि च ॥ २१ ॥

श्रेष्ठ यश करनेवाले पुरुष जिसगतिको पाते हैं तपस्वी बढतेहुए
 तपसे जिस गतिको पाते हैं उस ही अन्त्यगतिको तुम्हारे पुत्रने
 पाया है ॥ १६ ॥ तुम्हारा वीर पुत्र अभिमन्यु क्षत्रियदेहको
 पाकर, मृत्युके समय उस शरीरको त्यागकर फिर दिनोंके योग्य
 चन्द्रमाके शरीरको प्राप्त हुआ है और अपनी अमृतरूपी किरणों
 से चन्द्रमाकी समान प्रकाशित होरहा है अर्थात् वह चन्द्रमाका
 अंश था इसलिये चन्द्रमामें मिलगया है तुम्हें उसका शोक नहीं
 करना चाहिये ॥ १७ ॥ हे निर्दोष ! राजन् ! इस बातको इस
 प्रकार समझकर धैर्य धारण कर, अपने शत्रुओंका नाश करो
 हम जीवित पुरुष ही शोकके योग्य हैं स्वर्गमें गये हुए नहीं
 ॥ १८ ॥ हे महाराज ! शोक करते रहनेसे उलटा शोक
 बढता है, अतः बुद्धिमान् पुरुष हर्ष अभिमान और सुख
 प्राप्तिका विचार करके (मरेहुएके कल्याणके लिये) शोक नहीं
 करते हैं, शोक तो कोई वस्तु ही नहीं है, परन्तु उसका विचार
 करना ही शोक है, हे विद्वन् ! इस सबको समझ कर लड़नेके
 लिये तयार होजाओ, मदतर करो, और शोक न करो तुमने
 मृत्युकी उत्पत्ति, उसका अत्युग्र तप और उसकी सब प्राणियों पर

सर्वभूतसगर्वञ्च चञ्चलारच विभूतयः । सृञ्जयस्य तु तं पुत्रं मृतं
सञ्जीवितं पुनः ॥ २२ ॥ एवं विद्वन् महाराज मा शुचः साध-
याम्पहम् । एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २३ ॥ बागी-
शाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे । गते प्रतिमर्ता श्रेष्ठे समा-
श्वास्य युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥ पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमा-
जसाम् । न्यायाधिगतविचारानां तां श्रुत्वा यज्ञसम्पदम् ॥ २५ ॥
सम्पूज्य मनसा विद्वान् विशोकोऽभूद्युधिष्ठिरः । पुनश्चाचिन्तयद्दीनः
किंस्विद्वक्ष्ये धनञ्जयम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि

षोडशराजकीये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

समाप्तश्चाभिमन्युवधपर्वः ।

समदृष्टिकी कथा सुनी है ॥ १६-२१ ॥ मृत्युकी दृष्टिमें सब प्राणी
एकसे हैं और ऐश्वर्य चञ्चल है, यह तुम्हें सृञ्जयके पुत्रकी कथासे
प्रतीत हुआ ही होगा, उसको नारदजीने फिर जीवित कर दिया,
यह भी तुम जानते हो, अतः हे महाराज ! तुम शोक न करो,
अब मैं जाऊँगा इतना कहते ही भगवान् वेदव्यास तहाँ ही अन्त
धान होगए ॥ २२-२३ ॥ बाणीपति निर्मल आकाशकी समान
प्रभाप्रवाले भगवान् वेदव्यासजी युधिष्ठिरको ढाढ़स देकर विदा
होगए तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने इन्द्रकी समान प्रतापी न्यायसे
धन पैदा करनेवाले पहिले राजाओंकी यज्ञसम्पत्तिकी सुनकर
उनकी मनसे पूजा की और शोकको त्यागदिया, थोड़े समय बाद
ही वह फिर विचारनेलगे, कि-मैं अर्जुनसे क्या कहूँगा ॥ २४-२६ ॥
इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ छ ॥ छ ॥

अभिमन्युवधपर्व समाप्त

अथ प्रतिज्ञापर्व ।

सञ्जय उवाच । तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणधृतां क्षये ।
आदित्येऽस्तङ्गते श्रीमान् सन्ध्याकाल उपस्थितेऽव्यपयातेषु वासाय
सर्वेषु भरतर्षभ । इत्वा संशप्त कृत्वा तान् दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः ॥२॥
प्रायात् स्वशिविरं जिष्णुर्नैत्रमास्थाय तं रथम् । गच्छन्नेव च
गोविन्दं साश्रुकण्ठोभ्यभाषत ॥ ३ ॥ किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक्
च सञ्जति केशव । स्यन्दन्ति चाप्यनिष्टानि गात्रं सीदति
चाप्युत ॥ ४ ॥ अनिष्टञ्चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापसर्पति । भुवि ये
दिक्षु चात्पुत्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम् ॥ ५ ॥ बहुप्रकारा दृश्यन्ते
सर्व एवाद्यशंसिनः । अपि स्वस्ति भवेद्राज्ञः सामान्यस्य गुरोर्मम

अथ प्रतिज्ञापर्व ।

सञ्जयने कहा, किं हे भरतर्षभ ! उस दिन सूर्यनारायणके
अस्त होने पर संध्या होगई तब भयङ्कर प्राणियोंका नाश होना
बन्द होगया और सब योधा अपनी २ छावनियोंकी ओरको चले
गये इस ही समय कपिध्वज श्रीमान् अर्जुन भी दिव्य अस्त्रोंसे
संशप्तकोंके दलोंको मार अपने जयशील रथमें बैठ अपनी छाव-
नीकी ओरको आनेलगा और आते २ ही नेत्रोंमें आँसू भर
श्रीकृष्णसे कहनेलगा, कि—॥ १-३ ॥ हे केशव ! आज मेरा
हृदय न जाने क्यों धडक रहा है, मेरी बोली बन्दसी हुई जाती
है, अशुभ वाई भुजा आदि अंग फटक रहे हैं और न जाने
क्यों मेरा शरीर जलानेला है ४ मेरे हृदयमेंसे कुछ अनिष्ट हुआ
है यह बात दूर ही नहीं होती और पृथ्वी तथा दिशाओंमें
होतेहुए भयङ्कर उत्पात मुझे पीडा दे रहे हैं ५ यह उत्पात नाना
प्रकारसे मेरे सामने आ रहे हैं और इन सबोंसे बड़ा भारी अनिष्ट
हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है, मेरे बड़े भाई राजा युधिष्ठिर
भाइयों और मंत्रियोंसहित सकुशल तो होंगे ॥६॥ श्रीकृष्णजीने

वामुदेव उवाच ॥ व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः साक्षात्स्थ भविष्यति ।
 मा शुचः किञ्चिदेवान्यत् तवानिष्टं भविष्यति ॥ ७ ॥ सञ्जय
 उवाच । ततः संध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने । कथयन्तौ
 रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ ८ ॥ ततः स्वशिविरं
 प्राप्तौ हतानन्दं हतस्त्रिपम् । वामुदेवोर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म मुहु-
 ष्करम् ॥ ९ ॥ ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिविरं परवीरहा । धीम-
 त्सुरब्रवीत् कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १० ॥ नदन्ति नाद्य तूर्याणि
 माङ्गल्यानि जनार्दन । मिश्रा दुन्दभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चादम्बरैः
 सह ॥ ११ ॥ वीणा नैवाद्य वाद्यन्ते शम्पातालस्वनैः सह । मङ्ग-
 ल्यानि च गीतानि गायन्ति च पठन्ति च ॥ १२ ॥ स्तुतिपुक्तानि
 रम्पाणि मयानीकेषु वन्दिनः । योत्रात्रापि हि मां दृष्ट्वा निवर्त्तन्ते
 ह्यधोमुखाः ॥ १३ ॥ कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाभिवदन्ति

कहा कि-तेरे भाई निश्चय ही मंत्रियों सहित सकुशल होंगे, तू
 शोक मतकर मुझे प्रतीत होता है, तहाँ और ही कुछ अनिष्ट
 हुआ है ७ सञ्जयने कहा कि-तदनन्तर वे दोनों वीर संध्या-
 बन्दन करके रथमें बैठकर वीरोंके नाशक मुहुषं बनेहुए वृत्तान्त
 को कहतेहुए अपनी छावनीके पास आपहुँचे उस समय शत्रुओं
 के वीरोंको नष्ट करनेवाला अर्जुन छावनीको आनन्दशून्य,
 फीकी और बिगड़े हुए आकारकी देख घबडाकर श्रीकृष्ण
 से कहने लगा, कि-॥८-१०॥ हे जनार्दन ! आज न मांगलिक
 तुरहियें बज रही हैं तथा आज दुन्दुभियोंके स्वरसे मिलेहुए शंखों
 का बडाभारी शब्द भी सुनाई नहीं आता ॥ ११ ॥ और न
 आज शम्पाओंके तालस्वरोंके साथ वीणाएँ ही बज रही हैं, न
 आज मेरी सेनामें वन्दीजन स्तुतिसे भरेहुए मांगलिक गीतोंको
 ही गाते हैं और न माङ्गलिक पाठोंको पढ़ा रहे हैं और योधा
 भी मुझे देखकर नीचेको मुख करके चले जाते हैं ॥ १२-१३ ॥

माम् । अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ॥ १४ ॥ न
 हि शुध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम् । अपि पाञ्चालराजस्य
 विराटस्य च मानद ॥ १५ ॥ सर्वेपाञ्चैव योधानां सामग्र्यं स्या-
 न्ममाच्युत । न च मामथ सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह । रणा-
 दायान्तमुचितं प्रत्युधाति हसन्निव ॥ १६ ॥ सञ्जय उवाच ।
 एवं सङ्कथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिविरं स्वकम् । ददृशाते भृशा
 स्वस्थान् पाण्डवान्प्रचेतसः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा भ्रातृश्च पुत्राश्च
 विपना वानरध्वजः । अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥
 मुखवर्णोऽपसन्नो वः सर्वेपामेव लक्ष्यते । न चाभिमन्युं पश्यामि
 न च मां प्रतिनन्दथ ॥ १९ ॥ मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो
 विनिर्मितः । न च वस्तस्य भेत्तास्ति विना सौभद्रमर्भकम् ॥ २० ॥

वे पहिलेकी समान कामोंको करके मुझसे बातें नहीं करते हैं,
 हे माधव ! क्या आज मेरे भाई सकुशल हैं ? १४ अपने मनुष्यों
 को व्याकुल देखकर मेरा चित्त कहता है, कि-कुशल नहीं हैं,
 हे अच्युत ! हे मानद ! राजा पाञ्चाल और राजा विराट तथा
 मेरी सेनाके सब योधा तो कुशलसे हैं ? मैं जब रणभूमिसे लौट
 कर आता था उस समय सुमद्रानन्दन अभिमन्यु अपने भाइयोंके
 साथ हैंसते २ मेरे पास आता था, वह भी आज मेरे सामने क्यों
 नहीं आया ॥ १५ ॥ १६ ॥ सञ्जयने कहा, कि-इस प्रकार
 कहते २ वे दोनों अपनी छावनीमें जाघुसे और उन्होंने पाण्डवों
 को घबड़ाये और अचेत दशार्मे देखा ॥ १७ ॥ वानरध्वज अर्जुन
 अपने भाई और पुत्रोंकी ऐसी दशा देखकर मनमें घबड़ाया और
 अभिमन्युको न देखकर यह कहनेलगा, कि-॥ १८ ॥ अरे !
 आज तुम सबोंके मुखोंका रङ्ग फीका क्यों पड़ रहा है ? अभि-
 मन्यु मुझे क्यों नहीं दीखता ? तथा आज तुम मुझसे प्रेमपूर्वक
 बातें क्यों नहीं करते ? ॥ १९ ॥ मैंने सुना है, कि-आज

न चोपदिष्टस्तस्यासीन्पयानीकादिनिर्गमः । कश्चिन्न बालो
 मुष्माभिः परानीक प्रवेशिनः ॥ २१ ॥ भित्तवानीकं महेष्वासः
 परेषां बहुशो युधि । कश्चिन्नं निहनः संख्ये सौमद्रः परवीरहार
 लोहिताक्षं महाबाहुं जात सिंहमिन्द्रिप्रु । उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमा-
 योधने इतः ॥ २३ ॥ सुकुमारं महेष्वासं वासवस्यात्मजात्मजम् ।
 सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने इतः ॥ २४ ॥ सुभद्रायाः
 प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च । अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोव-
 धीत कालमोहितः ॥ २५ ॥ सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महा-
 त्मनः । विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हनः ॥ २६ ॥ बाष्पेय-
 दयितं शूरं मया सततलालितम् । यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि

द्रोणाचार्यने चक्रव्यूह रचा था, तुममें वच्चे अभिमन्युके सिवाय
 ऐसा कोई नहीं है जो उस व्यूहको तोड़ सकता ॥२०॥ मैंने उसे
 चक्रव्यूहमें घुसना तो बतला दिया था परन्तु उसको तोड़नेके
 अनन्तर उसमेंसे कैसे निकलना चाहिये, यह नहीं बताया था
 अरे ! क्या तुमने उस बालकको शत्रुसेनामें भेजदिया था? २१ वह
 महाधनुर्धर वीर शत्रुओंका नाशकर चक्रव्यूहको तोड़ युद्धमें बहुत
 से शत्रुओंको मारकरके उनके हाथसे मारा तो नहीं गया? २२।
 लाल नेत्रोंवाला, महाभुज पहाड़ी सिंह और श्रीकृष्णकी समान
 अभिमन्यु बतलाओ तो सही कहीं रणमें मारा तो नहीं गया ? २३
 अरे ! रे ! बोलो २ सुकुमार, महाधनुषधारी, इन्द्रके पुत्रका पुत्र
 सदा मेरा प्यारा अभिमन्यु क्या रणमें मारा गया ? ॥ २४ ॥
 वह सुभद्राका प्यारा पुत्र था, द्रौपदी, श्रीकृष्ण और माता कुन्ती
 का भी दुलारा था । ओः ! कालसे मोहित हुए किसने उसको
 मारहाला ? उसका मुझे नाम बताओ ? ॥ २५ ॥ वह पराक्रम
 शास्त्राभ्यास और कीर्तिमें महात्मा श्रीकृष्णकी जोड़का था तो भी
 कैसे मारा गया ॥ २६ ॥ यदि मैं श्रीकृष्णके प्यारे और शूर

यमसादनम् ॥ २७ ॥ मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगच्छणम् ।
 मत्तद्विरदविक्रान्तं सिंहपोतमित्रोद्धतम् ॥ २८ ॥ स्मिताभिभाषिणं
 दान्तं गुह्यवाक्यकरं सदा । बाल्येष्वतुल्यकर्पाणं प्रियवाक्यममत्स-
 रम् ॥ २९ ॥ महोत्साहं महाबाहुं दीर्घरात्रीरलोचनम् । भक्तानु-
 कम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम् ॥ ३० ॥ कृतज्ञं ज्ञान-
 सम्पन्नं कृतास्त्रपनिवर्त्तिनम् । युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विपतां भय-
 वर्धनम् ॥ ३१ ॥ स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितृणां जययुद्धिनम् । न
 च पूर्वं प्रहर्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम् ॥ ३२ ॥ यदि पुत्रं न पश्यामि-
 यास्यामि यमसादनम् । रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम् ३३
 मयाध्यर्थयुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम् । प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं

वीर अपने लड़ते अभिमन्युको नहीं देख पाऊँगा तो (इस ही
 समय) यमलोकमें जाऊँगा ॥ २७ ॥ कोमल और घुँघराले
 केशोंवाले, मृगके बच्चेकी समान नेत्रोंवाले, मत्तवाले हाथीकी
 समान पराक्रमी, सिंहके बच्चेकी समान उठतेहुए, मुस्कुरा कर
 बोलनेवाले, चतुर, सर्वदा बड़ोंकी आज्ञाको माननेवाले, बालक
 होने पर भी अनुत्तपराक्रमी, मीठा बोलनेवाले, निष्कपट बड़े
 उत्साही, महाभुज, कमलकी समान विशाल नेत्रोंवाले, भक्तों पर
 दया करनेवाले, सरल हृदयवाले नीचोंके पास न बैठनेवाले,
 क्रिये हुएको माननेवाले, शानी, अस्त्रकुशल, युद्धमें पीछेको पैर
 न रखनेवाले, किन्तु युद्धसे प्रसन्न होनेवाले, सर्वदा शत्रुओंको
 भय देनेवाले, अपने प्रनुष्योंके प्यारे, प्रिय करनेमें तत्पर चाचा
 ताऊओंकी विजयके इच्छुक, संग्राममें पहले प्रहार न करनेवाले
 और सावधान रहनेवाले, रथियोंकी गणनाके समय महारथीरूप
 से मानेहुए अपने मित्रपुत्र अभिमन्युको यदि मैं न देख पाऊँगा
 तो यमलोकको चला जाऊँगा ॥ २८-३३ ॥ संग्राममें मुझसे
 बलमें ड्योढ़े, तरुण, भुजबलधारी, मेरे, प्रद्युम्नके और श्रीकृष्ण

केशवस्य ममैव च ॥ ३४ ॥ यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यम-
सादनम् । सुनसं सुललाटान्तं स्वन्निभ्रूदशनच्छदम् ॥ ३५ ॥
अपश्यतस्तद्ददनं का शान्तिर्हृदयस्य मे । तन्वीस्वनमुखं भ्रम्यं
पुंस्कोकिलसमध्वनिम् ॥ ३६ ॥ अश्रुएवतः स्वनं तस्य का शान्ति-
र्हृदयस्य मे । रूपं चाप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम् ॥ ३७ ॥
अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे । अभिवादनदत्तं तं
पितृणां वचने रतम् ॥ ३८ ॥ नाद्याहं यदि पश्यामि का शान्ति-
र्हृदयस्य मे । सुकुमारः सदा वीरो महाहृदयनोचितः ॥ ३९ ॥
भूमावनाथवच्छेतं नूनं नाथवर्ता वरः । शयानं समुपासन्ति यं
पुरा परमस्त्रियः ॥ ४० ॥ तमद्य विप्रविहङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः ॥

के प्यारे, सुन्दर नासिका सुन्दर मस्तक, सुन्दर नित्र, भौं और
ओठोंवाले अपने पुत्र अभिमन्युको यदि मैं देख न पाऊँगा तो
(अवश्य) मरजाऊँगा ॥ ३४-३५ ॥ ऐसे पुत्रके मुखको देखे
बिना मेरे हृदयको शान्ति कैसे मिलसकती है, वीणाके स्वरकी
समान सुखदायक और रमणीय तथा कोयलकी कूककी समान
पंचमस्वरमें बोलने वाले पुत्रकी वाणीको बिना सुने मुझे क्या
शान्ति मिलेगी ? उसका जैसा अनुपम रूप था, वैसा तो देवताओं
को भी मिलना दुर्लभ है, उस वीरको बिना देखे मेरे हृदयको
क्या शान्ति मिलेगी ? प्रणाम करनेमें चतुर और पिता, चाचा
ताउओंकी आज्ञा बजानेवाले पुत्रको यदि मैं आज नही देखूँगा
तो मेरे हृदयमें शान्ति कैसे मिलेगी ? सुकुमार, महाराजाकी
समान वीर अभिमन्यु सर्वदा बहुमूल्य पलंग पर सोता था,
वह आज अनाथकी समान पृथ्वीपर सोरहा है, हा ! पहिले सोतेमें
जिस अभिमन्युकी बड़ी २ स्त्रियें सेवा करती थीं, आज उसका
शरीर विधगया है और अपवित्र गीदहियें उसकी सेवा कर रही
हैं ! पहिले सोते हुए जिस अभिमन्युको सूत, मागध और बन्दी-

यः पुरा बोध्यते सुतः सूतपागधवन्दिभिः ॥ ४१ ॥ बोध्यन्त्यद्य
तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः । छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद्ददनं
शुभम् ॥ ४२ ॥ नूनमद्य रजोध्वस्तं रणे रेणुः करिष्यति । हा पुत्र
कावितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥ ४३ ॥ भाग्यहीनस्य कालेन यथा
मे नीयसे बलात् । सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ४४
स्वभाभिर्पोहिता रम्या त्वयात्यर्थं विराजते । नूनं वैवस्वतश्च
त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम् ॥ ४५ ॥ शनकतुर्दुनेशश्च मात्सर्पन्त्य-
भीरुकम् । एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग्यथा ॥ ४६ ॥
दुःखेन महताविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत । कश्चित् स कदनं कृत्वा
परेषां कुरुनन्दन ॥ ४७ ॥ स्वर्गतोपिमुखः संख्ये युध्यमानो नर-
र्षभैः । स नूनं बहुभिर्भ्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥ ४८ ॥ असहायः

जन जगाते थे आज उसको ही माँसाहारी जीव भयानक स्वर्गसे
जगाते हैं ! उसके छत्रकी छायाके योग्य सुन्दर मुखको रणकी
धूलि निश्चय ही मलिन कर रही है ! हे पुत्र ! मेरा मन तो
चाहे कितनी ही देर कर तुझे देखता रहता था तब भी नहीं
भरता था ! मुझ भाग्यहीनके ऐसे पुत्रको काल बलात्कारसे क्यों
लिये जाता है ? वास्तवमें यमराजकी सभा सत्पुरुषोंके योग्य है ३४-४४
हे पुत्र ! वह यमसभा तेरी कान्तिसे मनोहर और प्रकाशित
होकर बहुत ही दिपनेलगी होगी ! यम, वरुण, इन्द्र और कुबेर
भी तुझसे निहट तथा प्रिय अतिथिका अच्छा सत्कार करेंगे !
इसप्रकार जिसकी नाव टूटगई हो ऐसे वनियेकी समान बहुतही
विलाप करके महादुःखमें डूबाहुआ अर्जुन युधिष्ठिरसे बोला,
कि—हे कुरुनन्दन ! क्या परम श्रेष्ठ अभिमन्यु तयारहुए शत्रुओंका
नाश कर बहुतसे श्रेष्ठ वीरोंसे युद्ध करताहुआ स्वर्गको चला
गया ? जब वह नरश्रेष्ठ बहुतसे वीरोंसे युद्ध करते २- थकगया
होगा, तब उस असहायने सहायताकी इच्छासे निश्चय ही मुझे

सहायार्थी मामनुध्यातवान् ध्रुवम् । पीडयमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्ण-
द्रोणकृपादिभिः॥४६॥ नानालिंगैः सुधौतार्घ्रमप्य पुत्रोऽल्पचेतनः ।
इह मे स्यात् परित्राणं पितेति स पुनः पुनः ॥ ५० ॥ इत्येवं विला-
पन् मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः । अथवा मत्प्रमूतः स स्वसौयो
माधवस्य च ॥ ५१ ॥ सुभद्रायां च सम्भूतो न चैवं वक्तुमर्हति ।
वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ ५२ ॥ अपश्यतो दीर्घबाहु
रक्ताक्षं यन्न दीर्यते । कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः ५३
स्वसौये बासुदेवस्य मम पुत्रोऽक्षिपन् शरान् । यो मां नित्यमदी-
नात्मा प्रत्युद्रम्याभिनन्दति ॥ ५४ ॥ उपायान्तं रिपून् इत्वा सोद्य
मां किं न पश्यति । नूनं स पातितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ५५

याद किया होगा ! कर्ण, द्रोण और कृपाचार्य आदि क्रूर योधा
जब नाना प्रकारके तेज नोकवाले बाणोंसे अभिमन्युको पीड़ित
करनेलगे होंगे, उस समय मूर्छित होतेहुए मेरे पुत्रने वार २
विचारा होगा कि-“ यदि इस समय मेरे पिता होते तो मेरी रक्षा
करते” मुझे विश्वास है, कि-इसप्रकार मनमें विलाप करतेहुए मेरे
पुत्रको शठोंने भूमिपर गिरादिया होगा, नहीं? ऐसा नहीं होसकता,
वह मुझसे उत्पन्नहुआ है और श्रीकृष्णका भाञ्जा है तथा सुभद्राके
गर्भसे उत्पन्न हुआ है, अतः वह ऐसा नहीं कहसकता, ओ! यह मेरा
हृदय लोहेके सारका बना बड़ा ही कठोर है, जो दीर्घबाहु रक्तनेत्र
अभिमन्युके न दीखने पर भी अभीतक नहीं फटा, मेरे पुत्र और
श्रीकृष्णके भाञ्जे बालक अभिमन्युके ऊपर दुष्ट धनुषधारियोंने
मर्मभेदी बाण क्यों छोड़े? मैं प्रतिदिन जब शत्रुओंका नाश करके
आताथा, उस समय उदारमनवाला अभिमन्यु मेरे पास आकर मुझे
अभिनन्दन देता था, हा! वह आज मेरे पास क्यों नहीं आता? वह
आवे कहाँसे उसको तो शत्रुओंने मारडाला और लोहलुहान
हुआ रणभूमिमें सोरहा है ॥ ४५-५५ ॥ (अहा हा !) उसको

शोभयन्मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः । सुभद्रामनुशोचामि या
 पुत्रमपलायिनम् ॥ ५६ ॥ रथो विनिहतं श्रुत्वा शोकार्त्ता वै
 चिनन्दयति । सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ५७ द्रौपदी
 चैव दुःखार्त्ते ते च वक्ष्यामि किन्वहम् । वज्रसारमयं नूनं हृदयं
 यन्न यास्यति ॥ ५८ ॥ सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोक-
 कशिताम् । दृष्टानां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ॥ ५९ ॥
 युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुतो वीरानुपालभन् । अशक्नुवन्तो
 व्रीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः ॥ ६० ॥ किं मोदध्वम-
 धर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां वलम् । किन्तयोन्निप्रियं कृत्वा केशत्रा-
 र्जुनयोर्मृधे ॥ ६१ ॥ सिंहवन्नदथ प्रीताः शोककाल उप-

शत्रुओंने मारगिराया तो भी वह कुमार अपने अर्जुनसे पृथ्वीको
 सूर्यकी समान सुशोभित कर रहा है ! मुझे अपनी तो कुछ चिन्ता
 नहीं है, परन्तु सुभद्राका ध्यान आते ही बड़ा खेद होता है, वह
 जब रणमें पीछेको न हटनेवाले अपने पुत्रको मारा गया सुनेगी
 तब निश्चय ही दुःखमें डूबकर मरजायगी, हा ! अभिमन्युको न
 देखने पर सुभद्रा मुझसे क्या कहेगी ? अरेरे ! दुःखसे व्याकुल
 हुई सुभद्रा और द्रौपदीसे मैं क्या कहूँगा ? मेरा हृदय निःसन्देह
 वज्रका ही बना हुआ है, जो रोती हुई और शोकसे दुबली
 हुई अभिमन्युकी स्त्रीके रोनेका ध्यान आने पर भी फटकर
 हजार टुकड़े नहीं होजाता विजयसे गर्वमें भरे कौरवोंका सिंह-
 नाद मुझे सुनाई आया था ॥ ५६-५९ ॥ तथा वीर पुरुषोंको
 ताने देतेहुए युयुत्सुकी बात भी श्रीकृष्णने सुनी थी, कि-अरे
 अधर्मियों ! तुम अर्जुनको तो हरा नहीं सके और अब इस बालक
 को मारकर क्या इतरारहे हो, अर्जुनका पराक्रम देखना
 अरे ! तुमने युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका अप्रिय कार्य करके
 अपने लिये भी शोकका समय बुलालिया है, फिर तुम सिंहकी

स्थिते । आगमिष्यति वा । क्षिप्तं फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६२ ॥
 अधर्षो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम् । इति तान् परिभा-
 षन् वै वैश्यापुत्रो महामतिः ॥ ६३ ॥ अपायाञ्छस्त्रमुत्सृज्य कोप-
 दुःखसमन्वितः । किमर्थमेतन्नाख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ६७
 अथाक्षन्तानहं कुरांस्तदा सर्वान् महारथान् । सञ्जय उवाच ।
 पुत्रशोकादितं पार्थ ध्यायन्तं साश्रूलोचनम् ॥ ६५ ॥ निगृह्य
 वासुदेवस्तं पुत्राभिर्भिरभिसुनम् । मैत्रमित्यब्रवीत् कृष्णस्तीव्रशोक-
 समन्वितम् ॥ ६६ ॥ सर्वेषामपेयं वै पन्थाः शूराणामनिवर्त्तिनाम् ।
 क्षत्रियाणां विशेषेण तेषां युद्धेन जीविका ॥ ६७ ॥ एषा वै
 युध्यमानानां शूराणामनिवर्त्तिनाम् । विहिता सर्वशास्त्रार्गतिर्प-
 तिमर्ता वर ॥ ६८ ॥ ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्त्तिनाम् ।

समान क्यों गरज रहे हो ? तुम्हारे पापका फल तुम्हें बहुत ही
 शीघ्र मिलेगा, तुमने घोर पाप किया है, वह चिरकाल तक निष्फल
 कैसे रहसकता है ? इसप्रकार कौरवोंसे कह कर वैश्यापुत्र प्रयुत्सु
 क्रोध और शोकसे व्याप्त होनेके कारण शस्त्रोंको फेंककर युद्धमेंसे
 बाहर चला गया था हे कृष्ण ! उस समय तुमने मुझसे यह बात क्यों
 नहीं कही यदि तुम उस समय ही मुझसे यह बात कहदेते तो मैं
 उन सब कूर महारथियोंको भस्म कर डालता, सञ्जयने कहा, कि-
 हे धृतराष्ट्र ! पुत्रके शोकसे पीड़ा पांताहुआ अर्जुन मनमें पुत्रका स्म-
 रण करके रो रहा था और पुत्रके मरणसे बड़ी भारी चिन्ता कर
 रहा था तथा बड़े भारी शोकमें पड़ा हुआ था, उस समय वासुदेवने
 उसको उपदेश देतेहुए कहा, कि-“इसप्रकार शोक न कर ६५-६६
 क्योंकि-मरना तो सबको ही है और युद्धसे जीविका करनेवाले
 तथा संग्राममें पीछेको न हटनेवाले सब वीर क्षत्रियोंकी यह तो गति
 होनी ही है ॥६७॥ हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! शास्त्रको जाननेवालोंने
 रणमें पीठ न दिखाकर लड़नेवाले वीरोंकी यही गति बनायी है ६८

गतः पुण्यकृतौल्लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ ६६ ॥ एतच्च सर्व-
वीराणां कञ्चित् भरतर्षभ । संग्रामेऽभिमुखो मृत्युः मामुयादिति
मानद ॥ ७० ॥ स च वीरान् रणे हत्वा राजपुत्रान् महाबलान् ।
वीरैराकाञ्चित् मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे ॥ ७१ ॥ मा शुचः
पुरुषव्याघ्र पूर्वरेप सनातनः । धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां
रणे क्षयः ॥ ७२ ॥ इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम । त्वयि
शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ ७३ ॥ एतांश्च वचसा साम्ना
समारवासय मानद । विदितं वेदितव्यन्ते न शोकं कर्तुं मर्हसि ७४
एवमारवासितः पार्थः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । ततोब्रवीत्तदा भ्रातृन्
सर्वान् पार्थः सगद्गदान् ॥ ७५ ॥ स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घ-
राजीवलोचनः । अभिमन्युर्यथा वृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥ ७६ ॥

रणमें पीछेको न हटनेवाले पुरुषोंकी मृत्यु रणमें ही होती है,
अभिमन्यु पवित्र लोकोंमें गया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ६६
हे भरतर्षभ । हे मानद ! इस बातको तो सब वीर चाहते हैं, कि-
संग्राममें शत्रुके सामने मरें ॥ ७० ॥ अभिमन्यु महाबली राजपुत्रोंको
मारकर वीरोंकी चाही हुई गतिको ही प्राप्त हुआ है ७१ इसलिये
हे पुरुषव्याघ्र ! तू शोक न कर, पूर्वकालके महात्माओंने नियम बाँध
दिया है और यह सनातन नियम है, कि-क्षत्रियोंकी रणमें मृत्यु
होती है ॥ ७२ ॥ हे भरतसत्तम ! तू शोक कर रहा है, यह देखकर
तेरे ये भाई बन्धु और राजे दीनसे हो रहे हैं ॥ ७३ ॥ हे मानद !
तू इनको धीरजके वचनोंसे समझा तूने जानने योग्य वस्तुको
जान लिया है, अतः तुझे शोक नहीं करना चाहिये ॥ ७४ ॥
अद्भुत चरितवाले श्रीकृष्णके इसप्रकार समझाने पर अर्जुनने
शोकसे रूँधे हुए कण्ठवाले अपने सब भाइयोंसे कहा, कि- ७५ ।
लम्बी भुजा, पुण्ड्र कंधा और कमलकी समान नेत्रोंवाला अभि-
मन्यु किसप्रकार मरा, यह मैं प्रारम्भसे अन्ततक सुनना चाहता

सनागस्यन्दनद्वयान् द्रव्यध्वं निहताग्नया । संग्रामे सानुवन्धा-
स्तान् मम पुत्रस्य वैरिणः ॥७७॥ कथञ्च नः कृतास्त्राणां सर्वेषां
शस्त्रपाणिनाम् । साभिद्रो निधनं गच्छेद्वज्रिणापि समागतः ॥७८॥
यद्येवमहमज्ञास्यमंशक्तावक्षणे मम । पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालान् मया
गुप्तो भवेत्ततः ॥ ७९ ॥ कथञ्च नो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्च-
ताम् । नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य नः परैः ॥८०॥ अहो नः
पौरुषं नास्ति न च वोस्ति पराक्रमः । यत्राभिमन्युः समरे परयतां
वो निपातितः ८१ आत्मानमेव गह्यं यदहं वै मुदुर्वलान् । युष्मा-
नाशाय निर्यातो भीरुनकृतनिश्चयान् ८२ आहोस्विद् भूषणार्थाय
वर्मशस्त्रायुधानि नः । वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरत्तताम् ८३

हूँ ॥ ७६ ॥ अपने पुत्रके वैरियोंको मैं हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों सहित अभी रणमें मार डालूँगा, इसको तुम देखना ॥७७॥
अरे ! तुम सब अस्त्रकुशल हो और तुम सब शस्त्र धारण किये
खड़े थे, उस समय अभिमन्यु इन्द्रके साथ लड़ता तो भी वह मारा
नहीं जा सकता था, फिर वह कैसे मारा गया ? ॥ ७८ ॥ शोक है
यदि मैं यह जान पाता कि—पाण्डव और पाञ्चाल राजे मेरे पुत्रकी
रक्षा नहीं कर सकेंगे तो मैं स्वयं ही उसकी रक्षा करता ॥७९॥ तुम
रथोंमें बैठकर बाणोंको छोड़ रहे थे, तुम्हारा तिरस्कार करके
शत्रुओंने अभिमन्युको कैसे मार डाला ? ॥ ८० ॥ हा ! तुममें न
पराक्रम है न पौरुष है, क्योंकि—तुम्हारे सामने शत्रुओंने अभि-
मन्युको मार डाला ॥८१॥ परन्तु इस विषयमें मुझे अपने आपको
ही धिक्कार देना चाहिये, कि—“तुम डरपोक और बड़े निर्वल
हो” यह जानकर भी मैं अपने पुत्रको तुम्हें सौंपकर चला गया ८२
अथवा तुम्हारे कवच, शस्त्र और आयुध क्या शोभाके ही लिये
हैं ? और क्या बाणी सभामें बोलनेके ही लिये हैं, कि—तुम मेरे
पुत्रकी रक्षा न कर सके ॥ ८३ ॥ श्रेष्ठ धनुष और तलवारको

एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठन्वापवरासिमान् । न स्माशक्यत बीभ-
त्सुः केनचित् प्रसवीक्षितुम् ॥ ८४ ॥ तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्व-
सन्तं मुहुर्मुहुः । पुत्रशोकाभिसन्तप्तमश्रुपूर्णमुखन्तदा ॥ ८५ ॥
न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा मुहूर्जुनम् । अन्यत्र वासुदे-
वाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात् ॥ ८६ ॥ सर्वास्ववस्थासु हिता-
वर्जुनस्य मनोजुगौ । बहुमानात् प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः ८७
ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् । राजीवलोचनं क्रुद्धं
राजा वचनमब्रवीत् ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुन-
कोपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

युधिष्ठिर उवाच । त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति ।
प्रयत्नमकरोत्तीव्रपाचार्यो ग्रहणे मम ॥ १ ॥ व्यूढानीका वयं द्रोणं

धौधनेवाला अर्जुन इतना कहकर चुप हो बैठगया, उस समय
उसके सामने कोई भी न देखसका ॥ ८४ ॥ यमराजकी समान
क्रोधमें भरकर बारम्बार साँस छोड़तेहुए और पुत्रशोकसे व्या-
कुल होकर आँसू बहातेहुए अर्जुनके सामने श्रीकृष्ण और बड़े
भाई युधिष्ठिरके सिवाय और कोई भी देखनेका या बोलनेका
साहस नहीं करसकता था, ॥ ८५-८६ ॥ सब अवस्थाओंमें हित-
कारी होनेसे तथा प्यारे और माननीय होनेसे वे दोनों ही उससे
कुछ कहसकते थे ॥ ८७ ॥ तदनन्तर पुत्रशोकसे बड़े ही दुःखी
मनवाले और कोपायमान हुए राजीवलोचन अर्जुनसे राजा
युधिष्ठिर बोले ॥ ८८ ॥ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥

युधिष्ठिरने कहा, कि—हे महाबाहो ! तुम्हारे संशप्तकोंकी ओरको
चलेजाने पर, द्रोणाचार्य मुझे पकड़नेके लिये बड़ा प्रयत्न करने
लगे ॥ १ ॥ रथसेनाके व्यूहरचनासे साथमें लेकर अपने ऊपर
चढ़कर आयेहुए द्रोणको हमने भी व्यूहरचना करके चारों ओरसे

वारयामः स्म सर्वशः । प्रतिव्यूह रथानीकं यत्मानं तथा रणं ॥ २ ॥
 स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते । अस्मानभिनगमाशु
 पीडयन्निशितैः शरैः इते पीडयमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः ।
 प्रतिवीक्षितुमप्यार्जो भेत्तुन्तत् कुत एव तु ॥ ४ ॥ वयं त्वमतिमं
 वीर्यं सर्वं सौभद्रमात्मजम् । उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीक-
 मिति प्रभो ॥ ५ ॥ स तथा चोदितोऽप्याभिः सदश्व इव वीर्य-
 बान् । असह्यमपि तं भारं बौद्धमेवोपचक्रमे ॥ ६ ॥ स तवास्त्रोपदे-
 शेन वीर्येण च समन्वितः । प्राविशत्तद्वलं बालः सुपर्ण इव साग-
 रम् ॥ ७ ॥ तेऽनुयाता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाह्वये । प्रवेष्टुमाप्तास्ते-
 नैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥ ८ ॥ ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात
 जयद्रथः । वरदानेन रुद्रस्य सर्वान्नः समचारयत् ॥ ९ ॥ ततो

रोकदिया ॥ २ ॥ रथी उनको रोक रहे थे तथा मेरी रक्षा भी
 कर रहे थे, तो भी द्रोणाचार्य तेज बाणोंसे पीड़ा देते हुए हमारी
 ओरको बढ़ते ही चले आते थे ॥ ३ ॥ द्रोणके बाणोंसे पीड़ित
 होते हुए हमारे योधा द्रोणकी सेनाकी ओर आँख भी न उठा सके,
 फिर उसको नष्ट तो करते ही क्या ? ॥ ४ ॥ हे भाई ! उस समय
 हम सबोंने वीरतामें अपनी समतान रखनेवाले अभिमन्युसे कहा,
 कि—हे तात ! द्रोणाचार्यके चक्रव्यूहको तोड़ डाल ॥ ५ ॥
 हमने इस प्रकार प्रेरणाकी तब उत्तम घोड़ेकी समान चलवान्
 अभिमन्युने असह्य भाररूप कार्यको भी करना आरंभ कर
 दिया ॥ ६ ॥ तेरा उत्साह और अस्त्रविद्या सीखा हुआ वह
 अभिमन्यु द्रोणकी सेनामें ऐसे घुस गया जैसे समुद्रमें गरुड घुस-
 जाता है ॥ ७ ॥ हम भी उस वीरके बनाये हुए मार्गसे चक्रव्यूहमें
 घुसनेके लिये उसके पीछे २ जाने लगे, परन्तु हे तात ! सिंधु
 देशके राजा नीच जयद्रथने शिवजीके वरदानके कारण हम
 सबोंको सेनामें घुसनेसे रोक दिया ॥ ८-९ ॥ तदनन्तर द्रोणा-

द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च । कृतवर्मा च सौभद्रं
 पट्टाः पर्यवारयन् ॥ १० ॥ परिकार्यं तु तैः सर्वैर्धुधि वालो
 महारथैः । यतमानः परं शक्यता बहुभिर्विरथीकृतः ॥ ११ ॥
 ततो दौशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् । संशयं परमं प्राप्य
 दिष्टान्तेनान्वयोजयत् ॥ १२ ॥ स तु हत्वा सहस्राणि नरारव-
 रथदन्तिनाम् । अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च ॥ १३ ॥
 राजपुत्रसहस्रे द्वे वीराभ्यालक्षितान् बहून् । बृहद्वलञ्च राजानं
 स्वर्गेणाजौ प्रयोज्य ह ॥ १४ ॥ ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमृ-
 जग्मिवान् । एतावदेव निवृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ॥ १५ ॥ स
 चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् । ततोर्जुनो वचः श्रुत्वा
 धर्मराजेन भाषितम् ॥ १६ ॥ हा पुत्र इति निःश्वस्य व्याथतो

चार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, बृहद्वल और कृतवर्मा इन
 छः महारथियोंने अभिमन्युको चारों ओरसे घेरलिया ॥ १० ॥ और
 उस बालकको चक्रव्यूहमें बंद करलिया, जब बालक अभिमन्यु परम
 पराक्रमसे युद्ध कर उनका तिरस्कार करने लगा, तब बहुतसे
 महारथियोंने उसका रथ तोड़कर उसको रथहीन करदिया ॥ ११ ॥
 तब दुःशासनके पुत्रने रथहीन होनेके कारण बड़े संकटमें फँसे
 हुए अभिमन्युको, अभिमन्युकी मारसे गिरकर भी फिर मारबधवश
 मारडाला ॥ १२ ॥ परम धर्मात्मा अभिमन्युने पहिले एक सहस्र
 हाथी घोड़े, रथी और भजुण्योंको मारा, फिर आठ सहस्र रथी,
 नौ सौ हाथी, दो हजार राजकुमार बहुतसे अज्ञात वीर और
 राजा बृहद्वलको मारकर स्वयं मारागया, हम अभिमन्युके मरणसे
 शोकमें डूबरहे हैं ॥ १३-१५ ॥ पुरुषोंमें व्याघ्रकी समान तेरा
 पुत्र स्वर्गमें गया है, अर्जुन धर्मराजके कहे इन वचनोंको सुन
 कर ॥ १६ ॥ हा ! पुत्र ! इसप्रकार सौंसे लेकर पीड़ित हो पृथ्वी
 पर गिर पड़ा, उस समय सबके मुख पीले पड़गए, तथा वे सब

न्यपतद् भुवि । विपणवदनाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ १७ ॥
 नेत्रैरनिमिपैर्दीनाः प्रत्ययैस्तन् परस्परम् । प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः
 क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥ कम्पमानो ज्वरेणेव निरवसंश्च मुहुर्मुहुः ।
 पाणिं पाणीं विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान् । उन्मत्त इव विमत्त-
 न्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ अर्जुन उवाच । सत्यं वः प्रतिजा-
 नापि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् । न चेद्रथभयाद्भीतो धार्तराष्ट्रान्
 प्रहास्यति ॥ २० ॥ न चास्मान् शरणं गच्छेत् कृष्णं वा पुरुषो-
 त्तमम् । भवन्तं वा महाराज श्वोस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २१ ॥
 धार्तराष्ट्रमियकर्त्रे मयि विस्मृतसौहृदम् । पापं बालवधे हेतुं श्वोऽ-
 स्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २२ ॥ रत्नमाणाश्च तं संख्ये ये मां योस्त्य-
 न्ति केचन । अपि द्रोणकृपौ राजन् ह्यदयिष्यामि तान् शरैः ॥ २३ ॥

धनञ्जयको घेरकर बैठ गए और एक दूसरेके सामनेको टगर २
 देखनेलगे, थोड़ी देर पीछे क्रोध (शोक) से मूर्छित हुए अर्जुनको
 चेत हुआ ॥ १६-१८ ॥ उस समय वह ज्वरसे काँपते हुए
 मनुष्यकी समान बारंबार काँप रहा था तथा बारम्बार साँस
 छोड़ रहा था और हाथसे हाथको मसलकर नेत्रोंसे आँसू बहार रहा
 था, फिर उन्मत्तकी समान चारों ओरको तिरछी दृष्टिसे देखकर
 कहा कि—मैं तुम्हारे सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ, कि—जयद्रथ
 यदि मरणके भयसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको छोड़कर भागेगा नहीं तो
 मैं कल उसको अवश्य ही मार डालूँगा ॥ १९ ॥ २० हे महाराज! यदि
 वह हमारी या पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अधवा तुम्हारी शरणमें न
 आया तो मैं अवश्य ही कल उसे मार डालूँगा ॥ २१ ॥ कारवोंका हित
 करनेके लिये उस पापीने मेरे स्नेहको भूलकर बालककी हरया
 करवाली, मैं उसको कल ही मार डालूँगा ॥ २२ ॥ यदि कोई
 उसकी रक्षा करनेको मुझसे लड़ेगा तो चाहे वह द्रोण और
 कृपाचार्य ही क्यों न हों मैं उनको भी बाणोंसे ढकड़ूँगा ॥ २३ ॥

यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यात् पुरुषपर्वभाः । मा स्म पुण्यकृतां लोकान्
 प्राप्नुयां शूरसम्मतान् ॥ २४ ॥ ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृ-
 घातिनाम् । गुरुदारगतानां ये पिशुनानाञ्च ये सदा ॥ २५ ॥
 साधून्सूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम् । ये च निक्षेपहर्तॄणां
 ये च विश्वासघातिनाम् ॥ २६ ॥ भुक्तपूर्वा स्त्रियं ये च विन्दता-
 मघशंसिनाम् । ब्रह्मघ्नानाञ्च ये लोका ये च गोघातिनामपि ॥ २७ ॥
 पायसं वायवान्नं वा शाकं कृशरमेव वा । संयावापूपमांसानि ये
 च लोका वृथाश्नताम् ॥ २८ ॥ तानन्हायाधिगच्छेयं न चेद्वन्यां
 जयद्रथम् । वेदाध्यायिनमत्यर्थं शंसितं वा द्विजोत्तमम् ॥ २९ ॥
 अवमन्यमानो यान् याति दृढान् साधून् गुरुंस्तथा । स्पृशतो
 ब्राह्मणं गाञ्च पादेनाग्निञ्च या भवेत् ॥ ३० ॥ याप्सु श्लेष्म-
 पुरीषञ्च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः । तां गच्छेयं गतिं कष्टां न

हे पुरुषश्रेष्ठ ! यदि मैं संग्राममें ऐसा न करूँ तो मुझे वीर और
 पुण्यवानोंकी मिलनेवाले लोक न मिलें ॥ २४ ॥ यदि मैं जयद्रथको
 न मारूँ तो मातृहन्तारों, पितृहन्तारों, गुरुकी स्त्रीसे गमन करने
 वाले, चुगलखोर, साधुओंकी निन्दा करनेवाले, परनिन्दा करने
 वाले, धरोहदको मार लेनेवाले, विश्वासघाती, दूसरेसे भोगीहुई
 स्त्रीको जानकर भी स्त्रीकार करनेवाले, पापी ब्रह्महन्तारों, गोह-
 तारों, दूधपाक, पवान्न, शाक, खिचड़ी, गुड़ आदिके लहडू,
 गुलगुले और भाँसको वृथाही (बिना देवार्पण किये) खाने
 वाले, जिन नरकोंमें पड़ते हैं, उन नरकोंमें मैं पड़ूँ, यदि मैं (कल)
 जयद्रथको न मारूँ तो वेदाध्ययन करनेवाले और और पवित्र व्रत
 धारण करनेवालेका अपमान करनेवालोंको, दृढ़, साधु और
 गुरुओंका तिरस्कार करनेवालोंको जो गति मिलती है तथा
 ब्राह्मण, गौ और अग्निको पैरसे छूनेवालोंकी जो गति होती है
 तथा जलमें थूकने, मूत्र और मल त्यागनेवालोंकी जो गति होती है

चेद्व्या जयद्रथम् ॥ ३१ ॥ नग्नस्य स्नायमानस्य या च बन्ध्या-
 तियेर्गतिः । उत्क्रोचिनां मृपोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ३२
 आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिर्शंसिनाम् । भृत्यैः सन्दि-
 श्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ॥ ३३ ॥ असंविभज्य लुद्राणां
 या गतिर्मिष्टमश्नताम् । तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्व्या जय-
 द्रथम् ॥ ३४ ॥ संश्रितं चापि यस्यत्वा साधुं तद्वचने रतम् । न
 विभक्तिं नृशंसात्मा निन्दते चोपकारिणम् ॥ ३५ ॥ अर्हते प्राति-
 वेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च । अनर्हभ्यश्च यो दद्याद् वृषली-
 पतये तथा ॥ ३६ ॥ मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भवति निन्दकः ।
 तेषां गतिमिर्या क्षिप्रं न चेद्व्या जयद्रथम् ॥ ३७ ॥ भुजानानां
 तु सख्येन उत्संगे चापि खादतां । पालाशमासनं चैव तिदुर्कदंत-
 धावनम् ॥ ३८ ॥ ये चावर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोपसि ।

वही गति मेरी हो ॥ २५-३१ ॥ नङ्गा होकर स्नान करनेवालेकी,
 अतिथिको निराश करनेवालेकी, रिश्वतखोरोकी, झूठ बोलने
 वालोंकी, ठगोंकी, अपनेको धोखा देनेवालोंकी, दूसरों पर
 झूठा दोष लगाने वालोंकी; और अपने भृत्य, स्त्री, पुत्रका
 भाग बिना निकालेहुए स्वयं भीठा खानेवाले लुद्र पुरुषोंकी
 जो गति होती है वही गति मेरी भी हो ॥ ३२-३४ ॥
 यदि मैं जयद्रथको न मारूँ तो अपने हितकारी आश्रित साधु
 पुरुषोंका पालन न करनेवालेकी, उपकारीकी निन्दा करनेवाले
 नृशंस-पुरुषकी, योग्य पहोसीको श्राद्धमें न जिमाकर अयोग्य
 तथा शूद्र वा रजस्वलाके पतिको भोजन कराने वालेकी, शरावी
 की, मर्यादाको तोड़ने वालेकी, कृतघ्नकी, और पोषककी निन्दा
 करनेवालेकी जो गति है वही दशा (गति) मेरी हो ॥ ३५-३७ ॥
 यदि मैं कल जयद्रथको न मारूँ तो वायें हाथसे और गोदमें रखकर
 भोजन करनेवालोंकी, ढाकके पत्तों पर बैठनेवालोंकी, आवदूसकी

शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः ॥ ३६ ॥ एककृपा-
दकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते । पण्मासं तत्र वसतां तथा शास्त्रं
विनिन्दताम् ॥ दिवा मैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते । अगार-
दाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ॥ ४१ ॥ अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च
गोपानेषु च विघ्नदाः । रजस्वलां सेवयंतः फन्यां शुल्केन
दायिनः ॥ ४२ ॥ या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम् ।
आस्यमैथुनिकानाञ्च ये दिवा मैथुने रताः ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणस्य
प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद्दाति न । तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न
हन्यां जयद्रथम् ॥ ४४ ॥ धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्त्तिताः ।
ये चानुकीर्त्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥ यदि व्युष्टामिमां
रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् । इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे

दत्तान करनेवालोंकी, धर्मका त्याग करनेवालोंकी, उपःकालमें
सोनेवालोंकी, शीतसे डरकर स्नानादि न करनेवाले और रणसे
डरनेवाले क्षत्रियोंकी, वेदकी ध्वनिसे शून्य और एक कुएवाले ग्राममें
छः मास तक रहनेवालोंकी, शास्त्रकी निन्दा करनेवालोंकी,
दिनमें मैथुन करनेवालोंकी, दिनमें सोनेवालोंकी, मकानमें आग
लगानेवालेकी, तथा विष देनेवालोंकी, अग्नि तथा अतिथिका सत्कार
न करनेवालोंकी, गौओंको जल पीनेसे रोकनेवालोंकी, रजस्वलासे
समागम करनेवालोंकी, फन्यापर रुपया लेनेवालोंकी, जहाँ तहाँ
यज्ञ करानेवाले और नौकरी करनेवाले श्वानवृत्तिके ब्राह्मणकी, मुख
में मैथुन करनेवाले और दिनमें मैथुन करनेवाले तथा ब्राह्मणसे
दान देनेकी प्रतिज्ञा करके पीछेसे लोभवश न देनेवालेकी जो गति
होती है वही मेरी गति हो, यदि मैं आजकी रात्रिके अनन्तर कल
जयद्रथको न मारूँ तो मैंने जिनको गिना दिया है और जिनका नाम
नहीं लिया है उन सब पापियोंकी गतिको पाऊँ, अर्थात् मैं कल
जयद्रथको न मारूँ तो ये लोग जिन नरकोंमें पड़ते हैं उन ही

निबोधत ॥ ४६ ॥ यद्यस्मिन्न हते पापे सूर्योस्तमुपयास्यति । इदं
सम्पवेष्टाऽहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ४७ ॥ असुरमुरमनुष्याः
पक्षिणो वीरगा वा । पितुरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा । चरमचर-
मपीदं यत् परं चापि तस्मात्तदपि मम रिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः ४८
यदि विशति रसातलं तदग्रथं विषदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहत्ता ॥ ४९ ॥
एवमुक्त्वा विचित्रोप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् । तस्य शब्दमति-
कम्प्य धनुःशब्दोस्पृशदिवम् ॥ ५० ॥ अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्च-
जन्यं जनार्दनः । प्रदध्मीं तत्र संक्रुद्धो देवदत्तश्च फाल्गुनः ५१
स पाञ्चजन्योऽन्युतवक्त्रवायुना भृशं सुपूर्णोदरनिःसृतध्वनिः ।

नरकोंमें मैं पहुँ तथा मेरी इस दूसरी प्रतिज्ञाको भी सुनो ॥ ४८-४९ ॥
यदि (कल) बिना जयद्रथके मारेहुए सूर्य अस्त होजायगा तो
मैं यहाँ ही जलतीहुई अग्निमें कूदकर जल जाऊँगा ॥ ४७ ॥ देवता,
असुर, मनुष्य, पक्षी, सर्प, पितर, राजस, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, तथा
यह चराचर जगत् तथा कोई इससे बड़कर होगा वह भी मेरे
शत्रुको न बचासकेगा ॥ ४८ ॥ जयद्रथ यदि पातालमें घुसजायगा
तलातलमें चलाजायगा, आकाशमें, स्वर्गमें, तथा राजसोंके नगर
में भी भागकर जायगा तब भी मैं कल प्रातःकाल अभिमन्युके
शत्रु उस जयद्रथके मस्तकको धड़से अलग करदूँगा ॥ ४९ ॥
अर्जुन यह कहकर दाईं बाईं ओर धनुषको घुमाताहुआ उस पर
टंकार देनेलगा, वह प्रत्यञ्चाका शब्द सब शब्दोंको दबाकर
आकाशमें जाकर टकराया ॥ ५० ॥ अर्जुनके प्रतिज्ञा करने पर
श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्खको और क्रोधमें भरेहुए अर्जुनने देवदत्त
नामक शंखको बजाया ॥ ५१ ॥ श्रीकृष्णके मुखकी वायुसे भरे
हुए पाञ्चजन्य शंखमेंसे जो ध्वनि निकली उसने प्रलयकालकी
समान पाताल, आकाश, दिशाएं और दिशाधीशोंको भी कंपा

जगत् सपातालवियद्दिगीश्वरं प्रकम्पयामास युगात्यये यथा ५२
ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् सहस्रशः । सिंहनादाश्च पाण्डूनां
प्रतिज्ञाते महात्मना ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुन-

प्रतिज्ञायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जयगृहिणाम् ।
चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः ॥ १ ॥ शोकसमूहहृदयो
दुःखेनाभिपरिस्तुतः । मञ्जमान इवागाध विपुले शोकसागरे २
जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन्बहु । स तेषां नरदेवानां
सकाशे पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥ अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्य-
मब्रवीत् । योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना ॥ ४ ॥
स निनीपति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम् । तत्स्वस्तिषोस्तु यास्यामि

दिया ॥ ५२ ॥ महात्मा अर्जुनके प्रतिज्ञा करने पर तहाँ सैंकड़ों
घाजे वजनेलगे और पाण्डव सिंहनाद करनेलगे ॥ ५३ ॥ तिह-
त्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! विजय चाहनेवाले पाण्डवोंकी
इस बड़ी भारी ध्वनिकी सुनकर (कौरवपक्षके पाण्डवोंकी सेनामें
घूमतेहुए) दूतोंसे जयद्रथने जब यह सब समाचार सुना, उस
समय जयद्रथका मन अगाध शोकसागरमें डूबगया और वह
शोकसे व्याकुल होताहुआ बड़े दुःखके साथ उठकर सोचना २
राजाओंकी सभामेंको चलदिया और उसने उन नरदेवोंके पास
जाकर विलाप आरम्भ करदिया १-३ अभिमन्युके पिता अर्जुनसे
ढरेहुए जयद्रथने लजाते २ यह बात कहा, कि-यह जो पाण्डुके
क्षेत्रमें कामी इन्द्रके द्वारा उत्पन्न हुआ दुष्टात्मा अर्जुन है, वह
अकेले मुझे ही यमसदनमें भेजना चाहता है, अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा,
आपका कल्याण हो, मैं तो पाण्डवचानेकी इच्छासे अपने घरको

स्वगृहं जीवितेऽसया ॥ ५ ॥ अथवास्त्रपतिवृत्तास्त्रात मां क्षत्रिय-
 र्षभाः । पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते संदत्त यमाभयम् ॥ ६ ॥ द्रोण-
 दुर्योधनकृपाः कर्णप्रदेशवाहिकाः । दुःशासनादयः शक्तास्त्रातुं
 मामंतकादितम् ॥ ७ ॥ किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता ।
 न त्रायेयुर्भवंतो मां सपस्ताः पतयः क्षितेः ॥ ८ ॥ महर्षे पाण्डवेयानां
 श्रुत्वा मम महद्भयम् । सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिवपार्थिवाः ६
 वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना । तथा हि दृष्टाः क्रोशन्ति
 शोककाले स्म पाण्डवाः ॥ १० ॥ तन्न देवा न गन्धर्वा नामुरो-
 रगराक्षसाः । उत्सहंतेऽन्यथा कर्तुं कुत एव नराधिपाः ॥ ११ ॥
 तस्मान्मापनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः । अदर्शनं गमिष्यामि
 न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥ १२ ॥ एवं विलपमानं तं भयाद-

जाऊंगा ॥ ४-५ ॥ अथवा हे श्रेष्ठ क्षत्रियों ! तुम अस्त्र बलसे मेरी
 रक्षा करो और हे वीरों ! अर्जुनके विचारेहुए मेरे नाशको
 रोककर मुझे अभयदान दो ॥ ६ ॥ द्रोण, दुर्योधन, कृप, कर्ण,
 शल्य, बाल्हीक और दुःशासन आदि चाहें तो मुझे यमराजसे
 भी वचासकते हैं ? ॥ ७ ॥ तो क्या आप सब राजे मारना
 चाहनेवाले अकेले अर्जुनसे मुझे न वचासकोगे ? ॥ ८ ॥ हे पार्थिवों !
 पाण्डवोंकी हर्षध्वनिको सुनकर मुझे बड़ा डर लगरहा है और
 मेरे अङ्ग मरणासन्न पुरुषोंके अंगोंकी समान ढीले पड़ेजाते हैं ६
 अर्जुनने अवश्य ही मेरे मारनेकी प्रतिज्ञा की है तब ही तो शोकके
 समय भी पाण्डव प्रसन्न होकर गरज रहे हैं ॥ १० ॥ हे राजाओं !
 अर्जुनकी प्रतिज्ञाको न देवता विफल करसकते हैं और न
 गंधर्व, असुर, सर्प, राक्षस ही मिथ्या कर सकते हैं ॥ ११ ॥
 हे श्रेष्ठ पुरुषों ! तुम्हारा कल्याण हो इसलिये आप मुझे घर
 जानेकीही अनुमति दें; मैं यहाँसे जाकर कहीं ऐसी जगह छिपूँगा
 कि-पाण्डव मुझे देख ही न सकेंगे ॥ १२ ॥ ऐसे विलाप करते

व्याकुलचेतसं । आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥
 न भेतव्यं न रव्याग्र को हि त्वां पुरुषर्षभ । मध्ये क्षत्रियवीराणां
 तिष्ठन्तं प्रार्थयेद्यधि ॥ १४ ॥ अहं वैकर्त्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविं-
 शतिः । भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः ॥ १५ ॥
 पुरुमित्रो जयो भोजः कांबोजश्च सुदक्षिणः । सत्यव्रतो महाबाहु-
 विकर्णो दुर्मुखश्च ह ॥ १६ ॥ दुःशासनः सुबाहुश्च कालिङ्गश्चा-
 प्युदायुधः । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौत्रलः १७
 एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः । ससैन्यास्त्राभिः स्यास्यन्ति
 व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ १८ ॥ त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठ स्वयं
 शूरोमितद्युते । स कथं पाण्डवेभ्यो भयं पश्यसि सैधव ॥ १९ ॥
 अत्तौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे । यत्ता योस्यन्ति माभै-

हुए और भयसे घबड़ायेहुए जयद्रथसे (दूसरेका कुछभी ध्यान
 न देकर अपने ही बड़ेभारी कार्यमें फँसेहुए) दुर्योधनने कहा,
 कि-॥ १३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम ऐसे न डरो, तुम शूर क्षत्रियोंके
 बीचमें खड़े रहना, उस समय युद्धमें तुम्हें कौन मारसकेगा । १४ ॥
 मैं सूर्यपुत्र कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य,
 दुर्धर्ष वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, युद्धमें चतुर काम्बोज, सत्य-
 व्रत, महाबाहु विकर्ण, दुर्मुख, प्रसिद्ध दुःशासन, सुबाहु, हथि-
 यार उठायेहुए कालिङ्ग देशका राजा, उज्जैनके विन्द, अनुविन्द
 द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि, और बहुतसे देशोंके राजे अपनी
 सेनाओंके सहित तुम्हें बीचमें करके चलेंगे अतः तुम चिन्ताको
 त्याग दो ॥ १५-१८ ॥ हे अमित पराक्रमी ! तुम स्वयंभी शूरवीर
 हो, रथियोंमें श्रेष्ठ हो, तब हेसिंधुराज ! तुम पाण्डवोंसे क्यों
 डरते हो ? ॥ १९ ॥ हे जयद्रथ ! मेरी ग्यारह अत्तौहिणी सेनाएँ
 भी तुम्हारी रक्षा करेंगी और तुम्हारे लिये युद्ध करेंगी अतः हे
 सिन्धुराज ! डरो मत अपने मनके भयको दूर करो ॥ २० ॥

स्त्वं सैश्वर्यं व्येतु ते भयं ॥ २० ॥ सञ्जय उवाच । एवमाश्वासितो राजन् पुत्रेण तत्र सैश्वर्यः । दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रा-
 युपागमत् ॥ २१ ॥ उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणां स विशाम्पते ।
 उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥ २२ ॥ निमित्ते दूरपातित्वे
 लघुत्वे दृढवेधने । मम ब्रवीतु भगवन्विशेषं फाल्गुनस्य च ॥ २३ ॥
 विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः । अर्जुनस्पात्मनश्चैव
 याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे ॥ २४ ॥ द्रोण उवाच । सममाचार्यकं तात
 तत्र चैवार्जुनस्य च । योगाद् दुःखोपितत्वाच्च तस्मात्त्वन्तोधिकोऽ-
 र्जुनः ॥ २५ ॥ न तु ते युधि संत्रासः कार्यः पार्थात्कथञ्चन ।
 अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नात्र संशयः ॥ २६ ॥ न हि
 मद्भाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि । व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो
 न तरिष्यति ॥ २७ ॥ तस्माद्युध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपाल-

सञ्जयने कहा, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्रने जयद्रथको
 जब इसप्रकार दिलासा दिया तब वह रातमें ही दुर्योधनके साथ
 द्रोणाचार्यके पासगया ॥ २१ ॥ हे राजन् ! वह द्रोणके चरण
 छू उनके पास बैठगया और नम्र हो उनसे यह वृम्हनेलगा २२
 हे भगवन् ! यह बताइये कि—मुझमें और अर्जुनमें दूरका लक्ष्य
 वेधनेमें, फुर्तीसे बाण छोडनेमें तथा दृढ निशाना लगानेमें कौन
 अधिक है ? ॥ २३ ॥ हे आचार्य ! अर्जुन और मैं इनमें किसमें
 अधिक विद्या है ? यह मैं जानना चाहता हूँ, आप टीकर बता
 दीजिये ॥ २४ ॥ द्रोणने कहा, कि—हे तात ! तेरे और अर्जुनके
 गुरु एक ही हैं, परन्तु योगाभ्यास करनेसे और गुरुके घर क्लेश
 सङ्गनेसे अर्जुन तुझसे विद्यामें अधिक है ॥ २५ ॥ परन्तु तुझे
 लड़ाईमें अर्जुनसे किसीप्रकार नहीं डरना चाहिये, क्योंकि—मैं
 निःसन्देह भयसे तेरी रक्षा करूँगा ॥ २६ ॥ मेरी भुजाओंसे
 रक्षा पायेहुए का देवता भी तिरस्कार नहीं करसक्ते, मैं ऐसे व्यूह

य । पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ ॥ २८ ॥ अधीत्य विधि-
वद्देवानग्रयः सुहुतास्त्वया । इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युर्भयङ्करः २९
दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्स्य तु । भुजवीर्याजितान् लोकान्
दिव्यान् प्राप्स्यस्वपुनरुत्तमान् ॥ ३० ॥ कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्ण-
योऽन्ये च मानवाः । अहञ्च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्य-
ताम् ॥ ३१ ॥ पर्यायेण वयं सर्वे कालेन वलिना हताः । पर-
लोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥ ३२ ॥ तपस्तप्त्वा
तू यान् लोकान् प्राप्नुवन्ति तपस्विनः । क्षत्रधर्माश्रिता वीराः
क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥ ३३ ॥ एवमाश्वासितो राजा भार-
द्वाजेन सैधवः । अपानुदज्जयं पार्थाद्युद्धाय च मनो दधे ॥ ३४ ॥

को रचूँगा, कि-उसमें अर्जुन घुसही नहीं सकेगा ॥ २७ ॥ इस
लिये हे महारथी ! तू भय मत कर और युद्ध कर तथा अपने
बाप दादोंके मार्गका अनुसरण करता हुआ क्षत्रियधर्मका पालन
कर ॥ २८ ॥ तू वेदोंको भली भाँति पढ़कर अग्निमें होम करता
है तथा तूने बहुतसे यज्ञ किये हैं अतः तुझमें मृत्युका क्या डर ? २९
कदाचित् तू मरगया तो भाग्यहीन मनुष्योंको दुर्लभ वड़े भाग्यसे
मिलेहुए अवसरको पाकर तू भुजाओंके बलसे जीतेहुए अत्युत्तम
दिव्यलोकोंमें जायगा ॥ ३० ॥ हे सिन्धुराज ! ये कौरव, पाण्डव,
वृष्णि, दूसरे मनुष्य तथा मैं और मेरा पुत्र ये सब नाशवान् हैं
इसका भी तू विचार करले ॥ ३१ ॥ बली काल क्रमसे हम
सबोंका नाश करेगा और हम अपने-२ कर्मोंको साथ लेकर पर-
लोकको जायेंगे ॥ ३२ ॥ जिन लोकोंको तपस्वी तप करने पर
पाते हैं, उनको वीर क्षत्रिय क्षत्रियधर्मका आश्रय करने पर ही
पाजाते हैं ॥ ३३ ॥ जब इसप्रकार द्रोणाचार्यने जयद्रथको दादस
दिया तब उसके मनमेंसे अर्जुनका डर दूर हुआ और वह अपने
मनमें युद्ध करनेका विचार करनेलगा ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! उस

ततः प्रहर्षः सेनानां तत्राप्यासीद्विशाम्पते । वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः
सिंहनादरवैः सह ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जय-

द्रथाश्वासे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सञ्जय उवाच । प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा ।
वासुदेवो महाबाहुर्धनञ्जयपभाषत ॥ १ ॥ आतृणां मतमज्ञाय
त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् । सैन्यवञ्चास्मि हन्तेति तत्साहसमिदं
कृतम् ॥ २ ॥ असम्पन्न्य मया सार्द्धमतिभारोयमुद्यतः । कथं तु
सर्वलोकस्य नावहास्या भवेमहि ॥ ३ ॥ धार्तराष्ट्रस्य शिविरे मया
प्रणिहिताश्चराः । त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥ ४ ॥
त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो । सिंहनादः सवादिवः
सुमहानिह तैः श्रुतः ॥ ५ ॥ तेन शब्देन विव्रस्ता धार्तराष्ट्राः ससै-

समय तुम्हारी सेनामें भी हर्षध्वनि होने लगी और सिंहनादोंके
साथ नगाड़े आदिकी बड़ीभारी ध्वनि होने लगी ॥ ३५ ॥
चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥ ॥ ८ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! जब अर्जुनने सिन्धुराज
जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा करली, तब महाबाहु श्रीकृष्ण अर्जुनसे
कहनेलगे, कि-॥ १ ॥ हे अर्जुन ! तूने भाइयोंसे सलाह न
करके वाणीसे सिन्धुराजके वधकी प्रतिज्ञा करली, यह तूने साहस
का काम किया है ॥ २ ॥ और मेरी सम्प्रति भी न ली तथा इस
बड़े भारी कामको करनेका बीड़ा उठा लिया, इससे क्या हम, सब
लोगोंके हँसनेके योग्य न होंगे ? ॥ ३ ॥ दुर्योधनकी छावनीमें
मैंने गुप्तचर भेजे थे, उन्होंने शीघ्रही आकर मुझसे तहाँका वृत्तान्त
कहा है कि-॥ ४ ॥ हे समर्थ अर्जुन ! जब तूने सिन्धुराजका
वध करनेकी प्रतिज्ञा की, उस समय हमारी सेनामें नगाड़ोंके
शब्दोंके साथ बड़ाभारी सिंहनाद हुआ और कौरवोंने उसको

स्थवांः । नाकस्मात् सिंहनादोयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥

सुमहान् शब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुजं । आसीन्नागाश्व-
पत्तीनां रथग्रीवश्च भैरवः ॥ ७ ॥ अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमार्तो

धनञ्जयः । रात्रौ निर्यास्पति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥

तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यतवस्तव । प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे

राजीवलोचने ॥ ९ ॥ ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।

आसन् सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥ १० ॥ अथोत्थाय

सङ्गमोत्थैर्दीनः शिविरमात्मनः । आयात् सौवीरसिन्धुनामीश्वरो

भृशदुःखितः ॥ ११ ॥ स मन्त्रकाले सम्मन्य सर्वा नैश्रेयसीः

क्रियाः । सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद्राजसंसदि ॥ १२ ॥ मामसौ

सुना ॥ ५ ॥ उस शब्दसे सिन्धुराज जयद्रथसहित सब कौरव

चौक पड़े और यह विचारने लगे, कि-यह अकस्मात् सिंहनाद

(ज़हार्इके लिये) तो नहीं है ? ॥ ६ ॥ हे महाभुज ! इस समय

कौरवों की सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा अर्थात् रथ, घोड़े,

हाथी और पैदलोंका महाभयंकर शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ वे यह

समझकर तयार होनेलगे, कि-अभिमन्युकी मृत्युसे अर्जुनको

खेद हुआ होगा अतः वह आज क्रोधमें भर रातमें ही लड़नेको

आता है यह समझकर वे सावधान होगये ॥ ८ ॥ वे जब तयारी

कर रहे थे, कि-उन्हें तुझ सत्य बोलनेवालेकी प्रतिज्ञा मालूम

होगई, कि-हे राजीवलोचन ! तूने सिन्धुराजको मारनेकी सत्य

प्रतिज्ञाकी है ॥ ९ ॥ उस समय मन्त्रियों सहित दुर्योधन और राजा

जयद्रथ भी क्षुद्रमृगोंकी समान खिन्न हो डरनेलगे १० तदनन्तर दीन

बना हुआ सिन्धुराज जयद्रथ अपने मन्त्रियोंके साथ बड़ा दुःखी

होकर शिविर (राजसभा) में गया ॥ ११ ॥ और तहाँ कल्या-

णकारक सब उपायोंका विचार करनेके बाद राजसभामें दुर्यो-

धनसे यह बोला, कि- ॥ १२ ॥ हे दुर्योधन ! अर्जुन यह समझ

पुत्रहन्तेति शत्रोभियाता धनञ्जयः । प्रतिज्ञां हि सेनाया मध्ये
तेन वधो ममे ॥ १३ ॥ नान्न देवा न गन्धर्वा नासुरो रगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेन्यथा कर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥ ते मां रक्षतं
संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनञ्जयः । पदं कृत्वा मुयाल्लक्ष्यं तस्माद् व्रजं
विधीयताम् ॥ १५ ॥ अथ रक्षां न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन ।
अनुजानीहि मां राजन् गमिष्यामि गृहान् प्रति ॥ १६ ॥ एवमुक्त-
स्त्ववाकशीर्षो विमनाः स सुयोधनः । श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यान-
मेवान्वपद्यत ॥ १७ ॥ तवार्तमभिसम्प्रेक्ष्य राजा किल स सौमित्रः ।
मृदु चात्महितं चैव सापेक्षमिदमुक्तवान् ॥ १८ ॥ नेह पश्यामि
भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् । योजुनस्यास्त्रपस्त्रेण प्रतिहन्याग्महा-
हवे ॥ १९ ॥ वासुदेवसहायस्य गाण्डीवधुन्वतो धनुः । कोऽर्जु-

रहा है, कि-मेरे पुत्रका वध जयद्रथने ही किया है, अतः वह
कल मेरे ऊपर चढ़ाई करेगा, उसने अपनी सेनाके मध्यमें मेरा
वध करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ १३ ॥ सव्यासाचीकी उम प्रतिज्ञा
को देवता, असुर, गन्धर्व और सर्प भी मिथ्या नहीं कर सकते ॥ १४
अतः आप संग्राममें चारों ओरसे मेरी रक्षा करें ऐसा न हो, कि
अर्जुन तुम्हारे शिर पर पैर रख कर अपने लक्ष्यको (मुझे) पाजाय
(मार डाले) ॥ १५ ॥ अथवा हे कुरुनन्दन ! तुमसे इस समय
मेरी रक्षा न होसके तो तुम मुझे जानेकी आज्ञा दो, तो हे राजन् !
मैं अपने घरको चला जाऊँ ॥ १६ ॥ जयद्रथके ऐसा कहने पर
दुर्योधन खिन्न होमया और उसको कुछ उत्तर न देकर, उसके
जानेके विषयमें नीचेको गढ़न डालकर विचार करने लगा ॥ १७ ॥
सिन्धुराज दुर्योधनको खिन्न हुआ देखकर अपना हित हो इस
विचारसे दुर्योधनसे कोमलतापूर्वक कहने लगा, कि- ॥ १८ ॥
यहाँ तुम्हारी सेनामें मुझे कोई ऐसा वीर्यवान् धनुषधारी नहीं
दीखता जो महायुद्धमें अपने अस्त्रोंमें अर्जुनके अस्त्रोंको रोक

नस्याग्रतस्तिष्ठेत् साक्षादपि शतकतुः ॥ २० ॥ महेश्वरोपि पार्थेन
 श्रूयते योधितः पुरा । पदातिना महावीर्यो गिरौ हिमवति मधुः २१
 दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् । जघानैकरथेनैव देव-
 राजप्रचोदितः ॥ २२ ॥ समायुक्ता हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
 सामरानपि लोकांस्त्रीन् हन्यादिति मनिर्मम ॥ २३ ॥ सोऽहमिच्छा-
 म्यनुज्ञातुं रक्षितुं वा महात्मना । द्रोणेन सह पुत्रेण वीरेण यदि
 मन्यसे ॥ २४ ॥ स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्रार्थितोर्जुन ।
 सन्निधानं च विहितं रथारच किल सज्जिताः ॥ २५ ॥ कर्णो
 भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः । कृपश्च मद्रराजश्च पंडितेस्य
 पुरोगमाः ॥ २६ ॥ शकटः पञ्चकरचार्थो व्यूहो द्रोणेन निर्मितः ।

सके ॥ १६ ॥ वासुदेवकी सहायता पायेहुए और गाएहीव
 धनुष पर ठड्कार देतेहुए अर्जुनके सामने और तो क्या इन्द्र भी
 नहीं ठहर सकता ॥ २० ॥ सुना है, कि-पहले अर्जुन हिमा-
 लय पर्वत पर शिवजीके साथ पैदल ही लड़ा था ॥ २१ ॥
 इन्द्रकी प्रेरणासे अर्जुनने एक रथसे ही हिरण्यपुरमें रहनेवाले
 सहस्रों राजासोंको मारडाला था ॥ २२ ॥ मेरा यह निश्चय है, कि
 बुद्धिमान् वासुदेवकी सहायतासे अर्जुन देवताओं सहित तीनों
 लोकोंका संहार करसकता है ॥ २३ ॥ इसलिये आप मुझे घर
 जानेकी आज्ञा दें अथवा पुत्रसहित महात्मा द्रोणाचार्यसे रक्षा
 करनेका वचन दिलावें नहीं तो आपका जो विचार हो बताइये ॥ २४ ॥
 हे अर्जुन ! जब सिधुराजने यह कहा, तब राजा दुर्योधन
 स्वयं ही आचार्यके पास गया और उनसे बड़ी विनयकी तथा
 उसने जयद्रथके मनका समाधान कर उसको जानेसे रोकलिया
 और रथ तथा घोड़ोंको भी युद्धकी सामग्रीसे तयार करदिया २५
 कलके युद्धमें कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जय, वृषसेन, कृपा-
 चार्य और मद्रराज ये छः महारथी सेनाके आगे रहेंगे ॥ २६ ॥

पञ्चकणिकमध्यस्थः सूचीपार्ष्वे जयद्रथः ॥ २७ ॥ स्थास्यते रत्नितो
वीरैः सिन्धुराट् स सुदुर्मदः । धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव
तथौरसे ॥ २८ ॥ अविपक्षनमा ह्येते निश्चिताः पार्थ पट्टयाः ।
एतानजित्वा पट्टयान् नैव प्राप्नो जयद्रथः ॥ २९ ॥ तेषामेकैकशो
वीर्यं पण्णां त्वमनुचिन्तय । सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या
जेतुमञ्जसा ॥ ३० ॥ भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै ।
मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्द्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिशापर्वणि कृष्ण-

वाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

अर्जुन उवाच । पट्टयान् धार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान् बलाधि-

द्रोणाचार्यने एक सेनाव्यूह बनाया है उसका अगला आधा भाग
शकटके आकारका है, पिछला आधा भाग कमलके आकारका
है और मध्यभाग कमलकी कलीकी समान है और उसमें सुईके
आकारके बनाएहुए व्यूहमें युद्धके समय महादुर्मद सिंधुराज खड़ा
रहेगा तथा छः महारथी उस व्यूहमें खड़ेहुए जयद्रथकी रक्षा
करेंगे, ये छः महारथी धनुषमें, अस्त्रमें, वीर्यमें, कुलीनतामें, बलमें,
बड़े ही श्रेष्ठ हैं, इनको सहना कठिन है और ये बड़े दृढ़ हैं, इन छः
महारथियोंको बिना जीते जयद्रथको पाना असंभव है २७-२९
हे नरव्याघ्र ! तू इन छः महारथियोंमेंसे अलग-एक-एक के परा-
क्रमका विचार कर, एक साथ ही इन सबोंका पराजय बलात्कारसे
कोई नहीं करसकता ॥ ३० ॥ अतः अपना हित करनेके लिये
और कार्यसिद्धिके लिये हमें अपने राजनीतिज्ञ मंत्रियोंसे और
मित्रोंसे फिर सलाह करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ पिचहत्तरवाँ अध्याय
समाप्त ॥ ७५ ॥ छ ॥ छ ॥

अर्जुनने कहा, कि-हे श्रीकृष्ण ! जिन छः रथियोंको तुम
बड़ा बली जानते हो उन सबका बल भी मेरे आधे बलके बराबर

कान् । तेषां वीर्यं ममार्धेन न तुल्यमिति मे मतिः ॥ १ ॥ अस्त्र-
मस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुमुदन । मया द्रव्यसि निर्भिन्नं जयद्रथ-
वधैषिणा ॥ २ ॥ द्रोणस्य मिततश्चाहं सगणस्य त्रिलम्पतः ।
मूर्धानं सिन्धुराजस्तु पारयिष्यामि भूतले ॥ ३ ॥ यदि साध्याश्च
रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः । मरुतश्च सहन्द्रेण विश्वेदेवा
सहेश्वराः ॥ ४ ॥ पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागरादयः । द्यौर्वि-
यत् पृथिवी चैवं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ५ ॥ आम्भारण्यानि
भूतानि स्थावराणि चराणि च । ज्ञातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति
मधुमुदन ॥ ६ ॥ तथापि वाणैर्निहतं श्वो द्रष्टासि रणे मया ।
सत्येन च शपे कृष्ण तथैवायुधमालभे ॥ ७ ॥ यस्य गोप्ता महे-
ष्वासस्तस्य पापस्य दुर्पतेः । तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव
तस्मिन् द्यूतमिदं बद्धं मन्यते स सुयोधनः । तस्मात्तायैव सेनाग्रं

भी नहीं है, यह मेरा निश्चय है ॥ १ ॥ और हे मधुमुदन ! आप
देखें, कि-जयद्रथका वध करना चाहनेवाला मैं, इन सबोंके अस्त्रोंको
अपने अस्त्रसे कैसे काटता हूँ ॥ २ ॥ मैं द्रोणके नेत्रोंके सामने
ही सेनासहित विलाप करनेवाले सिन्धुराजके मस्तकको काटकर
पृथ्वीपर गिरादूँगा ॥ ३ ॥ हे मधुमुदन ! कदाचित् साध्यदेवता,
रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्र, वायु, ईश्वरसहित विश्वदेवता,
पितर, गन्धर्व, गरुड़, समुद्र, पृथ्वी, स्वर्ग, आकाश, दिशाएँ,
दिक्पाल, आम्भ-पुरुष, जंगलीपुरुष और स्थावर जंगमजगत् के
माँगी-इनमेंसे कोई भी सिन्धुराजकी रक्षा करेंगे तो भी, मैं आपके
सामने सत्य और आयुधोंकी शपथ लेकर कहता हूँ कि-कल
आप वाणोंके द्वारा जयद्रथको मुझसे मराहुआ देखेंगे ॥ ४-७ ॥
हे केशव ! दुर्मति पापी जयद्रथके रक्तक द्रोणके ऊपर ही मैं पहिले
चढ़ाई करूँगा ॥ ८ ॥ दुर्योधन संभ्रमता है, कि-इस युद्धयुतमें
द्रोणके कारण ही विजय होगी, इसलिये मैं द्रोणकी ही सेनाके

पित्वा यास्यामि सैन्यवम् ॥ ६ ॥ द्रष्टामि श्वो महेष्वासान् नारा-
चैस्त्रिगवतेजितैः । शृङ्गाणीत्र गिरेर्वर्ज्यं शीर्षवाणान्मया युधि ॥ १० ॥
नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्त्रविष्यति शोणितम् । पतद्भ्यः पतिते-
भ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥ ११ ॥ गाण्डीवप्रेषिता वाणाः मनोऽ-
निलसमा जवे । नृनागाश्वान् विदेहामून कर्त्तारश्च सहस्रशः १२
यमात् कुबेराद्वरुणादिन्द्रादुद्राच्च यन्मया । उपात्तमस्त्रं घोरं नद्र
द्रष्टारोत्र नरा युधि ॥ १३ ॥ ब्राह्मेणास्त्रेण चास्त्राणि हन्यमा-
नानि संयुगे । मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्यवस्याभिरक्षिणाम् ॥ १४ ॥
शरवेगसमुत्कृचै राडां केशव मूर्धुभिः । आस्तीर्यमाणां पृथिवीं
द्रष्टाऽसि श्वो मया युधि ॥ १५ ॥ कन्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि
शात्रवान् । सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्यवम् ॥ १६ ॥

अग्रभागको तोड़कर सिंधुराजको पकड़लूँगा ॥ ६ ॥ हे कृष्ण ।
कल ही आप मेरे द्वारा बड़े-२ धनुषधारियोंको तीखी धागवाले
वाणोंसे जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतके शिखरोंको तोड़ डालता है तैसे
ही विदीर्ण हुआ देखोगे ॥ १० ॥ तेज वाणोंसे भिदकर गिरते
हुए और गिरेहुए हाथी, घोड़े तथा मनुष्योंके देहोंमेंसे रक्तकी
धारें बहेगी ॥ ११ ॥ (और आप देखना कि-) मन और रायकी
समान वेगवाले गाण्डीवसे छोड़ेहुए बाण सहस्रों हाथी, घोड़े
और मनुष्योंके देहोंको प्राणशून्य करदेंगे ॥ १२ ॥ इस युद्धमें
मनुष्य यह देखेंगे, कि-मैंने यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र और शिवसे
कैसे२ घोर अस्त्र प.ये हैं ॥ १३ ॥ और मैं सिंधुराजकी रक्षा
करनेवाले सब महारथियोंके अस्त्रोंको ब्रह्मास्त्रसे काट डालूँगा
इसको आप देखना ॥ १४ ॥ और हे केशव । कलको आप,
बाणोंके वेगोंसे कटकर गिरेहुए राजाओंके मस्तकोंमें इस पृथ्वी
को भरी हुई देखेंगे ॥ १५ ॥ (कलको) मैं रणमें शत्रुओंका
संहार करके मांसभक्षक राक्षसोंको तृप्त करूँगा, शत्रुओंको भगा

वहागस्कृत्कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः । यया सैन्यवको राजा हतः
 स्वान् शोचयिष्यति ॥ १७ ॥ सर्वक्षीरान्नभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे।
 मया सराजकं वाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्यवम् ॥ १८ ॥ तथा प्रभाते
 कर्त्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः । नान्यं धनुर्द्धरं लोके मंस्यते मत्समं
 युधि ॥ १९ ॥ गाण्डीवञ्च धनुर्दिव्यं योद्धा चाहं नरर्षभ । त्वञ्च
 यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया ॥ २० ॥ तव प्रसादाद्भग-
 वन् किं नावासं रणे मम । अविषहं हृषीकेश किञ्जानन्मां विग-
 र्हसे ॥ २१ ॥ यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम् ।
 पृथ्वेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥ २२ ॥ गावमंस्था

हूँ गा, भिन्नोको आनन्दित करूँगा और जयद्रथको मथडालूँगा १६
 संबंधका ध्यान न रखकर बड़ा अपराध करनेवाला, बुद्ध पापमय
 देशमें उत्पन्न हुआ जयद्रथ मेरे हाथसे माराजाकर अपने संब-
 न्धियोंको शोक देगा अर्थात् जयद्रथके मारेजाने पर उसके संबंधी
 शोक करेंगे ॥ १७ ॥ हे श्रीकृष्ण ! तुम (कल ही) सर्वोके भागका
 दूध और अन्न खानेवाले, पापी जयद्रथको साथियोंके सहित
 मुझसे मराहुआ देखोगे ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! कल प्रातःकाल मैं
 पेसा (पराक्रम) करूँगा, कि-जिसे देखकर दुर्योधनके मनमें यह
 बात बैठजावेगी, कि-अर्जुनकी समान कोई दूसरा धनुषधारी है
 ही नहीं ॥ १९ ॥ हे पुरुषोत्तम ! गाण्डीवसा धनुष और मुझसा
 योद्धा तथा आपसा सारथी होतेहुए मैं किसको नहीं जीतसक-
 ता ? ॥ २० ॥ हे केशव ! आपकी कृपासे रणमें मुझे कौन वस्तु
 दुर्लभ है ? आप यह जानते हैं, कि-अर्जुन महासमर्थ है, तब भी
 आप मेरा तिरस्कार क्यों करते हैं ॥ २१ ॥ हे जनार्दन ! जैसे
 चन्द्रमामें चिन्ह और समुद्रमें जल अचल है इसीप्रकार तुम मेरी
 प्रतिज्ञाको भी सत्य (अटल) ही जानो ॥ २२ ॥ हे श्रीकृष्ण !
 तुम मेरे अस्त्रोंको छोटे न समझो, मेरे धनुषको साधारण न

ममास्त्राणि मावर्मस्था शत्रुदम् । मावर्मस्था वलं बाहोर्मवर्मस्था
 वञ्जयम् ॥ २३ ॥ तयाऽभिधापि संग्रामं न जीयेयं जयामि च ।
 तेन सत्येन संग्रामे हनं विद्धि जयद्रथम् ॥ २४ ॥ ध्रुवं च ब्राह्मणे
 सत्यं ध्रुवा साधुषु सन्नतिः । श्रोत्रुवापि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे
 जयः ॥ २५ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुत्तत्र हृषीकेश स्वयमात्मान-
 मात्मना । सन्दिदेशार्जुनो नर्दन चासहिः केशवं मधुम् ॥ २६ ॥
 यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद्रथो मम । तथा कार्यं त्वया
 कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिशापर्वणि अर्जुन-
 वाचये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सञ्जय उवाच । तां निर्शा शोकदुःखात्तां निःश्वसन्ताविबो-
 र्गा । निर्दा नैवोपलेभाते वामुदेवधनञ्जयो ॥ १ ॥ नरनारायणां

समझो मेरी भुजाओंके बलको भी कम न समझो और मुझे भी
 साधारण समझकर मेरा अपमान न करो ॥ २३ ॥ मैं आज तक
 संग्राममें किसीसे हारा नहीं हूँ, किन्तु मैं युद्धमें जीता ही हूँ, अतः
 मैं जयद्रथको अवश्य मार डालूँगा, इसे आप सत्य जानिये ॥ २४ ॥
 ब्राह्मणोंमें सत्य, साधुओंमें सन्नता और यज्ञोंमें शोभा अवश्य
 रहती है और नारायणमें जय भी अवश्य ही रहती है ॥ २५ ॥
 सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! इसप्रकार इन्द्रपुत्र अर्जुनने
 अपना स्वरूप श्रीकृष्णकी सुनाया, तदनन्तर गर्जना करके केशव
 से कहा, कि-हे कृष्ण ! कल रातमें प्रभात होते ही मेरा रथ तयार
 होजाय, ऐसी व्यवस्था करिये क्योंकि हमें बड़ा काम करना है
 ॥ २६-२७ ॥ ब्रिहत्सर्वा अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ ६ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! उस रातमें दुःख और शोकसे
 व्याकुल हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको नींद नहीं आई, उन्होंने
 सर्पोंकी सघन लम्बे साँस लेते ही रात बितादी ॥ १ ॥ नर

क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः । व्यथितारिचिन्तयामासुः किंस्वि-
 देतद्भविष्यति ॥ २ ॥ ववुश्च दारुणा वाता रुक्ता घोराग्निशंसिनः ।
 सकवन्धस्तथादित्ये परिधः समदृश्यत ॥ ३ ॥ शुष्काशन्यश्च
 निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः । चचोल चापि पृथिवी सशैल-
 वनकानना ॥ ४ ॥ चुल्लुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः । प्रति-
 स्तोतःप्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥ ५ ॥ रथाश्वनरनागानां
 प्रवृत्तामधरोत्तरम् । क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविद्वद्वये ॥ ६ ॥
 बाहनानि शकुन्मूत्रं मुमुचू रुरुदुश्च ह । तान्दृष्ट्वा दारुणान् सर्वानु-
 त्पातान् लोमहर्षणान् ॥ ७ ॥ सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया
 भरतर्षभ । श्रुत्वा महावत्स्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥
 अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत्पाकशासनिः । आश्वासय सुभद्रा

और नारायण क्रोधमें भरगए हैं, यह जानकर देवता खिन्न होकर
 विचारने लगे, कि-अब क्या होगा ? ॥२॥ उस समय घोर और
 रूखी आँधियें चलनेलगीं, उनसे यह प्रतीत होता था, कि-कोई
 दारुण उत्पात होगा, सूर्यमें धडसहित राहु दीखनेलगा ॥ ३ ॥
 विजली तथा वज्रके कडाकोंके साथ शुष्क वज्र गिरनेलगे, वन,
 पहाड़ और जङ्गलों सहित पृथिवी काँपने लगी ॥४॥ मगर मज्जोंके
 भवनरूप समुद्र खलभलाने लगे और समुद्रकी ओरको बहने
 वाली नदियोंका प्रवाह उलटा चलने लगा ॥ ५ ॥ कच्चे मांसको
 खानेवाले राक्षसोंके आनन्दके लिये और यमराज्यकी वृद्धिकी
 सूचना देनेके लिये रथ, हाथी, घोड़े एक दूसरेके ऊपर गिरने
 लगे ॥६॥ घोड़े आदि पशुओंका मल तथा मूत्र निकल पड़ा और वे
 स्वयंही रोनेलगे उन सब लोमहर्षण दारुण उत्पातोंको देखकर
 और महावली सव्यसाचीकी भयङ्कर प्रतिज्ञाको सुनकर हे भरतर्षभ !
 तुम्हारे सब योधा उदास होगए ॥ ७ ॥ ८ ॥ तदनन्तर महाबाहु
 इन्द्रपुत्र अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि हे कृष्ण ! तुम सुभद्रा

त्वं भगनीं स्नुषया सह ॥६॥ स्नुषाश्चास्या वयस्याश्च विशोकाः
 कुरु माधव । साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो ॥१०॥
 ततोर्जुनगृहं गत्वा वामुदेवः सुदुर्मनाः । भगिनीं पुत्रशोकात्तमा-
 श्वासयत दुःखिताम् ॥ ११ ॥ वामुदेव उवाच । मा शोकं कुरु
 वाष्णेयि कुपारं प्रति सस्नुषा । सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा
 कालनिर्मिता ॥१२॥ कुले जातस्य धीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः ।
 सदृशं मरणं ह्येतत्तत्र पुत्रस्य मा शुचः ॥ १३ ॥ दिष्ट्या महारथो
 धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः । क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां
 गतिम् ॥ १४ ॥ जित्वा सुबहुशः शत्रून् प्रेषयित्वा च मृत्यवे ।
 गतः पुण्यकृतां लोकान् सर्वकामदुहोक्षयान् ॥ १५ ॥ तपसा
 ब्रह्मवर्षेण श्रुतेन मज्ञपापि च । सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्त-

और पुत्रवधू उचाराको तो धीरज दो ॥ ६ ॥ हे माधव ! हे प्रभो !
 तू मे सुभद्राकी बहू और उसकी सखियों को भी सत्यताभरे वचनोंसे
 समझाकर शान्त करो ॥ १० ॥ यह सुनकर श्रीकृष्ण मनमें बड़े
 दुःखित होतेहुए अर्जुनकी छावनीमें गए और पुत्रशोकसे तड़-
 फडाती हुई दुःखिया बहिनको धीरज देने लगे ॥ ११ ॥ श्रीकृ-
 ण्णने कहा, कि-अरी वाष्णेयि ! तू और तेरी बहू अब शोक
 मत करो, क्योंकि-हे भीरु बहन ! कालने सब प्राणियोंकी ऐसी
 ही दशा रची है ॥ १२ ॥ तेरा पुत्र कुलीन धीर वीर क्षत्रिय था
 उसका रणमें मरण हुआ यह उचितही है, अतः शोक मतकर ?
 तेरा पुत्र महारथी धीर वीर और अपने पिताकी समान पराक्रमी
 था, उसने वीरोंकी अभिलषित उत्तम गति पायी है, यह बहुत
 अच्छा हुआ ॥ १४ ॥ अभिमन्यु बहुतसे शत्रुओंको जीत उनके
 मृत्युके पास भेजनेके अनन्तर सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले
 पुण्यवानोंके अक्षयलोकमें गया है ॥ १५ ॥ सन्त पुरुष जिस
 मर्निको तप, ब्रह्मवर्ष, शास्त्रज्ञान और बुद्धिमे पाना चाहते हैं,

स्तव पुत्रकः ॥ १६ ॥ वीरमूर्तीरपत्नी त्वं वीरजा वीरवान्धवा ।
 मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमा गतिम् ॥ १७ ॥ प्राप्स्यते चाप्यसौ
 पापः सैन्धवो बालघातकः । अस्याबलेपस्य फलं समुद्रद्वेषा-
 न्धवः ॥ १८ ॥ व्युष्टायान्तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत् । न हि
 मोक्षपतिं पार्थात् स प्रविष्टोप्यमरावतीम् ॥ १९ ॥ श्वः शिरः श्रोण्यसे
 तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम् । समन्तपञ्चकाद् बाह्यं विशोका भव
 मा रुदः ॥ २० ॥ क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् । यां
 गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः ॥ २१ ॥ व्यूढोरस्को
 महाबाहुरनिवर्त्तो रथमण्डत् । गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं
 ऊर्वरं जहि ॥ २२ ॥ अनुयातश्च पितरं मातृपत्नं च वीर्य-
 वान् । सहस्रशो रिपून् हत्वा हतः शूरो महारथः ॥ २३ ॥ आश्वा-

वही गति तेरे पुत्रको मिली है ॥ १६ ॥ हे कल्याणि ! तू वीरकी
 माता, वीरकी पत्नी, वीरकी पुत्री और वीरकी वहिन है अतः
 तू पुत्रका शोक न कर क्योंकि-तेरा पुत्र परलोकमें गया है और
 उसने सद्गति पायी है ॥ १७ ॥ और बालहत्या करनेवाला
 पापी जयद्रथ भी इस पापके फलको मित्रों और वन्धुवान्धवों
 सहित भोगेगा ॥ १८ ॥ हे सुन्दराङ्गी ! आजकी रात बीतनेपर
 वह पापी यदि अमरावतीमें जाकर छुपेगा, तो भी अर्जुन उसे
 जीवित नहीं छोड़ेगा ॥ १९ ॥ कल तू यह सुनेगी, कि-जयद्रथका
 कटाहुआ शिर स्पमन्तपञ्चकसे बाहर रणभूमिमें लुढ़क रहा
 है ॥ २० ॥ क्षत्रियके धर्मका पालन कर अभिमन्युने शूर वीरोंकी
 गति पाई है, ऐसी गतिके लिये दूसरे शस्त्रजीवी ललचाते
 हैं ॥ २१ ॥ मोटे कंधेवाला, महाबाहु रणमेंसे पीछेको न हटने
 वाला, रथोंको मसलनेवाला तेरा पुत्र अभिमन्यु स्वर्गको गया है,
 अतः हे सुन्दराङ्गी ! तू शोक न कर ॥ २२ ॥ अभिमन्यु माता
 और पिताका पक्ष लेनेवाला था, वह महारथी सहस्रों शत्रुओंको

सय स्तुपां राक्षि मा शुचः क्षत्रिये भृशम् । श्वः प्रियं मुवच्छ्रुत्वा
विशोका भव नन्दिनि । २४ ॥ यत् पार्थेन प्रतिज्ञातं तत्रायां न
तदन्वया । चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥ २५ ॥
यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा रजनीचराः पनगाः सुगम्-
राश्च । रणगतपभियान्ति सिन्धुराजं न स भविता सह तैरपि
प्रभाते ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्व प्रणिज्ञापूर्वणि सुभद्रा-

स्वासने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

सञ्जय उवाच । एनच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः ।
सुभद्रा पुत्रशोकार्त्ता विललाप सुदुःखिता ॥ १ ॥ हा पुत्र मम
मन्दायाः कथमेत्यासि संयुगम् । निधनं प्रावत्तात पितुस्तुन्य-
पराक्रमः ॥ २ ॥ कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम् । मुखं

मारकर मारागया है ॥ २३ ॥ हे राजपुत्रि ! हे क्षत्रिये ! तू वह
उत्तराको धीरज दे और बहुत शोक न कर हे नन्दिनि ! तू कल
बड़ी प्रिय और आनन्दकी बात सुनकर शोकरहित होजायगी २४
अर्जुनने जैसी प्रतिज्ञा की है वैसाही होगा, उसके विपरीत नहीं
होगा क्योंकि तेरे पतिका कर्त्तव्य कभी निष्फल नहीं होता है २५
यदि मनुष्य, सर्प, पिशाच, राक्षस, पक्षी, देवता और असुर भी
रणमें आयेहुए जयद्रथकी रक्षा करेंगे तो उनको भी साथमें
लेकर जयद्रथ कल सवेरे माराजायगा ॥ २६ ॥ सतत्तरवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥ ॥ छ ॥ छ

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! महात्मा केशवके इन वचनों
को सुनतेही पुत्रशोकसे व्याकुल हुई दुखिया सुभद्रा करुणाजनक
स्वरसे विलाप करने लगी, कि-॥ १ ॥ हे तात ! तू तो अपने
पिताकी समान पराक्रमी था, तो भी मुझ मन्दभागिनीका पुत्र
रणमें कैसे मरगया ॥ २ ॥ हे बत्स ! कमलकी सपान श्याम,

ते दृश्यते वत्स सुष्ठितं रणरेखुना ॥ ३ ॥ नूनं शूरं निपतितं
 त्वां पश्यन्तपनिवर्तिनम् । सुशिरोग्रीववाहंसं व्यूहोरस्कं नतोदरम् ४
 चारुचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम् । भूतानि त्वां निरीक्षन्ते
 नूनं चन्द्रमिवोदितम् ॥ ५ ॥ शयनीयं पुरा गम्य स्पर्ध्यास्तरण-
 संवृतम् । भूमावद्य कथं शंभे विप्रविद्धः सुखोचितः ॥ ६ ॥ योऽ-
 न्वास्यत पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः । कथमन्वास्यते सोऽद्य
 शिवाभिः पतिनो मृधे ॥ ७ ॥ योस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधव-
 न्दिभिः । सोऽद्य कव्याद्गणैर्वीरैर्विनदद्भिरुपास्यते । पाण्डवेषु च
 नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो । पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनास्य-
 नाथवत् ॥ ८ ॥ अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवानघ । मन्दभाग्या

सुन्दर दाँतोंवाला और रमणीक नेत्रोंवाला तेरा मुख हा ! आज
 रणकी धूलिसे भराहुआ (कैसा) दीखता होगा ? ॥ ३ ॥
 संग्राममें सामने बढ़कर लड़नेवाला सुन्दर शिर, ग्रीवा, भुजा,
 कंधे और पुष्ट वक्षःस्थल वाले तथा पतले पेटवाले गिरेहुए तुम्ह
 वीर अभिमन्युको निश्चय ही सब प्राणी देख रहे होंगे ॥ ४ ॥
 रे रे ! सब प्राणी, पुष्ट और सुन्दरतायुक्त सब अज्ञोंवाले, सुन्दर
 नेत्रोंवाले, शस्त्रोंके प्रहारसे शोभा पातेहुए और उदय होतेहुए
 चन्द्रमाकी समान मुखचन्द्रवान्ते तुम्हें रणभूमिमें पड़ाहुआ देखते
 हैं ॥ ५ ॥ हे पुत्र ! तू पहिले स्पर्धा करने योग्य विद्यौनेके पलंग पर
 सोता था हा ! सुखके भोगनेके योग्य तू आज शस्त्रोंसे विधकर
 पृथ्वीपर कैसे सोता होगा ॥ ६ ॥ हा ! जिस महावीर महाभुज
 की पहिले श्रेष्ठ स्त्रियें सेवा करती थीं, आज रणमें पड़ेहुए
 उसकी गिदहियें सेवा कर रही हैं ॥ ७ ॥ सूत, मागध और चन्दि-
 जन गीत गाकर जिसकी स्तुति किया करते थे, आज भयानक
 राक्षस, गर्जर कर उसकी उपासना कर रहे हैं ॥ ८ ॥ ओ समर्थ
 पुत्र ! पाण्डव, वीर वृष्णि और वीर पाञ्चाल राजें आदि

गपिग्यापि व्यक्तस्य यत्नम् ॥ १० ॥ विशालानां तुक्तेशानां
चारुवाक्यं सुगन्धि च । तत्र पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि भिर्त्रे-
णम् ॥ ११ ॥ भिग्वलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्य धनुष्मताम् ।
भिग्नीयं वृष्णिवीराणां पञ्चालानाञ्च भिग्वलम् ॥ १२ ॥ धिक्के-
कयास्तथा चेद्दीनं मत्स्यांश्चैवाथ सृञ्जयान् । ये त्वां रणगतं वीरं
न शोकुरभिरक्षितुम् ॥ १३ ॥ अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव
हतस्त्रियम् । अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना ॥ १४ ॥
स्वस्तीयं वामुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः । कथं त्वातिरथं वीरं
द्रक्ष्याम्यद्य निपातितम् ॥ १५ ॥ एषोहि तृपितो नृत्स स्तनो पूर्णो
पिवाशु मे । अङ्गमास्त्रं मन्दाया ललसायाश्च दर्शने ॥ १६ ॥ हा

रत्नकांके होतेहुए भी तुम्हें अनाथकी समान किसने मारडाला ?
हे निर्दोष पुत्र ! मैं तुम्हें देखते ? तू नही हुई थी, कि-तू मरगया
अब मन्दभाग्या मैं तेरे दर्शनके लिये अवश्यही यमगन्दिर्में आती
हूँ ॥ १० ॥ हे पुत्र ! चौड़े नेत्र, पुँधराले बाल, सुन्दर वाक्य
और सुगन्धिवाले तथा घावरहित तेरे मुखको मैं फिर कब देख
सकूँगी ? ॥ ११ ॥ भीमसेनके बलको धिक्कार है, अर्जुनके
धनुषधारीपनेके धिक्कार है, वृष्णिवीरोंके बलको और पंचालोंके
बलको धिक्कार है ॥ १२ ॥ धिक्कार है केकय, चेदि, मत्स्य
और सृञ्जयोंको, कि-जो रणमें खड़ेहुए तुम्हने वीरकी भी रक्षा
न करसके ॥ १३ ॥ हा ! अभिमन्युके बिना देखे मुझे पृथिवी
सूनी और कान्तिहीनसी लगती है और (हे भाई कृष्ण ! अभि-
मन्युको बिना देखे) मेरे नेत्र शोकसे व्याकुल होरहे हैं ॥ १४ ॥
श्रीकृष्णकी बहनके पुत्र और अर्जुनके पुत्र अतिरथी तुम्ह वीरको
मैं भूमिमें पड़ाहुआ कैसे देखूँगी ? ॥ १५ ॥ हे बेटा ! तुम्हें पिलास
लगी होगी आर यहाँ आ, तुम्हें देखनेको ललचाती हुई अपनी
मन्दभागिनी माताकी गोदमें बैठकर इन दुःखसे भरेहुए स्तनोंको

वीरदृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवाति मे । अहो हानित्यं मानुष्यं जल-
बुद्बुदचञ्चलम् ॥ १७ ॥ इमां ते तरुणीं भार्यां तवाग्निभिरभिप्लु-
ताम् । कथं सन्धारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम् ॥ १८ ॥ अहो
ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक । विहाय फलकाले, मां सुगृह्णां
तव दर्शने ॥ १९ ॥ नूनं गतिः कृतांतस्य माझरपि सुदुर्विदा । यत्र
त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः ॥ २० ॥ यज्जनां दानशीलानां
ब्राह्मणानां कृतात्मनाम् । चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम् २१
कृतशानां वदान्यानां गुरुश्रुषूषिणामपि । सहस्रदक्षिणानाञ्च या
गतिस्तामवाप्नुहि ॥ २२ ॥ या गतियुध्यमानानां शूराणामनिव-
र्त्तिनाम् । इत्वारिन्निहतानां च संग्रामं तादृतिं व्रज ॥ २३ ॥ गो-
सहस्रपदातृणां कतुदानाञ्च या गतिः । नैवेशिकं चाभिगतं ददतां

शीघ्रतासे पी ॥ १६ ॥ ओः वीरपुत्र ! स्वप्नके धनकी समान तू
मुझ दर्शन देकर छिपगया, अरे ! मनुष्यका जन्म जलके बुल-
बुलेकी समान अस्थिर है ॥ १७ ॥ और वेटा ! बिना बछड़ेकी
गौकी समान तेरे विरहके शोकसे बिहल हुई तेरी इस तरुण भार्या
को मैं कैसे शान्ति दूँ ॥ १८ ॥ अरे वेटा ! तेरी अभागिनी माता
इस समय तेरे देखनेको आतुर थी, उसको कुसमयमें त्यागकर तू
क्यों चलागया ? ॥ १९ ॥ वास्तवमें कालकी गतिको विद्वान् भी
नहीं जानसकते, तेरे ऊपर कृष्णसे सहायक थे, तबभी तू अनाथ
की समान मारागया ? ॥ २० ॥ हे पुत्र ! यज्ञ करनेवाले, आत्म-
ज्ञानी ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले, पुण्यतीर्थोंमें स्नान
करनेवाले, कृतज्ञ, उदार, गुरुसेवक और सहस्रोंकी दक्षिणा देने
वालोंकी जो गति होती है, वही गति तेरी हो ॥ २१-२२ ॥
संग्राममें पीटन दिखाकर लहनेवाले वीर शत्रुओंको मारनेके अन-
न्तर मारे जाकर जिस गतिको पाते हैं तेरी वही गति हो ॥ २३ ॥
हे पुत्र ! तुझें वह गति मिले जो गति सहस्रों गौदान देनेवाले,

या गतिः शुभा ॥२४॥ ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निधि निदधतां च
 या । या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २५ ॥ ब्रह्म-
 चर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः । एकपत्न्यश्च यां यान्ति
 तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २६ ॥ राक्षसां मुचरितैर्यां च गतिर्भवति
 शाश्वती । चातुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां मुरन्तिताः ॥ २७ ॥
 दीनानुकम्पिणां या च सततं सम्प्रभागिनाम् । पैशुन्याद्य निवृ-
 त्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २८ ॥ व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशु-
 श्रूषिणामपि । अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥२९॥
 कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च । गतिः शोकाग्निदग्धानां
 तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३० ॥ मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह

यज्ञका फल देनेवाले, सामग्री सहित घरका दान करनेवाले,
 शरणमें आएहुए ब्राह्मणोंको धनका भण्डार सौंप देनेवाले और
 संन्यासियोंकी होगी है ॥ २४-२५ ॥ हे पुत्र ! व्रतधारी मुनि
 ब्रह्मचर्यसे जो गति पाते हैं पतिव्रता स्त्रियों जिस पुण्यमयी गतिको
 पाती हैं, वह गति तुम्हें मिले ॥२६ ॥ सदाचारी राजाओंकी जो
 स्थिर गति होती है और पवित्र चार आश्रम वालोंको पुण्यमय
 मुकृत्योंके पालनेसे जो गति मिलती है, दीनों पर दया करनेवाले
 और नित्य समान भाग बाँटकर देनेवालोंकी जो गति होती है
 और चुगलीसे बचनेवाले पुरुष जिस गतिको पाते हैं, हे पुत्र !
 वही गति तेरी हो ॥ २७ ॥ २८ ॥ धर्मशाली, व्रतधारी, गुरुओं
 की सेवा करनेवाले और जिनके द्वारसे अतिथि निराश नहीं
 जाता है उनकी जो गति होती हो वही गति तेरी हो ॥ २९ ॥
 हे पुत्र ! आपत्तिके समय और संकटोंके समय जो शोककी अग्नि
 से जलने पर भी अपने आत्माको धीरजसे रोके रहते हैं उनकीसी
 गति तेरी भी हो ॥ ३० ॥ जो सदा माता पिताकी सेवा करते
 रहते हैं और अपनीही स्त्रीसे प्रेम करते हैं उनकी जो गति होती

ये सदा । स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवामुहि ॥ ३१ ॥
 ऋतुकाले स्वकां भार्यां गच्छतां या मनीषिणाम् । परस्त्रीभ्यो
 निवृत्तानां तां गतिं ब्रज पुत्रक ॥ ३२ ॥ साम्नाये सर्वभूतानि
 पश्यन्ति गतमत्सराः । नारुन्तुदानां क्षमिष्यां या गतिस्तामवामुहि ३३
 मधुषांसनिवृत्तानां मदाद्भ्यात्तथाऽनृतात् । परोपतापत्यक्तानां तां
 गतिं ब्रज पुत्रक ॥ ३४ ॥ ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानवृत्ता जिते-
 न्द्रियाः । यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं ब्रज पुत्रक ॥ ३५ ॥
 एवं विलपती दीनां सुभद्रां शोककशिताम् । अन्वपद्यत पाञ्चाली
 वैराटीसहिता तदा ॥ ३६ ॥ ताः प्रक्षामं रुदित्वा च विलप्य च
 सुदुःखिताः । उन्मत्तवत्तदा राजन् विसंज्ञा न्यपतन्तिता ॥ ३७ ॥
 सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितार्थं शृणुःखितः । सिकताम्भसा सगा-

है बही गति तेरी हो ॥ ३१ ॥ दूसरेकी स्त्रियोंसे वचे रहनेवाले
 और अपनी स्त्रीसे भी ऋतुकालमें ही सपागम करनेवालोंकी
 गतिकी तू प्राप्त हो ॥ ३२ ॥ मत्सरताशून्य पुरुष सबको पक्षसा
 देखनेसे जिस गतिको पाने हैं और क्षमावान् तथा दूसरोंसे मर्म-
 भेदी बात न कहनेवाले जिस गतिको पाने हैं, उसही गतिको तू
 प्राप्त हो ॥ ३३ ॥ मय, मांस, मद, भुँठ और अट्टहारसे दूर
 रहनेवाले तथा दूसरोंको कष्ट देनेका विचार भी न करनेवाले
 पुरुषोंकी गति तुझमें मिले ॥ ३४ ॥ लज्जाशील, सकल शास्त्रोंके
 पारगामी, ज्ञानसे ही दृप्त रहनेवाले जितेन्द्रिय साधुपुरुषकीसी
 तेरी गति हो ॥ ३५ ॥ शोकसे दुबलीहुई सुभद्रा तो इस प्रकार
 विलख रही थी कि—इतनेमें ही तहाँ त्रिराटराजकी पुत्री उत्तरा
 और द्रौपदी आपहुँचीं ॥ ३६ ॥ वहे दुःखको भोगती हुई वे
 तीनों बहुतही रुदन करके और उन्मत्तकी समान विलाप करके
 मूर्छित हो पृथ्वीमें गिरपड़ीं ॥ ३७ ॥ यह देखकर कृष्णको बड़ा
 दुःख हुआ और उन्होंने जल छिड़ककर सुभद्राको सचेत किया

शवास्य तत्तदुक्ता हितं वचः । ३८ ॥ निसंज्ञयन्त्वा रुदनीं मर्म-
विद्धां प्रवेत्नीम् । भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ३९
सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वसयोत्तराम् । गतोऽभिमन्युः प्रथितां
गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४० ॥ ये चाश्वेष कुलो सन्ति पुत्र्या नो
वरानने । सर्वे ते तां गतिं यान्तु क्षाभिमन्योर्यशस्विनः ॥ ४१ ॥
क्षुर्यामेतद्वयं कर्म क्रियासु गृहदश्च नः । कृतवान् यादग्यैक-
स्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२ ॥ एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि
चोत्तराम् । पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वभागादग्निन्दमः ॥ ४३ ॥
ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान् कृष्णो बन्धूस्तथार्जुनम् । विवेशान्तःपुरे
राजंस्ते च जग्मुर्यथालयम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्रा-
विलासे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

और फिर हितकारी वचन कहनेलगे ॥ ३८ ॥ मूर्च्छितसी, और
जिसको मर्मवेधी पीडा पहुंची है ऐसी रोतीहुई अपनी बहिन
सुभद्रासे श्रीकृष्ण यह कहनेलगे, कि-॥ ३९ ॥ अरी सुभद्रा !
तू अब शोक न कर, हे पाञ्चाली ! तू उत्तराको धीरज दे, क्षत्रियों
में श्रेष्ठ अभिमन्युने शुभगति पाई है ॥ ४० ॥ हे वरानने ! मैं यह
चाहता हूँ, कि-हमारे कुलमें और भी जो मनुष्य हैं, वे भी यश-
स्वी अभिमन्युकी गतिको पावें ॥ ४१ ॥ तेरे महारथी अकेले पुत्र
ने आज जैसा काम किया है, ऐसाही काम हमारे सब मित्र और
हम करेंगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार बहिन, द्रौपदी और सुभद्राको
धीरज देकर महाबाहु अग्निन्दम, श्रीकृष्ण अर्जुनके ही पास चले
आये ॥ ४३ ॥ और राजाओंकी, बन्धुओंकी तथा अर्जुनकी
आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण अर्जुनके तन्मूमें चलेगए और अन्य राजे
तथा पाण्डव भी अपने २ डेरोंमें चलेगए ॥ ४४ ॥ अठहत्तरवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सञ्जय उवाच । ततोर्जुनस्य भवनं प्रविश्याप्रदिग्मं विभुः ।
 स्पृष्ट्वाग्भ्यः पुण्डरीकाक्षः रथिण्डले शुभलक्षणे ॥ १ ॥ सन्तस्तार
 शुभा शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसन्निभैः । ततो मान्येन विधिवत्त्वाजैर्गन्धैः
 सुमङ्गलैः ॥ २ ॥ अलङ्घ्यकार तां शय्यां परिवार्यायुधोत्तमैः । ततः
 स्पृष्ट्वादके पार्थे विनीताः परिचारकाः ॥ ३ ॥ दर्शयन्तोन्तिकं
 चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम् । ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धमान्यैश्च
 माधवम् ॥ ४ ॥ अलंकृत्योपहारन्तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् ।
 स्मयमानस्तु गोन्विदः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥ सृप्यतां पार्थ
 भद्रन्ते कल्याणाय व्रजाम्यहम् । स्थापयित्वा ततो द्वास्थान् गोप्तृ-
 श्चात्तायुधान्नरान् ॥ ६ ॥ दारुकानुगतः श्रीमान् विवेश शिविरं
 स्वकम् । शिश्ये च शयने शुभ्रे बहुकृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! व्यापक तथा कमलकी समान
 नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण अर्जुनके अनुपम राजभवनमें गए, तहाँ पहुँच
 कर उन्होंने आचमन किया और शुभ लक्षणोंवाले चोतरे पर
 वैदूर्यकी समान कुश विझाकर उसकी शय्या बनाई, तदनन्तर
 शास्त्रानुसार मांगलिक गन्धमान्यसे और अत्तोंसे उसकी रक्षा
 के लिये उसके चारों ओर उत्तम शस्त्र रखदिये, तदनन्तर
 अर्जुन भी आचमन करके पवित्र होगया तब विनीत स्वभाववाले
 सेवकोंने त्रिनेत्र महोदवजीको अर्पण करनेके लिये रक्खाहुआ
 बलि लाकर दे दिया, अर्जुनने प्रसन्नमनसे गन्धपुष्पोंके द्वारा
 श्रीकृष्णको अलंकृत करके रात्रिमें दीजाने वाली बलि शिवको
 अर्पण कर दी। तदनन्तर श्रीकृष्णने अर्जुनसे मुस्करातेर कहा,
 कि-॥ १-५ ॥ हे अर्जुन ! अब तू सोजा, तेरा कल्याण हो में
 अब तेरा कल्याण करनेको जाता हूँ, शस्त्रधारी रक्षकोंको अर्जुन
 की छावनीके द्वार पर खड़ा करके ॥ ६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण
 दारुकको साथमें ले अग्ने तबूमें चले गए और बहुतसी बातोंको

पार्याय सर्वे भगवान् शोतदुःखारहं त्रिधिम् । व्यदधात् पुण्डरी-
कान्तस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ॥ ८ ॥ योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वपा-
पीश्वरेश्वरः । श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्निष्णुमियद्वरः ॥ ९ ॥
न पाण्डवानां शिबिरे कश्चित् सुष्वाप तां निशाम् । प्रजागरः
सर्वजनं ह्याविवेश विनाम्पते ॥ १० ॥ पुत्रशोकाभितप्तं प्रति-
ज्ञातो महात्मना । सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ११
तत् कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा । प्रतिज्ञां सफलां कुर्या-
दिति ते समचिन्तयन् ॥ १२ ॥ कष्टं वीदं व्यवसितं पाण्डवेन
महात्मना । स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः सताम् ॥ १३ ॥
पुत्रशोकाभितप्तं प्रतिज्ञां महतीं कृता । भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहु-
लानि वृत्तानि च ॥ १४ ॥ धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदि-

विचारते २ शय्या पर लेटगए ॥ ७ ॥ तदनन्तर कुछ देर निद्रा
लेकर सबके महेश्वर अर्जुनका कल्याण करनेकी इच्छावाले,
विशालकीर्त्ति योगिराज भगवान् विष्णु (शय्या परसे) उतर कर
अर्जुनके लिये शोग धारणकर उसके शोक तथा दुःखको दूर करने
वाले तथा प्रताप और तेजको बढ़ानेवाले कार्यको करने
लगे ॥ ८-९ ॥ हे राजन् ! उस रातको पाण्डवोंकी छावनीमें कोई
नहीं सोया, सबने जागते २ ही रात बिता दी ॥ १० ॥ वे विचारते
थे, कि—महात्मा गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनने पुत्रशोकसे सन्तप्त
होकर एकाएकी सिंधुराजका वध करनेकी प्रतिज्ञा करली है, और
महाबाहु वीर शत्रुओंका नाश करनेवाला अर्जुन उस प्रतिज्ञाको
कैसे पूरी करसकेगा ? ॥ ११-१२ ॥ महात्मा अर्जुनने बड़ा
कठिन प्रण किया है और जयद्रथ भी महाबली है, तो भी हे
ईश्वर ! ऐसा करो, कि—अर्जुन उसको पूरा कर लेय ॥ १३ ॥
पुत्रशोकसे सन्तप्त होतेहुए अर्जुनने बड़ाभारी प्रतिज्ञा की है, परन्तु
जयद्रथके भाई (सहायक) भी बड़े बली हैं और सेना भी बहुत

तम् । स हत्वा सैन्यं संख्ये पुनरेतु धनञ्जयः ॥ १५ ॥ जित्वा
 रिपुगणां चैव पारयन्नर्जुनो व्रतम् । श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वे
 धूपकेतुं प्रवेक्ष्यति ॥ १६ ॥ न ह्यप्यारुतं कर्तुं मलं पार्थो धनञ्जयः ।
 धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥ १७ ॥ तस्मिन् हि
 विजयः कृतस्त्रः पाण्डवेन समाहितः । यदि नोस्ति कृतं किञ्चि-
 द्वादि दत्तं हुतं यदि ॥ १८ ॥ फलेन तस्य सर्वस्य सव्य-
 साची जयत्वंरीन् । एवं कथयतां तेषां जयमाशंसनां प्रभो ॥ १९ ॥
 कुच्छ्रेण महता राजन् रजनी व्यत्यवर्त्तत । तस्या रजण्या मध्ये
 तु प्रतिबुद्धो जनादिनः ॥ २० ॥ स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्य-
 भापत । अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्त्तेन हतवन्धुना ॥ २१ ॥ जयद्रथं
 वधिष्यामि श्वो भूत इति दारुक । तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रि-

है ॥ १४-॥ धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने भी वह सब बात जयद्रथसे
 कहदी है, कि-कलको अर्जुन रथमें सिन्धुराजका नाश करके और
 शत्रुओंको जीतकर अपना व्रत पूरा करके ही लौटे तो ठीक हो
 सकता है यदि वह कल जयद्रथको न मारसकेगा तो अग्निमें प्रवेश
 करके मरजायगा ॥ १५-१६ ॥ अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाके भंगका
 नहीं सहसकेगा, अर्जुनके मरजाने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर कैसे
 जियेगा ? ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरने अपनी विजयका पूरा आधार अर्जुन
 के ही ऊपर रक्खा है यदि हमने शुभकर्म किये हों, दान किया
 हो, अग्निमें होम किया हो तो उन सब पुण्योंके फलसे सव्य-
 साची अर्जुन शत्रुओंका पराजय करे, हे प्रभो ! उनके हितैषियों
 ने इसप्रकार अर्जुनकी विजयकी कामना करते-सारी रात
 दुःखमें ही बितादी ॥ १८-२० ॥ अर्धरात्रिके समय अर्जुनकी
 प्रतिज्ञाका स्मरण कर श्रीकृष्णने दारुकमें कहा, कि-पुत्रके
 मारे जानेसे व्याकुलहुए अर्जुनने प्रतिज्ञाकी है, कि-॥ २१ ॥ मैं
 कल मूर्धासनसे पहिले जयद्रथको मारडालूंगा हे दारुक ! दुर्यो-

भिर्मन्त्रयिष्यति ॥२२॥ यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे ।
 अर्ज्ञाहिण्यो हि ताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम् ॥ २३ ॥ द्रोणश्च
 सहपुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः । एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानव-
 दर्पहा ॥ २४ ॥ सोऽपि तत्रोत्सहेताजो हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ।
 सोऽहं श्वस्तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोर्जुनः ॥ २५ ॥ अमाप्तेऽ-
 स्तन्दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् । न हि दारा न मित्राणि ज्ञातव्यो
 न च बान्धवाः ॥ २६ ॥ कश्चिदन्याः मियतराः कुन्तीपुत्रान्मया-
 र्जुनात् । अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्त्तमपि दारुक ॥ २७ ॥ उदीक्षितं
 न शक्तोऽहं भविता न च तत्तथा । अहं विजित्य तान् सर्वान् सहसा
 सह्यद्विपान् ॥ २८ ॥ अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान् समुद्योध-
 नान् । श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ॥ २९ ॥ धन-

धन यह सुनकर किसप्रकार अर्जुन युद्धमें जयद्रथको न मारसकें
 इस विषयमें मन्त्रियोंसे सलाह करेगा, उसकी सब अर्ज्ञाहिणी
 सेनाएं जयद्रथकी रक्षा करेंगी ॥२२-२३॥ सबप्रकारकी अस्त्र-
 विधियोंमें पारङ्गत द्रोणाचार्य भी अश्वत्थामाको साथमें रखकर
 जयद्रथकी रक्षा करेंगे, दैत्य और दानवोंके घमण्डका खण्डक
 इकठ्ठा वीर इन्द्रभी द्रोणकी छायामें रहनेवाले दुरूपको संग्राममें
 नहीं मारसकता, दूसरेकी तो बातही क्या ? परन्तु कलमें ऐसी
 व्यवस्था करूंगा, कि-कुन्तीपुत्र अर्जुन मर्यास्तसे पहले ही जय-
 द्रथको मार ले ॥ २४-२५ ॥ हे दारुक! मुझै कुन्तीपुत्रकी सभान
 स्त्री, मित्र जातिवाले और बान्धव या और कोई भी अधिक प्यारे
 नहीं हैं, हे दारुक! मैं अर्जुनरहित इस लोकको क्षण भरके लिये
 भी नहीं देख सकता अर्थात् बिना अर्जुनके मैं क्षण भरभी नहीं
 जीवित नहीं रहसकता और अर्जुन मर भी नहीं सकता, मैं
 अर्जुनके लिये सब शत्रुओंको हाथी घोड़े सहित जीतकर कर्ण-
 सहित और दुर्योधन सहित सबोंको मारडालूंगा, कल तीनों लोक

ऊजयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक । श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राज-
 पुत्रशतानि च ॥ ३० ॥ साश्वद्विपरथान्याजौ विद्विष्यामि दारुक ।
 श्वस्ताञ्चक्रप्रमथितां द्रव्यसे नृपवाहिनीम् ॥ ३१ ॥ यथा क्रुद्धेन
 समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् । श्वः सदेताः सगन्धर्वाः पिशाचो-
 रगराक्षसाः ॥ ३२ ॥ ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्य-
 साचिनः । यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चानु स मामनु ॥ ३३ ॥
 इति सङ्कल्प्यतां युद्धया शरीरार्थं भगार्जुनः । यथा त्वं मे प्रभा-
 तायामस्यां निशि रथोत्तमम् ॥ ३४ ॥ कल्पयित्वा यथाशास्त्र-
 मादाय ब्रज संयतः । गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः
 शरान् ॥ ३५ ॥ आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च । स्था-

महारणमें मेरे पराक्रमको देखें ॥ २९-३० ॥ हे दारुक ! कल मैं
 अर्जुनके लिये पराक्रम करके छोड़े हाथी और रथों सहित सहस्रों
 राजे और सैकड़ों राजकुमारोंको रणभूमिसे भगादूँगा, हे दारुक !
 कल तू यह देखेगा, कि-मैं पाण्डवोंके लिये बड़ी भारी राजाओंकी
 सेनाओंको क्रोधमें भर-चक्रसे मारकर भगा रहा हूँ, कल गन्धर्वों-
 सहित देवता, पिशाच, सर्प, राक्षस तथा सब लोग यह जानेंगे,
 कि-मैं अर्जुनका मित्र हूँ, जो अर्जुनसे द्वेष करते हैं वे मुझसे भी
 द्वेष करते हैं और जो अर्जुनके अनुकूल हैं वे मेरे अनुकूल हैं ३०-३३
 इसप्रकार बात चीत करके श्रीकृष्णने कहा, कि-हे दारुक ! अर्जुन
 तो मेरा आधा शरीर है; अतः आजकी रात बीतने पर तू प्रातः-
 काल शीघ्रतासे तयार होजाना और युद्धशास्त्रकी विधिके अनुसार
 मेरी कौमोदकी नामकी दिव्य गदा, शक्ति चक्र, धनुष, बाण और
 दूसरी वस्तुओंको रथमें यथास्थान पर रख देना, इसके पीछे रथको
 लेकर मेरे पास आना, और हे सूत ! रथके ऊपर ध्वजा पताका
 आदिको ठीककर लगाना और संग्राममें रथको शोभा देनेवाला
 गहड़का स्थान भी ठीकर कर देना, छत्रको भी ठीक २ लगाना

नञ्च कल्पित्याद्य रथोपस्थे ध्वजस्य मे ॥ ३६ ॥ देवनेयस्य वीरस्य
सभरे रथशोभिनः । नञ्चं जाम्बूनदैर्जालैर्कञ्जवलनसम्पभैः ॥ ३७ ॥
विश्वैर्मकुटैर्दिव्यैररथानपि विभूषितान् । बलाहकं मेघपुष्पं शीघ्रं
सुग्रीवमेव च ॥ ३८ ॥ युक्तान् चानिवरान् यत्तः कवची तिष्ठ
दारुक । पाञ्चजन्यस्य निर्वोपमार्पभेणीव पूरितम् ॥ ३९ ॥ श्रुत्वा
य भैरवं नादमुपायास्तत्त्वं जयेन गाम् । एकान्दाहगमर्पञ्च सर्व-
दुःखानि चैव ह ॥ ४० ॥ भ्रातुः पेतृष्वसेयस्य व्यपनेप्यामि
दारुक । सर्वोपायैर्यत्तिप्यामि यथा वीभत्तुराह्वे ॥ ४१ ॥ पश्यतां
भार्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् । यस्य यस्य च वीभत्तुर्वधे यत्नं
करिष्यति । आशंसे सारथे तत्र भवितास्य ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥
दारुक उवाच । जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः । यस्य
त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ४३ ॥ एवं चैतत् करि-

तया विश्वकर्माके वनाएहुए सूर्य और अग्निही समान तेजस्वी
दिव्य जालोंसे सजेहुए बलाहक, मेघपुष्प, शीघ्र और सुग्रीव
नानक घोड़ोंको रथमें जोतकर और स्वयंभी कवच पहनकर तयार
रहना और मेरे बजाएहुए पाञ्चजन्यकी हथभकी समान भयानक
ध्वनिको तुनतेही तू शीघ्रतासे मेरे पास चलाआना, हे दारुक ।
मैं एक दिनमें अपने फुफ्फेरे भाईके शोक और सब कष्टोंको
दूर कर दूंगा मैं सब प्रकारसे यह यत्न करूँगा, कि-धृतराष्ट्रके
सब पुत्रोंके देखते रहने पर ही अर्जुन जयद्रथको मारवाले, हे
सारथि । अर्जुन जिसका वध करनेका प्रयत्न करेगा, मैंआशा
करता हूँ कि उस अश्वकुके ऊपर वह अवश्य ही विजय पावेगा ॥ ४०-४२
दारुकने कहा, कि-उसकी अवश्यही जय होगी, भला जिसके
आप सारथी है, उसही हार हो ही कैसे सकती है ? ॥ ४३ ॥

ध्यामि यथा मामनुशाससि । सुमाभातामिमां रात्रिं जयाय विज-
यस्य हि ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदासक-

सम्भाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सञ्जय उवाच । कुन्तीपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनञ्जयः ।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् मुमोहाचित्यविक्रमः ॥ १ ॥ तन्तु शोकेन
सन्तप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम् । आससाद महातेजाः ध्यायन्तं गरुड-
ध्वजः ॥ २ ॥ प्रत्युत्थानञ्च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनञ्जयः । न
लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ॥ ३ ॥ प्रत्युत्थाय
च गोविन्दं स तस्या आसनं ददौ । न चासने स्वयं बुद्धिं वीभत्सु-
र्व्यदधात्तदा ॥ ४ ॥ ततः कृष्णो महातेजा जानन् पार्थस्य निश्च-
यम् । कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥ ५ ॥ मा

आपकी आज्ञाके अनुसार रात बीतकर प्रातःकाल होतेही मैं
अर्जुनकी विजयके लिये प्रबन्ध करूँगा ॥ ४४ ॥ उनासीवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ ॥ छ ॥ ॥

सञ्जयने कहा; कि-अचिन्त्य पराक्रमी कुन्तीपुत्र अर्जुन द्रोण
आदिके द्वारा जयद्रथकी रक्षाके विषयका विचार करता २ तथा
अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेका विचार करता २ ही सो गया ॥ १ ॥
जिसकी ध्वजामें हनुमान विराजते हैं ऐसा अर्जुन शोकसे सन्तप्त
होकर प्रतिज्ञा आदिका ध्यान करताहुआ सोरहा उस समय अर्जुन
के पास स्वप्नमें ही गरुडध्वज श्रीकृष्ण आये ॥ २ ॥ धर्मात्मा अर्जुन
किसी दशामें भी श्रीकृष्णको भक्ति और प्रेमपूर्वक प्रत्युत्थान दिए
बिना नहीं रहता था ॥ ३ ॥ अतः उसने (स्वप्नमें भी) श्रीकृष्णको
खड़े होकर आसन दिया और स्वयं आसन पर बैठनेका विचार
नहीं किया सामने ही खड़ा रहा ॥ ४ ॥ आसन पर बैठेहुए
महातेजस्वी श्रीकृष्णने अर्जुनके विचारको जानकर खड़ेहुए

विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः । कालः सर्वाणि भूतानि
 नियच्छति परे विधौ ॥ ६ ॥ किमर्थञ्च विषादस्ते तद् ब्रूहि
 द्विपदा वर । न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः ॥ ७ ॥
 यत्तु कार्यं भवेत् कार्यं कर्मणा तत् समाचर । हीनचेष्टस्य यः शोकः
 स हि शत्रुर्धनञ्जय ॥ ८ ॥ शोचन्नन्दयते शत्रून् कर्शयत्यपि
 बान्धवान् । क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥
 इत्युक्तो वासुदेवेन वीभत्सुरपराजितः । आवभाषे तदा विद्वानिदं
 वचनमर्थवत् ॥ १० ॥ मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता । रवो-
 स्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रव्रमिति केशव ॥ ११ ॥ मत्प्रतिज्ञाविधा-
 तार्थं धार्तराष्ट्रैः किलाच्युत । पृष्ठतः संधवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महा-
 रथैः ॥ १२ ॥ दश चैका च ताः कृष्ण अर्जोहिण्यः सुवर्जयाः ।

अर्जुनसे कहा, कि—॥ ५ ॥ हे पार्थ ! तू मनमें खेद न कर, काल
 दुर्जय है, काल सब प्राणियोंको अवश्यभावी कार्यमें लगा देता
 है ॥ ६ ॥ हे मनुजश्रेष्ठ ! तुझे शोक क्यों हो रहा है ? उसका
 कारण बता, हे विद्वद्वर ! तुझे शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि
 शोकसे काम नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥ हे धनञ्जय ! तुझे जो काम
 करना हो उसको कर, जो पुरुष उद्योग तो करते नहीं और शोक
 करते हैं, उनके लिये वह शोक शत्रुरूप होजाता है ॥ ८ ॥ शोक
 करताहुआ पुरुष शत्रुओंको प्रसन्न करता है, बन्धुओंको दुर्बल
 करता है और स्वयं क्षीण होजाता है. अतः तुझको शोक नहीं
 करना चाहिये ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णके ऐसा कहने पर अपराजित,
 विद्वान् अर्जुनने यह सार्थक वचन कहा, कि—॥ १० ॥ हे केशव !
 मैंने जयद्रथको मारनेके लिये बड़ीभारी प्रतिज्ञाकी है कल में अपने
 पुत्र अभिमन्युके हत्यारे जयद्रथको मार डालूँगा ॥ ११ ॥
 परन्तु हे अच्युत ! धृतराष्ट्रके पुत्र मेरी प्रतिज्ञाको भंग करनेके लिये
 जयद्रथको सबसे पीछे रखेंगे और सब महारथी उसकी रक्षा

हतावशेषास्तत्रेमां हन्त माधव संख्यया ॥ १३ ॥ ताभिः परिवृतः
 संख्ये सर्वैश्चैव महाथैः । कथं शक्येत सन्द्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण
 सैन्धवः ॥ १४ ॥ प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव । प्रति-
 ज्ञायां च हीनायां कथं जीवति मद्विधः ॥ १५ ॥ दुःखोपायस्य मे
 वीर विज्ञांता परिवर्त्तते । द्रुतञ्च याति सत्रिता तत एतद् प्रवी-
 म्यहम्य ॥ १६ ॥ शोकस्थानन्तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
 संस्पृश्याम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवस्थितः ॥ १६ ॥ इदं वाक्यं
 महातेजा वभाषे पुण्डरीक्षणः । हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे
 कृती ॥ १८ ॥ पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् । येन
 सर्वान् मृधे दैत्यान् जप्ते देवा महेश्वरः ॥ १९ ॥ यदि तद्विदितं
 तेद्य श्वो हन्तासि जयद्रथम् । अथाज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभ-

कर्णे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! ग्यारह अक्षौहिणीमें जो वीर
 मरनेसे बचे हैं उन सब महारथियोंसे घिराहुआ जयद्रथ कैसे
 दीखेगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ केशव ! इस दशामें मैं अपनी प्रतिज्ञा
 पूरी कैसे करसकूँगा ? और मुझ सरीखा पुरुष प्रतिज्ञाको भंग
 करके फिर कैसे जीवित रहसकता है ? ॥ १५ ॥ अतः मुझे कठि-
 नतासे पूरे होनेवाली प्रतिज्ञाके पूरा होनेमें सन्देह होता है और
 (इस ऋतुमें) सूर्य भी अस्त होनेके लिये शीघ्रतासे चलता है,
 इसलिये भी मैं ऐसा कहता हूँ ॥ १६ ॥ गरुडध्वज श्रीकृष्ण
 अर्जुनके शोकका कारण सुन आचमन कर पूर्वकी ओरको मुख
 करके बैठगए ॥ १७ ॥ महातेजस्वी कुनकुप्य कमलनयन श्रीकृष्ण
 ने उस पाण्डुपुत्र अर्जुनका हित करनेके लिये और जयद्रथके
 वधके लिये अर्जुनसे इसप्रकार कहा, कि— ॥ १८ ॥ हे पार्थ !
 पाशुपत नामका एक माचीन और श्रेष्ठ अस्त्र है, उस अस्त्रसे
 महादेवजीने संग्राममें सब दैत्योंको मारडाला था ॥ १९ ॥ यदि
 तुझे उस अस्त्रका ज्ञान होजाय तो तू कल जयद्रथको अवश्यही

ध्वजम् ॥ २० ॥ तं देवं मनसा ध्यात्वा जोषमाक्ष धनञ्जय ।
 ततस्तस्य मसादात्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत् ॥ २१ ॥ ततः
 कृष्णवचः श्रुत्वा संपृष्ट्याम्भो धनञ्जयः । भूपावासीन एमाग्रो
 जगाम मनसा भवम् ॥ २२ ॥ ततः प्रणिहिते ब्राह्मे गृह्णते शुभ-
 लक्षणे । आत्मानमर्जुनोऽपश्यद्गगने सह केशवम् ॥ २३ ॥ पुण्यं
 हिमवनः पादं मणिमन्तञ्च पर्वतम् । ज्योतिर्भिश्च समाशीर्णं सिद्ध-
 चारणमेधितम् ॥ २४ ॥ वायुवेगगतिः पार्थ स्वर्भोजे सङ्केशवः ।
 केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥ २५ ॥ धैर्यमाणो
 बहून् भावान् जगामाद्भुतदर्शनान् ॥ उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोप-
 श्यच्छ्वेतपर्वतम् ॥ २६ ॥ कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषि-
 ताम् । सरिच्छ्रंष्टाञ्च ताङ्ग्रां वीक्षमाणो बहूदकाम् ॥ २७ ॥

भार सकेगा, यदि तुझे उस अस्त्रका ध्यान न हो तो तू मनमें
 शिवजीका ध्यान कर ॥ २० ॥ हे धनञ्जय ! तू उन महादेवजी
 का ध्यान कियेहुए चुपचाप बैठा रह तो भगवान् शंकरके मस-
 होनेपर तुझे वह महाबाण मिलजायगा ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णकी
 इस बातको सुनकर अर्जुन आचमन करके भूमिमें बैठगया और
 एकाग्रचित्तसे शिवजीका ध्यान करने लगा ॥ २२ ॥ तदनन्तर
 ध्यानावस्थामें शुभ ब्राह्मगृहर्तके समय अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ
 अपनेको आकाशमें उड़तेहुए देखा ॥ २३ ॥ योड़ीही दूरीमें सिद्ध
 और चारणोंसे सेवित प्रकाशवान् मणिमान् पर्वत और हिमाचल
 की तलैरी दीखी ॥ २४ ॥ आकाशमें उड़ते समय प्रभु श्रीकृष्णने
 अर्जुनका दाहिना हाथ पकड़ रक्खा था और धर्मात्मा अर्जुन
 वायुवेगसे श्रीकृष्णके साथही आकाशमें उड़ा चला जारहा था,
 अद्भुत दृश्यवाले बहुतसे अलौकिक भावोंको देखता हुआ वह
 उत्तर दिशाकी ओरको चला, तहाँ श्वेतपर्वत देखा ॥ २५-२६ ॥
 आगे बढ़कर कुबेरके विहारस्थानमें कमलोंसे भूषित सरोवरको

सदा पुष्पफलोद्भूतैरुपेतं स्फटिकोपलाम् । सिंहव्याघ्रसमाकीर्णं
 नानामृगसमाकुलाम् ॥ २८ ॥ पुण्याश्रमवर्ती रम्या मनोह्राण्डज-
 सेविताम् । मन्दरस्य प्रदेशाश्च किन्नरोद्गीतनादितान् ॥ २९ ॥
 हेमरूप्यमयैः शुद्धैर्नानौपधिविदीपितान् । तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पि-
 तैरुपशोभितान् ॥ ३० ॥ स्निग्धाञ्जनचयाकारं सम्पातः कालपर्व-
 तम् । ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चान्यास्तथा जनपदानपि ॥ ३१ ॥ सत्तुङ्गं
 शतशुङ्गं च शर्यातिवनमेव च । पुण्यमश्वशिरः स्थानं स्थानमाथ-
 र्वणस्य च ॥ ३२ ॥ वृषदंशश्च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च । अप्स-
 रोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम् ॥ ३३ ॥ तस्मिन् शैले
 ब्रजन् पार्थः सकृष्णः समवैक्षत । शुभैः प्रसवणैर्जुष्टं हेमधातुवि-

देखकर अगाध जलवाली, सर्वदा पुष्पों और फलोंवाले वृक्ष
 वाली, स्फटिककेसे पत्थरोंवाली, सिंह और भेड़ियोंसे बसी हुई
 तथा बहुतसे मृगोंसे भरी हुई, सुन्दर पक्षियोंसे सेवित और पवित्र
 आश्रमोंवाली गङ्गाजीको देखा और किन्नरोंके संगीतसे गुञ्जारते
 हुए, सुवर्ण और चान्दीके शिखरोंवाले, नानाप्रकारकी औप-
 धियोंसे प्रदीप्त, फूलोंसे लदे हुए मन्दारके वृक्षोंसे शोभित मन्द-
 राचलके प्रदेशोंको देखता हुआ चिकने अञ्जनके ढेरकी समान
 कालपर्वत पर जा पहुँचा, आगे चलकर श्रीकृष्णलहित अर्जुनने
 ब्रह्मतुङ्ग पर्वतको, अनेकों नदियोंको और देशोंको देखा २७-३१
 तहाँसे आगे जाकर ऊँचे और सौ शिखरोंवाले पर्वतको शर्याति
 नाम वनको अश्वशिरा ऋषिके और आथर्वण नामक मुनिके
 पवित्र आश्रमको देखा ३२ वृषदेश पर्वतपर गया और तहाँसे आगे
 जाकर अप्सराओं तथा किन्नरोंसे शोभित और तहाँसे पर्वतेन्द्र
 महामन्दर परगया ३३ तहाँ उसने सुन्दर भरनेवाली, सुवर्ण तथा
 दूसरी धातुओंसे शोभायमान चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशमान और
 नगररूपी मालाओंसे शोभित पृथ्वीदेवीको देखा, तथा वह अञ्जुत

भूषिताम् ॥ ३४ ॥ चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् ।
समुद्रांश्चान्द्रुताकारानपश्यद्बहुलांकरान् ॥ ३५ ॥ वियद् द्यां
पृथिवीं चैव तथा विष्णुपदं व्रजन् । विस्मितः सह कृष्णेन क्षिप्तो
बाण इवाभ्यगात् ॥ ३६ ॥ ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्नियोश्च सम-
त्विपम् । अपश्यत् तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥ ३७ ॥ समो-
साद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् । तपोनित्यं महात्मानमप-
श्यद् वृषभध्वजम् ॥ ३८ ॥ सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्व-
तेजसा । शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम् ॥ ३९ ॥ नय-
नानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् । पार्वत्या सहितं देवं भूत-
संघैश्च भास्वरैः ॥ ४० ॥ गीतवादित्रसन्नादैर्हास्यलास्यसमन्वि-

दीखने वाले समुद्रोंको बहुतसी खानोंको आकाश, स्वर्ग और
पृथ्वीको देखकर विस्मित होता हुआ फँकेहुए बाणकी समान
वेगसे श्रीकृष्णके साथ आगेको बढ़ता चलागया ॥ ३४-३६ ॥
तदनन्तर उसने ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निकी समान प्रकाश
वान् एक पर्वतको देखा ३७ उस पर्वत पर पहुँचकर पर्वतके अग्र
भागपर बैठेहुए, सर्वदा तपस्या करनेवाले अपनी कान्तिसे सहस्रों
सूर्योंकी समान दिपतेहुए शून्य और जटाधारी गोरे वर्ण वल्कल
और मृगझालाके वस्त्रवाले, सहस्रों नेत्र होनेसे विचित्र अङ्गोंवाले
महाबली भगवान् शिवको देखा, उनके पास पृथिवी और तेजस्वी
भूतगण विराज रहे थे वे गीत गातेहुए बाजा बजा रहे थे, बड़ी बड़ी
गर्जना करके हास्य और नृत्य करके इधर उधरको गोलाकार घूम
कर भुजाओं पर थाप देकर बड़ी गर्जना करतेहुए उनकी सेवा
कर रहे थे, उनके पवित्र चन्दन लगरहा था, ब्रह्मज्ञानी अपि
दिव्यस्तुतियोंसे उनकी स्तुति कर रहे थे, ऐसे सब प्राणियोंकी
रक्षा करनेवाले वृषभध्वज शंकरका दर्शन करके धर्मात्मा श्रीकृष्ण
और अर्जुनने शिवजीको देखते ही माथा टेककर प्रणाम किया,

तम् । वल्लितास्फोटितोत्कुट्टैः पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥ ४१ ॥
 स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः । गोप्तारं सर्वभूतानामि-
 ष्वासधरमच्युतम् ॥ ४२ ॥ वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा
 त्तिथिम् । पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥ ४३ ॥
 लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् । मनसः परमं योनिं खं
 वायुं ज्योतिषां निधिम् ॥ ४४ ॥ स्रष्टारं चारिधाराणां भुवश्च
 प्रकृतिं पराम् । देवदानवयक्षाणां मानवानाञ्च साधनम् ॥ ४५ ॥
 योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदान्निधिम् । चराचरस्य स्रष्टारं
 प्रतिहर्तारमेव च ॥ ४६ ॥ कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोद-
 यम् । ववन्दे तं तदा कृष्णो बाह्मनो कर्मबुद्धिभिः ॥ ४७ ॥ यं प्रप-
 द्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैपिणः । तमजं कारणात्मानं जगत्पु-
 शरणं भवम् ॥ ४८ ॥ अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽप्यवन्दत ।

तदनन्तर वाणी मन और बुद्धिसे उन सनातन ब्रह्मकी स्तुति करना
 आरम्भ करदी, कि-तुम जगत्के आदि कारण हो, विश्वकर्मा,
 अजन्मा, ईशान, अच्युत, मनसे भी पर, कारणमूर्ति, आकाश
 और वायुमूर्ति तथा तेजके भण्डाररूप हो ॥ ३८-४४ ॥ तुम
 मेघके सिरजनहार पृथ्वीकी परप्रकृतिरूप हो, देव, दानव, यक्ष
 और मनुष्योंके साधनरूप हो, योगियोंके परम धामरूप ब्रह्मवेत्ताओं
 को ब्रह्मतत्त्वका खजाना प्रत्यक्ष दिखानेवाले, चराचर जगत्के
 बनाने और नष्ट करनेवाले हो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कालकी समान
 कोप करनेवाले, महाउदार इन्द्रके गुण ऐश्वर्य आदि और सूर्यके
 गुण प्रताप आदिके उत्पत्तिस्थान तुम ही हो, इस प्रकार मन
 वाणी तथा बुद्धिसे श्रीकृष्णने स्तुति करके प्रणाम किया ॥ ४७ ॥
 सूक्ष्म अध्यात्म पदको पानेकी इच्छासे विद्वान् भी जिनकी शरण
 लेते हैं, उन कारणात्मा; अजन्मा श्रीशंकरकी उन दोनोंने शरण
 ली ॥ ४८ ॥ अर्जुन भी शिवको सब माणियोंका आदिकारण,

शास्त्रा तं सर्वभूतादि भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ ४६ ॥ नतस्तावागता
 दृष्ट्वा नरनारायणावुर्भा । सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच ब्रह्मसन्निव ५०
 स्वागतं वो नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतवलर्मा । किञ्च वापीप्सितं वीरौ
 मनसः क्षिप्रमुच्यताम् ॥ ५१ ॥ येन कार्येण सम्प्राप्तां युवान्तत्सा-
 धयामि किम् । श्रियतामात्मनः श्रेयस्तत्सर्वं मददानि वाम् ॥ ५२ ॥
 ततस्तद्वचनं श्रुत्वा मत्पुत्राय कृताञ्जली । वासुदेवावर्जुनीं शर्वं
 तुष्टुवाते महामती ५३ भक्त्या स्तत्रेन दिव्येन महात्मानावनिदिता ५४
 कृष्णावर्जुनावूचतुः । नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
 पशुनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ५५ ॥ महादेवाय भीमाय
 त्र्यम्बकाय च शान्तये । ईशानाय मखग्राय नमोस्त्वन्धकघातिने ५६
 कुमारगुरवे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे । पिनाकिने हविष्याय सत्याय

तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमानका उत्पादक जानकर बारंबार
 प्रणाम करने लगा ॥ ४६ ॥ उन दोनों नर नारायणोंको आया
 हुआ देखकर प्रसन्न हुए शिवने हँसनेर उनसे कहा, कि-५०
 हे श्रेष्ठ वीरों ! तुम भले आये ! प्रवासकी थकावटको दूर करके
 खड़े होजाओ और तुम्हारा जो मनोरथ हो उसको शीघ्रही
 बताओ ॥ ५१ ॥ तुम दोनों जिस कामके लिये आये हो उस
 कामको मैं पूरा करूँगा, तुम अपना कल्याण करनेवाला वर माँग
 लो मैं तुमको तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करनेवाला सबही प्रकार
 का वर दूँगा ॥ ५२ ॥ श्रीशंकरकी बात सुनकर पवित्र चरित्र वाले,
 महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक
 दिव्यस्तोत्रसे श्रीशंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ श्रीकृष्ण
 और अर्जुन बोले, कि-भव, शर्व, रुद्र, वरद, पशुओंके पनि
 उग्र और कपर्दीको हम सर्वदा प्रणाम करते हैं ॥ ५५ ॥ महा-
 देव, भीम, त्र्यम्बक, शान्ति, ईशान, दक्षके यज्ञका, विध्वंस करने
 वाले और अन्धकामुरको मारनेवाले शिवको हमारा प्रणाम

विभवे सदा ॥ ५७ ॥ विलोहिताय धूम्राय व्याधायानपराजिते ।
 नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥ ५८ ॥ होत्रे पोत्रे
 त्रिनेत्राय व्याघ्राय वसुरेतसे । अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेव-
 स्तुताय च ॥ ५९ ॥ वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे । तप्य-
 मानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥ ६० ॥ विश्वात्मने विश्व-
 सृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते । नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे
 सदा ॥ ६१ ॥ ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च । नमोस्तु
 वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥ ६२ ॥ नमो विश्वस्य पतये महतां
 पतये नमः । नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥ ६३ ॥ सहस्रनेत्र-
 पादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे । नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय
 च । भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो ॥ ६४ ॥ संजय

है ॥ ५६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयके पिता, नीलकण्ठ, वेधा, पिनाकी,
 हविष्यमूर्ति, सत्य, सदा व्यापक ऐसे आपको हम प्रणाम करते
 हैं ॥ ५७ ॥ विलोहित, धूम्र, व्याध, किसीसे न हारेहुए, नाल-
 केश, शूलधारी, दिव्यनेत्रों वाले, होता, पोता, त्रिनेत्र, व्याध,
 वसुरेता, अचिन्त्य, भवानीपति, सब देवताओंसे स्तुति पानेवाले
 वृषध्वज, मुण्ड-जटाधारी, ब्रह्मचारी, जलमें तप करनेवाले,
 ब्रह्मवेत्ता, अजित, विश्वात्मा, विश्वसृष्टा, विश्वव्यापक, सेवा
 करने योग्य प्राणियोंके मूलस्थानरूप आपको हम चारम्बार
 प्रणाम करते हैं ॥ ५८-६१ ॥ ब्रह्मवक्त्र, शर्व, शंकर शिवको
 नमस्कार है, वाचस्पति और प्रजापति को प्रणाम है ॥ ६२ ॥
 विश्वके स्वामीको हम नमस्कार करते हैं, महत्त्वादिके पति,
 सहस्र शिर और सहस्र भुजाओंवाले, मृत्युरूप शिवको हम प्रणाम
 करते हैं ॥ ६३ ॥ सहस्र नेत्र और चरणों वाले असंख्यों कर्म
 करनेवाले आपको प्रणाम है, हिरण्यवर्ण तथा हिरण्यकवचधारी
 आपको प्रणाम है, भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले आपको प्रणाम

उवाच ॥ एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहाजुनः । प्रसादयामास
भवं तदा हस्तोपलब्धये ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुन-

स्वप्नदर्शने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

सञ्जय उवाच । ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्दृषभध्वजम् ।
ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ १ ॥ तच्चोपहारं
सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मनः । ददर्श त्र्यम्बकाभ्यासे वासुदेवनिवेदितम् २
ततोभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वञ्च पाण्डवः । इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्र-
मित्यभाषत शङ्करम् ॥ ३ ॥ ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थं वचनं
तदा । वासुदेवाजुनौ देवः स्मयमानोभ्यभाषत ॥ ४ ॥ स्वागतं वा
नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेऽपि सतम् । येन कामेन सम्प्राप्तौ भवद्भ्यां

हे हे प्रभो ! हमारा वर नित्य सिद्ध हो ॥ ६४ ॥ सञ्जयने कहा,
कि-इस प्रकार अर्जुन और श्रीकृष्णने अस्त्र पानेके लिये
महादेवजीकी स्तुति कर उनको प्रसन्न किया ॥ ६५ ॥ अस्तीर्षा
अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥ ॥ छ ॥ छ

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! तदनन्तर प्रसन्न चित्त और
हर्षसे खिलरहे हैं नेत्र जिसके ऐसे अर्जुनने हाथ जोड़कर सब
तेजोंके निधि भगवान् शंकरकी ओर देखा ॥ १ ॥ नित्य नियमके
अनुसार शंकरका राजिका बलिदान, जो श्रीकृष्णजीको चढ़ा
दिया था, उसको भी श्रीशंकरके पास पड़ा हुआ देखा ॥ २ ॥
तदनन्तर अर्जुनने श्रीकृष्ण और शिवकी मनसे पूजा करके
शंकरसे कहा कि-मैं आपसे दिव्य अस्त्र लेना चाहता हूँ ॥ ३ ॥
अर्जुनकी शस्त्र पानेके लिये प्रार्थनाको मुनकर श्रीशंकरने मुस्कराते
हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कहा, कि-॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आपका
आना अच्छा हुआ । तुम जिस मनोरथकेलिये आये हो, उसको
मैंने जानलिया और तुम्हारी चाहीहुई वस्तु मैं तुम्हें दूँगा ॥ ५ ॥

तं ददाम्यहम् । ५ । सरोऽमृतमयं दिव्यामभ्याशं शत्रुसूदनौ । तत्र मे
तद्भुजदिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६ ॥ येन देवारयः सर्वे मया
युधि निपातिताः । तत आनीयतां कृष्णीं सशरं धनुस्तमम् । ७ ।
तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिपदैः सह । प्रस्थितौ तत्सरो
दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ॥ ८ ॥ निर्दिष्टं यद् वृषांकेण पुरयं
सर्वार्थसाधकम् । तौ जग्मतुरसंभ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥
ततस्तौ तत्सरो गत्वा सूर्यमण्डलसन्निभम् । नागमन्तर्जले घोरं
ददृशातेर्जुनाच्युतौ ॥ १० ॥ द्वितीयं चापरं नागं सहस्रशिरसं-
रम् । त्रमन्तं विपुला ज्वाला ददृशातेग्निवर्चसम् ॥ ११ ॥ ततः
कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्याम्भः कृताञ्जली । तौ नागावुपतस्थाते
नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥ १२ ॥ गृणन्तौ वेदं विद्वांसौ तद् ब्रह्म

हे शत्रुओंको नाश करनेवालों ! पास ही अमृतसे भराहुआ एक
दिव्य सरोवर है । पहिले मैंने उसमें दिव्य धनुष और बाण
धर दिया था, ॥ ६ ॥ इस धनुष तथा बाणसे मैंने देवताओं
के सब शत्रुओंको मार गिराया था, हे अर्जुन हे कृष्ण ! बाण-
सहित उस श्रेष्ठ धनुषको तुम सरोवरमेंसे निकाल लाओ ॥ ७ ॥
श्रीकृष्ण और अर्जुन बहुत अच्छा कहकर श्रीशंकरके सब
गणोंको साथमें लेकर सैंकड़ों दिव्य ऐश्वर्योंवाले उस दिव्य
सरोवरकी ओरको चले ॥ ८ ॥ शिवजीके बताएहुए उस पवित्र
और सब प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले सरोवरकी ओरको ये
दोनों नर और नारायण ऋषि जाने लगे ॥ ९ ॥ सूर्यके मण्डलकी
समान तेजस्वी उस सरोवर पर पहुँचकर श्रीकृष्ण और अर्जुनने
जलके भीतर एक भयानक सर्पको देखा ॥ १० ॥ और दूसरे
भी एक साँपको देखा, वह मुखमेंसे अग्निकी लम्बी ज्वालाओंको
जगल रहा था तथा उसके सहस्र मस्तक थे ॥ ११ ॥ यह देखकर
श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हाथ जोड़कर शिवको प्रणाम करते

शतरुद्रियम् । अपमेयं प्रणमतो गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥ १३ ॥
 ततस्तीक्ष्णमाहात्म्याद्भित्वा रूपं महोरगा । धनुर्वाणश्च शत्रुघ्नं
 तद् दृष्ट्वा समपश्यत ॥ १४ ॥ तौ तज्जगद्दत्तः प्रीतो धनुर्वाणं च सुप्र-
 भम् । अजहत्तुर्महात्मानौ ददत्तुश्च महात्मने ॥ १५ ॥ ततः पार्श्वोद्-
 टृपाङ्गस्य ब्रह्मचारी न्यवर्तत । पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान्नील-
 लोहितः ॥ १६ ॥ स तद् गृह्य धनुः श्रेष्ठं तस्यो स्थानं समाहितः ।
 विचक्ष्णो विधिवत् सशरं धनुरुत्तमम् ॥ १७ ॥ तस्य मौर्वीञ्च
 मुष्टिश्च स्थानं चालञ्च पाण्डवः । श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जगदा-
 चिन्त्यविक्रमः ॥ १८ ॥ स सरस्येव तं बाणं मुपाचातिबलः प्रभुः ।
 चकार च पुनर्वारस्तस्मिन् सरसि तद्धनुः ॥ १९ ॥ ततः प्रीतिं

हुए उन महासर्पोंके पास गए ॥ १३ ॥ वेदको जाननेवाले वे
 दोनों एकाग्र मनसे अपमेय शिवको प्रणाम कर शतरुद्रीका पाठ
 करने लगे ॥ १४ ॥ तब शिवजीके प्रभावसे वे दोनों महासर्प अपने
 रूपको छोड़कर शत्रुओंको मारनेवाले धनुष बाण बन गए ॥ १५ ॥
 इस चमत्कारसे प्रसन्न हुए महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन उन
 कान्तिमान् धनुष और बाणको उठाये हुए महात्मा शंकरके पास
 आये और वह धनुष बाण उनको देदिये ॥ १६ ॥ तदनन्तर
 भगवान् शिवकी पसलीमेंसे नीललोहित ब्रह्मचारी निकला, उसके
 नेत्र पीले थे, वह तपका क्षेत्र और महाबली था ॥ १७ ॥ उस
 ब्रह्मचारीने वीरासनसे बैठकर धनुष और बाणको उठा लिया और
 उस श्रेष्ठ धनुष पर बाण चढ़ाकर विधिवत् खेंचा ॥ १८ ॥ उस
 समय अचिन्त्य पराक्रमी अर्जुन उस धनुषकी प्रत्यङ्गा, धनुषकी
 मूठ और बैठक आदि सबको ध्यानसे देखना रहा और उसने
 शिवजीने जो मन्त्र पढ़ा उसको भी याद कर लिया ॥ १९ ॥
 तदनन्तर बली वीर प्रभुने उस धनुष और बाणको उस सरो-
 वरमें ही फेंक दिया ॥ २० ॥ तदनन्तर स्मरणशक्तिवाले अर्जुन

भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा । वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्क-
रस्य च ॥ २० ॥ मनसा चिन्तयामास तन्मे सम्पद्यतामिति ।
तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद्वरम्भवः ॥ २१ ॥ तच्च पाशुपतं
घ्नोः प्रतिज्ञायाश्च पारणम् । ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्व-
रात् ॥ २२ ॥ संहृष्टो मा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत । ववन्दतुश्च
संहृष्टौ शिरोभ्यान्तं महेश्वरम् ॥ २३ ॥ अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन्
भवेनार्जुनकेशवौ । प्राप्तौ स्वशिविरं वीरौ मुदा परमया युतौ २४
तथा भवेनानुमतौ महासुरनिघातिनौ । इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ
जम्भस्य वधकाक्षिणौ ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि पाशुपता-

स्त्रप्राप्तौ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच । तयोः सम्बदतोरेवं कृष्णदारुकर्योस्तदा ।

ने जाना कि-श्रीशंकर मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं तथा उसने
शंकरके (हिमालयके) वनमें दियेहुए दर्शन और वरका स्म-
रण कर इच्छा की, कि-मुझे वह दिव्य अस्त्र और शिवजी
के दर्शनका फल मिले, भगवान् शंकर अर्जुनका अधिप्राय जान
कर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी प्रतिज्ञाको पूरी करनेवाला
पाशुपत नामक घोर अस्त्र उसको दे दिया, शिवसे पाशुपत अस्त्रको
पाकर हर्षके कारण प्रचण्डपराक्रमी अर्जुनके रोंगटे खड़े होगए
और वह अपनेको कृतकृत्य माननेलगा, महाअसुरका नाश करना
चाहतेहुए इन्द्र और विष्णु जैसे शिवकी आज्ञा लेकर जम्भासुर
का वध करनेको गए थे, तैसेही वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनभी
महेश्वरसे आज्ञा ले तथा परमहर्षसे उनको प्रणाम करके तत्काल
अपनी छावनीकी ओरको चले आये हों, ऐसा अर्जुनको स्वप्नमें
प्रतीत हुआ ॥ २०-२५ ॥ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! (उधरः) श्रीकृष्ण

सात्यगाद्रजनी राजन्नय राजान्वबुध्यत ॥ १ ॥ पठन्ति पाणिस्व-
निका मागथा मधुपर्किकाः । वैतालिकारच सूताश्च वृष्टवुः पुरुष-
पथम् ॥ २ ॥ नर्तकाश्चाप्यनृत्यन्त जगुर्गो नि गायकाः । कुरु-
वंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३ ॥ मृदङ्गा भर्भरा भेर्यः
पणवानकगोमुखाः । आदम्बराश्च शङ्खाश्च दृढध्वज मदास्वनाः ४
एवमेतानि सर्वाणि तथान्यानपि भारत । वादयन्ति सुसंहृष्टा
कुशलाः साधुशिक्षिताः ॥ ५ ॥ स मेघस्वननिर्घोषो महाशब्दो-
स्पृशदिवम् । पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६ ॥ प्रतिबुद्धः
सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे । उत्थायावश्यकार्यार्थं ययौ स्नान-
गृहं नृपः ॥ ७ ॥ ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शनमष्ट
और दारुक घातें कर रहे थे, कि-इतनेमें ही राजा वीतगयी और
प्रातःकाल होगया, राजा युधिष्ठिर भी जाग उठे ॥ १ ॥ उस समय
पाणिस्वनिक (ताली बजाकर गानेवाले) मागथ (वंशावली
कीर्त्तन करनेवाले) मधुपर्किक (मधुपर्कके समय गानेवाले) वैता-
लिक (प्रभातके समय राजाको जगानेके लिये स्तुतिपाठ करने
वाले) और सूत (पुराणवक्ता) पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिरकी स्तुति
करनेलगे, गायक और नर्तक रागरागनियोंसे मिश्रित संगीतोंको
मधुर कंठसे गाने लगे, इन सब स्तुति और गानोंमें कुरुवंशकी
स्तुति भरीहुई थी ॥ २ ॥ ३ ॥ भलीप्रकार सिखायेहुए चतुर
पुरुष प्रसन्न होकर मृदङ्ग, भर्भर, भेरी, मुरज, पटह, नगाड़े
दुन्दुभि तथा महाध्वनिके शंख इन सबोंको तथा हे भारत ! और
अनेकों बाजोंको बजाने लगे ॥ ४-५ ॥ मेघके गर्जनकी समान
वह शब्द आकाशमें गुँजनेलगा उससे राजेन्द्र युधिष्ठिर जाग उठे
राजा युधिष्ठिर बहुमूल्य श्रेष्ठ शय्यापर सुखसे पौढ़ रहे थे, वे उठ
कर आवश्यक कार्य करनेको स्नानगृहकी ओर गए ॥ ७ ॥ तहाँ
पर स्नान करके स्वेत वस्त्र पहिर एकसाँ आठ तरुण पुरुष खड़े

च । स्नातकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्यैः समुपतस्थिरे ॥ ८ ॥ भद्रा-
सनेपूपविष्टः परिधायाम्बरं लघु । सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैर-
भिमन्त्रितैः ॥ ९ ॥ उत्सादितः कपायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः ।
आसुतः साधिवामेन जलेन समुगन्धिना ॥ १० ॥ राजहंसनिभं
प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम् । जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास
मूर्धनि ॥ ११ ॥ हरिणा चन्दनेनाङ्गमुपक्षिप्य महाभुजः । सग्री
चाकिलिष्ठवसनः प्रहृष्टमुखः प्राञ्जलिः स्थितः ॥ १२ ॥ जज्ञाप जप्यं
कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः । तत्राग्निराशं दीप्तं प्रविवेश विनीत-
वत् ॥ १३ ॥ समिद्धिः सुपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा । मन्त्र-
पूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात्ततः ॥ १४ ॥ द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः
कक्षान्निगम्य पार्थिवः । ततो वेदविदो वृद्धानपरयद् ब्राह्मणप-

हुए राजा युधिष्ठिरकी बाट देखरहे थे, वे सुवर्णके घड़ोंमें जल
लेकर राजा युधिष्ठिरके सामने आगए ॥ ८ ॥ राजा युधिष्ठिर
एक छोटासा वस्त्र पहनकर एक श्रेष्ठ आसन पर बैठगए और
मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किये तथा चन्दन मिलेहुए जलसे स्नान
करनेलगे ॥ ९ ॥ चतुर और बली पुरुषोंने सर्वोपधिके उबटनसे
राजा युधिष्ठिरका मर्दन कर उनके शरीरका मैल छुटाया और
उनको सुगन्धित जलसे स्नान कराया ॥ १० ॥ तदनन्तर शिरका
जल सोखनेके लिये राजहंसकी समान श्वेत उष्णीष (पगड़ी)
धीरेसे शिर पर बाँधी ॥ ११ ॥ फिर महाभुज युधिष्ठिर अङ्गोंपर
हरिचन्दन लगा माला पहिर उत्तम वस्त्र धारण कर पूर्वकी ओरकों
मुख करके बैठगए और हाथ जोड़कर जप करनेलगे, तदनन्तर
सज्जनोंके मार्ग पर आरुढ़ युधिष्ठिर नम्र होकर प्रज्वलित अग्नि
के पास जा पहुँचे ॥ १२-१३ ॥ समिधा तथा मन्त्रोंसे पवित्र हुई
आहुतियाँ अग्निथो समर्पण कर अग्निकी पूजा की, फिर वे उस
घरमेंसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ राजा युधिष्ठिरने दूसरे चौकमें

मान् ॥ १५ ॥ दान्तान् वेदव्रतस्नानान् स्नानान्मृधेयान् । सह-
स्रानुचरान् सौरान् सहस्रं चाष्ट चापरान् ॥ १६ ॥ अर्जतैः सुमनो-
भिश्च वाचयित्वा महाभुजः । तान् द्विजान्मधुनर्विभ्यां फलैः श्रेष्ठैः
सुमङ्गलैः ॥ १७ ॥ प्रादात् काञ्चनमेकैकं निष्कं विमाय पाण्डव ।
अलङ्कृतं चाश्चर्यशतं वासांसीष्टाश्च दन्तिष्ठाः ॥ १८ ॥ तथा गाः
कपिला दोग्ध्राः सवत्साः पाण्डुनन्दनः । हेमशृंगा रौप्यचूरा
दन्वा तेभ्यः प्रदन्तिणम् ॥ १९ ॥ स्वस्तिकान् वर्तमानाश्च
नन्ध्यामर्त्ताश्च काञ्चनान् । मान्यश्च जलकुम्भारश्च उवलितं च
हुताशनम् ॥ २० ॥ पूर्णान्पक्ष्मपात्राणि कचकं राञ्चनास्तथा ।
स्वलङ्कृताः शुभाः कन्या दधिसर्पिर्मधुदकम् ॥ २१ ॥ मङ्गन्यान्
पक्षिणश्चैव यच्चान्यदपि पूजितम् । दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कान्तेयो बाणां
कचयां ततो गमत् ॥ २२ ॥ ततस्तस्यां महाबाहोस्निष्ठतः परिचा-

जाकर वेदवेत्ता, जितेन्द्रिय, वेदपाठी, अमभूय स्नान करनेवाले
सहस्रों सेवकोंवाले और सूर्यकी उपासना करनेवाले एक सहस्र
आठ हज़्ज़ ब्राह्मणोंको देखा ॥ १५ ॥ १६ ॥ महाभुज मुनि-
ष्ठिरने उन ब्राह्मणोंसे अक्षत, पुष्प, मधु, घी और मांगलिक
वहिया फलोंके द्वारा स्वास्तिवाचन कराकर प्रत्येक ब्राह्मणको
एक-सुवर्णका निष्क किया और सजेहुए सौ घोड़े कपड़े तथा
इच्छानुकूल दन्तिणा दी ॥ १७ ॥ १८ ॥ तथा पाण्डुनन्दनने
वज्रहोत्राकी दुधारी सुवर्णमे गड़े तीनों और चांदीमें गड़े चूरा
वाली कपिला गीएँ ब्राह्मणोंको देकर उन ती प्रतिक्रिया की ॥ १९ ॥
तदनन्तर उन्होंने स्वस्तिक, कटोरे, अर्घ्यभरे भरे सुवर्णके पात्र,
मालायें, जलसे भरे कलश, मदीत, अग्नि चावलोंने भरेहुए पात्र,
विजोरे नीबू, गोरोचन, गड़नोंसे भूषित शुभ दन्मणं दही, घी,
मधु, जल और मांगलिक पत्ती तथा दूसरों भी सकल मांगलिक
पूज्य वस्तुओंके दर्शन किये और उनका स्पर्श किया तदनन्तर

रकाः । सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमणिढतम् ॥ २३ ॥ परार्ध्या-
स्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत् । विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजहुर्व-
रासनम् ॥ २४ ॥ तत्र तस्योपविष्टस्य भूपणानि महात्मनः ।
उपजहर्महाहर्षिणि प्रेम्णाः शुभ्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥ मुक्ताभरण-
वेपस्यं कौन्तेयस्य महात्मनः । रूपमासीन्महाराज द्विपतां शोकवर्ध-
नम् ॥ २६ ॥ चापरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हैमदण्डैः सुशोभनैः । दोधूयमानैः
शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः २७ संस्तूयमानः स्मृतैश्च वन्द्यमानश्च वन्दि-
भिः । उपासीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः २८ ततो मूर्ध्नी-
दासीत्तु स्यन्दनानां स्वनो महान् । नेमिघोषश्च रथिनां क्षुरघोषश्च
वाजिनाम् ॥ २९ ॥ हादेन गजघण्टानां शंखानां निनदेन च ।

वे बाहरकी ड्योढी पर आए ॥ २०-२२ ॥ राजा युधिष्ठिर उस
ड्योढी पर खड़े हुए, कि-सेवक मुक्ताफल और वैदूर्यसे शोभित
अमूल्य विद्यौने तथा मूल्यवान् पलंगपोशों चाले तथा विश्वकर्मा
की रची विधिसे बनाए हुए सर्वतोभद्र नामक श्रेष्ठ आसनको उनके
सामने लेआए ॥ २३-२४ ॥ राजा युधिष्ठिर तहाँ बैठ गए, तद-
नन्तर सेवकोंने अमूल्य चमकीले गहने राजा युधिष्ठिरको पहरने
के लिये दिये ॥ २५ ॥ महात्मा राजा युधिष्ठिरने मोतियोंके गहने
पहिर लिये, उस समय उनका स्वरूप शत्रुओंके शोकको बढ़ाने
लगा ॥ २६ ॥ सोनेकी दण्डीवाले, चन्द्रमाकी किरणोंकी समान
श्वेत चँवर राजा युधिष्ठिर पर ढुलनेलगे उस समय वह विज-
लियोंसे घिरे मेघोंकी समान गोधा पारहे थे ॥ २७ ॥ शृंगार
करनेके लिये बैठे हुए, कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिरकी स्तुति
कर रहे थे वन्दीजन वन्दना कर रहे थे और गन्धर्व उनके गुण
गारहे थे ॥ २८ ॥ एक मूर्ध्नी वीनतेदी रथोंकी भनकार, रथि-
योंका नेमिघोष और घोड़ोंके खुरोंकी टपाटप सुनाई देने लगी २९
हाथियोंके गलेके घण्टाके बजनेसे, शंखोंकी ध्वनिसे और मनुष्यों

नराणां पदशब्दैश्च कम्पनीव स्म मेदिनी ॥ ३० ॥ ततः शुद्धा-
न्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः । शिरसा वन्दनीयन्तमभिवाद्य
जनेश्वरम् ॥ ३१ ॥ कुण्डली वद्धनिस्त्रिशः सन्नद्धकवचो युवा ।
अभिपणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै ॥ ३२ ॥ न्यवेदयद्
धृषीकेशमुपयातं महात्मने । सोऽयमीत् पुरुषव्याघ्रः स्वागतं नैव माध-
वम् ॥ ३३ ॥ अर्घ्यञ्चैवासनं चास्मै दीयतां परमाचितम् । ततः
प्रवेश्य बाष्णैर्यमुपवेश्य वरासने ॥ ३४ ॥ पूजयामास विधिवद्गुह्य-
राजो युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिर-

सञ्जयतायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

सञ्जय उवाच । ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्य जनार्दनम् ।
उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीपुत्रम् ॥ १ ॥ सुखेन रजनीं द्युष्टा
कञ्चित्ते मधुसूदन । कञ्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाच्युत २

के पैरों की धमाधमरसे पृथ्वी काँपने लगी ॥ ३० ॥ इतनेमें ही
कुण्डल और कवच धारण करनेवाला एक तरुण द्वारपाल
क्रममें तलवार लटकाये हुए महलके भीतर आया और पृथ्वीपर
घुटने टेककर शिरसा वन्दनीय महात्मा राजा युधिष्ठिरको शिर
झुका प्रणाम कर कहने लगा, कि-महात्मा श्रीकृष्ण आपके पास
आ रहे हैं, यह सुनते ही पुरुषव्याघ्र युधिष्ठिरने कहा, कि-श्रीकृष्ण
को स्वागतके साथ लेआओ ॥ ३१-३३ ॥ उनको उत्तम आसन
और अर्घ्य दो, तदनन्तर श्रीकृष्णको सभामें बुलवाकर बढिया
आसन पर बैठाया गया, तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने उनकी
शास्त्रानुसार पूजा की ॥ ३४-३५ ॥ बयासीवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर परमप्रसन्न
होकर देवकीपुत्र श्रीकृष्णकी प्रशंसा करते हुए बोले, कि-॥ १ ॥
हे मधुसूदन ! तुमने आजकी रात्रि सुखमें तो चिताई ? और हे

वासुदेवोपि तद्युक्तं पर्यपृच्छयुधिष्ठिरम् । ततश्च प्रकृतीः क्षत्ता-
न्यवेदयद्रुपस्थिताः ॥ ३ ॥ अनुज्ञातश्च राजा स प्रावेशयत तं
जनम् । विराटं भीमसेनञ्च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥ ४ ॥ चेदिपं
धृष्टकेतुञ्च द्रुपदञ्च महारथम् । शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं
सकेकयम् ॥ ५ ॥ युयुत्सुञ्चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम् ।
युधामन्युं सुबाहुञ्च द्रौपदेयाश्च सवशः ॥ ६ ॥ एते चान्ये च
बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ उपतस्थुर्महात्मानं विविशुरचा-
सने शुभे ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ ।
कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युनी ॥ ८ ॥ ततो युधिष्ठिर-
स्तेषां शृण्वतां मधुमूदनम् । अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं
वचः ॥ ९ ॥ एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवामराः । प्रार्थयामो

अच्युत ! तুম सब विषयोंमें सावधान तो हो ? ॥ २ ॥ श्रीकृष्णने
भी इसी प्रकार युधिष्ठिरसे प्रश्न किये, तदनन्तर द्वारपालने
सूचना दी, कि-प्रकृतिमण्डल (दरवारी लोग) द्वारपर खड़ा
है ॥ ३ ॥ राजा युधिष्ठिरने आज्ञा दी, कि-उनको भी भीतर
आने दो, वे भी तत्काल भीतर आगए। इनमें विराट, भीमसेन,
धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज, धृष्टकेतु, महारथी द्रुपद, शिखण्डी,
नकुल, सहदेव, चेकितान, केकय, कौरव्य, युयुत्सु, पाञ्चाल्य,
उत्तमौजा, युधामन्यु, सुबाहु, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और भी बहुतसे
राजे क्षत्रियश्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिरकी सेवामें उपस्थित हुए और
शुभ आसनों पर विराजमान होगए ॥ ४-७ ॥ महाबली महा-
कान्तिमान् महात्मा श्रीकृष्ण और युयुधान एकही आसन पर
बैठगए ॥ ८ ॥ राजा युधिष्ठिरने उन सबके सुनतेहुए श्रीकृष्ण
को सम्बोधन करके मधुर वाणीमें कहा ॥ ९ ॥ कि-हे कृष्ण ! जैसे
देवता इन्द्रका आश्रय लेते हैं तैसेही हम एक आपके आश्रयसे
युद्धमें जय और चिरकाल तक रहनेवाले सुखोंको पानेकी प्रार्थना

जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥ १० ॥ त्वं हि राज्यविनाशं न
 द्विपद्भिश्च निराकियाम् । क्लेशांश्च विविधान् कृष्ण सर्वोत्थानपि
 वेद नः ॥ ११ ॥ त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल । सुख-
 मायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १२ ॥ स तथा कुरु वाष्पेण
 यथा त्वयि मनो मम । अर्जुनस्य यथा सत्त्वा प्रतिज्ञा स्याच्चि-
 कीर्तिता ॥ १३ ॥ स भाग्यसारयत्स्वाद् दुःखाभर्षमहा-
 र्णवात् । पारन्तिर्तीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥ १४ ॥ न
 हि तत् कुरुते संख्ये रथी त्रिपुरधोञ्चनः । यथा वै कुरुते कृष्ण
 सारथिर्यत्नमास्थितः ॥ १५ ॥ यथैव सर्वास्वापत्सु पाप्मि
 वृष्णीन् जनार्दन । तथैवास्मान्महाबाहो वृजिनात्तातुमर्हसि ॥ १६ ॥
 त्वमगाधेऽसत्रे मग्नान् पाण्डवान् कुरुसागरे । समुद्रं प्लवो भूत्वा
 करते है ॥ १० ॥ हे कृष्ण ! शत्रुओं ने हमारे राज्यों को लीया
 हमे राज्यमेंसे निकाल दिया, और हमे जो नाना प्रकारके क्लेश
 दिये वे सब बातें आपसे छिपी नहीं है ॥ ११ ॥ हे भक्तवत्सल !
 हे सर्वेश ! हे मधुसूदन ! हम सर्वोंका सुख और रक्षा आपके
 ऊपर निर्भर है ॥ १२ ॥ हे वाष्पेण ! आप ऐसा करें कि—
 मेरा मन आपमें रहे और अर्जुनकी की हुई प्रतिज्ञा सत्य हो ॥ १३ ॥
 आप दुःख और अभर्षरूपी समुद्रसे हमारा उद्धार करिये हे माधव !
 हम इस समुद्रके पार पहुँचना चाहते हैं आप इसमें नौकारूप
 बनिये ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! संग्राममें सारथी प्रयत्न करने पर
 जैसा काम करसकता है, वैसा काम शत्रुका वध करने को तयार
 हुआ रथी भी नहीं करसकता ॥ १५ ॥ हे जनार्दन ! जैसे आप
 वृष्णियोंकी सब आपत्तियोंसे रक्षा करते हैं हे महाबाहो ! तैसे
 ही इस दुःखसे हमारी रक्षा करिये ॥ १६ ॥ हे शंख चक्रगदा
 धारण करनेवाले ! आप कौरवरूपी अगाध समुद्रमें नौकारहित
 होनेके कारण डूबतेहुए पाण्डवोंको नौकारूप बनकर बचा ली-

शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥ नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन ।
 विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ १८ ॥ नारदस्त्वां
 समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम् । वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत् सत्यं कुरु
 माधव ॥ १९ ॥ इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि । ताय-
 मेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २० ॥ वासुदेव उवाच ।
 सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः । शरासनधरः कश्चिद्यथा-
 पार्थो धनञ्जयः ॥ २१ ॥ वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तो महाबलः ।
 युद्धशौण्डः सदामर्षी तेजसा परमो नृणाम् २२ ॥ स युवा वृषपस्कन्धो
 दीर्घबाहुर्महाबलः । सिंहर्षभगतिः श्रीमान्द्रिपतस्ते हनिष्यति ॥ २३ ॥
 अहं च तत् करिष्यामि यथाकुन्तीपुत्रोर्जुनः । धार्तराष्ट्रस्य सैन्यानि
 ध्वंस्यत्यग्निरिवेधनम् २४ ॥ अद्य तं पापकर्माणं जुष्टं सौभद्रघातिनम् ।

जिये ॥ १७ ॥ हे देव ! हे देवेश ! हे सनातन ! हे संहारकारिन !
 हे विष्णो ! हे जिष्णो ! हे हरे ! हे कृष्ण ! हे वैकुण्ठपते ! हे
 पुरुषोत्तम ! हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ नारदजी
 आपको पुराणपुरुष, ऋषिश्रेष्ठ वर देनेवाले, शार्ङ्ग धनुर्धर और
 श्रेष्ठ देव कहते हैं, अतः हे माधव ! आप उनकी वाणीको सत्य
 कीजिये ॥ १९ ॥ जब धर्मराज युधिष्ठिरने यह बात कही, तब
 वक्ताओंमें श्रेष्ठ और मेघकी समान गंभीर स्वरवाले श्रीकृष्ण
 युधिष्ठिरसे कहनेलगे, ॥ २० ॥ वासुदेवने कहा, कि-अर्जुन जैसा
 धनुषधारी है ऐसा धनुषधारी तो किसी लोक और देवताओंमें
 भी कोई नहीं है ॥ २१ ॥ अर्जुन तो वीर्यवान्, अस्त्रविद्याका ज्ञाता
 पराक्रमी, महाबली, युद्धमें चतुर, सर्वदा असहनशील और मनु-
 स्योंमें परमतेजस्वी है ॥ २२ ॥ तरुण वृषभकी समान कंधोंवाला
 लम्बी भुजावाला, सिंहकी समान चलनेवाला महाबली श्रीमान्
 अर्जुन तुम्हारे शत्रुओंको नष्ट करवालेगा ॥ २३ ॥ और मैं ऐसा
 उपाय करूँगा, कि-कुन्तीपुत्र अर्जुन धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेनाको

अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्यतेर्जुनः ॥ २५ ॥ तस्याद्यशुद्धा
 रयेनारच चण्डगोपायवस्तथा ! भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये नान्ये
 पुरुषादकाः ॥ २६ ॥ यत्रस्य देवा गोक्षारः तेन्द्राः सर्वे तथाप्यसौ ।
 राजधानीं यमस्याय हतः प्राप्स्यति संकुले ॥ २७ ॥ निहत्य
 सैन्यं जिष्णुगद्य त्वागुपयास्यति । विशोको विज्वरो राजन् भव
 भृतिपुरस्कृतः ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि गतिहापर्वणि

त्रयशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

सञ्जय उवाच । तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद्धनञ्जयः ।
 दिदृक्षुर्धरतश्चेष्टं राजानं समुहद्वगणम् ॥ १ ॥ तं निविष्टं शुभां
 कक्ष्यामभिवन्द्याग्रतः स्थितम् । समुत्थायार्जुनं प्रेम्णा सस्वजे
 पाण्डवर्षभः ॥ २ ॥ मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना ।

ऐसे नष्ट कर डालेगा, जैसे अग्नि घासफूसको जला डालता है ॥ २४ ॥
 अभिमन्युके हत्यारे, पापी, नीच जयद्रथको अर्जुन आज ही बाणों
 से यमलोक भेज देगा ॥ २५ ॥ आज उसके मांसको गीय, वाज,
 प्रचण्ड गीदह तथा दूसरे मांसाहारी प्राणी खायेंगे ॥ २६ ॥ यह
 आज इन्द्र आदि सब देवता भी इसकी रक्षा करनेको आज्ञा में
 तो भी यह घोर युद्धमें मारा जाकर यमकी राजधानी में ही
 जायगा ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अर्जुन आज जयद्रथको मारकर ही
 तुम्हारे पास आवेगा, तुम्हें राज्य और ऐश्वर्य मिलेगा, अतः तुम
 चिन्ता और शोकको त्याग दो ॥ २८ ॥ निरासीवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! वे ऐसा कह ही रहे थे,
 कि अर्जुन भरतवंशमें श्रेष्ठ बड़े भाई राजा युधिष्ठिर और मित्रोंसे
 मिलनेके लिये तहाँ आपहुँ चा ॥ १ ॥ मङ्गलमय ड्योड़ीमें युधि-
 स्थिरको प्रणाम करके वह सामने खड़ा होगया, पाँडवोंमें श्रेष्ठ
 युधिष्ठिरने खड़े होकर प्रेमपूर्वक अर्जुनका आलिङ्गन किया ॥ २ ॥

आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयशानोभ्यभाषत ॥ ३ ॥ व्यक्तमर्जुनं
संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान् । यादृग्रूपा च तेच्छायाः प्रसन्नश्च
जनार्दनः ॥ ४ ॥ तमब्रवीत्ततो जिष्णुर्महदारचर्यमुत्तमम् । दृष्ट्वा-
नस्मि भद्रन्ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५ ॥ ततस्तत् कथयाभास
यथा दृष्टं धनञ्जयः । आश्वासनार्थं सुहृदां व्यम्बकेण समागमम् द
ततः शिरोभिरवनि स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः । नमस्कृत्य हृर्पाकाय
साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ७ ॥ अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्म-
सूनुना । त्वरमाणाः मुसन्नदाः हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८ ॥
अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः । हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै
युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥ ९ ॥ रथैर्नैकेन दुर्धर्षो युयुधानजनार्दनौ ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् । तत्र गत्वा हृषीकेशः

उसका मस्तक सूँघा, पुनः दोनों भुजाओंसे आलिंगन कर अनेकों
आशीर्वाद दे मन्दमन्द हँसतेहुए उससे कहा, कि-॥ ३ ॥ हे
अर्जुन ! तेरे मुखकी कान्तिको देखकर मुझें निश्चय होता है,
कि-आजके युद्धमें तेरी महाविजय होगी और श्रीकृष्णभी तेरे
ऊपर प्रसन्न हैं ॥ ४ ॥ यह बात सुनकर अर्जुनने कहा, कि-
श्रीकृष्णके अनुग्रहसे मैंने आज रातमें एक बड़ा अचरज भरा
दृश्य देखा है, आपका कल्याण हो ॥ ५ ॥ तदनन्तर अर्जुनने
सम्बन्धियोंको धीरज देनेके लिये, श्रीशंकरका दर्शन किसप्रकार
हुआ, इत्यादि जोर स्वप्नमें देखा था वह सब कहकर सुनादिया।
यह सुनकर सबको बड़ा अचरज हुआ और उन्होंने पृथिवीमें
मस्तक नम्राकर शिवको प्रणाम किया और कहने लगे, कि-बड़ा
अच्छा हुआ, बड़ा अच्छा हुआ ॥ ७ ॥ तदनन्तर वे सब संबंधी
धर्मराजके आज्ञा देनेपर फुर्तीसे शस्त्र बाँध तयार होकर प्रसन्नतामें
भरेहुए युद्ध करनेको चलपड़े ॥ ८ ॥ युयुधान, श्रीकृष्ण और
अर्जुनभी युधिष्ठिरको प्रणाम कर उनकी छावनीमेंसे चलपड़े ९

कल्पयामास मृतवत् ॥ १० ॥ रथं रथवरस्यार्जो वानरर्षभलक्ष-
णम् । स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसमभः ॥ ११ ॥ बभौ रथवरः
क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद्यथा । ततः पुरुषशार्दूलः सज्जं सज्जपुरः-
सरः ॥ १२ ॥ कृतान्दिकाय पार्थाय न्यवेदयत् तं रथम् । तन्तु
लोक्तरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ॥ १३ ॥ चापवाणधरो वारं
प्रदक्षिणयवर्त्तत । तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावर्जितेन्द्रियैः १४
स्तुयमानो जयाशीर्भिराकरोह महारथम् । जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः
पूर्वमेव रथोत्तमम् ॥ १५ ॥ अभिमन्त्रितमविष्मानुदयं भास्करो
यथा । स रणे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ॥ १६ ॥
विवर्भो विमलोर्विष्मान्मेराविव दिवाकरः । अन्वाकुरुतुः पार्थ

दुर्धर्ष वीर सात्यकि और श्रीकृष्ण एक रथमें बैठकर अर्जुनकी
आवनीकी ओरको गए, श्रीकृष्णने तहाँ जाकर महारथी अर्जुन
के वानरके चिन्हकी ध्वजावाले रथको मृतकी समान कार्य करके
तयार करदिया, मेघके गर्जनेकी समान शब्दवाला और तपेहुए
सुवर्णकी समान कान्तिवाला वह श्रेष्ठ रथ प्रातःकालके सूर्यकी
समान शोभा पाने लगा, पुरुषसिंह श्रीकृष्णने, युद्धकी सब साम-
ग्रियोंको तयार किया, कि-इतनेमेंही अर्जुनभी अपना दैनिक
नित्य कर्म पूराकर माथे पर मुकुट तथा शरीर पर सुवर्णका कवच
धारण किये हाथमें धनुष बाण ले बाहर निकला, तुरन्तही युद्धकी
सामग्रियोंसे भरेहुए दिव्य रथको श्रीकृष्णने अर्जुनके सामने ला
खड़ा किया, महारथी अर्जुनने उस रथकी परिक्रमा की उस
समय तप, विद्या और अवस्थामें बड़े कर्मनिष्ठ जितेन्द्रिय ब्राह्मण
विजयका आशीर्वाद देकर स्तुति करनेलगे, उनके आशीर्वादको
स्वीकार करके अर्जुन पहलेसेही विजय देनेवाले सांग्रामिक मंत्रों
से अभिमन्त्रित कियेहुए रथ पर उदयाचल पर चढ़नेवाले सूर्यकी
समान सवार होगया, सुवर्णका कवच पहरे सुवर्णके दिव्य रथमें

युयुधानजनार्दनौ ॥ १७ ॥ शर्यातिर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ।
 अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन् रश्मिभिदाम्बरः ॥ १८ ॥ मातलि-
 र्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः । स ताभ्यां सहितः पार्थो रथ-
 प्रवरमास्थितः ॥ १९ ॥ सहितो युधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन् यथा
 शशी । सैन्धवस्य वधं प्रेषुः प्रयातः शत्रुपूगहा ॥ २० ॥ सहाम्नु-
 पतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये । ततो वादित्रसंघोर्षैर्महाह्वैश्च स्तवैः
 शुभैः ॥ २१ ॥ प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टयुः स जयाशीः
 सुपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः ॥ २२ ॥ युक्तो वादित्रघोषेण तेषां
 रतिकरो भवत् । तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ॥ २३ ॥
 वनौ संहर्षयन् पार्थं द्विपतश्चापि शोषयन् । ततस्तस्मिन् क्षणे
 राजन् विविधानि शुभानि च ॥ २४ ॥ प्रादुरासन् निमित्तानि

बैठा हुआ अर्जुन में रूपवर्त पर स्थित शिमल किरणोंवाले सूर्यसा
 शोभित होने लगा, शर्यातिके यज्ञमें आते हुए इन्द्रके आगे जैसे
 अश्विनीकुमार बैठे थे, तैसेही श्रीकृष्ण और युयुधान अर्जुनके
 आगे बैठ गए, उस समय सारथियोंमें श्रेष्ठ गोविन्दने घोड़ोंकी लगामों
 को इसप्रकार पकड़ लिया जैसे वृत्रासुरका वध करनेको जाते हुए
 इन्द्रके घोड़ोंकी लगामें मातलिने पकड़ी थीं, अन्धकारका नाश
 करनेवाला चन्द्रमा जैसे बुध और शुकके साथ रथमें बैठता है,
 तथा तारकामय संग्राममें जैसे इन्द्र मित्र और वरुणके साथ रथमें
 बैठा था तैसेही रथियोंमें श्रेष्ठ, जयद्रथका वध करनेकी इच्छावाला
 शत्रुओंके समूहका नाशक अर्जुनभी उन दोनोंके साथ श्रेष्ठ
 रथमें बैठकर युद्ध करनेको चला दिया, अर्जुनकी चढ़ाईके
 समय मागध मांगलिक वाजे बजाने लगे, शुभ स्तोत्र पढ़ने लगे
 और शूरवीर अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे, मागधोंके दिये हुए
 विजयसूचक आशीर्वादका तथा पुण्यहवाचनका शब्द वाजोंके
 शब्दके साथ मिलकर पाण्डवोंको आनन्ददायक हुआ अर्जुनके

विजयाय वदन्ति च । पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष्य २५ ।
 दृष्टार्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदत्तानि । युयुधानं महेष्वा-
 मिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ युयुधानाय युद्धे मे दृश्यते विजयो
 ध्रुवः । यथाहीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते निशिपुङ्गव ॥ २७ ॥ सोऽहं
 तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्यवको नृपः । विद्यामुर्यमलोकाय मम वीर्यं
 प्रतीक्षते ॥ २८ ॥ यथा परमकं कृत्यं सैन्यवस्य वधो मम । तथैव
 मम हतं कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९ ॥ स त्वमथ महाबाहो
 राजानं परिपालय । यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत्तथा ३०
 न पश्यामि च तं लोके यस्त्वा युद्धे पराजयेत् । वामुदेवसमं युद्धे
 स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१ ॥ त्वयि चाहं पराश्वस्तः प्रशुम्ने वा

यात्रा करते समय सुगन्धित पवित्र पवन चलने लगा, वह अर्जुनको
 हँप देने लगा और शत्रुओंको सुखाने लगा, हे राजन् ! उसही
 समय पाण्डवोंकी विजयको सूचित करनेवाले नाना प्रकारके शुभ
 शकुन होने लगे और तुम्हारे पुत्रोंके यहाँ पराजयकी सूचना देने
 वाले कुशकुन होने लगे ॥ २५-२५ ॥ अर्जुन अपने मनके अनुकूल
 विजयके शकुनोंको देखकर महाधनुषधारी सात्यकिसे यह कहने
 लगा, कि— ॥ २६ ॥ हे शिनिपुङ्गव ! हे युयुधान ! जैसे ये शकुन
 हो रहे हैं, इनसे तो यह स्पष्ट दीख रहा है, कि आज युद्धमें मेरी
 जीत अवश्य होगी ॥ २७ ॥ अतः जहाँ पर जयद्रथ हो, तुम
 मुझ्के वहाँही लेचलो, क्योंकि जयद्रथ यममन्दिरमें जानेकी इच्छासे
 मेरे पराक्रम बाट, निहारता हुआसा ही खड़ा होगा ॥ २८ ॥ जैसे
 सिन्धुराजका वध करना मेरा परमकृत्य है तैसेही धर्मराजकी रक्षा
 करना भी मेरा बड़ा भारी काम है ॥ २९ ॥ अतः हे महाबाहो !
 तुम राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो, जैसे मैं उनकी रक्षा करसकता हूँ,
 वैसेही तुमभी करसकते हो ॥ ३० ॥ मैं जगन्में ऐसा किसीको नहीं
 पाता जो तुम्हारा पराजय करसके, स्वयं तुम श्रीकृष्णकी समान

महारथे शक्नुयां सैन्यध्वं हन्तुमनपेक्षां नरर्षभ ॥ ३२ ॥ मय्यपेक्षा
न कर्त्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत । राजन्येव परा शुप्तिः कार्या
सर्वात्मना स्वया ॥ ३३ ॥ न हि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
किञ्चिद्व्यापद्यते तत्र यत्राहमपि च ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ एवमुक्तस्तु
पार्थेन सात्यकिः परवीरहा । तथैत्युक्त्वागमत्तत्र यत्र राजा
युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुन-
वाक्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

समाप्तं प्रतिज्ञापर्वं

अथ जयद्रथवधपर्वः ।

धृतराष्ट्र उवाच । श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः ।
अभिमन्यो हते तत्र के वायुध्यन्त ममकाः ॥ १ ॥ जानन्तस्तस्य

हो, तुम्हें साक्षात् इन्द्रभी नहीं जीतसकता ॥ ३१ ॥ मुझे तुम्हारे तथा
महारथी मद्युम्नके ऊपर बड़ा भरोसा है, अतः हे नरश्रेष्ठ ! मैं
तुम्हारे ऊपर युधिष्ठिरकी रक्षाका भार रखकर ही सावधानीसे
सिंधुराजको मारसकूँगा ॥ ३२ ॥ हे सात्यकि ! तुम्हें मेरे लिये
जरा भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, तुम सब प्रकारसे युधि-
ष्ठिरकी रक्षा करते रहना ॥ ३३ ॥ जहाँ महाबाहु नासुदेव और
मैं हूँ, तहाँ कोई आपत्ति नहीं आसकती अवश्य विजयही होती
है ॥ ३४ ॥ अर्जुनके ऐसा कहने पर शत्रुनाशक सात्यकि
बहुत अच्छा कहकर जहाँ राजा युधिष्ठिर खड़े थे, तहाँको चला
गया ॥ ३५ ॥ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥

प्रतिज्ञापर्व समाप्त

जयद्रथवधपर्व

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! अभिमन्युके मारे जानेसे
दुःखित और शोकमें डूबेहुए पाण्डवोंने दूसरे दिन क्या किया ?

कर्माणि कुरुतः सव्यसाधिनः । कथं तत् किञ्चिदं कृत्वा निर्भया
ब्रूहि मामकाः ॥ २ ॥ पुत्रशोकभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्नकम् ।
आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे ॥ ३ ॥ कपिराजध्वजं
संख्ये विधुन्वन्तं महद्गुणः । दृष्ट्वा पुत्रपरिधूतं किमकुर्वत मामकाः ४
किन्तु सञ्जय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति । परिवर्तो महानय
श्रुतो मे नाभिनन्दनम् ॥ ५ ॥ बभूवुर्मे मनोग्राह्याः शब्दाः श्रुति-
मुखोवहाः । न श्रयन्तेथ सर्वे ते सैन्यस्य निवेशने ॥ ६ ॥ स्तु-
वता नाद्य श्रयन्ते पुत्राणां शिविरे मम । सूतमागधसंघानां नर्त-
कानाञ्च सर्वशः ॥ ७ ॥ शब्देन नादिताभीक्ष्णमभवद्यत्र मे श्रुतिः ।
दीनानामथ तं शब्दं न शृणोमि समीरितम् ॥ ८ ॥ निवेशने

और मेरे पुत्रकी ओरसे उस समय किस २ ने युद्ध किया ॥ १ ॥
कीरव अर्जुनके पराक्रमको जानते थे, फिर भी वे उसका अप-
राध करके निर्भय कैसे रहे ? यह मुझै सुना ? ॥ २ ॥ पुत्रशोक
से सन्तापमें भरेहुए, तथा यग और मृत्युकी समान क्रोधमें भरे
पुरुषव्याघ्र अर्जुनको आतेहुए देखकर मेरे पुत्र कैसे सह सके
होंगे ? ॥ ३ ॥ जिसकी ध्वजामें वानरका चिन्ह है जो युद्धमें महा-
धनुषको घुमारहा था, ऐसे पुत्रशोकसे दुःखितहुए अर्जुनको देख
कर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ ४ ॥ हे सञ्जय ! युद्धमें दुर्योधन
पर कैसी वीथी ? आज मुझै हर्षनाद सुनाई नहीं देता, किन्तु खेद
की ध्वनि सुनाई आरही है ॥ ५ ॥ पहिले सिंधुराज जयद्रथकी
छावनीमें जैसे मनोमोहक और सुख देनेवाले शब्द सुनाई पड़ते
थे, वे शब्द आज सुनाई नहीं देते ॥ ६ ॥ मेरे पुत्रोंकी छावनीमें
सूत, मागध और नर्तकोंके समूह नित्य स्तुति किया करते थे
और उनके जो शब्द सुनाई आते थे वे स्तुति और आनन्दके
शब्द भी आज सुनायी नहीं आते ॥ ७ ॥ गरीबोंकी कीहुई
दानकी प्रार्थनासे मेरे कान सर्वदा गूँजते रहते थे, उनका शब्द

सत्यधृतेः सोमदत्तास्य सञ्जय । आसीनोहं पुरा तात शब्दमश्री-
पमुत्तमम् ॥ ६ ॥ तदद्य पुण्यहीनोहमार्त्तस्वरनिनादितम् । निवे-
शनं गतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये ॥ १० ॥ विविशतेर्दुःखं स्वस्य
चित्रसेनविकर्णयोः । अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ११
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते । द्रोणपुत्रं महेश्वासं
पुत्राणां मे परायणम् १२ वितण्डालापसंलापैर्दुःखं तवादिब्रवादितैः ।
गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवान्निशम् ॥ १३ ॥ उपास्यमानो
बहुभिः कुरुपाण्डसात्वतैः । सूत तस्य गृहे शब्दो नाद्य द्रौणेर्यथा
पुरा ॥ १४ ॥ द्रोणपुत्रं महेश्वासं गायना नर्त्तकाश्च ये । अत्यर्थ-
मुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥ १५ ॥ विन्दन्नुविन्दयोः

भी आज सुनाई नहीं देता ॥ ८ ॥ और हे तात सञ्जय ! मैं पहिले
जब सत्यधृति और सोमदत्तकी छावनियोंमें बैठता था तब प्रशंसा
भरे शब्दोंको सुना करता था, परन्तु आज पुण्यहीन हुआ मैं
आर्तनादसे भरे शब्दोंको ही सुन रहा हूँ, हा ! आज मुझे अपने
पुत्रोंकी छावनी भी उत्साहशून्यसी प्रतीत हो रही है ॥ ६-१० ॥
विविशति, दुःख, चित्रसेन, विकर्ण तथा मेरे दूसरे पुत्रोंके देरों
मेंसे भी पहिलीसी हर्षध्वनि सुनाई नहीं देती ॥ ११ ॥ ब्राह्मण,
क्षत्रिय और वैश्य जातिके शिष्य जिनकी सेवा करते हैं, जो
महाधनुषधारी हैं, जो मेरे पुत्रोंकी इच्छाके अनुकूल चलते हैं, जो
वितण्डावाद, भाषण, परस्पर भाषण, नाना प्रकारके वाजे और
मनोहर संगीतोंमें रात दिन मस्त रहते हैं और कौरव, पाण्डव
तथा सात्वतवंशी राजे जिनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं, हे
सञ्जय ! उन अश्वत्थामाके घर से भी पहिलेकीसी हर्षकी ध्वनि
सुनाई नहीं देती ॥ १२-१४ ॥ जो गायक और नर्त्तक महा-
धनुषधारी अश्वत्थामाकी प्रायः सेवा किया करते थे, आज उनका
शब्दभी सुनाई नहीं आता ॥ १५ ॥ विन्द और अनुविन्दकी

सायं शिविरे यो महाध्वनिः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा सायं न तथा केक-
यानाञ्च वेदपटु । नित्यं प्रमुदितानाञ्च तावधीनस्वनो मदान् ॥ १७ ॥
नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोद्य न स्वनः । सप्त नन्नुन्वितन्याना
याजका यमुपासते ॥ १८ ॥ सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते
ध्वनिः । ज्याघोषो वल्लघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः ॥ १९ ॥ द्रोण-
स्यासीद्विरतो गृहे तं न शृणोम्यहम् । नानादेशसमुत्थानां गीतानां
योऽभवत्स्वनः ॥ २० ॥ वादित्रनादितानां च सोद्य न श्रूयते मदान् ।
यदा प्रभृत्पुपसव्याच्छान्तिभिच्छन् जनार्दनः ॥ २१ ॥ आगतः
सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः । ततोऽहमब्रुवं मून मन्दं दुर्योधनं
तदा ॥ २२ ॥ वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः । काल-
प्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः ॥ २३ ॥ शमं चेद्याचमानं त्वं
प्रत्याख्यास्यसि केशवम् । हितार्थमभिरक्षन्तं न तवास्ति रणे

छावनीमें तथा केकयोंके डेरोंमेंसे सायं कालको, सर्वदा प्रसन्न
होकर नाचनेवालोंकी ताल और गीतध्वनिभी पहिलीसी नहीं
सुनाई देती, जो वेदध्वनि करनेवाले याचक श्रुतनिधि सौमदत्ति
के डेरोंमें वेदपाठ करते थे, उनका शब्दभी आज सुनाई नहीं देता,
द्रोणके घरमें सर्वदा प्रत्यक्षा, वेद, तोमर, तलवार और रथकीही
ध्वनि सुनाई देती थी, आज वहाँसे भी कोई शब्द नहीं आता,
अनेकों देशोंमें बनेहुए गीतोंकी महाध्वनिभी आज पहलेकेसी नहीं
सुनाई देती, जब श्रीकृष्ण कलहको शान्त करनेकी इच्छा तथा
सब प्राणियों पर दया करनेके लिये उपप्लव्यमें आये थे, हे मून !
उस समय मैंने मन्दबुद्धि दुर्योधनसे कहा था, कि-॥ १६-२२ ॥
हे पुत्र ! वासुदेवके बतायेहुए उपायसे पाण्डवोंसे संधि करले, मेरी
समझमें संधिके लिये यह अच्छा अवसर हाथ लगा है, हे दुर्यो-
धन ! तू मेरे वचनका वा इस अवसरका अनादर न कर ॥ २३ ॥
मेरे हितके लिये ही श्रीकृष्ण संधिकी प्रार्थना करने आये हैं, यदि

जयः ॥ २४ ॥ प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम् । अनुने-
यानि जल्पन्तमनयान्नान्वपद्यत ॥ २५ ॥ ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य
च मतं द्वयोः । अन्ववर्त्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥ २६ ॥
न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति । सैन्धवो नेच्छति द्यूतं
भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २७ ॥ शन्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो
जयस्तथा । अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति सञ्जय ॥ २८ ॥
एतेषां मतमादाय यदि वर्त्तेत पुत्रकः । सद्भातिमित्रः समृहचिर-
ञ्जीवेदनामयः ॥ २९ ॥ शलच्या मधुरसम्भाषा हातिवन्धुप्रिप-
म्बदा । कुलीनाः सम्प्रताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३० ॥
धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् । प्रेत्य भावे च कल्याणं

तू इनसे सन्धिके लिये निषेध करदेगा तो तू युद्धमें जीत नहीं
सकेगा ॥ २४ ॥ सब धनुषधारियोंमें अग्रगण्य श्रीकृष्णने, दुर्यो-
धनसे विनय भरे वचन कहे थे, तथापि दुर्योधनने अन्यायसे
उनके वचनोंका मान नहीं किया ॥ २५ ॥ मेरी पत्तिको न मान
कर कालसे खिंचेहुए दुर्योधनने दुःशासन और कर्णकी ही बात
मानी उस समय ही मैंने समझा था, कि-घोर संहार होगा २६
जब दुर्योधन जुआ खेलनेलगा, उस समय मैं ऐसा होनेदेना नहीं
चाहता था, विदुर भी जुएको बुरा कहते थे, जयद्रथ और भीष्म
भी जुएको नहीं चाहते थे ॥ २७ ॥ और हे सञ्जय ? शन्य,
भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य
भी जुएको अच्छा नहीं कहते थे ॥ २८ ॥ यदि मेरा पुत्र उनकी
बातको मानकर चलता तो जाति, मित्र, और सुहृदोंके साथ
चिरकाल तक सुखसे जीवन बिताता ॥ २९ ॥ (मैंने कहा था,
कि-) पाण्डव सरलस्वभाव मधुरभाषी जाति और बान्धवोंसे
मधुर वाणीमें बोलनेवाले, कुलीन, मान्य तथा बुद्धिमान हैं, अतः
वे तो सुखही पावेंगे ॥ ३० ॥ (क्योंकि-) धर्मात्मा पुरुष यहाँ

प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥ अर्शस्ते पृथिवीं पांशुं समथोः साध-
नेषु च । तेषामपि समुद्रान्ता विनृपेतामही मही ॥ ३२ ॥ निमुज्य-
मानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि । संति मे ज्ञातयस्तान् तेषां
श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३३ ॥ शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च
महात्मनः । द्रोणस्याथ विकर्णस्य वाह्मीकस्य कृपस्य च ॥ ३४ ॥
अन्येषाञ्चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम् । त्वदर्थं युवतां तात
करिष्यन्ति वचो हिनम् ॥ ३५ ॥ कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्तान्
ब्रूयादतोन्पथा । कृष्णो धर्मं न सञ्जयात् सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥ ३६ ॥
मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम् । नान्यथा प्रकरिष्यन्ति
धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३७ ॥ इत्यहं विलपन् मृत वदुषाः

सर्वत्र सुख पाता हैं और परने पर कल्याण और मनुष्योंकी
प्रीतिको पाता हैं ॥ ३१ ॥ पाण्डव समुद्रपर्यन्त पृथिवीको भी पा
सकते हैं और उसके ऊपर राज्यभी करसकते हैं तथा समुद्र पर्यन्त
की पृथ्वी उनके घापदादोंकी है ॥ ३२ ॥ यदि पाण्डवोंको राज्य
से अलग भी करदिया जायगा, तो भी वे धर्मको नहीं छोड़ेंगे, हे
पुत्र ! मेरे कितनेही ऐसे सम्बन्धी हैं, कि—जिनके कहनेको पांडव
अवश्य मानेंगे ॥ ३३ ॥ हे पुत्र ! शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म
द्रोण, विकर्ण, वाह्मीक, कृप तथा दूसरे भी भरतवंशी महात्मा
वृद्ध पुरुष तेरे हिनके लिये पाण्डवोंसे जो बातें कहेंगे, उन बातों
को पाण्डव मानलेंगे अतः तू सन्धि करले ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तू
पांडवोंमें ऐसा किसको देखता है, जो इन पुरुषोंके विरुद्ध चले
श्रीकृष्ण कभी भी धर्मका त्याग नहीं करेंगे और वे सब श्रीकृष्ण
के पीछे २ चलते हैं ॥ ३६ ॥ यदि मैं भी उन वीरोंसे धर्मकी
बात कहूँगा तो वे उस बातसे फिरेगे नहीं, क्योंकि—पांडव धर्मा-
त्मा हैं ॥ ३७ ॥ हे मृत ! इस प्रकार गिड़गिड़ा कर मैंने दुर्यो-
धनको बहुत समझाया, परन्तु उसने एक न सुनी, अतः मैं

। पुत्रमुक्तवान् । न च मे श्रुतवान्मूढो मन्ये कालस्य पर्ययम् । ३८ ।
वृकोदरार्जुनौ यत्र दृष्टिणीवीरश्च सात्यकिः । उत्तमौजाश्च पाञ्चालयो
युधामन्युश्च दुर्जयः ॥ ३९ ॥ धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्पः शिखण्डी चापरा-
जितः । अश्मकः केकयश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमिकः ॥ ४० ॥
चैत्रश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यपस्य चाभिभूः । द्रौपदेया विराटश्च
द्रुपदश्च महारथः ॥ ४१ ॥ यमौ च पुरुषन्याग्रौ मंत्री च मधुसूदनः ।
क एतान् जातु युध्येत लोकेस्मिन्वे जिजीविषुः ॥ ४२ ॥ दिव्य-
मस्त्रं विकुर्वाणान्मसहेद्वा परान्मम । अन्यो दुर्योधनात्कर्णाच्छकुने-
श्चापि सौत्रजात् ॥ ४३ ॥ दुःशासनचतुर्थानां नान्यं पश्यामि पञ्चमम् ।
येषामभीषुहस्तः स्याद्विष्वसेनो रथे स्थितः ॥ ४४ ॥ सन्नद्धश्चा-
र्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः । तेषामथ विलापानां नायं दुर्यो-

समझता हूँ, कि-समयने ही पलटा खाया है ॥ ३८ ॥ (मैंने उसे
फिर समझाया था, कि-) जहाँ पर भीम, अर्जुन, दृष्टिणीवीर
सात्यकि, उत्तमौजा, पञ्चालका राजा दुर्जय युधामन्यु, दुर्धर्प
धृष्टद्युम्न, अपराजित शिखण्डी, अश्मक, केकय, क्षत्रधर्मा सौमिक
चैत्र, चेकितान, काश्यपा, पुत्र अभिभू, द्रौपदीके पाँचों पुत्र महा-
रथी विराट और द्रुपद, पुरुषन्याग्र नकुल तथा सहदेव हों
तथा मंत्री श्रीकृष्ण हों तहाँ इतने योधाओंसे, जीवित
रहनेकी इच्छा वाला कौन पुरुष लड़े ॥ ३९—४२ ॥
दिव्य अस्त्रोंको चलानेहुए इन शत्रुओंकी टक्करको सहनेवाला
दुर्योधन, कर्ण, सुवलपुत्र शकुनि और चौथे दुःशासनके सिवाय
कौग्वसेनामें पाँचवाँ वीर मुझे नहीं दीखता, जिनकी ओर श्रीकृष्ण
हाथमें घोड़ोंकी रासें लेकर रथपर बैठते हैं और जिनके पास
अर्जुनसा शस्त्र बाँधकर तयार रहनेवाला योधा है, उनकी परा-
जय हो ही नहीं सकती, इसप्रकार मैंने दुर्योधनके सामने विलाप
किये परन्तु दुर्योधनने ध्यान ही नहीं दिया ॥ ४३—४५ ॥ तू

धनः स्मरेत् ॥ ४५ ॥ हतो हि पुरुषज्याघ्रो भीष्मद्रोणो न्वमान्य
 वै । तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शनात् ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा मां
 फलनिवृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः । सेनां दृष्ट्वाभिभूतां मे शर्नयेना-
 र्जुनेन च ॥ ४७ ॥ शून्यान्दृष्ट्वा रथापस्यान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
 हिमात्यये यथा कर्त्तुं शुष्कं वातेरितो मदान् ॥ ४८ ॥ अग्निर्दहेत्तथा
 सेनां मामिकां स धनञ्जयः । आचञ्च मम तत्सर्वं कुशलो हसि
 संजय ॥ ४९ ॥ यदुपायात् सायान्हे कृत्वा पार्थस्य किञ्चिपम् ।
 अभिमन्यो हते तात कथमासीन्मनो हि वः ॥ ५० ॥ न जातु
 तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः । अपकृत्य महत्तात सोढुं
 शक्यंति मामकाः ॥ ५१ ॥ किन्तु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किम-
 ब्रवीत् । दुःशासनः साँवलश्च तेषामेवं गतेष्वपि ॥ ५२ ॥ सर्वेषां

कहता है, कि-पुरुषज्याघ्र भीष्म और द्रोण मारे गए अतः दीर्घदर्शी
 विदुरके भविष्यको जतानेवाले वचनों का इसप्रकार परिणाम देख
 कर तथा अर्जुन और सात्यकिसे हुए सेनाके तिरस्कारको देखकर
 मैं समझता हूँ, कि-मेरे पुत्र शोक कर रहे होंगे ॥ ४६-४७ ॥
 हाय ! हाय ! मुझे यह निश्चय है, कि-रथोंके भीतरी भागोंको
 योधाओंसे शून्य देखकर मेरे पुत्र रो रहे होंगे, ग्रीष्मवृत्तमें मूखी
 घासको भस्म कर डालनेवाली अश्विकी समान, अर्जुन मेरी
 सेनाको भस्म करे डालता होगा, हे सञ्जय ! तू क्या कहनेमें
 चतुर है, अतः मुझे सब वृत्तान्त सुना ॥ ४८-४९ ॥ हे तात !
 जब तुम अभिमन्युको मारकर अर्जुनका अपराध करके संध्याके
 समय छावनीमें आ गए थे, उस समय तुम्हारे चित्तमें क्या स्थल
 पुथल हो रही थी ? ॥ ५० ॥ मेरे पुत्र गाण्डीव धनुषधारी
 अर्जुनका बड़ा भारी अपराध करके उसके पराक्रमको युद्धमें नहीं
 सहसकते होंगे, यह मेरा निश्चय है ॥ ५१ ॥ अर्जुनका अपराध
 करनेके अनन्तर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनिने वधा

समवेतानां पुत्राणां मम संजय । यद् वृत्तं तात संग्रामे मंदस्यापन-
येधृशम् ॥ ५३ ॥ लोभानुगस्य दुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः ।
राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः । दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्म-
माचक्ष्व संजय ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये
पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

सञ्जय उवाच । हंत ते सम्प्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षद शवान् ।
एतश्चपस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् ॥ १ ॥ गतोदके सेतु-
बन्धो यादृक् तादृगयन्तव । विलापो निष्फलो राजन मा शुचो
भरतर्षभ ॥ २ ॥ अनतिक्रमणीयोयं कृतान्तस्याद्भुतो विधिः । मा
शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत् पुरातनम् ॥ ३ ॥ यदि त्वं हि पुरा धृतात्
कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । निवर्त्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमा-

उपाय करनेको कहा था, यह भी सुना ? मेरे मुख पुत्रके अन्याय
से, हे सञ्जय ! संग्राममें इकट्ठेहुए मेरे सब पुत्रोंने क्या किया ?
लोभी दुर्बुद्धि, क्रोधसे व्याकुलचित्त, राज्यलिप्सु, मदसे उन्मत्त
दुर्योधनके कियेहुए भले बुरे सब कर्मोंको मुझे सुना ॥ ५२-५४ ॥
पिपासीर्वा अध्याय समाप्त ॥ ८५ ॥ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! मैंने सब वृत्तान्त प्रत्यक्ष
देखा है, अतः मैं तुम्हें सब सुनाऊंगा, तुम स्थिर होकर सुनो,
तुमने भी इस विषयमें बड़ा अन्याय किया है ॥ १ ॥ हे राजन !
तुम्हारा अब विलाप करना, जल सूख जाने पर पुल बाँधनेकी
समान, निरर्थक है अतः हे भरतश्रेष्ठ ! तुम अब शोक न करो
हे भरतश्रेष्ठ ! इस कालकी अद्भुत घटनाको कोई नहीं पलट
सकता, तुम्हारे पूर्वजन्मके कर्मोंका पारिपाक ही ऐसा होगा,
अतः तुम्हें शोक करना उचित नहीं है ॥ ३ ॥ यदि तुम पहिलेसे
ही कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर और दुर्योधनको जुपसे हटा देते, तो तुम्हारे

ब्रजेत् ॥ ४ ॥ युद्धकाले पुनः प्राप्तं तदेव भवता यदि । निर्वर्णिताः
स्य संरन्धान न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ५ ॥ दुर्योधनं चाविधेवं
बन्धीतेति पुरा यदि । कुरुनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमा-
व्रजेत् ॥ ६ ॥ न ते युद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः । पञ्चाला
वृष्ण्याः सर्वे ये चान्येपि नराधिपाः ॥ ७ ॥ स कृत्वा पितृकर्म त्वं
पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे । व्रत्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ८ ॥
त्वन्तु माशतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम् । दुर्योधनस्य कर्णस्य
शकुनेश्चान्वगामतम् ॥ ९ ॥ तत्तं विलपितं सर्वं मया राजन्निज्ञा-
मितम् । अर्थे निविशमानस्य विपमिश्रं यथा मथु ॥ १० ॥ नाम-
न्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा । न भीष्मं नैव च द्रोणं
यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः ॥ ११ ॥ अज्ञानात् स यदा तु त्वां राज-

ऊपर यह दुःख न पड़ता ॥ ४ ॥ युद्धका अवसर आने पर भी
यदि तुमने क्रोधमें भरेहुए पुत्रोंको युद्ध करनेसे रोका होता तो
तुम्हारे ऊपर यह आपत्ति न पड़ती ॥ ५ ॥ यदि तुमने पहिले ही
कार्योंको आज्ञा दी होती, कि-मर्यादाके बाहर चलनेवाले
दुर्योधनको कैद करलो और वन्होंने उसको कैद करलिया
होता, तो तुम्हें ऐसा दुःख न भुगतना पड़ता ॥ ६ ॥ (इनमेंका
एक भी काम यदि तुमने किया होता तो) पाण्डव, पाञ्चाल,
वृष्णि तथा और राजे भी तुम्हारी बुद्धिकी विपमताका अनुभव
न करते ॥ ७ ॥ यदि तुम पिताके धर्मका पालन करनेहुए अपने
पुत्रको सन्मार्गमें स्थापित करते तो तुम्हारे ऊपर यह दुःख न
पड़ता ॥ ८ ॥ तुम परम बुद्धिमान् हो तो भी तुमने धर्मको तिला-
अलि देकर दुर्योधन और कर्णकी बात मानली ॥ ९ ॥ इस
कारण हे राजन् ! आपका जो सब विलाप आज मैंने सुना है,
यह केवल लोभसे है और विष मिले शहदकी समान है ॥ १० ॥
अच्युत श्रीकृष्ण पहिले जितना तुम्हारा मान करनेथे उनना मान

धर्मादधश्च्युतम् । तदा प्रभृति कृष्णस्त्वा न तथा बहु मन्यते १२
 परुषाण्युच्यमानाश्च यथा पार्थानुपेक्षसे । तस्यानुबन्धः प्राप्तस्त्वा
 पुत्राणां राज्यकामुक ॥ १३ ॥ पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदानघ ।
 अथ पार्थैर्जितं कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥ १४ ॥ पाण्डुना
 निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा । ततश्चाप्यधिकं भूयः पा-
 ण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ १५ ॥ तेषां तत्तादृशं कर्म त्वामासाद्य मुनि-
 ष्फलम् । यत् पित्र्याद् अंशिता राज्याच्चयेहामिपशृद्धिना ॥ १६ ॥
 यत् पुनर्युद्धकाले त्वं पुमान् गर्ह्यसे नृप । बहुधा व्याहरन्दापाङ्ग-
 तदद्योपपद्यते ॥ १७ ॥ न हि रक्षन्ति राजानो युध्यन्तो जीवितं

पहिले युधिष्ठिरका और भीष्मका भी नहीं करते थे ११ परन्तु जब
 श्रीकृष्णने जाना कि-तुम राजधर्मसे भ्रष्ट हो गये हो, तबसे वह तुम्हारा
 पहिलासा मान नहीं करते १२ तुम्हारे पुत्रोंने पाण्डवोंको गालियें
 दीं, उसकी तुमने उपेक्षा की, और उनको डाटा नहीं क्योंकि-तुम्हें
 तो पुत्रको राज दित्तवानेकी ही इच्छा थी अब उसका ही तो फल
 मिला है अतः शोक क्यों करते हो ? ॥ १३ ॥ हे अनघ ! तुमने
 अपने पुत्रोंको रोका नहीं, इससे ही तुम्हारे पूर्वजोंका राज्य
 आज संशयमें पड़ गया है, अब तो पाण्डव इस सब पृथिवीको
 अवश्य ही जीतलेंगे, चाहे पीछेसे तुम्हें ही दे दें, तब तुम भलेही
 राज्य करना ॥ १४ ॥ राजा पाण्डुने राज्यको जीतलिया था
 और यशभी पाया था उसही राज्य और यशको कौरवोंने ग्रहण
 किया है और धर्मात्मा पाण्डवोंने यश और राज्यको और भी
 अधिक बढ़ाया है ॥ १५ ॥ परन्तु उनका वह सब पराक्रम तुम्हारे
 सम्बन्धसे मट्टीमें मिल गया है क्योंकि-तुमने राज्यको लोभसे उनको
 पिताके राज्यसे हटा दिया है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! अब युद्धका
 अवसर आने पर तुम अपने पुत्रोंकी निन्दा करते हो और उन
 के बहुतसे अवगुणोंको गाते हो, परन्तु अब इससे क्या लाभ

रणे । चमू विगाह पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रिण्यमाः ॥ १८ ॥ चान्तु
 कृष्णार्जुनां सेनां यां सात्यकिवृकोदरा । क्षत्रेण को नु तां युध्ये-
 चमूगन्धर्व कौरवैः ॥ १९ ॥ येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री
 जनार्दनः । येषां च सात्यकिर्योद्धा येषां योद्धा वृकोदरः २० को हि तान्
 विपद्घ्नोद्दुः मर्त्यधर्मा धनुर्धरः । अन्यत्र कौरवेभ्यो ये वा तेषां
 पदानुगाः ॥ २१ ॥ यावत्तु शक्यते कर्तुं मन्तरङ्गैर्जनाधिपैः ।
 क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत् कुर्वन्ति कौरवाः ॥ २२ ॥ यथा तु पुरुष-
 व्याघ्रैर्युद्धं परमसङ्कटम् । कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत्सर्वं शृणु
 तत्त्वतः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संजयवाक्ये

पडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

हे ? आज ऐसा करना व्यर्थ है ॥ १७ ॥ इस युद्धमें लड़नेवाले
 राजे अपने माणोंकी रक्षा नहीं कर रहे हैं परन्तु प्राणान्त होने
 तक लड़ रहे हैं, वड़े क्षत्रिय राजे पाण्डवोंकी सेनामें आकर
 रणमें लड़ रहे हैं ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण, अर्जुन, सात्यकि और
 भीमसेन जिस सेनाके रक्षक हों, उस सेनासे कौरवोंके सिवाय
 दूसरा कौन (मृदमति) लड़ेगा ? ॥ १९ ॥ जिनका सेनानायक
 अर्जुन है, जिनके मन्त्री श्रीकृष्ण हैं, सात्यकि और भीमसेन
 जिनके योद्धा हैं, ऐसे पाण्डवोंके साथ कौरव तथा उनके अनु-
 यायियोंके सिवाय और कौनसा धनुषधारी लड़सकता है ? २०-२१
 क्षत्रियके धर्मका पालन करनेवाले और समयको पहचानने वाले
 वीर राजे जितना कर सकते हैं कौरव उसमें कम नहीं कर रहे
 हैं ॥ २२ ॥ पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंका कौरवोंके साथ परमसंकट
 आनेवाला युद्ध जैसे हुआ है, वह सब मैं तुमको ज्योंका त्यों
 सुनाता हूँ, सुनिये, ॥ २३ ॥ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥

सञ्जय उवाच । तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
 स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद् व्यूहितुं ततः ॥ १ ॥ शूराणां
 गर्जतां राजन् संक्रुद्धानामपिणाम् । श्रूयन्ते स्म गिरिश्वत्राः पर-
 स्परवधैपिणाम् ॥ २ ॥ विस्फार्य च धनुष्यन्ये जवाः परे परि-
 मृज्य च । विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन् क्वेदानीं स धनञ्जयः ॥ ३ ॥
 विक्रोशान् सुत्सरून्ये कृतधारान् समाहितान् । पीतानाकाशसं-
 काशानसीन् केचिच्च चिच्छिपुः ॥ ४ ॥ वरन्तस्त्वसिमार्गांश्च धनु-
 मार्गांश्च शिञ्जया । संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ५
 सघटाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः । समुत्क्षिप्य गदा-
 श्वान्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम् ॥ ६ ॥ अन्ये बलमदोभक्ता परिपै-
 र्बाहुशालिनः । चक्रुः सम्बाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः ॥ ७ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! रात्रिके बीत जानेपर शस्त्र-
 धारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपनी सब सेनाको चक्रशकटव्यूढाकारमें
 खड़ी करनेलगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! क्रोधमें भरे असहनशाली एक-
 दूसरेका वध चाहनेवाले गर्जते हुए शूरोंकी विचित्र प्रकारकी
 बाणियों सुनाई आनेलगी ॥ २ ॥ उस समय कोई धनुषको तानकर
 और कोई प्रत्यञ्चको झुकीकर दम चढ़ाकर जोरसे चिल्लानेलेगे,
 कि-वह धनञ्जय इस समय कहाँ है ॥ ३ ॥ उस समय कितने
 ही वीर सुन्दर मूँठवाली, धारदार, पानी पिलाईहुई, आकाशकी
 समान निर्मल, तलवारोंको घुमानेलेगे ॥ ४ ॥ सहस्रों शूर युद्ध
 करनेकी इच्छासे अभ्यासके अनुसार तलवार चलानेकी चातुरी
 और धनुषधारीपन दिखानेलेगे ॥ ५ ॥ उस समय कितने ही
 योधा घुँघरू बँधीहुई, चन्दनसे चर्चित, सुवर्ण और हीरोंसे जड़ी
 गदाओंको ऊँची करके बुझनेलगे, कि-पाण्डव कहाँ हैं ? ॥ ६ ॥
 बल और मदसे उद्धत बहुतसे बाहुबलशाली योधा इन्द्रध्वजकी
 समान ऊँचे उठेहुए परिघोंको लेकर चलरहे थे, उनसे आकाश

नानानिहरणंश्चान्ये विविचस्रगलंकृताः । जग्राप्सन्सः शूरास्तत्र
तत्र व्यथस्थिताः ॥ ८ ॥ कर्वाजुनः क स गोविन्दः क्व च मानी
वृकोदरः । क्व च ते युद्धस्तेषामाद्यन्ते रणे तदा ॥ ९ ॥ ततः
शंखमुपाध्माय त्वरयन् वाजिनः स्वयम् । इन्मातरतान् रचयन्
द्रोणधरति वेगिनः ॥ १० ॥ तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वहवन्-
न्दिषु । भारद्वाजो महाराज जयद्रथन्यात्रगीत् ॥ ११ ॥ न्वं चैव
सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः । अश्वत्थामा च शल्यश्च वृष-
सेनः कृपस्तथा ॥ १२ ॥ जतं च रसदहन्नाणां रथानामपुतानि पट् ।
द्विरदानानि प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १३ ॥ पदानिनां
सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः । गन्धूनिषु त्रिपात्राणु मामनासाथ
तिष्ठन् ॥ १४ ॥ तत्रस्थं त्वां न सक्षोदुं शक्ता देवाः सवासवाः ।

छागया था ॥७॥ और बहुतेने नानाप्रकारके शस्त्रोंको ऊँचा कर
लिया था ये सब वीर चित्र चित्रि चित्र पुष्पागलाण पहिर रहे थे, और
संग्राम करनेकी इच्छासे जिधर तिधर टोलिये बाँधकर खड़े थे ८
पाण्डवोंकी ओरके योधायोंको युद्धके लिये चुलातेहुए वे कहरहे
थे कि-अरे ! वह अर्जुन कहाँ है ? वह भीष्मण कहाँ है ? अभि-
मानी वृकोदर कहाँ है ? और तुम्हारे सगे सम्बन्धी कहाँ हैं ?
इसप्रकार पुकार पड़रही थी ॥ ९ ॥ इस समय द्रोणाचार्य शंख
बजाकर सेनामें घोड़ोंको वेगसे दौटाकर सेनाको चक्रशकटव्यूह
के आकारमें खड़ी करतेहुए चारों ओर घूमरहे थे ॥ १० ॥
जब युद्धमें आनन्द देनेवालीं सब सेनाएँ यथास्थान पर खड़ी
होगई, तब हे ! महाराज द्रोणाचार्यने जयद्रथसे कहा, कि ॥११॥
तू सौमदत्ति, महारथी कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन, तथा
कृपाचार्यके साथ एक लाय घंड़े, साठ हज रथ, चाँदह हजार
मद टपकतेहुए हाथी, और इक्कीस सहस्र कवचधारी पैदलोंको
लेकर मेरे पीछे लः थोसथी दूरी पर खड़ा होजा ॥ १२-१४ ॥

किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्यव ॥ १५ ॥ एवमुक्तः
समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः । सम्प्रायात् सह गान्धारैर्वृ-
त्तैश्च महारथैः ॥ १६ ॥ वर्मिभिः सादिभिर्यत्नैः प्रासपाणिभिरा-
स्थितैः । चापगपीडिनः सर्वैः जाम्बूनदविभूषिताः ॥ १७ ॥ जय-
द्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः । ते चैव सप्तसाहस्रास्त्रिसाह-
स्राश्च सैन्यवाः ॥ १८ ॥ मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहविंशा-
रदैः । नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥ १९ ॥
अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव । अग्रतः सर्वसैन्यानां युध्य-
मानो व्यवस्थितः ॥ २० ॥ ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवा-
त्मजौ । सिन्धुराजार्थसिद्धयर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥ २१ ॥ दीर्घौ

तहाँ खड़ा रहने पर तुम्हें इन्द्रादि देवता भी नहीं हरा सकेंगे फिर
पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है । हे सिन्धुराज ! तू धीरज रखना
ठरना नहीं १५ जब द्रोणाचार्यने जयद्रथसे ये बातें कहकर उसको
ढाँस दिया, तब वह गान्धारदेशके महारथियोंसे तथा कवच-
धारी और प्रास नामक शस्त्रको धारण करनेवाले, सावधान
घुड़सवारोंसे घिरकर (रणभूमिमें नियत कियेहुए स्थानको)
चलदिशा हे राजेन्द्र ! जयद्रथके सब घोड़े सुवर्णके गहने तथा
सुन्दर केशवाले चँवरोंकी कलगियोंसे विभूषित थे और खड़ा-
खड़ाहट न हो इसप्रकार धीमी चालसे चलनेवाले थे, ऐसे सात
सहस्र और तीन सहस्र घोड़े जयद्रथके साथ चलते थे जो आगेको
बढ़नेमें और पीछेको हटनेमें शिक्ता पायेहुए थे ॥ १८ ॥ तुम्हारा
पुत्र दुर्मर्षण युद्ध करनेके लिये सब सेनाके अग्रभागमें खड़ा
होगया उसके साथ मदमत्त, भयानक दीखनेवाले, तथा
भयङ्कर काम करनेवाले, कवचधारी पन्द्रहसौ हाथी थे और उनके
ऊपर अतिचतुर महाव्रत बैठे थे ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर जय-
द्रथका कार्य सिद्ध करनेको तुम्हारे दोनों पुत्र दुःशासन और

द्वादशगव्यूनिः पश्चार्द्धे पञ्चविंशतः । व्यूहस्तु चक्रशः । द्रो भागद्वा-
जेन निर्मितः ॥ २२ ॥ नानानृपतिभिर्वीरैस्त्वत्र तत्र व्यवस्थितः ।
रथाश्चगजपत्न्योर्वीर्द्रोणेन भित्तिः स्वयम् ॥ २३ ॥ पश्चार्द्धे तस्य
पञ्चस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्मिदः । मूर्चीपञ्चम्य गर्भस्थो गृहो व्यूहः कृतः
पुनः ॥ २४ ॥ एवमेतं महाव्यूहं व्यूह द्रोणो व्यवस्थितः । मूर्चीमुखे
महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥ २५ ॥ अनन्तरञ्च काम्बोजो
जलसन्धश्च मारिष । दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव चरदन्तः
शतशहस्राणि योधानामनिवर्त्तिनाम् । व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे
मुखरक्षिणाम् ॥ २७ ॥ तेषाञ्च पृष्ठतो राजा बलेन महता घृतः ।
जयद्रथस्ततो राजा मूर्चीपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ २८ ॥ शकटस्य तु
राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः । अनु तस्याभवद्भोजो जुगोर्पेन

विकर्ण सेनाके अग्रभागमें खड़े होंगये ॥ २१ ॥ द्रोणाचार्यने
अपने स्थान पर खड़ेहुए रथी, हाथीसवार और पैदलोंको तथा
दूसरे अनेकों शूरीरोंका चक्रशकटव्यूह बनाकर खड़ा करदिया
यह व्यूह चौबीस कोस लम्बा था, उसके पिछले आधे भागमें
दश कोस फँजावका शकट बनाया था, और अभेय पद्माकार
चक्रशकटव्यूहके पिछले भागके मध्यमें सुईकी समान द्विपादुआ
एक गुप्त मूर्चीव्यूह बनाया इसप्रकार महाव्यूह रचकर द्रोणानार्य
उसके अगले भागमें खड़े होंगये, महाधनुषधारी कृतवर्मा पञ्च-
गर्भमें घनेहुए मूर्चीव्यूह पर खड़ा होगया, उसके पीछे काम्बोज
और जलसन्ध खड़े होंगये, उनसे पीछे कर्ण और दुर्योधन खड़े
हुए ॥ २२-२३ ॥ रणमेंसे पीछेको न हटनेवाले एक लाख योधा
शकटव्यूहके मुखकी रक्षा करते थे. शकटव्यूहकी रक्षा करनेवाले
इन योधाओंकी पिछली ओर और मूर्चीव्यूहके समीपमें राजा
जयद्रथ बड़ीभारी सेनासे घिरकर खड़ा होंगया ॥ २७ ॥ २८ ॥
हे राजन् ! द्रोणाचार्य शकटव्यूहके अग्रभागमें खड़े थे, और उनके

ततः स्वयम् ॥ २६ ॥ श्वेतवर्मा वरोष्णीयो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
धनुर्विस्फारयन् द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवान्तकः ॥ २७ ॥ पताकिनं
शोणहयं वेदीकृष्णाग्निध्वजम् । द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टः
कुरवोऽभवन् ॥ २८ ॥ सिद्धचारणसंघानां विस्मयः सुमहानभूत् ।
द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥ २९ ॥ सशैल-
सागरवर्मा नानाजनपदाकुलाम् । असेद व्यूहः क्षितिं सर्वापिति
भूतानि मेनिरे ॥ ३० ॥ बहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं प्रतिभय-
निःस्वनमद्भुतानुरूपम् । अहितहृदयभेदनं महद्वै शकटमवेक्ष्य कुनं
ननन्द राजा ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कौरव-
व्यूहनिर्माणे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

पीछेही कृतवर्मा खड़े हो जयद्रथकी रक्षा कर रहे थे ॥ २६ ॥
द्रोणाचार्य श्वेत कवच, श्वेत वस्त्र और श्वेत पगड़ी धारण किये
हुए थे, उनका हृदय चौड़ा था, और वह धनुषको टंकारतेहुए
क्रोधित बालकी समान शकटव्यूहके मुहाने परही खड़े
थे ॥ २७ ॥ लाल घोड़ोंवाले, वेदी, तथा कृष्णमृगके चमड़े
के चिन्हकी ध्वजावाले द्रोणाचार्यके रथको देखकर कौरव
हर्षमें भर गए ॥ २८ ॥ सिद्धपुरुष और चारण क्षोभित महासा-
गरकी समान द्रोणाचार्यके द्वारा व्यूहाकारमें रची हुई बड़ी भारी
सेनाको देखकर बड़े आश्चर्यमें होगए ॥ २९ ॥ सब प्राणी यह सम-
झने लगे कि—यह व्यूह तो पर्वत वन और अनेकों देशोंसहित
समस्त पृथ्वीको ही निगल जायगा ॥ ३० ॥ इसप्रकार द्रोणा-
चार्यके द्वारा बहुतसे रथ, मनुष्य, घोड़े, पैदल और हाथियोंके
बनाये भयङ्कर गर्जना करते आश्चर्यजनक आकारवाले और
शत्रुओंके हृदयको चीरनेवाले बड़े भारी शकटव्यूहको देखकर राजा
दुर्योधन बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥ ३१ ॥ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जय उवाच । ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष । नादय-
पानाम्यु भेरीषु मृदङ्गेषु नदन्तु च ॥ १ ॥ अनीकानाम् च संहादे वादि-
त्राणां च निःस्वने । मध्मापितेषु शंखेषु सन्नादे लोमहर्षणे ॥ २ ॥
अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु । राट्रे मुहूर्ते संप्राप्ते सव्य-
साची व्यदृश्यत ॥ ३ ॥ बलानां वायसानां च पुरस्तात् सव्य-
साचिनः । बहुलानि सङ्सृष्टि प्राकीर्णस्तत्र भारत ॥ ४ ॥ मृगाश्च
योरसन्नादाः शिवाश्चाशिवदर्शनाः । दन्तिगणं मयानानामस्माकं
प्राणदंस्तदा ॥ ५ ॥ सनिर्घाता उलन्त्यश्च पेतुकल्पाः सङ्सृतः ।
चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरं समुत्थिते ॥ ६ ॥ विशङ्खानाः
सनिर्घाता रुक्ताः शर्कर कर्षिणः । वज्रागायानि कान्तेये संग्रामे समु-
पस्थिते ॥ ७ ॥ नाकुलिश्च शनानीको धृष्टमुन्मत्तश्च पार्षतः ।

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! तदनन्तर सेनाके व्यूढरचनामे
खड़ी होजाने पर, नगाहों पर चोट पड़नेलगी और मृदङ्ग बजने
लगे तथा सेनाएं गर्जने लगीं ॥ १ ॥ सेनाओंका कोलाहल होने
लगा, बाजों की ध्वनि होनेलगी और शंखोंके बजनेपर लोम-
हर्षण नाद होनेलगा ॥ २ ॥ युद्ध करनेकी इच्छावाले भरनवंशी
राजे धीरे-२ महार करनेकी तयारी करनेलगे, उस ही समय रुद्र
मुहूर्त आने पर सव्यसाची अर्जुनने रणभूमिमें दर्शन दिया ॥ ३ ॥
हे भारत ! उस समय अर्जुनके रथके पास सङ्स्रों बगले और
काँए उड़नेलगे ॥ ४ ॥ और घोर शब्द करनेवाले मृग तथा अशुभ
दर्शनवालीं गीदड़ियें हमारी सेनाके दाहिनी ओर भयङ्कर शब्द
करनेलगीं ॥ ५ ॥ तुम्हारी सेनामें कड़कड़ शब्द करतीहुई और
धकधक जलतीहुई सङ्स्रों उल्काएं आकाशमेंसे नीचे गिरनेलगीं
सम्पूर्ण पृथ्वी काँपनेलगी और चारों ओर घोरभय दीखनेलगा ६
और भयानक वज्रकेसा शब्द करताहुआ मूखा पवन चारों ओर
कड़कड़ियोंको बरसाता हुआ चलनेलगा, अर्जुनके संग्राममें

पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहस्तदा ॥ ८ ॥ ततो रथसह-
स्रेण द्विरदानीं शतेन च । त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः
शतैः ॥ ९ ॥ अध्वर्द्धगात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव । अग्रतः सर्व-
सैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणो ब्रवीत् ॥ १० ॥ अद्य गाण्डीवधन्वानं
तपन्तं युद्धदुर्मदम् । अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ११ ॥
अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् । विपक्तं मयि दुर्द्धर्ममरम-
कूटमिवाश्मनि ॥ १२ ॥ तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकाञ्छिणः ।
युध्यामि संहतानेतान्यशो मानं च वर्द्धयन् ॥ १३ ॥ एवं ब्रुवन्
महाराज महात्मा स महामतिः । महेष्वासैर्दृष्टो राजन् महेष्वासो
व्यवस्थितः ॥ १४ ॥ ततोन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।

आते ही यह सब उपद्रव आरम्भ होगए ॥ ७ ॥ नकुलका
पुत्र शतानीक और पृथपुत्र धृष्टद्युम्न इन दोनों विद्वानोंने पाण्ड-
वोंकी सेनाकी व्यूहरचना की थी ॥ ८ ॥ तुम्हारा पुत्र दुर्मर्षण
एक सहस्र रथ, सौ हाथी, तीन सौ घोड़े और दश सहस्र पैद-
लोंके साथ पाँच सौ धनुष, भूमिको घेरकर सब सेनाके आगे
खड़ा होगया और बोला कि—॥ ९—१० ॥ जैसे किनारा समुद्रको
रोके रहता है, तैसे ही मैं भी आज, सन्तप्त, युद्धदुर्मद गाण्डीव
धनुषधारी अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोके रहूँगा ॥ ११ ॥ पत्थर
का गोला जैसे पत्थरसे टकराता है, तैसेही क्रोधी धनञ्जयके साथ
मैं युद्ध करूँगा, इसको देखना ॥ १२ ॥ ओ लड़नेकी इच्छावाले
रथियों ! तुम अभी खड़े रहो ! अकेला मैं ही अपने मान तथा
यशकी वृद्धि करताहुआ इन इकट्ठेहुए पाण्डवोंके सब योधाओंसे
लड़ता हूँ ॥ १३ ॥ हे महाराज ! महामति महाधनुषधारी दुर्म-
र्षण यह कह महाधनुषधारियोंसे घिरकर रणके मुहाने पर खड़ा
होगया ॥ १४ ॥ तुरन्त ही कोपमें भरेहुए कालकी समान वज्र-
धारी इन्द्रकी समान कालसे प्रेरित दण्डधारी असह्य मृत्युकी

दण्डपाणिरिवास्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥ १५ ॥ शूलपाणि-
रिवात्तोभ्यो वरुणः पाशवानिव । घृगान्नाग्निविवाविष्मान् मध-
च्चयन् वैः पुनः मजाः ॥ १६ ॥ क्रोशामपेवजोदुनो निवातकवचा-
तकः । जयो जेता स्पितः सत्ये पारयिष्यन् महाव्रतम् ॥ १७ ॥
आमृक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटमृत् । सृष्टुमात्स्याम्बरधरः
स्वर्गदश्वारुकुण्डलः ॥ १८ ॥ रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणा-
नुगः । त्रिधुन्वन् गाण्डिवं संरुये चर्मा मूर्ध्नि इवोदितः ॥ १९ ॥
सोशानीकस्य महत इषुपाते धनञ्जयः । व्यवस्थाप्य रथं राजन्
शंखं दध्मां प्रतापवान् ॥ २० ॥ अथ कृष्णोप्यसंभ्रान्तः पार्थेन
सह मारिष । प्राध्मापयत् पाञ्चजन्यं शंखप्रवरमोजसा ॥ २१ ॥
तयोः शंखप्रणादेन तव सैन्ये विशाम्पते । आसन् संहृष्टरोमाणः

समान, ॥ १५ ॥ अत्तोभ्य त्रिशूलपाणि शङ्करकी समान, पाश-
हस्त वरुणकी समान, तथा फिर मजाको भस्म करनेके लिये आते
हुए ज्वालावाले मलयकालके अग्निकी समान, मदीस क्रोध,
अमर्ष और बलसे उद्भूत, निवातकवचोंका संहार करनेवाला, विज-
यकर्त्ता, सत्यवादी, महाप्रतिज्ञाको पूरी करनेवाला, कवच, खड्ग,
तथा सुवर्णके मुकुटको धारण करनेवाला, श्वेत पुष्पोंकी माला और
श्वेत वस्त्र धारण किये कानोंमें सुन्दर कुण्डल और दाथोंमें वाजू-
वन्द पहिरनेवाला नरमूर्त्ति अर्जुन, नारायणरूपी श्रीकृष्णके
साथ, बड़े रथमें बैठकर गाण्डीव धनुषको घुमाताहुआ रणभूमिमें
आपहुँचा, उस समय वह उदय होतेहुए दूसरे सूर्यकी समान
शोभा पारहा था ॥ १६-१९ ॥ हे महाराज ! प्रतापी अर्जुनने
महासेनाके अग्रभागमें एक बाणकी दूरी पर खड़े होकर शंख
बजाया ॥ २० ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णने भी सावधान हो अपनी
शक्तिके अनुसार बल लगाकर पाञ्चजन्य नामक शंखको
बजाया ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उन दोनोंकी शंखध्वनिसे तुम्हारी

कम्पिता गतचेतसः ॥ २२ ॥ यथा त्रस्यन्ति भूतानि सर्वाण्यशनि-
निःस्वनात् । तथा शंखप्रणादेन वित्रेपुस्तव सैनिकाः ॥ २३ ॥
मनुस्रवुः शकुन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः । एवं सबाह्वनं सर्वमावि-
ग्नमभवद्भलम् ॥ २४ ॥ सीदन्ति स्म नरा राजन् शंखशब्देन
मारिष । विसंज्ञाश्चाभवन् केचित् केचिद्वाजन् वितत्रतः ॥ २५ ॥
ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः । अकरोद्व्यादितास्यश्च
भीषयंस्तव सैनिकान् ॥ २६ ॥ ततः शंखाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चानकैः
सह । पुनरेवाभ्यहन्यन्त तव सैन्यमहर्षणाः ॥ २७ ॥ नाना-
वादित्रसंहादैः क्षेडितास्फोटिताकुलैः । सिंहनादैः समुत्क्रष्टैः समाहूतै-
र्महारथैः २८ तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने । अतीवहृष्टो
दाशार्हमवनीत् पाकशासनिः ॥ २९ ॥ अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

सेनामें सब मनुष्योंके रुयें खडे होगये, शरीर काँपनेलगे और
मव अचेतसे होगये ॥ २२ ॥ जैसे वज्रके गिरनेसे सब प्राणी
घबड़ाजाते हैं तैसेही शंखोंके शब्दसे तुम्हारे सैनिक काँपने लगे २३
हाथी घोड़ोंके मलमूत्र निकल पडे इसप्रकार वाहनों सहित सब
सेना व्याकुल होगई ॥ २४ ॥ और हे राजन् ! उन शंखोंके
शब्दसे सब मनुष्य भयभीत होगए, उनमें कितनेही बेहोश होगए
और कितनेही घबड़ागए ॥ २५ ॥ तदनन्तर तुम्हारी सेनाको
डरानेके लिये अर्जुनकी ध्वजामें रहनेवाले वानरने ध्वजामें रहने
वाले सब प्राणियोंके साथ मुख फाडकर गर्जनाकी ॥ २६ ॥
दूसरी ओर तुम्हारी सेनाको हर्ष देनेवाले शंख, भेरी, मृदङ्ग,
और नगाडे फिर वजनेलगे ॥ २७ ॥ अनेकों वाजोंकी ध्वनि
होने लगी, भुजदण्डोंपर थपकियें पडने लगीं, सिंहनाद होनेलगे,
और युद्धके लिये तुम्हारे योधा शत्रुपक्षके योधाओंको पुकारने
लगे ॥ २८ ॥ डरपोकोंके भयको बढ़ानेवाले उस तुमुल शब्दके होने
पर अर्जुनने परमप्रसन्न हो श्रीकृष्णसे कहा २९ अठासीवाँ अध्याय

अर्जुन उवाच । चोदयादवाह हरीकेश यत्र दुर्मेणः स्थितः ।
 एतद्वित्वा गनानीकं प्रवेद्याभ्यरिवाहिनीम् ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच ।
 एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना । अचोदयदुर्वास्तत्र यत्र
 दुर्मर्षणः स्थितः ॥ २ ॥ स सम्पहारस्तमुक्तः सम्पट्टनः युदाग्रणः ।
 एकस्य च बहूनाञ्च रथनागनरक्षयः ॥ ३ ॥ ततः सायकवर्षेण
 पर्जन्य इव दृष्टिमान् । परानवाकिरत् पार्थः पर्वतानिव नीरदः ४
 ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवन् । अवाकिरन् बाण-
 जालैस्ततः कृष्णधनञ्जयौ ॥ ५ ॥ ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वीर्याणः
 परैर्बुधि । शिरांसि रथिनां पार्थः काचैर्भ्योवाहरश्चरैः । ६ ॥
 उद्भ्रातनयनैर्वस्त्रैः सन्दौष्टपुटैः शुभैः । सकुण्डलशिरस्त्राणै-
 र्वसुधा समकीर्यता ॥ ७ ॥ पुण्डरीकवनानीव निध्वस्तानि समन्ततः ।

अर्जुनने कहा कि—हे हरीकेश ! जहाँ दुर्मर्षेण खड़ा हो उसही
 ओर घोटोंको लेचलिये कि—मैं उसकी दस्तिसेनाका संहारकर शत्रु-
 सेनामें पहुँचजाऊँ ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र !
 इस प्रकार सव्यसाचीने कहा, तब महाबाहु भगवान् केशव जहाँ
 दुर्मर्षेण खड़ा था तहाँ घोटोंको हाँककर रथको लोगे ॥ २ ॥ दोनों
 सेनाओंमें एक और बहुतों के साथ दारुण और हनुता युद्ध होनेलगा
 तुरन्त ही हाथी, रथ तथा मनुष्योंका नाश होनेलगा ॥ ३ ॥ जैसे जल
 बरसाने वाला मेघ पर्वतों पर जल बरसाना है, तैसे ही उस समय
 अर्जुन भी शत्रुओं पर बाण बरसाने लगा ॥ ४ ॥ तुम्हारे सब रथीभी
 फुरतीसे चपल हाथवाले पुनःकी समान श्रीकृष्ण और अर्जुनके
 ऊपर बाणोंकी दृष्टि करने पर फैलपड़े ॥ ५ ॥ जब अर्जुनको शत्रुओं
 ने बाणवर्षा करनेसे रोका; तब महाबाहु अर्जुनने कोपमें भर
 कर बाणोंसे रथियोंके शिरोंको धड़से गिराना आरम्भ कर दिया
 बाहर निकली हुई आँखोंवाले, दानोंसे झोंटोंको पीसतेहुए, कुण्डल
 और पगड़ीवाले राजाओंके एलमेंसे पृथ्वी जागई ॥ ७ ॥ पृथ्वी

विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरं ॥ ८ ॥ तपनीयतनु-
त्राणा संसिक्ता रुधिराणि च । संसिक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः स-
विद्युतः ॥ ९ ॥ शिरसां पततां राजन् शब्दोभूद्रसुधातले । कालेन
परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥ १० ॥ ततः कवन्धं किञ्चित्तु
धनुरालम्ब्य तिष्ठति । किञ्चित् खट्वं विनिष्कृत्य भुजेनोद्यम्य
तिष्ठति ॥ ११ ॥ पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः ।
अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयगृद्धिनः ॥ १२ ॥ हयानामुत्तमाङ्गैश्च
हस्तिहस्तैश्च मेदिनी । बाहुभिरच शिरोभिश्च वीराणां सम-
कीर्यत ॥ १३ ॥ अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो । तत्र
सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाभवत् ॥ १४ ॥ अन्योन्यमपि चाजघ्नु-

पर पड़े हुए योधाओं के मस्तक, छिन्नभिन्न हुए श्वेत कमलों के वनों
की समान प्रतीत होते थे ॥ ८ ॥ सब योधा सुवर्ण के कवच पहिर
रहे थे और लोह से सराबोर हो रहे थे, इस कारण विजलीवाले
मेघों की समान दीखते थे ॥ ९ ॥ हे पृथ्वीपते ! उस समय पृथ्वी
पर गिरते हुए शिरों का ऐसा शब्द हो रहा था जैसे काल पाकर
पके हुए ताल के दलों के फलों के गिरने का टपाटप शब्द होता है १०
इनमें किसी योधा का कवन्ध (धड) धनुष के सहारे से खड़ा था,
किसी योधा का कवन्ध म्यान से तलवार खेंव भुजा ऊँची किये
खड़ा था ॥ ११ ॥ अर्जुन को देखकर विजय चाहनेवाले वीर
पुरुष ऐसे आवेश में भर गए, कि-संग्राम में मस्तकों के ढेर पड़े हैं, यह
भी न जान सके ॥ १२ ॥ घोड़ों के शिर, हाथियों की सूँढ़ें और
वीरों के शिर तथा भुजाओं से पृथिवी भर गई ॥ १३ ॥ हे प्रभो !
तदनन्तर तुम्हारी सेना के पुरुष गुग्गु होकर कहने लगे, कि-अर्जुन
यह है ! अर्जुन कहाँ है ॥ अरे यह पार्थ खड़ा है !!! इस प्रकार
उनकी दृष्टि में सब जगत् अर्जुनमय हो रहा था ॥ १४ ॥ कितने
ही योधा काल से मोहित हो सकल जगत् को पार्थमय जान आपसमें

रात्मानमपि चापरे । पार्थभूतमप्यनन्त जगत् कालेन मोहिनाः ॥१५॥
 निपुनन्तः सरथिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः । शयाना वदन्तो वीराः
 कौत्स्यन्तः स्ववान्धवान् ॥१६॥ समिन्दिपाला समामा सशक्तपु-
 ष्पिप्ररश्मधाः । सनिर्व्यूहा सनिस्त्रिंशः सशरासनकोपराः ॥१७॥
 सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे । महाभुजगसङ्काशा बहवः
 परियोपमाः १८ उद्धृण्वन्ति विचेष्टन्ति संचेष्टन्ति च सर्वशः । वेगं कुर्वन्ति
 संरन्धा निरुक्ताः परमेषुभिः ॥ १९ ॥ यो यः स्म समरे पार्थ
 मनिस्संचरते नरः । तस्य तस्यान्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥२०॥
 नृत्यतो रथपार्श्वेषु धनुर्व्याघ्रच्छतस्तथा । न कश्चित्तत्र पार्थस्य
 दृष्टशोऽन्तःप्रपन्नपि ॥ २१ ॥ यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः
 शरान् । लाघवात् पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥ २२ ॥

ही मारकाट करनेलगे, कितनेही अपनेको आपही मारनेलगे ॥१५॥
 कितनेही लोहलुहान हो मूर्छित हंगए, कितनेही महारके कारण
 चीख मारकर पृथ्वीमें लोटगए, तथो अपनेपिना भाइयोंको पुका-
 रनेलगे ॥ १६ ॥ मिदिपाल, भाले, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, निर्व्यूह
 (एक प्रकारका शस्त्र) तलवार, धनुष, बाण, कवच, गदने,
 गदा और बाजूबन्द आदिको धारण करनेवालो महासर्प और
 परिघकी समान मोटी भुजाएं बाणोंसे करनेके कारण वेगमें भर
 कर ऊपरको उल्लतली थीं, एक दूसरीसे लिपट जाती थीं और
 उल्लरकर टेढ़ी बेढ़ी गिरती थीं ॥ १६-१९ ॥ अर्जुनके सामने
 जो योधा आते थे, उनके शरीरोंमें कालकी समान बाण प्रवेश
 करजाता था ॥ २० ॥ रथोंके बीचमें घूमतेहुए तथा धनुषको खेंच
 बाणोंका प्रहार करतेहुए अर्जुनकी जरासी भी चूक नहीं दीख
 पडती थी ॥ २१ ॥ पाण्डुपुत्र अर्जुन सावधान होकर धनुष पर
 फुरतीसे बाणको चढ़ाना था और फुरतीसे ही उसको छोडरहा
 था, यह देखकर शत्रुओंको परम आश्चर्य हुआ ॥२२॥ अर्जुन

हस्तिनं हस्तिन्यन्नारमश्वमारित्रकमेव च । अभिनत् फाल्गुनो वाणै
रथिनञ्च ससारथिम् ॥ १३ ॥ आवर्त्तमानमावृत्तं युध्यमानञ्च
पाण्डवः । प्रमुखे षष्ठिमानञ्च न किञ्चिन्न निहन्ति सः ॥ १४ ॥
यथोदयन् वै गगने सूर्यो हन्ति महत्तमः । तथार्जुनो गजानीक-
मवधीत् कङ्कुरत्रिभिः ॥ १५ ॥ हस्तिभिः पतितैर्मिन्नैस्तव सैन्यम-
दृश्यत । अन्तकाले यथा भूमिर्व्यवकीर्णा महीधरैः ॥ १६ ॥ यथा
मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा । तथा धनञ्जयः क्रुद्धो
दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥ १७ ॥ तत्तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि
परन्तप । प्रभग्नं द्रुपदविग्नमतीव शरपीडितम् ॥ १८ ॥ मारुते-
नेव महता मेधानीकं व्यदीर्यत । प्रकान्त्यमानं तत् सैन्यं नाशकत्
प्रतिवीक्षितुम् ॥ १९ ॥ प्रतोदैश्चापि कोटीभिर्दृङ्कारैः साधवाहितैः

वाणोंके प्रहारसे हाथी और महाव्रत, घोड़े और घुड़सवार तथा
रथी और सारथियोंको एक साथ मार रहा था ॥ १३ ॥ लड़नेके
लिये सन्मुख आनेवाले, आयेहुए और सन्मुख खड़े होकर लड़ते
हुए किसी को भी वह नहीं छोड़ता था, किन्तु सबको स्वाहाही
कर देता था ॥ १४ ॥ जैसे आकाशमें उदय होता हुआ सूर्य प्रभासे
घोर अन्धकारका नाश कर डालता है, तैसेही अर्जुनने कंकपत्रवाले
वाणोंसे गजसेनाका संहार कर डाला ॥ १५ ॥ घायल होकर गिरेहुए
हाथियोंसे तुम्हारी सेना, प्रलयकालमें पर्वतोंसे छर्दहुई पृथिवीकी
समान, प्रतीत होती थी ॥ १६ ॥ जैसे मध्याह्नकालमें प्राणी
सूर्यको बड़ी कठिनतासे देख सकते हैं, तैसेही शत्रुभी क्रोधित
अर्जुनके सामने बड़ी कठिनतासे मुख उठा सकते थे ॥ १७ ॥
इसप्रकार अर्जुनके वाणोंसे बड़ीही पीड़ा पाकर तुम्हारे पुत्रकी
सेना डरकर भागने लगी ॥ १८ ॥ जोरसे चलतीहुई पवनसे छिन्न
भिन्न हुए बादलोंकी समान अर्जुनके द्वारा खदेड़ीहुई और तित्तर
विचारहुई वह सेना अर्जुनकी ओर मुख फिफाकर भी न देख सकी ॥ १९ ॥

कशापाप्यर्षभिघातैश्च वाग्भिर्ग्राभिरेव च ॥ ३० ॥ चोदयन्तो
 रथांस्तूष्णीं पलायन्ते स्म तावकाः । सादिनो रथिनश्चैव पञ्चव-
 र्त्तार्जुनादिताः ॥ ३१ ॥ पाप्यर्ष्यगृष्टाकुर्शर्नामं चोदयन्मन्था
 परे । सम्मोहिताः शरैश्चान्ये तमेवाभिमुखा ययुः ॥ ३२ ॥ तव
 योधा इतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुन-

युद्धे एकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन् प्रभग्ने सैन्याग्रे बध्यमाने किरीटिना ।
 के तु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्द्वनञ्जयम् ॥ १ ॥ आहोस्विच्छ-
 कटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः । द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्तः प्राकारम-

अर्जुनके प्रहारसे तुम्हारे घुड़सवार, रथी और पैदल दुःखी हो
 कोड़ोंकी मार धनुषकी अनी, हुंकार, और साम आदि उपाय
 करके तथा कर्कश वाणी कहकर अपने घोड़ोंको फुरतीसे हाँकते
 हुए रणभूमिमेंसे पलायन करगए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तुम्हारे
 दूसरे योधा बाणोंके प्रहारसे पागलसे होगए उनमेंसे उत्साह
 जातारहा और घबड़ागए, वे चानुक अंगूठा और अंकुशका
 प्रहार कर राधियोंको मारने लगे तथा भागनेके बदले (बुद्धि-
 मानीसे) अर्जुनकी ही ओरको बढ़नेलगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥
 नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥ ॥ ८६ ॥

धृतराष्ट्र बोले, कि-हे सज्जय । किरीटधारी अर्जुनने जब
 सेनाके मुहानेका संहार करना आरम्भ करदिया और सेनामें
 गड़बड़ पड़ाई तब रणमें कौन २ वीर पुरुष अर्जुनके सामने गए
 थे ॥ १ ॥ और किन २ पुरुषोंने अपने निश्चयको छोड़कर चारों
 ओरसे निर्भय किलेकी समान शकटव्यूहमें प्रवेश कर द्रोणनाथ
 का आश्रय लिया था ? सज्जयने कहा, कि-हे निर्दोष राजन !
 जब इन्द्रपुत्र अर्जुनने कौरवसेनाको द्विज गिन्नकर, वीरपुरुषों

कुतोभयम् ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । तथार्जुनेन सम्भग्ने तस्मि-
स्तव वलेनघ । हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥ ३ ॥ पाक-
शासनिनाऽभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः । न तत्र कश्चित् संग्रामे
शशाकार्जुनमीक्षितुम् ॥ ४ ॥ ततस्तव सुतो राजन् दृष्ट्वा सैन्य-
न्तथागतम् । दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायार्जुनमभ्यगात् ॥ ५ ॥
स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः । जाम्बूनदशिरस्त्राणः
शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६ ॥ नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमि-
माम् । दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ॥ ७ ॥ द्वादेन
गजघण्टानां शंखानां निनदेन च । ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण
च दन्तिनाम् ॥ ८ ॥ भूर्दिशश्चान्तरिक्षश्च शब्देनासीत् समावृ-
तम् । स मुहूर्त्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९ ॥ तान्दृष्ट्वापतत-
स्तूर्णपंकुशैरभिचोदितान् । व्यालम्बहस्तान् संरब्धान् सपत्ना-

का नाश करवाला, तब तुम्हारी सेनाके सब योधाओंका उत्साह
टूटगया और सब भागनेकी तयारी करनेलगे, अर्जुनके बड़ेभारी
बाणोंके प्रहारसे कोई भी योधा उसके सामनेको नहीं देखसकता
था ॥ ३ ॥ ४ ॥ तब हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र दुःशासन सेनाको
भागतीहुई देखकर बड़ेही क्रोधमें भरगया और युद्ध करनेके लिये
अर्जुनके सामने बढ़ाया ॥ ५ ॥ शूरवीर, प्रबलपराक्रमी दुःशा-
सनने सुवर्णका विचित्र कवच और टोप पहिरकर हे महाराज !
बड़ीभारी हस्तिसेनाके साथ मानों इस पृथिवीको निगलही जायगा
इसप्रकार अर्जुनके चारों ओरसे घेरलिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ हाथियोंके
घण्टोंके बजनेसे, शंखोंके नादसे, प्रत्यञ्चाको खेंचने समय होने
वाली टंकारोंसे और हाथियोंकी चिंघाड़से पृथिवी आकाश और
दिशाएं गूँजगयीं, उस समय दुःशासन भी क्षण भरको महाभयं-
कर और क्रूर होगया ॥ ८ ॥ ९ ॥ अंकुशका प्रहार कर अर्जुन
के ऊपरको दौड़ायेहुए बड़ी शूँडवाले और महापर्वतकी समान

निवर्तयताम् ॥ १० ॥ सिंहनादेन मन्त्रा न सिद्धा चन्द्रायः ।
 गजानीकमपित्राणामभितो व्यथमच्छरैः ॥ ११ ॥ मशोर्मिणमि-
 चोद्भूतं श्वसनेन महार्णवम् । किरीटी तद् गजानीकं प्राविशन्ना-
 करो यथा ॥ १२ ॥ काष्ठातीत इवादित्यः प्रतपन् स युगक्षये ।
 ददशे दिक्षु सर्वास्तु पार्थः परपुरुज्जयः ॥ १३ ॥ सुगन्धर्वेन
 चाश्वानां नेमियोपेण तेन च । तेन चोत्क्रुष्टशब्देन ज्यानिनादेन
 तेन च ॥ १४ ॥ नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च । देव-
 दत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च ॥ १५ ॥ मन्दवेगा नरा नागा
 बभूवुस्ते विचेरन् ॥ शरीराशीविषस्पर्शनिर्मिन्नाः सन्ध्यासाचिना ॥ १६ ॥
 ते गजा विशिखस्त्रीचर्चुर्धृति गाण्डीवचोदितैः । अनेकशतसाहस्रैः
 सर्वाङ्गेषु समर्पिताः ॥ १७ ॥ आरावं परमं कृत्वा बध्यमानाः
 दीखतेहुए कौंधी हाथी अर्जुनकी औरकी बढनेलगे, राधियोंकी
 सामने आते देखकर अर्जुन बड़ी जोरसे गर्जा, फिर चारों ओर
 बाणवर्षा करताहुआ शत्रुओंकी हस्तिसेनाका संहार करने पर
 फैलपड़ा ॥ १० ॥ ११ ॥ मगर मन्त्र जैसे बढीर तरंगोंवाले
 और पवनसे उद्दालखातेहुए सागरमें निर्भय घुसजाते हैं तैसेही
 किरीटी अर्जुन भी हस्तिसेनामें घुसगया ॥ १२ ॥ शत्रुपुरविध्वं-
 सक अर्जुन सब दिशाओंमें, मलयकालमें दिशाओंकी मर्यादा
 को छोड़ सब दिशाओंमें ताप देतेहुए सूर्यकी समान दीखना
 था ॥ १३ ॥ नानाप्रकारके बाजोंके शब्द घोड़ेके सुर्गोंके शब्द,
 रथके पहियोंकी धारकी ध्वनि, कालाहल, प्रत्यङ्घातो खंचनेकी
 टंकार, पाञ्चजन्य और देवदत्त शंखोंकी ध्वनि तथा गाण्डीव
 धनुषके टंकार शब्दसे तथा सर्पोंकी समान स्पर्शवाले गाण्डीवमें
 से अर्जुनके छोड़ेहुए बाणोंके महारसे मनुष्योंका वेग मन्द होगया
 और वे वेदोश होगए ॥ १४-१६ ॥ और वे हाथी सन्ध्यासाधी
 अर्जुनके छोड़ेहुए सैकड़ों सहस्रों तीक्ष्ण बाणोंसे निधनानेके

किरीटिना । निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपत्ता इवाद्रयः ॥ १८ ॥
 अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च । शरैः समर्पिता नागा क्रौंच-
 वद्वचनदन्मुहुः ॥ १९ ॥ गजस्कन्धगतानाञ्च पुरुषाणां किरी-
 टिना । छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
 सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले । पद्मानामिव संघातैः
 पार्थश्चक्रे निवेदनम् ॥ २१ ॥ यन्त्रबद्धा विक्रवा ब्रणार्त्ता रुधि-
 रोक्षिताः । भ्रमस्तु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥ २२ ॥
 केचिदेकेन बाणेन सुयुक्तेन सुपत्रिणा । द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना
 निपेतुर्धरणीतले ॥ २३ ॥ अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं
 मुखैः । सारोहा न्यपतन् भूमौ द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥ मौर्वी-
 ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च । रथिनां कुट्टयापास भल्लैः

कारण जोरसे चिंघाडकर, कटहुए पंखोंवाले पर्वतोंकी समान पृथ्वी
 में टपाटप गिरनेलगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ उस समय बहुतसे हाथी
 दांतोंकी जड़में, कुम्भस्थल पर और कमरमें बाणोंके शुभ जानेसे
 क्रौंच पक्षीकी समान वार२ बड़ी जोरसे चीखें मारनेलगे ॥ १९ ॥
 हाथियोंके कंधोंपर बैठेहुए पुरुषोंके मस्तकोंको भी अर्जुनने नभी
 हुई गांठवाले भल्लनामक बाण मारकर उड़ादिया ॥ २० ॥ कुण्डलों
 सहित वे मस्तक जब भूमिपर गिरते थे तब अर्जुन कमलोंके
 समूहकी अर्जुलि अर्पण करताहुआसा प्रतीत होता था ॥ २१ ॥
 इस समय कितने ही कवचशून्य, घावोंसे पीडित और लोह-
 लुहान योधा माने गंत्रोंमें कसेहुए हैं इसप्रकार इधर उधर दौड़ते
 हुए हाथियोंपर चिपटेहुए लटकरहे थे ॥ २२ ॥ तथा पानीदार
 एक ही बाणसे दो२ तीन२ हाथी भूमिपर गिररहे थे ॥ २३ ॥
 बाणोंसे अतीव विष जानेके कारण मुखमेंसे रुधिर ओकतेहुए
 हाथी सवारोंके सहित वृक्षोंवाले पर्वतोंकी समान भूमिमें गिररहे
 थे ॥ २४ ॥ अर्जुनने नमेहुए पर्ववाले बाणोंसे रथियोंकी प्रत्य-

सन्नायवमिः ॥ २५ ॥ न सन्दधन् न चकपेन् न विमुञ्चन् चोद-
 हन् । मण्डलेनैव धनुषा वृत्तन् पार्थः स्म दृश्यते ॥ २६ ॥ अति-
 विहास्य नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः । गृह्णन्निग्रथन् नन्वे वारणा
 वमुधातले ॥ २७ ॥ उत्थितान्प्रगणोयानि कचन्थानि समन्ततः ।
 अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ २८ ॥ सचाशः सांगु-
 लिजाणः सखङ्गाः सांगदा रणं । अदृश्यन्त भुजादिङ्गना दृषा-
 भाराभूषिताः ॥ २९ ॥ मृगस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकचन्धुरैः ।
 चक्रेष्विमथिनैरक्षैर्मग्नैश्च बहुधा युतैः ॥ ३० ॥ चर्मचापधरैश्चैव
 व्ययकीर्णैस्ततश्चतः । स्रग्धराभरणैर्वन्धैः पणितैश्च महाध्वजैः ३१
 निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निगणितैः । अदृश्यन् मही तत्र
 दाहणमनिदर्शना ॥ ३२ ॥ एवं दुःशासनबलवध्यमानं किरीटिना ।
 ध्वा, ध्वजा, धनुष, रथोंकी धुरी, तथा रथोंके दण्डोंका चुरार
 करडाला ॥ २५ ॥ इसप्रकार योथाओंका संहार करताहुआ
 अर्जुन कब बाण चढ़ाता था, कब खेंचना था कब छोड़ता था और
 कब भाथेमैसे बाणोंको निकालता था, यह मालूम ही नहीं होता
 था, वह केवल मण्डलाकारमें धनुषको घुमाता और नाचताहुआसा
 ही दीखरहा था ॥ २६ ॥ उसके बाणोंके महारामे बहुतही गायल
 हुए दाधी रुधिरको ओकतेहुए पृथिवीपर निररहे थे ॥ २७ ॥
 उस घोर युद्धमें चारों ओर असंख्यो धड़ खड़ेहुए दीखने थे २८
 बाण, चपड़ेके मोजे, तलवार, बाहुबन्द और गुनारोंके गड़नोंसे,
 भापत बहुतसी भुजाएँ कटीहुई रणमें पड़ी दीखती थीं ॥ २९ ॥
 इस रणमें सामानसहित रथोंकी चैठकें, ईगा, दण्डक, ऊपरके दोच
 टूटेहुए पहिये, धुरी, जुए, डाल, तलवारचाले गोधा, पुष्पमाला गहने
 वस्त्र, बड़ीर ध्वजाएँ, परेहुए दाधी, घोड़े तथा परेहुए क्षत्रियोंसे
 रणभूमि बड़ी भयंकर मालूम होती थी ॥ ३०-३२ ॥ अर्जुनके
 हाथसे नष्ट होताहुआ सेनादल खिन्न होकर अपने सेनापतिके साथ

सम्प्राद्वन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥ ३३ ॥ ततो दुःशा-
सनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्धितः । द्रोणं त्रातारमाकांक्षन् शकट-
व्यूहमभ्यगात् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्य-
पराभवे नवतितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

सञ्जय उवाच । दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः ।
सिन्धुराजं परीप्सन् वै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १ ॥ स तु द्रोणं
समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् । कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्ण-
स्यानुमते ब्रवीत् ॥ २ ॥ शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन् स्वस्ति चैव
वदस्व मे । भवत्प्रासादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिक्षं चमूम् ॥ ३ ॥
भवान् पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोपि च । तथा कृष्णसमश्चैव
सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥ अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीय-
स्त्वयानघ । तथाहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ५ तव प्रसादा-

भाग निकला ॥ ३३ ॥ दुःशासन और उसकी सेना बाणोंकी
मारसे त्रास पाकर, द्रोणसे रक्षा चाहती हुई शीघ्रतासे शकटव्यूह
में घुस गई ॥ ३४ ॥ नवमैत्राँ अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! महारथ अर्जुन दुःशासनकी
सेनाका नाशकर जयद्रथको मारनेके लिये द्रोणकी सेनाके ऊपर
दौड़पड़ा ? ॥ १ ॥ और व्यूहके मुहानेपर खड़ेहुये द्रोणके पास
जाकर, कृष्णकी संमतिके अनुसार द्रोणके हाथ जोड़कर बोला
हे ब्रह्मन् ! आप मेरा कल्याण हो ऐसी इच्छा करिये और मुझसे
कहिये कि-“तेरा कल्याण हो” मैं आपकी कृपासे इस दुर्भेद्य
सेनामें प्रवेश करना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ आप मेरे पिताकी समान
हैं, धर्मराजकी समान हैं तथा श्रीकृष्णकी समान हैं, यह मैं आपसे
सत्य कहता हूँ ॥ ४ ॥ हे निर्दोष तात ! जैसे अश्वत्थामाकी रक्षा
करना आपका कर्त्तव्य है, तैसे ही हे द्विजसत्तम ! आपको मेरा भी

दिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे । निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठप्रतिज्ञां रक्षा मे
 प्रभो ॥ ६ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्तस्तदाचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
 मापजित्वा न वीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ७ एतावदुक्त्वा तं द्रोणः
 शरवातेरवाकिरत् । सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन् वै ससारथिम् ८
 ततोर्जुनः शरवातान् द्रोणास्याचार्यं सायकैः । द्रोणमभ्यद्रवद्वा-
 णैर्वीररूपैर्महत्तरैः ॥ ९ ॥ विव्याध च रणे द्रोणमनुमान्य विशा-
 म्पते । क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥ १० ॥ तस्यैष-
 निषुभिरिच्छत्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ । विपाग्निज्वलितप्रसवैरि-
 षुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥ इयेष पाण्डवस्तस्य वाणैश्छेतुं
 शरासनम् । तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फान्गुनरप महात्मनः ॥ १२ ॥
 द्रोणः शरैरसंभ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाशु वीर्यवान् । विव्याध च

सदा रक्षा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ हे मनुजसत्तम । आपकी कृपासे मैं
 सिन्धुगजको मारना चाहता हूँ क्योंकि मैंने उसको मारनेकी
 प्रतिज्ञा की है, इसलिये हे प्रभो ! आप मेरी प्रतिज्ञाकी रक्षा करें
 सञ्जयने कहा, कि-अर्जुनके ऐसा कहनेपर द्रोणाचार्यने मुस्करा
 कर कहा, कि-हे अर्जुन ! तू मुझ विना जीते जयद्रथको नहीं
 जीतसकता ॥ ७ ॥ इतना कहकर द्रोणाचार्यने रथ, घोड़े, ध्वजा
 और सारथीसहित अर्जुनको वाणोंके जालसे ढकदिया ॥ ८ ॥
 तदनन्तर अर्जुनने सामनेसे वाण मारकर द्रोणाचार्यके वाणोंको
 पीछेको हटादिया द्रोणके ऊपर बड़े भयंकर अस्त्रों का प्रहार करने
 लगा ॥ ९ ॥ हे राजन् ! क्षात्रधर्मका पालन करते हुए अर्जुनने द्रोण
 की प्रतिष्ठाके लिये उनके चरणोंमें नौ वाण मारकर चार-चौरायल
 किया ॥ १० ॥ तदनन्तर द्रोणाचार्यने सामनेसे वाण मारकर अर्जुनके
 वाणोंको काटडाला और विपाग्निकी समान धक्कतें हुए वाणोंसे
 श्रीकृष्ण और अर्जुनको बंधडाला ॥ ११ ॥ तदनन्तर अर्जुनने
 द्रोणाचार्यके धनुषको वाणोंसे काटना चाहा, कि- ॥ १२ ॥ द्रोणने

हयानस्य ध्वजं सारथिमेव च ॥ १३ ॥ अर्जुनञ्च शरैर्वीरः स्म-
यमानोभ्यवाकिरत् । एतस्मिन्नरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद्धनुः १४
विशेषधिष्यन्ताचार्यं सर्वास्त्रविदुर्पा वरः । मुनीच पद्मशतान्
वाणान् गृहीत्वैकमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥ पुनः सप्तशतानन्यान् सह-
स्रञ्चानिवर्त्तिनः । चित्रपायुनशरचान्यांस्तेऽनन् द्रोणस्य तां
चमूम् ॥ १६ ॥ तैः सम्यगस्तैर्वर्त्तिना कृतिना चित्रपोधिना । मनुष्यवाजि-
मातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः ॥ १७ ॥ विमूनाश्च ध्वजाः पेतुः सञ्छिन्ना-
युधजीविताः । रथिनो रथपरुषेभ्यः सहसा शापीडिताः ॥ १८ ॥
चूर्णिनान्निष्ठश्मशानां वज्रानिलहृताशनैः । तुन्यरूपा गजाः पेतुर्गि-
र्यग्राम्बुदवेशपनाम् ॥ १९ ॥ पेतुश्च सहस्राणि महतान्यर्जुनेषुभिः ।

सावधान हो बाणोंसे इसके धनुषकी डोरीको काटडाला और
इसके सारथि ध्वजा तथा घोड़ोंको भी घायल करडाला ॥ १३ ॥
फिर वीर द्रोणाचार्यने हँसकर अर्जुनको भी बाणोंसे ढकदिया,
इतनेमें ही सकल अस्त्रोंके शाताओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने अपने धनुष
को ठीक करलिया और अपने गुरुको अधिकता देता हो इसमकार
एक बाण उठानेकी सपान (समयमें) लगातार छःसौ बाण
द्रोणके मारे ॥ १४ ॥ १५ ॥ फिर पीछेको न फिरनेवाले एक
सहस्र, फिर सात सौ तथा फिर सहस्र और लाखों बाण मार
कर, चित्रयुद्ध करनेवाले बली अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनाका
संहार करना आरम्भ करदिया, इसपकार विधेहुए हाथी, घोड़े
और मनुष्य प्राण छोड़ छोड़कर भूमिमें गिरनेलगे ॥ १६-१७ ॥
सहसा बाणोंसे पीड़ितहुए रथी, सारथी, घोड़े और ध्वजाओंसे
शून्य तथा आयुध और प्राणरहित होकर रथों परसे गिरनेलगे ॥ १८
वज्रोंसे तोड़ेहुए, पर्वतके शिखर जैसे चूर्ण हो भूमिमें गिरते हैं,
जैसे मेघ पवनसे बिखर जाते हैं और जैसे घर अग्निसे भस्म होकर
पृथ्वीपर ढह पड़ते हैं तैसेही हाथी भी अर्जुनके बाणोंसे घायल

हंसा हिमवतः पृष्ठे चारिविपदना इव ॥ २० ॥ रथाश्वद्वि-
पत्तोषाः सलिलाद्या इवाद्भुताः युगान्तादिन्यरम्भाभिः पाण्डवा-
स्त्रशरैर्हताः ॥ २१ ॥ तं पाण्डवादिन्यशरांशुनालं कुम्भशीरान्
युधि निष्ठयन्मृ। स द्रोणमेघः शरवृष्टिवर्गः पाण्डादयस्मेव इवा-
कर्षमीन् ॥ २२ ॥ अथात्पथं विसृष्टेन द्विपतामसुभोजिना ।
आनन्दे वृत्तसि द्रोणो नाराचेन धनञ्जयम् ॥ २३ ॥ स विदलित-
सर्वाङ्गः क्षिप्तिकम्पे यथाचलः । धैर्यपालस्य वीभत्सुर्द्रोणं त्रिग्याध
पत्रिभिः ॥ २४ ॥ द्रोणस्तु पञ्चभिर्चार्णवैर्वासुदेवभवाटपत् । अर्जु-
नञ्च त्रिसप्तत्या ध्वजञ्चास्य त्रिभिः शरैः ॥ २५ ॥ विशोषयिष्यन्

हो पृथिवीपर अड़ड़ करके गिरने लगे ॥ १६ ॥ जलके तिरस्कारसे
हंस जैसे हिमाचल परसे पृथिवीपर उतर पड़ते हैं, तैसेही अर्जुन
के बाणोंके महारमे सैकड़ों घोड़े पृथिवी पर गिरनेलगे ॥ २० ॥
इस समय मलयकालके सूर्यकी किरणोंकी समान तोरण अर्जुनके
बाणोंका महार होनेसे जलके आश्चर्यकारक ओषकी समान
हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी टोलियें मरगई ॥ २१ ॥
अर्जुनरूपी सूर्य, बाणरूपी किरणोंसेरणमें कौरवोंको तपारहा
था, इतनेमें ही मेघकी समान द्रोणाचार्यने बाणोंकी वर्षा करके
मेघ जैसे सूर्यकी किरणोंको ढक देता है इसीप्रकार अर्जुनके
बाणोंको ढकदिया ॥ २२ ॥ तदनन्तर द्रोणने शत्रुओंके पाणोंका
भोजन करनेवाला बाण जोरसे खेंचकर अर्जुनके वृत्तस्थलमें
मारा ॥ २३ ॥ उस बाणके महारसे अर्जुनके सब अङ्ग बिदल होगए
और वह भूकम्पके समय हिलने वाले पर्वतकी समान काँप उठा
परन्तु फिर धीरज धरकर उसने द्रोणाचार्यको बाणोंसे बीच
डाला ॥ २४ ॥ द्रोणने वासुदेवको पाँच शर और अर्जुनको निहत्तर
बाणोंले घायल किया और तीन बाण मारकर इसकी ध्वजाको
भी तोड़डाला ॥ २५ ॥ और अपने शिष्यको अधिकता दंतहुए

शिष्यश्च द्रोणो राजन् पराक्रमी । अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छर-
वृष्टिभिः ॥ २६ ॥ प्रसक्तान् पततोऽद्राक्ष्य भारद्वाजस्य सायकान् ।
मण्डलीकृतमेवास्य धनुश्चादृश्यताद्भुतम् ॥ २७ ॥ तेऽभ्ययुः सपरे
राजन् वामुदेवधनञ्जयौ । द्रोणमुष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः २८
तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा । वामुदेवो महाबुद्धिः
कार्यवत्तामचिन्तयत् ॥ २९ ॥ ततोब्रवीद्वामुदेवो धनञ्जयमिदं वचः ।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्पयो भवेत् ॥ ३० ॥ द्रोणमुत्सृज्य
गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तारम् । पार्थञ्चाप्यब्रवीत् कृष्णं यथेष्टमिति
केशवः ॥ ३१ ॥ ततः मदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम् ।
परिवृत्ताश्च बीभत्सुरगच्छद्विमृजन् शरान् ॥ ३२ ॥ ततोब्रवीत्
स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते । ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न

द्रोणने पलभरमें अर्जुनको बाणोंसे ढककर अदृश्य करदिया २६
हे राजन् ! उस समय हमें द्रोणके पाण्डवसेनाकी ओर जातेहुए
बाण और उनका मण्डलीकार धनुष ही दीखता था ॥ २७ ॥
हे राजन् ! द्रोणके छोडेहुए कंकपत्तीके परोवाले वे बाण अर्जुन
और श्रीकृष्णके ऊपर पड़रहे थे ॥ २८ ॥ द्रोण और अर्जुनके
ऐसे युद्धको और अपने कार्यकी अधिकताको देखकर महाबुद्धि-
मान् श्रीकृष्णने जयद्रथके मारनेका विचार किया और अर्जुनसे
कहा कि-हे पार्थ ! हे पार्थ ! हे महाबाहो ! हमारा समय बीत
जाय-ऐसा नहीं होना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥ द्रोणको आगे
छोडकर आगे बढ़ाहमें अभी बड़ा काम करना है, अर्जुनने कहा
कि-हे श्रीकृष्ण ! जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करिये ॥ ३१ ॥
तदनन्तर अर्जुनने महाभुज द्रोणकी परिक्रमा की और बाणोंको
छोडता २ दूसरी ओरको जाने लगा ॥ ३२ ॥ तब द्रोणाचार्य
बोलउठे, कि-भरे अर्जुन ! ओ अर्जुन ! तू तो शत्रुओंको बिना
हराये रणमेंसे लौटता नहीं था, फिर इस समय ऐसा क्यों भागा

निवर्त्तसे ॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच । गुरुर्भवान्न मे शत्रुः शिष्यः
पुत्रसपोष्मि ते । न चास्ति स पुण्ड्रालोके यन्मवां युधि पराजयेत् ॥ ३४ ॥
सञ्जय उवाच । एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः । त्वरा-
युक्तो महाबाहुस्तत् सैन्यं समुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥ तं चक्ररत्नां
पाञ्चाल्यो युधामन्युत्तमोजसो । अन्वयातां महात्मानां विशन्तं
तावकं बलम् ॥ ३६ ॥ ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः ।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनञ्जयमवारयन् ॥ ३७ ॥ तेषां दश
सहस्राणि रथानामनुयायिनाम् । अभीपादाः शूरसेनाः शिवयोध
वशातयः ॥ ३८ ॥ मावेल्लका ललित्याश्च केकया मद्रकास्तथा ।
नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानाश्च ये गणाः ॥ ३९ ॥ कर्णेन
विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसम्पताः । भारद्वाजं पुरस्कृत्य दृष्टात्मानो-

जाता है ॥ ३३ ॥ अर्जुनने कहा, कि-आप मेरे शत्रु नहीं हैं
किन्तु गुरु हैं और मैं आपका शिष्य तथा धर्मपुत्र हूँ, इस संसार
में ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो युद्धमें आपको जीतसके ॥ ३४ ॥
सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! इसमकार कहते-र महाबाहु
अर्जुन जयद्रथको मारनेके लिये तुरन्त तुम्हारी सेनाकी ओरको
बढ़ा चलागया ॥ ३५ ॥ तुम्हारी सेनामें प्रवेश करते समय
अर्जुनके पीछे-र उसके चक्ररत्नक पञ्चालदेशी युधामन्यु और
उत्तमोजा भी चलेगये ॥ ३६ ॥ जय, कृतवर्मा, सात्वत, कर्वाज
तथा श्रुतायुधने अर्जुनको शकटन्यूहमें घुसनेसे रोका ॥ ३७ ॥
उनकी सहायतामें दश सहस्र अनुयायी रथी थे अभीपाद, शूर-
सेन, शिवि, वसन्ति, मावेल्लक, ललित्य, केकय, मद्रक, नारा-
यण, गोपाल, और काम्बोज राजे, कि-जिनको पहले कर्णेने
संग्राममें जीतलिया था और वीर मानेजाते थे, ये सब द्रोणाचार्य
को आगे करके प्रसन्न होतेहुए अर्जुनके ऊपर चढ़ाये और
पुत्रशोकसे सन्तप्त तथा कोपमें भरे कालकी समान दीखनेहुए,

अर्जुनं प्रति ॥ ४० ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्तं कुर्दं मृत्युमिवान्तकम् ।
 त्यजन्तं तुमुले प्राणान् सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४१ ॥ गार्हमान-
 मनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् । महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रम-
 वारयन् ॥ ४२ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । अन्यो-
 न्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥ ४३ ॥ जयद्रथवधं प्रेप्सु-
 मायान्तं पुरुषर्षभम् । न्यवारयन्त संहिताः क्रिया व्याधिमिवो-
 र्चितम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणा-

तिक्रमे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

सञ्जय उवाच । सन्निरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ।
 द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १ ॥ किरन्निपुणत्वात्
 तीक्ष्णान् स रथीनिव भास्करः । तापयामास तत्सैन्यं देहं व्या-

और तुमुलयुद्धमें प्राण त्यागनेको तथार हुए, शस्त्रधारी, अनेकों
 प्रकारके युद्ध करनेवाले, यूथप हाथीकी समान सेनामें प्रवेश करने
 वाले, धनुषधारी परमपराक्रमी अर्जुनको चारों ओरसे भीतर
 घुसनेसे रोकनेलगे ॥ ३८-४२ ॥ इस समय विजय चाहनेवाले
 आमने सामने डटेहुए योधाओंके साथ अर्जुनका घोर युद्ध होने
 लगा ॥ ४३ ॥ जैसे उठतेहुए रोगको क्रिया (औषध)से रोकते
 हैं, तैसेही जयद्रथको मारने की इच्छासे आगे बढ़तेहुए अर्जुनको
 वे सब इकट्ठे होकर रोकने लगे ॥ ४४ ॥ इत्यनवेवां अध्याय
 समाप्त ॥ ६१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! महाबली और परम परा-
 क्रमी अर्जुनको उन महारथियोंने रोककरखा, इतनेमें ही सहायता
 करनेको रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी शीघ्रतासे आपहुँचे ॥१॥
 इस समय व्याघ्रिये जैसे शरीरको दुःख देती है, और सूर्यकी
 किरणें जैसे जगत्को सन्ताप देती है तैसेही अर्जुन भी तेज

धिगणो यथा ॥ २ ॥ अश्वो विहो रथश्चिन्नः सारोहः पानितो
गजः । लवणं चापविद्वानि रथाश्चर्कविना कृताः ॥ ३ ॥
विद्वानानि च सैन्यानि शराक्षानि सपन्ततः । इथासीचमुलं युद्धं
न प्राज्ञायन किञ्चन ॥ ४ ॥ तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमभि-
सर्गैः । अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥ ५ ॥
सर्पं चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यमद्भरः । अभ्यद्रवद्रथश्रेष्ठं
शोणारुचं श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥ तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिर्-
जिह्वैः । अन्तेवासिनपार्चार्थं महेष्वासं समर्पयत् ॥ ७ ॥ तं
तूर्णपिब योभतसुः सर्वशस्त्रभृतां वरः । अभ्यधावदिपुनस्त्यन्निपु-
वैगविधानकान् ॥ ८ ॥ तस्याशुत्तिमान् भक्तान् द्विभन्तैः सन्न-
पर्वभिः । प्रत्यविध्यदपेयत्विमा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥ ९ ॥ तद-

बाणोंसे कौरवोंकी सेनाको सन्ताप देनेलगा ॥ २ ॥ घोड़े घायल
होगए, रथ टूटगये, सवारों सहित हाथी परकर गिरने लगे, हथ
छिन्न भिन्न करदिये गये, रथोंके पहिये तोड़दिये ॥ ३ ॥ सेनाके
सिपाही बाणोंके प्रहारसे घायल होकर चारों ओर भागने लगे,
इस प्रकार तुमुल युद्ध होनेलगे, इस समय युद्धके सिवाय और
कुछ भी प्रतीत नहीं होता था ॥ ४ ॥ हे राजन् ! अर्जुनने इस
युद्धमें अपनेको रोकनेवाले शत्रुओंकी सेनाको बारम्बार मृषे जाने
वाले बाण मारकर कँपाडाला ५ श्वेत घोड़ोंवाला सत्यवादी अर्जुन
जयद्रथको मारनेकी अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेकी इच्छासे लाल
घोड़ोंवाले रथमें बैठेहुए द्रोणानार्यकी ओरको गया ॥ ६ ॥ एतु
द्रोणानार्यने अपने महाधनुषधारी शिष्य अर्जुनके मर्मभेदी सीधे
जानेवाले पञ्चीस बाण मारे ॥ ७ ॥ और सकल शस्त्रधारियोंमें
श्रेष्ठ अर्जुनने उनके बाणोंको हटानेवाले बाण छोटतेर द्रोणा-
नार्यके ऊपर चढ़ाई की ॥ ८ ॥ महापना द्रोणने ब्रह्मास्त्र छोड़कर
और नभीहुई गाँठवाले भन्त नामक बाणोंसे अर्जुनके छोड़ेहुए

भुतमपश्याम द्रोणस्याचार्यकं युधि ! यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्य-
द्यदर्जुनः ॥ १० ॥ क्षरन्निव महामेघो वारिशाराः सहस्रशः ।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरदृष्टिभिः ॥ ११ ॥ अर्जुनः शरवर्षन्तं
ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष । प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्वाणान् निशात-
यन् ॥ १२ ॥ द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतबाह्वनमार्दयत् । वासु-
देवञ्च सप्तत्या बाहोरुरसि चाशुनैः ॥ १३ ॥ पार्थस्तु प्रहसन्
धीमानाचार्यं सशरौघिणम् । विसृजन्तं शितान् बाणानवारयत्
तं युधि ॥ १४ ॥ अथ तौ बध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ । आव-
र्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिश्रोत्थितम् ॥ १५ ॥ वर्जयन्निशितान्
बाणान् द्रोणवापविनिःसृतान् । किरीटमाली कौन्तेयो भोजनानीकं
व्यशातयत् ॥ १६ ॥ सोन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजञ्च मुदक्षि-

भल्ल नामक बाणों को शीघ्रतासे चूर्ण चूर्ण करदिया ॥ ६ ॥
इस युद्धमें हमने द्रोणाचार्यका अद्भुत आचार्यपना देखा, कि—
अर्जुन युवा होने पर भी इनको एक बाणसे भी न धींथसका १०
सहस्रों जलधाराओंको वरसातेहुए महामेघकी समान द्रोणरूपी
मेघने पार्थरूपी पर्वतपर बाणरूपी वर्षा करना आरम्भ करदी ११
हे राजन् ! तेजस्वी अर्जुनने उस बाणोंकी वर्षाको ब्रह्मास्त्रसे
रोकदिया और बाणोंसे बाणोंको नष्ट करनेलगा ॥ १२ ॥ द्रोणने
पच्चीस बाण मारकर श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनको पीड़ा दी और
सत्तर बाण श्रीकृष्णके वक्त्रस्थल और भुजाओंमें मारे ॥ १३ ॥
बाणोंके प्रवाहवाले और तेज बाणोंको फेंकतेहुए द्रोणाचार्यको
बुद्धिमान अर्जुनने मग्दमन्द हँसकर रोकना आरम्भ करदिया १४
प्रलयकालकी अशिकी समान उठेहुए दुर्धर्ष द्रोणसे पीड़ा पातेहुए
श्रीकृष्ण और अर्जुन, द्रोणको तथा उनके धनुषमेंसे निकलते
हुए तीक्ष्ण बाणोंको छोड़कर भोजराज कृतवर्माकी सेनापर चढ़
गए और किरीटमाली अर्जुन उसकी सेनाको नष्ट करनेलगा १६

एषम् । अभ्ययादूर्जयन् द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १७ ॥ ततो
भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम् । अविध्यत्तूर्णमव्यग्रो दशभिः
कङ्कपत्रिभिः ॥ १८ ॥ तमर्जुनः शतेनार्जो राजन् विव्याध पत्रिणा ।
पुनश्चान्यैस्त्रिभिर्वाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥ १९ ॥ भोजस्तु मह-
सन् पार्थ बासुदेवञ्च माधवम् । एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां
समर्पयत् ॥ २० ॥ तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ।
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्राशीविषसन्निभैः ॥ २१ ॥ अयान्महनु-
रादाय कृतवर्मा महारथः । पञ्चभिः सायकैस्तूर्णै विव्याधोरसि
भारत ॥ २२ ॥ पुनश्च निशितैर्वाणैः पार्थ विव्याध पञ्चभिः ।
तं पार्थो नवभिर्वाणैराजघ्नान स्तनान्तरे ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा विपत्तं
कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति । चिन्तयामास बाष्पेणो न नः काला-
त्ययो भवेत् ॥ २४ ॥ ततः कुण्णोद्यवीत् पार्थ कृतवर्मणि

अर्जुन मैनाकपर्वतकी समान वीचमें खड़ेहुए द्रोणाचार्यको छोट
कर कृतवर्मा और काम्बोजकुमार मुदत्तिण पर दृष्टपडा ॥ १७ ॥
तदनन्तर नरव्याघ्र कृतवर्माने सावधान रहकर दुर्धर्ष कुरुश्रेष्ठ
अर्जुनके दश बाण मारे ॥ १८ ॥ हे राजन् ! अर्जुनने सात्वत-
वंशी कृतवर्माके एकसाँ तीन बाण मारकर उसको मोहितसा करके
बीँधदिया ॥ १९ ॥ कृतवर्माने इसकर माधव श्रीकृष्ण और
अर्जुनके इक्कीस२ बाण मारे ॥ २० ॥ अर्जुनने उसके धनुषको
काटकर, कोभ्रमें भरे सर्पकी और अग्निशिखाकी समान तिहत्तर
बाणोंसे उसको बीँधडाला ॥ २१ ॥ हे भारत ! महारथी कृत-
वर्माने शीघ्रनासे दूसरा धनुष लेकर अर्जुनकी छातीको पाँच
बाणोंसे घायल करदिया ॥ २२ ॥ और फिर पाँच तेज बाणोंसे
अर्जुनको घायल किया, अर्जुनने उसकी छातीमें नौ बाण मारे २३
इसप्रकार अर्जुनको कृतवर्माके रथके पीछे पडा देखकर श्रीकृष्ण
विचारने लगे, कि-इसप्रकार समय नहीं बीतना चाहिये ॥ २४ ॥

मा दयाम् । कुरु सम्बन्धकं हित्वा प्रपथ्यैनं विशातय ॥ २५ ॥
 ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वाऋजुनः शरैः । अभ्यगाञ्जवनेरश्वैः
 काम्बोजानामनीकिनीम् ॥ २६ ॥ अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे
 श्वेतवाहने । विधुन्वन् सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः ॥ २७ ॥
 चक्ररत्नौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ । पर्यवारयदायान्तौ
 कृतवर्मा तथेषुभिः ॥ २८ ॥ तावविध्यत् ततो भोजः कृतवर्मा शितैः
 शरैः । त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥ २९ ॥ ताव-
 प्येनं विविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः । त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजा-
 स्त्रिभिस्तथा ॥ ३० ॥ संचिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कामुकमेव च ।
 अथान्यद्वनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ३१ ॥ कृत्वा विध-
 नुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत् । तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं

ऐसा विचारकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, कि-अरे । तू कृतवर्मा
 के ऊपर दया न कर, सम्बन्धका ध्यान छोड़कर इसको कुचल
 कर मार डाल ॥ २५ ॥ तुरन्त ही अर्जुन कृतवर्माको बाणोंसे
 मूर्च्छित करके तेज चलनेवाले घोड़ों की दाँडातार काम्बोजोंकी
 सेनामें जा घुसा ॥ २६ ॥ अर्जुनको काम्बोजसेनामें घुसाहुआ
 देखकर कृतवर्माको क्रोध चढ़ आया और वह अपने धनुष तथा
 बाणोंको घुमाता २ अर्जुनके रथकी रक्षा करनेको अर्जुनके
 पीछे आतेहुए पाञ्चालराजके दोनों पुत्रोंके साथ युद्ध करने
 लगा, और समीपमें पहुँचसकें ऐसे बाणोंसे उनको रोकने लगा,
 कृतवर्माने युधामन्युको तीन और उत्तमौजाको चार तेज बाणोंसे
 बाँध डाला ॥ २७-२९ ॥ उन दोनोंने भी इसको दश २ बाणोंसे
 बाँध डाला और तीन २ बाण मारकर इसकी ध्वजा और धनुषको
 काट डाला, इससे कृतवर्मा क्रोधसे मूर्च्छित होगया और उसने दूसरा
 धनुष लेकर उनके धनुषोंको काट डाला तथा बाणोंका तौना बाँध
 दिया, उन दोनोंने दूसरे धनुषको तयार करके भोजको मारना

विजयननुः ॥ ३२ ॥ तेनान्तरेण वीर्यमृतिवेशामित्रवादिनीम् ।
 न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्माणा ॥ ३३ ॥ धार्तराष्ट्रेण-
 नीकेशु यतमानौ नरर्षभौ । अनोकान्यदेयन् युद्धे त्वरितः द्रुप-
 दानः ॥ ३४ ॥ नावधीत कृतवर्माणं पासाप्यग्निमूदनः । तं
 दृष्ट्वा तु तथायान्तं शूरो राजा ध्रुतायुधः ॥ ३५ ॥ अभ्यद्रवन्
 संकुद्धो विधुन्वानो महद्बनुः । स पार्थ त्रिभिरानर्च्छत् सप्तत्या
 च जनार्दनम् ॥ ३६ ॥ क्षुरमेण सृतीच्छेन पार्थकेतुमतादयन् ।
 ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां ननपर्वणाम् ॥ ३७ ॥ आजगान
 भृशं क्रुद्धस्तोत्रैरिव महादिपम् । स तं न ममृषे राजन् पाण्डवेयस्य
 विक्रमम् ॥ ३८ ॥ अर्थेन सप्तसप्तत्या नाराचानां समर्पयत् । तस्या-

आरम्भ कर दिया ॥ ३२-३२ ॥ इस अवसरका लाभ ले अर्जुन
 शत्रुकी सेनामें घुसगया और वे दोनों कृतवर्माके रोकलेनेके कारण
 सेनामें घुसनेका मार्ग न पासके ॥ ३३ ॥ परन्तु उन दोनों वीरोंने
 कौरवसेनामें प्रवेश करनेका बहुतही यत्न किया, उधर द्रुप
 घोड़ोंवाला अर्जुन सेनामें प्रवेश करनेकी शीघ्रताके कारण, युद्ध
 में सेनाको पीडित करने लगा, उसने शीघ्रताके कारण समीपमें
 आयेहुएभी कृतवर्माको मारनेसे छोड़ दिया. अर्जुनको इसमकार
 बढताहुआ देखकर वीर राजा ध्रुतायुधको बड़ा क्रोध चढ़ा और
 वह उसकी ओर बढ़ा, धनुषको घुमातेहुए उसने अर्जुनके तीन
 और श्रीकृष्णके सत्तर बाण मारे ॥ ३४-३६ ॥ और उसने
 क्षुरप नामक तेज बाणसे अर्जुनकी ध्वजापर प्रहार किया
 वह देखकर अर्जुनको बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने बटेभारी
 हाथी को भालोंसे मारनेकी समान उसके नभीहुई गठिवाले
 नभमें बाण मारे, ध्रुतायुध पाण्डवके इस पराक्रमको न
 सहसका ॥ ३७-३८ ॥ और अर्जुनके सत्तर बाण मारे
 तुरन्त ही अर्जुनने उसके धनुष और बाणको काटवाला

जुनो धनुश्छित्वा शरावापं निकृत्य च ॥ ३६ ॥ आजघानोरसि
 क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः । अथान्यद्वनुरादाय स राजा क्रोध-
 मच्छितः ॥ ४० ॥ वासविं नवभिर्वाणैर्वाहोरसि चार्पयत् ।
 ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिन्दमः ॥ ४१ ॥ शरैरनेकसाहसैः
 पीडयामास भारत । अरवांश्चास्यावधीत्तूर्णं सारथिं च महारथः ४२
 विन्याध त्रैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः । इताश्च रथमुत्सृज्य
 स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४३ ॥ अभ्यद्रवद्रणे पार्थ गदासुष्ठम्य
 वीर्यवान् । वरुणस्यात्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४४ ॥
 पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी । तस्य माताम्रवीद्राजन्
 वरुणं पुत्रकारणात् ॥ ४५ ॥ अवध्योयं भवेन्नलोके शत्रूणां तनयो
 मम । वरुणस्त्वब्रवीत् पीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ॥ ४६ ॥
 दिव्यमस्त्रं मुतस्तेयं येनावध्यो भविष्यति । नास्ति चाप्यमरत्नं वै

तथा बड़े क्रोधमें भरकर नमीहुई गाँठवाले सात बाण उसकी
 छातीमें मारे, उस राजाने भी उतना ही क्रोध करके, दूसरा
 धनुष हाथमें ले अर्जुनके हाथ तथा छाती पर नौ बाण मारे, शत्रु-
 ओंके नाशकर्त्ता महाबली अर्जुनने हँसकर श्रुतायुधको हजारों
 बाण मारकर पीड़ित किया और उस महारथी अर्जुनने इसके
 घोड़े तथा सारथिको भी मार डाला ॥ ३६-४२ ॥ और फिर
 श्रुतायुधके सत्तर बाण मारे, वीर्यवान् राजा श्रुतायुध मरे हुए घोड़ों
 वाले रथमेंसे उतरकर हाथमें गदा ले अर्जुनकी ओरको युद्ध
 करनेको दौड़ा, वीर राजा श्रुतायुध वरुणको पुत्र या, ठण्डे जल
 वाली महानदी पर्णाशा इसकी माता है हे राजन् ! उसकी माता
 पर्णाशाने पुत्रस्नेहके कारण वरुणसे कहा, कि-॥ ४३-४५ ॥
 हे वरुण ! मेरा पुत्र जगत्में शत्रुओंसे अवध्य होजाय, यह वर
 मुझै दीजिये, वरुणने मसन्न होकर कहा, "तथास्तु" मैं तुम्हें हित-
 कारक वर देता हूँ ॥ ४६ ॥ यह दिव्य अस्त्र ले, इस अस्त्रसे तेरा

मनुष्यस्य कथञ्चन ॥ ४७ ॥ सर्वेषां वश्यमन्तव्यं ज्ञानेन सन्नि-
 म्वरे । दुर्धर्षस्त्वेष शत्रुणा खलेषु भविता सदा ॥ ४८ ॥ स्वस्व-
 स्यास्य प्रभावाद् व्येतु नै जानातो ज्वरः । इत्युक्त्वा वरुणः प्रादान्
 गदां मन्त्रपुरस्कृताम् ॥ ४९ ॥ यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुता-
 युधः । उवाच चैनं भगवान् पुनरेव जलेश्वरः ॥ ५० ॥ अयुध्यन्ति
 न मोक्तव्या सा त्वय्येव शतेदिति । हन्यादेपा प्रतीपं हि प्रयोक्ता-
 रमपि प्रभो ॥ ५१ ॥ न चाकरोत् स तद्वाक्यं माते काले श्रुतायुधः ।
 स तथा प्रतिघातिन्या जनार्दनमनाडयत् ॥ ५२ ॥ प्रतिजग्राह तां
 कृष्णः पीनेन स्वेन धीर्यवान् । नाकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं
 गिरिभिवानलः ॥ ५३ ॥ मत्पुत्रान्ती तपेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता ।

पुत्र संसारमें अवध्य होजायगा, परन्तु हे मदानदी ! मनुष्य
 संसारमें अपर किसी प्रकार नहीं होसकता ॥ ४७ ॥ हे नदियोंमें
 श्रेष्ठ पयोशो ! जो उत्पन्न हुआ है उसको अवश्य मरना पड़ेगा,
 परन्तु इस अस्त्रसे तेरा पुत्र रणमें शत्रुओंसे सदा दुर्धर्ष रहेगा,
 कोई भी इसका अनादर नहीं करसकेगा ॥ ४८ ॥ इस अस्त्रसे
 प्रभाससे तेरी मानसिक चिन्ता दूर हो, ऐसा कहकर वरुणने मंत्रों
 से अभिमन्त्रित एक गदा उसको देदी ॥ ४९ ॥ उस गदाको
 पाकर श्रुतायुध सब मनुष्योंसे दुर्धर्ष होगया भगवान् जलेश्वर
 वरुणने फिर उससे कहा, कि-॥ ५० ॥ परन्तु इस गदाको तू
 युद्ध न करनेवालेके ऊपर न लोडना, यदि तू भूलसे ऐसा कर
 बैठा तो यह गदा तेरा ही नाश करदेगी, हे राजन् । वरुणकी
 दीहुई यह गदा (अकारण) प्रहार करने वालेकाही नाश करने
 वाली थी ॥ ५१ ॥ परन्तु जब काल सिरपर बोलने लगा, तब
 श्रुतायुध वरुणके वचनको भूलगया और उसने वह धीर्यानिनी
 गदा श्रीकृष्णके ऊपर फेंकी ॥ ५२ ॥ श्रीकृष्णने उस गदाको
 अपने पृष्ठ वक्षस्थल पर झेल लिया और पवनके आघातमे जैसे

जघान चास्थितं वीरं श्रुतायुधमर्पणम् ॥ ५४ ॥ हत्वा श्रुतायुधं
वीरं धरणीमन्वपद्यत । गदां निवर्त्तितां दृष्ट्वा निहतञ्च श्रुता-
युधम् ॥ ५५ ॥ हाहाकारो महास्तत्र सैन्यानां समजायत । स्वेना-
स्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ५६ ॥ अयुध्यमानाय ततः
केशवाय नराधिप । क्षिप्ता श्रुतायुधनाथ तस्माच्चमवधीद्रदा ५७
यथोक्तं वरुणेनाजौ तथा स निधनं गतः । व्यमुश्राप्यपतद्र भूर्मा
प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥ ५८ ॥ पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः
प्रियः सुतः । स भग्न इव वातेन बहुशालो वनत्पतिः ॥ ५९ ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागृह्याथ सर्वशः । प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा
श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ६० ॥ ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः

विध्याचल नहीं ढिगता है तैसेही वे भी उस गदाके प्रहारसे डिगे
नहीं ॥ ५३ ॥ परन्तु कुछ पुरुषके पास रहनेवाली कृत्या
जैसे उस दुष्टका ही नाश करनी है, तैसेही वह गदाभी तहाँसे
लौटकर श्रुतायुधकी ओरको चली और उसने जोधी श्रुतायुधका
नाश करवाला ॥ ५४ ॥ और वीरवर श्रुतायुधको मारनेके अन-
न्तर वह पृथिवीपर गिरपड़ी, लौटतीहुई उस गदाको और श्रुता-
युधको अपने ही अस्त्रसे मराहुआ देखकर कौरवसेनामें हाहाकार
मचगया ॥ ५५ ॥ ५६ । हे राजन् ! श्रीकृष्ण युद्ध नहीं कर रहे
थे, तो भी उसने उनके ऊपर गदा फेंकी थी, इसकारण उस गदा
ने श्रुतायुधका ही नाश करवाला ॥ ५७ ॥ जैसा वरुणने कहा
था वैसी ही होने पर वह रणमें मारागया और सब धनुषधारियों
के देखते-र भूमिमें दहपड़ा ॥ ५८ ॥ पर्णाशाका पुत्र श्रुतायुध
पृथिवीपर गिरकर ऐसे शोभित होरहा था, जैसे आंधीसे गिराहुआ
शाला प्रशाखाओंवाला टूट पड़ा हो ॥ ५९ ॥ शत्रुनाशक श्रुता-
युधको मराहुआ देखकरासब सेनाएं और सेनापति भी भागने
लगे ॥ ६० ॥ तदनन्तर काम्बोजराजका शूर पुत्र सुदक्षिण तेज

मुदक्षिणः । अभ्यासजननस्यैः फाः गुनं शत्रुमुदनम् ॥ ६१ ॥
 तस्य पार्थः शत्रुं समं प्रेषयामास भारत । ने नं गुरं विनिभिष
 प्राविशत धरणीतलम् ॥ ६२ ॥ सोनिविष्टः शरैर्महीदणैर्गाण्डीव-
 प्रेषितैर्मृधे । अर्जुनं प्रतिविष्याथ दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ६३ ॥
 वामुदेवं त्रिभिर्विध्वा पुनः पार्थञ्च पञ्चभिः । तस्य पार्थो भनुदक्षिणा
 फेतुः चिच्छेद मारियदष्टभक्त्याभ्यां शृश तीक्ष्णाभ्यां तेञ्च विष्याथ
 पांडव । स तु पार्थ त्रिभिर्विध्वा सिंहनादमथानदन् ६४ सवपारश-
 वीञ्चैव शक्तिं शूरः मुदक्षिणः । सद्यस्तां प्राद्विष्टां घोरं क्रुद्धो
 गाण्डीवचन्वने ॥ ६५ ॥ सा ज्वलन्ती मद्योत्थेव तमाताय मदा-
 रथम् । सविस्तृक्षिता निमिष निरपान मदीवले ॥ ६७ ॥ जनस्या
 त्वभिहतो गाढं मूर्ध्निवाभिपरिसृतः । सप्तद्वाप्य मदानेनाः सुफिती

घाहोवाले रथ पर बैठकर शत्रुमुदन अर्जुनके ऊपर भपटा ६१
 हे भारत ! अर्जुनने जत्रके ऊपर सात नाण लोड़े, ये नाण उसके
 शरीरको फोड़कर पृथिवीमें घुसगए ॥ ६२ ॥ घृष्टमें गाण्डीवमेंसे
 छूटेहुए बाणोंसे अतीव रिभेहुए मुदक्षिणने अर्जुनको दश कंक-
 पत्रवाले बाणोंसे घायल किया ॥ ६३ ॥ फिर उसने वामुदेवको
 तीन और अर्जुनको पाँच बाणोंसे घायल किया, ते राजन !
 अर्जुनने उसकी ध्वजाको काटकर उसके धनुषको भी काट
 डाला ॥ ६४ ॥ और अर्जुनने बहुतही तेज देा भक्त नामक
 बाणोंसे उसको घायल करदिया, मुदक्षिण तीन बाणोंसे धन-
 क्षयको घायल कर सिंहकी समान गर्जनेलग्ना ॥ ६५ ॥ और क्रोधमें
 भरकर ठोस लोहेंही एक घोर शक्ति अर्जुनके ऊपर फेंकी ॥ ६६ ॥
 बड़ीर चिनगारियोंको उठानीहुई उल्लाही समान वह शक्ति पदा-
 रभी अर्जुनके लगकर भूमिमें गिरपड़ी ॥ ६७ ॥ शक्ति लगनेसे
 अर्जुनको बड़ीभारी मूर्धा आगई, जब उसकी मूर्धा दूर हुई तब
 अचिन्त्य पराक्रमी अर्जुन जवाड़े जाटनीहुआ दम लेकर नयार

परिलोलिहन् ॥ ६८ ॥ तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः ।
 साश्वध्वजधनुःसूतं विष्वाधाचिन्त्यविक्रमः ॥ ६९ ॥ रथञ्चान्यैः
 सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः । सुदक्षिणन्तं काम्बोजं मोघसंक-
 ल्पविक्रमम् ॥ ७० ॥ विभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः । स
 भिन्नवर्मा सस्ताङ्गः प्रभष्टमुकुटाङ्गदः ॥ ७१ ॥ पपाताभिमुखः शूरो
 यन्त्रमुक्त इव ध्वजः । गिरेः शिखरजः श्रीमान्, सुशाखः सुभति-
 ध्रितः ॥ ७२ ॥ निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये । शोते
 स्म निहतो भूपौ काम्बोजास्तरणोचितः ॥ ७३ ॥ महार्हाभरणो-
 पेतः सानुमानिव पर्वतः । सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुद-
 क्षिणः ॥ ७४ ॥ पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः ।

होगया, तब उसने चौदह कंकपत्रवाले बाणोंसे सुदक्षिणकी ध्वजा
 घोड़े धनुष और सारथिको छिन्न भिन्न कर दिया ॥ ६८-६९ ॥
 तथा और बहुतसे बाण मारकर उसके रथके टुकड़े कर दिये,
 तथा विफल मनोरथ हुए काम्बोजकुमार सुदक्षिणके हृदयको
 मोटी धारवाला बाण मारकर चीर दिया, उस बाणके प्रहारसे
 उसका कवच टूट गया, अंग छिन्न भिन्न होगए और उसके
 सस्तक परसे मुकुट तथा हाथोंमेंसे बाणूचन्द गिर पड़े ॥ ७०-७१ ॥
 और यन्त्रमेंसे छूटी हुई ध्वजा तथा ग्रीष्मवृक्षमें पर्वतके शिखरपर
 उगाहुआ शाला प्रगाखाओंवाला कनेरका वृक्ष जैसे वायुसे
 पृथिवीमें गिर पड़ता है, तैसेही वीर सुदक्षिण अर्जुनके सामने
 पृथिवीपर गिर पड़ा, जो विद्वाने पर पौढ़नेके योग्य था वह इस
 समय पृथिवीपर पड़ाहुआ सोरहा था ॥ ७२-७३ ॥ कुमार सुद-
 क्षिण बहुमूल्य गहिने पहिरे हुए था, उसके हाथमें धनुष था,
 पृथ्वीपर पड़ाहुआ वह वीर शिखरवाले पर्वतकी समान दीख रहा
 था, गलेमें सुवर्णकी मालाओंको ढालेहुए सुन्दर देखने योग्य
 लाल २ नेत्रवाले काम्बोजराजके पुत्रको; अर्जुनने कर्णि नामक

धारयन्नग्निसंकाशां शिरसा काञ्चनीं स्त्रजम् ॥ ७५ ॥ अत्रो-
भय महाबाहुर्व्यपुर्भूयो निरातिनः । ततः सतीणि सैन्यानि व्यद्र-
वन्त मुतस्य ते । इतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजञ्च मुदन्तिणम् ७६
इति श्रीमद्भारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि श्रुतायुध-
मुदन्तिणवधे दिनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

सञ्जय उवाच । इतं मुदन्तिणं राजन् वीरे चैव श्रुतायुधे ।
जवेनाभ्यद्रवन् पार्थं कुपिताः सैनिकास्तत्र ॥ १ ॥ अर्षीपादाः
शूरसेनाः शिवयोध वशातयः । अभ्यवर्पस्ततो राजन् शरवर्षेर्दे-
नञ्जयम् ॥ २ ॥ तेषां पट्टिजतानन्यान् मामभ्यनात् पाण्डवः शरैः ।
ते स्म भीताः पतायन्ते व्याघ्रान् क्षुद्रमृगा इव ॥ ३ ॥ ते निवृत्ताः
पुनः पार्थं सन्नतः पर्ववारयन् । रणे सपत्नान्निघ्नन् जिगीषन्तं
परान् युधि ॥ ४ ॥ तेषामासतां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।

बाण भारकर पृथ्वी पर मुत्तादिया ॥ ७४-७५ ॥ जब वह माण-
रहित होकर पृथ्वीमें गिरा तब बहुत ही अच्छा लगता था, तद-
नन्तर श्रुतायुध और काम्बोजकुमार मुदन्तिणको मगहूआ देख
कर तुम्हारे पुत्रकी सेनामें भागनेलगीं ॥ ७६ ॥ वानवर्षी अध्याय
समाप्त ॥ ६२ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! मुदन्तिण और वीर श्रुतायुधके
मारे जानेपर तुम्हारे सैनिक क्रोधमें भर वेगके साथ अर्जुनके
ऊपरको दौड़पड़े ॥ १ ॥ हे राजन् ! अर्षीपाद, शूरसेन गिवि
और वसाति अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २ ॥
उनमेंकेछः योधाओंको तथा दूसरे भी बहुतसे योधाओंको अर्जुनने
बाणोंसे मथडाला, तब वे चर्रेसे डरनेहुए छोटे-छोटे हिरनोंकी
समान पहले तो भागने लगे ॥ ३ ॥ परन्तु वे (योद्धीही दैरमें
फिर) लौटकर रणमें खड़े होगए और उन्होंने गृहमें शत्रुओंका
संहार तथा पराजय करनेवाले अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया ॥

शिरांसि पातयामास बाहूश्चापि धनञ्जयः ॥ ५ ॥ शिरोभिः
 पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निस्तरा । अभ्रच्छायेव चैवासीद् ध्यान्त-
 गृध्रवल्ल्युधि ॥ ६ ॥ तेषु तूत्साद्यमानेषु कोधामर्षसमन्वितौ ।
 श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च धनञ्जयमपुष्पनाम् ॥ ७ ॥ बलिनीं स्पदि-
 नीं वीरौ कुञ्जौ बाहुशालिनौ । तावेनं शस्वर्षाणि सन्त्यदक्षिण-
 मस्यताम् ॥ ८ ॥ स्वरायुक्तौ महाराजं प्रार्थयानौ महद्यशः । अर्जुनस्य
 वधमेप्सु पुत्रार्थं तव धन्विनौ ॥ ९ ॥ तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां
 नतपर्वणाम् । पूरयामासतु क्रुद्धौ तढागं जलदौ यथा ॥ १० ॥
 श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनञ्जयम् । आजघान रथश्रेष्ठे पीतेन
 निशितेन च ॥ ११ ॥ सोतिर्विद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।

परन्तु उन आतेहुओं को अर्जुन वे जैसे २ आतेगए तैसे २
 गाएहीवमेंसे बाण छोडकर उनके मस्तक और भुजाओंको काटता
 ही चलागया ॥ ५ ॥ पृथिवीपर गिरेहुए शिरों और भुजाओंसे
 पृथ्वी खचाखच भरगई और युद्धभूमि पर उड़तेहुए कौए तथा
 गीर्धोंकी छाया, बादलोंकी छायाकी समान प्रतीत होनेलगी ॥ ६ ॥
 जब अर्जुन तुम्हारी सेनाको इसप्रकार नष्ट अष्ट करनेलगा, उस
 समय श्रुतायु और अच्युतायु नामवाले योधा क्रोध और अमर्षमें
 भरकर अर्जुनके साथ लड़नेलगे ॥ ७ ॥ बली, डाह करनेवाले,
 शूर, कुलीन और बाहुबलशाली वे दोनों वीर अर्जुनकी दाहिनी
 और बाई ओर बाण बरसानेलेगे ॥ ८ ॥ हे महाराज ! वे दोनों
 धनुषधारी बड़े उतावले थे और अपना घडा यश चाहते थे, तथा
 तुम्हारे पुत्रके लिये अर्जुनका नाश करनेको उत्सुक होरहे थे ९-
 कोषमें भरेहुए दो मेघ जैसे तलावको जलसे ढकदेते हैं तैसे ही
 उन दोनोंने कोषमें भरकर नमीहुई गाठोवाले सहस्रों बाणोंसे
 अर्जुनको ढकदिया ॥ १० ॥ तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रुतायुने
 बड़े क्रोधमें भरकर तेज और पानी पिलाया हुआ तोमर धनञ्जय

जगाम परमं पोहं मोहयन् केशवं रणे ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नेव काले
तु सोच्यतामुर्महारयः । शूलेन भृगुर्तीक्ष्णं ताडयामास पाण्ड-
वम् ॥ १३ ॥ क्षते क्षारं हि स ददा पाण्डवस्य महान्नमः ।
पार्थोपि भृशसंविहो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १४ ॥ ततः सर्वस्य
सैन्यस्य तावकस्य विशाम्यते । सिंहनादो मद्यानासीन् दनं मत्वा
धनञ्जयम् ॥ १५ ॥ कृष्णश्च भृगुसन्तप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम् ।
आश्वासयत् सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनञ्जयम् ॥ १६ ॥ ततश्ची-
रथिनां श्रेष्ठो लब्धलक्ष्यो धनञ्जयम् । बाधुदेवश्च बाष्पेयं शर-
वर्षैः समन्ततः ॥ १७ ॥ सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम् ।
अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तददृशुनभिवाभत् ॥ १८ ॥ मत्प्राप्तवस्तु-
नीभत्सुः शनैरिव भारत । मेतराजपुरं प्राप्य पुनः मत्प्रागतो

के मारा ॥ ११ ॥ शत्रुने बड़ी जोरसे तोपका प्रहार किया, इससे
शत्रुनाशक अर्जुन मूर्छित होगया, यह देखकर श्रीकृष्ण दयदा-
गए ॥ १२ ॥ इतनेमें ही फिर महारथी अच्युतायुने अर्जुनके
ऊपर अतितीक्ष्ण शूल फेंका ॥ १३ ॥ यह प्रहार महारथी अर्जुनके
लिये घाव पर लवण पड़नेकी समान होगया और बहुत ही
घायल होजानेके कारण अर्जुन ध्वजाका दण्डा पकड़ेहुए खड़ा
ही रहगया ॥ १४ ॥ हे राजन ! इस समय तुम्हारी सब सेनाने
अर्जुनको मराहुआ जानकर बड़ा भारी सिंहनाद किया ॥ १५ ॥
कृष्ण अर्जुनको मूर्छित देखकर बहुत ही दुःखित हुए और मधुर
वचन कहकर अर्जुनको जगानेलगे ॥ १६ ॥ इस समय कौरव
पक्षके दोनों महारथी अर्जुन और कृष्णको निशाना बनाकर
चारों ओरसे बाण बरसाते रहे ॥ १७ ॥ उन दोनोंने रथ, पहिये,
कूबर, घोड़े, ध्वजा और पताका—सहित अर्जुनको बाणोंकी वर्षासे
ढक दिया, यह एक अचरजसा हुआ ॥ १८ ॥ हे भारत ! नदनन्तर
यमराजके घरसे फिर लौटेहुएकी समान अर्जुन घोर-दोशमें

यथा ॥ १६ ॥ संव्रजन् शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवन् । शत्रू चाभि-
मुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविचानलौ ॥ २० ॥ प्रादुश्यक्रे ततः पार्थः
शाक्रमस्त्र महारथः । तस्मादासन् सहस्राणि शराणां ननपर्व-
णाम् ॥ २१ ॥ ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां मुक्ताश्च सायकाः ।
विचेरुराकाशगता पार्थबाणविदारिताः ॥ २२ ॥ प्रतिहत्य शरा-
स्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः । प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन् वै महा-
रथान् ॥ २३ ॥ तौ च फाल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसां कृता ।
वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमा ॥ २४ ॥ श्रुतायुयुत्स-
निधनं वधश्चैवाच्युतायुषः । लोकविस्मापनमभून् समुद्रस्यैव शोष-
णम् ॥ २५ ॥ तयोः पदानुगान् हत्वा पुनः पञ्चाशत् रथान् ।
प्रत्यगात् भारतीं सेनां निघ्नन् पार्थो वरान् वरान् ॥ २६ ॥

आनेलगा ॥ १६ ॥ उस समय उसने कृष्णसहित अपने रथको
बाणोंसे ढकाहुआ देखा और प्रज्वलित अग्निकी समान दोनों
शत्रुओंको भी अपने सामने खड़ाहुआ देखा ॥ २० ॥ यह देखकर
महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्रको प्रकट किया, उससे नभीहुई गाँठों
वाले सहस्रों बाण प्रकट होगये ॥ २१ ॥ वे बाण श्रुतायु और
अच्युतायु पर प्रहार करनेलगे और उनके छोड़ेहुए बाणोंका
भी नाश करनेलगे, उनके बाण अर्जुनके बाणोंसे कटकर
आकाशमें ही फिरनेलगे ॥ २२ ॥ अर्जुन बाणोंके वेगसे शीघ्र ही
शत्रुके बाणोंको शान्त कर, इधर उधर खड़ेहुए महारथियोंके
साथ भी लड़नेलगा ॥ २३ ॥ देखतेर अर्जुनके बाणोंसे श्रुतायु
और अच्युतायुके शिर और भुजा कटकर आँधीके हिलायेहुए
वृत्तकी समान पृथ्वी पर ढहपड़े ॥ २४ ॥ श्रुतायुका परण और
अच्युतायु का वध समुद्रके सूखनेकी समान लोगोंको आश्चर्यमें
डालनेशाला हुआ ॥ २५ ॥ तदनन्तर अर्जुन उनके अनुयायी
पचास रथियों मारकर दूसरे श्रेष्ठर वीरोंको मारता २ फौरवोंकी

श्रुतायुधश्च निहतं प्रेक्ष्य चैवाच्युतायुधम् । नियतायुधश्च तं कुट्टो
दीर्घायुश्चैव भारत ॥ २७ ॥ पृथो वयोर्नरश्चेष्टो योऽन्तेयं प्रविश-
यन्तुः । किरन्तो विविधान् बाणान् पितृव्यसनकपिर्नो ॥ २८ ॥
तावर्जुनो मूहूर्त्तेन शरैः सन्नतपर्वभिः । प्रपयन् परमकुट्टो यमस्य
सदनं प्रति ॥ २९ ॥ लोढयन्ममनीकानि द्विषं पद्मसरो यथा ।
नाशकनुवन् वारयितुं पार्थ क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३० ॥ अङ्गास्तु गज-
वारेण गाएदवं पर्यवारयन् । कुट्टाः सहस्रशोराजन् शिञ्जिता हस्ति-
सादिनः ॥ ३१ ॥ दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः । प्राच्या-
श्च दक्षिणात्याश्च कलिगममुखा नृपाः ॥ ३२ ॥ तेषामापतनां
शीघ्रं गाएडोवप्रेपितैः शरैः । निचकर्त्त शिरांस्युग्रो बाहुनपि सुभू-
षणान् ॥ ३३ ॥ तैः शिरोभिर्वही कोर्णा बाहुभिश्च सरांगदैः ।

सेनाके मध्यमें घुसगया ॥ २६ ॥ श्रुतायु और अच्युतायुको मरा
हुआ देख उसके पुत्र निघृतायु और दीर्घायु पिताके मरणसे
खिन्न होगए और क्रोधमें भरकर अर्जुनके ऊपर अनेकों बाण
छोड़तेहुए उसके सामने लड़नेको मैदानमें आगये ॥ २७-२८ ॥
उनको सामने देखते ही अर्जुनने परमक्रोधमें भरकर मूर्हतमर में
उन्हें भी नमैहुए बाणोंके प्रहारसे यमलोकमें पहुँचा दिया ॥ २९ ॥
सरोवरको कुचलते हुए हाथीकी समान सेनाको कुचलते
हुए अर्जुनको कोई भी क्षत्रिय वीर रोक न सका ॥ ३० ॥
परन्तु हे राजन् ! इतनेमें ही सहस्रों हाथीसवार अगदेशी राजा-
ओंने क्रोधमें भरकर, अर्जुनको हाथियोंकी सेनासे घेरलिया
और दुर्योधनकी आज्ञा होने पर पूर्व दक्षिण तथा कलिग देशके
राजा पर्वतकी समान ऊँचे हाथियोंपर बैठकर अर्जुनके सामने
लड़नेको चढ़आये ॥ ३१-३२ ॥ महापराक्रमी अर्जुनने गाएडोव
धनुषमेंसे बाण छोड़कर उन राजाओंके शिर और सुशोभित
अज्ञाओंको काटडाला ॥ ३३ ॥ उन पस्तक और बाजूबन्द्याली

वधौ कनकपापाणैर्भुजगैरिव संवृता ॥ ३४ ॥ बाह्वौ विशिखे-
 शिल्पिनाः शिरांस्युन्मथितानि च । पद्मानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव
 पक्षिणः ॥ ३५ ॥ शरैः सदृशशो विह्वला द्विपाः प्रमृताशोणिताः ।
 अदृश्यन्ताद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव ॥ ३६ ॥ निहताः शेरते
 स्मान्ये वीभत्सोर्निशितैः शरैः । गजपृष्ठगता स्लेज्या नानाविकृत-
 दर्शनाः ॥ ३७ ॥ नानावेषधरा राजन् नानाशस्त्रायसंवृताः ।
 रुधिराणानुलिप्तांगा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८ ॥ शोणितं
 निर्वपन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः । सदृशशस्त्रिद्वजगात्रा सारोहाः
 सपदानुगाः ॥ ३९ ॥ चुक्रुशुरव निपेतुश्च बभ्रमुश्चापरे
 दिशः । भृशं त्रस्तारव बहवः स्वानेव ममदुर्गजाः ॥ ४० ॥ सान्त-

भुजाओंसे ढकी हुई पृथ्वी सर्प और सुवर्णकी शिलाओंसे ढकी
 हुईसी शोभा पाने लगी ॥ ३४ ॥ बाणोंसे कटी और मथी हुई
 भुजाएँ तथा शिर, गिरते समय वृत्तों परसे उड़ते हुए पक्षियोंकी
 समान प्रतीत होते थे ॥ ३५ ॥ बाणोंसे घायल होनेके कारण
 जिनके शरीरसे रुधिर टपकर टाथा ऐसे सदृश हाथी, वर्षाकालमें
 गेरुको टपकानेवाले पर्वतोंकी समान, दीखते थे ॥ ३६ ॥ इस
 लड़ाईमें हाथियोंकी पीठपर बैठे हुए बहुतेरे स्लेज्य अर्जुनके बाणोंसे
 कटकर पृथ्वीपर लुढ़क गये, उस समय उनकी आकृतियें बड़ी
 भयंकर दीखती थीं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! नानाप्रकारके बाणोंसे
 छिदे हुए और नानाप्रकारके वेश धारण करनेवाले तथा बाणोंके
 प्रहारसे मरे हुए योधाओंके अङ्ग खूनमें लथपट पड़े होनेके कारण
 रणभूमिमें शोभा पारहे थे ॥ ३८ ॥ अर्जुनके बाणोंके प्रहारसे
 बहुतसे हाथी रुधिर ओकरहे थे, बहुतसे शरीर घायल हो जानेके
 कारण अनुचर और सवारों सहित चीख मारते हुए पृथ्वी पर गिर
 रहे थे और बहुतसे हाथी अर्जुनके बाणप्रहारसे व्याकुल हो
 भाग रहे थे तथा बहुतसे अत्यन्त भयभीत होनेके कारण अपने

रायुधिनश्चैव द्विपास्तीक्ष्णविषोदपाः । विदन्त्यसुरपाशं ये सुयोरा
 योरचक्षुषः ॥ ४१ ॥ यवनाः पारदारैव शकाश्च महचान्द्रिकैः ।
 काकवर्णा दुराचाराः स्त्रीलोनाः कलहप्रियाः ॥ ४२ ॥ द्राविडा-
 स्तत्र युध्यन्ते मत्तपातंगविक्रमाः । गोयोनिप्रभवा म्लेच्छाः पाक-
 कन्याः महारिणः ॥ ४३ ॥ दार्वानिसारा दारदाः पुट्टाश्चैव सद-
 स्रयाः । ते न शक्याः स्म संख्यातुं ब्रानाः शनसहस्रशः ॥ ४४ ॥
 अभ्यवर्पन्त ते सर्वे पांडवं निशितैः शरैः । अवाकिंश्च न म्लेच्छा
 नानामुद्विशाददाः ॥ ४५ ॥ तेषामपि सप्तज्जात्रु शरवृष्टिं
 धनञ्जयः । सृष्टिस्तथाविधा द्यासीच्छ तेषामपिवायनिः ॥ ४६ ॥
 अभ्रच्छायापिव शरैः सैन्ये कृत्वा घनछापः । मुग्धादर्दृष्टुद्वान् जटि-
 लानशुवीन् जटिलाननान् ॥ ४७ ॥ म्लेच्छानशानयन् सर्वान्

सवारोंको मार रहे थे, ॥ ३६-४० ॥ और तीक्ष्ण विषके समान
 हाथी एक दूसरेसे लड़ रहे थे आसुरी पाशाको जाननेवाले, योर-
 रूप, योरनेत्र, काँझोंकी समान काले, स्त्रीलम्पट, कलहप्रिय यवन,
 पारद, शक, चान्होक, मदमत्त हाथियोंकी समान पाकमी
 द्रविड, वसिष्ठकी गोसे उत्पन्न हुए कालही समान महार करने
 वाले तथा दार्वानिसार, दारद और सदस्रों पुट्ट म्लेच्छ अर्जुनके
 सामने आकर लड़नेलगे, वे ब्रान (संस्काररटिन) इतने थे कि-
 उनको गिनती नहीं हो सकती थी ॥ ४१-४४ ॥ नानामकारके
 युद्ध करनेमें चतुर वे सब म्लेच्छ अर्जुनके ऊपर बाण बरसाने
 लगे ॥ ४५ ॥ तुम्हारी उनके ऊपर अर्जुनने भी बाण बरसाए,
 अर्जुनके छोड़ेहुए वे बाण आकाशमें टीढ़ीदलकी समान फैल
 गए ॥ ४६ ॥ इस प्रकार अर्जुनने बादलोंकी लावाकी समान
 बाणोंके जालसे उस सेनाको ढककर अश्वोंके मत्तपते, मुँदेहुए,
 अभ्रमुँडे, जटाधारी और अथर्विज डाढ़ीवाले इन सब दलदेहुए
 म्लेच्छोंका नाश कर डाला और पटाही योधाओंको भी बाण

समेतानस्त्रतेजसा । शरैश्च शनशो विद्धास्ते संघा गिरिचारिणः ।
 प्राद्वन्त रणे भीता गिरिगदस्वासिनः ॥ ४८ ॥ गजाश्वसादि-
 म्लेच्छानां पतिवानां शितैः शरैः । वक्राः कङ्कुा वृका भूपावपिवन्क-
 धिरं मुदा । पत्पश्वरयनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंकमाम् ॥ ४९ ॥ शर-
 वर्षस्रवां घोरां केशशैवलशादृताम् । प्रावर्त्तयन्नदीमुग्रां शोणितो-
 घतरङ्गिणीम् ॥ ५० ॥ छिन्नांगुलिजुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसन्नि-
 भाम् । प्राकराद्रजसम्बाधां नदीमुत्तरशोणिताम् ॥ ५१ ॥ दंष्ट्रेभ्यो
 राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् । यथा स्थलद्वच निम्नद्वच न
 स्याद्वर्षति वासवे ॥ ५२ ॥ तथासीत् पृथिवी सर्वा शोणितेन
 परिप्लुता । पटसाहस्रान् हयान् वीरान् पुनर्द्दश शतान् वरान् ५३
 प्राहिणान्मृत्पुलोकाय क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः । शरैः सहस्रशो विद्धा

मारकर वींधडाला, तब वे पहाड़ोंकी गुफाओंमें रहनेवाले योधा
 रणमेंसे भागनेलगे ॥ ४७-४८ ॥ तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे गिरेहुए
 हाथीसवार और घुड़सवारोंके रुधिरको बगले, काँए और भेड़िये
 बड़ी प्रसन्नतासे पीनेलगे, इस समय पैदल, घुड़सवार, रथ और
 हाथियोंके पटावरूप पुलवाली, बाणरूप नाँकावाली केशोंरूप
 सिवारसे श्यामल रक्तके प्रवाहकी नरंगोंवाली, कटीहुई अंगुली-
 रूप छोटी २ मछलियोंवाली और मलयकालकी समान उग्र नदी
 अर्जुनने बहादी, उस नदीमें बहुतसा रुधिर बह रहा था और बह
 हाथियोंसे टकरातीहुई चत्तरही थी ॥ ४९-५१ ॥ जैसे वर्षा होने
 पर पृथ्वी ऊँची नीची न रहकर सम होजाती है, तैसे ही राजपुत्र
 हाथीसवार, घुड़सवार, तथा रथियोंके रुधिरसे पृथ्वी ऊँची नीची
 न रहकर सम होगई, क्षत्रियश्रेष्ठ अर्जुनने इस युद्धमें छः सहस्र
 शूरवीर घुड़सवार तथा एक सहस्र बड़े २ योधाओंको यमलोकमें
 भेजदिया और सहस्रों हाथियोंको बाणोंसे घायल करवाला, वे
 वज्रसे टूटेहुए पर्वतोंकी समान पृथ्वी पर गिरनेलगे, इस समय

विधिवन् कञ्चिन्ना द्विषाः ॥५४॥ शरने भूमिमासाद्य शोला वक्र-
हता इव । सवाजिरयमानंगान् निघ्नन् व्यचरदजुनः ॥ ५५ ॥
मभिन्न इव मानदो मृदून् नलवनं यथा । भूरट्टपलनाग्र्यं
शुष्केन्धनतृणालपम् ॥ ५६ ॥ निर्दहेदनलोऽयं यथा वायुसमी-
रितः । सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः ॥ ५७ ॥ शरा-
क्षिरदहत् क्रुदः पाण्डवाधिर्धनञ्जयः । शून्यान् कुर्वन् रथोपस्थान्
गानवैः संस्तरन्महीम् ॥ ५८ ॥ मानृत्यदिव सम्वाये चापहस्तो
धनञ्जयः । वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिनाम् ॥ ५९ ॥
मान्विशद्भारतीं सेनां संकुहो वै धनञ्जयः । तं श्रुत्वायुस्त्रयाम्बष्ठो
अजमानं न्यवारयत् ॥ ६० ॥ तस्याज्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कद्रुपत्र-
परिचर्द्धैः । न्यपातयद्गयान् शीघ्रं यतमानस्य मारिष ॥ ६१ ॥

सहस्रो घुड़सवार, रथी और हाथियोंको नष्ट करता हुआ अर्जुन
रणभूमिमें घूमने लगा ॥५४-५५॥ और मदमत्त हाथी जैसे नलोंके
वनका नाश कर डालता है और वायुसे मचल डुबा अग्नि
जैसे बहुतसे वृक्ष, लता, गुल्म, मूखेहुए काष्ठ और नलोंवाले
वनको जलाकर भस्म कर डालता है, तैसे ही कृष्णरूपी पवनसे
प्रेरित अर्जुनरूपी अग्निने क्रोधमें भरकर अस्त्ररूपी ज्वालासे
तुम्हारी सेनाको भस्म करना आरम्भ कर दिया, उसने रथोंमें
बैठेहुए बीरोंको मारकर रथोंको खाली कर दिया और नहाशोंसे
पृथ्वीको ढक दिया ॥५६-५८॥ और धनुषधारी अर्जुनने मानो
नाच रहा हो इसप्रकार घूमर कर वज्रकी समान बाणोंको महार
करके पृथ्वी पर रुधिर ही रुधिर बहा दिया ॥ ५९ ॥ फिर क्रोध
में भरकर भारती सेनामें प्रवेश करनेहुए अर्जुनको अम्बष्ठराज
श्रुतायु रोकने लगा ॥ ६० ॥ हे राजन् ! रोकनेवाले श्रुतायुके
घोड़ोंको अर्जुनने कद्रुपत्रवाले बाण मारकर पृथ्वीमें गिरा
दिया ॥ ६१ ॥ और दूसरे बाणोंसे उसके धनुषको काटकर

धनुश्चास्यापरैरिच्छत्वा शरैः पार्थो विचक्रमे । अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य
 क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ६२ ॥ आससाद रणे पार्थं केशवश्च महा-
 रथम् । ततः सम्पहरन् वीरो गदामुद्यम्य भारत ॥ ६३ ॥ रथ-
 मावार्य गदया केशवं सपताहयत् । गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं पर-
 वीरहा ॥ ६४ ॥ अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धः सोम्वष्टं प्रति भारत । ततः
 शरैर्हेमपुंस्त्रैः सगदं रथिनां वरम् ॥ ६५ ॥ ह्यादयामास समरे मेघः
 सूर्यमिवोदितम् । अथापरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥
 अचूर्णयत्तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाभवत् । अथ तां पतितां दृष्ट्वा
 गृह्णान्यां च महागदाम् ॥ ६७ ॥ अर्जुनं वायुदेवश्च पुनः पुनर-
 ताहयत् । तस्यार्जुनः क्षुरप्रार्भ्यां सगदाबुध्नौ भुजौ ॥ ६८ ॥
 विच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चान्येन पत्रिणा । स पपात हतो राजन्

अर्जुनने अपना पराक्रम दिखाया, इससे अम्बष्ठके नेत्र क्रोधके
 मारे अन्धे होगए और वह हाथमें गदा पकड़ महारथी श्रीकृष्ण
 और अर्जुनके सामने आढटा, और हे भारत ! उसने गदाका
 प्रहार करके रथको आगे बढ़नेसे रोकदिया तथा श्रीकृष्णके तान
 कर एक गदा मारी, श्रीकृष्णको गदासे ताड़ित देखकर शत्रु-
 नाशी अर्जुन अम्बष्ठ पर बड़ा ही क्रुद्ध हुआ और उसने जैसे
 उदय होतेहुए सूर्यको वादल ढक देता है तैसे ही रथियोंमें श्रेष्ठ
 अम्बष्ठको गदासहित घुनहरी पूँछवाले बाणोंसे ढक दिया और
 दूसरे बाणोंसे उस महात्माकी गदाका भी चूरा करहाला, यह
 भी एक आश्चर्यजनक दृश्य हुआ, गदाको गिरीहुई देखकर
 अम्बष्ठ दूसरी बड़ीभारी गदाको हाथमें ले श्रीकृष्ण और अर्जुन
 के ऊपर बार बार प्रहार करनेलगा, तब अर्जुनने क्षुरप्र नामके
 दो बाणोंसे इन्द्रकी ध्वजाकी समान उठीहुई गदासहित उस
 की दोनों भुजाओंको काटहाला और दूसरे बाणसे उसके मस्तक
 को भी उड़ादिया, तब हे राजन् ! यन्त्रसे छूटकर गिरीहुई इन्द्रध्वजा

वसुधामनुनादयन् ६६ इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टं यन्त्रनिष्ठं कवचधनः ।
रथीनीकावगाढश्च वारुणाश्चशर्नैर्वृतः । अदृश्यत नदा पार्श्वे यनेः
सूर्य इवावृतः ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठवधे
त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

सञ्जय उवाच । ततः प्रविष्टे कान्तेये सिन्धुराजजिघांसया ।
द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकञ्च दुस्तरम् ॥ १ ॥ काम्बोजस्य
च दायादे हते राजन् सुदक्षिणं । श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते
सन्ध्यासचिना ॥ २ ॥ विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विश्वस्तेषु समन्ततः प्रभयं
स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययान् ॥ ३ ॥ स्वरन्नेकरथेनैव
समेत्य द्रोणमवधीत् । गतः स पुरुषन्यायः प्रमथ्यैतां गढान्ममू ४
अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किन्तु कार्यमनन्तरम् । अर्जुनस्य विधाताय
की समान बहू बहूङ्गु करताहुश्चा पृथ्वीपर गिर गढा, उस समय
रथोंकी सेना तथा सैकड़ों हाथी घोड़ोंसे घिराहुश्चा अर्जुन मेघोसे
घिरे हुए सूर्यकी समान दीखने लगा ॥ ६२-७० ॥ तिरानेवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! सिंधुराजको मारनेकी इच्छा
से द्रोणकी सेनाको और दुस्तर भोजकी सेनाको चीरकर अर्जुन
घुसनेलगा ॥ १ ॥ और हे राजन् ! काम्बोजरूपार सुदक्षिण
और पराक्रमी श्रुतायु अर्जुनके हाथसे मारेगये तथा और भी
बहुतसी सेना नष्ट होगयी और बाकीकी सेना भाग निकली
तब अपनी सेनाको भागतीहुई देखकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन
अकेला ही रथमें बैठकर शीघ्रतासे द्रोणाचार्यके पास पहुँचा और
कहनेलगा, कि-बह पुरुषन्याय अर्जुन बड़ीभारी सेनाको कुचल
कर भीतर घुसगया ! ॥ २-४ ॥ आप अपनी बुद्धिसे विचार करें
कि-इस सेनाके दारुण विनाशकालमें अर्जुनके मारनेके लिये

दारुणोस्मिन् जनक्षये ॥ ५ ॥ यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जय-
द्रथः । तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ६ ॥ असौ
धनञ्जयाग्निर्हि कोपमारुतचेदितः । सेनाकक्षं दहति मे वह्निः
कक्षमिवोत्थितः अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्वा सैन्यं परगतः । जय-
द्रथस्य गोप्ताः संशयं परमं गताः ८ स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद्
ब्रह्मविदाम्बरः । नातिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवन् धनञ्जयः ६
योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो म्रियतस्ते महाद्युते । सर्वं ह्यघातुरं मन्ये
नेदमस्ति बलं मम ॥ १० ॥ जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां
हिते रतम् । तथा मुह्यामि च ब्रह्मन् कार्यवृत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥
यथाशक्ति च ते ब्रह्मन् वर्त्तये वृत्तिमुत्तमाम् । प्रीणामि च यथा

कौनसा उपाय करना चाहिये ॥ ५ ॥ जिसप्रकार वह पुरुषव्याघ्र
जयद्रथ न माराजाय वही उपाय करिये, आपका भला हो हमें
आपका बड़ा भारी भरोसा है ६ घास फूसमें लगी हुई अग्निकी
समान यह धनञ्जयरूपी अग्नि कोपरूपी वायुसे मचलता होकर,
मेरी सेनाको घास फूसकी समान जलाए डालता है ॥ ७ ॥
हे परन्तप ! कुन्तीनन्दन अर्जुन हमारी सेनाका नाश करके भीतर
घुसआया, अब जयद्रथके रक्तक बड़े भारी संशयमें पड़ गए हैं (वे
पार्थके सामने भाग्यसे ही टिकसकेगें) ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मवेत्ताओंमें
श्रेष्ठ ! हमारे पक्षके राजाओंको दृढ़ विश्वास था, कि-धनञ्जय
कभी भी द्रोणको जीतकर सेनामें जीता जागता प्रवेश नहीं कर
सकता ॥ ९ ॥ परन्तु हे महाक्रान्तिमान् ! अर्जुन तो तुम्हारे
देखतेहुए ही सेनाके भीतर घुसआया, अतः अब मैं अपनी सेनाको
घबड़ाई और नष्टहुईसी मानता हूँ ॥ १० ॥ हे महाभाग ब्रह्मन् !
मैं जानता हूँ, कि-तुम पाण्डवोंके हितैषी हो और अब इस महाकार्यको
कैसे पूरा किया जाय, इसका विचार करने पर मेरी बुद्धि कुछ भी
काम नहीं देती ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं शक्तिके अनुसार तुम्हें धन

शक्ति तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ १२ ॥ अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिवा-
स्यमितविक्रम । पादवान् सततं प्रीणात्पस्माकं विधिये रतान् ॥ १३ ॥
अस्मानेवोपजीवंस्त्वपस्माकं विधिये वनः । न ददं त्वां विजानामि
मधुदिग्धमिव क्षुरम् ॥ १४ ॥ नादास्पशेदरं यशं भवान् पादव-
निग्रहे । नावारयिष्यं गच्छन्तवहं सिन्धुपतिं गृहान् ॥ १५ ॥
यथा त्वाशंसमानेन त्वत्तदा प्रमनुद्धिना । आस्वासितः
सिन्धुपतिर्पोहाद्वनश्च मृत्यवे ॥ १६ ॥ यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येनापि
हि मानवः । नार्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येतार्जो जयद्रथः ॥ १७ ॥
स तथा कुरु शोणादव यथा मुच्येत सैन्यवः । मम चार्त्तमलापानां
मा कुपः पाहि सैन्यवम् ॥ १८ ॥ द्रोण उवाच । नाभ्यवृष्यामि

देता हूँ और शक्तिके अनुसार तुम्हें मसन्न रखता हूँ, इसका तो
तुम विचार ही नहीं करते । ॥ १२ ॥ हे अमितविक्रम । हम आपके
सदाके भक्त हैं, तब भी तुम हमारे ऊपर मेम नहीं रखते और
हमारा बुरा करनेवाले पाण्डवोंको तुम नित्य मसन्न किया करते
हो ॥ १३ ॥ तुम हमारे ही सशरसे जीविका करके हमारा
ही बुरा चीतते हो, मैं आपको, शहद सनेहुए उस्तरेकी समान
नहीं पहचान सका ॥ १४ ॥ यदि आप मुझे यह धरोसा नहीं
देते कि-मैं पाण्डवोंको पकड़ (रोक) लूँगा, तो मैं परको जाले
हुए जयद्रथको न रोकना ॥ १५ ॥ आपकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञाको
मुनकर मैंने मूर्खताकी जो सिंधुराजको घोरज देकर घर जानेसे
रोक लिया, परन्तु अब देखता हूँ, कि-मैंने मूर्खतासे सिंधुराजको
मृत्युके मुखमें भोंक दिया है ॥ १६ ॥ मनुष्य चाहे यमराजकी
हादके नीचे पहुँचकर भी वचजाय, परन्तु अर्जुनके वशमें पड़कर
जयद्रथ कभी भी जीवित नहीं बचेगा ॥ १७ ॥ इसलिये हे रक्षा-
श्व । आप ऐसा उपाय करें कि जिससे, जयद्रथ अर्जुनके हाथमें
वचजाय, और मेरी घबराहटकी बातों पर कोप न करके जयद्रथ

ते वाज्यपश्वत्थास्नासि मे सपः । सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुपस्य
विशाम्पते ॥ १९ ॥ सारथिप्रवरः कृष्णः शीघ्राश्वास्य हयोत्तमाः ।
अल्पश्च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनञ्जयः ॥ २० ॥ किन्न पश्यसि
बाणौघान् क्रोशपात्रे किरीटिना । पश्चाद्रथस्य पतितान् क्षिप्तान्
शीघ्रं हि गच्छतः ॥ २१ ॥ न चाहं शीघ्रयानेद्य समर्थो वयसा-
न्वितः । सेनामुखे च पार्थानामेतद्रजमुपस्थितम् ॥ २२ ॥ युधि-
ष्ठिरश्च मे ग्राहो म्रियतां सर्वधन्विनाम् । एवं मथा प्रतिज्ञातं क्षत्र-
मध्ये महाभुज ॥ २३ ॥ धनञ्जयेन चोत्सृष्टो वर्तते प्रमुखे नृप ।
तस्माद् व्यूहमुखं हित्वा नाहं योत्स्यामि फाल्गुनम् ॥ २४ ॥ तुल्या-
भिजनकर्पाणं शत्रुमेकं सहायवान् । गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं

की रक्षा करिये ॥ १८ ॥ द्रोणाचार्य बोले, कि-हे राजन् ! मुझे
तेरी बातों पर क्रोध नहीं आता है, क्योंकि-मैं तुझे अश्वत्थामा
की समान समझता हूँ परन्तु मैं जो सच्ची बात है वह कहता हूँ,
सुन ॥ १९ ॥ अर्जुनके सारथी कृष्ण महापराक्रमी हैं और इसके
छोड़े भी तेज हैं अतः सेनामें छोटासा भी मार्ग करके वह सेना
के भीतर शीघ्र ही घुसजाता है ॥ २० ॥ शत्रुओंके ऊपर छोड़े
हुए अर्जुनके बाण रथियोंके रथोंके पीछे कोस भर दूर जाकर
गिरते हैं, यह क्या तू नहीं देख रहा है ? ॥ २१ ॥ मैं वृद्ध अवस्था
के कारण अब फुर्तीसे इधर उधर नहीं दौड़सकता (परन्तु देख)
पाण्डवोंकी सेना हमारी सेनाके मुहाने पर आगई है ॥ २२ ॥
हे महाभुज ! मैंने क्षत्रियोंके बीचमें प्रतिज्ञाकी थी, कि-मैं सब
धनुर्धरोंके देखते हुए युधिष्ठिरको कैद कर लूँगा, अब युधिष्ठिर
धनञ्जयसे दूर है और युधिष्ठिर सेनाके मुहाने पर खड़ा हुआ
है, अतः मैं सेनाके मुहानेको छोड़कर अर्जुनसे लड़नेके लिये नहीं
जाऊँगा ॥ २३-२४ ॥ जा तू अपने सहायकोंको लेकर एकसे
कुल और पराक्रमवाले अर्जुनसे युद्ध कर, डरे मत, तू तो इस

अस्य जगतः पतिः ॥ २५ ॥ राजा शुभः कृषी दत्तो जेतुं पशुर-
 ऋजयः । वीरः स्वयं प्रयाण्य यत्र पार्थो धनञ्जयः ॥ २६ ॥
 दुर्योधन उवाच । कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रमृतां वग्म् । धन-
 ऋजयो मया शक्य आचार्य प्रतिवाधितुम् ॥ २७ ॥ अग्नि शक्यो
 रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरंदरः । नार्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपूर-
 ऋजयः ॥ २८ ॥ येन भोजश्च हार्दिकयो भवार्थं विदशोपमः ।
 अस्त्रमनापेन जितौ श्रुतायुध निवर्द्धितः ॥ २९ ॥ सुदक्षिणश्च निहतः
 स च राजा श्रुतायुधः । श्रुतायुधश्चाप्युतायुधश्च स्लेच्छादवायुनशो
 हताः ॥ ३० ॥ तं कथं पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम् । मति-
 योत्स्यामि दुर्दृष्टं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥ ३१ ॥ क्षमस्व मयसे
 युद्धं मम तं नाद्य संप्रये । परधानस्मि भवति मेध्यवद्वत्त मे यशः ३२
 द्रोण उवाच । सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनञ्जयः । अहन्तु

पृथ्वीका राजा है ॥ २५ ॥ इनकी ही नहीं, तू शूरवीर कृतकृत्य
 शत्रुको कैद करनेमें समर्थ, शत्रुके नगरोंको जीतनेवाला वीर
 और (महाराजा) है, अतः पृथायुत्र अर्जुनके सामने तू स्वयं
 जा ॥ २६ ॥ दुर्योधनने कहा, कि-हे आचार्य! जब सकल शस्त्र-
 धारियोंमें श्रेष्ठ आपसे ही वह बढगया, तो मैं उसको कैसे रोक
 सकूँगा? ॥ २७ ॥ अरणभूमिमें चाहे वज्रधारी इन्द्रको जीतलिया आप,
 परन्तु शत्रुनगरोंको जीतनेवाले अर्जुनको समरमें नहीं जीता जा
 सकता ॥ २८ ॥ जिसने रणमें हृदिकके पुत्र भोज और आप
 सरीखे देवताको भी जीतलिया और अस्त्रके मनापसे श्रुतायु,
 सुदक्षिण, श्रुतायुध, च्युतायु, अच्युतायु और सहस्रों स्लेष्मों
 का संहार करडाला, ऐसे अग्निही समान जाव्यन्यपान, महा-
 बली और अस्त्रकुशल अर्जुनके सामने मैं कैसे लड़ सकूँगा ?
 क्या तुम उसके साथ मेरा लड़ना टीक समझने हो ? मैं तुम्हारे
 अधीन हूँ तुम इस दासके यज्ञही रक्षा को न २९-३० ॥ द्रोणा-

तत् करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥ ३३ ॥ अद्भुतकवाद्यं पश्यन्तु
लोके सर्वधनुर्दुराः । विपक्षं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ३४
एष ते कवचं राजस्तथा बध्नामि काञ्चनम् । यथा न वाणा
नास्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥ ३५ ॥ यदि त्वां सामुरमुराः
सयत्नोरगराक्षसाः । योषयान्त त्रयो लोकाः सनरा नास्ति ते
भयम् ॥ ३६ ॥ न कृष्णो न च कौन्तेयो न चान्यः शस्त्रभृदणो ।
शरानर्पयितुं कश्चित् कवचं तव शक्यति ॥ ३७ ॥ स त्वं कवच-
मास्थाय क्रुद्धमद्य रणोर्जुनम् । त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वासौ
विसहिष्यति ॥ ३८ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा त्वरन्द्रोणः
स्पृष्टाम्भो वर्म भास्वरम् । आववन्धाद्रुततमं जपन् मन्त्रं यथा-
विधि ॥ ३९ ॥ रणे तस्मिन् सुमहति विजयस्य सुतस्य ते । विसि-

चार्यने कहा, कि-हे कुरुपुत्र ! तूने सत्य कहा, वास्तवमें अर्जुन
दुराधर्ष है, परन्तु मैं ऐसा करूँगा, कि-तू उसके सामने टक्कर
भेले सकेगा ॥ ३३ ॥ तू आज कृष्णके सामने अर्जुनके साथ
युद्ध कर और सब मनुष्य आज अर्जुनका और तेरा आश्चर्य-
जनक युद्ध देखें ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! मैं इस सुवर्णके कवचको
तुझे इसप्रकार पहराऊँगा, कि-जिससे युद्धके समय बाण
अथवा दूसरे अस्त्र इस कवचको भेद न सकेंगे ॥ ३५ ॥
यदि तेरे साथ देवता, दैत्य, यक्ष, सर्प, राक्षस और
तीनों लोक भी लड़नेको आजायें, तो भी तुझे डर नहीं लगेगा ३६
कृष्ण, अर्जुन तथा दूसरा कोई शस्त्रधारी भी तेरे कवचको बाणों
से न फोड़ सकेगा ॥ ३७ ॥ अतः आज तू इस कवचको धारण
करके रणमें खड़े होधमें भरेहुए अर्जुनके साथ लड़नेको शीघ्रता
से जा, आज वह तुझे सहन नहीं करसकेगा ॥ ३८ ॥ सञ्जयने
कहा, कि-इसप्रकार कहकर द्रोणने तुरन्त ही आचमन कर
शास्त्रानुसार मन्त्र पढ़कर वह प्रज्वलित तथा आश्चर्यजनक

स्मापयिषुन्तोक्तान् विषया ग्रन्थवित्तमः ॥ ४० ॥ द्रोण उवाच ।
 करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म ब्रह्मा चापि द्विजात्मनः । सरीसृपाश्च ये
 श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥ ४१ ॥ ययातिर्नाहृपश्चैव धुन्वु-
 मागे भागीरथः । तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ४२
 स्वरित तेस्त्येकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च । स्वस्त्यस्त्यपादके-
 भ्यश्च नित्यं नत्र गृह्यारणे ॥ ४३ ॥ स्वाहा स्वधा शची चैव
 स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा । लक्ष्मीकन्धनी चैव कुन्ती स्वस्ति तेऽ-
 नघ ॥ ४४ ॥ असिनो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाद्भिराः । वशिष्ठः
 कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥ ४५ ॥ धाता विधाता लोकेशो
 दिशश्च सदिगीश्वराः । स्वस्ति तेऽय मयच्छन्तु फासिकेयश्च
 पण्डितः ॥ ४६ ॥ विवस्वान् भगवान् स्वस्ति करोतु नव सर्वतः ।
 दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ॥ ४७ ॥ अथ भ्ना-

कवच दुर्योधनको पहिरादिया ॥३६॥ और महासंग्राममें तुम्हारे
 पुत्रकी विजय करानेकी इच्छासे, तथा विद्यामें लोकोंको विस्मिन
 करनेकी इच्छासे ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य इसप्रकार स्वस्तिवाचन
 करनेलगे ४० ॥ द्रोणने कहा, कि-हे भारत ! परमात्मा, ब्रह्मा
 और ब्राह्मण तेरा कल्याण करें और सर्प तथा दूसरेमाणी तेरा
 कल्याण करें ॥४१॥ नहुषपुत्र ययानि, धुन्धुमार, भागीरथ आदि
 राजर्षि तेरा नित्य कल्याण करें ॥४२॥ महारथमें एक पैरवाले
 बहुतसे पैरवाले तथा चरणशून्योंसे तेरी सर्वदा रक्षा हो ॥४३॥
 हे अनघ ! स्वाहा, स्वधा, शची, लक्ष्मी और अकन्धनी तेरा
 सर्वदा कल्याण करें ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! असिन, देवल, विश्व-
 मित्र, अद्भिरा, वशिष्ठ और कश्यप तेरा कल्याण करें ॥ ४५ ॥
 धाता, विधाता, लोकपाल, दिशाएँ दिवपाल और पदानन फासि
 केय आज तेरा कल्याण करें ४६ भगवान् मृग्ये, चारों दिशाओं
 के चारों दिग्गज, पृथ्वी आकाश तथा ग्रह आज तेरी सब

दुरणीं योसौ सदा धारयते नृप । शोपरच पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं
प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥ गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः ।
पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९ ॥ हततेजोवलाः
सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्ब्राह्मीता महा-
सुरात् ॥ ५० ॥ देवा ऊचुः । प्रमदितानां वृत्रेण देवानां देव-
सत्तम । गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥ ५१ ॥ अथ
पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान् । प्राह तथ्यमिदं वाक्यं
विपण्णान् सुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥ रक्षामे सततं देवाः सहेन्द्राः
सद्विजातयः । त्वष्टः सुदुर्द्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः ॥ ५३ ॥
त्वष्टा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा । वृत्रो विनिर्मितो देवाः
प्राप्पानुशां महेश्वरात् ॥ ५४ ॥ स तस्यैव प्रसादाद्वा इन्द्रादेव

शत्रुओंसे रक्षा करें ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! यह जो नागराज नीचे
से इस पृथ्वीको सर्वदा धारण किये रहते हैं वह शोपनाग भी
तेरा कन्याण करें ॥ ४८ ॥ हे गान्धारीपुत्र ! पहिले वृत्रासुरने युद्ध
में सहस्रों बड़े २ देवताओंको हराकर उनके शरीरोंको शस्त्रोंसे
बी-डाला था, उससे सब देवताओंका तेज और बल नष्ट होगया
था, तब सब देवता महासुर वृत्रासुरसे भयभीत हो ब्रह्माजीकी
शरणमें गए थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ देवताओंने कहा, कि-हे देव-
सत्तम ! वृत्रासुरसे दुःखी हुए हम देवताओंकी आप रक्षा करें
और महाभयसे हमें छुड़ावें ॥ ५१ ॥ यह सुनकर ब्रह्माजीने समीप
में खड़ेहुए विष्णु और खिन्न होतेहुए सब देवताओंसे कहा,
कि— ॥ ५२ ॥ हे देवताओं ! मुझे ब्राह्मण, इन्द्र और
देवताओंकी रक्षा करनी चाहिये और यह वृत्रासुर विश्वकर्माके
दुर्धर्प तेजसे उत्पन्न हुआ है ॥ ५३ ॥ हे देवताओं ! विश्वकर्माने
पहिले एक लाख वर्ष तक तपस्या करके श्रीशंकरके वरदानसे
इस वृत्रासुरको उत्पन्न किया है ॥ ५४ ॥ यह बलवान् वैरी

रिपुर्वली । नागत्वा शङ्करस्थानं भगवान् दृश्यते हरः ॥ ५५ ॥
 दृष्ट्वा जेष्ठयथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छन् मन्दरम् । यत्रास्मिन् तपसां गोनि-
 र्दत्तयज्ञविनाशनः ॥ ५६ ॥ पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेप्रनिपातनः ।
 तं गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम् ॥ ५७ ॥ अगदयंभ्य-
 जसां राशिं सूर्यकोटिसमममम् । सोऽब्रवीत् स्वागत्वं देवा घृत
 किङ्कुरवाण्यहम् ॥ ५८ ॥ अमोघदर्शनं गणं काममाप्तिरतोऽस्तु नः ।
 एवमुक्तास्तु ते सर्वे मत्पूजुस्तं दिवोक्तसः ॥ ५९ ॥ तेजो हृतं नो
 वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम् । मूर्त्तीरीक्षस्व नो देव महार्जुनरी-
 कृताः । शरणं त्वां प्रयन्ताः स्म गतिर्भव महेश्वर ॥ ६० ॥ शर्व
 उवाच । विदितं वो यथा देवाः कृत्येयं सुपथावता । त्वष्टुस्तेजो-

शिवजीके परदानसे ही तुम्हें पाररहा है, अतः तुम जहाँ शंकरके
 दर्शन होसके तहाँ ही जाकर उनसे मिलो ॥ ५५ ॥ शिवजीका
 दर्शन पाकर तुम दृष्ट्वासुरको जीनलोगे, तुम शीघ्र ही मन्दराचल
 पर जाओ, तहाँ तपके मूलरूप, दत्तके यज्ञको नष्ट करनेवाले,
 पिनाकपाणि, सब माणियोंके स्वामी, भगके नेत्रोंको फोड़नेवाले
 श्रीशंकर रहते हैं, यह सुन ब्रह्माजीको साथमें ले सब देवता मन्द-
 राचल पर गए, उन्होंने तहाँ करोड़ों सूर्योंकी प्रभाकी समान
 काज्जिमान्, तेजोंके पुञ्ज महादेवजीका देखा, देवताओंको देखते
 ही शंकरने कहा, कि-अहो ! आप भले पधारे, मैं आपका कौनसा
 काम करूँ ॥ ५६-५८ ॥ मेरा दर्शन निष्फल नहीं होता, अतः
 तुम्हारी कामना पूर्ण ही होगी, शिवजीके ऐसे वचनोंको सुनकर
 देवता कहनेलगे कि-॥५९॥ दृष्ट्वासुरने हमारा नेत्र नष्ट करदिया
 है, आप हम देवताओंकी रक्षा करिये, हे देव ! वृत्रके महारोमे
 जर्जरित हुई हमारी मूर्तियोंको तो देखिये ॥ ६० ॥ देवाधिपति
 शिव बोले-कि-हे महाबली देवताओं ! मैंने तुम्हारा सब वृत्तान्त
 सुनलिया, तुम जिस दैत्यके विषयमें कहते हो वह तो एक भयङ्कर

भवा घोरा दुर्निवार्याऽकृतात्मभिः ॥ ६१ ॥ अत्रयन्तु मया कार्यं
 साक्षं सर्वदिवाकसाम् । ममेदं गात्रजं शक कवचं गृह्य मांस्वरम् ६२
 वधानानेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर । वषायासुरमुखस्य वृत्रस्य
 सुरघातिनः । ६३ ॥ द्रोण उवाच । इत्युक्त्वा वरदः प्रादादर्म
 तन्मन्त्रमेव च । स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद् वृत्रचमूं मति ॥ ६४ ॥
 नानाविधैश्च शस्त्राद्यैः पात्यमानैर्महारणे । न सन्धिः शक्यते
 भेत्तुं वर्मवन्धस्य तस्य तु ॥ ६५ ॥ ततो जघान समरे वृत्रं देव-
 पतिः स्वयम् । तच्च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाङ्गिरसे ददाददङ्गिराः
 ग्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पतेः । बृहस्पतिरथोवाच अग्निवेश्याय
 धीमते ॥ ६७ ॥ अग्निवेश्यो मम प्रादात्तेन बध्नामि वर्म ते । तवाथ

कृत्या है वह विश्वकर्माके तेजसे उत्पन्न हुई है और साधारण
 व्यक्ति उसका पराजय भी नहीं करसकता ॥ ६१ ॥ परन्तु सकल
 देवताओंकी सहायता तो मुझे अवश्य करनी चाहिये, हे इन्द्र !
 तू मेरे शरीरपरके कवचको ग्रहण कर ॥ ६२ ॥ और देवताओंके
 घातक दैत्योंके नेता वृत्रासुरके वधके लिये मनमें इस मंत्र (जो मंत्र
 शिवने इन्द्रसे कहा) को पढ़कर शरीर पर कवचको धारणकर ६३
 द्रोणाचार्यने कहा, कि-इसप्रकार कहकर वरदान देनेवाले शिवने
 वह मंत्र और कवच इन्द्रको देदिया, उस कवचसे रक्षित इन्द्र
 वृत्रासुरकी सेनाकी ओरको चला ॥ ६४ ॥ उस कवचके जोड़ नाना
 प्रकारके शस्त्रोंके मारने पर भी नहीं टूट सकते थे ॥ ६५ ॥
 उस कवचको पहिरनेके अनन्तर इन्द्रने समरमें वृत्रासुरको मार
 डाला, इन्द्रने मंत्रसहित वह कवच दे, उस कवचको बाँधनेकी
 त्रिधि अंगिराको बतादी ॥ ६६ ॥ अंगिराने अपने मंत्रोंके शाता
 पुत्र बृहस्पतिको यह सब बताया और बृहस्पतिने वह मंत्रआदि
 बुद्धिमान अग्निवेश्यको दिया ॥ ६७ ॥ अग्निवेश्यने मंत्र सहित
 यह कवच मुझे दिया और हे राजश्रेष्ठ ! आज वही कवच में

देहरज्ञानं मन्त्रेण नृपसत्तमादिः सञ्जय उवाच । पुनस्तथा वतः
 द्रोणास्तव पुत्रं महायुनिम् । पुनरेव वचः प्राद शनैराचार्यपुङ्गवः ॥६८॥
 ब्रह्ममूत्रेण वध्नामि कवचं तव भारत । द्विरप्यगर्भेण यथा वदं
 विष्णोः पुरा रणे ॥७०॥ यथा च ब्रह्मणा वदं संग्रामे नारका-
 मये । शकस्य कवचं दिव्यं तथा वध्नाम्यहं तव ॥ ७१ ॥ वध्ना
 तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम् । मंत्रयाभास राजानं युद्धाय
 महेतु द्विजः ॥ ७२ ॥ स सन्नहो महाबाहुराचार्येण महामना ।
 रथानाञ्च सहस्रेण त्रिगर्त्तानां महारिणाम् ॥ ७३ ॥ तथा दन्वि-
 सहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम् । शयवानां नियुक्तेनैव नयान्यदच
 महारथैः ॥ ७४ ॥ एतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति । नाना-
 यादिवयोनेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥ ७५ ॥ ततः शब्दो महा-
 तरे शरीरकी रक्षाके लिये मंत्र पढ़कर तुम्हें पहिराना है ॥६८॥
 सञ्जयने कहा, कि-महायुनि आचार्यपुङ्गव द्रोणाचार्य दुर्योधनसे
 इसप्रकार कहकर फिर उससे धीरे-२ कहनेलगे कि-६८हे भारत!
 पहिले जैसे ब्रह्माने विष्णुको मंत्र पढ़कर कर वद दिव्य कवच
 पहिराया था और जैसे ब्रह्माजीने नारकासुरके संग्राममें वद दिव्य
 कवच इन्द्रको पहिराया था उस ही प्रकार ब्रह्माके उपदेशके
 अनुसार वद दिव्य कवच मैं तुम्हें पहिराना हूँ ॥ ७०-७१ ॥
 द्रोणाचार्यने उसको विधिपूर्वक कवच पहिराकर बड़ाभारी युद्ध
 करनेके लिये भेजदिया ॥ ७२ ॥ महाबाहु दुर्योधन इसप्रकार
 महात्मा द्रोणके हाथमे तयार होकर प्रहार करनेवाले सहस्रों
 रथी त्रिगर्त और मनवाले वीरवान् सहस्रों हाथी, एक लाख
 घोड़े तथा दूसरे भी महारथियोंको साथमें ले जाके मानके साथ
 विरोचनयुत्र दैत्यराज बलिकी समान अर्जुनके रथकी ओरका
 बढ़वला ॥ ७३-७५ ॥ हे भारत ! दुर्योधनको प्रस्थान करना

नासीत् सैन्यानां तव भारत । अगाधं मस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव
कौरवम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्यो-

धनकवचवन्धने चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

सञ्जय उवाच । मविष्टयोर्महाराज पार्थवाण्येषयो रणे । दुर्यो-
धने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभ ॥ १ ॥ जवेनाभ्यद्रवन्द्रोणं महता
निःस्त्रनेन च । पाण्डवाः सोमकैः साहं ततो युद्धमवर्त्तत ॥ २ ॥
तद्युद्धमभवच्चित्रं तुमुलं लोमहर्षणम् । कुरुणा पाण्डवानाञ्च
व्यूहस्य पुरतोद्भुतम् ॥ ३ ॥ राजन् कदाचिन्नास्माभिर्दृष्टं तादृक् न
च श्रुतम् । यादृक् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद्विशाम्पते ॥ ४ ॥ पृष्ठ-
द्युम्नमुखः पार्था व्यूहानीकाः महारिणः । द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे
शरवर्षैरवाफिरन् ॥ ५ ॥ वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।

हुआ देखकर तुम्हारी सेनामें अगाध समुद्रके खलभलाने की
समान बड़ाभारी कोलाहल होनेलगा ॥ ७६ ॥ चौरानवेर्वा
अध्याय समप्त ॥ ६४ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! अर्जुन और श्रीकृष्णके
सेनाके भीतर घुसजाने पर और उनके पीछे पुरुषार्थेष्ट दुर्योधनके
चढ़ाई करने पर ॥ १ ॥ पाण्डव सोमकोंके साथ बड़ाभारी शब्द
करतेहुए वेगसे द्रोणाचार्य पर भपटे ॥ २ ॥ व्यूहके मुहाने पर
कौरव और पाण्डवोंका तुमुल युद्ध होनेलगा, उस युद्धको देखने
पर रोंगटे खड़े होते थे तथा आश्चर्य होता था ॥ ३ ॥ हे राजन् !
दुपहरके समय जैसा यह युद्ध हो रहा था, वैसा युद्ध न हमने
कभी देखा और न अपने पितामह पिता आदिसे सुना था ॥ ४ ॥
पृष्ठद्युम्न आदि सब योधा पाण्डवोंकी सेनाको व्यूहरचनासे गूँथ
कर द्रोणाचार्यके ऊपर बाण बरसाने लगे ॥ ५ ॥ और हे महाराज !
हम द्रोणको आगे करके पृष्ठद्युम्न आदि सब पाण्डवोंके ऊपर

पार्श्वप्रमुखान् पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः ॥ ६ ॥ महासेनाचिवो-
दीर्णां मिश्रवार्तां दिपात्यये । सेनाग्रं प्रवकाशेन कनिरं रघुभूषितं
समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमूत्रमम् । मान्दवीयमुने नर्पां प्रादुर्षी-
बोन्वणोदके ॥ ८ ॥ नानाशस्त्रपुरोवानो द्विगान्तरगसंरुनः ।
गदाविधुन्महारीद्रः संग्रामजलदो महान् ॥ ९ ॥ भारद्वाजानिलो-
दधूतः शरधारासदृशवान् । अभ्यवर्षन्महासैन्यः पाण्डुसेनानि-
मुद्धतम् ॥ १० ॥ समुद्रमिव घर्षन्ति विशन् पुरो महाजितः । व्य-
जोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमां ॥ ११ ॥ तेषु सर्वप्रयत्नेन
द्रोणमेव समाद्रवन् । विभित्सन्तो महासेतुं नार्थीया प्रवला इव । २
वारयामास तान् द्रोणो जलौघमचलो यथा । पाण्डवान् समरे

नाण लोढनेलगे ॥ ६ ॥ जैसे शिशिर अतुमें पवनसे दो भागोंमें
फटा हुआ बादल शोभा पाता है तैसे ही रथोंमें भूषित उन दोनों
सेनाओंकी शोभाहुई ॥ ७ ॥ जैसे वर्षा अतुमें जल बटमानेके
कारण गङ्गा और यमुना नदी भिलनेके स्थानपर बड़े वेगमें भर
जातीहैं तैसे ही वे दोनों सेनाएँ भी आपसमें मिलकर बड़ा जोर
करने लगीं ॥ ८ ॥ हाथी घोड़े और रथोंमें विगहृष्टा संग्राम
रूप मेघ गरजनेलगा, अनेकों प्रकारका शस्त्ररूप पवन चलनेलगा
गदारूप विजलिये चपकनेलगीं, द्रोणाचार्यरूप पवनसे उड़लना
हुआ महासेनारूप मेघ, बाणरूप हजारों धाराओंसे पाण्डवोंकी
सेनारूप धक्कफातेहुए अग्निके ऊपर बरसनेलगा ॥ ९-१० ॥
ग्रीष्म अतुके अन्तमें समुद्रमें प्रवेश कर उसकी धँसोलनेवाले
भँकावानकी समान घासणथेष्ट द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको
धँसोलनेलगे ॥ ११ ॥ पुत्रको नोढ़नेकी इच्छासे भयंकर जलके
महापवाह जैसे समुद्रमें टकराते हैं तैसे ही वे सब पाण्डव आदि
भी द्रोणसे टकराने लगे ॥ १२ ॥ जैसे जलके प्रवाहको पर्वत
लौटा देता है तैसे ही क्रोधमें भरेहुए पाण्डव, पञ्चाल और कैट्य

क्रुद्धान् पञ्चालांश्च सकेकयान् ॥ १३ ॥ अथापरं च राजानः
परिवृत्य समन्ततः । महाबला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन् १४
ततो रणे नरव्याघ्रः पार्षतः पाण्डवैः सह । सञ्जघानासकृद्
द्रोणं विभित्सुररिवाहिनीम् ॥ १५ ॥ यथैव शरवर्षाणि द्रोणो
वर्षति पार्षते । तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत ॥ १६ ॥
सनिस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिमासष्टिसंवृतः । ज्याविद्युच्चापसंहादो धृष्ट-
द्युम्नबलाहकः ॥ १७ ॥ शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत् सर्वतो
दिशम् । निघ्नन् रथवरारवौघान् सावयामास बाहिनीम् ॥ १८ ॥
यं यमार्च्यच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम् । ततस्ततः शरैर्द्रोण-
मपाकर्षत पार्षतः ॥ १९ ॥ तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि
भारत । धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिधत् ॥ २० ॥ भोज-

को द्रोणने ढकेलदिया १३ तथा और भी महाबली शूरवीर राजे
चारों ओरसे आ आकर पंचालोंको हटाने लगे ॥ १४ ॥ तद-
नन्तर शत्रुसेनाको भंग करनेकी इच्छासे पाण्डवों सहित नरव्याघ्र
धृष्टद्युम्नने रणमें बारम्बार द्रोणके ऊपर प्रहार करना आरम्भ
करदिया ॥ १५ ॥ जैसे २ द्रोण धृष्टद्युम्नपर बाण बरसाते थे तैसे
धृष्टद्युम्न भी द्रोणके ऊपर बाणोंकी वर्षा किये जा रहा था ॥ १६
तलवाररूपी पवन जिसके आगे चलता था, ऐसे शक्ति, भाले
तथा शृष्टियोंसे युक्त प्रत्यङ्गरूपी विजलीको चपकाते हुए और
धनुषकी टङ्कारूप गर्जना करतेहुए धृष्टद्युम्नरूप मेघने महार-
थियोंका तथा घुड़सवारोंका संहार करके और चारों दिशाओंमें
बाणरूपी ओले बरसाकर कौरवोंकी सेनाको रणमेंसे भगाकर
छोड़ा ॥ १७-१८ ॥ द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी रथियोंकी जिस २
टोली पर बाण बरसाते थे, तहाँ २ ही धृष्टद्युम्न बाणोंका प्रहार
करके द्रोणको हटा देता था ॥ १९ ॥ हे भारत ! द्रोणाचार्यके
इसप्रकार रणमें बड़े यत्नसे लड़ते रहने पर भी धृष्टद्युम्नके कारण

मेकैभ्यवत्तन् जलसन्धं तथा परे । पाण्डवैरन्यमानाश्च द्रोणमेवा-
 परे ययुः ॥ २१ ॥ संपट्टयति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनाम्बरः ।
 व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महावयः ॥ २२ ॥ धार्मिकाणा-
 म्स्तथा भूता बध्यन्ते पाण्डुमृज्जयैः । अगोपा पशवोरग्रे ययुभिः
 श्वापदैरिव ॥ २३ ॥ कालः संग्रसने योधान् धृष्टद्युम्नेन मोहि-
 तान् । संग्रासे तुमुक्ते तस्मिन्निति संमनिरं जनाः ॥ २४ ॥ कुन्-
 पस्य यथा राष्ट्रं द्रुभिर्जिह्वाधितरकरैः । द्राव्यने नृद्व्यापन्ना पाण्ड-
 वैस्तव वाहिनी ॥ २५ ॥ अर्करश्मिविभिश्चेष्टु शस्त्रेणु कवचेणु च ।
 चक्षुःपि मत्पदन्यस्त सैन्येन रजसा तथा ॥ २६ ॥ त्रिधा भूतेषु
 सैन्यस्य बध्यमानेषु पाण्डवैः । अगर्हितस्ततो द्रोणः पञ्चालान व्य-

उनकी सेनाके तीन टुकड़े हो गए ॥ २० ॥ कितने ही योधा
 पाण्डवोंकी मारसे डरकर भोजराजकी सेनामेंको भाग गए, कितने
 ही जलसन्धके पासको ढाँड गए और कितने ही द्रोणके पास ही
 खड़े रहे ॥ २१ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण जैसे २ अपनी सेनाको
 इनही करनेका यत्न करनेलगे तैसे ही धृष्टद्युम्न इनकी सेनाका
 अधिक संहार करनेलगा ॥ २२ ॥ जैसे वनमें बिना आलिंगके
 पशुओंको हिंसक पशु मारडालते हैं ऐसे महापराक्रमी पाण्डव
 और सृञ्जय भी रक्तकरहित हुए और वीरोंका संहार करनेलगे २३
 और मनुष्य ऐसा समझनेलगे कि-इस प्रकार संग्राममें धृष्टद्युम्नकी
 मारसे मोहित हुए योधाओंको कहीं काल तो नहीं मिले जा रहा
 है ॥ २४ ॥ जैसे दुष्ट राजाका देश दुष्काल रोग और चोरोंकी
 पीड़ासे उजाड़ हो जाता है तैसे ही और वीरोंकी सेना भी पाण्डवोंके
 भयसे खिन्न होकर रणभूमिमेंसे भाग गई और रणभूमि उजाड़
 होगई ॥ २५ ॥ हे राजन ! योधाओंके नेत्र भी सूर्यकी किरणोंके
 साथ मिली हुई जम्बोंकी और कवचोंकी चमकसे तथा सेनाके पैरों
 से उठती हुई धूलसे बन्द हो गए ॥ २६ ॥ जब पाण्डवोंकी सामने

धमच्छरैः ॥ २७ ॥ मृदूनन्तस्तान्यनीकानि निष्कतश्चापि सायकैः ।
 वभूव रूपं द्रोणस्य कालान्नेरिव दीप्यतः ॥ २८ ॥ रथं नागं ह्य-
 ञ्चापि पश्चिनञ्च विशाम्पते । एकैकेनेपुणा संख्ये निर्विभेदं महा-
 रथः ॥ २९ ॥ पाण्डवानान्तु सैन्येषु नास्ति कश्चित् स भारत ।
 दधार यो रणे बाणान् द्रोणचापच्युतान् प्रभो ॥ ३० ॥ तन्
 पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् । वभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र
 तत्रैव भारत ॥ ३१ ॥ तथैव पार्षतेनापि कान्यमानं बलं तव । अम-
 वन् सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाग्निना ॥ ३२ ॥ बाध्यमानेषु सैन्येषु
 द्रोणपार्षतसायकैः । त्यक्त्वा प्राणान् परं शक्यता युध्यन्ते सर्वतो
 मुक्ताः ॥ ३३ ॥ तावकानां परेषाञ्च युध्यतां भरतर्षभ । नासीत्

द्रोणकी सेनाके तीन भाग होगए उस समय द्रोण क्रोधमें भर
 कर पञ्चालोंको बाणोंसे बीचनेलगे ॥ २७ ॥ पाण्डवोंकी सेना
 का मर्दन करतेहुए और बाणोंसे संहार करते हुए द्रोणका
 स्वरूप प्रदीप्त कालाग्निकी समान होगया ॥ २८ ॥ और महा-
 रथी द्रोणने इस युद्धमें एक ही बाणसे रथ हाथी घोड़े और
 पैदलोंको बीचदिया ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! पाण्डवोंकी सेनामें ऐसा
 कोई भी नहीं था, कि—जो द्रोणके धनुषमेंसे छूटेहुए बाणोंको
 सह सकता ॥ ३० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जब द्रोणाचार्यके धनुष
 मेंसे बाण छूटनेलगे, तब बाणरूपी सूर्यके तापसे अत्यन्त सन्तप्त
 होकर घृष्टद्युम्नकी सेना इधर उधरको चक्कर काटनेलगी ३१
 घृष्टद्युम्नकी खदेडी हुई तुम्हारी सेना भी जैसे मृत्वा वन अग्नि
 से चारों ओरसे जल उठना है तैसे ही चारों ओरसे जलनेलगी ३२
 जब द्रोण और घृष्टद्युम्नके बाणोंसे सेनाएँ पीड़ित होनेलगीं
 तब योधा अपने प्राणोंकी भी अपेक्षा न रखकर चारों ओर
 पूर्ण शक्ति लगाकर लड़नेलगे ३३ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ महाराज !
 उस समय तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनामें ऐसा एक भी नहीं था

कश्चिन्महाराज योत्याक्षीत् संयुगं भयात् ॥ ३४ ॥ भीमसेनन्तु-
क्रौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन् । विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महा-
रथः ॥ ३५ ॥ बिन्दानुबिन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ।
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवानुयायिनः ॥ ३६ ॥ बाह्लीकराज-
स्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः । सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयान-
वारयत् ॥ ३७ ॥ शैब्यो गोवासनो राजा योर्ध्वैश्शशतावरैः ।
काश्यस्याभिभूवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥ ३८ ॥ अजातशत्रु-
क्रौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम् । मद्राणामीश्वरः शन्यो राजा
राजानमावृणोत् ॥ ३९ ॥ दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकमर्षणः ।
सात्यकिं प्रययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥ ४० ॥ स्वकेनाहमनी-
केन सन्तुहः कवचावृतः । चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम् ४१

जो भयके कारण संग्रामको छोड़ भागा हो ॥ ३४ ॥ कुन्तीपुत्र
भीमसेनको महारथी विकर्ण, विविंशति और चित्रसेन इन तीन
भाइयोंने चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३५ ॥ तुम्हारे तीन पुत्रोंके
पीछे खड़े होकर अवन्ति देशके राजे बिन्द और अनुबिन्द तथा
वीर्यवान् क्षेमधूर्ति ये तीन सहायता कर रहे थे ॥ ३६ ॥ महा-
रथी तेजस्वी, कुलका पुत्र बाह्लीकराज अपनी सेना और मन्त्रि-
योंको साथमें लेकर द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको रोकने लगा ॥ ३७ ॥
शिविका पुत्र राजा गोवाशन एक सहस्र योधाओंके साथमें खड़ा
होकर काशिराज अभिभूके पुत्र पराक्रान्तको रोकने लगा ॥ ३८ ॥
मद्रदेशके राजा शन्यने प्रज्वलित अग्निकी समान कुन्तीपुत्र राजा
युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३९ ॥ क्रोधी दुःशासन
अपनी सेनाको दूर खड़ी रखकर क्रोधमें भर महारथी सात्यकी
के ऊपर चढ़ गया ॥ ४० ॥ और मैं अपना कवच धारण कर
तयार हो अपने साथ चार सौ महाधनुषधारियोंको ले चेकितान
को रोकने लगा ॥ ४१ ॥ शकुनि धनुर्धर शक्तिधर और तलवार

शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत् । गांधारकैः सप्तशतैश्चाप-
शक्त्यसिपाणिभिः ॥ ४२ ॥ विन्दानुवि दावावन्त्यौ विराटं मत्स्य-
मार्च्छताम् । प्राणास्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेभ्युद्यतायुधौ ॥ ४३ ॥
शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपरान्निभम् । बाह्लीकः प्रतिसंयत्तः
पराक्रान्तमवारयत् ॥ ४४ ॥ धृष्टद्युम्नं तु पाश्चान्यं क्रूरैः सार्द्धं
प्रभद्रकैः । आवन्त्यः सह सौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४५ ॥
घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम् । अलायुधोद्वक्तृणां
क्रुद्धप्रायान्तमाहवे ॥ ४६ ॥ अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो
महारथः । सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४७ ॥ सैन्यवः
पृष्ठतस्त्वासीत् सर्वसैन्यस्य भारतारक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभ्यो
रथैः ॥ ४८ ॥ तस्यास्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्यवस्य बृहत्तमौ ।

वाले सात सौ गांधार देशी योधाओंकी सेनाको साथमें ले माद्री
के पुत्रको रोकने चला ॥ ४२ ॥ मित्र दुर्योधनके लिये अस्त्रोंको
हथमें लेनेवाले महाधनुषधारी अवन्तिदेशके विन्द और अनु-
विन्दने प्राणपणसे विराट और मत्स्यराजको घेरलिया ॥ ४३ ॥
शंखआदि धारणकर तयार हुए राजा बाह्लीकने महापराक्रमी
अजैय और सङ्मुख आते हुए याज्ञसेनके पुत्र शिखण्डीके ऊपर
चढ़ाईकी ॥ ४४ ॥ मूर्तिमान् क्रोधकी समान धृष्टद्युम्नको, अवन्ति
देशके राजाने क्रूर प्रभद्रक और सौवीरको साथमें लेकर रोक
लिया ॥ ४५ ॥ क्रूर कर्मकरनेवाले क्रोधमें भरकर आतेहुए वीर
राक्षस घटोत्कचके सामने रणमें अलायुध क्रुद्धपड़ा ॥ ४६ ॥
और महारथी कुन्तिभोजने बड़ीभारी सेनाको साथमें ले क्रोध-
मूर्ति-सत्त्वोंके राजा अलम्बुषके ऊपर चढ़ाई कर उसको घेर
लिया ॥ ४७ ॥ हे भारत-सिंधुदेशका राजा जयद्रथ सबके पीछे
था और कृपाचार्य आदि महाधनुषधारी उसकी रक्षा कर रहे
थे ॥ ४८ ॥ उस सिंधुराजके दोनों ओर चक्ररक्षक खड़े थे,

द्रोणिर्दक्षिणतो राजन् सूनपुत्रश्च वामतः ॥ ४६ ॥ पृष्ठगोपास्तु
तस्यासन् सौमदक्षिपूरोगमाः । कृशश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च
दुर्जयः ॥ ५० ॥ नीलिमन्तो महेष्वामा सर्वे युद्धविशारदाः ।
सैन्यवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि

संकुलयुद्धे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

सञ्जय उवाच । राजन् संग्रामपार्श्वयं शृणु कीर्तयतो मम ।
कुरुणां पाण्डवानाञ्च यथा युद्धपवर्त्तत ॥ १ ॥ भारद्वाजं समा-
साद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् । अयोधयन्त्रणे पार्था द्रोणानीकं
विभित्सवः ॥ २ ॥ रत्नपाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोपि सह सैनिकैः ।
अयोधयद्रणे पार्थान् पार्थयानो महद्यशः ॥ ३ ॥ विन्दानुविन्दा-
चावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः । आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्र-

वनमें दाहिनी ओर अश्वत्थामा और बाई ओर कर्ण खड़ा
था ॥ ४६ ॥ सोमदक्षके पुत्रको मुखिया बनाकर कृपाचार्य, वृष-
सेन, शल और दुर्जय शल्य आदि नीतिवेत्ता, महाधनुषधारी
और युद्धकुशल सब योधा, सिन्धुराजकी पीठकी ओर खड़े
उसकी रक्षा कर रहे थे, इसप्रकार कौरवपक्षके सब योधा सिन्धु-
राजकी चारों ओरसे रक्षा करके लड़नेलगे ॥ ५०-५१ ॥
पिचानवेर्वा अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥

सञ्जयने कहा, कि-कौरव और पाण्डवोंका आश्चर्यजनक
संग्राम जिसप्रकार हुआ उसको मैं कहता हूँ सुनिये, ॥ १ ॥
पाण्डव व्यूहके मुहानेपर खड़ेहुए द्रोणाचार्यके सामने पहुँचकर
सेनाकांहें संहार करनेकी इच्छासे रणमें उनके साथ लड़नेलगे २
बड़ा भारी यशपानेकी इच्छावाले द्रोणाचार्य भी व्यूहकी रक्षामें
तत्पर रहे और सैनिकोंको साथमें ले पाण्डवोंसे लड़ने भी लगे ३
तुम्हारे पुत्रके हितपी उज्जैनके विन्द और अनुविन्दने भी बड़े

हितैषिणौ ॥ ४ ॥ विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ ।
 पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयावास सातुर्गा ॥ ५ ॥ तेषां युद्धं सम-
 भवद्धारुणं शोणितोदकम् । सिंहस्य द्विपस्युखाभ्यां प्रभिन्नाभ्यां
 यथा वने ॥ ६ ॥ बाह्लीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिमहाबलः । आजग्रे
 विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥ ७ ॥ बाह्लीको याज्ञसेनिन्तु
 हेमपुंखैः शिलाशिनैः । आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ८
 तद्युद्धमभवद् घोरं शरशक्तिसमाकुलम् । भीरुणा प्रासजननं
 शूराणां हर्षवर्द्धनम् ॥ ९ ॥ ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिश-
 स्तथा । अभवत् संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १० ॥ शैव्यो
 गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम् । ससैन्यो योधयावास गजः
 प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥ बाह्लीकराजः संक्रुद्धो द्रौपदेयान्महा-

क्रोधमें भरकर राजा विराटक दश बाण मारे ॥ ४ ॥ हे महाराज !
 राजा विराट भी युद्धमें खड़े हुए परम पराक्रमी उन दोनों
 भाइयोंको जीतनेके लिये उनके साथ लड़नेलगा ॥ ५ ॥ जैसे
 सिंह वनमें दो मदमत्त हाथियोंसे युद्ध करता हो इसप्रकार ही
 उनका दारुण युद्ध होनेलगा और इस युद्धमें लोहकी धार वह
 निकली ॥ ६ ॥ महाबली द्रुपदके पुत्रने क्रोधमें भरे बाह्लीकको
 हड्डी और मर्ब भागोंको तोड़ देनेवाले बाणोंसे घायलकिया ७
 इससे बाह्लीकको बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने नमी हुई
 गांठ तथा मुनहरी पूँछवाले सब शिलाके ऊपर तेज कियेहुए नौ
 बाण धृष्टद्युम्नके मारे ॥ ८ ॥ उस घोर युद्धमें बाण और शक्तियें
 मनुष्योंको व्याकुल कर रही थीं तथा उनको देखकर ढरपोकोंको
 बड़ा भय लगरहा था और शूरवीरोंको बड़ा आनन्द आरहा
 था ॥ ९ ॥ उनके छोड़े हुए बाण आकाश और दिशा आदि सब
 में भरगए, इससे तहाँ कुछ दिखाई ही नहीं देता था ॥ १० ॥
 जैसे हाथी हाथीसे लड़ता है तैसे ही शिविपुत्र राजा गोवासन

रथान् । मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन् रणे ॥ १२ ॥
 अयोधयस्ते सुभृशं तं शरौघैः समन्ततः । इन्द्रियार्था यथा देह-
 शश्वदेवतां वर ॥ १३ ॥ वाष्ण्येयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासन-
 स्तव । आजग्रे सायकैस्तीक्ष्णैर्नत्रभिर्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥ सोतिविद्धो
 बलवता महेष्वासेन धन्विना । ईषन्मूर्ध्ना जगामाशु सात्यकिः सत्य-
 विक्रमः १५ समाश्वस्तस्तु वाष्ण्येयस्तव पुत्रं महारथम् । विव्याध
 दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १६ ॥ तावन्न्योन्यं दृढं विद्वा-
 च्न्योन्यशरपीडितौ । रजतुः समरे राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ १७
 अलम्बुषस्तु संकुद्रः कुन्तिभोजशरादितः । अशोभत भृशं लक्ष्म्या
 पुष्पाढ्य इव किंशुकः ॥ १८ ॥ कुन्तिभोजं ततो रत्नो विध्वा-

सेनाको साथमें ले महारथी काश्यपुत्रसे युद्धमें जूझ पड़ा ॥ १२ ॥
 कोधमें भरा राजा बाल्हीक, द्रौपदी के महारथी पाँचों पुत्रोंसे
 लड़ता हुआ ऐसा शोभित हो रहा था जैसे पाँचों इन्द्रियोंसे मन
 युद्ध कर रहा हो ॥ १३ ॥ हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ ! इन्द्रियोंके विषय
 जैसे सर्वदा देहसे लड़ते रहते हैं तैसेही ये पाँचों बाल्हीकके ऊपर
 चारों आरसे बड़ी भारी बाण वर्षा करने लगे ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्र
 दुःशासनने वृष्णिवंशी सात्यकिके नभी हुई गाँठवाले नौ तीक्ष्ण
 बाण मारे ॥ १५ ॥ सत्यपराक्रमी सात्यकि महाधनुषधारी बलवान्
 दुःशासनके महारथसे बढ़ा ही घायल होगया और उसको थोड़ी
 सी मूर्खी भी आगई जब सात्यकि सचेत हुआ तब उसने तुम्हारे
 महारथी पुत्रको कंकपत्रवाने दश बाणोंसे वींघ दिया ॥ १६ ॥
 रणमें वे दोनों आपसमें एक दूसरेके बाणोंसे बहुत ही घायल
 होकर खिले हुए दो टेसूके वृत्तोंकी समान शोभा पाने लगे ॥ १७ ॥
 कुन्तिभोजके बाणोंसे व्याकुल होकर अलम्बुष पुष्पोंके धनी
 टेसूके वृत्तकी समान शोभायमान हुआ और उसे बड़ा क्रोध
 चढ़ा ॥ १८ ॥ वह राजस राजा कुन्तिभोजको बहुतसे लोहेके

बहुभिरायसैः । अनदञ्जैरवं नादं बाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १६ ॥
 ततस्तौ समरे शूरा योधयन्तौ परस्परम् । ददृशुः सर्वसैन्यानि
 शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥ २० ॥ शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरञ्च
 भारत । माद्रीपुत्रौ सुसंरब्धौ शरैश्चाद्वयताम्भृशम् ॥ २१ ॥ तुमुलः
 स महान् राजन् प्रावर्तत जनक्षयः । त्वया सञ्जनितोत्यर्थं कर्णेन
 च विवर्द्धितः ॥ २२ ॥ रक्षितस्तव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः ।
 य इमां पृथिवीं राजन् दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥ २३ ॥ शकुनिः
 पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः । न स्म जानाति कर्त्तव्यं
 युद्धे किञ्चित् पराक्रमम् ॥ २४ ॥ विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ
 महारथौ । ववर्षतुः पुनर्वाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५ ॥ स

बाणोंसे घायल करके तुम्हारी सेनाके मुख पर बड़ी जोरसे गर्जने
 लगा ॥ १६ ॥ तदनन्तर सब सेनाओंने सपरमें आपसमें युद्ध
 करनेवाले उन योधाओंको इसप्रकार युद्ध करतेहुए देखा जैसे
 कि-पहले इन्द्र और जम्भासुर लड़े थे ॥ २० ॥ हे भारत !
 दूसरी ओर क्रोधमें भरेहुए माद्रीके पुत्र, पहिलेसे वैर करनेवाले
 और क्रोधमें भरेहुए शकुनिको बाणोंकी मारसे बहुत ही पीड़ा देने
 लगे ॥ २१ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार तुम्हारे कारणसे उत्पन्न हुआ,
 कर्णके कारणसे बड़ाहुआ बड़ा भयङ्कर जनक्षय होनेलगा है २२
 क्रोध जिसकी जड़ है और तुम्हारे पुत्रोंने जिसकी रक्षा करी है
 ऐसा यह रणरूप अग्नि इस सम्पूर्ण पृथ्वीको भस्म करनेको
 उद्यत होगया है ॥ २३ ॥ पाण्डुपुत्रोंने बाण मारकर शकुनिको
 रणमेंसे भगादिया, उस समय शकुनि रणमें कुछ न करसका
 मानो वह युद्धमें पराक्रम करना ही भूलगया ॥ २४ ॥ महारथी
 माद्रीके पुत्र शकुनिको रणमेंसे भागताहुआ देखकर जैसे दो मेघ
 महापर्वतके ऊपर बाण बरसाते हैं तिसप्रकार उसके ऊपर फिर
 बाण बरसाने लगे ॥ २५ ॥ जब नमी हुई गाँवोंवाले बाणोंसे शकुनि

वध्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः । सम्प्रायाज्जवनैरश्वद्रोणा-
नीकाय सौबलः ॥ २६ ॥ घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमला-
युधम् । अभ्ययाद्रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥ तथोयुद्धं
महाराज चित्ररूपमिवाभवत् । यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयो-
र्मध्ये ॥ २८ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा मद्राजानमाहवे । विध्वा
पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याघ्र सप्तभिः ॥ २९ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं
तयोरत्यद्भुतं नृप । यथा पूर्वं महद्युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥
विचित्रशक्तिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवात्मजः । अयोधयन् भीमसेनं
महत्या सेनया वृताः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वंद्वयुद्धे

पणवृत्तितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सञ्जय उवाच । तथा तस्मिन् प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे । कौ-
रवेयास्त्रिधा भूतान् पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥ १ ॥ जलसन्ध महाबाहु

बहुत ही पीड़ा पाने लगा तब बड़े घोड़ोंको तेजीसे हाँककर द्रोण
की सेनामेंको भाग गया ॥ २६ ॥ घटोत्कच, अलायुध नामक
शूर राक्षसके सामने मध्यम वेगसे युद्ध करनेको जाचदा ॥ २७ ॥
हे महाराज ! उन दोनोंका युद्ध बड़ीही विचित्र रीतिसे होने लगा,
ऐसा आश्चर्यजनक युद्ध पहिले राम और रावणका हुआ था ॥ २८ ॥
तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने रणमें मद्राजके पञ्चास बाण मारे
और फिर सात बाण मारे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर पूर्व-
कालमें जैसे इन्द्र और शम्बरामरका महायुद्ध हुआ था तैसाही
आश्चर्यजनक युद्ध उन दोनोंमें होने लगा ॥ ३० ॥ चित्रसेन, विचि-
त्रशक्ति और तुम्हारा पुत्र विकर्ण, बड़ी भारी सेनाको साथमें लेकर
भीमसेनसे युद्ध करने लगे ॥ ३१ ॥ द्विषानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥

सञ्जयने कहा, कि हे राजा धृतराष्ट्र ! उस लोमहर्षण संग्राम
के होनेके समय तीन भागोंमें बटेहुए कौरवोंके ऊपर पांडवोंने

भीमसेनोभ्यवर्त्तत । युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २ ॥
 किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांशुमान् । धृष्टद्युम्नो महाराज
 द्रोणमभ्यद्रवद्रोणे ॥ ३ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
 कुरूणां पाण्डवानाञ्च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥ ४ ॥ संज्ञये तु
 तथाभूते वर्त्तमाने महाभये । द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीत-
 वत् ॥ ५ ॥ द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह । यदक्षिपत्
 सायकौर्घास्नदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥ पुण्डरीकवनानीव त्रिध्व-
 स्तानि समन्ततः । चक्राते द्रोणपांचाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ७
 विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः । वस्त्राभरणशस्त्राणि
 ध्वजवर्षायुधानि च ॥ ८ ॥ तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण
 च । संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सन्निवृत्तः ॥ ९ ॥ कुञ्जरा-

धावा करदिया ॥ १ ॥ युद्धमें भीमसेनने महाबाहु जलसंधके ऊपर
 चढाईकी थी और युधिष्ठिरने अपनी सेनाको ले कृतवर्माके ऊपर
 चढाईकी थी ॥ २ ॥ किरणोंवाले सूर्यकी सपान बाणोंको छोड़ते
 हुए धृष्टद्युम्नने हे महाराज ! रणमें द्रोणके ऊपर चढाईकी थी ३
 तदनन्तर फुरती करतेहुए और क्रोधमें भरे सब धनुषधारी
 पांडव और कौरवोंका परस्पर युद्ध आरम्भ होगया ॥ ४ ॥ अब
 महाभयङ्कर युद्ध चलनेलगा, योधाओंका संहार होनेलगा और
 सेनादल निर्भय हो द्वन्द्व युद्ध करनेलगे ॥ ५ ॥ उस समय बल-
 वान् धृष्टद्युम्नके साथ लड़तेहुए बली द्रोणने जिसप्रकार बाणोंके
 प्रवाह चलाये थे, वह एक आश्चर्यजनक दृश्य था ॥ ६ ॥ द्रोणा-
 चार्य और पञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नने मनुष्योंके शिरोंको इसप्रकार
 छिन्न भिन्न कर ढेर लगादिया कि-वे दूरसे देखने वालोंको
 चारों ओरसे तोड़ाहुआ कमलोंका वनसा प्रतीत होता था ॥ ७ ॥
 सेनाओंमें चारों ओर योधाओंके वस्त्र, गहने, शस्त्र, ध्वजा,
 कवच और अस्त्र इधर उधर पड़े थे ॥ ८ ॥ रुधिरसे सने सुवर्ण

रवनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः । तालमात्राणि चापानि विक-
र्षन्तो महारथाः ॥ १० ॥ असिचर्माणि चापानि शिरांसि कव-
चानि च । विप्रकीर्यन्त शूराणां सम्प्रहारे महात्मनाम् ॥ ११ ॥
उत्थितान्यगणयानि कवन्धानि समन्ततः । अदृश्यन्त महाराज
तस्मिन् परमसंकुले ॥ १२ ॥ गृध्राः कट्वा वकाः श्येना वायसा
जम्बुकास्तथाः । बहुशः पिशिताशाश्च तत्रादृश्यन्त मारिष ॥ १३ ॥
भक्षयन्तश्च मांसानि पिवन्तश्चापि शोणितम् । विलुम्पन्तश्च
केशांश्च मज्जांश्च बहुधा नृप ॥ १४ ॥ आकर्षन्तः शरीराणि
शरीरावयवास्तथा । नराश्वगजसंघानां शिरांसि च ततस्ततः १५
कृतास्त्रा रणदीप्ताभिर्दीक्षिता रणशालिनः । रणे जयं प्रार्थयाना
भृशं युयुधिरे तदा ॥ १६ ॥ असिमार्गान् बहुविधान् विचेरुः

के कवच विजलीवाले मेर्योंकी समान दीखते थे ॥ १० ॥ और तहाँ
महारथी, ताड़की समान धनुषोंको खेंच बाणोंसे हाथी, घोड़े और
मनुष्योंको गिरारहे थे ॥ ११ ॥ प्रहारके समय शूर वीर महा-
त्माओंके धनुष, तलवार और कवच गिरेजाते थे तथा गिर उड़े
जाते थे ॥ १२ ॥ हे महाराज ! उस परम घोर युद्धमें अगणित
कवच थड़ उठतेहुए दीखते थे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उस समय
तहाँ गीध, कंक, बगले, बाज, कौए, गीदड़ तथा बहुतसे मांसका
आहार करनेवाले प्राणी बहुतायतसे दीखनेलगे ॥ १४ ॥ हे
राजन् ! वे शूरदोंके मांसके खाते हुए रुधिरको पीनेलगे शिरके
केशोंको खींचते थे, शरीरकी मज्जाको खाते और शरीरको तथा
शरीरके अवयवोंको आपसमें खेंच रहे थे और मनुष्य, हाथी
तथा घोड़ोंके शिरोंको लुढ़का रहे थे ॥ १४-१५ ॥ उस समय
अस्त्रविद्यामें कुशल योधा रणदीक्षासे दीक्षित हो, रणमें जय
चाहतेहुए बड़े ही वेगसे युद्ध करनेलगे ॥ १६ ॥ सैनिक युद्धमें
खड़े होकर तलवारके नानाप्रकारके हाथ दिखाने लगे और वे

सैनिका रणे । ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूलतोमरपट्टिशैः ॥ १७ ॥
 गदाभिः परिघैश्चान्यैरायुधैश्च भुजैरपि । अन्योन्यं जघ्नन्ते क्रुद्धा
 युद्धरङ्गगता नराः ॥ १८ ॥ रथिनो रथिभिः सार्द्धं अश्वारोहाश्च
 सादिभिः । मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः ॥ १९ ॥
 क्षीवा इवान्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः । उच्चुक्रुशुरया-
 म्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥ २० ॥ वर्त्तमाने तथा युद्धं निर्म-
 र्यादे विशाम्पते । धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यन्यमिश्रयत् २१
 ते हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः । पारावतसवर्णाश्च
 रक्तशोणाश्च संयुगे ॥ २२ ॥ पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणवि-
 मिश्रिताः । हयाः शुशुभिरे राजन् मेघा इव सविद्युतः ॥ २३ ॥
 धृष्टद्युम्नस्तु संप्रेक्ष्य द्रोणमभ्यासमागतम् । असिचर्माददे बीरो
 धनुस्तृप्त्यज्य भारत ॥ २४ ॥ चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीर-

ऋष्टि, शक्ति, तोमर, प्रास, शूल पट्टिश गदा, परिघ और
 दूसरे आयुध तथा भुजाओंसे एक दूसरेको मारनेलगे ॥ १७-१८ ॥
 रथी रथीके साथ, घुडसवार घुडसवारोंके साथ, हाथी श्रेष्ठ हाथियोंके
 साथ पैदल पैदलोंके साथ युद्धकर रहे थे और हाथी जैसे रणभूमिमें
 युद्ध करता हो तैसे मदिरा पीकर मदमत्त हुए योधा रणभूमिमें
 बड़ा झोलाहल कर रहे थे तथा दोनों पक्षके योधा एक दूसरेका
 संहारकर रहे थे १९-२० हे राजन् ! इसप्रकार जब मर्यादाको छोड़
 कर युद्ध हो रहा था, उस समय धृष्टद्युम्नने अपने घोड़ोंको द्रोणा-
 चार्यके घोड़ोंसे सटादिया ॥ २१ ॥ वायुवेगी, एक दूसरेसे भिड़े
 हुए वे कवचके रङ्गके और रुधिरसे लाल-रुद्ध हुए घोड़े बहुत ही
 शोभा पाने लगे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! कवचकेसे रंगके घोड़े
 रुधिरका लाल रङ्ग मिलनेसे जिसमें बिजली चमक रही हो ऐसे
 मेघोंकी समान दीखने लगे ॥ २३ ॥ वीर धृष्टद्युम्नने द्रोणको
 पासमें आया हुआ देखकर हे भारत ! धनुषको छोड़ हाथमें ढाल

हा । ईर्ष्या समतिक्रम्य द्रोणस्य रथाभाविशत् ॥ २५ ॥ अति-
 ष्ठुगममध्ये स युगसन्नहनेषु च । जवानाद्धेषु चाश्वानां तत्सैन्या-
 न्यभ्यपूजयन् ॥ २६ ॥ खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः ।
 न ददृशन्तिरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २७ ॥ यथा श्येनस्य
 पतनं वनेष्वाभिषगृद्धिनः । तथैवासीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघां-
 सतः ॥ २८ ॥ ततः शरशतेनास्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् । द्रोणो
 दुपदपुत्रस्य खड्गञ्च दशभिः शरैः ॥ २९ ॥ हयैश्चैव चतुः-
 षष्ट्या शराणां जघ्निवान् बली । ध्वजं कृत्रञ्च भक्तलाभ्यां तथा तौ
 पार्श्विणसारथी ॥ ३० ॥ अथास्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्त-

तलवार लेली ॥ २४ ॥ वीर शत्रुओंका नाश करनेवाला धृष्ट-
 द्युम्न दुष्टकर - कर्म करनेकी इच्छासे अपने रथकी ईषा पर पैर
 रखकर द्रोणाचार्यके रथमें चढ़गया ॥ २५ ॥ और सारथीके
 बैठनेकी जगह पर जा, उस स्थानके दृढ़बन्धन और घोड़ोंकी
 पिछली आधी पीठ पर खड़ा होगया यह देखकर सब सेनाएं
 उसको धन्यवाद देनेलगीं ॥ २६ ॥ धृष्टद्युम्न तलवार हाथमें ले
 द्रोणके लाल २ घोड़ोंके ऊपर खड़ा था उस समय द्रोणाचार्यको
 अपने और उसके मध्यमें खाली स्थान बाण छोड़नेके लिये भी न
 मिला, यह बड़ा अचरज हुआ ॥ २७ ॥ जैसे मांसलोलुप बाज
 जङ्गलमें अपने शिकार पर टूटता है तैसे ही धृष्टद्युम्न द्रोणको
 मारनेकी इच्छासे उनके ऊपर कूटपड़ा ॥ २८ ॥ तदनन्तर द्रोणा-
 चार्यने धृष्टद्युम्नकी ढालको सौ बाण मारकर फैंकदिया और
 उसकी तलवारको दश बाण मारकर फैंकदिया ॥ २९ ॥ और
 बली द्रोणने चौसठ बाणोंसे धृष्टद्युम्नके घोड़ोंको भल्ल नामके
 दो बाणोंसे मारहाला तथा इसकी ध्वजा, कृत्र और दोनों कर-
 वोंके रत्नक तथा सारथीका भी नाश करदिया ॥ ३० ॥ तद-
 नन्तर फुरती करतेहुए द्रोणने जैसे इन्द्र अस्त्रको उठाता हो इस

कम् । आकर्णपूर्णं त्रिंशत् वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३१ ॥ तं चतु-
र्दशभिस्तीक्ष्णैर्वाणैश्चिच्छेद सात्यकिः । अस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्यु-
म्नं व्यमोचयत् ॥ ३२ ॥ सिंहेनेव मृगं अस्तं नरसिंहेन मारिष ।
द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः ॥ ३३ ॥ सात्यकिं
प्रेक्ष्य गोप्सरं पाञ्चाल्यञ्च महाहवे । शराणां त्वरितो द्रोणः पद्-
विंशत्या समर्पयत् ॥ ३४ ॥ ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो असन्तपि
सृञ्जयान् । प्रत्यविध्यञ्छितैर्वाणैः पद्विंशत्या स्तनान्तरे ॥ ३५ ॥
ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृह्णिनः । सात्वताभिमृते
द्रोणे धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणधृष्टद्युम्नयुद्धे
सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । वाणे तस्मिन्निकृते तु धृष्टद्युम्ने च मोक्षिते ।

प्रकार धनुषको कानतक खेंवकर प्राण हरण करनेवाला एक
वाण धृष्टद्युम्नके मारा ॥ ३१ ॥ सात्यकिने चौदह तेज वाण
मारकर उस वाणको काटदिया और द्रोणाचार्यके चुङ्गलमें फँसे
हुए धृष्टद्युम्नको बचालिया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! सिंहके चुङ्गलमें
फँसे हुए मृगकी समान नरसिंह द्रोणके चुङ्गलमें फँसे हुए धृष्ट-
द्युम्नको शिनिपुङ्गव सात्यकिने बचादिया ॥ ३३ ॥ महासंग्राममें
रक्षा करनेवाले सात्यकिको तथा धृष्टद्युम्नको देख द्रोणने उन
दोनोंके शीघ्रतासे छव्वीस वाण मारे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर द्रोणा-
चार्यने सृञ्जयोंको घेरा, तब सात्यकिने उनकी छातीमें तेज किये
हुए छव्वीस वाण मारे ॥ ३५ ॥ इसप्रकार जब सात्यकिने द्रोणा-
चार्यके ऊपर धावा किया, कि-विजय चाहनेवाले पञ्चालोंके सब
योधा एक साथ धृष्टद्युम्नको रणमेंसे दूर ले गए ॥ ३६ ॥
सप्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥

धृतराष्ट्र बोले, कि-हे सञ्जय ! जब वृष्णिवंशमें श्रेष्ठ सात्यकिने

तेन दृष्टिप्रवीरेण युयुधानेन सञ्जय ॥ १ ॥ अमर्षितो महेश्वरः
सर्वशस्त्रभृताम्बरः । नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद् युधि-
सञ्जय उवाच । संप्रदुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः । तीक्ष्ण-
धारेषुदशनः शितनाराचदंष्ट्रवान् ॥ ३ ॥ संरम्भामर्षताम्राक्षो
महोरग इव स्वसन् । नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥ ४ ॥
उत्पतद्भिरिवाकाशे कामद्भिरिव पर्वतम् । रुक्मपुंस्वान् शरानस्यन्
युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ शरपातमहावर्षं रथधोषवलाहकम् । कामु-
काकर्षवित्तोपं नाराचबहुविद्युतम् ॥ ६ ॥ शक्तिखड्गाशनिधरं
क्रोधवेगसमुत्थितम् । द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुहचोदितम् ॥ ७ ॥
दृष्ट्वाभिपतन्तं तं शूरः परपुरञ्जयः । उवाच स्रुतं शैनेयः प्रहसन्

द्रोणाचार्यको बाणको काटकर धृष्ट्युष्मनको बचा लिया ॥ १ ॥ तब
सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर नरव्याघ्र द्रोणने युद्धमें
सात्यकिका क्या किया ? ॥ २ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया कि-
उस समय क्रोधरूपी विषसे भरे धनुषरूप फैलाए हुए मुखवाले
तेजधारके बाणरूप दाँतोंवाले, तेज नाराचरूप डाढ़वाले क्रोध
और अमर्ष (असहनता)से लाल २ नेत्रोंवाले द्रोणरूप महासर्प
लंबे २ साँस लेनेलगे और आकाशमेंको चढ़तेहुएसे अथवा द्रोण
पर्वतोंको लौघते हुएसे चरण धरने वाले लाल २ रङ्गके बड़े वेग
वाले घोड़ोंसे जुतेहुए रथमें बैठकर सात्यकिके ऊपर चढ़गए
और उसके ऊपर सुनहरी पूँछवाले बाण फैकनेलगे ॥ ३-५ ॥
बाण छोड़ना रूप बड़ी भारी वर्षा करनेवाले, तथा घर घराहट
रूप गर्जना करनेवाले, धनुषको खेंचनारूप धारायें गिरानेवाले
नाराचरूपी बहुत सी विजलियोंवाले, शक्ति और खड्गरूपी
उत्कापांतवाले, क्रोधरूपी वेगसे उठेहुए घोंड़ेरूपी वायुसे प्रेरित,
और हटानेसे भी न हटनेवाले द्रोणरूप मेघको आतेहुए देखकर
शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले शूरवीर युद्धदुर्बद शिनिपुत्र

युद्धदुर्मदः ॥ ८ ॥ एनं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम् ।
 आश्रयं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥ ९ ॥ शीघ्रं प्रजवितैर-
 श्वैः प्रत्युच्चाहि महृष्टवत् । आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानि-
 नम् ॥ १० ॥ ततो रजतसङ्काशा माधवस्य हयोत्तमाः । द्रोणा-
 स्याभिमुखः शीघ्रमगच्छन् वातरंहसः ॥ ११ ॥ ततस्तौ द्रोण-
 शैनेयौ युयुधाते परन्तपौ । शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् १२
 इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ । पूरयामासतुर्गिराजुभौ दश
 दिशः शरैः ॥ १३ ॥ मेघविषातपापाये धाराभिरितरेतरम् । न
 स्म सूर्यस्तदा भाति न वशौ च समीरणः ॥ १४ ॥ इषुजालावृतं
 घोरमन्धकारं समन्ततः । अनाधृष्यभिवान्येषां शूराणामभव-
 त्त्तदा ॥ १५ ॥ अन्धकारीकृतं लोके द्रोणशैनेययोः शरैः । तयोः

सात्यकिने मन्द हैसकर अपने सारथीसे कहा कि—॥६-८॥
 ओ सूत ! यह वीर ब्राह्मण दुर्धोधनके दुःख तथा भयका नाश
 करनेके लिये अपने ब्राह्मणोचित कर्मको भूलकर दुर्योधनका हिंसा-
 यती बनकर चढ़ा चला आरहा है इसलिये तू भी उत्साही
 पुरुषकी समान, घोड़ोंको वेगसे दौड़ाकर रथको इनके सामने ले
 चल, यह राजपुत्रोंके आचार्य हैं और अपनेको सदा बड़ा शूरवीर
 मानते हैं ॥ ९-१० ॥ तदनन्तर वायुवेगी घोड़ोंमें श्रेष्ठ सात्यकि
 के धौले घोड़े एक साथ द्रोणाचार्यके सामनेको दौड़गये ॥११॥
 और वे दोनों योधा एक दूसरेको सहस्रों बाणोंसे पीड़ा देतेहुए
 लड़नेलगे ॥१२॥ पुरुषश्रेष्ठ, वीर द्रोण और सात्यकिने आकाशमें
 बाणोंका जाल पूरदिया और दशों दिशाओंको बाणोंसे भर
 दिया ॥१३॥ अशुभ वीरने पर मेघ जैसे सबको जलधाराओं
 से ढक देते हैं तैसे ही वे दोनों एक दूसरेको बाणोंकी वर्षासे ढकने
 लगे, चारों ओर बाणोंके छा जानेके कारण घोर अंधेरा होगया,
 सूर्यका दीखना बन्द होगया तथा वायुका चलना भी बन्द होगया,

शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥ १६ ॥ नान्तरं शरवृष्टीनां
ददृशे नरसिंहयोः । इषूणां सन्निपातेन शब्दो धाराविघातजः ॥ १७ ॥
शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वतः । नाराचैर्व्यपविद्धानां
शराणां रूपमावभौ ॥ १८ ॥ आशीविषविदष्टाणां सर्पाणामिव
भारत । तयोज्यतलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डियोः ॥ १९ ॥
अजस्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाहन्यतामिव । उभयोस्तौ रथौ राजन् ते
चाश्वस्तौ च सारथी ॥ २० ॥ स्वमपुंखैः शरैश्छन्नाश्चित्ररूपां
वधुस्तदा । निर्मलानामजिह्वानां नाराचानां विशाम्पते ॥ २१ ॥
निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोभूत् सुदारुणः । उभयोः पतिते
वज्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ॥ २२ ॥ उभौ रुधिरसिक्ताङ्गवुभौ च
विजयैषिणौ । स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रसृताविव वारणां ॥ २३ ॥
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः । गर्जितोत्क्रुष्टस-
जिस समय द्रोण और सात्वकिने बाणोंसे संसारको अंधकारमय
कर दिया, उस समय शर उसको हटा न सके, शीघ्रतासे अस्त्र
छोड़नेमें चतुर नरव्याघ्रद्रोण और सात्वकिके बाण बरसानेमें
कुछ भी भेद नहीं मालूम होता था; निरन्तर होतीहुई बाणोंकी
बौझारोंके टकरानेसे, इन्द्रकी छोड़ीहुई उल्काओंके टकानेकासा
शब्द होनेलगा, हे भारत ! नाराचोंसे बिधेहुए अस्त्रोंका रूप,
महासर्पोंसे ढसेहुए सर्पोंकी समान दीखता था, युद्धचतुर उन
दोनोंकी प्रत्यङ्गवाका निरन्तर होताहुआ शब्द पर्वतोंके शिखरों
पर गिरेहुए वज्रोंके कड़ाकैकी समान होरहा था, उन दोनोंके
गथ, सारथि, और वे स्वयं भी सुवर्णकी पूछोंवाले बाणोंसे
बिधेहुए विचित्र दीखते थे, उन दोनोंकी वज्र और ध्वजायें गिरगई,
दोनों रुधिरमें लथड़पथड़ होगये, वे दोनों विजय चाहरहे थे, और
रुधिर टपकनेसे मद टपकानेवाले हाथियोंकी समान प्रतीत होते थे
और वे दोनों ऐसी दशामें भी प्राणान्तक बाणोंको छोड़रहे थे,

मनादाः शंखदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥ २४ ॥ अपारमन्महाराज व्या-
जहार न कश्चन । तूष्णीम्भूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् २५
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः । रथिनो हस्तियन्तारो
हयारोहाः पदातिनः ॥ २६ ॥ अवैजन्ताचलैर्नेत्रैः परिवार्य नर-
र्षभौ । हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथानीकानि वाजिनाम् ॥ २७ ॥
तथैव रथनाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः । मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च
मणिकान्चनभूषितैः ॥ २८ ॥ ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिर-
ण्यमयैः । वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ॥ २९ ॥ विम-
लैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः । जातरूपमयीभिश्च राजती-
भिश्च मूर्धसु ॥ ३० ॥ गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ।
सबलाका सखद्योता सैरावतशतहदाः ॥ ३१ ॥ अदृश्यन्तोष्ण-
पर्यापे मेघानानिव वागुराः । अपश्यन्स्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठि-
राः स्थिताः ॥ ३२ ॥ तद्युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।

उस समय हाथियोंकी चिंघाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, शंख और
दुन्दुभियोंकी ध्वनि वन्द होगई, योधा, सेनापति, रथी, हाथीवान,
घुड़सवार, और पैदल, कुतूहलसे दोनों योधाओंको घेरकर
टकटकी बाँधेहुए, उनका युद्ध देखनेलगे हाथी, घोड़े और रथि-
योंकी सेनायें व्यूहरचनामें ही खड़ी रहगई और मोती, मृंगा,
मणि, सुवर्ण आदिसे सजीहुई, चित्रत्रिचित्र ध्वजा, नानाप्रकारके
सुवर्णके कवच वैजयन्ती मालायें, रंगविरंगी भूलें, वारीक शाल,
चमकतेहुए और तेज बाण, घोड़ोंकी काठियें, तथा दूसरे सामान
सुवर्ण और चान्दीकी हाथियोंकी हमेलें तथा दाँतों पर लगेहुए
बल्ले रणभूमिमें पड़े थे इससे रणभूमि शोभा पारही थी, वर्षामें
जैसे बगले, जुगनू, पेरावत और बिजलियोंसे मेघोंकी पंक्ति
शोभा पाती है तैसे ही वे शस्त्रणं शोभा पारही थी. हमारे और
युधिष्ठिरके सैनिक रणमें खड़े खड़े महात्मा द्रोण और सात्यकि

विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥ ३३ ॥ सिद्धचारणसं-
 घाश्च विद्याधरमहोरगाः। गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैस्त्रविघातिभिः ३४
 विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः । इस्मलाघनमस्त्रेषु दर्श-
 यन्तौ महाबलौ ॥ ३५ ॥ अन्योन्यं प्रत्यविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसा-
 त्यकी । तनो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३६ ॥
 पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महायुते । निमेषान्तरमात्रेण भारद्वा-
 जोऽपरन्धनुः ॥ ३७ ॥ सज्यं चकार तदपि चिच्छेदास्य स सात्यकिः।
 ततस्त्वरन् पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥ ३८ ॥ सज्यं सज्यं
 धनुश्चास्य चिच्छेद निशितैः शरैः । एवमेकशतं क्षिन्नं धनुषां
 दृढधन्विना ॥ ३९ ॥ न चान्तरं तयोर्दृष्टं संधानेच्छेदनेपि च ।
 ततोस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम् ॥ ४० ॥ युयुधानस्य

सात्यकिके युद्धको देखनेलगे, ब्रह्मा, चन्द्र आदि देवता भी
 विमानोंमें बैठकर महात्मा द्रोण और सात्यकिके युद्धको देखनेके
 लिये आये, सिद्ध, चारण, विद्याधर और महोरग भी उन महा-
 त्माओंकी अनेकों प्रकारकी युद्धकुशलता, आगेको बढ़ना, पीछे
 को हटना, तथा परस्पर प्रहार करनेकी विचित्र रीतिको देखकर
 विस्मित होनेलगे, वे महाबली योधा अस्त्रोंको चलानेमें कुर्ती दिखाते
 हुए एक दूसरेको बाणोंसे बीध रहे थे इतनेमें ही सात्यकिने
 दृढ़ बाण मारकर द्रोणके बाणोंको काटडाला और महाकान्ति-
 वान् द्रोणाचार्यके धनुषको भी तोड़डाला द्रोणाचार्यने तत्काल
 दूसरा धनुष चढालिया, परन्तु सात्यकिने उसके भी टुकड़े कर
 डाले, द्रोणने फिर दूसरा धनुष हाथमें लिया, कि-सात्यकिने
 उसे भी काटडाला, इसप्रकार द्रोण जैसे-धनुष उठाते गए तैसे-
 सात्यकि उसको काटता गया, इसप्रकार दृढ़ धनुषवाले सात्यकिने
 सौ धनुष काटडाले ॥ १४ ॥ ३६ ॥ परन्तु द्रोण कब धनुषको
 उठाते थे और सात्यकि कब उसको काटदेता था, यह किसीको

राजेन्द्र मनसैनदचिन्तयता एतदस्त्यबलं रामे कार्तवीर्यं धनञ्जये ४१
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे । तच्च चास्य मनसा द्रोणः
पूजयामास विक्रमम् ॥ ४२ ॥ लाघवं वासवस्येव सम्प्रेक्ष्य द्विज-
सत्तमः । तुतोपास्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ॥ ४३ ॥ न
तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः । देवाश्च युयुधानस्य गन्ध-
र्वाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥ सिद्धचारणसंघाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म
तत् । ततोऽन्यद्गुनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥ अस्त्रै-
स्त्रविदां श्रेष्ठो योजयामास भारत । तस्यास्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रति-
हृत्य स सात्यकिः ॥ ४६ ॥ जघान निशितैर्वाणैस्तदद्रुमुतमिवा-

नहीं दीखता था, हे राजेन्द्र ! युद्धमें सात्यकिके इस अमानुषिक
पराक्रमको देखकर द्रोणाचार्य अपने मनमें विचारनेलगे, कि जो
अस्त्रबल परशुराम, कार्तवीर्य अर्जुन और पुरुषव्याघ्र भीष्ममें
विद्यमान हैं, वैसा ही अस्त्रबल इस सात्यकिमें भी है, द्विजसत्तम
द्रोणाचार्य इन्द्रकी समान सात्यकिकी फुर्तीको देखकर मन ही
मनमें उसकी मशंसा करनेलगे और वड़े सन्तुष्ट हुए, इन्द्रसहित
देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण भी शीघ्रतासे बाण छोड़नेवाले
सात्यकिकी फुर्तीको देख न सके वे तो यही समझे, कि—यह
सब काम द्रोण ही कर रहे हैं, तदनन्तर अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ क्षत्रिय-
मर्दन द्रोणाचार्य फिर एक नया धनुष ले उसके ऊपर बाण चढ़ा
सात्यकिके युद्ध करनेलगे, सात्यकिने द्रोणके उन अस्त्रोंके भी
अस्त्रोंकी मारसे टुकड़े करके द्रोणको तीक्ष्ण शस्त्रोंसे मारना
आरम्भ कर दिया, यह देखकर सबको बड़ा अचरज हुआ, दूसरोंसे
न हो सकनेवाले सात्यकिके इस अतिमानुष कर्मको देखकर तुम्हारे
पक्षके युक्ति जाननेवाले योधा युक्तिकुशल सात्यकिकी मशंसा
करनेलगे, इस युद्धके समय जिस अस्त्रको द्रोण छोड़ते थे, उस
ही अस्त्रको सात्यकि भी छोड़ता था ॥ ४०-४६ ॥ इसप्रकार

भवत् । तस्यातिमानुषं कर्म दृष्ट्वान्यैरसमं रणे ॥४७॥ युक्तं योगेन
 योगज्ञास्तावकाः समपूजयन् । यदस्त्रास्ति द्रोणस्तदेवादस्यति
 सात्यकिः ॥ ४८ ॥ तमाचार्योऽयं सम्भ्रान्तो योधयञ्छत्रुतापनः ।
 ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ॥ ४९ ॥ वधाय युयुधा-
 नस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत्तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः २०
 दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं सुमुदैरयत् । हाहाकारो महा-
 नासीद् दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ॥ ५१ ॥ न विचेरुस्तदाकाशे
 भूतान्याकाशगान्यपि । अस्त्रे ते वारुणाग्नेये ताभ्यां वाणसमा-
 हिते ॥ ५२ ॥ न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्त्तय भास्करः । ततो
 युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ५३ ॥ नकुलः सहदेवश्च
 पर्यरत्तन्त सात्यकिम् । धृष्टद्युम्नसुखैः सार्द्धं विराटश्च सकेकयः ५४
 मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजगुरुञ्जसा । दुःशासनं पुरस्कृत्य
 संभ्रमं पदेहुः शत्रुतापनं द्रोणाचार्यं सात्यकिके साथ युद्धं करते
 रहे अन्तर्मे हे महाराज ! क्रोधं भरेहुः धनुर्वेदं पारङ्गतं द्रोणा-
 चार्यने सात्यकिका वध करनेके लिये दिव्य (आग्नेय) अस्त्र
 जोड़ा, किन्तु सात्यकिने उस शत्रुनाशक महाघोर आग्नेय अस्त्र
 को अपनी ओर आतांहुआ देखकर दिव्य वारुणास्त्रका प्रयोग
 किया, दोनोंके हाथोंमें दिव्य अस्त्रोंको देख लोगोंमें बड़ा हाहा-
 कार मचगया ॥ ४९-५१ ॥ उन वारुण और आग्नेय अस्त्रका
 प्रयोग होनेपर आकाशचारी प्राणियोंका उड़ना बन्द होगया,
 वाणोंके साथ टकरायेहुए वारुण और आग्नेय अस्त्र अभी
 निवृत्त (पराजित) नहीं हुए थे, कि-सूर्यनारायण मध्यमेंसे
 नीचे उतरने लगे, (दुपहर ढलनेलगा) उस समय राजा युधि-
 ष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, विराट, केकय और धृष्टद्युम्न
 आदि चारों ओरसे सात्यकिकी रक्षा करनेको चलेआये ५२-५४
 दूसरी ओर मत्स्य, राजे, शाल्वेयकी सेना और सहस्रों राज-

राजपुत्राः सहस्रशः ॥ ५५ ॥ द्रोणमभ्युपपद्यन्तं सपत्नैः परिवारि-
तम् । ततो युद्धमभूद्राजन्तेषां तव च धन्विनाम् ॥ ५६ ॥ रजसा
सम्पृते न्नोके शरजालसमावृते । सर्वगाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत
किञ्चन । सैन्ये च रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्त्तत ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि

द्रोणसात्यकियुद्धे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

सञ्जय उवाच । विवर्त्तमाने त्वादित्ये तत्रास्तशिखरं प्रति ।
रजसा कीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे ॥ १ ॥ तिष्ठतां युध्यमा-
नानां पुनरावर्त्ततामपि । भज्यतां जयताञ्चैव जगाम तदहः शनैः २
तथा तेषु विपक्षेषु सैन्येषु जयगृह्णिषु । अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्ध-
वायैव जगताः ॥ ३ ॥ रथमार्गप्रमाणान्तु कान्तेयो निशितैः शरैः ।

कुमार दुःशासनको आगे करके एकसाथ शत्रुओंसे घिरेहुए द्रोणकी
रक्षा करनेको उनके पास आगए, हे राजन् ! उस समय तुम्हारे
और पाण्डवपक्षके धनुषधारियोंमें युद्ध होनेलगा, और चारों
और धूल तथा वाणोंके जालसे अंधेरा छागया, सैनिकोंके पैरों
से उड़ीहुई धूलिसे कुछ भी नहीं दीखता था, सब अंधेरमें डूब
गए और उस समय दोनों सेनाओंमें मर्यादाको छोडकर युद्ध
होनेलगा ॥ ५५-५७ ॥ अष्टानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! धृतराष्ट्र ! जब सूर्यनारायण
ढलनेलगे और सूर्य धूलिधूसरित तथा मन्द होकर अस्ताचलकी
ओरको जानेलगे, उस समय योधाओंमेंसे कितनेही रणमें खड़े
रहे, कितने ही लौट आये और कितनेही डरकर रणभूमिमेंसे
भागनेलगे और कितनेही विजयाभिलाषी योधा रणमें खड़े रहे,
इसप्रकार धीरे-२ दिन पूरा होनेको आगया ॥ १-२ ॥ तो भी ये
जयकी लोभी सेनाएं रणभूमिमें चढ़ाई करती ही रहीं, इस समय
श्रीकृष्ण और अर्जुन जयद्रथकी ओरको ही बढ़ते जाते थे ॥ ३ ॥

चकार तत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४ ॥ यत्र यत्र रथो-
याति पाण्डवस्य महात्मनः । तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशा-
म्भते ॥ ५ ॥ रथशिक्षान्नु दाशुर्हो दर्शयामास वीर्यवान् । उत्तमा-
धममध्यानि मण्डलानि त्रिदर्शयन् ॥ ६ ॥ ते तु नामाङ्किताः
पीताः कालज्वलनसन्निभाः । स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो
दीर्घगामिनः ॥ ७ ॥ वैणवाश्चायसाश्चोग्रा ग्रसन्तो विविधानरीन् ।
रुधिरं पतगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे ॥ ८ ॥ रथस्थितोग्रतः
क्रोशं यानस्यत्यर्जुनः शरान् । रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति
शात्रवान् ॥ ९ ॥ तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधुबाहिभिः । तदा-
गच्छद् हृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयन् जगत् ॥ १० ॥ न तथा गच्छति

कुन्तीपुत्र अर्जुन तीक्ष्ण बाणोंसे रथके जानेके योग्य मार्ग बना
लेना था और उस मार्गसे श्रीकृष्ण बढ़ते चलेजाते थे ॥ ४ ॥
हे प्रजाओंके स्वामिन् ! महात्मा पाण्डवनन्दन अर्जुनका रथ जिस
ओर जाता था तहाँही तुम्हारी सेना भागने लगती थी ॥ ५ ॥
श्रीकृष्णभी रथको उत्तम, मध्यम और अधम प्रकारके मण्डलोंमें
घुमाकर अपने रथ हाँकनेकी कुशलता दिखलाते थे ॥ ६ ॥ इस
युद्धमें, पक्षी जैसे प्राणियोंके रुधिरको पीते हैं, तैसे ही अर्जुनके
छोड़ेहुए, उसके नामसे चिन्हित, पानी पिलाहुयेए, कालाग्निकी
समान भयङ्कर ताँतोसे बाँधीहुई सुन्दर गाँठोंवाले, स्थूल दूरतक
जानेवाले, बाँस और लोहेके बाण शत्रुओंका संहार करके उनका
रुधिर पान करनेलगे ॥ ७-८ ॥ अर्जुन रथमें बैठाए एक कोसकी
दूरी तक बाण फँकता था, वे बाण रथमेंसे छूटकर एक कोस
दूरतकके शत्रुओंको नष्ट करदेते थे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण भी गरुड
और पवनकी समान वेगवान् श्रेष्ठ घोड़ोंको हाँकते और जगत्को
आश्चर्यित करतेहुए रथको बढ़ाते ही चलेजाते थे ॥ १० ॥ हे
राजन् ! अर्जुनका रथ मनके अभिप्रायही समान शीघ्रतासे

रथस्तपनस्य विशास्पतो नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च ११
 नान्यस्य समरे राजन् गतपूर्वस्तथा रथः । यथा ययावर्जुनस्य
 मनोभिप्रायशीघ्रगः ॥ १२ ॥ प्रविश्य तु रणे राजन् केशवः पर-
 वीरहा । सेनामध्ये हयास्तूर्णं चोदयापास भारत ॥ १३ ॥ तत-
 स्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयात्तमाः । कृच्छ्रेण रथमूढस्तं क्षुत्पि-
 पासासमन्विताः ॥ १४ ॥ क्षतारच बहुभिः शस्त्रैर्बुद्धशौण्डेयने-
 कशः । मण्डलानि विचित्राणि विचरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥
 हतानां वाजिनागानां स्थानाश्च नरैः सह । उपरिष्ठादतिक्रान्ताः
 शैलाभानां सहस्रशः ॥ १६ ॥ एतस्मिन्ननरे वीरावावर्ण्या आतर्गो
 नृप । सहसेनौ समाच्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥ १७ ॥ ताव-
 र्जुनं चतुःपट्या सप्तत्या च जनार्दनम् । शराणाञ्च शतैश्चान-
 विध्येतां मुदान्विता ॥ १८ ॥ तावर्जुनं महाराज नवधिर्नवपर्वभिः ॥

चलता था ऐसा पहले सूर्य, इन्द्र, रुद्र और कुवेरका रथ भी नहीं
 चलसका था और न इतनी शीघ्रतासे पहिले और किसीका ही
 रथ चला था ॥ ११-१२ ॥ हे राजन् ! शत्रुओंके वीरोंको नष्ट
 करनेवाले, श्रीकृष्ण रणके मध्यमें पहुँचकर बड़ी शीघ्रतासे घोड़ोंको
 बढानेलेगे ॥ १३ ॥ सेनाके मध्यमें पहुँचकर वे घोड़े भूँख और
 प्याससे व्याकुल हो बड़ी कठिनतासे रथको खेंच रहे थे ॥ १४ ॥
 ऐसी दशा होनेपर तथा युद्धचतुर योधाओंके बाणोंसे अतीव
 घायल होजाने पर भी वे घोड़े अर्जुनके रथको नानाप्रकारके
 मण्डलोंसे खेंचेही जाते थे ॥ १५ ॥ वे घोड़े मार्गमें पड़ेहुए हाथी
 घोड़े, रथ, रथी तथा पर्वतोंकी समान सहस्रों हाथियोंके ऊपर
 अपना मार्ग काटते चलेजाते थे ॥ १६ ॥ इतनी ही देरमें थकेहुए
 घोड़ेवाले अर्जुनको हे राजन् ! सेनासहित अवन्तिदेशके दोनों
 राजकुमारोंने आकर घेरलिया ॥ १७ ॥ आनन्दमें भरेहुए उन
 दोनोंने अर्जुनके चौसठ, केशवके सत्तर और घोड़ोंके सौ बाण

आजघानरणं क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ १६ ॥ ततस्तौ तु
शरीषेण वीभत्सु सहकेशवम् । आच्छादयेतां संस्थौ सिंहनादञ्च
चक्रतुः ॥ २० ॥ तयोस्तु धनुषी चित्रे भन्ताभ्यां श्वेतवाहनः ।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥ अथान्ये
धनुषी राजन् प्रगृह्य समरे तदा । पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामा-
सतुः शरैः ॥ २२ ॥ तयोस्तुः भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः ।
धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनञ्जयः ॥ २३ ॥ तथान्यैर्विशि-
खैस्तूर्णं स्वमपुत्रैः शिलाशितैः । जघानाश्वास्तथा सूतौ पाष्णी
च सपदानुगौ ॥ २४ ॥ ज्येष्ठस्य च शिरः कायात् क्षुरमेण न्य-
कृतत । स पपात हतः पृथ्व्या वातरुण इव दुमः ॥ २५ ॥ विदन्तु

मारकर घायल करदिया ॥ १८ ॥ मर्मभागको जाननेवाले अर्जुन
ने नमीहुई गाँठोंवाले, नौ बाण मारकर उन दोनोंके मर्मस्थानोंको
वीथदिया ॥ १९ ॥ इससे वे दोनों भी क्रोधमें भर गए और उन्होंने
क्रुद्धासहित अर्जुनको बाणोंके जालसे ढकदिया और सिंहकी
समान गर्जनाकी ॥ २० ॥ श्वेतवाहन अर्जुनने भल्ल जातिके दो
बाण मारकर उनके विचित्र धनुषको काटडाला तथा सुवर्णकी
समान चमकतीहुई उनकी ध्वजाओंको भी शीघ्रतासे काट गिरा
दिया ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त उन दोनोंने दूसरे धनुषोंको खो
वड़े क्रोधमें भरकर अर्जुनको बाणोंसे पीड़ित करना आरम्भ
करदिया ॥ २२ ॥ पाण्डुनन्दन अर्जुनने परमक्रोधमें भरकर फिर उन
दोनोंके धनुषोंको शीघ्रतासे काटडाला ॥ २३ ॥ तथा सुवर्णकी
पूँछवाले, शिलापर घिसकर तेज कियेहुए दूसरे बाण मारकर
अर्जुनने शीघ्रतासे उनके घोड़े, सारथी, पार्श्वरक्षक और सा-
थियोंको भी मारडाला ॥ २४ ॥ और क्षुरम नामक बाण मार-
कर वड़े भाई विदके शिरको घड़परसे गिरादिया, वह विद आँधी
से उखेड़ेहुए पेड़की समान भूमिपर ढहपड़ा ॥ २५ ॥ विदको

निहतं दृष्ट्वा हनुविन्दः प्रतापवान् । हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य
महाबलः ॥ २६ ॥ अभ्यवर्त्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन् । गदया
रथिनां श्रेष्ठो नृत्पन्निव महारथः ॥ २७ ॥ अनुविन्दस्तु गदया
ललाटे मधुमूदनम् । स्पृष्ट्वा नाकम्पयत् कुहो मैनाकमिव पर्वतम् २८
तस्यार्जुन शरैः पद्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः । निचकृत् स
संखिन्नः पपाताद्विचयो यथा ॥ २९ ॥ ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो
राजन् पदानुगाः । अभ्यद्रवन्त संकुद्राः किरन्तः शतशः शरान् ३०
तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतपथम् । व्यरोचत तथा बद्धिर्दावं
दग्ध्वा हिमात्यये ॥ ३१ ॥ तयोः सेनामतिक्रम्य कृच्छ्रादिव धन-
ञ्जयः । विवभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥ ३२ ॥ तं

मराहुआ देखकर और अपने घोड़ोंको भी मरा देखकर प्रतापी
अनुविन्द हाथमें गदा ले रथ परसे कूद पड़ा और भाईके वधका
स्मरण कर मदारथी महाबली अनुविन्द मानों नाच रहा हो इस
प्रकार गदाको घुमाताहुआ रणमें घूमनेलगा ॥ २६-२७ ॥ क्रोध
में भरे अनुविन्दने उस गदाका श्रीकृष्णके ललाट पर प्रहार
किया, परन्तु वह गदा मैनाकपर्वतकी समान अचल श्रीकृष्णको
विवर्लित न करसकी ॥ २८ ॥ अर्जुनने छः बाणोंसे उसके शिर
भुजा, पैर और गर्दनको काटडाला, खिन्नभिन्न हुआ अनुविन्द
पर्वतके शिखरकी समान भूमिपर गिरपड़ा ॥ २९ ॥ हे राजन् !
उनको मराहुआ देखकर उनके साथकी पैदल सेना बड़े क्रोधमें
भरकर सहस्रों बाणोंको छोड़तीहुई अर्जुन और श्रीकृष्णकी
ओरको आपसी ॥ ३० ॥ हे भरतपथ ! शीघ्रतासे उन सैनिकोंको
भी बाणोंसे समाप्त करके अर्जुन ऐसे शोभा पानेलगा, जैसे
ग्रीष्म ऋतुमें वनको भस्म करनेके अनन्तर दावानल सुशोभित
होता है ३१ महाकष्टसे उनकी सेनाको भी लौंघकर अर्जुन आगेको
बढा, इस समय वह मेघोंसे युक्त हो उदय होतेहुए सूर्यकी समान

दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाभवन् पुनः । अभ्यवर्त्तन्त पार्थञ्च
समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ३३ ॥ श्रान्तञ्चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च
सैन्धवम् । सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥ तांस्तु
दृष्ट्वा सुसंरन्धानुत्समयन् पुरुषर्षभः । शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो
वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ शरादितांश्च ग्लानाश्च हया दूरे च
सैन्धवः । किमिहानन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥ ३६ ॥ ब्रूहि
कृष्ण यथा तत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा । भवन्नेत्रा रणे शत्रून्
विजेष्यन्तीह पाण्डवाः ॥ ३७ ॥ मम त्वनन्तरं कृत्यं यद्वै तत्त्वं
निबोध मे । हयान् विमुच्य हि सुखं विशन्यान् कुरु माधव ३८
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् । ममाप्येतन्मतं पार्थ यदिदं
ते प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥ अर्जुन उवाच । अहमाचारयिष्यामि

दिपनेलगा ॥ ३२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! पहले तो अर्जुनको देखते ही कौरव
पक्षके योधा बड़े ही घबड़ाये, फिर अर्जुन (के घोड़ों) को थका
हुआ तथा सिंधुराजको दूर देखकर वे उत्साहमें भरगए और वदी-
गर्जनाएँ करके उन्होंने अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ३३-३४
महात्मा अर्जुन कौरवोंके योधाओंको क्रोधमें भरा हुआ देख आ-
श्चर्यमें होकर धीरे-धीरे श्रीकृष्णसे यह कहने लगा, कि- ॥ ३५ ॥
घोड़े बाणोंसे घायल होकर पीड़ा-पारहे हैं और थक भी गए हैं
तथा सिंधुराज जयद्रथ भी दूर है अतः अब आपको क्या करना
ठीक मालूम होता है ॥ ३६ ॥ हे कृष्ण ! तुम सदा ही परम-
बुद्धिमान् हो, अतः मुझे यथार्थ बात बताओ, पाण्डव आपको
नेता बनाये रहकर ही इस रणमें शत्रुओंको जीतेंगे ॥ ३७ ॥ हे
कृष्ण ! मेरा जो मत है, वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो, तुम घोड़ोंको
सुखसे छोड़ दो और उनके शरीरमें गुमे हुए बाणोंको निकाल
दो ॥ ३८ ॥ जब अर्जुनने ऐसा कहा, तब श्रीकृष्णने उत्तर दिया,
कि-हे पार्थ ! तुमने मुझसे जैसा कहा ऐसा ही मेरा भी विचार

सर्वसैन्यानि केशव । त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ४०
 सञ्जय उवाच । सोवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनञ्जया ।
 गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ४१ ॥ तमभ्यधावन्
 कोशन्तः क्षत्रिया जयकाक्षिणः । इदं क्षिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं
 धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥ तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् । विकर्ष-
 न्तश्च चोपानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ४३ ॥ शस्त्राणि च
 त्रिवित्राणि कुण्डास्तत्र व्यदर्शयन् । ह्यादयन्तः शरैः पार्थ मेघा
 इव दिवाकरम् ॥ ४४ ॥ अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
 नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥ ४५ ॥ तत्र पार्थस्य
 भुजयोर्महद्बलमदृश्यत । यत् कुहो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवा-

है ॥ ३६ ॥ अर्जुनने कहा, कि-हे केशव ! मैं सब सेनाओंको
 रोके रहूँगा और इनको तुम्हारे पास न आने दूँगा, अब तुम
 घोड़ोंके शरीरोंमेंसे बाणोंको निकाल डालो ॥ ४० ॥ सञ्जयने
 कहा, कि-इतना कहकर अर्जुन तुरन्त ही निश्चिन्तरूपसे रथ
 परसे उतर पड़ा और गाण्डीव धनुषको तानकर पर्वतकी समान
 अचल खड़ा हो गया ॥ ४१ ॥ विजय चाहनेवाले क्षत्रिय, अर्जुनको
 रथपरसे उतरकर नीचे खड़ा हुआ देख “इसको मारनेका यह
 अच्छा अवसर है” यह विचार करके कोलाहल करते हुए उसकी
 ओरको दौड़ पड़े ॥ ४२ ॥ और रथोंकी टोलियोंसे अकेले खड़े हुए
 अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया और नानाप्रकारके शस्त्र तथा
 बाण उसके ऊपर छोड़ने लगे और जैसे मेघ सूर्यको ढक देता है
 तैसे ही क्रोधमें भरे हुए उन्होंने बाण बरसा कर अर्जुनको ढक
 दिया ॥ ४३-४४ ॥ जैसे सिंहके ऊपर मनुवाले हाथी दूट पड़ते
 है ऐसे ही वे योधा क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके ऊपर वेगसे दूट पड़े ४५
 इस समय अर्जुनकी दोनों भुजाओंका महाबल देखनेमें आया, कि-
 उसने क्रोधमें भरकर चारों ओरसे आती हुई बहुतसी सेनाको रोक

रयत् ॥ ४६ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि सम्वाय द्विषतां सर्वतो विभुः ।
 इषुभिर्वहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥ ४७ ॥ तत्रान्तरिक्षे
 वाणानां प्रगाढानां विशाम्पते । संवर्षेण महाक्षिप्मान् पावकः
 समजायन ॥ ४८ ॥ तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोत्तितैः ।
 हयैर्नागैश्च सम्भिन्नैर्नदद्भिश्चारिकर्षणैः ॥ ४९ ॥ संरब्धैश्चारि-
 भिवोरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे । एकस्थैर्वहुभिः क्रुद्धैरुष्मेव समजा-
 यत ॥ ५० ॥ शरोर्मिणां ध्वजावर्तं नागनक्रं दुरत्ययम् । पदा-
 तिमत्स्यकलिलं शंखदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ५१ ॥ असंख्येयपपा-
 रञ्चरथोर्मिणामतीव च । उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ५२
 रयसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम् । वेलाभूतस्तदा पार्थः
 पत्रिभिः समवारयत् ॥ ५३ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । अर्जुने धरणीं प्राप्ते

रक्ता ॥ ४६ ॥ विभु अर्जुनने शत्रुओंके अस्त्रोंको सब ओरसे
 हटाकर उन सर्वोंको तुरन्त ही बहुतसे वाणोंसे ढकदिया ॥ ४७ ॥
 हे राजन् ! उन बहुतसे वाणोंके आकाशमें टकरानेसे बड़ी २
 ज्वालाओंवाला अग्नि उत्पन्न होगया ॥ ४८ ॥ घायलहुए और
 लोहलुहान हुए घोड़े हाथी आदि, तथा जिनको क्रोध आगया
 था वे शत्रुओंका संहार करनेवाले विजयाभिलाषी बड़े २ धनुष-
 धारी लंबे २ श्वास लेनेलगे उन योधाओंके एक स्थानपर इकट्ठे
 होजानेसे बड़ी गरमी होगयी ॥ ४९-५० ॥ उस समय संग्राम
 एक न लांघने योग्य सागर बनगया कि—जिसमें वाणरूप तरङ्ग
 उठरही थीं, ध्वजारूप भँवर पडरहे थे, हाथीरूप मगर मच्छ तैर
 रहे थे, पैदलरूप मछलियें भररही थीं तथा शंख और दुन्दुभि-
 योंकी ध्वनिसे गर्जरहा था, ऐसे अपार असंख्येय रथरूपी लहरों
 वाले पगडीरूप कछुओंवाले, छत्र और पताकारूपी भूएडोंवाले,
 हाथियोंके अंगरूप शिलाओंसे भरे सागरको, वाणोंसे अर्जुनने
 रोक रक्खा था ॥ ५१-५३ ॥ राजा धृतराष्ट्रने ब्रह्मा, कि—

हयहस्ते च केशवे । एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न पातितः ॥ ५४ ॥
 सञ्जय उवाच । सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः ।
 रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छादितं यथा ॥ ५५ ॥ स पार्थः
 पार्थिवान्सर्वान् भूमिस्थोपि रथस्थितान् । एको निवारयामास
 लोभः सर्वगुणानिव ॥ ५६ ॥ ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुष-
 मुत्तमम् । असंभ्रान्तो महाबाहुर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥ उद-
 पानमिहाश्वानां नालमस्ति रणेर्जुन । परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न
 त्ववगाहनम् ॥ ५८ ॥ इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तोब्रुवन्स्त्रेण मेदिनीम् ।
 अभिहत्याजुं नश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ५९ ॥ हंसकार-
 णवकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् । मुनिस्तीर्णं प्रसन्नान्मभः प्रफु-
 ल्लवरपङ्कजम् ॥ ६० ॥ कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमपिसेवितम् ।

अर्जुन पृथ्वीपर खड़ा था और श्रीकृष्ण घोड़ोंको पकड़े पृथ्वी
 पर खड़े थे, ऐसे अवसरमें अर्जुन क्यों नहीं मारागया ? ५४
 सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! अर्जुनने पृथ्वी पर खड़े होकर
 रथमें बैठेहुए सब राजाओंको अवैदिक वाक्यकी समान एकदम
 आगे बढ़नेसे रोकदिया था ॥ ५५ ॥ जैसे एक लोभासब गुणों
 को रोकदेता है तैसेही भूमिपर खड़ेहुए अकेले ही अर्जुनने रथमें
 बैठेहुए सब राजाओंको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ ५६ ॥ तदनन्तर
 महाबाहु श्रीकृष्णने जरा भी न घबड़ाकर महात्मा अर्जुनसे कहा,
 कि—॥ ५७ ॥ हे अर्जुन ! घोड़े प्यास हैं, जिससे उनकी प्यास मिटे
 ऐसा सरोवर रणमें नहीं है ये घोड़े जल पीना चाहते हैं परन्तु
 इन्हें स्नान करानेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ५८ ॥ अर्जुनने
 निश्चितभावसे तुरन्त ही कहा कि—यह रहा सरोवर, ऐसा कह
 कर अस्त्रसे पृथ्वीको फोड़ घोड़ोंके पानी पीनेके योग्य एक सुन्दर
 सरोवर तयार करदिया ॥ ५९ ॥ वह सरोवर हंस, कारण्डव और
 चक्रवाकैसे सुशोभित था, बड़े विस्तारवाला था और उसमें निर्मल

आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥६१॥ शरवंशं शरस्थूणं
शराच्छादनमद्भुतम् । शरवेश्माकरोत् पार्थस्त्वष्ट्रेवान्द्रुतकर्मकृत् ॥६२॥
ततः श्वस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाब्रवीत् । शरवेश्मनि
पार्थेन कृते तस्मिन् महात्मना ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि विन्दानुविन्दवधे
अर्जुनसरोनिर्माणे एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सञ्जय उवाच । सलिले जनिते तस्मिन् कौन्तेयेन महात्मना ।
विस्तारिते द्विषत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥ १ ॥ वासुदेवो रथा-
त्तूर्णमवतीर्य महाद्यतिः । मोचयामास तुरगान् विनुन्नान् कङ्क-
पत्रिभिः ॥ २ ॥ अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत् । सिद्ध-
चारणसंघानां सैनिकानाञ्च सर्वशः ॥ ३ ॥ पदातिनं तु कौन्तेयं

जल बह रहा था, प्रफुल्लित कमल कङ्कुप तथा मत्स्योसे भरपूर
अगाध और ऋषियोसे सेवित था, उस एक क्षणमें बनाएहुए
सरोवरको देखनेके लिये नारदमुनि भी आए ॥ ६० ॥ ६१ ॥
विश्वकर्माकी समान अद्भुत कर्म करनेवाले अर्जुनने बाणोंके ही
थंभे और छत्तावाला बाणोंका एक अद्भुत भवन बनाया ॥ ६२ ॥
महात्मा अर्जुनने जो बाणोंका घर बनाया, उसको देखकर
श्रीकृष्ण हँसे और उससे कहने लगे, कि-बहुत ठीक है ॥ ६३ ॥
निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! धृतराष्ट्र ! कुन्तीपुत्र महात्मा
अर्जुनने सरोवर उत्पन्न किया और सेनाओंको रोक दिया तथा
बाणोंका घर बनादिया ॥१॥ तब महाकान्तिमान् श्रीकृष्ण शी-
घ्रताके साथ रथसे उतरपड़े और उन्होंने घोड़ोंको छोड़ तथा उनके
शरीरमें गुभेहुए कंकपत्तीकी पूँछवाले बाणोंको निकाल डाला २
अर्जुनके किए ऐसे अभूतपूर्व कार्यको देख सिद्ध, चारण और
सैनिक चारों ओरसे अर्जुनको धन्यवाद देनेलगे ॥३॥ महारथियों

युध्यमानं महारथाः । नाशक्नुवन् वारयितुं तदद्भुतमिवाभयत् ४ ।
 आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु । नासम्भ्रमत्तदा पार्थस्तदस्य
 पुरुषानति ॥ ५ ॥ व्यसृजन्त शरौर्वास्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः ।
 न चाव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥ ६ ॥ स तानि शर-
 जालानि गदाः प्रासाश्च वीर्यवान् । आगतानग्रसत् पार्थ सरितः
 सागरो यथा ॥ ७ ॥ अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च ।
 सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत्तान्शरोत्तमान् ॥ ८ ॥ तत्तु पार्थस्य
 विक्रान्तं बाणुदेवस्य चोभयोः । अगूजयन्महाराज कौरवा महदद्र-
 भुतम् ॥ ९ ॥ किमद्रभुनतमं लोके भविताप्यथवा लभूत् । यदश्वान्
 पार्थगोविन्दौ मोचयामासत् रणे ॥ १० ॥ भयं विपुलमस्मात्
 तावधत्तां नरोत्तमौ । तेनो विदधतुश्चोग्रं विसन्धी रणमूर्धनि ११

ने इकट्ठे होकर (उसको हटानेका) प्रयत्न किया, और अर्जुन
 उनके सामने पैदल ही लड़ा, तब भी ये अर्जुनको पीछेको न
 हटासके, यह बड़ा अद्भुत कामहुआ ॥ ४ ॥ आतीहुई घोड़े और
 रथोंकी भीड़को वह घूम २ कर हटाता ही रहा और घबड़ाया
 नहीं, क्योंकि—वह उन योधाओंसे अधिक बली था ॥ ५ ॥ वे राजे
 अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे, परन्तु शत्रुनाशक इन्द्र-
 पुत्र और धर्मात्मा अर्जुनको जरा भी पीडा नहीं हुई ॥ ६ ॥
 जैसे नदियोंको समुद्र ग्रस लेता है ऐसे ही अर्जुनने शत्रुओंकी
 ओरसे आतेहुए सैकड़ों बाण गदा और प्रासोंको निकम्मा कर
 दिया ॥ ७ ॥ अर्जुनने अपने बाहुबल और बड़ेभारी अस्त्रबलसे
 सकल राजेश्वरोंके अस्त्रोंको नष्ट करदिया ॥ ८ ॥ हे महाराज !
 अर्जुन और श्रीकृष्णके उस महा अद्भुत पराक्रमकी कौरव भी
 प्रशंसा करनेलगे ॥ ९ ॥ अर्जुन और गोविंदने जो रणमें घोड़ों
 को छोड़दिया, इससे अधिक आश्चर्यजनक कौनसा कामहुआ
 होगा और होसकता है ? ॥ १० ॥ उन दोनों नरश्रेष्ठोंने हमारी

अथ स्मयन् हृषीकेशः स्त्रोमध्य इव भारत । अर्जुनेन कृते संख्ये
 शरगर्भगृहे तदा ॥ १२ ॥ उपावर्त्तयदव्यग्रस्तानश्वान् पुष्करेक्षणाः ।
 मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते ॥ १३ ॥ तेषां श्रमञ्च
 ग्लानिञ्च वमथुं वेपथुं ब्रणान् । सर्वं व्यपानुदत् कृष्णः कुशलो
 ह्यश्वकर्मणि ॥ १४ ॥ शल्यानुदव्रत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान्
 हयान् । उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥ १५ ॥ स
 तान्निबधोदकान् स्नातान् जग्धान्नान् विगतक्लमान् । योजयामास
 संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥ स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्र-
 धृतां वरः । समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥ १७ ॥
 रथं रथवरस्याजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः । दृष्ट्वा कुल्लवश्रेष्ठाः पुन-
 विमनसोभवन् ॥ १८ ॥ विनिश्चसन्तस्ते राजन् मग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।

सेनामें बड़ा भारी अथ फैलादिया और रणके मुहाने पर इन्होंने
 अपना उग्र पराक्रम करके दिखाया है ॥ ११ ॥ हे भरतवंशी
 राजन् ! जैसे स्त्रियोंमें निर्भय खड़े हों इसप्रकार सैनिकोंके बीच
 में (निर्भय) खड़ेहुए श्रीकृष्ण मन्द २ मुस्करा कर अर्जुनके
 बनाएहुए बाणगृहमें घोड़ोंको लेगए और उन्हें लिटानेलेगे १२-१३
 घोड़ोंके काममें कुशल श्रीकृष्णने सब योधाओंके सामने घोड़ोंके
 शरीरमेंसे बाण निकालढाले और घोड़ोंके परिश्रम, ग्लानि, भ्रम
 डालना तथा कँपकँपीको दूर करदिया तथा उनको थोड़ासा लिटा
 कर पानी भी पिलादिया ॥ १४-१५ ॥ जब घोड़े, न्हाकर
 पानी पीकर और घास खाकर ताजे होगए तब श्रीकृष्णने प्रसन्न
 हो, फिर उनको रथमें जोड़दिया ॥ १६ ॥ तदनन्तर अर्जुन
 रथमें चढ़ा और सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भी उस
 महारथपर चढ़गए तब वह रथ बड़ी शीघ्रतासे आगेको बढ़नेलगा १७
 कौरवोंकी सेनामें अगुआ पुरुष, जब अर्जुनके घोड़े पानी पीकर
 फिर रथमें जुगए यह देख फिर उदास होगए ॥ १८ ॥ हे राजन् !

धिगहो धिगांतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन् पृथक् ॥ १९ ॥ तत्सैन्यं
 सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् । त्वरध्वमिति चाक्रदन्नेतदस्मीति
 चाब्रुवन् ॥ २० ॥ सर्वक्षत्रस्य मिपतो रथेनैकेन दंशितौ । बाल-
 क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥ २१ ॥ क्रोशतां यतमाना-
 नामसंसक्तौ परन्तपौ । दर्शयित्वात्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु २२
 तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदान्ये सैनिकाब्रुवन् । त्वरध्वं कुरवः सर्वे
 वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥ २३ ॥ रथयुक्तो हि दाशार्हो मिपतां
 सर्वधन्विनाम् । जयद्रथाय यात्येष कदर्नीकृत्य नो रणे ॥ २४ ॥
 तत्र केचिन्मियो राजन् समभाषन्त भूमिपाः । अदृष्टपूर्वं संग्रामं
 तद् दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २५ ॥ सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रो-

वे दृष्टी ढाढ बाले सर्पकी समान साँस लेनेलगे और वे अलग २
 बोलउठे कि—कृष्ण और अर्जुन हमारा अपमान करके चलेगए,
 हमें धिक्कार है ! धिक्कार है ! ॥ १९ ॥ वे सब सेनाएं चारों ओरसे इस
 अद्भुत और लोमहर्षण अर्जुनके कामको देखकर शीघ्रतासे 'अर्जुन
 को पकड़ लो' इस प्रकार चिल्लाने लगीं और फिर कहने लगीं,
 कि—अरे अर्जुनकी समान बल हममें नहीं है ॥ २० ॥ परन्तप और
 कवचधारी कृष्ण तथा अर्जुन एक रथकी ही सहायतासे, बालक जैसे
 खिलौनोंका तिरस्कार करे, इस ही प्रकार हमारी सेनाका तिरस्कार
 करके सब सेनाके चिल्लाते और देखते हुए ही अपने पराक्रमको
 दिखाकर सब राजाओंके बीचमेंसे चलेगए ॥ २१—२२ ॥ दूसरे
 सैनिक श्रीकृष्ण और अर्जुनको आगेको जाता देखकर कहनेलगे,
 कि—अरे ! तुम सब कृष्ण और अर्जुनके वधके लिये शीघ्रता
 करो ॥ २३ ॥ यह कृष्ण रथमें बैठकर हम सबोंका तिरस्कार
 करके जयद्रथको मारनेके लिये बढ़ा ही चला जाता है ॥ २४ ॥
 हे राजन् ! उस समय कितने ही राजे कृष्ण और अर्जुनके
 संग्राममें पहिले न देखेहुए, महा अद्भुत पराक्रमको देखकर बोल

त्ययं गतः । दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥ २६ ॥
 विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते । इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुव-
 न्त्यन्ये च भारत ॥ २७ ॥ सिन्धुराजस्य यत् कृत्यं गतस्य यम-
 सादनम् । तत् करोति वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रोनुपायवित् ॥ २८ ॥
 ततः शीघ्रतरं प्रायात् पाण्डवः सैन्धवं प्रति । विवर्त्तमाने तिग्मांशौ
 हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥ २९ ॥ तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृता-
 भ्वरम् । नाशकनुवन् वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३० ॥
 विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः । यथा मृगगणान्
 सिंहः सैन्धवार्थं व्यलोडयत् ॥ ३१ ॥ गाहमानस्त्वनीकानि तूर्ण-
 मश्वानचोदयत् । वताकाभन्तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ३२

उठे ॥ २५ ॥ दुर्योधनके अपराधसे सब सेनाएं, सम्पूर्ण पृथ्वी
 और राजा धृतराष्ट्र भी नष्ट होजायेंगे ॥ २६ ॥ यह बात राजा
 धृतराष्ट्रकी समझमें आती ही नहीं इसप्रकार योधा बातें कर रहे
 थे, कि-दूसरे कितने ही योधा बोल उठे, कि-॥२७॥ सिन्धुराजके
 मरने पर जो काम करना चाहिये था, उसको मूर्ख दुर्योधन अभीसे
 करने लगा ॥ २८ ॥ इसप्रकार कौरवपक्षके योधा बातें कर रहे थे,
 उस समय सूर्यनारायण अस्ताचलकी ओर जानेकी तयारीमें थे,
 उस समय अर्जुन युधा और प्याससे रहित प्रसन्न घोड़ोंसे जुते
 हुए रथमें बैठकर वेगसे जयद्रथकी ओरको बढ़ रहा था, कोपायमान
 कालकी समान सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनने जिस
 समय जयद्रथकी ओरको धावा किया, उस समय योधा उसको
 रोक नहीं सके, जैसे एक सिंह मृगोंकी टोलियोंको बखेर देता है,
 तैसे ही जयद्रथके पास जानेके लिये शत्रुतापन अर्जुनने भी
 योधाओंको बखेर कर भगा दिया ॥ २९-३१ ॥ श्रीकृष्ण भी वेगसे
 घोड़ोंको हाँककर नयी सेनामें जा पहुँचे और बगलेकी समान
 स्वेत शंखको बजाने लगे ॥ ३२ ॥ पवनकी समान वेगवान् घोड़े

कौन्तेयेनाग्रतः सृष्टा न्यपतन् पृष्ठतः शराः । तूर्णात्तूर्णतरं ह्यश्वः
 प्राविहन् वातरंहसः ॥ ३३ ॥ ततो नृपतपः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनञ्ज-
 यम् । क्षत्रिया बहवश्चान्ये जयद्रथधैरिणम् ॥ ३४ ॥ सैन्येषु
 विप्रयातेषु तिष्ठन्तं पुरुषर्षभम् । दुर्योधनोन्वयात् पार्थ त्वरमाणो
 महाहवे ॥ ३५ ॥ वातोद्भूतपताकन्तं रथं जलदनिःस्वनम् । घोरं
 कण्ठध्वजं दृष्ट्वा विपण्णा रथिनोभवन ॥ ३६ ॥ दिवाकरेथ रजसा
 सर्वतः संवृते भृशम् । शरार्त्ताश्च रणे योधाः शोकः कृष्णो न
 वीक्षितुम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सैन्य-

विस्मये शनतमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

सञ्जय उवाच । संसन्त इव मज्जा नस्त्वायकानां भयान्नृप ।

ऐसे वेगसे रथको खँच रहे थे, कि—रथपरसे आगेको छोड़े हुए
 अर्जुनके बाएँ रथसे पीछे गिर रहे थे ॥ ३३ ॥ जयद्रथको
 मारनेकी इच्छासे अर्जुन आगेको बढ़ा ही चला जारहा था,
 काधमें भरेहुए उस समय बहुतसे राजे और क्षत्रियोंन उसको घेर
 लिया ॥ ३४ ॥ परन्तु अर्जुन तो आगेको बढ़ा ही चला गया,
 तब उसका पीछा करनेवाली सेनाएँ, पीछेको लाँटपट्टी परन्तु
 दुर्योधन बड़ी शीघ्रतासे अर्जुनके पीछे २ ही चला गया ॥ ३५ ॥
 जिसकी पताका पवनसे फहरा रही थी जिसके रथकी घरघराहट
 मेघके गर्जनकीसी होरही थी और जिसकी ध्वजामें हनुमान् थे उस
 अर्जुनके भयङ्कर रथको देखकर शत्रुओंके योधा खिन्न होगए ३६
 इस समय चारों ओरसे उड़ती हुई धूलिके कारण सूर्य ढक गया
 था और बाणोंके लगनेसे सैनिकोंको ऐसी पीडा होरही थी कि—
 वे श्रीकृष्ण और अर्जुनको देख भी न सके ॥ ३७ ॥
 सौवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०० ॥

सञ्जयने कहा कि—हे धृतराष्ट्र ॥ द्रोणकी सेनाको लाँचकर

तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवमञ्जयौ ॥ १ ॥ सर्वे तु प्रतिसं-
 न्धा हीमन्तः सत्वचोदिताः । स्थिरी भूता महात्मानः प्रत्यगच्छ-
 न्धनञ्जयम् ॥ २ ॥ ये गताः पाण्डवं युद्धे रोषामर्षसमन्विताः ।
 तेषां न निवर्त्तन्ते सिन्धवः सागरादिव ॥ ३ ॥ असन्तस्तु न्य-
 वर्त्तन्त देवेभ्य इव नास्तिकाः । नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त
 किल्बिषम् ॥ ४ ॥ तावतीत्य रथानीकं विभुक्तौ पुरुषर्षभौ । दह-
 शाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ ॥ ५ ॥ प्रत्स्यान्निव महाजालं
 विदार्य विगतक्लमौ । तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत्
 विभुक्तौ शस्त्रसम्बाधाद् द्रोणानीकात् सुदुर्भिदात् । अदृश्येतां
 महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ ७ ॥ अस्त्रसम्बाधनिर्मुक्तौ विभुक्तौ

आयेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर डरके मारे तुम्हारे
 योधाओंकी नसें ढीली पड़ गई और वे भागने लगे कितने ही महा-
 पुरुष खड़े हुए लज्जावश तथा क्रोध आजानेके कारण अपने
 हृदयको दृढ करके अर्जुनके सामने डट गये ॥ २ ॥ जो योधा
 क्रोध और चिरकालके वैरके कारण अर्जुनके सामने पड़े, वे
 जैसे नदि में समुद्र में पहुँचकर फिर पीले को नहीं लौटती हैं, तैसे ही
 आज तक न लौटे अर्थात् मारे गए ॥ ३ ॥ जैसे दुष्ट नास्तिक
 वेदका अनींदर करनेके कारण नरक में पड़ते हैं तैसे ही जो योधा
 अर्जुनके सामने से हट गए, उनको बड़ा पाप लगा और वे नरक में
 पड़े हैं ॥ ४ ॥ इस समय रथोंका सेनाको लाँचकर मुक्त हुए पुरुषो-
 त्तम श्रीकृष्ण और अर्जुन राहुके मुखसे छूटे हुए सूर्य तथा चन्द्रमा
 की समान दिखाई दिये ॥ ५ ॥ बड़े भारी सेनारूप जालको काट
 कर बाहर निकले हुए दुःखरहित श्रीकृष्ण और अर्जुन महाजाल
 को तोड़कर निकले हुए दुःखरहित दो मच्छोंकी समान दीखते
 थे ॥ ६ ॥ शस्त्रोंके संकट और दुर्भेद्य द्रोणाचार्यकी सेनासे छूटे
 हुए महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन उदय होते हुए दो कालसूर्य

शस्त्रसङ्कुटात् । अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसम्बाधकारिणौ ॥ ८ ॥
 विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शान्मकरास्याज्भूपाविव । अन्नोभयेतां सेनां तौ
 समुद्रं मकराविव ॥ ९ ॥ तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकास्थ-
 योस्तयोः । नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम् ॥ १० ॥
 तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती । नाशशंसुर्महाराज
 सिन्धुराजस्य जीवितम् ॥ ११ ॥ आशा बलवती राजन् सिन्धु-
 राजस्य जीविते । द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति
 प्रभो ॥ १२ ॥ तामाशां विफलीकृत्य संतीर्णौ तौ परन्तपौ । द्रोणा-
 नीकं महाराज भोजानीकाच्च दुस्तरम् ॥ १३ ॥ अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ
 ज्वलिताविव पावकौ निराशाः सिन्धुराजस्य जीवितं न शशंसिरे ॥ १४ ॥

की समान दीखते थे ॥ ७ ॥ अस्त्र और शस्त्रोंके संकटसे छूटेहुए
 वे महात्मा शत्रुओंको पीड़ित करतेहुए दीखे ॥ ८ ॥ अग्निके
 स्पर्शकी समान तीक्ष्ण स्पर्शवाने बाणसंकटसे छूटकर वे दोनों
 वीर, मगरके मुखसे छूट समुद्रको खलभलाते हुए दो मच्छोंकी
 समान, सेनाको खलभलाने लगे ॥ ९ ॥ जब श्रीकृष्ण और
 अर्जुन द्रोणकी सेनामें थे, उस समय तुम्हारे पुत्र और सैनिकों
 का यह विश्वास था, कि—वे द्रोणके हाथमेंसे छूट न सकेंगे १०
 परन्तु जब उन्होंने देखा, कि—ये महाकान्तिमान् दोनों वीर द्रोण
 की सेनाको लौंघकर चले आए, तब उन्होंने जयद्रथके जीवनकी
 आशा छोड़ दी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! सिन्धुराज जीवित रहेगा
 और कृष्ण तथा अर्जुन द्रोण और हार्दिक्यके हाथसे नहीं छूटेंगे
 आपके पुत्रोंको यह बड़ी आशा थी ॥ १२ ॥ परन्तु दोनों पर-
 न्तप तुम्हारे पुत्रकी आशाको विफल करके भोज और द्रोणकी
 दुस्तर सेनाको लौंघकर निकल गये ॥ १३ ॥ प्रदीप्त अग्निकी
 समान श्रीकृष्ण और अर्जुनको पार पहुँचाहुआ देखकर, कौरव
 सिन्धुराजके जीवनसे निराश हो गए ॥ १४ ॥ निर्भय श्रीकृष्ण

मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ । जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः
 कृष्णधनञ्जयौ ॥ १५ ॥ असौ मध्ये कृतः षडभिर्घातैराष्ट्रैर्महा-
 रथैः । चक्षुर्विषयसम्प्राप्तो न मे मोक्षयति सैन्धवः ॥ १६ ॥ यद्यस्य
 समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह । तथाप्येनं निहंस्याव इति कृष्णा-
 वभाषताम् ॥ १७ ॥ इति कृष्णौ महाबाहु मिथः कथयतां तदा ।
 सिन्धुराजमवेक्षन्तौ त्वत्पुत्रा बहु चुक्रुशुः ॥ १८ ॥ अतीत्य मरु-
 धन्वानं प्रयांतौ तृषितौ गजौ । पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवास्ता-
 मरिन्दमौ ॥ १९ ॥ व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्य च पर्वतान् ।
 वणिजाविव दृश्येतां हीनमृत्युं जरातिगौ ॥ २० ॥ तथा हि मुख-
 वर्णोऽयनयोरिति मेनिरे । तावका वीक्ष्य भुक्तौ तौ विक्रोशन्ति स्म

और अर्जुन द्रोणकी सेनामेंसे निकल शत्रुओंके भयको बढ़ाते
 हुए जयद्रथके वधके विषयमें आपसमें बातें करनेलगे ॥ १५ ॥
 जयद्रथकी छः महारथी कौरवोंने अपने बीचमें रख छोड़ा है और
 उसकी खूब रक्षा करते हैं परन्तु वह मेरी दृष्टिके सामने पड़ा कि-
 मैं उसको जीता नहीं छोड़ूंगा ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन
 आपसमें कह रहे थे, कि-यदि इन्द्र देवताओंको लेकर इसकी
 रक्षा करेगा, तो भी हम इसे मार डालेंगे ॥ १७ ॥ महाबाहु श्रीकृष्ण
 और अर्जुन इसप्रकारकी बातें करतेहुए सिंधुराजकी ओरको
 देखनेलगे, इतनेमें ही तुम्हारे पुत्र बड़ा भारी कोलाहल करने
 लगे ॥ १८ ॥ इस समय द्रोणकी सेनाको लाँघ जयद्रथको देखने पर
 श्रीकृष्ण और अर्जुन ऐसे प्रसन्न हुए जैसे मरुभूमिको लाँघ
 पानी पीकर तृप्त हुए दो हाथी प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ व्याघ्र,
 सिंह और हाथियोंसे भरे पर्वतको लाँघजाने पर जैसे व्यापारी
 मृत्यु और जराके भयसे छूट निश्चिन्त होजाता है तैसे ही सेना
 को लाँघ जरा और मृत्युरहितहुए वे भी दोनों परमशान्त हुए २०
 श्रीकृष्ण और अर्जुनके मुखका वर्ण ऐसा दीखता था, जिससे

सर्वशः ॥ २१ ॥ द्रोणादाशीविपाकाराञ्ज्वलितादिव पावकात् ।
अन्येभ्यः पथिवेभ्यश्च भास्वन्ताविव भास्करो ॥ २२ ॥ विमुक्तो
सागरप्रख्याद् द्रोणातीकादरिन्दमौ । अदृश्येतां मुदा मुक्तो समु-
त्तीर्याण्वं यथा ॥ २३ ॥ अस्त्रौघान्महतो मुक्तो द्रोणहादिक्य-
रक्षितात् । रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्रयोः सदृशौ रणे ॥ २४ ॥
उद्भिन्नरुधिरौ कृष्णौ भारद्वाजस्य सायकैः । शितैश्चित्तौ व्यरोचेतां
कर्णिकारैरिवाचलौ ॥ २५ ॥ द्रोणग्राहद्वन्द्वमुक्तौ शक्त्याशीविपसङ्कु-
टात् । अग्रशरोग्रगफरात् क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥ २६ ॥ ज्याघ्रोप-
तलनिहादाद्रदानिस्त्रिशविद्युतः । द्रोणास्त्रघेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्द्र-
तिमिरादिव ॥ २७ ॥ बाहुभ्यामिव संतीर्णौ सिन्धुपट्टाः समुद्रगाः ।

तुम्हारे सैनिकोंमें यह विश्वास जमगया, कि-हम जयद्रथको मार
हा डालेंगे, उन दोनोंको सेनासे निकलाहुआ देखकर कौरव चारों
ओरसे चिन्तलीपुकार मचाने लगे ॥ २१ ॥ धधकती हुई अग्नि
और सर्पकी समान आकारवाले द्रोण तथा दूसरे भी अनेकों
राजाओंसे बचेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रकाशवान् दो सूर्योंकी
समान दीखने लगे ॥ २२ ॥ अरिन्दम श्रीकृष्ण और अर्जुन समुद्र
सी द्रोणसेनाको लाँचकर ऐसे प्रसन्न दिखाई दिये जैसे समुद्र
को ही पारकर लिया हो ॥ २३ ॥ द्रोण और कृतवर्माके बड़े भारी
बाणजालसे बचकर वे रणमें इन्द्र और अग्निकी समान प्रकाश-
मान् दीखने लगे ॥ २४ ॥ द्रोणके तीक्ष्ण बाणोंसे लोहलुहान हुए
और बाणोंसे बिधेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुन कनेरके घृत्तोंसे भरे
दो पर्वतोंकी समान दीखते थे ॥ २५ ॥ वे द्रोणरूपी ग्राह शक्ति-
रूप सर्प, लोहेके बाणरूप उग्र गगर और वीर क्षत्रियरूप जलवाले
सरोवरमेंसे निकल आए ॥ २६ ॥ प्रत्यञ्चाके शब्दरूप गर्जना,
गदा तलवाररूप विजलीसे द्रोणके अस्त्ररूप मेघसे छूटेहुए श्रीकृष्ण
और अर्जुन अन्धेरेसे बिलगहुए सूर्य और चन्द्रमाकी समान

तपान्ते सरितः पूर्णा मेहाग्राहसमाकुलाः ॥ २८ ॥ इति कृष्णौ
महेष्वासौ प्रशस्तौ लोकविश्रुतौ । सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्र-
वलवारणात् ॥ २९ ॥ जयद्रथं समीपस्थमवेक्षन्तौ जिघांसया ।
रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्राच्चिव व्यतिष्ठताम् ॥ ३० ॥ यथा हि
मुखवर्णोऽयमयोरिति मेनिरे । तव योधा महाराज इतमेव जय-
द्रथम् ॥ ३१ ॥ लोहिताक्षौ महाबाहू संयुक्तौ कृष्णपाण्डवौ ।
सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥ ३२ ॥ शौरैरभीषुह-
स्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः । तयोरासीत् प्रभा राजन् सूर्यपावक-
योरिव ॥ ३३ ॥ हर्ष एव तयोरासीद् द्रोणातीक्ष्णमुखयोः । समीपे
सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥ ३४ ॥ तौ तु सैन्धवमालोक्य

दीखनेलगे ॥ २७ ॥ लोकमें प्रसिद्ध और महाधनुषधारी कृष्ण
तथा अर्जुनने जब द्रोणके अस्त्रोंको हटादिया तब जलसे भरी
बड़े २ नाकोंवाली सिंधु, शतद्विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा और
वितस्ता नामवाली छः महानदियोंको दोनों हाथोंसे तर गए हो
ऐसा तुम्हारी सेनाएं माननेलगीं ॥ २८ २९ ॥ श्रीकृष्ण और
अर्जुन समीपमें खड़े जयद्रथको मारनेकी इच्छासे ऐसे देखनेलगे
जैसे जलके तालाब पर खड़ेहुए रुरु नामक मृगको दो बाघ घेरकर
देखरहे हो ॥ ३० ॥ जैसा उनके मुखका वर्ण था, उससे हे महा-
राज ! तुम्हारे योधाओंने सबकुछ लियाकि-वस अब जयद्रथ मारा
गया ॥ ३१ ॥ लाल २ नेत्रोंवाले महाबाहू श्रीकृष्ण और
अर्जुन, सिंधुराज जयद्रथको देखकर बड़े प्रसन्नहुए तथा वारम्बार
गरजनेलगे ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! उस समय रासों पकड़ेहुए
श्रीकृष्ण और धनुष उठायेहुए अर्जुनकी कान्ति सूर्य और अग्नि
की समान थी ॥ ३३ ॥ द्रोणकी सेनासे छूटेहुए श्रीकृष्ण और
अर्जुन जयद्रथको सामने देखकर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे दो बाज
अपने समीपमें मांसको देखकर प्रसन्न हो रहेहों ॥ ३४ ॥ जयद्रथको

वर्त्तमानमिवान्तिके । सहसा पेततुः क्रुद्धा क्षिप्रं श्येनाविवामिषम् ३५
 तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनञ्जयौ । सिन्धुराजस्य
 रत्नार्थं पराक्रान्तः सुनस्तव ॥ ३६ ॥ द्रोणेनावज्जकवधौ राजा दुर्यो-
 धनस्ततः । ययायेकरथेनाजी ह्यसंस्कारवित् प्रभो ॥ ३७ ॥
 कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याथ ते सुतः । अग्रतः पुण्डरीकाक्षं
 प्रतीयाय नराधिप ॥ ३८ ॥ ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत् ।
 प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनञ्जय ॥ ३९ ॥ सिंहनादरवाश्वा-
 सन् शंखशब्दविमिश्रिताः । दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे
 स्थितम् ॥ ४० ॥ ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः ।
 ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा दुर्योधनं
 कृष्णो व्यतिक्रान्तं सहानुगम् । अत्रवीर्जुनं राजन् प्राप्तकाल-
 मिदं वचः ॥ ४२ ॥ एकाधिकशततपोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

पासमें देख वे दोनों क्रोधमें भरेहुए उसके ऊपर, मांसके ऊपर
 दो बाजोंके भगटनेकी समान, शीघ्रतासे झपटे ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्ण
 और अर्जुनको जयद्रथके ऊपर झपटतेहुए देख दुर्योधन सिन्धु-
 राजकी रत्नाके लिये झपट आया ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! उस समय
 घोड़ोंका हौंकना जाननेवाला और जिसके द्रोणने कवच बाँध
 दियाथा ऐसा राजा दुर्योधन अकेला ही रथमें बैठ युद्धके लिये दौड़
 आया ३७ और हे राजन् ! महाधनुषधारी श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी
 करवटसे निकल श्रीकृष्णसे अटकता हुआ उनके आगे आकर
 खड़ा होगया ॥ ३८ ॥ उस समय तुम्हारे पुत्रके धनञ्जयसे आगे
 निकलजाने पर सब सेनाएं हर्षमें भरकर बाजे बजानेलगीं ॥ ३९ ॥
 सिंहनाद होनेलगे, शंख बजनेलगे दुर्योधनको श्रीकृष्ण और
 अर्जुनके आगे खड़ा देखकर हे प्रभो ! अग्निकी समान प्रतापी
 जयद्रथके रत्नकोंको भी बड़ा हर्ष होनेलगा ४० ॥ श्रीकृष्ण अपने
 अनुचरों सहित दुर्योधनको सामने खड़ा देखकर अर्जुनसेसमया-
 नुकूल यह बात कहनेलगे ४१ एकसौ एकवाँ अध्याय समाप्त १०१

वासुदेव उवाच । दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनञ्जय । अत्य-
 द्युतमिमं मन्ये नास्त्यस्य सदृशो रथः ॥ १ ॥ दूरपाती महेष्वासः
 कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः । दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः २
 अत्यन्तसुखसम्पृद्धा मानितश्च महारथः । कृती च सततं पार्थ नित्यं
 द्वेष्टि च बांधवान् ॥ ३ ॥ तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ । अत्र
 वो व्यूतमायत्तं विजयायेतराय वा ॥ ४ ॥ अत्र क्रोधविषं पार्थ
 विमुञ्च विरसंभृतम् । एष मृतमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥ ५ ॥
 सोयं प्राप्तस्तवात्ते पश्य साफल्यमात्मनः । कथं हि राजा राज्यार्थी
 त्वया गच्छेत् संयुगम् ॥ ६ ॥ दिष्ट्या त्विदानीं संपाप्त एष ते

वासुदेव बोले, कि-हे धनञ्जय ! यह दुर्योधन हमसे भी आगे
 निकल गया है, इसको तू देख (हमै लाँघकर आगे निकल आया
 इसलिये) मैं समझता हूँ, कि-यह अद्भुत पराक्रमी है और सेना
 में इसकी समान दूसरा कोई रथी नहीं है ॥ १ ॥ धृतराष्ट्र
 का पुत्र दुर्योधन बड़ी दूर तक बाण फेंकनेवाला महाधनुषधारी,
 अस्त्रकुशल युद्धमें दुर्मद, दृढ़ अस्त्रोंवाला, नानाप्रकारसे युद्ध करने
 वाला और महाबली है ॥ २ ॥ और यह महारथी बड़े सुखमें पलकर
 बड़ा है मान पाया हुआ और काम करनेवाला है तथा बांधवों
 से सदा वैर बाँधे रहता है ॥ ३ ॥ हे अनघ ! मेरी इच्छा है,
 कि-इस समय तू इसके साथ युद्ध कर यह युद्ध व्यूतकि-जय परा-
 जयकी समान तुम दोनोंमेंसे एकको जय और पराजय देगा ॥ ४ ॥
 हे पार्थ ! बहुत समयसे इकट्ठे किये हुए क्रोधरूपा विषको इस
 दुर्योधनके ऊपर छोड़ यह महारथी ही पाण्डवोंके दुःखोंका मूल
 कारण है ॥ ५ ॥ और आज यह राजा दुर्योधन स्वयं ही तेरे बाणोंके
 सामने आ गया है, अतः तू अपनेको कृतार्थ समझ नहीं तो यह
 राज्यका लोभी राजा तेरे सामने लड़ने मरनेको क्यों आता ॥ ६ ॥
 ही अच्छा हुआ जो आज यह तेरे सामने आकर खड़ा होगया,

वाणगोवरम् । यथायं जीवितं जह्यात्तथा कुरु धनञ्जय ॥ ७ ॥
 ऐश्वर्यमदसम्भूतो नैव दुःखमुपेयिवान् । न च ते संयुगे वीर्यं
 जानाति पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥ त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ समुरासुरमा-
 नुषाः । नोत्सहन्ते रणे जेतुं त्रिमुत्तैकः सुयोधनः ॥ ९ ॥ स
 दिष्ट्या समनुमासस्तव पार्थ रथान्तिकम् । जह्वैनं त्वं महाबाहो यथा
 वृत्रं पुरन्दरः ॥ १० ॥ अप ह्यनर्थं सततं पराक्रान्तस्तवानघ । निवृत्त्वा
 धर्मराजश्च ह्यने वञ्चितवानयम् ॥ ११ ॥ बहूनि सृष्टृशंसानि कृता-
 न्यैनेन मानद । युष्मासु पापपतिना अयापेण्वेव नित्यदा ॥ १२ ॥ तम-
 नार्थं सदा कुटुं पुरुषं कामरूपिणम् । आर्या युद्धे मर्तिं कृत्वा जहि
 पार्थाविचारयन् ॥ १३ ॥ निवृत्त्या राज्यहरणं वनवासश्च पाण्डवः ।

इसलिये हे धनञ्जय ! अब तो तू ऐसाकर कि-जिससे यह शीघ्र
 माराजाय ॥ ७ ॥ हे पुरुषमवर ! यह ऐश्वर्यके मदमें चूर होरहा
 है और इस दुर्योधनके ऊपर कभी दुःख नहीं पडा है इस लिये ही
 यह रणमें तेरे पराक्रमको नहीं जानता है ॥ ८ ॥ हे पार्थ !
 देवता असुर और मनुष्यों सहित तीनों लोक भी रणमें तुम्हे
 जीतनेका उत्साह नहीं कर सकते फिर अकेला दुर्योधन तो है
 ही क्या ? ॥ ९ ॥ हे पार्थ ! यह दुर्योधन तेरे रथके सामने
 जान बूझकर चला आया, यह अच्छा ही हुआ, इस लिये हे
 महाबाहु ! जैसे पहिले इन्द्रने वृत्रासुरको मारडाला था
 तैसे ही तू दुर्योधनको मारडाल ॥ १० ॥ तू निर्दोष है तो भी
 यह सर्वदा तेरा घुरा चीतनेमें ही लगा रहता है और इसने ही
 छलसे धर्मराजको जुए में जीत लिया था ॥ ११ ॥ तुम निर्दोष
 थे, इसका मान करते थे, तो भी इस पापीने तुम्हें घोर दुःखदिये
 ॥ १२ ॥ अतः हे पार्थ ! अब तू युद्ध करनेके लिये उदारबुद्धि
 हो जा, और कुछ विचार न करके इस काममूर्ति दुर्योधनको मार
 डाल ॥ १३ ॥ हे पाण्डव ! इस अनार्य कोधीने कपट करके

परिक्लेशञ्च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रमम् ॥ १४ ॥ दिष्ट्यैष तव
वाणानां गोचरे परिवर्तते । प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यत-
तेग्रतः ॥ १५ ॥ दिष्ट्या जानाति संग्रामे योद्धव्यं हि त्वया सह ।
दिष्ट्या च सफलाः पार्थ सर्वे कामा ह्यकाभिताः ॥ १६ ॥ तस्मा-
ज्जहि रणो पार्थ धार्तराष्ट्रं कुलाधमम् । यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो
देवासुरे मृधे ॥ १७ ॥ अस्मिन् हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यता-
मिदम् । वैरस्यास्यास्त्ववधृतो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम् ॥ १८ ॥
सञ्जय उवाच- । तं तथेत्यग्रवीत् पार्थः कृत्यरूपमिदं मम । सर्व-
मन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ १९ ॥ येनैतदीर्घकालं नो

तुम्हारा राज्य छीनलिया और तुम्हें राज्यमेंसे हटाकर वनवास
दिया तथा द्रौपदीको बड़े २ कष्टदिये इस सबका मनमें विचार
करके अब तू अपना पराक्रम दिखा ॥ १४ ॥ यह तू अनाथ सौ-
भाग्य समझ कि-यह तेरे बाणका निशाना बनकर खड़ा है,
और यह वानक भी प्रारब्धसे ही बन गया है, कि-जो यह जय-
द्रथके मारनेके लिये आरम्भ कियेहुए काममें विघ्न डालनेके लिये
आगे आकर प्रयत्न कर रहा है ॥ १५ ॥ प्रारब्धवश ही यह तुझसे
संग्राममें लिडना चाहता है, हे पार्थ ! आज बिना चाहे ही सब
कामनायें प्रारब्धवश सफल होती दीखती हैं ॥ १६ ॥ हे पार्थ !
जैसे पहिले देवासुरसंग्राममें इन्द्रने जम्भासुरको मार डाला था,
तैसे ही तू इस कुलाधम धृतराष्ट्रके पुत्रको मार डाल ॥ १७ ॥
इसको मारकर तू इसकी अनाथ हुई सेनाका भी नाशकर और
इसके मारनेको तू वैररूपी रणयज्ञका अवभृथ स्नान समझ
अतः तू इस दुरात्माओंकी जड़को आज ही काट डाल ॥ १८ ॥
सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुनकर
अर्जुनने कहा, कि-ठीक है यदि यह काम मुझ अवश्य करना
चाहिये तो हे श्रीकृष्ण ! तुम और सबोंको छोड़कर मेरा रथ

भुक्तं राज्यमकण्टकम् । अप्यस्य युधि विक्रम्यच्छिन्नां मूर्ध्नि-
माहवे ॥ २० ॥ अपि तस्या हानर्हायाः परिक्लेशस्य माधव ।
कृष्णायाः शक्नुयां गन्तुं पदं केशधर्षणं ॥ २१ ॥ इत्येवं वादिनौ
कृष्णौ हृष्टौ श्वेतान् हयोत्तमान् । प्रेषयामासतुः संख्ये प्रेप्सन्तौ
तं नराधिपम् ॥ २२ ॥ तयोः समीपं लम्बाप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
न चेकार भयं प्राप्ते भये महति पारिप ॥ २३ ॥ तदस्य क्षत्रियास्तत्र
सर्वे एवाभ्यपूजयन् । यदर्जुनहृषीकेशौ प्रत्युद्यातौ न्यवारयत् ॥ २४ ॥
ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशां पते । महानादौ ह्यभूत्तत्र
दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥ तस्मिन् जनसमुन्नादे प्रवृत्ते
भैरवे सति । कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यभिन्नमवारयत् ॥ २६ ॥

दुर्योधनके समीप ही लेचलो १६ इसने हमारे राज्यको चिरकाल
तक निष्कण्टताके साथ भोगा है, मैं रणमें पराक्रम करके आज
इसके मस्तकको काट डालूँगा ॥ २० ॥ इतना ही नहीं, किन्तु
हे माधव ! इसने दुःखके अयोग्य द्रौपदीके केशोंको खेंचकर उस-
को जो दुःख दिया है आज उसका बदला भी लूँगा ॥ २१ ॥
इसप्रकार कहते २ श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रसन्न हो अपने श्वेत
घोड़ोंको उस राजाको पकड़नेकी इच्छासे उसकी ओरको बढ़ाने
लगे ॥ २२ ॥ हे भरतर्षभ ! तुम्हारा पुत्र उनके बहुत ही पास
आगया, परन्तु ऐसे बड़ेभारी संकटमें पड़जाने पर भी हे राजन् !
वह जरा भी डरा नहीं ॥ २३ ॥ उसने सम्मुख आयेहुए श्रीकृष्ण
और अर्जुनको रोकदिया, यह देखकर सब क्षत्रिय तुम्हारे पुत्रकी
प्रशंसा करनेलगे ॥ २४ ॥ हे राजन् ! उस समय तुम्हारी सब सेनाएँ
राजा दुर्योधनको युद्धमें अर्जुनके सामने खड़ा देख बड़े नादके
साथ हर्षध्वनि करनेलगी २५ मनुष्योंकी उस महाभयंकर गर्जना
के समय तुम्हारे पुत्रने अर्जुनका तिरस्कार करके उसे आगे बढ़ने
से रोकलिया २६ जब तुम्हारे धनुषधारी पुत्रने अर्जुनको आगे

आवाहितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना । संरम्भमगमद्दु-
 भूयः स च तस्मिन् परन्तपः ॥ २७ ॥ तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ
 दुर्योधनधनञ्जयौ । अभ्यवैक्षन्त राजानो भीमरूपाः सम-
 न्ततः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा तु पार्थः संरब्धं वासुदेवश्च मारिष । प्रहस-
 न्नेव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत् ॥ २९ ॥ ततः प्रहृष्टो दाशार्हः
 पाण्डवश्च धनञ्जयः । व्यक्रोशेतां महानादं दध्मतुश्चाम्बुजोत्तमौ ३०
 तौ हृष्टरूपौ सम्प्रेक्ष्य कौरवेयास्तु सर्वशः । निराशाः समभ्यन्त
 पुत्रस्य तव जीविते ॥ ३१ ॥ शोकमापुः परे चैव कुरवः सर्व एव
 ते । असंयन्त च पुत्रन्ते वैश्वानरमुखे हृतेम् ॥ ३२ ॥ तथा तु दृष्ट्वा
 योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ । हतो राजा हतो राजेत्यूचिरे च
 भयार्हिताः ॥ ३३ ॥ जनस्य सन्निनादन्तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

वदनेसे रोक दिया तब अर्जुन बड़े क्रोधमें भरगया यह देख दुर्यो-
 धन भी बड़े क्रोधमें भरगया ॥ २७ ॥ दुर्योधन और अर्जुनको
 क्रोधमें भराहुआ देख कर भयङ्कररूप बाले राजे भी चारों ओरसे
 उनको देखनेलगे २८ हे राजन् ! लड़नेकी इच्छाबाला दुर्योधन
 श्रीकृष्ण और अर्जुनको क्रोधमें भरा देखकर हँसा और उन्हें लड़ने
 के लिये बुलानेलगा २९ तदनन्तर जब दाशार्हकुलोत्पन्न श्रीकृष्ण
 और पांडुपुत्र अर्जुन आनन्दमें भरकर गर्जना करनेलगे तथा शंख
 वज्रानेलगे ॥ ३० ॥ तब उनको प्रसन्नमुख देखकर सब योधा
 दुर्योधनके जीवनके विषयमें निराश होगये ॥ ३१ ॥ दूसरे राजे
 और कौरव बड़े ही शोकमें पड़गए और उन्होंने समझा, कि-
 दुर्योधन वैश्वानर अग्निमें होम दियागया ॥ ३२ ॥ तुम्हारे योधा
 श्रीकृष्ण और पांडवकी खिलीहुई आकृतिको देखकर भयसे
 घबड़ातेहुए कहनेलगे कि-दुर्योधन मृत्युके मुखमें जापड़ा
 दुर्योधन मृत्युके मुखमें जापड़ा ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके कोलाहलको
 सुनकर दुर्योधन सैनिकोंसे कहनेलगा, कि-तुम डरो मत ! मैं

व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेवयिष्यामि मृत्यवे ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा
सैनिकान् सर्वान् जयापेक्षी नराधिपः । पार्थमाभाष्य सरम्भादिदं
वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ पार्थ यच्छिक्षितं तेस्त्रं दिव्यं पार्थिवमेव
च । तद्दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोसि पाण्डुना ॥ ३६ ॥ यद्गलं
तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च । तत् कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्याम-
स्तव पौरुषम् ॥ ३७ ॥ अस्मत्परोक्षं कर्माणि कृतानि प्रवदन्ति ते ।
स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनवचने
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वार्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः ।
अभ्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १ ॥ वासुदेवश्च दशभिः

अभी श्रीकृष्ण और अर्जुनको मृत्युके पास भेजे देता हूँ ॥ ३४ ॥
जय चाहनेवाला राजा दुर्योधन सब सैनिकोंसे ऐसा कहकर क्रोध
में भराहुआ अर्जुनसे यह कहने लगा, कि—॥ ३५ ॥ अरे पार्थ !
यदि तू पाण्डुसे उत्पन्न हुआ है और यदि तूने दिव्य और पार्थिव
अस्त्रोंकी विद्या सीखी है तो शीघ्र ही उस अस्त्रविद्याके बलको
दिखा ॥ ३६ ॥ अरे ! तुझमें और कृष्णमें यदि कुछ बल और
वीरता हो तो मुझ शीघ्र ही दिखा ! तुम्हारे पुरुषार्थको जरा
देखे तो सही ॥ ३७ ॥ तूने राजा युधिष्ठिरके सत्कारके लिये
हमारे पीठ पीछे बहुतसे पराक्रम किये हैं ऐसा लोग कहते हैं,
परन्तु यदि तूने पराक्रम किये हों तो यहाँ रणमें मेरे सामने
दिखा ॥ ३८ ॥ एकसौ दोवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०२ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! दुर्योधनने इतना कहते ही
तीन बाण अर्जुनके मारे और धर्मभेदी चार बाणोंसे उसके
घोड़ोंको घायल करदिया ॥१॥ तथा श्रीकृष्णकी बीच छातीमें

प्रत्यविध्यत स्तान्तरे । प्रतोदं चास्य भल्लेन छित्वा भूमावपात-
यत् ॥ २ ॥ तञ्चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुंस्वैः शिलाशितैः । अत्रि-
ध्यत्तूर्णपव्यग्रस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणि ॥ ३ ॥ तेषां नैष्फल्यमालोक्य
पुनर्नैव च पञ्च च । प्राहिणोन्निशितान् बाणांस्तेचाभ्रश्यन्त
वर्मणः ॥ ४ ॥ अष्टाविंशान्स्तु तान् बाणान्स्तान् विप्रेक्ष्य निष्फ-
लान् । अत्रवीत् परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥ ५ ॥ अदृष्ट-
पूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम् । त्वया सम्प्रेषिताः पार्थ नार्थं
कुर्वन्ति पत्रिणः ॥ ६ ॥ कच्चिद् गाण्डीवजः प्राणस्तथैव भरत-
र्षभ । मुष्टिश्च ते यथा पूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ ७ ॥ न वा कच्चि-
दयं कालः प्राप्तः स्यादद्य पश्चिमः । तव चेवास्य शत्रोश्च तन्मपा-
चच्च पृच्छतः ॥ ८ ॥ विस्मयो मे महान् पार्थ तव दृष्ट्वा शरानि-

दुर्योधनने दश बाण मारकर भल्ल नामक बाणसे उनके चाबुक
को पृथ्वीमें गिरादिया ॥ २ ॥ अर्जुनने भी सावधान होकर के
शिखा पर तेज किये हुए विचित्र पूंखाले चौदह बाण शीघ्रता
से दुर्योधनके मारे, परन्तु वे बाण दुर्योधनके कवच से टकराकर
भूमिमें गिरपड़े ॥ ३ ॥ उन बाणोंको निष्फल गये देखकर फिर
चौदह बाण मारे परन्तु वे भी दुर्योधनके कवचसे टकराकर पृथ्वी
में गिरपड़े ॥ ४ ॥ वीर शत्रुओंका नाशकरनेवाले श्रीकृष्ण अर्जुनके
छोड़ेहुए अट्टाईसके अट्टाईस बाणोंको निष्फल गये देखकर
अर्जुनसे कहनेलगे कि- ॥ ५ ॥ हे पार्थ ! आज मैं पहिले कभी
न देखीहुई बात देखरहा हूँ, तेरे छोड़ेहुए बाण पत्थरकी शिलासे
टकरानेवाले बाणाकी समान निष्फल होरहे हैं ॥ ६ ॥ हे भरत-
र्षभ ! तेरे गाण्डीव धनुषमें पहिलेकी समान बल है या नहीं ?
तेरी मुष्टी वा भुजाओंमें पहिलेकेसा बल है या नहीं ? ॥ ७ ॥
क्या शत्रुओंके साथ यह तेरा अन्तिम संग्राम है मैं तुझसे बूझता
हूँ उसका तू मुझे उत्तर दे ८ हे पार्थ ! रणमें दुर्योधनके रथकी

मान् । व्यर्थान् निपतितान् संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥ ६ ॥ वज्रा-
शनिसमा घोराः परकायावभेदिनः । शराः कुर्वन्ति ते नार्थं पार्थ
काद्य विडम्बना ॥ १० ॥ अर्जुन उवाच । द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण
धार्तराष्ट्रे निवेशिता । अभेद्या हि ममास्त्राणामेषा कवचधारणा ११
अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि । एको द्रोणो हि वैदे-
तदहं तस्माच्च सत्तमात् ॥ १२ ॥ न शक्यमेतत् कवचं बाणैर्भुक्तुं
कथञ्चन । अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥ १३ ॥
जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम् । यद् वृत्तं त्रिषु लोकेषु
यच्च केशव वर्तते ॥ १४ ॥ तथा भविष्यद्यच्चैव तत् सर्वं विदितं
तव । न त्विदं वेदं वै कश्चित् यथा त्वं मधुसूदन ॥ १५ ॥ एष

औरको छोड़ेहुए तेरे इन बाणोंको निष्फल होकर गिरते देखकर
मुझे बड़ा अचरज होता है ६ वज्रपातकी समान भयङ्कर और
शत्रुओंके शरीरोंको फोड़ देनेवाले तेरे बाण आज कुछ भी काम
नहीं करते, यह कैसा दुर्दैव है । ॥ १० ॥ अर्जुनने इसका उत्तर
दिया, कि—हे कृष्ण! मेरी समझमें द्रोणाचार्यने मर्जोंसे अभिमंत्रित
कवच इसको पहिराया है इसलिये ही मेरे बाण इसके कवचको
नहीं फोड़ सकते हैं ॥ ११ ॥ हे कृष्ण! इस कवचमें तीनों लोकोंकी
शक्ति समायी हुई है, इसको एक द्रोणाचार्य ही जानते हैं और मैंने
भी उन श्रेष्ठ गुरुसे सीखा है ॥ १२ ॥ इसलिये हे गोविन्द !
इस कवचको स्वयं इन्द्र भी बाण तथा वज्रसे नहीं तोड़सकता,
फिर मेरी तो बात ही क्या है ? ॥ १३ ॥ हे कृष्ण ! तुम भी इस
बातको जानते हो, फिर भी प्रश्न करके मुझे मोहमें क्यों डालते
हो ? हे केशव ! तीनों लोकोंके भूत भविष्यत् और वर्तमानकालकी
बातें तुम्हें मालूम हैं, तो भी तुम मुझसे क्यों पूछते हो ? हे मधु-
सूदन ! तुम भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानकी बातोंको जितनी जानते
हो, उतनी कोई भी नहीं जानता फिर यह प्रश्न कैसा ? १४-१५

दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम् । तिष्ठत्यभीतवत् संख्ये
 बिभ्रत् कवचधारणाम् ॥ १६ ॥ यत्त्वत्र विहितं कार्यं नैष तद्वेत्ति
 माधव । स्त्रीवदेष विभर्त्येतां युक्तां कवचधारणाम् ॥ १७ ॥ पश्य
 बाहोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन । पराजयिष्ये कौरव्यं कवचे-
 नापि रक्षितम् ॥ १८ ॥ इदमङ्गिरसे प्रादाद्देवेशो वर्म भास्वरम् ।
 तस्माद् बृहस्पतिः प्राप ततः प्राप पुरन्दरः ॥ १९ ॥ पुनर्ददौ सुर-
 पतिर्मह्यं वर्म सुसंग्रहम् । दैवं यद्यस्य वयैतद् ब्रह्मणा वा स्वयं
 कृतम् ॥ २० ॥ नैनं गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया । सञ्जय
 उवाच । एवमुक्त्वार्जुनो बाणानभिमन्त्रय व्यकर्षयत् ॥ २१ ॥
 मानवास्त्रेण मानार्हस्तीक्ष्णावरणभेदिना । विकृष्यमाणांस्तेनैव

हे कृष्ण ! यह दुर्योधन, द्रोणके द्वारा मंत्रपूर्वक ठीक कियेहुए
 इस कवचको पहिरकर रणमें निडरकी समान खड़ा है ॥ १६ ॥
 परन्तु हे माधव ! यहाँ जो कुछ करना चाहिये उसे यह बिलकुल
 नहीं जानता, यह तो केवल द्रोणसे अभिमन्त्रित कवचको पहिर
 कर स्त्रीकी समान खड़ा है ॥ १७ ॥ परन्तु हे जनार्दन ! अब
 आप मेरे धनुष और भुजाओंके बलको देखिये, अभिमन्त्रित दिव्य
 कवच पहिराकर द्रोणने दुर्योधनकी रक्षा की है, तो भी मैं आज
 इसको रणमें हरादूँगा ॥ १८ ॥ यह तेजस्वी कवच पहले देवपति
 ब्रह्माजीने अंगिरा ऋषिको दिया था, उनसे यह कवच बृहस्पतिने
 पाया, बृहस्पतिसे इन्द्रने पाया था ॥ १९ ॥ फिर इन्द्रने यह देव-
 निर्मित कवच मंत्रके उपदेशसहित मुझे दिया, इस कवचको
 चाहे ब्रह्माने अथवा और किसी देवताने बनाया हो तो भी आज
 यह मेरे बाणसे धायल होतेहुए इस दुर्बुद्धिकी रक्षा नहीं कर
 सकेगा ॥ २० ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! मानके योग्य
 अर्जुनने श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर तीक्ष्ण और कवचको तोड़ने
 वाला मानवास्त्र लिया और धनुषको खेंवकर मंत्र बोलताहुआ

धनुर्मध्यगताञ्छरान् ॥ २२ ॥ तानस्यास्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वा-
स्त्रघातिना । तान्निकृत्तानिपूःष्ठ्वा दूरतो ब्रह्मवादिना ॥ २३ ॥
न्यवेदयत् केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः । नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः
प्रयोक्तुं जनार्दन ॥ २४ ॥ अस्त्रं मामेव हन्याद्वि हन्याच्चापि
बलं मम । ततो दुर्योधनः कृष्णो नवभिर्नवभिः शरैः ॥ २५ ॥
अविध्यत रणे राजन्शरैराशीविषोपमैः । भूय एवाभ्यवर्षच्च समरे
कृष्णपाण्डवौ ॥ २६ ॥ शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः ।
चक्रुर्वादित्रनिनदान् सिंहनादरवांस्तथा ॥ २७ ॥ ततः क्रुद्धो रणे
पार्थः सूक्तकणी परिसंलिहन् । नापश्यच्च ततोऽस्याङ्गं यन्न
स्याद्दर्पमरुतम् ॥ २८ ॥ ततोस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः ।

धनुषमेंसे बाणों को छोड़ने लगा, परन्तु अश्वत्थामाने सब अस्त्रों का
नाश करनेवाले अस्त्र छोड़कर अर्जुनके उन बाणों को काटना
आरम्भ कर दिया ब्रह्मवादी अश्वथामाके दूरसे ही छोड़े हुए
बाणोंसे अपने बाणों को कटे हुए देखकर अर्जुनको बड़ा आश्चर्य
हुआ और वह श्रीकृष्णसे कहने लगा, कि—हे जनार्दन ! मैं इस
अस्त्रको दो बार नहीं छोड़ सकता २१—२४ यदि मैं इसको दुबारा
छोड़ूँगा, तो यह मुझे और मेरी सेनाको ही नष्ट कर देगा, हे राजन् !
दोनों जने इसप्रकार बातें कर रहे थे, इतनेमें ही दुर्योधनने विषधर
सर्पकी समान नौ नौ बाण अर्जुन और श्रीकृष्णके फिर मारे
तथा फिर भी वह समरमें कृष्ण और अर्जुनके ऊपर बहुतसे बाण
बरसाने लगा, इस घड़ीभारी बाणोंकी वर्षाको देखकर तुम्हारे
पक्षके योधा बड़े प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे तथा सिंहनाद
करने लगे ॥ २५—२७ ॥ इससे अर्जुनको बड़ा क्रोध बढ़ा और
वह जवाड़े चाटता हुआ दुर्योधनको घायल करनेके लिये चारों
ओरको देखने लगा, परन्तु उसका कोई भी अङ्ग कवचकी रक्षा
से शून्य नहीं दीखा ॥ २८ ॥ तब पराक्रमी अर्जुनने कालकी

हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ २६ ॥ धनुस्स्या-
 ज्जिनत्तुर्णं हस्तावापञ्च वीर्यवान् । रथञ्च शकलीकृतं सव्यसाची
 प्रचक्रमे ॥ ३० ॥ दुर्योधनञ्च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृ-
 तम् । आविध्यद्वस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥ ३१ ॥ प्रयत्नतो
 हि कौन्तेयो नखमांसांतरेषुभिः । स वेदनाभिरावग्निः पलायनपरा-
 यणः ॥ ३२ ॥ तं कृच्छामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः । समा-
 पेतुः परीप्सन्तो धनञ्जयशराद्वितम् ॥ ३३ ॥ तं रथैर्वहुसाहस्रैः
 कलिपतैः कुञ्जरैर्हयैः । पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ३४
 अथ नार्जुनगोविन्दौ न रथो वा व्यदृश्यत । अस्त्रवर्षेण महता
 जनौघैश्चापि संवृतौ ॥ ३५ ॥ ततोर्जुनोस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां

समान विकराल और तेज बाणोंको खेंचकर दुर्योधनके घोड़ोंको
 काटडाला तथा पार्श्वरत्नक और सारथीको भी प्राणरहित कर
 दिया ॥ २६ ॥ और वीर्यवान् अर्जुनने दुर्योधनके धनुष तथा
 हाथके मौजोंको भी काटडाला तदनन्तर सव्यसाची अर्जुन शीघ्रही
 उसके रथके टुकड़े करनेको उद्यत होगया ॥ ३० ॥ और तीक्ष्ण
 बाणोंसे उसके रथके खण्ड कर उसकी दोनों हथेलियोंको दो
 तेज बाण मारकर घायल करदिया ॥ ३१ ॥ और युक्ति जानने
 वाले अर्जुनने उसके नखोंके भीतरके मांसको भी बाणोंसे चींच
 डाला, तब तो दुर्योधनको बड़ी पीडा होनेलगी और वह व्याकुल
 होकर भागनेको उद्यत होगया ॥ ३२ ॥ दुर्योधन अर्जुनके
 बाणोंसे पीडित होगया और बड़ीभारी आपत्तिमें फँसगया, यह
 देखकर बड़े धनुषधारी उसको बचानेकी इच्छासे दौडपड़े ३३
 और उन्होंने क्रोधमें भरकर अनेकों सहस्र रथ, सजेहुए घोड़े,
 हाथी और पैदलोंसे अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३४ ॥
 उस समय बड़ीभारी बाणोंकी वर्षा और मनुष्योंकी महाभीडके
 कारण न श्रीकृष्ण दिखाई देते थे और न अर्जुन ही दीखता

वरुथिनीम् । तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोथ रथद्विपाः ॥ ३६ ॥
 ते हता हन्यन्यमानाश्च न्यगृह्य स्तं रथोत्तमप्रसास्रथस्तम्भितस्तस्यो
 क्रोशमात्रे समन्ततः ॥ ३७ ॥ ततोर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्य-
 मब्रवीत् । धनुर्विस्फारयात्यर्थमहं ध्यास्यामि चाम्बुजम् ॥ ३८ ॥ ततो विस्फार्य
 बलवत् गाण्डीवं जघ्निवान् रिपून् । महता शरवर्षेण तलशब्देन
 चार्जुनः ॥ ३९ ॥ पाञ्चजन्यश्च बलवान् दध्मौ तारेण केशवः ।
 रजसा ध्वस्तपच्चान्तः प्रस्विन्नवदनो भृशम् ॥ ४० ॥ तस्य शंखस्य
 नादेन धनुषो निःस्वनेन च । निःसत्त्वाश्च ससत्त्वाश्च क्षिप्तौ
 पेतुस्तदा जनाः ॥ ४१ ॥ तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवा-

था तथा उनका रथ भी नहीं दीखता था ॥ ३५ ॥ तदनन्तर
 अर्जुन अस्त्रबलसे कौरवसेनाका संहार करने लगा, उस समय
 सैकड़ों सहस्रों हाथी, घोड़े प्राणरहित होकर भूमिपर गिरने
 लगे ॥ ३६ ॥ बहुतसे योधा मारे गए और मारे जा रहे थे, तब
 भी बहुतसे महारथियों ने अर्जुनके रथको घेर लिया इस प्रकार वह
 रथ जयद्रथके रथसे एक कोस दूरी पर रुककर खड़ा होगया ३७
 तदनन्तर वृष्णिवीर श्रीकृष्णने शीघ्रताके साथ अर्जुनसे कहा,
 कि-तू गाण्डीव धनुषको बड़े जोरसे खेंचकर बाण मार और मैं
 पाञ्चजन्य शंखको बजाता हूँ ॥ ३८ ॥ कृष्णकी इस बातको सुन
 कर अर्जुनने गाण्डीव धनुषको बड़े जोरसे खींचा और प्रत्यञ्चा-
 का टंकार शब्द कर, बाणवृष्टि और तालियोंका शब्द करता-
 शत्रुओंका संहार करने लगा ॥ ३९ ॥ और बलवान् श्रीकृष्ण ऊँचे
 स्वरसे पाञ्चजन्य शंखको बजाने लगे, इस समय उनके आँखोंके
 पलक धूलिमें अटोहुए थे और मुख पर पसीना आ रहा था ४०
 उस शंखके नाद और धनुषकी टंकारसे क्या निर्वल और क्या
 बलवान् सब ही योधा उस समय पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ४१ ॥
 और शत्रुओंका घेरा हुआ उसका रथ कौरवपक्षियोंके घिराव

म्बुदः । जयद्रथस्य गोप्तास्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥ ४२ ॥ ते
 दृष्ट्वा सहसा पार्थ गोप्ताः सैन्यवस्य तु । चकुर्न्नादान् महे-
 ष्वासाः कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ ४३ ॥ बाणशब्दरवौ शोभान्
 विमिश्रान् शंखनिःस्वनैः । प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ४४
 तं श्रुत्वा निनदं घोरं तार्वकानां समुत्थितम् । प्रदध्मतुः शंखवरो
 बासुदेवधनञ्जयौ ॥ ४५ ॥ तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुन्धरा ।
 सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशाम्पते ॥ ४६ ॥ स शब्दो
 भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश । प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्ड-
 वयोर्वले ॥ ४७ ॥ तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
 सम्भ्रमं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥ ४८ ॥ अथ कृष्णौ

मैंसे छूटकर पवनके प्रेरणा कियेहुए मेघमण्डलकी समान
 स्पष्ट दीखनेलगा, महाधनुषधारी जयद्रथके रक्तक अर्जुनको
 एकायकी देखकर पदले तो घबड़ा गये, परन्तु पीछेसे धीरज धर
 कर पृथ्वीको काँसतेहुए भयङ्कर गर्जना करनेलगे तथा महात्मा
 पुरुष बड़े उग्र बाणोंके शब्दोंको करनेलगे, शंख बजानेलगे और
 सिंहोंकी समान दहाडनेलगे ॥ ४२-४४ ॥ तुम्हारे योधाओंकी
 उस घोर गर्जनाको सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने पाञ्च-
 जन्य और देवदत्त नापक शंखोंको बड़े जोरसे बजानेलगे ॥ ४५ ॥
 हे राजन् ! उनके शंखोंके बड़ेभारी शब्दसे पर्वत, समुद्र, द्वीप
 और पातालसहित पृथ्वी गूँजगई ॥ ४६ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! वह
 शब्द सब दिशाओंमें भरगया और उसकी प्रतिध्वनि कौरव और
 पाण्डवोंकी सेनामें भी गूँज उठी ॥ ४७ ॥ तुम्हारे रथी और महा-
 रथी रणमें चढ़कर आयेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखते ही
 बड़ी घबड़ाहटमें पड़ गए और बड़ी उतावली करनेलगे ॥ ४८ ॥
 तो भी तुम्हारे बली योधा कवच पहनकर चढ़कर आयेहुए महा-
 भाग श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर क्रोधमें भर उनसे लड़नेको

महाभागौ तावका वीक्ष्य दंशितौ । अभ्यद्रवन्त संकुहास्तदद्रुत-
मिवाभवत् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनपराजये
अधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

सञ्जय उवाच । तावका हि समीक्ष्यैवं दृष्ट्वान्धककुक्षतर्षा ।
प्रागत्वरन् जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान् ॥ १ ॥ सुवर्णचित्रैर्वे-
याघ्रैः स्रजवद्भिर्महारथैः । दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव
पावकैः ॥ २ ॥ रुक्मपुंस्वैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते । कृज-
द्भिरतुलान्नादान् कोपितैस्तुरगैरिव ॥ ३ ॥ भूरिश्रवाः शलः कर्णौ
वृपसेनो जयद्रथः । कृपश्च मद्राजश्च द्रौणिश्च रथिनाम्बरः ॥ ४ ॥
ते पिवन्त इवाकाशमश्वैरष्टौ महारथाः । व्यराजयन् दश दिशो
वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥ ५ ॥ ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मघौघनिःस्वनैः ।

दौड़पड़े उनका वह काम बड़ा ही आश्चर्यजनक प्रतीत होता था
॥ ४६ ॥ एक सौ तीनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०३ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारे योधा कृष्ण और
अर्जुनको देखते ही उनको मारनेकी इच्छासे उनके ऊपर एक
साथ टूटपड़े और अर्जुन भी उनको मारनेके लिये शीघ्रता करने
लगा ॥ १ ॥ भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृपसेन, जयद्रथ, कृप, शन्य
और अश्वत्थामा ये आठ महारथी सुवर्णसे चित्रित वाघाम्बरसे
मढ़े गर्जना करतेहुए बढ़िया२ रथोंमें बैठकर क्रोधाग्रामान सर्पोंकी
समान घोर टंकार शब्द करते सुवर्णकी मूठवान्ने और जिनकी
ओरको देखान जासके ऐसे धनुषोंको लेकर प्रज्वलित अग्निकी
समान सब दिशाओंको प्रकाशित करतेहुए चढ़आये, वे सुवर्णकी
फुल्लियें और वाघाम्बरसे शोभित घोड़ोंसे जुते रथोंमें बैठकर
आये, वे मानो आकाशको पिण्जाते हों इसप्रकार चारों दिशा-
ओंमें सुशोभित होरहे थे ॥ २-५ ॥ उन क्रोधमें भरे कवचधारी

समाह्वयन् दश दिशः पार्थस्य निशितैः शरैः ६ कौलूका हया-
 श्वित्रा बहन्तस्तान् महारथान् । व्यशोयन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो
 दिशो दश ॥ ७ ॥ आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः । पार्व-
 तीयैर्नदीजैश्च सैन्यैर्वैश्व हयोत्तमैः ॥ ८ ॥ कुरुयोधवरा राजस्तव
 पुत्रं परीप्सवः । धनञ्जयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥ ९ ॥ ते
 प्रगृह्य महारथान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः । पूरयन्तो दिवं राजन्
 पृथिवीञ्च ससागराम् ॥ १० ॥ तथैव दध्मतुः शंखौ वासुदेव-
 धनञ्जयौ । प्रवरौ सर्वदेवानां सर्वशंखवरौ भुवि ॥ ११ ॥ देवद-
 त्तञ्च कौन्तेयः पाञ्चजन्यञ्च केशवः । शब्दस्तु देवदत्तस्य धन-
 ञ्जयसमीरितः ॥ १२ ॥ पृथिवीञ्चान्तरिक्षञ्च दिशश्चैव समाह्वयोत् ।

महारथियोंने मेघकी समान गर्जना करनेवाले रथोंसे और
 तीक्ष्ण बाणोंसे पार्थको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ६ ॥
 फुर्तीसे चलनेवाले, कुलूतदेशी तथा भिन्न २ देशोंके विचित्र घोड़े
 उन महारथियोंको रणमेंको ले जातेहुए दशों दिशाओंको शोभा
 दे रहे थे ॥ ७ ॥ कौरवपक्षके श्रेष्ठ २ योधा तुम्हारे पुत्रको बचानेकी
 इच्छासे महावेगवान्, पर्वत नदी और सिंधुदेश तथा और दूसरे
 अनेकों देशोंमें उत्पन्नहुए घोड़ों पर बैठ देखते २ चारों ओरसे
 अर्जुनके रथ पर चढ़ गए ॥ ८-९ ॥ वे पुरुषश्रेष्ठ बड़े २ अपने
 शह्रोंको हाथमें ले बजाने लगे, हे राजन् ! उनके शंखोंकी ध्वनिसे
 आकाश और समुद्रसहित पृथ्वी व्याप्त होगई थी ॥ १० ॥ सब
 देवताओंमें मुख्य श्रीकृष्ण और अर्जुन भी पृथ्वीपर सब शंखोंसे
 श्रेष्ठ पाञ्चजन्य और देवदत्त नामक अपने २ शंखोंको बजाने
 लगे अर्जुनके बजाएहुए देवदत्त शह्रका शब्द पृथ्वी, आकाश
 और सब दिशाओंमें भर गया इसी प्रकार वासुदेवके बजाएहुए
 शह्रका शब्द भी सब शब्दोंको दबाकर स्वर्ग और पृथ्वीमें भर
 गया, शूरोंको हर्षित और डरपोकोंको भयभीत करनेवाला, इन

तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ॥ १३ ॥ सर्वशब्दानति-
 क्रम्य पूरयामास रोदसी । तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने दारुणे नादसं-
 कुले ॥ १४ ॥ भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्द्धने । प्रवादि-
 तासु भेरीषु भूर्भरिष्वानकेषु च ॥ १५ ॥ मृदङ्गेष्वपि राजेन्द्र
 वाद्यमानेष्वनेकशः । महारथाः समाहूता दुर्योधनहितैषणः ॥ १६ ॥
 अमृग्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधन्विनः नानादेशया महीपालाः
 स्वसैन्यपरिरक्षिणः ॥ १७ ॥ अमर्षिता महाशंखान् दध्मन्वीरा
 महारथाः । क्रुते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्यार्जुनस्य च ॥ १८ ॥
 बभूव तव तत् सैन्यं शंखशब्दसमीरितम् । बद्दिग्नरथनागारवम-
 स्वस्थमिव वा विभो ॥ १९ ॥ तत् प्रविद्धमिवाकाशं शूरैः शंख-
 विनादितम् । बभूव भृशमुद्दिग्धं निर्घातैरिव नादितम् ॥ २० ॥
 स शब्दः सुमहान् राजन् दिशः सर्वा व्यनादयत् । त्रासयामास
 तत् सैन्यं युगान्त इव सम्भृतः ॥ २१ ॥ ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजा-

शङ्खोंका शब्द जिस समय हुआ था, उस समय सायही बहुतसी
 भेरी, भूर्भर, नगाड़े और मृदङ्ग भी बजनेलगे थे, दुर्योधनके
 हितैषी और हमारी सेनाके रक्षक प्रसिद्ध २ महाधनुषधारी महा-
 रथी, अनेकों देशोंके शूरवीर राजे उस शङ्खध्वनिको सह न सके
 और क्रोधमें भरकर कृष्ण और अर्जुनके काममें विघ्न डालनेके
 विचारसे ऊँचे स्वरसे अपने २ शङ्खोंको बजानेलगे ॥ ११-१२ ॥
 हे विभो ! उन शङ्खोंके शब्दसे तुम्हारी सेनाके पैदल, घुड़सवार,
 हाथीसवार और रथसवार व्याकुल तथा अस्वस्थ होगए ॥ १६ ॥
 और वज्रकी ध्वनिसे जैसे आकाश गूँज उठता है तैसे ही शूरोंकी
 कीहुई शंखोंकी ध्वनिसे सम्पूर्ण सेना गूँज गई और व्याकुल हो
 गई, कृष्ण और अर्जुनके शङ्खोंकी महाध्वनि, प्रलयकालकी
 घोर ध्वनिकी समान थी, उसने सब दिशाओंको गुंजार दिया
 और सेनाको भयभीत करदिया ॥ २०-२१ ॥ तदनन्तर आठों

नस्ते महारथाः । जयद्रथस्य रत्तार्थ पाण्डवं पर्यवारयन् ॥ २२ ॥
 ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत् । अर्जुनञ्च त्रिभिर्भल्लै-
 र्ध्वजमर्षाश्च पञ्चभिः ॥ २३ ॥ तमर्जुनः पृथक्कानां शतैः षड्-
 भिरताडयत् । अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥ २४ ॥
 कर्णञ्च दशभिर्विध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा । शल्यस्य सशरञ्चापं
 मुष्टौ चिच्छेदवीर्यवान् ॥ २५ ॥ गृहीत्वा धनुरन्यत्तु शल्यो विद्याध-
 पाण्डवम् । भूरिश्रवास्त्रिभिर्वाणैर्हेमपुंखैः शिलाशितैः ॥ २६ ॥
 कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः ॥ जयद्रथस्त्रिसप्तत्या
 कृपश्च दशभिः शरैः ॥ २७ ॥ मदराजश्च दशभिर्विष्यधुः फाल्गुनं
 रणे । ततः शराणां षष्ठ्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत् ॥ २८ ॥
 वासुदेवञ्च विंशत्या पुनः पार्थञ्च पञ्चभिः । प्रहसंस्तु नरक्याघ्रः
 श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २९ ॥ प्रत्यविध्यत् स तान् सर्वान्

महारथी और राजा दुर्योधनने जयद्रथकी रक्षा करनेके निमित्त से अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोकनेके लिये चारों ओरसे घेरलिया २२ तदनन्तर अश्वत्थामाने कृष्णके तिहत्तर अर्जुनके तीन और ध्वजा तथा घोड़ोंके पाँच भल्ल नामक बाण मारे ॥ २३ ॥ वासुदेवके घायल होनेसे अर्जुनको बहुत ही क्रोध चढ़ा और उसने अश्वत्थामाके छः सौ बाण मारे ॥ २४ ॥ तथा कर्णको दश, वृषसेनको तीन बाणोंसे वीधकर शल्यके बाण सहित धनुषको पकड़नेकी जगहसे काटडाला ॥ २५ ॥ तुरन्त ही शल्यने दूसरा धनुष लेकर अर्जुनको घायल करडाला और भूरिश्रवाने तीन, तीन, वृषसेनने सात, कर्णने बत्तीस, जयद्रथने तिहत्तर, कृपाचार्यने दश और शल्यने सुनहरी पूँछवाले तथा सान पर धरे हुए दश बाणोंसे अर्जुनको घायल करदिया तदनन्तर अश्वत्थामाने अर्जुनके ६० बाण तथा वासुदेवके बीस बाण मारे और और फिर अर्जुन पर पाँच बाण और भी मारे, यह देखकर सफेद

दर्शयन् पाणिलाघवम् । कर्णं द्वादशभिर्विध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः ३०
 शन्यस्य सशरञ्चापं मुष्टिदेशे व्यकृन्तत । सौमदत्तिं त्रिभिर्विध्वा
 शन्यं च दशभिः शरैः ॥ ३१ ॥ शितैरग्निशिखाकाद्रां णि विज्याष
 चाष्टभिः । गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्यवञ्च शतेन ह ॥ ३२ ॥ पुन-
 द्रौं णिञ्च सप्तत्या शराणां सोऽभ्यनाडयत् । भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः
 प्रतोदंचिच्छिदे हरेः ॥ ३३ ॥ अर्जुनञ्च त्रिसप्तत्या बाणानामा-
 जघान ह । ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीन् श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
 प्रत्यपेधद् द्रुतं क्रुद्धो महाबातो घनानिव ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे

चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । ध्वजान् बहुविधाकारान् भ्राजमानान-
 तिथिया । पार्थानां मापकानां च तन्ममाचञ्च सज्जय ॥ १ ॥

घोड़ेवाला और कृष्ण जिसके सारथी हैं उस अर्जुन ने हँसकर
 अपनी हाथकी फुर्ती दिखला उन सर्वों को घायल कर दिया,
 उसने कर्णको बारह और वृषसेनको तीन बाणोंसे घायल कर
 शन्यके बाणसहित धनुषके पकड़नेके स्थानसे दो टुकड़े कर दिये,
 फिर उसने सौमदत्तिको तीन और शन्यको दश बाणोंसे घाँधकर
 अग्निकीसी लपटवाले तेज आठ बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल
 कर दिया, फिर कृपाचार्यको पच्चीस, जयद्रथको सौ, अश्वत्थामाको
 सत्तर बाणोंसे घाँधा, तदनन्तर भूरिश्रवाने क्रोधमें भरकर श्रीकृष्ण
 के चाबुकके टुकड़े २ कर डाले ॥ २६-३३ ॥ और अर्जुनके
 तिहत्तर बाण मारे, तब तो जैसे क्रोधमें भरा महाबायु मेघोंको
 पीछेको हटा देता है तैसे ही अर्जुनने शत्रुओंको सौ बाण मार
 कर आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३४-३५ ॥ एकसौ चारवाँ अध्याय
 समाप्त ॥ १०४ ॥

धृतराष्ट्र ने बुझा, कि-हे सज्जय ! नानाप्रकारकी, बड़ीभारी

सञ्जय उवाच । ध्वजान् बहुविधाकारान् शृणु तेषां महात्म-
नाम् । रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥ २ ॥
तेषान्तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः । प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र
ज्वलिता इव पावकाः ॥ ३ ॥ काञ्चनाः काञ्चनापीडा काञ्चन-
सगलंकृताः । काञ्चनानीव शृगाणि काञ्चनस्य महागिरेः ॥ ४ ॥
अनेकवर्णा विविधा ध्वजाः परमशोभनाः । ते ध्वजाः सम्भृतास्तेषां
पताकाभिः समन्ततः ॥ ५ ॥ नानावर्णविरागाभिः शुशुभुः सर्वतो
वृताः । पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ॥ ६ ॥ नृत्य-
माना व्यदृश्यन्त रङ्गमध्ये विलासिकाः । इन्द्रायुधसवर्णाभाः
पताका भरतर्षभा ॥ ७ ॥ दध्नुयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान् ।
सिंहजांगूलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ८ ॥ धनञ्जयस्य

शोभासे सुशोभित पाण्डवोंकी और कौरवोंकी ध्वजा पताकाओंका
तू मुझे वर्णन करके सुना ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा कि-हे राजेन्द्र!
धृतराष्ट्र युद्धमें घूमतेहुए उन महात्मा पुरुषोंकी ध्वजाएँ नाना-
प्रकारकी थीं मैं उनके नामरूप और रङ्गका वर्णन करता हूँ,
सुनिये, उन बड़े २ महारथियोंके रथमें नानाप्रकारके ध्वजदण्ड
थे वे प्रज्वलित अग्निकी समान तेजस्वी दीखरहे थे, २-३ वे केवल
सुवर्णके थे और सुवर्णके वस्त्र और सुवर्णकी मालाओंसे अलंकृत
थे नानाप्रकारकी रङ्ग विरङ्गी परम सुन्दर पताकाओंसे लिपटेहुए
हेमाद्रि पर्वतके सुवर्णके शिखरोंकी समान सुशोभित होरहे थे,
॥४-५॥ चारों ओरसे बहुतसे रङ्गोंकी छोटी छोटी पताकायें
बड़ी ही शोभा पारही थीं हे भरतर्षभ ! इन्द्रधनुषकी समान
रङ्ग विरङ्गी, वे छोटी २ ध्वजायें पवनसे हिलकर इसप्रकार इधर
उधर फहरारही थीं मानो रङ्गभूमिमें वेश्याएँ नृत्य कररही हों,
इसप्रकार वे ध्वजाएँ घूमकर महारथियोंके रथोंको सुशोभित
कररही थीं, सिंहकी समान पूँछ और भयङ्कर मुखवाले वानरके

संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम् । स वानरवरो राजन् पताकाभिरलं-
कृतः ॥ ६ ॥ त्रासयागास तत्सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः । तथैव
सिंहलागूलं द्रोणपुत्रस्य भारत ॥ १० ॥ ध्वजाग्रं समपश्याम
बालसूर्यसमप्रभम् । कांचनं पवनोद्भूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ॥ ११ ॥
नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौण्यैर्लक्ष्यं समुद्ध्रियम् । हस्तिकक्षा पुनर्हंमो
बभूवाभिरथेर्ध्वजः ॥ १२ ॥ आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव
पताका कांचनी स्रग्वी ध्वजे कर्णस्य संयुगे ॥ १३ ॥ नृत्पतीव
रथोपस्थे शयसेनेन समीरिता । आचार्यस्य तु पाण्डूनां ब्राह्मणस्य
तपस्विनः ॥ १४ ॥ गोवृषो गौतमस्यासीत् कृपस्य मृगपरिष्कृतः ।
स तेन भ्राजते राजन् गोवृषेण महारथः ॥ १५ ॥ त्रिपुरघ्नरथो
यद्वहोवृषेण विराजता । मयूरो वृषसेनस्य कांचनो मणिरत्नवान् ॥ १६ ॥
ज्याहरिष्यन्निवातिष्ठत् सेनाग्रमुपशोभयन् । तेन तस्य रथो भाति

चित्रसे चित्रित अर्जुनकी ध्वजा संग्राममें भयङ्कर प्रतीत होरही
थी, छोटी २ पताकाओंसे घिराहुआ वानर और अर्जुनकी ध्वजा
तुम्हारी सेनाको त्रस्त कररही थी, हे भारत! तैसे ही हमने सुवर्ण
के दण्डेवाली, इन्द्रधनुषकी समान पँचरङ्गी प्रभाववाली, पवनसे
फहराती हुई, सिंहकी पूँछकेसे चिन्हसे युक्त, बाल सूर्यकी समान
प्रभाववाली कौरवराजोंको आनन्द देती हुई अश्वत्थामाकी ध्वजा
को देखा, तदनन्तर हे महाराज ! सुवर्णमयी हाथीके चिन्हवाली
कर्णकी ध्वजा आकाशमें व्याप्तसी दीखरही थी और मालासे
शोभित सुवर्णकी बनी कर्णके रथपर लगी हुई पवनसे फहराती
हुई वह ध्वजा नाचती हुईसी दीखती थी, तपस्वी ब्राह्मण पांडवोंके
आचार्य कृपाचार्यकी ध्वजामें वैलका चिन्ह था, उनका महारथ
वैलके चित्रवाली ध्वजासे, त्रिपुरासुरनाशक शिवकी समान
शोभा देरहा था, सुवर्ण मणि तथा रत्नोंसे बनाहुआ मयूर वृष-
सेनके रथकी ध्वजामें था, सेनाके अग्रभागको सुशोभित करता

मयूरेण महात्मनः ॥ १७ ॥ यथा स्कन्दस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता । मद्राजस्य शन्यस्य ध्वजाग्नेग्निशिखामिव ॥ १८ ॥ सौवर्णीं प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम् । सा सीता आजते तस्य रथमास्थाय मारिष ॥ १९ ॥ सर्ववीजविरूढेव यथा सीता श्रिया हता । वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ॥ २० ॥ ध्वजाग्नेऽल्लोहितार्काभो हेमजालपरिष्कृतः । शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः ॥ २१ ॥ यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते । सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ॥ २२ ॥ ध्वजः सूर्य इवाभाति सोमश्चात्र पश्यते । स यूपः कांचनो राजन् सौमदत्तेर्विराजते ॥ २३ ॥ राजसूये मत्तश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः । शन्यस्य

हुआ वह मयूर ऐसा प्रतीत होता था, मानो अभी बोल उठेगा, हे राजेन्द्र! जैसे कार्तिकेयका रथ मयूरसे सुशोभित दीखता था, तैसे ही उस मयूरसे वृषसेनके रथकी भी शोभा होरही थी ६-१७ हे राजन् ! मद्रदेशके राजा शन्यकी ध्वजामें अग्निशिखाकी समान अनुपम तथा सुन्दर हलसे खींचीहुई सुवर्णकी रेखावाले क्षेत्रका चिन्ह था, क्षेत्रमें सब प्रकारके बीजोंके लगाने पर हलसे पड़ी हुई रेखाओंके सुशोभित होजानेकी समान, शन्यके रथकी ध्वजामें हलसे खिंचीहुई रेखाओंका चिन्ह भी सुन्दर दीख रहा था, सिंधुराज जयद्रथके रथमें स्थित ध्वजाके अग्रभागमें सुवर्णकी पत्तर पर जडाहुआ, स्वेत स्फटिककी समान आभावाला वराहका चिन्ह शोभा दे रहा था, उस रुपहली ध्वजासे जयद्रथ, पूर्वकालमें हुए देवासुरयुद्धमें शोभा पातेहुए पूषाकी समान, शोभा पारहा था, ॥ १८-२१ ॥ यज्ञ करनेवाले बुद्धिमान् सौमदत्तके पुत्रकी ध्वजामें यज्ञस्तम्भका चिन्ह दीखता था, यह यज्ञस्तम्भ सूर्यकी समान क्षमक्षमा रहा था तथा सुवर्णका बनाहुआ था और उसमें चन्द्रमाका चिन्हभी था राजसूय यज्ञमें जैसे ऊँचा यज्ञ-

तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ॥२४॥ केतुः कांचनचित्राङ्ग-
 मयूरैरुपशोभितः । स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ ॥२५॥
 यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूँ तथा । नागो मणिमयो राज्ञो
 ध्वजः कनकसम्पृतः ॥ २६ ॥ किङ्किणीशतसंहादो भ्राजंश्चित्रे
 रथोत्तमे । व्यभ्राजत भृशं राजन् पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २७ ॥
 ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृपभस्तदा । नवैते तव बाहिन्यामु-
 च्छिताः परमध्यजा ॥ २८ ॥ व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्य-
 सन्निधाः । दशमस्त्वर्जुनस्यासीदेक एव महाकपिः ॥ २९ ॥
 अदीप्यतार्जुनो येन हिमवानिव वह्निना । ततश्चित्राणि सुभ्राणि
 समहान्ति महारथाः ॥ ३० ॥ कर्मुकाण्याददुस्तूर्णमर्जुनार्थं परं-
 तपाः । तथैव धनुरायच्छत् पार्थः शत्रुविनाशनः ॥ ३१ ॥ गाँदीवं

स्तम्भ सुशोभित होता है, तैसे ही सोमदत्तके पुत्रकी ध्वजाका
 दण्ड भी सुशोभित होरहा था और हे महाराज ! सुवर्णसे
 चित्रित अङ्गोंवाले मयूरोंसे घिरेहुए चान्दीके हाथीसे चिन्हित
 शल्यकी ध्वजा, इन्द्रकी सेनाको सुशोभित करतेहुए स्वेत हाथी
 ऐरावतकी समान, तुम्हारी सब सेनाको सुशोभित कररही थी,
 और हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रकी सैंकड़ों घुँघुर्कोंसे भन भन
 करतीहुई ध्वजामें सुवर्णकी पत्तर पर मणियोंसे हाथी बनायागया
 था, हे राजन् ! उस बड़ीभारी ध्वजासे कुरुश्रेष्ठ तुम्हारा पुत्र बड़ा
 ही दिपरहा था, तुम्हारी सेनामें प्रलयकालकी अग्निकी समान
 ये बड़े २ नौ ध्वजदण्ड खड़े हुए थे और दशवाँ एक अर्जुनका
 वानरके बड़ेभारी चित्रसे चिन्हित ध्वजदण्ड था २२-२९ उस ध्वज-
 दंडसे अर्जुन, अग्निसे शोभायमान हिमाचलकी समान, शोभायमान
 होरहा था तदनन्तर शत्रुनापन महारथियोंने अर्जुनको मारनेके
 लिये बहुतही बड़े २ और चमकतेहुए वाण उठाये, उधर-हे राजन् !
 तुम्हारे अन्यायके कारण दिव्य कर्म करनेवाले शत्रुनाशक

दिव्यकर्मा तद्गजन् दुर्मन्त्रिते तव । तवापराधाद्वाराजानो निहता
 बहुशो युधि । ३२ । नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः ।
 तेषामासीद् व्यतिक्रपो गर्जतामितरेतरम् ॥ ३३ ॥ दुर्योधनमुखानां च
 पाण्डूनामृषभस्य च । तत्राद्भुतं परञ्चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः ३४
 यदेको बहुभिः सार्द्धं समागच्छद्भीतवत् । अशोभत महाबाहुर्गा-
 ण्डीवं विल्लिपन् धनुः ॥ ३५ ॥ जिगीषुस्तान्नरव्याघ्रो जिघांसुश्च
 जयद्रथम् । तत्रार्जुनो नरव्याघ्रः शरैश्चक्रे सहस्रशः ॥ ३६ ॥
 अदृश्यास्तावकान् योधान् प्रचक्रे शत्रुतापनः । ततस्तेपि नरव्याघ्राः
 पार्थ सर्वे महारथाः ॥ ३७ ॥ अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः
 समन्ततः । सम्भृते नरसिंहैस्तु कुरूणामृषभेर्जुने । महानासीत्स-
 मुद्भूतस्तस्य सैन्यस्य निःस्वनः ३८ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः १०५

अर्जुनने भी गांडीव धनुष हाथमें उठाया, हे राजन् ! सब कलहका
 कारण तुम्हारा उलटा विचार है, तुम्हारे ही अपराधसे इस
 युद्धमें बहुतसे राजे मारे गये ॥ ३०-३२ ॥ तुम्हारे पुत्रके दिशा
 विदिशाओंसे बुलाए हुए घोड़े रथ और हाथियोंसहित बहुतसे
 राजे लड़नेके लिये आये थे, उन दुर्योधन आदि राजे और
 पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनका बड़ी २ गर्जनाओंके साथ युद्ध होना
 आरम्भ होगया, इस युद्धमें कृष्ण जिसके सारथी बने थे, उस
 अर्जुनने परम आश्चर्यजनक पराक्रम करके दिखाया महाबाहु
 अर्जुन अकेला ही बहुतसे योधाओंके सामने निडर होकर घूमने
 लगा और नरोंमें व्याघ्रसमान अर्जुन उनकी जीतनेकी तथा
 जयद्रथको मारनेकी इच्छासे गाण्डीव धनुषमेंसे बाण छोड़ने
 लगा, हजारों बाणोंकी मारसे तुम्हारे योधाओंको ढकदिया, तब
 उन नरव्याघ्र महारथियोंने भी चारों ओरसे बाणोंकी मारामार
 चलाकर अर्जुनको ढकदिया, जब कौरवपक्षके नरसिंहोंने कुरुश्रेष्ठ
 अर्जुनको ढकदिया, उस समय (तुम्हारी) सेनामें बड़ा भारी
 सिंहगर्जन होनेलगा ३५-३८ एकसौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त १०५

धृतराष्ट्र उवाच । अर्जुने सैन्यं प्राप्ते भारद्वाजेन समृताः ।
 पञ्चालाः कुरुभिः सार्द्धं किमकुर्वत संग्रय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच ।
 अपराद्धे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे । पञ्चालानां कुरूणां च
 द्रोणयूतमवर्त्तत ॥ २ ॥ पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्ट-
 चेतसः । अभ्यमुञ्चन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि पारिप ॥ ३ ॥ ततस्तु
 तुमुलस्तेषां संग्रामोवर्त्ततादभुतः । पञ्चालानां कुरूणां च घोरो
 देवासुरोपमः ॥ ४ ॥ सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
 तदनीकं विभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन् द्रोणस्य रथपर्यन्तं
 रथिनो रथमास्थिताः । कम्पयन्तोभ्यवर्पन्त वेगमास्थाय मध्यमम् ।
 तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः । प्रवपन्निशितान् बाणा-
 न्महेन्द्राशानि सन्निधान् शतान्तु प्रत्युद्यगौ शीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशः ।

धृतराष्ट्र ने बूझा, कि—हे सञ्जय ! जब अर्जुन सिंधुराजकी
 ओरको चलागया, उस समय द्रोणाचार्यके रोकेहुए पाञ्चाल
 सेनाके राजाओंने कौरवोंके साथ किसप्रकार युद्ध किया था? यह
 भी सुना ॥ १ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि—हे महाराज ! तीसरे
 पहरके समय द्रोणाचार्यके लिये कौरव पांचालोंमें रोमाञ्च खड़े
 करनेवाला युद्ध होनेलगा, ॥ २ ॥ हे राजन् ! आनन्दमें भरे
 पांचाल राजे द्रोणको मारनेकी इच्छासे बड़ीभारी गर्जना करते
 हुए उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३ ॥ उस समय
 पांचालराजे और कौरवोंमें देवासुरसंग्रामकी समान महाभयङ्कर
 बड़ा अद्भुत तुमुल युद्ध होनेलगा ॥ ४ ॥ सब पांचाल राजे
 पाण्डवोंके साथमें रहकर द्रोणके रथके पास जाने और उनकी
 सेनाको तोड़नेके लिये बड़े २ अस्रोंको छोड़ने लगे ॥ ५ ॥ रथमें
 बैठेहुए वे पांचाल रथी, पृथ्वीको काँगते हुए धीरे ९ रथको
 दौड़ाकर द्रोणके समीप पहुँचगए ॥ ६ ॥ पहिले ही सपाटमें
 केकयोंका महारथी बृहत्क्षत्र इन्द्रके वज्रकी समान तीक्ष्ण बाणों

विमुञ्चन्निशितान् बाणान् शतशोथ सहस्रशः ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुश्च
चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः । त्वरितोभ्यद्रवत्तूष्णं महेन्द्र इव शम्बर-
म् ॥ ९ ॥ तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यधिवान्तकम् । वीरधन्वा
महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ १० ॥ युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषुं
समवस्थितम् । सहानीकं ततो द्रोणो न्ववारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥
नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी । अभ्यगच्छत् समायान्तं
विकर्णस्ते सुतः प्रभो ॥ १२ ॥ सहदेवं तथायान्तं दुर्मखः शत्रु-
कर्षणः । शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः ॥ १३ ॥ सात्यकिन्तु
नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत् । शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्प-
यन् वै मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥ द्रौपदेयान्नरव्याघ्रान्मुञ्चतः सायको-
त्तमान् । संरब्धान् रथिनः श्रेष्ठान् सौमदत्तिरवारयत् ॥ १५ ॥

को छोड़ता हुआ द्रोणके सामने चढ़ आया ॥ ७ ॥ उस ही समय
शीघ्र ही महायशस्वी चोमधूर्नि सैकड़ों सहस्रों तेजवाणोंको छोड़ता
हुआ उसके सामने आकर डट गया ॥ ८ ॥ चेदियोंमें श्रेष्ठ अतिबली
धृष्टकेतु भी, शम्बरासुरके ऊपर दौड़नेवाले महेन्द्रकी समान
द्रोणके ऊपर जाचढ़ा ॥ ९ ॥ मुख फैलाए हुए कालकी समान
एकायकी उसको आता हुआ देखकर, महाधनुषधारी वीरधन्वा
पुर्तसे उसके सामने डट गया ॥ १० ॥ महाराज युधिष्ठिर विजय
की इच्छासे आकर खड़े होगये, परन्तु उनको पराक्रमी द्रोणने
सेनासहित आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ११ ॥ हे प्रभो! युद्धकुशल
पराक्रमी नकुलको आते देखकर तुम्हारा पराक्रमी पुत्र विकर्ण
उससे लड़नेको गया ॥ १२ ॥ इसीप्रकार सहदेवको आते देख
शत्रुनाशी दुर्मख उसके सामने डट गया और सहस्रों तेज वाण
बरसाने लगा ॥ १३ ॥ नरव्याघ्र सात्यकिको व्याघ्रदत्तने, खूब
सानपर धरे हुए तेज वाणोंसे बारम्बार कँपाकर आगे बढ़नेसे
रोक दिया ॥ १४ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ, क्रोधमें भरकर वाण छोड़ते

भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः । प्रत्यवारयदायान्तमार्घ्य-
भृङ्गिर्महारथः ॥ १६ ॥ तयोः समभवद्युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे ।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप ॥ १७ ॥ ततो युधिष्ठिरो
द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम् । आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत १८
तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे । रोपितो भरतश्रेष्ठ
कौन्तेयेन यशस्विना ॥ १९ ॥ भूय एव तु विंशत्या सायकानां
समाचिनोत् । सारवसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ २० ॥
तान् शरान् द्रोणमुक्तास्तु शरवर्षेण पाण्डवः । अवारयत धर्मात्मा
दर्शयन् पाण्डिलाघवम् ॥ २१ ॥ ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य
संयुगे । चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः ॥ २२ ॥ अथैनं
छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः । शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास

हुए नरव्याघ्र द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको सौमदत्तिने आगे बढ़नेसे
रोक दिया ॥ १५ ॥ क्रोधमें भरकर आगेको बढ़तेहुए भीमसेनको,
भयङ्कररूपवाला भीमपराक्रमी महारथी राक्षस आर्ष्यशृङ्ग रोकने
लगा ॥ १६ ॥ उन राक्षस और मनुष्योंका हे राजन् ! जैसे
पहिले रामरावणमें युद्ध हुआ था, तैसा ही युद्ध हानेलागा १७
हे भारत ! तदनन्तर भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिरने द्रोणके सब मर्मस्थानों
में नवभै बाण मारे ॥ १८ ॥ इसपर यशस्वी युधिष्ठिरसे रूठहुए
द्रोणने उनके स्तनोंके बीचमें पच्चीस बाण मारे ॥ १९ ॥ द्रोणने
सब धनुषधारियोंके सामने ही फिर पच्चीस बाण मारकर सारथी
ध्वजा और घोड़ों सहित युधिष्ठिरको घायल करदिवा ॥ २० ॥
परन्तु धर्मात्मा युधिष्ठिरने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए द्रोणके
छोड़ेहुए उन बाणोंको अपनी बाणवर्षासे दूर फेंकदिया ॥ २१ ॥
तब तो द्रोणको बड़ा क्रोध चढ़ा और उन्होंने महात्मा युधिष्ठिर
के धनुषको काटडाला ॥ २२ ॥ तदनन्तर इन दृढ़हुए धनुषवाले
युधिष्ठिरको द्रोणने फुर्तीसे सहस्रों बाण मारकर चारों ओरसे

सर्वतः ॥ २३ ॥ अदृश्यं वीक्ष्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः ।
 सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥ केचिच्चैवममन्यन्त
 तथैव निमुक्षीकृतम् । ततो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन महात्मना २५
 स कुच्छं परमं प्राप्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः । त्यक्त्वा तत् कामुकं
 छिन्नं भारद्वाजेन सयुगे ॥ २६ ॥ आददेन्यद्बुद्धिं व्यं भास्वरं
 वेगवत्तरम् । ततस्तान् सायकांस्तत्र द्रोणमुन्नात सहस्रशः ॥ २७ ॥
 चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाभवत् । क्षित्वा तु ताञ्छराव्राजन्
 क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २८ ॥ शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि
 दारिणीम् । स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघट्यां भयावहाम् ॥ २९ ॥
 समुत्तिष्ठ्य च तां हृष्टो ननाद बलवद्बली । नादेन सर्वभूतानि
 त्रासयन्निव भारत ॥ ३० ॥ शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन

ढकदिया ॥ २३ ॥ द्रोणके बाणोंसे युधिष्ठिरको ढका हुआ देख
 कर सब लोगोंने समझा कि-युधिष्ठिर मारे गये ॥ २४ ॥
 हे राजन् ! उस समय किसीने समझा कि-राजा युधिष्ठिर हार
 कर भाग गये, कितनोंहीने समझा कि-महात्मा ब्राह्मण द्रोणने
 उनको मार डाला ॥ २५ ॥ इससे धर्मराज युधिष्ठिरको बड़ा
 दुःख हुआ और उन्होंने रणमें द्रोणाचार्यके काटे हुए धनुषको
 फेंक दिया ॥ २६ ॥ तथा एक चपकता हुआ, वेगवान् दिव्य
 धनुष हाथमें लिया, तदनन्तर उन वीर युधिष्ठिरने द्रोणके छोड़े
 हुए सहस्रों बाणोंको काट डाला, यह एक आश्चर्यजनक घटना
 हुई, उन बाणोंको काट डालने पर हे राजन् ! क्रोधसे लाल २
 नेत्रोंवाले युधिष्ठिरने पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाली, सुवर्णके
 दण्डे और आठ घट्योंवाली एक महाघोर भयदायक गदाको
 हाथमें लिया और बली-युधिष्ठिर उस गदाको द्रोणके ऊपर फेंक
 कर हे भारत ! सब भूतोंको त्रस्तसे करते हुए बड़े बलीकी समान
 गर्जने लगे, और प्रसन्न होने लगे ॥ २७-३० ॥ जब धर्मराजेन

संयुगे । स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाव्रुवन् ॥ ३१ ॥ सा
 राक्षभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा । मञ्ज्वालयन्ती गगनं
 दिशः सप्रदिशस्तथा ॥ ३२ ॥ द्रोणान्तिकमनुभासा दीप्तास्या
 पन्नगी यथा । तामापतन्ती सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशाम्पते ॥ ३३ ॥
 प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्मणस्त्रयस्त्रविदाम्बरः । तदस्त्रं भरमसात् कृत्वा
 तां शक्तिं घोरदर्शनाम् ॥ ३४ ॥ जगाम स्यन्दनं तूष्णीं पापद्वयस्य
 यशस्विनः ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत् समुपेतम् ॥ ३५ ॥
 अशामयन् महापादो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिषः । विध्वा तञ्च रणं द्रोणं
 पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३६ ॥ क्षुरपेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदास्य मह-
 द्बलुः । तदपास्य धनुस्त्रिखन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ३७ गदां चित्तेप
 सहसा धर्मपुत्राय मारिषः । तामापतन्ती सहसा गदां दृष्ट्वा युधि-

शक्ति उठायी, उस समय सब प्राणी भूयभीत होकर एकसाथ
 बोलउठे, कि-द्रोणका कन्याए हो ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरकी
 भुजाओंसे, कँचलीसे छूटेहुए सर्पकी समान, छूटीहुई वह गदा,
 जलतेहुए मुखवाली सर्पिणीकी समान, आकाश तथा दिशा
 त्रिदिशाओंको प्रकाशित करतीहुई द्रोणके पासको आनेलगी,
 परन्तु हे राजन् ! अलवेचाओंमें श्रेष्ठ द्रोणने उस गदाको सहसा
 आते देखकर ब्रह्माक्ष प्रकटकिया, वह ब्रह्माक्ष उस भयानक
 रूपवाली शक्तिको भस्म करके शीघ्रतासे यशस्वी युधिष्ठिरके
 रथकी ओरको चला, द्रोणके ब्रह्माक्षको आता देखकर हे राजन् !
 महाबुद्धिमान् युधिष्ठिरने उसको ब्रह्माक्ष मारकर शान्त करदिया
 और स्वयं भी रणमें द्रोणको पाँच बाणोंसे बाँधकर युधिष्ठिरने
 क्षुरप नामक तेजबाणसे इनके बड़ेभारी धनुषको काटदाला,
 क्षत्रियमर्दन द्रोणने उस दूटेहुए धनुषको फेंककर हे राजन् !
 धर्मपुत्र युधिष्ठिरके गदा मारी, सहसा गदाको आती देख युधि-
 स्थिर क्रोधमें भरगए, हे परन्तप ! उन्होंने भी गदापर गदाको ही

ष्टिरः ३८ गदामेवाग्रहीत् क्रुद्धुश्चित्तेन च परमप । ते गदे सहसा-
 मुक्ते समासाद्य परस्परम् ३९ संघर्षात् पावकं मुक्त्वा समेयार्ता-
 महीतले । ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ॥ ४० ॥
 चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयान् जम्भे शरोत्तमैः । चिच्छेदैकेन भल्लेन
 धनुश्चन्द्रध्वजोपमम् ॥ ४१ ॥ केतुप्रेकेन चिच्छेद पाण्डवञ्चार्द्रयत्-
 त्रिभिः । इतश्चात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः ॥ ४२ ॥ तस्या-
 वूर्ध्वमुजो राजा व्याकुलो भरतर्षभ । विरथं तं समालोक्य व्या-
 युधश्च विशेषतः ॥ ४३ ॥ द्रोणो व्यामोहयच्छत्रून् सर्वसैन्यानि
 वा विभो । मुञ्चन्ध्वेषुगतांस्तीक्ष्णान् लघुहस्तो दृढव्रतः ॥ ४४ ॥
 अभिद्रुत्वा राजानं सिंहो मृगमित्रोन्वयः । तमभिद्रुतमालोक्य
 द्रोणेनाभिन्नातिना ॥ ४५ ॥ हाहेति सहसा शब्दः पाण्डूनां सम-

फेंका वे छूटी हुई दोनों गदाएँ आपसमें टकराने लगीं, टकराने
 के कारण उनमेंसे चिनगारियें निकलने लगीं और थोड़ी देर बाद
 वे दोनों पृथ्वीमें गिरपड़ीं, हे राजन् ! तब तो द्रोणाचार्यको
 युधिष्ठिरके ऊपर बड़ा ही क्रोध चढ़ा और उन्होंने बाणोंमें उत्तम
 चार बाण छोड़कर युधिष्ठिरके घोड़ोंको मार डाला और एक
 भल्ल नामक बाण मारकर इन्द्रध्वजकी समान युधिष्ठिरके धनुषको
 काटकर भूमिमें गिरा दिया ॥ ३२-४१ ॥ तथा एक बाणसे
 युधिष्ठिरकी ध्वजाको काट डाला और तीन बाणोंसे उनको भी
 लपीडित किया, युधिष्ठिर घोड़ोंके मरजानेके कारण रथसे नीचे
 उतर पड़े और शस्त्ररहित भुजाको ऊँची करके रणमें खड़े
 होगए, राजा युधिष्ठिरको रथरहित और विशेषतः शस्त्रहीन
 देखकर हे राजन् ! दृढव्रतधारी तथा क्रुर्तीले हाथवाले द्रोणने
 धर्मराजकी सेना तथा दूसरी सेनाओंको तीक्ष्ण बाण मारकर
 व्याकुल कर दिया ॥ ४२-४४ ॥ तब तो जैसे भयङ्कर सिंह मृगके
 ऊपर भ्रष्टता हो, इसप्रकार शत्रुनाशक द्रोण युधिष्ठिरकी

जायत । हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष ॥ ४६ ॥ इत्यासीत् सुमहान् शब्दः पाण्डुसैन्यस्य भारत । ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः । अपायाञ्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधि-

ष्ठिरापयाने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सञ्जय उवाच । बृहत्क्षत्रमथायान्तं कैकेयं दृढविक्रमम् । क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥ १ ॥ बृहत्क्षत्रस्तु तं राजानवत्या ननपर्वणाम् । आजघ्ने त्वरितो राजन् द्रोणानीकं विधित्सया ॥ २ ॥ क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः । धनुश्चिच्छेद भस्त्रेण पीतेन निशितेन ह ॥ ३ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणानतपर्वणा । विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वशन्विनाम् ॥ ४ ॥

ओरको दौडपड़े, इस समय पाण्डव एक साथ अरेरे ! ओहो ! ओहो ! करतेहुए बोल उठे, कि- द्रोणने राजा युधिष्ठिरको मार डाला, अरे ! राजाको मार डाला, हे राजन् ! इस समय पांडवोंकी सेनामें बड़ा भारी कोलाहल मच रहा था, और इतनेमें ही कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर घबड़ाकर सहदेवके रथपर चढ़यये तथा घोड़ोंको तेजीसे हाँककर रणमेंसे पीछेको हटआये ॥ ४५-४७ ॥ एक सौ छःवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! दृढ़पराक्रमी कैकेयराज बृहत्क्षत्रको आतां देखकर क्षेमधूर्तिने बाण मार उसके हृदयको घायल कर दिया ॥ १ ॥ हे राजन् ! द्रोणकी सेनाको बखेर देनेकी इच्छासे बृहत्क्षत्रने नभीहुई गाँठवाले नन्धै बाण छुर्वीसे क्षेमधूर्तिके मारे ॥ २ ॥ तब तो क्षेमधूर्तिको बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने तेज तथा पानी दिलाया हुआ भस्त्र नामक बाण मारकर महात्मा केकपके धनुषको काट डाला । ३ ॥ और फिर तुरन्त इस दूटेहुए धनुषवाले, सब रथियोंमें श्रेष्ठ बृहत्क्षत्रको नभीहुई गाँठवाले बाणसे

अथान्यदनुरादाय बृहत्तन्नो हसन्निव । व्यथामुतरथञ्चक्रे क्षेप-
धूर्तिं महारथम् ॥ ५ ॥ ततोऽपरेण भल्लेन पीतन निशितेन च । जहार
वृषतेः कायात् शिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ ६ ॥ तच्छिन्नं सहसा
तस्य शिरः कुञ्चितमूर्द्धनम् । सकिरीटं महौ प्राप्य बभौ ज्योति-
रिवाम्बरात् ॥ ७ ॥ तं निहत्य रणे दृष्टो बृहत्तन्नो महारथः ।
सहसाम्यपतत्सैन्यं तावकं पार्थकारणात् ॥ ८ ॥ घृष्टकेतुं तथा-
यान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी । वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास
भारत ॥ ९ ॥ तौ परस्परमासाद्य शार्दूलौ तरस्विनौ । शरैरनेक-
साहसैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १० ॥ तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते
परस्परम् । महावने तीव्रमदौ वारणाविव युथपौ ॥ ११ ॥ गिरि-
गहरमासाद्य शार्दूलौविव रोषितौ । युयुधाते महावीर्यौ परस्पर-

शीघ्र ही घायल करदिया ॥ ४ ॥ बृहत्तन्न ने हँसते हँसते दूसरा
धनुष उठाकर महारथी क्षेमधूर्तिको घोंड़े सारथि और रथविहीन
करदिया ॥ ५ ॥ फिर दूसरा पानी पिलाया हुआ तेज भल्ल नामका
बाण मारकर क्षेमधूर्तिके कुण्डलों से चमकते हुए शिरको घडसे काट
गिराया ॥ ६ ॥ उसका सहसा कटा हुआ घुँघराले केशोंवाला
और मुकुटसे सुशोभित मस्तक पृथ्वीमें, गिरकर आकाशसे गिरे हुए
तारेकी समान शोभा पाने लगा ॥ ७ ॥ क्षेमधूर्तिको रणमें मारकर
बृहत्तन्न परम प्रसन्न हुआ, महारथी बृहत्तन्न, पाँडवोंके हितके
लिये सहसा तुम्हारी सेनापर टूट पड़ा ॥ ८ ॥ द्रोणको मारनेलिये
आगेको बढ़ते हुए घृष्टकेतुको, हे भारत ! महाधनुषधारी वीरधन्वा
रोकने लगा ॥ ९ ॥ बाणरूपी डाढ़वाले वे दोनों वेगवान् योधा
एक दूसरेके सामने पहुँचकर आपसमें सहस्रों अस्त्रोंसे एक दूसरेको
मारने लगे ॥ १० ॥ वे दोनों नरशार्दूल महावनमें तीव्र मदवाले
युथपति दो हाथियोंकी समान आपसमें लड़ने लगे ॥ ११ ॥ वे
दोनों महावीर एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे पहाड़की गुफाके

जिघांसया ॥ १२ ॥ तद्युद्धमासीत्तुमुलं प्रेक्षणीयं विशाम्पते ।
 सिंहद्वारणसंधानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥ १३ ॥ वीरधन्या ततः
 क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् । द्विधा चिच्छेद् भल्लेन प्रहसन्निव
 भारत ॥ १४ ॥ तदुत्पृष्ट्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः । शक्तिं
 जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ १५ ॥ तान्तु शक्तिं महा-
 वीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत । चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथ-
 म्पति ॥ १६ ॥ तथा तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम् ।
 निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥ १७ ॥ तस्मिन् विनि-
 हते वीरे प्रैगर्त्तानां महारथे । बलान्तेऽभज्यन्त विभो पाण्डवैर्यैः
 समन्ततः ॥ १८ ॥ सहदेवे ततः पट्टिं सायकान् दुर्मुखोऽक्षिपत् ।
 ननाद च महानादं तर्जयन् पाण्डवं रणे ॥ १९ ॥ माद्रेयस्तु ततः
 क्रुद्धो दुर्मुखश्च शितैः शरैः । भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रह-

भीतर क्रोधमें भरकर लड़तेहुए सिंहोंकी समान, लड़नेलगे ॥ १२ ॥
 हे राजन् ! वह तुमुल युद्ध सिद्ध और चारणोंके देखने योग्य
 और अतीव आश्चर्यजनक था ॥ १३ ॥ हे भरतवंशी राजन् !
 क्रुपित हुए वीरधन्वाने हँसते २ भल्ल नामक बाण मारकर धृष्ट-
 केतुके धनुषको काटडाला ॥ १४ ॥ उस टूटेहुए धनुषको छोड़कर
 महारथी चेदिराजने सुवर्णके दण्डेवाली, केवल लोहेकी बड़ीभारी
 शक्ति उठाई ॥ १५ ॥ धृष्टकेतुने उस महाबलवती शक्तिको दोनों
 हाथोंसे उधका कर वीरधन्वाके रथपर फेंका ॥ १६ ॥ उस वीर-
 घातिनी गदाके प्रहारसे वीरधन्वाकी छाती फंटगयी और वह
 रथपरसे पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ १७ ॥ प्रिगतोंके वीरवर उस महा-
 रथीके मारेजाने पर हे विभो ! पाण्डवोंके योधा तुम्हारी सेनाको
 चारों ओरसे तिचार विचार करनेलगे १८ तदनन्तर दुर्मुखने सहदेव
 के ऊपर साठ बाण छोड़े और रणमें सहदेवका अनादर कर बड़ी
 भारी गर्जना करनेलगा ॥ १९ ॥ तदनन्तर कंधों भरेहुए सहदेवने

सन्निवः ॥ २० ॥ तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम् । दुर्मुखो
नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥ २१ ॥ दुर्मुखस्य तु भल्लेन
क्षित्वा केतुं महाबलः । जघान चतुरो बाह्वश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः २२
अथापरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह । चिच्छेद सारथेः कायो-
च्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ २३ ॥ क्षुरमेण सुतीक्ष्णेन
कौरवस्य महद्धनुः । सहदेवो रणो क्षित्वा तच्च विव्याध पञ्चभिः २४
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा । आरुरोह रथं राज-
न्निरमित्रस्य भारत ॥ २५ ॥ सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महा-
हवे । जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥ २६ ॥ स पपात
रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः । त्रिगर्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तत्र
बाहिनीम् ॥ २७ ॥ तन्तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोक्षत ।

हँसतेर आतेहुए भाई दुर्मुखको तीक्ष्ण बाणोंसे बीँधडाला ॥ २० ॥
हे भारत ! उस महाबली सहदेवको रणमें क्रुद्ध हुआ देखकर
दुर्मुखने भी उसके नौ बाण मारे ॥ २१ ॥ तब महाबली सहदेवने
भल्ल नामक बाणसे दुर्मुखका ध्वजाको काट चार तीक्ष्ण बाणोंसे
उसके चारों घोड़ोंको भी मार डाला ॥ २२ ॥ तदनन्तर एक पानी
पिलायाहुआ तेज बाण मारकर दुर्मुखके सारथिका चमकतेहुए
मुकुटवाला मस्तक उड़ा दिया ॥ २३ ॥ और सहदेवने रणमें एक
तेज बाण मारकर दुर्मुखके बड़े भारी धनुषको काट डाला, फिर
उसको भी पाँच बाणोंसे बीँधडाला ॥ २४ ॥ हे भरतवंशी राजन् !
इस समय दुर्मुख मनमें बहुत ही खिन्न होगया और भरेहुए
घोड़ोंवाले रथको छोड़ निरमित्रके रथमें जा बैठा ॥ २५ ॥ तब
तो शत्रु वीरोंको मारनेवाले सहदेवको क्रोध आगया और उसने
सेनाके मध्यमें निरमित्रके भल्लनामक बाण मारा २६ इससे वह
त्रिगर्तराजका पुत्र नरपति निरमित्र रथकी बैठकमेंसे नीचे गिर पड़ा,
उस समय तुम्हारी सेनामें शोक व्यापगया ॥ २७ ॥ महाबाहु

यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥ २८ ॥
 हाहाकारो महानासीत् त्रिगर्त्तानां जनेश्वर । राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा
 निरमित्रं महारथम् ॥ २९ ॥ नकुलस्ते सुतं राजन् विकर्णं पृथु-
 लोनचम् । मुहूर्त्ताञ्जितवान् लोके तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३० ॥ सा-
 त्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः । चक्रोऽदृश्यं सारथ्यभूतं
 सध्वजं पृथनान्तरे ॥ ३१ ॥ तान्निवार्य शराब्जूरः शैनेयः कृत-
 हस्तयत् । सारथ्यसूतध्वजं वाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥ ३२ ॥ कुमारे
 निहते तस्मिन् मगधस्य सुते प्रभो । मगधाः सर्वतो यत्ताः
 युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३३ ॥ विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सह-
 स्रशः । भिन्दिपालांस्तथा प्रासान् मुद्गरान् मुसलानपि ॥ ३४ ॥
 अयोधयन्त्रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् । तांस्तु सर्वान् स बलवान्

सहदेव उसका बध करके, जैसे महाबली खरको मारकर रामने
 शोभा पाई थी तैसे ही शोभा पाने लगा ॥ २८ ॥ हे जनेश्वर !
 महारथी राजकुमार निरमित्रको मराहुआ देखकर त्रिगर्तोंकी
 सेनामें बडा भारी हाहाकार मचगया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इस
 संग्राममें नकुलने विशाल नेत्रोंवाले तुम्हारे पुत्र विकर्णको एक क्षण
 भरमें ही जीत लिया, यह आश्चर्यसा हुआ ॥ ३० ॥ व्याघ्रदत्तने
 सेनाके बीचमें ही नमीहुई गाँठवाले बाणोंसे घोड़े और सारथी
 सहित सात्यकिको ढकदिया ॥ ३१ ॥ तब शनिपुत्र सात्यकीने
 बाण मारकर हाथकी फुर्तीसे उन सब बाणोंको पीछेको हटादिया
 और दूसरे बाण मारकर घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजासहित
 उसका नाश करडाला ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! मगधराजके पुत्र उस
 राजकुमारके मारेजाने पर मगधराजके योधा शस्त्रादिसे मुसज्जित
 हो चारों ओरसे युयुधान पर दूटपड़े ॥ ३३ ॥ वे सब वीर,
 युद्धदुर्मद सात्यकिके ऊपर तोमर, बाण सहस्रों भिन्दिपाल,
 प्रास मुद्गर और मुसल फेंककर उससे युद्ध करगेलगे, बलवान्

सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ ३५ ॥ नातिकृच्छ्राद्दुस्सन्नेव विजिग्ये पुरु-
 र्षर्षभः । मागधान् त्वरितो दृष्ट्वा हतशेषान् समन्ततः ॥ ३६ ॥
 बलन्तेऽभज्यत विभो युयुधानशरादितम् । नाशयित्वा रणे सैन्यं
 त्वदीयं माधवोत्तमः ॥ ३७ ॥ विधुन्वानो धनुःश्रेष्ठ व्यभ्राजत
 महायशः । भज्यमानं बलं राजन् सात्वतेन महात्मना ॥ ३८ ॥
 नाभ्यवर्षत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना । ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः
 सहस्रोद्वृत्प चक्रुषी । सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाभिदुद्रुवे ३९
 इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकि-

युद्धे समाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

सञ्जय उवाच । द्रौपदेयान्महेष्वासान् सौमदत्तिर्महायशः ।
 एकैकं पञ्चभिर्विध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ १ ॥ ते पीडिता भृशं
 तेन रौद्रेण सहसा विभो । प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म
 किञ्चन ॥ २ ॥ नाकुलिश्च शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम् । द्वाभ्यां

युद्धदुर्मद, पुरुषश्रेष्ठ सात्यकिने हंसकर बड़ी सहजमें उन
 सत्रोंको जीतलिया, मरनेसे बचेहुए मागधोंको चारों ओरको
 भागते देखकर महात्मा सात्यकिने तुम्हारी सेनाको वाणोंसे
 मारकर भगादिया उससमय महायशस्वी मधुवंशीसात्यकि हाथमें
 के धनुषको घुमाताहुआ बड़ी ही शोभा पारहा था, हे राजन् ! दीर्घ-
 बाहु महात्मा सात्यकिके द्वारा भगाईहुई तुम्हारी व्याकुल सेनामें
 कोई भी सात्यकिके सामने नहीं ठहरा यह देखकर द्रोणको बहुत
 ही क्रोध चढ़ा और वे आँखे चढ़ा एक साथ सत्यपराक्रमी सात्यकि
 के ऊपर टूटपड़े ॥ ३४-३६ ॥ एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त १०७

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! महायशस्वी सौमदत्तके पुत्रने
 महाधनुषधारी द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंमेंसे प्रत्येकको एकवारमें पाँच
 फिर सात २ वाणोंसे बाँध डाला ॥ १ ॥ हे प्रभो ! सौमदत्तके
 भयङ्कर पुत्रके प्रहारसे वे दिङ्मूढ होगए और रणमें क्या कर्त्तव्य है

विध्वानदद्गधृष्टः शराभ्यां शत्रुकर्षणः ॥ ३ ॥ तथेतरे रणे यत्ता-
स्त्रिभिरस्त्रभिजिह्वगैः । विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ४
स तान् प्रति महाराज चिक्षेप पञ्च सायकान् । एकैकं हृदि चाजघ्ने
एकैकेन महायशाः ॥ ५ ॥ ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महा-
त्मना । परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्मृशम् ॥ ६ ॥ अर्जु-
निस्तु ह्यास्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः । प्रेययामास संक्रुद्धो यमस्य
सदनं प्रति ॥ ७ ॥ भीमसैनिर्धनुश्छिन्वा सौमदत्तेर्महात्मनः । ननाद
बलवन्नाटं विव्याध च शितैः शरैः ॥ ८ ॥ यौधिष्ठिरिर्ध्वजं तस्य
छित्वा भूमावपातयत् । नाकुलिश्चाथ यन्तारं रथनीडादपाहरत् ९
साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम् । क्षुरप्रेण शिरो राज-

इसको भूलगए ॥२॥ शत्रुकर्षण नकुलका पुत्र शतानीक, नरश्रेष्ठ
सोमदत्तके पुत्रको दो बाणोंसे वींधर परमप्रसन्न हो गर्जने
लगाइतथा दूसरे तयार हुए द्रौपदीके चारों पुत्रोंने भी सोमदत्तके
क्रोधी पुत्रको तीन-२ सीधे जानेवाले बाणोंसे घायल करदिया ४
हे महाराज! महायशस्वी सोमदत्तके पुत्रने उनके ऊपर पाँच बाण
छोड़े और एकदो बाणसे प्रत्येकके हृदयको वींधडाला ५ महात्मा
सोमदत्तके पुत्रके बाणोंसे घायलहुए वे पाँचों भाई उसको चारों
ओरसे घेर उसके ऊपर बहुतसे बाण बरसाने लगे ॥६॥ क्रोधमें
भरेहुए अर्जुनके पुत्रने चार तेजबाणसे उसके चारों घोड़ोंको यम-
सदनमें भेजदिया ॥७॥ भीमसेनके पुत्रने महात्मा सोमदत्तके पुत्रके
धनुषको काटकर बड़ी जोरसे गर्जनाकी और फिर उसको तीक्ष्ण
बाणोंसे वींधडाला ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरके पुत्रने उसकी ध्वजाको
काटकर भूमिपर गिरादिया, फिर नकुलके पुत्र शतानीकने उसके
सारथीको रथके अङ्गे परसे नीचे गिरादिया ॥९॥ और सहदेवके
पुत्रने जब देखा, कि-मेरे भाइयोंने शत्रुका पराजय कर उसको
विमुख करदिया है, तब उसने छुरेके आकारका बाण मारकर

स्निग्धकर्तृ महात्मना ॥ १० ॥ तच्छिरोन्मेषतद्गमौ तपनीयविभूषि-
तम् । आजगत् रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥ ११ ॥ सौमदत्तेः
शिरो दृष्ट्वा निहतं तन्महात्मनः । विव्रस्तास्तावका राजन् प्रदुद्बु-
रनेकधा ॥ १२ ॥ अलम्बुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् । योष-
यामास संकुटो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥ १३ ॥ संप्रयुद्धौ रणे
दृष्ट्वा तापुभौ नरराक्षसौ । विस्मयः सर्वभूतानां प्रदर्षः समजायत १४
आर्ष्यभृङ्गि ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः । विव्याध प्रहसन
राजन् राज्ञसेन्द्रमर्षणम् ॥ १५ ॥ तद्रक्षः समरे विद्धा कृत्वा नादं
भयावहम् । अभ्यद्रवचतो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥ १६ ॥
स भीमं पञ्चभिर्विध्वा शरैः सन्नतपर्दभिः । भैमान् परिजघानाशु
रथास्त्रिशतयाहवे ॥ १७ ॥ पुनश्चतुःशतान् हत्वा भीमं विव्याध

उस महात्माके शिरको काटडाला ॥ १० ॥ सुवर्णसे भूषित बाल-
सूर्यकी समान कान्तिवाला उसका शिर रणभूमिको प्रकाशित
करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! महात्मा सोम-
दत्तके पुत्रके शिरको गिरा हुआ देखकर तुम्हारे सैनिक भयभीत
होगए और अनेकों मार्गोंमेंको भागनेलगे ॥ १२ ॥ जैसे लक्ष्मण
से मेघनाद लड़ा था, इसीप्रकार क्रोधमें भराहुआ अलम्बुष
समरमें महाबली भीमसेनसे लड़नेलगा ॥ १३ ॥ युद्धमें मनुष्य
और राक्षसको लड़ते देखकर मनुष्योंको बड़ा ही विस्मय और
हर्षहुआ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! ऋष्यशृङ्गके पुत्र क्रोधी राज्ञस
अलम्बुषने हँसकर नौ तीखे बाणोंसे भीमसेनको वींघडाला ॥ १५ ॥
तदनन्तर वह राज्ञस भीमसेनको बाणोंसे वींघकर बड़ी भयानक
गर्जना करताहुआ उसके ऊपर झपटा और उसके अनुचर भी
उसके साथ २ दौड़े ॥ १६ ॥ उस राज्ञसने नमीहुई गांठवाले
पाँच बाणोंसे भीमसेनको वींघकर उसके तीन सौ रथियोंको
युद्धमें मारडाला ॥ १७ ॥ और उसने फिर चारसौ योधाओंको

प्रत्रिणा । सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महाबलः ॥ १८ ॥
 निपपात रथोपस्थे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः । प्रतिलभ्य ततः संज्ञां
 मारुतिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥ विकृण्व कायं कं घोरं भारसाधन-
 मुत्तमम् । अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैर्द्वयामास सर्वतः ॥ २० ॥ स
 विद्धो बहुभिर्बाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः । शुशुभे सर्वतो राजन् प्रफुल्ल
 इव किंशुकः ॥ २१ ॥ स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
 स्मरन् भ्रातृवधञ्चैव पाण्डवेन महात्मना ॥ २२ ॥ घोरं रूपमथो
 कृत्वा भीमसेनमभाषत । तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्र-
 मम् ॥ २३ ॥ वक्रो नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली । परोक्षं मम
 तद्र वृत्तं यद् भ्राता मे हतस्त्वया ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वा ततो भीम-

मारकर भीमके एक बाण मारा, महाबली राक्षसके बाणके
 प्रहारसे अनीब घायलहुआ भीमसेन मूर्च्छित होकर रथकी बैठक
 पर गिरपड़ा कुछ समयके अनन्तर भीमसेन सचेत हुआ और
 पवनपुत्र भीमसेन क्रोधमें भर एक बड़े भारी भारको सह सकने
 वाले बड़े धनुषको खेंचकर अलम्बुष राक्षसको चारों ओरसे
 बाणोंसे पीड़ित करने लगा ॥ १८-२० ॥ काजलके पर्वतकी
 समान शरीरवाला राक्षस अलम्बुष, सब ओरसे बाणोंसे विंध
 कर खिलेहुए टेसूके वृत्तकी समान दीखने लगा ॥ २१ ॥ संग्राममें
 महात्मा भीमसेन धनुष पर बाण चढ़ाकर उसको मार रहा था,
 उस समय उसको स्मरण आया कि-इस भीमसेनने ही मेरे भाई
 वक्रको मार डाला है यह विचार कर उसने अपने भयङ्कर रूपको
 धारण किया और भीमसेनसे बोला, कि-अरे पार्थ ! तू इस समय
 रणमें खड़ा रहकर और मेरे पराक्रमको देख ! हे दुर्बुद्धे ! तूने
 वक्र नामक महाबली राक्षसको मार डाला था, परन्तु उस समय
 मैं वहाँ नहीं था, (नहीं तो तुझे बताता) परन्तु आज तू उसके
 फलको पावेगा ॥ २२-२३ ॥ भीमसेनसे इसप्रकार वक्रभक्त

मन्तुर्दुर्नि गतस्तदा । महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत् ॥ २५ ॥
 भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा । आकाशं पूरयामास शरैः
 सन्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥ स ब्रह्ममानो भीमेन निमेषाद्रथमास्थितः
 जगाम धरणीञ्चैव क्षुद्रः खं सहसागमत् ॥ २७ ॥ उच्चावचानि
 रूपाणि चकार सुबहूनि च । अणुर्बृहत् पुनः स्थूलो नादं मुञ्च-
 ज्जिवाम्बुदः ॥ २८ ॥ उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समन्ततः ।
 निपंतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः ॥ २९ ॥ शक्तयः कणपाः
 प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः । शतघ्न्यः परिघाश्चैव भिन्दिपालाः
 परश्वधाः ॥ ३० ॥ शिलाः खड्गा गुडार्चैव ऋष्टिर्वज्राणि चैव
 ह । सा राक्षसविमृष्टा तु शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ॥ ३१ ॥ जघान
 पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् रणमूर्धुनि । तेन पाण्डवसैन्यानां

कारके वह राक्षस अन्तर्धान होगया और भीमसेनके ऊपर बहुतसे
 बाणोंकी बरसा करनेलगा ॥ २५ ॥ हे राजन् ! जब राक्षस
 अन्तर्धान होगया, तब भीमसेनने नमीहुई गाँठवाले बाणोंसे
 आकाशको भरदिया ॥ २६ ॥ इसप्रकार भीमके बाणोंका प्रहार
 होनेपर वह राक्षस निमेषमात्रमें ही आकाशसे अपने रथपर
 आगया, तहाँसे पृथ्वीपर उतरपड़ा और फिर छोटासा रूप बनाकर
 दूसराकर आकाशमें उडगया २७ वह एक क्षणमें छोटासा बन जाता
 था, और दूसरे क्षणमें बड़ा बन जाता था फिर तीसरे क्षणमें ऊँचा
 और क्षणभरमें नीचा होजाता था तथा क्षणभरमें सूक्ष्म और बड़ा
 बनजाता था और क्षणमें थूस्तरूप धारणकर बादलोंकी समान
 गरजने लगता था ॥ २८ ॥ चारों ओरसे अनेकों प्रकारके कटु-
 वचन बोलता था, उस समय उसकी छोड़ीहुई आकाशमेंसे
 सहस्रों बाणधारायें पडनेलगीं भाले, शूल, पट्टिश, तोमर,
 शतग्री, परिघ, भिन्दिपाल, कुठार, शिलाएँ, तलवार, गुड़ और
 ऋष्टियोंकी वज्रकी समान दारुण वर्षा करनेलगा ॥ ३०-३१ ॥

सूदिता युधि वारणाः ॥ ३२ ॥ हयाश्च बहवो राजन् पचायश्च तथा
 पुनः । रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य जुन्नाः स्म सायकैः ॥ ३३ ॥
 शोणितोदां रथावर्त्ता हस्तिग्राहसमाकुलाम् । छत्रहंसां कर्दमिनीं
 बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥ ३४ ॥ नदीं प्रावर्त्तयाप्रास रत्नोगणसमा-
 कुलाम् । बहन्ती बहुधा राजंश्चेदिपाञ्चालसृञ्जयान् ॥ ३५ ॥ तं
 तथा समरे राजन् विचरन्तमभीतवत् । पाण्डवा भृशसम्ब्रिग्नाः
 प्रापश्यंस्तस्य विक्रमम् ॥ ३६ ॥ तावकानान्तु सैन्यानां प्रहर्षः
 समजायत । वादित्रनिनदध्वोऽग्रः सुमहान् रोमहर्षणः ॥ ३७ ॥ तं
 श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः । नामज्यत यथा नाग-
 स्तलशब्दं समीरितम् ॥ ३८ ॥ ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दह-
 न्निव पावकः । सन्दधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः ॥ ३९ ॥

उस राज्ञसकी कीहुई शस्त्रवर्षासे पाण्डुपुत्रके सैनिक रणके
 मुहानेपर भरकर गिरनेलगे और उसने पाण्डवोंकी सेनाके हाथ-
 योंको तथा हे राजन् ! सहस्रों पैदलोंको भी नष्ट करडाला और
 उस राज्ञसके बाणोंके प्रहारसे रथी रथमेंसे (टपाटप) नीचे
 गिरनेलगे ॥ ३२-३३ ॥ हे राजन् ! उस राज्ञसने रणमें रक्त-
 रूपजल, रथरूप भँवर, हाथीरूप ग्राहोंसे भरी, छत्ररूप हंसोंसे
 शोभित, मांसरूप कीचड़से भरपूर, बाहुरूप सर्पोंसे व्याप्त और
 राज्ञसोंके झुण्डोंसे घिरीहुई रुधिरकी नदी बहादी, हे राजन् !
 उसमें अधिकतर चेदी, पाञ्चाल और सृञ्जय बहनेलगे ३४-३५
 हे राजन् ! उसको समरमें निडर हो विचरते देखकर और उसके
 पराक्रमको देखकर पाण्डव बड़े ही दुःखी होनेलगे ॥ ३६ ॥ और
 तुम्हारे योधा बड़े प्रसन्न हुए तथा तुम्हारी सेनामें हर्षसूचक
 बाजोंका बड़ा शब्द होनेलगा ॥ ३७ ॥ परन्तु हाथी जैसे तालीका
 शब्द सुनते ही क्रोधमें भरजाता है, तैसे ही भीमसेन तुम्हारी
 सेनाके उस दारुण शब्दको सह न सका ॥ ३८ ॥ और उस

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् समन्ततः । तैः शरैस्तव सैन्यस्य
विद्रवः सुपहानभूत् ॥ ४० ॥ तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगो
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमार्दयत् ॥ ४१ ॥ स वध्यमानो
बहुधा भीमसेनेन राक्षसः । सन्त्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपा-
द्रवत् ॥ ४२ ॥ तस्मिंस्तु निर्जिते राजन् राक्षसेन्द्रे महात्मना ।
अनादयन् सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतो दिशम् ॥ ४३ ॥ अपूजय-
न्मरुतिञ्च सहृष्टास्तं महाबलम् । प्रह्लादं समरे जित्वा यथा शक्रं
मरुद्गणैः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अल-

म्बुषपराजये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

सञ्जय उवाच । अलम्बुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत् ।

पवनपुत्र नेभारम करनेको उद्यतहुए अश्विकी समान क्रोधसे लाल २
नेत्र करके विश्वकर्माकी समान विश्वकर्माके अस्त्रको साधा ॥ ३६ ॥
तब तो चारों ओरसे सहस्रों बाण प्रकट होनेलगे और उन
बाणोंके कारण तुम्हारी सेनामें बड़ीभारी भागड़ पड़ गई ॥ ४० ॥
भीमसेनका छोडाहुआ वह अस्त्र रणमें राक्षसकी उस बड़ीभारी
मायाको नष्ट करके फिर उस राक्षसको भी पीड़ित करनेलगा ४१
जब भीमसेन उस राक्षसको बहुत ही मारनेलगा तब वह भीम-
सेनको छोडकर द्रोणकी सेनाकी ओरको भागा ॥ ४२ ॥ हे
राजन् ! जब महात्मा पाण्डुपुत्रने उस राक्षसराजको जीतलिया
तो पाण्डवोंने सिंहोंकी समान गरजकर सब दिशाओंको गुञ्जार
दिया ॥ ४३ ॥ और प्रह्लादका पराजय करनेके बाद पवनोंने
जैसे इन्द्रकी प्रशंसा की थी तैसे ही प्रसन्नहुए पाण्डव भी पवनपुत्र
महाबली भीमसेनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ४४ ॥ एक सौ आठवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥ छ ॥ छ ॥ छ

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! जब अलम्बुष इसप्रकार

हैडिम्बिः प्रययौ तूष्णीं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १ ॥ तयोः प्रति-
 भयं युद्धमासीद्राक्षससिंहयोः । कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बर-
 योरिव ॥ २ ॥ अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत् । तयो
 युद्धं समभवद्रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ॥ ३ ॥ यादगोव पुरा वृत्तं
 रामरावणयोः प्रभो । घटोत्कचस्तु विंशत्या नासवानां स्तनान्तरेऽ
 अलम्बुषमथो विध्वा सिंहवद्वचनदन्मुहुः । तथैवालम्बुषो राजन्
 हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम् ॥ ४ ॥ विध्वा विध्वानदददृष्टः पूरयन् खं
 समन्ततः । तथा तौ भृगसंकुद्धौ राक्षसेन्द्री महाबली ॥ ५ ॥
 निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम् । मायाशतसृजौ नित्यं मोह-
 यन्तौ परस्परम् ॥ ६ ॥ मायायुद्धेषु कुशलौ मायायुद्धमयुद्धयताम् ।

युद्धमें निर्भयसा घूँस रहा था, उस समय हैडिम्बाके पुत्र घटोत्कचने
 उसके सामने जाकर उसे तोड़ने बाणोंसे घायल करवाला १
 जिस प्रकार पहिले इन्द्र और शम्बरामुस माया रचकर लड़े थे,
 इसीप्रकार राक्षसोंमें सिंह सपान वे दोनों नानाप्रकारकी माया
 रचकर महाभयङ्कर युद्ध करने लगे ॥ २ ॥ अलम्बुष बड़े भारी
 क्रोधमें भरगया और उसने घटोत्कचको बहुत ही पीटा, हे प्रभो !
 उन दोनों मुख्य राक्षसोंका युद्ध पूर्वकालमें हुए राम-रावणके
 संग्रामकी समान हुआ, घटोत्कच अलम्बुषकी छातीको बीस
 बाणोंसे घायल करके सिंहकी समान बारम्बार दहाडने लगा,
 हे राजन् ! इसीप्रकार अलम्बुष भी युद्धदुर्मद घटोत्कचको बार-
 म्बार बाँध कर प्रसन्न हो अपने शब्दसे आकाशको भरता
 हुआ दहाडने लगा, क्रोधमें भरेहुए वे दोनों महाबली राक्षसेन्द्र
 माया रचकर परस्पर इसप्रकार युद्ध कर रहे थे कि—उनमें कुछ
 भी न्यूनाधिकता नहीं दीखती थी, वे दोनों सहस्रों मायाओंको
 रचकर एक दूसरेको मोहित कर रहे थे ॥ ३-७ ॥ मायायुद्धमें
 कुशल वे दोनों मायायुद्ध करने लगे, हे राजन् ! युद्धमें घटोत्कच

यां यां घटोत्कचो युद्धे मार्या दर्शयते नृप ॥ ८ ॥ तां तामलम्बुषो
 राजन् माययैव निजघ्नितान् । तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्ध-
 विशारदम् ॥ ९ ॥ अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वा क्रुध्यन्त पाण्डवाः ।
 त एनं भृशसम्बन्धः सर्वतः प्रवरा रथैः ॥ १० ॥ अभ्यद्रवन्त
 संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप । त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन
 मारिष ॥ ११ ॥ सर्वतो व्यकिरन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।
 स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्यास्त्रमायया ॥ १२ ॥ तस्माद्रथव्रज-
 न्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः । स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसम-
 स्वनम् ॥ १३ ॥ मारुतिं पञ्चविंशत्या भीमसैनिक्य पञ्चभिः ।
 युधिष्ठिरं त्रिभिर्विध्वा सहदेवञ्च सप्तभिः ॥ १४ ॥ नकुलञ्च त्रिस-
 त्त्या द्रौपदेयाञ्च मारिष । पञ्चभिः पञ्चभिर्विध्वा घोरं नाहं
 ननाद ह ॥ १५ ॥ तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः ।

जिस २ मायाको दिखाता था, हे राजन् ! अलम्बुष उसको ही
 अपनी मायासे नष्ट करदेता था, मायावी राक्षसेन्द्र अलम्बुष
 को इसप्रकार युद्ध करते देखकर पाण्डवोंको बड़ा क्रोध आया
 और हे राजन् ! भीम आदि बड़े २ महारथी पाण्डव उद्विग्न
 तथा क्रुद्ध हो उसके ऊपर चारों ओरसे दौड़पड़े और हे राजन् !
 वे इसके चारों ओर रथोंका घेरा डालकर इसप्रकार बाणोंकी
 वर्षा करनेलगे जैसे हाथीके ऊपर जलतीहुई लकड़ियों वरसाई
 जाती हों, परन्तु अलम्बुष अपनी अस्त्रमायासे शत्रुओंके अस्त्रों
 को नष्ट करके उस अग्निवर्षासे ऐसे वचकर निकल गया जैसे
 हाथी वनकी दौमेंसे निकलजाता है, तदनन्तर उसने इन्द्रके वज्रकी
 समान भयङ्कर धनुषको लैचकर भीमसेनके पचीस, घटोत्कचके
 पाँच युधिष्ठिरके तीन, सहदेवके सात, नकुलके तिहत्तर और द्रौपदी
 के पुत्रोंके पाँच २ बाण मारे तथा घोर गर्जना करनेलगा ८-१५
 फिर उस राक्षसको भीमसेनने नौ, सहदेवने पाँच और युधि-

युधिष्ठिरः शतैर्नैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥ नकुलस्तु चतुः-
 पृथ्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः । हैडिम्बो राक्षसं विध्वा युद्धे
 पञ्चाशता शरैः ॥ १७ ॥ पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महा-
 बलः । तस्य नादेन महता कर्मितेयं वसुन्धरा ॥ १८ ॥ सपर्वत-
 वना राजन् सपादपजलाशया । सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वत-
 स्तैर्महारथैः ॥ १९ ॥ प्रतिविव्याध तान् सर्वान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
 तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः ॥ २० ॥ हैडिम्बो
 भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः । सोतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो
 महाबलः ॥ २१ ॥ व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं रुक्मपुद्गान् शिला-
 शितान् । ते शरा नतपर्वाणो विविशु राक्षसं तदा ॥ २२ ॥ हृषिताः
 पन्नगा यद्वहिरिभृगं महाबलाः । ततस्ते पाण्डवा राजन् समन्ता-
 निशिताञ्छरान् ॥ २३ ॥ प्रेपयामासुरुद्विग्रा हैडिम्बश्च घटोत्कचः ।

पुत्रने सौ बाणोंसे बींधडाला १६ और नकुलने उस राक्षसको
 चौंसठ बाणोंसे तथा द्रौपदीके पुत्रोंने पाँच २ बाणोंसे बींधा
 और हैडिम्बाके पुत्र महाबली घटोत्कचने उस राक्षसको पचास
 बाणोंसे बींधकर फिर सत्तर बाणोंसे घायल किया और जेरसे
 गर्जनाकी, हे राजन्! उस गर्जनासे पहाड़ जंगल, पेड़ और सरोवरों
 सहित चारों ओरसे पृथ्वी डगमगाने लगी, इन सब महारथियोंके
 महारोंसे घायल हुए उस अलम्बुपने उनमेंसे हर एकके पाँच २
 बाण मारे, उस राक्षसको क्रोधमें भरा देखकर घटोत्कचको भी
 बड़ा क्रोध आगया ॥ १८-२० ॥ और हे भरतश्रेष्ठ! घटोत्कच
 ने उसके सात बाण मारे, जब बलवान् घटोत्कचके बाणोंसे
 वह बहुत ही घायल होगया तब उस महाबली राक्षसराजने
 पत्थर पर घिसकर तेज किए हुए सुनहरी पूँछवाले बाण शीघ्रता
 से छोड़ने आरम्भ करदिये, तब क्रोधमें भरे सर्प जैसे पर्वतके शिखर
 में घुसजाते हैं, तैसे ही वे बाण घटोत्कचके शरीरमें वेगके साथ

स वधयाचः समरे पाण्डवैर्जितकाशिशिः ॥ २४ ॥ मर्त्यधर्ममनु-
 माप्तः कर्त्तव्यं नान्वपद्यन । ततः समरशौण्डो वै भैरसेनिर्महाबलः २५
 समीक्ष्य तदवस्थं तं वधायास्य मनो दधे । वेगञ्चक्रो महान्तञ्च
 राज्ञसेन्द्ररथम्पति ॥ २६ ॥ दग्धाद्रिकूटमृगाभं भिन्नाञ्जनचयोप-
 मम् । रथाद्रथमभिद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिरान्तिपत् ॥ २७ ॥ उद्धवहं रथा-
 ञ्चापि पन्नगं गरुडो यथा । समुत्तिष्ठ्य च बाहुभ्यामाविध्य च
 पुनः पुनः ॥ २८ ॥ निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्तं पूर्णं कुम्भमिवाश्मनि ।
 बललाघवसम्पन्नः सम्पन्नो विक्रमेण च ॥ २९ ॥ भैरसेनीं रणे
 क्रुद्धः सर्वसैन्यान्वभीषयत् । स विस्फारिसर्वाङ्गश्चूर्णितस्थिविभी-
 षणः ॥ ३० ॥ घटोत्कचेन वीरेण हनः शालकटङ्कटः । ततः
 सुमनसः पार्था इते तस्मिन्निशाचरे ॥ ३१ ॥ चुक्रुशुः सिंहना-

घुसगए हे राजन् ! उस समय घवडाये हुए पांडव और घटो-
 त्कचने भी उसके ऊपर चारों ओरसे तेज बाणोंकी मारामार
 आरम्भ करदी, जीतकर चमकनेवाले पांडवोंके बाणोंसे घायल
 होते २ वह मारासा होगया और वह क्रिदूर्त्तव्य त्रियूढ़ होगया यह
 दशा देखकर समरचतुर महाबली भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने उसको
 मारनेका विचार किया और उसके रथपर जानेके लिए बड़ा वेग
 धारण किया ॥ २१-२६ ॥ हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचने अपने रथ
 परसे अलम्बुषके रथ पर कूदकर जलेहुए गिरिशृंग और दूटे
 हुए कान्तलके, पर्वतकी समान उस राज्ञसको पकड़लिया २७
 जैसे गरुड सर्पको दबोच लेना है तैसे ही घटोत्कचने उसको
 रथपरसे पकड़कर हाथोंसे ऊपरको उठा बारम्बार घुमाया और
 भरेहुए घड़ेको जैसे पत्थर पर पटक देते हैं तैसे ही उसको भूमिपर
 देपटका, बल फुर्ती और पराक्रमवाले घटोत्कचने इस भूपाभूपी
 में क्रोध दिखाकर सब सेनाओंको भयभीत करडाला, वीर घटो-
 त्कचके प्रहारसे कटकटाके पुत्र अलम्बुषके सब अंग फटगए,

दाश्र्वा वासांस्यादुधुवुश्च ह । तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं
महाबलम् ॥ ३२ ॥ अलम्बुपं तथा शूरा विशीर्णमिव पर्वतम् ।
हाहाकारमकार्षुश्च सैन्यानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥ जनाश्च तद्दृष्ट्विरे
रक्षः कौतूहलान्विताः । यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ३४
घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो बलवताम्बरः । सुभोचं बलवन्नादं
बलं हस्तेव वासवः ॥ ३५ ॥ स पूज्यमानः पितृभिः सवान्धवै-
र्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते । रिपुं निहत्याभिननन्द वै तदा
हलम्बुपं पक्वमलम्बुपं यथा ॥ ३६ ॥ ततो निनादः सुहान् समु-
त्थितः शंखनानाविधवाणघोषवान् । निशम्य तं प्रत्यनदंस्तु
पाण्डवास्ततोऽध्वनिर्भुवनमथास्पृशद् भृशम् ॥ ३७ ॥

हृदिद्वयोका चूरा २ होगया इससे वह राक्षस भयावना दीखने
लगा चूरा २ हुए पर्वतकी समान राक्षसेन्द्र अलम्बुपको मरा
देखकर तुम्हारी सेनामें हाहाकार मचगया और पांडव उस
राक्षसके मरनेसे मनमें प्रसन्न हो वस्त्र उड़ाने लगे और सिंहोंकी
समान गरजने लगे ॥ ३२-३३ ॥ जैसे दैवगतिसे आकाशमेंसे
गिरे हुए मङ्गलके तारेको मनुष्य अचम्भे ही तमाशा)सादेखते हैं,
तैसे ही पृथ्वीपर पड़े हुए उस राक्षसको देखनेके लिये मनुष्य
कुतूहलके साथ दौड़पड़े ॥ ३४ ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ राक्षस अल-
म्बुपको मारकर घटोत्कच, पूर्वकालमें बलासुरको मारकर गर्जने
वाले इन्द्रकी समान, गर्जने लगा ॥ ३५ ॥ महाकठिन कर्म करनेके
कारण पाण्डव और सम्बन्धियोंने घटोत्कचकी प्रशंसाकी पके-
हुए अलम्बुप (ताल)के फलकी समान, पके हुए पापवाले अल-
म्बुप नामक शत्रुको मारकर उससमय घटोत्कच भी बड़े आनन्द-
में भरगया ॥ ३६ ॥ इस समय पांडवोंकी सेनामें शंख और अनेकों
प्रकारको बड़ा भारी शब्द होने लगा, उसको सुनकर कौरव भी सामने
से गरजने लगे, यह महान् शब्द सब पृथिवीमें पूर्णरूपसे फैल गया ३७

धृतराष्ट्र उवाच । भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानो व्यवहारयत् ।
 सञ्जयाचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच ।
 शृणु राजन् महाभाश संग्रामं लोमहर्षणम् । द्रोणस्य पाण्डवैः
 सार्द्धं युयुधानपुरोगमैः ॥ २ ॥ बध्यमानं बलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष ।
 अभ्यद्रवत् स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ३ ॥ तमापतन्तं
 सहसा भारद्वाजं महारथम् । सात्यकिं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां
 समार्षयत् ॥ ४ ॥ द्रोणोऽपि युधि विक्रान्तो युयुधानसमाहितः ।
 अविध्यत् पञ्चभिस्तूर्णैर्हेमपुंस्त्रैः शरैः शितैः ॥ ५ ॥ ते वर्मभित्वा
 सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः । अभ्ययुर्ध्वरणीं राजन् श्वसन्त इव
 पन्नगाः ॥ ६ ॥ दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः । द्रोणं

धृतराष्ट्रने कहा कि-हे सञ्जय ! द्रोणाचार्यको सात्यकिने
 युद्धमें कैसे रोका था, यह मुझे ठीक २ सुना इसको सुननेका
 मुझे बड़ा कूतूहल है ॥ १ ॥ सञ्जयने उत्तरदिया, कि-हे महा-
 बुद्धिमान राजन् ! युयुधान आदि प्रधान २ पुरुषोंवाले पाण्डव-
 पक्षके योद्धाओंके और द्रोणाचार्यके लोमहर्षण संग्रामको सुनिये २
 हे राजन् ! सात्यकि मेरी सेनाको नष्टकर रहा है, यह देखकर,
 द्रोण अपने आप सत्यपराक्रमी सात्यकिके ऊपर चढ़आये ३
 एकाएकी उनको आताहुआ देखकर सात्यकिने द्रोणके पचीस
 बाण मारे ॥ ४ ॥ युद्धमें विकट पराक्रम दिखानेवाले द्रोणने
 भी सावधान होकर फुर्तीके साथ सुवर्णकी पूँछवाले पाँच तीक्ष्ण
 नाण सात्यकिके मारे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! वे शत्रुओंके मांसको
 खाने वाले बाण सात्यकिके बड़े मजबूत कवचको फोड़कर
 फुँकारें भरतेहुए पृथ्वीमें सर्पोंकी समान सरसर करके घुस गए
 इससे सात्यकि अंकुशसे मारे हुए हाथीकी समान क्रोधमें भर
 गया और उसने अग्निकी समान स्पर्शवाले पचास बाणोंसे द्रोण

पञ्चाशताविध्यन्नाराचैरग्निसन्निभैः ॥ ७ ॥ भारद्वाजो रणे
 विद्धो युयुधानेन सत्वरम् । सात्यकिं बहुभिर्वाणैर्यतमानमवि-
 ध्यत ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः । सात्वन्तं
 पीडयामास शरेणान्तपर्वणा ॥ ९ ॥ स बध्यमानः समरे भार-
 द्वाजेन सात्यकिः । नान्वपथ्यत कर्त्तव्यं किञ्चिदेव विशाम्पते १०
 विपण्यवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्तृप । भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विस्म-
 जन्तं शितान् शरान् ॥ ११ ॥ तन्तु सम्प्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च
 विशाम्पते । महृष्टमनसो भून्वा सिद्धवद्वयनदन्मुहुः ॥ १२ ॥ तं
 श्रुत्वा त्रिनदं घोरं पीडयमानञ्च माधवम् । युधिष्ठिराव्रवीद्राजा
 सर्वसैन्यानि भारत ॥ १३ ॥ एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्य-

को घायल करदिया ॥ ६-७ ॥ जब इसप्रकार शीघ्र ही सात्यकिने
 द्रोणाचार्यको रणमें घायलकर ढाला तब तो उद्योग करतेहुए
 सात्यकिको द्रोणेने बहुतसे बाण मारकर घायल करदिया ८
 तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए द्रोणाचार्यने फिर भी नमीहुई गाँठवाला
 बाण मारकर सात्यकिको पीडा दी ॥ ९ ॥ हे महाराज ! जब
 द्रोण सात्यकिको इसप्रकार पीडा देनेलगे, तब सात्यकिको यह
 भी नहीं सूझा, कि-अब मैं क्या करूँ ॥ १० ॥ रणमें द्रोणको
 तेज बाण छोडतेहुए देखकर हे राजन् ! युयुधान (सात्यकि)
 का मुख उत्तरगया ॥ ११ ॥ हे राजन् ! उसकी इस दशाको
 देखकर तुम्हारे पुत्र और सैनिक मनमें प्रसन्न होकर चारम्बार
 सिंहाद करनेलगे ॥ १२ ॥ उस घोर गर्जनाको सुनकर और
 सात्यकिको पीडा पाते देखकर हे भारत ! युधिष्ठिरने सब सेना-
 ओसे कहा, कि- ॥ १३ ॥ (देखो) इस सत्यपराक्रमी वृष्णि-
 प्रवीर सात्यकिको यह वीर द्रोण इसप्रकार निगलनेको उद्यत

विक्रमः । अस्यते युधि-वीरेण भानुमानिव राहुणा ॥ १४ ॥
 अभिद्रवत गच्छन् सात्यकिर्यत्र युध्यते । धृष्टद्युम्नं च पाञ्चान्य-
 मिदमाह जनाधिपः ॥ १५ ॥ अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किमु तिष्ठसि
 पार्ष्ण । न पश्यसि भयं द्रोणाद् घोरं नः समुपस्थितम् ॥ १६ ॥
 असौ द्रोणो महेश्वासो युयुधानेन संयुगो । कीदृते सूत्रबद्धेन
 पक्षिणा बालको यथा ॥ १७ ॥ तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेन-
 पुरोगमाः । त्वयैव सहिताः सर्वे युयुधानरथम्व्रति ॥ १८ ॥ पृष्ठतो-
 नुगमिष्यामि त्वाग्रहं सहसैनिकः । सात्यकिं मा क्षमस्वाद्य यमदंष्ट्रा-
 न्तरंगतम् ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन भारत ।
 अभ्यद्रवद्रोणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥ २० ॥ तत्रारावो महा-
 नासीत् द्रोणमेकं युयुत्सताम् । पाण्डवानाञ्च भद्रन्ते सृञ्जया-

होरहे हैं, जैसे राहु चन्द्रमाको निगलना चाहता है ॥ १४ ॥
 (देखो) जहाँ सात्यकि लड़ रहा है उस स्थान पर तुम सब
 दौड़कर पहुँच जाओ, फिर युधिष्ठिरने पञ्चालपुत्र धृष्ट-
 द्युम्नसे यह कहा कि—॥ १५ ॥ ओ द्रुपदपुत्र ! तू यहाँ क्यों
 खड़ा है ? शीघ्रतासे दौड़कर द्रोणकी ओरको जा, क्या तू नहीं
 देखता, कि—द्रोणकी ओरसे तुम पर बड़ी भारी विपत्ति आपड़ा
 है ॥ १६ ॥ जैसे झोटासा बालक डोरेसे बँधेहुए पक्षीसे खेलता
 हो तैसे ही यह द्रोण सात्यकिसे खेल रहे (लड़ रहे) हैं ॥ १७ ॥
 तू भीमसेन आदि सबको अपने साथ लेकर सात्यकिके रथके
 समीप पहुँच जा ॥ १८ ॥ मैं भी सब सेनाको लेकर पीछे २
 आता हूँ, आज यमराजकी डाढ़में हिलगेहुए सात्यकिको बचा १९
 हे भारत ! राजा युधिष्ठिर ऐसा कहकर सात्यकिकी रक्षा करने
 के लिये सब सेनाको साथमें लेकर द्रोणके ऊपर दृढ़पड़े २०
 इस समय पांडव और सृञ्जयोंके सामने द्रोण अकेले ही लड़
 रहे थे, इससे तुम्हारी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा ॥ २१ ॥

नाञ्च सर्वशः ॥२१॥ ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम् ।
 अभ्यवर्षच्छरैस्तीक्ष्णैः कङ्कयर्दिणवाजितैः ॥ २२ ॥ स्मयन्नेव तु
 तान् वीरान् द्रोणः प्रत्यग्रहीत् स्वयम् । अतिथीनागतान् यद्वत्
 सलिलेनासनेन च ॥ २३ ॥ तर्पितास्ते शरैस्तम्य भारद्वाजस्य
 श्विनः । आतिथेयं गृहं प्राप्य नृपतेरतिथयो यथा ॥ २४ ॥
 भारद्वाजञ्च ते सर्वे न शोकुः परिवीक्षितुम् । मध्यन्दिनमनुप्राप्तं
 सहस्रांशुमिव प्रभो ॥ २५ ॥ तस्मिन् सर्वान् महेष्वासान् द्रोणः
 शस्त्रभृताम्बरः । अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांशुमान् ॥ २६ ॥
 बध्यमाना महाराज पाण्डवाः सृज्जयास्तथा । ज्ञातारं नाध्यगच्छन्त
 पङ्क्तमग्रा इव द्विपाः ॥ २७ ॥ द्रोणस्य च व्यदश्यन्त विसर्पन्तो

वे नरव्याघ्र योधा इकठ्ठे होकर काँए और मोरके पंखोंवाले
 बाणोंको बरसातेहुए महारथी द्रोणकी ओरको बढनेलगे ॥२२॥
 जैसे सज्जन पुरुष घरमें आएहुए अतिथियोंकी जल और आसन
 देकर सत्कार करते हैं तैसे ही द्रोणने हँसकर बाणोंके द्वारा
 उनका सत्कार किया ॥ २३ ॥ जिसप्रकार अतिथि राजाके घरमें
 आकर सत्कार पाकर प्रसन्न होजाते हैं तैसे ही वे धनुषधारी भी
 द्रोणके बाणोंसे तृप्त होगए अर्थात् द्रोणने उनके ऊपर बहुत ही
 बाणझोड़े २४हे प्रभो ! जैसे मध्यान्हके समय मनुष्य सूर्यको टकटकी
 बाँध कर नहीं देख सकते, तैसे ही वे सब द्रोणके सामनेको मुख
 न उठासके ॥ २५ ॥ और सूर्यकी समान द्रोण, किरणोंकी
 समान बाणोंकी वर्षासे उन सब महाधनुषधारियोंको सन्ताप
 देनेलगे ॥ २६ ॥ हे महाराज ! जब द्रोण पाण्डव और सृज्जयोंको
 घायल करनेलगे उस समय जैसे हाथीको कीचडमें फँसने पर
 कोई रक्षक नहीं मिलता है तैमे ही सृज्जयोंको कोई रक्षक नहीं
 दीखा और वे निराश होगये ॥ २७ ॥ जैसे तपातेहुए सूर्यकी
 चारों ओर किरणें ही दीखती हैं ऐसे ही द्रोणके चारों ओर

महाशिराः । गभस्तप इवार्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥ २८ ॥
 तस्मिन् द्रोणेन निहताः पञ्चालाः पञ्चविंशतिः । महारथाः
 समाख्याता धृष्टद्युम्नस्य सम्मताः ॥ २९ ॥ पांडूनां सर्वसैन्येषु
 पञ्चालानां तथैव च । द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान्
 वरान् ॥ ३० ॥ कैकेयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समन्ततः ।
 द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इषांतकः ॥ ३१ ॥ पञ्चालान्
 सृज्यान्मत्स्यान् कैकेयांश्च नराधिप । द्रोणोऽजयन्महाबाहुः शत-
 शोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥ तेषां समभवच्छब्दो विद्वानां द्रोण-
 सायकैः । वनौकसामिचारण्ये व्याप्तानां धूमकेतुना ॥ ३३ ॥ तत्र देवाः
 सगन्धर्वाः पितरश्चाब्रुवन्तृप । एते द्रवन्ति पञ्चालाः पाण्डवाश्च
 ससैनिकाः ॥ ३४ ॥ तं तथा सपरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान्
 रणे । न चाप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥ ३५ ॥

वाण ही वाण चीखते थे ॥ २८ ॥ इस युद्धमें द्रोणने धृष्टद्युम्नके
 मान्य पञ्चीस पंचाल महारथियोंको मार डाला ॥ २९ ॥ इतना ही
 नहीं किन्तु हमने देखा कि-द्रोण पञ्चाल और पाण्डवोंकी सब
 सेनामेंसे मुख्य २ पुरुषोंको मार रहे थे ॥ ३० ॥ हे महाराज ! द्रोण
 सौ कैकेयोंको मारकर और चारों ओर सेनाको भगाकर रणमें
 मुख फाड़े हुए सिंहकी समान खड़े होगए ॥ ३१ ॥ हे महाबाहु !
 महाबाहु द्रोणने सहस्रों और सैंकड़ों पंचाल, सृज्य तथा कैकेयों
 को जीत लिया ॥ ३२ ॥ दावानल लगने पर जैसे वनवासी
 चीखने लगते हैं तैसे ही द्रोणके वाणोंसे घायल हुए राजे चीखें
 मारने लगे ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! उस समय देवता, गन्धर्व और
 पितर भी कहने लगे, कि-देखो! देखो!! पांचाल और पांडव सेनाके
 सहित भागेजाते हैं ॥ ३४ ॥ जब द्रोण समर्थों सोमकोंको मार
 रहे थे, उस समय न कोई उनके पास पहुँच सके और न कोई
 उनको वाणोंसे घायल कर सके ॥ ३५ ॥ इसप्रकार छद्म २ श्रेष्ठ

वर्त्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये । अमृणोत् सहसा पार्थः
पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम् ॥ ३६ ॥ पूरितो वासुदेवेन शंखराट्
स्वनते भृशम् । युद्धयमानेषु वीरेषु सैन्यवस्याभिरक्षिपु ॥ ३७ ॥
नदत्सु धार्तराष्ट्रेषु विजस्य रथम्प्रति । गाण्डीवस्य च निर्वोपे
विप्रनष्टे समन्ततः ॥ ३८ ॥ करमलाभिहतो राजा चिन्तयामास
पाण्डवः । न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शंखराट् ॥ ३९ ॥
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः । एवं सञ्चिन्तयित्वा
तु व्याकुलेनान्तरात्मना ॥ ४० ॥ अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं
प्रत्यभाषत । वाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः । कृत्यस्या-
नन्तरापेक्षी शौनेयं शिनिपुङ्गवम् ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिर उवाच । यः
स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शौनेय शाश्वतः । साम्पराये सुहृत्कृत्ये

वीरोंका भयङ्कर संहार होरहा था, उसी समय युधिष्ठिरने एका-
यकी पांचजन्य शब्दके शब्दको सुना ॥ ३६ ॥ जब कि-सिंधु-
राजकी रक्षा करनेवालोंके साथ युद्ध होरहा था उस समय इस
महाशंखको श्रीकृष्णने जोरसे बजाया था ॥ ३७ ॥ जब धृत-
राष्ट्रके पुत्र अर्जुनके रथकी ओर जाकर गर्जनेलगे और गांडीव
की टंकार बन्द होगई, तब पांडुपुत्र युधिष्ठिर मनमें खिन्न होकर
विचारनेलगे, कि-जिसप्रकार पांचजन्यका शब्द होरहा है और
कौरव हर्षमें भरकर बारबार गरजरहे हैं इससे प्रतीत होता है
कि-इस समय अर्जुन पर संकट आपड़ा है, इसप्रकार चित्तमें
घबड़ा कर विचार करतेहुए अजातशत्रुकुन्तीपुत्र युधिष्ठिर वार-
म्बार मूर्छितसे होनेलगे और जयद्रथको निर्विघ्नतासे मारनेकी
इच्छावाले राजा युधिष्ठिर नेत्रोंमें आँसू भरकर गद्गद कंठसे
शिनिपुङ्गव सात्यकिसे कहनेलगे ॥ ३८-४१ ॥ युधिष्ठिर बोले
कि हे शिनिपुत्र ! आपत्ति पड़ने पर मित्रोंके जिन कर्त्तव्योंको
प्राचीन मनुष्योंने नियत करदिया है, उनको दिखानेका समय

तस्य कालोऽयमागतः ॥ ४२ ॥ सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयन्
 शिनिपुङ्गव । त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके ॥ ४३ ॥
 यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः । स कार्ये साम्पराये तु
 नियोज्य इति मे मतिः ॥ ४४ ॥ यथा च के श्वो नित्यं पाण्ड-
 वानां परायणम् । तथा त्वमपि बाष्पेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ ४५ ॥
 सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं बोदुमर्हसि । अभिप्रायञ्च मे
 नित्यं न वृथा कर्तुमर्हसि ॥ ४६ ॥ स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरो-
 रपि च संपुगे । कुतः कुच्छे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥ ४७ ॥
 त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयकरः । लोके विख्यायसे
 वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥ ४८ ॥ यो हि शौनेय मित्रार्थे युध्य-
 मानस्त्यजेत्तनुम् । पृथिवीञ्च द्विजातिभ्यो यो दद्यात् स समो

आगया है, ॥ ४२ ॥ हे सात्यके ! हे शिनिपुङ्गव ! मैं सब बोधाओं
 की ओर देखकर विचारता हूँ, तो मुझे तुझसे अधिक कोई मित्र
 नहीं दीखता ॥ ४३ ॥ और मेरा यह विचार है, कि—जो अपने
 से सदा प्रीति रखता हो और सदा अनुकूल रहता हो उसको
 ही आपत्ति पड़ने पर काममें लगाना चाहिये ॥ ४४ ॥ हे वृष्णि-
 पुत्र ! जैसे श्रीकृष्ण पांडवोंके सर्वदा आश्रयदाता है तैसे ही तू
 भी हमारा आश्रय है और तू श्रीकृष्णकी समान ही पराक्रमी
 है ॥ ४५ ॥ अतः मैं तेरे ऊपर एक भार रखना चाहता हूँ,
 आशा है तू उसे स्वीकार करेगा, क्योंकि—तू मेरी बातको कभी
 नहीं टालता है ॥ ४६ ॥ सो हे नरश्रेष्ठ ! तू इस महादुःखदायक
 रणमें अपने बन्धु, मित्र और गुरु अर्जुनकी सहायता कर ॥ ४७ ॥
 हे वीर ! तू सत्यव्रत है, मित्रोंको अभय देनेवाला है और संसार
 में तू अपने कर्मोंसे सत्यवादी प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥ हे शौनेय !
 मित्रके लिये रणमें लड़कर जो शरीरको त्याग देता है और जो
 ब्राह्मणोंके लिये पृथ्वीका दान कर देता है उन दोनोंको एकसा

भवेत् ॥ ४६ ॥ श्रुताश्च बहवोऽस्माभी राजानो ये दिवं गताः ।
 दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥ ५० ॥ एवं
 त्वामपि धर्मात्मन् प्रयाचेऽहं कृतांजलिः । पृथिवीदानतुल्यं स्याद-
 धिकम्वा फलं विभो ॥ ५१ ॥ एक एव सदा कृष्णो
 मित्राणामभयङ्करः । रणे सन्त्यजति प्राणान् द्वितीयस्त्वञ्च
 सात्यके ॥ ५२ ॥ विक्रांतस्य च वीरस्य युद्धे मार्ययतो
 यशः । शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥ ५३ ॥ ईदृशो
 तु परामर्दे वर्त्तमानस्य माधव । त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य
 न विद्यते ॥ ५४ ॥ श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः ।
 मम सञ्जयन् हर्षं पुनः पुनरकीर्त्तयत् ॥ ५५ ॥ लघुहस्तश्चित्रयोधी
 तथा लघुपराक्रमः । प्राशः सर्वास्त्रविच्छूरो मृष्यते न च संयुगे ५६
 महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाहनुः । महाबलो महावीर्यः स

फल मिलता है ॥ ४६ ॥ बहुतसे राजे शास्त्रानुसार सम्पूर्ण
 पृथ्वीका ब्राह्मणोंको दान करके स्वर्गमें गए हैं, ऐसा हमने सुना
 है ॥ ५० ॥ अतः हे धर्मात्मन् ! मैं तुझसे हाथ जोड़कर प्रार्थना
 करता हूँ, कि—तू अर्जुनकी सहायता कर हे प्रभो ! ऐसा करनेसे
 तुझे पृथ्वीदान करनेका पुण्य अथवा उसमें भी अधिक पुण्य
 प्राप्त होगा ॥ ५१ ॥ हे सात्यकि ! एक श्रीकृष्ण ही मित्रोंको
 सदा अभय देते हैं और मित्रोंके लिये रणमें प्राण त्याग सकते
 हैं और ऐसा दूसरा तू है ऐसा तीसरा और कोई नहीं है ॥ ५२ ॥
 वीर पुरुष जब युद्धमें यशको चाहता हुआ लड़ता है, उस समय
 शूरवीर ही उसको सहायता देसकता है, साधारण मनुष्य उसकी
 सहायता नहीं करसकता ॥ ५३ ॥ हे माधव ! यह ऐसा युद्ध चल
 रहा है, कि—तेरे सिवाय दूसरा कोई भी अर्जुनकी रक्षा नहीं कर
 सकेगा ॥ ५४ ॥ अर्जुन भी तेरे सैकड़ों कामोंकी प्रशंसा करके
 मुझे हर्षित करताहुआ बारम्बार कहता था, कि—॥ ५५ ॥

महात्मा महारथः ५७ शिष्यो मम सखा चैव मियोऽस्याहं प्रियश्च मे । युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान् ॥ ५८ ॥ अस्म-
 दर्थञ्च राजेन्द्र सन्नह्येद्यदि केशवः । रामो वाप्यनिरुद्धो वा
 प्रद्युम्नो वा महारथः ॥ ५९ ॥ गदो वा सारणो वापि साम्बो
 वा सह वृष्णिभिः । सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तमसूर्द्धनि ६०
 तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम् । साहाये विनियोच्यामि
 नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः ॥ ६१ ॥ इति द्वैतवने तात मामुवाच
 धनञ्जयः । परोक्षे त्वद्गुणास्तिथ्यान् कथयन्नार्यसंसदि ॥ ६२ ॥
 तस्य त्वमेव सङ्कल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि । धनञ्जयस्य वाष्णेय
 मम भीमस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥ यच्चापि तीर्थानि चरन्नगच्छं

सात्यकि फुरतीसे हाथ चलानेवाला विचित्र प्रकारसे युद्ध करने
 वाला और महापराक्रमी है, वह बुद्धिमान् सब अस्त्रोंको जानता
 है और संग्राममें कभी भी घबड़ाहटमें नहीं पड़ता है ॥ ५६ ॥
 महात्मा सात्यकि महारथी है उसके कंधे, छाती, भुजाएँ और
 ठोड़ी बहुत बड़ी है, उसमें बड़ा वीर्य है, वह महाबली है ॥ ५७ ॥
 वह सात्यकि मेरा शिष्य तथा मित्र है और वह मुझसे प्रेम
 रखता है तथा मैं भी उससे प्रेम रखता हूँ, वह मेरी सहायता कर
 कौरवोंको कुचल डालेगा ॥ ५८ ॥ हे राजेन्द्र ! यदि श्रीकृष्ण,
 बलराम, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न, गद, सारण अथवा वृष्णियों
 सहित साम्ब भी संग्रामके मुहाने पर मेरी सहायता करनेके लिये
 तयार होंगे तो मैं भी नरोंमें वाघकी समान सत्पराक्रमी शनि-
 पुत्र सात्यकिको ही अपनी सहायताके लिये चुनूँगा, क्योंकि—
 उसके समान दूसरा कोई भी मेरा हितकारी नहीं है ५९-६१
 हे तात ! तेरी पीठ पीछे सज्जन-पुरुषोंकी सभामें अर्जुनने तेरे
 इन गुणोंकी मुझसे प्रशंसाकी थी ॥ ६२ ॥ हे वाष्णेय ! मुझे
 आशा है, कि—तुम मेरी, अर्जुनकी, भीमकी तथा नकुल और सहदेव

द्वारकां प्रति । तत्राहमपि ते भक्तिप्रजुर्न प्रति दृष्टवान् ॥ ६४ ॥
 न तत् सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम् । यथा त्वमस्मान् भजसे
 वर्त्तमानानुपसवे ॥ ६५ ॥ सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्या-
 चार्यकस्य च । सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥ ६६ ॥
 सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च । अनुरूपं महेष्वास कर्म
 त्वं कर्तुं मर्हसि ॥ ६७ ॥ सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशिनः ।
 पूर्वमेवानुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥ ६८ ॥ सुमहान्निनद-
 श्वैव श्रूयते विजयं प्रति । स शैनेय जवेनाशु गन्तुमर्हसि मानद ॥ ६९ ॥
 भीमसेनो वयञ्चैव संयताः सहसैनिकाः । द्रोणमाचार्यिण्यामो
 यदि त्वां प्रतियास्यति ॥ ७० ॥ पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमा-

की इच्छाको विफल न करोगे ॥ ६३ ॥ जिस समय मैं तीर्थोंमें
 भ्रमण करता हुआ द्वारकामें पहुँचा था, उस समय भी मैंने
 अर्जुनके ऊपर तेरी प्रगाढ़ भक्ति देखी थी । ६४ ॥ हे सात्यकि !
 युद्धमें खड़े हुए हम लोगोंकी तू जैसी सहायता कर रहा है हे
 सात्यकि ! ऐसा प्रेम मैं किसी दूसरेमें नहीं देखता ॥ ६५ ॥
 हे महाभुज मधुकुलोत्पन्न सात्यकि ! तू जैसे कुत्तमें उत्पन्न हुआ
 है और हमसे जैसी प्रीति, मित्रता रखता है तथा अपने गुरुके
 ऊपर प्रेम रखता है तू अर्जुनमें जैसी सत्यनिष्ठा रखना है इन
 सब बातोंको विचारकर तूफ़ी अपने स्वरूपके अनुसार काम करना
 चाहिये; तू हमारे ऊपर कृपा करके इस कामको कर ६६ — ६७
 द्रोणके कवचवन्धन करने पर दुर्योधन सहसा अर्जुन पर चढ़
 कर गया है, दूसरे महारथी तो पहिलेसे ही तहाँ है ॥ ६८ ॥
 तथा अर्जुनके समीप (शत्रुओंके शंखोंकी) बड़ी भारी ध्वनि भी
 सुनाई दे रही है अतः हे शैनेय ! हे मानद ! तुम्हें तहाँ शीघ्रतासे
 चले जाना चाहिये ॥ ६९ ॥ हम और भीमसेन सैनिकों सहित
 तयार खड़े हैं, यदि द्रोण तेरा सामना करेंगे तो हम उनको रोक

एणानि संयुगे । महान्तञ्च रणे शब्दं दीर्यमाणाश्च भारतीम् ७१
महापास्तवैगेन समुद्रमिव पर्वसु । धार्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सन्य-
साचिना ॥ ७२ ॥ रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह । सैन्यं
रजः समुद्रभूतमेतत् सम्परिवर्त्तते ॥ ७३ ॥ समृतः सिन्धुसौवीरै-
र्नखरभासयोधिभिः । अत्यन्तोपचिनैः शूरैः फाल्गुनः परवी
रहा ॥ ७४ ॥ नैतद्व्रजमसम्भार्य शक्यो जेतुं जयद्रथः । एते हि
सैन्यध्वस्यार्थं सर्वे सन्त्यक्तजीविताः ॥ ७५ ॥ शरशक्तिध्वजवरं
हयनागसमाकुलम् । पर्येतद्धारुणाष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ॥ ७६ ॥
शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शंखशब्दाश्च पुष्कलान् । सिंहनादरवाश्चैव
रथनेमिस्वर्नास्तथा ॥ ७७ ॥ नागानां शृणु शब्दञ्च पत्तीनां च
सहस्रशः । सादिनां द्रवतां चैव शृणु कम्पयतां महीम् ॥ ७८ ॥

लगे ७० हे सात्यकि ! रणमें इन भागती हुई सेनाओंको देख ।
इस कोलाहलको देखाऔर फटतीहुई इस सेनाको भी देख ७१
हे तात ! पूर्णिमाके दिन पवनसे खलभलाते हुए समुद्रकी समान
अर्जुनके द्वारा विचलित हुई इस दुर्योधनकी सेनाको देख ७२
दौडतेहुए रथ हाथी और घोडोंसे सेनामें यह धूल ही धूल
उडरही है ॥ ७३ ॥ प्रतीत होता है कि-कौटिल्य, द्रुपद, कर्ण, धर्मि-
वाले बलमें अत्यन्त बड़े सिन्धु और सौवीर देशोंके वीरोंने
शत्रुनाशक अर्जुनको घेरलिया है ॥ ७४ ॥ ये सब जयद्रथके
लिये प्राण देनेको तयार होगए हैं अतः इन सबोंको जीते बिना
जयद्रथको नहीं जीता जासकता ॥ ७५ ॥ येह बाण, शक्ति,
ध्वजा, पताका, घोड़े और हाथियोंसे गज्जीहुई कौरवोंकी दुरा-
धर्ष सेना खड़ी है, इसकी ओरको तू दृष्टि डाल ॥ ७६ ॥ दुन्दु-
भियोंके दुन्द, शंखोंकी ध्वनि, सिंहगर्जनाकी समान वीरोंकी
गर्जना और रथोंके पहियोंकी घरघराहटका शब्द भी सुन ७७
दौड भागमें पृथ्वीको कँपाते हुए हाथी, पैदल और घुडसवारोंकी

पुरस्तात् सैन्यवानीकं द्रोणानीकञ्च पृथुतः । बहुत्वाद्भि नरव्याघ्र
 देवेन्द्रमपि पीडयेत् ॥ ७६ ॥ अग्न्यन्ते बले मग्ने जहादपि च
 जीवितम् । तस्मिन् च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ॥ ८० ॥
 सर्वथाहमनुपासः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति । श्यामो युवा गुडाकेशो
 दर्शनीयश्च पाण्डवः ॥ ८१ ॥ लघ्वस्त्रंश्चित्रयोधो च प्रविष्टस्तात
 भारगीम् । सूर्योदये महाबाहुर्दिवसरचातिवर्त्तते ॥ ८२ ॥ तन्न
 जानामि वाण्येय यदि जीवति वा न वा । कुरुणाञ्चापि तत्
 सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥ ८३ ॥ एक एव च वोभयपुः प्रविष्टस्तात
 भारतीम् । अविषणां महाबाहुः सुरैरपि महाद्वये ॥ ८४ ॥ न हि मे
 वर्त्तने बुद्धिरद्य युद्धे कथञ्चन । द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीड-

पदध्वनिकी ओर तो कान लगा ७८ इसमें सबसे आगे जय-
 द्रथकी सेना है और उसके पीछेसे द्रोणकी सेना दीख रही है यह
 सेना बहुत बड़ी होनेके कारण इन्द्रको भी पाँड़ित करसकती
 है ॥ ७६ ॥ इस अपार सेनामें मग्न होकर अर्जुन कदाचित् अपने
 प्राण खोवैये यदि वह मारागया तो मुझसा पुरुष कैसे जीसकता
 है ॥ ८० ॥ हे अर्जुन ! तेरे जीते रहतेहुए मैं बड़े कष्टमें पड़
 गया हूँ मेरा अर्जुन शरीरके रङ्गमें साँवला और अवस्थामें
 तरुण है उसके बाल घुँघराले हैं तथा वह दर्शनीय है ॥ ८१ ॥
 हे तात ! फुर्तीसे और विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाला, बड़ी
 भुजाओंवाला मेरा अर्जुन सूर्योदयके समय इस सेनामें घुसा था
 और अब दिन ढलरहा है ॥ ८२ ॥ हे वाण्येय ! मुझे अब यह
 भी पता नहीं, कि—अब वह जीवित है या मरगया और हे तात !
 कौरवोंकी सेना समुद्रकी समान अपार है ॥ ८३ ॥ हे तात !
 देवता भी जिसको न सहसके ऐसी इस महासेनामें महाबाहु
 अर्जुन अकेला ही घुसगया है ॥ ८४ ॥ उसकी चिन्ताके कारण
 आज मेरी बुद्धि ठीक ठिकाने नहीं है, और यह ब्राह्मण द्रोणा-

यते बलम् ॥ ८५ ॥ प्रत्यक्षन्ते महाबाहो यथासौ चरति द्विजः ।
 युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ॥ ८६ ॥ महार्थं लघु-
 संयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद । तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं
 महत् ॥ ८७ ॥ अर्जुनस्य परित्राणं कर्त्तव्यमिति संयुगे । नाहं
 शोचामि दाशार्हं गोप्तारं जगतः पतिम् ॥ ८८ ॥ स हि शक्तो
 रणे तात त्रीन् लोकानपि सङ्गतान् । विजेतुं पुरुषव्याघ्रः सत्यमे-
 तद् ब्रवीमि ते ॥ ८९ ॥ किं पुनर्धार्तराष्ट्रस्य बलमेतत् सुदुर्बलम् ।
 अर्जुनस्त्वेष दार्ष्णेय पीडितो बहुभियुधि ॥ ९० ॥ प्रजह्यात्
 समरे प्राणान् तस्माद्विन्वामि कश्मलम् । तस्य त्वं पदवीं गच्छगच्छे-

चार्य भी क्रोधमें भरके मेरी सेनाको पीडित करतेहुए जैसे रणमें
 घूमरहे हैं, यह भी तू प्रत्यक्ष देखरहा है, जब एकसाथ बहुतसे
 काम आपड़े, उस समय कौनसा काम पहिले करना चाहिये,
 इसका निश्चय करनेमें तू चतुर है ॥ ८५-८६ ॥ हे मानद !
 तुझे ऐसा काम करना चाहिये जो शीघ्रतासे होसके और महत्त्व-
 पूर्ण हो और मुझे तो इन सब कामोंमें रणमें अर्जुनकी रक्षा
 करना ही बड़ा प्रयोजनीय काम प्रतीत होता है, मैं जगत्पति
 श्रीकृष्णकी तो चिन्ता नहीं करता क्यों कि—वह तो दूसरेके भी
 रक्षक हैं ॥ ८७-८८ ॥ हे तात ! तीनों लोक इकट्ठे होकर भी
 उनसे लड़ने आते तो भी वे पुरुषव्याघ्र उनको जीत सकते हैं
 यह बात मैं तुझसे सर्वथा सत्य कहता हूँ ॥ ८९ ॥ फिर इस
 धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी दुर्बल सेनाको जीतलेना उनके लिये कौन
 बात है ? परन्तु हे दार्ष्णेय ! अर्जुन बहुतसे योधाओंसे पीड़ा पाने
 पर मर सकता है, अतः मुझे खेद होरहा है अर्जुन सरीखे पुरुषकी
 सहायताके लिये मुझसरीखे पुरुषकी प्रेरणासे जैसे तुझसरीखे
 पुरुषको सहायता करनेके लिये जाना चाहिये तैसे ही तू जिस
 मार्गसे अर्जुन गया है उस ही मार्गसे उसकी सहायता करनेको

युस्वाहशा यथा ॥ ६१ ॥ तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाभि-
 दितः । रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवानिरथौ स्मृतौ ॥ ६२ ॥ प्रद्युम्नश्च
 महाबाहुस्त्वञ्च सात्वत विश्रुतः । अस्त्रे नारायणसप्तः संकर्षण-
 समो बल ॥ ६३ ॥ वीरतार्या नरव्याघ्र धनञ्जयसमो ह्यसि । भीष्म-
 द्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ॥ ६४ ॥ त्वामेव पुरुषव्याघ्रं
 लोके सन्तः प्रचक्षते । नाशक्यं विद्यते त्वांके सात्यकिरिति माधव ॥ ६५ ॥
 तत्त्वां यदभिवक्ष्यामि तत् कुरुष्व महाबल । सम्भावनां हि लोक-
 स्य मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ६६ ॥ नान्यथा त्वं महाबाहो सम्प्र-
 कर्तुं मिहार्हसि । परित्यज्य प्रियान् प्राणाञ्चरणे चर ह्यभीतवत् ॥ ६७ ॥
 न हि शैनेय दाशार्ह रणे रक्षति जीवितम् । अयुद्धमनवस्थानं
 संग्रामे च पलायनम् ॥ ६८ ॥ भीरूणामसतां मार्गो नैव दाशार्ह-

जा वृष्णिवीरोंमें युद्धके समय आजकल दो पुरुष ही अतिरथी
 गिने जाते हैं, ॥ ६०—६१ ॥ एक तो महाबाहु प्रद्युम्न और हे
 सात्वत ! दूसरा लोक-प्रसिद्ध तू हे नरव्याघ्र ! तू अस्त्रोंके ज्ञानमें
 नारायणकी समान है, बलमें बलरामकी समान है और वीरतामें
 अर्जुनकी समान है और हे सात्यकि ! भीष्म तथा द्रोणको एक
 ओर छोड़कर पुरुषोंमें व्याघ्र समान तथा सब युद्धोंमें कुशल ऐसे
 तेरा नाम लेकर सन्त पुरुष कहते हैं, कि-जगत्में ऐसा कोई काम
 नहीं है जो सात्यकिसे न बनसके ॥ ६३—६४ ॥ अतः हे महा-
 बली ! मैं तुझे जो काम सौंपता हूँ, उस कामको तू कर, मुझे,
 भीमको, नकुलको, सहदेवको अर्जुनको तथा सम्पूर्ण जगत्को
 तेरे कुल शील तथा शास्त्राभ्यास पर पूरा विश्वास है ॥ ६६ ॥
 हे महाबाहो ! हमारे विश्वासके प्रतिकूल तुझे कुछ न करना
 चाहिये, तू अपने प्रिय प्राणोंकी भी परवाह न कर निडर होकर
 रणमें घूम ॥ ६७ ॥ हे शैनेय ! दाशार्ह कुलके पुरुष रणमें आकर
 अपने प्राणोंको बचातेहुए नहीं फिरते हैं, युद्ध न करना अथवा

सेवितः । तवार्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव ॥ ६६ ॥ दासु-
देवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः । कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वा-
महमब्रुवम् ॥ १०० ॥ मावमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्वहम् ।
वासुदेवमतश्चैव मम चैवार्जुनस्य च ॥ १०१ ॥ सत्यमेतन्मयोक्तन्ते
याहि यत्र धनञ्जयः । एतद्वचनमोज्ञाय मम सत्यपराक्रम ॥ १०२ ॥
प्रविशैन्द्रतं तात धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः । प्रविश्य च यथान्यायं
सङ्ग्रस्य च महारथैः । यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय ॥ १०३ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधि-

ष्ठिरवाक्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

सञ्जय उवाच । भीतियुक्तश्च हृद्यञ्च मधुराक्षरमेव च । काल-
युक्तञ्च चित्रञ्च न्याय्यं यच्चापि भाषितम् ॥ १ ॥ धर्मराजस्य

युद्धमें आकर सबहाजाना या भागना, ॥ ६८ ॥ हे दाशार्ह ! ये
डरपोक और दुष्टोंके काम हैं, दाशार्हवंशी पुरुष ऐसे कामोंको
नहीं करते हैं और हे शिनिपुंगव ! धर्मात्मा अर्जुन तेरा गुरु
है ॥ ६६ ॥ और श्रीकृष्ण बुद्धिमान् अर्जुनके तथा तेरे भी गुरु
हैं, इन दोनों कारणोंका विचार करके ही मैंने तुझसे यह बात
कही है ॥ १०० ॥ तुझे मेरे वचनको भी नहीं टालना चाहिये,
क्योंकि-मैं तेरे गुरुका भी गुरु हूँ और मैंने जो बात कही है इसमें
कृष्णका, मेरा और अर्जुनका एक घत है ॥ १०१ ॥ हे सत्य-
पराक्रम ! मैंने तुझसे यह सब बात सत्य ही कही है, अतः तू मेरी
आज्ञा मानकर जहाँ अर्जुन खड़ा हो तहाँ पहुँचजा ॥ १०२ ॥
हे सात्यकी ! तू इस दुर्मति दुर्योधनकी सेनामें प्रवेश कर और
महारथियोंके सामने जाकर रणमें अपने अनुरूप पराक्रम को
दिखा ॥ १०३ ॥ एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११० ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे भरतश्रेष्ठ ! धर्मराजके प्रेम भरे हृदयमें
विचार करने योग्य, समयोचित, न्याययुक्त इस विचित्र कहने

तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः । सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ मनुवाच युधि-
ष्ठिरम् ॥ २ ॥ श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वप्रेतन्मयाञ्छुन । न्याययुक्तञ्च
चित्रञ्च फाल्गुनार्थे यशस्करम् ॥ ३ ॥ एवं विधे तथाकाले मादृशं
मेक्ष्य सम्पतम् । वयत्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थ तथैव माम् ४ न मे
धनञ्जयस्यार्थे प्राणा रक्ष्याः कथञ्चनात्यत्मयुक्तः पुनरहं किं न कुर्यां
महाह्वये प्रलोकत्रयं योभयेयं सदेवासुरमानुषम् । स्वत्मयुक्तो नरेन्द्रेह
किमुतैतत् सुदुर्वलम् ॥ ५ ॥ सुयोधनघलन्त्वद्य योभयिष्ये समन्ततः ।
विजेष्ये च रणे राजन् सत्यमेतद् ववीमि तो ॥ ६ ॥ कुशल्यहं कुशलि-
नं सपासाद्य धनञ्जयम् । हते जयद्रथे राजन् पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ७
अवश्यन्तु मया सर्वं विश्वाप्यस्त्वं नराधिप । वासुदेवस्य यद्वाक्यं

योग्य वचनको सुनकर शिनिपुङ्गव सात्यकिने युधिष्ठिरको उत्तर
दिया, कि- ॥ १ ॥ २ ॥ हे युधिष्ठिर ! आपने जो अर्जुनकी
सहायता करनेके लिये न्याययुक्त, विचित्र और मुझे यश देने
वाली जो बात कही, वह सब मैंने सुनली ॥ ३ ॥ हे राजेन्द्र !
मैं आपके कहनेको नहीं टालूँगा, आपसि पढ़ने पर जैसे आप
अर्जुनसे कहसकते हैं वसी प्रकार मुझे आज्ञा देसकते हैं ॥ ४ ॥
अर्जुनके लिये मैं अपने प्राण तक देदेना उचित समझता हूँ,
फिर जब आप कह रहे हैं तो मैं इस महायुद्धमें कुछ कमी नहीं
करूँगा ॥ ५ ॥ हे राजेन्द्र ! आपकी आज्ञा पाकर मैं देवता, असुर
और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंसेभी लड़सकता हूँ, फिर इस घल-
हीन सेनाकी तो बात ही क्या है ॥ ६ ॥ आज मैं दुर्योधनकी
सेनामें चारों ओर गुड़ करूँगा और हे राजन् ! मैं तुमसे यह
सत्य कहता हूँ, कि-मैं इस सेनाको जीत भी लूँगा ॥ ७ ॥ हे
राजन् ! मैं कुशलपूर्वक, अस्त्रविद्यामें कुशल अर्जुनके पास पहुँच
कर जयद्रथके मारे जानेके अनन्तर आपके पास आऊँगा ॥ ८ ॥
परन्तु हे नराधिप ! बुद्धिमान श्रीकृष्ण और अर्जुनने जो कुछ

फाल्गुनस्य च धीमतः ॥ ६ ॥ दृढन्त्वभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः
 पुनः । मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य श्रृण्वतः ॥ १० ॥ अथ
 माधव राजानमप्रपन्नोऽनुपालय । आर्या युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्नि
 जयद्रथम् ॥ ११ ॥ त्वयि चाहं महाबाहो मयुष्मे वा महारथे ।
 नृपं निनिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥ १२ ॥ जानीपे हि
 रणे द्रोणं कुरुषु श्रेष्ठसम्प्रतम् । प्रतिज्ञातं हि तेनेदं पश्यमानेन वै
 प्रभो १३ ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्पति । शक्तश्चापि रणे
 द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम् १४ एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्त-
 मम् । अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥ १५ ॥ जय-
 द्रथञ्च इत्वाहं द्रुतमेष्यामि माधव । धर्मराजं न चेद् द्रोणो निगृ-
 ह्णीयाद्रणे बलात् ॥ १६ ॥ निग्रहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।

सुभक्ते कहा है, वह सब बातें सुभो आपसे अवश्य कहनी
 चाहियें ॥६॥ अर्जुनने सब सेनाके बीचमें और वासुदेवके सामने
 बारम्बार यह कहा था, कि-हे माधव ! मैं युद्धमें उदारबुद्धिसे
 जयद्रथको मारकर आऊँ तबतक तू सावधान होकर युद्धमें युधि-
 स्थिरकी रक्षा करना ॥१०॥११॥ हे महाबाहो! तेरे अथवा महारथी
 मयुष्मके ऊपर युधिष्ठिरकी रक्षाका भार सौंपकरही मैं निश्चिन्त-
 ताके साथ जयद्रथसे लड़नेको जासकता हूँ ॥१२॥ हे प्रभो ! कौरव
 योधाओंमें श्रेष्ठ द्रोणको तुम जानते ही हो, उन्होंने चारों ओर
 दृष्टि डालकर युधिष्ठिरको जीवित ही पकड़नेकी प्रतिज्ञा की है
 और हे माधव ! रणमें युधिष्ठिरको पकड़नेकी द्रोणमें शक्ति
 भी है ॥१३-१४॥ मैं महाराज युधिष्ठिरको तेरी रक्षामें छोड़कर
 आज जयद्रथके वधके लिये प्रस्थान करता हूँ ॥ १५ ॥ हे माधव !
 यदि रणमें द्रोणाचार्य युधिष्ठिरको बलात्कारसे न पकड़सके
 तो मैं शीघ्र ही जयद्रथको मारकर तेरे पास आजाऊँगा ॥ १६ ॥
 और हे माधव ! यदि द्रोण नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको पकड़ लेंगे तो

सैन्धवस्य वधो न स्मान्ममाप्रीतिस्तथा भवेत् ॥ १७ ॥ एवं गते
 नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि । अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति
 भवेत् पुनः ॥ १८ ॥ सोयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एष भविष्यति ।
 यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निशृङ्गीषाद्युधिष्ठिरम् ॥ १९ ॥ स त्वमद्य
 महाबाहो प्रियार्थं मम माधव । जयार्थञ्च यशोऽर्थञ्च रक्तं राजा-
 नपाहवे ॥ २० ॥ स भवान्मयि नित्यो नित्यतः सव्यसाचिना ।
 भारद्वाजाद्भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो ॥ २१ ॥ तस्यापि च
 महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे । दान्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणो-
 यादृते प्रभो ॥ २२ ॥ माञ्त्रापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः ।
 सोऽहं सम्भावनाञ्चैनामाचार्यवचनन्तु तत् ॥ २३ ॥

मुझसे जयद्रथका वध नहीं हो सकेगा और मैं तेरे ऊपर अमसन्न
 भी होऊँगा ॥ १७ ॥ यदि सत्यवादी पाण्डुपुत्र कैद होगए तो
 फिर हम निश्चय ही वनको चले जायेंगे ॥ १८ ॥ और यदि
 द्रोण युधिष्ठिरको पकड़ लेंगे तो यह मेरी जीत वास्तवमें व्यर्थ
 ही होगी ॥ १९ ॥ अतः हे महाबाहो ! हे माधव ! आज तू विजय
 और यश पानेके लिये तथा मेरी प्रसन्नताके लिये युधिष्ठिरको
 बचाये रखना ॥ २० ॥ हे प्रभो ! द्रोणाचार्यसे सर्वदा विपत्ति आ
 पढ़नेकी शंका रखकर अर्जुनने आपकी रक्षाका भार मुझे सौंपा
 था ॥ २१ ॥ और हे महाराज ! मैं जो द्रोणाचार्यके पराक्रमको
 नित्यप्रति युद्धमें देखता हूँ उससे यह प्रतीत होता है, कि-
 रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नके सिवाय और कोई भी उनके सामने
 नहीं डटसकता ॥ २२ ॥ और वह समझने हैं, कि-मुझमें द्रोणा-
 चार्यका सामना करनेकी शक्ति है अतः मैं अपने गुरुके वचन
 और आशाके विरुद्ध काम कैसे करूँ ? हे राजन् ! मेरे चलेजाने
 पर अभेद्य कवचको पहरेहुए द्रोणाचार्य, फुर्तीसे तुमको पकड़कर
 इसप्रकार ज्वावेंगे, जैसे बालक पक्षीको पकड़कर खेल करता है

पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते । आचार्यो लघुहस्त-
त्वादभेद्यकवंचावृतः ॥ २४ ॥ उपलभ्य रणे क्रीडेयथा शकुनिना
शिशुः । यदि कार्ष्णिणर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः ॥ २५ ॥
तस्मै त्वां विमृजेयं वै स त्वां रक्षेद्यथार्जुनः । कुरु त्वमात्मनो
गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ २६ ॥ यः प्रतीयाद्रणं द्रोणं याव-
द्रक्ष्यामि पाण्डवम् । मा च ते भयमद्यास्तु राजन्नर्जुनसम्भवम् २७
न स जातु महाबाहुर्भारयुधम्य सीदति । ये च सौवीरकाः योधा-
स्तथा सैन्धवगौरवाः ॥ २८ ॥ उदीच्या दक्षिणात्याश्च ये चान्येपि
महोरथाः । ये च कर्णमुखा राजन् रथोदाराः प्रकीर्तिताः ॥ २९ ॥
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । उद्युक्ता पृथिवीं
सर्वा समुरासुरमानुषा ॥ ३० ॥ सराक्षसगणा राजन् सकिन्नर-
महोरगा । जङ्गमा स्थावराः सर्वे नालं पार्थस्य संयुगे ॥ ३१ ॥ एवं

यदि इस समय मकरध्वज धनुषधारी कृष्णपुत्र प्रद्युम्न यहाँ होता
तो मैं तुम्हारी रक्षाका काम उसको सौंप देता और वह अर्जुनकी
समान ही तुम्हारी रक्षा करता, परन्तु अब मेरे चलनेाने पर
तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ? क्या तुम अपनी रक्षाका प्रबन्ध
स्वयं करलोगे ? ॥ २३-२६ ॥ मैं अर्जुनके पास जाऊँ उतने
समय तक रणमें द्रोणके सामने युद्ध करनेवाला कौनसा योधा
है ? हे राजन् ! आज तुम अर्जुनकी ओरसे कोई चिन्ता न
करो २७ हे राजन् ! महाबाहु अर्जुन शत्रुकी ओरके महासङ्कटका
भार लेकर कभी थकते नहीं हैं, ये जो सौवीर और सिंधुदेगके
पुरुष उत्तर और दक्खिनके योधा हैं तथा दूसरे भी जो कर्ण
आदि प्रसिद्ध २ महारथी योद्धा हैं ये सब यदि अर्जुन क्रोधमें
भरजाय तो उसकी सोलहवीं कलाकी बराबर भी नहीं हैं, हे
राजन् ! यदि पृथिवीके राजस, देवता, मनुष्य, दानव, किन्नर
और बड़े २ सर्प भी इकट्ठे होकर अर्जुनको मारनेके लिये खड़े

ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनञ्जये । यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ
 सत्यपराक्रमौ ॥३२॥ न तत्र कर्मणो व्यापत् कथञ्चिदपि विद्यते ।
 दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाहवे ॥ ३३ ॥ कृतज्ञतां दयाञ्चैव
 भ्रातृस्त्वमनुचिन्तय । मयि चाप्यपयाते वै गच्छमानेर्जुनं प्रति ३४
 द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय । आचार्यो हि भृशं
 राजन्निग्रहे तव गृध्यति ॥ ३५ ॥ प्रतिज्ञापात्पनो रत्नन् सत्यां
 कर्तुञ्च भारत । कुरुष्वाद्यात्पनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ३६
 यस्याहं प्रत्ययात् पार्थ गच्छेयं फाल्गुनं प्रति । न ह्यहं त्वां महा-
 राज अभिज्ञिष्य महाहवे ॥ ३७ ॥ कश्चिद्यास्यामि कौरव्य सत्य-
 मेतद् ब्रवीमि ते । एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वरः ॥३८॥

होजायँतो भी चे रणमें अर्जुनका पराजय नहीं करसकते २८-३१
 हे महाराज ! इन सब बातोंको समझ कर आप अर्जुनको चिन्ता
 को छोड़ दीजिये, जहाँ सत्यपराक्रमी महाधनुर्धारी वीर दोनों
 कृष्ण (अर्जुन और कृष्ण) हैं, तहाँ पर काममें कुछ विघ्न नहीं
 पडसकता तुम युद्धमें अपने भाईके देवतापन अस्त्रपारगामीपन,
 क्रोध, शस्त्रज्ञान, कृतज्ञता तथा दयाकी ओर ध्यान कर विचारो
 और हे राजन् ! जब मैं चला जाऊँगा, तब द्रोण युद्धमें अति-
 अद्भुत अस्त्रोंका प्रयोग करेंगे, इसका भी तुम ध्यान दो हे भारत !
 द्रोणाचार्य तुम्हें पकडनेके लिये और अपनी प्रतिज्ञाको पूरी
 करनेके लिये बड़े आतुर होरहे हैं, इन सब बातोंका विचार कर
 तुम अपनी रक्षा करनेका यत्न करो मेरे जाने के पीछे तुम्हारी
 रक्षा कौन करेगा ॥ ३२-३६ ॥ जिसका विश्वास करके मैं
 अर्जुनके पास जाऊँ, हे महाराज ! हे कौरव्य ! मैं तुमसे यह
 सच कहता हूँ, कि-मैं तुम्हारी रक्षाका भार किसीको सौंपे
 बिना नहीं जाऊँगा !!! हे महाबुद्धिमान् राजन् ! इन सब
 बातोंको मनमें अच्छी तरह विचार लो और जो तुम्हें परम-

दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन् प्रशाधि माम् ॥ ६६ ॥ युधि-
ष्ठिर उवाच । एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव । न तु मे
शुध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति पारिव ॥ ४० ॥ करिष्ये परमं यत्न-
मात्मनो रत्नं हृदम् । गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धन-
ञ्जयः ॥ ४१ ॥ आत्मसंरक्षणं संख्ये गमेनञ्चाजुं नम्यति । विचार्य
तत् स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचये ॥ ४२ ॥ स त्वमातिष्ठ
मानाय यत्र यातो धनञ्जयः । ममापि रत्नं भीमः करिष्यति
महाबलः ॥ ४३ ॥ पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः ।
द्रौपदेयारश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ४४ ॥ केकया
भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः । विराटो द्रुपदश्च शिखण्डी
च महारथः ॥ ४५ ॥ धृष्टकेतुश्च बलवान् कुन्तिभोजश्च मातुलः ।

कन्यायाँकारी प्रतीत हो उसकी मुझे आज्ञा दो ॥ ३७-३६ ॥
युधिष्ठिरने प्रत्युत्तर दिया, कि-हे महाबाहु सात्यके ! जो तुम
कहते हो वह सब बात ठीक है, तब भी हे तात ! अर्जुनके लिये
मेरा चित्त निश्चिन्त नहीं होता ॥ ४० ॥ मैं अपनी रक्षाके लिये
अपने आप ही प्रयत्न करूँगा और मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि-
तुम जहाँ अर्जुन हो तहाँ शीघ्र ही जाओ ॥ ४१ ॥ मैंने अपनी बुद्धिके
साथ विचार किया कि-सात्यकिको अपने पास रखना ठीक है
अथवा उसको अर्जुनके पास भेजना ठीक है ? तो मुझे अर्जुनके
पास भेजना ही अधिक उचित प्रतीत हुआ ॥ ४२ ॥ अतः अब
तु खड़ा न रहे और जहाँ अर्जुन हो तहाँ शीघ्रतासे पहुँच जा,
और मेरी रक्षा महाबली भीमसेन करलेगा ॥ ४३ ॥ तथा
हे तात ! भाई सहित धृष्टद्युम्न, अन्य महाबली राजे तथा द्रौपदी
के पाँचों पुत्र मेरी रक्षा अच्छी तरह करलेंगे ॥ ४४ ॥ हे तात !
पाँचों केकय भाई, राक्षस घटोत्कच, राजा विराट और द्रुपद,
तथा महारथी शिखण्डी, बली धृष्टकेतु और मामा कुन्तिभोज

नकुलः सहदेवश्च पञ्चालाः मृज्जयास्तथा ॥ ४६ ॥ एते समा-
हितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः । न द्रोणः सह सैन्येन कृत-
वर्मा च संयुगे ॥ ४७ ॥ समासादयितुं शक्यो न च मां धर्मयि-
ष्यति । धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परन्तपः ॥ ४८ ॥ वारयि-
ष्यति विक्रम्य वेलेन मकरालयम् । यत्र स्यात्स्यति संग्रामे पार्षतः
परवीरहा ॥ ४९ ॥ द्रोणो न सैन्यं चलवत् क्रामेत्तत्र कथञ्चन ।
एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुनाशनात् ॥ ५० ॥ कवचो सशरी
खड्गो धनुर्वी च धनुषणः । विश्रब्धं गच्छ शौनेयमाकार्पिर्मयि
सम्भ्रमम् ॥ धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जपद्रव्यवधपर्वणि युधिष्ठिर-

सात्यकिवाक्ये एकदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

सञ्जय उवाच । धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
स पार्थाङ्गपमाशंसन् परित्यागान्महीपतेः ॥ १ ॥ अपवादं

नकुल सहदेव और सृज्जयोंसहित पांचाल ये सब सावधान होकर
मेरी रक्षा करेंगे, द्रोण और कृतवर्मा सेनासहित चढ आवेंगे तो
भी वे मुझे कैद नहीं कर सकेंगे, रणमें क्रोधमें भरेहुए द्रोणको
धृष्टद्युम्न इसप्रकार रोकदेगा जैसे किनारा समुद्रको रोक लेता है
वीर शत्रुओंका नाश करनेवाला धृष्टद्युम्न जहाँ पर खड़ा होगा,
तहाँ द्रोणाचार्य सेनाको बलात्कारसे नहीं हरा सकेंगे क्या तुम
यह बात भूलगए, कि—यह कवच, बाण, खड्ग, धनुष और
श्रेष्ठ आभूषणोंको धारण कियेहुए द्रोणका नाश करनेके लिये
अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ था, अतः हे शौनेय ! तुम (इन सबके
ऊपर) विश्वास रखकर अर्जुनके पास जाओ और मेरे लिये
जरा भी मत घबड़ाओ धृष्टद्युम्न क्रोधमें भरेहुए द्रोणको रोक
रेहेगा ॥ ४४-५१ ॥ एकसौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! धर्मराजके बचन सुन

हात्मनश्च लोकात् पश्यन् विशेषतः । ते मां भीतमिति ब्रूयुरयां तं
 फाल्गुनम्पति ॥ २ ॥ निश्चित्य बहुष्वैवं स सात्यकियुद्धदुर्मदः ।
 धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥ कृताञ्चेन्मेन्यसे
 रक्षां स्वस्ति तेस्तु - विशाम्पते । अनुयास्यामि वीभत्सुं करिष्ये
 वचनं तव ॥४॥ न हि मे पाण्डवात् कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
 यो मे प्रियतरो राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ५ ॥ तस्याहं पदवीं
 यास्ये सन्देशात्तव मानद । त्वत्कृते न च मे किञ्चिदकर्तव्यं
 कथञ्चन ॥ ६ ॥ यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदाम्बर ।
 तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥ ७ ॥ प्रिये हि तव वर्तते
 आतरौ कृष्णपाण्डवौ । तयोः प्रिये स्थितञ्चैव विद्धि मां राजपु-
 ङ्गव ॥ ८ ॥ तवाज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्धमहं प्रभो । मित्वेदं

कर सात्यकि अपने मनमें विचारनेलगा, कि-यदि मैं धर्मराजको
 छोड़कर चलाजाऊँगा तो मुझसे अर्जुन अपसन्न हो जायँगे । १।
 और यदि मैं अर्जुनकी सहायताके लिए नहीं जाऊँगा तो लोग
 मुझे ढरपोक कहेंगे तथा संसारमें मेरी निन्दा होगी॥२-३॥तब उस
 ने कहा कि-हे राजन ! यदि तू प्रसन्न हो, कि-मेरी रक्षाका
 प्रबन्ध होगया, तो हे राजन ! तुम्हारा कल्याण हो मैं आपकी
 आज्ञानुसार जहाँ अर्जुन होंगे तहाँ जाता हूँ॥४॥हे राजन ! यह
 मैं आपसे सत्य कहता हूँ, कि-तीनों लोकोंमें मुझे अर्जुनसे
 अधिक कोई प्यारा नहीं है ॥ ५ ॥ हे मानद ! आपकी आज्ञासे
 मैं जहाँ अर्जुन हैं तहाँ जाता हूँ, आपके लिये कैसा ही काम
 क्यों न हो मैं निषेध नहीं करसकता ॥ ६ ॥ क्योंकि-हे मनुज-
 श्रेष्ठ ! जैसे अर्जुनका वाक्य मेरे लिये मान्य है तैसे ही आप
 का वाक्य मुझे उससे भी अधिक मान्य है ॥ ७ ॥ हे राज-
 पुङ्गव ! श्रीकृष्ण और अर्जुन ये दोनों भाई तुम्हारे हितमें लगे
 रहते हैं और आप मुझे इन दोनोंके हितमें लगाहुआ जानिये-

दुर्भिक्षं सैन्यं प्रयास्ये नरपुङ्गव ॥ ६ ॥ द्रोणानीकं विशाम्येष
 क्रुद्धो भूप इवार्णवम् । तत्र यास्यामि यत्रासी राजन् राजा जय-
 द्रथः ॥ १० ॥ यत्र सेना समाश्रित्य भीतस्तिष्ठति पाण्डवात् ।
 युतो रथवरश्रेष्ठैर्द्रोणिकर्णकृपादिभिः ॥ ११ ॥ इतस्त्रियोजनं मन्ये
 तमध्वानं विशाम्यते । यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः १२
 त्रियोजनगतस्यापि तस्य यास्याम्यहं पदम् । आसैन्यववधाद्राजन्
 सुदृढेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥ अनादिष्टु गुरुणा को न युध्येत
 मानवः । आदिष्टु यथा राजन् को न युध्येत मादृशः ॥ १४ ॥
 अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो । हतशक्तिगदाप्रास-
 चर्मखड्गघ्नितोमरम् ॥ १५ ॥ इष्वस्त्रतरसंवाधं क्षोभयिष्ये वला-

हे प्रभो ! अर्जुनके लिये दीहुई आपकी आज्ञाको शिरोधार्य
 करके हे नरपुङ्गव ! इस दुर्भेद्य सेनाको भेद कर मैं अर्जुनके
 पास जाऊँगा ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जैसे नाका समुद्रमें प्रवेश
 करता है, तैसे ही मैं द्रोणकी सेनामें प्रवेश करके जहाँ जयद्रथ
 होगा तहाँ पहुँच जाऊँगा ॥ १० ॥ जहाँ अर्जुनसे हराहुआ
 जयद्रथ श्रेष्ठ रथी अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्यकी रक्षामें
 खड़ा होगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! मैं समझता हूँ कि—वह स्थान
 यहाँसे वारह कोस है और जहाँ अर्जुन जयद्रथको मारनेके लिये
 खड़ा है, वह स्थान भी वारह कोस ही है, तब भी मैं अपने
 मनको अत्यन्त दृढ़ करके जयद्रथके मारेजानेसे पहिले ही अर्जुन
 के पास पहुँच जाऊँगा ॥ १२-१३ ॥ हे राजन् ! ऐसा कौन
 मनुष्य होगा जो गुरुकी आज्ञाके बिना युद्ध करेगा ? तथा गुरुकी
 आज्ञा पाने पर मुझसरीखा कौनसा मनुष्य युद्ध न करेगा १४
 हे राजन् ! मुझे जहाँ जाना है उस स्थानको मैं भलीप्रकार
 जानता हूँ, मैं तहाँ जाकर हत, शक्ति, गदा, प्रास, दाल, तल-
 वार, शृष्टि, तोमर, बाण तथा अन्यप्रकारके अस्त्रोंसे भरेहुए

र्णवम् । यदेतत् कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ॥ १६ ॥ कुलपां-
जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः । आस्थिता बहुभिस्त्रैल्ययुद्ध-
शौण्डैः प्रहारिभिः ॥ १७ ॥ नागा मेघनिभा राजन् चरन्त इव
तोयदाः । नैते जातु निवर्त्तेरन् प्रेषिता हस्तिसादिभिः ॥ १८ ॥
अन्यत्र हि वधादेशां नास्ति राजन् पराजयः । अथ यान्त्रयिनो
राजन् सहस्रमनुपश्यसि ॥ १९ ॥ एते स्वमरथा नाम राजपुत्रा
प्रहारयाः । रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशाम्पते ॥ २० ॥
धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः । गदायुद्धविशेषज्ञा
नियुद्धकुशलास्तथा ॥ २१ ॥ खड्गप्रहरणे युक्ताः सम्पाते चासि-
चर्पणोः । शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ॥ २२ ॥ नित्यं

सेनासागरको अपने पराक्रमसे हिलोड डालूँगा, हे राजन् ! तुम
जो इस खड़ी हुई सहस्रों हाथियोंकी सेनाको देख रहे हो १५-१६
इस सेनामेंके हाथी अंजन जातिके और बड़े पराक्रमी हैं, इनके
शरीर मेघोंकी समान हैं तथा ये मेघोंकी समान मद टपका रहे हैं
जब इनके ऊपर बैठे हुए युद्धकुशल, प्रहार करनेवाले अनेकों
स्त्रैल्यहाथीवान् इनको बढावेगे तब ये किसीप्रकार भी पीछेको नहीं
लौटेंगे ॥ १७-१८ ॥ हे राजन् ! ये रणमें मारे भले ही जायँ,
परन्तु हारकर पीछेको नहीं हटेंगे तथा हे राजन् ! तुम जो इन
सामने खड़े सहस्रों रथियोंको देखते हो ॥ १९ ॥ ये सब महा-
रथी राजकुमार सुवर्णके रथोंमें बैठे हैं, अस्त्र छोड़ने तथा रथ
और हाथियों पर चढ़नेमें निपुण हैं ॥ २० ॥ धनुर्वेदके पारङ्गत
मुष्टियुद्धमें चतुर और गदायुद्धकी विशेष बातोंको जानते हैं, मल्ल-
युद्ध खड्गयुद्ध, असियुद्ध, ढालका युद्ध और संपातयुद्धमें भी ये बड़े
चतुर हैं और इन शूर वीरोंने पूर्ण विद्या पढ़ी है तथा ये परस्पर
स्पर्धा रखते हैं ॥ २१—२२ ॥ हे राजन् ! ये वीर सदा ही
समरमें मनुष्योंको जीतना चाहते हैं हे राजन् ! इनको कर्णने

हि सपरे राजन् विजिगीषन्ति मानवान् । कर्णेन विहिता राजन्
 दुःशासनमनुव्रताः ॥ २३ ॥ एतास्तु वामुदेवोऽपि रथोदारान्
 प्रशंसति । सततं प्रियकामारच कर्णस्यैते वशे स्थिताः ॥ २४ ॥
 तस्यैव वचनाद्वाजनं निवृत्ताः श्वेतवाहनात् । तेन क्लान्ता न च
 श्रान्ता दृढावरणकामुकाः ॥ २५ ॥ मदर्थे धिष्ठिता नूनं धार्तरा-
 ष्टस्य शासनात् । एतान् प्रपथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ॥ २६ ॥
 प्रयास्यामि ततः पश्चात् पदवीं सव्यसाचिनः । यास्त्वेतान्परां
 राजन् नागान् सप्तशतानिपान् २७ प्रेतसे चर्मसंघ्नान् किरातैः सम-
 धिष्ठितान् । किरातराजो यान् प्रादाद् द्विरदान् सव्यसाचिनः २८
 स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्ठ्यानिच्छन् जीवितपात्नः । आसन्नेते पुरा राज-
 स्तव कर्मकरा दृढम् ॥ २९ ॥ त्वामेवाद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य

अस्त्रविद्यामें निपुण बनाकर तयार किया है और ये दुःशासनके
 शासनमें चलते हैं ॥ २३ ॥ इन रथियोंमें श्रेष्ठ वीरोंकी श्रीकृष्ण
 भी सराहना करते हैं और ये राजकुमार सदा कर्णका हित
 चाहते हैं तथा उसके वशमें रहते हैं ॥ २४ ॥ तथा ये कर्णके
 कहनेसे ही अर्जुनसे नहीं लड़े हैं इस लिये दृढ़ कवच और
 धनुष धारण करनेवाले राजकुमार जरा भी नहीं थके हैं तथा
 जरा भी घबड़ाए हुए नहीं हैं ॥ २५ ॥ परन्तु हे राजन् ! धृत-
 राष्ट्रके पुत्रकी आज्ञासे ये सब तयार होकर मुझसे लड़नेको खड़े
 हैं, हे कौरव ! मैं आपका हित करनेके लिये पहिले इनको नष्ट
 करूँगा फिर अर्जुनकी ओरको जाऊँगा, हे राजन् ! और तुम
 जिन सजे हुए तथा कवचधारी और जिनके ऊपर भील चढ़े
 हुए हैं ऐसे सात सौ हाथियोंको देख रहे हो ये वे हैं कि-जब
 एक समय किरातराजके प्राण संकटमें आरहे थे तब अपने
 प्राणोंको बचानेकी इच्छासे उसने सेवकों सहित अर्जुनको भेंटमें
 दिए थे, और हे राजन् ! ये पहले तुम्हारा काम काज करते थे,

पर्ययम् । एषामेते महाभात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ॥ ३० ॥ हस्ति-
 शिखाविदम्बैश्च सर्वे चैवाग्नियोनयः । एते विनिर्जिताः सैल्ये
 संग्रामे सङ्घसाजिना ॥ ३१ ॥ मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः ।
 एतान् हत्वा शरैः राजन् किरातान् युद्धदुर्मदान् ॥ ३२ ॥ सैन्ध-
 वस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम् । ये त्वेते सुमहानागा अञ्ज-
 नस्य कुलोद्भवाः ॥ ३३ ॥ कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटा-
 मुखाः । जाम्बूनदमयैः सर्वैर्वर्षभिः सुविभूषिताः ॥ ३४ ॥ लब्ध-
 लक्ष्णा रणे राजन्नैरावृतसमा युधि । उत्तरात् पर्वतादेते तीक्ष्णौर्ध-
 स्युभिरास्थिताः ॥ ३५ ॥ कर्कशैः पर्वरैर्योधैः काष्ण्यासतनुच्छदैः ।
 सन्ति गोयोनयश्चात्र सन्ति वानरयोनयः ॥ ३६ ॥ अनेकयो-
 नश्चान्ये तथा मानुषयोनयः । अनीकं समवेतानां धूमवर्णमुदी-

परन्तु समयके उलटफेरको देखिये, वे ही आज तुम्हारे सामने
 लड़नेको खड़े हैं, इन हाथियोंके हाथीवान्, युद्धदुर्मद हस्तिविद्याके
 जाननेवाले और अग्निवंशी हैं, इनको रणमें जीतना कठिन है,
 परन्तु अर्जुनने इनको संग्राममें जीतलिया था ॥ ३०-३१ ॥ तो भी ये
 दुर्योधनके अधीन होनेके कारण मेरे सामने लड़नेको खड़े हैं इस
 लिये हे राजन् ! मैं इन युद्धदुर्मद किरातोंको बाणोंसे मारकर, जय-
 द्रथके वधमें लगे हुए अर्जुनके पास जाऊँगा, हे राजन् ! ये अञ्जनके
 कुलमें उत्पन्न हुए हाथी बड़े इठीले और सिखाये हुए हैं, इनके मुख
 और गंडस्थलोंमेंसे मद टपकता रहता है, इन सबोंके ऊपर सुवर्ण
 के कवच शोभा दे रहे हैं, ये अपने २ निशाने पर शीघ्र ही पहुँच
 जाते हैं तथा वे संग्राममें ऐरावत हाथीकी समान हैं, इनके ऊपर
 हिमालय पर्वतसे आए हुए दस्युजातिके उग्र स्वभाववाले, कठोर,
 लोहेके कर्चोंको पहरे बड़े २ योधा बैठे हैं, इनमेंसे बहुतसे
 गौओंसे और बहुतसे बन्दरियोंसे कितने ही वर्णसङ्करोंमें तथा
 कितने ही मनुष्य स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए हैं, हिमालय पर रहनेवाले

यते ॥ ३७ ॥ म्लेच्छानां पापकर्तृणां हिमदुर्गनिवासिनाम् ।
एतद् दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं राजमण्डलम् ॥ ३८ ॥ कृपञ्च
सौमदक्षि च द्रोणं च रथिनां वरम् । सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत
पांडवान् ॥ ३९ ॥ कृतार्थमथ चात्मानं मन्यते कालचोदितः । ते तु
सर्वेऽथ सम्प्राप्ता मम नाराचगोचरम् ॥ ४० ॥ न विमोक्षयन्ति
कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः । तेन सम्भाविता नित्यं परवीर्योप-
जीविना ॥ ४१ ॥ विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरीरानिपीडिताः ।
ये त्वेते रथिनो राजन् दृश्यन्ते कांचनध्वजाः ॥ ४२ ॥ एते दुर्वा-
रणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः । शूराश्च कृतविद्याश्च धनु-
र्वेदे च निष्ठिताः ॥ ४३ ॥ संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्मस्य हितै-
पिणः । अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्तराष्ट्रस्य भारत ॥ ४४ ॥

इकट्ठे हुए इन पापी म्लेच्छोंकी सेना घुएँके रङ्गकीसी दीखती है,
कालके वशमें हुए दुर्योधनने इस सम्पूर्ण राजमण्डलको इकट्ठा
किया है तथा कृपाचार्य, सौमदक्षका पुत्र बान्हीक, महारथी द्रोण,
जयद्रथ और कर्णको इकट्ठा कर पांडवोंको तिरस्कार करता हुआ
वह अपनेको कृतार्थ मानता है हे कौन्तेय ! ये सब मनकी समान
वेगवाले होंगे तो भी मेरे धार्योंके सामने आकर जीते नहीं बचेंगे
दूसरेके बलपर कूदनेवाले दुर्योधनके वडावा दिये हुए ये सब यदि
रणको छोडकर नहीं भागे तो मेरे धार्योंकी बर्षासे पीडित होकर
नष्ट होजायेंगे और हे राजन् ! ये जो सुवर्णकी ध्वजावाले रथी
दीखरहे हैं ॥ ३२-४२ ॥ आपने कदाचित् सुना हो तो इन कठि-
नतासे पीछेको हटायेजाने योग्य योधाओंका नाम काम्बोज है,
ये शूरवीर विद्यामें कुशल और धनुर्वेदके पारङ्गत हैं, ये बहुत ही
मिले जुले रहते हैं और एक दूसरेका भला चाहते हैं, और
हे भारत ! कौरववीरोंकी अधीनतामें रहनेवाली क्रोधमें भरीहुई
दुर्योधनकी अक्षौहिणी सेनाएं भी मेरे लिये तयार खड़ी हैं हे

यथा मदर्थे तिष्ठन्ति कृत्स्नीराभिरक्षिताः । अममत्ता महाराज मायेव
प्रत्युपस्थिताः ॥ ४५ ॥ तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः ।
तस्मात् सर्वानुपासंगान्सर्वोपकरणानि च ॥ ४६ ॥ रथे कुर्वन्तु मे
राजन् यथावेदथ कल्पकाः । तस्मिस्तु किल सम्मर्दे ग्राह्यं विविध-
मायुधम् ॥ ४७ ॥ यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः ।
काम्बोजैर्द्वि समेष्ट्यामि तीक्ष्णैराशीविषोप्रमैः ॥ ४८ ॥ नानाशस्त्र-
समाचार्यैर्विविधायुधयोधिभिः । किरातैश्च समेष्ट्यामि विषकल्पैः
प्रहारिभिः ॥ ४९ ॥ लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः ।
शकैश्चापि समेष्ट्यामि शक्तुल्यपराक्रमैः ॥ ५० ॥ अग्निकल्पैर्दु-
राधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः । तथान्यैर्विविधैर्योधिः कालकल्पैर्दुरा-
सदैः ॥ ५१ ॥ समेष्ट्यामि रणे राजन् बहुभिर्युद्धदुर्मदैः । तस्माद्दे

राजन् ! ये सेनाएँ सावधान हो मेरी ओरको बढ़ती ही चली
आरही हैं ॥ ४३-४५ ॥ जैसे अग्नि तिनकोंको जलाढालता है
तैसे ही मैं इन सबोंको भस्म करडालूँगा, हे राजन् ! इसलिये
रथको तैयार करनेवाले मेरे रथमें बाणोंसे भरेहुए बहुतसे भाथों
को तथा दूसरी सब सामग्रीओ मेरे रथमें रखते, इस युद्धमें नाना
प्रकारके आयुधोंको अवश्य लेना चाहिये ॥ ४६-४७ ॥ आचार्योंके
उपदेशके अनुसार इस समय रथमें पञ्चगुनी सामग्री रखनी चाहिये
मैं जहरीले सपोंकी समान बाणोंसे काम्बोजोंके साथ युद्ध
करूँगा ॥ ४८ ॥ और मैं नाना प्रकारके शस्त्रोंके समूह रखने
वाले तथा नानाप्रकारके आयुधोंसे लड़नेवाले तथा विषकी समान
प्रहार करनेवाले किरातोंसे मुचेटा लूँगा ॥ ४९ ॥ सर्वदा दुर्यो-
धनसे लालित पालित होते रहनेवाले, दुर्योधनका हित चाहनेवाले
इन्द्रकी समान पराक्रमी शकोंके साथ भी मैं युद्ध करूँगा ॥ ५० ॥
तथा हे राजन् ! अग्नि की समान तीक्ष्ण दुराधर्ष, अग्निकी समान
जलतेहुए कालकी समान क्रूर और भी बहुतसे दुरासद योधा-

वाजिनो मुख्या विश्रुताः शुभलक्षणाः ॥५२॥ उपावृत्ताश्च पीताश्च
पुनर्युज्यन्तु मे रथे । सञ्जय उवाच । तस्य सर्वानुपासकान् सर्वो-
पकरणानि च ५३ ॥ रथे चास्थापयद्वाजा शस्त्राणि विविधानि
च । ततस्तान् सर्वतो युक्तान् सदृशाश्चतुरो जनाः ॥५४॥ रसवत्
पायथामासुः पानं मदसमीरणम् । पीतोपवृत्तान् स्नातांश्च जग्धा-
न्नान् समलंकृतान् ॥५५॥ विनीतशन्यास्तुरगाश्चतुरो हेममालिनः ।
तान्युक्तान्त्वक्पवर्णामान् विनीतान् शीघ्रगामिनः ॥ ५६ ॥ संहृष्ट-
मनसोऽव्यग्रान् विधिवत् फलिताम्रये । महाध्वजेन सिंहेन हेम-
केसरमालिना ॥ ५७ ॥ संयुते केनुरैर्हैमैर्मणिधिद्रुतमचिप्रितैः ।
पाण्डुराभ्रपकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥ ५८ ॥ हेमदण्डोच्छ्रि-
तच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे । योनयामास विधिवद्धेमपाण्डविभूषि-

ओंसे तथा युद्धभूमि में बहुतसे घोड़ाओंसे रथमें लट्ठगा, इस
लिये मुख्य २ प्रसिद्ध, शुभ लक्षणोंवाले घोड़ोंको घास खिला
कर और पानी पिलाकर धीरे रथमें जोड़ो, सञ्जयने कहा, कि-
हे धृतराष्ट्र ! उस ही समय राजा युधिष्ठिरने सात्यकिके रथमें
भाथे तथा सब सामान और नानाप्रकारके शस्त्र रखवादिये और
चार मनुष्योंने सब प्रकारसे समर्थ चार श्रेष्ठ घोड़ोंको मद उप-
जानेवाला मादक पानी पिलाया, तदनन्तर न्हायाये हुए और
पानी पीकर तथा घास खाकर तृप्त हुए, गहनोंसे सजेहुए धाव-
रहित, सुवर्णके हार हमेलें पहिरनेवाले, सुनहरी रङ्गके सीखेहुए तेज
चालके प्रसन्न मनवाले उन चञ्चल घोड़ोंको रथमें जोड़ा उस
रथमें सुवर्णके हार लटक रहे थे, सिंहकी मूर्ति बनीहुई थी, भारी
ध्वजा लगरही थी और उसमें मणि मूँगे जड़ेहुए थे, सुवर्णकी
लट्ठ लटक रहीं थी और वह रथ श्वेत घादलोंकी समान प्रकाश
वाली भगिडियोंसे अलंकृत होरहा था, उस सुवर्णके मोटे दण्ड
की ध्वजावाले और बहुतसे शस्त्रोंसे भरेहुए रथमें दारुकके छोटे

तान् ॥ ५६ ॥ दारुकस्यानुजो भ्राता सुनस्तस्य प्रियः सखा ।
न्यवेदयद्रथे युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥ ६० ॥ ततः स्नातः
शुचिभूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः । स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्का-
नयो ददौ ॥ ६१ ॥ आशीर्वादैः परिष्वक्तः सात्यकिः श्रीमतां वरः ।
ततः समधुपर्कहः पीत्वा कैलातकं मधु ॥ ६२ ॥ लोहिताक्षो बभौ
तत्र मदबिहललोचनः । आलभ्य वीरर्कास्यञ्च हर्षेण महता-
न्वितः ॥ ६३ ॥ द्विगुणीकृततेजा हि मज्ज्वलन्निव पावकः । उत्संगे
धनुरादाय सशरं रथिनाम्बरः ॥ ६४ ॥ कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः
कवची समलंकृतः । लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः कन्याभिश्चाभिन-
न्दितः ॥ ६५ ॥ युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः । तेन

माई और सात्यकिके प्रियमित्र, उसके सारथीने सुवर्णके आभू-
षणोंसे सजेहुए और शिक्षित घोड़ोंको विधिपूर्वक जोतकर उस
ठीक कियेहुए रथको सात्यकिकी सेवामें इसप्रकार उपस्थित
किया, जैसे मातलि इन्द्रकी सेवामें उपस्थित करता है ॥ ५१-६० ॥
तदनन्तर सात्यकिने स्नान करके पवित्र हो मंगलकर्म किया, फिर
सहस्र स्नातकोंको सुवर्णके सिक्के दिये ॥ ६१ ॥ श्रीमानोंमें श्रेष्ठ
सात्यकिको ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया, तदनन्तर मधुपर्कके
योग्य सात्यकिने किरातदेशकी मदिराका पान किया, इससे
उसके नेत्र बिहल तथा लाल हो गए और वह द्विगुणित तेजस्वी
तथा अग्निकी समान प्रकाशित दीखने लगा, वह बड़े हर्षमें भर गया
और उसने मांगलिक दर्पणको स्पर्श करके उसमें अपना मुख
देखा तदनन्तर ब्राह्मणोंके स्वस्तिवाचनको सुनताहुआ और
और कन्याओंकी खिलें, मुगन्धित द्रव्य और पुष्पोंसे
अभिनन्दन पाताहुआ, रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि हाथ जोड़ेहुए
युधिष्ठिरके पास पहुँचा और उनके चरणोंको प्रणाम किया
युधिष्ठिरने उसके मस्तकको सूँघा तब बाण और धनुषको गोदमें

मूर्धन्युपाघ्रात आचरोह महारथम् ॥ ६६ ॥ ततस्ते वाजिनो दृष्टाः
 युपुष्टा वातरंहसः । अजय्या जैत्रमूहुस्तं विजुर्वाणाः स्म सैधवाः ६७
 तथैव भीमसेनोपि धर्मराजेन पूजितः । प्रायात् सात्यकिना सार्द्ध-
 मभिवाद्य युधिष्ठिरम् ॥ ६८ ॥ तौ दृष्ट्वा प्रविषिच्छन्तौ तव सेनाम-
 रिन्दमौ । संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः ॥ ६९ ॥
 सन्नद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः । अभिनन्द्याब्रवीद्दीर-
 स्तदा हर्षकरं वचः ॥ ७० ॥ त्वं भीम रक्ष राजानमेतत्कार्यतमं हि
 ते । अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम् ॥ ७१ ॥ आय-
 त्वाञ्च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोभिरक्षणम् । जानीषे मम वीर्यं त्वं
 तव चाहमरिन्दम ॥ ७२ ॥ तस्माद्भीम निवर्त्तस्व मम चेदिच्छसि

रत्नकर बड़ेभारी रथपर सवार होगया ॥ ६२-६६ ॥ तुरन्त ही
 पवनकी समान वेगवान् दृष्ट पुष्ट अजेय सिन्धुदेशी घोड़े उसके
 जयशील रथको खँचनेलगे ॥ ६७ ॥ इसीप्रकार भीमसेन भी
 युधिष्ठिरको प्रणाम कर और उनसे सत्कार पाकर सात्यकिके
 साथ चलदिया ॥ ६८ ॥ उन दोनों शत्रुनाशकोंको तुम्हारी
 सेनामें प्रवेश करनेके इच्छुक देख द्रोण आदि तुम्हारे योधा
 तयार होगए ॥ ६९ ॥ परन्तु महावीर सात्यकि कवच आदि पहिर
 युद्धकी तयारी कियेहुए भीमसेनको अपने पीछे आताहुआ देख
 हर्षसे पुलकित हो उसको अभिनन्दन दे यह हर्षजनक बात कहने
 लगा, कि— ॥ ७० ॥ हे वीर ! तुम राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो
 यह काम तुम्हें और सब कामोंसे बढ़कर सम्भूतना चाहिये और
 मैं इस कालसे प्रकीर्ण सेनाकी पंक्तिको तोड़कर इसके भीतर
 घुम्नूँगा ॥ ७१ ॥ वर्तमान और भविष्यत् दोनों समयमें राजाकी
 रक्षा करना अच्छा है हे अरिन्दम ! मैं तुम्हारे पराक्रमको जानता
 हूँ, और तुम भी मेरे पराक्रमको जानते हो ॥ ७२ ॥ इसलिये
 हे भीम ! यदि तुम मेरा प्रिय काम करना चाहते हो तो लौट

प्रियम् । तथोक्तः सात्यकिं प्राहः ब्रज त्वं कार्यसिद्धये ॥ ७३ ॥
 अहं राशः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम । एवमुक्तः प्रत्युवाच भीम-
 सेनं स माधवः ॥ ७४ ॥ गच्छ गच्छ ध्रुवं पार्थ । ध्रुवो हि विजयो
 मम । यन्मे गुणानुरक्तश्च त्वमद्य वशमास्थितः ॥ ७५ ॥ निमित्तानि
 च धन्यानि यथा भीम वदन्ति माम् । निहते सैन्धवे पापे पांडवेन
 महात्मना ॥ ७६ ॥ परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठि-
 रम् । एतावदुक्ता भीमन्तु विसृज्य च महायशाः । सम्प्रेतत्तावकं
 सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ॥ ७७ ॥ तं दृष्ट्वा प्रविबिक्षन्तं सैन्यं तव
 जनाधिप । भूय एवाभवन्मूढं सुभृशं चाप्यकम्पता ॥ ७८ ॥ ततः प्रयातः
 सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः । दिदृक्षुरर्जुनं राजन् धर्मराजस्य
 शासनात् ॥ ८० ॥ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

जाओ, सात्यकिके ऐसा कहने पर भीमसेनने उच्चरदिया, कि-
 हे पुरुषसत्तम! मैं राजाकी रक्षाकरूँगा और तुम काम सिद्ध करने
 के लिये जाओ, जब भीमसेनने ऐसा कहा तब सात्यकिने भीम-
 सेनसे फिर कहा, कि ७३-७४ हे भीम! तुम शीघ्र जाओ! तुम मेरे
 प्रीतिपात्र, अनुरक्त और वशवर्ती हुए हो अर्थात् तुमने मेरी बात
 मानली यह एक शुभ-शकुन है, अतः मेरी विजय निश्चय होगी ७५
 हे भीम ! जैसे शुभ-शकुन हो रहे हैं उनसे प्रतीत होता है, कि-
 महात्मा अर्जुनके हाथसे पापी जयद्रथके मारेजाने पर मैं धर्मात्मा
 राजा युधिष्ठिरसे मिलूँगा ॥ ७६-७७ ॥ इतना कहनेके बाद
 भीमको वहाँ ही छोड़कर उस महायशस्वीने तुम्हारी सेनाकी
 ओरको इसप्रकार देखा जैसे सिंह मृगोंके झुण्डको देखता है ७८
 हे राजन् ! सात्यकिके घुसनेकी इच्छा करते देखकर तुम्हारी
 सेना फिर मूढ़सी होगई और बड़े जोरसे काँपने लगी ॥ ७९ ॥
 हे राजन् ! तदनन्तर धर्मराजकी आज्ञासे अर्जुनको देखनेकी
 उत्कण्ठा वाला सात्यकि एकाएकी तुम्हारी सेनामें घुस गया ८०

सञ्जय उवाच । मयाते तव सैन्यन्तु युयुधाने युयुत्सया ।
 धर्मराजो महाराज स्वेनानीकेन सम्भृतः ॥ १ ॥ मायाद द्रोणरथं
 प्रेष्युयुधुधानस्य पृष्ठतः । ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः २
 प्राक्रोशत् पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः । आगच्छत महारत
 द्रुतं विपरिधावत ॥ ३ ॥ यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
 महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ॥४॥ इति ब्रुवन्तो वेगेन
 निपेतुस्ते महारथाः । वयम्प्रतिजिगीषन्तस्तस्य तान् समभिद्रुताः ५
 ततः शब्दो महानासीत् युयुधानरथम्प्रति । आकीर्यमाणा धावन्ती
 तव पुत्रस्य ब्राहिनी ॥६॥ सात्वतेन महाराज शतधाभिष्यशीर्यत ।
 तस्यां विदीर्यमाणायाम् शिनेः पुत्रो महारथः ॥ ७ ॥ सप्त वीरान्
 महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत् । अथान्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदे-

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! जब लड़नेकी इच्छासे
 सात्यकि तुम्हारी सेनाकी ओरको चला, तब धर्मराज अपनी
 सेनाके बीचमें हो सात्यकिके रथके पीछे जातेहुए द्रोणके रथको
 रोकनेकी इच्छासे चलदिये, उस समय पञ्चालराजके रणबौद्धरे
 पुत्र धृष्टद्युम्नने तथा राजा वसुदानने पाण्डवोंकी सेनामें पुकार
 कर कहा, कि-अरे ! आओ ! आओ !! महार करो ! महार करो !!
 जन्दीसे दोड़ो ! कि-जिससे युद्धदुर्मद सात्यकि सुखपूर्वक शत्रु-
 सेनामें प्रवेश करसके वहाँ बहुतसे महारथी हैं, वे सात्यकीको
 जीतनेका उद्योग करेंगे ॥१-४॥ इसप्रकार पुकारतेर वे महारथी
 हमारी सेना पर वेगसे टूटपड़े और हम भी उनको जीतनेकी
 इच्छासे उनपर दौड़े ॥ ५ ॥ उस समय सात्यकीके रथकी ओर
 बड़ा कोलाहल होनेलगा, हे महाराज ! सात्यकिने तुम्हारी सेनाके
 बाण मारकर सैकड़ों टुकड़े करदिये इससे तुम्हारी सेना तित्तर
 वित्तर होकर भागनेलगी, इसप्रकार सेनाके तित्तर वित्तर होते
 ही शिनिपुत्र महारथी सात्यकिने सेनाके मुहाने पर खड़ेहुए महा-

श्वरान् ॥ ८ ॥ शरैरनलसंकाशैर्निन्ये वीरान् यमक्षयम् । शतमे-
केन विव्याध शतेनैकञ्च पत्रिणाम् ॥ ९ ॥ द्विपारोहान् द्विपांश्चैव
हयारोहान् हयांस्तथा । रथिनः साश्वमूर्ताश्च जघानेशः पशुनिव १०
तं तथा द्रुतकर्माणं शरसम्पातवर्षिणम् । न केचनाभ्यधावन् वै
सात्यकिं तव सैनिकाः ॥ ११ ॥ ते भीता मृगमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घ-
बाहुना । आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तपतिमानिनम् ॥ १२ ॥ तमेकं
बहुधापश्यन्मोहितास्तस्य तेजसा । रथैर्विमथितैश्चैव भग्ननीडैश्च
मारिष ॥ १३ ॥ चक्रैर्विमथितैश्छत्रैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः । अनु-
कपैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः ॥ १४ ॥ बाहुभिश्चन्द-
नादिग्धैः साङ्गदैश्च विशाम्पते । हस्तिहस्तोपमैश्चापि भुजङ्गाभोग-

धनुषधारी सात महारथियोंको मार डाला तथा हे राजेन्द्र ! और
भी अनेकों देशोंके वीर राजाओंको सात्यकिने अग्निकी समान
स्पर्शबाले बाणोंसे यमलोकमें पहुँचा दिया सात्यकी इस युद्धमें
एक बाणसे सौको और सौ बाणोंसे एकको बँधता था ९-९
जैसे शिव पशुओंका संहार करते हैं ऐसे ही उसने हाथीसवार,
और हाथी, घुड़सवार और घोड़े तथा सारथियोंसहित रथियोंको
मार डाला ॥ १० ॥ इसप्रकार सात्यकि अद्भुत रीतिसे बाणोंकी
वर्षा करने लगा, उस समय तुम्हारी सेनामेंसे कोई भी योधा उसका
सामना न कर सका ॥ ११ ॥ दीर्घबाहु सात्यकिने खूब बाण
मारकर घायल किया, इससे तुम्हारे योधा ऐसे डरे, कि उस
अतिमानी सात्यकिको देखते ही रणमेंसे भाग निकले ॥ १२ ॥
सात्यकि एक था तो भी उसके तेजसे वे उसको बहुत मानने लगे
अर्थात् जिधरका भागते थे उधर ही उनको सात्यकि खड़ा हुआ
दीखता था, हे राजन् ! टूटे हुए जुए, टूटे फूटे रथ और टूटे हुए
पदियोंसे गिरे हुए छत्र, ध्वजाओंके ढाँच, पताका, सुवर्णके टोप
और मनुष्योंकी चन्दनचर्चित बाजूबन्दवाली भुजाओंसे और

सन्निभैः ॥ १५ ॥ ऊरुभिः पृथिवीं छन्ना मनुजानां नराधिप ।
 शशांकसन्निभैश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ १६ ॥ पतितैश्च पभा-
 क्षाणां सा बभावतिमेदिनी । गजैश्च बहुधा छिन्नैः शयानैः पर्व-
 तोपमैः ॥ १७ ॥ रराजातिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः । तपनी-
 यमयैर्वैकुण्ठैस्तृप्ताजालविभूषितैः ॥ १८ ॥ उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्य-
 शोभन्त तुरङ्गपाः । गतसत्त्वा महीम्नाप्य प्रमृष्टा दीर्घबाहुना १९
 नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः । प्रविष्टस्तानकं सैन्यं
 द्रावयित्वा चमूं भृशम् २० ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनञ्जयः ।
 इमेव सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः ॥ २१ ॥ भारद्वाजं
 समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः । न न्यवर्त्तत संक्रुद्धो बेलापिव
 जलाशयः ॥ २२ ॥ निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।

हाथीकी सूँडों तथा सर्पके शरीरकी समान जंघाओंसे हे राजन् !
 रणभूमि पटगई, बैलकेसे नेत्रोंवाले मनुष्योंके सुन्दर कुण्डल
 पहिरे और चन्द्रमाकी समान शोभायमान कटकर गिरेहुए शिरोंसे
 पृथ्वी बहुत ही दिपनेलगी, पर्वतोंकी समान ऊँचे हाथी छिन्न भिन्न
 होकर पृथ्वी पर पड़ेहुए थे, इसकारण टूटकर बिखरेहुए हाथियों
 से पृथ्वी पर्वतोंसे जैसे शोभा पाती है, तैसे ही बड़ीभारी शोभा
 पारही थी, महाबाहु सात्यकिके हाथसे प्राणरहित हो पृथ्वी पर
 पड़ेहुए घोड़े सोनेकी लड़ें लगीहुई सुनहरी लगामोंसे और चित्र
 बिचित्र कवचोंसे बड़ी शोभा पारहे थे ॥ १५-१६ ॥ इसप्रकार
 सात्यकि तुम्हारे बहुतसे योधा आदिको मारकर तुम्हारी सेनामें
 घुसगया ॥ २० ॥ तदनन्तर जिस मार्गसे अर्जुन गया था, उस
 ही मार्गसे सात्यकि भी जानेकी इच्छा करनेलगा, कि-इतनेमें
 ही द्रोणाचार्यने आकर उसको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ २१ ॥
 परन्तु लुब्ध हुआ जलाशय जैसे किनारेसे टकराकर भी पीछेको
 नहीं हटता तैसे ही क्रोधमें भराहुआ सात्यकि द्रोणाचार्यके रोकने

विंव्याध निशितैर्वाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥ सात्यकिस्तु
रणे द्रोणं राजन् विंव्याध सप्तभिः । हेमपुंस्त्रैः शिलाघातैः कङ्कु-
वर्हिणवाजितैः ॥ २४ ॥ तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमा-
र्दयत् । स तन्न ममूषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥ २५ ॥ सिंह-
नादं ततः कृत्वा द्रोणं विंव्याध सात्यकिः । दशभिः सायकैश्चा-
न्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च ॥ २६ ॥ युयुधानः पुनर्द्रोणं विंव्याध
दशभिः शरैः । एकेन सारथिञ्चास्यं चतुर्भिश्चतुरो हयान् २७
ध्वजमेकेन बाणेन विंव्याध युधि मारिष । तं द्रोणः साश्वयन्तारं
सरथध्वजमाशुगैः ॥ २८ ॥ त्वरन् प्राच्छादयद्वाणैः शलभानामिव
ब्रजैः । तथैव युयुधानोपि द्रोणं बहुभिराशुगैः ॥ २९ ॥ आच्छा-
पर भी पीछेको नहीं हटा ॥ २२ ॥ महारथी सात्यकिको रोक
कर द्रोणने उसको पाँच मर्मभेदी बाणोंसे वीधडोला ॥ २३ ॥
हे राजन् ! सात्यकिने भी सुवर्णकी पूँछवाले, शिला पर घिसकर
चमकदार कियेहुए, कंक और मोरके पंखोंवाले सात बाणोंसे
द्रोणको वीधदिया ॥ २४ ॥ तब द्रोणने सात्यकिके, उसके घोड़ोंके
और उसके सारथीके छः बाण मारे, द्रोणके इस कामको महारथी
सात्यकी सहन सका ॥ २५ ॥ और उसने सिहनाद करके द्रोणके
क्रमसे दश, छः और आठ बाण मारे ॥ २६ ॥ और फिर भी
सात्यकिने द्रोणको दश बाणोंसे घायल किया और हे राजन् !
उसने एक बाणसे द्रोणके सारथीको और चार बाणोंसे चारों
घोड़ोंको घायल करदिया ॥ २७ ॥ और उसने एक बाण मारकर
द्रोणकी ध्वजाको रणभूमिमें काटडोला, तब तो द्रोणने घोड़े,
सारथी, रथ और ध्वजासहित सात्यकिको टीढियोंके दलकी
समान बाण बरसाकर शीघ्रतासे ढकदिया, इसी प्रकार सात्यकिने
भी जरा भी न घबड़ाकर द्रोणके ऊपर बहुतसे बाणोंकी वर्षा
करके ढकदिया, उस समय द्रोणाचार्यने पुकार कर सात्यकिके

दयदसंभ्रातस्ततो द्रोण उवाच ह । तवाचार्यो रणं हित्वा गतः
 कापुरुषो यथा ॥ ३० ॥ युध्यमानं च मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्त्तत ।
 त्वं हि मे युध्यतो नाद्य जीवन् यास्यसि माधव ॥ ३१ ॥ यदि
 मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद् द्रुतम् । सात्यकिरुवाच । धन-
 क्षयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात् ॥ ३२ ॥ गच्छामि स्वस्ति ते
 ब्रह्मन् मे कालात्ययो भवेत् । आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वा-
 स्यते सदा ॥ ३३ ॥ तस्मादेव ब्रजान्प्राशु यथा मे स गुरुर्गतः ।
 सञ्जय उवाच । एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन् ॥ ३४ ॥
 प्रयातः सहसा राजन् सारथिं चेदमब्रवीत् । द्रोणः करिष्यते
 यत्नं सर्वथा मम वारणे ॥ ३५ ॥ यत्तो याहि रणे सून शृणु चेदं
 वचः परम् । एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महापथम् ॥ ३६ ॥

कहा, कि-अरे ! तेरा गुरु कायरकी समान रणभूमिको छोड़कर
 भागगया ॥ २८-३० ॥ मैं जिस समय उसके साथ लड़ने लगा,
 उस समय वह दक्खिनकी ओरको भागगया, हे सात्यकि ! यदि
 तू भी अपने गुरुकी समान मेरे सामनेसे शोध ही न भागगया,
 तो आज मेरे हाथसे जीता वचकर नहीं जासकेगा, सात्यकिने
 उत्तर दिया, कि-हे ब्रह्मन् ! आपका कन्याण हो ! मैं धर्मराजकी
 आज्ञासे अर्जुनके पास जाता हूँ, अब समय निरर्थक न जाय तो
 अच्छा है, शिष्य सदा अपने गुरुके मार्ग पर ही चलते हैं ३१-३३
 अतः जिस मार्गसे मेरे गुरु गए हैं उसी मार्गसे मैं भी शीघ्रतासे
 जाता हूँ, सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! शिनिवंशी सात्यकि
 यह कहकर द्रोणको वहीं छोड़ ॥ ३४ ॥ तुरन्त आगेको बढ़ा
 और सारथीसे कहने लगा, कि-हे सारथी ! द्रोण मेरे रोकनेका
 लवप्रकारसे यत्न करेंगे ॥ ३५ ॥ इसलिये तू सावधान होकर
 रथको रणमेंको हाँके ही जाना, यह जो महातेजस्वी सेना दीख
 रही है, यह अवन्तिदेशके राजाओंकी है ॥ ३६ ॥ इसके पीछे

अस्यानन्तरतस्त्वेतद्वान्तिष्ठात्यं महद्वलम् । तदनन्तरमेतच्च बाह्नि-
 कानां महद्वलम् ॥ ३७ ॥ बाह्निकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च मह-
 द्वलम् । अन्योऽन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे ॥ ३८ ॥
 अन्योऽन्यं समुपाश्रित्य न त्यजन्ति रणाजिरम् । एतदन्तरमासाद्य
 चोदयाश्वान् महद्वलम् ॥ ३९ ॥ मध्यमं जवमास्थाय बह मापन्न
 सारथे । बाह्निका यत्र दृश्यन्ते नानामहद्वलोद्यताः ॥ ४० ॥ दान्ति-
 णात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः । हस्त्यश्वरथसम्बाधं यच्चानीकं
 विलोक्यते ॥ ४१ ॥ नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम् ।
 एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन् ॥ ४२ ॥ मध्यतो याहि
 यच्चोद्यं कर्णस्य च महद्वलम् । तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन्
 विशिखान् बहून् ॥ ४३ ॥ युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्त्ति-

यह बड़ा भारी सेनादल दक्षिणदेशी राजाओंका है और बादको
 जो बड़ी भारी सेना खड़ी है यह वाल्हीकदेशी राजाओंकी है ३७
 और वाल्हीकोंके समीप ही जो बड़ी भारी सेना है, वह कर्णकी
 सेना है, हे साश्वे ! ये सेनाएँ आपसमें एक दूसरीसे अलग-२
 खड़ी हैं ॥ ३८ ॥ परन्तु अवसर आनेपर मेरे रोकनेके लिये एक
 दूसरीका आश्रय लेकर दृढ़तासे खड़ी रहेंगी रणभूमिको नहीं
 छोड़ेंगी, इसलिये हे सारथे ! तू हर्षमें भरेहुए पुरुषकी समान
 रथको मध्यम वेगसे चलाकर इस सेनाके बीचमेंसे ले चल, जिस
 सेनामें वाल्हीक नानापकारके शस्त्रोंको उठायेहुए खड़े हैं तथा
 जहाँ पर बहुतसे दान्तिष्ठात्य सेनापति खड़े हैं तथा अनेकों
 देशोंके आए हुए पैदल, घोड़े और रथ जहाँ पर खड़े हैं तथा
 जहाँ पर कर्णकी भयङ्कर सेना खड़ी हुई दिखाई दे रही है, उस
 सेनाके बीचमेंसे मेरे रथको ले चल और इस ब्राह्मण द्रोणको
 छोड़ दे, तदनन्तर न लौटनेवाले, सात्यकिको आगे जाता-देखकर
 द्रोणको बड़ा क्रोध आया और वह अनेकों बाण छोड़ते हुए

नम् । कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः ॥ ४४ ॥ प्राविश-
 आरतीं सेनामपर्यन्तां स सात्यकिः । प्रविष्टे युयुधाने तु सैन्येपु-
 द्गुतेषु च ॥ ४५ ॥ अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत् ।
 तमापतन्तं विशिखैः पद्भिराहत्य सात्यकिः ॥ ४६ ॥ चतुर्भिश्च-
 तुरोऽस्याश्वानाजघानाशु वीर्यवान् । ततः पुनः षोडशभिर्नवपर्व्याभ-
 राशुगैः ॥ ४७ ॥ सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।
 स ताड्यमानो विशिखैर्वहुभिस्तिग्मतेजसैः ॥ ४८ ॥ सात्यतेन
 महाराज कृतवर्मा न चक्षमे । स वत्सदन्तं सन्धाय जिह्मगानिल-
 सन्निभम् ॥ ४९ ॥ आकृष्य राजन्नाकर्णाद्विव्याधोरसि सात्य-
 किम् । स तस्य देहावरणं भित्वा देहश्च सायकैः ॥ ५० ॥ सपुत्र-
 पत्रः पृथिवीं विवेश रुधिरोज्जितः । अधास्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत्
 सात्यकीके पीछे दौड़े, परन्तु सात्यकि लौटा नहीं तथा तेज
 कियेहुए बाणोंसे कर्णकी सेनाको घायल करके कौरवोंकी अपार
 सेनामें घुसगया, सात्यकिके घुसते ही कौरवोंकी सेनामें भागड
 पडागई, इतनेमें ही क्रोधी कृतवर्माने सात्यकिको घेरलिया, सात्यकि
 ने अपने ऊपर चढकर आतेहुए कृतवर्माके छः बाण मारे ३६-४०
 और वीर्यवान् सात्यकिने दुरन्त चार बाणोंसे कृतवर्माके चारों
 घोड़ोंको मारडाला, तदनन्तर सात्यकिने कृतवर्माके स्तनों
 के बीचमें नमीहुई गांठवाले सोलह बाण मारे, हे महाराज ! इस
 प्रकार सात्यकिके तीखी धारवाले बाणोंसे घायलहुआ कृतवर्मा
 अधीर होउठा और उसने धनुषको कानतक खेंचकर तिरछा जाने
 वाला और पवनवेगी वत्सदन्त नामक बाण सात्यकिकी छातीमें
 मारा. वह बाण सात्यकिके कवच और देहको फोडकर लोहसे
 सनाहुआ ही पूँछसहित पृथ्वीमें घुसगया, हे राजन् ! तदनन्तर
 अस्त्रोंके बडे भारी विद्वान् कृतवर्माने बहुतसे बाणोंसे सात्यकिके
 धनुष और बाणोंको काटडाला तथा कृतवर्माने क्रोधमें भरकर

परमास्त्रवित् ॥ ५१ ॥ समार्गखण राजन् कृतवर्मा शरासनम् ।
 विव्याध च रणे राजन् सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ५२ ॥ दशभि-
 र्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुदुः तनान्तरे । ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या
 शक्तिमतां वरः ॥ ५३ ॥ जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतव-
 र्मणः । ततोऽन्यत् सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः ॥ ५४ ॥ व्य-
 सृजद्विशिखांस्पूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः । सरथं कृतवर्माणं समंतात्
 पर्यवारयत् ॥ ५५ ॥ छादयित्वा रणे राजन् हार्दिक्यं स तु
 सात्यकिः । अथास्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत ॥ ५६ ॥
 स पपात हतः सूतो हार्दिक्यस्य महारथात् । ततस्ते यन्तूरहिताः
 प्राद्वंस्तुरगा भृशम् ॥ ५७ ॥ अथ भोजस्तु सम्भ्रान्तो निगृह्य
 तुरगान् स्वयम् । तस्थौ वीरो धनुष्पाणिस्तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ५८
 स सुहूर्त्तमिवाश्वस्य सदश्वान् समचोदत् । व्यपेतभीरभिनाणामा-
 वहत् सुमहद्भयम् ॥ ५९ ॥ सात्यकिश्चाभ्यगात्तस्मात् स तु भीम-

रणभूमिमें सात्यकिके हृदयको भी दश तेज बाणोंसे घायल कर दिया
 जब शत्रुने धनुषको काट डाला तब शक्तिमानोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने
 शक्ति मारकर कृतवर्माकी दाहिनी भुजाको काटकर गिरा दिया
 तब सात्यकिने दूसरे धनुषको ले जोरसे खेंचकर सैंकड़ों और
 सहस्रों बाण छोड़ कृतवर्माको रथसहित ढक दिया ॥४७—५५॥
 हरीकके पुत्र कृतवर्माको बाणोंसे ढककर सात्यकिने भल्ल नामका
 बाण मार कृतवर्माके सारथीका शिर काट डाला ॥ ५६ ॥ वह
 सारथी मरकर कृतवर्माके बड़ेभारी रथपरसे भूमिपर गिर पड़ा,
 सारथीरहित होनेसे घबड़ाये हुए घोड़े बड़े वेगसे भागने लगे ॥ ५७
 तब तो भोजराज कृतवर्मा घबड़ा गया और उसने अपने आप
 घोड़ोंको सम्हाला तथा वह वीर हाथमें धनुष नेकर खड़ा हो गया
 उसके इस कर्मकी सेनाओंने प्रशंसा की ॥ ५८ ॥ कृतवर्मा कुछ
 ही समयमें सावधान हो निर्भीकताके साथ शत्रुओंको भयभीत

सुपाद्रवत् । युयुधानोपि राजेन्द्र भोजानीकाद्विनिःसृतः ॥ ६० ॥
 प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्योजानां महाचयम् । स तत्र बहुभिः शूरैः
 सन्निरुद्धो महारथैः ॥ ६१ ॥ न च चाल तदा राजन् सात्यकिः
 सत्यधिक्रमः । सन्धाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवश्य च ६२
 अभ्यधावद्रणो यत्तो युयुधानं युयुत्सया । तथा तमनुधावन्तं युयु-
 धानस्य पृष्ठतः ॥ ६३ ॥ न्यवारयन्त संहृष्टाः पाण्डु सैन्ये बृहन्नामाः ।
 समासाद्य तु हार्दिव्यं रथानां प्रवरं रथम् ॥ ६४ ॥ पञ्चाला
 धिगतोऽसाहा भीमसेनपुरोगमाः । विक्रम्य वाग्मिता राजन् श्रीरेण
 कृतवर्मणा ॥ ६५ ॥ यतमानाश्च ताम् सर्वानीपदिगतचेतसः ।
 अभितस्तान् शरौघेण क्लान्तवाहानकारयत् ॥ ६६ ॥ निगृही-

करता हुआ घोड़ोंको चलाने लगा ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार
 सात्यकि भोजराजकी सेनामेंसे बाहर निकल गया तब भोजराज
 कृतवर्मा भीमके ऊपर दौड़ा ॥ ६० ॥ हे राजेन्द्र ! सात्यकी
 भोजकी सेनामेंसे निकलकर शीघ्रतासे घोड़ोंको दौड़ाता हुआ
 काम्योजकी महासेनामें पहुँच गया वहाँ घुसते ही उसको बहुतसे
 वीर महारथियोंने आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ६१ ॥ सात्यकि
 सच्चा पराक्रमी था तो भी इस समय आगेको न बढ़ सका इतनेमें
 ही द्रोण भी सेनाको यथास्थान पर ठीक करके और उस सेना
 का भार कृतवर्माको सौंपकर ॥ ६२ ॥ स्वयं युद्ध करनेकी इच्छासे
 तयार होकर सात्यकिके ऊपरको दौड़े, द्रोणको सात्यकिके पीछे
 जाता देखकर पाण्डवोंकी सेनाके षडे २ योधा हर्षमें भरकर
 द्रोणको आगे बढ़नेसे रोकनेलगे परन्तु दूसरी ओर भीम और
 उसके पीछे रहनेवाले पञ्चाल राजे महारथी कृतवर्माका सामना
 होते ही उत्साहहीन हो गए क्योंकि—हे राजन् ! वीर कृतवर्माने
 उन सर्वोंको अपने पराक्रमसे पीछेको हटा दिया था ६२—६५
 तो भी उन सर्वोंने आगे बढ़नेके लिये बड़ा उद्योग किया परन्तु

तास्तु भोजेन भोजानीकेसवो रणे । अतिष्ठन्नार्यवद्दीराः । मार्य-
यन्ता महद्यशः ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकि-
प्रवेशे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । एवं बहुविधं सैन्यमेवं प्रविचितं बलम् । व्यूह-
मेवं यथान्यायमेवं बहु च सञ्जय ॥ १ ॥ नित्यं पूजितमस्माभिर-
भिकामश्च नः सदा । प्रौढमत्यद्भुताकारं पुरस्ताद् दृढविक्रमम् २
नातिवृद्धमवालम्बं नाकुशं नापि, पीवरम् । लघुवृत्तायतमायं सार-
गात्रमेनामयम् ॥ ३ ॥ आत्तसन्नाहसंच्छन्नं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यां बह्वीषु परिनिष्ठितम् ॥ ४ ॥ आरोहे पर्यव-
स्कन्दे सरणे सोन्तरस्रुते । सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च

कृतवर्माने चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करके उनको साधारण
रीतिसे अचेतसा करदिया और उनके वाहन भी बहुत देरतक
समरमें इधर उधरको दौड़नेके कारण थकगये ॥ ६६ ॥ इस
प्रकार कृतवर्माने उनको तङ्ग करा परन्तु वे भोजकी सेनाको वश
में करके आर्यपुरुषोंकी सभान यश पानेकी इच्छासे रणमें अटल
खड़े ही रहे ॥ ६७ ॥ एकसौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११३ ॥

धृतराष्ट्र ने ब्रूझा, कि-हे सञ्जय ! मेरी सेना शूरता आदि
गुणोंसे युक्त चुनेहुए पुरुषोंसे भरीहुई उचित रीतिसे गुंथीहुई,
सर्वदा हमसे सत्कार पानेवाली और सर्वदा हमसे प्रेम करनेवाली,
प्रौढ, भयानक आकारवाली और पहिलेसे ही पराक्रम दिखाने
वाली थी ॥ १॥२॥ हमारी सेना अतिवृद्ध बालक बहुत ही दुबले
अथवा बहुत ही मोटे पुरुषोंसे रहित और ठिगने पुरुषोंसे शून्य थी
और वह लम्बे चौड़े तथा गठीले देहवाले घोघाओंसे भरपूर थी,
भारण कियेहुए कवचोंसे रक्षित और बहुतसे शस्त्रोंसे पूर्ण,
शस्त्र ग्रहण करनेकी विद्याओंमें अति चतुर, हाथीके ऊपर चढ़ने

कोविदम् ॥५॥ नागेष्वश्वेषु बहुषु रथेषु च परिक्षितम् । परीक्ष्य
च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ६ ॥ न गोष्ठ्या नोपकारेण न
सम्बन्धनिमित्ततः । नानाहृतं नाप्यभृतं मम सैन्यं बभूव ह ॥ ७ ॥
कुलीनार्थजनोपेतं तुष्टपुष्टमनुद्धतम् । कृतमानोपचारञ्च यशस्वि च
मनस्वि च ॥८॥ सचिवैश्चापरैर्मुख्यैर्वहुभिः पुण्यकर्मभिः । लोक-
पालोपमेस्तात पालितं नरसत्तमैः ॥ ९ ॥ बहूभिः पार्थिवैर्गुप्तप-
स्मत्प्रियचिक्रीर्षुभिः । अस्मानभिसृतैः कामात् सवलैः सपदानुगैः १०
पयोदधिमित्रापूर्णमापगाभिः समन्ततः । अपत्तैः पत्तिसङ्काशै रथै-
रश्वैश्च संवृतम् ॥ ११ ॥ अभिन्नकरटैश्चैव द्विरदैरावृतं महत् ।

में, उत्तरनेमें, आगेको चढ़ाई करनेमें विघ्नके स्थानको लाँघनेमें,
अच्छीप्रकार प्रहार करनेमें, शत्रुके ऊपर चढ़ाई करनेमें तथा
पीछेको हटनेमें चतुर, हाथी, घोड़े और रथोंपर चढ़ने आदिमें
परीक्षा लेकर यथोचित वेतन देकर भर्तीको हुई थी॥६-६॥ मेरी
सेनामें कोई भी पार्थनासे, उपकारकी इच्छासे अथवा सम्बन्धके
कारणसे भर्ती नहीं किया गया था और कोई बलात्कारसे पकड़
कर भी नहीं बुलाया गया था तथा बिना वेतनके बैंगारमें पकड़
कर किसीको लड़नेके लिये नहीं बुलाया गया था॥७॥ हमारी सेना
कुलीन तथा श्रेष्ठ पुरुषोंसे भरी, हृष्ट पुष्ट और सरल प्रकृतिके
पुरुषोंसे पूर्ण थी हम उसका मान सत्कार करते थे और उसमें
यशस्वी तथा मनस्वी दिलेर पुरुष थे ॥ ८ ॥ और हे तात !
लोकपालोंकी समान पुण्यात्मा नरश्रेष्ठ मुख्य २ पुरुष सेनापति
बनकर उसकी रक्षा करते थे ॥ ९ ॥ अपनी इच्छासे हमारी
ओर आये हुए और हमारा हित चाहनेवाले बहुतसे राजे अपने
अपने अनुगामी राजे और सेनाओंके सहित मेरी सेनाकी रक्षा
करते थे ॥ १० ॥ जैसे नदियोंसे समुद्र घिरा रहता है तैसे ही
इन राजाओंसे मेरी सेना व्याप्त थी और पक्षरहित होनेपर भी

यदहन्यत मे सैन्यं किमन्यद्भागधेयतः ॥ १२ ॥ योधाक्षयजलं
भीमं बाहनोर्वितरङ्गिणम् । क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरमासक्तकु-
लम् ॥ १३ ॥ ध्वजभूषणसंवाधं रत्नोत्पलमुसञ्चितम् । बाहनैर-
भिधावद्भिर्बायुवेगविक्रम्पितम् ॥ १४ ॥ द्रोणां गम्भीरपातालं कृत-
वर्ममहाह्वयम् । जलसन्ध्रमहाग्राहं कर्णचन्द्रोदयोद्धतम् ॥ १५ ॥
गते सैन्यार्णवं मित्वा तरसा पाण्डवर्षभे । सञ्जयैकरथेनैव युयुधाने
च मामकम् ॥ १६ ॥ तत्र शेषं न पश्यामि प्रविष्टे सव्यसाचिनि ।
सात्वते च रथोदारे मम सैन्यस्य सञ्जय ॥ १७ ॥ तौ तत्र सम-
तिक्रान्तौ दृष्ट्वातीव तरस्विनौ । सिन्धुराजन्तु सप्रेक्ष्य गाण्डीवस्ये-
षुगोचरे ॥ १८ ॥ किन्तु वा कुरवः कृत्यं विदधुः कालचोदिताः ।

पक्षिप्रोंकी घोड़े और रथोंसे भरपूर थी गण्डस्थलोमेंसे
मद टपकानेवाले हाथियोंसे व्याप्त जो मेरी सेना मारी जा रही
है, इसको भाग्यके सिवाय और क्या कहा जाय ॥ ११-१२ ॥
असंख्य (अक्षय्य) योधाओं रूप जलसे भरपूर भयङ्कर बाहनों
रूप तरङ्गोंवाले, गोफनी, तलवार, गदा, शक्ति, बाण और भालेरूप
नाकोंवाले ध्वजारों, गहने और रत्नादिरूप पत्थरोंसे भरेहुए,
दौड़तेहुए घोड़ोंरूप वायुसे कंपित द्रोणरूप पातालसे गम्भीर
कृतवर्मरूप बड़े २ कुण्डोंवाले जलसन्ध्ररूप भयङ्कर नाकेवाले,
कर्णरूप चन्द्रमाके उदयसे बढ़तेहुए मेरे सेनादलरूप समुद्रको
जब पांडव श्रेष्ठ अर्जुन और सात्यकि एक रथकी सहायतासे
ही वेगपूर्वक तोड़ते हुए निकल गए तो मैं समझता हूँ कि-
अब मेरी सेना नहीं बचेगी, हे संजय ! जिस समय महारथी
अर्जुन और सात्यकि मेरी सेनामें घुसकर (आगे बढ़ गए)
उस समय उन अतिवेगवालोंकी सेनाके आगे जाते देखकर और
सिंधुराजको गांडीवमेंसे छूटतेहुए बाणोंका निशाना बनते देख
कर कालसे प्रेरित कौरवोंने क्या काम किया उस अतिदारुण

दारुणैकायने काले कथं वा प्रतिपेदिरे ॥ १६ ॥ अस्तान् हि कौर-
वान्मन्ये मृत्युना तात सङ्गतान् । विक्रमोपि रणे तेषां न तथा
दृश्यते हि वै ॥ २० ॥ अक्षतौ संयुगे तत्र प्रविष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
न च धारयिता कश्चित्तयोरस्तीह सञ्जय ॥ २१ ॥ भृताश्च बहवो
योधाः परीक्ष्यैव महारथाः । वेतनेन यथायोगं प्रियवादेन चापरे २२
असत्कारभृतस्तात मम सैन्ये न विद्यते । कर्मणा ह्यनुरूपेण लभ्यते
भक्तवेतनम् ॥ २३ ॥ न चायोधोऽभवत् कश्चिन्मम सैन्ये तु सञ्जय ।
अल्पदानभृतस्तात तथा चाभृतको नरः ॥ २४ ॥ पूजितो हि यथा-
शक्त्या दानमानासनैर्मया । तथा पुत्रैश्च मे तात ज्ञातिभिश्च सभा-
न्धवैः ॥ २५ ॥ ते च प्राप्यैव संग्रामे निर्जिताः सव्यसाचिना ।

कुसमयके आने पर कौरवोंको क्या सूझा ? ॥ १३-१६ ॥ हे
तात ! मैं समझता हूँ, कि-उस समय कालने कौरवोंको ग्रस
लिया था, इसलिये ही वे रणमें अपना पराक्रम जितना होना
चाहिये उतना न दिखासके ॥ २० ॥ हे संजय ! मैंने बहुतसे
महारथी योधाओंको परीक्षा करके यथोचित वेतन पर सेनामें
भर्ती किया था और बहुतोंको मधुर भाषणोंसे प्रसन्न कर
सेनामें रक्खा था, हे तात ! मेरी सेनामें ऐसा कोई भी नहीं था
जिसका सत्कार न हुआ हो तथा सर्वोंको अपने २ कामके अनु-
सार वेतन मिलता था, हे संजय ! मेरी सेनामें ऐसा एक भी योधा
नहीं था जिसे वेतन कम मिलता हो अथवा न मिलता हो,
हे संजय ! मैंने तथा जाति और वन्धुओं सहित मेरे पुत्रोंने भी
उन सबकी यथाशक्ति, दान मान और पद देकर प्रतिष्ठाकी थी,
किर भी तू कहता है कि सात्यकी और अर्जुन किंचित् भी घायल
न हो उस सेनामें घुसगए हे संजय ! क्या मेरी सेनामेंका एक
भी पुरुष उनको न रोकसका ? ॥ २१-२५ ॥ हा ! उन योधा-
ओंको सामने पड़ते ही अर्जुनने जीतलिया और सात्यकिने

शौन्येन परामृष्टाः किमन्यद्भागधेयतः ॥ २६ ॥ रक्षयते यश्च संग्रामे
 ये च सञ्जय रक्षिणः । एकः साधारणः पन्था रक्ष्यस्य सह
 रक्षिभिः ॥ २७ ॥ अर्जुनं समरे दृष्ट्वा सैन्धवस्याग्रतः स्थितम् ।
 पुत्रो मम भृशं मूढः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ २८ ॥ सात्यकिश्च
 रणे दृष्ट्वा पविशन्तमभीतवत् । किन्तु दुर्योधनः कृत्यं प्राप्तकाल-
 मभ्यन्यत ॥ २९ ॥ सर्वशस्त्रातिगौ सेनां प्रविष्टौ रथिसत्तमौ । दृष्ट्वा
 क्वां वै मतिं युद्धे प्रत्यपद्यन्तं मामकाः ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा कृष्णान्तु
 दाशार्हमर्जुनार्थं व्यवस्थितम् । शिनीनामृषभञ्चैव मन्ये शोचन्ति
 पुत्रकाः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा सेनां व्यतिक्रान्तां सात्वतेनार्जुनेन च ।
 पलायमानांश्च कुरुन् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३२ ॥ विद्वतान्
 रथिनो दृष्ट्वा निवृत्साहान् द्विषञ्जये । पलायनकृतेत्साहान्

उनको मंसलडाला, इसको भाग्यकी प्रतिकूलताके अतिरिक्त
 और क्या कहा जाय ? ॥ २६ ॥ हे संजय ! संग्राममें जिसकी
 रक्षाकी जाती है और जो रक्षा करते हैं, उन दोनोंकी एकसी
 गति होती है ॥ २७ ॥ अर्जुनको जयद्रथके सामने खड़ा देख
 कर हे तात ! अतीव मूढ़ हुए मेरे पुत्रने क्या किया ? ॥ २८ ॥
 सात्यकिको निडरकी समान सेनामें घुसते देखकर दुर्योधनने
 सम्योचित कौनसा विचार किया था ? ॥ २९ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ
 अर्जुन और श्रीकृष्णको सकल अस्त्रोंका तिरस्कार कर सेनामें
 घुसते देख मेरे पुत्रोंने समयानुसार किस कामको करनेका
 निश्चय किया था ? ॥ ३० ॥ मैं समझता हूँ कि-दाशार्हवंशी
 श्रीकृष्ण और शिनिश्रेष्ठ सात्यकि अर्जुनकी सहायताके लिये
 रणमें देखकर, मेरे पुत्रोंने शोक ही किया होगा ॥ ३१ ॥ अर्जुन
 और सात्यकिके द्वारा सेनाके लाँघेजानेको और भागते हुए
 कौरवोंको देखकर मुझे विश्वास होता है कि-मेरे पुत्रोंने शोक
 ही किया होगा, ॥ ३२ ॥ मैं समझता हूँ, कि-अपने रथियोंको

मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३३ ॥ शून्यान् कृतान्नयोपस्थान्
सात्वतेनार्जुनेन च । हतांश्च योधान् सदृश्य मन्ये शोचन्ति
पुत्रकाः ॥ ३४ ॥ अश्वनागरथान् दृष्ट्वा तत्र वीरान् सहस्रशः ।
धावमानान्नखे व्यग्रान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३५ ॥
महानागान् विद्रवतो दृष्ट्वा नशराहतान् । पतितान् पततश्चान्या-
न्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३६ ॥ विहीनांश्च कृतानश्वान् विर-
थांश्च कृतान्नरान् । तत्र सात्यकिपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति
पुत्रकाः ॥ ३७ ॥ हयौघान्निहतान् दृष्ट्वा द्रवमाणान्स्ततस्ततः ।
रणे माधवपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३८ ॥ पत्तिसंघान्
रणे दृष्ट्वा धावमानांश्च सर्वशः । निराशा विजये सर्वे मन्ये शोचन्ति
पुत्रकाः ॥ ३९ ॥ द्रोणस्य सपतिकान्तादनीकमपराजितौ । क्षणेन

भागता हुआ और शेष रथियोंको शत्रुओंको जीतनेमें निरुत्साही
हो भागनेका साहस करते देखकर मेरे पुत्र शोक करने लगे
होंगे ॥ ३३ ॥ मुझे प्रतीत होता है, कि-अर्जुन और सात्यकिके
हाथसे योधाओंको मारे जाते देखकर और रथोंकी गद्दियोंको
खाली हुई देखकर मेरे पुत्रोंने शोक किया होगा ॥ ३४ ॥ मैं
समझता हूँ, कि-घोड़े, हाथी और रथोंको छोड़ सहस्रों वीरोंको
घबड़ाकर भागते देखकर मेरे पुत्रोंने शोक ही किया होगा ३५
बड़ेर हाथियोंको अर्जुनके घाणोंसे घायल होकर भागते, गिरते
और गिरे हुए देखकर मेरे पुत्र शोक करनेलगे होंगे ॥ ३६ ॥
मेरी समझमें कि-जब सात्यकि और अर्जुनने हमारे योधाओंको
घोड़ोंसे और रथोंसे हीन कर दिया होगा तो मेरे पुत्रोंने शोक ही
किया होगा ॥ ३७ ॥ मैं समझता हूँ, कि-अर्जुन और सात्यकिके
हाथसे सहस्रों घोड़ोंको मरा हुआ और भागतेहुए देखकर मेरे
पुत्रोंने शोक ही किया होगा ३८ मैं समझता हूँ, कि-पैदलोंके दलको
रणमें भागतेहुए देखकर मेरे पुत्रोंको विजयकी आशा नहीं रही

दृष्ट्वा तौ वीरौ मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ४० ॥ संयूहोऽस्मि भृशं
तात श्रुत्वा कृष्णधनञ्जयौ । प्रविष्टौ मामकं सैन्यं सात्वतेन सहा-
च्युतौ ॥ ४१ ॥ तस्मिन् प्रविष्टे पृतनां शिनीनां प्रवरे रथे । भोजा-
नीकं व्यतिक्रान्ते किमकुर्वत कौरवाः ॥ ४२ ॥ तथा द्रोणेन समरे
निगृहीतेषु पाण्डुषु । कथं युद्धमभूच्च तन्ममाचक्ष्व सञ्जयाः ॥ ४३ ॥
द्रोणो हि बलवान् श्रेष्ठः कृताञ्जो युद्धदुर्मदः । पञ्चालास्तं महे-
ष्वासं प्रत्यविध्यन्कथं रणे ॥ ४४ ॥ बद्धवैरास्ततो द्रोणे धन-
ञ्जयजयैषिणः । भारद्वाजमुतस्तेषु दृढवैरो महारथः ॥ ४५ ॥
अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति । तन्मे सर्वं समाचक्ष्व
कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ४६ ॥ सञ्जय उवाच । आत्मापराधात्

होगी और वे शोक करते होंगे ॥ ३९ ॥ मैं समझता हूँ, उन
दोनों अजित वीरोंको क्षणभरमें ही द्रोणकी सेनाको लाँघकर
जाते देखकर मेरे पुत्र शोक करनेलगे होंगे ॥ ४० ॥ हे तात !
अच्युत-श्रीकृष्ण और अर्जुनको सात्यकिसहित अपनी सेनामें
घुसाहुआ सुनकर मैं अत्यन्त मूढ़ बनगया हूँ ॥ ४१ ॥ शिनिकुलमें
श्रेष्ठ महारथी सात्यकि जब सेनामें प्रवेश करके भोजकी सेनाको
लाँघगया तब कौरवोंने क्या किया ॥ ४२ ॥ तथा जब द्रोणने
रणमें पाण्डवोंको आगे बढ़नेसे रोकलिया, हे सञ्जय ! तब तहाँ
कैसा युद्ध हुआ यह मुझे सुना ॥ ४३ ॥ द्रोण बलवान् अस्त्र-
विद्याके पारगामी और युद्धदुर्मद थेतो भी अर्जुनकी विजय चाहते
थे, परन्तु द्रोणके साथ वैर रखनेवाले पञ्चालराजे उन महाधनुष-
धारीको कैसे लाँघाये और उनके साथ वैरभाव रखनेवाले
महारथी अश्वत्थामाने क्या किया ? ॥ ४४-४५ ॥ हे सञ्जय !
सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेके लिये अर्जुनने क्या उपाय किया
वह सब सुना, क्योंकि-तू कथा कहनेमें प्रवीण है ॥ ४६ ॥ सञ्जयने
कहा, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तुम्हारे ऊपर यह विपत्ति

सम्भूतं व्यसनं भरतर्षभ । प्राप्य प्राकृतवद्वीरं मा त्वं शोचितुम-
र्हसि ॥ ४७ ॥ पुरा यदुच्यते प्राज्ञैः सुहृद्भिर्विदुरादिभिः । मा
हर्षी । पाण्डवानां जन्नि तन्न त्वया श्रुतम् ॥ ४८ ॥ सुहृदां
हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह । स महद्व्यसनम्प्राप्य
शोचते वै यथा भवान् ॥ ४९ ॥ याचितोऽसि पुरा राजन् दाशा-
हं शमम्प्रति । न च तं लब्ध्वा कर्म स्वतः कृष्णो महा-
यशः ॥ ५० ॥ तव निगुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च । द्वैधी-
भावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ॥ ५१ ॥ तव जिह्ममभिप्रायं
विदित्वा पाण्डवान् प्रति । आर्त्तमलापांश्च बहून् मनुज्जाधिप-
सत्तम ॥ ५२ ॥ सर्वलोकस्य तत्त्वज्ञः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः । वासु-
देवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ॥ ५३ ॥ आत्मापराधात् सुम-

तुम्हारे अपने ही अपराधके कारण आई है, उसको तुम सहन
करो, हे वीर ! अब तुम्हें साधारण मनुष्योंकी समान शोक
करन उचित नहीं है ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! पहिले बुद्धिमान् और भला
चाहनेवाले विदुर आदिने तुमसे कहा था, कि—“तुम पांडवोंको
वनमें मत जाने दो” परन्तु तुमने उनकी बात न सुनी ॥ ४८ ॥
जो पुरुष हितैषी मित्रोंके कहनेको नहीं सुनता है, उसके ऊपर
बड़ी भारी आपत्ति आती है और उसको आपकी समान ही
पड़ना पड़ता है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! पहिले दाशार्हवंशी
श्रीकृष्णने तुमसे सन्धिके लिए प्रार्थना की थी, परन्तु महा-
यशस्वी श्रीकृष्णकी वह प्रार्थना तुम्हारी ओरसे पूरी न हुई ५०
हे राजन् ! तदनन्तर तुम्हारी निगुणता, अपने पुत्रोंपर पक्षपात
धर्मपर अश्रद्धा, पाण्डवोंके ऊपर तुम्हारी मत्सरता, और पांडवों
के प्रति तुम्हारे खोटे भावको जानकर तथा हे राजन् ! पांडवों
के बहुतसे दीनवचनोंको सुनकर संसारके सब लौकिक व्यव-
हारोंको जाननेवाले, और सकल लोकोंके ईश्वर भगवान् वासु-

हान् प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः । नेमं दुर्योधने दोषं कर्तुं मर्हसि मानद ५४
न हि ते सुकृतं किञ्चिदादौ मध्ये च भारत । दृश्यते पृष्ठतश्चैव
त्वन्मूलो हि पराजयः ॥ ५५ ॥ तस्मादवस्थितो भूत्वा ज्ञात्वा
लोकस्य निर्णयम् । शृणु युद्धं यथावृत्तं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५६ ॥
प्रविष्टो तव सैन्यन्तु शौनेये सत्यविक्रमे । भीमसेनमुखाः पार्थाः
प्रतीयुर्वाहिनीन्तव ॥ ५७ ॥ आयच्छतस्तान् सहसा क्रुद्धरूपान्
सहानुगान् । दधारैको रणे पाण्डून् कृतवर्मा महारथः ॥ ५८ ॥
यथोदवृत्तं वारयते वेला वै सलिलार्णवम् । पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये
हार्दिक्यः समवारयत् ॥ ५९ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम हार्दिक्यस्य
पराक्रमम् । यदेनं सहिता पार्था नातिचक्रमुराहवे ॥ ६० ॥ ततो

देवने ही कौरव पांडवोंमें बड़ा भारी युद्ध ठान दिया है ५१-५३
तुम्हारे अपने अपराधसे। यह बड़ा भारी संहार हो रहा है, हे मान
देने योग्य राजन । इस दोषको दुर्योधनके सिरपर रखना उचित
नहीं है ॥ ५४ ॥ हे भारत । तुमने आगे, पीछे या बीचमें कोई
पुण्यका काम किया हो यह मुझे नहीं दीखता और इस पग-
जयकी जड़ भी तुम ही हो ॥ ५५ ॥ अतः सावधान होकर
तथा मनुष्योंके नियत स्वभावको जानकर देवासुरसंग्रामकी समान
यह भयङ्कर युद्ध जैसे हुआ उसका वृत्तान्त सुनो ॥ ५६ ॥ सत्य-
पराक्रमी सात्यकिके तुम्हारी सेनामें घुसजाने पर भीमसेन आदि
पाण्डव तुम्हारी सेना पर चढ़ाए ये ५७ क्रोधमें भरे हुए पाण्डवों
को सेनासहित सहसा अपनी सेनाके ऊपर चढ़कर आते देख रण
में अकेले ही महारथी कृतवर्माने आगे उनको बढ़नेसे रोक दिया ५८
जैसे किनारा उफनकर आते हुए समुद्रको आगे बढ़नेसे रोक देता
है, तैसे ही कृतवर्माने युद्धमें पांडवोंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक
दिया ॥ ५९ ॥ इस समय हमने कृतवर्माका बड़ा अद्भुत पराक्रम देखा,
कि—इकट्ठे हुए सब पाण्डव भी युद्धमें उसको न दबा सके ॥ ६० ॥

भीमस्त्रिभिर्विध्वा कृतवर्माणभाशुगेः । शंखं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन्
सर्वपाण्डवान् ॥ ६१ ॥ सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ।
शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ॥ ६२ ॥ द्रौपदेयास्त्रि-
सप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः । धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माण-
मार्दयत् ॥ ६३ ॥ विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः ।
शिखण्डी चैव हार्दिक्यं विध्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ ६४ ॥ पुनर्वि-
व्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव । कृतवर्मा ततो राजन् सर्व-
तस्तान् महारथान् ॥ ६५ ॥ एकैकं पञ्चभिर्विध्वा भीमं विव्याध
सप्तभिः । धनुर्ध्वजं चास्य तदा रथाद् भूमावपातयत् ॥ ६६ ॥
अथैनं क्षिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः । आजघानोरसि क्रुद्धा
सप्तत्या निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥ स गाढविद्धो बलवान् हार्दिक्यस्य

तदनन्तर महाबाहु भीमने तीन बाण मारकर कृतवर्माको घायल
करदिया और पाण्डवोंको प्रसन्न कर अपना शंख बजाया ॥ ६१ ॥
सहदेवने बीस, धर्मराजने पाँच और नकुलने सौ बाणोंसे कृतव-
र्माको घायल करदिया ॥ ६२ ॥ तथा द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर,
घटोत्कचने सात और धृष्टद्युम्नने तीन बाण मारकर कृतवर्माको
पीड़ित करडाला ॥ ६३ ॥ विराट और द्रुपदने कृतवर्माके पाँच
बाण मारे, तदनन्तर हँसते-र यज्ञसेनके पुत्र शिखण्डीने पाँच
बाणोंसे कृतवर्माको वींधकर फिर उसको बीस बाणोंसे वींधडाला,
तदनन्तर हे राजन् ! कृतवर्माने उन सब महारथियोंको पाँच २
बाणोंसे वींधडाला और भीमसेनको सात बाणोंसे घायल कर
दिया और भीमके धनुष तथा ध्वजाको काटकर भूमिपर गिरा
दिया ॥ ६४-६६ ॥ तदनन्तर महारथी कृतवर्माने जिसका धनुष
टूटगया था ऐसे भीमसेनके सामने जाकर क्रोधमें भर उसकी
छातीमें तेज किये हुए सत्तर बाण मारे ॥ ६७ ॥ कृतवर्माके बाणोंके
बड़ेभारी महारथसे बहुत ही घायल हुआ भीमसेन रथमें बैठा

आपतन्तं रणे तन्तु शंखवर्णैर्हयोत्तमैः ॥ २१ ॥ परिवव्रुस्ततः
 शूरा गजानीकेन सर्वतः । किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान् सायकान्
 लघुवेधिनः ॥ २२ ॥ सात्वतो निशितैर्वाणैर्गजानीकमयोधयत् ।
 पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलेदो महान् ॥ २३ ॥ वज्राशनिसम-
 स्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः । प्राद्रवन् रणसुत्सृज्य शिनिवीरसमी-
 रितैः ॥ २४ ॥ शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः ।
 विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥ २५ ॥ सम्भिन्नवर्म-
 षण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः । हतारोहा दिशो राजन् भेजिरे भ्रष्ट-
 क्रम्बलाः ॥ २६ ॥ रुवन्तो विविधान्नादान् जलदोपमनिःस्वनाः ।
 नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २७ ॥ लुरमैर्दुश्चन्द्रैश्च

पर चढकर आतेहुए सात्यकिको उन फुरतीसे बाण छोडनेवाले
 शूरोने हाथियोंकी सेनासे, चारों ओरसे घेरलिया और बाणोंकी
 मारामार करनेलगे ॥ २०-२२ ॥ जैसे ग्रीष्मके वीतजाने पर
 मेघ पर्वतोंके साथ टक्कर लेता है तैसे ही सात्यकि बाणोंको
 चलाताहुआ हस्तिसेनाके सामने जा टक्कर लेनेलगा ॥ २३ ॥
 शिनिवीर सात्यकिके छोड़ेहुए वज्रकी समान स्पर्शवाले बाणोंसे
 घायल होतेहुए हाथी रणको छोडकर भागनेलगे ॥ २४ ॥ थोड़ी
 ही देरमें हे राजन् ! बाणोंके प्रहारसे हाथियोंके दाँत टूटगए
 शरीरमेंसे बहुत ही रुधिर बहनेलगा, मस्तक तथा गण्डस्थल
 फटगए, कान, मुख और सूँढ़ छिन्न भिन्न होगए, उनके ऊपर
 से हाथीवान् लुडकगये, पताकायें गिरपड़ीं, मर्मस्थल विंधगए
 घण्टे टूटगये, ध्वजायें फट गईं, उनके हाथीसवार मारेगए अम्बारा
 नीचे गिरपड़ीं और वे दिशा विदिशाओंमेंको भागनेलगे २५-२६
 और सात्यकिने वत्सदन्त, भल्ल, अञ्जलिक, लुरम तथा अर्ध-
 चन्द्र नामक शस्त्र मारकर उस हस्तिसेनाको चीरडाळा; उस
 समय मेघकी समान गम्भीर शब्द करनेवाले वे हाथी अनेकों

सात्वतेन विदारिताः । क्षरन्तोऽसृक् तथा सूत्रं पुरीपश्च मद्गुह्यः २८
 यन्मृगश्चस्वल्गुश्चान्ये पेतुर्मल्लुस्तथापरे । एवं तत्कुञ्जरानीकं युयु-
 धानेन पीडितम् ॥ २९ ॥ शरैरग्न्यर्कसंक्राशैः मदुद्राव समन्ततः ।
 तस्मिन् हते गजानीके जलसन्धो महावलः ॥ ३० ॥ यथाः संपा-
 पयन्नागं रजसाश्वरथं प्रतिरुक्मन्मर्धरः शूरस्तपनीयाकृदः शुचिः ३१
 कुण्डली मुकुटी खड्गी रक्तचन्दनरूपतः । शिरसा धारयन्
 दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ॥ ३२ ॥ उरसा धारयन्निष्कं
 कण्ठसूत्रञ्च भास्वरम् । चापञ्च रुक्मविकृतं विधुन्वन्
 गजमूर्द्धनि ॥ ३३ ॥ अशोभत महाराज सन्निद्युदिव तोषदः ।
 तमापन्नन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ॥ ३४ ॥ सात्यकिर्वारया-
 मास वेल्लेव मकरालयम् । नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरो-

प्रकारसे विघाटनेलगे खून ओकनेलगे और मल मूत्र करतेहुए
 भागनेलगे ॥ २७—२८ ॥ इस समय कितने ही हाथियोंको
 चक्कर आगया बहुतसे ठोकरें खानेलगे, बहुतसे गिरगए और
 बहुतसे मृत हो गए, अग्नि और सूर्यकी समान स्पर्शवाले बाणोंसे
 सात्यकिके द्वारा घायल हुई हाथीसेनाके हाथी चारों ओरको
 भागनेलगे, इसप्रकार हस्तिसेनाका नाश होता देखकर सुवर्ण
 के कवचको पहिरेहुए, सुवर्णके बाजूबन्दवाला, पवित्रचित्त
 वाला, कुण्डल, मुकुट और खड्ग धारण किये, लाल चन्दन
 लगाये, कण्ठमें चमकती हुई सुवर्णकी माला पहिरे और छातीपर
 मुहरोंका कण्ठा तथा चमकीला हार पहरे वीर महावली जल-
 सन्ध हाथीके मस्तक पर बैठ चाँदीके बने धनुषको घुमाताहुआ
 सावधान हो श्वेत घोड़ोंवाले सात्यकिके ऊपर चढ़ा २९-३३
 हे महाराज ! उस समय वह विजलीवाले मेघकी समान शोभा
 पारहाँ था, जैसे किनारा समुद्रको आगे बढ़नेसे रोकदेता है,
 तैसे ही सात्यकिने अकस्मात् आतेहुए मागधराज जलसन्धके

समैः ॥ ३५ ॥ अक्रुध्यत रणे राजन् जलसन्धो महाबलः । ततः
 क्रुद्धो महाराज पार्श्वेभिरसाधनैः ॥ ३६ ॥ अविध्यत शिनेः
 पात्रं जलसन्धो महोरसि । ततोपज्रेण भल्लेन पीतेन निशितेन
 च ॥ ३७ ॥ अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्ष शरासनम् । सात्यकिं
 द्विन्वधन्वान् प्रहसन्निव भारत ॥ ३८ ॥ अविध्यन्यागधो वीरः
 पञ्चभिर्निशितैः शरैः । स बिद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसंधेन वीर्यवान् ३९
 नाकम्पत महाबाहुस्तद्भुतमिवाभवत् । अचिन्तयन् वै स शरान्
 नात्यर्थं सध्वं प्रमाद्वली ॥ ४० ॥ धनुरन्यत् समादाय तिष्ठ तिष्ठेत्यु-
 वाच ह । एतावदुक्तवा शैनेयो जलसन्धं महोरसि ॥ ४१ ॥
 विन्यात्र षष्ठ्या स भृशं शराणां प्रहसन्निव । नुरप्रेण सुतीक्ष्णेन

हाथीको आगे बढ़नेसे रोक दिया, जब जलसन्धने सात्यकिके श्रेष्ठ
 बाणोंसे अपने हाथीको रुका हुआ पाया तब उस महाबलीको
 बड़ा क्रोध आया, तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए जलसन्धने हे महा-
 राज! भारको सहनेवाले बहुतसे बाण सात्यकिकी छातीमें मारे,
 सात्यकि बाण छोड़ना चाहता था, कि-उसने पानी पिलाएहुए
 एक तेज भल्लसे वृष्णिवीर सात्यकिके धनुषको काटडाला, हे
 भारत! फिर मानों हँस रहा हो इसप्रकार वीरवर मगधराजने
 दूटेहुए धनुषवाले सात्यकिको पाँच तेज बाणोंसे घायल कर दिया
 परन्तु वीर्यवान् महाबाहु सात्यकि जलसन्धके बहुतसे बाणोंसे
 विधजाने पर भी जरा नहीं डिगा यह एक आश्चर्यसा हुआ,
 बलवान् सात्यकिने उन बाणोंको कुछ भी नहीं गिना और उसने
 कुर्तीसे दूसरा धनुष ले खड़ा रह! खड़ा रह!! कहकर हँसते २
 जलसन्धकी विशाल छातीमें साठ बाण मारे और नुरप्रनामक
 तीक्ष्ण बाण मारकर जलसन्धके महाधनुषके पकड़नेके स्थानको
 काटडाला, और फिर जलसन्धके तीन बाण मारे, परन्तु हे महा-
 राज! जलसन्धने बाणसहित उस धनुषको फँककर तुरन्त ही

सुष्टिदेशे महद्धनुः ॥ ४२ ॥ जलसन्धस्य चिच्छेद विव्याध च
 त्रिभिः शरैः । जलसन्धस्तु तस्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ॥ ४३ ॥
 तोमरं व्यसृजत्तूष्णं सात्यकिं प्रति मारिष । स निर्भिद्य भुजं सव्यं
 माधवस्य महारणे ॥ ४४ ॥ अभ्यगादुरणी घोरः श्वसन्निव
 महोरगः । निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४५ ॥
 त्रिशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसन्धमताडयत् । मृग्य तु ततः खड्गं
 जलसन्धो महाबलः ॥ ४६ ॥ आप्तमञ्चं च मञ्चमर्षं शतचन्द्रस-
 माकुलम् । आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥ ४७ ॥
 शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा सखड्गो न्यपतन्महीम् । अलातचक्रवच्चैव
 व्यरोचत महीं गतः ॥ ४८ ॥ अथान्यद्भनुरादाय सर्वकायावदार-
 णम् । शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ४९ ॥ विस्फार्य
 विव्यधे क्रुद्धो जलसन्धं शरेण ह । ततः साभरणीं बाहू क्षुराभ्यां

तोमर उठाकर सात्यकिके मारा, वह घोर तोमर रणमें सात्यकिकी
 दाहिनी भुजाको घायल कर फुड्कारे मारतेहुए सर्पकी समान पृथ्वी
 में घुसगया, अपनी दाहिनी भुजाके घायल होजाने पर सत्यपरा-
 क्रमी सात्यकिने जलसन्धको तीस तेज बाणोंसे वीधा इसके उप-
 रान्त महाबली जलसन्धने एक खड्ग उठाया और सौ फुल्लियोंसे
 जड़ी, वैलके चमडेकी वडी ढाल उठाई और तलवारको वेगसे
 घुमाकर सात्यकिके ऊपर फेंका ॥ ३४-४७ ॥ वह तलवार
 सात्यकिके धनुषको काटकर भूमिपर गिरपड़ी, उस समय वह
 आकाशमेंसे गिरतीहुई उल्काकी समान दीखती थी ॥ ४८ ॥ तद-
 नन्तर क्रोधमें भरेहुए सात्यकिने सालके गुदेकी समान मोटा,
 इन्द्रवज्रकी समान शब्दकरनेवाला और सब शरीरको विदीर्ण
 करसकनेवाला एक दूसरा बड़ाभारी धनुष उठाया और उसको
 खेंचकर जलसन्धके बाण मारा, तदनन्तर हँसते २ सात्यकिने
 दो क्षुरप्रनायक बाण मारकर जलसन्धकी गहनोंवाली दोनों

प्राधवोत्तमः ॥ ५० ॥ सात्यकिजलसन्धस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ।
 तौ बाहू परिग्रहयौ पेतुर्गजसत्तमात् ॥ ५१ ॥ वसुन्धराधराद-
 भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविबोरगौ । तनः सुदृष्टं सुमहत्त्वास्तुकुण्डलमण्डि-
 तम् ॥ ५२ ॥ क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः । तत्
 पातितशिरोबाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ॥ ५३ ॥ द्विरदं जलसन्धस्य
 रुधिरेणाभ्यषिञ्चत् । जलसन्धं निहत्याजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ५४
 विमानं पातयामास गजस्कन्धादिशाम्पते । रुधिरेणावसिक्ताङ्गो
 जलसन्धस्य कुञ्जरः ॥ ५५ ॥ विलम्बमानमवहत् संश्लिष्टं परमा-
 सनम् । शरादिभिः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम् ॥ ५६ ॥
 घोरमार्त्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः । हाहाकारो महानासीत्तत्र
 सैन्यस्य मारिष ॥ ५७ ॥ जलसन्धं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु
 विमुखाश्चाभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः ॥ ५८ ॥ पलायनकृतो-

भुजाओंको काटडाला पर्यंत परसे गिरतेहुए पाँच मस्तकोंवाले
 सर्पोंकी समान वे लोहेकी भुजाएँ हाथी परसे नीचे गिरपड़ीं तद-
 नन्तर सात्यकिने तीसरा क्षुरम बाण मारकर जलसन्धके सुन्दर
 डाढ़ और कुण्डलोंवाले विशाल मस्तकको काटडाला, जिसकी
 भुजाएँ और शिर गिरादिए गये हैं ऐसे देखनेमें भयङ्कर मालूम होने
 वाले जलसन्धके घटने रुधिरसे हाथीको न्हादिया, रणमें जल-
 सन्धका संहार करके फुरती करते हुए सात्यकिने हाथीकी पीठ
 परसे अम्बारीको खिसका दिया, और रुधिरसे सराबोर हुआ
 जलसन्धका हाथी सात्यकिके बाणसे घबड़ाकर लटकती हुई
 अम्बारी तथा झूलती घसीटता और अपनी सेनाको कुचलता
 भयङ्कर चित्राडें मारताहुआ भागनेलगा, वृष्णिप्रवर सात्यकिके हाथमें
 जलसन्धको मारा गया देखकर हे राजन्! तुम्हारी सेनामें बड़ा भारी
 हाहाकार मचगया और तुम्हारे योधा शत्रुओंके जीतनेका उत्साह छोड़
 बैठे और पीठ फेरकर भागनेकी तयारी करनेलगे हे राजन्! इतनेमें

रसाहा निरुत्साहा द्विषञ्जये । एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रोणः शस्त्र-
भृताम्बरः ॥ ५६ ॥ अभ्ययाञ्जवनेरश्वैर्युधानं महारथम् ।
तमुदीर्य तथा दृष्ट्वा शैनेयं कुरुपुङ्गवाः ॥ ५७ ॥ द्रोणेनैव सह
क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन् । ततः प्रवृत्ते युद्धं कुरुणां सात्वतस्य
च । द्रोणस्य च रणे राजन् घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि जल-

सन्धवधे पञ्चाधिकाशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

सञ्जय उवाच । ते किरातः क्षरमातान् सर्वे यत्ताः महारिणः ।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥ १ ॥ तं द्रोणः सप्त-
सप्तत्यां जघान निशितैः शरैः । दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहैः दशभिः
शरैः ॥ २ ॥ विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः । विव्याध
सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा ३ दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा

ही शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोण तेज घोड़ोंवाले रथमें बैठ महारथी
सात्यकिके ऊपर दौड़ पड़े, इस समय सात्यकीभी लड़नेको
तयार होगया, यह देख कौरवोंके बड़े २ योधा क्रोधमें भरगए
और द्रोणके साथ ही सात्यकिके ऊपर टूटपड़े हे राजन् । फिर
रणमें सात्यकिका द्रोणाचार्य और कौरवोंके साथ देवासुरसंग्राम
की समान भयंकर युद्ध छिड़गया ॥ ५०-६१ ॥ एकसौ पन्द्रहवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥

संजयने कहा, कि—हे महाराज ! वे सब योधा सावधान हो
बाणोंकी वर्षा करतेहुए तुरन्त ही सात्यकिके ऊपर चढ़ आये
और लड़नेलगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें सात्यकिके द्रोणने
सत्तर तेज बाण, दुर्मर्षणने बारह और दुःसहने बारह बाण
मारें ॥ २ ॥ और विकर्णने कंक पत्नीके पर लगेहुए तीस बाण
मारकर सात्यकिका छातीके मध्यभाग और दाहिनी करवटको
बाँधडाला ॥ ३ ॥ और हे राजन् ! दुर्मुखने दश, दुःशासनने

दुःशासनोष्ठभिः । चित्रसेनश्च शीनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ॥४॥
 दुर्योधनश्च महता शरत्रवेण माधवम् । अग्नीदयद्रणे राजन् शूरा-
 रचान्ये महारथाः ॥५॥ सर्वतः पतित्रिदस्तु तव पुत्रैर्महारथैः । तान्
 प्रत्यविध्यद्वाण्यैः पृथक् पृथगजिह्वगैः ॥ ६ ॥ भारद्वाजं त्रिभि-
 र्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः । विकर्णं पञ्चत्रिंशत्पा चित्रसेनञ्च
 संसृभिः ॥ ७ ॥ दुर्मर्षणं द्वादशधिरष्टाभिरच विविंशतिम् । सत्य-
 व्रतञ्च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः ॥ ८ ॥ ततो रुक्माद्गदञ्चापि
 विधुन्वानो महारथः । अभ्ययात् सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महार-
 थम् ॥ ९ ॥ राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम् । शरैरभ्या-
 हनं गदं ततो युद्धमभूत्तयोः ॥ १० ॥ विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान्
 सन्दधानौ च सायकान् । अहरयं समरेऽप्योन्यं चक्रतुस्तौ महा-

आठ और चित्रसेनने दो बाण मारकर सात्यकिको घायल कर
 दिया ॥ ४ ॥ दुर्योधन तथा दूसरे शूरवीर महारथियोंने बड़ी
 भारी बाण वर्षा करके सात्यकिको रणमें बहुत ही पीड़ित
 किया ॥ ५ ॥ तुम्हारे महारथी पुत्रोंके द्वारा चारों ओरसे विंधता
 हुआ भी महारथी सात्यकि अलग २ उन सर्वोंको सीधे जाने
 वाले बाणोंसे बीधनेलगा ॥ ६ ॥ सात्यकिने द्रोणको तीन
 बाणोंसे, दुःसहको नौ बाणोंसे, विकर्णको पच्चीससे और चित्र-
 सेनको सात बाणोंसे बीध डाला ॥ ७ ॥ सात्यकिने दुर्मर्षणके
 बारह विविंशतिके आठ सत्यव्रतके नौ और विजयके दश बाण
 मारे ॥ ८ ॥ तदनन्तर सुवर्णके बाजूबन्दवाले धनुषको घुमाता
 हुआ महारथी सात्यकि तुरन्त ही तुम्हारे महारथी पुत्र दुर्योधन
 पर टूटपड़ा ॥ ९ ॥ और सब लोकोंके राजा तथा सब लोकोंमें
 महारथी गिनेजातेहुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके अच्छे प्रकारसे बाण
 मारनेलगा इसप्रकार उन दोनोंमें युद्ध होनेलगा १० दोनों महारथी
 बाण सीधे २ कर एक दूसरेको मारते थे और मारते २ आपसमें

रथौ ॥ ११ ॥ सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्वो बह्वशोभत । अस्त्र-
बद्धधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥ १२ ॥ सात्वतेन च
बाणैर्निर्विद्वस्तनयस्तव । शातकुम्भमयापीडो बभौ युप इवो-
च्छ्रितः ॥ १३ ॥ माधवस्तु रणे राजन् कुरुराजस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेदं सपरे क्षुरप्रेण हसन्निव ॥ १४ ॥ अथैनं द्वि-
धन्वानं शरैर्विद्वधिराचिनोत् । निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विपता क्षिप्र-
कारिणा ॥ १५ ॥ नामृष्यतः रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम् ।
अथान्यद् धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ १६ ॥ विव्याध सात्यकिं
तूर्णं सायकानां शतेन ह । सोऽतिविद्वो बलवता तव पुत्रेण
धन्विना ॥ १७ ॥ अमर्षवशमापन्नस्तत्र पुत्रमपीडयत् । पीडितं
नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ॥ १८ ॥ सात्यकिं शरवर्षेण

एक दूसरेको ढकंदेते थे ॥ ११ ॥ इस युद्धमें कुरुराजने बाण
मारकर सात्यकिको बहुत ही घायल कर दिया, इससे लोहलुहान
हो रुधिर टपकाता हुआ सात्यकि रसको टपकानेवाले लाल
चन्दनके वृक्षकी समान बहुत ही दिपने लगा ॥ १२ ॥ सात्यकि
ने भी तुम्हारे पुत्रके बहुतसे बाण मारे इससे तुम्हारा पुत्र सुवर्ण
के मुकुटवाले ऊँचे यज्ञस्नम्भकी समान शोभा पाने लगा ॥ १३ ॥
फिर हे राजन् ! सात्यकिने हँसकर क्षुरप नामक बाण मारकर
धनुषधारी दुर्योधनके धनुषको काट डाला ॥ १४ ॥ और धनुषको
काटकर सात्यकिने दुर्योधनके तडातड बहुतसे बाण मारे, फुर्तीले
शत्रुके बाणोंसे विधाहुआ दुर्योधन शत्रुकी इस विजयको सह
नहीं सका और उसने एक सुवर्णकी पीठवाला मजबूत धनुष ले
तडातड सौ बाण सात्यकिके मारे, हे राजन् ! तुम्हारे बली पुत्रके
हाथसे बहुत ही घायल होनेपर सात्यकिको क्रोध आगया
और वह तुम्हारे पुत्रको पीड़ित करने लगा, दुर्योधनको दबता
हुआ देखकर तुम्हारे दूसरे महारथी पुत्रोंने सात्यकिके ऊपर

छादयामासुरोजसा । सञ्ज्ञाद्यमानो बहुभिस्त्व पुत्रैर्महारथैः १६
 एकैकं पञ्चभिर्विध्वा पुनर्विव्याच सप्तभिः । दुर्योधनञ्च त्वरितो
 विव्याधाष्टभिराशुमैः ॥ २० ॥ प्रहसंश्चास्य चिच्छेद कार्मुकं
 रिपुभीषणम् । नामं मणिमयञ्चैव शरैर्ध्वजमभातयत् ॥ २१ ॥ हत्वा
 तु चतुरो बाहान् चतुर्भिर्निशतैः शरैः । सारथिं पातयामास क्षुर-
 मेण महायशः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम् ।
 अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥ स ध्वजमानः
 समरे शौनेयस्य शरोत्तमैः । प्राद्वत् सहसा राजन् पुत्रो दुर्योधन-
 स्तव ॥ २४ ॥ आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः । हाहा-
 भूतं जगच्चासीत् दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥ प्रेत्यमानं सात्य-
 किना स्वे सोममिव राहुणा । तन्तु शब्दमथ श्रुत्वा कृतवर्षा महा-

बलके अनुसार बाणोंकी दृष्टि कर उसको ढकदिया, तुम्हारे
 पुत्रोंके फेंकेहुए बाणोंसे ढकेहुए सात्यकिने हरएकके पाँच पाँच
 बाण मारे और फिर सात बाण मारे तथा दुर्योधनको तडाक
 आठ बाण मारकर घायल करदिया ॥ १५-२० ॥ और शत्रुओं
 को भय देनेवाले दुर्योधनके धनुषको बाणोंसे काटहाला तथा
 जिसमें मणियोंका हाथी वनरहा था ऐसी दुर्योधनकी ध्वजाको
 बाणोंसे काटकर पृथ्वीमें गिरादिया ॥ २१ ॥ फिर महायशस्वी
 सात्यकिने चार तेज बाण मारकर दुर्योधनके चारों घोडाको मार
 डाला और क्षुरप नामक बाण मारकर इसके सारथिको मार
 डाला ॥ २२ ॥ इस अवसरको देखकर सात्यकिने प्रसन्न हो
 दुर्योधनके बहुभूसे मर्मभेदी बाण मारे जब सात्यकिने तान २
 कर श्रेष्ठ बाण मारे तब तो तुम्हारा पुत्र दुर्योधन एकसाथ भाग
 निकला ॥ २४ ॥ और तुरन्तही धनुषधारी चित्रसेनके रथ पर
 चढ़गया, फिर सात्यकिने उसका पीछाकिया जिसप्रकार आकाश
 में चन्द्रमाको राहु ग्रसलेता है तैसे ही सात्यकि चारों ओरसे

रथः ॥ २६ ॥ अभ्ययात् सहसा तत्र यत्रास्ते माधवाः प्रभुः ।
 विधुन्वानो धनुःश्रेष्ठश्चोदयंश्चैव वाजिनः ॥ २७ ॥ भर्त्सयन् सार-
 थिञ्चाग्रे याहि याहीति सत्वरम् । तमागतन्तं सम्प्रेक्ष्य व्यादि-
 तास्यमिवान्तकम् ॥ २८ ॥ युयुधानो महाराज, यन्तारगिदमन्न-
 वीत् । कृतवर्मा रथेनैष द्रुनमापतते शशी ॥ २९ ॥ प्रत्युद्याहि
 रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम् । ततः प्रजविताश्वेन विधिवत् कन्पि-
 तेन च ॥ ३० ॥ आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम् । ततः
 परमसंकुहौ ज्वलिताविव शवकौ ॥ ३१ ॥ समेयार्ता नरव्याघ्रौ
 व्याघ्राविव तरस्विनौ । कृतवर्मा तु शैनेयं पृथ्विशत्पा समर्पयत् ३२
 निक्षितैः सायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारश्चापि पञ्चभिः चतुरश्वतुरो बाह्यंश्चतुर्भिः
 परमेष्ठभिः ॥ ३३ ॥ अविध्यत् साधुदान्तान् वै सैन्धवान् सात्व-

दुर्योधनको निगलने लगा, यह देखकर रणभूमिमें खड़े हुए सब
 मनुष्य हाहाकार करने लगे, उस कोलाहलको सुनकर महा-
 रथी कृतवर्मा, जहाँ पर सात्यकि खड़ा था, तहाँ ही रथ ले
 चलनेके लिये सारथिसे ललकारकर कहने लगा, कि—अरे रथको
 जल्दी चला इसप्रकार कह स्वयं ही घोड़ोंको हाँकता हुआ तथा
 हाथके धनुषको घुमाता हुआ फुरतीसे जहाँ पर सात्यकि खड़ा
 था तहाँ एकदम दौड़ आया, कृतवर्माको मुख फाड़े हुए कालकी
 समान आता देखकर, हे महाराज ! सात्यकिने अपने सारथिसे
 कहा, कि—॥ २५—२८ ॥ अरे सारथी यह देख ! कृतवर्मा धनुष
 बाण लेकर झपटा चला आ रहा है ॥ २९ ॥ यह सब धनुष-
 धारियोंमें श्रेष्ठ है अतः तू इसके सामने रथको ले चला सात्यकि
 की इस बातको सुनकर जिसमें बड़े वेगवाले घोड़े जुतरहे थे,
 और जो अच्छीप्रकार सजाया गया था, ऐसे रथको जहाँ धनु-
 र्धारियोंमें श्रेष्ठ कृतवर्मा खड़ा था तहाँ सारथी ले गया तदनन्तर बड़े
 क्रोधमें भरे हुए नरोंमें व्याघ्र समान सात्यकि और कृतवर्मा दोनों

तस्य हि । रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद्विस्फार्य कामुकम् ॥ ३४ ॥
 रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुंखैरशायत् । ततोशीतिं शिनेः पौत्रः
 सायकान् कृतवर्मणः ॥ ३५ ॥ माहिणोच्चरया युक्तो द्रष्टु कामो
 धनञ्जयम् । सोतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ ३६ ॥
 समकम्पत दुर्धर्षः क्षितिकम्पे यथाचलः । त्रिषष्ट्या चतुरोस्या-
 श्वान् सप्तभिः सारथि तथा ॥ ३७ ॥ विव्याध निशितैस्तूर्णै
 सात्यकिः सत्यविक्रमः । सुवर्णपुंखं विशिखं समाधाय च सात्य-
 किः । व्यसृजत् महाज्वालं संक्रुद्धपिव पन्नगम् । सोविध्यत् कृत-
 वर्माणं यमदण्डोपमः शरः ॥ ३८ ॥ जाम्बूनदविचित्रञ्च वर्म निर्भिद्य

दो जलतेहुए अग्नियोंकी समान तथा दो वेगमें भरे व्याघ्रोंकी
 समान आपसमें गुथगए, कृतवर्माने जम्बीस तीक्ष्ण बाण सात्यकि
 के मारे और पाँच तेज बाण सात्यिक के सारथिके मारे फिर
 सिंधुदेशमें उत्पन्नहुए और चतुर सात्यिक के चार घोड़ोंको कृत-
 वर्माने चार श्रेष्ठ बाण मारकर घायल करदिया तदनन्तर सुवर्ण
 की ध्वजा, बाजुवन्द और कवचवाले कृतवर्माने सुवर्णकी मूठवाले
 बड़ेभारी धनुषको खेंचकर सुवर्णकी पूँछवाले बाण छोड़कर
 सात्यिकको आगे बढ़नेसे रोकदिया, तदनन्तर अर्जुनको देखने
 के लिये उत्कण्ठितहुए सात्यिकने शीघ्रतामे कृतवर्माके अस्सी
 बाण मारे ! शत्रुओंको सन्तोष देनेवाला दुर्धर्ष कृतवर्मा बलवान्
 शत्रु सात्यिक के हाथसे बहुत ही घायल होकर भूकम्पके समय
 ढंगपगाते हुए पर्वतकी समान, काँप उठा फिर सत्यपराक्रमी
 सात्यिकने तडातड तिरसठ तेज बाण मारकर कृतवर्माके चारों
 घोड़ोंको और सात बाण मारकर उसके सारथिको वींघडाला
 और सुवर्णकी पूँछवाला, महाकान्तिमान् तथा क्रोधितहुए सर्प
 की समान एकबाण धनुष पर चढ़ाकर कृतवर्माके मारा यह यम-
 दण्डकी समान भयंकर बाण कृतवर्माको वींघकर उसके सुवर्णकी

मानुषत् । अभ्यगादरणीयुग्रो रुधिरैः समुत्थितः ॥ ४० ॥
 सञ्जातरुधिरश्चाजौ सात्वतेषुभिर्दिवः । सशरं धनुस्तृज्य न्य-
 पतत् स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४१ ॥ स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां पतितोऽ-
 भित्विक्रमः । शराद्वितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥ ४२ ॥
 सहस्रबाहुसदृशमक्षोभ्यमिव सागरम् । निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः
 मययौ ततः ॥ ४३ ॥ खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् ।
 प्रवर्त्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ४४ ॥ प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां
 मध्येन शिनिपुङ्गवः । अभ्यगाद्वाहिनीं हित्वा वृत्रहेवासुरीञ्चमृषू ४५
 समाश्वस्य च हार्दिक्यो गृह्य चान्यन्महद्भुजः । तस्यौ स तत्र बल-
 वान् वारयन् युधि पाण्डवान् ॥ ४६ ॥
 इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकृतवर्म-
 पराजये षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

चित्रकारीवाले प्रकाशवान् कवचके फाड़ लोहसे सनाहुआ
 पृथ्वीमें घुसगया ॥ ३०-४० ॥ सात्वतवंशी सात्यकिके बाणोंसे
 घायलहुए कृतवर्माके शरीरमेंसे रुधिर बहनेलगा, उस समय वह
 धनुष बाण छोड़कर रथमें गिरपड़ा ॥ ४१ ॥ परम पराक्रमी नर-
 श्रेष्ठ, सिंहकी समान ढाढ़ोंवाला कृतवर्मा सात्यकिके बाणसे
 पीड़ित हो घुटनोंके बल रथकी बैठक पर गिरपड़ा ॥ ४२ ॥
 सहस्रार्जुनकी समान बली और समुद्रकी समान अक्षोभ्य कृत-
 वर्माका पराजय करके सात्यकि आगेको चलदिया ॥ ४३ ॥
 तलवार शक्ति और धनुषोंसे व्याप्त, हाथी, घोड़े और रथोंसे
 खचाखच भरीहुई तथा जिसमें सैकड़ों क्षत्रियोंने रुधिरकी नदी
 बहादी थी ऐसी सेनामेंसे, सब योद्धानोंके सामने ही, बीचमेंसे
 होकर शिनिपुङ्गव सात्यकि, असुरसेनाके बीचमेंसे जैसे इन्द्र
 निकल जाय तैसे ही निकलगया ॥ ४४-४५ ॥ कुछ समयके
 अनन्तर कृतवर्माकी मूर्खा छूटी तब वह बड़े भारी धनुषको ले
 पाण्डवोंको रथमें आगे बढनेसे रोकनेलगा ॥ ४६ ॥ एकसौसोतहर्ष

सञ्जय उवाच । कम्पमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः । भार-
द्वाजः शरज्जातैर्महद्भिः समवाकित् ॥ १ ॥ स सम्पहारस्तुमुलो
द्रोणसात्वतयोरभूत् । पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव २
ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः । त्रिभिराशीन्त्रिषा-
कारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३ ॥ तैर्ललाटापितैर्वाणैर्धुग्धुधानस्व-
जिह्वगैः । व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ४ ॥ ततोऽस्य
बाणानपरानिन्द्राशेनिसमस्वनान् । भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषया-
मास संयुगे ॥ ५ ॥ तान् द्रोणचापनिर्मुक्तान् दाशार्हः पततः
शरान् । द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुंखाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥ ६ ॥
तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते । प्रहस्य सहसाविध्यत्
त्रिशतां शिनिपुङ्गवम् ॥ ७ ॥ पुनः पञ्चाशतेपूर्णां शितेन च समा-

सञ्जयने कहा, कि-शिनिके पुत्र सात्यकिने जब हमारी सेना-
ओंको इधर उधरको खदेड़ना आरम्भ करदिया, उस समय
द्रोणाचार्यने इसके ऊपर बाणोंकी बड़ीभारी मारांमार आरम्भ
करदी ॥ १ ॥ जैसे बलि और इन्द्रका युद्ध हुआ था तैसे ही सब
सेनाके सामने द्रोण और सात्यकिका युद्ध भयंकर रूपसे होने
लगा ॥ २ ॥ युद्धमें द्रोणने सर्पकी समान आकारवाले, विचित्र,
लोहेके बनेहुए तीन बाण मारकर सात्यकिके मस्तकको बीच
हाला ॥ ३ ॥ उस समय हे राजन् ! सात्यकि, मस्तकमें गुंभे
हुए सूंघे जानेवाले बाणोंसे तीन शिखरोंवाले पर्वतकी समान
शोभा पारहा था ॥ ४ ॥ उसकी निर्वलता को देखनेवाले द्रोणा-
चार्य उसके ऊपर इन्द्रके वज्रकी समान टंकार शब्द करने
वाले बाण छोड़ने लगे ॥ ५ ॥ परन्तु अस्त्रोंके पारगामी सात्यकि
ने द्रोणके धनुषसे छूटकर आतेहुए उन बाणोंको पूँछवाले दो २
बाण मारकर काटहाला ॥ ६ ॥ हे राजन् ! सात्यकिकी
फुर्तीको देखकर द्रोण हँसे और उन्होंने तुरन्त ही शिनिवंशमें

पयत् । लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥८॥ समुत्पतन्ति
 बल्मीकाश्च ध्रुवा महोरगाः । तथा द्रोणरथाद्राजन्नापतन्ति
 तनुच्छिदः ॥ ९ ॥ तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः । अवा-
 किरन् द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥ लाघवात् द्विज-
 मुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष । विशेषं नाध्यगच्छाम समावास्तां
 नरर्षभौ ॥ ११ ॥ सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
 आजयान भृशं क्रुद्धो ध्वजवच्च निशितैः शरैः ॥ १२ ॥ सार-
 थिञ्च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः । लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा
 द्रोणो महारथः ॥ १३ ॥ सप्तत्या सारथिं विध्वा तुरगांश्च त्रिभि-
 स्त्रिभिः । ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १४ ॥

श्रेष्ठ सात्यकिके तीस वाण मारे ॥ ७ ॥ तदनन्तर
 सात्यकिसे भी अधिक फुर्ती दिखा द्रोणने फिर पचास तेज
 वाण सात्यकिके मारे ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उस समय क्रोधमें भरे
 हुए महासर्प जैसे बिलमेंसे बाहर निकलते हैं तैसे ही द्रोणके
 रथमेंसे शरीरको काटनेवाले वाण सपासप छूटनेलगे ॥ ९ ॥
 और ऐसे ही सात्यकिके छोड़ेहुए रुधिरका भोजन करनेवाले
 सहस्रों और सैकड़ों वाणोंने द्रोणके रथको ढकदिया ॥ १० ॥
 हे राजन् ! द्विजोंमें मुख्य द्रोण और सात्वतवंशी सात्यकि ये
 दोनों ही फुर्तीले थे, अतः इन दोनोंमें विशेष कौन है यह हम
 नहीं जानसकते, परन्तु ये दोनों महात्मा युद्धमें हमें एकसे ही
 मालूम हुए ॥ ११ ॥ इतनेमें ही सात्यकिको बड़ा क्रोध आया और
 उसने द्रोणके नमीहुई गाँठवाले नौ वाण मारे और द्रोणके
 सामने ही सौ वाण मारकर उनकी ध्वजा और सारथीको
 घायल करदिया महाश्वी द्रोणने सात्यकिकी फुर्तीको देखकर
 सत्तर वाण मारकर उसके सारथिको बीधडाला फिर तीन२ वाण
 मार उसको घोड़ोंको घायल करके और एक तेज वाणसे सात्य-

अथापरेण भल्लेन हेमपुंखेन पत्रिणा । धनुश्चिच्छेद समरे माध-
वस्य महात्मनः ॥ १५ ॥ सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा
महारथः । गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाक्षिपत् ॥ १६ ॥
तामापतन्तीं सहसा पट्टवद्धामयस्मयीम् । न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहु-
भिर्बहुरूपिभिः ॥ १७ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिः सत्यवि-
क्रमः । विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥ १८ ॥ स
विध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत । तं वै न ममृषे द्रोणः सर्व-
शस्त्रभृताम्बरः ॥ १९ ॥ ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामय-
स्मयीम् । तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २० ॥ अना-
साद्य तु शौनेयं सा शक्तिः कालसन्निभा । भित्त्वा रथं जगामोग्रा
धरणीं दारुणस्वना ॥ २१ ॥ ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन्

किके रथमें लगी हुई ध्वजाको काट डाला ॥ १२-१४ ॥ फिर
द्रोणने सुवर्णके पंखवाला भल्ल नामक दूसरा बाण लेकर महात्मा
सात्यकिके धनुषको काट डाला ॥ १५ ॥ तब तो सात्यकिने उस
धनुषके फेंक दिया और क्रोधमें भरकर गदा उठा द्रोणके मारी १६
द्रोणने एकाएक अपने ऊपर आती हुई सुवर्णके पत्तरोसे जड़ी
उस लोहेकी गदाके सामने अनेकों प्रकारके बाण मारकर उसको
खिन्न भिन्न करके गिरा दिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर सत्यपराक्रमी
सात्यकिने दूसरा धनुष ले शिला पर घिसकर तेज किये हुए
बहुतसे बाण मार द्रोणको घायल कर दिया ॥ १८ ॥ समरमें
द्रोणको घायल करके सात्यकि सिंहकी समान दहाड़ने लगा,
परन्तु यह बात सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणसे सही नहीं
गई ॥ १९ ॥ और उन्होंने सुवर्णके दण्डेवाली लोहेकी बनी हुई
शक्ति उठाकर वेगके साथ सात्यकिके रथकी ओरको फेंकी २०
कालकी समान भयङ्कर वह शक्ति सात्यकिके पास तक नहीं पहुँच
सकी, किन्तु उसके रथके टुकड़े करके भयङ्कर शब्द करती हुई

विज्याध पत्रिणा । दक्षिणं भुजपासाद्य पीडयन् भरतर्षभम् ॥२२॥
 द्रोणोपि समरे राजन्माधवस्य महद्भुजः । अर्द्धचन्द्रेण चिच्छेद
 रथशक्त्या च सारथिम् ॥२३॥ सुप्रोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या
 समाहृतः । स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्त्तं सन्निपीदत ॥२४॥ चकार
 सात्यकी राजन् सूनकमति मानुषम् । अयोधयच्च यद् द्रोणं
 रश्मोन् जग्राह च स्वयम् ॥ २५ ॥ ततः शरशतेनैव युयुधानो
 महारथः । अविध्यद् ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते ॥२६॥
 तस्य द्रोणः शरान् पञ्च प्रेषयामास भारत । ते घोराः कवचं
 भित्त्वा पशुः शोणितमाहवे ॥ २७ ॥ निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुध्यत्
 सात्यकिर्भृशम् । सायकान् व्यसृजन्नापि वीरो रुक्मरथं प्रति २८

पृथ्वीमें घुसगई ॥२१॥ इस घटनाके बाद हे भरतसत्तम ! सात्य-
 किने बाण मारकर द्रोणकी दाहिनी भुजाको घायल कर उन्हें
 बड़ी पीडा दी ॥२२॥ हे राजन् ! द्रोणने भी समरमें अर्धचन्द्राकार
 बाण मारकर सात्यकिके बड़ेभारी धनुषको काटडाला और
 रथशक्ति अर्थात् केतकीके पत्रकेसे आकारवाली शक्तिसे सारथिको
 घायल कर दिया ॥ २३ ॥ रथशक्तिके लगनेसे सारथिको चक्कर
 आनेलगा और वह रथकी बैठक पर गिरकर क्षणभर निश्चेष्टसा
 बनारहा ॥ २४ ॥ परन्तु हे राजन् ! उस समय सात्यकिने ऐसी
 अद्भुत रीतिसे सारथीका काम किया कि—वह अपने आप घोड़ोंकी
 लगामें पकड़ेरहा और द्रोणसे युद्ध भी करता रहा ॥ २५ ॥
 तदनन्तर हे राजन् ! हर्षके स्वरूप महारथी सात्यकिने समरमें
 ब्राह्मण द्रोणाचार्यके सौ बाण मारे ॥२६॥ हे भारत ! द्रोणने
 सात्यकिके पाँच बाण मारे, वे घोर बाण कवचको फोड़कर सात्य-
 किके रुधिरको पीनेलगे ॥ २७ ॥ भयङ्कर बाणोंसे अतीव घायल
 होजानेके कारण सात्यकि बड़े क्रोधमें भरगया और उसने सुवर्णके
 रथमें बैठेहुए द्रोणके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर

ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि । अश्वान् व्यद्रावय-
द्राणैर्हतसूतास्ततस्ततः ॥ २६ ॥ स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि
सहस्रशः । चकार राजतो राजन् भ्राजमान इवांशुमान् ॥ २७ ॥
अभिद्रवत गृह्णीत हयान् द्रोणस्य धावन । इति स्म चक्रुः सर्वे
राजपुत्राः सराजकाः ॥ २८ ॥ ते सात्यकिप्रसायाशु राजन्
युधि महारथाः । यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा सपुत्राद्रवन् ॥ २९ ॥
तान् दृष्ट्वा प्रद्रुतान् संख्ये सात्वतेन शराद्धितान् । प्रभञ्ज पुनरेवा-
सीत्तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३० ॥ व्यूहस्यैव पुनर्दारं गत्वा द्रोणो
व्यवस्थितः । वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशराद्धितैः ॥ ३१ ॥
पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान् । शौनेये नाकरो-
चत्नं व्यूहमेवाभ्यरक्षत ॥ ३२ ॥ निवार्य पाण्डुपञ्चालान् द्रोणाग्निः

दी ॥ ३० ॥ तदनन्तर उसने एक बाणसे द्रोणके सारथिको
भूमिमें गिराकर बिना ही सारथिके घोड़ोंको बाण छोड़कर इधर
उधर भगाना आरम्भ करदिया ॥ २६ ॥ हे राजन् ! वे घांड़े
द्रोणके रूपहले रथको लेकर रणमें सैकड़ों चक्कर काटनेलगे, उस
समय वह चान्दीका रथ, जैसे चन्द्रपा फिर रहा हो, ऐसा प्रतीत
होता था ॥ २७ ॥ उस समय सकल राजकुमार और राजे
कोलाहल मचानेलगे कि-अरे ! दौड़ो ! दौड़ो ! अरे ! द्रोणके
भागतेहुए घोड़ोंको तो कोई थामो ॥ २८ ॥ हे राजन् ! वे सब
महारथी सात्यकिको छोड़ एक साथ द्रोणकी ओरको दौड़े ३२
परन्तु सात्यकिने बाण मारकर उन सबोंको भगादिया, उस समय
सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो भागतेहुए राजकुमारोंको देखकर
तुम्हारी सेना व्याकुल हो फिर भागपड़ी ॥ ३३ ॥ और वृष्णिप्रवीर
सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो बायुकी समान भागतेहुए घोड़ोंने
द्रोणको व्यूहके मुहाने पर ही फिर लाकर खड़ा करदिया ॥ ३४ ॥
उस समय वीर्यवान् द्रोणने देखा, कि-“पांडव और पांचालोंने

प्रदहन्निव । तस्थौ क्रोधाग्निसन्धीप्तः कालसूर्य इवोदितः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकि-

पराक्रमे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

सञ्जय उवाच । द्रोणं स जित्वा पुरुषपवीरस्तथैव हार्दिक्य-
मुखास्त्वदीयान् । महस्य सृतं वचनं वभाषे शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्ग-
वाग्रयः ॥ १ ॥ निमित्तमात्रं वयमद्य सृतं दग्धारयः केशवफाल्गु-
नाभ्याम् । हतान्निदग्मेह नरर्षभेण वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥ २ ॥
तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा महामूढे सोग्रयधनुर्हरोऽरिहा । किरन्
समन्तात् सहसा शरान् बली समापतत् रथेन इवामिपं यथा ३
तं यान्तमरवैः शशिशंखवर्णैर्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम् । नाशक्नु-

व्यूहको तोडहाला है । अतः वह सात्यकिकी ओर न जाकर
व्यूहकी ही रक्षा करनेलगे ॥ ३५ ॥ उस समय क्रोधरूपी काष्ठसे
प्रज्वलित हुआ द्रोणरूप अग्नि, उदय होतेहुए प्रलय कालके
सूर्यकी समान, व्यूहके मुहाने पर खड़ा हो पाण्डव और
पाण्डवालोंको आगे बढ़नेसे रोकनेलगा ॥ ३६ ॥ एक सौ सत्रहवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ११७ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे कुरुवंशमें अग्रगण्य ! पुरुषोंमें परम
वीर शिनिकुलमें श्रेष्ठ सात्यकि द्रोणको और तुम्हारे कृतवर्मा आदि
योधाओंको जीत हँसता २ अपने सारथिसे बोला कि ॥ १ ॥
हे सृत ! श्रीकृष्ण तथा अर्जुनने इन शत्रुओंको पहले ही भस्म
करदिया है, हम तो केवल निमित्तमात्र हैं, हम तो इन्द्रके अंशसे
उत्पन्न हुए नरश्रेष्ठ अर्जुनके मारेहुए शत्रुओंकी ही मार रहे हैं २
सारथिसे यह कहकर धनुषधारी शत्रुसंहारक, बली शिनिपुङ्गव
सात्यकि उस महायुद्धमें, मांस पर टूटतेहुए बाजकी समान सहसा
बाण बरसाता हुआ शत्रुओंपर टूटपड़ा ॥ ३ ॥ सेनाको घँघोल कर,
चन्द्रमा और शंखकी समान उज्ज्वल वर्णके घोड़ोंसे जुते रथमें

वनं वारयितुं समन्तादादित्यरश्मिप्रतिमं रथाग्रयम् ॥४॥ असह-
विजान्तमदीनसत्त्वं सर्वं गणा भारत ये त्वदीयाः । सहस्रनेत्र-
प्रतिमप्रभावं दिदीव सूर्यं जलदव्यपावे ॥ ५ ॥ अमर्षपूर्णस्त्वति-
चित्रयोधो शरासनी काञ्चनवर्मधारी । सुदर्शनः सात्यकिमा-
पतन्तं न्यवारयद्राजवरः प्रसह्य ॥ ६ ॥ तयोरभूत् भारत सम्प्रहारः
सुदारुणस्त सपतिप्रशंसन् । योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च वृत्रे-
न्द्रयोर्युद्धमिवामरौघाः ॥ ७ ॥ शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यवि-
ध्यत् सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ । अनागतानेव तु तान् पृष-
त्कान् चिच्छेद राजन् शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ ८ ॥ तथैव शक्रप्रतिमोऽपि
सात्यकिः सुदर्शने यान् क्षिपति स्म सावकान् । द्विधा त्रिधा तान-

बैठकर जानेहुए रथियोंमें अग्रगण्य, सूर्यकी किरणोंकी समान चमकते
हुए, पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि को उस समय कोई भी न रोक सका ४
शरद्वृत्रतुमें जैसे सूर्यके सामने कोई आँख उठाकर भी नहीं देख
सकता तैसे ही हे राजन् ! तुम्हारे जितने योधा थे उन सबोंमेंसे एक
भी असह्य पराक्रमी महाबली, इन्द्रकी समान प्रभावशाली सात्यकि
के सामने आँख उठाकर न देख सका ॥ ५ ॥ परन्तु सात्यकि
को आगे बढ़ता हुआ देखकर क्रोधमें भरा हुआ अत्यन्त विचित्र
रूपसे युद्ध करनेवाला, धनुषधारी, सुवर्णके कवचको पहिरे हुए
राजाओंमें श्रेष्ठ राजा सुदर्शन उसको बलात्कारसे आगे बढ़नेसे
रोकने लगा ॥ ६ ॥ हे भारत ! उन दोनोंका युद्ध बड़ा भयङ्कर
हुआ, देवताओंने जैसे इन्द्र और वृत्रासुरके संग्रामकी
प्रशंसाकी थी तैसे ही तुम्हारे योधा और सोमक वंशके
राजे भी, इन दोनोंके युद्धकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७ ॥
सुदर्शनने सात्वतवंशमें श्रेष्ठ सात्यकि के सैकड़ों तेज बाण मारे,
परन्तु हे राजन् ! शिनिपुङ्गव सात्यकिने, अपने पास पहुँचनेसे
पहिले ही उन बाणोंको काट डाला ॥ ८ ॥ तैसे ही इन्द्रकी समान

करोत् सुदर्शनः शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥ ६ ॥ तान् वीक्ष्य
वायान् निहतास्तदानीं सुदर्शनः सात्यकिवाणवेगैः । क्रोधाग्नि-
ज्जन्निव तिग्मतेजाः शरानगुञ्जत्तयनीयचित्रान् ॥ १० ॥ पुनः स
बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुंखैः विव्याध देहाव-
रणं विविध ते सत्यकैराविद्धिः शरीरम् ॥ ११ ॥ तथैव तस्या-
वनिपालपुत्रः सन्धाय चापैरपरंज्वलद्भिः । आजघ्निवास्ताञ्जत-
प्रकाशांश्चतुर्भिरश्वाश्चतुरः प्रसह्य ॥ १२ ॥ तथा तु तेनाभिहतस्त-
रस्यी नसा शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः । सुदर्शनस्येपुगणैः मृतीक्ष्णै-
र्ह्यान्निहत्याशु ननाद नादम् ॥ १३ ॥ अध्यास्य सूतस्य शिरो-
निकृत्य भल्लेन शक्राशनिसन्निभेन । सुदर्शनस्यापि शिनिप्रवीरः

सात्यकिने जिन बाणोंको मारा उन बाणोंके भी, सुदर्शनने रथमें
बैठे ही बैठे बाण मारकर, दार तीन-टुकड़े करदिये ॥ ६ ॥
अपने छोड़ेहुए बाणोंको सात्यिके बाणोंसे कटेहुए देखकर
सुदर्शन क्रोधमें भरगया और वह ऐसा तीखे तेजवाला दीखने
लगा, कि-मानो जगत्को भस्म ही करडालेगा, उस समय उसने
सुवर्णकी पत्तरोसे विचित्र दीखतेहुए बाणोंको सात्यिके ऊपर
छोड़ा ॥ १० ॥ तदनन्तर उसने अच्छे परोवाले अग्निकी समान
स्पर्शवाले तीन तेज बाण, कान तक धनुष खेंच, सात्यिके
ऊपर छोड़े वे बाण सात्यिके कवचको फोड़ उसके शरीरमें
घुम गए ॥ ११ ॥ तैसे ही उस राजपुत्रने दूसरे चार जलतेहुए
बाण चढ़ाकर, सात्यिके रुपहले घोड़ों पर वेगके साथ छोड़े ॥ १२ ॥
इसप्रकार जब राजा सुदर्शनने बाण मारे तब इन्द्रकी समान
वीर्यवान्, शिनिके पुत्र फुलीले सात्यकिने तुरन्त ही बहुतसे
तेज बाण मारकर राजा सुदर्शनके चारों घोड़ोंको मारडाला
और फिर बड़ी भारी गर्जनाकी ॥ १३ ॥ तदनन्तर इन्द्रके यज्ञ
की समान भल्ल नामके बाणसे उसके सारथिका मस्तक काट

क्षुरेण कालानिलसन्निभेन ॥ १४ ॥ सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
 भ्राजिष्णुः कत्रं विचक्रे देहात् । यथा पुगवज्रधरः प्रसह्य बलस्य
 सङ्घस्येति वज्रस्य रालन् ॥ १५ ॥ निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं रणे
 यदूनाभृषभस्तरस्वी । मुदा समेतः परया महात्मा रराज राजन्
 सुरराजकल्पः ॥ १६ ॥ ततो यथावर्जुन एव येन निवार्य सैव
 तव मार्गणौघैः । सदश्वयुक्तेन रथेन राजन् लोकं विसिस्मापयि-
 पुर्तवीरः ॥ १७ ॥ तत्तस्य विस्मापयनीयमग्र्यं पूजयन् योधधराः
 समेताः । प्रवर्त्तमानानिषुगोचरेऽसीन् ददाद् बाणैर्हु-भुग्यथैव १८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सुदर्शन-

वधे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच । ततः स सात्यकिर्धोमान् महात्मा वृष्णिपुङ्गवः ।

ढाला, तदनन्तर शनिप्रवीर सात्यकिने कालाशिकी समान क्षुरप्र
 नामक बाण मारकर, कुण्डलोसे शोभित पूर्ण चन्द्रमाकी समान
 उज्ज्वल सुदर्शनके मस्तकको, ऐसे काटडाला जैसे पहिले युद्धमें
 इन्द्रने बलनामक अतिबली असुरके मस्तकको काटडाला था १५
 हे राजन् ! इसप्रकार यदुश्रेष्ठ वेगवान् सात्यकि राजपुत्र अर्थात्
 दुर्योधनके पौत्रको रणमें मारकर बड़े हर्षमें भरगया, उस समय
 उस महात्माकी शोभा इन्द्रकी समान होरही थी ॥ १६ ॥ तद-
 नन्तर हे राजन् ! तुम्हारी सेनाको बाणोंसे पीछेको हटाकर लोकों
 को विस्मित करना चाहता हुआ वीर सात्यकि श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते
 हुए रथमें बैठकर अर्जुनके पासको चलदिया ॥ १७ ॥ मार्गमें
 जाते समय उसके सामने जो शत्रु पडता था उनको यह अशिकी
 समान, बाण मारकर नष्ट ही करता जाना था, उसके इस अच-
 रजमें ढालनेवाले श्रेष्ठ पराक्रमकी बड़े २ योधाओंने प्रशंसा
 की ॥ १८ ॥ एवसौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११८ ॥

सञ्जयने कहा, कि युद्धमें सुदर्शनको मारनेके उपरान्त वृष्णि-

सुदर्शनं निहित्याजौ प्रन्तारं पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ रथाश्वमाग-
फलिलं शरशक्यूर्ध्विभालिनम् । खड्गगतस्त्र्यं गदाग्राहं शराधुधम-
हास्वनम् ॥ २ ॥ प्राणापहारिणं रौद्रं वादिनोत्क्रुष्टनादितम् ।
योधानाममुखस्पर्शं दुर्धर्पमजयैषिणाम् ॥ ३ ॥ तीर्णाः सुदुस्तरं
तात द्रोणानीकमहार्यवम् । जलसन्धवलेनाजौ पुरुपादैरिवावृतम् ४
अतोऽन्यत् पृतनाशोपं मन्ये कुनदिकामिव । तर्त्तव्यामल्पसलिलां
चोदयाश्चानसम्भ्रमम् ॥ ५ ॥ हस्तप्राप्तवहं मन्ये साम्प्रतं सव्य-
साचिनम् । निर्जित्य दुर्द्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे ॥ ६ ॥ हार्दिक्यं
योधवर्यश्च मन्ये प्राप्तं धनञ्जयम् । न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा
सैन्यान्यनेकशः ॥ ७ ॥ वन्देरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कवृणोलपे ।

वीर बुद्धिमान् महात्मा सात्यकिने अपने सारथिसे फिर कहा कि-१
हे तात ! रथ, घोड़े और हाथियोंसे भयङ्कर वाण और शक्ति-
रूप तरङ्गोंवाले खड्गरूप मच्छ और शूरोके आयुधोंकी खनखना-
हट रूप गर्जनावाले तथा प्राणोंका नाश करनेवाले, भयङ्कर
वाजोंकी ध्वनिरूप कोलाहलसे भरे जिसको योधा भी सुखसे न
छूसके और विजयकी इच्छासेशून्य जिसको पकड़ न सकें ऐसे जल-
सन्धकी सेनारूप राक्षसोंसे पूर्ण द्रोणकी सेनारूप महासागरके
हम पार हो गए हैं ॥ २-४ ॥ अब बाकी बची हुई सेनाको तो मैं
थोड़ेसे जलवाली साधारण नदीकी समान पार न होने योग्य
समझता हूँ तू इसलिये घोड़ोंको धीरे २ चला ॥ ५ ॥ इस समय
मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि-अर्जुन मेरे पास ही है अरे !
सेनासहित दुर्धर्प द्रोणको रणमें जीतकर और योधाओंमें श्रेष्ठ
कृतवर्माका पराजय करनेसे मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि-मैं
शीघ्र ही अर्जुनके पास पहुँच जाऊँगा, जैसे जलतेहुए अग्निको
वनमें घास फूसके ढेरको देखकर आगे बढ़नेमें भय नहीं लगता
है तैसे ही मुझे इन बहुतसी सेनाओंको सामने देखने पर भी

पश्य पाण्डवमुख्येन यार्तां भूमिं किरीटिना ॥ ८ ॥ पञ्चपञ्चरथ-
नागौघैः पतितैर्विषयीकृताम् । द्रवते तद्यथा सैन्यं तेन भग्नं महा-
त्मना ॥ ९ ॥ रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे । कौशेयारुण-
सङ्काशमेतदुद्धूयते रजः ॥ १० ॥ अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं
कृष्णसारथिम् । स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्यामितौजसः ११
यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै । अनस्तं गत आदित्ये
हन्ता सैन्धवमर्जुनः ॥ १२ ॥ शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान् याहि यत्रारि-
वाहिनी । यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ॥ १३ ॥ दंशिताः
क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः । शरवाणासनधरा यवनाश्च
प्रहारिणः ॥ १४ ॥ शकाः किगता दंरदा वर्वरास्ताम्रलिप्तकाः ।

भय नहीं लगता है हे तात! जिस मार्गसे गाण्डवोंमें मुख्य किरीटी
अर्जुन गया है उस पदल, घोड़े, रथ और हाथियोंके मरकर
ढेर लगनेसे विकटहुए मार्गको तू देख, महात्मा अर्जुनने शत्रुकी
सेनाको नष्टप्राय करदिया है इसकारण शत्रु अभीतक भागरहे
हैं ॥ ९-८ ॥ हे सारथी ! रथ, घोड़े और हाथियोंके दौड़नेसे
आकाशमें रेशमीऔर लाल २ धूल उड़रही है इसको भी तू
देख ॥ १० ॥ मेरी समझमें श्वेत घोड़ोंवाले और कृष्ण जिनके
सारथि हैं वह महात्मा अर्जुन अब कहीं निकट ही होंगे, सुन २
यह परम पराक्रमी अर्जुनके गांडीव धनुषका शब्द सुनाई देरहा
है ॥ ११ ॥ जैसे २ शकुन मेरे सामने होरहे हैं उनसे निश्चय
होता है, कि-सूर्यास्तसे पहिले ही अर्जुन जयद्रथको मारडालेगा १२
अब तू घोड़ोंको कुछ आराम देले, फिर जहाँ शत्रुकी सेना है
और जहाँ चमड़ेके मोजे पहिरे हुए कवचधारी और क्रूरकर्मी
दुर्योधन आदि खड़े हों और जहाँ धनुषबाण धारण कियेहुए
युद्धदुर्मद काम्बोज, यवन, शक, किरात, दंरद, वर्वर, ताम्र-
लिप्तक तथा प्रहार करनेवाले तथा अनेकोंप्रकारके आयुधोंको

अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ॥ १५ ॥ यत्रैते सत-
 लत्राणाः सुयोधनपुत्रगेमपाः । मामेवाभिमुखः सर्वे तिष्ठन्ति सम-
 रार्थिनः ॥ १६ ॥ एतान् सरथनागारवान् निहत्याजौ सपत्निनः ।
 इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥ १७ ॥ सूत उवाच । न
 सम्भ्रमो मे वाष्पेय विद्यते सत्यविक्रम । यद्यपि स्यात्तव क्रुद्धो
 जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः ॥ १८ ॥ द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः क्रु-
 पद्रेश्वरोऽपि वा । तथापि सम्भ्रमो न स्यात्त्वामाश्रित्य महाशुज १९
 त्वया सुबहवो युद्धे निर्निताः शत्रुसूदन । दंशिताः क्रूरकर्माणः
 काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ॥ २० ॥ शरवाणासनधरा यवनाश्च प्रहा-
 रिणः । शक्राः किराता दरदा वर्वरास्ताम्रलितकाः । २१ ॥
 अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः । न च मे सम्भ्रमः

हाथमें लियेहुए बहुतसे म्लेच्छ खड़े हों, उधरको मेरे रथको धीरे
 धीरे लेचल ॥ १३-१५ ॥ ये सब कुर्योधन आदि चमड़ेके मोजे
 पहिन २ कर मुझमें ही लड़नेको खड़े हैं ॥ १६ ॥ इसलिये
 अब इस युद्धमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों सहित इन सबको
 पारहालूँगा तब ही तू जानना, कि-हम इस महाघोर व्यूहके
 पार होगये ॥ १७ ॥ सारथिने उत्तर दिया कि-हे वाष्पेय ! हे
 सत्यपराक्रम ! यदि मेरे सामने जमदग्निके पुत्र परशुराम भी
 क्रोधमें भरकर आखड़े हों तब भी मैं नहीं घबड़ासकता फिर
 इनकी तो विसाह ही क्या है ? ॥ १८ ॥ और हे महाशुज !
 राजन् ! द्रोण या महारथी कृपाचार्य या मदराज मेरे सामने
 आकर खड़े होजायँ तो भी मैं आपके मनापमे जरा भी नहीं
 डरूँगा ॥ १९ ॥ हे शत्रुसूदन ! तुमने युद्धमें कवच पहिरने
 वाले, क्रूरकर्मी काम्बोज, धनुषनाणधारी युद्धदुर्मद शक किरात
 दरद वर्वर, ताम्रलितक तथा नानाप्रकारके आयुधोंको धारण
 करनेवाले बहुतसे म्लेच्छोंका नाश किया था उस समय भी मुझे

कश्चिद् भूतपूर्वः कदाचन ॥ २६ ॥ किमुतैतत् समासाद्य धीर
संयुगगोष्पदम् । आयुष्मन् कतरेण त्वां प्रापयामि धनञ्जयम् २३
केषां क्रुद्धोसि वाष्ण्येय केषां मृत्युरुपस्थितः । केषां संयमनीमघं
गन्तुमुत्सहते मनः २४ के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तककयमो-
पमम् । दृष्ट्वा विक्रमसंयुक्तं विद्रविष्यन्ति संयुगे ॥ २५ ॥ केषां वैवस्वतो
राजा स्मरतेद्य महाभुज । सात्यकिरुवाच । मुण्डानेतान् हनिष्यामि
दानवानिव वासवः ॥ २६ ॥ प्रतिज्ञां पालयिष्यमि कां वोजानेव मां
वह । अघैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम् ॥ २७ ॥
अद्य द्रुपदन्ति मे वीर्यं कौरवाः समुयोधनाः । मुण्डानीके हर्ते स्रुत
सर्वसैन्येषु चासकृत् ॥ २८ ॥ अथ कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य

जरा भी भय नहीं लगा था ॥ २०-२२ ॥ फिर इस गौके खुरकी
समान छोटेसे युद्धकी तो बात ही क्या है ? हे आयुष्मन् ! अब
बताओ ! मैं तुम्हें किस मार्गसे अर्जुनके पास ले चलूँ ? ॥ २३ ॥
हे वृष्णिवंशी सात्यकि ! आज तुम किसके ऊपर कुपित हुए हो
आज किसकी मृत्यु आलगी है और आज किसका मन यमकी
राजधानीमें जानेके लिये उत्कण्ठित हो रहा है ? ॥ २४ ॥ कौन
आज तुम्हें युद्धमें प्रलयकालके यमकी समान पराक्रम करते देख
रणमेंसे भागेंगे ॥ २५ ॥ हे महाभुज ! यमराज किस २ का
स्मरण कर रहे हैं ? सात्यकिने कहा, कि-इन्द्र जैसे दानवोंका
संहार करते हैं तैसे ही आज मैं इन मुण्डोंका संहार करूँगा और
काम्बोजोंको मारकर अपनी प्रतिज्ञाकी पूरी करूँगा आज मैं इनका
संहार करके अर्जुनके पास जाऊँगा, अतः मुझे तू इन योधाओं
की ओरको ले चल ॥ २६-२७ ॥ आज जब मैं बारबार मुण्ड-
कोंका और सब सेनाओंका नाश करूँगा तब दुर्योधन आदि
सब कौरव मेरे घलको देखेंगे ॥ २८ ॥ युद्धमें नष्ट होती हुई कौरव
सेनाके बहुतसे कल्लाजनक विलापोंको सुनकर आज दुर्योधनके

संयुगे । अत्वा विरावं बहुधा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥ २९ ॥ अथ
पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः । आचार्यस्य कृतं मार्गं
दर्शयिष्यामि संयुगे ॥ ३० ॥ अथ मद्राणनिहतान् दोधमुख्यान्
सहस्रशः । दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ३१ ॥
अथ मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान् । अनातचक्रप्रतिघ्नं
धनुर्ब्रूयन्ति कौरवाः ॥ ३२ ॥ मत्सायकचित्ताङ्गानां रुधिरं स्रवतां
युद्धः । सैनिकानां घर्षं दृष्ट्वा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥ ३३ ॥
अथ मे क्रवुरूपस्य निघ्नतश्च वरान् वरान् । द्विर्जुनमिमं लोकं
मंस्यतेऽथ सुयोधनः ॥ ३४ ॥ अथ राजसहस्राणि निहतानि मया
रणे । दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा सन्तप्स्यति महामृधे ॥ ३५ ॥ अथ
स्नेहञ्च भक्तिञ्च पाण्डवेषु महात्मसु । इत्या राजसहस्राणि दर्श-
यिष्यामि राजसु ॥ ३६ ॥ बलं वीर्यं कृतज्ञत्वं मम ज्ञास्यन्ति

मनमें बड़ी भारी पीड़ा होगी ॥ २९ ॥ पाण्डवों में मुख्य श्वेत घोड़ों
वाले गुरु अर्जुन से मैंने जो बिद्या सीखी है उसको मैं आज
दिखाऊँगा ॥ ३० ॥ आज मेरे बाण से मरे हुए बड़े २ योधाओं
को देखकर राजा दुर्योधन को बड़ा सम्ताप होगा ॥ ३१ ॥ आज
जब मैं फुटी से बाण छोड़ूँगा, तब कौरवों को मेरा धनुष चरेंटी
की समान घूमता हुआ ही दीखेगा ॥ ३२ ॥ जब मेरे
बाणों के प्रहार से बारम्बार लोह के फुहारे छोटते हुए सैनिक
टपाटप गिरेंगे, तब दुर्योधन बड़ा दुःखी होगा ॥ ३३ ॥
आज जब मैं जोधमें भरकर जुने योधाओं को मारूँगा, उस समय
दुर्योधन अपने मनमें सोचेगा कि-जगत्में यह भी एक दूसरा
अर्जुन ही है ॥ ३४ ॥ जब मैं महारणमें सहस्रों राजाओं को मार
ढालूँगा, तब उनको देखकर दुर्योधन को बड़ा ही परचात्ताप
होगा ॥ ३५ ॥ पाण्डवों के ऊपर मेरी कितनी भक्ति है और
कितना स्नेह है, इसको मैं आज युद्धमें राजाओं के सामने सहस्रों

कौरवाः । सञ्जय उवाच । एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान् साधु-
वाहिनः ॥ ३७ ॥ शशाङ्कसन्निकाशान् वै वाजिनो व्यब्रूवत्
धृतराष्ट्रम् । तेष्विवन्त इवाकाशं धुधुधानं हयोत्तमाः ॥ ३८ ॥ प्रापयन्
यवनान् शीघ्रं मनःपवनरंहसः । सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्व-
निवर्त्तिनम् ॥ ३९ ॥ बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन् । तेषा-
मिषूनथास्त्राणि वेगवान्तपर्वभिः ॥ ४० ॥ अञ्छिनत् सात्यकी
राजन् नैनं ते प्राप्नुवन् शराः । क्वपपुंस्वैः सुनिशितैर्गार्ज्जिपत्रैरजि-
ह्वगैः ॥ ४१ ॥ उच्चकर्त्तुं शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि । शैक्या-
यसानि वर्माणि कास्यानि च समन्ततः ॥ ४२ ॥ मित्वा देहा-
स्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम् । ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः
सात्यकिना रणे ॥ ४३ ॥ शतशोऽभ्यपतन्त्यत्र व्यसथो वसुधातले ।

योधाओंको मारकर दिखाऊंगा ॥ ३६ ॥ उस समय कौरव मेरे
बल, वीर्य और कृतज्ञताको जानेंगे, सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र !
सात्यकिके इसप्रकार कहचुकने पर सारथिने चन्द्रमाकी समान
उज्ज्वल, रथको भलीप्रकार खेंचनेवाले और चतुर घोड़ोंको बड़े
वेगसे हाँका, वे मन और पवनकी समान वेगवाले घोड़े मानो
आकाशको पीजायेंगे इसप्रकार मुख उठाकर दौड़नेलगे और
क्षणभरमें उन्होंने सात्यकिको यवनोंके पास पहुँचादिया, पीछेको
न हटनेवाले सात्यकिको सेनाओंमें घुसते देखकर वे फुर्तीले
हाथवाले यवन बाणोंकी वर्षा करनेलगे, हे राजन् ! परन्तु फुर्तीले
सात्यकिने उनके अस्त्रोंको नमीहुई गाँठवाले बाण मारकर काट
ढाला, अतः वे बाण उसके पास तक न पहुँचसके, तदनन्तर
सात्यकिने सुवर्णकी पूँछवाले, तेज, गीधके परलगे और सीधे
जानेवाले बाण मारकर यवनोंकी भुजाएँ और शिरोंको उड़ाना
आरम्भ करदिया, वे बाण उनके लाञ्छन लोहके और काँसीके
कवचोंको तथा शरीरोंको फोड़कर पृथ्वीमें घुस गए, वीरवर

सुपूर्णयत्तुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डतैः ॥ ४४ ॥ पञ्च पट् सप्त
चाष्टौ च विभेद यवनाञ्छरैः । काम्बोजानां सहस्रैश्च शकानाञ्च
विशाम्पते ॥ ४५ ॥ शबराणां किरातानां वर्वराणां तथैव च ।
अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्माम् ॥ ४६ ॥ कुतर्वास्तत्र
शैलेयः क्षपयस्तावकं बलम् । दस्यूनां स शिरस्त्राणैः शिरोभि-
र्लूतमूर्ध्नैः ॥ ४७ ॥ दीर्घकूर्चैर्मदी कीर्णा विवर्हरण्डजैरिव ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं वभौ ॥ ४८ ॥ कवन्धैः संवृतं
सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवावृतम् । वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजि-
ह्वगैः ॥ ४९ ॥ ते सात्वतेन निहताः सणावन्नुर्वसुन्धराम् । अल्पा-
वविष्टाः सम्भगनाः कृच्छ्रपाणा विचेतसः ॥ ५० ॥ जिताः संख्ये
महाराज युयुधानेन दंशिताः । पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्त-

सात्यकि के मारेहुए बहुतसे म्लेच्छ प्राणहीन होकर पृथ्वी पर
गिरपड़े, सात्यकि रणमें धनुषको कान तक खेंचकर सटासट
बाण मारता था और एक२ भूपाटेमें पाँच२, छः२, सात२ और
आठ२ यवनोंको मारता था, हे राजन् ! सात्यकिने सहस्रों का-
म्बोज, शक, शबर, किरात और वर्वरीको मारडाला, इसप्रकार
तुम्हारी सेनाका क्षय करतेहुए सात्यकिने उनके मांस और
रक्तकी कींचसे पृथ्वीको अगम्य करदिया ३७-४६ पंखरहित पक्षियों
से ढकी हो इसप्रकार चारोंके मुँडे शिर और वड़ी २ डाढ़ी और
सूँझोवाले शिरोंसे भरी रणभूमि अपूर्व शोभा पारही थी जिनके
सकल अंगोंमें रुधिर लगरहा था ऐसे घड़ोंसे ढकाहुआ रणाङ्गण
लाल२ बादलोंसे घिरे आकाशकी समान शोभा पारहा था,
सात्यकिने वज्रकी समान स्पर्शवाले अच्छी गाँठवाले और सीधे
जानेवाले बाण मारकर योधाओंको प्राणहीन कर भूमिमें सुला-
दिया, शेष बचेहुए योधा प्राणोंके संकटमें पड़जानेसे भयभीत हो
रणमेंसे भागनेलगे ॥ ४७-५० ॥ हे महाराज ! इसप्रकार सात्यकि

स्तुरंगमान् ॥ ५१ ॥ जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन् भयात् ।
काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत ॥ ५२ ॥ यवनानाञ्च
तत्सैन्यं शकानाञ्च महद्वलम् । ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः
सत्यविक्रमः ॥ ५३ ॥ प्रविष्टस्तावकान् जित्वा सूतं ग्राहीत्यचोद-
यत् । ततोऽस्य समरे कर्म दृष्ट्वान्यैरकृतं पुरा ॥ ५४ ॥ चारणाः
सह गन्धर्वाः पूजयाञ्चकिरे भृशम् । तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य
विशाम्पते । चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाभ्यपूजयन् ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि यवनपराजये

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सञ्जय उवाच । जित्वा यवनकाम्बोजान् युयुधानस्ततोर्जुनम् ।
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनाम्बरः ॥ १ ॥ चारुदंष्ट्रो नर-

के जीतेहुए वे कवचधारी सैनिक भयभीत हो पैरोंकी एड़ी
और चाबुकोंसे घोड़ोंको मारकर कर बड़े वेगसे भागनेलगे हे
भारत ! सात्यकि दुर्जय काम्बोज, यवन और शकोंकी बड़ीभारी
सेनाको भगाकर तुम्हारे पुत्रोंकी सेनामें घुसगया और सत्यपरा-
क्रमी, पुरुषव्याघ्र सात्यकि उनको भी जीतकर सारथिसे कहने
लगा, कि—आगेको रथ चला, इस समय गन्धर्व और चारण,
जैसा पहिले दूसरे किसीने नहीं किया था, ऐसे सात्यकिके कर्म
को देखकर उसकी बहुत ही प्रशंसा करनेलगे, हे राजन् ।
अर्जुनके पृष्ठरक्षक सात्यकिको अर्जुनके समीप पहुँचा देखकर
चारण और तुम्हारे सैनिक भी उसकी बड़ा प्रशंसा करने
लगे ॥ ५१-५५ ॥ एकसौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११६ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि—
काम्बोज और यवनोंको जीतकर तुम्हारी सेनाके बीचमें होता
हुआ अर्जुनके पास जाने लगा ॥ १ ॥ मनुष्योंमें व्याघ्र समान,

व्याघ्रो विचित्रकवचध्वजः । मृगं व्याघ्र इवाजिघ्रंस्तव सैन्यमभी-
 पयत् ॥ २ ॥ स रथेन चरन्पार्श्वान् धनुर्भ्रामयद् भृशम् । रुक्म-
 पृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥ ३ ॥ रुक्माद्गदशिरस्त्राणो
 रुक्मवर्मसमावृतः । रुक्मध्वजधनुः शूरो मेरुशृंगमिवावर्धो ॥ ४ ॥
 स धनुर्मण्डलं संख्ये तेजोभास्कररश्मिवान् । शरदीवोदितः सूर्यो
 नृसूर्यो विरराज ह ॥ ५ ॥ वृषभसन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
 तावकानां वर्धो मध्ये गर्वा मध्ये यथा वृषः ॥ ६ ॥ मत्तद्विरदसङ्काशं मत्त-
 द्विरदगामिनम् । प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ७ ॥
 व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाः समुपाद्रवन् । द्रोणानीकमतिक्रान्तं
 भोजानीकञ्च दुस्तरम् ॥ ८ ॥ जलसन्धार्यं तीर्त्वा काम्बोजा-
 नाञ्च, वाहिनीम् । हार्दिव्यमकरान्गुक्तं तीर्थं वै सैन्यसागरम् ॥ ९ ॥

विचित्र कवच और ध्वजावाला सात्यकि, सुन्दर डाढ़वाला सिंह
 जैसे मृगोंको सूँघ २ कर डराता हो तैसे ही तुम्हारी सेनाकी
 गन्ध लेकर उसको डराने लगा ॥ २ ॥ रथमें बैठकर मार्गमें चलता
 हुआ सात्यकि सुवर्णकी बहुतसी फुल्लिण और पृष्ठवाले धनुषको
 बहुत ही घुमारहा था ॥ ३ ॥ सुवर्णके बाजूबन्द और टोपवाला
 सुवर्णके कवचको पहरे तथा सुवर्णकी ध्वजा और धनुषवाला
 सात्यकि सुमेरु पर्वतके शृङ्गकी समान प्रतीत होता था ॥ ४ ॥
 धनुषरूपी मण्डलवाला, तेजोरूपी सूर्यकी किरणोंवाला, युद्धरूप
 शब्द श्रुतुर्गें प्रचण्ड हुआ धनुष्योंमें सूर्यकी समान सात्यकिरूप
 सूर्य शोभा पाने लगा ॥ ५ ॥ वृषभकी समान कन्धे और वृषभ की
 समान नेत्रोंवाला पराक्रमी सात्यकि तुम्हारी सेनाके बीचमें खड़ा
 हुआ ऐसा प्रतीत होता था जैसे गौश्रौमें वृषभ खड़ा हो ॥ ६ ॥
 सात्यकी द्रोण, भोज, जलसन्ध और काम्बोजोंकी सेनाके पार
 होकर, कृत्वर्मरूप गगरके चुङ्गलमेंसे छूटकर, कौरवोंकी सेना-
 सागरके पार हो मदमत्त हाथीकी समान या मन्द २ गमन करने

परिवन्तुः सुसंकुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः । दुर्योधनश्चित्रसेनो
दुःशासनविंशतिः ॥ १० ॥ शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः
क्रथः । अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः ॥ ११ ॥ पृष्ठतः
सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः । अथ शब्दो महानासीत्तत्र
सैन्यस्य मारिष ॥ १२ ॥ मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ।
तानभिद्रवतः सर्वान् समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ॥ १३ ॥ शनैर्याहीति
यन्तारमब्रवीत् प्रहसन्निव । इदमेतत्समुद्धूतं धार्तराष्ट्रस्य यद्व-
लम् ॥ १४ ॥ मामेवाभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् । नादयन् वै
दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे ॥ १५ ॥ पृथिवीश्चान्तरिक्षञ्च
कम्पयन्सागरानपि । एतद्वलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे १६

वाले मंद टपकातेहुए हाथीकी समान तुम्हारे योधाओंकी टोली
के बीचमें जाकर खड़ा होगया, उसके मारनेकी इच्छासे तुम्हारे
महारथी पुत्र दुर्योधन, दुःशासन, चित्रसेन, विंशति, शकुनि,
दुःशासन, युवा दुर्धर्षण तथा दूसरे भी बहुतसे शस्त्रधारी तुम्हारे
पक्षके महादुर्धर्षे योधाओंको साथमें ले क्रोधमें भरकर सात्यकि
को चारों ओरसे घेरने लगे, परन्तु सात्यकि बढ़ता ही गया,
तब वे शूर क्रोधमें भरकर उसके पीछे दौड़नेलगे, हे राजन् !
जैसे पूर्णिमाके दिन वायुके झगड़ेसे समुद्रमें घरघराहटका शब्द
होनेलगता है, तैसे ही तुम्हारी सेनामें बड़ाभारी कोलाहल होने
लगा, शिनिपुङ्गव सात्यकिने उन सबको अपने पीछे चंढकर आते
देखकर सारथिसे मुस्कराकर कहा, कि-हे सारथी! धीरेर चला,
हे सारथी ! हाथी, घोड़े, और पैदलोंवाला रथोंकी घरघराहटसे
सब दिशाओं को प्रतिध्वनित करताहुआ और आकाश, समुद्र
तथा पृथ्वीको कँपाता हुआ कौरवोंका महान् सेनादल झपाटेके
साथ मेरी ओरको ही दौड़ा चला आरहा है, परन्तु हे सारथी! जैसे
पूर्णिमाके दिन उफन कर आगेको बढ़तेहुए समुद्रको किनारा

पौरुषमास्थामिदोद्धृतं वेल्लेव मकरालयम् । पश्य मे सूत विक्रांत-
 मिन्द्रस्येव महामथे ॥ १७ ॥ एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि
 शितैः शरैः । निहनानाह्वे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ॥ १८ ॥
 मच्छरैरग्निसंकाशैर्विद्धदेहान् सहस्रशः । इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्य-
 केरमितौजसः ॥ १९ ॥ समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्धुत्सवः ।
 जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥ २० ॥ तानेवं ब्रुवतो वीरान्
 सात्यकिर्निशितैः शरैः । जगाम त्रिशतानश्वान् कुञ्जराश्च चतु-
 शान् ॥ २१ ॥ स सम्महारस्तुमुलस्तस्य तेषाञ्च धन्विनाम् ।
 देवामुररणप्रत्ययः प्रावर्त्तत जनक्षयः ॥ २२ ॥ मेघजालनिभं
 सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष । प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषो-
 पमैः ॥ २३ ॥ प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीरवान् । असम्भ्रमं

पीछेको ढकेल देता है, तैसे ही मैं भी महारणमें इस सेनाखुशी
 समुद्रको पीछेको ढकेल दूँगा, हे सूत ! आज तू इस महासंग्राम
 में इन्द्रकी समान मेरे पराक्रमको देखना ॥ ७-१७ ॥ इन शत्रु-
 ओंकी सेनाको मैं तीक्ष्ण बाणोंसे बाँध डालूँगा और तू आज
 मेरे अग्निकी समान तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे सहस्रों पैदल, हाथी
 घोड़े और रथोंको युद्धमें द्रिप्त भिन्न हुए देखेगा, इसप्रकार
 बातें हो रही थीं, कि—पारो २ पकड़ो २, खडारह २ देखो २
 यह सात्यकि खड़ा है इसप्रकार कहतेहुए युद्धकी इच्छावाले वे
 सैनिक जरा दूरमें ही सात्यकिके पास पहुँच गए ॥ १८-२० ॥
 इसप्रकार कहतेहुए उन शूरवीरोंको सात्यकिने तीक्ष्ण बाणोंसे
 मारना आरम्भ कर दिया और तीनसौ घोड़े सवार तथा चारसौ
 हाथीसवारोंको मार डाला ॥ २१ ॥ उन वीरोंका तथा सात्यकि
 का वह जनसंहारकारी युद्ध देवामुरसंग्रामकी समान बड़ी प्रच-
 ङ्ढताके साथ होने लगा ॥ २२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रकी
 मेघमण्डलकी समान खड़ीहुई सेनाके ऊपर सात्यकि विपैले

महाराज तावकानवधीद्वहून् ॥२४॥ आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहददृष्ट
वाहनम् । न मोघः सायकः कश्चित् सात्यकेरभवत् प्रभो ॥२५॥
रथनागाश्वकलिलः पदात्युर्मिसमाकुलः। शैनेयवेलासाद्य स्थितः
सैन्यमहार्णवः २६ सम्भ्रान्तनरनागाश्वमावर्त्तन मुहुर्मुहुः । तत्सैन्य-
मिषुभिस्तेज वध्यमानं समन्ततः ॥ २७ ॥ वभ्राम तत्र तत्रैव गावः
शीतार्दिता इव । पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगन्तथा ॥ २८ ॥
अविद्धं तत्र नाद्राजं युयुधानस्य सायकैः । न तादृक् कदनं राजन्
कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ॥ २९ ॥ यादृक् क्षयमनीकानामकरोत्सात्य-
किर्नृप । अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते पुरुपर्षभ ॥ ३० ॥ वीत-
भीर्लोघवोपेतः कृतित्वं सम्प्रदर्शयन् । ततो दुर्धनो राजा सात्य-

सर्पोकी समान बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २३ ॥ हे महाराज !
तुम्हारे योधाओंने भी युद्धमें बाणोंकी वृष्टि करके सात्यकिको ढक
दिया परन्तु सात्यकि जरा भी न घबडाकर तुम्हारे बहुतसे
सैनिकोंका संहार करने लगा ॥ २४ ॥ हे राजेन्द्र ! तहाँ मैंने एक
बडा भारी अचरज देखा, कि-हे प्रभो ! सात्यकिका एक भी बाण
खाली नहीं जाता था ॥ २५ ॥ रथ, हाथी तथा घोडोंसे भय-
ङ्कर, पैदलरूपी लहरोंसे भरा हुआ, कौरवसेनारूप महीसागर,
सात्यकिरूप किनारेसे टकराकर रुक गया ॥ २६ ॥ जब सात्यकि
ने उस सेनाको चारों ओरसे बाण बरसाकर मारना आरम्भ
कर दिया तब तो उस सेनाके मनुष्य, हाथी और घोडे घबडाकर
बार बार भागने लगे ॥ २७ ॥ उस समय बह सेना जाडेसे काँपती
हुई गौकी समान काँपती हुई भागने लगी, उस समय मैंने ऐसा
कोई पैदल, रथ, हाथी घोडा अथवा इनका सवार नहीं देखा,
कि-जा सात्यकिके बाणोंसे घायल न हुआ हो, हे राजन् !
सात्यकिने हमारी सेनाका जितना संहार किया उतना संहार तो
अर्जुनने भी नहीं किया था, पुरुषोंमें श्रेष्ठ सात्यकि निडर हो

तस्य त्रिभिः शरैः ॥ ३१ ॥ विव्याध स्रुतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो
 हयान् । सात्यकिश्च त्रिभिर्विध्वा पुनरष्टाभिरेव च ॥ ३२ ॥ दुःशा-
 सनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम् । शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्र-
 सेनश्च पञ्चभिः ॥ ३३ ॥ दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्य-
 किम् । उत्स्पयन् वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः ॥ ३४ ॥
 तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः । गाढविद्वानरीन् कृत्वा
 मार्गणैः सोतितेजनैः ॥ ३५ ॥ शैनेयः श्येनवत्संख्ये व्यवरत्नघु-
 विक्रमः । सौबलस्य धनुश्छित्वा हस्तात्रापं निकृत्य च ॥ ३६ ॥
 दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्वत् स्तनान्तरे । चित्रसेनं शतेनैव दश-
 भिर्दुःसहं तथा ॥ ३७ ॥ दुःशासनन्तु विंशत्या विव्याध शिनिपु-
 ङ्गवः । अथात्पद्मपुरादाय श्यालस्तव विशाम्पते ॥ ३८ ॥ अष्टाभिः

फुर्तीसे अपनी कृतार्थता दिखाता हुआ अर्जुनसे भी बढकर युद्ध
 करने लगा इतनेमें ही राजा दुर्योधनने तीन बाणोंसे सात्यकिके
 सारथिको घायल कर दिया और चार तेज बाण मारकर सात्यकि
 के चारों षोड़ोंको लोहलुहान कर दिया और सात्यकिको भी पहिले
 तीन और पीछेसे आठ बाण मारकर घायल कर दिया २८-३२
 शिनिपुङ्गव सात्यकिके दुःशासनने सोलह, शकुनिने पच्चीस और
 चित्रसेनने पाँच बाण मारे ॥ ३३ ॥ और दुःसहने पन्द्रह बाण
 सात्यकिकी छातीमें मारे इसप्रकार बाणोंकी चोट खाने पर हे
 महाराज ! वृष्णि सिंह सात्यकि मुस्कराया और उसने उन सबों
 के तीन २ बाण मारे फुर्तीके साथ पराक्रम करनेवाला सात्यकि
 इसप्रकार बड़े ही तेज बाणोंसे शत्रुओंको बहुत ही घायल करके
 सेनामें बाजकी समान घूमने लगा, उसने शकुनिके धनुष और
 चपड़ेके मोर्जोंको काट डाला, फिर तीन बाण दुर्योधनकी छाती
 में मारे फिर शिनिपुङ्गव सात्यकिने चित्रसेनको सौ, दुःसहको
 दश और दुःशासनको दश बाण मारकर बीध डाला, हे महा-

सात्यकिं विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः । दुःशासनश्च दशभिर्दुः-
 सहश्च त्रिभिः शरैः ॥ ३६ ॥ दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन् विव्याध
 सात्यकिम् । दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विध्वा भारत माधवम् ॥ ४० ॥
 ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम् । तान् सर्वान्
 सहितान् शूरान् यतमानान्महारथान् ॥ ४१ ॥ पञ्चभिः पञ्चभि-
 र्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः । ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य
 सारथिम् ॥ ४२ ॥ आज्ञावानांशु भल्लेन स हतो न्यपतद् भुवि ।
 पतिते सारथी तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ॥ ४३ ॥ वातायमानै-
 स्तैरश्वैरपानीयत सङ्गरात् । ततस्तव सुतो राजन् सैनिकारश्च
 विशाम्पते ॥ ४४ ॥ राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोभवन् ।
 विद्रुतं तत्र तत्सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ॥ ४५ ॥ अबाकिरञ्ज-
 रैस्तीक्ष्णैरुक्मपुंखैः शिलाशितैः । विद्रान्य सर्वसैन्यानि तावकानि

राज ! फिर तुम्हारे साले (शकुनि) ने दूसरा धनुष हाथ में लिया
 और पहिले आठ फिर पाँच बाणों से सात्यकिको बाँध डाला,
 और हे राजन् ! दुःशासन ने दश, दुःसहने तीन और हे राजन् !
 दुर्मुख ने बारह बाण सात्यकिके मारे हे भारत ! तदनन्तर दुर्यो-
 धन ने सात्यकिके निहत्तर बाण मारे फिर तीन-तेज बाण मार
 कर उसके सारथिको घायल कर दिया, तदनन्तर सात्यकिने वन
 प्रयत्न करते हुए सब महारथियों के पाँच २ बाण मारे, तदनन्तर
 रथियों में श्रेष्ठ सात्यकिने फुरती से दुर्योधन के सारथिके भल्ल बाण
 मारा उससे वह मरकर भूमि में गिर गया, सारथिके गिर जाने पर
 हे प्रभो ! तुम्हारे पुत्र के रथ को छोड़े, वायुव्रेग से भगाते हुए युद्धभूमि से
 बाहर ले गए हे राजन् ! उस समय तुम्हारे पुत्र के रथ को रण में से
 भागता हुआ देखकर तुम्हारे पुत्र तथा सहस्रों सैनिक भी भागने
 लगे और हे भारत ! सात्यकिने सेना को भागती हुई देखकर
 उसके ऊपर सुवर्ण की पूँछ डाले और शिला पर धिसे हुए बाण

सहस्रशः ॥ ४६ ॥ प्रययौ सात्यकी राजन् श्वेताश्वस्य रथं प्रति-
तं शरानाददानञ्च रक्षमाणञ्च सारथिम् । आत्मानं पालयानं च
तावकाः समपूजयन् ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे
दुर्योधनपालायने विशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । सम्प्रपृच्छु महत्सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम् ।
निर्होका मम ते पुत्राः किमकुर्वन् सञ्जय ॥ १ ॥ कथं वै पां तदा
युद्धे धृतिरासीन्नुर्मूर्ताम् । शैनेयचरितं दृष्ट्वा यादृशं सव्यसा-
चिनः ॥ २ ॥ किन्तु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं ते च युद्धपराजिताः ।
कथञ्च सात्यकिर्गुद्धे व्यतिक्रान्तो महायशः ॥ ३ ॥ कथञ्च
मम पुत्राणां जीवतां तत्र सञ्जय । शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममा-
चक्ष्व सञ्जय ॥ ४ ॥ अत्यदुःखमिदं तात त्वत्संकाशात् शृणो-

वरसानं आरम्भ करदिये, हे राजन् ! इसप्रकार तुम्हारी सहस्रों
सेनाओंकी भगाकर सात्यकि श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनके रथकी
ओरको चला गया, इस समय रणमें बाणोंको भाँधमेंसे खेंचते,
धनुष पर चढ़ाते और छोड़ते तथा अपनी और सारथिकी रक्षा
करतेहुए सात्यकिको देखकर तुम्हारे योधा उसकी प्रशंसा करने
लगे ॥ ३३—४७ ॥ एकसौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२०

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे संजय ! बड़ी भारी सेनाका संहार
करके सात्यकिको अर्जुनके रथकी ओरको जाते देखकर मेरे
निर्लज्ज पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १ ॥ अरे ! उन मृतप्राय हुए
मेरे पुत्रोंने जब सात्यकिके चरित्रको भी अर्जुनकी समान पाया
तब उनको किसप्रकार धीरज हुआ ? ॥ २ ॥ रणमें हारेहुए
मेरे पुत्र क्षत्रियोंके साधने क्या कहेंगे, कि-महायशस्वी सात्यकि
हमको इसप्रकार जीतकर चला गया ॥ ३ ॥ हे संजय ! यह तो
बता, कि मेरे पुत्रोंके जीवित रहतेहुए भी सात्यकि आगेको

म्यहम् । एकस्य बहुभिः सार्धं शत्रुभिस्तैर्महारथैः ॥ ५ ॥ विपरीत-
महं मन्ये मन्दभाग्यं सुतं प्रति । यत्रावध्यन्तं समरे सात्वतेन महं-
स्थाः ॥ ६ ॥ एकस्य हि न पर्याप्तं यत्सैन्यं तस्य सञ्जय । क्रद्व-
स्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥ विजित्य समरे
द्रोणं कृतिनश्चित्रयोधिनम् । यथा पशुगणान् सिंहस्तद्वदन्ता
सुतान्मम ॥ ८ ॥ कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे । युयुधानो न
शकितो हन्तुं यत्पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥ नैतदीदृशकं युद्धं कृतवास्तत्र
फाल्गुनः । यादृशं कृतवान् युद्धं शिनेनेप्ता महायशाः ॥ १० ॥
सञ्जय उवाच । तव दुर्ग्रन्थिते राजन् दुर्ग्रन्थितकृतेन च । शृणु-
ष्वावहितो भूत्वा यत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ ११ ॥ ते पुनः संन्यव-

कैसे बड़ा चलागया १-४ हे तात! मैं तुझसे यह अति आश्चर्यकी
बात सुन रहा हूँ कि—वह सात्यकि अकेला ही बहुतसे महारथियों
के साथ लड़ा था ॥ ५ ॥ मैं अपने पुत्रोंके भाग्यको बड़ा ही पोच
समझता हूँ, कि—समरमें अकेले सात्यकिने महारथियोंको हरा
दिया ॥ ६ ॥ हे संजय ! जब क्रोधमें मेरे अकेले सात्यकिके लिये
ही मेरी सेना पर्याप्त नहीं हुई तो सब पाण्डवोंके खड़े होने पर
तो मेरी सेनाका पता भी नहीं लगेगा ॥ ७ ॥ विचित्र प्रकारसे
युद्ध करनेमें कुशल द्रोणको जीतकर तो वह मेरे पुत्रोंको ऐसे
मारेगा जैसे सिंह पशुओंको मारता है ॥ ८ ॥ युद्धके लिये तमार
होने पर कृतवर्मा आदि शूर वीर भी जिसको न मारसके वह
पुरुषश्रेष्ठ निश्चय ही मेरे पुत्रोंको मारहालेगा ॥ ९ ॥ यह बात
वास्तवमें ठीक है, कि—ऐसा युद्ध अर्जुनने भी नहीं किया कि—
जैसा युद्ध महायशस्वी सात्यकिने किया है ॥ १० ॥ संजय
बोला, कि—हे भरतवंशी राजन् तुम्हारे खोटे विचार तथा दुर्ग्र-
न्थनके दुष्कर्मोंका यह परिणाम है अब जो मैं तुमसे कहता हूँ उस
को तुम सावधान होकर सुनो ॥ ११ ॥ (भागते हुएोंमेंसे दुर्ग्र-

चन्त कृत्वा संशप्तका मिथः । परा युद्धे मतिं क्रूरां तव पुत्रस्य
 शासनात् ॥ १२ ॥ त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः ।
 शककाम्बोजबान्हीका यवनाः पारदास्तथा ॥ १३ ॥ कुलिन्दा-
 स्तङ्गणाम्बुष्टाः पैशाचाश्च सर्ववराः पार्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुशाः
 पापाणपाणयः ॥ १४ ॥ अभ्यद्रवंस्ते शैनेयं शलभाः पावकं यथा ।
 युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पापाणयोधिनाम् ॥ १५ ॥ शूराः
 पञ्चशता राजन् शैनेयं समुपाद्रवन् । ततो रथसहस्रेण महारथ-
 शतेन च ॥ १६ ॥ द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः । शर-
 वर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः ॥ १७ ॥ अभ्यद्रवंत शैने-
 यमसंख्येयारच पचया । तान् च सञ्चोदयन् सर्वान् हतैर्नाति
 भारत ॥ १८ ॥ दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् । तत्राद-
 भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ॥ १९ ॥ यदेको बहुभिः सार्द्धम-

धनकी आज्ञासे संशप्तक नामके योधा शत्रुके सामने लड़नेका
 आपसमें बड़ा पक्का और क्रूर विचार करके फिर लौट पड़े १२
 हे राजेन्द्र ! इस समय जिनमें दुर्योधन आगे था ऐसे तीन सहस्र
 घुडसवार और शक,कम्बोज, बान्हीक, यवन, पारद, कुलिन्द,
 तङ्गण, अम्बुष्ट, पिशाच, वर्वर तथा क्रोधमें भरेहुए पर्वतवासी
 योधा हाथोंमें पत्थर ले भुनगे जैसे दीपककी ओरको लपकते हैं
 तैसे ही सात्यकिके पीछे दौड़े, हे राजन् ! पत्थरोंसे लड़नेवाले
 पहाड़ी योधाओंके पाँच सौ रथी सात्यकिके पीछे दौड़े सहस्रों
 रथी, सैंकड़ों महारथी, एक सहस्र हाथीसवार और दो सहस्र
 घुडसवार तथा अगणित पैदल नाना प्रकारके अस्त्रोंको छोड़ते
 हुए, सात्यकिके पीछे दौड़े, हे भरतवंशी महाराज ! सात्यकि
 को मारडालो २ इसप्रकार सबको उत्तेजित करतेहुए दुःशासन
 ने सात्यकिको घेरलिया, उस समय हमने सात्यकिके अद्भुत
 पराक्रमको देखा, कि वहुनोंके साथ वह बिना घबड़ाये

सम्प्रान्तमपुध्यत । अवधीच्च रथानीकं द्विरदानाञ्च तद्वलम् २०
 सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः । तत्र चक्रैर्विम-
 थितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥ २१ ॥ अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीपादङ्क-
 बन्धुरैः । कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २२ ॥
 वर्मभिश्च तथानीके व्यवकीर्णा वसुन्धरा । मृगभराभरणैर्वस्त्रै-
 रनुकपैश्च मारिष ॥ २३ ॥ संच्छन्ना वसुधा तत्र शरदि द्यौर्ग्रहै-
 रिव । गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः ॥ २४ ॥ अञ्ज-
 नस्य कुले जाता वामनस्य च भारत । सुमतीकुले जाता महापद्म-
 कुले तथा ॥ २५ ॥ ऐरावतकुले चैव तथान्येषु कुलेषु च । जाता
 दन्तिवरा राजन् शरते बहवो हताः ॥ २६ ॥ वनायुजान् पार्वती-
 यान् काम्बोजान् बाल्हीकानपि । तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने
 तैव सात्यकिः ॥ २७ ॥ नानादेशसमुत्थारश्च नानाजातीश्च दन्तिनः ॥
 निजघ्ने तत्र शैलेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥ तेषु प्रकान्य-

अकेला ही लडरहा था और रथसेना, इस्तिसेना, घुडसवार
 तथा सकल चोरोंका भी वध करता जाता था हे राजन् !
 इस समय टूटे फूटे पहिये, अस्त्र, बहुतसे छुरे, टूटे फूटे ईपा-
 दण्ड, घायल हुए हाथी, गिरीहुई ध्वजारें, कवच, माला,
 गहने, वस्त्र रथके नीचेके भाग तथा मरे हुए योधाओंसे ढकीहुई
 रणभूमि नक्षत्रोंसे भरे आकाशकी समान शोभा पारही थी हे
 राजन् ! पर्वतकी समान आकारवाले अंजन, वामन, सुमतीक,
 महापद्म, ऐरावत तथा और २ कुलोंमें उत्पन्न हुए बहुतसे श्रेष्ठ
 श्रेष्ठ हाथी मरकर भूमि पर सोरहे थे ॥ २३-२६ ॥ हे राजन् !
 वनायु, काम्बोज, बाल्हीक और पहाड़ोंमें उत्पन्न हुए उत्तम २
 घोड़ोंको सात्यकिने मार डाला ॥ २७ ॥ सात्यकिने अनेकों देशों
 में उत्पन्न हुए और नाना जातियोंमें उत्पन्न हुए सैंकड़ों और
 सहस्रों हाथियोंका तहाँ संहार कर डाला ॥ २८ ॥ सबका संहार

सम्प्रान्तमयुध्यत । अवधीच्च रथानीकं द्विरदानाञ्च तद्वलम् २०
 सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः । तत्र चक्रैर्वि-
 थितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥ २१ ॥ अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीपादङ्क-
 वन्धुरैः । कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २२ ॥
 वर्मभिश्च तथानीके व्यवकीर्णा वसुन्धरा । सुगिराभरणैर्वस्त्रै-
 र्नुक्यैश्च मारिष ॥ २३ ॥ संच्छन्ना वसुधा तत्र शरदि द्यौर्ग्रहै-
 रिव । गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोचमाः ॥ २४ ॥ अञ्ज-
 नस्य कुले जाता वामनस्य च भारत । सुप्रतीककुले जाता महापद्म-
 कुले तथा ॥ २५ ॥ ऐरावतकुले चैव तथान्येषु कुलेषु च । जाता
 दन्तिवरा राजन् शेरते बहवो हताः ॥ २६ ॥ वनायुजान् पार्वती-
 यान् काम्बोजान् बाल्हिकानपि । तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने
 तव सात्यकिः ॥ २७ ॥ नानादेशसमुत्थैश्च नानाजातीयैश्च दन्तिनः ॥
 निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥ तेषु प्रकल्प-

अकेला ही लडरहा था और रथसेना, हस्तिसेना, घुडसवार
 तथा सकल चोरोंका भी वध करता जाता था हे राजन् !
 इस समय दूटे फूटे पहिये, अस्त्र, बहुतसे छुरे, दूटे फूटे ईपा-
 दण्ड, घायल हुए हाथी, गिरीहुई ध्वजायें, कवच, माला,
 गहने, वस्त्र रथके नीचेके भाग तथा मरेहुए योधाओंसे ढकीहुई
 रणभूमि नक्षत्रोंसे भरे आकाशकी समान शोभा धारही थी हे
 राजन् ! पर्वतकी समान आकारवाले अंजन, वामन, सुप्रतीक,
 महापद्म, ऐरावत तथा और २ कुलोंमें उत्पन्न हुए बहुतसे श्रेष्ठ
 श्रेष्ठ हाथी मरकर भूमि पर सोरहे थे ॥ १३-२६ ॥ हे राजन् !
 वनायु, काम्बोज, बाल्हिक और पहाड़ोंमें उत्पन्नहुए उत्तम २
 घोड़ोंको सात्यकिने मारडाला ॥ २७ ॥ सात्यकिने अनेकों देशों
 में उत्पन्नहुए और नाना जातियोंमें उत्पन्नहुए सैंकड़ों और
 सहस्रों हाथियोंका तहाँ संहार करडाला ॥ २८ ॥ सबका संहार

सात्यकिः प्रतिसन्धाय निशितान् प्राहिणोच्छ्रगन् ॥ ३६ ॥
 तामश्मवृष्टिं तुमुलां पार्वतीयैः समीरिताम् । विच्छेदोरगसंकाशैः
 नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥ ३७ ॥ तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योताना-
 मिव ब्रजैः । प्रायः सैन्यान्यहन्यत हाहाभूतानि मारिष ॥ ३८ ॥
 ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः । निकृच्छवाहवो राजन्
 निपेतुर्धरणीतले ॥ ३९ ॥ पुनर्दश शताश्चान्ये शतसाहस्रिणस्तथा ।
 सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम् ॥ ४० ॥ पाषाण-
 योधिनः शूरान्यतमानानवस्थितान् । न्यवधीद्वहस्रादसून् तदद्भु-
 तमिवाभवत् ॥ ४१ ॥ ततः पुनर्व्यात्तमुख्वास्तेश्मवृष्टीः समन्ततः ।

ले सब दिशाओंको रोककर खड़े होगए ॥ ३५ ॥ शिलायुद्ध
 करनेकी इच्छासे आतेहुए उन योधाओंको सात्यकिने तीक्ष्ण
 बाणोंसे मारना आरम्भ करदिया ॥ ३६ ॥ पहाड़ी योधाओं
 की फैंकीहुई पत्थरोंकी वर्षाको शिनिपुङ्गव सात्यकिने सर्पकी
 समान आकारके बाण मारकर छिन्न भिन्न करडाला ॥ ३७ ॥
 हे राजन् ! तुरन्त ही पटवीजनोंकी समान चपकतेहुए पत्थरोंके
 टुकड़ोंके गिरनेसे तुम्हारी सेनाएँ ही मरनेलगीं और बड़ा भारी
 हाहाकार मचगया ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर जिन्होंने हाथमें
 शिलाएँ उठाती थीं ऐसे पाँचसौ वीरोंकी भुजाओंको सात्यकिने
 काटडाला और वे प्राणहीन हो पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ३९ ॥ फिर
 सात्यकिने अपने ऊपर प्रहार करनेके लिये झपटकर आतेहुए
 सहस्रों तथा लाखों योधाओंके शिलासहित हाथोंको बाण मारकर
 काटडाला और वे सात्यकिके पास पहुँचे बिना मार्गमें ही मर
 कर पृथ्वीमें लुढ़क पड़े ॥ ४० ॥ सात्यकिने पाषाणयोधी, युद्ध
 करनेका उद्योग करतेहुए उन सहस्रों शूर वीरोंको मारडाला,
 यह देखकर हमें बड़ा अचरज हुआ ॥ ४१ ॥ तदनन्तर दरद,
 तङ्गण, खस, लम्पाक और कुलिन्द हाथमें लोहेके भाले ले मुख

अयोहस्ताः शूलहस्ता दग्धास्तङ्गणाः स्वशाः ॥ ४२ ॥ लम्पाकारच
कुलिन्दाश्च चित्तिपुस्ताश्च सात्यकिः । नाराचैः प्रतिचिच्छेद
प्रतिपत्तिविशारदः ॥ ४३ ॥ अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः
शरैः । शब्देन प्राद्वन् संख्ये रथाश्चगजपत्तयः ॥ ४४ ॥ अश्म-
चूर्णैरवाकीर्णान् मनुष्यगजवाजिनः । नाशवन्नुन्नवस्थातुं अमरै-
रिव दंशिताः ॥ ४५ ॥ हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः ।
कुञ्जरा वर्जयामासुर्धुधुधानरथं तदा ॥ ४६ ॥ ततः शब्दः सम्भवत्
तत्र सैन्यस्य मारिष । माधवेनार्द्यमानस्य सांगरस्येव पर्वणि ॥ ४७
तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत् । एष सूत रणे क्रुद्धः
सात्वतानां महारथः ॥ ४८ ॥ दारयन् बहुधा सैन्यं रणे चरति

फाड़कर सात्यकिके ऊपर चढ़ाए और वे भी उसके ऊपर
पत्थरोंकी वर्षा करनेलगे, परन्तु शस्त्र चलानेमें कुशल सात्यकि
ने बाण मारकर उनकी बाणवृष्टियोंको छिन्न भिन्न करना
आरम्भ करदिया ॥ ४२-४३ ॥ बाणोंने आकाशमें जा पत्थरों
के टुकड़े २ करने आरम्भ करदिये, तब तो उनके टूटनेके कड़
कड़ शब्दसे (भयभीत हो) रथ, घोड़े और पैदल रणमेंसे
भागनेलगे ॥ ४४ ॥ मनुष्य घोड़े और हाथी, आकाशमेंसे गिरते
हुए पत्थरोंकी मारसे, औरोंके काटेहुएसे रणमें खड़े न
रहसके ॥ ४५ ॥ मरनेसे बचेहुए खूनसे लथपथक तथा जिनके
जिनके मस्तकोंकी हड्डियें फूट गई थी वे हाथी भी उस समय
सात्यकिके रथको छोड़कर भागगए ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! उस समय
सात्यकीकी मसलीहुई तुम्हारी सेनाका शब्द पूर्णिमाके दिन बढ़ते
हुए समुद्रके शब्दकी समान होरहा था ॥ ४७ ॥ उस तुमुल शब्द
को सुनकर द्रोणने अपने सांगरिसे कहा, कि-हे सूत ! सात्वत-
वंशी महारथी सात्यकि क्रोधमें भरकर रणमें कालकी समान
हमारी सेनाका बहुधा संहार करता हुआ घूमरहा है, अतः हे

कालिवत् । यत्रैष शब्दस्तुमुजस्तत्र सूत रथं नय ॥४६॥ पापाण-
योधिः नृ नं युयुध नः समागतः । तथा हि रथिनः सर्वे हियन्ते
विद्रुतैर्हयैः ॥४७॥ विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्र तत्र पतन्ति च । न
शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ४८ ॥ इत्येतद्वचनं
श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः । प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां
वरम् ॥ ४९ ॥ सैन्यं द्रवति चायुष्मन् कौरवेयं समन्ततः । पश्य
योधात्रणे भग्नान् धावतो वै ततस्ततः ॥ ५० ॥ इमे च संहता
शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ५१ ॥ त्वामेव हि
जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः ॥ ५२ ॥ अत्र कार्यं समा-
धत्स्व प्राप्तमालम्बमरिन्दम । स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च
सात्यकिः ॥ ५३ ॥ तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य सारथेः ।

सूत ! जहाँ यह कोलाहल हो रहा है, तहाँ मेरे रथको ले चल ४६
निश्चय ही पत्थरोंसे लड़नेवाले पहाड़ियोंके साथ ही सात्यकि
का युद्ध हो रहा है, इसलिये ही सब रथियोंको छोड़ तेजीसे
भागते लिये जा रहे हैं ॥ ४७ ॥ शस्त्र तथा कवचहीनहुए योधा
घायल होकर चारों ओरको भाग रहे हैं सारथि इस तुमुल युद्धमें
घोड़ोंको रोक नहीं सकते और भड़केहुए घोड़े जोरसे दौड़ रहे हैं
इसका भी यही कारण है ॥ ४८ ॥ सारथिने द्रोणाचार्यकी इस
बातको सुनकर सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणसे कहा कि-४९
हे आयुष्मन् ! देखो ! देखो ! कौरवोंकी सेना चारों ओरको भाग
रही है तथा झिन्न भिन्न हुए योधा भी चारों ओर दौड़ रहे
हैं ॥ ५० ॥ और इधर ये शूरवीर पांचाल राजे तुमको मारने
की इच्छासे पाँडवोंके साथ इकट्ठे हो चारों ओरसे हमारे ऊपर
चढ़े चले आ रहे हैं ॥ ५१ ॥ अतः हे शत्रुनाशक ! यहाँ रहना
चाहिये अथवा आगे बढ़ना चाहिये इसका तुम समयोचित निर्णय
कर मुझे आज्ञा दो और सात्यकि भी बहुत दूर पहुँच गया है ५३

प्रत्यदृश्यत शौनेयो निघ्नन् बहुविधान्नयान् ॥ ५६ ॥ ते वध्यमानाः
समरे युयुधानेन तावकाः । युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय
दुद्रुवुः ॥ ५७ ॥ यैस्तु दुःशासनः सार्द्धं रथैः पूर्वं न्यवर्त्तत । ते
भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकि-

प्रवेशे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

सञ्जय उवाच । दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ दुःशासन रथाः
सर्वे कस्माच्चैते प्रविद्धताः । कश्चित् क्षेमन्तु नृपतेः कच्चिज्जीवति
सैन्धवः ॥ २ ॥ राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः । किमर्थं
द्रवते युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥ ३ ॥ दासी जितासि द्यूते त्वं
यथा कामचरी भव । वाससा चाहिका राज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मे

द्रोणको सारथि यह कह रहा ही था कि-बहुतसे योधाओंका
संहार करता हुआ सात्यकि दीखा ॥ ५६ ॥ और युयुधानके हाथसे
मरे हुए तुम्हारे सैनिक सात्यकिके रथको छोड़, द्रोणको सेनाकी
ओर भागे ॥ ५७ ॥ तथा जिन रथियोंके साथ दुःशासन पहिले
सात्यकिसे लड़नेके लिये गया था वे रथी भी भयभीत हो द्रोण
के रथकी ओर (शरणके लिये) दौड़े ॥ ५८ ॥ एकसौ इक्की-
सवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२१ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! द्रोणने दुःशासनके रथको अपने
समीप खड़ा हुआ देखकर उससे कहा कि-॥ १ ॥ ओ दुःशासन ! यह
सब रथी क्यों भाग रहे हैं ? राजा दुर्योधनका तो कुछ बाल बॉका
नहीं हुआ है ? सिंधुराज जयद्रथ भी जीवित है या नहीं ॥ २ ॥
तुम राजपुत्र हो, राजाके भाई हो और महारथी हो तथा तुमको
युवराजकी पदवी मिली है तब भी तुम युद्धमेंसे कैसे भागते हो ?
“तू जुएमें जीती हुई दासी है अतः हमारी इच्छाके अनुसार काम

भव ॥ ४ ॥ न सन्ति पनयः सर्वे तेद्य पण्डितिलः समाः । दुःशा-
सनैवं कस्माच्च पूर्वमुवत्वा पलायसे ॥ ५ ॥ स्वयं वैरं महत् कृत्वा
पञ्चालैः पाण्डवैः सह । एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोसि
संयुगे ॥ ६ ॥ न जानीषे पुरा त्वन्तु गृह्णन्नृचान् दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः ॥ ७ ॥ प्रमिथ्याणां
हि वचसां पाण्डवेषु विशेषतः । द्रौपद्याश्च परिवलेशस्त्वन्मूलो
ह्यभवत् पुरा ॥ ८ ॥ क्व ते मानश्च दर्पश्च क्व ते वीर्यं क्व गर्ज-
नम् । आशीविषसमान् पार्थान् क्रोपयित्वा क्व यास्यसि ॥ ९ ॥
शोच्येयं भारती सेना राज्यं चैव सुयोधनः । यस्य त्वं कर्कशो
आता पलायनपरायणः ॥ १० ॥ ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा

करे और मेरे बड़े भाईके कपड़े धोनेका काम कर पाण्डवोंमेंसे
कोई भी पाण्डव तेरा पति नहीं है वे तो अब बिना तेलके तिलकेसे
हैं अरे दुःशासन ! पहिले द्रौपदीसे तूने ऐसी कड़ी २ बातें कहीं
थीं अब फिर तू कौनसा मुख लेकर भागता है ॥ ५ ॥ तूने जो
स्वयं ही सब पांचाल और पाण्डवोंसे बड़ा भारी वैर ठाना था
अब फिर अकेले सात्यकिके सामने ही तू कैसे डरगया ॥ ६ ॥
पहिले जुएमें पाशोंको पकड़ते समय तुझे यह खबर नहीं थी
कि—ये फाँसे ही दारुण सर्पोंकी समान दाए वन जावेंगे ॥ ७ ॥
पहिले पाण्डवोंको अधिकतर तूने ही अप्रिय वचन सुनाए थे उस
को तू भूलगया क्या ? और द्रौपदीको बड़ा भारी क्लेश भी तेरे
ही कारणसे पहुँचा था ॥ ८ ॥ तेरा वह मान वीर्य और गर्जना
अब कहाँ चली गई ? अरे ! पाण्डवोंको सर्पकी समान क्रोधित
करके अब तू कहाँको भागा जाता है ? ॥ ९ ॥ यह भरतवंशी
राजाकी सेना, राज्य और दुर्योधन सब ही सोचने योग्य दशा
में आपड़े हैं क्यों कि—तेरी समान कठोर हृदयका भाई ऐसे
आपत्तिके समयमें भागनेको तयार होगया है ॥ १० ॥ हे वीर !

भयार्हिता । स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या क्षणीकिनी ॥ ११ ॥
 स त्वमद्य रणं हित्वा भीतो हर्षयसे परान् । विद्रुते त्वयि सैन्यस्य
 नायके शत्रुसूदन ॥ १२ ॥ कोन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते
 व्यपाश्रये । एकेन सात्वतेनाद्य युध्यमानस्य तेन वै ॥ १३ ॥ पला-
 यने तव मतिः संग्रामाद्भिः प्रवर्तते । यदा गाण्डीवधन्वानं भीम-
 सेनञ्च कौरव ॥ १४ ॥ यमौ वा युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करि-
 ष्यसि । युधि फाल्गुनवाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ॥ १५ ॥ न
 तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे । त्वरितो वीर गच्छ त्वं
 गांधार्थुर्दरमाविश १६ पृथिव्यां धावमानस्य नान्यत्परयामि जीव-
 नम् । यदि तावत्कृता बुद्धिः पलायनपरायणा ॥ १७ ॥ पृथिवी धर्म-

इस समय भयभीत हो भागतीहुई कौरव सेनाकी तुम्हें अपने
 बाहुबलसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥ परन्तु तू तो इस समय
 भयसे रणको छोड़कर शत्रुओंको प्रसन्न कर रहा है, हे शत्रु-
 सूदन ! जब तू सेनाका नेता और अवलंब होताहुआ डरकर भाग
 जायगा ॥ १२ ॥ तब फिर भयभीतहुआ दूसरा कौन इस
 युद्धमें खड़ा रहेगा ? आज अकेले जूझतेहुए सात्यकिके साथ
 लड़तेमें तू संग्राम छोड़कर भागना चाहता है तो हे कौरव ! जब
 गांधीवधारी अर्जुन भीम अथवा नकुल, सहदेवको युद्धमें देखेगा
 तब तू क्या करेगा ? सात्यकिके बाण तो सूर्य और अग्नि की समान
 चमकते हुए अर्जुनके बाणोंकी समान नहीं हैं कि-उनसे डरकर
 तू भागाजाता है ? हे वीर ! भागना ही हो तो तू झपटकर शीघ्रता
 से गान्धारीके पेटमें घुस जा १३-१६ क्योंकि-पृथ्वीमें और जहाँ
 कहीं भी तू भागकर जायगा वहाँ तेरे प्राण नहीं बचेंगे, यदि तेरा
 विचार भागनेका ही हो तो शान्तिके साथ ही यह पृथ्वी तू
 युधिष्ठिरको सौंपदे, जब तक कैचुलीरहिन सर्पकी समान छूटेहुए
 अर्जुनके बाण तेरे शरीरमें नहीं घुसने हैं उससे पहिले ही पाँडवों

राजाय शमेनैव प्रदीयताम् । यावत् फाल्गुननाराचा निर्मुक्तोरग-
सन्निभाः॥ १८ ॥ नाविशन्ति शरीरन्ते तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।
यावत्ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ॥ १९ ॥ नाक्षिणन्ति
महात्मानस्तावत् संशाम्य पाण्डवैः । यावन्न क्रुध्यते राजा
धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २० ॥ कृष्णश्च समरश्लाघी तावत् संशाम्य
पाण्डवैः । यावद्भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीन्वमूम् २१ सोदरास्ते
न गृह्णाति तावत् संशाम्य पाण्डवैः । पूर्वमुक्तञ्च ते भ्राता भीमे-
णासौ सुयोधनः॥ २२ ॥ अजेयाः पाण्डवाः संख्ये सौम्य संशा-
म्य तैः सह । न च तत् कृतवान् मन्दस्तव भ्राता सुयोधनः॥ २३ ॥
सं युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः । तवापि शोणितं
भीमपास्यतीति मया श्रुतम् ॥ २४ ॥ तच्चाप्यवितथं तस्य तत्तथैव
भविष्यति । किं भीमस्य न जानासि विक्रमं त्वं सुवालिश २५
यत्त्रया वैरमारब्धं संयुगे प्रपलायिना । गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र

से सन्धि करले यह पृथ्वी तू उनके अर्पण करदे जबतक महात्मा
पाण्डव तेरे सौ भाइयोंको मारकर तेरी पृथ्वीको नहीं जीतलेते हैं
उससे पहिले ही तू सन्धि करले, महाबाहु भीमसेनके तेरी बड़ी
भारी सेनाको विलोडित कर भाइयोंको पकड़नेसे पहिले ही तू
पाण्डवोंसे सन्धि करले, हे सौम्य ! भीष्मजीने पहिले तेरे भाई
सुयोधनसे कहा था, कि-पाण्डवोंको समरमें जीतना असम्भव है
परन्तु तेरे मन्दबुद्धि भ्राताने उनकी एक-न सुनी ॥ १७-२३ ॥
अतः अब तू धीरज धरकर सावधान हो और पाण्डवोंसे युद्ध
कर मैंने सुना है कि-भीम तेरे रुधिरको पियेगा ॥ २४ ॥ यह
वात सत्य है और ऐसा ही होगा अरे ! ओ महामुख ! तू क्या
भीमके पराक्रमको जानता नहीं था, कि-जो तूने उसके साथ पहिले
तो बड़ा भारी वैर बाँधा और अब युद्धमेंसे भागाजाता है ? हे
भरतवंशी ! जहाँ सांत्यकि खड़ा है, उसे स्थान पर तू शीघ्र ही

निष्ठति सात्यकिः ॥२६॥ त्वया दीनं बलं ह्येतद्विद्रव्यति भारत ।
 आत्मार्षं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥२७॥ एवमुक्तस्तव
 सुतो नाब्रवीत् किञ्चिदप्यर्था । श्रुत्वाञ्चाश्रुतवत् कृत्वा प्रायाद्येन
 स सात्यकिः ॥ २८ ॥ सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्ति-
 नाम् । आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥२९॥ द्रोणोपि
 रथिनां श्रेष्ठः पञ्चालान् पाण्डवांस्तथा । अभ्यद्रवत संकुटो जव-
 मास्थाय मध्यमम् ॥ ३० ॥ प्रविश्य च रणे द्रोणः पाण्डवानां
 बल्यि-री । द्रावयामास योधान् वै शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३१ ॥
 ततो द्रोणो महागजं नाम विश्राव्य संयुगे । पाण्डुपाञ्चालम-
 त्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥ ३२ ॥ तं जयन्तमनीहानि भार-
 द्वाजं ततस्ततः । पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान् वीरकेतुः समभ्ययात् ३२
 स द्रोणं पञ्चभिर्विध्वा शरैः सग्नतपर्वभिः । ध्वजमेकेन विव्याच-

जा, तेरे बिना तो यह सब सेना भागजायगी, अतः अपने लिये
 नहीं तो बन्धुजनोके लिये तो सत्यपराक्रमी सात्यकिसे रणमें
 लड २५-२७ ॥ इतनी बात कहलाने पर तुम्हारा पुत्र कुञ्ज
 न बोला और मुनेहुएको अनमुना सा करके सात्यकिकी और
 को चला ५८ पीछेको न हटनेवाले म्लेच्छोंकी बड़ीभारी सेना
 लेकर दुःशासन युद्धमें जा सात्यकिसे लडनेलगा ॥२९॥ रथियों
 में श्रेष्ठ द्रोण भी क्रोधमें भर मध्यम वेगसे पञ्चाल और पाण्डवों
 के ऊपर दौड़े द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनामें घुसकर सैंकड़ों
 और सहस्रो योधाओंको भगाने लगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज !
 उस समय द्रोण अपने नामको सुना २ कर पाण्डव, पांचाल और
 मत्स्यसेनाका घोर संहार करनेलगे ॥ ३२ ॥ इधर उधर सेनाओं
 को जीतते फिरतेहुए द्रोणके सामने पञ्चालपुत्र कान्तिमान् वीर-
 केतु जाहटा ॥ ३३ ॥ उसने नमीहुई गाँठवाले पाँच बाणोंसे
 द्रोणको घायल कर एक बाणसे उनकी ध्वजाको काटडाला

सारथिञ्चास्य सप्तभिः ॥ ३४ ॥ तत्रादभुतं महाराज दृष्टवानस्मि
संयुगे । यद् द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाभ्यवर्त्तत ॥ ३५ ॥
सन्निरुद्धं रणं द्रोणं पाञ्चाला वीक्ष्य मारिष । आवन्नः सर्वतो
राजन् धर्मपुत्रजयैषिणः ॥ ३६ ॥ तैः शरैरग्निस्तङ्काशैस्तोमरैश्च
महाधनैः । शस्त्रैश्च विविधै राजन् द्रोणमेवमवाकिरन् ॥ ३७ ॥
निहत्य तान् बाणगणैर्द्रोणो राजन् समन्ततः । महाजलधरान्
ज्योम्नि मातरिश्वेव चावभौ ॥ ३८ ॥ ततः शरं महाघोरं
सूर्यपावकसन्निभम् । सन्दर्धं परवीरघ्नो वीरकेतो रथं
प्रति ॥ ३९ ॥ स भिक्षा तु शरो राजन् पांचालकुञ्जनन्दनं । अभ्य-
गादरणीं तूर्णं लोहिताद्रौ ज्वलन्निव ॥ ४० ॥ ततोपतद्रथात्तूर्णं

और सात बाणोंसे सारथिको घायल कर दिया ॥ ३४ ॥ तहाँ
इमने एक आश्चर्य देखा, कि-द्रोण वेगसे युद्ध करनेवाले पांचाल-
कुमारको युद्धमें दबा न सके ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! रणमें द्रोणको
रुकाहुआ देखकर, धर्मराजकी जय चाहनेवाले बहुतसे योधाओं
ने द्रोणको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३६ ॥ वे सबके सब
अग्निकी समान स्पर्शवाले बाण तोमर, तथा विविध प्रकारके
अस्त्रोंको अकेले द्रोणके ऊपर फेंकने लगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् !
द्रोणने भी बाणोंकी वर्षाकर उनके सकल अस्त्र शस्त्रोंको निष्फल
कर दिया और आकाशमें बड़े २ बादलोंको तिसर वितर कर
डालनेवाले वायुकी समान शोभा पाने लगे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर
शत्रुओंके वीरोंको नष्ट कर देनेवाले द्रोणने सूर्य और अग्निकी
समान महाभयङ्कर बाण लेकर धनुष पर चढ़ाया और वीरकेतु
के रथकी ओरको छोड़ा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! वह बाण पांचाल-
कुञ्जनन्दन वीरकेतुको घायल करके रक्तसे सनाहुआ, जलता
हुआसा शीतलताके साथ पृथ्वीमें धुसगया ॥ ४० ॥ तदनन्तर
पहाड़के शिखर परसे आँधीपे उखड़ेहुए बड़े भारी चम्पेके वृक्ष

पांचालकुलनन्दनः । पर्वताग्रादिव महाशरच्चक्रो वायुपीडितः ४१
तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले । पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं
समन्तात् पर्यवारयन् ४२ चित्रकेतुः सुधन्वा चित्रवर्मा च भारता तथा
चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्षिताः ॥ ४३ ॥ अभ्यद्रवन्त सहिता
भारद्वाजं युयुत्सवः । मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपाः ते जलदा इव ४४
स वध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः । क्रोधमाधारयतेषामभावाय
द्विजर्षभः ॥ ४५ ॥ ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत् । ते
हन्यमानाः द्रोणस्य शरैराकर्ण्योदितैः ॥ ४६ ॥ कर्तव्यं नाभ्यजा-
नन् वै कुमारः राजसत्तम । तान् विमृष्टान् रणे द्रोणः प्रहसन्निव
भारत ॥ ४७ ॥ व्यश्वसूतरथारचक्रे कुमारान् कुपितो रणे । तथा
शरैः मुनिशितैर्भक्तैस्तेषां महायशाः ॥ ४८ ॥ पुष्पाणीव विचि-

की समान वह पञ्चालकुमार रथमेंसे पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ४१ ॥ उस
महायन्तुर्धर महाबली राजपुत्रके मारे जाते ही पञ्चालोंने द्रोणको
घेरलिया ४२ हे भरतवंशी राजन् ! भाईके मरणसे खिन्न हुए चित्र-
केतु, सुधन्वा चित्रवर्मा और चित्ररथ युद्ध करनेकी इच्छासे द्रोणके
ऊपर चढ़ दौड़े और वर्षा श्रुतमें जलवाले मेघोंकी समान बाण
वर्षा करनेलगे ॥ ४३-४४ ॥ जब सब महारथी राजपुत्र उनको
बहुत ही घीघनेलगे तब तो ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणको उनका नाश
करनेके लिये बड़ा क्रोध चढ़ा ॥ ४५ ॥ हे भरतवंशी राजाओंमें
श्रेष्ठ ! फिर द्रोण उनके ऊपर बाणोंका जालसा बिछादिया,
जब द्रोण कानपर्यन्त धनुषको खेंचकर बाण छोड़नेलगे उस समय
पञ्चाल राजकुमार घबड़ाकर यह भी भूलगये, कि—अब क्या
करना चाहिये, तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए द्रोणने उन कुमारोंको
घबड़ाया हुआ देखकर मुस्कराते ० उनके घोड़े, सारथि और
रथोंको नष्ट कर उनको रथहीन दिया, तदनन्तर महायशस्वी
द्रोणने दूसरे भल्ले नामक तेज बाणोंसे उनके शिरोंको दण्डी

न्वन हि सोत्तमाङ्गान्यरातयत् । ते रथेभ्यो इतः पेतुः क्षितौ राजन्
 सुवर्चसः ॥ ४६ ॥ देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः । तान्नि-
 इत्यरणो राजन् भारद्वाजः प्रनापवान् ॥ ५० ॥ कार्पुकं भ्रामया-
 मास हेमपृष्ठं दुरासदम् । पञ्चालान्निहतान् दृष्ट्वा देवकल्पान्म-
 हारयान् ॥ ५१ ॥ धृष्टद्युम्नो धृशोद्विनो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम् ।
 अभ्यवर्त्तन संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ५२ ॥ ततो हाहेति
 सहसा नादः समभवन्नृप । पांचाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमाकारितं
 शरैः ॥ ५३ ॥ स छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना । न
 विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवान्वयुध्यत ॥ ५४ ॥ ततो द्रोणं महा-
 राज पांचाल्यः क्रोधमूर्च्छितः । आजघानोरसि क्रुद्धो ननत्या नत-
 पर्वणाम् ॥ ५५ ॥ स गाढविद्धो मलिना भारद्वाजो महायंशाः ।

परसे फूलोंको तोड़नेकी सत्तान, काटना आरम्भ करदिया पहिले
 जैसे देवासुर संग्राममें दैत्य और दानव मरकर गिरे थे तैसे ही
 वे तेजस्वी कुमार भी मरकर रथोंमेंसे धूमिपर गिरगये उन राज-
 कुमारोंको मारकर प्रतापी द्रोण अपने सुवर्णकी पीठवाले दुरा-
 सद धनुषको मण्डलाकारसे घुमाने लगे, देवताओंकी समान महा-
 रथी पंचालोंको मराहुआ देखकर धृष्टद्युम्न बहुत ही घबड़ागया
 और उसके नेत्रोंमेंसे आँसू बहनेलगे, उस समय वह क्रोधमें भरकर
 रणमें द्रोणके रथकी आरको जाचठा ॥ ४६-५२ ॥ इतनेमें ही सहसा
 सेनामें हाहाकार मचगया, क्योंकि-धृष्टद्युम्नने वाण मारकर
 द्रोणको रोकदिया था ॥ ५३ ॥ महात्मा धृष्टद्युम्नने वाणोंकी
 वर्षा करके द्रोणको ढकदिया, परन्तु इससे द्रोणके मनमें कुछ
 भी खेद न हुआ और वह हँसते २ लड़नेलगे ॥ ५४ ॥ तद-
 नन्तर धृष्टद्युम्न क्रोधके मारे अपने आपमें न रहा, और हे महा-
 राज ! उसने द्रोणकी छातीमें नमीहुई गाँठवाले नग्नै वाण
 मारे ॥ ५५ ॥ बलवान् धृष्टद्युम्नके प्रहारसे बहुत ही घायल

निषसाद रथोपस्थे कश्मलञ्च जगाम ह ॥ ५६ ॥ तं वै तथागतं
दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी । चापमुत्सृज्य शीघ्रन्तु असिं जग्राह
वीर्यवान् ॥ ५७ ॥ अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः ।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ॥ ५८ ॥ हतुमिच्छन्
शिरः कायात् क्रोधसंरक्तलोचनः । प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनु-
र्गृह्य महारथम् ॥ ५९ ॥ आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया ।
शरैर्वैतस्तिकै राजन् विव्याधासन्नर्वेधिभिः ॥ ६० ॥ योधयामास
समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् । ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्ने-
योधिनः ॥ ६१ ॥ द्रोणस्य विहिता राजन् यैर्धृष्टद्युम्नमास्त्रिणोद ।
स वध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः ॥ ६२ ॥ अवप्लुत्य
रथात्तूर्णं भगवेगपराक्रमी । आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च मह-

हुए महायशस्वी द्रोणाचार्य मूर्छित हो रथकी गद्दी पर बैठ गए ॥ ५६ ॥
पराक्रमी वीर्यवान् धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यकी दीन दशा देख
हाथमेंका धनुष तुरन्त ही नीचे धरदिया और नज़ी तलवार हाथमें
लेली ॥ ५७ ॥ वह महारथी अपने सुवर्णके रथमेंसे उतरकर
द्रोणके रथपर चढ़गया ॥ ५८ ॥ इस समय धृष्टद्युम्नके नेत्र
क्रोधसे लालताल होरहे थे और वह द्रोणका शिर काटना
चाहता था, कि-हे राजन् ! द्रोणकी मूर्छा टूटगई और उनको
चेतहुआ, तो उन्होंने देखा, कि-धृष्टद्युम्न उनको मारनेकी
इच्छासे उनके समीप ही खड़ा है, तब तो वह महाशब्द करने
वाले धनुषको ले उसके ऊपर समीपमें चोट करनेवाले वितस्त
नामके बाणोंको चढा महारथी धृष्टद्युम्नके मारनेलगे, समीपमें
खड़ेहुए पुरुषसे युद्ध करनेमें उपयोगी द्रोणके छोड़ेहुए वितस्त
नामके बाणोंसे धृष्टद्युम्न क्षीण होनेलगा बाणोंसे बहुत ही
विधजानेके कारण महाबली धृष्टद्युम्नका उत्साह भङ्ग होगया
और वह पराक्रमी द्रोणके रथके ऊपरसे कूदकर तुरन्त

द्रुतः ॥ ६३ ॥ विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः । द्रोण-
 अपि महाराजः शरैर्विव्याध पार्षतम् ॥ ६४ ॥ तदद्भुतमधृष्टदु-
 द्रोणपाञ्चालयोस्तदा । त्रैलोक्यकाञ्चिणोगसीच्छक्रप्रन्हादयो-
 रिव ॥ ६५ ॥ मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च । चरन्तौ
 युद्धमार्गज्ञौ ततस्तुरथेषुभिः ॥ ६६ ॥ मोहयन्तौ मनास्याजौ योधानां
 द्रोणपार्षतौ । सृजन्तौ शरवर्षाणि वर्षास्त्रिव वलाहकौ ॥ ६७ ॥
 छादयन्तौ महात्मानौ शरैर्व्योम दिशो महीम् । तदद्भुतं तयोर्धु-
 भूतसंघा इषूजयन् ॥ ६८ ॥ क्षत्रियाश्च महाराज ये चान्ये तत्र
 सैनिकाः । अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन संगतः ॥ ६९ ॥ वशमे-
 व्यति नो राजन् पश्चाला इति चुक्रुशुः । द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे
 ही अपने रथपर चढ़ गया, तहाँ जाकर महारथी धृष्टद्युम्न वड़ा
 भारी धनुष ले समरमें द्रोणको वीथने लगा, हे महाराज ! तथा
 द्रोण भी धृष्टद्युम्नको बाणोंसे वीथने लगे ॥ ५६-६४ ॥ पहिले
 जैसे त्रिलोकीके अधिपति वननेकी इच्छासे प्रलहाद और इन्द्रका
 युद्ध हुआ था ऐसे ही द्रोण और धृष्टद्युम्नका अद्भुत युद्ध हुआ
 था ॥ ६५ ॥ युद्धकी रीति जाननेवाले वे दोनों जने विचित्र
 प्रकारके मण्डलोंसे तथा यमकाकारसे (साधारणतया अथवा
 घेगसे दौड़ना आदि) फिरते थे और परस्परमें एक दूसरे पर
 बाणोंका प्रहार करते थे ॥ ६६ ॥ वर्षा ऋतुमें बूँदोंको बरसाने
 वाले मेघोंकी समान वे दोनों (धृष्टद्युम्न और द्रोण) बाणोंकी
 बरसाकर योधाओंको विस्मित कर रहे थे ॥ ६७ ॥ -उन महा-
 त्माओंने बाणोंसे आकाश, दिशा और पृथ्वीको भरदिया, उन
 दोनोंके अद्भुत युद्धकी हे महाराज ! सब क्षत्रिय, तथा
 तुम्हारे योद्धा भी प्रशंसा करने लगे हे राजन् ! उस समय पंचाल
 चिल्लाने लगे कि-धृष्टद्युम्नके सामने लड़ते हुए द्रोण अवश्य
 ही हमारे वशमें होजायँगे उस समय द्रोणने शीघ्रता करके धृष्ट-

धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ॥ ७० ॥ शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं
तरोरिव । ततस्तु प्रद्रुता बाहा राजंस्तस्य महात्मनः ॥ ७१ ॥
तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा । अयोधयद्रणे द्रोणस्तत्र
तत्र पराक्रमी ॥ ७२ ॥ विजित्य पाण्डुपञ्चालान् भारद्वाजः प्रताप-
वान् । स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितोभवदरिन्दमः । न चैनं पांडवा
युद्धे जेतुमुत्सेहिरे प्रभो ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते । द्वाणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे
द्रोणपराक्रमे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

सञ्जय उवाच । ततो दुःशासनो राजन् शैनेयं समुपाद्रवत् ।
किरन् शरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १ ॥ स विध्वा
सात्यकिं पण्ड्या तथा पोडशभिः शरैः । नाकम्पयत् स्थितं युद्धे
मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २ ॥ तं तु दुःशासनः शूरः सायकैरावृणोद्

द्युम्नके सारथिका शिर भटसे इसमकार पृथक् करदिया जैसे
पकाहुआ फल पेड़ परसे गिरादिया जाता है, हे राजन् ! तदन-
उस महात्मा धृष्टद्युम्नके घोड़े इधर उधरको भागनेलगे ६८-७१
जब उसके घोड़े रणमेंसे भागनेलगे तब द्रोण इधर उधर खड़े
पंचाल और सृञ्जयोंसे लड़नेलगे ॥ ७२ ॥ प्रतापवान् अरिन्दम द्रोणा-
चार्य पाण्डव और पांचालोंको जीतकर फिर अपने व्यूहमें जाकर
खड़े होगए, हे प्रभो ! इस समय द्रोणको जीतनेके लिये पांडवों
को साहस नहीं हुआ ७३ एकसौ वाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२

संजयने कहा कि — हे राजन् ! जल बरसाता हुआ मेघ जैसे
आकाशमें दौड़े तैसे ही सहस्रों बाणोंकी वृष्टि करता हुआ
दुःशासन सात्यकिके पीछे दौड़ा ॥ १ ॥ और साठ तथा सोलह
बाण मारकर सात्यकिको नीधडाला, परन्तु बाणोंके प्रहार होने
पर भी युद्धमें खड़ाहुआ सात्यकि, मैनाक पर्वतकी समान जरा
भी नहीं ढिगा ॥ २ ॥ शूर दुःशासनने उसके ऊपर और भी बहुतसे

भृशम् । रथव्रातेन महता नानादेशोद्धवेन च ॥ ३ ॥ सर्वतो
 भरतश्रेष्ठो विमृजन् सायकान् बहून् । पर्जन्य इव घोषेण नाद-
 यन् वै दिशो दश ॥ ४ ॥ तपापतन्तमालोक्य सात्यकिः कौरवं
 रणे । अभिद्रुत्य महाबाहुश्चादयामास सायकैः ॥ ५ ॥ ते व्याघ्र-
 माना बाणौघैर्दुःशासनपुरोगमाः । प्राद्वन् सपरे भीतास्तव
 सैन्यस्य पश्यतः ॥ ६ ॥ तेषु द्रुतं पुत्रो दुःशासनस्तव ।
 तस्थौ व्यपेक्ष्य राजन् सात्यकिश्चाद्वयच्छरैः ॥ ७ ॥ चतुर्भिर्वा-
 जिनस्तस्य सारथिश्च त्रिभिः शरैः । सात्यकिश्च शतेनाजी
 विध्वा नादं मुनोच सः ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य
 संयुगे । रथं सूतं ध्वजं तश्च चकोऽदृश्यमनिष्ठगैः ॥ ९ ॥ स तु
 दुःशासनं शूरं सायकैरावृणोद् भृशम् । सशंकं समनुप्राप्तमूर्णना-
 भिरिषोर्णवा ॥ १० ॥ त्वरन् समावृणोद्वाणैर्दुःशासनमनित्रजित् ।

बाण वरसाये तथा पृथक् २ देशके रथियोंसे उसको घेर लिया ३
 और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ ! चारों ओरसे उसके ऊपर बहुतसे बाण
 वरसाकर मेघकी समान गर्जनाकर दशों दिशाओंको गुंजार दिया ४
 महाबाहु सात्यकि दुःशासनको आता देख उसकी ओरको दौड़ा
 और बहुतसे बाण मारकर उसको ढकदिया ॥ ५ ॥ जब बहुतसे
 बाणोंसे दुःशासन आदि घोषा ढकगये तब वे भयभीत हो सेना
 के सामने ही रणमेंसे भागनेलगे ॥ ६ ॥ इसप्रकार हे राजेन्द्र !
 सब भागे जा रहे थे, परन्तु तुम्हारा पुत्र दुःशासन निडर हो तहाँ
 ही खड़ा रहा और सात्यकि को बाणोंसे पीड़ित करने लगा ॥ ७ ॥
 घोड़ोंके चार, सारथिके तीन और सात्यकि के सौ बाण मारकर
 वह युद्धमें गर्जने लगा ॥ ८ ॥ हे महाराज ! तदनन्तर क्रोधमें भरे
 हुए सात्यकिने सूधे जानेवाले बाण मारकर रथ, सारथि, और
 ध्वजा सहित दुःशासनको अदृश्य कर दिया ॥ ९ ॥ जैसे मकड़ी
 अपने जालसे दूसरे जन्तुको ढक देती है, तैसेही सात्यकिने सन्देह

दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचिनम् ॥ ११ ॥ त्रिगर्ताश्चोद-
यामास युयुधानरथं प्रति । तेगच्छन् युयुधानस्य समीपं क्रूर-
कर्मणः ॥ १२ ॥ त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः । ते
तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ॥ १३ ॥ स्थिरां कृत्वा मतिं
युद्धे भूत्वा संश्लका मिथः । तेषां प्रपन्तां युद्धे शरत्रपाणि मुञ्च-
ताम् ॥ १४ ॥ योधान् पञ्चशतान् मुख्यान् अग्रानीके व्यपोथ-
यत् । ते पतन्ति हतास्तूयं शिनिपवरसायकैः ॥ १५ ॥ महामारुत-
वेगेन भग्ना इव नगाद् द्रमाः । नागैश्च बहुधाच्छिन्नैर्ध्वजैश्चैव
विशाम्पते ॥ १६ ॥ हयैश्च कनकापीदैः पतितैस्तत्र मेदिनी । शौनेय-
शरसंकुतैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ १७ ॥ अशोभत महाराज
किंशुकैरिव पुष्पितैः । ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः १८
आतारं नाध्यगच्छन्त पङ्क्तमग्रा इव द्विपाः । ततस्ते पर्यवर्तन्त सर्वे

में हो लड़तेहुए दुःशासनको बाणोंसे बहुत ही ढकदिया ॥ १० ॥
शत्रुजित् सात्यकिने बड़ी शीघ्रतासे दुःशासनको ढकदिया था,
राजा दुर्योधनने दुःशासनको सैंकड़ों बाणोंसे ढकाहुआ देखकर
सात्यकिके रथकी ओरको त्रिगर्तोंको भेजा, युद्ध करनेमें चतुर
क्रूरकर्म करनेवाले, तीन सहस्र त्रिगर्त रथी युयुधानकी ओरको
चले उन्होंने जमे रहकर युद्ध करनेकी आपसमें शपथ खाकर
चारों ओरसे रथ लगा सात्यकिको घेरलिया सात्यकिने बाण
छोड़कर सेनाके मुहानेके धावा करतेहुए त्रिगर्तोंके पाँचसौ योधा-
ओंको समाप्त करदिया, आँधीके झोकेसे जख्मकर पहाड़ परसे
टपाटप गिरतेहुए वृद्धोंकी समान, सात्यकिके बाणोंसे मारेहुए वे
योधा धड़ाम २ गिरनेलगे, हे महाराज ! इस शिनिपुत्र सात्यकिके
बाणोंसे लोहलुहान हो भूमिपर गिरेहुए हाथियों, घोड़ों, ध्वजाओं
और रुधिरमें सनेहुए मुकुटोंसे व्याप्त पृथ्वी टेसूके फूलोंसे छाईहुईसी
अपूर्व शोभा पारही थी, सात्यकिके हाथसे समरमें मारेहुए तुम्हारे

द्रोणरथं प्रति ॥ १६ ॥ भयात् पतगराजस्य गर्त्तानीव महारगाः
हत्वा पञ्चशतान् योधान् शरैराशीविषोपमैः ॥ १७ ॥ प्रायात्
स शनकैर्वीरो धनञ्जयरथं प्रति । तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशा-
सनस्तव ॥ १८ ॥ विन्याध नवभिस्तूर्णैः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
स तु तं प्रतिविन्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ १९ ॥ रुक्मपुत्रै-
र्महेष्वासो गार्द्धपत्रैरजिह्वगैः । सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव
भारत ॥ २० ॥ दुःशासनस्त्रिभिर्विध्वा पुनर्विन्याध पञ्चभिः ।
शैनेयस्तव पुत्रन्तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ २१ ॥ धनुश्चास्य रणे
क्षित्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ । ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवी-
राय गच्छते ॥ २२ ॥ सर्वपारशवीं शक्तिं विससृज्ज जिघांसया ।
तान्तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ॥ २३ ॥ चिच्छेद

योधाओंको कीचड़में फँसेहुए हाथियोंको जैसे कोई वचानेवाला
नहीं मिलता है तैसेही कोई भी रत्नक न मिला, परन्तु जैसे
गरुड़के डरसे सर्प गुफाओंमेंको भागने लगते हैं तैसेही वे सब डर
कर द्रोणके रथकी ओरको दौड़े, इसप्रकार सर्पकी समान कर्म
करनेवाले वालोंसे पाँचसौ योधाओंका संहार करके वीरवर
सात्यकि धीरे२ अर्जुनके रथकी ओरको बढ़नेलगा तब तुम्हारे
पुत्र दुःशासनने आगे बढ़तेहुए नरश्रेष्ठ सात्यकिके फुर्तीके साथ
नमीहुई गाँठवाले नौ बाण मारे, महाधनुर्धर सात्यकिने भी
दुःशासनके गीधके पर और सुवर्णकी पूँछवाले तथा सीधे जाने
वाले पाँच तेज बाण मारे, हे भरतवंशीमहाराज ! इसते२ दुःशा-
सनने तीन बाणोंसे सात्यकिको वीधकर फिर पाँच बाणोंसे वीध
हाला, सात्यकिने पाँच बाण दुःशासनके मारकर उसके धनुषको
काटहाला और सबको विस्मित कर अर्जुनकी ओरको बढ़ने
लगा, इससे दुःशासनको बड़ा क्रोध आया और उसने अपने
शत्रुको नष्ट करनेके लिये अर्जुनकी ओरको जातेहुए वृष्णिवीर

स तदा राजन् निशितैः कङ्कुपत्रिभिः । अधान्यद्वनुरादाय पुत्रस्तव
 जनेश्वर ॥ २७ ॥ सात्यकिश्च शरविंध्वा सिंहनादं ननई ह ।
 सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा मृतं तव ॥ २८ ॥ शरैरग्नि-
 शिखाकारैराजघान स्तनान्तरे । त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नत-
 पर्वभिः ॥ २९ ॥ सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैरष्टाभावेव्यधे पुनः ।
 दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत ॥ ३० ॥ सात्वतोपि
 महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे । त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्न-
 तपर्वभिः ॥ ३१ ॥ ततोस्य बांहान्निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः ।
 सारथिश्च सुसंक्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३२ ॥ धनुर्गेन भल्लेन
 हस्तावापञ्च पञ्चभिः । ध्वजश्च रथशक्तिश्च भल्लाभ्यां परमा-
 रत्रवित् ॥ ३३ ॥ चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्थिवसारथी ।

सात्यकिके ठोस लोहेकी शक्ति फेंककर मारी, परन्तु हे राजन् !
 सात्यकिने कङ्कुपत्र लगेहुए तेज बाणोंसे तुम्हारे पुत्रकी उस घोर
 शक्तिके सँकड़ों टुकड़े करवाले, तदनन्तर हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र
 ने दूसरा धनुष उठा सात्यकिको बाणोंसे बाँधवाला और सिंहकी
 समान गरजने लगा, तब तो सात्यकिको क्रोध चढ़ाया और
 उसने तुम्हारे पुत्रको मोहित करके अग्निशिखाकी समान दम-
 कते हुए नभीहुई गाँठवाले तीन बाण उसके स्तनोंके मध्यभागमें
 मारे ॥ ११-२९ ॥ फिर पूरे लोहेके बनेहुए और तीखी नोक
 वाले आठ बाण मारे, तब दुःशासनने बीस बाण सात्यकिके
 मारे ॥ ३० ॥ तब हे महाराज ! महाभाग सात्यकिने नभीहुई
 गाँठवाले तीन बाण उसकी छातीमें मारे ॥ ३१ ॥ फिर परम
 क्रोधमें भरेहुए सात्यकिने नभीहुई गाँठवाले बाणोंसे इसके घोड़े
 और सारथिको बाँधवाला ॥ ३२ ॥ फिर अस्त्रोंके पारगामी
 सात्यकिने एक भालेसे उसके धनुषको काटवाला और पाँचसे
 उसके हाथको मौजेकी काटवाला और दो भालोंसे उसकी ध्वजा

स छिन्नधन्वा विरथो हतारवो हतसारथिः ॥ ३४ ॥ त्रिगर्त्तसेना-
पतिना स्वरथेनापवाहितः । तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्त्तमिव भारत ३५
न जघान महाबाहु भीमसेनवचः स्मरन् । भीमसेनेन तु वधः सुतानां
तव भारत ॥ ३६ ॥ प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे । ततो
दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो ॥ जगाम त्वरितो राजन्
येन यातो धनञ्जयः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे
दुःशासनपराजये त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । किं तस्यां मम सेनायां नासन् केचिन्महारथाः ।
ये तथा सात्यकिं वान्तं नैवाघ्नन्नाप्यवारयन् ॥ १ ॥ एको हि

और रथशक्तिको काटहाला ॥ ३३ ॥ और तीखे बाणोंसे उसके
पार्श्वरक्षक तथा सारथिको मारहाला, इसप्रकार जब दृष्टदारे
पुत्रका धनुष टुकड़े हो गया, रथके घोड़े और सारथि मारे गये,
तब त्रिगर्त्तोंका सेनापति उसको अपने रथमें बैठाकर रणमेंसे लो
जाने लगा, तब हे राजन् ! सात्यकि एक मुहूर्त्त भर उसके पीछे
दौड़तारहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उसी समय उसको भीमसेनकी बात
स्मरण हो आयी, अतः उस महाबाहुने उसको मारा नहीं हे भरत-
वंशी राजन् ! भीमसेनने सभामें सबके सामने तुम्हारे सब पुत्रों
का वध करनेकी प्रतिज्ञा की थी, अतएव हे राजन् ! सात्यकिने
रणमें दुःशासनको हराया ही मारा नहीं, इसप्रकार उसको हरा
कर सात्यकि जिस मार्गसे अर्जुन गया था उसी मार्गसे शीघ्र-
तापूर्वक जाने लगा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ एकसौ तेईसवाँ अध्याय
समाप्त ॥ १२३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! सात्यकि-इसप्रकार चला
गया उसको न कोई मार सका, न कोई हटा सका, क्या मेरी
सेनामें कोई भी महारथी ऐसा न निकला ? ॥ १ ॥

समरे कर्म कृतवान् सत्यविक्रमः । शक्तुर्न्यबलो युद्धे महेन्द्रो दान-
वेष्णवः ॥ २ ॥ अथवा शून्यमासीत्तथेन यातः स सात्यकिः ।
एतभूयिष्ठमथवा येन यातः स सात्यकिः ॥ ३ ॥ यत्कृतं दृष्टि-
वीरेण कर्म शंससि मे रणे । नैतदुत्सहते कर्तुं कर्म शक्नोपि
सञ्जय ॥ ४ ॥ अश्रद्धेयमचिन्त्यं च कर्म तस्य महात्मनः । वृष्ण-
न्धकप्रवीरस्य श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ ५ ॥ न सन्ति तस्मा-
त्पुत्रा मे यथा सञ्जय भापसे । एको वै बहुलाः सेनाः मामृद-
नात्सत्यविक्रमः ॥ ६ ॥ कथञ्च युध्यगानानामपक्रान्तो महात्म-
नान् । एको बहूनां शैनेयस्तन्मयाचक्ष्व सञ्जय ॥ ७ ॥ सञ्जय
उवाच । राजन् सेनासमुद्योगी रथनागारवपत्तिनाम् । तुमुलस्तव

अकेला इन्द्र जैसे दानवोंमें घूमता हो तैसे ही सत्यपराक्रमी
अकेले सात्यकिने रणमें काम किया है ॥ २ ॥ जिस मार्गसे
सात्यकि गया था वह मार्ग खाली तो नहीं था ? अथवा जिस
मार्गसे सात्यकि गया था उस मार्गके बहुतसे योधा (पहिले ही)
तो नहीं मारे गए थे । शहे संजय ! तू रणमें सात्यकिके किये हुए
जैसे कर्षोंका बखान करता है मेरी समझमें तो ऐसा आता है
कि—ऐसा कर्म तो इन्द्र भी नहीं करसकता । दृष्टि और अन्धकों
में बड़े वीर महात्मा सात्यकिके अश्रद्धेय और जिसको विचारा भी
न जासके ऐसे पराक्रमको सुनकर मेरा मन व्यथित हो रहा है ५
हे संजय ! जैसा तू कह रहा है, उससे मुझे प्रतीत होता है, कि—
मेरे पुत्र अब नहीं बचेंगे क्योंकि—अकेले सत्यपराक्रमी सात्यकिने
ही बहुत सी सेनाओंका नाश करवाला (फिर सबका क्या
कहना) ॥ ६ ॥ बहुतसे महात्मा उससे युद्ध कर रहे थे, तब भी
अकेला सात्यकि उन सबको कैसे लाँग गया ? हे संजय ! यह
मुझे सुना ॥ ७ ॥ संजयने कहा, कि—हे राजन् ! तुम्हारी रथ,
हाथी घोड़े और पैदलोंकी सेनाने उद्योग तो प्रलयकालके समान ही

सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥८॥ आहूतेषु सनूहेषु तव सैन्यस्य मानद । नाभून्लोके समः कश्चित् समूह इति मे मतिः ॥ ९ ॥ तत्र देवास्त्वभाषन्त चारणाश्च समागताः । एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥ १० ॥ न च एतादृशो व्यूह आसीत् कश्चिद्विशाम्पते । यावज्जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ ११ ॥ चण्डवातविभिन्नानां समुद्राणामिव स्वनः । रणोऽभवद्वल्लोधानामन्योऽन्यमभिधावताम् ॥ १२ ॥ पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन् नरोत्तम । त्वद्वले पाण्डवानाञ्च सहस्राणि शतानि च ॥ १३ ॥ संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम् । तत्रासीत् सुमहान् शब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १४ ॥ अथाक्रन्दद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष । नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ १५ ॥ आगच्छत

भयङ्कर किया था ८ हे मानद ! मेरा तो ऐसा विश्वास है कि—परदेशोंसे बुलाई हुई तुम्हारी सेनाकाओं जितना जमघट्टया इतना समूह तो संसारमें कभी नहीं हुआ होगा ॥९॥ तहाँ पर आये हुए देवता और चारणोंने कहा था कि—वस इतना अधिक सेनाका समूह पृथ्वीमें न कभी देखनेमें आया है और न आगे को देखनेमें आवेगा ॥१०॥ हे प्रजाओंके स्वामी ! द्रोणाचार्यने जयद्रथकी रक्षा करनेके लिये जैसा व्यूह रचा था तैसा व्यूह भी आज तक किसीने नहीं रचा था ॥११॥ आंधीकी टकरसे लहरें लेतेहुए समुद्रमें जैसे तुमुल शब्द होता है तैसे ही रणमें एक दूसरे पर दौड़ती हुई सेनाओंके जमघट्टोंका भयङ्कर शब्द होरहा था ॥ १२ ॥ हे नरेन्द्र ! बाहरसे आकर इकट्ठेहुए राजाओंके सहस्रों और सैकड़ों दल तुम्हारी तथा पांडवोंकी सेनामें थे १३ वस रणमें दृढ़तासे कर्म करनेवाले बहुतसे वीर जब क्रोधमें भरकर गर्जते थे तब तहाँ बड़ा भयङ्कर लोमहर्षण शब्द होता था ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! भीमसेन धृष्टद्युम्न नकुल

प्रहरत द्रुतं विपरिधावत । प्रविष्टावरिसेनां हि वीरौ माधवपांडवौ १८
 यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथंरथं प्रति । तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति
 सैन्यान्वचोदयन् ॥ १७ ॥ तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं
 जिताः । ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव वलार्णवम् ॥ १८ ॥
 क्षोभयध्वं महावेगाः पवनः सागरं यथा । भीमसेनेन ते राजन्
 पाण्डुचाल्येन च चोदिताः ॥ १९ ॥ ह्याजघ्नुः कौरवान् संख्ये त्य-
 क्त्वा मूनात्मनः प्रियान् । इच्छन्तो निधनं युद्धे शस्त्रैरुत्तमतेजसः २०
 स्वर्गोत्सन्नो मित्रकार्ये नाभ्यनन्दन्त जीवितम् । तथैव तावका राजन्
 प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ २१ ॥ आर्या युद्धे मतिं कृत्वा युद्ध्यैवाव-
 तस्थिरे । तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्त्तमाने भयावहे ॥ २२ ॥ जित्वा

सहदेव और धर्मराज युधिष्ठिर जोरसे कहने लगे कि—॥ १५ ॥
 अरे ! सैनिकों ! शूरवीर अर्जुन और सात्यकि शत्रुओंकी सेना
 में घुस गए हैं, अतः आओ ! भट्ट दौड़ो और शत्रुओंका संहार
 करो ॥ १६ ॥ वे दोनों जिसप्रकार सुखपूर्वक जयद्रथके समीप
 पहुँच सकें, वैसा उपाय करो इसप्रकार कहकर अपनी सेनाओंको
 प्रेरणा करनेलगे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वे धोले, कि—उन
 दोनों जनकोंको यदि कौरवोंने मारहाला तो कौरव सफलमनोरथ
 होजायेंगे और हमारी हार होजायगी, अतः वेगवान् तुम सब
 इकट्ठे होकर पवन जैसे समुद्रको भँकोलता है तैसेही कौरवसेना-
 रूप समुद्रको एक साथ घँघोल डालो हे राजन् ! भीमसेन और
 धृष्टद्युम्नके उकसाये हुए वे महातेजस्वी युद्धमें प्राण दे देनेका
 निश्चयकर अपने प्रिय प्राणोंकी भी परवाह न कर शस्त्रोंसे
 कौरवोंको मारनेलगे ॥ १८-२० ॥ स्वर्गको जाना चाहनेवाले
 उन वीरोंने मित्रके कार्यके लिये अपने प्राणोंकी भी परवाह न की
 हे राजन् ! इसीप्रकार तुम्हारे आधा भी बड़े भारी यशको
 पानेकी इच्छासे युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिको धारण कर युद्ध

सर्वाणि सैन्यानि प्रायात् सात्यकिरर्जुनम् । कवचानाम्प्रभास्तत्र
 सूर्यरश्मिविराजिताः ॥ २३ ॥ दृष्टीः संख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः
 समन्ततः । तथा प्रयतमानानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥
 दुर्योधनो महाराजं व्यगाहत महद्व्रतम् । स सन्निपातस्तुमुलस्तेषां
 तस्य च भारत ॥ २५ ॥ अभवत् सर्वभूतानामभावकरणो महान् ।
 धृतराष्ट्र उवाच । तथा यातेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः रव्यम् २६
 कच्चिद् दुर्योधनः सूत नाकार्षीत् पृष्ठतो रणम् । एकस्य च बहू-
 नाञ्च सन्निपातो महाहवे ॥ २७ ॥ विशेषतो नरपतेर्विपमः
 प्रतिभाति मे । सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः २८
 एको बहून् समासाद्य कच्चिन्नासीत् पराङ्मुखः । सञ्जय उवाच ।

करनेके लिये ही डटकर खड़े होगये, जब इसप्रकार इधर
 अत्यन्त तुमुल घोर भयदायक युद्ध हो रहा था उसी समय
 सकल सेनाओंको जीतकर सात्यकि अर्जुनकी ओरको गया था
 सुवर्णके कवचों पर सूर्यकी किरणें पड़ रही थीं अतः कवचोंकी
 प्रभासे सैनिकोंके नेत्र चौंधाये जाते थे, जब इसप्रकार पाण्डव
 परिश्रम कर रहे थे, उसी समय हे महाराज! दुर्योधनने पाण्डवोंकी
 बड़ी भारी सेनाको भँभोड़ डाला, हे भारत ! दुर्योधन और
 पाण्डवोंका वह सब लोकोंका बड़ा भारी नाश करनेवाला तुमुल
 युद्ध हुआ था, धृतराष्ट्रने बुझा, कि—हे सूत ! सेनाओंके भाग
 जाने पर महासंकटमें फँसेहुए दुर्योधनने जब पाण्डवोंकी सेना
 लड़नेको आई थी, तब रणमें पीठतो नहीं दिखाई थी, महायुद्धमें
 एकका बहुतोंसे लड़ना बड़ा कठिन है, फिर राजाका बहुतोंके
 साथ युद्ध करना तो और कठिन काम है, ऐसा मेरा विश्वास है
 दुर्योधन ऐश्वर्यके साथ अत्यन्त सुखमें पलकर बड़ा हुआ है और
 राजा है, वह अकेला बहुतोंके साथ लड़ते २ रणमेंसे
 भाग तो नहीं गया सञ्जयने उत्तर दिया, कि—हे

राजन् संग्राममाश्रयं तत्र पुत्रस्य भारत ॥ २६ ॥ एकस्य बहुभिः
 साद्धं शृणुष्व गदतो मम । दुर्योधनेन समरे पृतना पाण्डवी
 रणे ॥ २७ ॥ नलिनी द्विरदेनेव समन्तात् प्रतिलोडिता । ततस्तां
 प्रहतां सेनां दृष्ट्वा पुत्रेण ते नृप ॥ २८ ॥ भीमसेनपुरोगास्तं पञ्चालाः
 समुपाद्रवन् । स भीमसेनं दशभिः शरैर्विव्याध पाण्डवम् ॥ २९ ॥
 त्रिभित्तिभिर्यमौ वीरौ धर्मराजञ्च सप्तभिः । विराटद्रुपदौ पद्भिः
 शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३० ॥ धृष्टद्युम्नञ्च विंशत्या द्रौपदेयां-
 स्त्रिभित्तिभिः । शतशश्चापरान् योधान् सदिपांश्च रथान् रणे ३१
 शरैरवचकर्त्तोग्रैः क्रुद्धोन्तक इव प्रजाः । न सन्दधन् विमुञ्चन् वा
 मण्डलीकनकार्मुकः ॥ ३२ ॥ अदृश्यत रिपून्निघ्नञ्छिन्नयास्त्र-

भरतवंशी राजन् ! अपने अकेले पुत्रके बहुतोंके साथ हुए
 आश्चर्यजनक संग्रामको सुनो, जैसे हाथी तलैयामें घुस उसे
 घँघोल डालता है, तैसे ही रणमें दुर्योधनने पाण्डवोंकी सेनामें
 घुस उसको चारों ओरसे हिलादिया तदनन्तर अपनी सेनाको
 दुर्योधनसे पिटती देखकर हे राजन् ! भीमसेन आदि पञ्चाल योधा
 उसके ऊपर बढ़आये, इतनेमें दुर्योधनने भीमसेनके दश बाण
 मारे, नकुलके तीन बाण मारे और सहदेवके तीन बाण मारकर,
 धर्मराजके सात बाण मारे राजा विराट और द्रुपदके छः छः बाण
 मारे, शिखण्डीके सौ बाण मारे और धृष्टद्युम्नके बीस बाण
 मारे तथा तीनरबाण मारकर द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको घायल कर
 दिया क्रोधमें भरेहुए यमराजके जनसंहार करनेकी समान दुर्यो-
 धनने रणमें उग्र बाणोंसे और भी बहुतसे हाथीसवारों घुड़सवारों
 और रथियोंको काटडाला उसकी शिन्ना और बलके प्रभावसे यह
 किसीको नहीं दीखता था, कि—वह बाणको कब चढ़ाता है और
 कब छोड़ता है, परन्तु वह मण्डलाकारसे धनुषको घुमाकर
 शत्रुओंको मारताहुआ ही दीखता था शत्रुओंका संहार करते

वलेन च । तस्य तान् निघ्नतः शत्रून् हेमपृष्ठं महद्बलुः ॥ ३६ ॥
 अजस्रं मण्डलीभूतं ददृशुः समरे जनाः । ततो युधिष्ठिरो राजा
 भल्लाभ्यामच्छिनद्बलुः ॥ ३७ ॥ तव पुत्रस्य कौरव्य यत्मानस्य
 संयुगे । विव्याध चैनं दशभिः सन्ध्यागर्त्रैः शरोचयैः ॥ ३८ ॥
 वर्म चाशु समासाद्य तं भग्नाः क्षितिमाविशन् । ततः प्रमुदिताः
 पार्था परिवव्रुयुः क्षिप्रम् ॥ ३९ ॥ यथा वृत्रवधे देवाः पुरा शक्रं
 महर्षयः । ततोऽन्यद्बलुरादाय तव पुत्रः प्रतापवान् ॥ ४० ॥
 तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् । तमायान्तमभिप्रेक्ष्य
 तव पुत्रं महामुधे ॥ ४१ ॥ प्रत्युद्ययुः प्रमुदिताः पञ्चाला जय-
 युद्धिनः । तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् युधि पाण्डवम् ४२
 चण्डवातोद्बुतान् मेघान् गिरिरम्बुमुचो यथा । तत्र राजन्महा-

हुए दुर्योधनके सुवर्णकी पीठवाले बड़ेमारी धनुषको, समरमें
 मनुष्य, निरन्तर मण्डलाकारसे घूमता हुआ ही देखते थे,
 हे कुसुवंशी ! संग्राममें इसप्रकार प्रयत्न करतेहुए तुम्हारे पुत्रके
 धनुषको राजा युधिष्ठिरने दो भल्ल नामक बाण मारकर काट
 डाला और बड़े वेगसे दश बाण दुर्योधनकी ओरकी ओड़े २१-३८
 वे शीघ्र ही कवचसे टकरा उसके फोड़कर पृथ्वीमें घुस गए, वह
 देखकर पाण्डव बड़े ही प्रसन्न हुए पहिले वृत्रासुरका नाश करने
 के अनन्तर महर्षियोंने जैसे इन्द्रको घेरलिया था तैसे ही पाण्डव
 सेनापतियोंने युधिष्ठिरको घेरलिया, तदनन्तर तुम्हारे प्रतापी पुत्र
 ने तुरन्त ही दूसरा धनुषमें हाथमें उठा लिया ॥ ३९-४० ॥
 फिर राजा युधिष्ठिरसे खड़ा रह खड़ा रह ॥ कहाँ जाता है ॥
 इसप्रकार कहताहुआ उनके सामने जाचढ़ा, महासंग्राममें तुम्हारे
 पुत्रको आगेको आते देखकर, विजयकी इच्छावाले पंचाल राजे
 इकठे होकर उसके सामने दौड़ आए, इतनेमें ही जैसे आँधीसे
 आगे बढ़तेहुए जल बरसानेवाले मेघोंको आगे बढ़नेसे पहाड़

नासीत् संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ४३ ॥ पाण्डवानां महाबाहो ताव-
कानां च संग्रामे । रुद्रस्याकीदृशदृशः संहारः सर्वदेहिनाम् ॥ ४४ ॥
ततः शब्दो महानासीत् पुनर्येन धनञ्जयः । अतीव सर्वशब्देभ्यो
लोमहर्षकरः प्रभो ॥ ४५ ॥ अर्जुनस्य महाबाहो तावकानां च
धन्विनाम् । मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणो ॥ ४६ ॥ द्रोणस्यापि
परः सार्द्धं व्यूहद्वारे महारणो । एवमेव क्षयो वृत्तः पृथिव्यां
पृथिवीपते । क्रुद्धेर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥ ४७ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे
संकुलयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

सञ्जय उवाच । अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत् ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १ ॥ शोणारवं रथमा-

रोक देता है, तैसे ही दुर्योधनको कैद करनेकी अभिलाषावाले
द्रोणने उनको आगे बढनेसे रोकदिया, हे महाभुज राजन् !
रुद्रके सकल प्राणियोंके संहारके खेलकी समान, युद्धमें पांडवोंके
योधा और तुम्हारे योधाओंका रोमांच खड़े करनेवाला युद्ध
होनेलगा ॥ ४१-४४ ॥ हे प्रभो ! इतनेमें ही जहाँ पर अर्जुन लड़
रहा था, तहाँ बड़ा भारी रोमांचजनक कोलाहल होनेलगा और
उससे दूसरे सब शब्द दबगए ॥ ४५ ॥ हे महाभुज राजन् !
भारती सेनामें इस प्रकार अर्जुन और तुम्हारे भनुषधारियोंमें,
सात्यकि तथा तुम्हारे सैनिकोंमें और व्यूहके सुहानेपर द्रोण
तथा दूसरोंमें युद्ध होनेलगा, अर्जुन, महारथी सात्यकि और द्रोण
के क्रोधित होनेपर इसप्रकार जनसंहार आरम्भ होगया ४६-४७
एकसौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२४ ॥

संजयने कहा, कि-हे महाराज ! दुपहरमें द्रोण और
सोमकोंमें बड़ा भारी संग्राम होनेलगा, उसमें गर्जतेहुए योधाओंका
शब्द मेघकी समान होरहा था ॥ १ ॥ पुरुषोंमें वीर, तुम्हारे

स्थाय नरवीरः समाहितः । समरेभ्यद्रवत् पाण्डून् जवमास्थाय
मध्यमम् ॥ २ ॥ तव मियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः । चित्र-
पुंस्त्रैः शितैर्वाणैः कलशोत्तमसम्भवः ॥ ३ ॥ वरान् वरान् हि
योधानां विचिन्दन्निव भारत । आक्रीडत रणे राजन् भारद्वाजः
प्रतापवान् ॥ ४ ॥ तमभ्ययात् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
भ्रातॄणां नृप पञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः ॥ ५ ॥ विमुञ्चन् विशि-
खांस्तीक्ष्णान्नाचार्यं भृशमार्दयत् । महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन्
गन्धमादने ॥ ६ ॥ तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुंस्त्राञ्छिलाशि-
तान् । प्रेषयाभास संक्रुद्धः सायकान् दश पञ्च च ॥ ७ ॥ तांस्तु
द्रोणविनिर्मुक्तान् क्रुद्धाशीविषसन्निभान् । एकैकं पञ्चभिर्वाणै-
र्युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥ ८ ॥ तदस्य लापवं हृष्टा महस्य द्विज-

मिय और भला करनेवाले, महाधनुर्धरा, महाबली, प्रतापी श्रेष्ठ
कलशमेंसे उत्पन्न हुए, भारद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्य, लाल रङ्गके
घोड़ोंसे जुतेहुए रथमें बैठ मध्यम वेगसे रथको दौड़ाते २ पाँड़वों
के ऊपर चढ़ आये और योधाओंमेंसे मानों छट्ठा २ योधाओं
को बीन रहे हों इसप्रकार देख २ कर शूरीर योधाओं पर,
विचित्र पूँछवाले तेज बाण बरसानेहुए रणभूमिमें घूमनेलगे २-४
इतनेमें ही हे राजन् ! केकयोंमें महारथी, पाँचों भाइयोंमें श्रेष्ठ
समरकर्कश बृहत्क्षत्र द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़ दौड़ा ॥ ५ ॥ जैसे
घनघोर घटा गन्धमादन पर्वत पर जल बरसाती है तैसे ही द्रोण
के ऊपर बाणोंकी वृष्टि कर बृहत्क्षत्र उनको अतीव पीड़ित करने
लगा ॥ ६ ॥ द्रोणने क्रोधमें भरकर हे महाराज ! बृहत्क्षत्रके
पूँछवाले और पत्थर पर घिसकर तेज कियेहुए पन्द्रह बाण
मारे ॥ ७ ॥ द्रोणके फैंकेहुए क्रोधित सर्पोंकी सपान बाणोंको
बृहत्क्षत्रने पाँच बाण मारकर काट्ढाला ॥ ८ ॥ उसकी कुर्तीको
देख ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य हँसे और उन्होंने नमीहुई गाँठ

पुंगवः । मेघवासा विशिखानष्टौ सन्नतपर्वणाः ॥ ९ ॥ तान्
 दृष्ट्वा पतन्तरत्नीन्द्रोऽखचापच्युतजिह्वगन् अवारयच्छरैरेव तावद्भि-
 निक्षितैर्मृधे ॥ १० ॥ ततोऽध्वपन्नहाराज तव सैन्यस्य विस्मयः ।
 बृहत्क्षत्रेण तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा हृदुष्करम् ॥ ११ ॥ ततो द्रोणो
 महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन् । मादुश्चको रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं
 मुदुर्जयम् ॥ १२ ॥ कैकेयोऽस्त्रं समातोषय मुक्तं द्रोणेन संयुगे ।
 ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमज्ञातयत् ॥ १३ ॥ ततोऽस्त्रे निहते
 ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत ॥ दिव्याथ ब्राह्मणं पश्यन् स्वर्णपुंखैः
 शिलाशितैः ॥ १४ ॥ तं द्रोणो ह्यिवा श्रेष्ठो नागाचेन समर्पयत् ।
 स तस्य कवचं भित्वा प्राविशद्भरणीतलम् ॥ १५ ॥ कृष्णसर्पो
 यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम । तथाभ्यगान्महीं बाणो भित्वा
 कैकेयमाहवे ॥ १६ ॥ एतानिदृष्टो महाराज कैकेयो द्रोणसायकैः ।

बाले आठ बाण उसके गारे ॥ ९ ॥ युद्धमें द्रोणके धनुषसे छूटे
 हुए उन बाणोंको अपनी ओर आतेहुए देखकर बृहत्क्षत्रने
 तुरन्त ही उतने तेज बाण मारकर उन बाणोंको नष्ट कर
 दिया ॥ १० ॥ हे महाराज ! बृहत्क्षत्रके कियेहुए उस अति-
 दुष्कर कर्मको देख तुम्हारी सेनाको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ ११
 हे महाराज ! तदनन्तर द्रोणने बृहत्क्षत्रको बहानेके लिये
 रणमें अतिदुर्जय ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया ॥ १२ ॥
 समरमें, छोटेहुए द्रोणके ब्रह्मास्त्रको देखकर हे राजन् ! कैकेयने
 भी उसको ब्रह्मास्त्र मारकर नष्ट करदिया १३ हे भारत ! बृहत्क्षत्र
 ने इयंभकार द्रोणके ब्रह्मास्त्रको नष्ट कर उनके सुवर्णकी पूँछबाले
 और पत्यर पर तेज कियेहुए साठ बाण मारे ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोंमें
 श्रेष्ठ द्रोणने उसके एक बाण मारा, वह बाण उसके कवचको
 फोड़कर पृथिवीमें घुसगया ॥ १५ ॥ हे नृपसत्तम ! छूटाहुआ काला
 साँप जैसे तुरन्त बिलमें घुसजाता है तैयसी वह बाण समरमें

क्रोधेन महताविष्टो व्यावृत्त्य नयने शुभं ॥ १७ ॥ द्रोणं विन्वाप
सप्तत्या स्वर्णपुंखैः शिलाशितैः । सारथिश्चास्य बाणेन भृशं मर्म-
स्वताडयत् ॥ १८ ॥ द्रोणस्तु बहुभिर्विह्वो बृहत्तन्त्रेण मारिष ।
असृजद्विशिखांस्तीक्ष्णान् कैकेयस्य रथं प्रति ॥ १९ ॥ व्याकुली-
कृत्य तं द्रोणो बृहत्तन्त्रं महारथम् । अश्वाश्चतुर्विन्ध्यधीचतुरोऽस्य
पतत्रिभिः ॥ २० ॥ सूतञ्चैकेन बाणेन रथनीडादपातयत् । द्वाभ्यां
ध्वजश्च छत्रञ्च छित्वा भूमावपातयत् ॥ २१ ॥ ततः साधुविस्मृष्टेन
नाराचेन द्विजर्षभः । हृद्यविध्यत् बृहत्तन्त्रं स छिन्नहृदयोपतत् २२
बृहत्तन्त्रे हते राजन् कैकेयानां महारथो शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्ता-

कैकेयको घायल कर भाटाटेके साथ पृथिवीमें घुसगया ॥ १६ ॥
हे महाराज ! द्रोणके बाणसे बहुतही घायल होजानेके कारण बृह-
त्तन्त्रको बड़ा क्रोध चढ़ा, तब उसने अपने दोनों शुभ नेत्रोंको
चढ़ाकर पत्थर पर घिसकर तेज कियेहुए, सुवर्णकी पूँछवाले
सत्तर बाण द्रोणके घारे और एक बाण मारकर उनके सारथि
को घायल करवाला, इससे उसके मर्मस्थानोंमें बड़ी ही पीड़ा होने
लगी ॥ १७-१८ ॥ हे राजन् ! जब बृहत्तन्त्र बहुतसे बाण मार
कर द्रोणको घायल करने लगा, तब उन्होंने बड़े ही तीखे बाण
कैकेयके रथकी ओरको छोड़े ॥ १९ ॥ इसप्रकार बाण छोड़
द्रोणने उसको घरड़ादिया, फिर उस महारथीके चारों घोड़ोंको
चार बाण मारकर मारवाला ॥ २० ॥ और एक बाण मारकर
उसके सारथीको रथके जुए परसे नीचे गिरादिया तथा दो बाण
मारकर उसके छत्र और ध्वजाको भूमिमें गिरादिया ॥ २१ ॥ तदन-
तर ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणने धनुषको पुरार खेंचकर एक बाण बृहत्तन्त्र
के हृदयमें मारा, तब तो उसकी आत्मा फगई और वह ढङ्गड़ा २२
हे राजन् ! कैकेय महारथी बृहत्तन्त्रके मारे जाने पर शिशुपालका
पुत्र क्रोधमें भरकर अपने साथियोंके कहने लगा, कि-॥ २३ ॥

रमिदमब्रवीत् ॥२३॥ सारथे याहि यत्रैव द्रोणस्तिष्ठति दंशितः ।
 विनिघ्नन् केकयान् सर्वान् पञ्चालानाञ्च बाहिनीम् ॥ २४ ॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम् । द्रोणाय प्रापयामास
 काम्बोजैर्जवनैर्हयैः ॥२५॥ धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
 वधायाभ्यद्रवत् द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥ २६ ॥ सोविध्यत तदा
 द्रोणं पष्ट्या साश्वरथध्वजम् । पुनश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं
 व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २७ ॥ तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरमेण शितेन
 च । चकर्त्त गार्हपत्रेण पतमानस्य शुष्मिणः ॥ २८ ॥ अथान्य-
 हनुरादाय शैशुपालिर्महारथः । विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कवर्हिण-
 वाजितैः ॥२९॥ तस्य द्रोणो हयान् हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः ।
 सारथेश्च शिरः कायोच्चकर्त्त महसन्निव ॥ ३० ॥ अथैनं पञ्च-
 विंशत्या सायकानां समार्पयत् । अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय

ओ सारथि ! ये द्रोण कवच पहरे जहाँ पर खड़े होकर कैकेय
 तथा सब पाञ्चालोंको मार रहे हैं, उस ओर तू मेरे रथको ले
 चल ॥ २४ ॥ उसके वचनको सुनकर सारथिने काम्बोजदेशी
 तेज घोड़ोंको हाँककर रथियोंमें श्रेष्ठ शिशुपालके पुत्रको द्रोणके
 पास पहुँचा दिया ॥२५॥ जैसे पतङ्गा अग्नि पर टूटपड़ता है तैसे
 ही महाबली चेदियोंमें श्रेष्ठ धृष्टकेतु (शिशुपालका पुत्र) द्रोणके
 ऊपर मारनेको दौड़ा ॥ २६ ॥ उसने द्रोण तथा उनके रथ, घोड़े
 और ध्वजा पर साठ बाण मारे, फिर जैसे कोई सोतेहुए सिंहको
 छेड़े तैसे और भी तीक्ष्ण बाण मारकर द्रोणको छेड़ा ॥ २७ ॥
 द्रोणने तेज कियाहुआ क्षुरम नामक बाण मारकर उसके धनुषको
 बीचमेंसे काट डाला ॥ २८ ॥ महारथी धृष्टकेतु शीघ्रही दूसरा
 धनुष ले मयूरके पंखोंसे सुशोभित बाणोंसे द्रोणको बीचने लगा २९
 द्रोणने भी चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार हँसकर उसके
 सारथिके शिरको घड़से काट डाला ॥ ३० ॥ फिर धृष्टकेतुके भी

सत्वरः ॥ ३१ ॥ भारद्वाजाय चित्तेषु रूपितामिव पन्नगीम् । तामा-
पतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिबोधिताम् ॥ ३२ ॥ अश्मसारमयीं
सुवीं तपनीयविभूषिताम् शरैरनेकसाहसैर्भारद्वजोच्छिनच्छितैः ३३
सा छिन्ना बहुभिर्वाणैर्भारद्वाजेन मारिष । गदा पपात कौरव्य
नादयन्ती भरातलम् ॥ ३४ ॥ गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतु-
र्मर्षणः । तोमरं व्यसृजद्वीरः शक्तिं च कनकोज्वलाम् ॥ ३५ ॥
तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिञ्चच्छेद पञ्चभिः । तौ जग्म-
तुर्महीं छिन्नौ सर्पाविव गरुत्मता ॥ ३६ ॥ ततोऽस्य विशिखं
तीक्ष्णं वधाय वधकांक्षिणः । प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रताप-
वान् ॥ ३७ ॥ स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयञ्चामितौजसः । अभ्य-
गादुरणीं वाणो हंसः पञ्चवनं यथा ॥ ३८ ॥ पतङ्गं हि ग्रसेच्चापो

पक्षीस वाण मारे, तब तो धृष्टकेतु हाथमें गदा ले रथके ऊपरसे कूद
पड़ा ॥ ३१ ॥ और क्रोधमें भरी हुई सर्पिणीकी समान वह गदा
उसने द्रोणके मारी, कालरात्रिकी समान उठी हुई सुवर्णसे विभू-
षित, उस लोहेकी बड़ी भारी गदाको आते देखकर द्रोणने सहस्रों
तेज वाण मार उसको छिन्न भिन्न कर डाला ॥ ३२-३३ ॥ हे
राजन् ! द्रोणके अनेकों वाणोंसे छिन्न भिन्न हुई वह गदा
पृथिवीको शब्दायमान करती हुई गिरपड़ी ॥ ३४ ॥ गदाको नष्ट
हुई देख धृष्टकेतु बहुतही खिसिया गया और उसने एक तोमर
तथा सुवर्णसे चमकती हुई एक शक्ति द्रोणके मारी, ॥ ३५ ॥
द्रोणने पाँच वाणोंसे तोमरको नष्ट कर पाँच वाणोंसे शक्ति को
भी नष्ट कर डाला वे दोनों तोमर और शक्ति, गरुडके काटे हुए
दो सर्पोंकी समान भूमिमें गिरपड़े ॥ ३६ ॥ तदनन्तर प्रतापी
द्रोणने, अपनेको मार डालना चाहनेवाले धृष्टकेतुके वधके लिये
उसके एक तेज वाण मारा ॥ ३७ ॥ वह वाण अगाध वलशाली
धृष्टकेतुके कवच और हृदयको चीरकर, जैसे हंस कमलके वनमें

यथा ह्रद्रं युष्मन्निता । तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ३६
 निहते चेदिराजे तु तत्स्वयं पित्र्यमाविशत् । अमर्षवशमापन्नः
 पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥ ४० ॥ तमपि प्रहसन् द्रोणः शरैर्निग्ये यम-
 क्षयम् । महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली ॥ ४१ ॥ तेषु प्रक्षीय-
 पाणेषु पाण्डवेषु भारत । जरासन्धसुतो धीरः स्वयं द्रोणमुपा-
 द्रवत् ॥ ४२ ॥ स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे । अदृ-
 श्यमकरोत्तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥ ४३ ॥ तस्य तल्लाघवं
 दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः । व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं शतशोय सह-
 स्रशः ॥ ४४ ॥ छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनाम्बरम् ।
 जारासपिं जघानाशु मितर्ता सर्वधन्विनाम् ॥ ४५ ॥ यो यः स्म

धुम जाय तैसे, पृथिवीमें घुसगया ॥ ३८ ॥ जैसे भूखा नील-
 कण्ठ पक्षी छोटै टीढ़ी आदि कीड़ोंको निगल जाय तैसे ही
 शूरवीर धृष्टकेतुको रणमें द्रोणाचार्य निगल गए ॥ ३९ ॥
 चेदिराजके मारे जाने पर उसका पुत्र खिसिया गया और अस्त्रों
 का पारगामी वह शिशुपालका पौत्र अपने पिताके स्थान पर
 आकर डटगया ॥ ४० ॥ जैसे महावनमें महाबली व्याघ्र मृगके
 वच्चेको यमसदनमें भेजदे तैसेही द्रोणने हँसकर उसको भी
 बाणोंके द्वारा यमराजके घर भेजदिया ॥ ४१ ॥ हे भारत ! जब
 इसप्रकार पाण्डवपक्षके बोधा नष्ट होनेलगे, तब जरासन्धका
 शूरवीर पुत्र द्रोणके सामने आकर खड़ा होगया ॥ ४२ ॥
 जैसे मेघ सूर्यको ढकदेते हैं तैसेही उसने भृगुपुत्रके साथ बाणधारा
 बरसाकर द्रोणको अदृश्य करदिया ॥ ४३ ॥ क्षत्रियोंको मसलने
 वाले द्रोणाचार्य उसकी फुरतीको देखकर शीघ्रतासे सैकड़ों
 और सहस्रों बाण छोड़ने लगे ॥ ४४ ॥ रथमें बैठेहुए रथियोंमें श्रेष्ठ
 जरासन्धके पुत्रको रणमें बाणोंसे ढककर शीघ्रनासे सबके सामने
 मारडाला ॥ ४५ ॥ जिनकी आयु समाप्त होगई है ऐसे प्राणियों

नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तर्कोपमः । आदत्त सर्वभूतानि प्राप्तकाले
 यथान्तकः ॥ ४६ ॥ ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
 शरैरनेकसाहसैः पाण्डवेयान् समावृणोत् ॥ ४७ ॥ ते तु नामा-
 ङ्किता वाणा द्रोणोनास्ताः शिलाशिताः । नरान्नागान् ह्याश्वैश्च
 निजघ्नुः शतशो मृधे ॥ ४८ ॥ ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणैव महा-
 सुराः । समकम्पन्त पञ्चाला गावः शीतार्दिता इव । ४९ ॥
 ततो निष्ठानको धीरः पाण्डवानामजायत । द्रोणेन वध्यमानेषु
 सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ५० ॥ प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च
 सायकैः । अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा संत्रस्तचेतसः ॥ ५१ ॥
 मोहिता बाणजालेन भारद्वाजेन संयुगे । उरग्राह्यृहीतानां पञ्चा-
 लानां महारथाः ॥ ५२ ॥ चेदयश्च महाराज सृज्याः काशिको-

को जैसे काल सटासट निगल जाता है तसेही, द्रोण भी
 उनके पास जो भी क्षत्रिय आता था उसको कालकी
 समान बन कर निगल जाते थे (मार डालते थे) तदनन्तर
 हे महाराज ! द्रोणने अपना नाम सुना सुना कर सहस्रों बाणों
 की वर्षासे पाण्डवोंके योगाओंको ढक दिया ॥ ४७ ॥ पत्थर
 पर धिसेहुए और जिनके ऊपर अपना नाम लिखा था ऐसे
 द्रोणके जोड़ेहुए उन बाणोंसे संग्राममें सैकड़ों हाथी घोड़े और
 मनुष्य मारे गए ॥ ४८ ॥ इन्द्रके हाथसे मरते हुए बड़े २ असुरोंकी
 समान, द्रोणके हाथसे मरतेहुए पांचाल राजे जाड़ेसे अरुढती हुई
 गौकी समान कांपनेलगे ॥ ४९ ॥ हे भरतर्षभ ! द्रोण पाण्डवों
 की सेनाका संहार करनेलगे, उस समय पाण्डव दुःखसूचक
 भयङ्कर चीखें मारनेलगे ॥ ५० ॥ द्रोणके बाणोंसे मारे जाते
 हुए और सूर्यकी गरमीसे तपतेहुए पांचालोंका मन व्याकुल
 होगया ॥ ५१ ॥ वे युद्धमें द्रोणके बाणोंसे मुरझासे गए थे
 तथा ज्यों त्यों जाँघोंके बलसे अपने शरीरको रोके हुए खड़े थे

सन्ताः । अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ५३ ॥ द्रुव-
न्तश्च रणेन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः । हत द्रोणं हत द्रोणमिति
ते द्रोणमभ्ययुः ॥ ५४ ॥ यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महा-
द्युतिम् । निनीषवो युधि द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५५ ॥ यत-
मानांस्तु ताञ्छूरान् भारद्वाजः शिलीमुखैः । यमाय प्रेपयामास
चेदिमुख्यान् विशेषतः ॥ ५६ ॥ तेषु प्रत्तीयमाणेषु चेदिमुख्येषु
सर्वशः । पञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥ ५७ ॥
प्राक्तोशन् भीमसेनन्ते धृष्टद्युम्नञ्च भारत । दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि
तथा रूपाणि मारिष ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं
महत् । तथा हि युधि संक्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥ ५९ ॥ धर्मो
युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परन्तपः । तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षिते-

तो भी वे पांचालोंके, चेदियोंके कोसलोंके, सृंजयोंके और काशी
के महारथी प्रसन्न हो द्रोणाचार्यके साथ लड़नेकी इच्छासे उन
पर दूटपड़े ॥ ५२-५३ ॥ पांचाल और सृंजय द्रोणको मारडालो
द्रोणको मारडालो ऐसा कहतेहुए द्रोणके ऊपर झपटे ॥ ५४ ॥
रणमें महाक्रान्तिमान् द्रोणको यमसदन भेजनेकी इच्छासे वे
पुरुषव्याघ्र पूरी शक्तिसे पराक्रम करनेलगे ॥ ५५ ॥ परन्तु
द्रोणने उद्योग करतेहुए उनके विशेषतः चेदियोंको बाणोंके द्वारा
यमलोकमें भेजदिया ॥ ५६ ॥ जब चेदियोंके मुख्य योधा ही सब
ओरसे मारे जानेलगे तब द्रोणके बाणोंसे पीड़ा पातेहुए पांचाल
थर थर काँपनेलगे ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! द्रोणके ऐसे कर्मोंको देख
वे भीमसेन और धृष्टद्युम्नसे चिन्ता २ कर कहनेलगे, कि-५८
इस ब्राह्मणने वास्तवमें बड़ा कठिन तप किया है इसीसे यह
क्रोधमें भर वड़े २ क्षत्रियोंका संहार किये चलाजाता है ॥ ५९ ॥
क्षत्रियका परमधर्म युद्ध है और ब्राह्मणका परमधर्म तप है,
तपस्वी और उस पर विद्यावान् तो दृष्टिमात्रसेही (दूसरेको)

नापि निर्दहेत् ॥ ६० ॥ द्रोणास्त्रमग्निसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रिय-
 र्दमाः । वहवो दुस्तरं घोरं यत्रादहन्त भारत ॥ ६१ ॥ यथावत्
 यथोत्साहं यथासत्त्वं महाद्युतिः । मोहयन् सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति
 बलानि नः ॥ ६२ ॥ तातेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः । अर्द्ध-
 चन्द्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महाबलः ॥ ६३ ॥ क्रोधसम्निगमनसो
 द्रोणस्य सशरं धनुः । सुसंख्यतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ६४
 अन्यत् कामुकमादाय भास्वरं वेगवचनम् । तत्राधाय शरं तीक्ष्णं
 परानीकविशतनम् ॥ ६५ ॥ आकर्ण्य पूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवा-
 म्भजत् । स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ६६ स भिन्नहृदयो
 बाहान्ययपतन्वेदिनीतलो ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नमुते हते ६७
 अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महाबलः । स द्रोणं दशभिर्भिध्वा

भस्म कर सकता है ॥ ६० ॥ हे भारत ! बहुतसे क्षत्रिय राजे,
 अस्त्रकी समान तीक्ष्ण स्पर्शवाले द्रोणरूपी दुस्तर और घोर
 अधिमें प्रवेश करके भस्म होगए ॥ ६१ ॥ महापकाशवान् द्रोणा-
 चार्य अपने बल, उत्साह और सत्त्वके अनुसार सब प्राणियोंको
 मोहित कर हमारी सेनाका संहार कर रहे हैं ॥ ६२ ॥ पञ्चालोंकी
 इस बातको सुनकर महाबली क्षत्रधर्मा द्रोणके सामने आकर
 डटगया और अर्धचन्द्राकार बाण मारकर क्रोधसे खिन्नचित्त
 हुए द्रोणके धनुषको बाणसहित काट डाला, इससे क्षत्रियमर्दन
 द्रोणको और भी क्रोध चढ़ा ॥ ६३-६४ ॥ तब बली द्रोणने
 दूसरा धनुष ले, उसके ऊपर चमकता हुआ और तीव्र वेगवाला,
 शत्रुकी सेनाका नाशक, तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर धनुषको कान तक
 खेंच क्षत्रधर्माके मारा, वह बाण क्षत्रधर्माको मार पृथिवीतलमें
 छुस गया ॥ ६५-६६ ॥ क्षत्रधर्माका हृदय फट गया और वह
 छोड़े परसे नीचे गिर पड़ा, उस समय धृष्टद्युम्नके पुत्र क्षत्रधर्माके
 मारे जानेपर सेनाएँ काँपने लगीं ॥ ६७ ॥ तदनन्तर महाबली

प्रत्यविध्यत् स्तनांतरे ॥ ६८ ॥ चतुर्भिसागर्थि चास्य चतुर्भिरच-
तुरो हयान् । तमाचार्यस्त्रिभिर्वाणैर्बाह्विररुसि चार्पयत् ॥ ६९ ॥
ध्वजं सप्तभिरुन्मध्य यन्तारमरमवधीत्त्रिभिः । तस्य सूते हते तेऽश्वा
रथमादाय विदुताः ॥ ७० ॥ समरे शरसम्भीता भारद्वाजेन मारिष ।
चेकितानरथं दृष्ट्वा हताश्वं हतसारथिम् ॥ ७१ ॥ तान् समेतात्रणो
शूरान् चेदिपञ्चालसृञ्जयान् । समन्ताद् द्रावयन् द्रोणो बहुशोभत
मारिष ॥ ७२ ॥ आकर्ण्यपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ।
रथो पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ७३ ॥ अथ
द्रोणं महाराज विचरन्तमपीवत् । वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रु-
सूदनम् ॥ ७४ ॥ ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्दुर्षदो बुद्धिमान्नुप । लुब्धोयं

चेकितान द्रोणके ऊपर दौड़ा उसने दश बाण मारकर द्रोणको
बीध डाला और एक बाण मारकर उनकी छातीको घायल कर
डाला ॥ ६८ ॥ और चार बाण मारकर उनके सारथिको बीध
डाला तथा चार बाण मारकर उनके चारों घोड़ोंको घायल कर
डाला तब द्रोणने तीन बाण मारकर उसकी छाती और भुजाको
घायल कर दिया ॥ ६९ ॥ फिर सात बाणोंसे उसकी ध्वजाको
तोड़कर तीन बाणोंसे उसके सारथिको समाप्त कर दिया । सारथि
के मारे जानेपर द्रोणके बाणोंसे बिदेहुए वे घोड़े रणमें रथको
लेकर भागने लगे, चेकितानके रथके घोड़े और सारथिको मरा
हुआ देखकर ॥ ७०-७१ ॥ हे राजन् ! इकट्ठे हो चढ़कर आये
हुए शूरवीर, चेदि, पंचाल और सृञ्जयोंको चारों ओरको भगाते
हुए द्रोण बहुतही शोभा पाने लगे ॥ ७२ ॥ श्यामवर्ण कानों
तकके श्वेत केशोंवाले पिचासी वर्षके वृद्ध द्रोण रणमें
सोलह वर्षके बालककी समान घूमरहे थे ॥ ७३ ॥
हे महाराज ! शत्रुसूदन द्रोणाचार्यको निहार हो रणमें घूमते देख
कर, शत्रु उनको वज्रधारी इन्द्र माननेलगे ॥ ७४ ॥ हे राजन् !

क्षत्रियान् हस्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥ ७५ ॥ कृच्छ्रान् दुर्योधनो
लोकान् पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः । यस्य लोभाद्विनिहताः समरे
क्षत्रियर्षभाः ॥ ७६ ॥ शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता इव गोवृषाः ।
रुधिरैः परीताङ्गाः श्वशृगालादनीकृताः ॥ ७७ ॥ एवमुक्त्वा महा-
राज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः । पुरस्कृत्य रणे पार्थान् द्रोणमभ्यद्र-
वद् द्रुतम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणपराक्रमे
पञ्चत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

सञ्जय उवाच । व्यूहेष्वालोक्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः ।
सुदूरमन्वयुः पार्थाः पञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १ ॥ वर्त्तमाने तथा
रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे । संज्ञये जगतस्तीव्रे युगान्न इव भारत २
द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुः मुहुः । पञ्चालेषु च क्षीणेषु

तदनन्तर बुद्धिमान् महाबाहु राजा द्रुपद लोले, कि—जैसे भूखा
व्याघ्र छोटे २ मृगोंको अनायासही मार डालता है तैसे ही यह
राज्य अथवा यशके लोभी ब्राह्मण क्षत्रियोंका संहार करे डालता
है ॥ ७५ ॥ दुबुद्धि पापी दुर्योधन, कि—जिसके लोभके कारणसे
बड़े २ क्षत्रिय समरमें मारे गए घोर नरकमें पड़ेना ॥ ७६ ॥ हा !
सैंकड़ों राजे लोहलुहान हो भूमिमें पड़े हुए हैं और कुत्ते तथा
गीदह उन्हें मरे हुए बैलोंकी समान खारहे हैं ॥ ७७ ॥ हे महा-
राज ! अक्षौहिणी सेनाका स्वामी राजा द्रुपद इसप्रकार कहता २
पाण्डवोंको आगे कर शीघ्रतासे द्रोणके ऊपरको भूपटा ॥ ७८ ॥
एकसौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२५ ॥

संज्ञयने कहा कि—जब द्रोणने पांडवोंकी सेनाको चारों
ओरसे रगड़ा, तब पांचाल, सोपक और पांडव दूर भाग गए । १ ।
हे भारत ! जब इसप्रकार गोमांच खड़े करनेवाला जगतसंहारक
मलयकालकी समान-युद्ध चल रहा था ॥ २ ॥ और द्रोण युद्धमें

वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३ ॥ नापश्यच्छरणं किञ्चिद्धर्मराजो युधि-
ष्ठिरः । चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद्भविष्यति ॥ ४ ॥ ततो वीक्ष्य
दिशः सर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया । युधिष्ठिरो ददर्शार्थं नैव । पार्थ
न माधवम् ॥ ५ ॥ सोऽपश्यन्नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम् । गांडी-
वस्य च निर्घोषममृण्वन् व्यथितेन्द्रियः ॥ ६ ॥ अपश्यन् सात्यकि
चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम् । चिन्तयाभिपरीताङ्गो धर्मराजो युधि-
ष्ठिरः ॥ ७ ॥ नाध्यगच्छत्तदा शान्तिं तावपश्यन्नरोत्तमौ ।
लोकोपक्रोशभीरुत्वादुर्मराजो महामनाः ॥ ८ ॥ अचिन्तयन्महोवाहुः
शौनेयस्य रथं प्रति । पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया । रणे ह
शौनेयः सात्यकिः संत्यो मित्राणामभयङ्करः । तदिदं लोकमेवासीत्

पराक्रम कर बारम्बार गरज रहे थे, पंचाल क्षीण होरहे थे,
तथा पांडव मारे जा रहे थे ॥ ३ ॥ उस समय धर्मराजको कोई
रक्तक दिखाई न दिया और हे राजेन्द्र ! वे चिन्ता करने लगे,
कि—इसका क्या परिणाम निकलेगा ? ॥ ४ ॥ इसप्रकार विचार
करने पर उन्होंने अर्जुनको देखनेकी इच्छासे सब दिशाओंमें
दृष्टि ढाली परन्तु उनको अर्जुन या सात्यकि कोई भी नहीं
दीखा जिसकी ध्वजामें वानरका चिन्ह है ऐसे नरशार्दूल
अर्जुनके दिखाई न देनेसे और गांडीव धनुषकी टंकार सुनाई
न आनेसे, तथा वृष्णियोंमें मुख्य महारथी सात्यकिके भी दिखाई
न पड़ने पर धर्मराज युधिष्ठिरकी इन्द्रियें व्याकुल होगई और वे
घबराहटमें पड़ गए ॥ ६-७ ॥ उन दोनों पुरुषोत्तमोंके न देखने
से युधिष्ठिरको चैन नहीं पड़ा, उदार मनवाले महाबाहु धर्मराज
संसारकी निन्दासे डरकर मनमें सात्यकिके विषयमें विचारने
लगे, कि—सत्यपराक्रमी, मित्रोंको अभय देनेवाले शिनिपुत्र
सात्यकिको मैंने अर्जुनके पीछे उसकी सुध लेनेके लिये भेजा है
पड़िले तो मुझे एक की ही चिन्ता थी परन्तु अब दोनोंकी चिन्ता

द्विधा जातं समाद्य वै ॥ १० ॥ सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्चः
 धनञ्जयः । सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ॥ ११ ॥
 सात्वतस्यापि तं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम् । करिष्यामि प्रयत्नेन
 भ्रातुरन्वेषणं यदि ॥ १२ ॥ युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्ह-
 यिष्यति । भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥ परि-
 त्यजति वाष्पेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् । लोकापवादभीरुत्वात्
 सोऽहं पार्थ वृकोदरम् ॥ १४ ॥ पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य
 महात्मनः । यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ॥ १५ ॥ तथैव
 वृष्णिवीरेपि सात्वते युद्धदुर्मदे । अतिभारे नियुक्तश्च मया शैने-
 यचन्दनः ॥ १६ ॥ स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महाबलः । प्रविष्टो
 भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥ १७ ॥ असौ हि श्रूयते शब्दः

होरही है ॥ ८-१० ॥ मुझे अब सात्यकिकी सुध लेनी चाहिये
 और अर्जुनकी भी खबर मँगवानी चाहिये, मैंने अर्जुनका समा-
 चार लेनेके लिये ये उसके पीछे सात्यकिको भेजदिया परन्तु अब
 युद्धमें सात्यकिका समाचार लेनेके लिये उसके पास किसको
 भेजूँ ? यदि मैं केवल भाईको खोजनेके लिये सात्यकिको भेज-
 कर चुप होजाऊँगा और सात्यकिकी खोज नहीं करूँगा तो
 संसार मेरी निन्दा करेगा, कि-धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने सात्यकि
 को तो भाईकी खोजके लिये भेजदिया, परन्तु सत्यपराक्रमी
 वृष्णिवंशी सात्यकिकी कुछ सुध नहीं ली, मैं संसारकी निन्दासे
 बहुत ही डरता हूँ, अतः मैं महात्मा सात्यकिकी खोजके लिये
 भीमको भेजूँ तो ठीक हो, शत्रुसूदन अर्जुनसे मैं जितना प्रेम
 करता हूँ उतना ही प्रेम वृष्णिवीर युद्धदुर्मद सात्यकिसे भी
 करता हूँ और महाबली सात्यकिको मैंने ही बड़ाभारी काम
 भी सौंपदिया है ॥ ११-१६ ॥ और वह मित्रके अनुरोध तथा
 अपना गौरव रखनेके लिये समुद्रमें नाकेके घुसनेकी समान, इस

शूराणामनिवर्त्तिनाम् । मिथः संप्रुध्यमानानां दृष्टिर्णवीरेण भीमता ॥ १८ ॥
 प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे । तत्रैव पाण्डवेभ्यस्य भीम-
 सेनस्य धन्विनः ॥ १९ ॥ गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ ।
 न चापसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किञ्चन ॥ २० ॥ शक्नो ह्येव रणे
 यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम् । स्वबाहुबलमास्थाय प्रतियूहितुम-
 ङ्गसा ॥ २१ ॥ यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः । वन-
 वासाग्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निज्जिताः ॥ २२ ॥ इतो गते भीम-
 सेने सात्वतं प्रति पाण्डवे । सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वत-
 फाल्गुनौ ॥ २३ ॥ कामन्त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ ।
 रक्षितौ वासुदेवेन स्वयञ्चास्त्रविशारदौ ॥ २४ ॥ अवश्यन्तु मया
 कार्यमात्मनः शोकनाशनम् । तस्माज्जीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य

भरतराजकी सेनामें घुसगया है ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् दृष्टिर्णवीर
 सात्यकिसे लड़तेहुए रणमेंसे पीछेको न हटनेवाले वीरोंका यह
 शब्द सुनाई दे रहा है ॥ १८ ॥ इस समय कौनसा काम करना
 चाहिये यह विचारता हूँ तो मुझे इस समय धनुर्धर भीमसेनको
 भेजना ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि-संसारमें ऐसा कोई भी
 काम नहीं है जिसको भीमसेन न कर सके ॥ १९-२० ॥ रणमें
 तयार होकर खड़ाहुआ भीमसेन अपने भुजबलके सहारेसे
 समस्त पृथ्वीके धनुषधारियोंके लिये पर्याप्त होसकता है ॥ २१ ॥
 उस महात्माके भुजबलके आसरेसे हम जनवाससे सकुशल लौट
 सकें थे और इस युद्धमें भी हम अभीतक पराजित नहींहुए हैं ॥ २२ ॥
 यहाँसे पाण्डुपुत्र भीमसेनके सात्यकिके पास जाने पर सात्यकि
 और अर्जुन युद्धमें सनाथ होजायेंगे ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीकृष्ण
 रणमें उन दोनोंकी रक्षा कर रहे होंगे और वे दोनों अर्जुन तथा
 सात्यकि स्वयं भी अस्त्रविद्यामें कुशल हैं अतः उनकी चिन्ता
 नहीं करनी चाहिये ॥ २४ ॥ परन्तु मुझे तो किसीप्रकार अपनी

पदानुगम् ॥ २५ ॥ ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति ।
 एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥ यन्तारमन्त्रवी-
 द्राजा भीमं प्रति नयस्व माम् । धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयको-
 विदः ॥ २७ ॥ रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत् । भीम-
 सेनमनुमाप्य प्राप्तकालमनुस्मरन् ॥ २८ ॥ कश्मलं प्राविशद्राजा
 बहु तत्र समादिशत् । स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः २९
 अश्ववीद्वचनं राजन् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । यः स देवान् सगन्ध-
 र्वान् दैत्यांश्चैकरथोऽजयत् ॥ ३० ॥ तस्य लज्जं न पश्यामि भीम-
 सेनानुजस्य ते । ततोऽश्ववीहर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ॥ ३१ ॥
 नैवाद्राजं न चाश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् । पुरातिदुःखदीर्घानां

चिन्ता मिटानी ही चाहिये अतः मैं भीमसेनको सुध लेनेके लिये
 सात्यकिके पास भेजूँगा ॥ २५ ॥ ऐसा होनेसे मैं समझता हूँ
 कि—मैं सात्यकिकी रक्षाकी चिन्तासे छूट जाऊँगा, धर्मपुत्र युधि-
 स्थिर इसप्रकार मनमें निश्चय करके ॥ २६ ॥ अपने सारथिसे
 कहनेलगे कि—तू मुझे भीमसेनके पास लेवल धर्मराजकी बात
 सुनकर अश्वशास्त्रमें चतुर सारथी ॥ २७ ॥ सुवर्णसे मढ़ेहुए
 रथको भीमसेनके पास लेगया, धर्मराज भीमसेनको समीपमें
 बुलाकर क्या करना चाहिये यह विचार करनेलगे ॥ २८ ॥ उस
 समय राजा युधिष्ठिरको शोकने दवालियाँ और वे अपने मनको
 बहुत प्रकारसे समझाने लगे परन्तु उनकी घबराहट दूर नहीं
 हुई और उन्होंने भीमसेनको बुलाकर यह बात कही हे राजन् !
 कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर भीमसेनसे कहनेलगे, कि—अरे भीमसेन !
 जिस तेरे भाई अर्जुनने एकरथमें बैठकर देवता, गन्धर्व और
 दैत्योंको जीतलिया था, उस तेरे छोटे भाई अर्जुनके रथका
 चिन्ह तक भी इससमय नहीं दीखता, धर्मराजको इसप्रकार घबड़ाते
 देख भीमसेन उनसे कहनेलगा कि—२९-३१ आपमें ऐसी घबड़ा-

भवान् गतिरभूद्भि नः ॥ ३२ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शशि कि
करवाणि ते । न त्वकार्यमसाध्यं वा विद्यते मम मानदा ॥ ३३ ॥ आज्ञा-
पय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मन कृथाः । तमव्रवीदश्रुपूर्णः कृष्ण-
सर्प इव श्वसन् ॥ ३४ ॥ भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः ।
यथा शंखस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते ॥ ३५ ॥ पूरितो
वायुदेवेन संरन्धेन यशस्विना । नूनमद्य हतः शंते तव भ्राता
धनञ्जयः ॥ ३६ ॥ तस्मिन् विनिहतं नूनं युध्यतेसौ जनपुङ्गवः ।
यस्य सत्त्ववतो वीर्यं ह्युपजीवन्ति पाण्डवाः ॥ ३७ ॥ यं भयेष्व-
भिगच्छन्ति सहस्रात्तमिवामराः । स शूरः सैधवमेष्टुरन्वयाद्भ्रा-
रतीञ्चमूम् ॥ ३८ ॥ तस्य वै गमनं विद्वो भीम नावर्त्तनं पुनः ।

हट पहिले कभी न देखी थी और न कभी सुनी थी, पहिले जब
हमारा चित्त वड़े भारी दुःखसे फटा जाता था तब आप ही ने हमें
आश्वासन दिया था ॥ ३२ ॥ हे राजेन्द्र ! उठो ! उठो ! साव-
धान हो जाओ, मुझे आज्ञा दो, मैं आपका कौनसा काम करूँ ?
हे मानद ! इस संसारमें ऐसा कोई भी काम नहीं है जिसे मैं
सिद्ध न कर सकूँ अथवा उसको अकार्य मानकर छोड़ बैठूँ ३३
हे कुरुश्रेष्ठ ! आप मुझे आज्ञा दें और शोक न करें उस समय
उतरेहुए मुखवाले राजा युधिष्ठिर काले साँपकी समान श्वास
लेकर भीमसेनसे यह कहने लगे कि—यशस्वी श्रीकृष्णके कोशमें
भरकर बजाएहुए पाँचजन्य शंखके शब्दको सुनकर और अर्जुन
के शंखके शब्दको न सुनकर शंका होती है, कि—तेरा भाई अर्जुन
रणभूमिमें कहीं मरणशय्या पर तो नहीं सोरहा है ? ३४-३६
उसके मारे जाने पर ही श्रीकृष्ण लहरहे हैं हा ! जिस वीर्यवान्‌के
भरोसे पर पांडव जीवन धारण कियेहुए हैं ॥ ३७ ॥ और हम
आत्ति पढ़ने पर, देवता जैसे इन्द्रके पास जाते हैं तैसे ही उसके
पास जाते थे वह शूर वीर जयद्रथको मारनेके लिये अकेला ही

श्यामो युवा गुहाकेशो दर्शनीयो महारथः ॥ ३६ ॥ व्यूढो-
रस्त्रो महाबाहुर्मत्तद्विरदविक्रमः । चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विपतां
भयवर्द्धनः ॥ ४० ॥ तदिदं मम भद्रन्ते शोकस्थानमरिन्दम ।
अर्जुनार्थे महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ॥ ४१ ॥ वर्हते हवि-
पेवाग्निरिध्यमानः पुनः पुनः । तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि
कश्मलम् ॥ ४२ ॥ तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतञ्च महारथम् ।
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवानुजम् ॥ ४३ ॥ तमपश्यन्महा-
बाहुमहं विन्दामि कश्मलम् । पार्थे तस्मिन्हते चैव युध्यते नूनम-
ग्रणीः ॥ ४४ ॥ सहायो नास्य वै कश्चित्तेन विन्दामि कश्मलं ।

इस भारती सेनामें घुसगया है ॥ ३८ ॥ हे भीम ! मैंने उसको
इस सेनामें घुसते तो देखा है, परन्तु लौटता हुआ वह दिखाई
नहीं दिया, श्यामवर्ण तरुण अर्जुन महारथी कुञ्चित केशवाला और
रूपमें देखने योग्य है ॥ ३९ ॥ उसकी छाती मांससे भरी हुई है,
भुजाएँ बड़ी २ हैं और वह पराक्रममें मतवाले हाथीकी समान है
उसके नेत्र चकोरके नेत्रोंकी समान लाल २ हैं और उसे देखते
ही शत्रुओंको डर लगनेलगता है ॥ ४० ॥ उसको मैंने सेनामें
घुसते देखा है परन्तु अभीतक वह लौटा नहीं, हे शत्रुदमन !
तेरा कन्याण हो ! इस कारण ही मुझे शोक हो रहा है महा-
बाहो ! जैसे घी डालनेसे अग्नि अधिकाधिक प्रज्वलित होती
है, तैसे ही अर्जुन और सात्यकिकी चिन्ता मेरे शोकको अधि-
काधिक बढ़ा रही है, अर्जुनका इस समय कोई चिन्ह तक नहीं
दीखता, इससे मुझे मूर्खसी आई जाती है ॥ ४१-४२ ॥ उस
पुरुषव्याघ्र अर्जुनको खोज और सात्यकि महारथी अर्जुनका
समाचार लानेके उसके पास गया था, अतः उस महारथी
सात्यकिका भी पतालगा ॥ ४३ ॥ वह महाबाहु सात्यकि भी मुझे
नहीं दीखता, इससे भी मेरे मुखका रङ्ग फीका पड़ा जा रहा है,

तस्मिन्कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥ ४५ ॥ न हि मे
शुद्ध्यते भावस्तयोरेव परन्तप । स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो
धनञ्जयः ॥ ४६ ॥ सात्यकिश्च महावीर्यः कर्षाभ्यं यदि
मन्यसे । वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते ॥ ४७ ॥
न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा । त्रिकीर्णमस्मिन्
पार्थः स यातः सव्यसाचिनः ॥ ४८ ॥ पदवीं दुर्गमां घोरामग-
म्यामकृतात्मभिः । दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ सात्वतञ्चैव सात्यकिम् ॥
सन्निदश्चैव कुर्यात्त्वं सिंहनादेन पाण्डव ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथधर्पण युधिष्ठिर-

चिंतायां पट्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

भीम उवाच । ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहृद्यः पुरां रथः । तमा-

उन दोनोंके मारेजाने पर ही श्रीकृष्ण युद्ध कर रहे हैं ॥ ४४ ॥
उसके पास कोई भी सहायक नहीं था, इससे मुझे बड़ी चिन्ता
होरही है मालूम होता है, युद्धचतुर श्रीकृष्ण अर्जुनके मारे जाने
से युद्ध कर रहे हैं ॥ ४५ ॥ हे परन्तप ! उनकी ओरसे मेरे मनको
किसीप्रकारका निश्चय नहीं होता अतः हे कौन्तेय ! यदि तू
मेरा कहना माने तो हे धर्मज्ञ ! जिस ओर महात्मा अर्जुन और
सात्यकि गए हों, वहीं तू जा । मैं तेरा बड़ाभाई हूँ ॥ ४६-४७ ॥
सात्यकिको तू अर्जुनसे भी अधिक समझ क्योंकि-हे पार्थ !
वह मेरा प्रिय करनेके लिये दुर्गम भयङ्कर और साधारण मनु-
ष्योंसे अगम्य भारती सेनाको लाँघकर अर्जुनकी सहायता
करनेके लिये गया है, हे पाण्डव ! यदि तुझे श्रीकृष्ण अर्जुन
और सात्वतवंशी सात्यकि राजीखुशी दीखजायँ तो तू सिंहकी
समान गर्जना करके उनका कुशल समाचार मुझे देना ४८-४९
एकसौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२६ ॥

भीमसेनने उत्तर दिया, कि हे धर्मराज ! ब्रह्मा, शंकर और

स्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥ १ ॥ आज्ञान्तु शिरसा
विभ्रदेप गच्छामि मा शुचः । समेत्य तान्नरव्याघ्रान् तव दास्यामि
सम्बिदम् ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । एतावदुक्त्वा प्रययौ पण्डिताय
युधिष्ठिरम् । धृष्टद्युम्नाय बलवान् सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ॥ ३ ॥
धृष्टद्युम्नश्चेदमाह भीमसेनो महाबलः । विदितन्ते महाबाहो
यथा द्रोणो महारथः ॥ ४ ॥ ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वृत्तते ।
न च मे गमने कृत्यं तादृक् पार्षत विद्यते ॥ ५ ॥ यादृशं रक्षणे
राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः । एवमुक्तोऽस्य पार्थेन प्रतिवक्तुञ्च
नोत्सहे ॥ ६ ॥ प्रयास्ये तत्र यत्रासौ शुभूर्धुः सैन्धवः स्थितः ।
धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशंकया ॥ ७ ॥ दास्यामि पदवीं

इन्द्र पक्षिने जिस रथमें बैठकर युद्ध करनेके लिये यात्रा कर चुके
हैं, उस ही रथमें बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन भी युद्ध करने
गए हैं, अतः उनके ऊपर संकट नहीं पड़सकता ॥ १ ॥ तो भी
आपकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मैं उनके पास जाता हूँ, अतः
तुम शोक न करो, मैं उन नरव्याघ्रोंसे मिलकर आपको उनका
समाचार दूँगा ॥ २ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! धर्मराजसे
इसप्रकार कहकर, धृष्टद्युम्न आदि स्नेहियोंसे राजा युधिष्ठिरकी
रक्षा करनेको बारम्बार कहकर भीमसेन चलदिया ॥ ३ ॥ और
चलते-२ महाबली भीमसेन धृष्टद्युम्नसे कहने लगा, कि हे महा-
भुज ! यह तुम्हें मालूम ही है, कि—महारथी द्रोण युधिष्ठिरको
पकड़नेके लिये सब तरहसे प्रयत्न कर रहे हैं, हे पृथ्वुज ! अतः
इस समय अर्जुनके पास मेरा जाना उतना आवश्यक नहीं है,
कि—जैसा राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करना, क्योंकि—ग्रह बड़े दायि-
त्वका काम है, परन्तु धर्मराजने मुझे आज्ञा दी है, अतः मैं उनसे
निषेध नहीं करसकता ॥ ४-६ ॥ मुझे धर्मराजकी आज्ञा बिना
सोचे विचारे मानलेनी चाहिये, अतः जहाँपर मरनेको तयार

भ्रातुः सात्वतस्य च भीमनः । सोऽयं यत्नो रणो पार्थपरिरक्ष
युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥ एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे । तम-
न्नवीन्महाराजं धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥ ९ ॥ ईप्सितं ते करिष्यामि
गच्छ पार्थाविचारयन् । नाहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन १०
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे । ततो निक्षिप्य राजानं धृष्ट-
द्युम्ने च पाण्डवम् ॥ ११ ॥ अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन
फाल्गुनः । परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ॥ १२ ॥
आघ्रातरश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाणिष शुभाः । कृत्वा प्रदक्षि-
णं निषमान्चिंतांस्तुष्टमानसान् ॥ १३ ॥ आलभ्य मङ्गलान्यष्टौ
पीत्वा कैलातकं मधु । द्विगुणाद्रविणो वीरो मदरक्तान्तलोचनः १४

जयद्रथ खड़ा है तहाँ मैं जाता हूँ ॥ ७ ॥ जिस मार्गसे भाई
अर्जुन और युधिष्ठिर सात्वतिक गए हैं उस ही मार्गसे मैं भी
उनके पास जाता हूँ, अतः तुम सावधान होकर युद्धमें राजा युधि-
ष्ठिरकी रक्षा करते रहना ॥ ८ ॥ संग्राममें राजा युधिष्ठिरकी
रक्षा करना हमारा मुख्य काम है, हे महाराज ! यह सुनकर
धृष्टद्युम्नने भीमसेनसे कहा, कि ९ हे भीम ! तुम निश्चित होकर
जाओ मैं तुम्हारी इच्छानुसार ही काम करूँगा, द्रोण रणमें धृष्टद्युम्न
को मारे बिना, युद्धमें धर्मराजको किसी प्रकारभी कैद नहीं कर सकेंगे,
इसप्रकार बातें कर भीमसेनने अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको प्रणाम
किया और उनको धृष्टद्युम्नकी रक्षामें जोड़दिया, हे भरतवंशी राजन् !
धर्मराजने भी अर्जुनके मार्गसे ही अर्जुनके पास जानेवाले भीम-
सेनका आलिंगन किया और उसके शिरको मूँचा तथा उसको
शुभ आशीर्वाद दिये, तदनन्तर भीमसेनने ब्राह्मणोंकी पूजा कर
उनके मनको प्रसन्न किया और उनकी परिक्रमा की, फिर आठ
प्रकारकी माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श किया तथा कैलातक नामकी
मदिगको पीकर वह विशेष बलवान् हुआ । इस समय उस वीरके

विभैः कृतस्वस्त्ययनो विजयोत्पादमूचितः । पश्यन्नेवात्मनो बुद्धिं
विजयानन्दकारिणीम् ॥ १५ ॥ अनुलोमानिलैश्चाशु प्रदर्शित-
जयोदयः । भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ॥ १६ ॥
साङ्गदः सततत्राणः सरथी रथिनाम्बरः । तस्य काष्ण्यायसं वर्म
हेमचित्रं महद्भिषत् ॥ १७ ॥ त्रिवभौ सर्वतः शिल्पं सचिद्युदिव
तोयदः । पीतरक्तासितसिनैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ॥ १८ ॥ कण्ठ-
त्राणेन च वभौ सेन्द्रायुध इवाम्बुदः । प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं
युयुत्सया ॥ १९ ॥ पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद्विशम्पते । तं
श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ॥ २० ॥ पुनर्भीमं महा-
बाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत । एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो

नेत्रोंके कोए मदसे लालर होगए ॥ १०-१४ ॥ ब्राह्मणोंने स्व-
स्तिवाचन कर यह सूचित किया कि-तुम्हारी विजय होगी, भीम
भी अपनी बुद्धिको विजयके आनन्दसे भरीहुई देखरहा था १५
पवन भी अनुकूल चलकर उसकी विजयकी सूचना देरहा था,
महाशुज भीमसेन कवच और सुन्दर कुण्डल पहिरे हुए तथा
हाथोंमें बाजूबन्द धारण कियेहुए था और रथियोंमें श्रेष्ठ रथी
वह भीमसेन हाथोंमें चमड़ेके मोजे पहिररहा था सुवर्णकी फुल्लियों
से चिताहुआ उसका लोहेका कवच, विजलीवाले मेघकी समान
शोभा देरहा था, लाल, पीले, काले और सफेद बख्तांको पहिरे
हुए तथा कण्ठत्राणको धारण करनेवाले भीमसेनकी शोभा इन्द्र-
धनुषकी समान अपूर्व छटा दिखारही थी तुम्हारी सेनासे लड़नेके
लिये भीमसेनके यात्रा करने पर हे राजन् ! फिर पाञ्चजन्य
शंखकी घोर ध्वनि होनेलगी, उस शंखकी त्रिलोकीको त्रास देने
वाली घोर ध्वनिको सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर फिर महाबाहु भीम-
सेनसे कहनेलगे, कि-वृष्णिवीर श्रीकृष्णका बजाया हुआ जलसे
उत्पन्न यह शंखराज आकाश और पृथिवीको प्रतिध्वनित कर

भृशम् २१ पृथिवीञ्चान्तरिक्षञ्च विनादयति शंस्रराट् । नूनं व्यसन-
मापन्ते सुपद्म सज्यसाविनि ॥ २२ ॥ कुरुमिथुं ध्वजे सार्द्धं सर्वैश्चक-
गदावरः । आह कुन्ती नूनमायां पापमय निदर्शनम् ॥ २३ ॥
द्रौपदी च सुपद्मा च पर्यन्त्यौ सह वन्धुभिः । स भीम त्वरया
युक्तो याहि यत्र घनञ्जयः ॥ २४ ॥ सुहृन्नीव हि मे सर्वा वन-
ञ्जयदिहक्षया । दिशश्च प्रदिशः पार्यं सात्वत्स्य च कारणात् २५
गच्छ गच्छेति गुरुणा सोऽनुज्ञातो वृकोदरः । ननः पाण्डुमुनो राजन्
भीमसेनः प्रतापवान् ॥ २६ ॥ बद्धगोर्वाण्डुतिघाणः प्रवृष्टीन्तरा-
सनः । ज्येष्ठेन प्रह्वितो भ्रात्रा भ्राता भ्रातुः नियङ्करः ॥ २७ ॥
आहत्य दुन्दुभि भीमः शंस्रं प्रप्याप्य चासकृत् । विनय सिं-
नादेन स्यां विक्रपेन्पुनः पुनः ॥ २८ ॥ तेन शब्देन वीराणां

रहा है, निःसन्देह अर्जुनके बड़ेभारी संकटमें पड़ने पर ही
श्रीकृष्ण सब कारणोंसे युद्ध कर रहे हैं । ऐसा मुझे मर्दात होता
है) पूज्य माता कुन्तीने, द्रौपदीने और सुपद्मा तथा दूसरे सम्ब-
न्धियोंने कहा था, कि—आज अपशकुन हो रहे हैं, अन्तः हे भीम !
तू शीघ्रतासे अर्जुनके पास जा १६-२४ हे पृथायुध ! मैं अर्जुनको
और सात्यकिको देखनेके लिये सब दिशा और प्रदिशाओंमें
दृष्टि डालता हूँ, परन्तु वे दिशाएँ मुझे मोहने घिरी हुई मनीष
होती हैं, अर्थात् अर्जुन और सात्यकिके न देखने पर मेरे नेत्रों
के सामने अंधेरासा आवानादा है, अतः तू शीघ्र ही जा, जब इस
प्रकार बड़े भाईने आज्ञा दी, तब हे राजन् ! पाण्डुपुत्र महावीर
भीमसेनने कि—जो अपने भाईके चित्तके अनुकूल चलने जाता
था—मोहके चमड़ेके मोल पहिने और प्रसन्न वारण कर लगा देकर
दण्डा मारकर वही ध्वनि की तथा चारन्वार शंस्रको बनाया
फिर सिंहाद का, वज्रकी प्रत्यञ्चको चारन्वार खींचने
लगा ॥ २५-२८ ॥ उस शब्दसे वीरोंके हृदयको भयभीत कर

पातयित्वा मनास्थित । दर्शयन् घोरमात्मानमभिमान् सत्त्वाऽभ्य-
यात् ॥ २६ ॥ तमूर्ध्वज्वना दान्ता विरुन्तो हयोत्तमाः । विशो-
केनाभिसंपन्ना मनोमास्तरहसः ॥ ३० ॥ आरुजन् विरुजन्
पार्थो ज्यां विकर्षश्च पाणिना । संपर्कपन् विकर्षश्च सेनाग्रं समलो-
डयत् ॥ ३१ ॥ तं प्रयान्तं महाबाहुं पञ्चालाः सहसोभकाः ।
पृष्ठतोऽनुपयुः शूरा मघवन्तमिवामराः ॥ ३२ ॥ तं समेत्य महा-
राज तावकाः पर्यवारयन् । दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविं-
शतिः ॥ ३३ ॥ दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा ।
विन्दानुविन्दौ सुमुखौ दीर्घबाहुः सुदर्शनः ॥ ३४ ॥ वृन्दारकः
सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः । अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्वि-
मोचनः ॥ ३५ ॥ शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः सहसैन्यपदानुगाः ।
संयत्ता समरे वीरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ३६ ॥ तैः समन्ताद् वृतः

शत्रुओंको अपनी भयङ्करता दिखाता हुआ भीमसेन एकाएकी
शत्रुओंके सामनेको चलदिया ॥ २६ ॥ उसके रथको तेज चलने
वाले, चतुर, दिनदिनातेहुए, मन और वायुकी समान वेगवाले
घोड़े लेकर चलदिये ॥ ३० ॥ कौरवसेनामें प्रवेश करतेही भीमसेन
हाथसे धनुषकी प्रत्यङ्गचाकी खूब खींचकर बाणोंकी मारसे शत्रु-
सेनाके अग्रभागको हिलोडने लगा ॥ ३१ ॥ जैसे इन्द्रके पीछे
देवता चलते हैं, तैसेही महाबाहु भीमसेनके पीछे सोमक और
पंचाल राजे भी चलदिये ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! भीमसेनने
ज्योंही चढाई की, कि-पहिलेसेही तयार होकर खड़ेहुए रथियोंमें
श्रेष्ठ दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह,
विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन,
वृन्दारक, सुहस्त विशाल नेत्रोंवाला सुषेण, भयङ्कर काम करने
वाला अभय, सुवर्मा, दुर्विमोचन आदि तुम्हारे पुत्र सैनिक और
पैदलोंको लेकर भीमसेनकी ओरको भागते तथा उसको चारों

शूरः समरेषु महारथः । तान् समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः परा-
क्रमी । अभ्यवर्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३७ ॥ ते महा-
स्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन् । द्वादशान्तःशरैर्भीमं मेघाः
सूर्यमिवोदितम् ॥ ३८ ॥ स ताननीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्र-
वत् । अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३९ ॥ सोऽचिरेणैव
कालेन तद्गजानीकमाशुगैः । दिशः सर्वाः समभ्यस्प व्यभक्त
पवनात्मजः ४० आसिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः । प्राद्र-
वन् द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ४१ ॥ पुनश्चातीव
वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् । तमवारयदाचार्यो वेलोदवृत्तमिवार्ण-
वम् ॥ ४२ ॥ ललाटे ताडयन् नाराचेन स्मयन्निव । ऊर्ध्व-

ओरसे घेरलिया ॥ ३३-३६ ॥ उन वीरोंके द्वारा चारों ओरसे
घिरेहुए पराक्रमी महारथी भीमसेनने उन सबको देखा और फिर
इस वेगसे उनके ऊपर टटा, कि-जैसे सिंह छोटे हिरनोंके ऊपर
टूट पड़ता है ॥ ३७ ॥ इतनेमें ही जैसे चादल उड़्य होतेहुए सूर्यका ढक
लेते हैं तैसे ही वे वीर दिव्य अस्त्रोंका प्रयोगकर भीमसेनको ढकने
लगे ३८ परन्तु भीमसेन उन सबको वेगसे पीछे छोडकर द्रोणकी
सेना पर जाभूषटा, बीचमें हस्तिसेना पड़ी और वह उसके ऊपर
बाणवर्षा करनेलगी ॥ ३९ ॥ थोड़ेही समयमें पवनपुत्र भीमने सब
दिशाओंमें घूमतेहुए बाण बरसा २ कर हस्तिसेनाका संहार करना
आरम्भ करदिया ॥ ४० ॥ वनमें शरभके गर्जने पर जैसे मृग
भागने लगते हैं, तैसेही उस समय सब हाथी भी घबड़ाकर चिंघा-
डतेहुए भागनेलगे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भीमसेन फिर द्रोणकी
सेनाकी ओरको भूषटा, उफनते हुए समुद्रको जैसे किनारा
आगे बढ़नेसे रोकदेता है, तैसेही द्रोणाचार्य उसको आगे
बढ़नेसे रोकनेलगे ॥ ४२ ॥ फिर द्रोणने मुस्कुरा कर
उसके ललाटमें बाण मारा, उस बाणसे भीमसेन ऊपरको

रश्मिरिवादित्यो दिवभौ तत्र पाण्डवः ॥ ४३ ॥ स मन्यमानस्त्वा-
चार्यो ममायं फाल्गुनो यथा । भीमः करिष्यते पूजामिषुवाच
ष्टकोद्गरम् ॥ ४४ ॥ भीमसेन न ते शक्त्यामवेष्टुं परिवाहिनी । माम-
निजित्य समरे शत्रुपथ महाबलः ४५ यदि ते सोऽनुजः कृष्णः
प्रविष्टोऽनुमते मम । अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ४६
अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वीक्ष्यमेपनभीः । क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं
रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन् ॥ ४७ ॥ तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मवन्धो रणा-
जिरम् । प्रविष्टः स हि दुर्धर्पैः शक्त्यापि विशोद्धतम् ॥ ४८ ॥
तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि । नार्जुनो हं घृणी द्रोण
भीमसेनोरिम ते रिपुः ॥ ४९ ॥ पिता नस्त्वं गुरुर्वन्धुस्तथा पुत्रा-
स्तु ते वयम् । इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥ ५० ॥

जानेवाली किरणोंवाले सूर्यकी समान शोभा पानेलगा ॥ ४३ ॥
जैसे अर्जुन मेरी पूजा करता है तैसेही भीमसेन भी मेरी पूजा
करेगा, यह समझकर द्रोणाचार्यने भीमसेनसे कहा, कि-॥ ४४ ॥
हे महाबली भीम ! आज तू मुझे बिना जीते इस शत्रुसेनामें घुस
नहीं सकेगा । ४५ ॥ तेरा भाई अर्जुन मेरी अनुमतिसे ही इस
सेनामें घुससका है । परन्तु तू मेरी सेनामें न घुससकेगा ॥ ४६ ॥
गुरुकी बात सुनकर भीमसेन क्रोधमें भरगया, उसके नेत्र ताँबेकी
समान लाल हो गए, और उसने निडर हो उनसे कहा, कि-४७
हे ब्रह्मवन्धो ! अर्जुन तुम्हारी आज्ञा लेकर सेनामें नहीं घुसा
होगा वह तो ऐसा दुर्धर्प है कि-इन्द्रकी सेनामें भी घुसजायगा ४८
उसने तुम्हारा मान रखनेके लिये तुम्हारी पूजाकी होगी और
तुम्हारा मान किया होगा, परन्तु हे द्रोण ! मैं दयालु अर्जुन
नहीं हूँ, किन्तु तुम्हारा शत्रु भीमसेन हूँ ॥ ४९ ॥ हम तुम्हें
गुरु और पिता मानते हैं तथा अपनेको तुम्हारा पुत्र समझते हैं
और आपको प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥ परन्तु आज तुम्हारी

अथ तद्विपरीतं ते वदन्तोऽस्मासु दृश्यते । यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे
तत्तथास्त्विह ॥ ५१ ॥ एष ते सदृशं शशोः कर्म भीमः करोम्य-
हम् । अथोद्भ्राम्य गदा भीमः कालदण्डमिवान्तकः ॥ ५२ ॥
द्रोणाय व्यसृजद्राजन् स रथादवपुत्सुवे । साश्वसूतध्वजं भानं
द्रोणस्यापोथयत्तदा ॥ ५३ ॥ प्रापद्दनाच्च बहून् योधान् वायु-
वृत्तानिवौजसा । तं पुनः परिवव्रुस्ते तत्र पुत्रा रथोत्तमम् ॥ ५४ ॥
अन्यन्तु रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः । व्यूहद्वारं समात्ताद्य
युद्धाय समुपस्थितः ॥ ५५ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः
पराक्रमी । अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाफिरत् ॥ ५६ ॥ ते
वध्यमानाः समरे तत्र पुत्रा महारथाः । भीमं भीमवला युष्मे योध-
यन्ति जयैषिणः ॥ ५७ ॥ ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समा-

चातोंसे तुम्हारा वर्ताव दूसरेही प्रकारका प्रतीत होता है, अतः
यदि तुम अपनेको हमारा शत्रु मानते हो तो भले ही मानिये ५१
अब मैं भीमसेन तुमसे भी शत्रुकी समान ही व्यवहार करता हूँ,
हे राजन् ! तदनन्तर जैसे काल अपने दण्डको उठाता है, तैसे
ही भीमने अपनी गदा उठायी और घुमाकर द्रोणके मारी, परन्तु
द्रोण तुरन्त ही रथ परसे कूदपड़े, और उस गदाने छोड़े, सारथि
तथा ध्वजासहित द्रोणके रथका चूरा २ करडाला तथा और
भी बहुतसे योधार्थोंका, जैसे वायु वृत्तोंको नष्ट करदेता है तैसे
ही नाश करडाला, उस समय तुम्हारे पुत्रोंने उस महारथीको
फिर घेरलिया ॥ ५२—५४ इस समय प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ
द्रोण दूसरे रथमें बैठकर व्यूहके छुहानेकी ओरको दौड़े और
युद्ध करनेके लिये खड़े हो गए ॥ ५५ ॥ हे महाराज ! तदनन्तर
क्रोधमें भराहुआ महारथी पराक्रमी भीम सामनेकी रथसेना पर
बाण बरसाने लगा ॥ ५६ ॥ भयङ्कर बलवाले तुम्हारे महारथी
पुत्रोंको भीमसेन मारता चलाजाता था, परन्तु वे जयकी इच्छासे

क्षिपत् । सर्वपारशर्वी तीक्ष्णा जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ५८ ॥
 आपतन्ती महाशक्ति तत्र पुत्रप्रबोदिताम् । द्विधा विच्छेद तां
 भीमस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५९ ॥ अधान्यैर्विशिखैर्वाणैः पाण्डवः
 कुण्डभेदिनम् । सुपेण दीर्घनेत्रञ्च त्रिभिस्त्रीनवधीकृत् ॥ ६० ॥ ततो
 वृन्दारकं वीरं कुरुणां कीर्तिवर्द्धनम् । पुत्राणां तत्र वीराणां
 युध्यतामब्रवीत् पुनः ॥ ६१ ॥ अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च ।
 त्रिभिस्त्रीनवधीकृत् ॥ ६२ ॥ वध्यमाना महा-
 राज पुत्रास्तत्र बलीयसा । भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात् पर्यवार-
 यन् ॥ ६३ ॥ ते शरैर्भीमकर्माणं बधुर्षुः पाण्डवं युधिमेघा इवा-
 तपापाये धाराभिर्धरणीवरम् ६४ स तद्वाणमयं वर्षगश्मवर्षामिवा-

युद्ध ही करते रहे ॥ ५७ ॥ यह देखकर दुःशासनको क्रोध
 आगया और उसने भीमसेनको मारनेकी इच्छासे ठोस लोहेकी
 रथशक्ति उसके मारी ॥ ५८ ॥ तुम्हारे पुत्रकी फैकीहुई उस
 आतीहुई महाशक्तिके भीमसेनने दो टुकड़े करवाले, यह आश्चर्य-
 जनक काम हुआ ॥ ५९ ॥ तदनन्तर बड़े क्रोधमें भरोहुए बली
 भीमसेनने कुण्डभेदी, सुपेण और दीर्घनेत्र, इन तीनोंको तीन
 तीखे बाणोंसे मारवाला ॥ ६० ॥ तदनन्तर तुम्हारे वीर पुत्रोंके
 लडते रहने पर भी भीमसेनने कौरवोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाले
 वीर वृन्दारकको मारवाला ॥ ६१ ॥ फिर भीमसेनने दुवारा
 तुम्हारे अभय, रौद्रकर्मा और दुर्विमोचन नामवाले तीनों पुत्रोंको
 तीन बाणोंसे मारवाला ॥ ६२ ॥ हे महागज ! जब बलवान्
 भीमसेन इसप्रकार तुम्हारे पुत्रोंका संहार करनेलगा, तब उन्होंने
 महार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको चारोंओरसे घेरलिया ६३
 जैसे ग्रीष्मऋतुके अनन्तर मेघ पर्वत पर मूसलाधार जल बरसाते
 हैं, तैसे ही वे युद्धमें भयङ्करकर्मा भीमसेनके ऊपर बाणोंकी वर्षा
 करनेलगे ॥ ६४ ॥ जैसे पर्वत पत्थरों (ओलों) की वर्षासे नहीं

चलः । प्रतीच्छन् पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा ॥ ६५ ॥
 विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणञ्च ते सुतम् । महसन्नेव कौन्तेयः
 शरैर्निन्ये यमप्लवम् ॥ ६६ ॥ ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रन्ते भरतर्षभ ।
 विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च ॥ ६७ ॥ सोविरेणैव
 कालेन तद्रधानीकमाशुगैः । दिशः सर्वाः समालोक्य व्यधमत्
 पाण्डुनन्दनः ॥ ६८ ॥ ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव ।
 भज्यमानाश्च समरे तत्र पुत्रा विशाम्पते ॥ ६९ ॥ प्राद्वन् सहसा
 सर्वे भीमसेनभयार्हिताः । अनुयायाश्च कौन्तेयः पुत्राणां ते मह-
 द्बलम् ॥ ७० ॥ विव्याध समरे राजन् कौरवेयान् समन्ततः ।
 बध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ॥ ७१ ॥ त्यक्त्वा भीमं
 रणाज्जगमुश्चोदयन्तो ह्योत्तमान् । तांस्तु निजित्य समरे भीमसेनो
 घवडाता है तैसे ही शत्रुनाशी भीमसेनने भी उस बाणवर्षाको
 जरा भी न घवडाकर सहलिया ६५ और मुख मलका कर
 उसने तुम्हारे पुत्र विन्द, अनुविन्द और सुवर्माको बाण मारकर
 यमभवनको भेजदिया ॥ ६६ ॥ हे भरतर्षभ ! फिर उसने भगाटे
 के साथ तुम्हारे पुत्र वीर सुदर्शनको बाणोंसे बंधडाला, वह गिर
 पड़ा और मरगया ॥ ६७ ॥ भीमसेनने थोड़े ही समयमें चारों
 दिशाओंमें भाँक २ कर तहाँ खड़ीहुई रथसेनाका संहार कर
 डाला ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! जैसे सिंहके दहाड़नेसे हिरन भागने
 लगते हैं, तैसे ही उस समय भीमसेनके रथकी घरघराहटको सुन
 तुम्हारे पुत्र संग्राममेंसे भागनेलगे ॥ ६९ ॥ वे सब जब भीम-
 सेनके भयसे भागनेलगे तब कुन्तीपुत्र भीमसेन उस तुम्हारी
 भागतीहुई सेनाके पीछे पड़ा ॥ ७० ॥ हे राजन् ! और वह उसको
 चारों ओरसे मारनेलगा, हे महाराज ! उस भीमसेनसे पिटतेहुए
 तुम्हारे पुत्र शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँककर रणमेंसे बाहर निकलगए
 महाबली भीमसेन समरमें उन सबोंको हराकर सिंहकी समान

महाबलः ॥ ७२ ॥ सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दञ्च पाण्डवः ।
तलशब्दञ्च सुमहत् कृत्वा भीमो महाबलः ॥ ७३ ॥ भीमयित्वा
रथानीकं हत्वा योधान् वरान् वरान् । व्यतीत्य रथिनश्चापि
द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे
भीमपराक्रमे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

सञ्जय उवाच । समुत्तीर्णं रथानीकं पाण्डवं विहसन्नखं ।
विवारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १ ॥ पिवन्निव शरीरां-
स्तान् द्रोणचापपरिच्युतान् । सोभ्यद्रवन् सोदर्यान् मोहयन् बल-
मायया ॥ २ ॥ तं मृधे वेगमास्थाय नृपाः परमधन्विनः । चोदि-
तास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३ ॥ स तैस्तु संवृतो भीमः
महसन्निव भारत । उद्यच्छद् गदां तेभ्यः सुघोरां सिंहवन्नदन् ४

दहाडनेलगा और खंम ठोकनेलगा, तदनन्तर भीमसेनने बड़ी
जोरसे ताली बजा, रथसेनाको डराकर श्रेष्ठ २ योधाओंको मार
डाला फिर रथियोंको लाँघकर द्रोणकी सेनाकी ओरको
बढ़ा ॥ ७१-७४ ॥ एकसाँ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२७ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! भीमसेन रथसेनाको लाँघ
कर आगेको बढ़ा, कि-द्रोणाचार्यमुंस्फुराये और उसको रोकनेके
लिये उसके ऊपर बाण बरसानेलगे ॥ १ ॥ परन्तु भीमसेन
मानों बाणोंकी पंक्तियोंको निगलरहा हो इसप्रकार उनको कुछ
न गिनकर द्रोणके सामनेको बढ़ा हीं चलागया उसके ऐसे
बलको देखकर उसके भाई (दुर्योधन आदि) मुरझानेसेलगे २
तुम्हारे पुत्रोंकी प्रेरणासे बहुतसे महाघनुषधारी राजाओंने वेगसे
दौड़कर उसको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३ ॥ हे भरतवंशी
राजन् ! उन सबसे घिरजाने पर भीमसेन कुछ हँसा और उनके
ऊपर फेंकनेलिये भयङ्कर गदाको उठाकर सिंहकी समान दहाडने

अयासृजच्च वेगेन शत्रुपक्षविनाशिनीम् । इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा
 संहतात्मना । प्रामथ्यनात् सा महाराज सैनिकांस्तव संयुगे ॥ ५ ॥
 घोषेण महता राजन् पूरयन्तीव मेदिनीम् । ज्वलन्ती तेजसा
 भीमा प्रासयामास ते सुतान् ॥ ६ ॥ तां पवन्ती महावेगां दृष्ट्वा
 तेजोऽभिसंहताम् । प्राद्ववंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ७
 तश्च शब्दमसृष्टं वै तस्याः संलक्ष्य मारिष । प्रापतन्मनुजास्तत्र
 रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ ८ ॥ ते हन्यमाना भीमेन गदाहस्तेन
 तावकाः ॥ ९ ॥ प्राद्वन्त रणे भीता व्याघ्रप्राता मृगा इव । स
 तान् विद्राव्य कौन्तेयः संख्येऽभिमान् दुरासदान् । सुपर्ण इव
 वेगेन पक्षिराहत्यगाच्चमूम् ॥ १० ॥ तथा तु विप्रकुर्याणं
 रथयूथपयूथपम् । भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ११ ॥

लगा ४ फिर उसने शत्रुओंके पक्षके योधार्थोंको नष्ट करनेवाली
 उस गदाको वेगसे फेंका इन्द्रकी चलाई हुई शक्तिसे जैसे असुरोंका
 नाश होता है तैसे ही वली भीमसेनकी गदाने तुम्हारे
 सैनिकोंको मार डाला ॥ ५ ॥ हे राजन् ! अपने धडाकेसे पृथ्वीको
 शब्दायमान करती हुई उस तेजरो देदीप्यमान गदासे तुम्हारे पुत्र
 भयभीत होगए ॥ ६ ॥ धडाकेके साथ पृथ्वी पर गिरी हुई उस
 जलती हुईसी गदाको देखकर तुम्हारे सब योधा चीख २ कर
 भागनेलगे ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उस गदाके असह्य धडाकेसे बहुतसे
 रथी रथोंमेंसे गिर पड़े ॥ ८ ॥ तदनन्तर भीमसेन हाथमें गदा
 लेकर तुम्हारे सैनिकोंका संहार करने लगा, तब व्याघ्रकी गन्ध
 पाकर जैसे मृग भागने लगते हैं, तैसे ही तुम्हारे योधा उसको देखते
 ही पलायमान होगये ॥ ९ ॥ कुन्तीपुत्र भीमसेन इसप्रकार उनको
 भगाकर पक्षिराज गरुडकी समान वेगपूर्वक सेनाको लाँघ गया १०
 हे महाराज ! रथियोंके झुण्डोंके स्वामियोंके झुण्डका स्वामी
 भीमसेन जब इसप्रकार कौरवसेनाका सत्यानाश करने लगा तब

भीमः तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्भिः । अकारान्
 सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत् ॥ १२ ॥ तच्चुद्भुमा-
 सीत् सुमहद् घोरं देवासुरोपमम् । द्रोणस्य च महाराज भीमस्य
 च महात्मनः ॥ १३ ॥ यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिः-
 सृतैः । वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥ ततो
 रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः । निमील्य नयने राजन् पदा-
 तिद्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥ अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि
 स्थिरौ । वेगमास्थाय बलवान् मनोऽनिलगरुत्मताम् ॥ १६ ॥ यथा
 हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया । तथा भीमो नरव्याघ्रः
 शरवर्षं समग्रहीत् ॥ १७ ॥ स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य
 मारिष । ईषायां पाणिनाऽऽगृह्य प्रचित्रेण महाबलः ॥ १८ ॥ द्रोण-
 स्तु सत्त्वरो राजन् क्षिप्तो भीमेन संयुगे । रथमन्यं समारुह्य व्यूह-
 द्रोणाचार्य उसके सामने गए ॥ ११ ॥ उन्होंने बाणोंका प्रहार
 कर, भीमको रणभूमिमें आगे बढ़नेसे रोकदिया और सहसा
 बड़ी भारी गर्जना कर पाण्डवोंको भयभीत करदिया । १२ ।
 हे महाराज ! द्रोण और महात्मा भीमका देवासुरसंग्रामकी समान
 बड़ा घोर युद्ध होनेलगा ॥ १३ ॥ तब द्रोणके धनुषसे छूटेहुए
 तीखे बाण सैकड़ों और सहस्रों योत्राओंका संहार करनेलगे १४
 उस समय भीमसेन रथमेंसे नीचे कूदपड़ा और दोनों आँखे बीच
 मस्तकको क्रन्धे पर नमाकर तथा दोनों हाथोंको छातीमें
 स्थिर कर, मन, गरुड़ और पवनकी समान वेगसे द्रोणकी
 ओरको दौड़ा ॥ १५-१६ ॥ जैसे मदमत्त बैल जलभी वर्षाको
 सहजमें ही सहलेता है तैसे ही नरव्याघ्र भीम भी उस बाण-
 वर्षाको सहनेलगा ॥ १७ ॥ महाबली भीमसेन द्रोणकी बाण
 वर्षाको सहता २ उनके रथके समीप पहुँच गया और उसने रथके
 जुएके अग्रभागको पकड़कर रथको दूर फेंकदिया ॥ १८ ॥

द्वारं यथा पुनः ॥ १६ ॥ तमार्यात तथा दृष्ट्वा ममोरसाहं गुरुं
 तदा । गत्वा वेगात्पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु ॥ २० ॥ तमप्य-
 त्तिरथं भीमश्चिक्षेप शृणरोपितः । एवमष्टौ रथाः क्षिप्त्वा भीमसेनेन
 लीलया ॥ २१ ॥ व्यदृश्यत निमेषेण पुनः स्वरथमास्थितः ।
 दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्लोचनैः ॥ २२ ॥ तस्मिन् क्षणे
 तस्य यन्ता तूर्णमरवानचोदयत् । भीमसेनस्य कौरव्य तददभ्यु-
 मिवाभवत् ॥ २३ ॥ ततः स्वरथमारथाय भीमसेनो महाबलः ।
 अभ्यवर्त्तत वेगेन तत्र पुत्रस्य बाहिनीम् ॥ २४ ॥ समृद्नन् क्षत्रि-
 यानाजौ वातो वृत्तानिवोद्धतः । अगच्छद्वारयन् सेनां सिन्धुवेगो
 हे राजन् ! उयो ही युद्धमें भीमसेनने द्रोणके रथको पृथिवीपर
 पटका त्योंही वह दूसरे रथमें बैठकर व्यूहके मुहाने पर जाकर
 फिर खड़े होगए ॥ १६ ॥ कुछ देरमें भीमसेनने देखा, कि-टूटे
 हुए वत्साहवाले गुरुदेव रथमें बैठकर फिर आरहे हैं, तब तो उसे
 बड़ा क्रोध चढ़ा और वह फिर दौड़कर उनके रथके पास गया
 और धुरेको पकड़ उस महारथको भी उसने दूर पटक
 दिया, इसप्रकार भीमसेनने अनायास ही द्रोणके आठ रथोंको
 दूर फेंकदिया २०-२१ ॥ द्रोण भी पलक मारने मात्र समयमें
 दूसरे रथमें बैठे दीखते थे, यह देखकर तुम्हारे योधा आश्चर्यसे
 आँखें फाड़कर भौंचक्केसे रहगये थे ॥ २२ ॥ हे कुरुवंशी राजन् !
 उस समय भीमसेनके सारथिने शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँका (और
 उसके पास पहुँचाया) यह अचरजसा हुआ ॥ २३ तब महा-
 बली भीमसेन भी अपने रथमें बैठकर शीघ्रतासे तुम्हारे पुत्रकी
 सेनाकी ओरको वेगसे बढ़ा चलागया ॥ २४ ॥ उस समय भीमसेन,
 जैसे आँधी पेड़ोंका नाश करदेती है, तैसे ही क्षत्रियोंको युद्धमें
 नष्ट करताहुआ तथा जैसे सिन्धुका वेग पर्वतोंको फाड़ता हुआ
 आगेको बढ़ता चलाजाता है तैसे ही सेनाको चीरताहुआ आगेको

नगानिव ॥ २५ ॥ भोजानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाभिरक्षितम् ।
 प्रमथ्य बहुधा राजन् भीमसेनः समभ्ययात् ॥ २६ ॥ सन्नास्य-
 न्नीकानि तलशब्देन मारिष । अजयत् सर्वसैन्यानि शार्दूल इव
 गोष्ठपान् ॥ २७ ॥ भोजानी हपतिकम्य काम्बोजानां च वाहिनीम् ।
 तथा म्लेच्छगणांश्चान्यान् बहून् युद्धविशारदान् ॥ २८ ॥ सात्य-
 किञ्चापि संप्रेक्ष्य युध्यमानं नरर्षभ । रथेन यत्तः कौन्तेयो वगेन
 प्रययौ तदा ॥ २९ ॥ भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनञ्जयम् ।
 अतीत्य समरे योधास्नावकान् पाण्डुनन्दनः ॥ ३० ॥ सोपश्यदर्जुनं
 तत्र युध्यमानं महारथम् । सैधवस्य वधार्थं हि पराक्रांतं पराक्रामी ॥
 तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुकोश महतो रवान् । प्रावृट्काले महाराज
 नर्दन्तिव बलाहकः ॥ ३१ ॥ तं तस्य निनर्द घोरं पार्थः शुश्राव

बढनेलगा ॥ २५ ॥ आगे उसे हृदीकके पुत्र कृतवर्माकी रक्षाकी
 हुई भोजसेना मिली, अतिवली भीमसेन उसको भी नष्ट भ्रष्ट कर
 आगेको बढाया ॥ २६ ॥ ताली बनाकर सब सेनाओंको व्याकुल
 करतेहुए भीमसेनने जैसे सिंह बैलोंको दबालेता है तैसे ही सकल
 सेनाओंको जीतलिया ॥ २७ ॥ भोजकी सेना, दरदोंकी सेना,
 और बहुतसे युद्धविशारद म्लेच्छोंके भुएडोंको लाँघकर भीम-
 सेन आगेको बढाबलागया ॥ २८ ॥ तहाँ उसे युद्ध करता हुआ
 सात्यकि दिखाई दिया, तब तो भीमसेन सावधानीसे रथमें
 बैठ, अर्जुनको देखनेके लिये, और भी जोरसे बढा, हे महाराज !
 उस समय तुम्हारे बहुतसे योधाओंको लाँघकर ज्योंही पाण्डु-
 नन्दन पराक्रमी भीमसेन आगे बढा, कि-उसने सिंधुराज जयद्रथ
 को मारनेके लिये पराक्रम करते हुए महारथी अर्जुनको युद्ध करते
 देखा ॥ २९-३१ ॥ हे महाराज ! पुरुषव्याघ्र भीमसेन अर्जुन
 को देखकर वर्षा ऋतुमें गरजतेहुए मेघकी समान बारम्बार
 जोरसे दहाडनेलगा ॥ ३२ ॥ हे कुरुवंशी राजन् ! युद्धमें गर्जना

नर्दनः । वासुदेवश्च कौरव्यः भीमसेनस्य संयुगे ॥ ३३ ॥ तौ श्रुत्वा
 युगपद्भीरौ निनदं तस्य शुष्मिणः । पुनः पुनः प्रणदतां दिदृक्षन्तौ
 हृषोदरम् ॥ ३४ ॥ ततः पार्थो महानादं युञ्जन् वै माधवश्च ह ।
 अभ्ययातां महाराज नदन्तौ गोवृषाविव ॥ ३५ ॥ भीमसेनरवं श्रुत्वा
 फाल्गुनरय च धन्विनः । अभीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ३६
 विशोकश्चाथवद्राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः । धनञ्जयस्य च रणे
 जयमाशास्तवान् विश्वः ॥ ३७ ॥ तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने
 मदोत्कटे । रिमतं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥ हृद-
 गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः । दत्ता भीम त्वया सम्भित्
 कृतं मुखचस्तथा ॥ ३९ ॥ न हि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टांसि
 पाण्डव । दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनञ्जयः ॥ ४० ॥
 दिष्ट्या च कुशली वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः । दिष्ट्या मृणोमि

करतेहुए भीमसेनकी उस घोर गर्जनाको अर्जुन और श्रीकृष्णने
 सुन लिया ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी पराक्रमी
 भीमकी गर्जनाको सुनकर उसको देखनेकी इच्छासे बारम्बार
 गर्जना की ३४ हे महाराज ! तदनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन दो
 साँढोंकी समान गरजतेहुए भीमसे आ मिले ॥ ३५ ॥ भीमसेनकी
 दहाड और अर्जुनकी गर्जनाको सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़े
 मसन हुए ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनकी गर्जनाको सुनकर
 युधिष्ठिरकी शोक दूर होगया और उन्हें अर्जुनकी जीतकी आशा
 होगई ॥ ३७ ॥ धर्मपुत्र धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर मदो-
 त्कट भीमसेनकी गर्जनाको सुन झुंझुराकर मनमें कहनेलगे, कि-
 हे भीम ! तूने वास्तवमें समाचार दिया और बड़ोंकी बात
 मानी ॥ ३८-३९ ॥ हे पाण्डुपुत्र ! तू जिससे द्वेष करे वह
 भला युद्धमें कैसे जीतसकता है ? सुदेवसे ही सव्यसाची अर्जुन
 तथा सत्यपराक्रमी वीर सात्यकि संग्राममें सकुशल हैं ! कृष्ण

गर्जन्तौ वासुदेवधनञ्जयो ॥४१॥ येन शक्रं रणे जित्वा तपिना
हव्यवाहनः । स हन्ता द्विपतां संख्ये दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ४०
यस्य बाहुबलं सर्वे वयमाश्रित्य जीविताः । स हन्ता रिपुसैन्यानां
दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ४२ ॥ निवताकवचा येन देवैरपि
सुदुर्जयाः । निर्जिता धनुषैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति ४१
कौरवान् सहितान् सर्वान् गोग्रहार्थे समागतान् । योऽजयन्मत्स्य-
नगरे दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४५ ॥ कालकेयसहस्राणि
चतुर्दश महारणे । योऽवधीद् भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ४६
गन्धर्वराजं बलिन दुर्योधनकृतेन वै । जितवान् योऽस्त्रवीर्येण
दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४७ ॥ किरीटमाली बलवान् श्वेता-

तथा अर्जुनको मैं गर्जतेहुए सुन रहा हूँ, यह मेरा अहोभाग्य
है ॥ ४०॥४१ ॥ जिसने रणमें इन्द्रको जीतकर खाएडव वनमें
अशिको तप्त किया था वह शत्रुओंको मारनेवाला अर्जुन संग्राममें
जीवित है, यह अहो भाग्य है ॥ ४२ ॥ हम सब जिसके भुज-
बलके आश्रयसे जीवित रहते हैं, वह शत्रुसैन्यसंहारक अर्जुन
अभी जीवित है यह बड़ा सुदैव है ॥ ४३ ॥ देवताओंसे भी
महाकठिनतासे जीतनेमें आनेवाले निवताकवचोंको जिसने एक
धनुषके सहारेमे ही जीतलिया था, वह अर्जुन अभी तक जीवित
है यह अहोभाग्य है ॥ ४४ ॥ विराटनगरमें गोहरणके
लिये आयेहुए सम्पूर्ण कौरवोंको अकेले ही जिसने जीतलिया
था वह अर्जुन अभी तक जीवित है यह हमारा सौभाग्य है ४५
महारणमें जिस अकेले अर्जुनने चौदह सहस्र कालकेय नामक
राक्षसोंको मारडाला था वह अर्जुन जीवित है, यह अहोभाग्य है ४६
जिसने दुर्योधनके लिये अपने अस्त्रबलसे गन्धर्वराज चित्रसेनको
जीता था, वह अर्जुन जीवित है, यह अहोभाग्य है ॥ ४७ ॥
किरीटमाली बलशाली श्वेत घाँड़ोंवाला और कृष्ण जिसके

श्वः कृष्णसारथिः । पम प्रियश्च सततं दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ४८ ॥
 पुत्रशोकाभिसन्नस्रश्चिरीर्षन् कर्म दुष्करम् । जयद्रथवधान्नेषी
 प्रतिज्ञां कृतवान् हि यः ॥ ४९ ॥ कश्चित् स सैन्धवं संख्ये हनि-
 प्यति धनञ्जयः । कश्चिच्चीर्णप्रतिज्ञां हि वामुदेवेन रक्षितम् ५०
 अनस्तमित आदित्ये समेज्याम्यहमञ्जुनम् । कश्चित् सैन्धवको
 राजा दुर्योधनहिते रतः ॥ ५१ ॥ नन्दयिष्यत्यमित्राणि फाल्गु-
 नेन निपातितः । कश्चित् दुर्योधनो राजा फाल्गुनेन निपाति-
 ततम् ॥ ५२ ॥ दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शमपस्मात्तु धास्यति । दृष्ट्वा
 विनिहतात् भ्रातृन् भीमसेनेन संयुगे । कश्चित् दुर्योधनो मन्दः
 शमपस्मात्तु धास्यति ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वा चान्यान्महायोधान् पातितान्
 धरणीतले । कश्चित् दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं करिष्यति ॥ ५४ ॥
 कश्चिद्भीष्मेण नो वैरं शममेकेन यास्यति । शेषस्य रक्षणार्थश्च

सारथी हैं तथा मैं जिससे सदा प्रेम करता हूँ, वह अर्जुन
 जीवित है, यह मेरा अहोभाग्य है ॥ ४८ ॥ जो पुत्रके शोकसे
 सन्न है, जो महाकठिन कर्मको करना चाहता है और जिसने
 जयद्रथका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ४९ ॥ क्या वह अर्जुन
 युद्धमें जयद्रथको मारसकेगा? क्या मैं सूर्यास्तसे पहिले श्रीकृष्णकी
 रक्षामें रहकर अपना प्रतिज्ञाको पूर्ण करने आयेहुए अर्जुनसे
 मिलसकूँगा? दुर्योधनके हितमें तत्पर जयद्रथ अर्जुनके हाथसे
 माराजाने पर क्या शत्रुओंको आनन्दित करेगा? राजा दुर्योधन
 जयद्रथको धनञ्जयके हाथसे मराहुआ देखकर क्या हमसे सन्धि
 करेगा? युद्धमें भीमसेनके हाथसे अपने भाइयोंको मराहुआ देख
 कर मन्दबुद्धि दुर्योधन क्या हमसे सन्धि करेगा? ॥ ५०-५३ ॥
 और भी बहुतसे बड़े योधाओंको मारकर पृथिवीपर गिरेहुए देख
 कर क्या मन्दबुद्धि दुर्योधन पश्चात्ताप करेगा? ५४ ॥ क्या हमारा
 वैर एक भीष्मके मारेजाने पर शान्त होजायगा? क्या दुर्योधन

सन्धास्यति सुयोधनः ॥ ५५ ॥ एवं बहुविधं तस्य राज्ञश्चिन्तय-
तस्तदा । कृपयाभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्त्तत ॥ ५६ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे
युधिष्ठिरहर्षे अष्टाविंशत्यधिकशतमतोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । निनदन्तं तथा तन्तु भीमसेनं महाबलम् ।
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन् ॥ १ ॥ न हि पश्याम्यहं
तं वै त्रिषु लोकेषु सञ्जय । क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो
रणे ॥ २ ॥ गर्दा युयुत्समानस्य कालस्येवैह सञ्जय । न हि पश्या-
म्यहं युद्धे यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ॥ ३ ॥ रथं रथेन यो हन्यात् कुञ्जरं
कुञ्जरेण च । कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ४ ॥
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्रान् निर्घासतः । दुर्योधनहिते युक्ताः

वचेदुःश्रौंकी रक्षाके लिये हमसे सन्धि करेगा ? ॥ ५५ ॥ राजा
युधिष्ठिर दयार्द्र चित्तसे एक ओर इसप्रकार विचार रहे थे और
दूसरी ओर भयङ्कर युद्ध होरहा था ॥ ५६ ॥ एकसी अट्टाई-
सवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२८ ॥ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! मेघके गरजनेकी समान गर-
जतेहुए महाबली भीमसेनको (हमारी सेनामेंके) किन २ वीरोंने
धेरलियां था ? ॥ १ ॥ मैं ऐसा त्रिलोकीमें किसीको भी नहीं
देखना, कि-जो क्रोधमें भरेहुए भीमसेनके सामने रणमें उहर
सके ॥ २ ॥ हे संजय ! जब भीमसेन कालकी समान वनकर गदा-
युद्ध करना चाहता है, उस समय मुझे ऐसा कोई भी नहीं दीखता
जो उसके सामने टिकसके ॥ ३ ॥ जो रथसे रथको नष्ट कर
डालता है, हाथीको उठाकर हाथीके मारता है, भला उसके सामने
कौन खड़ा रहसकता है ? उसके सामने तो साक्षात् इन्द्रभी खड़ा
नहीं रहसकता ॥ ४ ॥ जब भीमसेन क्रोधमें भर मेरे पुत्रोंको
मारनेके लिये युद्ध करनेलगा, उस समय दुर्योधनके कौन २ हितैषी

समतिष्ठन्त केऽग्रतः ॥ ५ ॥ भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रास्तृणोप-
मान् । मधत्ततो रणमुखे केऽतिष्ठन्नग्रतो नराः ॥ ६ ॥ काल्यमा-
नान् हि मे पुत्रान् भीमेनावेक्ष्य संयुगे । कालेनेव प्रजाः सर्वाः
के भीमं पर्यवारयन् ॥ ७ ॥ न मेऽर्जुनाद्भयं तादृक् कृष्णान्नापि
च सात्वतात् । हुतशृगजन्मनो नैव यादृग्भीमाद्भयं मम ॥ ८ ॥
भीमवद्वेः मदीप्तस्य मम पुत्रान् दिधत्ततः । के शूराः पर्यवर्त्तन्त
तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । तथा तु नर्दमानं
तं भीमसेनं महाबलम् । तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यपतद्बली १०
व्याक्षिपन् सुमहद्वापमतिमात्रममर्पणः । कर्णस्तु युद्धमार्काक्षन्
दर्शयिष्यन् बलं मृधे ॥ ११ ॥ हरोघ्र मार्गं भीमस्य नातस्येव
महीरुहः । भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्त्तनं स्थितम् ॥ १२ ॥

उसके सामने आकर दड़े ॥ ५ ॥ जब भीमरूप दावानल मेरे पुत्र-
रूप तिलुकोंको भस्म करने लगा, उस समय कौन २ उसको बचानेके
के लिये आगे आकर खड़े हुए थे ॥ ६ ॥ जैसे काल सकल प्रजा-
ओंका संहार करने लगता है, तैसेही भीमसेन जब मेरे पुत्रोंको
नष्ट करने लगा, उस समय किन २ वीरोंने उसको घेर लिया था? ७
मुझै जैसा भीमका ढर है, तैसा ढर न अर्जुनका है, न श्रीकृष्ण
का है, न सात्यकिका है और न धृष्टद्युम्नका है ॥ ८ ॥ हे सञ्जय !
जब भीमरूप अग्नि धक्काधक्काकर मेरे पुत्रोंको जलाना चाहने लगा,
उस समय किन २ वीरोंने उसको रोका था ? यह मुझै सुना । ९।
सञ्जयने उत्तर दिया, कि—जब महाबली भीमसेन इसप्रकार गर्ज
रहा था कि—इतनेमें ही बली कर्ण भी वैसा ही घोर शब्द करता
और क्रोधमें भर अपने बड़ेभारी धनुषको घुमाकर अपना बल
दिखाता हुआ घोर युद्ध करनेकी इच्छासे भीमसेनके सामने चढ़
आया ॥ १०-११ ॥ कर्णने भीमके मार्गको ऐसे रोक दिया जैसे
वृक्ष बाधुके मार्गको रोक देता है, बलवान् वीर भी बने शीघ्रतासे

चुकोप बलवद्दीरश्चित्रेपास्य शिलाशितान् । तान् मत्पट्टहान्
 कर्णोपि प्रतीपं प्रेषयञ्छरान् ॥ १३ ॥ ततस्तु सर्वयोधानां यततां
 प्रेक्षतां तदा । प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे ॥ १४ ॥
 रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम् । भीमसेनस्य निनदं
 घोरं श्रुत्वा रणाजिरे ॥ १५ ॥ खञ्ज भूमिञ्च संरुद्धां मेनिरे तत्रिय-
 र्षभाः । पुनर्परेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः ॥ १६ ॥ समरे
 सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन् क्षितौ । शस्त्राणि न्यपतन् दोर्भ्यः
 केषांचिच्चासवोऽद्रवन् ॥ १७ ॥ विव्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं
 ममृस्रवुः । वाहनानि च सर्वाणि बभूवुर्दिमनांसि च ॥ १८ ॥ प्रादु-
 रासन्निमित्तानि घोराणि च बहून्युत । गृध्रकङ्कवलैश्चासीदन्तरीक्षं
 समावृतम् ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तु तुमुले राजन् भीमकर्णसमागमे । ततः
 कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत् ॥ २० ॥ विव्याध चास्य

दृष्टि डाली तो सामने कर्णको खड़ा देखा, तब तो उसको बड़ा
 क्रोध आया और उसने शिलापर तेज कियेहुए बाण छोड़कर
 कर्णको घायल करदिया उन बाणोंको सहकर कर्णने भी उसके
 बाणमारो ॥ १२-१३ ॥ कर्ण और भीमके युद्धके समय उन दोनोंकी
 तालियोंके शब्दको सुनकर सब दर्शकोंके, योधाओंके और रथि-
 योंके शरीर काँपनेलगे, रणमें भीमसेनकी भयङ्कर गर्जनाको सुन
 योधा अपने मनमें यह समझनेलगे कि-इस समय आकाश और
 पृथिवी भरगये तदनन्तर फिर भीमसेनके घोर शब्द करनेपर
 रणभूमिमें सकल योधाओंके धनुष पृथिवीमें गिरपड़े बहुतसे
 योधाओंके हाथोंमेंसे शस्त्र नीचे गिरपड़े और बहुतसोंके प्राण
 निकल गये ॥ १४-१७ ॥ हाथी, घोड़े आदि सब वाहन निरु-
 त्साह और भयभीत हो मलमूत्र करनेलगे ॥ १८ ॥ उस समय
 आकाशमें बहुतसे गीध और कौए मँड़राने लगे तथा बहुतसे
 अशुभसूचक उत्पात होनेलगे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! भीम और

त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः । प्रहस्य भीमसेनश्च कर्णं मत्स्याद्रव-
द्रणे ॥ २१ ॥ सायकानां यतुःपट्यान्निपकानीं महायशाः । तस्य
कर्णो महेष्वासः सायकाश्चतुरोऽन्तिपत् ॥ २२ ॥ असंभाप्तास्तु तान्
भीमः सायकैर्नगपर्वभिः । विच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन् पाणि-
लाघवम् ॥ २३ ॥ तं कर्णश्छादयाणां शरव्रातैरनेकशः । संख्या-
यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ॥ २४ ॥ विच्छेद चापं
कर्णस्य मुष्टिदेशं महारथः । विव्याध चैव दशभिः सायकैर्नत-
पर्वभिः ॥ २५ ॥ अथान्यद्भुतादाय सज्यं कृत्वा च मृतजः ।
विव्याध समरे भीमं भोमकर्मा महारथः ॥ २६ ॥ तस्य भीमो
भृशं क्रुद्धस्तीव्र शरान्नतपर्वणः । निचखानोरसि क्रुद्धः मृतपुत्रस्य
वेगतः ॥ २७ ॥ तैः कर्णोऽराजत शरैर्रोमध्वगतैस्तदा । मदीवर

कर्णके भयङ्कर युद्धमें कर्णने बीस बाण भीमसेनके मारे ॥ २० ॥
फिर उसने झपाटेसे पाँच बाण मारकर भीमसेनके सारथिकों
घायल कर डाला तब तो भीमसेन खिलखिलाकर कर्णकी ओरको
को दौड़ा ॥ २१ ॥ और उस फुर्तीलेने कर्णके लगातार चौंसठ
बाण मारे, महाधनुषधारी कर्णने उसके चार बाण मारे ॥ २२ ॥
भीमने अपनी फुर्तीको दिखलाते हुए नमीहुई गाँठवाले बाण मार
कर उन बाणोंको मार्गमेंही काट डाला ॥ २३ ॥ तब तो कर्णने
बहुतसे बाण छोड़कर भीमको ढक दिया, जब कर्ण उसको
बारम्बार बाणोंसे ढकने लगा, तब तो पाण्डुनन्दन महारथी भीमने
मूठपरसे उसके धनुषको काट डाला और फिर नमीहुई गाँठवाले
बहुतसे बाण मारकर कर्णको घायल कर दिया ॥ २४-२५ ॥
तदनन्तर भयङ्कर कर्म करनेवाला मृतपुत्र महारथी कर्ण दूसरे
धनुषको ठीक करके भीमसेनको मारने लगा ॥ २६ ॥ तब तो
भीमसेनको बड़ा क्रोध आया और उसने नमी हुई गाँठवाले
तीन बाण बड़े वेगसे मृतपुत्र कर्णकी छातीमें मारे ॥ २७ ॥

इन्द्रोदशस्त्रिभृगो भरतर्षभ ॥ २८ ॥ मुस्ताव चास्य रुधिरं विद्वस्य
परमेषाभिः । धातुप्रस्वन्दिनः शैलाद्यथा गैरिकधातवः ॥ २९ ॥
किञ्चिद्विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः । आकर्णपूर्णमाकृष्य
भीमं विव्याध सायकैः ॥ ३० ॥ चित्तेषु च पुनर्वाणान् शतशोऽथ
सहस्रशः । स शरीरदितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना । धनुर्ज्यामच्छि-
नत्तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह ॥ ३१ ॥ सारथिश्चास्य भल्लेन
रथनीडातपानयत् । बाह्वश्च चतुरस्तस्य व्यसृंश्चक्रे महारथः ३२
इताश्वात्तु रथात्कर्णमवप्लुत्य विशाभ्यते । स्यन्दनं वृषसेनस्य
तूर्णमाप्लुत्वे भयात् ॥ ३३ ॥ निर्मित्य तु रणो कर्णं भीमसेनः
प्रतापवान् । ननाद च वलवन्नादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३४ ॥ तस्य
तन्निनदं श्रुत्वा महृषोभूयुधिष्ठिरः । कर्णन्तु निर्मितं मत्वा भीम-

हे भरतसत्तम ! सूतपुत्र कर्ण, हृदयमें लगेहुए उन तीन बाणोंसे
तीन शिखरवाले बड़े पर्वतकी समान शोभित होनेलगा ॥ २८ ॥
तीक्ष्ण बाणोंके शुभ्र जानेसे उसके हृदयमेंसे रुधिर बहने लगा, उस
समय उसकी शोभा गेरुको बहानेवाले पर्वतकी समान हुई २९
उस बड़ेभारी प्रहारसे कर्ण कूञ्ज विचलित हुआ, परन्तु फिर वह
धनुषको क्रानतक खेंचकर भीमसेनको बाणोंसे वीधनेलगा ३०
और फिर उसने सैकड़ों तथा सहस्रों बाण छोड़े, जब दृढ धनुष
वाले कर्णके बाणोंसे भीमको पीड़ा पहुँचने लगी तब उसने
क्षुरप्र नामक बाण मारकर उसके धनुषकी प्रत्यंचाको काटडाला
॥ ३१ ॥ और भल्ल नामका बाण मारकर कर्णके सारथिको
भी उसकी बैठक परसे नीचे गिरादिया और फिर महारथी
भीमने कर्णके चारों घोड़ोंको मारडाला ॥ ३२ ॥ हे राजन् !
तब तो कर्ण भयभीत हो फुर्तीसे अपने मरेहुए घोड़ोंवाले रथ
परसे कूद वृषसेनके रथपर चढ़गया ॥ ३३ ॥ प्रतापी और वल-
वान् भीमसेन रणमें कर्णको जीत मेघकी समान गर्जनेलगा ३४

सेनेन संयुगे ॥ ३५ ॥ समन्ताच्छब्दनिनदं पाण्डुसेनाकरोत्तदा ।
 शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका हानदन् भृशम् ॥ ३६ ॥ स शंख-
 वाणनिनदैर्हृषाद्राजा स्ववाहिनीम् । चक्रे युधिष्ठिरः संख्ये हर्ष-
 नादैश्च संकुले ॥ ३७ ॥ गाण्डीवं व्याप्तिपत् पार्थः कृष्णोप्यञ्जम-
 वादयत् । तमन्तर्द्वाय निनदं ध्वनिर्भीमस्य नर्दतः । अश्रयत
 महारान् सर्वसैन्येषु दारुणः ॥ ३८ ॥ ततो व्यायच्छतामस्त्रैः
 पृथक्पृथगजिह्वगैः । मृदुपूर्वञ्च राधेयो दृढपूर्वञ्च पाण्डवः ॥ ३९ ॥
 इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमपवेशो
 कर्णपराजये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

सञ्जय उवाच । तस्मिन् विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते ।
 सात्त्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ १ ॥ त्वरन्नेकरथे-

भीमकी गर्जनाको सुनकर धर्मराजने समझा, कि-भीमसेनने
 कर्णको हरादिया है, अतः वह वहे प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥ उस समय
 सम्पूर्ण पाण्डवसेना शंख बजाने लगी, तुम्हारे पुत्र शत्रुओंकी
 सेनाकी ध्वनिको सुनकर आप भी गर्जने लगे ॥ ३६ ॥ राजा
 युधिष्ठिरने अपनी सेनामें शंखध्वनि और वाणाकी टड्कार कर-
 वाकर तथा हर्षध्वनि करवाकर उसको हर्षसे व्याप्त कर
 दिया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस समय ही अर्जुनने गाण्डीव धनुषका
 टड्कार शब्द किया और श्रीकृष्णने पांचजन्य शंख बजाया-
 इतनेमें तुरन्त ही भीमसेनने फिर गर्जना की, वह दारुण गर्जना
 दोनोंकी ध्वनिको दबाकर सम्पूर्णसेनामें गूँज गई ॥ ३८ ॥
 तदनन्तर वे दोनों एक दूसरेको सूधेजानेवाले वाणोंसे ढकने लगे,
 परन्तु कर्ण कोमलतासे वाण मारता था और भीमसेन कठोरतासे
 वाण मारता था ॥ ३९ ॥ एकसौ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२६ ॥

संजयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! जयद्रथका वध करनेके लिये
 जब अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन कौरव सेनामें घुस गए और

नैव बहु कृत्यं विचिन्तयन् । सरथस्तव पुत्रस्य ^{तस्या} परया
 युतः ॥ २ ॥ तूर्णमभ्यद्रवद् द्रोणं मनोपास्तवेगवान् । उन् ^{उन्}
 पुत्रस्ते संरम्भाद्रक्तलोचनः ॥ ३ ॥ ससंभ्रममिदं वाक्यमब्रवीत् ^{वैतं}
 कुरुनन्दनः । अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ ४ ॥
 विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः । सम्प्राप्ताः सिन्धुग-
 जस्य समीपमनिवारिताः ॥ ५ ॥ व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्व
 एवापराजिताः । यदि तावद्रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥ ६ ॥
 कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद । आश्चर्यभूतं
 लोकेऽस्मिन् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ ७ ॥ निजर्जयस्तव विमात्र्य
 सात्वतेनार्जुनेन च । तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥ ८ ॥
 कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः । इत्येवं ब्रुवते योधा

हमारी सेना तित्तर बित्तर होगई है, यह देख तुम्हारा पुत्र दुर्यो-
 धन अभी मुझे बहुतसे काम करने हैं यह विचारता हुआ अकेला
 ही रथमें बैठ द्रोणके समीपको चला, मन और पवनकी समान
 गतिवाला तुम्हारे पुत्रका रथ बड़ी फुर्तीसे द्रोणके पास पहुँच
 गया तुम्हारा पुत्र कुरुनन्दन दुर्योधन क्रोधसे लाल २ नेत्रकर
 गौरवके साथ द्रोणाचार्यसे कहने लगा, कि-महारथी अर्जुन
 सात्यकि और भीमसेन ये तीनों किसीसे भी नहीं हारे और हमारी
 सकल सेनाओंको जीतकर बेरोकटोक जयद्रथके समीप पहुँच गए
 हैं ॥ १-५ ॥ और वहाँ भी वे सब अपराजित हमारी सेनाका संहार
 ही कर रहे हैं महारथी अर्जुन रणमें आपको जीतकर चला गया
 तो चला गया, परन्तु हे मानद ! सात्यकि और भीमने तुमको
 कैसे जीत लिया ? यह बात तो समुद्रको सुखा देनेकी समान
 संसारको आश्चर्यसे चकित कर देनेवाली है ॥ ६ ॥ ७ ॥ लोकमें
 अधिकतासे यही कानाफूसी हो रही है, कि-अर्जुन, सात्यकि
 और भीमसेनने द्रोणको हरा दिया ॥ ८ ॥ योधा इस बातका

अभक्ष्यमिदं तन्मया ॥ ९ ॥ नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे ।
 यत्र तत्र । पुरुषव्याघ्र व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ १० ॥ एवं गते तु
 तत्रैस्मिन् ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् । यद्गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय
 मानद ॥ ११ ॥ यत् कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालपनन्तरम् ।
 तत् सम्प्रधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज ॥ १२ ॥
 द्रोण उवाच । चिन्त्यं बहुविधं तात यत्कृत्यं तच्च मे शृणु । त्रयो
 हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥ १३ ॥ यावत्तेषां भयं
 पश्चात्तावदेषां पुरःसरम् । तद्गुरायस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधन-
 ङ्जयौ ॥ १४ ॥ सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती समुः ।
 तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणात् ॥ १५ ॥ स नो रक्ष-

विश्वास न कर पूँछते हैं, कि-धनुर्वेदके पारगाधी द्रोणको उन
 तीनोंने कैसे हरा दिया ? ॥ ९ ॥ युद्धमें जब तीनों महारथी
 आपको लॉघकर चले गए तो मैं समझता हूँ, कि-मुझ मन्दभाग्य
 का अवश्यही नाश होगा ॥ १० ॥ इसप्रकार जो कुछ होगया
 सो होगया, परन्तु अब आप जो कुछ हमसे कहना चाहते हो
 वह कहिये, हे मानदेनेवाले ! जो कुछ बीतगया उसको जाने
 दीजिये, परन्तु आगेकी चिन्ता काजिये ११ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आप
 भलीप्रकार विचारकर शीघ्रनासे कहिये, कि-अब हमें सिन्धुराजके
 लिये क्या करना चाहिये, हम वही करेंगे ॥ १२ ॥ द्रोणने कहा, कि-
 हे तात ! हमें बहुतसी बातोंपर विचार करना है, परन्तु इस
 समय जो करना चाहिये, उसको तू मुन पाण्डवोंके तीन महारथी
 सेनाको लॉघकर आगे बढ़ गए हैं ॥ १३ ॥ अतः शत्रुओंकी
 ओरसे हमें जितना भय पीछेसे है उतना ही भय आगेसे भी है,
 परन्तु जहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण गए हैं, उस ओरसे मुझे विशेष
 भय है ॥ १४ ॥ यह भारती सेना तो आगे पीछे दोनों ओरसे
 घिर गई है, अतः हे तात ! मैं सिन्धुराजकी रक्षा करना ही

तमस्तात क्रुद्धाञ्जीतो धनञ्जयात् । गतौ च सैन्धवं भीमो युयुधान-
वृकोदरौ ॥ १६ ॥ सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यच्चच्छकुनिबुद्धिजम् । न
सभार्या जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥ १७ ॥ इह नो ग्लह-
मानानामथ तोवज्जयाजयौ । यान् स्प तान् ग्लहते घोराञ्छकुनिः
कुरुसंसदि ॥ १८ ॥ अक्षान् स मन्यमानः प्राक् शरास्ते हि दुर्ग-
सदाः । यत्र ते बहवस्तात कुरवः पर्यवस्थिताः ॥ १९ ॥ सेनां
दुरोदरं विद्धि शरानक्षान् विशाम्पते । ग्लहञ्च सैन्धवं राजस्तत्र
द्यूतस्य निश्चयः ॥ २० ॥ सैन्धवे तु महद् द्यूतं समासक्तं परैः सह ।
अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ २१ ॥ सैन्धवस्य
रणे रक्षां विधिवत् कर्तुमर्हथ । तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवो तात

विशेष उचित समझता हूँ ॥ १५ ॥ जयद्रथ क्रोधित हुए अर्जुन
से बहुतही डर रहा है तथा वीरवर सात्यकि और भीमसेन भी
जयद्रथकी ओरको ही गए हैं, अतः उसकी अच्छी तरहसे रक्षा
करना ही मुझे उचित प्रतीत होता है ॥ १६ ॥ पहिले शकुनिने तुझे
अपनी बुद्धिसे जुआ खिलाया था, वह जुआ डी आगे आकर
खड़ा होगया है, सभामें तो जीत हार कुछ भी नहीं हुई थी १७
परन्तु आज हम जुआरियोंकी सच्ची हार जीत होगी, पहिले
कौरवोंकी सभामें शकुनिने जिन फाँसोंको फाँसे समझकर खेला
था, वे फाँसे अब भयंकर बाण बन गए हैं, जिसमें अनेकों कौरव
योगा खड़े हैं ऐसी अपनी सेनाको तू जुआ ही जान, बाणोंको
फाँसे जान, जयद्रथको दाँव जान, और इस युद्धयुगमें (तसके
जीवित रहने अथवा मारेजाने पर) ही परिणाममें हार जीतका
निश्चय होगा ॥ १८-२० ॥ हे महाराज ! हम जयद्रथके कारण
शत्रु पोंसे बड़ाभारी जुआ खेतरहे हैं, अतः हम सर्वोंको अपने
प्राणोंकी भी परवाह न करके सिंधुराज जयद्रथकी रक्षाके लिये
विधिवत् सब उपाय करने चाहियें, क्योंकि-उसके ऊपर ही इस

जयाजयी ॥ २२ ॥ यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रत्नन्ति सैन्धवम् । तत्र
गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रत्नस्व रत्तिणः ॥ २३ ॥ इहैव त्वहमाशिष्ये
प्रेषयिष्यामि चापरान् । निगेत्स्यामि च पञ्चालान् सहितान् पांडु-
सृञ्जयेः ॥ २४ ॥ ततो दुर्योधनोऽगच्छत्तूर्णपाचार्यशासनात् । उद्य-
म्भात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः ॥ २५ ॥ चक्ररत्नां तु पाञ्चाल्यां
युधामन्युत्तपोजसां । बल्लोन् सेनापभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम् २६
यो हि पूर्वं महाराज वारितो कृतवर्मणा । प्रविष्टे गर्जुने राजंस्तव
सैन्यं युयुत्सया ॥ २७ ॥ पार्श्वं भित्त्वा चमूं वीरौ प्रविष्टौ तन
वाहिनीम् । पार्श्वेन सेनापायान्तौ कुरुराजो ददर्श ह ॥ २८ ॥
ताभ्यां दुर्योधनः सार्द्धमकरोत्संख्यमुत्तमम् । त्वरितस्त्वरमाणा-

जुएको खेलनेमें हमारी हार जीन निश्चित है ॥ २१-२२ ॥ अब
जहाँ बड़े धनुषधारी सावधान होकर जयद्रथकी रक्षा कर रहे हैं,
तहाँ तू स्वयं जा और उन रत्नोंकी रक्षा कर ॥ २३ ॥ और मैं
यहाँ खड़ा रहकर तेरी सहायताके लिये दूसरोंको भेजता रहूँगा,
तथा पांडव सृञ्जय और पांचालोंको भी आगे बढ़नेसे रोकता रहूँगा,
द्रोणाचार्यकी इन बातोंको सुनकर दुर्योधन उनकी आज्ञाके अनु-
सार इस बड़ेभारी कार्यका भार अपने ऊपर ले अपने रत्नोंके
सहित आगेको चल दिया ॥ २५ ॥ जब अर्जुन सेनामें
घुसने लगा था तो उसके चक्ररत्नक पांचाल-देशी युधा-
मन्यु और उत्तमोजा भी उसके साथ आ रहे थे, परन्तु
हे महाराज ! कृतवर्मने उनको भीतर नहीं घुसने दिया, तद-
नन्तर जब अर्जुन सेनामें घुस गया तब वे दोनों सेनाके बाहर ही
बाहर जाकर बीचमेंसे सेनाको फाड़ भीतर घुस गये, दुर्योधनने
उन दोनोंको सेनामें घुसते हुए देख लिया ॥ २६-२८ ॥ वे
दोनों भाई फुर्तीके साथ सेनामें घुमे चले आते थे, यह देख
भरतवंशी बलवान् दुर्योधन भी शीघ्रतासे उनके समीप पहुँच

भ्यां भ्रातृभ्यां भारतो वली ॥२६॥ तावेनमभ्यद्रवतामुधाबुधन-
 कामु कौ । महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरो युधि ॥ ३० ॥ तम-
 विध्ययुधामन्युस्त्रिशता कङ्कपत्रिभिः । विंशत्या सारथिञ्चापि चतु-
 र्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३१ ॥ दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणा-
 च्छिनत् । एकेन कामु कञ्चास्य स चकर्त्त सुतस्त्रव ॥ ३२ ॥
 सारथिञ्चास्य भन्त्लेन रथनीडादपाहरत् । ततोऽविध्यच्छरैस्ती-
 क्षणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३३ ॥ युधामन्युश्च संकुटुः शरास्त्रिश-
 तपाहवे । व्यसृजत्तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनांतरे ॥ ३४ ॥ तथो-
 त्तमौजाः संकुटुः शरैर्हमविभूषतैः । अविध्यत् सारथिञ्चास्य प्राहि-
 णोद्यमसादनम् ॥ ३५ ॥ दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चालन्यस्योत्तमो-
 जसः । जघान चतुरोऽस्याश्वानुभौ तौ पाण्डिसारथी ॥ ३६ ॥ उत्त-

घोर युद्ध करने लगा ॥ २६ ॥ वे दोनों क्षत्रियश्रेष्ठ महारथी भी
 दुर्योधनको देखते ही धनुषको तान उसके सामनेको दौड़े ३०
 और युधामन्युने कंकपत्र लगेतीस बाण मारकर दुर्योधनको
 घायल कर डाला और बीस बाणोंसे दुर्योधनके सारथिको तथा
 चार बाण मारकर उसके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ३१ ॥
 तब दुर्योधनने एक बाण मारकर युधामन्युकी ध्वजाको काट डाला
 फिर तुम्हारे पुत्रने एक बाणसे उसके धनुषको काट डाला ३२
 और एक भन्त नामक बाण मारकर उसके सारथिको रथकी
 बैठक परसे नीचे गिरा दिया, फिर चार तीक्ष्ण बाण मारकर
 उसके घोड़ोंको बीध डाला ॥ ३३ ॥ हे महारथ ! तब तो युधा-
 मन्यु क्रोधमें भर गया और उसने फुरतीके साथ तीन बाण दुर्यो-
 धनकी छातीमें मारे ॥ ३४ ॥ फिर क्रोधमें भरेहुए उत्तमौजाने
 सुवर्णसे शोभायमान बहुतसे बाण मारकर दुर्योधनके सारथिको
 यमलोकमें भेज दिया ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! फिर दुर्योधनने भी
 पाञ्चालदेशी उत्तमौजाके चारों घोड़ोंको और उसके पार्श्वरक्षक

मौजा हतारवस्तु हतसूतस्तु संयुगे । आरुहोऽरथं भ्रातृदुःधामन्यो-
रभित्वरन् ॥ ३७ ॥ स रथं प्राप्य तं भ्रातृदुर्योधनहयान् शरैः ।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन्मृत्रि ॥ ३८ ॥ हयेषु प्रतितेष्वस्य
चिच्छेद परमेयुणा । युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरश्चापञ्च संयुगे ॥ ३९ ॥
हतारवस्तु स रथादनतीर्य नराधिपः । गदामादाय ते पुत्रः पञ्चा-
लयावभ्यधावत ॥ ४० ॥ तमापतन्तः सम्प्रेक्ष्य क्रुद्धः कुरुपतिं तदा ।
अवल्लुनौ रथोपस्थात् युधामन्युत्तमौजसौ ॥ ४१ ॥ ततः स हेम-
चित्रं तं स्यन्दनप्रवरं गदी । संक्रुद्धः पोथयामास साश्वसूतध्वजं
नृप ॥ ४२ ॥ भङ्क्त्वा रथं स पुत्रस्ते हतारवो हतसारथिः । मद्र-
राजरथं तूर्णमारुहोऽह परन्तपः ॥ ४३ ॥ पञ्चालानान्तु मुख्या तौ

तथा सारथिको मारहाला ॥ ३६ ॥ जब उत्तमौजाके घोड़े और
सारथि मर गए तब वह फुर्तीके साथ अपने भाई युधामन्युके रथ
पर चढ़ गया ॥ ३७ ॥ उसने अपने भाईके रथपर चढ़ दुर्योधनके
घोड़ोंके बहुतसे बाण मारे अतः वे मरकर भूमि पर गिर पड़े ॥ ३८ ॥
घोड़ोंके गिरजाने पर युधामन्युने फुरतीमे दुर्योधनके धनुष और
भाथेको भी काट डाला ॥ ३९ ॥ तुम्हारा पुत्र मरे हुए सारथि और
घोड़ेवाले रथपरसे कूद पड़ा और हाथमें गदा ले उन दोनों पंचाल
भाइयोंके ऊपर झपटा ॥ ४० ॥ परन्तु कुरुराजको क्रोधमें भरकर
आते देख उसी समय युधामन्यु और उत्तमौजा दोनों ही अपने-
रथपरसे कूद पड़े ॥ ४१ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! क्रोधमें भरे गदा-
धारी दुर्योधनने उनके मुखसे चिते हुए रथके ऊपर गदा मारकर
रथके घोड़े और सारथिको मार डाला और रथ तथा ध्वजाको
चूर-चूर कर डाला ॥ ४२ ॥ शत्रुके घोड़े और सारथिका नाश
करके जिसके रथके घोड़े और सारथि मारे गये हैं ऐसा वह तुम्हारा
परन्तप पुत्र दुर्योधन शीघ्रतासे शन्यके रथपर चढ़ बैठा ॥ ४३ ॥

राजपुत्री महारथी । रथावन्यां समाह्वया वीभत्सुमभिजग्मतुः ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनयुद्धे

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

सञ्जय उवाच । वर्त्तमाने महाराज संग्रामे लोमहर्षणे । व्याकुलेषु च सर्वेषु पीड्यमानेषु सर्वशः ॥ १ ॥ राधेयो भीममानच्छ्वेद्युदाय भरतर्षभ । यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन् ॥ २ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । यौ तौ कर्णश्च भीमश्च सम्प्रयुद्धौ महाबलौ । अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद्रणः ॥ ३ ॥ पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संधुगे । कथम्भूयस्तु राधेयो भीममागान्महारथः ॥ ४ ॥ भीमो वा मृततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे । महारथं समाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ५ ॥ भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । नान्यनो भयपादच विना कर्णान्महारथात् ॥ ६ ॥ भया-

इतनेमें ही पञ्चालदेशी वे दोनों महारथी राजकुमार दूसरे रथमें बैठ अर्जुनके पास पहुँचगये ॥४४॥ एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज ! जब इसप्रकार (एक ओर) भयंकर संग्राम होरहा था और सब सैनिक सब ओरसे पीड़ित होनेके कारण व्याकुल होरहे थे ॥ १ ॥ उस समय हे महाराज ! जैसे वनमें मदमत्त हाथी दूसरे मदमत्त हाथीके ऊपर दौड़ता है, तैसे ही कर्ण भी भीमसेनके ऊपरको झपटा और उससे लड़नेके लिये कहनेलगा ॥ २ ॥ धृतराष्ट्रने ब्रूभा, कि—हे सञ्जय ! महाबली और महायोधा कर्ण तथा भीमने अर्जुनके रथके समीप किसप्रकार युद्ध किया था और वह युद्ध कैसे हुआ था ? ॥ ३ ॥ भीमसेनने युद्धमें कर्णको पहिले ही जीत लिया, फिर महारथी कर्ण भीमसेनसे युद्ध करनेको क्यों गया ? ॥ ४ ॥ और भीम भी पृथ्वीभरके रथियोंमें नामी महारथी मृतपुत्र कर्णके ऊपर फिर क्यों चढ़कर गया ? ॥ ५ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर जितना महारथी

यस्य महाबाहो न शते बहुलाः समाः । चितयन्नित्यशो वीर्यं राधे-
 यस्य महात्मनः । तं कथं सूतपुत्रं तु भीमोऽयोधयताहवे ॥ ७ ॥
 ब्रह्मण्यं वीर्यसम्पन्नं समरेष्वनिवर्त्तिनम् । कथं कर्णो युधां श्रेष्ठं योध-
 यापास पाण्डवः ॥ ८ ॥ यौ तौ समीशतुर्वारौ वैकर्त्तनवृकौदरौ ।
 कथं तावत्र द्युध्येता महाबलपराक्रमौ ॥ ९ ॥ भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं
 घृणी चापि स सूतजः । कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्म-
 रन् ॥ १० ॥ भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन् वीरं पुरा कृतम् । सोऽयु-
 ध्यत कथं वीरः कर्णेन सह संयुगे ॥ ११ ॥ आशास्ते च सदा
 सूत पुत्रो दुर्योधनो मम । कर्णो जेष्यति संग्रामे समस्तान्
 पाण्डवानिति ॥ १२ ॥ जयाशा यत्र मन्दस्य पुत्रस्य
 मम संयुगे । स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयोधयत् ॥ १३ ॥

कर्णसे डरते थे उतना द्रोण और भीष्मसे भी नहीं डरते थे । ६।
 और वह कर्णके भयसे चिन्तित हो बहुत दिनों तक सोये भी
 नहीं थे, पराक्रमी सूतपुत्रके साथ भीम रणमें लड़नेको कैसे तयार
 होगया ॥ ७॥ ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखनेवाले, समरमें पीछेको न
 हटनेवाले, योधाओंमें श्रेष्ठ कर्णसे भीमसेन कैसे लड़सका ? । ८।
 जब वीरवर कर्ण और भीम आपसमें भिड़गए, तब उन महा-
 बलियोंने अर्जुनके रथके समीपमें किसप्रकार युद्ध किया ॥ ९॥
 सूतपुत्र कर्ण, पाण्डव मेरे भाई हैं, यह जानताहुआ और कुन्तीके
 वाक्यको स्मरण करताहुआ भी भीमसेनसे कैसे लड़सका ? १०
 और भीम कर्णके कियेहुए पहिले वीरका स्मरण कर कर्णसे
 रणक्षेत्रमें किसप्रकार लड़ा ? ॥ ११ ॥ मेरा पुत्र दुर्योधन सदा
 यह भरोसा रखता था, कि-कर्ण संग्राममें सब पाण्डवोंको
 जीतलेगा ॥ १२ ॥ मेरा मन्दभाग्य पुत्र जिसके बल पर संग्राममें
 जय पानेकी आशा रखता था उस कर्णने भयंकर कर्म करनेवाले
 भीमसेनके साथ किसप्रकार युद्ध किया ? ॥ १३ ॥ मेरे पुत्रोंने

यं समासाद्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः । तं मृततनयं तान् कथं भी ॥
 द्रयोधयत् ॥ १४ ॥ अनेकान् विप्रकारांश्च सूतपुत्रममुद्भवान् ।
 स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सुतसूनुना ॥ १५ ॥ योऽजयत् पृथिवीं
 सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् । तं मृततनयं युद्धे कथं भीमो द्रयोधयत् ॥ १६ ॥
 यो जातः कुण्डलाभ्याञ्च कवचेन सहैव च । तं सूतपुत्रं समरे
 भीमः कथमयोधयत् ॥ १७ ॥ यथा तयोर्पुण्ड्रमभूत् यश्चासीद्वि-
 जयी तयोः । तन्ममावच्च तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ १८ ॥
 सञ्जय उवाच । भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनाम्बरम् । इयेप
 गन्तुं यत्रास्ता वीरौ कृष्णधनञ्जयौ ॥ १९ ॥ तं प्रयान्तमभिद्रुत्य
 राधेयः कंकपत्रिभिः । अभ्यवर्षन्महाराज मेघो दृष्ट्येव पर्वतम् ॥ २० ॥

जिसके बल पर भूमकर पाण्डवोंके साथ वैर बाँधा था, उस
 सूतपुत्र कर्णके साथ हे तात ! भीम किसप्रकार लड़ा था ? १४
 सूतपुत्र कर्णके किएहुए अनेकों अपमानोंका स्मरण आने पर
 भीमने कर्णके साथ किसप्रकार युद्ध किया था ? ॥ १५ ॥ बलवान्
 कर्णने एक रथके सहारे ही सकल पृथ्वीको जीतलिया था
 ऐसे सूतपुत्रके साथ भीम कैसे लड़सका था ? ॥ १६ ॥ कर्ण
 कुण्डल और कवच धारण कियहुए माताकी कोखमेंसे निकला
 था ऐसे वीरके साथ भीमने किसप्रकार युद्ध किया था ? ॥ १७ ॥
 उन दोनोंमें जिसप्रकार युद्ध हुआ हो और उन दोनोंमें जिसकी
 विजय हुई हो वह सब ठीकर मुझे सुना, क्योंकि-हे सञ्जय !
 तू कथा कहनेमें बड़ा प्रवीण है ॥ १८ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे
 धृतराष्ट्र ! भीमसेन तो रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णका पिण्ड छोड़
 कृष्ण और अर्जुनके पास जाना चाहता था ॥ १९ ॥ परन्तु
 हे महाराज ! राधापुत्र कर्ण आगेको जातेहुए भीमके पीछे जा,
 जैसे मेघ पर्वत पर जलधाराएँ बरसाता है तैसे कंकपत्नीके पगवाले
 बाण बरसाने लगा ॥ २० ॥ फिर अधिरथका पुत्र बलवान् कर्ण

फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेण विहसन् वली । आजुंहाव रणे यान्तं
भीममाधिरथिस्तदा ॥ २१ ॥ कर्ण उवाच । भीमाहितैस्तव रणः
स्वप्नेऽपि न विभावितः । तद्दर्शयति कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्ष्या २२
कुन्त्या पुत्रस्य सदृशं नेदं पाण्डुनन्दन । तेन मामभितः स्थित्वा
शरवर्षैरवाकिर ॥ २३ ॥ भीमसेनस्तदाहानं कर्णेनामर्षयधुधि ।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥ २४ ॥ अवक्रगामिभिर्वा-
योरभ्यवर्षन्महायशाः । द्वैरथे दंशितं यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २५ ॥
विधित्सुः कलहस्यान्तं जिघांसुः कर्णमात्तिणोत् । इत्वा तस्यानु-
गास्तं च हन्तुकामो महाबलः ॥ २६ ॥ तस्मै व्यासजदुर्गाणि
विविधानि परन्तपः । अमर्षात्पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि सारिप २७

खिलेहुए कमलकी समान मसनन मुखसे हँसकर रणमें आगेको
जातेहुए भीमभी पुकार कर कहनेलगा ॥ २१ ॥ कर्णने कहा,
कि-अरे ओ भीम ! मुझे स्वप्नमें भी आशा नहीं थी, कि-“शत्रु-
ओंके साथ रणमें कैसे लड़ना चाहिये यह तुझे आता है, फिर
अर्जुनको देखनेकी इच्छासे तू मुझे पीठ क्यों दिखाता है ? २२
हे पाण्डवोंको आनन्द देनेवालेतेरा यह काम कुन्तीके पुत्रों केसा
नहीं है ? अतः तू मेरे सामने खड़ा रहकर मेरे ऊपर बाणोंकी
वर्षा कर” ॥ २३ ॥ भीमसेन कर्णके तीखे वचनोंसे युक्त इस पुकार
सहन सका और अर्धमण्डलाकारसे रथको लौटाकर कर्णके
सामने लड़नेको आगया ॥ २४ ॥ महायशस्वी भीमसेन कवच-
धारी, द्वन्द्वयुद्धमें लगेहुए सकल शस्त्रोंमें चतुर कर्णके ऊपर
सीधे जानेवाले बाण बरसानेलागा ॥ २५ ॥ कलहका अन्त
करनेकी और कर्णको मारनेकी इच्छासे वली भीमने उसको
बाणोंसे ढककर पहले तो उसके अनुयायियोंको मारहाला, और
हे राजन् ! फिर उसको मारनेकी इच्छासे क्रोधमें भरेहुए परन्तप
भीमसेनने असह्यशीलताके कारण कर्णके ऊपर नानाप्रकारके

तस्य तानीयुवर्पाणि मत्तद्विरदगापिनः । सप्तपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्र-
 सत् परमास्त्रवित् ॥ २८ ॥ स यथावन्महाबाहुर्विद्यया वै सुपूजितः ।
 आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद्वली ॥ २९ ॥ युध्यमानन्तु संरम्भाद्
 भीमसेनं हसन्निव । अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन् वृकोदरम् ॥ ३० ॥
 तन्नामृग्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितगाहवे । युध्यमानेषु वीरेषु
 पश्यत्सु च समन्ततः ॥ ३१ ॥ तं भीमसेनः सम्प्राप्तं वत्सदन्तैः
 स्तनान्तरे । विव्याध बलवान् कुहुस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३२ ॥
 पुनस्तु स्रुतपुत्रन्तु स्वर्णपुंखैः शिलाशितैः । सुसुक्तैश्चित्रवर्माणं
 निर्विभेदं त्रिसप्तभिः ॥ ३३ ॥ कर्णो जाम्बूनदैर्जलैः सञ्चन्नान्
 वातरंहसः । हयान् विव्याध भीमस्य पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ३४ ॥
 ततो वाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति । कर्णेन विहितं राजन्

भयङ्कर अस्त्र छोड़े ॥ २६-२७ ॥ मतवाले हाथीकी समान
 चलनेवाले भीमकी बाणवर्षाओंको अस्त्रोंका पारगाभी कर्ण अपनी
 अस्त्रमायासे निगलनेलगा ॥ २८ ॥ विद्याके कारण बड़ी भारी
 प्रशंसा पायाहुआ महाभुज, महाबली कर्ण, बड़ा भारी धनुष ले
 संग्राममें द्रोणकी समान घूमनेलगा ॥ २९ ॥ हे राजन् ! वह क्रोधमें
 भरकर युद्ध करतेहुए कुन्तीपुत्र भीमके सामनेको हँसताहुआ बढ़ा
 चला गया ॥ ३० ॥ रणमें चारों ओर लड़तेहुए वीरोंके सामने
 भीमसेनको कर्ण का मुस्कराना सह्य नहींहुआ ॥ ३१ ॥ इससे
 महाबली भीमसेनने क्रोधमें भरकर पासमें आयेहुए कर्णकी
 छातीमें ऐसे वत्सदन्त नामके बाण मारना आरम्भ करदिये
 जैसे अंकुशोंसे हाथीको मारते हैं ॥ ३२ ॥ फिर उसने सुवर्णकी
 पूँछवाले, शिलाके ऊपर घिसकर तेज किएहुए इक्कीस बाण
 मारकर विचित्र कवच धारण करनेवाले कर्णके शरीरको बीच
 डाला ॥ ३३ ॥ तब कर्णने भीमके बाणवेगी, सुवर्णकी झूलों
 वाले घोड़ोंको पाँच २ बाण मारकर बाँधडाला ॥ ३४ ॥ तद-

निमेषार्धाददृश्यत ॥ ३५ ॥ सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डव-
स्तदा । प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापचपुतैः शरैः ॥ ३६ ॥ तस्य
कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधयत् कवचं दृढम् । क्रुद्धश्चाप्यहनत् पार्थ
नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३७ ॥ ततोऽचिन्त्यमहाबाहुः कर्णकामुक-
निःसृतान् । समाश्लिष्यदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं दृकोदरः ॥ ३८ ॥
स कर्णचापप्रभवानिपूनाशीविषोपमान् । विभ्रज्जीवो महाराज न
जगाम व्यथारणे ॥ ३९ ॥ ततो द्वात्रिंशता भर्तुर्निशितैस्तिग्म-
तेजनैः । विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४० ॥
अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत् । भीमसेनं महाबाहुं सैन्य-
वस्य प्रधैपिणम् ॥ ४१ ॥ मृदुपूर्वं हि राघेयो भीममाजोवयोधयत् ।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४२ ॥ तं भीमसेनो नाम-

नन्तर हे राजन् ! आधे निमेषमें ही भीमसेनको रथ कर्णके
मारोहण बाणजालसे ढकाहुँआ दीखनेलगा ॥ ३५ ॥ हे महाराज !
उस समय कर्णके धनुषमेंसे छूटेहुए बाणोंसे भीमसेन, उसका रथ,
ध्वजा, घोड़े और सारथि सब ढक गये थे ॥ ३६ ॥ फिर कर्णने
चौंसठ बाण मारकर भीमसेनके दृढ कवचको तोड़डाला और
क्रोधमें भर नाराच नामके बाणोंसे भीमसेनके मर्मस्थानोंको भी
घायल करवाला ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! तब महाशुभ्र भीमसेन
भी बिना किसी विचारके कर्णके धनुषमेंसे छूटतेहुए विपैले
सर्पोंकी समान तीखे बाणोंको जरान घेवडाकर सहता रहा और
उसको इस लड़ाईमें कुछ भी व्यथा नहीं हुई ॥ ३८-३९ ॥ तद-
नन्तर प्रतापी भीमसेनने तीखी धारवाले अत्यन्त तीक्ष्ण वृत्तीस
भल्ल नामके बाण कर्णके मारे ॥ ४० ॥ तब बिना परिश्रमके,
ही सहजमें कर्णने सिंधुराजका वध करनेकी इच्छा करनेवाले
महाबाहु भीमके बहुतसे बाण मारे ॥ ४१ ॥ युद्धमें कर्ण तो भीमसे
कोमलतासे लड़ता था परन्तु भीमसेन पहिले वैरको धाद करके

व्यमवमानमर्पणः । स तस्मै व्यसृजन्तूर्णं शरवर्षमभिवाह ॥४३॥
 ते शराः प्रेषितास्तेन भीमसेनेन संग्रुगे । निपेतुः सर्वतो वीरे कृजंत
 इव पक्षिणः ॥४४॥ हेमपुंखाः प्रसन्नाग्रा भीमसेनवनुश्च्युताः ।
 माच्छादयंस्ते राधेयं शलभा इव पावकम् ॥४५॥ कर्णस्तु रथिनां
 श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः । राजन् व्यसृजन् दुग्गाणि शरवर्षाणि
 भारत ॥४६॥ तस्य तानशनिप्रख्यानिपून् समरशोभिन्ः ।
 विच्छेद बहुभिर्भन्लैरसम्प्राप्तान् वृकोदरः ॥४७॥ पुनश्च शर-
 वर्षेण, छादयामास भारत । कर्णो वैकर्त्तनो युद्धे भीमसेनमरि-
 न्दमः ॥४८॥ तत्र भारत भीमन्तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः । सप्ता-
 चिततनुं संग्रये श्वाविधं शल्लैरिव ॥४९॥ हेमपुंखाञ्जिह्वा-
 धौतान् कर्णचापच्युताञ्छ्वरान् । दधार समरे वीरः स्वरश्मोनिव

कर्णसे कठोरताके साथ लड़ता था ॥ ४२ ॥ असहनशील भीम-
 सेनसे यह अपमान सहा नहीं गया तब उस शत्रुनाशीने कर्णके
 ऊपर झपाटेके साथ बाणोंकी वर्षाकी ॥ ४३ ॥ भीमसेनके छोड़े
 हुए वे बाण चीं चीं करतेहुए पक्षियोंकी समान वीर कर्णके
 सकल अङ्गोंमें घुसगये जैसे पतङ्गे अग्निको घेरलेते हैं तैसे ही
 प्रसन्नमुख भीमसेनके धनुषमेंसे छूटतेहुए सुवर्णकी पूँछवाले
 बाणोंने कर्णको घेरलिया ॥ ४४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! सब
 ओरसे बाणोंसे ढकनाने पर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण भयङ्कर बाणवर्षा
 करने लगा ॥ ४५ ॥ समरशोभी कर्णके वज्रकी समान बाणोंको
 भीमसेनने बहुतसे भल्ल मारकर बीचमेंसे ही फाटड़ाता ॥ ४७ ॥
 हे भारत ! फिर कर्ण युद्धमें बाणत्ररसाकर भीमको ढकने लगा ४८
 हे भारत ! उस समय बाणोंसे खचाखच भरेहुए शरीरवाला
 भीम अपने केशोंसे व्याप्त सेईकी समान प्रतीत होता था ४९
 सुवर्णकी पूँछवाले, शिलापर घिसकर तेज किएहुए कर्णके
 धनुषसे छूटतेहुए बाणोंको वीरवर भीमसेन युद्धमें ऐसे धारण कर

रश्मिवान् ॥ ५० ॥ रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत ।
समृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत् ॥ ५१ ॥ तत्तु भीमो महा-
बाहोः कर्णस्य चरितं रणे । नामृष्यत महाबाहुः क्रोधादुद्वृत्त-
लोचनः ॥ ५२ ॥ स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समर्पयत् ।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोलवणैः ॥ ५३ ॥ पुनरेव च विव्याध
षडधिरष्टाधिरिव च । मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम् ५४
पुनरन्येन बाणेन भीमसेनः प्रतापवान् । चिच्छेद कामुकं तूर्णं
कर्णस्य ग्रहसन्निव ॥ ५५ ॥ जघान चतुरश्चाश्वान् सूतश्च त्वरितः
शरैः । नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि ॥ ५६ ॥ ते
जग्मुर्धरणीमाशु कर्णं निर्भिद्य पत्रिणः । यथा जलधरं भित्वा

रहा था जैसे सूर्य अपनी किरणोंको धारण करते हैं ॥ ५० ॥
जिसके सकल अङ्गोंसे रुधिर चूरहा था ऐसा भीम वसन्त ऋतुमें
खिलेहुए फूलोंसे लदे अशोकके वृक्षकी समान शोभा पारहा
था ॥ ५१ ॥ इसप्रकार कर्ण जब भीमपर अनेकों प्रहार करने
लगा तब भीम उसके वर्तावको सह न सका और उसने जैसे
जहरीले साँप श्वेत पर्वत पर फँके जायँ तैसे नागाच नामक पक्षीस
भयङ्कर बाण कर्णके ऊपर फँके ॥ ५२-५३ ॥ देवताओंकी
समान पराक्रम करनेवाले भीमसेनने अपने शरीरका भी दान
देनेवाले कर्णके मर्मभागोंमें चीदह बाण मारे ॥ ५४ ॥ फिर
भीमसेन हँसा और उसने शीघ्रतासे एक दूसरा बाण ले कर्णके
धनुषको काटडाला ५५ फिर उसने फुरतीसे बाण मारकर कर्णके
घाड़े और सारथिको मारडाला तथा कर्णकी छातीमें भी अग्निकी
समान ज्वलतेहुए बाण मारकर उसको घायल करदिया ॥ ५६ ॥
सूर्यकी किरणोंकी समान वे बाण पर्वतकी समान कर्णको
शीघ्रतासे चींधकर पृथ्वीमें घुसगए ॥ ५७ ॥ बाणोंके प्रहारसे

दिवाकरमरीचयः ॥ ५७ ॥ स वैक्लव्यं महत् प्राप्य लिङ्गधन्वा
शराहतः । तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णपराजये

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । स्वयं शिष्यो महेशस्य भृगुचामधनुर्धरः ।
शिष्यत्वं प्राप्तवान् कर्णस्तस्य तुल्योस्त्रविद्यया ॥ १ ॥ तद्विशिष्टोऽपि
वा कर्णः शिष्यः शिष्यगुणैर्धृतः । कुन्तीपुत्रेण भीमेन निर्जितः
स तु लीलया ॥ २ ॥ यस्मिन् जयाशा महती पुत्राणां मम सञ्जय ।
तं भीमादिमुखं दृष्ट्वा किन्तु दुर्योधनो ब्रवीत् ॥ ३ ॥ कथञ्च युयुधे
भीमो वीर्यश्लाघी महाबलः । कर्णो वा समरे तात किमकार्षीदतः
परम् । भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥ सञ्जय
उवाच । रथमन्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः । अभ्ययात्

टूटेहुए धनुषवाला कर्ण बड़ा विकल होगया, तदनन्तर पुरुषत्व
का अभिमान करनेवाला कर्ण बैठनेके लिये दूसरे रथकी
ओरको दौड़ा ॥ ५८ ॥ एकसौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त १३१

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ साक्षात्
शिवजीके शिष्य परशुरामसे जिसने अस्त्रविद्या सीखी थी और
जो अस्त्रविद्यामें उनकी समान क्या उनसे भी श्रेष्ठ था तथा
जिसमें शिष्यके सब गुण थे, ऐसे कर्णको भी कुन्तीपुत्र भीमने
अनायासमें ही जीतलिया ॥ १-२ ॥ हे संजय ! मेरे पुत्र जिसके
ऊपर विजयकी बड़ी भारी आशा बाँधे बैठे थे वह कर्ण जब
भीमके सामनेसे भागने लगा, तब दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ३ ॥
प्रशंसनीय वीरतावाला महाबली भीम कर्णसे कैसे २ लड़ा था ?
और भीमसेनको अग्निकी समान प्रज्वलित हुआ देखकर हे तात !
कर्णने समरमें क्या किया था ? ॥ ४ ॥ सञ्जयने कहा कि-
हे धृतराष्ट्र ! कर्ण शास्त्रानुसार बनेहुए दूसरे रथमें बैठ वायुमे

पाण्डव कर्णो वातोद्धृत इवाणवः ॥ ५ ॥ क्रुद्धमाधिरथं दृष्ट्वा
पुत्रास्तथ विशास्पते । भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ६
चापशब्दं ततः कृत्वा तल्लशब्दञ्च भैरवम् । अभ्यद्रवत राधेयो
भीमसेनरथं प्रति ७ पुनरेव तयो राजन् घोर आसीत् समागमः ।
वैकर्त्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ८ ॥ संरब्धौ हि महा-
बाहू परस्परवधैषिणौ । अन्योऽन्यमीक्षाञ्चक्राते दहन्ताविव
लोचनैः ॥ ९ ॥ क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
शूरावन्योन्यमासाद्य तत्तत्तुरिन्दपौ ॥ १० ॥ व्याघ्राविव सुसं-
रब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ । शरभाविव संकुद्धौ युयुधाते पर-
स्परम् ॥ ११ ॥ ततो भीमः स्मरन् क्लेशानक्षय्यते वनेपि च ।
विराटनगरे चैव दुःखं प्राप्तपरिन्दमः ॥ १२ ॥ राष्ट्राणां स्फीत-

उभार खातेहुए समुद्रकी समान भीमसेनकी ओरको बढ़ा ॥५॥
हे राजन् ! कर्णको क्रोधमें भरा देख तुम्हारे पुत्रोंने समझा, कि-
भीमसेन अग्निमें भोंकदियागया ॥ ६ ॥ तदनन्तर धनुषको
टङ्कारताहुआ और भयङ्कर गीतिसे तालियें पीटताहुआ कर्ण
भीमसेनके रथकी ओरको दौड़ा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उन वीर
कर्ण और महात्मा भीममें फिर भयङ्कर संग्राम होनेलगा ॥ ८ ॥
क्रोधमें भरेहुए, परस्पर एक दूसरेका वध करना चाहतेहुए दोनों
योधा मानों नेत्रोंसे दूसरेको भस्म ही कर डालेंगे इसप्रकार
देखनेलगे ॥ ९ ॥ क्रोधसे लाल २ नेत्रोंवाले सपोंकी समान
कुँकारे भरतेहुए वे दोनों शत्रुनाशक वीर आपसमें प्रहार करने
लगे ॥ १० ॥ वे दोनों योधा व्याघ्रोंकी समान क्रोधमें होकर,
बाजोंकी समान झपटकर और दो शरभोंकी समान आवेशमें
भरकर युद्ध करनेलगे ॥ ११ ॥ तदनन्तर शत्रुनाशी भीमको
जुग के समयके और वनवासके समयके क्लेशोंका, तथा विराट
नगरमें रहनेके समय जा दुःख भुगतने पड़े थे उनका स्मरण

रत्नानां हरणं च तवात्मजैः । सततञ्च परिवर्लेशान् सपुत्रेण त्वया
 कृतान् ॥ १३ ॥ दग्धुमैच्छश्च यः कुन्तीं सपुत्रां त्वपनागसम् । कृष्णा-
 याश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः ॥ १४ ॥ केशपक्षग्रहञ्चैव दुःशा-
 सनकृतं तथा । परुषाणि च वाक्यानि कर्णेनोक्तानि भारत ॥ १५ ॥
 पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तेव । पतिता नरके पार्थाः सर्वे
 पण्डतिलोपमाः ॥ १६ ॥ समन्तं तव कौरव्य यदृचुः कुरवस्तदा । दासी-
 भावेन कृष्णाञ्च भोक्तुकामाः सुनास्तव ॥ १७ ॥ यच्चापि तान्
 मब्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः । परुषाण्युक्तवान् कर्णः सभायां
 सन्निधौ तव ॥ १८ ॥ तृणीकृत्य यथा पार्थोस्तव पुत्रो ववल्ग इ ।
 विपमस्थान् समस्थो हि संरब्धो गतचेतनः ॥ १९ ॥ वान्यात्
 प्रभृति चारिध्नः स्वानि दुःखानि चिन्तयन् । निरविद्यत धर्मात्मा

आगया ॥ १२ ॥ तदनन्तर तुम्हारे पुत्रोंके छीने हुए राज्यका,
 दमकतेहुए रत्नोंका और तुम्हारे पुत्रोंके दियेहुए क्लेशोंका,
 तुम्हारे निरपराधा कुन्तीको पुत्रोंसहित भस्म कर देनेके उद्योगका,
 सभाके बीचमें द्रौपदी पर कियेहुए दुष्टोंके अत्याचारोंका,
 दुःशासनने जो द्रौपदीके केश खींचे थे उसका, उस समय कर्णके
 कहेहुए कठोर वाक्योंका, कि—“अरी द्रौपदी ! ये पांडव अब तेरे
 पति नहीं रहे अब तू दूसरे पतिको पसन्द करले पांडव तो तेल-
 रहित तिलोंकी समान नपुंसक है और नरकमें पड़ेहुए है”
 इत्यादि तुम्हारे सामने सभामें कहेहुए तुम्हारे पुत्रोंके अपशब्दों
 का, उन्होंने द्रौपदीको जो दासीभावसे भोगना चाहा था उसका
 मृगचर्म धारण कर बन्को जाते समय पांडवोंको तुम्हारे सामने
 सभामें कहेहुए कर्णके कठोर वाक्योंका, तुम्हारे सुखी पुत्र दुर्यो-
 धनने दुःखमें पड़ेहुए पांडवोंसे जा बकवादकी उसका तथा हे कुरु-
 राज ! बालकपनसे भोगेहुए अपने दुःखोंका स्मरण करके शत्रु
 नाशक भीम अपने जीवनसे भी दुःखी होगया ॥ १३ २ ॥

जीवितेन वृकोदरः ॥ २० ॥ ततो विस्फार्य सुमहद्वेमपृष्ठं दुरास-
दम् । चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥ २१ ॥ स
सायकमयैर्जालैर्भीमः कर्णस्थं प्रति । भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भीमोः
प्राञ्छादयत् प्रभाम् ॥ २२ ॥ ततः प्रहस्याधिरथिस्तूर्णमस्य शिला-
शितैः । व्यथमद्भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥ २३ ॥ महा-
रथो महाबाहुर्महाबाणैर्महाबलः । विव्याधाधिरथिर्भीमं नवभिर्नि-
शितैस्तदा ॥ २४ ॥ स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पत्रिभिः ।
अभ्यधावदसम्भ्रांतः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २५ ॥ तमापतन्तं वेगेन
रथसं पाण्डवर्षभम् । कर्णः प्रत्युद्ययौ क्रुद्धो मरुतो मत्तमिव
द्विपम् ॥ २६ ॥ ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतसमस्वनम् । अलु-

तदनन्तर भरतवंशमें सिंहसमान भीमसेन अपने सुवर्णकी मूठ-
वाले बहुत ही बड़े धनुषको टंकारकर अपने प्राणोंका भी मोह
छोड़ कर्णसे लड़नेको चला दिया ॥ २१ ॥ तदनन्तर भीमने
शिलापर घिसकर तेज किए चमकदार बाण मार कर कर्णके
रथमें सूर्यके प्रकाशका जाना रोक दिया (अन्धेरा कर दिया) २२
तब अधिरथके पुत्र कर्णने हँसकर, भीमसेनके बाणोंके जालको
शिलापर घिसकर तेज किए हुए बाण मारकर काट डाला २३
महारथी, महाबाहु, महाबली कर्णने बड़े २ नौ तीक्ष्ण बाण
मारकर भीमसेनको घायल कर डाला ॥ २४ ॥ बाणोंसे पीछेको
हटानेके लिये अंकुशोंसे घायल होते हुए हाथीकी समान घायल
हुआ भीमसेन जराभी नहीं घबड़ाया और कर्णके ऊपरको चढ़ा
चला गया ॥ २५ ॥ जैसे मदमत्त हाथी मदमत्त हाथीके ऊपरको
दौड़ता है तैसे ही वेगसे अपनी ओरको आते हुए भीमके ऊपरको
कर्ण भी झपटा ॥ २६ ॥ तदनन्तर कर्ण सैकड़ों भेरियोंकी
समान शब्द करनेवाले शङ्खभी बजाकर बढ़ते हुए समुद्रकी समान
हर्षसे छड़लता २ आगेको बढ़ाया यह देख सेना हर्षसे

भ्यत बलं हर्षाद्बुद्धूत इव सागरः ॥ २७ ॥ तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा
 नागाश्चरथपश्चिमत । भीमः कर्णं समासाद्य छादयामास
 सायकैः ॥ २८ ॥ अश्वानृत्तसवर्णाश्च हंसवर्णैर्हयोत्तमैः । व्या-
 मिश्रयद्रणे कर्णः पाण्डवं छादयन् शरैः ॥ २९ ॥ ऋत्तवर्णान्
 हयान् कर्कैर्मिश्रान् मास्ततरंहसः । निरीक्ष्य तव पुत्राणां हाहाकृत
 मभूद्वलम् ॥ ३० ॥ ते हया बह्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
 सिताऽसिता महाराज यथा ज्योम्नि बलाहकाः ॥ ३१ ॥ संरब्धौ
 क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ । सन्नस्ताः समकम्पन्त त्वदी-
 यानां महारथाः ॥ ३२ ॥ यमराष्ट्रोपमं घोरमसीदायोधनं तयोः ।
 दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ मेतराजपुरं यथा । समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा

उज्जलने लगी ॥ २७ ॥ हाथी, घोड़े रथ और पैदलोंवाली
 सेनाको हर्षमें भरी हुई देखकर भीमसेनने कर्णको
 बाणोंसे ढकदिया ॥ २८ ॥ कर्णने भी अपने हंसकी समान
 श्वेत घोड़ोंको, भीमके रीछकी समान वर्णवाले घोड़ोंसे भिडा
 दिया और भीमके ऊपर बाण बरसाने लग्ना ॥ २९ ॥ भीमके
 रीछकेसे वर्णवाले पवनवेगी घोड़ोंको, कर्णके श्वेत वर्णके घोड़ोंसे
 पिंदाहुआ देखकर तुम्हारे पुत्रोंकी सेना हाहाकार करने लगी ३०
 हे महाराज ! आपसमें सटेहुए पवनवेगी काले और सफेद
 घोड़े, आकाशमें स्थित काले और श्वेत मेघोंकी समान बड़ी
 शोभा पाने लगे ॥ ३१ ॥ क्रोधमें भरेहुए तथा क्रोधसे ताँबेकी
 समान लाल २ नेत्रोंवाले उन दोनों वीरों को देखकर तुम्हारे
 महारथी भतभीत हो थर २ काँपने लगे ॥ ३२ ॥
 हे भरतश्रेष्ठ ! उन दोनोंके युद्ध करनेकी भूमि यमपुरीकी समान
 भयङ्कर और जिसको देखा न जासके ऐसी पिशाचपुरीकी
 समान हो उठी ॥ ३३ ॥ दूसरे महारथी उस युद्धको इसप्रकार
 आश्चर्यमें होकर देख रहे थे कि—जैसे किसी रङ्गभूमिको देख रहे

महारथाः । नालक्षयन् जयं व्यक्तमेकस्यैव महारणे ॥ ३४ ॥ तयोः
 प्रैक्षन्त संमर्दं सन्निकृष्टं महास्त्रयोः । तत्र दुर्मन्त्रिते राजन् सपुत्र-
 स्य विशांपते ॥ ३५ ॥ छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः
 शितैः । शरजालावृतं व्योम चक्रातेऽद्भुतविक्रमौ ॥ ३६ ॥ ताव-
 न्योऽन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ । प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टि-
 मन्ताविवाम्बुदौ ॥ ३७ ॥ सुवर्णविकृतान् बाणान् प्रमुञ्चन्ताव-
 रिन्दमौ । भास्वरं व्योम चक्राते महोल्काभिरिव प्रभो ॥ ३८ ॥
 ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन् गार्धपत्राश्चकाशिरे । श्रेण्यः शरदि
 मत्तानां सारसानागिवाम्बरे ॥ ३९ ॥ ससक्तं सूतपूत्रेण दृष्ट्वा
 भीमपरिन्दमम् । अतिभारममन्येता भीमे कृष्णधनञ्जयौ ॥ ४० ॥

हों और दोनोंमेंसे रणमें किसकी जीत होगी इसका कुछ
 निर्णय न करसके ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे और तुम्हारे
 पुत्रके अन्यायके कारण ही वे योद्धा उन दोनों महा-अस्त्र-
 धारियोंके समीपमें खड़े होकर उनके युद्धको देखते रहे ३५ शत्रुनाशी
 अद्भुत पराक्रमी भीमसेन और कर्णने परस्परके ऊपर बाणोंकी
 वर्षा करते २ आकाशको बाणोंके जालसे छादिया ॥ ३६ ॥
 परस्परका नाश करनेकी इच्छासे दोनों महारथी एक दूसरेके
 ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करनेलगे इस समय वे दोनों योद्धा
 जल वरसातेहुए दो मेघोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ ३७ ॥
 हे राजन् ! जैसे बड़ी २ उल्काओंसे आकाश दमक उठता है
 तैसे ही उन दोनोंके छूटतेहुए सुवर्णमय बाणोंसे आकाश प्रदीप्त
 होगया ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! उनके छोड़ेहुए गीधके परवाले
 बाण आकाशमें ऐसे शोभा पाते थे जैसे शरदऋतुमें मदमत्त
 सारसोंकी पंक्ति आकाशमें जारही हो ॥ ३९ ॥ शत्रुनाशक
 भीमको कर्णसे भिडा हुआ देख श्रीकृष्ण और अर्जुन विचारने
 लगे, कि-भीमके ऊपर बड़ाभी बोझा आपड़ा है ॥ ४० ॥

तत्राऽधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दण्डं हताः । इषुनातमतिक्रम्य पेतु-
रश्वनरद्विपाः ॥ ४१ ॥ पतद्भिः पतितैश्चान्यैगतासुभिरनेकशः ।
कृतो राजन्महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥ ४२ ॥ मनुष्यारवगजा-
नाञ्च शरीरैर्गतजीवितैः । क्षणेन भूमिः सञ्जज्ञे संवृता भरतर्षभ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अस्पृहभुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम् ।
यत् कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥ १ ॥ त्रिदशानपि
चोद्युक्तान् सर्वशस्त्रधरान् युधि । नारयेद्यो रणे कर्णः सयत्नासुर-
मानवान् ॥ २ ॥ स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया ।
नातरत् संयुगे पार्थ तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३ ॥ कथञ्च युद्धं
सम्भूतं तयोः प्राणदुरोदरे । अत्र मन्ये समायत्तो जयो बाजय

भीम तथा कर्णके बाणोंके प्रचण्ड प्रहारसे हाथी घोड़े और
मनुष्य मरणकी शरण हो पृथ्वीपर गिरनेलगे ॥ ४१ ॥ हे राजन् !
तुम्हारे पुत्रोंके योधाओंका बड़ा भारी संहार होनेलगा कोई प्राण-
हीन हो उस युद्धमें गिररहे थे, कोई गिरगए थे और बहुतसे
तड़फरहे थे ॥ ४२ ॥ हे भरतसत्तम ! क्षणभरमें ही परेहुए
हाथी, घोड़े और मनुष्योंकी लोथोंसे पृथ्वी पटगई ॥ ४३ ॥
एकसौ वेंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३२ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे संजय ! मैं भीमसेनके पराक्रमोंको
बड़ा ही अद्भुत समझता हूँ, कि जो उसने फुर्तीले कर्णको
समरमें हरादिया ॥ १ ॥ हे संजय ! जो कर्ण युद्धमें शत्रुधारी
देवता यक्ष और मनुष्योंको भी रणमें रोकसकता है, वही कर्ण
राजलक्ष्मीसे शोभायमान पांडुपुत्र भीमको समरमें क्यों नहीं
जीतसका ? ॥ २-३ ॥ उन दोनोंका प्राणोंरूपी दाँव लगाया
हुआ युद्धरूप घूत विसप्रकार होता रहा युद्ध तो ऐसा मतीत

एव च ॥ ४ ॥ कर्णं प्राप्य रणे स्रुत मम पुत्रः सुयोधनः । जेतु-
मुत्सहते पार्थान् सगोविन्दान् ससात्वतान् ॥ ५ ॥ श्रुत्वा तु निर्जिज-
तं कर्णमसकृज्जीमकर्षणा । भीमसेनेन समरे मोहश्चाविशतीव
माम् ॥ ६ ॥ विनष्टान् कौरवान्मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः । न हि कर्णो
महेष्वासान् पार्थान् जेष्यति सञ्जय ॥ ७ ॥ कृतवान् यानि
युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह । सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणा-
जिरे ॥ ८ ॥ अजेयाः पाण्डवास्तात देवैरपि सवासवैः । न च
तद् बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९ ॥ धनं धनेश्वरस्येव
हृत्वा पार्यस्य मे सुतः । मधुमेष्मुरिवाबुद्धिः प्रपातं नावबुध्यते १०
निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम् । जितमित्येव

होता है कि-इसमें एक पक्षकी जय और दूसरे पक्षकी पराजय
अवश्य होगी ॥ ४ ॥ मेरा पुत्र दुर्योधन रणमें कर्णकी सहायता
ले सात्यकि और कृष्णसहित पाण्डवोंको जीतनेका उत्साह
रखता है परन्तु जबसे मैंने सुना है कि-भीमकर्मा भीमने कर्णको
समरमें कई बार जीतलिया, तबसे मेरा मन मुरझाया जाता
है ॥ ५-६ ॥ हे संजय ! मुझे निश्चय है कि-मेरे पुत्रोंके
कारणसे सकल कौरवोंका नाश होगा, महाधनुषधारी पाण्डवोंको
कर्ण कभी नहीं जीत सकेगा ॥ ७ ॥ पाण्डवोंके साथ कर्णने
जितने युद्ध किये हैं-उनमें बहुतसे युद्धोंमें पाण्डवोंने ही कर्णको
हराया है ॥ ८ ॥ इन्द्रसहित देवता भी पाण्डवोंको नहीं जीत सकते,
इस बातको मेरा मन्दबुद्धि पुत्र दुर्योधन नहीं समझता! हा! ॥ ९ ॥
मूढ मनुष्य जैसे शहद लेनेके लिए मुहालकी मक्खियोंके छत्तेके
पास तो चला जाता है, परन्तु अपने नाशका विचार नहीं करता
है, तैसे ही मेरे पुत्रने कुवेरकी समान धन तो हरलिया, परन्तु यह
विचार नहीं किया कि-इससे मेरा सर्वनाश होजायगा ॥ १० ॥
कपटचतुर दुर्योधन महात्मा पाण्डवोंके राज्यको छलसे हरया

मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥ ११ ॥ पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाप्य-
कृतात्मना । धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः १२
शमकामः ससौदर्यो दीर्घमेत्ती युधिष्ठिरः । अशक्त इति मत्वा तु
पुत्रैर्मम निराकृतः ॥ १३ ॥ तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च
सर्वशः । हृदि कृत्वा महाबाहुभीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥ १४ ॥ तस्मा-
न्मे सञ्जय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे । अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ पर-
स्परवधैपिणौ ॥ १५ ॥ संजय उवाच । शृणु राजन् यथावृत्तं
संग्रामं कर्णभीमयोः । परस्परं वधप्रेप्सोर्वने कुञ्जरयोरिव ॥ १६ ॥
राजन् वैकर्त्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिन्दमम् । पराक्रान्तं परिक-
म्प विव्याध त्रिशता शरैः ॥ १७ ॥ महावैगैः प्रसन्नाग्रैः शतकु-
म्भपरिष्कृतैः । अहनद् भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्त्तनः शरैः ॥ १८ ॥

कर, उनको जीताहुआ मान सदा अपमान करता रहा है ॥ ११ ॥
और मुझ पापीने भी पुत्रस्नेहके अधीन हो धर्मे स्थित, महात्मा
पाण्डवोंका अपमान (अपराध) किया है ॥ १२ ॥ दूरदर्शी
युधिष्ठिर और उनके भाई शान्ति बनाए रखनेके लिए सन्धि
करना चाहते थे, परन्तु मेरे पुत्रोंने उनको असमर्थ समझ, उनका
तिरस्कार कर दिया ॥ १३ ॥ ऐसे २ दुःख और अपमानोंको स्मरण
कर महाबाहु भीमसेन सूतपुत्र कर्णसे लड़ा होगा १४ हे सञ्जय ! अतः
तू परस्पर वध करना चाहतेहुए योधाओंमें श्रेष्ठ भीम और कर्ण
युद्धमें जिसप्रकार लड़े हों, वह मुझे सुना ॥ १५ ॥ सञ्जयने कहा कि
हे राजन् ! कर्ण और भीमके, परस्परका वध करना चाहनेवाले
दो जंगली हाथियोंमें हुए घोर युद्धकी समान, संग्रामको सुनो १६
हे राजन् ! क्रोधमें भरेहुए कर्णने पराक्रम कर क्रोधमें भरेहुए
पराक्रमी शत्रुदमन भीमके तीस घाण मारे ॥ १७ ॥ हे भरतश्रेष्ठ !
कर्ण सुवर्णमण्डित प्रसन्न मुखवाले वेगवान् बाण भीमके मारने
लगा ॥ १८ ॥ बाण छोड़तेहुए कर्णके घनुषको भीमने तीन तीक्ष्ण

तस्मात्स्यतो धनुर्भीमथकर्तुं निशितैस्त्रिभिः । रथनीडाच्च यन्तारं
 भल्लेनापातयत् क्षितौ ॥ १६ ॥ स काञ्चन् भीमसेनस्य वधंवैक-
 कर्त्तनो भृशम् । शक्तिं कनकवैद्यैश्चित्रदण्डां परामृशत् । २० ।
 प्रष्टुं च महाशक्तिं कालशक्तिमिवापराम् । समुत्क्षिप्य च राधेयः
 सन्ध्याय च महाबलः ॥ २१ ॥ चित्रेण भीमसेनाय जीवितान्त-
 करीमिव । शक्तिं विष्टज्य राधेयः पुरन्दर इवाशनिम् ॥ २२ ॥
 ननाद सुमहानादं बलवान् सूननन्दनः । तद्वच नादं ततः श्रुत्वा
 पुत्रास्ते हर्षिताभवन् ॥ २३ ॥ तं कर्णशुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानर-
 प्रभाम् । शक्तिं वियति चिच्छेदः भीमः सप्तभिराशुगैः ॥ २४ ॥
 क्षित्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसन्निभाम् । मार्गमाण इव
 प्राणान् सूतपुत्रस्य मारिष ॥ २५ ॥ प्राहिणोत् कृतसंरम्भः शरान्-

पाण मारकर काटडाला और एक भल्ल नामक चाण मारकर
 उसके सारथिको भी रथकी बैठक परसे भूमिमें गिरादिया । १६।
 तब तो कर्ण भीमको मारनेकी और भी अधिक चाहना करनेलगा
 और उसने सुवर्ण तथा वैद्योंसे चित्रित दण्डेवाली शक्तिको
 उठाया ॥ २० ॥ महाबली राधाके पुत्र कर्णने कालशक्तिकी वहनकी
 समान उस प्राणसंहारिणी महाशक्तिको उठाकर घुमाया और
 भीमसेनके ऊपरको ऐसे फेंकदिया जैसे इन्द्र वज्रका प्रहार करता
 है, फिर बली सूतनन्दन कर्ण वड़ी गर्जना करनेलगा, उस गर्जनाको
 सुन तुम्हारे पुत्र बड़े प्रसन्न हुए ॥ २१-२३ ॥ भीमने, कर्णकी
 फेंकी हुई अग्नि और सूर्यकी समान कान्तिवाली उस शक्तिको,
 शीघ्रगामी सात बाण मारकर आकाशमें ही नष्ट करडाला २४
 कैचलीरहित सर्पकी समान आकारवाली उस शक्तिको नष्ट करके
 हे राजन् ! क्रोधमें भरा हुआ भीमसेन मानो कर्णके प्राणोंको
 ढूँढ रहा हो इसप्रकार चेष्टा करता हुआ मयूरके पंखवाले और
 सुवर्णकी पूँछवाले, शिला पर घिसकर तेज किए हुए, यमदण्डों

बहिष्वाससः। स्वर्णपुंखान् शिलार्थानान् यमदण्डोपमान्पृथे २६
 कर्णोप्यभ्यद्वन्द्वं ह्येवमृषं दुरासदम् । विकृष्य तन्महत्त्वापं व्य-
 सृजत् सायकास्तदा ॥ २७ ॥ तान् पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नत-
 पर्वभिः । वसुपेणेन निम्बुक्तान्नत्र राजन्महाशरान् ॥ २८ ॥ छित्त्वा
 भीमो महाराज नादं सिंह इवानदत् । तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ
 वासितान्तरे ॥ २९ ॥ शार्दूलाविव चान्योन्यमागिषार्थेभ्यगर्ज-
 ताम् । अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्यान्तरैपिणौ ॥ ३० ॥ अन्यो-
 न्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ । महागजाविवासाद्य विषा-
 णाग्रैः परस्परम् ॥ ३१ ॥ शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।
 निर्वहन्तौ महाराज शरवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३२ ॥ अन्योन्यमभि-
 वीक्षन्तौ कोपाद्विवृतलोचनौ । प्रहसन्तौ तथान्योऽन्यं भर्त्सयन्तौ

की समान बाणोंको कर्णके ऊपर छोड़नेलगा ॥ २५-२६ ॥
 तदनन्तर कर्णने एक स्वर्णकी पीठवाला दुराधर्ष धनुष उठाया
 और उस महाचापको खँचकर बाण छोड़नेलगा ॥ २७ ॥ हे राजन् !
 कर्णके छोड़ेहुए नौ महाबाणोंको भीमसेनने नौ नमीहुई गाँठवाले
 बाण मारकर काटडाला ॥ २८ ॥ हे राजन् ! कर्णके बाणोंको
 काटनेके बाद भीम सिंहकी समान दहाड़नेलगा, जैसे दो बलवान्
 बैल एक ऋतुमती गौको देखकर रंभाते हों अथवा दो सिंह
 जैसे मांसके लिये दहाड़ते हों, तैसे ही भीम और कर्ण भी गर्जना
 करतेहुए, एक दूसरेको नष्ट करनेकी इच्छासे एक दूसरेके छिद्रको
 ढूँढतेहुए फिरनेलगे ॥ २९-३० ॥ गोठमें खड़ेहुए दो बैल
 जैसे एक दूसरेको आँखे फाड़कर देखनेके बाद सींगोंसे मार
 करते हों और जैसे दो हाथी एक दूसरेको दाँतोंसे मारते हों,
 तैसे ही वे दोनों क्रोधसे आँखें फाड़ फाननक धनुषको खँचकर
 बाणोंसे एक दूसरेको मारतेहुए ऐसे देखरहे थे, कि-साभनेके
 शत्रुको भस्म ही करडालेंगे, वे दोनों बारम्बार हँसकर तिरस्कार

मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥ शंखशब्दश्च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम् ।
 तस्य भीमः पुनश्चाष्टौ मुष्टौ चिच्छेद मारिष ॥ ३४ ॥ शंखवर्णाश्च
 तानश्वान् वाणैर्निन्ये यमन्त्रयम् । सारथिञ्च तथाप्यस्य रथनीडा-
 दपातयत् ॥ ३५ ॥ ततो वैकर्त्तनः कर्णश्चितां प्राणदुरत्ययाम् ।
 संघ्राद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ३६ ॥ मोहितः शर-
 जालेन कर्त्तव्यं नाभ्यपद्यत । तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्यो-
 धनो नृपः ॥ ३७ ॥ वेपमान इव क्रोधाद्व्यादिदेशाथ दुर्जयम् ।
 गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः ॥ ३८ ॥ जहि तूवरकं
 क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् । एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवा-
 त्मजः ॥ ३९ ॥ अभ्यद्रवद्भीमसेनं व्यासक्तं विकिरच्छरैः । स
 भीमं नवभिर्वाणैरश्वानष्टभिरार्पयत् ॥ ४० ॥ पद्भिः सूतं त्रिभिः

कर शङ्खोंको वजातेहुए युद्ध कर रहे थे हे राजन् । इतनेमें ही भीम-
 सेनने फिर उसके धनुषको सूठपरसे काट डाला ॥ ३१-३४ ॥
 और वाण मारकर उसके शङ्खकी समान श्वेत घोड़ोंको परलोकमें
 भेज दिया तथा उसके सारथीको रथकी बैठक परसे गिरा दिया ३५
 जब उसके रथके घोड़े और सारथि मर गए तथा स्वयं भी वाणोंसे
 ढक गया तब तो कर्ण बड़े सोचविचारमें पड़ गया ॥ ३६ ॥ वाणोंके
 समूहसे कर्ण मोहितसा होने लगा और इस समय क्या करना
 चाहिये इसका वह कुछ निश्चय न कर सका, कर्णको इस प्रकार
 आपत्तिमें फँसा देख राजा दुर्योधन क्रोधसे कौपते हुए भी समान
 अपने भाई दुर्जयसे कहने लगा, कि—हे दुर्जय ! हमारे सामने ही
 भीम कर्णको खाये जाता है, अतः तू कर्णके पास जा और इस जंगली
 भीमको मार कर्णको सहायता दे, दुर्योधनके वचनको सुन तुम्हारा
 पुत्र दुर्जय दुर्योधनसे तथास्तु कह वाणोंको बरसाताहुआ भीमके
 सामनेको दौड़ गया और उसने नौ वाण भीमके मारे तथा आठ
 वाण उसके घोड़ोंके मारे ॥ ३७-४० ॥ फिर छः वाण सारथिके

केतुं पुनस्तञ्चापि सप्तभिः । भीमसेनोपि संक्रुद्धः साश्वयन्तार-
माश्रुगैः ॥ ४१ ॥ दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद्यमसादनम् । स्व-
लंकृतं क्षितौ जुष्टं चेष्टमानं यथोरगम् ॥ ४२ ॥ रुदन्नार्त्तस्तव
सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् । स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्य-
न्तवैरिणम् ॥ ४३ ॥ समाचिनोद्वाणगणैः शतघ्नीमिव शंकुभिः ।
तथाप्यतिरथः कर्णो भिद्यमानोऽस्य सायकैः । न जहौ समरे
भीमं क्रुद्धरूपं परन्तपः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णभीमयुद्धे
त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

सञ्जय उवाच । सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः ।
रथमग्न्यं समास्थाय पुनर्विव्याध पाण्डवम् ॥ १ ॥ महागजावि-
वासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् । शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योऽन्यमभि-

और तीन बाण ध्वजा पर और फिर भीमसेनके सात बाण
मारे, तब तो भीमसेन क्रोधमें भरगया और उसने बाण मारकर
दुर्जयके कवचको तोड़ उसको सारथि और घोड़ोंसहित यमलोकमें
भेजदिया, युद्धके वेषसे सजाहुआ तुम्हारा पुत्र दुर्जय भीमके
बाणोंके प्रहारसे (मरते समय) सर्पकी समान तड़फनेलगा ४१-४२
यह देख कर्णके नेत्रोंमें आँसू भरआए और उसने रोते-२ उसके
पास जा उसकी प्रदक्षिणा क्री, इस समय भीमसेनने गर्वके साथ
कर्णके रथको फिर चकनाचूर करदिया और उसके ऊपर बाण,
शतघ्नी तथा शंकुश बरसानेलगा, परन्तप अतिरथी कर्णने भी
क्रोधमें भरेहुए भीमसेनको छोड़ा नहीं, किन्तु वह उससे लड़े ही
गया ॥ ४३-४४ ॥ एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३३ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! रथशून्य कर्णको भीमने फिर
सर्वथा जीतलिया तो भी कर्ण एक दूसरे रथ पर चढ़कर आया
और बाणोंसे भीमको बीधनेलगा ॥ १ ॥ जैसे दो बड़े हाथी

धनुः ॥ २ ॥ अथ कर्णः शरव्रतैर्भीमसेनं समापयत् । ननाद
 च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥ ३ ॥ तं भीमो दशभिर्बाणैः
 प्रत्यविध्यदजिह्वगैः । पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ४
 कर्णस्तु नवभिर्भीमं विध्वा राजन् स्तनोतरे । ध्वजमेकेन विव्याध
 सायकेन शितेन ह ॥ ५ ॥ सायकानां ततः पार्थस्त्रिष्टया प्रत्यवि-
 ध्यत । तोत्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥ ६ ॥ सोऽति-
 विद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना । स्रक्किणी लेलिहन् वीरः
 क्रोधसरक्तलोचनः ॥ ७ ॥ ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम् ।
 प्राहिणोद्भीमसेनाय वधायेन्द्र इवाशनिम् ॥ ८ ॥ स निर्भिद्य
 रणे पार्थः सूतपुत्रघनुरच्युतः । अगच्छदारयन् भूमिं चित्रपुंखः
 शिलीमुखः ॥ ९ ॥ ततो भीमो महाबाहुः क्रोधसरक्तलोचनः ।

आपसमें दाँतोंके अग्रभागसे लहते हैं तैसे ही वे दोनों जोरसे
 धनुषको खेंचतेहुए एक दूसरेको मारनेलगे ॥२॥ तदनन्तर कर्ण
 भीमके ऊपर बाणोंकी वर्षाकर गर्जनेलगा फिर उसने भीमसेनकी
 छातीमें बाण मारा ॥ ३ ॥ भीमने कर्णके सीधे जानेवाले दश
 बाण मारे, फिर नमीहुई गाँठवाले सत्तर बाण मारकर कर्णको
 वींधडाला ॥ ४ ॥ हे राजन् ! भीमने कर्णकी छातीमें नौ बाण
 मारकर एक तीक्ष्ण बाणसे उसकी ध्वजाको छिन्न भिन्न कर
 दिया ॥ ५ ॥ फिर, जैसे हाथीको अंकुशोंसे और घोड़ोंको
 चाबुकोंसे मारते हैं तैसे ही भीमने त्रिरेसठ बाण मारकर कर्णको
 वींधडाला ॥ ६ ॥ हे महाराज ! यशस्वी भीमसेनके बाणप्रहारसे
 बहुत ही घायल हुआ कर्ण जवाड़ोंको चाटनेलगा और उसके
 नेत्रोंके कोण क्रोधसे लाल हो गये ॥७॥ जैसे इन्द्रने बलनामक
 असुरके ऊपर वज्र फेंका था तैसे ही हे महाराज ! कर्णने सब
 शरीरको फोड़ देनेवाला बाण भीमसेनके मारा ॥ ८ ॥ कर्णके
 धनुषसे छूटाहुआ विचित्र पूँछवाला वह बाण रणमें भीमसेनके

वज्रकन्पां चतुष्किष्कुं गुर्वी रुक्माङ्गदां गदाम् ॥ १० ॥ प्राहिणोत्
 सूतपुत्राय षडस्त्रामविचारयन् । तया जघानाधिरथः सदश्चान्
 साधुवाहिनः ॥ ११ ॥ गदया भारतः क्रद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ।
 ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ ॥ १२ ॥ ध्वजमाधिरथ-
 श्लित्वा सूतपुत्रमहनच्छरैः । हताश्वसूतमुत्सृज्य स रथं पतित-
 ध्वजम् ॥ १३ ॥ विस्फारयन् धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः । तत्रा-
 द्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ॥ १४ ॥ विरथो रथिनां श्रेष्ठो
 वारयामास यद्रिपुम् । विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाधिरथिमाहवे ॥ १५ ॥
 दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम् । एष दुर्मुख राधेयो
 भीमेन विरथी कृतः ॥ १६ ॥ तं रथेन नरश्रेष्ठं सम्पादय महारथम् ।
 ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः ॥ १७ ॥ त्वरमाणोभ्य-

शरीरको वीध पृथ्वीको फाडकर भीतर घुसगया ॥ १६ ॥ तदनन्तर
 क्रोधसे लाल २ नेत्रवाले महाबाहु भीमेने वज्रक्री समान दृढ़, छः
 कोने और सुवर्णके बाजूबन्दवाली चार हाथकी बड़ी भारी गदा
 बिना विचारे कर्णके ऊपर फैंकी जैसे इन्द्रने वज्रसे असुरोंको
 मारडाला था तैसे ही क्रोधमें भरे भीमसेनने उस गदासे कर्णके श्रेष्ठ
 घोड़ोंको मारडाला, तदनन्तर हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! महा-
 भुज भीमने दो क्षुरोंसे कर्णकी ध्वजाको काट बाणोंसे घोड़ोंको
 मारडाला, जब घोड़े और सारथि मारे गए और ध्वजा कटगई
 तब खिन्नचित्त हुआ कर्ण रथको छोड़ धनुषको तानकर खड़ा
 होगया, हमने तहाँ कर्णका अद्भुत पराक्रम देखा, कि-रथियोंमें
 श्रेष्ठ कर्ण रथहीन होनेपर भी शत्रुको रोके ही रहा युद्धमें नर-
 श्रेष्ठ कर्णको रथहीन देखकर हे राजन् ! दुर्योधनने दुर्मुखसे
 कहा, कि-देख ! कर्णको भीमसेनने रथहीन करदिया है १०-१६
 अतः तू उस नरश्रेष्ठके पास रथ लेजा, हे भारत ! दुर्योधनके
 इस वचनको सुनकर दुर्मुख शीघ्रतासे कर्णकी ओरको चला

यात् कर्णं भीमश्चावारयच्छरैः । दुर्मुखं प्रक्ष्य संग्रामे सतपुत्रपदा-
 जुगम् ॥ १८ ॥ वायुपुत्रः महःशृङ्गाभूतः सुविक्रपी परिसंलिङ्गन् ।
 ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ॥ १९ ॥ दुर्मुखः स्व-
 रथं शीघ्रं प्रेषयामास पाण्डवः । तस्मिन् क्षणे महाराज तत्रभिर्नत-
 पर्वभिः ॥ २० ॥ सुमुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम् । ततः
 स्तम्भेवाधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते ॥ २१ ॥ अस्थितः प्रबभौ
 राजन् दीप्यमान इवाशुमान् । शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणि-
 तोत्तितम् ॥ २२ ॥ हृष्टा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाभ्यवर्त्तत ।
 तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः मदक्षिणम् ॥ २३ ॥ दीर्घमुष्णं
 श्वसन् वीरो न किञ्चित् प्रत्यपद्यत । तस्मिन्सु विवरे राजन्नारा-
 चान् गाढवाससः ॥ २४ ॥ माहिणोत् सतपुत्राय भीमसेनश्चतु-
 र्दश । ते तस्य कवचं भित्वा स्वर्णचित्रा महोजसः ॥ २५ ॥ हेम-

और भीमसेन पर बाण भी वरसाने लगा । संग्राममें दुर्मुखको
 कर्णकी सहायता करता देखकर वायुपुत्र भीमसेन प्रसन्न हो
 जबाड़े चाटने लगा, फिर हे राजन् ! भीम कर्णको बाणोंसे रोक
 कर शीघ्र ही दुर्मुखकी ओरको अपना रथ ले गया, और
 हे महाराज ! उसी क्षण भीमने सुन्दर मुखवाले और नमीहुई
 गाँठवाले नौ बाण मारकर दुर्मुखको यमलोकमें भेज दिया,
 हे राजन् ! दुर्मुखके रथमें बैठा हुआ किरणमाला सूर्यकी समान
 शोभायमान कर्ण, कवच टूटे हुए दुर्मुखको रणमें सोता हुआ
 देखकर रोने लगा और क्षण भरको अचेत होगया, तदनन्तर
 कर्ण सावधान हो रथमेंसे उतरकर उसके मृतशरीरके पास पहुँच
 उसकी परीक्षा करने लगा और लम्बी २ साँस छोड़ता हुआ
 कर्ण कुछ निश्चय न कर सका, इस अवसरको देख हे राजन् !
 भीमसेनने गोध पत्नीके परोवाले चौदह बाण कर्णके मारे,
 हे महाराज ! दशों दिशाओंमें प्रकाश करते हुए सुवर्णकी पूँछवाले

पुंत्वा महाराजं व्यशोभन्त दिशो दश । अपिषन् स्रुतपुत्रस्य शोणितं
रक्तभोजनाः ॥ २६ ॥ क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचो-
दिताः । प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः ॥ २७ ॥
अर्द्धप्रविष्टाः संरब्धा विलानीव महोरगाः । तं प्रत्यविध्यद्वाधेयो
जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २८ ॥ चतुर्दशभिरस्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् ।
ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ २९ ॥ प्राविशन्मे-
दिनीं भीमाः क्रौञ्चपत्ररथा इव । ते व्यरोचन्त नाराचा प्रविश-
न्तो वसुन्धराम् ॥ ३० ॥ गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवाश्ववः ।
स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३१ ॥ सुस्राव
रुधिरं भूरि पर्वतः संलिलं यथा । स भीमस्त्रिभिरायस्तैः स्रुतपुत्रं
पतत्रिभिः ॥ ३२ ॥ सुवर्णवेगैर्विव्याध सारथिञ्चास्य सप्तभिः ।
स विहृतो महाराज कर्णो भीमशराहतः ॥ ३३ ॥ प्राद्रवज्जवनै-

ऊन बाणोंने महारानी कर्णके सुवर्णके कवचको तोड़ डाला
तथा कालसे प्रेरित सर्प जैसे रुधिरको पीता है तैसे ही कर्णके
रुधिरको पीकर विलमें आधे घुसेहुए क्रोधित महासर्पोंकी समान
पृथ्वीमें आधे घुसेहुए वे बाण बड़े ही शोभित हो रहे थे, राधेय
कर्णने बिना सोचे ही बड़े उग्र, सुवर्णसे विभूषित चौदह बाणोंसे
भीमको बाँध डाला, वे बाण भीमसेनकी दाहिनी भुजाको घायल
कर क्रौंच पर्वतमें घुसतेहुए पक्षियोंकी समान, पृथ्वीमें घुसगए
पृथ्वीमें घुसतेहुए वे बाण, सूर्यास्तके समय पृथ्वीमें पड़ती
(घुसती) हुई किरणोंकी समान शोभापारहे थे, बाणोंसे घायल
हुआ भीमसेन, जल बहातेहुए पर्वतकी समान बहुतसा रुधिर
टपकाने लगा, तनकर खड़े भीमसेनने गरुडकी समान वेगवाले
तीन बाण मारकर कर्णको घायल किया और सात बाण मार
कर उसके सारथिको घायल कर दिया हे महाराज । भीमके
बाण लगनेसे कर्ण विहृत होगया और बहुत ही डरताहुआ

रश्चै रणं त्यक्त्वा महाभयात् । भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमप-
रिष्कृतम् ॥३४॥ आहवेऽतिरथोतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णापयाने
चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् । यत्रा-
धिरथिरायत्तो नातरत् पाण्डवं रणे ॥१॥ कर्णः पार्थान् सगो-
विन्दान् जेतुमुत्सहते रणे । न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि
कञ्चन ॥ २ ॥ इति दुर्योधनस्याहमश्रौषं जल्पतो मुहुः । कर्णो
हि प्लव्णान् शूरो दृढधन्वा जितक्लमः ॥ ३ ॥ इति मामब्रवीत्
सून मन्दो दुर्योधनः पुरा । वसुपेणसहायं मां नालं देवापि
संयुगे ॥ ४ ॥ किमु पाण्डुसुता राजन् गतसत्त्वा विचेतसः । तत्र

घोड़ोंको तेजीसे हाँककर रणमेंसे भाग गया, परन्तु अतिरथी
भीमसेन धधकतेहुए अग्निकी समान सुवर्णसे मढ़ेहुए धनुषको
तानकर रणमें खड़ाही रहा ॥ १७-३५ ॥ एकसौ चौतीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १३४ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे संजय ! देव ही मुख्य है, पुरुषार्थ
करना निरर्थक है ऐसा मेरा निश्चय है क्योंकि-कर्ण रणमें
सावधान होकर लड़ता था, परन्तु भीमको जीत न सका ॥ १ ॥
कर्ण रणमें श्रीकृष्णसहित पांडवोंको जीतनेका उत्साह करता
है कर्णकी समान योधा तो मुझे संसार भरमें नहीं दीखता ॥२॥
ऐसे मैंने दुर्योधनको बारम्बार कहते सुना था, मेरे मन्दबुद्धि पुत्र
दुर्योधनने पहिले कहा था कि-कर्ण बली है, शूर है, दृढ़
धनुषवाला है और परिश्रमको कुछ नहीं समझता है यह कर्ण
जब रणमें मेरी सहायता करेगा तो देवता भी मुझे रणमें नहीं
जीत सकते ॥ ३-४ ॥ फिर हे राजन् ! सत्वरहित और टूटेहुए
मनवाले पांडवोंकी (तो बात ही) क्या ? ऐसे कर्णको युद्धमें हारा

तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम् ॥ ५ ॥ युद्धात् कर्णमपक्रांतं
 किं स्विन्नं दुर्योधनोऽब्रवीत् । अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशार-
 दम् ॥ ६ ॥ प्रावेशयदधुतव्रह्मं पतङ्गमित्रमोहितः । अश्वत्थामा मद्र-
 राज्ञः कृपः कर्णश्च सङ्गताः ॥ ७ ॥ न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं
 भीमस्य सङ्गजम् । तेषां चास्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम् ॥
 जानन्तो व्यवसायञ्च क्रूरं मारुततेजसः । किमर्थं क्रूरकर्माणं
 यमकालान्तकोपमम् ॥ ८ ॥ बलसंरम्भवीर्यज्ञाः योपयिष्यन्ति
 संयुगे । कर्णस्त्वेको महाबाहुः स्वबाहुबलदर्पितम् ॥ ९ ॥
 भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः । योऽजयत् समरे कर्णं पुर-
 न्दर इवासुरम् ॥ ११ ॥ न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचि-
 दाहवे । द्रोणं यः संप्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम चाहिनीम् ॥ १२ ॥

हुआ और विपरंहित सर्पकी समान निःसत्त्व हो रणमें भीमके
 सामनेसे भागाहुआ देखकर दुर्योधनने क्या कहा ? मूढहुए
 दुर्योधनने पतंगेको अग्निकी ओंरको छोड़नेकी समान युद्धविद्या
 में अकुशल दुर्मुखको अकेला ही भेजकर उसको युद्धाग्नमें
 भोंक दिया हे संजय ! अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य और कर्ण
 इकट्ठे होकर भी भीमसेनके सामने खड़े होनेकी शक्ति नहीं रखने,
 वे पवनकी समान प्रतापी भीमसेनके दशसहस्र हाथियोंकी समान
 महाभयङ्कर बलको जानते हैं, अतः भीमके बल क्रोध और वीर्य
 के जानकार होकर भी उन्होंने उस प्रलयकालीन यमकी समान
 क्रूर कर्म करनेवाले भीमसेनको रणमें क्यों कुपित किया ? मैं
 समझता हूँ कि—अकेला महाभुज कर्ण ही अपने भुजबल पर
 भरोसा रख आनी भुजाओंके बल पर गर्व करते हुए भीम-
 सेनका अनादर कर उससे रणमें परन्तु इन्द्र जैसे
 राजसको
 ऐसे

भीमो धनञ्जयान्वेषी कस्तमान्छ्वेज्जिजीविषुः । को हि सञ्जय
भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १३ ॥ उद्यताशनिहस्तस्य महेन्द्र-
स्येव दानवः । प्रेतराजपुरम्प्राप्य निवर्त्तेतापि मानवः ॥ १४ ॥
न भीमसेनं सम्प्राप्य निवर्त्तेतः कदाचन । पतङ्गा इव बह्विन्ते
प्राविशन्तल्पतेजसः ॥ १५ ॥ ये भीमसेनं संक्रुद्धमन्वधावन् विमो-
हिताः । यत्तत् सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ॥ १६ ॥ उक्तं
संरम्भिणोग्रेण कुरुणा मृण्वता तदा । तन्नूनमभिसञ्चिन्त्य
दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ॥ १७ ॥ दुःशासनः सह भ्रात्रा भयाद्
भीमादुपारमत् । यश्च सञ्जय दुर्बुद्धिरववीत् समितौ युधुः १८
कर्णो दुःशासनोऽहङ्गं जेष्यामो युधि पाण्डवान् । स नूनं विरथः
दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ॥ १९ ॥ प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य

हुआ जो भीम द्रोणको ममलाकर मेरी सेनामें घुसगया, उसके
सामने जीवित रहना चाहता हुआ कौन खड़ा हो सकता है? हाथमें
वज्र उठाये हुए इन्द्रके सामने जैसे दानव खड़ा नहीं हो सकता
तैसे ही हे संजय! भीमके सामने रणमें खड़े होतेका उत्साह
कौन कर सकता है? कदाचित् यमपुरमें जाकर कोई लौट आवे,
परन्तु भीमके सामने जाकर कोई भी नहीं लौट सकता, पतंगे जैसे
अग्निमें जापड़ते हैं तैसे ही अल्पबुद्धिवाले योधाओंने क्रोधमें भरे
भीमके सामने जा अपने प्राण व्यर्थ ही गवाँदिये, निःशङ्क, क्रोधी
तथा प्रचण्डबुद्धि भीमने पहिले कौरवोंकी सभामें ही सब कौरवों
को सामने मेरे पुत्रोंका संहार करनेकी प्रतिज्ञा की थी, दुःशासन
और दुर्योधन कर्णको हाराहुआ देखकर और उस बातको विचार
कर भीमके सामनेसे डरकर भाग गए होंगे हे संजय! जिस दुर्बुद्धि
दुर्योधनने सभामें वाम्ब्वार कहा था, कि-मैं, दुःशासन और कर्ण
युद्धमें पांडवोंको हरादेंगे! उसने जब देखा, कि-भीमने कर्णको
युद्धमें हरा दिया है और वह रथहीन हो गया है उस समय उसको

भृशं तप्यति पुत्रकः । । दृष्ट्वा भ्रातृन् हतान् संख्ये भीमसेनेन
दंशितान् ॥ २० ॥ आत्मापराधे सुमहन्नुनं तप्यति पुत्रकः । को
हि जीवितमन्विच्छन् प्रतीपं पाण्डवं व्रजेत् ॥ २१ ॥ भीमं भागा-
युद्धं कुड्मं साक्षात् कालमिव स्थितम् । बहवामुखमध्यस्थो मुच्ये-
तापि हि मानवः ॥ २२ ॥ न भीममुखसम्प्राप्तो मुच्येदिति मति-
र्मम । न पार्था न च पञ्चाला न च केशवसात्यकी ॥ २३ ॥ जानन्ते
युधिः संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् । अहो मम सुतानां हि
विपत्तेः सूत जीवितम् ॥ २४ ॥ सञ्जय उवाच । यस्त्वं शोचसि
कौरव्य वर्तमाने महाभये । त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न
संशयः ॥ २५ ॥ स्वयं वैरं महत् कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।

सन्धि करनेके लिए आएहुए श्रीकृष्णके अपमान करनेका बड़ा
पछतावा हुआ होगा, युद्धमें अपने कवचधारी भाइयोंको भीमसेन
के हाथसे मारेहुए देखकर मेरा पुत्र दुर्योधन अपने अपराधके
कारण मनमें बहुत ही पछताया होगा । भयंकर आयुध धारण
करनेवाले क्रोधमें साक्षात् कालकी समान खड़ेहुए भीमके सामने
जानेका साहस प्राणोंकी रखनेकी इच्छावाला कौन प्राणी करेगा ?
बड़बानलमें प्रड़ाहुआ मनुष्य कदाचित् जीवित बच जाय, परन्तु
भीमसेनके मुखमें पड़ाहुआ मनुष्य कभी भी नहीं बच सकता यह
मेरा निश्चय है, क्या पांडव, क्या पांचाल, क्या श्रीकृष्ण और
क्या सात्यकि युद्धमें क्रोधमें भरजाने पर इनमेंसे कोई भी अपने
जीवनकी परवाह करना जानते ही नहीं ? अतः हे सूत ! मेरे
पुत्रोंका जीवन सन्देहमें ही है ही ॥ ५-२४ ॥ संजय कहने
लगा, कि-हे कुरुराज ! इस युद्धमें बड़ाभारी भय समीपमें ही
आनेवाला है, अतः इस समय इसका शोक करना व्यर्थ है, इस
जगत्के नाशके कारण तो वास्तवमें तुम ही हो ॥ २५ ॥ तुमने
अपने पुत्रोंकी बातोंसे उलझकर अपने आप ही पांडवोंसे

लच्यमानो ॥ गृह्णापे मर्त्यः पृथ्विमिवौपन्नम् ॥ २६ ॥ स्वयं पीत्वा
महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् । तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि
नरोत्तम ॥ २७ ॥ यत्तु कृत्स्नस्य योधान् युध्यमानान् यथाबलम् ।
तत्र ते वर्णयिष्यामि यथा युद्धमवर्त्तत ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा कर्णन्तु
पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् । नाभ्युप्यन्त महिष्वासाः सोदर्याः पञ्च
मारिष ॥ २९ ॥ दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः । पाण्डवं
चित्रसन्नाहास्तम्पतीपमुपाव्रजन् ॥ ३० ॥ ते समगान्महाबाहुं
परिवार्य वृकोदरम् । दिशः शरैः समावृण्वन् बलमानामिव अजैः ३१
आगच्छतस्तान् सहसा कुमारान् देवर्षिणः । प्रतिजग्राह समरे
भीमसेनो हसन्निव ॥ ३२ ॥ तव दृष्ट्वा तु तनयान् भीमसेनपुरो-

वडाभारी वैर बाँधलिया है, तुमको बहुतसे मनुष्यों ने समझाया
था, परन्तु तुमने जैसे प्ररनहार मनुष्य पंथ्य नहीं करता है तैसे ही
उनकी एक न सुनी ॥ २६ ॥ अतः हे महाराज ! हे नरोत्तम ! तुमने
स्वयं ही दुर्जय कालकूट विपको पीलिया है अतः उसके फलको इस
समय अच्छी तरह भोगो ॥ २७ ॥ युद्ध करने वाले महाबली
योधा अपनी २ शक्तिके अनुसार घूम रहे हैं तो भी तुम उनकी
निन्दा करते हो (यह उचित नहीं है) अब जैसे २ युद्ध हुआ
था वह मैं कहता हूँ, सुनो ॥ २८ ॥ हे भरतवंशी राजन् !
कर्णको भीमने हरादिया यह बात महाप्रनुपधारी दुर्मर्षण दुःसह,
दुर्धर, दुर्मद और जय नामक तुम्हारे पाँचों सहोदर पुत्रों से नहीं
सही गई अतः विचित्रकचधारी वे सब भीमके ऊपर चढ़
दौड़े ॥ २९-३० ॥ वे सब महाबाहु भीमसेनको चारों ओर से
घेरकर टीडियोंके दलकी समान बाण बरसाकर दिशाओंको
झाने लगे ॥ ३१ ॥ देवताओंकी समाप्त रूपवाले उन कुमारोंको
सहसा आते देख भीमसेनने समरमें हँसकर उनकी अगवाणी
की ॥ ३२ ॥ तुम्हारे पुत्रोंकी भीमके सामने खड़ा देख, कर्णभी

गमान् । अभ्यर्चयन् राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥ ३३ ॥ विद-
जन् विशिखांस्तीक्ष्णान् स्वर्णं वृद्धाज्जिह्वाशितान् । तन्तु भीमोऽ-
भ्ययात्तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तत्र ॥ ३४ ॥ कुरवस्तु ततः कर्णं परि-
वार्य समन्ततः । अवाकिरन् भीमसेनं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३५ ॥
तान् वालैः पञ्चविंशत्या सारवान् राजन्नरर्पमानांससूतान् भीम-
धनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३६ ॥ प्रपतन् स्यन्दनेभ्यस्ते
सार्द्धं सूतैर्गतासत्रः । चित्रपुष्पधरा भया वातेनेव महाद्रुमाः ३७
तत्राद्भुतप्रपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् । संवार्याधिरविं वालैर्य-
ज्जघान तवात्मजान् ॥ ३८ ॥ स वार्यमाणो भीमेन क्षितैर्वाणैः
समन्ततः । सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३९ ॥ तं भीम-

महाबली भीमसेनके पास शिलापर घिसेहुए, सुवर्णकी पूँछ-
वाले तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ताहुआ जापहुँचा, तुम्हारे पुत्रोंने
भीमको रोकना चाहा परन्तु भीम तो शीघ्रतासे कर्णके समीप
जापहुँचा ॥ ३३-३४ ॥ तदनन्तर कौरव कर्णको घेरकर भीम-
सेनको नभीहुई गाँठवाले बाणोंसे ढकने लगे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर
हे राजन् ! भीमने पञ्चीस बाण छोड़कर उन भयङ्कर धनुष
वाले पाँचों भाइयोंको घोड़े और सारथियों समेत यमलोकमें
भेज दिया ॥ ३६ ॥ वे सब सारथियोंके सहित प्राणरहित हो
रथोंसे ऐसे गिरे जैसे विचित्र पुष्पोंको धारण करनेवाले बड़े २
वृक्ष आँधीसे उखड़कर पृथ्वीमें गिर पड़ते हैं ॥ ३७ ॥ उस समय
हमने भीमसेनका अद्भुत पराक्रम देखा था, वह एक ओर कर्णको
बाणोंसे रोक रहा था और दूसरी ओर उसने तुम्हारी पुत्रोंका
संहार भी कर डाला ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! उस समय भीमके
तीक्ष्ण बाणोंसे ढकाहुआ कर्ण भीमसेनके सामने (फटी)
दृष्टिसे देख रहा था ॥ ३९ ॥ और क्रोधसे जिसके नेत्र लाल २
होरहे थे ऐसा भीम भी बड़े भारी धनुषको खँचताहुआ बारम्बार

सेनः संरम्भात् क्रोधसरक्तलोचनः । विस्कार्य, सुमहत्पापं मुहुः
कर्णमवैक्षत ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीम-

पराक्रमे पञ्चविंशदधिकशततमोऽध्या. : ॥ १३५ ॥

सञ्जय उवाच । तवात्मजास्तु पतितान् दृष्ट्वा कर्णः प्रताप-
वान् । क्रोधेन मदताविष्टो निर्निण्णोऽभूत् स जीयितात् ॥ १ ॥
आगरकृन्मिवात्मानं मेने चाधिगथिस्तदा । यत् मत्पक्षं तव सुता
भीमेन निहता रणे ॥ २ ॥ भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशि-
तान् शरान् । निचखान् स सम्भ्रान्तः पूर्वैर्वरानुरमरन् ॥ ३ ॥
स भीमं पञ्चभिर्विध्वा राधेयः प्रहसन्निव । पुनर्विव्याध सप्तथा
स्वर्णपुंखैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥ अविचिन्त्याथ तान् वाणान्
कर्णेनास्तान् वृकोदरः । रणे विव्याध राधेयं शतेनानतर्पणाम्
पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विध्वा मर्मसु पञ्चभिः । धनुश्चिच्छेद भस्त्वेन

कणका घूरता जाता था ॥ ४० ॥ एकसौ पतीसवाँ अध्याय
समाप्त ॥ १३५ ॥

सञ्जयने कहा, कि हे धृतराष्ट्र ! मतापी कर्ण तुम्हारे पुत्रोंको
रणमें मराहुआ देखकर क्रोधमें भरगया और अपने जीवनको
धिकार देने लगा ॥ १ ॥ अपने सामने ही तुम्हारे पुत्रोंको रणमें
भीमने मार डाला, इससे वह अपनेको अपराधीसा समझने
लगा ॥ २ ॥ तदनन्तर जब क्रोधमें भराहुआ भीमसेन पहिले
बैरको स्मरण कर सावधान हो कर्णको तीक्ष्ण वाणोंसे घायल
करने लगा ॥ ३ ॥ तब राधाके पुत्र कर्णने हँसकर भीमको पाँच
वाणोंसे बाँध दिया, फिर शिलापर तेज किएहुए, सुनहरी पूँछ
वाले सत्तर वाणोंसे भीमको घायल कर डाला ॥ ४ ॥ कर्णके
मारेहुए वाणोंकी भीमसेनने भी कुछ चिन्ता नहीं की और रणमें
राधाके पुत्र कर्णके नमीहुई गाँठवाले सौवाण मारे ॥ ५ ॥

सूतपुत्रभ्य मारिय ॥६॥ अथान्यद्वनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
 इषुभिरब्धादयामास भीमसेनं परन्तपः ॥ ७ ॥ तस्य भीमो हयान्
 हत्वा विनिहत्य च सारथिम् । प्रनहास महाहासं कृते प्रतिकृते
 पुनः ॥ ८ ॥ इषुभिः कार्मुकञ्चास्य चकर्त्त पुरुषर्षभः । तत्
 पपात महागजं स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥ ९ ॥ अवारोहद्रथाचस्मा-
 दथ कर्णो महारथः । गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहियोद्गुपा १०
 तमापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदां । शूरैरवारयन्नाजन् सर्व-
 सैन्यस्य पश्यन् ॥ ११ ॥ ततो वाणसदृग्नायि प्रपयामास पाण्डवः ।
 सूतपुत्रवधाकाङ्क्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १२ ॥ तानिष्पूनिषुभिः
 कर्णो वारयित्वा महामृधे । कवच भीमसेनस्य पातयामास
 सायकैः ॥ १३ ॥ अथैनं प्रञ्चविंशत्या नाराचाणां समार्पयत् ।

फिर पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे कर्णके मर्मस्थानोंको घायल कर
 हे राजन् ! भीमने एक भल्ल नामक बाणसे उसके धनुषको काट
 डाला ॥ ६ ॥ हे भारत ! इससे कर्णका मन उदास होगया,
 और वह दूसरा धनुष ले भीमको बाणोंसे टुकनेलगा ॥ ७ ॥
 भीमने भी बाण मारकर उसके सारथि और घोड़ोंको मारडाला
 और बदला लेकर बड़ी जोरसे हँसनेलगा ॥ ८ ॥ फिर पुरुष-
 र्षभ भीमने कर्णके धनुषको बाण मारकर दो टुकड़े करदिया,
 हे महाराज ! सुवर्णकी पीठवाला वह धनुष भून भून
 करताहुआ पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ९ ॥ तब तो महारथी कर्ण
 गदा उठा रथमेंसे उतर पड़ा और उसने जोधमें भरकर वह गदा
 भीमके ऊपर फेंकी ॥ १० ॥ भीमसेनने उस बड़ी गदाको छाने
 देख हे राजन् ! सब सेनाके सामने ही बाण मानकर गोकदिया ११
 तदनन्तर पराक्रमी और कर्णको मारना चाहनेवाले पाण्डुपुत्र
 भीमने फुर्तीके साथ कर्णके एक सहस्र बाण मारे ॥ १२ ॥
 कर्णने महायुद्धमें भीमके बाणोंको बाणोंसे काटकर उसके कवचको

पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४ ॥ ततो भीमो महा-
बाहुर्नवभिर्नतपर्वभिः । प्रेयया मांसं संक्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष १५
ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुञ्च दक्षिणम् । अभ्ययुर्द्धरणीं
तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६ ॥ सञ्छाद्यमानो बाणौघै-
र्भीमसेनधनुश्च्युतैः । पुनरेवाभवत् कर्णो भीमसेनपरांमुखः ॥ १७ ॥
तं परांमुखमालोक्य पदानि सूतनन्दनम् । कौन्तेयशरं सञ्छन्दनं
राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥ त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य
रथं प्रति । ततस्तव सुता राजन् श्रुत्वा भ्रातुर्वचोऽद्भुतम् ॥ १९ ॥
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिलीमुखान् । श्वित्रोपचित्रश्चि-
त्राक्षश्च रुचित्रः शराशनः ॥ २० ॥ चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्र-
योधिनः । तानापतत एवाशु भीमसेनो महारथः ॥ २१ ॥ एकै-

बाणोंसे काट दिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर उसने सब सैनिकोंके
सामने ही भीमके पच्चीस बाण मारे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! तद-
नन्तर क्रोधमें भरे महायुज भीमसेनने नमीहुई गाँठवाले नौ बाण
कर्णके मारे ॥ १५ ॥ वे बाण कर्णके कवचको तोड़ उसकी
दाहिनी भुजाको घायल करतेहुए, विलमें घुसते हुए सपोंकी
समान, पृथ्वीमें घुस गए ॥ १६ ॥ भीमसेनके धनुषसे छूटीहुई
बाणवर्षाओंसे ढकाहुआ कर्ण भीमसेनसे पराजित होफिर
पीछेको हट गया ॥ १७ ॥ भीमसेनके बाणोंसे ढके रथरहित
पैदल सूतनन्दन कर्णको पीछेको हटते देख राजा दुर्योधनने
कहा, कि— ॥ १८ ॥ अरे ! कर्णके रथकी ओरको दौड़ो ! तद-
नन्तर हे राजन् ! भाईके वचनको सुनकर तुम्हारे चित्र, उपचित्र,
चित्राक्ष, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मानामक समरमें विचित्र
रीतिसे युद्ध करनेवाले पुत्र पुरतीके साथ बाणोंको छोड़तेहुए भीम
के ऊपर जाचढ़े, परन्तु तुम्हारे पुर्नोंको चढ़कर आते देखने ही
महारथी भीमसेनने पुर्नोंमें एक २ बाण मारकर तुम्हारे मत्पेक

केन शरेणाजौ पातयामास ते सुतान् । ते हता न्यपतन् भूर्मा
 वातरुणा इव द्रमाः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा विनिहतान् पुत्रांस्तव राजन्
 महारथान् । अभ्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥ २३ ॥
 रथञ्चान्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः । अभ्ययात् पांडवं
 युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥ २४ ॥ तावज्ज्योन्यं शरैर्विध्वा स्वर्णपुङ्खः
 शिलाशितैः । व्यभ्राजेतां यथा मेघौ संस्यूतौ सूर्यरश्मिभिः २५
 षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः । व्यधपत् कवचं क्रुतुः
 सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ २६ ॥ सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः सन्नत-
 पर्वभिः । पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभ ॥ २७ ॥ रक्त-
 चन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहात्रणौ । शोणितार्कौ व्यराजेतां

पुत्रको रणमें गिरादिया; मारेहुए वे तुम्हारे पुत्र आँधीने ढाये
 हुए वृत्तोंकी समान गिराए ॥ १६-२२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे
 महारथी पुत्रोंको मारेगए देखकर कर्णके नेत्रोंमें आँसू भरआए
 और वह विदुरके वचनको याद करनेलगा ॥ २३ ॥ कुछ समय
 के बाद पराक्रमी कर्ण शास्त्रानुसार बनेहुए एक दूसरे रथमें बैठ
 कर कुर्तीके साथ भीमसेनसे युद्ध करनेको चढआया ॥ २४ ॥ वे
 दोनों परस्पर सुवर्णकी पूँछवाले, शिलापर धिसेहुए बाणोंसे
 एक दूसरेको घायल करनेलगे, इस समय जिनके शरीरोंमें बाण
 गुप्त रहे थे ऐसे भीम और कर्ण, जिनमेंसे सूर्यकी किरणें
 निकल रही हों ऐसे मेघोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ २५ ॥
 तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए भीमसेनने तीखी धारवाले छत्तीस
 बाण मारकर कर्णके कवचको छिन्न भिन्न करदिया ॥ २६ ॥
 महाबाहु सूतपुत्र कर्णने भी हे भरतर्षभ ! नमीहुई गाँठवाले
 छत्तीस बाणोंसे भीमसेनको बीँधडाला ॥ २७ ॥ लाल चन्दनसे
 व्याप्त शरीरवाले और बाणोंसे जिनके शरीरमें बड़े २ घाव
 होगए थे ऐसे तथा रुधिरमें न्हाएहुए वे दोनों उदय होतेहुए

चन्द्रमूर्याविवोदितौ ॥ २८ ॥ तौ शोणितोत्तितैर्गात्रैः शरैश्छिन्न-
तनुच्छदौ । कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥ २९ ॥
व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् । शरधारासृजौ वीरौ
मेघाविव वचपतु ॥ ३० ॥ वारणाविव चान्योऽन्यं विपाणाभ्या-
मरिन्दमौ । निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चानुरेजतुः ॥ ३१ ॥
नादयन्तौ प्रवर्षन्तौ विक्रीडन्तौ परस्परम् । मण्डलानि विकुर्वाणौ
रथाभ्यां रथिपूजमौ ॥ ३२ ॥ वृषाविव च नर्दन्तौ वलिनौ वासिता-
न्तरे । सिंहाविव पसकान्तौ नरसिंहौ महाबलौ ३३ परस्परं वीक्ष्य-
माणां क्रोधसंस्कलोचनौ । युयुधाते महावीर्यौ शक्रवैरोचनौ
यथा ॥ ३४ ॥ ततो भीमो महाबाहुर्भुजाभ्यां व्याप्तिपन् धनुः ।
व्यराजत रणो राजन्सविद्युदिव तोपदः ॥ ३५ ॥ स नेमिघोषस्त-

चन्द्र और सूर्यकी सान लाल २ दीखरहे थे ॥ २८ ॥ बाणोंसे
टूट गए हैं कवच जिनके ऐसे लोहलुहान शरीरवाले कर्ण और
भीम कैवलीसे छूटेहुए सर्पोंकी समान मालूम होते थे ॥ २९ ॥
जैसे दो बाघ परस्पर एक दूसरेके शरीरों पर ढाढ़ोंका प्रहार
करते हैं अथवा जैसे मेघ जल बरसाते हैं तैसे ही वे दोनों पर-
स्परके ऊपर प्रहार करनेलगे ॥ ३० ॥ जैसे दो हाथी दाँतोंका
प्रहारकरके एक दूसरेके शरीरको चीर डालते हैं तैसे ही वे दोनों
परस्पर बाणोंसे एक दूसरेके शरीरको चींगते हुए मालूम होते
थे ॥ ३१ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ सिंहकी समान पराक्रमी नरसिंह
महाबली और महावीर्यवान् वे दोनों गर्जना करके हर्षमें भर
युद्धक्रीडा करते हुए और रथोंसे मण्डलाकार घूमकर वृत्तवान्
बैलोंकी समान रम्भाते हुए क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर एक
दूसरेकी ओरको जाते हुए इन्द्र और विरोचनकी समान युद्ध
करने लगे ॥ ३२-३४ ॥ उसप्रपथ हे राजन् ! रणमें धनुषको
घुमाता हुआ महाशून भीमसेन जिसमें विजन्ती कड़ लड़ा रही हो

नितश्चापविद्युच्छरांशुभिः । भीमसेनमहामेघः कर्णं । र्वनमावृणोत् ३३
ततः शरसहस्रेण सम्यगस्तेन भारत । पाण्डवो व्याक्रान्त कर्णं
भीमो भीमपराक्रमः ॥ ३७ ॥ तत्रापश्यंस्तव सुता भीमसेनस्य
विक्रमम् । सुपुंस्त्रैः कङ्कवासोभिर्यत् कर्णं ह्यादयञ्छरैः ॥ ३८ ॥
स नन्दयन् रणो पार्थ केशवञ्च यशस्विनम् । सात्यकिञ्चकरत्नौ
च भीमः कर्णमयोधयत् ॥ ३९ ॥ विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यञ्च विदि-
तात्मनः । पुत्रास्तव महाराज दृष्ट्वा विमनसोऽभवन् ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथध्वजपर्वणि भीमयुद्धे

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

सञ्जय उवाच । भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातालनिःस्व-
नम् । नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ १ ॥ सोऽप-

ऐसे मेघकी समान शोभायमान होरहा था ॥ ३५ ॥ रथकी भ्रम-
भ्रमाहटरूपी गर्जनावाला, धनुषरूपी विजली गला भीमसेनरूपी
महामेघ कर्णरूपी पर्वतको घेर बाणरूपी वृद्धोंको बरसाने लगा ३६
हे राजन् ! तदनन्तर भयङ्कर पराक्रमवाले भीमसेनने धनुषको
भलीप्रकार तानकर कर्णके सहस्रों बाण मारे ॥ ३७ ॥ उस समय
तुम्हारे पुत्रोंने भीमसेनके पराक्रमको देखा, कि-उसने सुन्दर
पूँछवाले और कंकपत्तीके परोँवाले बाणोंसे कर्णको ह्वा दिया
है ॥ ३८ ॥ भीमसेन रणमें अर्जुन, कृष्ण, यशस्वी सात्यकि और
दोनों चकरत्तकोंको आनन्दित करताहुआ कर्णसे युद्ध करने
लगा ॥ ३९ ॥ और हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र अरुनी भुजाओंके
बल, पराक्रम और धीरजको सोचकर उदास होगए ॥ ४० ॥
एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३६ ॥ * ॥

सञ्जयने कहा, कि शत्रु हाथीकी चित्राडको जैसे दूसरा हाथी
नहीं सह सकना तैसे ही कर्ण भीमसेनके धनुषकी टङ्कारको
सुनकर सह नहीं सका ॥ १ ॥ और मूर्हत भरके लिए भीमसेनके

क्रम्य मुहूर्त्तं तु भीमसेनस्य गोचरात् । पुत्रास्तव ददर्शाथ भीम-
सेनेन पातितान् ॥ २ ॥ तानवेक्ष्य नरश्रेष्ठ विमना दुःखितस्तदा ।
निःश्वसन् दीर्घमुष्णञ्च पुनः पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३ ॥ स ताम्र-
नयनः क्रोधात् श्वसन्निव महोरगः । बभौ कर्णः शरानस्यन्
रश्मिवानिव भास्करः ॥ ४ ॥ रश्मिजालैरिवार्कस्य महीध्रो भर-
तर्षभ । कर्णचापच्युतैर्वाणैः प्राञ्छाद्यत वृकोदरः ॥ ५ ॥ ते कर्ण-
चापमभवाः शरा बहिर्णिवांससः । विविशुः सर्वतः पार्थ वासाये-
वाण्डजा-द्रुमम् ॥ ६ ॥ कर्णचापच्युता वाणाः सम्पतन्तस्ततस्ततः ।
रुक्मपुंखा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ ७ ॥ चापध्वजोप-
स्करेभ्यश्छत्रादीपामुखाद्युगात् । प्रभवन्तो व्यदश्यन्त राजन्नाधि-
रथेः शराः ॥ ८ ॥ खं पूरयन्महावेगात् खगमान् शुभ्रवाससः ।

सामनेसे टलंगया, कुछ ही समय बाद उसने भीमसेनके हाथसे
मरेहुए तुम्हारे पुत्रोंको देखा ॥ २ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! उनको मरे
देखकर कर्णका मन खिन्न होगया और उसको बड़ा दुःख हुआ
तथा लम्बे २ गरम श्वास लेताहुआ वह फिर भीमसेनके सामनेको
गया ॥ ३ ॥ क्रोधसे लाल २ नेत्रोंवाला, सर्पकी समान फुँकारें
भरता हुआ कर्ण वाणोंको छोड़ते समय, किरणोंको फैलातेहुए
सूर्यकी समान प्रतीत होता था ॥ ४ ॥ हे भरतर्षभ ! जैसे सूर्यकी
किरणोंसे पर्वत ढकजाता है, तैसे ही कर्णके धनुषमेंसे छूटतेहुए
वाणोंसे भीमसेन ढकगया ॥ ५ ॥ सायंकालके समय बसेरा
करनेके लिये वृत्तोंमें घुसनेवाले पक्षियोंकी समान, मोरके पंखवाले
कर्णके धनुषमेंसे छूटतेहुए वाण भीमके शरीरमें घुसनेलगे ॥ ६ ॥
सुवर्णकी पूँछवाले कर्णके धनुषमेंसे निरन्तर छूटतेहुए वाण
ऐसे प्रतीत होते थे कि-मानों हंसोंकी पंक्ति जारीही हो ॥ ७ ॥
अधिरथका पुत्र इस शीघ्रतासे बाण छोड़ता था, कि-उसके
धनुष, ध्वजा, उपस्कर, छत्र, दण्ड, ईपामुख और जुपमेंसे भी

सुवर्णविकृतांश्चिजान् मुमोचाधिरथिः शरान् ॥ ६ ॥ तपन्तकमि-
वायस्तमापतन्तं वृद्धोदरः । त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध
निशितैः शरैः ॥ १० ॥ तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः ।
महतश्च शरौघास्तान्पवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥ ततो विव्याधा-
धिरघेः शरजालानि पाण्डवः । विव्याध कर्णं विशत्या पुनरन्यैः
शिलाशितैः ॥ १२ ॥ यथैव हि सरुर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः ।
तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा तु भीम-
सेनस्य विक्रमं युधि भारत । अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च संप्रहृष्टाश्च
चारणाः ॥ १४ ॥ भूरिश्रवाः कृपे द्रौणिर्प्रद्राजो जयद्रथः । उत्त-
मौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥ कुरुपाण्डव-
प्रवरा दश राजन्महारथाः । साधु साध्विति वेगेन सिंहनादमथा-

वाण छूट रहे हों हेसा प्रतीत होता था ॥ ८ ॥ गीशके परोवाले,
सुवर्णके वने, आकाशगामी बाणोंको छोड़ कर्ण आकाशको
ढकनेलगा ॥ ९ ॥ कर्णने अपने प्राणोंकी कुछ परवाह न कर
यमराजकी समान अतिदृढ़ भीमसेनको तेज बाणोंसे बाँध
ढाला ॥ १० ॥ वीर्यवान् भीमसेन कर्णके असह्य वेगको देख
वाण छोड़कर कर्णके बाणोंके समूहोंको रोकनेलगा ॥ ११ ॥
इसप्रकार कर्णके बाणोंके समूहोंको नष्ट करके फिर भीमसेनने
पत्थर पर घिस कर तीक्ष्ण किये बीस बाणोंसे कर्णको घायल
किया ॥ १२ ॥ और जैसे कर्णने भीमको बाणोंसे ढकदिया
तैसे ही भीम भी कर्णको बाणोंसे ढकनेलगा ॥ १३ ॥ हे भारत!
इस समय भीमके पराक्रमको देखकर तुम्हारे योधा भी उसको
धन्य २ कहनेलगे और चारण भी प्रसन्न हो उसको धन्यवाद
देनेलगे ॥ १४ ॥ तथा हे राजन् ! भूरिश्रवा, कृप, अश्वत्थामा, शल्य,
जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन
इसप्रकार कौरव और पांडवपक्षके दश महारथी योधा सिंहकी

नदन् ॥ १६ ॥ तस्मिन् सद्युत्थिते शब्दे प्रहृते लोमहर्षणे । अभ्य-
भाषत पुत्रस्ते राजा दुर्योधनस्त्वरन् ॥ १७ ॥ राज्ञः स राजपुत्रांश्च
सोदर्यांश्च विशेषतः । कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोद-
रात् ॥ १८ ॥ पुरा निवृत्तन्ति राधेयं भीमनापच्युताः शराः । ते
यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९ ॥ दुर्योधनसगादिष्टाः
सोदर्याः सप्त भारत । भीमसेनमभिद्रव्य संरब्धाः पर्यवारयन् २०
ते सभासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्छरवृष्टिभिः । पर्वतं वारिधाराभिः
मावृषीव वलाहकाः ॥ २१ ॥ तेऽपीदृश्यन् भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त
महारथाः । प्रजासंहरणे राजन् सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२ ॥ ततो
वेगेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम् । मुष्टिना पाण्डवो राजन्
दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥ मनुष्यसमतां शात्वा सप्त सन्धाय

समान गर्जकर अकस्मात् बोलउठे, कि-भीमको धन्य है । भीमको
धन्य है । ॥ १५-१६ ॥ ऐसे भयङ्कर लोमहर्षण शब्दके होने
पर हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन शीघ्रताके साथ राजे, राज-
कुमार और विशेषतः अपने सगे भाइयोंसे कहनेलगा, कि-
तुम्हारा कन्याण हो, भीमके धनुषसे छूटेहुए बाण जब तक कर्ण
को नष्ट न करें उससे पहिले पहुँचकर महाधनुषधारी तुम भीमके
चुंगलसे कर्णको बचानेका यत्न करो ॥ १७-१८ ॥ हे राजन् !
दुर्योधनके आज्ञा देने पर सातों सगे भाई क्रोधमें भरगए और
उन्होंने झपटकर भीमको घेरलिया ॥ २० ॥ जैसे चौपासेमें
मेघ पर्वतको ढककर उसके ऊपर बूँदोंकी बौछार डालने लगते हैं
तैसे ही वे सब भीमके समीप पहुँच उसके ऊपर बाणवर्षा करने
लगे ॥ २१ ॥ जैसे प्रलयके समय सात ग्रह चन्द्रमाको ग्रसने
लगते हैं तैसे ही क्रोधमें भरे वे सात महारथी भीमसेनको पीडित
करनेलगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर समर्थ भीमसेनने अपनी दृढमुठ्ठीसे
अच्छी तरह संजे अपने धनुषको पकडा और मनुष्यकी समता

सायकान् । तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान् प्रभुः ॥ २४ ॥
 निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसुंस्तत्रा भीमसेनो महाराज पूर्ववैर-
 मनुस्मरन् ॥ २५ ॥ ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान् ।
 विदार्य स्वं समुत्प्रेतुः स्वर्णपुंखाः शिलाशिताः ॥ २६ ॥ तेषां
 विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः । व्यराजन्त महाराज मृपण्या
 इव खेचराः ॥ २७ ॥ शोणितादिश्वत्राजग्रास्तप्तहेमपरिष्कृताः ।
 पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्रताः ॥ २८ ॥ ते शरैर्भिन्न-
 मर्माणो रथेभ्यः प्रापतन् क्षितौ । गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव
 महाद्रुमाः ॥ २९ ॥ शत्रुञ्जयः शत्रुसहस्रिचित्राद्युधो दृढः । चित्रसेनो
 विकर्णश्च समैते विनिपातिताः ॥ ३० ॥ पुत्राणां तव सर्वेषां

पर ध्यान देकर धनुष पर सूर्यकी किरणोंकी समान प्रकाशवान्
 सात बाणोंको चढ़ा उसके ऊपर छोड़ा ॥ २३-२४ ॥ हे महा-
 राज ! भीमसेनने वे बाण पहिले वैरको यादकर तुम्हारे पुत्रोंके
 माणोंको देहसे (मालो स्वयं ही बिना बाणोंके) पृथक् करदेगा
 ऐसे क्रोधमें भरकर मारे थे हे भारत ! भीमके छोड़ेंहुए सुवर्णकी
 पूँछवाले, शिलापर घिसकर तेज कियेहुए वे बाण उनको घायल
 करके आकाशमें उड़नेलगे ॥ २६ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे पुत्रों
 के हृदयको चीरकर आकाशमें जातेहुए सुवर्णसे विभूषित वे
 बाण आकाशमें उड़नेवाले गरुडकी समान दीखते थे ॥ २७ ॥
 हे राजेन्द्र ! जिनकी पूँछका अग्रभाग रुधिरसे सनाहुआ था
 ऐसे सुवर्णके बने वे सात बाण तुम्हारे पुत्रोंके रुधिरको पीकर
 आकाशमें उड़रहे थे ॥ २८ ॥ पर्वतके शिखर पर उगेहुए वृक्ष
 जैसे हथीके भ्रंशोडनेसे गिर पड़ते हैं तैसे ही बाणोंमे मर्मस्पर्शों
 के विधजाने पर तुम्हारे सातों पुत्र रथोंपरसे नीचे गिरपड़े २९
 भीमने शत्रुञ्जय, शत्रुसह, चित्र; चित्राद्युध, दृढ और चित्रसेन तथा
 विकर्ण नामवाले तुम्हारे सात पुत्रोंको इस चार चार ही डाला ३०

निहतानां वृकां दरः शोचत्यतिभृशं दुःखाद्विकर्णं पाण्डवः प्रियम् ३१
प्रतिशेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे । विकर्णं तेनासि हतः
प्रतिज्ञा रक्षिता मया ॥ ३२ ॥ त्वमागाः सङ्गरं वीर क्षात्रं धर्म-
मजुस्मरन् । ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः ॥ ३३ ॥
विशेषतो हि नृपतेस्तथास्माकं हिते रतः । न्यायतोऽन्यायतो वापि
हतः शेते महाद्युतिः ॥ ३४ ॥ अगाधबुद्धिर्गौणेयः क्षितौ सुरशुरोः
समः । त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद्युद्धं हि निष्ठुरम् ॥ ३५ ॥
संजय उवाच । तान्निहत्य महाबाहुः राधेयस्यैव पश्यतः । सिंह-
नादरवं घोरमसृजत् पाण्डुनन्दनः ॥ ३६ ॥ स रवस्तस्य शूरस्य
धर्मराजस्य भारत । आचख्याविव तद्युद्धं विजयाञ्चात्मनो महत् ३७
तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः । बभूव परमा प्रीति-

भीमसेन तुम्हारे मरेहुए इन पुत्रोंमेंसे अपने प्यारे विकर्णका
मरण देख दुःखी हो बड़ा शोक करने लगा ॥ ३१ ॥ वह कहने लगा
कि हे विकर्ण ! मैंने प्रतिज्ञा की थी कि—मैं युद्धमें कौरवोंका संहार
करूंगा, अतः तू भी मारा गया, परन्तु मैंने अपनी प्रतिज्ञाकी
रक्षाके लिये ऐसा किया ॥ ३२ ॥ हे वीर ! तू क्षत्रियके धर्म पर
ध्यान देकर रणमें लड़ने आया था अतः मैंने तुझे मार डाला है
ओः ! क्षत्रियका धर्म बड़ा निष्ठुर है ! ॥ ३३ ॥ तू विशेषतः
युधिष्ठिरके और हमारे हितमें लगा रहता था हा ! अरे ! न्यायसे
कहो वा अन्यायसे बृहस्पतिकी समान अगाध बुद्धिवाले भीष्म
भी अपने प्राणोंको त्यागकर रणमें सोरहे हैं निःसन्देह युद्धका
काम बड़ा कठोर है ॥ ३४-३५ ॥ संजयने कहा, कि—महाशुज
पाण्डुनन्दन भीम कर्णके सामने ही उनको मारकर सिंहकी समान
भयङ्कर गर्जना करने लगा ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! वीर भीमकी वह
गर्जना धर्मराजकी विजयको और भीमके महायुद्धको कहती हुई चारों
और गूँज उठी ॥ ३७ ॥ धनुषधारी भीमसेनके महाशब्दको

हर्मराजस्य धीमतः ॥ ३८ ॥ ततो हृष्टपना राजन् यादित्राणां
महास्वनैः । सिंहनादरवं आतुः प्रभिजग्राह पाण्डवः ॥ ३९ ॥
हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञा वृक्रोदरे । अभ्ययात् समरे द्रोणं
सर्वशस्त्रभृताम्बरः ॥ ४० ॥ एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव निपा-
तितान् । इतान् दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षतुः सस्मार तद्वचः ॥ ४१ ॥
तदिदं समनुभासं क्षतुर्निश्चयसं वचः । इति सञ्चिन्त्य राजासौ
नोचरं प्रत्यपद्यत ॥ ४२ ॥ यद् द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत्तनयस्तव ।
सभामानाद्य पाण्डुचालीं कर्णेन सहितोऽल्पधीः ॥ ४३ ॥ यश्च कर्णोऽ-
ब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः । प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव
विशाम्पते ॥ ४४ ॥ शृण्वतस्तव राजेन्द्र कौरवाणाञ्च सर्वशः ।
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वत नरकं गताः ॥ ४५ ॥ पतिमन्यं

सुनकर बुद्धिमान् धर्मराज वड़े प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ और उन्होंने
प्रसन्न होकर बाजोंके वड़े भारी शब्दोंके साथ भाईकी सिंह-
गर्जनाको बढाया ॥ ३९ ॥ इसप्रकार वड़ेभारी हर्षमें भरेहुए सकल
शास्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर भीमके बतायेहुए इशारेसे चेतावनी
देकर द्रोणके सामनेको वड़े ॥ ४० ॥ हे महाराज ! (दूसरी
ओर) तुम्हारे इकतीस पुत्रोंको मरकर रणभूमिमें पड़ेहुए देखकर
दुर्योधनको विदुरके वचनोंकी याद आगई ॥ ४१ ॥ और वह कहने
लगा, कि- विदुरने जो हितवचन कहे थे वे सब अब सामने
आ रहे हैं इसप्रकार विचार करतेहुए तुम्हारे पुत्रको कोई भी
उपाय न सूझपडा ॥ ४२ ॥ जुएके समय दुर्बुद्धि तुम्हारे पुत्र
दुर्योधन और अल्पबुद्धि कर्णने सभामें द्रौपदी तो बुलवाकर जो
बातें कहीं थीं ॥ ४३ ॥ और हे राजन् ! तुम्हारे सामने तथा
पाण्डवोंके सामने तथा सकल कौरवोंके सामने, सबको सुनाते
हुए कर्णने द्रौपदीसे जो कटोर वचन कहे थे, कि-हे कृष्णे !
पाण्डव तो अब नष्टकर सदाके लिये दुर्गतिमें पड गए, अतः तू

वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम् । यच्च पण्डतिलादीनि परुषाणि
 त्वात्मजैः । भाविनास्ते महात्मानः पाण्डवाः क्रोपयिष्यन्भिः ४३
 तं भीमसेनः क्रोत्राग्निं त्रयोदशसमाः स्थितम् । उद्विगस्तत्र पुत्राणा-
 मन्तं गच्छति पाण्डवः ॥ ४७ ॥ विलपंश्च बहु क्षत्वा शर्म नाल-
 भत त्वयि । सपुत्रो भरतश्चेष्ट तस्य भुञ्चव फलोदयम् ॥ ४८ ॥
 त्वया वृद्धेन धीरेण कार्यतत्त्वार्थदर्शिना । न कृतं सुहृदां वाक्यं
 दैवमत्र परायणम् ॥ ४९ ॥ तन्मां शुचो नरव्याघ्र तवैवापनयो
 महान् । विनाशहेतुः पुत्राणां भवानेव मतो मम ॥ ५० ॥ हतो
 विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् । प्रवराश्च तमजानान्ते घृता-
 रचान्ये महारथाः ॥ यानन्यान् ददृशे भीमश्चक्षुर्विषयमागतान् ।

दूसरे किसीको पति बनाले तथा तुम्हारे पुत्रोंने पाण्डवोंको
 कुपित करनेके लिये उनसे जो पण्डतिल (तेलरहित तिलोंकी
 समान नपुंसक) आदि कठोरवाक्य सुनाए थे, यह उसका ही
 फल अब सामने आ रहा है ॥ ४४-४६ ॥ तेरे वरपतक रोक
 हुई क्रोधाग्निको उगलता हुआ भीम तुम्हारे पुत्रोंको मलियामेट
 कर रहा है ॥ ४७ ॥ विदुरने तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे शान्ति
 रखनेके लिये गिड़गिड़ा २ कर प्रार्थना की थी परन्तु तुम्हारी
 बुद्धि ठिकाने नहीं आई, अतः हे भरतश्चेष्ट ! अब पुत्रसहित
 उसका फल भोगो ॥ ४८ ॥ धीर, वृद्ध और कार्यके भावको
 जाननेवाले तुमने मित्रोंशी बात नहीं मानी इसमें मारव्य ही
 कारण है ॥ ४९ ॥ अतः हे नरव्याघ्र ! अब तुम शोक मत
 करो, तुमने बड़ा भारी अपराध किया है और मेरी समझमें अपने
 पुत्रोंके विनाशके कारण भी तुम ही हो ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र !
 तुम्हारे पुत्रोंमें मुख्य वीर्यवान् विकर्ण और चित्रसेन मारे गये तथा
 दूसरे भी महारथी मारे गए ॥ ५१ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे ओ २
 पुत्र भीमसेनके सामने पड़े थे उन सबको ही भीमने शीघ्रतासे

पुत्रांस्तव महाराज त्वरया तान् जघान ह ॥ ५२ ॥ त्वत्कृपाञ्च
मद्राज्ञं दह्यमानां वरुथिनीम् । सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन
वृषेण च ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । महानपनयः सूनु ममैवात्र विशोपतः । स
इदानीमनुमाप्नो मन्ये सञ्जय शोचतः ॥ १ ॥ यद्गतं तद्गतमिति
ममासीन्मनसि स्थितम् । इदानीमत्र किं कार्यं मकरिण्यामि संजय
यथा शेष क्षयो वृत्तो ममापनयसम्भवः । वीराणां तन्ममाचक्ष्व
स्थिरीभूतोऽस्मि सञ्जय ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । कर्णभीमो महा-
राज पराक्रान्तौ महाबलौ । बाणवर्षाण्यसृजतां वृष्टिमन्ताविवा-
म्बुदौ ॥ ४ ॥ भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुंखाः शिलागिताः ।

मारडाला ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे ही कारण भीम और
कर्ण सहस्रों बाणोंको छोड़कर सेनाका संहार कर रहे थे यह मैं
अपनी आँखोंसे देख रहा था ॥ ५३ ॥ एकसाँ सैंतीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १३७ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे संजय ! हे सूत ! मैं शोक करता हूँ,
परन्तु वास्तवमें इसमें मेरा ही अधिक अपराध है और उसका ही
फल मुझमें मिल रहा है यह मैं मानता हूँ ॥ १ ॥ मेरी समझमें
जो हुआ सो तो होगया, परन्तु हे संजय ! अब मैं इसमें क्या
करूँ ? ॥ २ ॥ मेरे अन्यायसे यह वीरोंका संहार जिसप्रकार
हुआ हो सो सुना, हे संजय ! मैं अब मैं शान्त होकर बैठा हूँ ३
संजयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! पराक्रमी और महाबली कर्ण
तथा भीम वर्षा करनेवाले मेवोंकी समान बाणधारा बरसाने लगे ४
जिनके ऊपर भीमका नाम खदरहा था ऐसे सुवर्णकी पूँछवाले
पत्थर पर धिसकर तेज किए हुए बाण कर्णके समीप पहुँच मानों

विचित्रः कणमासाद्य छिन्दन्त इव जीवितम् ॥ ५ ॥ तथैव कर्ण-
निर्मुक्ताः शरा बहिर्णवाससः । छादयाचकिरे वीरं शतशोऽथ
सहस्रशः ॥ ६ ॥ तयोः शरैर्महाराज सम्पतद्भिः समन्ततः । वभूव
तव सैन्यानां संक्षोभः सागरोत्तरः ॥ ७ ॥ भीमचापच्युतैर्वाणैस्तव
सैन्यमरिन्दम । अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥ ८ ॥
वारणैः पतितै राजन् वाजिभिश्च नरैः सह । अदृश्यत मरी कीर्णा
वातभग्नैरिव द्रुमैः ॥ ९ ॥ ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः
शरैः । प्राद्वंस्तावका योधाः किमेतदिति चाव्रवन् ॥ १० ॥ ततो
व्युदस्तं तत् सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम् । प्रोत्सारितं महावेगैः
कर्णपाण्डवयोः शरैः ॥ ११ ॥ ते शरा हतभूयिष्ठा हताश्वरथवा-
रणाः । उत्सृज्य भीमकर्णं च व्यद्ववन् सर्वतो दिशः ॥ १२ ॥
नूनं पार्थार्थमेवासमान्मोहयन्ति दिवौकसः । यत् कर्णभीमप्रभवै-

उसके पाणोंको नाश कर रहे हों इसप्रकार उसके शरीरमें घुसर रहे
थे ॥ ५ ॥ तैसे ही कर्णके छोड़ेहुए, मोरके पंखवाले सैकड़ों और
सहस्रों बाण भीमको ढक रहे थे ॥ ६ ॥ हे महाराज ! उन दोनोंके
इधर उधर गिरतेहुए बाणोंसे सेनामें बड़ीभारी गड़बड़ी होगई ७
हे शत्रुदमन ! भीमके धनुषसे छूटेहुए सपोंकी समान भयङ्कर
बाणोंसे तुम्हारी सेना मरनेलगी, सेनाके मध्यमें पड़ेहुए हाथी
घोड़े और पनुष्योंसे ढकीहुई पृथ्वी आँधीसे टूटेहुए टूटोंसे
पटीहुई सी प्रतीत होती थी ॥ ८-९ ॥ और मरनेसे बचेहुए
तुम्हारे दूसरे सैनिक, युद्धमें भीमके बाणोंका प्रहार होने पर यह
क्या ? यह क्या ? कहतेहुए रणमेंसे भागनेलगे ॥ १० ॥ कर्ण
तथा भीमके वेगवाले बाणोंके लगनेसे सिन्धु सौवीर और
कौरव राजाओंकी सेना घबड़ाकर रणमेंसे दूर जाकर खड़ी हो
गई ॥ ११ ॥ कितने ही शूर अपने हाथी घोड़े और रथोंके
नष्ट होजानेसे यह कहतेहुए, कि—“वास्तवमें देवता ही पाँडवोंकी

वर्धयते नो बलं शरैः ॥ १३ ॥ एवं ब्रुवाणा योधास्ते तावका
भयपीडिताः । शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षुवः ॥ १४ ॥
ततः प्रावर्त्तत नदी घोररूपा रणाजिरे । शूराणां हर्षजननी भीरूणां
भयवर्द्धिनी ॥ १५ ॥ चारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमृद्धवा ।
संवृता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १६ ॥ सानुकर्षपताकैश्च
द्विपाश्वरथभूषणैः । स्थन्दनैरपविद्धैश्च भयचक्राक्षकूवरैः ॥ १७ ॥
जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहास्वनैः । सुवर्णपुंखैरिपुभिर्नारा-
चैश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥ कर्णपाण्डवनिमुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
प्रासतोमरसंघातैः खड्गैश्च सपरश्वधैः ॥ १९ ॥ सुवर्णविकृते-
श्चापि गदामुसलपट्टिशैः । वज्रैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परि-
घैरपि ॥ २० ॥ शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्वभौ भारत मेदिनी ।

विजयके लिए हमें मोहमें डाल रहे हैं, क्योंकि-भीमके तथा कर्णके
बाण भी हमारी सेनाका नाश कर रहे हैं ॥ १२-१३ ॥ बाणोंके
प्रहारसे पीडितहुए तुम्हारे योधा ऐसा कहते, जहाँ पर बाण न
पहुँचसकें, इतनी दूर जा उन दोनोंके युद्धको देखनेकी इच्छासे
खड़े होगए ॥ १४ ॥ इस समय राणमें, मरेहुए हाथी, घोड़े और
मनुष्योंके रुधिरसे उत्पन्न हुई शूरोको हर्षित करती और डर-
पोकोंके भयको बढ़ाती हुई भयङ्कर नदी वह निकली, उसमें मरे
हुए हाथी, घोड़े और मनुष्य तैरने लगे ॥ १५-१६ ॥ टूटे फूटे
रथोंके ढाँचे, पताकाएँ, मरेहुए हाथी, घोड़े, टूटे फूटे रथ और
घोड़ों आदिके टूटेहुए सामान तथा गहने, टूटेहुए पहिये, धुरी,
कूबर, सुवर्णसे मढ़े बड़ा टंकार शब्द करनेवाले बड़े-धनुष,
सुवर्णकी पूँछवाले सहस्रों बाण, नाराच, कर्ण और भीमके छोड़े
हुए कैचलीरहित सर्पोंकी समान बाण, प्रास, तोमर, तलवार,
फरसे, सुवर्णसे मढ़ी गदाएँ, मूसल, पट्टिश, नानाप्रकारकी ध्वजा,
शक्ति, परिघ, नानाप्रकारकी तोपें, सुवर्णके बाज्रबन्द, हार,

कनकाद्गदहारैश्च कुण्डलैर्मुकुटैस्तथा ॥ २१ ॥ बलयैरपविष्टैश्च
तत्रैवांगुलिवेष्टकैः । चूडामणिभिरुष्णीपैः स्वर्णसूत्रैश्च मारिष २२
तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत । वस्त्रैश्च त्रैश्च विध्वस्तै-
श्चापरव्यजनैरपि ॥ २३ ॥ गजाश्वमनुर्जभिन्नैः शोणिताक्तैश्च
पत्रिभिः । तैस्तैश्च विविधैर्भिन्निस्तत्र तत्र वसुन्धरा ॥ २४ ॥
पतितैरपविष्टैश्च विचर्मा आरिष ग्रहैः । अचिन्त्यमद्भुतञ्चैव तयोः
कर्मातिमानुपमम् ॥ २५ ॥ दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः सपजायत ।
अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कच्च इवाहवे ॥ २६ ॥ आसीद्भीमसहायस्य
रौद्रमाधिरथेर्गतम् । निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ॥ २७ ॥
गजाभ्यां सम्पयुक्ताभ्यामासीन्नलवनं यथा । मेघजालनिभं सैन्य-
मासीत्तवनराधिपश्च विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमोरणे २८

कुण्डल, मुकुट, टूटी हुई सोनेकी वालियें, अंगूठियें, चूडामणि, पगड़ी,
तोड़े, कवच, हाथके मोजे, हार, निष्क, फटे हुए बख्त्र, चपर, छत्र,
पंखे, मनुष्य, रक्तसे सने हुए बाण तथा दूसरी बहुतसी टूटी पट्टी
चीजें रणभूमिमें बिखरी पड़ी थीं, उनसे पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहोंसे
चमचमाते हुए आकाशकी समान, शोभा पारही थी भीम और
कर्णके मनुष्योंसे न हो सकनेवाले अद्भुत और जिसकी ओर
कभी ध्यान भी न गया हो ऐसे कर्मको देख सिद्ध और चारणोंको
विस्मय होने लगा। जैसे वायुकी सहायता मिलने पर अग्नि घास
फूसको वेगसे जलाता है, तैसे ही भीमकी सहायतासे कर्णकी
गति भयङ्कर हो उठी, जैसे दो हाथियोंके खूँदनेसे सेंटोंका
वन चूरा हो जाता है तैसे ही उन दोनोंके पैरोंसे खूँदने पर
गिरे हुए ध्वजा, रथ और मरे हुए हाथी, घोड़े तथा मनुष्योंका
कचरा होगया, हे राजन् ! तुम्हारी सेना घनघटाकी समान फैली
हुई थी; परन्तु रणमें भीम और कर्णने उसका चूरा भी बहुत ही
किया ॥ १७-२६ ॥ एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच । ततः कर्णो महाराज भीमं विध्वा त्रिभिः शरैः । धूमोत्र शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च ॥ १ ॥ बध्यमानो महाबाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः । न विव्यधे भीमसेनो भिद्यमान इवाचलः ॥ २ ॥ स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च । विव्याध सुभृशं संख्ये तैलध्यातेन मारिप ॥ ३ ॥ सकुण्डलं महच्चारु कर्णस्यापातयद्भुवि । तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ४ ॥ अथापरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनांतरे । आजघान भृशं क्रुद्धो हसन्निव वृकोदरः ॥ ५ ॥ पुनरस्य त्वरन् भीमो नाराचान् दश भारत । रणे प्रैषीमहाबाहुर्निमुक्ताशीविषोपमान् ६ ते ललाटं विनिर्भिद्य सूतपुत्रस्य मारिप । विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ७ ॥ ललाटस्थैस्ततो वारणैः सूतपुत्रो व्य-

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! तदनन्तर कर्णने तीन वारणों से भीमको घायल करके उसके ऊपर नानाप्रकारके चित्र विचित्र वारणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दी ॥ १ ॥ महाबाहु भीमसेन कर्णके वारणोंका प्रहार होने पर भी पर्वतकी समान अटल खड़ा रहा और उसको कुछ भी पीड़ा नहीं हुई ॥ २ ॥ और हे राजन् ! उसने पानी पिलायेहुए, तीक्ष्ण तथा तेलसे रगड़कर साफ किये हुए कर्णि नामक वारणसे कर्णके कानमें वेगसे प्रहार किया ॥ ३ ॥ हे महाराज ! और कर्णके सुदर्णके कुण्डलसहित कानको पृथिवीमें ऐसे गिरादिया, जैसे आकाशमेंसे ज्योति गिर पड़ती है ॥ ४ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए भीमसेनने गुरजुराकर, दड़े देगसे भल्ल नामका वारण कर्णकी छातीमें मारा ॥ ५ ॥ हे भारत ! फिर फुर्ती दिखातेहुए महाभुज भीमने कैचलीरहित सर्पोंकी समान दश वारण कर्णके मारे ॥ ६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! भीमके छोड़ेहुए वे वारण सूतपुत्रके मस्तकको फोड़कर बिलों घुसतेहुए सर्पोंकी समान उसके मस्तकमें घुस गए ॥ ७ ॥ ललाटमें

रोचत । नीलोत्पलमयीं मालां धारयन् वै यथा पुरा ॥ ८ ॥
 सोतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना । रथकूबरमालम्ब्य
 न्यमीलयत लोचने ॥ ९ ॥ स मुहूर्त्तात् पुनः संज्ञां लब्ध्वा कर्णः
 परन्तपः । रुधिरोल्लितसर्वाङ्गः क्रोधमाहारयत् परम् ॥ १० ॥ ततः
 क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना । वेगञ्चक्रे महावेगो भीमसेन-
 रथं प्रति ॥ ११ ॥ तस्मै कर्णः शतं राजन्निपूणां गार्द्धवाससाम् ।
 अमर्षी बलवान् क्रुद्धः प्रपयामास भारत ॥ १२ ॥ ततः प्रासृज-
 दुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः । समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचि-
 न्तयन् ॥ १३ ॥ कर्णस्ततो महाराज पाण्डवं न वभिः शरैः ।
 आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परन्तपः ॥ १४ ॥ तावुमौ नर-
 शार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ । जीमूताविव चान्योन्यं प्रववर्षतु-

गुधेहुए उन बाणोंसे, पहिले जैसे नील कमलकी मालाको धारण
 करने समय कर्ण सुशोभित होता था तैसे, सुशोभित होनेलगा ८
 वेगवान् भीमके बाणोंसे बहुत ही घायलहुआ कर्ण रथके दण्डके
 पकड़कर मूर्छित होगया और उसने अपने दोनों नेत्र मूँदलिये ९
 जिसके सारे शरीरमेंसे रुधिर बहरहा था ऐसे कर्णको कुछ देरमें
 होश आया तब तो उसको बड़ा क्रोध चढ़ा ॥ १० ॥ दृढ़ धनुष-
 धारी भीमसे पीडित महावेगवान् कर्ण क्रोधमें भरकर वेगके साथ
 भीमसेनके रथकी ओरको दौड़ा ॥ ११ ॥ हे भरतवंशी राजन् !
 असहनशील, बली और क्रोधमें भरे कर्णने गीधके पर लगे सौ
 बाण भीमके ऊपरको फेंके ॥ १२ ॥ परन्तु भीमसेनने रणमें
 उसका अनादर कर उसके बलकी कुछ परवाह न की और उसके
 ऊपर भयङ्कर बाण बरसाने आरम्भ करदिए ॥ १३ ॥ हे राजन् ! तद-
 नन्तर क्रोधमें भरेहुए कर्णने क्रोधीभीमकी छातीमें नौबाण मारे १४
 वे दोनों नरशार्दूल दाढ़वाले दो व्याघ्रोंकी समान बलवान् थे
 और दो मेघोंकी समान आपसमें युद्ध करतेहुए बाणोंकी वर्षा

राहवे ॥ १५ ॥ तलशन्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम् । शरजालैश्च विविधैस्त्रासयामासतुर्मधे ॥ १६ ॥ अन्योऽन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ । ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत १७ क्षुरमेण धनुश्छित्वा ननाद परवीरहा । तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः ॥ १८ ॥ अन्यत् कार्मुकमादत्त भारत्रं वेगवत्तरम् । तदप्यथ निमेषार्धाच्चिच्छेदास्य वृकोदरः ॥ १९ ॥ तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं षष्ठमेव हि । सप्तमं चाष्टमं चैव नवमं दशमं तथा ॥ २० ॥ एकादशं द्वादशं त्रयोदशमथापि च । चतुर्दशं पञ्चदशं षोडशं च वृकोदरः ॥ २१ ॥ तथा सप्तदशं वेगादष्टादशमथापि वा । घहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैवं धनूं पि हि २२ निमेषार्धात्ततः कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत् । दृष्ट्वा स क्रुस्सौवीरसिन्धुवीरबलक्षयम् ॥ २३ ॥ सर्वमर्ध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृता महीम् । हस्त्य-

करनेलगे ॥ १५ ॥ तालियोंके शब्द करनेलगे और अनेकों प्रकारके बाण छोडकर एक दूसरेको त्रास देनेलगे ॥ १६ ॥ रणमें लडतेहुए वे दोनों योधा एक दूसरेके क्रियेहुए अपकारोंका बदला लेनेकी इच्छासे आवेशमें भरकर युद्ध करनेलगे, तदनन्तर हे भरतवंशी राजन् ! शत्रुवीरके नाशक महाभुज भीमसेनने क्षुरम नामक बाणसे कर्णकी धनुषको काटकर गर्जना की, महारथी कर्णने उस धनुषको अलग फेंककर तुरन्त शत्रुके बलका नाश करनेवाला दूसरा वेगवान् दृढ़ धनुष हाथमें लिया, परन्तु उसको भी भीमने आधे निमेषमें काटडाला ॥ १७-१९ ॥ फिर कर्णके तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें धनुष को भी भीमने काटडाला, इसप्रकार भीम कर्णके बहुतसे धनुषोंको काटरहा था और वह आधे निमेषमें ही दूसरा धनुष उठायेहुए दीखता था, तदनन्तर सिन्धु, सौवीरदेशी योधाओंको और वीर

श्वरथदेहांश्च गतासून् प्रेक्ष्य सर्वशः ॥२४॥ सूतपुत्रस्य संरम्भा-
दीप्तं वपुरजायत । स विस्फार्य महत्पापं कार्त्तस्वरविभूषितम् २५
भीमं प्रैक्षत राधेयो घोरं घोरेण चक्षुषा । ततः क्रुद्धः शरान-
स्यन् सूतपुत्रो व्यरोचत ॥ २६ ॥ मध्यन्दिनगतोऽश्विष्मान् शर-
दीप्तं दिवाकरः । मरीचिविकचस्येव राजन् भानुमतो वपुः ॥२७॥
आसीदाधिरथेघोरं वपुः शरशताचितम् । कराभ्यामाददानस्य
सन्दधानस्य चाशुगान् ॥ २८ ॥ कर्पतो मुञ्चतो वाणान्नान्तरं
ददृशे रणे । अयिचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम् ॥ २९ ॥
कर्णस्यासीन्महीगलः सव्यदक्षिणमस्यतः । स्वर्णपुंखाः सुनि-
शिताः कर्णचापच्छुताः शराः ॥ ३० ॥ आच्छादयन्महाराज दिशः
सूर्यस्य च प्रभाः । ततः कनकपुंखानां शराणां नतपर्वणाम् ३१

कौरवोंकी वीरवाहिनीको नष्ट हुआ देखकर तथा गिरेहुए कवच,
ध्वजा और शस्त्रोंसे पटीहुई भूमि और प्राणहीन होकर पड़ेहुए
हाथी, घोड़े और पैदलोंके शरीरोंको देखकर ॥२०-२४॥ सूतपुत्र
कर्णका शरीर क्रोधसे जल उठा तब तो राधा पुत्र कर्णने सुवर्णसे
भूषित अपने बड़े भारी धनुषको तानकर भयङ्कर रूपवाले भीमकी
ओरको भयानक रीतिसे देखा, क्रोधमें भर बाणोंको छोड़ता हुआ
सूतपुत्र कर्ण शरद् शत्रुमें मध्यान्हके किरणमाली सूर्यकी समान
सुशोभित होरहा था, हे राजन् ! किरणोंसे विकसित हुए सूर्यका
शरीर जैसे शोभा पाता है तैसे ही सैकड़ों बाणोंसे विधा हुआ
कर्णका भयङ्कर शरीर भी सुशोभित होरहा था, रणभूमिमें कर्ण
दोनों हाथोंसे बाणोंको बाथोंमेंसे लेकर धनुष पर चढ़ाता था,
धनुषको खेंचता था और बाणोंको छोड़ता था कर्णको यह कोई
भी नहीं देख पाता था कि-ये सब काम वह कब करता है ? दायाँ
बायें बाणोंको छोड़तेहुए कर्णका धनुष बरैटीकी समान भयंकर
रूपसे घूमता था, सुवर्णकी पूँछवाले, तीखे कर्णके धनुषसे छूटेहुए

धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः । बाणासनादाधिरथैः
 प्रभवन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥ श्रेणीकृता व्यरोचन्त राजन्
 क्रौञ्चा इवाम्वरे । गार्ध्रपत्राञ्जिह्वार्थान् कार्त्तस्वरविभूषितान् ३३
 महावेगान् प्रदीप्ताग्रान् मुमोचाधिरथिः शरान् । ते तु चापवलो-
 दधृताः शातकुम्भविभूषिताः ॥ ३४ ॥ अजस्रमपतन् बाणा भीम-
 सेनरथं प्रति । ते व्योम्नि रुक्मविकृता व्यकाशन्त सदृशशः ३५
 शलभानामिव घ्राताः शराः कर्णसमीरिताः । चापादाधिरथैर्बाणाः
 प्रपतन्तश्चकाशिरे ॥ ३६ ॥ एको दीर्य इवात्यर्थमाकाशे संस्थितः
 शरः । पर्वतं वारिधाराभिश्चादयन्निव तोयदः ॥ ३७ ॥ कर्णः
 प्राच्छादयत् ऋद्धो भीमं सायकदृष्टिभिः । तत्र भारत भीमस्य बलं
 वीर्यं पराक्रमम् । व्यवसायञ्च पुत्रास्ते ददृशुः सहसैनिकाः ॥ ३८ ॥

बाणोंने सूर्यकी प्रभा और दशों दिशाओंको ढक दिया, तदनन्तर
 धनुषसे छूटेहुए नभीहुई गाँठ और सुवर्णकी पूँछवाले बाणोंके
 गट्टके गट्टसे आकाशमें दिखाई देनेलगे, हे राजन् ! कर्णके धनुषसे
 छूटेहुए पंक्तिबद्ध बाण आकाशमें उड़तेहुए क्रौंच पक्षियोंकी पंक्ति
 की समान सुशोभित हो रहे थे, अधिरथका पुत्र कर्ण गीधके पर लगे,
 पत्थर पर घिसकर स्वच्छ किए गए, सोनेसे शोभित चमकदार
 नौकवाले महावेगवान् बाणोंको छोड़ने लगा, सुवर्णसे भूषित वे बाण
 धनुषके वेगसे अरर करतेहुए भीमसेनके रथपर बराबर पड़ रहे थे,
 सुवर्णके बने कर्णके धनुषसे छूटेहुए वे सहस्रों बाण आकाश
 से पृथिवीमें गिरतेहुए पटवीजनोंके दिलोंकी समान शोभा देते
 थे ॥ ३५-३६ ॥ उस समय बाणोंके निरन्तर छूटनेसे ऐसा
 प्रतीत होता था, कि-मानों एक बड़ा लम्बा बाण आकाशमें
 खड़ा है जैसे मेघ पर्वत पर जलधाराएँ बरसती है, तैसे ही
 क्रोधमें भरे कर्णने भीमके ऊपर बाणधाराएँ बरसानी आरम्भ
 कर दी है भारत ! उस समय सेनासमेत तुम्हारे पुत्रोंने भीमके

तां समुद्रविबोद्धधृतां शरदृष्टिं समुत्थिताम् । अचिन्तयित्वा भीमस्तु
 क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ॥ ३६ ॥ खंभपृष्ठं महच्चापं भीमस्यासीद्वि-
 शास्पते । आकर्षन्प्रण्डलीधूतं शक्रचापमिवापरम् ॥ ४० ॥ तस्मा-
 च्छराः प्रादुरासन् पूरयन्त इवाम्बरम् ॥ ४१ ॥ सुवर्णपुंखैर्भीमेन
 सायकैर्नतपर्वभिः । गगने रचिता माला काञ्चनीया व्यरोचत ४२
 ततो व्योम्नि विपक्तानि शरजालानि भागशः । आहतानि व्यशी-
 र्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ४३ ॥ कर्णस्य शरजालौघैर्भीम-
 सेनस्य चोभयोः । अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे ॥ ४४ ॥
 तैस्तैः कनकपुंखानां द्यौरासीत् संवृता ब्रजैः । न स्म सूर्यस्तदा
 भाति न स्म वाति समीरणः ॥ ४५ ॥ शरजालादृते व्योम्नि न
 प्राज्ञायत किञ्चन । स भीमं ब्रूदधन् वाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः ४६

बल, वीर्य और उद्योगको देखा, ॥ ३७-३८ ॥ समुद्रकी समान
 उमड़ती हुई बाणवर्षाको उठीहुई देखकर भी भीमेने उसको कुछ
 न गिना और क्रोधमें भर कर्णके सामनेको बढ़ा चलागया ॥ ३६ ॥
 हे राजन् ! सुवर्णसे पड़ा भीमका बड़ा भारी धनुष खेंचनेपर
 इन्द्रधनुषकी समान लंबा होकर शोभा देने लगा ॥ ४० ॥
 भीमके खेंचने पर उस धनुषमेंसे सुवर्णकी पूँछ और नमीहुई
 गाँठवाले बाण आकाशको भरते हुएसे निकलनेलगे, आकाशमें
 उन बाणोंसे बनीहुई माला सुवर्णमालाकी समान शोभा देने
 लगी ॥ ४१-४२ ॥ तदनन्तर आकाशमें फैलेहुए कर्णके छोड़े
 बाण भीमके बाणोंसे कटकर क्रमसे गिरने लगे ॥ ४३ ॥ अग्निकी
 चिनगारीकी समान स्पर्शवाले, शीघ्रगामी, सुवर्णकी पूँछवाले
 कर्ण और भीमके छोड़ेहुए बाणोंसे आकाश भर गया, अतः उस
 समय तहाँ न सूर्य दिखाई देता था, न वायु ही बहता था ४४-४५
 आकाशके बाणोंके समूहोंसे घिरजाने पर उस समय तहाँ कुछ
 भी नहीं दिखाई देता था, परन्तु सूतपुत्र कर्ण महात्मा भीमके

उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः । तयोर्विहृतोस्तत्र शर-
जालानि मारिष ॥ ४७ ॥ वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम् ।
अन्योन्यशरसस्पर्शान्तयोर्मनुजसिंहयोः ॥ ४८ ॥ आकाशे भरत-
श्रेष्ठ पावकः समजायत । तथा कर्णः शितान् वाणान् कर्मरपरि-
मार्जितान् ॥ ४९ ॥ सुवर्णविकृतान् क्रुद्धः माहिणोदधकांतया ।
तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ॥ ५० ॥ विशेषयन् सूत-
पुत्रं भीमस्तिष्ठेति चान्नवीत् । पुनश्चासृजदुग्धाणि शरवर्षाणि
पाण्डवः ॥ ५१ ॥ अमर्षी घलवान् क्रुद्धो दिधत्तन्निव पावकः ।
ततश्चटचटाशब्दो गोधाघातादभूत्तयोः ॥ ५२ ॥ तलशब्दश्च
सुमहान् सिंहनादश्च भैरवः । रयनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव
दारुणः ॥ ५३ ॥ योधा व्युपारमन् युद्धादिदत्तन्तः पराक्रमम् ।

वीर्यका अनादर कर उसको वाणोंसे ढक्ता हुआ उसके पास
पहुँच गया और फिर हे राजन् ! वाण छोड़नेवाले भीम और कर्ण के
वाण आपसमें ऐसे वेगसे टकराने लगे, कि—मानो आँधी चल
रही हो, हे भरतसत्ताप ! उन दोनों नरसिंहों के वाणों के आपसमें
टकराने से आकाशमें अग्नि जल उठी, तदनन्तर कर्ण ने क्रोधमें
भरकर कारीगरों के माँजे हुए, तेज और सुवर्ण के बने वाणों को
भीम को मारने की इच्छासे छोड़ा, भीम ने कर्ण के प्रत्येक वाण में
तीन-२ वाण मारकर उनको काट डाला ॥ ४९-५० ॥ फिर
पांडुनन्दन भीम ने सूतपुत्र से खटार ह ! खटार ह !! कहकर अपने
आप उससे अधिक पराक्रम करके उसके ऊपर भयंकर वाण-
वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५१ ॥ इस समय भीम आवेशमें आ गया
था और भस्म करना चाहनेवाले अग्नि की समान क्रोधमें भर गया
था, इस समय उन दोनों के हाथ में पहिरे हुए गोह के चपड़े के
मोजों का चटाचट शब्द हो रहा था ॥ ५२ ॥ इस समय हाथ की
तालियों का घड़ा भारी शब्द, भयङ्कर दहाड़, रथों के पहियों की

कर्णपाण्डवयो राजन् परस्परवधैषिणोः ॥ ५४ ॥ देवर्षिसिद्ध-
गन्धर्वाः साधु साध्वित्यपूजयन् । मुमुक्षुः पुष्पवर्षञ्च विद्याधर-
गणास्तथा ५५ ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः । अस्त्रै-
रस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम् ॥ ५६ ॥ कर्णोऽपि भीम-
सेनस्य निवार्यपून् महाबलः । ग्राहिणोन्नव नाराचानाशीविप-
समान्नये ॥ ५७ ॥ तावद्विरथ तान् भीमो व्योम्नि चिक्षेद पत्रिभिः ।
नाराचान् सूतपुत्रस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥ ततो भीमो
महाबाहुः शरं क्रुद्धाऽन्तकोपमम् । मुमोचाधिरधैर्वीरो यमदण्ड-
मिषापरम् ॥ ५९ ॥ तमापतन्तच्चिच्छेद राधेयः प्रहसन्निव । निभिः
शरैः शरं राजन् पाण्डवस्य प्रतापवान् ॥ ६० ॥ पुनश्चासृज-

घरघराहट और धनुषकी प्रत्यक्षाओं का दारुण शब्द हो रहा था, हे राजन् ! इस समय लड़तेहुए योधा भी आपसमें एक दूसरेको भारदालना चाहतेहुए कर्ण और भीमके युद्धको देखने की इच्छासे, युद्ध करते २ रुक गए ॥ ५४ ॥ और उस समय देवता, ऋषि, सिद्ध तथा गन्धर्व साधु २ कहकर दोनोंको धन्य-पाद देनेलगे तथा विद्याधर हूल वरसानेलगे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर महाशुंज दृढ पराक्रमी भीम क्रोधमें भरकर कर्णके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे हटाकर कर्णको बाणोंसे घाँघनेलगा ॥ ५६ ॥ महाबली कर्णनेभी भीमके बाणोंको बाणोंसे हटाकर, सर्पकी समान काटने वाले नौ बाण भीमकी थोरको छोड़े ॥ ५७ ॥ परन्तु भीमने कर्णके उन नौ बाणोंको आकाशमें ही काटडाला और कर्णसे कहनेलगा, कि—खड़ा तो रह ! खड़ा तो रह !! ॥ ५८ ॥ फिर क्रोधमें भरे यमराजकी समान महाबाहु भीमने दूसरे यमदण्डकी समान एक भयङ्कर बाण कर्णके मारा ॥ ५९ ॥ परन्तु हे राजन् ! प्रतापी राधापुत्र कर्णने हँसते २ तीन बाण मारकर उस आते हुए बाणके टुकड़े २ करदिये ॥ ६० ॥ तदनन्तर भीम

दुग्धाणि शरवर्षाणि पाण्डवः । तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्रा-
 एवभीतवत् ॥ ६१ ॥ युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ।
 तस्येपुधी धनुर्ध्याञ्च वार्यैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६२ ॥ रथमीन्
 योक्त्राणि चारुवानां क्रुद्धः कर्णोऽच्छिन्नन्मृधे । तस्याश्वांश्च पुन-
 र्हेत्वा सतं विव्याध पञ्चभिः ॥ ६३ ॥ सोऽपस्त्य द्रुतं सूतो युष्मा-
 मन्यो रथं ययौ । विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलघुतिः ६४
 ध्वञ्छिच्छेद राधेयः पताकाञ्च व्यपायत् । स विधन्वा महाबाहू
 रथं शक्तिं परामृशत् ॥ ६५ ॥ तामवाहजदाविध्य क्रुद्धः कर्ण-
 रथं प्रति । तामाधिरधिरायस्तः शक्तिं कनकभूषणाम् ॥ ६६ ॥
 आपतन्तीं महोन्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः । सापतदशधा
 छिन्ना कर्णस्य निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥ अस्यतः सूतपुत्रस्य

भयङ्कर बाण बरसाने लगा, परन्तु कर्ण निर्भय हो उन बाण-
 वर्षाओंको भेलता रहा ॥ ६१ ॥ तदनन्तर कर्णने क्रोधमें भर
 अपनी अस्त्रमायासे, लड़तेहुए भीमके भाधे धनुषकी प्रत्यञ्चा,
 घोड़ोंकी रासें और जोतोंको नमीहुई गाँठवाले बाण मारकर
 काटहाला फिर भीमके घोड़ोंको मार उसके सारथिको पाँच
 बाण मारकर घायल करदिया ॥ ६२-६३ ॥ तब भीमका
 सारथी कलौंग मारकर युष्मान्युके रथ पर चढ़गया, तदनन्तर
 प्रलय कालकी अग्निकी समान कान्तिवाले कर्णने क्रोधमें भर
 हँसते २ उसकी ध्वजा और पताकाको भी भूमिमें गिरादिया
 महाभुज भीम जब धनुषरहित होगया तब उसने शक्तिको उठा
 क्रोधमें मरकरके कर्ण रथ पर प्रहार किया कर्णने सावधान हो
 सुवर्णके आभूषणोंवाली आतीहुई उस शक्तिको दश बाण मार
 कर काट हाला मित्रके लिये विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले कर्णके
 तीक्ष्ण बाणोंसे वह शक्ति दश टुकड़े होकर गिरपड़ी तदनन्तर मरण
 हो अथवा जयहो इस इच्छासे कुन्तीपुत्र भीमने हाथमें डाल तलवार

मित्रार्थे चित्रयोधिनः । स चर्मादक्ष कौन्तेयो जातरूपपपरिष्कृतम् ॥ ६८ ॥ खड्गञ्चान्यतरप्रेष्ठमृत्योरग्रे जयस्य वा । तदस्य तरसो क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम् ॥ ६९ ॥ शरैर्वहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत । स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्च्छितः ७० असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन् कर्णरथं प्रति । सधनुः सूतपुत्रस्य सज्यं क्षित्वा महानसिः ॥ ७१ ॥ पपात भुवि राजेन्द्र क्रुद्धः सर्प इवावशात् । ततः प्रहस्याधिरधिरन्यदादाय कर्णुकम् ॥ ७२ ॥ शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् । व्यायच्छत् स शरान् कर्णः कुन्तीपुत्रजिघांसया ॥ ७३ ॥ सहस्रशो महाराज रुक्मपुत्रान् सुतेजनान् । स वध्यमानो वलघान् कर्णचापच्युतैः शरैः ७४ वैहायसम्प्राक्रमद्वै कर्णस्य व्यथयन्मनः । स तस्य चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ॥ ७५ ॥ चलमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ।

लेली परंतु हे अरतवंशी राजन् । क्रोधमें भरे कर्णने मुस्करा कर फुरतीसे बहुतसे उग्र बाण छोड़ भीमकी कान्तिमयी गदाको नष्ट कर डाला, तब हे महाराज! ढाल तथा रथहीन हुए भीमने फुरती के साथ तलवार घुमाकर कर्णके रथकी ओर फेंकी हे राजेन्द्र । वह तलवार प्रत्यश्वासहित कर्णके धनुषको काटकर क्रोधमें भरे सर्पकी समान भूमिमें गिरपड़ी, तदनन्तर कर्ण हँसा और उसने क्रोधमें भरकर शत्रुओंका नाशक दृढ प्रत्यश्वावाला, वेगवान् दूसरा धनुष हाथमें ले भीमको मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर बाण बरसाने आरम्भ करदिये ॥ ६४-७३ ॥ हे महाराज ! कर्णने इसप्रकार सुवर्णकी पूँछवाले अत्यन्त तेजस्वी सहस्रों बाण भीमके मारे, इतनेमें ही कर्णके धनुषसे छूटतेहुए बाणोंसे घायल हुआ भीमसेन, कर्णके मनको व्यथित करताहुआ आकाशमेंशे उड़ला, राधाका पुत्र कर्ण संग्राममें विजय चाहनेवाले भीमके इस चरितको देख अपने अङ्गोंको सकोड़ भीमको धोखा देनेके लिये

तच्च दृष्ट्वा रथोऽस्थे निलीनं व्याधतेन्द्रियम् ७६ ध्वजमस्य समासाद्य
 तस्यौ भीमो महीतले । तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाभ्यपूजयन् ७७
 यदियेष रथात् कर्णं हर्तुं तात्पर्यं श्वोरगम् । सच्छिन्नधन्वा विरयः
 स्वधर्ममनुपालयन् ७८ स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ।
 तद्विहत्यास्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात् ॥ ७९ ॥ संरम्भात्
 पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम् । तौ समेतौ महाराजं स्पर्ध-
 मानौ महाबली ॥ ८० ॥ भीमताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभा ।
 तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुदुयोनेरसिंहयोः ॥ ८१ ॥ अमृष्यमाण-
 योः संख्ये देवदानवयोरिव । स्त्रीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभि-
 द्रुतः ॥ ८२ ॥ दृष्ट्वा र्जुनहतान्नागान् पतितान् पर्वतोपमान् । रथ-

रथकी गहराईमें छिपकर बैठगया, घबराये हुए कर्णको रथकी
 गहराईमें छिपकर बैठा देख ॥ ७४-७६ ॥ भीम उसके रथकी
 ध्वजाको पकड़ पृथ्वीमें खड़ा होगया और गरुड जैसे सर्पको
 पिलमेंसे निकालना चाहता हो तैसे कर्णको रथकी गहराईमेंसे
 बाहरको खींचना चाहने लगा, तब चारण तथा कौरव उसके
 पराक्रमकी बहुत ही प्रशंसा करनेलगे, टूटैहुए धनुष और छिन्न
 भिन्न रथवाला भी भीम क्षत्रियधर्मको पूर्ण करनेके लिये अपने
 रथको कर्णके रथके पीछे डाल युद्ध करनेके लिये ही उद्यत रहा,
 राधाका पुत्र कर्ण भी अपने धावेको निरर्थक कर युद्ध करनेके
 लिए चढ़कर आतेहुए भीमको सामने खड़ा देखकर, क्रोधमें भर
 उससे भिडगया, हे महाराज ! तब महाबली नरश्रेष्ठ कर्ण और
 भीम परस्पर स्पर्धा करतेहुए इकट्ठे हो, वर्षा ऋतुके दो मेंघोंकी
 समान गरजनेलगे, वे दोनों नरसिंह क्रोधमें भरेहुए असहनशील
 हो देवता और दानवोंकी समान युद्ध करनेलगे, परन्तु भीमके
 शस्त्र निबड चुके थे, इस अवसरसे लाभ उठा कर्णने भीमके ऊपर
 वेगसे धावा किया, तब तो वह विचारमें पडगया, कि-अब क्या

मार्गविधातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥ ८३ ॥ हस्तिनां भ्रजमासाथ
रथदुर्गं प्रविश्य च । पाण्डवो जीवितार्काक्षी राधेयं नाभ्यहार-
यत् ॥ ८४ ॥ व्यवस्थानमथाकाक्षन् धनञ्जयशरैर्हतम् । उद्यम्य
कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरञ्जयः ॥ ८५ ॥ महौपधिसमायुक्तं हनु-
मानिष पर्वतम् । तप्तस्य विशिखैः कर्णो व्यधमतु कुञ्जरं पुनः ८६
हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय प्राहिणोत् पाण्डुनन्दनः । चक्राण्यश्वांस्तथा
षान्यद्यद्यत् पश्यति भूतले ॥ ८७ ॥ तत्तदादाय चित्तेप क्रुद्धः
कर्णाय पाण्डवः । तदस्य सर्वङ्घ्रिच्छेदं क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः ८८
भीमोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वज्रगर्भा सुदारुणाम् । हन्तुमैच्छत् सुतपुत्रं

करना चाहिये ? इतनेमें ही उसको अर्जुनके मारेहुए हाथियोंकी
लोथोंका ढेर दीखगया, तब उसने विचारा कि—हाथियोंके शवों
के ऊपर कर्णका रथ नहीं चल सकेगा, अतः इनमें द्विप जाऊँ
तो ठीक होगा, ऐसा विचारकर शस्त्रहीन भीम कर्णके रथकी
गतिको रोकनेके लिये मरेहुए हाथियोंके बीचमें घुसगया ७७-८३
भीम अपने प्राणोंको बचानेके लिये कर्णके सामने प्रहार करना
छोड़ जहाँ पर उसका रथ कठिनतासे पहुँचसके ऐसे हाथियोंकी
लोथोंसे भरेहुए स्थानमें पहुँचगया ॥ ८४ ॥ तदनन्तर हनुमान्जीने
औपधियोंसे भरपूर गन्धमादन पर्वतको जैसे उठालिया था; तैसे
ही परन्तप भीम भी, अर्जुनके बाणोंसे मरे एक हाथीकी लोथको
हाथमें उठा कर्णके सामने जा खड़ा होगया कर्णने बाण मार
कर उस हाथीके टुकड़े २ करवाले, फिर पाण्डुनन्दन भीम हाथी
के अङ्गोंको फेंक २ कर कर्णके मारने लगा, फिर क्रोधमें भरे
भीमको पृथ्वीमें पड़ेहुए पड़िये, घोड़े आदि जो कुछ वस्तु दीखी
उसको ही उठा कर्णके मारने लगा, परन्तु भीम जो २ फेंकता
जाता था कर्ण उस उस ही वस्तुके तीक्ष्ण बाणोंसे टुकड़े २ कर
ढालता था ॥ ८५-८८ ॥ तदनन्तर भीमने अगूँठकी अंगुलियों

संस्मरन्नर्जुनं क्षणात् ॥ ८६ ॥ शक्तोपि नावधीत् कर्णं समर्थः
 पाण्डुनन्दनः । रक्षमाणः प्रतिज्ञां तां या कृता सव्यसाचिना ६०
 तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शरैः । मूर्च्छयाभिपरीताङ्ग-
 मकरोत् सूतनन्दनः ॥ ६१ ॥ व्यायुधं नावधीचैनं कर्णः कुन्तया
 बधः स्मरन् । धनुषोऽग्रेण तं कर्णः सोऽभिद्रुत्य परामृशत् ॥ ६२ ॥
 धनुषा स्पृष्टमानेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् । आच्छिद्य स धनु-
 स्तस्य कर्णं मूर्द्धन्यताडयत् ॥ ६३ ॥ ताडितो भीमसेनेन क्रोधादा-
 रक्तलोचनः । विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६४ ॥ पुनः
 पुनस्तुष्यरक्तं मूर्द्धेत्पौदरिकेति च । अकृतास्त्रक मां योत्सीर्षाल
 संग्रामकातर ॥ ६५ ॥ यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयञ्च पादव ।
 तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन ॥ ६६ ॥ मूलपुष्पफला-

के बीजमें कर बड़ी अयंकर मुट्ठी बाँध, कर्णको मारनेकी इच्छासे
 उसको ताना, परन्तु अकस्मात्, अर्जुनकी की हुई कर्णको मारने
 की प्रतिज्ञाका स्मरणे आजानेसे स्वयं समर्थ होने पर भी रुक
 गया ॥ ८६ ॥ ६० ॥ व्याकुल होतेहुए भीमको कर्णने बारम्बार
 तीक्ष्ण बाण मारकर मूर्छित करदिया ॥ ६१ ॥ कर्णने उस
 समय कुन्तीकी बातको स्मरण कर आयुधरहित भीमको मारा
 नहीं, किन्तु उसके पास जाकर उसके शरीरमें धनुषकी तीक्ष्ण
 अनी भोंक दी ॥ ६२ ॥ धनुषके लगते ही भीमने, क्रोधसे फुझारे
 भरतेहुए सर्पकी समान श्वास ले कर्णका धनुष छीन लिया,
 और उसके ही शिरमें मारा ॥ ६३ ॥ भीमके मारनेसे कर्णके
 नेत्र क्रोधसे लाल २ होगए और यह मुस्कुराकर भीमसेनसे
 कहनेलगा, कि-॥ ६४ ॥ अरे डाढ़ी मूर्खरहित हीजड़े ! अरे मूढ़ !
 अरे अन्नम्भट ! अरे अस्त्रविद्याके अनजान ! तू लड़नेका उत्साह न
 कर, अरे लोकरे ! अरे संग्रामकातर ! अरे दुर्मते ! जहाँ बहुत
 सा खाने पीनेका सामान हो तहाँ ही तेरा रहना उचित है !

हारो व्रतेषु नियमेषु च । उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥ ६७ ॥ क्व युद्धं क्व मुनित्वञ्च वनं गच्छ वृकोदर । न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भवान् ॥ ६८ ॥ सुदान् श्रुत्यजनान् दासांस्त्वं गृहे त्वरयन् भृशम् । योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद्भोजनार्थं वृकोदर ॥ ६९ ॥ मुनिभूत्वाथ वा भीम फलान्यादत्स्व दुर्मते । वनाय धनं कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥ १०० ॥ फलमूलाशने शक्तस्त्वं तथातिथिपूजने । न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मय्ये वृकोदर ॥ १०१ ॥ कौमारे यानि वृत्तानि विप्रियाणि विष्ठां पते । तानि सर्वाणि चाप्येष रूक्षाण्यथावद भृशम् ॥ १०२ ॥ अथैनं तप्त संलीनमस्पृशद्गुप्ता पुनः । महसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृष-

परन्तु तू युद्धभूमिके योग्य नहीं है ॥ ६६ ॥ ओ भीम ! तू व्रत और नियम करनेमें चतुर है तथा फलमूल खासकता है और वनवास करनेमें भी चतुर है, परन्तु तू युद्ध करनेमें चतुर नहीं है ॥ ६७ ॥ अरे भीम ! कहाँ युद्ध ? और कहाँ मुनिवृत्ति ? हे तात ! तू युद्ध करनेके योग्य नहीं है और वनमें रहनेमें ही प्रसन्न रहता है अतः वनको ही भागजा ॥ ६८ ॥ हे वृकोदर ! तू घरमें उतावला २ घूमनेके कामका तथा रसोईदार और नौकरों चाकरोंको क्रोधमें भर भोजन लानेकी आशा देनेके कामका और घरके कार्य करनेके ही कामका है, परन्तु तू युद्धके कामका नहीं है ६९ हे दुर्मते ! तू मुनिवेष धारण कर वनमें जा । वनमें जा ॥ और फलोंको खा । हे कुन्तीपुत्र ! तू वनमें ही जा, क्योंकि—तू युद्ध करनेमें चतुर नहीं है १०० तू तो फल मूल खानेमें और अतिथियोंकी पूजा करनेमें चतुर है, यह बात मैं मानता हूँ, परन्तु मैं तुझे युद्धके योग्य नहीं समझता ॥ १०१ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार भीमने जो कुमारवृत्त्यामें दुःख भोगे थे वे सब रूखे वृत्तान्तक एवम् भीमको अच्छी तरह सुनाये ॥ १०२ ॥ तदनन्तर कर्णने अपने

स्तदा ॥ १०३ ॥ योद्धव्यं मारिषान्यत्र न योद्धव्यन्तु मादृशीः ।
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चान्यच्च विद्यते ॥ १०४ ॥ गच्छ वा यत्र
तौ कृष्णौ तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे । गृहं वा गच्छ कान्तेय किन्ते
युद्धं न बालक ॥ १०५ ॥ कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारु-
णम् । उवाच कर्णं प्रहसन् सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥ १०६ ॥ जिन-
स्त्वमसकृद् दुष्ट कथ्यसे किं वृथात्मना । जयाजयौ महेन्द्रस्य
लोके दृष्टौ पुरातनैः ॥ १०७ ॥ मल्लयुद्धं मया सार्द्धं कुरु दुष्कु-
सम्भव । महाबलो महाभोगी कीचको निहतो यथा ॥ १०८ ॥
तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु । भीमस्य मतमाज्ञाय
कर्णो बुद्धिमताम्बरः ॥ १०९ ॥ विरराम रणादस्मात् पश्यतां
सर्वधन्विनाम् । एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन् व्यकथयत् ११०

अर्जुनो को खिगाकर बैठे हुए भीमके शरीरमें फिर धनुषकी नोक
भोंक दी और फिर हँसकर भीमसे कहनेलगा कि— ॥ १०३ ॥
अरे ! तू मुझ सरीखोंसे युद्ध करनेके योग्य नहीं है अतः दूसरों
से युद्ध कर, मुझ सराखे वीरसे लड़नेवालोंकी यह क्या ? इसमें
भी अधिक दुर्गति होती है ॥ १०४ ॥ तू जहाँ श्रीकृष्ण और
अर्जुन हों तहाँ पहुँच जा, वे तेरी रक्षा करलेंगे अथवा हे बालक !
तू घरको भाग जा, क्योंकि—बालकोंको युद्धसे क्या काम ? १०५
कर्णके अतिदारुण वचनको सुन भीमसेन सबके सुनते हुए कर्ण
से हँसकर बोला कि— ॥ १०६ ॥ अरे दुष्ट ! मैंने तुझे अनेकों बार
हराया है, फिर तू व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर क्यों वक्तवाद कर
रहा है, हार जीत तो इन्द्रकी भी होती है ऐसा प्राचीन मनुष्यों
ने देखा है ॥ १०७ ॥ अरे ओ ! जिसके माता पिताका पता नहीं
है ऐसे कर्ण ! (तुझमें दम हो तो) तू मेरे साथ मल्लयुद्ध कर,
अरे ! जैसे मैंने महाबली और महाकामी कीचको मार डाला
था तैसे ही सब राजाओंके सामने तेरा भी मैं पल्लोथन निकाल दूँगा

प्रमुखे वृष्णिंसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः ततो राजन् शिलाध्या-
तान् शरान् शाखामृगध्वजः ॥ १११ ॥ प्राहिणोत् मृतपुत्राय
केशवेन प्रचोदितः ततः पार्थश्रुजोत्सृष्टाः शराः कनकभूषणाः ११२
गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाविशन् । स भुजैर्गिरिवावि-
ष्टैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥ ११३ ॥ भीमसेनादपासेधत् मृतपुत्रं
धनञ्जयः । स छिन्नधन्वा भीमेन धनञ्जयशराहतः ॥ ११४ ॥
कर्णो भीमदपायासीद्रथेन महता द्रतम् । भीमोपि सात्यकेर्वाहं
समारुह्य नरर्षभः ॥ ११५ ॥ अन्वयाद् भ्रातरं संख्ये पाण्डवं
सव्यसाचिनम् । ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनञ्जयः ११६
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवान्तकः । स गरुत्मानिवाकाश
प्रार्थयन् भुजगोत्तमम् ॥ ११७ ॥ नाराचोभ्यपतत् कर्णं तूर्यं गाण्डीव-

भीमकी बातोंसे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ कर्ण भीमके आश्रयको समझ
सब धनुषधारियोंके सामने युद्ध करनेसे हटगया, हे राजन् । भीम
को रथदीन कर कर्ण वृष्णिंसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने
भीमसे अपशब्द कहने लगा, तब श्रीकृष्णके प्रेरणा करनेपर वानर-
ध्वज अर्जुन शिलापर घिसकर रथेत कियेहुए बाणोंको कर्णकी
ओर फेंकने लगा तदनन्तर अर्जुनके हाथोंसे छूटेहुए, सुवर्ण-
जडित बाण, हंस जैसे क्रौंच पर्वतमें प्रवेश करें तैसे, कर्णके शरीर
में घुसनेलगे गाण्डीव धनुषसे छूटे अपने शरीरमें सर्पकी
समान लगते हुए बाणोंके प्रहारसे कर्ण भीमसेनके सामनेसे दूर
हटगया, तब भीमसेनने उसके धनुषको काटडाला और अर्जुन
ने उसको बाणोंसे बीधडाला, तब कर्ण शीघ्रतासे रथको भगा
भीमसेनके सामनेसे भागगया, तब नरश्रेष्ठ भीमसेन सात्यकिके
रथपर चढ़ अपने भाई सव्यसाची पाण्डुपुत्र पुत्र अर्जुनके पास
पहुँच गया, तदनन्तर क्रोधसे लाल २ नेत्रवाले अर्जुनने फुरती
के साथ कर्णको लक्ष्य कर, जैसे काल मृत्युको प्रेरे, तैसे एक

वचोदितः । तपन्नसिद्धे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणः ॥११८॥
 धनञ्जयमयात् कर्णमुज्जिनहीपुर्महारयः । ततो द्रौणिं चतुःपृष्ठाया
 विव्याध कुपितोऽर्जुनः ॥११९॥ शिलीमुखैर्महाराज मा गास्ति-
 ष्ठेति चाब्रवीत् । स तु मत्तगनाकीर्णमनीकं रथसंकुलम् ॥१२०॥
 तूर्णमभ्याक्षिप्तुं द्रौणिर्धनञ्जयशरादितः । ततः सुवर्णपृष्ठानां
 चापानां कूजतां रणे ॥१२१॥ शब्दं गाण्डीवधोपेण कौन्तेयोऽ-
 भ्यभवद्गती । धनञ्जयस्तथा यातं पृष्ठतो द्रौणिपभ्यगात् ॥१२२॥
 नातिदीर्घमिवाध्वानं शरैः सन्त्रासयन् बलम् । विदार्य देहान्नारा-
 चैर्नरवानरवाजिनाम् ॥१२३॥ कङ्कुवर्हिणयासोभिर्वलं व्यधमदर्जुनः ॥
 तद्बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विगमानवम् ॥१२४॥ पाकशासनिरायतः
 पार्थः सन्निजघान ह ॥१२५॥ जनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वाण कर्णके मारा, जैसे गरुड आकाशमें सर्पको पकड़नेको दौड़े
 तैसे ही वह गाण्डीव धनुषसे छूटा हुआ वाण कर्णकी ओर
 दौड़ा, परन्तु इतनेमें ही महारथी अश्वत्थामाने कर्णको अर्जुनके
 भयसे बचानेके लिए, एक वाण मार, अर्जुनके वाणको आकाश
 में ही काट डाला, तब तो हे महाराज ! अर्जुन कोपमें भरगया
 और उसने अश्वत्थामाके साथ वाण मारे और उससे कहा, कि
 अरे अश्वत्थामा ! भागना मत लग्य भर खड़ा रह ! परन्तु धन-
 ञ्जयके वाणोंसे पीड़ित हुआ अश्वत्थामा शीघ्रनाके साथ रथोंसे
 भरी मतवाले हाथियोंकी सेनामें घुस गया, तदनन्तर बलवान्
 अर्जुनने सुवर्णजटित पीठवाले शब्द करतेहुए चापोंकी ध्वनि
 को गाण्डीवके धोषसे दवा दिया, अर्जुन जातेहुए अश्वत्थामाके
 पीछे, वाणोंसे सेनाको त्रस्त करताहुआ, कुछ दूर गया, फिर
 कङ्कु और मोरोंके परोंवाले वाणोंसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके
 शरीरको विदीर्ण कर सेनाको नष्ट करने लगा, हे भरतश्रेष्ठ !
 इसप्रकार इन्द्रके पुत्र अर्जुनने सावधान हो शत्रुकी हाथी घोड़े
 और मनुष्योंसे भरीहुई सेनाको नष्ट करदिया ॥ १०८-१२५॥

धृतराष्ट्र उवाच । अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति सञ्जयः ।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ १ ॥ धनञ्जयः
सुसंकुदः प्रविष्टो मामकं बलम् । रक्षितं द्रौणिकर्णाभ्यामप्र-
वेश्यं सुरैरपि ॥ २ ॥ ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाध्यायितपरा-
क्रमः । सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृपभेण च ॥ ३ ॥
तदा प्रभृति मां शोको दहत्यग्निरिवाशयम् । अस्तानिव प्रपश्यामि
भूमिपालान् ससैन्धवान् ॥ ४ ॥ अप्रियं सुमहत् कृत्वा सिन्धुराजः
किरीटिनः । चतुर्विपयमापन्नः कथं जीवितमाप्नुयात् ॥ ५ ॥ अनुमानाच्च
पश्यामि नास्ति सञ्जय सैन्धवः । युद्धन्तु तद्यथा वृत्तं तन्ममाचक्ष्व
तत्त्वतः ॥ ६ ॥ यच्च विज्ञोभ्य महर्तुं सेनामालोड्य चासकृत् ।
एकः प्रविष्टः संकुदो नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ ७ ॥ तस्य मे दृष्टि-

धृतराष्ट्र ने कहा, कि-हे सञ्जय ! मेरा झलझलाता हुआ यश
दिन प्रतिदिन नष्ट होता जाता है, मेरे बहुतसे योधा भी रणमें मारे
गए, अतः मैं समझता हूँ, कि-मेरा समय पलटा ला रहा है ॥ १ ॥
बड़े बली श्रीकृष्ण और भीमने जिसके पराक्रममें दृढ़िकी है वह
अर्जुन (जवसे) मेरी अशक्त्यामा और कर्णसे रक्षित और जिसमें
देवता भी प्रवेश न कर सके ऐसी सुदृढ सेनामें, क्रोधमें भर
श्रीकृष्ण, सांत्यकि और भीमको साथ ले घुसगया है ॥ २-३ ॥
तबसे ही हे संजय ! शोक मेरे हृदयको अग्निकी समान जला
रहा है, मैं सिंधुराजसहित सब राजाओंको कालसे प्रसाहुआ
सा देखता हूँ ॥ ४ ॥ जयद्रथ अर्जुनका बड़ा भारी अप्रिय काम
कर उसके सामने पड़ने पर जीता कैसे रह सकता है ? ॥ ५ ॥
मैं जहाँ तक अनुमान करता हूँ, सिंधुराजको मराहुआ ही देखता
हूँ, अतः तू जिसप्रकार युद्ध होरहा हो उसको ठीक रीतिसे
सुना ॥ ६ ॥ जैसे क्रुद्ध हुआ हस्ती तलैयामें घुस उसको हिलोड
डाले, तैसे ही जो अर्जुनकी सुध लानेके लिए बड़ी भारी सेनाको

वीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम् । धनञ्जयार्थं यत्तस्य कुशलं णसि
सञ्जय ॥ ८ ॥ सञ्जय उवाच । तथा तु वैकर्त्तनपीडितं तं भीम-
म्प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम् । सधीच्य राजन्नरवीरमध्ये शिनिप्रवीरोऽनु-
ययौ रथेन ॥ ९ ॥ नदन् यथा वज्रधरस्तपान्ते ज्वलन् यथा जल-
दान्ते च सूर्यः । निघ्नन्नभित्रान् धनुषा दृढेन सङ्क्रम्यंस्तत्र पुत्रस्य
सेनाम् ॥ १० ॥ तं यान्तमश्वैरजतप्रकाशैरायोधने वीरतरं नद-
न्तम् । नाशकनुवन् वारयितुं त्वदीया सर्वे तथा भारत माधवा-
ग्रथम् ॥ ११ ॥ अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तायोधी शरासनी काञ्चन-
वर्मधात्री । अलम्बुपः सात्यकिं माधवाग्रथमन्वारयद्वाजवोऽभि-
पत्य ॥ १२ ॥ तयोरभूद्भारत सम्प्रहारो यथाविधो नैव बभूव
कश्चित् । प्रैक्षन्त एवाहवशोभिर्नौ तौ योधास्त्वदीयाश्च परे च

अकेला ही हिलोड कर उसमें घुस गया था, उस दृष्टिवादी
सात्यकिके किए हुए युद्धको तू मुझसे पूर्णरीतिसे वर्णन कर
क्योंकि—हे संजय ! तू कथा कहनेमें कुशल है ॥ ७-८ ॥ संजयने
कहा, कि—हे राजन् ! जब कर्णके बाणोंसे पीडित हुआ पुरुषोंमें
वीर भीम जानेलगा यह देखकर शिनिप्रवीर सात्यकि भी उसके
पीछे वर्षाश्रुतुमें गरजते हुए मेघोंकी समान गरजता हुआ और
शरद्वृष्टतुमें सूर्यकी समान प्रदीप्त हो तुम्हारे पुत्रोंकी सेना और
शत्रुओंको मारता तथा कँपाता हुआ नरवीरोंके बीचमें हो जाने
लगा ॥ ९-१० ॥ हे भारत ! धौले घोड़ोंसे जुने रथमें बैठ गर्ज
गर्ज कर सेनामें आगे बढ़ते हुए माधवाग्रथ वीरवर सात्यकि
को तुम्हारे सब महारथी भी न हटासके ॥ ११ ॥ उस समय
असहनीयतामें भरा दृढ़तर लड़नेवाला, भाथे वाला और
सुवर्णके कवचको धारण करनेवाला राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुप
भूषट कर सात्यकिके सामने आ उभे आगे बढ़नेमें रोकनेलगा १२
हे भरतवंशी राजन् ! उन दोनोंका ऐसा युद्ध हुआ कि—तेसा

सर्वे ॥ १३ ॥ आविध्यदेनं दशभिः पृपत्कैरलम्बुपो राजवरः प्रसह ।
 अनागतानेव तु तान् पृपत्कांश्चिच्छेद बाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ १४ ॥
 पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुंखैः । विव्याध
 देहावरणं विदार्य ते सात्यकेरानिविशुः शरीरम् ॥ १५ ॥ तैः काय-
 मस्याग्रचनिलप्रभावैर्विदार्य बाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः । आजघ्निर्वा-
 स्तान् रजतप्रकाशानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह ॥ १६ ॥
 तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः ।
 अलम्बुपस्योत्तमवेगवद्भिरश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः ॥ १७ ॥
 अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य भस्मेन कालानलसन्निभेन ।
 सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकत्त देहम् ॥ १८ ॥

कोई भी युद्ध नहीं हुआ था, तुम्हारे सब योधा और गजुभी
 उन युद्धमें शोभा पाने वाले सात्यकि और अलम्बुपके युद्धको
 देखनेलगे ॥ १३ ॥ राजाश्रोंमें श्रेष्ठ अलम्बुपने बल लगा कर
 दश बाण सात्यकिकी ओर छोड़े, परन्तु सात्यकिने बाण मार
 कर बीच ही में उन बाणोंको काटडाला ॥ १४ ॥ तदनन्तर उसने
 क्रानों तक धनुषको खेंच अधिकसे तीक्ष्ण स्पर्शवाले पूँछदार
 तीन बाण सात्यकिके मारे, वे बाण सात्यकिके कवचको भेद
 उसके शरीरमें घुस गए ॥ १५ ॥ इसप्रकार अग्नि और वायुकी
 समान बाणोंसे उसके प्रभाववाले शरीरको विदीर्ण कर अल-
 म्बुपने दूसरे तीक्ष्ण और चमकते हुए चार बाणोंको वेगसे
 छोड़ सात्यकिके चान्दीका समान प्रकाशवाले चारों घोड़ोंको
 घायल करडाला ॥ १६ ॥ जब इसप्रकार अलम्बुपने बाणका
 प्रहार किया तब श्रीकृष्णके समान प्रभाव वाले, शिनिके पौत्र,
 पुर्तिले सात्यकिने बड़े वेगवाले बाण मारकर अलम्बुपके चारों
 घोड़ोंको मारडाला ॥ १७ ॥ तदनन्तर सात्यकिने प्रलयकालकी
 अग्निही समान भालेसे अलम्बुपके सारथिके मस्तकको काट

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं संख्ये यदूनामृषभः प्रगाथी । ततोऽ-
 म्बवादर्जुनमेव वीरः सैन्यानि राजस्तत्र सन्निवार्ये ॥ १६ ॥
 अन्वागतं दृष्ट्वा वीरं सञ्जीव्य तथारिमध्ये परिवर्त्तनानम् । घ्नन्तं
 कुरूणामिषुभिर्वलानि पुनः पुनर्वायुमिवाभ्रपूगान् ॥ २० ॥ ततोऽ-
 वहन् सैन्यवाः साधुदान्ता गोक्षीरकुन्देन्दुहिमप्रकाशाः । सुवर्ण-
 जालावतताः सदश्वा यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥ २१ ॥ अथा-
 त्मजास्ते सहिताभिपेतुरन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः । कृत्वा
 मुखं भारतयोधमुख्यं दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥ २२ ॥ ते
 सर्वतः सम्परिवार्य संख्ये शैनेयमाजध्नुरनीकसाहाः । स चापि
 तान् प्रवरः सात्वतानां न्यवारयद्वाणजालेन वीरः ॥ २३ ॥ निवार्य

अलम्बुपके कुण्डलवाले, पूर्ण चन्द्रमाकी समान प्रकाशवाले
 मस्तकको शरीरसे पृथक् कर दिया ॥ १८ ॥ यदुश्चोमें श्रेष्ठ शत्रु
 सेनाओंको मथ डालनेवाला सात्यकि युद्धमें राजाके पुत्रके पात्र
 को मार दे राजन् ! तुम्हारी सेनाओंको हटाता हुआ अर्जुनके
 पास जाने लगा ॥ १९ ॥ भली प्रकार चतुर किए गए गाँके
 दुग्ध और कुन्दके फूल, चन्द्रमा और हिमकी समान श्वेत
 वर्णके, सुनहरे भूलसे ढके और सिंधुदेशमें उत्पन्न हुए घोड़े,
 नरसिंह सात्यकि जहाँ २ जाना चाहता था, तहाँ २ उसको ले
 जाते थे, वायु जैसे मेघकुण्डलोंको बारम्बार घिरेर डालता है
 तैसे ही सात्यकि भी कौरवोंकी सेनाका संहार करता हुआ,
 शत्रुसेनाके मध्यभागमें हो अर्जुनके पास चला जा रहा था २०-२१
 इतने में ही हे अजमीढवंशी धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्र और बहूनोंसे
 योधा भारतीय योधाओंमें मुख्य दुःशासनको सुलिया बना कर
 शीघ्रताके साथ सात्यकि पर टूट पड़े ॥ २२ ॥ शत्रुकी सेनाके
 साथ टक्कर भेलनेवाले वे योधा युद्धमें सात्यकिको घेर उस
 पर चारों ओरसे प्रहार करनेलगे और सात्वतवंशियोंमें श्रेष्ठ वीर

तांस्तूर्णममित्रघाती नृणां शिनेः पत्रिभिरग्रिकल्पैः । दुःशासन-
स्याभिजघान बाहानुद्यम्य बाणासनमाजमीढ ॥ २४ ॥ ततोऽर्जुनो
हर्षमवाप संख्ये कृष्णश्च दृष्ट्वा पुरुषप्रवीरम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुपवधे
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

सञ्जय उवाच । तमुद्यतं महाबाहुं दुःशासनरथं प्रति । त्वरितं
त्वरणीयेषु धनञ्जयजयैषिणम् ॥ १ ॥ त्रिगर्तार्ता महेष्वासाः सुव-
र्णविकृतध्वजाः । सेनासमुद्रमाविष्टमनन्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥
अथैनं रथवंशेन सर्वतः सन्निवार्य ते । अवाकिरञ्छ्वरवातैः क्रुद्धाः
परमधन्विनः ॥ ३ ॥ अजयद्राजपुत्रांस्तान् भ्राजमानान्महारणे ।
एकः पञ्चाशतं शत्रून् सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥ सम्प्राप्य

सात्यकि भी बहुतसे बाण मार उनको अपने पास आनेसे
रोकने लगा ॥ २३ ॥ शिनिके पौत्र, शत्रुनाशी सात्यकिने अग्नि
की समान स्पर्शवाले बाणोंसे उन सर्वोंको रोके रख कर फुर्ती
से धनुष खेंच दुःशासनके घोड़ोंके बाण मारे ॥ २४ ॥ उस
समय श्रीकृष्ण रणमें पराक्रम करते हुए सात्यकिको देख बड़े
प्रसन्न हो रहे थे ॥ २५ ॥ एकसौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! शीघ्र करने योग्य कामोंमें
शीघ्रता करनेवाला तथा अर्जुनकी जीत चाहनेवाला महाशुभ
सात्यकि, दुःशासनके रथकी ओर जानेके लिये, कौरवसेनारूप
अगाधसागरमें जैसे घुसा, कि-सुनहरी ध्वजावाले महाधनुर्धर
त्रिगर्त उसके ऊपर दौड़े ॥ १ ॥ २ ॥ क्रोधमें भरे महाधनुर्धर
त्रिगर्त सात्यकिको चारों ओरसे घेर उस पर चारों ओरसे बाण
बरसाने लगे ॥ ३ ॥ सत्यपराक्रमी सात्यकिने बिना नौकाके
समुद्रमें प्रवेश करनेवाले धनुष्यकी समान तलवार, शक्ति और
गदाओंसे भरपूर तथा हाथकी तालियोंसे गुँजती हुई भारती-

भारतीमध्यं तलघोपसमाकुलम् । असिशक्तिगदापूर्णमप्लवं सल्लिखं
 यथा ॥५॥ तत्राद्रभृतमपश्याम शैनेयचरितं रणे । प्रतीच्यां दिशि
 तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्यामि लाघवात् ॥६॥ उदीचीं दक्षिणां प्राचीं
 प्रतीचीं विदिशस्तथा । नृत्यन्निवाचरञ्छूरो यथा रथशतं तथा ७
 तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः । त्रिगर्त्ताः सन्पवर्त्तन्त
 सन्तप्ताः स्वजनं प्रति ॥ ८ ॥ तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये
 न्यवारयन् । नियच्छन्तः शरवातैर्मत्तं द्विपमिर्वाङ्मुखैः ॥ ९ ॥ तैर्व्य-
 वहरदार्थात्मा गृहृत्तादेव सात्यकि । ततः कलिगैर्युर्ध्वे सोऽचि-
 न्त्यवलविक्रमः ॥ १० ॥ ताञ्च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्य-
 याम् । अथ पार्थ महाबाहुर्धनञ्जयमुपासदत् ॥ ११ ॥ तरन्निव

सेनाके मध्यमें बिना सहायकके प्रवेश कर महारणमें प्रकाशित
 होतेहुए पश्चास राजपुत्रोंको अकेले ही जीतलिया ॥ ४ ॥ ५ ॥
 उस समय हमने सात्यकिके अद्भुत पराक्रमको देखा, फुर्तीसे फिरने
 के कारण वह पूर्वदिशा में दिखाई देता था और क्षण भरमें ही
 पश्चिमदिशामें दिखाई देने लगता था ॥ ६ ॥ शूरवीर सात्यकि
 नाचता हुआ सा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा दिशाओंके
 कोनोंमें सौ रथियोंकी समान घूमता हुआ दीखता था ॥ ७ ॥
 त्रिगर्त राजे, सिंहकी समान पराक्रम कर रणमें घूमतेहुए सात्यकि
 के पराक्रमको देखकर मनमें सन्तप्त हो अपने योधाओंकी सेनामें
 मिलगए ॥ ८ ॥ शूरसेनके योधा हाथीको जैसे अंकुश मारकर
 रोका जाय, तैसे बाणोंसे मदमत्त सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोकने
 लगे ॥ ९ ॥ श्रेष्ठ आत्मावाला सात्यकि क्षण भरको उस समय
 खिन्न होगया, फिर उनको हराकर अचिन्त्य पराक्रमवाला
 सात्यकि कलिङ्गोंसे युद्ध करनेलगा ॥ १० ॥ महाभुज सात्यकि
 कलिङ्गोंकी भी उस कठिनतासे लाँघने योग्य सेनाको लाँघकर
 अर्जुनके समीपमें पहुँचगया ॥ ११ ॥ जलमें तैरते २ थका हुआ

जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् । तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः
समाश्वसत् ॥ १२ ॥ तमायान्तमधिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत् ।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः ॥ १३ ॥ एष शिष्यः
सखा चैव तव सत्यपराक्रमः । सर्वान् योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये
पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥ एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपाद्रवम् ।
तव प्राणैः प्रियतमः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥ १५ ॥ एष द्रोणं
तथा भोजं कृतवर्माणमेव च । कदर्थीकृत्य विशिखैः फाल्गुना-
भ्येति सात्यकिः ॥ १६ ॥ धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान्
वरान् वरान् । शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः १७
कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महाबलः । तव दर्शनमन्विच्छन्
पाण्डवाभ्येति सात्यकिः ॥ १८ ॥ बहूनेकरथेनाजौ योधयित्वा

पुरुष जैसे स्थलमें पहुँचकर दण लेता है तैसेही सात्यकि भी नरव्याघ्र
अर्जुनका दर्शन कर परिश्रमरहित हो शान्ति पाने लगा ॥ १२ ॥
जब श्रीकृष्णने (दूरसे) सात्यकिको आते देखा, तब वे अर्जुन
से कहनेलगे कि—हे अर्जुन ! तुम्हारे पीछे चलनेवाला सात्यकि
वह आरहा है ॥ १३ ॥ यह सत्यपराक्रमी तुम्हारा शिष्य और
मित्र है, इस पुरुषर्षभने (तुम्हारे देखनेकी लालसासे) सब योधाओं
को तिनकेके समान पान उनका पराजय किया है ॥ १४ ॥
हे अर्जुन ! तुम्हें प्राणोंकी समान प्यारा सात्यकि कौरवयोधाओं
को भयङ्कर दुःख देकर हमारे पास आरहा है, हे किरीटिन् ! यह
सात्यकि बाणोंके प्रहारसे द्रोण, भोज और कृतवर्माका अपमान
कर हमारे पास आरहा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे फाल्गुन ! धर्म-
राजके हिनकर कामोंकी खोज करते रहनेवाला, शूरवीर और
अस्त्रविद्यामें चतुर सात्यकि श्रेष्ठ २ योधाओंको मार हमारे पास
आरहा है ॥ १७ ॥ हे पाण्डव ! महाबली सात्यकि तुम्हें देखने
की इच्छासे सेनामें महाकठिन पराक्रम कर तुम्हारे पास आरहा

महोरयान् । आचार्यप्रमुखान् पार्थ आयात्येष स सात्यकिः १६
 स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्थं च वरुधिनीम् । प्रेषितो धर्मपुत्रेण
 पार्थपोभ्येति सात्यकिः ॥ २० ॥ यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु
 कथञ्चन । सोऽयमायाति क्रीन्तेय सात्यकिर्बुद्धदुर्मदः ॥ २१ ॥
 कुरुसैन्याद्विमुक्तो वै सिंहो पथ्याद् गवामिव । निहत्य बहुलाः
 सेनाः पार्थपोऽभ्येति सात्यकिः ॥ २२ ॥ एष राजसदृशाणां
 वक्त्रैः पंकजसन्निभैः । आस्तीर्य वन्रुधां पार्थं क्षिप्रमायाति
 सात्यकिः ॥ २३ ॥ एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं गतः ।
 निहत्य जलसन्धञ्च क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ २४ ॥ रुधिरा-
 ववतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्माम् । नृणवद्व्यत्यः कौरव्यानेप
 लायति सात्यकिः ॥ २५ ॥ ततोऽप्रहृष्टः क्रीन्तेयः केशवं वाक्य-

है ॥ १८ ॥ हे पार्थ ! यह सात्यकि रथमें झकेला ही चढ़ युद्धमें
 द्रोण आदि बहुतसे धीरोंसे लड़ हमारे पास आरहा है ॥ १९ ॥
 हे पार्थ ! धर्मराजका तुम्हारी सुध लेनेको भेजा हुआ सात्यकि
 अपने भुजबलसे कौरव सेनाको विदीर्ण कर तुम्हारे पास आ
 रहा है ॥ २० ॥ जिसकी जोड़का कौरवोंमें कोई भी योधा नहीं
 है वह युद्धदुर्मद सात्यकि हमारे पास आरहा है ॥ २१ ॥ हे पार्थ !
 यह सात्यकि—जैसे सिंह बहुतसे बैलोंका संहार कर उनमें
 से छूटता है तैसे ही कौरवोंकी बहुतसी सेनाओंका संहार
 कर उनसे छूट कर हमारे पास आरहा है ॥ २२ ॥
 सात्यकि सहस्रों राजकुमारोंके कमलोंकी समान मुखोंसे पृथ्वी
 को पाटता हुआ शीघ्रतासे हमारे पास आरहा है ॥ २३ ॥ यह
 सात्यकि भाइयों सहित दुर्योधनको जीत और जलसन्धको
 मार शीघ्रतासे हमारे समीप झपटा चला आरहा है ॥ २४ ॥
 यह सात्यकि मांसकी कीचड़ और रुधिरके प्रवाह वाली नदीको
 वहा उसमें कौरवोंको तिनकेकी समान फेंक झपाटेसे हमारे

मज्जवीत् । न मे प्रियं महाबाहो यन्मागम्येति सात्यकिः ॥ २६ ॥
 न हि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव । सात्वतेन विहीनः स
 यदि जीवति वा न वा ॥ २७ ॥ एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः
 स पार्थिवः । तमेव कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः ॥ २८ ॥
 राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्यवश्चानिपातितः । प्रत्युद्याति च
 शैनेयमेव भूरिश्रवा रणे ॥ २९ ॥ सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्य-
 वार्थे समाहितः । शातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः ३०
 जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बवते च दिवाकरः । श्रान्तश्चैव महाबाहु-
 ररूपप्राणश्च साम्प्रतम् ॥ ३१ ॥ परिश्रान्ता हयाश्चास्य हययन्ता
 च माधव । न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव ॥ ३२ ॥

पास चला आरहा है ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णजीकी ऐसी बातें सुन
 अर्जुन अप्रसन्न मुखसे श्रीकृष्णसे कहनेलगा कि—हे महाबाहो !
 सात्यकिका अपने पास आना मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ २६ ॥
 हे केशवा! क्योंकि—सात्यकिके चले आनेपर धर्मराज युधिष्ठिर जीवित
 भी होंगे या नहीं ? यह भी मुझे निश्चय नहीं ॥ २७ ॥ हे कृष्ण !
 हे महाभुज ! इसको सदा (मेरी आज्ञानुसार) धर्मराजकी रक्षा
 करते रहना चाहिये था, फिर यह उनको छोड़ मेरे पीछे कैसे
 चला आया ॥ २८ ॥ धर्मराज अब द्रोणके सामने अकेले है
 और जयद्रथ भी अभी नहीं मारा गया है, इतनेमें ही यह भूरिश्रवा
 सात्यकिके ऊपर लड़नेके लिये चढ़ा आरहा है ॥ २९ ॥ मैंने
 सिधुराजके मारनेकी प्रतिज्ञाका बड़ा भारी काम अपने शिर पर ले
 लिया है (उसे पूरा करना है) तथा युधिष्ठिरकी कुशल भी मँगानी
 चाहिये और सात्यकिकी भी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३० ॥
 हे माधव ! मुझे जयद्रथको अवश्य मारना चाहिये और इधर
 यह महाभुज सात्यकि थक गया है, इसमें अब थोड़ासा ही बल
 बाकी रहा है, इसको छोड़े और सारथी भी थक गए हैं, परन्तु

अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन् समागमे । कञ्चिन्न सागरं दीर्घा
सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ३३ ॥ गोष्पदं प्राप्य सीदेत महोजाः
शिनिपुङ्गवः । अपि कौरव्यमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ॥ ३४ ॥
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान् सात्यकिर्भवेत् । व्यतिक्रममिमं
मन्ये धर्मराजस्य केशव ॥ ३५ ॥ आचार्याद्भयमुत्सृज्य यः प्रेय-
यत सात्यकिम् । ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवामिषम् ॥ ३६ ॥
निश्यमाशंसते द्रोणः कच्चित् स्यात् कुशली नृपः ॥ ३७ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यक्यवर्जुनदर्शने
एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

सञ्जय उवाच । तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।
क्रोधाद् भूरिश्रवा राजन् सदसा समुपाद्रवत् ॥ १ ॥ तमब्रवीन्म-
हाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम् । अद्य माप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्वि-

भूरिश्रवा अभी थका नहीं है और उसके पास सहायक भी
हैं ॥ ३१-३२ ॥ क्या सात्यकि इस युद्ध में सकुशल रहेगा ? शिनि-
पुङ्गव महावली सत्यपराक्रमी सात्यकि समुद्रको तर क्या
बोबट्ट में डूबेगा तो नहीं ? अस्त्रकुशल कुर्वंशी महात्मा भूरि-
श्रवासे लड़ने पर सात्यकिका कल्याण हो । हे केशव ! धर्म-
राजने द्रोणके भयकी परवाह न कर सात्यकिको (मेरे पास)
भेज दिया, इसमें मैं उनकी भूल समझता हूँ जैसे बाज सदा ही
मांस चाहता है तैसे ही द्रोण धर्मराजको कैद करनेकी सदा
इच्छा रखते हैं अतः धर्मराज क्या सकुशल होंगे ? यह मुझे
चिन्ता होरही है ॥ ३३-३७ ॥ एकसाँ इकतालीसवाँ अध्याय
समाप्त ॥ १४१ ॥

संजयने कहा कि-हे राजन् ! युद्धदुर्मद सात्यकिको चढ़कर
आते देख भूरिश्रवा क्रोधमें भर उसके ऊपर चढ़ गया ॥ १ ॥
हे महाराज ! कुर्वंशी भूरिश्रवा उस समय सात्यकिसे कहने

पयमित्युत ॥ २ ॥ चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे ॥
 न हि मे मोक्षयसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥ अथ
 त्वां सपरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम् । नन्दयिष्यामि दाशार्ह
 कुहराजं सुयोधनम् ॥ ४ ॥ अथ मद्राण्यनिर्दग्धपतितं धरणीतले ।
 प्रक्षयतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशराजुनौ ॥ ५ ॥ अथ धर्म-
 सुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया । सत्रोढो भविता संघो येना-
 सीह प्रवेशितः ॥ ६ ॥ अथ मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनञ्जयः ।
 त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥ ७ ॥ चिराभिलषितो
 क्षेप त्वया सह समागमः । पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना
 यथा ॥ ८ ॥ अथ युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत । ततो
 ज्ञास्यसि तत्त्वेन मदीर्यवलपौरुषम् ॥ ९ ॥ अथ संयमनीं याता
 मया त्वं निहतो रणे । यथा रामानुजेनाजौ रावणिलक्ष्मणेन ह १०

लगा कि-ओः! आज भाग्यसे ही तुम मेरे सामने पड़ गए हो, अब
 मेरी बहुत समयकी चाही हुई इच्छा पूरी होगी यदि तू रण-
 भूमिको छोड़ कर नहीं भागेगा तो आज मैं तुम्हें जीवित नहीं
 छोड़ूँगा ॥ ३ ॥ हे दाशार्ह ! शूरताका अभिमान करनेवाले
 तुझको मार कर मैं आज दुर्योधनको आनन्दित करूँगा ४ आज
 वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन तुम्हें मेरी वाणाग्निसे जल कर
 पृथ्वीमें दबा हुआ देखेंगे ॥ ५ ॥ आज ! धर्मराज युधिष्ठिर कि-
 जिसने तुम्हें सेनामें घुसेड़ दिया है वह, तुम्हें मरा देख लज्जित
 होजावेगा ॥ ६ ॥ जब तू मारा जा, तो हलुहान हो भूमिपर
 पड़ेगा, तब अर्जुन मेरे विक्रमको जानेगा ॥ ७ ॥ पहिले देवासुर
 युद्धमें इन्द्र जैसे बलिके साथ युद्ध करनेके लिए उत्सुक था तैसे
 ही मैं तेरे साथ युद्ध करनेको बहुत दिनोंसे उत्सुक हूँ ॥ ८ ॥
 हे सात्वत ! मैं आज तुम्हें घोर युद्ध करनेके लिए कहता हूँ
 युद्ध होनेपर तू मेरे बल, और पराक्रमको ठीक रीतिसे जानेगा ९

अथ कृष्णश्च पापेभ्य धर्मराजश्च माधव । हते त्वयि निरुत्साहा
रणं त्यक्त्यन्त्यसंशयम् ॥ ११ ॥ अथ तेष्वचिनि कृत्वा शितैः माधव
सायकैः तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि येत्वया निहता रणे ? रमचक्षुर्विषयं
प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे । सिंहस्य विषये प्राप्तो यथा क्षुद्र-
मृगस्तथा ॥ १३ ॥ युयुधानस्तु तं राजन् प्रत्युवाच हसन्निव ।
कौरवेय न सन्त्रासो विद्यते मम संयुगे ॥ १४ ॥ नाहं भीषयितुं
शक्यो बाह्मात्रेण तु केवलम् । स मां निहन्यात् संग्रामे यो मां
कुर्यान्निरायुधम् ॥ १५ ॥ सपास्तु शाश्वतीर्हान्याद्यो मां हन्याद्वि
संयुगे । किं वृथोक्तेन बहुना कर्मणा तत् समाचर ॥ १६ ॥ शारद-
स्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते । श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर

जैसे रामचन्द्रके छोटे भाई लक्ष्मणने मेघनादको यमपुरमें भेज
दिया था, तैसे ही आज मैं तुम्हें मारकर यमलोकमें भेज दूंगा १०
हे माधव ! आज तेरे मारे जाने पर श्रीकृष्ण, धर्मराज और
अर्जुन निरुत्साह हो युद्धको छोड़कर चले जायेंगे ॥ ११ ॥
हे माधव ! आज मैं बाणोंसे भलीपकार तेरी पूजाकर, उनकी
स्त्रियोंको आनन्दित करूँगा कि-जिनको तूने रणमें मार डाला
है ॥ १२ ॥ हे माधव ! जैसा क्षुद्र मृग सिंहके सामने पड़ उससे
बच नहीं सकता, तैसे ही मेरी आँखोंके सामने आया हुआ तू
भी आज बचेगा नहीं ॥ १३ ॥ परन्तु हे राजन् ! सात्यकिने
हंसते २ उत्तर दिया कि-हे कौरववंशमें उत्पन्न हुए भूविश्रवा !
मैं युद्धसे डरता नहीं हूँ ॥ १४ ॥ और कोई कुछ मुझे बानोंसे ही
नहीं डरा सकता, मुझे युद्धमें मार भी नहीं सकता है जो मुझे
शस्त्ररहित कर सकता हो ॥ १५ ॥ जो मुझे युद्धमें मार लेगा
वह सब समय सबको मार सकता है अधिक बकवाद करनेसे
क्या लाभ ? काम करके दिखा ॥ १६ ॥ तुम्हारी बकवाद करनेसे
अतुके बादलोंके गर्जनेकी समान निष्फल है हे वीर ! तुम्हारी

हास्यं हि मम जायते ॥ १७ ॥ त्रिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्यास्तु
 कौरव । त्वरते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकांक्षिणी ॥ १८ ॥ नाह-
 त्वाहं निवर्त्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम । अन्योऽन्यं तौ तथा वाग्भि-
 स्तत्तन्तौ नरपुङ्गवौ ॥ १९ ॥ जिघांस् परमक्रुद्धामभिजघ्नतुरा-
 हवे । समेतौ तौ महेष्वासौ शुष्मिणी स्पर्द्धिनी रणे ॥ २० ॥
 द्विरदाविब संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ । भूरिश्रवाः सात्यकिश्च
 ववर्षतुरिन्दमौ ॥ २१ ॥ शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम् ।
 सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येपुभिराशुगैः ॥ २२ ॥ जिघांसुर्भरत-
 श्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः । दशभिः सात्यकिं विध्वा सौम-
 दत्तिरथापरान् ॥ २३ ॥ सुभोच निशितान् बाणान् जिघांसुः शिनि-

व्यर्षकी गर्जनाको सुन सुभौ हँसी आती है ॥ १७ ॥ हे कौरव्य !
 बहुत सपयसे चाहा हुआ हमारा तुम्हारा युद्ध अब आरम्भ
 होना चाहिये हे तात ! तेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छावाली मेरी
 मति अब बहुत ही शीघ्रता कर रही है ॥ १८ ॥ हे पुरुषाधम !
 आग मैं तुम्हें बिना मारे युद्धस्थलसे नहीं जाऊँगा, एक दूसरे
 को मारना चाहते हुए वे दोनों नरपुङ्गव एक दूसरेको खरी
 खोटी सुना परम क्रोधमें भर युद्ध करनेलगे, ऋतुमती हथिनीके
 लिए क्रोधमें भर परस्पर युद्ध करनेवाले दो हाथियोंकी समान
 वे दोनों महाधनुषचारी परस्पर स्पर्धा रख क्रोधमें भरकर भिड़
 गए, अरिन्दम सात्यकि और भूरिश्रवा बूँदे बरसाने वाले दो
 मेघोंकी समान परस्पर बाणधाराएँ बरसाने लगे हे भरतश्रेष्ठ !
 सात्यकिको मार डालनेकी इच्छावाले भूरिश्रवाने सात्यकिको
 बाणोंसे ढककर फिर उस पर तीक्ष्ण बाण छोड़े
 सात्यकिका वध करना चाहते हुए भूरिश्रवाने उसको दूसरे दश
 बाणोंसे बीच उसके ऊपर तीक्ष्ण बाण छोड़े, परन्तु हे प्रभो !
 सात्यकिने अपनी अस्त्रमात्रासे भूरिश्रवाके बाणोंको, अपने बाण

पुङ्गवम् । तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशाम्यते ॥ २४ ॥
 अपासानस्त्रमायाभिरग्रसत् सात्यकिः मघो । तौ पृथक् शस्त्रवर्षा-
 भ्यामवर्षेतां परस्परम् ॥ २५ ॥ उत्तमाभिजनां वीरां कुक्कुटिण-
 यशस्करो । तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपो ॥ २६ ॥
 रथशक्तिभिरन्योऽन्यं विशिखैश्चाप्यकृतताम् । निर्भिन्दन्तौ हि
 गात्राणि विचरन्तौ च शोणितम् ॥ २७ ॥ व्यष्टम्भयेतामन्योऽन्यं
 प्राणघूताभिदेविनौ । एवमुत्तमकर्माणौ कुक्कुटिणयशस्करो ॥ २८ ॥
 परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ । तावदीर्घेण कालेन ब्रह्म-
 लोकपुरस्कृता ॥ २९ ॥ गियासन्तौ परं स्थानमन्योऽन्यं सञ्ज-
 गर्जतुः । सात्यकिः सौमदक्षिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३० ॥
 हृष्टानां धार्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम् । सम्प्रेक्षन्त जनास्ते तु

बोह आकाशमें ही काटहाला, उत्तम देशमें रहनेवाले कुक्कुल
 और वृष्णिकुलके यशको बढ़ानेवाले वीरवर सात्यकि और
 भुरिश्रवा भिन्न २ शस्त्रोंकी वृष्टि करनेलगे जैसे सिंह नाखूनोंसे
 लड़े और हाथी दाँतोंसे लड़े तैसे ही वे दोनों रथशक्ति और
 घाणोंका प्रहार कर एक दूसरेको घायल करनेलगे प्राणका
 पण रख युद्धयुत खेलने वाले वे दोनों एक दूसरेके अङ्गोंको
 (प्रहारद्वारा) स्तम्भित कर देंगे ये जिनके शरीर लोहलुहान
 हो रहे हैं ऐसे तथा श्रेष्ठ कर्म करनेवाले और कुक्कुल तथा वृष्णि-
 कुलके यशको प्रकाशित करनेवाले वे दोनों युवपति दो हाथियों
 की समान परस्पर भिड़गए अल्पकालमें ही ब्रह्मलोकसे भी
 परले लोकमें जानेकी इच्छावाले वे दोनों सिंहगर्जन करनेलगे,
 सात्यकि और भुरिश्रवा प्रसन्न हो, धृतराष्ट्रके पुत्रोंके सामने ही
 परस्पर बाण बरसानेलगे, ऋतुमती हथिनीके लिए युद्ध करते
 हुए दो हाथियोंकी समान युद्ध करते हुए उन दोनों योधाओंके
 युद्धको पलुष्य निहारनेलगे, दोनोंमें दोनोंके थोड़ोंको मारहाला

युध्यमानौ युधास्पती ॥ ३१ ॥ यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव
 कुञ्जरौ । अन्योऽन्यस्य हयान् हत्या धनुषी विनिकृत्य च ॥ ३२ ॥
 विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे । आर्षभे चर्मणी चित्रे
 प्रगृह्य विपुले शुभे ॥ ३३ ॥ विकीर्णौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ
 विचेरतुः । चरन्तौ विधिवन्मार्गान् गण्डलानि च भांगशः ॥ ३४ ॥
 मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धाऽन्योऽन्यमरिर्मर्दतौ । सखद्वर्गौ चित्रवर्माणौ
 सनिष्काङ्गदभूषणौ ॥ ३५ ॥ भ्रान्तमुद्भ्रातमाविद्धमाप्लुतं विभ्रुतं
 छतम् । सम्पातं समुदीर्णञ्च दशेयन्तौ यशस्विनौ ॥ ३६ ॥
 असिभ्यां सम्प्रनहते परस्परपरिदमौ । उभौ छिद्रैर्पिणौ वीरावुभौ
 चित्रं वयन्गतुः ॥ ३७ ॥ दर्शयन्तावुभौ शिक्तां लाघवं सौष्ठवं
 तथा । रणे रणकृतां श्रेष्ठानन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥ ३८ ॥ मुहुर्त्त-
 मिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम् । परयतां सर्वसैन्यानां वीरावा-
 रवसतां पुनः ॥ ३९ ॥ असिभ्याञ्चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप ।

और धनुषोंको काटडाला, फिर वे दोनों रथहीन हो महारणमें
 तलवार लेकर खड़े होंगे, वे दोनों बैलकी खालसे मढ़ी बड़ी २
 विचित्र ढालें ले और म्यानमेंसे तलवारें खींच रणमें घूमने लगे-
 दोनों अरिन्दम क्रोधमें भर विचित्र गण्डलोंसे घूम और क्रुद्ध
 फाँद कर एक दूसरे पर प्रहार करनेलगे, विचित्र कवच वाले
 और वाज्रवन्द तथा शस्त्र धारण करनेवाले वे दोनों यशस्वी
 शत्रुदमन फिरना, ऊपर फिरना, कुटिल गतिसे फिरना, समीपमें
 जाना, क्रुद्ध जाना, सरकना, नीचेको झुकना आदि गतियोंको
 दिखाते हुए परस्पर तलवारोंकी चोटें करनेलगे, परस्पर छिद्र
 खोजतेहुए वे दोनों वीर विचित्र प्रकारका भाषण करनेलगे १६-३७
 युद्धकरने वालोंमें श्रेष्ठ वे दोनों अपनी २ शिक्ता, फुर्ती और
 सौष्ठवको दिखाकर एक दूसरेको नीचा दिखानेलगे ॥ ३८ ॥ कुछ
 समय तक घोर युद्ध करके हे राजेन्द्रावे दोनों वीरसत्र सेनाओंके

निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतः ॥ ४० ॥ व्यूहोरस्कां दीर्घ-
ध्रुजौ निघुद्धकुशलावुर्भौ । बाहुभिः समसज्जेतामाचसैः पन्थि-
रिव ॥ ४१ ॥ तयो राजन् भुजाघातनिग्रहप्रहास्तथा । शिक्ता-
वलसमुद्भूताः सर्वयोधमहर्षणाः ॥ ४२ ॥ तयोर्नृवरयो राजन्
समरे युद्धमानयोः । भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥ ४३ ॥
द्विपात्रिव विपाणायैः शृङ्गैरिव महर्षभौ । भुजयोऽप्रावचन्धैश्च
शिरोभ्याञ्चावघातनैः ॥ ४४ ॥ पादावर्कपसन्धानैस्तोमरांकुश-
लासनैः । पादोदरविवन्धैश्च भूमायुद्धभ्रमणैस्तथा ॥ ४५ ॥ गत-
प्रत्यागताक्षेपैः पातनोत्थानसंस्तुतैः । युयुधाते महात्माना कुरुसा-
त्वतपुङ्गवौ ॥ ४६ ॥ द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत ।

सामने विश्राम लेनेके लिए खड़े रहे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर हे राजन् !
वे दोनों तलवारोंसे परस्पर सी फुल्लियोंवाली दानों ढालोंको काट
बाहुयुद्ध करनेलगे ४० चौड़ी छाती और लंबी भुजाओंवाले तथा
मल्लयुद्धमें कुशल वे दोनों लोहेके परिघोंकी समान हड्डी अपनी
भुजाओंसे परस्पर गुँथ गए ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! वे अपनी उच्च-
शिक्ताके कारण भुजाओं पर धाप देनेलगे, हाथ पकड़ने लगे,
तथा परस्पर गलेमें हाथ डालनेलगे यह देखकर सब योधा अतीव
प्रसन्न हुए ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! समामें लड़तेहुए उन नर-
श्रेष्ठोंके आघातका शब्द पर्वत और वज्रके टकरानेके महापड़कर
शब्दकी समान होनेलगा ॥ ४३ ॥ सींगोंसे लड़ते हुए दो
विजारोंकी समान और दाँतोंसे लड़तेहुए दो महागजोंकी समान,
कौरव और सात्वनवंशमें श्रेष्ठ वे दोनों महात्मा भुजाओंको
लपेट, कर शिगोंको टकरा कर, पैरोंमें अटझा डालकर पैर खेंचकर
तोमर और अंकुश आसन गाँठकर पैरोंको पेटमें देकर तथा एक
दूसरेको पृथ्वीमें घुमाकर, चल कर, बढ़कर, गिराकर और ऊपर
कूद कर तथा धक्का देकर युद्ध करनेलगे ॥ ४४-४६ ॥ हे भारत !

तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ॥४७॥ क्षीणायुधे सात्वते
 युध्यमाने ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः । पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं
 रणे वरं । सर्वधनुर्दुराणाम् ॥४८॥ प्रविष्टो भारतीं भित्वा तव
 पाण्डव, पृष्ठतः । योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः॥ ४९ ॥
 परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं सम्माप्तो भूरिदक्षिणः । युद्धार्काक्षी समायान्त-
 न्नैतत् सममिवार्जुनः ॥ ५० ॥ ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं
 युद्धदुर्मदः । उद्यम्याभ्याहनद्राजन् मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५१ ॥
 रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः । केशवार्जुनयो राजन्
 समरे प्रेक्षमाणयोः॥५२॥ अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ।

इतना ही नहीं, किन्तु युद्ध करते हुए उन महाबलियो ने मल्लयुद्ध के
 बत्तीसों पंच दिखाए ४७ जब अस्त्रशस्त्रों के निवट जाने पर सात्यकि
 मल्लयुद्ध करने लगा उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा
 कि—सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ सात्यकि—रथरहित होने पर भी रण में
 भूरिश्रवा के साथ लड़ रहा है, उसकी ओरको तू देख ॥ ४८ ॥
 हे भारत ! यह सात्यकि भरतवंशी राजाओं की सेनाको भेद कर,
 तुम्हारे पासको आरहा है, इतना ही नहीं किन्तु इसने सकल महा-
 बली भरतवंशी राजाओं से युद्ध किया है ॥४९॥ हे अर्जुन ! व इस
 हमारी ओरको आते हुए, योधाओं में श्रेष्ठ यके हुए सात्यकि के साथ
 बहुतसी दक्षिणा देनेवाला राजा भूरिश्रवा युद्ध करनेकी इच्छा से
 भिड गया है ! इसका इस समय, इसके साथ लड़ना उचित नहीं
 है ॥ ५० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार रण में क्रोध में भरे महायोधा
 कृष्ण और अर्जुन रथ में बैठे र बातें कर रहे थे, कि—इतने में ही उन
 दोनों के सामने ही, युद्धदुर्मद कोप में भरे हुए मदमत्त भूरिश्रवाने
 उल्लङ्घन कर, मदमत्त हाथी जैसे मतवाले हाथी पर प्रहार करता है तैसे
 ही सात्यकि के ऊपर प्रहार किया ॥५१-५२॥ यह देखकर महा-
 भज श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि—वृष्णि तथा अन्धक कुल में

पश्य वृष्णयन्धकव्याघ्रं सौमदक्षिवशं गतम् ॥ ५३ ॥ परि-
 श्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म मुदुष्करम् । तवान्तेवासिनंशूरं पाल-
 यजुं न सात्यकिम् ॥ ५४ ॥ न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेव वगो-
 र्जुनः । त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥ ५५ ॥ अथा-
 ब्रवीद्दृष्टमना वासुदेवं धनञ्जयः । पश्य वृष्णिप्रवीरेण कीदन्तं
 कुरुपुङ्गवम् ॥ ५६ ॥ महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूयपम् । सञ्जय
 उवाच । इत्येवं भाषमाणे तु पाण्डवे वै धनञ्जये ॥ ५७ ॥ हाहा-
 कारो महानासीत् सैन्यानां भरतर्षभ । तमुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं
 न्यहनद्भुवि ॥ ५८ ॥ स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन् भूरिदक्षिणः ।
 व्यरोचते कुरुश्रेष्ठः सात्वतमवरं युधि ॥ ५९ ॥ अथ क्रोपाद्विनि-
 ष्कृष्य स्वह्गं भूरिश्रवा रणे । मूर्ध्निषु निजग्राह पदा चोरस्यता-

व्याघ्रसमानं सात्यकि भूरिश्रवाके हाथमें पढ़ाया है, उसकी ओरको
 तू देख ॥ ५३ ॥ हे अर्जुन ! दुष्कर कर्म करनेके कारण यह
 कर पृथ्वीमें पड़े हुए अपने वीर शिष्यकी तू रक्षा कर ॥ ५४ ॥
 हे पुरुषव्याघ्र ! हे विभो ! तू ऐसा कर कि-जिससे यह श्रेष्ठपुरुष
 यज्ञशील भूरिश्रवाके वशमें न पड़जाय, तुझे इसकी सम्हाल
 करनी है, इसलिये हे अर्जुन ! देर न कर ॥ ५५ ॥ यह सुन
 अर्जुनने मनमें प्रसन्न होते २ श्रीकृष्णसे कहा कि-वनमें जैसे
 मतवाले हाथीको सिंह खचेडता है तैसे वृष्णिप्रवीर सात्यकिसे कीड़ा
 करते हुए भूरिश्रवाको देखो (आहा !) सञ्जयने कहा कि-
 हे भरतर्षभ राजन् ! पाण्डुपुत्र धनञ्जय इस प्रकार दाने कर रहा
 था कि-सेनामें बड़ा कोलाहल मचनेलगा, हाथीकी समान
 सात्यकिको भूमिमें खचेडते हुए सिंहकी समान महाभुज भूरि-
 श्रवाने उसको उठाकर पृथ्वीमें दे पटका, उस समय उसकी बड़ी
 ही शोभा हुई ॥ ५६-५९ ॥ इसके अनन्तर रणमें भूरिश्रवाने
 सात्यकिकी छातीमें लात मारी और उसके केशोंको पकड़,

डयत् ॥ ६० ॥ ततोऽप्य छेतुमारब्धः शिरः कायात् सकुण्ड-
लम् । तावत् क्षणं सात्वतोऽपि शिरः सम्भ्रमयंस्त्वरन् ॥ ६१ ॥
यथा चक्रन्तु कौलालो दण्डविद्वन्तु भारत । सहैव भूरिश्रवसो
बाहुना केशधारिणा ॥ ६२ ॥ तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वत-
माहवे । वासुदेवस्ततो राजन् भयोऽर्जुनमभाषत ॥ ६३ ॥ मय
वृष्णयन्यधकन्याघ्नं सौमदक्षिवशं गतम् । तव शिष्यं महाबाहो
भनुष्यनवरं त्वया ॥ ६४ ॥ असत्यो विक्रमः पार्थः यत्र भूरिश्रवा
रणे । विशेषयति वाष्ण्यं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ६५ ॥ एव-
मुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः । मनसा पूजयामास भूरिश्रव-
समाहवे ॥ ६६ ॥ विकर्पन् सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमानं इवाहवे । संह-
र्षयति मां भूयः कुरुणां कीर्तिवर्द्धनः ॥ ६७ ॥ प्रवरं वृष्णिवी-

स्यानमैसे तलवार खेचली ॥ ६० ॥ तदनन्तर वह इसके कुण्डलों
से सुशोभित मस्तकको काटनेको तयार होगया और हे भारत !
जैसे कुम्हार दण्डसे चाकको घुमाता है तैसे ही सात्यकि भी
भूरिश्रवाके केशोंको पकड़नेवाले हाथोंके साथ अपने शिरको
घुमाने लगा, कि—किसी प्रकार उसके हाथसे छूटजाऊँ ॥ ६१-६२ ॥
सात्यकिको इसप्रकार मस्तक घुमाते और भूरिश्रवाके हाथसे
खिंचडते देखकर हे राजन् ! श्रीकृष्णजी अर्जुनसे फिर कहने
लगे कि—॥ ६३ ॥ हे महाभुज अर्जुन ! वृष्णि और अन्धकोंमें व्या-
घ्रसमान तथा अनुविद्यामें तेरे ही समान चतुर, तेरा शिष्य सात्यकि
भूरिश्रवाके जुझलमें फँसगया है, उसकी ओरको तू देख ॥ ६४ ॥
हे पार्थ ! रणमें भूरिश्रवाने वृष्णिवंशी सत्यपराक्रमी सात्यकिका
पराजय करके उससे अधिक बल दिखाया है और सात्यकिका बल
व्यर्थ होगया है ॥ ६५ ॥ जब श्रीकृष्णने महाभुज अर्जुनसे रणमें
ऐसा कहा, तब वह मनमें भूरिश्रवाकी प्रशंसा करने लगा ॥ ६६ ॥
कि—क्रीड़ा करनेकी समान रणमें सात्यकिको खेचडता हुआ

राणां यन्न हन्याद्वि सात्यकिम् । महाद्विपविवारण्ये मृगेन्द्र इव
 कर्पति ॥ ६८ ॥ एवन्तु मनसा राजन् पार्थः सम्पूज्य कौरवम् ।
 वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥ ६९ ॥ सैन्यवे सक्तदृष्टिन्वा-
 न्नेनं पश्यामि माधवम् । एतत् त्वमुकरं कर्म यादवार्थं करोम्यहम् ७०
 इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन् वासुदेवस्य पाण्डवः । ततः क्षुरभं निशितं
 गाण्डीवे समयोजयत् ॥ ७१ ॥ पार्थवाहुविष्टः स महोत्केव
 तभरच्छ्रुता । सखङ्गं यज्ञशीलस्य सांगदं बाहुमच्छिनत् ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवो-
 बाहुच्छेदे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

संजय उवाच । स बाहुन्यपतद् भूमौ सखङ्गः सशुभाङ्गदः

भूरिश्रवा मेरे हृदयको बड़ा ही प्रसन्न कर रहा है, निःसन्देह यह
 कुरुकुलकी कीर्तिको बढ़ाने वाला है, जैसे सिंह मदमत्त हाथीको
 घसीटता हो तैसे ही यह वृष्णिवीरोंमें श्रेष्ठ सात्यकिको रणमें
 घसीट रहा है, परन्तु यह इसको मार नहीं सकेगा ॥ ६७—६८ ॥
 इसप्रकार मनमें भूरिश्रवाकी प्रशंसा करके महाभुज अर्जुन
 श्रीकृष्णसे कहने लगा, कि—॥ ६९ ॥ जयद्रथकी ओरको दृष्टि लग
 रही है, इस कारण मैं सात्यकिको नहीं देख रहा हूँ, तो भी मैं
 इस यदुवीरकी रक्षाके लिए एक बड़ा भारी काम करता हूँ उसको
 आप देखिये ॥ ७० ॥ ऐसा कहकर वासुदेवकी वातका मान
 रखनेके लिये अर्जुनने क्षुरभ नामक एक तीक्ष्ण बाणको गाण्डीव
 धनुष पर चढ़ाया ॥ ७१ ॥ आकाशमेंसे गिरती हुई उन्कावी
 समान, अर्जुनके हाथमेंसे छूटकर आगेको बढ़ते हुए उस बाणने
 यशस्वी भूरिश्रवाके खट्वाको धारण करनेवाले और बाज्वन्दसे
 सुशोभित हाथको काट डाला ॥ ७२ ॥ एक सौ वयालीसवाँ
 अध्याय समाप्त ॥ १४२ ॥

संजयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! अर्जुनने अदृश्य रहकर,

आदधञ्जीवलोकस्य दुःखमद्भुतमुत्तमम् ॥ १ ॥ महरिष्यन् हतो
 बाहुरदृश्येन किरीटिना । वेगेन न्यपतद् भूमौ पञ्चास्य इव
 पन्नगः ॥ २ ॥ स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः । उत्सृज्य
 सात्यकिं क्रोधाद्ब्रह्मयामास पाण्डवः ॥ ३ ॥ भूरिश्रवा उवाच ।
 नृशंसं वत कौन्तेय कर्षेदं कृतवानसि । अपश्यतोऽविपत्तस्य यन्मे
 बाहुमचिच्छिदः ॥ ४ ॥ किन्तु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठि-
 रम् । किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे ॥ ५ ॥ इदमि-
 न्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना । अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणे-
 नाथ कृपेण वा ॥ ६ ॥ ननु नामास्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः

सात्यकिका मस्तक काटनेके लिए उठाये हुए भूरिश्रवाके हाथमें ज्यों
 ही बाण मारा कि-बहहाथखड्ग तथा उत्तम बाजूबन्दके साथ पंच-
 मुखी सर्पकी समान वेगसे पृथ्वीपर बहते हुए रुधिरके साथ गिरपड़ा,
 यह देखकर सब प्राणी दुःखित होगए ॥ १-२ ॥ मेरे शरीरको अर्जुन
 ने निकम्मा करवाला, यह देखकर कुरुवंशी भूरिश्रवा सात्यकिको
 जोड़कर दूर खड़ा होगया और क्रोधमें भर अर्जुनकी निन्दा
 करने लगा ॥ ३ ॥ भूरिश्रवाने कहा, कि—तूने क्रूरकी समान
 काम करवाला, अरे ! मैं दूसरेसे लड़नेमें लगाहुआ था, इससे
 तेरी ओरको मेरी दृष्टि ही नहीं थी, ऐसे अवसरमें तूने मेरा
 हाथ काट डाला, जब धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुझसे वृक्षगे कि—तूने
 रणमें भूरिश्रवाको कैसे मारा ? तब तू क्या यह कहेगा, कि-भूरि-
 श्रवा सात्यकिके युद्ध करनेमें लगाहुआ था, तब मैंने उसको मार
 डाला ॥ ५ ॥ हे पार्थ ! यह अस्त्रविद्या क्या तुझे इन्द्रने पढ़ाई
 थी ? अथवा साक्षात् भगवान् शंकरने तुझे यह अस्त्रविद्या
 सिखाई भी ? अथवा द्रोणचार्य या कृपाचार्यने तुझे ऐसी विद्या
 सिखाई थी ? ॥ ६ ॥ तू संसारके सब धनुषधारियोंसे श्रेष्ठ है
 और युद्धके धर्मको जानता है तो भी तूने, तुझसे न लड़ते हुए

परः । सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे महानवानमि ॥ ७ ॥ न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते । व्यसने वर्त्तमानाय प्रदरन्ति मनस्विनः ॥ ८ ॥ इदन्तु नीचाचरितमसत्पुरुषमेवितम् । कथमाचरितं पार्थ पापकर्म मृदुष्करम् ॥ ९ ॥ आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनञ्जय । अनार्यकर्म त्वार्येण मृदुष्करतमं भुवि ॥ १० ॥ येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्त्तते । आशु नच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते ॥ ११ ॥ कथं हि राजवंशस्त्वं कौरवेयो विशोषतः । क्षत्रधर्मादपाक्रान्तः मृत्तश्चरितव्रतः ॥ १२ ॥ इदन्तु यदतिक्षुद्रं दाष्ण्यैयार्थं कृतं त्वया । वामदेवमतं नूनं नैनत्स्वयुपपद्यते ॥ १३ ॥ को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युध्यते । ईदृशं

मेरे ऊपर प्रहार क्यों किया ॥ ७ ॥ धर्मात्मा पुरुष प्रमत्तके ऊपर, डरे हुएके ऊपर, रथहीनके ऊपर, प्रार्थना करनेवाले मनुष्यके ऊपर तथा दुःखमें पड़े मनुष्यके ऊपर रण भूमिमें प्रहार नहीं करते हैं ॥ ८ ॥ हे पार्थ ! ऐसा निन्दित काम नीच या दुष्ट मनुष्य करते हैं, अतः तूने ऐसा भयङ्कर पाप क्यों किया ? ॥ ९ ॥ लोग कहते हैं, कि—सज्जन पुरुष अच्छा काम सहजमें ही कर डालते हैं परन्तु हे पार्थ ! उनसे खोटा काम होना बहुत ही कठिन है १० नरव्याघ्र मनुष्य जैसे २ पुरुषोंमें और जैसी २ सङ्गतमें बैठता है, शीघ्र ही वैसा ही अच्छा घुरा वन जाना है, यह बात तुझमें भी दीखरही है ॥ ११ ॥ तू राजाओंके वंशमें और विशेषकर कौरववंशमें उत्पन्न हुआ है और मुशील है, फिर भी तू क्षत्रियधर्मसे कैसे ढिगगया ? ॥ १२ ॥ यह जो तूने सात्यकिके लिए अतिक्षुद्र काम किया है यह श्रीकृष्णकी सम्मतिसे ही किया होगा ? परन्तु तुझे ऐसा काम नहीं करना चाहिये या, क्योंकि—यह तेरी प्रतिष्ठाके विरुद्ध है ॥ १३ ॥ जिसका कृष्ण मित्र हो उसके सिवाय और कौन पुरुष दूसरेसे युद्ध करनेमें लगे

व्यसनं दद्याद्यो न कृष्णसखो भवेत् ॥ १४ ॥ ब्रात्याः संक्लिष्ट-
कर्माणाः प्रकृत्यैव च गर्हिताः । वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं
भवता कृताः ॥ १५ ॥ एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत् ।
अर्जुन उवाच । व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि युद्धि जरयते नरः १६
अनर्थकमिदं सर्वं यत्त्वया व्याहृतं प्रभो । जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे
माञ्च पाण्डवम् ॥ १७ ॥ संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थ-
पारगः । न चाधर्ममहं कुर्यां जानन्श्चैव हि मुह्यसे ॥ १८ ॥ युध्यन्ति
क्षत्रियाः शत्रून् स्वैः स्वैः परिवृता नरैः । भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रै-
स्तथा सम्बन्धिवान्धवैः ॥ १९ ॥ वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं
समाश्रिताः । स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धिमेव च ॥ २० ॥

हुए प्रमत्त पुरुषको ऐसा दुःख देसकता है ? ॥ १४ ॥ हे अर्जुन !
वृष्णि तथा अन्धक कुलके राजे तो ब्रात्य और क्रूर कर्म करने
वाले तथा स्वभावसेही निन्दाके पात्र होते हैं, अतः उनकी बातको
तूने कैसे ठीक मानलिया ? ॥ १५ ॥ जब रणमें भूरिश्रवाने
अर्जुनसे ऐसा कहा, तब अर्जुन भूरिश्रवासे कहने लगा, कि-
यह सत्य है जो पुरुष मरनेवाला होता है, उसकी बुद्धि भी
मारी जाती है ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! तुमने जो कुछ कहा यह सब
व्यर्थ है, तुम मुझसे तथा श्रीकृष्णसे भी भली भाँति (ये अच्छे
हैं या बुरे) परिचित हो, तो भी तुम श्रीकृष्णकी तथा मेरी
व्यर्थ ही निन्दा करते हो ॥ १७ ॥ तुम संग्रामके सब धर्मोंको
जानते हो और सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारदर्शी हो तथा यह भी
जानते हो कि-मैं अधर्म नहीं करसकता, फिर भी तुम कैसे भूल
करते हो ? ॥ १८ ॥ युद्ध करनेवाले क्षत्रिय भाई चचा, ताऊ,
पुत्र, तथा सम्बन्धी और बन्धु आदिसे युक्त हो तथा समान
अवस्था वाले मित्रोंको साथमें लेकर अपने भुजबलके भरोसे
पर शत्रुओंसे लड़ते हैं, तो फिर मैं अपने शिष्य तथा सम्बन्धी

अस्मदर्थे च युध्यते त्यक्त्वा प्राणान् मुदुस्तपजान् । मम चाहं रणे
 राजन् दक्षिणं युद्धदुर्मदम् ॥ २१ ॥ न चात्मा रक्षितव्यो वै राज-
 न्नखगतेन हि । यो यस्य युज्यतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप २२
 तै रक्ष्यमाणैः स नृपो रक्षितव्यो महामृधे । यद्यहं सात्यकिं पश्ये
 वध्यमानं महारणे ॥ २३ ॥ ततस्तस्य वियोगेन पापं मेऽनर्थको
 भवेत् । रक्षितश्च मया यस्मात् तस्मात् क्रुध्यसि किं मयि ॥ २४ ॥
 यच्च मे गर्हसे राजन्नन्येन सह सङ्गतम् । अटं त्वया विनिकृन्तनप्र-
 ते बुद्धिभिन्नमः ॥ २५ ॥ कथंचन्धुन्वतस्तुभ्यं रथञ्चारोहतः स्व-
 यम् । धनुर्ज्यां कर्पतश्चैव युध्यतः सह शत्रुभिः ॥ २६ ॥ एवं
 रथगजाक्षीणै ह्यपत्तिसमाकुले । सिंहनादोद्धतरवे गम्भीरे सैन्य-
 सागरे ॥ २७ ॥ स्वैः परैश्च समेतेभ्यः सात्वतेन च सङ्गमे । एक-

और हमारे सुख दुःखमें भाग लेनेवाले और फिर भी अपने
 प्यारे प्राणोंकी भी परवाह न करके हमारे लिये युद्ध करनेवाले
 तथा रणमें मेरी दाहिनी भुजाकी समान युद्धकुशल सात्यकिभी
 रक्षा क्यों न करूँ ? ॥ १६-२१ ॥ हे राजन् ! रणमें मुख्य
 सेनापतिको अपना वचाव करना ही उचित नहीं है, किन्तु जो
 उसके लिए लड़ रहा हो उसकी भी रक्षा करनी चाहिये ॥ २२ ॥
 महायुद्धमें योधाओंकी रक्षा करनेसे राजाकी रक्षा होती है,
 यदि मैं महारणमें सात्यकिको मरते हुए देखता रहता तो मुझे
 पाप लगना अतः मैंने उसकी रक्षा की, फिर तुम मेरे ऊपर क्यों
 क्रुद्ध होते हो ॥ २३—२४ ॥ और हे राजन् ! तुम जो यह कहकर
 मेरी निन्दा करने हो, कि—मैं दूसरेसे युद्ध कर रहा था तब तुम्हें
 मुझे धोखा दिया, यह तुम्हारी बुद्धि का भ्रम है २५ रथ, घोड़े और
 हाथी आदिसे भरे, सिंहगर्जनाओंसे प्रतिध्वनित होते हुए
 और जहाँ अपने तथा पगये योधा इकट्ठे हो रहे हैं ऐसे, सेनारूप
 गम्भीर सागरमें तुम कबच उझालते और रथ पर चढ़े हुए धनुषकी

स्यैकेन हि कथं संग्रामाः संभविष्यति २८ बहुभिः सह सङ्गम्य निर्जित्य च महारथान् । श्रान्तश्च श्रान्तांहरच विमनाः शस्त्रपीडितः २९ ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम् । अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम् ॥ ३० ॥ यदिच्छसि शिरश्चास्य असिना हन्तुमाहवे । तथा कृच्छ्रगतञ्चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति ॥ ३१ ॥ त्वं वै विगर्हयात्मानमात्मानं यो न रक्षसि । कथं करिष्यसे वीर यो वा त्वां संश्रयेज्जनः ॥ ३२ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्तो महाबाहुर्युपकेतुर्महायशाः । युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ३३ ॥ शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणाः ।

प्रत्यञ्चाको खेंचरहे थे फिर यह कैसे कहा जासकता है, कि—तुम अकेले सात्यकिसे ही लड़रहे थे २६—२८ सात्यकि बहुतसे महारथियोंसे युद्ध करके बहुतसोंको जीतकर थक गया था और उसके घोड़े भी थक गए थे तथा शस्त्रोंसे पीड़ित होनेके कारण उसका मन ठिकाने नहीं था ॥ २९ ॥ इस दशममें महारथी सात्यकि को अपने धीर्यसे वशमें करके क्या तुम अपना वडप्पन समझते हो? ३० ऐसी आपत्तिमें पड़ेहुए सात्यकि का तुम शिर काटनेको तयार होगये—इसको कौन सह सकता है? ॥ ३१ ॥ तुम अपनी निंदा अपने आप करो, क्योंकि—तुम अपनी रक्षा न करसके, हे वीर! जब तुम अपनी ही रक्षा न करसके, फिर अपने आश्रितोंकी रक्षा तो कर ही कैसे सकते होगे? ॥ ३२ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे धुनराष्ट्र! अर्जुनके ऐसा कहने पर महायशस्वी और जिसकी ध्वजामें यज्ञस्तम्भका चिन्ह था ऐसे भूरिश्रवाने सात्यकि को छोड़ (और अर्जुनसे बातचीत करना बन्द करके) मरनेके समय तकको अनशनव्रत धारण करलिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर पवित्र लक्ष्णोंवाले राजा भूरिश्रवाने दाढ़िने हाथसे बाणोंको बिछाकर उनपर बैठ ब्रह्मलोकको जानकी इच्छासे अपने प्राणोंको वायुमें

यियामुर्ध्वल्लोकाय प्राणान् प्राणेष्वथानुशोन् ॥ ३४ ॥ सूर्ये चक्षुः
समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः । ध्यायन्महोत्थनिपटं योगयुक्तोऽभ-
वन्मुनिः ॥ ३५ ॥ ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनञ्जयम् ।
गईयामास तच्चापि शशंस पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥ निन्दयमानो तथा
कृष्णो नोचक्षुः किञ्चिदप्रियम् । तथा प्रशम्यमानश्च नाहप्य-
द्यपकेतनः ॥ ३७ ॥ तांस्तथावादिनो राजन् पुत्रांस्तव धनञ्जयः ।
अपृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम् ॥ ३८ ॥ असंकुटु-
भना वाचः स्मारयन्निव भारत । उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव
फाल्गुनः ॥ ३९ ॥ मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम् ।
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद्वाणोचरे ॥ ४० ॥ युपकेतो
निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम् । न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं

होम दिया ॥ ३४-॥ चक्षुको उसके देवता सूर्यमें होमदिया, निर्मल
मनको जलमें होमदिया और महोपनिषद्में कहे हुए ब्रह्मका
ध्यान करताहुआ समाधि चढ़ाकर बैठगया ॥ ३५ ॥ यह देख
कर सब सेनाके मनुष्य श्रीकृष्ण और अर्जुनकी निन्दा करने
लगे और पुरुषश्रेष्ठ भूरिश्रवाकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३६ ॥
उस समय निन्दाको सुनकर भी श्रीकृष्ण और अर्जुन कुछ भी
अप्रिय वचन नहीं बोले तथा भूरिश्रवा भी अपनी प्रशंसासे कुछ
प्रसन्न नहीं हुआ ॥ ३७ ॥ तथापि हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र उनकी
निन्दा करते ही रहे, तब तो उनकी तथा भूरिश्रवाकी बातों
को अर्जुन सह न सका ॥ ३८ ॥ तथापि अर्जुन कुपित
नहीं हुआ और हे भारत ! राजाओंको याद दिलाता
हुआसा आक्षेपके साथ यह कहनेलगा ॥ ३९ ॥ कि-सब राजे
मेरे इस महाव्रतको जानते हैं, कि-जो मनुष्य मेरे बाणके मार्गमें
आजाता है वह मेरा मनुष्य कहलाना है और उसको थोड़े नहीं
मारसकता ॥ ४० ॥ हे युपकेतु भूरिश्रवा ! तू मेरे इस व्रतको

परम् ॥ ४१ ॥ आत्तशस्त्रस्य हि रणेः वृष्णिधीरं जिघांसतः ।
 यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ॥ ४२ ॥ न्यस्तशस्त्रस्य
 बालस्य विरथस्य विवर्षणः । अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को
 नु पूजयेत् ॥ ४३ ॥ एवमुक्तः स पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् ।
 पाणिना चैव सव्येन माहिणोदस्य दक्षिणम् ॥ ४४ ॥ एतत्
 पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः । युपकेतुर्महाराज नृष्णी-
 मासीदबाहुमुखः ॥ ४५ ॥ अर्जुन उवाच । या प्रीतिर्धर्मराजे मे
 भीमे च बलिनां वरे । नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ४६
 मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना । गच्छ पुण्यकृतौ लोका-
 ङ्घ्रिविरोही नरो यथा ॥ ४७ ॥ वासुदेव उवाच । ये लोका मम

जानता हुआ भी मेरी निन्दा करता है यह उचित नहीं है, धर्मको
 समझे बिना दूसरेकी निन्दा करना अच्छी बात नहीं है ॥ ४१ ॥
 हाथमें शस्त्र ले सात्यकिको मारनेकी इच्छावाले भूरिश्रवाके हाथ
 को जो मैंने काटहाला यह मैंने कुछ अधर्म नहीं किया है ॥ ४२ ॥
 क्योंकि—हे तात ! शस्त्ररहित, रथरहित और कवचरहित अभि-
 मन्युको जो तुमने मारहाला ? उसकी क्या कोई मशंसा कर
 सकता है ? ॥ ४३ ॥ अर्जुनने जब इसप्रकार कहा, उस समय
 भूरिश्रवाने मस्तकसे पृथ्वीका स्पर्श किया और बायें हाथसे अपना
 दाहिना हाथ उठाकर अर्जुनके पास फेंक दिया ॥ ४४ ॥ हे महा-
 राज ! अर्जुनकी इन बातोंको सुनकर महाकान्ति वाले भूरि-
 श्रवाने नीचेको मुख कर लिया और चुपचाप बैठा रहा ॥ ४५ ॥
 (उसको शान्तभावको देखकर) अर्जुनने कहा, कि हे शलक-
 बड़े भाई ! धर्मराज, महाबली भीमसेन, नकुल और सहदेवके
 ऊपर जैसी मेरी प्रीति है, वैसा ही मेरा प्रेम तेरे ऊपर भी है ४६
 मैं और महात्मा श्रीकृष्ण तुम्हें आज्ञा देते हैं, कि तू उशीनरके
 पुत्र शिविकी समान पुण्यवानोंके लोकमें जा ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्ण

विमलाः सकृदिभाता ब्रह्माद्यैः सुरवृषभैरपीप्यमाणाः । तान् क्षिप्रं
 ब्रज सतताग्निहोत्रयाजिन्मत्तुन्यो मम गरुडोत्तमांगयानः ॥ ४८ ॥
 सञ्जय उवाच । उत्थितः स ह । शीनेयो विमुक्तः सौमदक्षिण ।
 खड्गमादय चिच्छित्तुः शिरस्तस्य महात्मनः ॥ ४९ ॥ निहतं
 प्राणहुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम् । इयेष सात्यकिर्हन्तुं शला-
 ग्रजमकल्पमम् ॥ ५० ॥ निकृताभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् ।
 क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्दमानः सुदुर्यनाः ॥ ५१ ॥ वार्यमाणाः स
 कुण्डलेन पार्थेन च महात्मना । भीमेन च करत्ताभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण
 च ॥ ५२ ॥ कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च । विक्रोशतां च

बोले, कि-हे निरन्तर यज्ञ करनेवाले राजन् भरिश्रवा ! ब्रह्मा
 आदि बड़े २ देवता जिन लोकोंमें जानेके लिये सदा लालायित
 रहते हैं, और जो सदा प्रकाशित रहते हैं ऐसे मेरे लोकोंमें,
 तू मेरी समान ही गरुड पर सवार होकर, शीघ्रही जा ॥ ४८ ॥
 सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! भूरिश्रवासे छूटाहुआ सात्यकि
 अबतक भूमिपर हीपड़ा था, अब वह उठा और उसने महात्मा
 शलके बड़े भाई निष्पाप भूरिश्रवाके मस्तकको काटनेकी इच्छा
 से हाथमें तलवार पकड़ी ॥ ४९ ॥ और अर्जुनके महारसे अध-
 मरे हुए, यज्ञमें बहुत्तसी दक्षिणा देनेवाले, योगरूप अन्यविषयमें
 आसक्त सूँढ़कटे हाथीकी समान भुजा कटेहुए भूरिश्रवाको
 मारना चाहनेलगा ॥ ४९-५० ॥ इस समय सब सेनामें कोला-
 हल मचगया, अर्जुन, महात्मा श्रीकृष्ण, भीम, चक्रवर्त्तक, अश्व-
 तथामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन और जयद्रथने उसको रोका,
 तथा कहा कि-अरे मूर्ख ! यह क्या करता है ? इसप्रकार सब
 योधाओंके निन्दा करनेपर और सब सेनाओंके दुन्दु मचाने
 रहनेपर भी सात्यकिने मरण तकके लिये अनशनव्रतको धारण
 करके बैठे हुए तथा रणमें अर्जुनने जिसकी भुजा काट डाली

सैन्यानामवधीतं धृतव्रतम् ॥ ५३ ॥ प्रायोपनिषाय रणे पाथेन-
च्छिन्नमाहवे । सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनापाहरच्छिरः ॥ ५४ ॥
नाभ्यनदन्त सैन्यानि सात्यकिन्तेन कर्मणा । अर्जुनेन हतं पूर्वं
यज्जघान कुरुद्वहम् ॥ ५५ ॥ सहस्राक्षसमं चैव सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥ ५६ ॥ अपूजयन्त तं
देवा विस्मितास्तस्य कर्मभिः । पक्षवादांश्च सुबहून् प्रावदंस्तव
सैनिकाः ॥ ५७ ॥ न बाष्ण्यस्यापराधो भवितव्यं हि तत्तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखतरो नृणाम् ॥ ५८ ॥ हन्त-
व्यश्चैव वीरेण नात्र कार्या विचारणा । विहितो ह्यस्य धात्रेव
मृत्युः सात्यकिराहवे ॥ ५९ ॥ सात्यकिरुवाच । न हन्तव्यो न
हन्तव्यं इति यन्मां प्रभाषत । धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकञ्चुकपा-

थी ऐसे भूरिश्रवाके मस्तकको रणमें काट डाला ॥ ५१—५४ ॥
अर्जुनके द्वारा अधमरे हुए कुरुवंशी भूरिश्रवाको
सात्यकिने तलवारसे मार डाला, इसलिये उसकी सेनाके
किसी योधाने प्रशंसा नहीं की ॥ ५५ ॥ देवता, सिद्ध,
चारण तथा मनुष्य युद्धमें अनशन व्रत धारण करके बैठे हुए,
इन्द्रकी समान राजा भूरिश्रवाको मरा हुआ देखकर उसकी पूजा
करने लगे, और उसके कर्मोंको देखकर दङ्ग होगए, तदनन्तर
तुम्हारे सैनिक बहुत समय तक (उपरिलिखित बात क्षत्रिय धर्माजु-
कूल हैं या नहीं इस पर) वादविवाद करते रहे ॥ ५६-५७ ॥ (अन्तमें
वे बोल उठे, कि—) इसमें सात्यकिका कुछ अपराध नहीं है,
यह ऐसे ही होने वाला था, अतः तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये,
क्योंकि क्रोधसे मनुष्योंको महादुःख होता है ॥ ५८ ॥ और
वीर पुरुषको चाहिये कि शत्रुको मार ही डाले इसमें विचार
की आवश्यकता नहीं है, विधानाने भूरिश्रवाकी मृत्यु इसी
प्रकार सात्यकिके हाथसे लिखी होगी ॥ ५९ ॥ अब सात्यकि

स्थिताः ॥ ६० ॥ यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविनाश्रुतः ।
 युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः ॥ ६१ ॥ मया त्वेनम्
 प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि । यो मां निष्पिप्य संग्रामे जीवन्
 हन्यात् पदा रूपा ॥ ६२ ॥ स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनि-
 व्रतः । चेष्टमानं प्रतीयाते सशुभं मां सचक्षुषः ॥ ६३ ॥ मन्थर्वं
 मृत इत्येवमेतद्वो बुद्धिलाघवम् । युक्तो ह्यस्व प्रतीयातः कृतो मे कुरु-
 पुङ्गवाः ॥ ६४ ॥ यत्तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षिता । सखद्गोऽ-
 स्य हृतो बाहुरेतेनैवास्मि वञ्चितः ॥ ६५ ॥ भवितव्यं हि यद्भावि
 दैवं चेष्टयतीव च । सोऽयं हृतो विमर्देऽस्मिन् किमत्राधर्मचेष्टितम् ६६

कहने लगा, कि—अरे ! धर्मके चोगेको धारण करनेवाले अधर्मी
 कौरवों ! तुम जो धर्मकी बातें बनाते हुए मुझसे कहते हो, कि—
 भूरिश्रवाको मारना उचित नहीं था ॥ ६० ॥ परन्तु आयुधरहित
 सुभद्रापुत्र अभिमन्युको जब तुमने युद्धमें मारा था, उस समय
 तुम्हारा यह धर्म कहाँ गया था ? ॥ ६१ ॥ मेरी प्रतिज्ञा है
 कि—कोई भी मनुष्य संग्राममें मेरा अपमान करके मुझे
 पृथ्वीमें गिराकर क्रोधसे लात मारे, यदि उस समय मैं
 जीवित बच जाऊँ, तो उस शत्रुको अवश्य ही मार डालूँगा चाहे
 वह मुनिव्रत ही धारण किये क्यों न बैठा हो, मैं बदला लेनेकी
 चेष्टा कर रहा था और मेरी भुजाओंमें भी वैसा ही बल था,
 तब भी तुमने आँखें होतेहुए यह समझा कि—सात्यकि मर गया
 यह तुम्हारी बुद्धिकी लघुता है ये, हे कुरुपुङ्गवों ! मैंने तो (बदला
 लेनेके लिये) उसको मारकर ठीक ही किया है ॥ ६२-६४ ॥
 और पार्थने जो मेरी ओर देख अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके
 लिये भूरिश्रवाकी भुजाको खड्गसहित काटकर गिरा दिया, इससे
 तो उन्होंने मेरी कीर्तिका नाश ही किया है ॥ ६५ ॥ परन्तु जो
 होना होता है वह अवश्य हुआ करता है और मारव्य अपना

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना ध्रुवि । न हन्तव्याः
 स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥ ६७ ॥ सर्वकालं मनुष्येण
 व्यसायवता सदा । पीडाकरमभिजाणां यत् स्यात् कर्त्तव्यमेव
 तत् ॥ ६८ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरव-
 पुङ्गवाः । न स्म किञ्चिदभाषन्त मनसा समपूजयन् ॥ ६९ ॥
 मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य च । मुनेरिवा-
 रण्यगतस्य तस्य न तत्र कश्चिद्वधमभ्यनन्दत् ॥ ७० ॥ मुनीलकेशं
 वरदस्य तस्य शूरस्य पारावतलोहिताक्षम् । अश्वस्य मेध्यस्य
 शिरो निकृत्तं न्यस्तं हविर्धानमिवान्तरेण ॥ ७१ ॥ स तेजसा
 शस्त्रकृतेन पूतो महाद्वे देहवरं विसृज्य । आकामदध्वं वरदो
 काम करा ही करता है, यह भी देवयोग है, सो यह रणमें भारा
 गया, इसमें मैंने कौनसा अधर्म किया ? ॥ ६६ ॥ पहिले वाल्मीकि
 जीने इस पृथ्वी पर यह श्लोक पढ़ा था कि—“ हे वानर ! तू
 कहता है, कि—स्त्रियोंको मारना उचित नहीं है, परन्तु काम
 करनेवाले मनुष्योंको जिसप्रकार भी शत्रुओंको पीडा पहुँचे, वही
 काम करना चाहिये ” ॥ ६८ ॥ संजयने कहा कि—हे राजन्
 धृतराष्ट्र ! सात्यकिके ऐसा कहने पर कौरवोंमेंसे कोई भी कुछ
 न बोला और मनमें उसकी प्रशंसा करनेलगे, ॥ ६९ ॥ परन्तु
 महायज्ञोंमें मंत्रपूत जलोंसे पवित्र हुए, यशस्वी, सहस्रोंका दान
 करनेवाले और मुनियोंकी, समान वनमें बसनेवाले राजा भूरि-
 श्रवाके वधका (प्रकटरीतिसे) किसीने अभिनन्दन नहीं किया ७०
 वरदान देनेवाले शूरवीर भूरिश्रवाका श्याम केश और कवूतरके
 नेत्रोंकी समान लाल रङ्गके नेत्रोंवाला रणमें पड़ाहुआ मस्तक,
 यज्ञकी वेदी पर पड़ेहुए अश्वमेध यज्ञके पवित्र घोड़ेके मस्तककी
 समान शोभा पारहा था ॥ ७१ ॥ याचकोंकी कामनाओंको
 पूरा करनेवाला सबसे श्रेष्ठ, मनुष्योंमें माननीय भूरिश्रवा इस
 महायुद्धमें शस्त्रसे मरण पानेके कारण पवित्र हो, अपने

वराहो व्यावृत्त्य धर्मेण परेण रोदसी ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवावधे

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः । क्षीर्णः
सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ॥ १ ॥ स कथं कौरवेयेण
समरेष्वनिवारितः । निगृह्य भूरिश्रवसा यत्नाद्भुवि निशक्तिनः २
संजय उवाच । मृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा । यथा
च भूरिश्रवसो यम ते संशयो नृप ॥ ३ ॥ अत्रेः पुत्रोऽभवत् सोमः
सोमस्य तु बुधः स्मृतः । बुधस्यैको महेन्द्राधः पुत्र आसीत् पुत्त्र-
रवाः ॥ ४ ॥ पुरुरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः सुतः । नहुषस्य
ययातिस्तु राजा देवर्षिसम्मतः ॥ ५ ॥ ययातिर्देवयान्या तु यदुज्य-

देहको त्यागकर, अपने पुत्रके तेजसे पृथ्वी और आकाशको
व्याप्त करता हुआ ऊर्ध्वलोकमें चला गया ॥ ७२ ॥ एकसाँ तैना-
लीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे संजय ! युधिष्ठिरसे प्रतिज्ञा करके
अर्जुनके पासको आता हुआ सात्यकि द्रोण, कर्ण, विकर्ण,
और कृतवर्मा आदि किसीके भी जीतनेमें न आकर सेनासमूहके
पार होगया, १ उस समरमें पीढ़ेको न हटनेवाले वीर सात्यकिको
युद्ध भूमिमें भूरिश्रवाने पकड़कर दलात्कारसे पृथ्वीमें कैसे दे पटकार
संजयने उत्तर दिया, कि-हे राजन् ! तुम सात्यकि और भूरि-
श्रवाकी उत्पत्तिको नहीं जानते हो, अतः मैं तुम्हें उनकी उत्पत्ति
सुनाता हूँ; सुनो ॥ ३ ॥ "अत्रिका पुत्र सोम हुआ, सोमके पुत्र
नामक पुत्र हुआ बुधके इन्द्रकी समान प्रभाववाला पुरुरवा नामका
एक पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ पुरुरवाके आयु नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ
आयुके नहुष नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और नहुषके ययाति नामक
पुत्र हुआ, उस राजाकी देवता और ऋषि भी प्रतिष्ठा करने थे ५

ष्टोऽथवत् सुतः । यदोरभूदन्ववाये देवमीढ इति स्मृतः ॥६॥ याद-
वस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसम्मतः । शूरस्य शौरिर्नृवरो वसु-
देवो महायशाः ॥ ७ ॥ धनुष्यनवरः शूरः कार्तवीर्यसामो युधि ।
तदीर्यस्तस्य तत्रैव कुले शिनिरभून्नृप ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नेव काले
तु देवकस्य महात्मनः । दुहितुः स्वयंवरे राजन् सर्वत्रसमागमेऽ
तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाशु वै । निर्जित्य पार्थिवान् सर्वा-
न्त्रथमारोपयच्छिनिः ॥ १० ॥ तां दृष्ट्वा देवकीं शूरो रथस्थां पुरु-
षर्षभ । नामृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप ॥ ११ ॥ तयो-
युद्धमभूद्राजन् दिनार्द्धञ्चित्रमद्भुतम् । बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं
पुरुषर्षभ ॥ १२ ॥ शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसन्न भुवि पातितः ।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदाहतः ॥ १३ ॥ मध्ये राजसह-

ययातिका देवयानीके पेटसे यदु नामका ज्येष्ठ पुत्र हुआ, यदुके
वंशमें देवमीढ नामक राजा हुआ ॥६॥ उसका पुत्र तीनों लोकोंमें
पूजित यदुवंशी शूर नामक राजा हुआ, शूरके मनुष्योंमें श्रेष्ठ
महायशस्वी वसुदेव नामका पुत्र हुआ, वह धनुर्विद्यामें इकट
और युद्धमें कार्तवीर्यकी समान था, उस समय उसके ही कुलमें
हे राजन् ! शिनिनामक राजा भी उसकी ही समान बली हुआ
॥ ७ ॥ ८ ॥ हे राजन् ! इसी समय महात्मा देवककी पुत्री
देवकीका स्वयंवर रचागया था उसमें सब देशोंके राजे आये थे
उस समय राजा शिनिने सब राजाओंको जीतकर, देवी देवकीको
वसुदेवजीके लिये, रथपर चढा लिया ॥ १० ॥ हे राजन् ! देवकी
को शिनिके रथपर बैठी देख शूरवीर राजा सोमदत्त सह न
सका ॥ ११ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजन् ! इसकारण उन दोनों
बलवानोंमें आधे दिनतक अत्यन्त अद्भुत बाहुयुद्ध होता रहा १२
तदनन्तर चारों ओर इकट्ठे होकर देखनेवाले सहस्रों राजाओंके
सामने ही शिनिने सोमदत्तको बलपूर्वक पकड़कर ऊपरको उठा
पृथ्वीमें दे मारा और उसके केश पकड़कर हृदयमें लात मार

स्त्राणां।मैत्रकाणां समन्ततः । कृपया च पुनस्तेन स जीवेति विस-
र्जितः ॥ १४ ॥ तदवस्थः कृनस्तेन सोमदत्तोऽयमारिष । प्रासा-
दयन्महादेवमर्पवशमास्थितः ॥१५॥ तस्य तुष्टो महादेवो वराणां
वरदः प्रभुः । वरेण हृन्दयामास स तु वरे वरं नृपः ॥ १६ ॥
पुत्रमिच्छामि भगवन् यो निपात्य शिनेः सुतम् । मध्ये राजसह-
स्राणां पदा हन्याच्च संयुगे ॥ १७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रत्वा सोम-
दत्तस्य पार्थिव । एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत ॥१८॥
स तेन वरदानेन लब्धवान् भूरिदक्षिणम् । अपातयच्च समरे सौम-
दत्तिः शिनेः सुतम् ॥ १९ ॥ पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताह-
यत् । एतत्ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २० ॥ न हि

तलवारसे शिर काटनेके लिए उद्यत होगया, फिर दया आजानेके
कारण उसको छोड़दिया और कहा, कि-जा मैं तुझे बिना मारे
ही छोड़े देता हूँ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ऐसी दुर्दशा होनेके कारण
सोमदत्तको बड़ा भारी क्रोध चढ़ा, इसकारण वह तप करके महा-
देवजीको प्रसन्न करने लगा ॥ १५ ॥ महात्माओंको वर देनेवाले
भगवान् शङ्कर शीघ्र ही उसके ऊपर प्रसन्न होगए और उससे
वर माँगनेको कहा, तब उस राजाने यह वर माँगा, कि-॥१६॥
हे भगवन् ! मैं यह वर चाहता हूँ, कि-मेरे ऐसा पुत्र हो जो
सहस्रों राजाओंके सामने शिनिके पुत्रको भूमिपर पटककर उसकी
छातीमें लात मारे ॥ १७ ॥ हे राजन् ! सोमदत्तकी इस बातको
सुनकर भगवान् शङ्कर "एवमस्तु" कहकर तहाँ ही अन्तर्धान
होगए ॥ १८ ॥ शिवजी के वरके प्रभावसे सोमदत्तने बहुत
सी दक्षिणा देनेवाला भूरिश्रवा नामक पुत्र पाया, उस ही सोम-
दत्तके पुत्रने रणमें शिनिके पुत्रको भूमिमें पटक, सब राजाओंके
सामने उसकी छातीमें लात मारी थी, हे राजन् ! जो तुमने मुझसे
प्रश्न किया था, उसका उत्तर मैंने आपको देदिया ॥१९-२०॥

शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभैः । लब्धलक्ष्पाश्च संग्रामे
बहुशस्त्रिणीधिनः ॥ २१ ॥ देवदानवगन्धर्वान्विजेतारो ह्यविस्मिताः ।
स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः ॥ २२ ॥ न तुल्यं वृष्णि-
भिरिह दृश्यते किञ्चन प्रभो । भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भर-
तर्षभ ॥ २३ ॥ न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः । न देवा-
सुरगन्धर्वा न यत्तोरगराक्षसाः ॥ २४ ॥ जेतारो वृष्णिवीराणां
किं पुनर्मानुषा रणे । ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिद्रव्येऽप्यहिसकाः २५
एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्याश्चिद्वापि । अर्थयन्तो न
चोत्सिक्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ २६ ॥ सपर्यन्तावमन्यन्ते
दीनानभ्युद्वरन्ति च । नित्यं देवपरा दान्तास्त्रातारश्चाविक-

महापुरुष भी रणमें सात्वतिको नहीं जीत सकते, फिर दूसरोंकी
तो बात ही क्या ? सात्वतवंशी संग्राममें निशाने पर अचूक तीर
मारनेवाले हैं और विचित्र युद्ध करते हैं २१ । वे देवता, दानव तथा
गन्धर्वोंको भी जीत लेते हैं, सर्वदा सावधान रहते हैं और सर्वदा
अपने पराक्रमसे ही विजय करनेवाले हैं वे कभी पराधीन होकर
रहनेवाले नहीं हैं ॥ २२ ॥ हे सपर्यन्त राजन् ! इस पृथ्वी पर श्रुत
वर्तमान और भविष्यत् कालमें भी कोई ऐसा नहीं दीखता जो
जो बलमें वृष्णिवंशियोंकी बराबरी करे ॥ २३ ॥ वे अपनी
जाति (वालों) का अपमान नहीं करते हैं और वड़ोंकी आज्ञामें
चलते हैं, रणमें देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प और राक्षस भी
वृष्णिवीरोंको नहीं जीत सकते, फिर मनुष्योंकी तो शक्ति ही
क्या है ? वे ब्रह्मद्रव्य, गुरुद्रव्य और जातिद्रव्यकी रक्षा करने
वाले, अहिंसक चाहे जैसी आपत्तियों भी मनुष्योंकी रक्षा करने
वाले धनाढ्य, निरभिमानी, ब्राह्मणोंके ऊपर श्रद्धा रखनेवाले
और सत्यवादी हैं ॥ २४-२६ ॥ वे शक्तिमानोंका अपमान नहीं
करते हैं तथा दीनोंका उद्धार करनेवाले, सदा देवपूजा करनेवाले

त्यनाः ॥ २७ ॥ तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते ।
अपि मेरुं बहेत्कश्चिद् तरेद्वा मकरालयम् ॥ २८ ॥ न तु वृष्णि-
प्रवीराणां समेत्यान्तं व्रजेन्नृप । एतच्च सर्वमाख्यातं यत्र तं
संगयो विभो । कुरुराज नरश्रेष्ठ तव व्यपनयो महान् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रशं-
सायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तदवस्थे हते तस्मिन् भूरिश्रवसि कौरवे ।
यथा भूयोऽभवद्युद्धं तन्ममाच्चञ्च सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच ।
भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत । वामुदेवं महाबाहुरर्जुनः
समचूचुदत् ॥ २ ॥ चोदयाश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः ।

चतुर, रत्नक है और अधिक बकवाद करनेवाले नहीं हैं, इस कारण
ही वृष्णिवीरोंका प्रताप कभी कम नहीं होता है, कदाचिन् कोई
मेरु पर्वतको उठा लेय और समुद्रको (बिना ही नावके) पार
कर जाय, परन्तु हे राजन् ! वृष्णिवीरोंसे लड़कर उनका नाश
कर सके ऐसा कोई भी नहीं है, हे प्रभो ! जिस बातमें आपको
सन्देह था, वह सब बात मैंने आपको सगभादी, परन्तु हे मनुष्यों
में श्रेष्ठ कौरवाधिपते ! यह सब तुम्हारे ही घोर अन्यायके कारण
होरहा है ॥ २७-२९ ॥ एकसी चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-जब योगसमाधिमें स्थित कुरुवंशी भूरि-
श्रवाको सात्यकिने मार डाला तब फिर जिसप्रकार युद्ध हुआ
हो उसका वर्णन कर ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे भारत !
जब भूरिश्रवाका परलोकावास होगया, तब महाभुज अर्जुन
भीकृष्णसे कहने लगा, कि-॥ २ ॥ हे हृषीकेश ! राजा जयद्रथकी
ओरको शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँकी, हे पुण्डरीकाक्ष ! जयद्रथ तीन
धर्मोंमेंसे आज एक धर्मकी शरण होगा, यदि वह लड़ते २ मारा
गया तो शीघ्र ही स्वर्ग पावेगा, यदि भागना हुआ रणमें मारा

श्रूयते पुण्डरीकाक्ष त्रिषु धर्मेषु वर्तते ॥ ३ ॥ प्रतिज्ञां सफला-
 श्चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ । अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवा-
 करः ॥ ४ ॥ एतद्दि पुरुषव्याघ्र महदभ्युदितं मया । कार्यं संर-
 क्ष्यते चैष कुरुसेनामहारथैः ॥ ५ ॥ यथा नाभ्येति सूर्योऽस्तं यथा
 सत्यं भवेद्वचः । चोदयाश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्र-
 थम् ॥ ६ ॥ ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान् हयान् ।
 हयश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥ ७ ॥ तं प्रयान्तममोत्रेषुमुत्प-
 तद्भिरिवाशुगैः । त्वरमाणां महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन् ८
 दुर्योधनश्च कर्णश्च दृपसेनोऽथ मद्राट् । अश्वत्थामा कृपश्चैव
 स्वयमेव च सैन्यवः ॥ ९ ॥ समासाद्य तु वीथस्तुः सैन्यं सगुण-

जायगा तो नरकमें पड़ेगा और मेरे दरसे अपने घरको भाग
 जायगा तो अपयश पावेगा ॥ ३ ॥ हे निर्दोष महाभुज कृष्ण !
 आपको मेरी प्रतिज्ञा भी सफल करवानी चाहिये, देखिये । सूर्य
 शीघ्रतासे अस्ताचलकी ओरको जारहा है ॥ ४ ॥ मैंने भी बड़ी
 भारी प्रतिज्ञा की है, इसलिये ही कौरवसेनाके महारथी भी
 उसकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे कृष्ण ! जिसप्रकार सूर्य अस्त
 न हो और मेरा वाक्य सच्चा हो तैसे ही आप शीघ्रतासे घोड़ों
 को हाँकिये, जिससे मैं जयद्रथको मारसकूँ ॥ ६ ॥ यह सुनकर
 अश्वविद्यामें प्रवीण महाभुज श्रीकृष्णने चौंदीकी समान स्वेत
 घोड़ोंको जयद्रथके रथकी ओरको हाँका ॥ ७ ॥ अचूक निशाने
 वाले अर्जुनको वायुकी समान शीघ्रतासे चलनेवाले घोड़ोंसे
 जुते रथमें बैठकर जयद्रथके रथकी ओरको जाते देखकर हे महा-
 राज ! कुरुसेनामेंके दुर्योधन, कर्ण, दृपसेन, शल्य, अश्वत्थामा
 कृपाचार्य और स्वयं सिन्धुराज जयद्रथ आदि मुख्य २ पुरुष
 क्षण भरमें उसके ऊपरको चढ़ दौड़े ॥ ८ ॥ ९ ॥ अर्जुन
 सामने खड़ेहुए सिन्धुराजके पास पहुँचकर, क्रोधसे प्रदीप्त हुए

स्थितम् । नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां संमत्तग्निर्दहन्निव ॥ १० ॥
 ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत् । अर्जुनं मेवैव संयान्तं
 जयद्रथवधं प्रति ॥ ११ ॥ अयं स वैकर्त्तन युद्धकालो प्रदर्शनं स्वा-
 त्पन्नं महात्मन् । यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन जयद्रथः कर्णं तथा
 कुरुष्व ॥ १२ ॥ अल्पावशेषो दिवसा नृवीर विधातयस्वाद्य रिपुं
 शरीरैः । दिनक्षयम्प्राप्य नरमवीर ध्रुवो हि नः कर्णं जयो भवि-
 ष्यति ॥ १३ ॥ सैन्धवे रक्षमाणो तु सूर्यस्यास्तमनं प्रति । पिश्या-
 प्रतिक्षाः क्रान्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ १४ ॥ अर्जुनायाञ्च
 भुवि मुहूर्त्तमपि मानद । जीवितुं नात्सहेरन् वै भ्रातरांस्त्य सहा-
 नुगाः ॥ १५ ॥ विनष्टैः पाण्डवैश्च सर्शङ्गवनकाननाम् । वगु-
 न्धरापिमां कर्णं भोक्ष्यामो हतकंटकाम् ॥ १६ ॥ देवेनोपहतः पार्थो

नेत्रोंसे जयद्रथको भस्म करताहुआसा देखनेलगा ॥ १० ॥ नव
 दुर्योधनने समझा, कि-यह अब जयद्रथको मारनेके लिएउसकी
 ओरको वढेगा अतः उसने शीघ्रतासे कर्णसे कहा, कि-हे वैक-
 र्तन ! अब युद्धमें अनीका अवसर आगया है, अतः हे महात्मन् !
 अब तुम अपना पराक्रम दिखाओ, कि-जिससे अर्जुन जयद्रथ
 को न मारसके ॥ १२ ॥ हे नरवीर ! अब दिन थोड़ा रहगया
 है, अतः आज तू बाणोंसे शत्रुओंका संहार कर, हे नरवीर कर्ण !
 किसीप्रकार दिन बीतगया तो हमारी जय अवश्य ही होगी १३
 क्योंकि-सूर्यास्त तक यदि हमने जयद्रथकी रक्षा करली तो
 अर्जुन प्रतिज्ञा भूटी होनेसे स्वयं ही अग्निमें भस्म होकर मरजायगा
 और हे मानदाता कर्ण ! यह पृथ्वी यदि क्षण भरको भी अर्जुन-
 रहित होगई तो फिर उसके भाई और अनुचर क्षणभर भी
 जीवित नहीं रह सकेंगे ॥ १५ ॥ हे कर्ण ! पाण्डवोंके मरजाने
 पर हम पर्वत, वन और काननोंसहित इस पृथ्वीपर निष्कण्टक
 होकर राज्य करेंगे ॥ १६ ॥ हे मानद कर्ण ! आज अर्जुनका

विपरीतश्च मानद । कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवाचसे १७
 नूनगात्रमविनाशाय पापद्वयेन किरीटिना । प्रतिज्ञायं कृता कर्ण जय-
 द्रथवधं प्रति ॥ १८ ॥ कथं जीवति दुर्धर्षं त्वयि राधेय पाण्डुनः ।
 अनस्तं गत आदित्ये हन्यात् सैन्धवकं नृपम् ॥ १९ ॥ रक्षितं मद्र-
 राजेन कृपेण च महात्मना । जयद्रथं रथमुखे कथं हन्याद्वनज्जयः २०
 द्रौणिना रक्ष्यमाणञ्च मया दुःशासनेन च । कथं प्राप्स्यति वीम-
 रसुः सैन्धवं कालचोदितः ॥ २१ ॥ युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते
 च दिवाकरः । शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद ॥ २२ ॥
 स त्वं कर्ण मया सार्द्धं शूरैश्चान्यैर्महारथैः । द्रौणिना त्वं हि सहितो
 मद्रक्षेण कृपेण च ॥ २३ ॥ युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे ।
 एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष ॥ २४ ॥ दुर्योधनमिदं वाक्यं

मारब्ध बलदाहूआ मालूम होना है जो वह कार्याकार्यका विचार
 न करके जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा कर बैठा है ॥ १७ ॥ हे कर्ण !
 अपने विनाशके लिए ही उसने जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा की
 है ॥ १८ ॥ हे राधापुत्र ! भला तूम सरीखे दुर्धर्ष पुरुषके जीने
 रहते अर्जुन सूर्यास्तसे पहले राजा जयद्रथको कैसे मारसकता
 है ॥ १९ ॥ जब मुहानेके ऊपर जल्य, तथा महात्मा कृपाचार्य जय-
 द्रथकी रक्षा कर रहे हैं तो वह उसे कैसे मार सकेगा ? ॥ २० ॥
 कालका मेरणा कियाहुआ अर्जुन द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, दुःशा-
 सन तथा मेरी ब्रत्रछायामें रहनेवाले जयद्रथको कैसे मारसकेगा २१
 बहुतसे शूर युद्ध कर रहे हैं और सूर्य भी ढलता जाता है, अतः
 हे मानद ! मैं समझता हूँ, कि-अर्जुन जयद्रथको पा नहीं
 सकेगा ॥ २२ ॥ अतः हे कर्ण ! तू अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य
 तथा दूसरे योधाओंको साथमें ले जोरके साथ अर्जुनसे युद्ध
 मचा, हे राजन ! तुम्हारे पुत्रके ऐसा कहनेपर राधापुत्र कर्ण कुरु-
 श्रेष्ठ दुर्योधनसे यह कहनेलगा, कि-हठ महार करनेवाले धनुर्ध

प्रत्युवाच कुरुत्तमम् । हृदयक्षयेण शूरेण भीमसेनेन धन्विना ॥ २५ ॥
 भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालीरनेकशः । स्थातव्यमिति तिष्ठापि
 रणे सम्प्रति धानद ॥ २६ ॥ नाहमिह नि किञ्चिन्मे सन्तप्तस्य
 यद्देषुभिः । योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम ॥ २७ ॥
 यथा पाण्डवमुख्योऽसी न हनिष्यति सैन्यवम् । न हि मे युध्वमा-
 नस्य सायकानस्यतः शितान् ॥ २८ ॥ सैन्यं प्राप्स्यते वीरः
 सव्यसाची धनञ्जयः । यत्तु भक्तिमता कार्यं सततं हिनक्ता-
 क्षित्वा ॥ २९ ॥ तत्करिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः ।
 सैन्यवार्धे परं यत्नं करिष्याम्यद्य संयुगे ॥ ३० ॥ त्वत्प्रियार्थं महा-
 राज जयो दैवे प्रतिष्ठितः । अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वव्यपा-
 श्रितः ॥ ३१ ॥ त्वदर्थं पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः । अद्य

भीमने रणमें अनेकों बाण मारकर मेरे शरीरको बहुत ही घायल
 कर दिया है, अतः बाणोंसे सन्तप्त हुए मेरे अङ्गोंमें जा भी हिलने
 डुलनेकी शक्ति नहीं है, तो भी हे मानद ! मुझे रणमें खड़ा रहना
 चाहिए, भागना नहीं चाहिये इसलिये ही खड़ा हूँ, क्योंकि-मेने
 अपना जीवन तुम्हारे हाथमें दे दिया है अतः जिसप्रकार अर्जुन
 जयद्रथको न मार सके, वैसेके लिए यथाशक्ति युद्ध करूँगा, जब
 मैं युद्धके समय तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ूँगा, तो उस समय शूरीर
 सव्यसाची अर्जुन जयद्रथको पा नहीं सकेगा हे कौरव्य ! भक्ति-
 मान् हितचिन्तकको जो कुछ करना चाहिए, वह मैं सब कुछ
 करूँगा, परन्तु जब प्रारब्धके अधीन है, हे महाराज ! मैं जय-
 द्रथके लिए युद्धमें बड़ा भारी परिश्रम करूँगा, परन्तु विजय
 दैवके वशमें है, आज मैं, युद्धमें जितना बल है, उस सबको
 लगाकर अर्जुनसे युद्ध करूँगा, परन्तु हारजीत दैवाधीन है,
 हे कुरुक्षेत्र ! मेरे और अर्जुनके रोंगटे खड़े करनेवाले दागला
 युद्धको आज सब सेनाएँ देखें इसप्रकार कहें तथा दुःखिन

युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ३२ ॥ पश्यन्तु सर्वसैन्यानि
 दास्यन् लोमहर्षणम् । कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः ३३
 अर्जुनो निशितैर्बाणैर्ज्जघान तव बाहिनीम् । चिच्छेद निशितैर्बाणैः
 शूराणामनिवर्त्तिनाम् ॥ ३४ ॥ भुजान् परिघसङ्काशान् हस्ति-
 हस्तोपमात्रणैः । शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः ३५
 हस्तिहस्तान् हयग्रीवान् रथाक्षाश्च समन्ततः । शोणिताक्तान् हया-
 रोहान् घृहीतप्रासतोमरान् ॥ ३६ ॥ क्षुरैश्चिच्छेद वीभत्सुर्द्विधैर्कैकं
 त्रिधैव । हया वारणमुख्याश्च प्रापन्त समन्ततः ॥ ३७ ॥
 ध्वजारश्चक्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च । कक्षगगिरि-
 वोद्धूतः प्रदहंस्तव बाहिनीम् ॥ ३८ ॥ अचिरेण महीं पार्थश्चकार
 रुधिरोत्तराम् । हतभूयिषोऽप्यन्तर् कृत्वा तव बलं बली ॥ ३९ ॥

सम्भाषण कर रहे थे कि—इतनेमें ही अर्जुन तीक्ष्ण बाणोंसे
 तुम्हारी सेनाका संहार करने लगा, वह रणमें शूरवीरोंकी परिघ
 और हाथीकी सूँड़ोंकी समान भुजाओंको तीक्ष्ण बाण मारकर
 काटने लगा और महाभुज अर्जुन तीक्ष्ण बाणोंसे उनके शिरोंको
 काटने लगा ॥ ३२-३५ ॥ वीभत्सु अर्जुन क्षुर नामक बाण
 मारकर सामने लड़नेको आयेहुए शूरोंके परिघ और हाथीकी
 सूँड़की समान भुजदण्डोंके, मस्तकोंके, हाथियोंकी सूँड़ोंके
 घोड़ोंकी गर्दनोके तथा रथोंके धुरोंके प्रास तोमर बाँधे रक्तमें न्हाए
 हुए घुड़सवार योधाओंके और श्रेष्ठ २ हाथी घोड़ोंके दो २ और
 तीन २ टुकड़े करने लगा उस समय चारों ओरसे ध्वजाएँ, छत्र, धनुष
 चमर और शिर कट २ कर टपाटप गिरने लगे, , प्रचण्ड अग्निमें
 घास फूसके भस्म होनेकी समान ज्ञानभरमें ही अर्जुनने तुम्हारी
 सेनाका संहार कर डाला ॥ ३६—३८ ॥ युद्ध करता हुआ
 सत्यपराक्रमी अर्जुन तुम्हारी सेनाके बहुतसे योधाओंका संहारकर
 जयद्रथके समीप पहुँच गया हे भरतश्रेष्ठ ! सात्यकि और

आससाद् दुरार्धर्षः सैन्यं सत्यविक्रमः । वीर्यधूर्वागमेनेन सा-
 त्वतेन च रक्षितः ॥ ४० ॥ प्रवर्धो भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ।
 तं तथावस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसम्पदा ॥ ४१ ॥ नाम्प्यन्त गृहे-
 ष्वासाः फाल्गुनं पुरुषर्षभाः । दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्र-
 राट् ४२ अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्यवः संख्याः सैन्यव-
 स्पार्थे समावृण्वन् किरीटिनम् ४३ नृत्यन्तं रथमार्गेण धनुर्ध्यातलनिः-
 स्वनैः । संग्रामकोविदं पार्थ सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४४ ॥ अभीनाः
 पर्यवर्तन्त व्यादितास्यगिवान्तकम् । सैन्यं पृष्ठतः कृत्वा गिर्या-
 सन्तोऽर्जुनाच्युतौ ॥ ४५ ॥ सूर्यास्तमनभिच्छन्तो खोदितायति
 भास्करे । ते भुजैर्भोगिभोगार्धेनृप्यानम्य सायकान् ॥ ४६ ॥
 समुच्चुः सूर्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति । ततस्तानस्यमानांश्च
 किरीटी युद्धदुर्मदः ॥ ४७ ॥ द्विधा विधावृषैर्कैकं द्वित्वा विव्याध

भीमसेनसे रक्षित दुरार्धर्ष अर्जुन प्रज्वलित अग्निकी समान
 शोभा पानेलगा, इसप्रकार अपने पराक्रमके चल पर अर्जुनका
 खडारहना' महाधनुषधारी तुम्हारे योधाओंको सदा नहीं हुआ
 इसलिये दुर्योधन, कर्ण वृषसेन, शक्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और
 स्वयं जयद्रथ ये सब जयद्रथके लिए लड़नेको तयार हो गए, धनुष
 प्रत्यश्चा और तालियोंकी ध्वनिके साथ रथोंके मार्गमें घूमनेहुए
 संग्राममें चतुर अर्जुनको युद्धविशारद पूर्वोक्त सब योधाओंने घेर
 लिया ॥ ३६-४५ ॥ वे सब जयद्रथको पीछे रखकर मुख फाड़े
 हुए फालकी समान अर्जुनके सामने आ श्रीकृष्ण और अर्जुनके
 मारनेकी इच्छासे, घूमनेलगे ॥ ४५ ॥ वे सूर्यके लाल २ होजाने
 पर उसके अस्त होजानेकी उत्कण्ठाके कारण, सर्पके शरीर
 की समान अपने धनुषोंको नमा, सूर्यकी समान कान्निवाले बाणों
 को अर्जुनके ऊपर छोड़नेलगे, परन्तु युद्धदुर्मद किरीटीने उनके
 छोड़ेहुए बाणोंके दो २ तीन २ और आठ २ टुकड़े करवाले

तान् रथान् । सिंहलांगूलकेतुस्तु दर्शयञ्छक्तिमात्मनः ॥ ४८ ॥
 शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् । स विध्वा दशभिः पार्थ
 वासुदेवञ्च सप्तभिः ॥ ४९ ॥ अतिष्ठद्रथमार्गेषु सैन्धवं परिपाल-
 यन् । अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्व एव महारथाः ॥ ५० ॥ महता रथ-
 वंशेन सर्वतः प्रत्यवारयन् । विस्फारयन्तथापानि विमुञ्जन्तश्च
 सायकान् ॥ ५१ ॥ सैन्धवं पर्य्यरक्षन्त शासनात्तनस्य ते । तत्र
 पार्थस्य शूरस्य बाहोर्वलमहरयत् ॥ ५२ ॥ इषुणामक्षयत्वञ्च
 धनुषो गाण्डिवस्य च । अस्त्रैरस्त्राणि सम्वाय्य द्रोणेः शारद्वतस्य
 च ॥ ५३ ॥ एकैकं दशभिर्वाणैः सर्वानेव समार्पयत् । तं द्रोणिः
 पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ॥ ५४ ॥ दुर्योधनस्तु विंशत्या
 कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः । त एनयभिर्गजैर्जन्तो विन्ध्यन्तरश्च पुनः

और उन रथियोंको वींधनेलगा हे राजन् । उस समय सिंहकी
 पूँछके चिन्हवाली ध्वजावाला अश्वत्थामा अपने पराक्रमको
 दिखाता हुआ अर्जुनको रोकनेलगा, वह दश वाणोंसे
 अर्जुन और सात वाणोंसे श्रीकृष्णको वींध कर जयद्रथको
 वचाता हुआ रथोंके मार्गमें खडारहा, तदनन्तर सब ही महारथी
 श्रेष्ठ कौरव धनुषोंको कँपाते हुए और वाणोंको छोड़ते हुए
 रथोंके बड़े भारी समूहसे अर्जुन को घेरकर तुम्हारे पुत्रकी
 आज्ञासे सिंधुराजकी रक्षा करनेलगे, उस समय अर्जुनकी भुजाओं
 का बल प्रकट हुआ ॥ ४८-५२ ॥ और उसके वाणोंका अक्षय-
 पना तथा गांडीव धनुषका बल देखनेमें आया उसने अपने अस्त्रों
 से द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और कृपाचार्यके वाणोंको काट फिर
 दश २ वाण मारे तदनन्तर अश्वत्थामाने पचीस, वृषसेनने सात,
 दुर्योधनने बीस तथा कर्ण और शल्यने तीन २ वाणोंसे अर्जुनको
 वींधवाला बारम्बार गर्जना करतेहुए और वाण छोड़ते हुए
 तथा धनुषोंको कँपातेहुए उन्होंने अर्जुनको चारों ओरसे घेर

पुनः ॥५५॥ विधुन्वन्तरच चापानि सर्वतः पर्यवारयन् । श्लष्टं च
 सर्वतरचकूरयथमण्डलाभाशु ते ॥५६॥ सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वर-
 माणा महारथाः । ते एतमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूपि च ॥५७॥
 सिपिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिमेघा इवाम्बुभिः । ते महाद्वाणि दिव्या-
 नि तत्र राजन् व्यदर्शयन् ॥५८॥ धनञ्जयस्य गात्रे तु शूराः परि-
 घबाहवः । हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥५९॥ आस-
 साद मुदुर्दुर्षः सैधवं सत्यविक्रमः । तं कर्णः संग्रगे राजन् प्रत्य-
 वारपदाशुगेः ॥ ६० ॥ मिपतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत ।
 तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद्रणान्निरे ॥ ६१ ॥ नूनपुत्रं महा-
 बाहुः सर्वसैन्यस्य परयतः । सात्वतस्तु त्रिभिर्बाणैः कर्णं विध्वाध
 मारिष ॥६२॥ भीमसेनस्त्रिभिरर्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः । नान्
 कर्णः प्रतिविध्वाध पट्ट्या पट्ट्या महारथः ॥ ६३ ॥ तद्युद्धमभव-

लिया सूर्यास्त होनेके अभिलाषी शीघ्रता करतेहुए वे महारथी
 अलग २ खड़ेहुए अपने रथोंको सटाकर मण्डलाकारसे खड़े
 होगए, जैसे मेघ गर्ज २ कर पहाडके ऊपर जलकी झड़ी लगा
 देते हैं तैसे ही वे इसके ऊपर गर्ज २ कर बाणोंको बरसाने लगे
 हे राजन् ! उस समय परिघकी समान मोटी २ भुजाओंवाले शूर
 धनञ्जयके शरीरको ताककर बड़े २ दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करने
 लगे परन्तु दुराधर्ष सत्यपराक्रमी बलवान् अर्जुन तुम्हारी सेनाके
 बहुतसे योधाओंको मारकर सिन्धुराजकी ओरको ही बढ़ने लगा
 हे राजन् ! उस समय भीमसेन और सात्यकिके सामने कर्ण
 रणमें बाण छोड़कर अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोकने लगा, परन्तु
 महाबाहु अर्जुनने सब सेनाके सामने रणभूमिमें कर्णके दश
 बाण मारे और हे राजन् ! सात्यकिने भी तीन बाणोंसे कर्णको
 घायल कर दिया, और भीमसेनने भी तीन बाण मारे अर्जुनने
 फिर सात बाण मारे, परन्तु महारथी कर्णने उन सर्वोंको

द्राजन् कर्णस्य बहुभिः सहातत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिपः ४
यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीनूयान् पथ्यवारयत् । फाल्गुनस्तु महाबाहुः
कर्णं वैकर्त्तनं मृधे ॥ ६५ ॥ सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत् ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ६६ ॥ शरैः पंचाशता
वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत । तस्य तन्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत रणे-
ज्जुनः ॥ ६७ ॥ तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा त्रिव्याधेनं स्तनांतरे ।
सायकैर्नवभिर्निरस्त्वरमाणो धनंजयः ॥ ६८ ॥ अथान्यद्भनुरा-
दाय सूतपुत्रः प्रतापवान् । सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्ड-
वम् ॥ ६९ ॥ तं बाणदृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम् । व्यधमत्
सायकैः पार्थः शलभानिव धारुतः ॥ ७० ॥ छादयामास स तदा
सायकैरर्जुनो रणे । पश्यतां सर्वयोधानां दर्शयन् पाणिलाघवम् ७१

साठ २ बाणोंसे घायल करदिया ॥ ५३-६३ ॥ हे राजन् !
यह युद्ध कर्णने अनेकोंके साथ किया था, हे राजन् ! उस समय
हमने सूतपुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि-कोधमें भराहुआ वह
अकेला ही तीन रथियोंसे लड़रहा था, उस समय महाशुन अर्जुन
ने सौ बाणकर कर्णके सब मर्मस्थानोंको घायल करदिया, इससे
प्रतापी कर्णका सब शरीर लोहलुहान होगया, परन्तु वह वीर
घबड़ाया नहीं और उस सूतपुत्रने पचास बाणोंसे अर्जुनको बीच
ढाला, परन्तु उसकी ऐसी कुर्ती अर्जुनसे सही नहीं गई ६४-६७
और शीघ्रता करते हुए वीर अर्जुनने उसके धनुषको काट
कर उसके छातीमें नौ बाण मारे ॥ ६८ ॥ परन्तु प्रतापी सूतपुत्र
कर्णने दूसरा धनुष ले आठ सहस्र बाणोंसे अर्जुनको ढक
दिया ॥ ६९ ॥ कर्णके धनुषसे छूटती हुई उस बड़ीभारी बाण-
वर्षाको अर्जुनने जैसे वायु पतङ्गोंको नष्ट कर डालता है तैसे
बाणोंसे नष्ट करदिया ७० फिर सब योधाओंको अपनी कुर्ती दिखाते
हुए अर्जुनने रणमें कर्णको बाणोंसे ढकदिया ॥ ७१ ॥ और

वधार्थं तस्य सायकं सूर्यवच्चैसम् । चित्रं त्वरया युक्तं त्वराकालं
 धनं जयः ॥ ७२ ॥ तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम् ।
 अर्द्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स छिन्नः प्रापतद् भुवि । ७३ ॥ कर्णोऽपि
 द्विपतां हन्ता ह्यदियामास फाल्गुनम् । सायकैर्वहुसाहसैः कृतिप्रति-
 कृतेऽस्य ॥ ७४ ॥ तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ । साय-
 कैश्च प्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्वगैः ॥ ७५ ॥ अदृश्यौ च
 शरौ वैस्तौ निघ्नतामितरेतरम् । कर्णं पार्थोऽस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं
 तिष्ठ फाल्गुनः ॥ ७६ ॥ इत्येवं गर्जयंतौ तु वाक्छल्यैस्तुदतां तदा । युध्येतां
 समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ७७ ॥ प्रेक्षणी गौ चाभवतां सर्वयोध-
 समागमे । प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ७८ ॥ अयु-
 ध्येतां महाराज परस्परवधैः पिणौ । ततो दुर्योधनो राजंस्तावका-

फुर्तीके समय फुर्तीके साथ एक सूर्यकी समान तेजस्वी बाण
 इसको मारनेके लिये छोड़ा ॥ ७२ ॥ वेगसे आते हुए उस
 बाणको, अश्वत्थामाने अर्धचन्द्र नामक बाण छोड़ कर फाट
 डाला, तीक्ष्ण बाणसे कटाहुआ वह बाण भूमिमें गिरपड़ा ७३
 शत्रुनाशी कर्णने भी वैसे ही बदला लेनेकी इच्छासे सहस्रों बाण
 मारकर अर्जुनको ढकदिया ॥ ७४ ॥ साँडकी समान ढकरातेहुए
 उन दोनों नरसिंह महारथियोंने सीधे जानेवाले बाणोंसे आकाश
 को भरदिया ॥ ७५ ॥ बाणोंसे अदृश्य होने पर भी वे दोनों एक
 दूसरे पर प्रहार कर रहे थे, वे दोनों अरे ! कर्ण ! खड़ा तो रह,
 मैं अर्जुन हूँ, अरे ! अर्जुन खड़ा तो रह मैं कर्ण हूँ, इसमकार
 ललकार २ कर युद्ध कर रहे थे, सब योधाओंके सामने विचित्र
 रीति, फुर्ती और सुन्दरतासे लड़तेहुए वे दोनों बड़े अच्छे
 मालूम होते थे, हे महाराज ! समरमें सिद्ध, चारण और सर्प
 उनकी प्रशंसा करते जा रहे थे और वे एक दूसरेको मारनेकी
 इच्छासे लड़े चलेजाते थे, इतनेमें ही दुर्योधनने हे राजन् ! तुम्हारे

नभ्यभाषत ॥ ७६ ॥ यत्नाद्रक्षत राधेयं नाहत्वा समरेर्जुनम् ।
 निगच्छिष्यति राधेय इति मायुक्तवान् वृषः ॥ ८० ॥ एतस्मिनन्तरे
 राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् । आकर्ण्युक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो
 हयान् ॥ ८१ ॥ अनयन्मृत्युलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः । सार-
 थिञ्चास्य भक्तलेन रथनीडादपातयत् ॥ ८२ ॥ ह्यादयायास च
 शरैस्तत्र पुत्रस्य पश्यतः । स ह्याद्यमानः समरे हताश्वो हतसा-
 रथिः ॥ ८३ ॥ मोहितः शरजालेन कर्त्तव्यं नाभ्यपद्यत । तं तथा
 विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा ॥ ८४ ॥ अश्वत्थामा महाराज
 भूयोऽर्जुनमयोधयत् । प्रद्वराजश्च कौन्तेयपविध्यत्त्रिशता शरैः ८५
 शारद्वतस्तु विशत्या वासुदेवं समार्थयत् । धनञ्जयं द्वादशभिरा-
 जघान शिलीमुखैः ॥ ८६ ॥ चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च

योधाओंसे कहा, कि—कर्णने मुझसे कहा था, कि—मैं रणमेंसे
 अर्जुनको बिना मारे नहीं हटूंगा, अतः तुम यत्नके साथ कर्ण
 की रक्षा करो ॥ ७६—८० ॥ इतनेमें ही हे राजन् ! कर्णके
 पराक्रमको देखकर अर्जुनने धनुषको कान तक खेंचकर कर्णके
 चारों घोड़ोंको यमपुरमें पठा दिया और भन्त मारकर कर्णके
 सारथिको भी रथकी बैठक परसे नीचे गिरा दिया ८१—८२
 फिर अर्जुनने तुम्हारे पुत्रोंके सामनेही कर्णको भी बाणोंसे ढकदिया
 जिसके घोड़े और सारथी मरगए हैं ऐसा कर्ण बाणोंसे ढक जाने
 पर सब सीढ़ी पंटाक भूलगया, उसको इसप्रकार रथहीन देखकर
 हेमहाराज! अश्वत्थामा उसको रथमें बैठाकर फिर अर्जुनसे लड़ने
 लगा, शल्यने तीस बाणोंसे अर्जुनको बीधडाला और अश्वत्थामाने
 बीस बाणोंसे श्रीकृष्णको घायल करके शिलीमुख नामक बारह
 बाणोंसे अर्जुनको बीधडाला ॥ ८३—८५ ॥ चार बाणोंसे जय-
 द्रथने और सात बाणोंसे वृषसेनने अर्जुनको बीधडाला, हे महा-
 राज ! इसप्रकार सबने अलग-अलग श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल

सप्तभिः । पृथक् पृथक् महाराज कृष्णपार्थावविध्यताम् ॥ ८७ ॥
 तथैव तान् प्रत्यविध्यत् कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । द्रोणपुत्रं चतुःपट्या
 मद्वराजं शतेन च ॥ ८८ ॥ सैधवं दशभिर्भल्लैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
 शास्त्रेनञ्च विंशत्या विध्वा पार्थः समुन्नदन् ॥ ८९ ॥ ते प्रतिज्ञा-
 प्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः । सहितास्तावकास्तूर्णमभि-
 पेतुर्धनञ्जयम् ॥ ९० ॥ अथार्जुनः सर्वतो वारुणास्त्रं
 प्रादुश्वक् त्रासयन् धार्तराष्ट्रान् । तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुमुजुं
 रथैर्महाहैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥ ९१ ॥ ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते
 सुदारुणं भारत मोहनीये । नोमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः किरीट-
 माली विसृजन् पृषत्कान् ॥ ९२ ॥ राज्यप्रेप्सुः सव्याची कुरूणां
 स्मरन् वलेशान् द्वादशवर्षवृत्तान् । गाण्डीवमुत्तैरिपुभिर्महात्मा

किया ॥ ८७ ॥ कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी ऐसे ही उनको घायल
 किया, वह चौंसठ बाणोंसे अश्वत्थामाको, सौ बाणोंने मद्वराज
 शन्यको दशसे जयद्रथको और तीससे वृषमेनको तथा
 बीस बाणोंसे कृपाचार्यको दीध कर गर्जनेलगा ॥ ८८-८९ ॥
 वे सबकेसब अर्जुनकी प्रतिज्ञाको भङ्ग करनेकी इच्छासे इकट्ठे
 होकर वेगके साथ अर्जुनके ऊपर दूट पड़े ॥ ९० ॥ तदनन्तर
 धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको व्याकुल करनेके लिए अर्जुनने वारुणास्त्र
 प्रकट किया तो भी कौरव, महापुरुषोंके बैठने योग्य रथोंमें बैठ
 कर अर्जुनके पास गए और उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने
 लगे ॥ ९१ ॥ और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उन दोनोंमें
 बहुत ही दारुण, मूर्खित करनेवाला, तुमुल युद्ध हुआ, किरीट-
 माली राजपुत्र अर्जुन इस युद्धमें कुछ भी न घबडाकर बाणोंकी
 वर्षा ही करता रहा ॥ ९२ ॥ अप्रमेय बलवाला महात्मा अर्जुन
 कौरवोंके दिए हुए बारह वर्षके वलेशोंको याद करके राज्य
 लेनेकी इच्छासे गाण्डीव धनुषमेंसे छोड़े हुए बाणोंसे दिशाओंको

सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयः ॥ ६३ ॥ मदीक्षीन्कमभवच्चान्तरिक्षं
मृतेषु देहेषु पतन् वयांसि । यत् पिंगलज्येन किरीटमाली क्रुद्धो
रिपूनाजगवेन हन्ति ॥ ६४ ॥ ततः किरीटी महता महायशाः
शरासनेनास्य शराननीकजित् । हयप्रवेकोत्तमनागघृणितान् कुरु-
प्रवीरानिषुभिर्व्यपानयत् ॥ ६५ ॥ गदाश्च शुर्योः परिधानयस्म-
यानसीथ शक्तीरव रणे नराधिपाः । महन्ति शस्त्राणि च
भीमदर्शनाः प्रशृण्व पार्थ सहस्राभिदुद्रुयुः ॥ ६६ ॥ ततो युगा-
न्ताञ्जसमस्त्रनं महत् महेन्द्रचापप्रतिमं स गाण्डिवम् । चक्रे
दोर्भ्यां विहसन् भृशं ययौ दहंस्त्वदीयान् यमराष्ट्रवर्द्धनः ॥ ६७ ॥
स तानुदीर्णान् सरथान् सनागान् पदातिसंघांश्च महाधनुर्द्धरः ।

भरनेलगा ॥ ६३ ॥ जिस समय क्रोधमें भरा हुआ अर्जुन पीली
प्रत्यश्चावाले गाण्डीव धनुषसे बाण छोड़कर शत्रुओंको मारनेलगा
तब आकाशमें जलती हुई उत्काएँ दीखने लगीं और मरे हुएओंके
शरीरोंके ऊपर पक्षी गिरनेलगे ॥ ६४ ॥ महायशस्वी मुकुटधारी
अर्जुन शत्रुसेनाका पराजय करनेके लिए, बड़ा भारी धनुष धारण
करके उसके ऊपर बाण चढ़ा २ कर चारों ओरको फेंकरहा था
और श्रेष्ठ २ घोड़े तथा हाथियों पर बैठ गर्जना करते हुए कौरव
वीरोंको पृथ्वी पर गिरा रहा था ॥ ६५ ॥ तब तो भयङ्कर दीखनेवाले
राजे दाधमें बड़ी २ गदाएँ, लोहेके परिघ, शक्तिएँ और षड़े
याज्ञ लेकर अर्जुनके ऊपर टूट पड़े ॥ ६६ ॥ यमलोककी वृद्धि
करनेवाला अर्जुन अपने ऊपर चढ़कर आती हुई कौरवसेनाको
देखकर हँसा और मलयकालके मेघोंकी समान गर्जना करता
हुआ इन्द्रधनुषकी समान अपने बड़े गाण्डीव धनुषको अपनी
शुनाओंसे खेंचकर तुम्हारे दोषाओंका संहार करता हुआ उनके
साथ युद्ध करनेलगा ॥ ६७ ॥ महाधनुषधारी वीर अर्जुनने क्रोधमें

विपन्नसर्वायुजजीवितान् रणे चकार धीनो यमराष्ट्रवर्द्धनान् ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुल-

युद्धे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा निनादं धनुषरव तस्य विष्पष्टमुत्कृष्ट-
पिवान्तकस्य । शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरं विकृप्यमाणस्य धन-
ञ्जयेन ॥ १ ॥ आसोद्विग्नं तदोद्भ्रान्तं त्वदीयं तद्वलं नृप । युगा-
न्तवातसंलुब्धं चलद्दीचितरङ्गितम् ॥ २ ॥ प्रलीनधीनमकरं साग-
राश्वम् इवाभवत् । स रणे व्यचरत् पार्थः प्रेक्षमाणो धनञ्जयः ३
युगपदिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन् । आददानं महाराज
सन्दधानञ्च पाण्डवम् ॥ ४ ॥ उत्कर्षन्तं सृजन्तश्च न स्म पश्याम

भरेहुए रथियोंके, हाथीसवारोंके तथा पैदलोंके आयुधोंको काट
कर उनको यमलोकको भेजदिया ॥ ६८ ॥ एकसौ पैंतालीसवों
अध्याय समाप्त ॥ १४५ ॥

संजयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! धनञ्जयने ज्यों ही गाँधीव
धनुषकी डोरी खेंची कि—इन्द्रवज्रकी समान भयङ्कर और
यमराजकी स्पष्ट गर्जनाकी समान घोर, ध्वनि होनेलगी ॥ १ ॥
उसको सुनकर हे राजन् ! तुम्हारी सेना, प्रलयकालके वायुसे
हिलोड़े हुए, उछलती हुई लहरोंसे तरङ्गित होते और जिसके मच्छी
नाके आदि नष्ट होगए हों ऐसे समुद्रके जलकी समान भयसे
घबड़ायीहुई और पागलकी समान उद्भ्रान्त होगई पृथापुत्र
अर्जुन चारों दिशाओंमें एक साथ घाण छोड़ता हुआ और चारों
ओरको देखता हुआ रणमें घूम रहा था, हे महाराज ! पृथापुत्र
धनञ्जय ! ऐसी फुरतीसे बाणोंको हाथमें लेता, धनुष पर चढ़ाता,
चढ़ाकर खेंचता था, कि—हम उसको (यह कन क्या कर रहा है)
देख भी नहीं पाते थे, हे महाराज ! तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए
महाशुन अर्जुनने भारती सेनाके सब योधाओंको त्रास देनेके लिए

लाघवात् । ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥ ५ ॥
 प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन् सर्वभारतान् । ततः शराः प्रादु रासन
 दिव्यास्त्रप्रतिपन्त्रिताः ॥ ६ ॥ प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ
 सहस्रशः । आकर्णपूर्णनिष्ठैरग्र्यर्काशुनिभैः शरैः ॥ ७ ॥
 नभोऽभवत्तद् दुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम् । ततः शस्त्रान्धकारं
 तत् कौरवैः समुदीरितम् ॥ ८ ॥ अशक्यं मनसाप्यन्यैः पाण्डवः
 सम्भ्रमन्निव । नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ॥ ९ ॥
 नैशान्तमोऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः । ततस्तु तावकं सैन्यं
 दीप्तैः शरगभस्तिभिः ॥ १० ॥ आक्षिपत् पल्वलाम्बूनि निदाघार्क
 इव प्रभुः । ततो दिव्यास्त्रविदुषा प्रहिताः सायकांशवः ॥ ११ ॥
 समाप्लवन् द्विपत्सैन्यं लोकं भानोरिवांशवः । अथापरे समुत्सृष्टा

दुरासद ऐन्द्रास्त्रको प्रकट किया, उसमेंसे दिव्य अस्त्रोंके मन्त्रोंसे
 अभिमन्त्रित प्रदीप्त अग्निकी समान मुखवाले सहस्रों और सैकड़ों
 बाण प्रकट होगए धनुषको कान तक खेंच कर छोड़ेहुए, अग्नि और
 सूर्यकी किरणोंकी समान प्रदीप्त और तीखे, बाणोंसे घिराहुआ
 आकाश उत्काओंसे घिरेहुए आकाशकी समान फठिनतासे देखने
 योग्य होगया तदनन्तर कौरवोंने भी, अन्य मनुष्य जिसकी मनसे
 भी कल्पना नहीं करसकते ऐसा, घोर अंधकार आकाशमें बाणोंका
 जाल पूरकर करदिया, अर्जुन कुछ अंममें पड़ा, परन्तु फिर
 उसने प्रातःकालके समय जैसे सूर्य रात्रिके अन्धकारको अपनी
 किरणोंसे नष्ट करदेता है, तैसे ही, दिव्य अस्त्रोंके मन्त्रोंसे अभि-
 मन्त्रित बाण छोड़कर उस अन्धकारको नष्ट करदिया तदनन्तर
 समर्थ अर्जुन जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य किरणोंसे तलैयाँके जलोंको
 सोखलेता है तैसे ही बाणरुकी किरणोंसे तुम्हारी सेनाको सोखने
 (नष्ट करने) लगा, जैसे सूर्यकी किरणें मनुष्योंके ऊपर गिरती
 हैं तैसे ही, दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता अर्जुनके बाण शत्रुसेनाके

विशिखास्तिग्मतेजसः ॥ १२ ॥ हृदयान्याशु वीराणां विविशुः
भियवन्धुवत् । य एनमीयुः सपरे त्वद्योधाः शूरमानिनः ॥ १३ ॥
शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम् । एवं स मृद्वनन् शूराणां
जीवितानि यशांसि च ॥ १४ ॥ पार्थश्चचार संग्रामे मृत्युर्विग्रह-
वानिव । स किरीटानि वस्त्राणि साङ्गदान् विपुलान् भुजान् १५
सकुण्डलयुगान् कर्णान् केषांचिदरहरच्छरैः । सतोमरान् गज-
स्थानां सपासान् हयसादिनाम् ॥ १६ ॥ सचर्मणः पदातीनां
रथिनाञ्च स सधन्वनः । सपतोदान्नियन्तृणां बाहूश्चिच्छेद
पाण्डवः ॥ १७ ॥ प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान् बभौ तत्र धनञ्जयः ।
स विस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ १८ ॥ तं देवराज-
प्रतिमं सर्वशस्त्रभृतां वरम् । युगपदिक्ष सर्वासु रथस्थं पुरुषर्षभम् १९

ऊपर पढ़ रहे थे, उसके छोड़े हुए दूसरे बाण, वीरों के हृदय में प्यारे
बान्धवों की समान लिपटे (घुसे) जाते थे शूरता का दम भरने वाले
तुम्हारे जो २ योधा अर्जुन के आगे आये, वे सब प्रदीप्त अग्निके
सामने जानेवाले पतङ्गों की समान, नष्ट होगए, इस प्रकार शत्रुओं
के यश और जीवन का संहार करता हुआ अर्जुन मूर्तिमान्
काल की समान रण में घूम रहा था, अर्जुन को बाण छोड़कर बहुतों के
मुकुटों सहित मुख, बहुतों की बाजूबन्द सहित मोटी २ भुजाये और
कुण्डलों सहित कान काट डाले अर्जुन ने तोमरधारी हाथीसवारों
की, प्रासधारी घुड़सवारों की और ढालवाले पैदलों को ढालों
सहित तथा रथियों को धनुषों सहित और सारथियों की चाबुकों
सहित भुजाओं को काट डाला ॥ १२-१७ ॥ प्रदीप्त और अग्र बाणरूपी
लपटवाला अर्जुन रण में जिसकी ऊपरको लपट जारही है ऐसे
तथा जिसमें से चिनगारियाँ निकल रही हैं ऐसे जलते हुए अग्निकी
समान शोभा पोरहा था ॥ १८ ॥ देवताओं के राजा इन्द्र की समान
सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, एक ही समय में सब दिशाओं में रथ में

निक्षिपन्तं महास्त्राणि प्रेक्षणीयं धनञ्जयम् । नृत्यन्तं रथमार्गेषु
धनुर्ज्यातलनादिनम् ॥ २० ॥ निरीक्षितुं न शक्नुस्ते यत्नवन्तोऽपि
पार्थिवाः । मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ॥ २१ ॥ दीप्तोग्र-
संभृतशरः किरीटी विरराज ह । वर्षास्त्रिवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वा-
म्बुदो महान् ॥ २२ ॥ महास्त्रसंप्लवे तस्मिन् जिष्णुना सम्प्रव-
र्तिते । सुदुस्तरे महाघोरे मयञ्जुर्योधपुद्गवाः ॥ २३ ॥ उत्कृत्त-
वदनैर्द्वैः शरीरैः कृत्तवार्हुभिः । शृजैश्च पाणिनिर्मुक्तैः
पाणिभिर्व्यगुलीकृतैः ॥ २४ ॥ कृत्ताग्रहस्तैः करिभिः कृत्तदन्तैर्मदो-
त्कटैः । हयैश्च विधुरग्रीवै रथैश्च शकलीकृतैः ॥ २५ ॥ निकृत्तान्यैः
कृत्तपादैस्तथान्यैः कृत्तसन्धिभिः । निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ
सहस्रशः ॥ २६ ॥ मृत्योराघातललितं तत् पार्थायोधनं महत् ।

बैठे दीखनेवाले और रथमार्गोंमें धनुषकी प्रत्यञ्चारूप तालियें
यजाकर नाचते हुएसे बड़े २ अस्त्रोंको छोड़नेवाले पुरुषश्रेष्ठ
अर्जुनको तुम्हारे योधा यत्न करके भी, आकाशमें तपतेहुए
मध्यान्हके सूर्यकी समान, न देखसके ॥ १९-२१ ॥ मुकुटधारी
तेजस्वी और उग्र धनुषधारी अर्जुन, इस समय वर्षा कालके
जलसे भरे और इन्द्रधनुषवाले महामेघकी समान शोभा पारहा
था ॥ २२ ॥ अर्जुनके चलाए हुए बड़े २ अस्त्रोंके कारण
दुस्तर घोर संहारके बहानेमें मुख्य २ योधा दूबनेलगे ॥ २३ ॥
हे राजन् ! कटेहुए मुख और हाथोंवाले शरीर, पाँचैरहित
शुभाँ, अंगुलीरहित पहुँचे, कटीसँड तथा टूटेहुए दाँतोंवाले
हाथी, घायल गर्दनोंवाले घोड़े चूर २ हुए रथ, कटी हुई आँतें
हाथ, पैर तथा दूसरे जोड़वाले सैकड़ों और सहस्रों योधा भूमि
परसे उठना और सरकना चाहते थे, परन्तु निष्चेष्ट होनेसे ऐसा
कर नहीं सकते थे ॥ २४-२६ ॥ हे राजन् ! हम देखनेलगे तो
मृत्युकी संहारभूमिरूप अर्जुनका यह बड़ा भारी रणक्षेत्र ढरपोकोंके

अपस्याम मदीपाल भीरुणां भयवर्द्धनम् ॥ २७ ॥ आकी-
डमिव रुद्रस्य पुराभ्यर्क्षयतः पशून् । गजानां क्षुरनिर्मुक्तैः करैः
सभुजगेव भूः ॥ २८ ॥ नवचिद्रयोः स्रग्मिणीव वक्त्रपद्मैः समाचिता ।
विचित्रोष्णीपमुकुटैः केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥ २९ ॥ स्वर्णचित्रतनुत्रैश्च
भाण्डैश्च गजवाजिनाम् । किरीटशतसंकीर्णा तत्र तत्र समाचिता ३०
विरराज भृशं चित्रा मदी नववधूराव । मञ्जामेदः कूर्दमिनीं शोणि-
तौघतरङ्गिणीम् ॥ ३१ ॥ मर्मास्थिभिरगाभां च केशशैवलशाद-
लाम् । शिरोबाहूपलतटां रुणकोटास्थिसङ्कुटाम् ॥ ३२ ॥ चित्रध्वज-
पताकाद्व्याघ्रचपोर्मिपालिनीम् । विगतासुप्रहाकायां गजदेहाभि-
संकुलाम् ॥ ३३ ॥ रथोडुपशताकीर्णां हयसंघातरोधसम् । रथ-

भयको वढानेवाला होगया था ॥ २७ ॥ वह रणाङ्गण, पशुओं का
संहार करतेहुए शिवकी कीडाभूमिकी समान भयानक प्रतीत
होता था और क्षुरनामक वोगोंसे काटी हुई हाथियोंकी मूडोंसे
रणभूमि ऐसी प्रतीत होती थी, कि-मानों उसमें सर्प बिखरेहुए
हैं २८ की २ योधाओंके मुखकमलोंसे भरीहुई पृथिवी मालाओंसे
शोभायमानसी दीखती थी, जहाँ तहाँ विचित्र पगडी मुकुट, तापीज,
बाज्रवन्द, कुण्डल सुवर्णके विचित्र प्रकारके कवच और छापी
घोडोंके गहने तथा सैंकड़ों मुकुटोंसे खचाखच भरी हुई होनेके
कारण विचित्र दीखतीहुई पृथ्वी नववधूकी समान दिपरही थी,
अर्जुनने मञ्जामेद और मेदरूप कीचडवाली, रक्तकी लहरोंसे उज्जलती
हुई, आँतडी और हड्डियोंसे अगाध, केशरूप सिंघारसे हरी २
दीखती हुई, शिर और भुजारूपी पत्थरोंसे बनेहुए किनारों
वाली, कटीहुई घुटुओंकी हड्डियोंसे भरीहुई विचित्र ध्वजा
और पताकाओंसे भराहुई, व्याघ्र और धनुषरूपी तरङ्गमालावाली,
माणहीन बड़े २ शरीरोंसे तथा हाथियोंके शत्रोंसे भरीहुई, रथ-
रूपी सैंकड़ों नौकाओंसे व्याप्त घोडोंके शवरूप किनारेवाली

चक्रयुगेषाक्षकूवरैरतिदुर्गमाम् ॥ ३४ ॥ प्रासासिशक्तिपरशुविशि-
खाहिदुरासदाम् । वलकङ्कपहानकां गोपायुमकरोत्कटाम् ॥ ३५ ॥
गृध्रोदग्रमहाग्राहां शिवाविस्तभैरवाम् । नृत्यत्प्रेतपिशाचाद्यैर्भू-
ताकीर्णां सहस्रशः ॥ ३६ ॥ गतासुयोधनिश्चेष्टशरीरशतवाहिनीम् ।
महाप्रतिभयां रौद्रां घोरां वैतरणीमिव ॥ ३७ ॥ नदीं प्रवर्त्तयामास
भीरुणां भयवर्द्धिनीम् । तं दृष्ट्वा तस्य विक्रान्तमंतकस्येव रूपिणः
३८ अभूतपूर्वं कुरुषु भयमागाद्रणाजिरो तत आदाय बीराणामस्त्रै-
रस्त्राणि पाण्डवः ॥ ३९ ॥ आत्मानं रौद्रमाचष्ट रौद्रकर्मण्यधि-
ष्ठितः । ततो रथवरान् राजन्नत्यतिक्रामदर्जुनः ॥ ४० ॥ मध्य-
न्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे । न शोकुः सर्वभूतानि पाण्डवं
प्रतिवीक्षितुम् ॥ ४१ ॥ प्रसृतांतस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान्महात्मनः ।

रथके पहिये, जुए, ईपा, धुरी और कूवरोंके कारण अतिदुर्गम,
प्रास, तलवार, शक्ति, फरसे और बाणरूप सपोंसे अगम्य, वगले
और कङ्कपक्षीरूप बड़े २ नाकोंवाली, गीदडरूप मगरोंसे भया-
नक गीधरूप भयङ्कर महाग्राहोंसे भरी और गीदडियोंके शब्दोंसे
भयङ्कर, नाचतेहुए पिशाच आदि सहस्रा भूतोंसे, भरी प्राणशून्य
योधाओंके सैकड़ों निश्चेष्ट शरीरोंको बहानेवाली, रौद्ररसवाली
घोर वैतरणी नदीकी समान भयानक, डरपोकोंको भय देने
वाली रक्तभी नदी बहादी, मूर्त्तिमान् कालके समान अर्जुनके
पराक्रमको देखकर रणभूमिमें कौरवोंको पहिले कभी अनुभवमें
न आयेहुए भयने दवालिया, तदनन्तर भयङ्कर कर्म करनेवाले
अर्जुनने शत्रुओंके अस्त्रोंको पकड़लिया, और फिर राजन्! भय-
ङ्कर कर्म करनेवाले अर्जुनने जनके सामने अपने रौद्ररूपको प्रकट
किया और सब महारथियोंको लाँघकर आगे बढगया ॥ २९-४० ॥

इस समय मध्याह्नके समय आकाशमें तपतेहुए सूर्यकी समान रण
में खडेहुए अर्जुनको रणभूमिमेंके सब लोग देख न सके ४१ इस

संग्रामे सम्प्रपश्यामो हंसपंक्तिरिवाम्बरे ॥ ४२ ॥ विनिवार्य स
वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः । दर्शयन् रौद्रमात्मानमुग्रे कर्पाणि
धिष्ठितः ॥ ४३ ॥ स तान् रथवरान् राजन्नत्याक्रामत्तदार्जुनः ।
मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथध्वजसया । विमृजन् दिक्षु सर्वाम् शरा-
नसितसारथिः ॥ ४४ ॥ सरथो व्यचरत्तूर्णं प्रेक्षणीयो धनञ्जयः ।
भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ॥ ४५ ॥ अदृश्यन्तान्तरि-
क्षस्थाः शतशोथ सहस्रशः । आददानं महेष्वासं सन्दधानञ्च
सायकम् ॥ ४६ ॥ विमृजन्तञ्च कौन्तेयं नानुपश्याम वेत्तदा । तथा
सर्वा दिशो राजन् सर्वाश्च रथिनो रणे ॥ ४७ ॥ कदम्बीकृत्य
कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् । विव्याध च चतुःपृष्ठा शराणां नत-
पर्वणाम् ॥ ४८ ॥ सैन्धवाभिमुखं यान्तं योधाः सम्प्रेक्ष्य पाण्ड-

समय भी जैसे हंसोंकी पंक्ति आकाशमें उड़ती है तैसेही युद्धमें महात्मा
अर्जुनके धनुषमेंसे निकलेहुए बाण आकाशमें उड़तेहुए दीखरहे
थे ॥ ४२ ॥ भयानक पराक्रम करनेमें लगाहुआ अर्जुन अपने
अस्त्रोंसे वीरोंके अस्त्रोंको पीछेको हटाकर अपनी उग्रता दिखा
रहा था, ॥ ४३ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! श्रीकृष्ण जिसके सारथि
हैं ऐसा अर्जुन महारथियोंको लाँघकर रथके सहित आगे बढ़
गया और रणमें घूमता हुआ दर्शनीय अर्जुन जयद्रथको मारने
की इच्छासे सबको मोहित करताहुआ चारों ओर बाणोंकी
मारामार करनेलगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वीर और महात्मा अर्जुनके
सैकड़ों और हजारों बाण आकाशमें उड़तेहुएसे दीखरहे थे ४६
अर्जुन ऐसी फुरतीसे बाण छोड़रहा था, कि—बढ़ धनुषधारी
बाण को कब लेता है कब चढ़ाता है और कब छोड़ता है, यह
हम देख भी नहीं पाते थे ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! फिर अर्जुन सब
दिशाओंकी तथा सब राजाओंको कदम्बके पुष्पकी समान
निर्मात्य जानकर जयद्रथकी ओरको बढ़ा चलागया ॥ ४८ ॥

वयम् । न्यवर्त्तत रणाद्वीरा निराशास्तस्य जीविते ॥ ४६ ॥ यो
 योऽभ्यधवदाक्रन्दे तावकः पाण्डवं रणे । तस्य तस्यान्तगो घ्राण ।
 शरीरे न्यपतत् प्रभो ॥ ४७ ॥ कवन्धसंकुलञ्चके तव सैन्यं महा-
 रथः । अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः शरैरग्न्यंशुसन्निभैः ॥ ४८ ॥ एवं तत्तव
 राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा । व्याकुली कृत्य कान्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत्
 ५२ द्रौणि पञ्चशताविध्यं वृषसेनं त्रिभिः शरैः । कृपायमाणः कौन्तेय
 कृपन्नवभिरार्दयत् ५३ शन्यं षोडशभिर्वाणैः कर्णं द्वात्रिंशता शरैः ।
 सैन्धवञ्च चतुःषष्ट्या विध्वा सिंह इयानदत् ॥ ५४ ॥ सैन्धवंस्तु
 तदा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना । न चक्षमे सुसंकुद्रस्तोऽर्द्रित
 इव द्विपः ॥ ५५ ॥ स वराहध्वजस्तूर्णं गार्हपत्रानजिह्मगान् ।

और उसके नभीहुई गाँठोंवाले चौंसठ बाण मारे वीर अर्जुनको
 जयद्रथकी ओरको जाते देख कौरव योधा जीवनसे हताश हो
 युद्धमेंसे लौटनेलगे ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! उस समय तुम्हारे पक्षका
 जो योधा उसके सामने लड़नेको जाता था उसके ही शरीर पर
 प्राणनाशक बाण पड़ते थे ॥ ५० ॥ विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ
 महारथी अर्जुनने अग्नि और सूर्यकी किरणोंकी समान तीखे
 बाणोंसे तुम्हारी सेनाको कवन्धमयी बनावाला अर्थात् तुम्हारी
 सेनामें धड़ ही धड़ दीखनेलगे ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार
 तुम्हारी चतुरङ्गिनी सेनाको बाणोंके प्रहारसे व्याकुल कर कुन्ती-
 पुत्र अर्जुन जयद्रथकी ओरको बढ़ा ॥ ५२ ॥ उसने पचास बाणों
 से अश्वत्थामाको और तीन बाणोंसे वृषसेनको घायल किया
 और कृपाचार्यके ऊपर दया आजानेसे उसने उनके केवल नौ ही
 बाण मारे ॥ ५३ ॥ फिर शल्यको सोलह, कर्णको बत्तीस और
 जयद्रथको चौंसठ बाणोंसे बीँधकर अर्जुन सिंहकी समान दहाड़ने
 लगा ॥ ५४ ॥ गाँडीव धनुषधारी अर्जुनके बाण जयद्रथसे
 नहीं सहेगये, इसकारण वह अंकुश खायेहुए हाथीकी समान

क्रुद्धाशीविषसङ्काशान् कर्मारपरिमाजितान् ॥ ५६ ॥ आकर्ण-
पूर्णोश्चिक्षेप फाल्गुनस्य रथं प्रति । त्रिभिरतु विध्वा गोविन्दं
नाराचैः षड्भिरर्जुनम् ॥ ५७ ॥ अष्टभिर्वाजिनोऽविध्यद् ध्वजञ्चै-
केन पत्रिणा । स विक्षिप्यार्जुनस्तूर्णं सैन्धवप्रहिताञ्छरोन् ॥ ५८ ॥
युगपत्तस्य चिच्छेदे शराभ्यां सैन्धवस्य ह । सारथेश्च शिरः फायात्
ध्वजञ्च समलंकृतम् ॥ ५९ ॥ स क्षिन्नपट्टिः सुमहान्धनञ्जय-
शराहतः । वराहः सिन्धुराजस्य पपातागिशिखोपमः ॥ ६० ॥
एतस्मिन्नेव काले तु दुर्गं गच्छति भास्करे । अववीत् पाण्डवं तत्र
त्वरमाणो जनार्दनः ॥ ६१ ॥ एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थ वीरै-
र्महारथैः । जीवितेऽधुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥ ६२ ॥

क्रोधमें भरगया ॥ ५५ ॥ तब सूअरके चिन्हकी ध्वजावाले जय-
द्रथने गीधके परलगे, सीधेजानेवाले, क्रोधमें भरे सर्प सरीखे,
शिल्पियोंके द्वारा घिसकर तेजकिए हुए बाण धनुषको कानतक
खेंचकर अर्जुनके मारे उसने तीन बाणोंसे श्रीकृष्णको और छः
बाणोंसे अर्जुनको घायल कर आठ बाणोंसे उनके घोड़ोंको
घायल करदिया और एक बाण उनकी ध्वजाके ऊपर मारा
परन्तु अर्जुनने बाण मारकर सिन्धुराजके बाणोंको दूर फेंक
दिया ॥ ५६-५९ ॥ और दो बाण मारकर एक साथ ही उसके
सारथिके शिरको और शोभायमान ध्वजाको काटडाला ॥ ५९ ॥
धनञ्जयके बाणसे कटते ही जयद्रथका ध्वजदण्ड और अग्निनी
शिखाकी समान शोभायमान बड़ीभारी ध्वजा पृथ्वी पर गिर
पड़ी, हे राजन्! इस समय ही सूर्यास्त होनेका समय आलगा,
यह देख कर श्रीकृष्णने शीघ्रताके साथ अर्जुनसे कहा, कि-६१
हे पार्थ! हे महाबाहु अर्जुन! छः महारथी वीरोंने जयद्रथको अपने
बीचमें घेरकर खड़ा करलिया है और यह भी जीवित रहनेकी
इच्छासे भयभीत होकर उनके बीचमें खड़ा है ॥ ६२ ॥ अतः हे पुरुष-

एतानिर्जित्य रणे पदूथान् पुरुषर्षभ । न शक्यः सैन्धवो हन्तुं
यतो निर्व्याजमर्जुन ॥ ६३ ॥ योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्यावरणं
प्रति । अस्तां गत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट् ॥ ६४ ॥
हर्षेण जीविताकांक्षी विनाशार्थं तव प्रभो । न गोप्स्यमि दुराचारः
स आत्मानं कथञ्चन ॥ ६५ ॥ तत्र छिद्रं महर्त्तव्यं त्वयास्य
कुरुसत्तम । व्यपेक्षा नैव कर्त्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६६ ॥
एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत । ततोऽसृजत्तमः
कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति ॥ ६७ ॥ योगी योगेन संयुक्तो
योगिनामीश्वरो हरिः । सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति
भास्करः ॥ ६८ ॥ त्वदीया जहृपुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप । ते
महृष्टा रणे राजन्नापश्यन् सैनिका रविम् ॥ ६९ ॥ उन्नाम्य

श्रेष्ठ अर्जुन ! लडाईमें इन छः महारथियोंको बिना जीने-निष्क-
पटभावसे सिंधुराजको नहीं मारसकेगा ॥ ६३ ॥ सूर्यास्तके लिए
तो मैं एक ऐसा प्रयोग करूँगा, कि-केवल एक जयद्रथ ही, सूर्य
अस्त होगया है, यह स्पष्ट रीतिसे देखसकेगा ॥ ६४ ॥ और
हे अर्जुन ! अपने जीवनकी इच्छावाला दुराचारी जयद्रथ हर्षित
होता हुआ तुम्हें मारनेके लिए बाहर निकल आवेगा और सूर्य
अस्त होगया यह समझ कर वह किसी प्रकार भी अपनी रक्षाका
ध्यान नहीं रखेगा ॥ ६५ ॥ हे कुरुसत्तम ! उस अवसरको देख
कर तुम्हें प्रहार करना चाहिये और यह समझ कर कि-सूर्य
अस्त होगया है, तुम्हें अपेक्षा नहीं करनी चाहिये ६६ अर्जुनने
तथास्तु कहकर श्रीकृष्णकी बात मानली, योगयुक्त योगीश्वर
श्रीकृष्णने सूर्यको ढकनेके लिए अन्धकारको उत्पन्न किया उस
अंधकारके फैलनेपर तुम्हारे योधा सूर्य अस्त होगया इसलिये अब
अर्जुनका नाश होगा ऐसा समझकर हर्षमें भरगए, तब तो हे राजन !
रणमें सैनिक तथा राजा जयद्रथ भी हर्षमें भर ऊपरको मुख

वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः । वीक्षमाणो ततस्तस्मिन्
 सिन्धुराजे दिवाकरम् ॥ ७० ॥ पुनरेवाव्रीत् कृष्णो धनञ्जयमिदं
 वचः । पश्य सिन्धुपति वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम् ॥ ७१ ॥ अयं
 हि विप्रमुच्यैतच्चक्षो भरतसत्तम । अयं कालो महाबाहो वधायास्य
 दुरात्मनः ॥ ७२ ॥ छिन्धि मूर्धनमस्याशु कुरु साफल्यमात्मनः ।
 इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ७३ ॥ न्यवधीचावकं
 सैन्यं शरैर्काग्निसन्निभैः । कृपं विव्याध विंशत्या कर्णं पञ्चा-
 शता शरैः ७४ शल्यं दुर्योधनञ्चैव पद्भिः पद्मिरताडयत् । वृषमेनं
 तथाष्टाभिः षष्ठ्या सैन्धवमेव च ॥ ७५ ॥ तथैव च महाबाहुस्त्वदी-
 यान् पाण्डुनन्दनः । गाढं विध्वा शरै राजन् जयद्रथमुपावदत् ७६
 तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिगानलम् । जयद्रथस्य गोप्तारः
 संशयं परमं गताः ॥ ७७ ॥ ततः सर्वे महाराज तव योथा जयै-

फरके सूर्यको देखनेलगा जब जयद्रथ ऊपरको मुख कर सूर्यको
 देख रहा था तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे फिर कहा, कि—हे भरत-
 सत्तम ! यह वीर सिंधुराज तेरे भयको त्यागकर सूर्यकी ओर
 को देखरहा है, अतः हे महाशुज ! इस दुष्टात्माको मारनेका यह
 ठीक अवसर है ॥ ६७-७२ ॥ अब शीघ्रतासे इसके मस्तकको
 काटकर अपनी प्रतिज्ञाको सफल कर श्रीकृष्णकी बात सुनकर
 प्रतापी अर्जुन अग्नि और सूर्यकी समान तेजस्वी बाणोंसे तुम्हारी
 सेनाका संहार करनेलगा, उसने कृपाचार्यको बीस, कर्णको पचास
 शल्य और दुर्योधनको छः २, वृषसेनको आठ तथा जयद्रथको
 साठ बाणोंसे घायल किया, हे राजन् ! इसप्रकार ही तुम्हारे
 पुत्रोंको भी बाण मारकर बहुत ही घायल कर महाबाहु अर्जुन
 जयद्रथके ऊपरको आपटा ॥ ७३-७६ ॥ धधकते हुए अग्निकी
 समान अर्जुनको पासमें खड़ा देखकर जयद्रथके रक्तक बड़ेपारी
 असमझसमें पडगए ॥ ७७ ॥ फिर हे महाराज ! जय चाहनेवाले

पिणः । सिपिचुः शरधाराभिः पाकशासनिमाहवे ॥ ७८ ॥
 सञ्छाद्यमानः कौन्तेयः शरजालैरनेकशः । अक्रुद्रुत्स महात्राहुर-
 जितः कुह्लन्दनः ॥ ७९ ॥ ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः ।
 व्यष्टजत् पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥ ८० ॥ ते हन्यमाना
 वीरेण योधा राजन् रणे तव । मजहुः सैन्धवं भीता द्रौ समं
 नाप्यधावताम् ॥ ८१ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य विक्रमम् ।
 तादृग्न भावी भूतो वा यच्चकार महायशाः ॥ ८२ ॥ द्विपान् द्विप-
 गताश्चैव हयान् हयगतानपि । तथा सरथिनश्चैव न्यहन् रुद्रः
 पशुनिव ॥ ८३ ॥ न तत्र समरे कश्चिन्मया दृष्टो नराधिप ।
 गजो वाजी नरो वापि यो न पार्थशराहतः ॥ ८४ ॥ रजसा
 तमसा चैव योधाः सञ्छन्नचक्षपः । कश्मलं प्राविशन् घोरं नान्व-
 जानन् परस्परम् ॥ ८५ ॥ ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थ-

तुम्हारे योधा अर्जुनको बाणधाराओंसे स्नान कराने लगे ॥ ७८ ॥
 अजित कुन्तीपुत्र महाभुज अर्जुन बाणोंसे ढकजानेके कारण क्रोधमें
 भरगया ॥ ७९ ॥ तदनन्तर इन्द्रपुत्र पुरुषव्याघ्र अर्जुन तुम्हारी
 सेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे भयंकर बाणजाल फैलाने लगा ८०
 हे राजन् ! जब रणमें वीर अर्जुन तुम्हारे योधाओंको मारने लगा
 तब वे भयभीत हो जयद्रथको छोड़कर इसमफार भागे कि-साथ २
 में दो दो भी नहीं भाग पाते थे ॥ ८१ ॥ हमने उस समय कुन्ती-
 पुत्र अर्जुनका ऐसा अद्भुत पराक्रम देखा, कि-जो न किसीने किया
 और न कोई करसकेगा ॥ ८२ ॥ अर्जुनने पशुओंका संहार करने
 वाले रुद्रकी समान घोड़ोंको घुड़सवारोंसहित और हाथियोंको
 हाथीसवारोंसहित तथा रथोंको रथियोंसहित कुचल डाला ॥ ८३ ॥
 हे राजन् ! मैंने उस समय रणमें एक भी ऐसा हाथी, घोड़ा और
 मनुष्य नहीं देखा कि-जिसके ऊपर अर्जुनके बाण न पड़े हों ॥ ८४ ॥
 धूल तथा अधरेके कारण नेत्रोंके गढ़वड़ा जानेसे योधाओंमें घबड़ा-

चोदितैः । वभ्रमुश्चखलुः पेतुः सेदुर्धम्नुश्च भारत ॥ ८६ ॥
 तस्मिन् महाभीषणके प्रजानामिव संक्षये । रणे महति दुष्पारे
 वर्त्तमाने सुदारुणे ॥ ८७ ॥ शोणितस्य प्रसेकेन शीघ्रत्वादनिल-
 स्य च । अशाम्यत तद्रजो भीमपट्विस्फोते धरातलो ८८ ॥ आनाभि
 निरमजंश्च रथज्जकाणि शोणितैः । मत्ता वेगवता राजंस्तावकानां
 रणाङ्गणे ॥ ८९ ॥ हस्तिनश्च हतारोहा दारिनाङ्गाः सहस्रशः ।
 स्वान्यनीकानि मृदुनन्त आर्चनादा प्रदुद्रुवुः ॥ ९० ॥ हयाश्चपति-
 तारोहाः पत्तयश्च नराधिप । प्रदुद्रुवु र्भयाद्राजन् धनञ्जयश-
 राहताः ॥ ९१ ॥ मुक्तकेशा विक्रवाः क्षरन्तः क्षतजं क्षतैः । प्रप-
 ल्तायन्त सन्त्रस्तास्त्यक्त्वा रणशिरो जनाः ॥ ९२ ॥ ऊनग्राहगृही-

हट उत्पन्न होगई और वे परस्पर एक दूसरेको पहचान न सके ८५
 हे राजन् ! अर्जुनके छोड़ेहुए बाणोंसे मर्मस्थानोंमें घायल होनेके
 कारणसे सैनिक इधर-उधरको भागतेहुए ठोकरें खानेलगे और
 गिरनेलगे बहुतसे वहाँ ही काठमे रहगए और बहुतसोंका चित्त
 मलिन होगया ॥ ८६ ॥ प्रजाओंके संहारके समान उस महाभयङ्कर
 दुष्पार और अतिदारुण युद्धके चलते रहनेसे और रुधिरके झिड़-
 काव तथा वायुके वेगसे धूलि रुधिरसे भीग जानेके कारण भूमि
 में जहाँकी तहाँ ही शान्त होगई ॥ ८७-८८ ॥ युद्धमें रथोंके
 पहिये धुरी पर्यन्त डूब रहे थे, रणाङ्गणमें तुम्हारे मदमत्त सहस्रों
 हाथी, जिनके कि-अंग प्रत्यङ्ग चिर गए थे तथा महावत मरगए
 थे वे भयङ्कर रूपसे चिंघाड़ते हुए अपनी ही सेनाको कुचलते
 हुए भागने लगे ॥ ८९-९० ॥ हे राजन् ! अर्जुनके बाणोंसे
 व्याकुल हुए और जिनके घुड़सवार मरगए हैं ऐसे घोड़े तथा
 पैदल भयके मारे रणभूमिमेंसे भागनेलगे ॥ ९१ ॥ बहुतसे पुन्नोंके
 घावोंमेंसे रुधिर वह रहा था और वे डरकर खुले केश ही रणके
 मुहानेसे भागे जारहे थे ॥ ९२ ॥ बहुतसे मनुष्य डरके मारे घुटने

ताश्च केचित्तत्राभवन् भुवि । एतानाञ्चापरे मध्ये द्विरदानां निलि-
 न्तिरे ॥ ६३ ॥ एवं तव बलं राजन् द्रावयित्वा घनञ्जयः । न्य-
 वधीत् सायकैर्वोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥ ६४ ॥ कर्णं द्रौणि-
 कृपं शल्यं वृषसेनं सुयोधनम् । छादयामास तीव्रेण शरजालेन
 पाण्डवः ॥ ६५ ॥ न शृद्धन्त क्षिपत्राजन् मुञ्चन्नापि च सन्दपत् ।
 अदृश्यताञ्जुनः संख्ये शीघ्रास्रत्वात् कथञ्चन ॥ ६६ ॥ धनुर्मे-
 गदलमेवास्य दृश्यतेऽस्मास्यतः सदा । सायकारश्च व्यदृश्यन्त निश्च-
 रन्तः समन्ततः ॥ ६७ ॥ कर्णस्य तु धनुरिक्षित्वा वृषसेनस्य चैव ह ।
 शल्यस्य सूर्तं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ६८ ॥ गाढविद्वातुर्भौ-
 कृत्वा शरैः स्वस्त्रीयमातुला । अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो द्रौणिशार-
 द्धर्तौ रणे ॥ ६९ ॥ एवं तान् व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महार-

होले पड़जानेके कारण एक भी पग (कदम) नहीं उठा सकते
 थे और बहुतसे योधा डरके भारे मरे हुए हाथियोंकी खोर्धोंमें
 छिप गए थे ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार तुम्हारी सेनाको भगा
 कर अर्जुन जयद्रथके रत्नोंके ऊपर बाण बरसाने लगा ॥ ६४ ॥
 अर्जुनने अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, वृषसेन और दुर्यो-
 धनको तीक्ष्ण बाणोंके समूहसे ढकदिया ॥ ६५ ॥ हे राजन् !
 अर्जुन रणमें बहुत ही फुर्तीसे बाण छोड़ता था, इसकारण वह
 कब बाण लेता है, कब चढ़ाता है और कब छोड़ता है, यह कुछ
 नहीं दीखता था ॥ ६६ ॥ बाण छोड़नेवाले अर्जुनके धनुषका घेरा
 और बाण ही चारों दिशाओंमें दिखाई पड़ते थे ॥ ६७ ॥ अर्जुन
 ने कर्ण और वृषसेनके धनुषको काटकर शल्यके सारथिको भल्ल
 मारकर रथकी बैठक परसे नीचे गिरादिया ॥ ६८ ॥ अर्जुनने
 दोनों मामा भाजे कृपाचार्य और अश्वत्थामाको बाणोंसे बहुत
 घायल कर डाला ॥ ६९ ॥ इसप्रकार तुम्हारे महारथियोंको व्या-
 कुल करके अर्जुनने अधिकी समान घोर और इन्द्रवज्रकी समान

रथान् । उज्जहार शरं धोरं पाण्डवोऽनलसन्निभम् ॥ १०० ॥ इन्द्रा-
 शनिसममख्यं दिव्यमस्त्राभिमन्त्रितम् । सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमा-
 ल्याचितं महत् ॥ १०१ ॥ वज्रेणास्त्रेण संयोज्य विधिवत् कुरु-
 नन्दनः । सपादधत्सहाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥ १०२ ॥
 तस्मिन् सन्धीयमाने तु शरे ज्वलनतेजसि । अन्तरिक्षे महानादौ
 भूतानामभवन्तुप ॥ १०३ ॥ अन्नवीच्य पुनस्तत्र त्वरमाणो जना-
 र्दनः । धनञ्जय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ॥ १०४ ॥
 अस्तं महीवरश्रेष्ठं पियासति दिवाकरः । मृणुष्यैतच्च मे वाक्यं
 जयद्रथवधं प्रति ॥ १०५ ॥ दृढुक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः ।
 स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान् सुतम् ॥ १०६ ॥ जयद्रथममि-
 वधनं वायुनाचाशरीरिणी । नृपमन्तर्हिता वाणी मेघदुन्दुभिनिः-

दिव्य अस्त्रोंके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित, सह प्रकारके भारको सहने
 वाला सदा गन्ध और मालाओंसे पूजित एक महाभयानक बाण
 खेंचकर निकाला ॥ १००-१०१ ॥ महाबाहु कुरुनन्दन अर्जुनने
 उसको शास्त्रानुसार वज्र नामक अस्त्रसे अभिमन्त्रित करके शीघ्रता
 से गाण्डीव धनुष पर चढ़ाया ॥ १०२ ॥ दमकते हुए तेजवाले
 उस बाणको धनुषके ऊपर चढ़ाने पर हे राजन ! आकाशमें
 प्राणी बढ़ाभारी कोलाहल करनेलगे ॥ १०३ ॥ उस समय श्रीकृष्णने
 पुरतीके साथ फिर अर्जुनसे कहा, कि—“हे धनञ्जय ! इस दुष्टा-
 त्माके शिरको तू शीघ्रनासे काटडाल ॥ १०४ ॥ सूर्य अस्त होने
 के लिये पर्वतोंमें श्रेष्ठ अस्ताचल पर जाना चाहता है (अस्त होने
 को है) जयद्रथवधके विषयमें तू मेरी यह बात सुन कि—॥ १०५ ॥
 जयद्रथका पिता दृढुक्षत्र संसारमें प्रसिद्ध है उसकी अधिक अवस्था
 होजाने पर यह जयद्रथ नामक पुत्र हुआ था ॥ १०६ ॥ जब
 इस राजाका जन्म हुआ था, उस समय मेघ तथा दुन्दुभिदी-
 समान गर्जना करती हुई आकाशवाणीने अदृश्य रहकर इसके

स्वना ॥ १०७ ॥ तवात्मजो मनुष्येन्द्र कुलशीलदमादिभिः । गुणै-
र्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥ १०८ ॥ क्षत्रियप्रवरो लोके
नित्यं शूराभिसत्कृतः । किन्त्वस्य युध्यमानस्य संग्रामे क्षत्रिय-
र्षभः ॥ १०९ ॥ शिरश्चेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुश्चालक्षितो भुवि ।
एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरपरिन्दमः ॥ ११० ॥ ज्ञातीन्
सर्वांनुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः । संग्रामे युध्यमानस्य बहूतो महतीं
धुरम् ॥ १११ ॥ धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः ।
तस्यापि शतधा सूर्द्धा फलिष्यति न संशयः ॥ ११२ ॥ एवमुक्त्वा
ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् । वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चोग्रं
समास्थितः ॥ ११३ ॥ सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरा-
सदम् । समन्तपञ्चकादस्माद्बहिर्वानरकेतन ॥ ११४ ॥ तस्मा-

पितासे कहा था कि—॥ १०७ ॥ हे समर्थ-राजन ! तुम्हारा पुत्र
कुल शील और दम-आदि गुणोंमें चन्द्रवंशी तथा सूर्यवंशियोंकी
समान होगा ॥ १०८ ॥ यह जगत्में क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ गिना जायगा
और शूरोमें नित्य सत्कार पावेगा, परन्तु एक प्रतिष्ठित महा-
क्षत्रिय अचानक चढ़कर आवेगा और युद्ध करतेहुए तुम्हारे इस
पुत्रके शिरको क्रोधमें भरकर काट डालेगा, यह सुनकर अरिन्दम
सिन्धुराजने बहुत देरतक विचार किया ॥ १०९-११० ॥ फिर
पुत्रस्नेहके कारण खिन्नहुए उस राजाने अपने सब जातिवालों
से कहा, कि—मेरा पुत्र संग्राममें बड़े भारी भारको अपने ऊपर
लेकर युद्ध करता होगा, उस समय जो मनुष्य इसके शिरको
भूमिपर गिरावेगा उसके शिरके भी अवश्य ही सौ टुकड़े
होजायेंगे ॥ १११ ॥ ११२ ॥ राजा वृद्धक्षत्र ऐसा कहकर पुत्रको
राज्य दे वनको चला गया और उग्र तप करने लगा ॥ ११३ ॥
हे वानरकेतु अर्जुन ! वह तपस्वी अतितेजस्वी राजा वृद्धक्षत्र इस
समय स्वमन्तपञ्चक नामक क्षेत्रके बाहरी भागमें अतिघोर दुरा-

जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधोदिव्येनास्त्रेण रिपुहन् घोरेणा-
द्भुतकर्मणा ॥ ११५ ॥ सकुण्डलं सिंधुपतेः प्रभञ्जनमुतानुज ।
उत्संगे पातयस्वास्य वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥ ११६ ॥ अथ त्वमस्य
मूर्द्धानं पातयिष्यसि भूतले । तत्रापि शतधा मूर्द्धा फलिष्यति न
संशयः ॥ ११७ ॥ यथा चैतन्न जानीयात् स राजा तपसि स्थितः ।
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥ ११८ ॥ न ह्यसाध्यमकार्यं
वा विद्यते तव किञ्चनासमस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ११८
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सुनकरी परिसंलिहन् । इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्य-
मन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ १२० ॥ सर्वभारसहं शश्वद्वन्धमान्यार्चितं
शरम् । विससर्जार्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे धृतम् ॥ १२२ ॥ स

सद तप कर रहा है ॥ ११४ ॥ अतः हे शत्रुहन्ता ! हे भीमके
छोटे भाई ! तू इस महासंग्राममें घोर और अद्भुत कर्म करनेवाले
दिव्य अस्त्रसे सिन्धुराज जयद्रथके कुण्डलोंवाले मस्तकको काट
कर वृद्धक्षत्रकी गोदीमें डाल दे ॥ ११५-११६ ॥ यदि तू इसके
मस्तकको भूमिमें गिरावेगा तो निःसन्देह तेरे मस्तकके भी सौ
टुकड़े हो जायेंगे ॥ ११७ ॥ अतः हे कुरुश्रेष्ठ ! तप करता हुआ
उसका पिता हमारी इस बातको न जानने पावे तैसे तू दिव्य
अस्त्रको लेकर इसके मस्तकको काट डाल ॥ ११८ ॥ हे इन्द्रपुत्र !
तुझे समस्त लोकोंमें कुछ भी असाध्य वा अकार्य नहीं है तू जो
चाहे वही कर सकता है ॥ ११९ ॥ कृष्णजी इन बातोंको सुनकर
अर्जुन दोनों जवाहोंको चाटने लगा और उसने- इन्द्रके वज्रकी
समान, तीक्ष्ण, सबके पराक्रमको सहनेवाले, नित्य चन्दन तथा
गन्धोंसे अर्चित, दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर जयद्रथके वधके
लिए धनुष पर चढ़ाये हुए बाणको छोड़ दिया ॥ १२०-१२१ ॥
गाण्डीव धनुषमेंसे छूटा हुआ वह बाणकी समान शीघ्रगामी बाण
सिन्धुराजके मस्तकको काट उसे लेकर आकाशमेंको उड़ा १२२

तु गाएदीननिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः । छित्वा शिरः सिन्धुपते-
 रत्पपात विहायसम् ॥ १२२ ॥ तच्छिरः सिन्धुराजस्य शरैरुर्ध्व-
 मवाहयत् । दुर्हदाममर्षणाय मुहूर्तां हर्षणाय च ॥ १२३ ॥ शरैः
 कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः । योधयामास तारश्चैव
 पाण्डवः परमहारथान् ॥ १२४ ॥ ततः सुमहदाश्चर्यं तत्रापश्याम
 भारत । समन्तपञ्चकाद्बालं शिरस्तद्व्यहरत्ततः ॥ १२५ ॥ एत-
 स्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः । सन्ध्यामुपारते तेजस्वी
 सम्बन्धी तव मारिष ॥ १२६ ॥ उपासीनस्य तरयाथ कृष्णकेशं
 सकुण्डलम् । सिन्धुराजस्य मूर्ध्निमसुरसङ्गे तमपातयत् ॥ १२७ ॥
 तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तचारु कुण्डलम् । वृद्धक्षत्रस्य नृपतेर-
 रत्नक्षितमरिन्दम ॥ १२८ ॥ कृतजप्यस्य तस्याथ वृद्धक्षत्रस्य
 भारत । प्रोष्णिष्ठतस्तत् सहसा शिरोऽगच्छद्विरातलम् ॥ १२९ ॥

अर्जुनने मित्रोंको प्रसन्न और शत्रुओंको दुःखी करनेके लिये
 सिन्धुराजके उस मस्तकको बाणोंसे आकाशमें ऊपरको चढ़ाया
 ॥ १२३ ॥ उस समय तुम्हारे पक्षके लोगों महारथी भी प्रोधमें भर
 कर लड़नेलगे परन्तु अर्जुन उनको कदम्बके फूलकी समान
 तुच्छ गिनकर उनके साथ बाणोंसे लड़ता रहा ॥ १२४ ॥
 हे भारत ! उस समय हमने एक बड़ा भारी आश्चर्य देखा, कि-
 अर्जुनका बाण जयद्रथके शिरको स्यमन्तपञ्चकसे बाहर ले
 गया ॥ १२५ ॥ हे राजन् ! उस समय तुम्हारे सम्बन्धी अति-
 तेजस्वी राजा वृद्धक्षत्र सन्ध्यात्रन्दन कर रहे थे ॥ १२६ ॥ बाणने
 पूजा करतेहुए वृद्धक्षत्रकी गोदीमें जयद्रथके काले केश और
 कुण्डलोंसे शोभित मस्तकको डालदिया ॥ १२७ ॥ हे अरिदमन !
 सुन्दर कुण्डलोंवाला वह मस्तक वृद्धक्षत्रकी गोदीमें इसप्रकार गिरा
 कि-उसको मालूम ही नहीं हुआ ॥ १२८ ॥ हे भारत ! जब
 राजा वृद्धक्षत्र जप करके बठा तब उसकी गोदीमेंसे वह मस्तक

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्द्धनि भूतले । गते तस्यापि शतधा मूर्द्धा-
गच्छदरिन्दमः ॥ १३० ॥ ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मु-
श्चतमम् । वासुदेवञ्च वीभत्सुं प्रशशंसुर्महारथम् ॥ १३१ ॥ ततो
विनिहते राजन् सिन्धुराजे किरीटिना । तमस्तद्वासुदेवेन संहतं
भरतर्षभ ॥ १३२ ॥ पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः ।
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति वृषसचम ॥ १३३ ॥ एवं स निहतो
राजन् पार्थनामितनेजसा । अक्षौहिणीरष्ट हत्वा जांभाता तव
सैन्यवः ॥ १३४ ॥ इतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप । दुःखा-
दश्रूणि मुमुक्षुर्निराशाश्चाभवन् जये ॥ १३५ ॥ ततो जयद्रथे
राजन् हते पार्थेन केशवः । दध्मौ शंखं महाबाहुरर्जुनश्च पर-
न्तपः ॥ १३६ ॥ भीमश्च वृष्णिंसिहश्च युधामन्युश्च भारत ।
उत्तमौजाश्च विक्रान्तः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १३७ ॥ श्रुत्वा

सहसा भूमिपर गिरपड़ा ॥ १२६ ॥ हे अरिन्दम! पुत्रका मस्तक
पृथ्वीपर गिरते ही उसके शिरके भी सौ टुकड़े होगए ॥ १२०॥
यह देखकर सब सेनाओंको बड़ा आश्चर्यहुआ और वे महारथी
अर्जुन तथा श्रीकृष्णकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १३१ ॥ हे राजन्!
जब किरीटी अर्जुनने सिन्धुराजको मारडाला तब हे भरतसचम!
भगवान् वासुदेवने अपने रचेहुए अन्धकारको हटा लिया ॥ १३२॥
तब हे राजन् ! अपने साथियों सहित तुम्हारे पुत्रोंने यह जाना,
कि-हा ! यह तो श्रीकृष्णकी रची माया थी ॥ १३३ ॥ इस
प्रकार अपारतेजस्वी अर्जुनने आठ अक्षौहिणी सेनाका संहार
करके तुम्हारे जमाई सिन्धुराजको मारडाला ॥ १३४॥ हे राजन् !
तुम्हारे पुत्र जयद्रथको मराहुआ देखकर दुःखसे आँसू बहाने लगे
और विजयके विषयमें निराश होगए ॥ १३५ ॥ हे राजन् !
अर्जुनके द्वारा जयद्रथके मारेजाने पर परन्तप श्रीकृष्ण, महाबाहु
अर्जुन, भीमसेन, वृष्णिंसिंह सात्यकि और पराक्रमी उत्तमौजाने

महान्तं तं शब्दं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । सैन्यं निहतं मेने फाल्गु-
नेन महात्मना ॥ १३८ ॥ ततो वादित्रघोषेण स्वान्योऽन्यर्षहर्ष-
यत् । अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥ १३९ ॥ ततः
प्रवृत्ते राजन्नस्तं गच्छति भास्करे । द्रोणस्य सोमकैः सार्द्धं संग्रामो-
त्तमहर्षणः ॥ १४० ॥ ते तु सर्वप्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
सैन्यं निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥ १४१ ॥ पाण्डवास्तु
जयं लब्ध्वा सैन्यं विनिहत्य च । अयोधयस्ततो द्रोणं जयान्मत्ता-
स्ततस्ततः ॥ १४२ ॥ अर्जुनोऽपि ततो योधास्तावकात् रथसज्ज-
मान् । अयोधयन्महाबाहुर्हत्वा सैन्यकं नृपम् ॥ १४३ ॥ स
देवशत्रुनिव देवराजः किरीटमाली व्यधत् सपन्तात् । यथा
तपोस्यभ्युदितस्तपोधनः पूर्वप्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥ १४४ ॥*

अपने २ शंखोंको अलग २ बजाया ॥ १३६ ॥ १३७ ॥
महात्मा धर्मराजने उस बड़ीभारी शंखध्वनिको सुनकर जाना,
कि—‘महात्मा अर्जुनने सिन्धुराजको मार डाला’ ॥ १३८ ॥
तब उन्होंने बाजे बजवाकर अपने योधाओंको इर्षित किया और
संग्राममें द्रोणके साथ लड़नेकी इच्छासे उनके सामने धावा
कर दिया ॥ १३९ ॥ हे राजन् ! सूर्यके अस्त होजाने पर द्रोणका
सोमकोंके साथ लोमहर्षण संग्राम होनेलगा ॥ १४० ॥ हे राजन् !
वे सब जयद्रथके मारेजाने पर द्रोणको मारनेकी इच्छासे यत्नके
साथ युद्ध करनेलगे ॥ १४१ ॥ पाण्डव सिन्धुराजको मारकर
और विजयको पाकर जयसे उन्मत्त हो द्रोणके साथ संग्राम करने
लगे ॥ १४२ ॥ महाबाहु अर्जुन भी राजा जयद्रथको मारकर
तुम्हारे श्रेष्ठ २ रथियोंसे युद्ध करनेलगा ॥ १४३ ॥ किरीटमाली
वीरवर अर्जुन, उदय होताहुआ सूर्य जैसे अन्धकारको नष्ट कर
देता है तैसे ही (जयद्रथको मार) अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करके,
देवराज इन्द्र जैसे देवशत्रु असुरोंका नाश करता है तैसे ही
तुम्हारे योधाओंका चारों ओरसे संहार करनेलगा ॥ १४४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन् विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना ।
 मामका यदकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच ।
 सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत । अमर्षवशमापन्नः
 क्रुपः शारद्वतस्ततः ॥ २ ॥ महता शरवर्षेण पाण्डवं
 समवाकिरत् । द्रौणिश्चाभ्यद्रवत् पार्थं रथमास्थाय फाल्गुनम् ३
 तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ । उभाबुभयतस्तीक्ष्णै-
 र्विशिखैरभ्यवर्षताम् ॥ ४ ॥ स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहदभ्यां
 महाभुजः । पीड्यमानः परामर्त्तिमगमद्रथिनाम्बरः ॥ ५ ॥ सोऽ-
 जिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च । चकाराचार्यकं तत्र कुन्ती-
 पुत्रो धनञ्जयः ॥ ६ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य
 च । मन्दवेगानि पूस्ताभ्यामजिघांसुरथासृजत् ॥ ७ ॥ ते चापि
 भृशमभ्यघ्नन् विशिखाः पार्थचोदिताः । बहुत्वात्तु परामर्त्तिं शरा-

धृतराष्ट्रने कहा कि--हे सञ्जय! जब अर्जुनने वीरवर जयद्रथको
 मार डाला, तब मेरे पुत्रोंने क्या किया ? यह मुझे सुना ॥ १ ॥
 सञ्जयने उत्तर दिया, कि--हे भारत ! रणमें अर्जुनने जयद्रथको
 मार डाला यह देख कृपाचार्य क्रोधमें भरकर अर्जुनके ऊपर
 बड़ी भारी बाण वर्षा करनेलगे, दूसरी ओरसे अश्वत्थामा भी
 रथमें बैठकर अर्जुनके ऊपर जाचढ़ा ॥ २ ॥ ३ ॥ इसप्रकार वे
 दोनों महारथी रथोंमें बैठ दोनों ओरसे अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण
 बाण छोड़नेलगे ॥ ४ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन उस बड़ी
 भारी बाणवर्षासे पीड़ित हो बहुत ही व्यथित होगया ॥ ५ ॥
 वह गुरु तथा गुरुपुत्रको मारना नहीं चाहता था, इसलिये
 वह रणमें उनका सन्मान करनेलगा ॥ ६ ॥ उनको मारनेकी इच्छा न
 रखनेवाला अर्जुन उनके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे दूर हटाकर, उनके
 ऊपर धीरे २ बाण छोड़नेलगा ॥ ७ ॥ अर्जुनने यद्यपि मन्द-
 वेगसे बाण छोड़े थे, परन्तु वे बाण उनके बड़े वेगसे लगे और

णान्तावगच्छताम् ॥ ८ ॥ अथ शारद्वतो राजन् कौन्तेयशरपी-
डितः । अवासीदद्रयोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ ९ ॥ विह्वलन्त-
मभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम् । इतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथि-
स्तमपावहत ॥ १० ॥ तस्मिन् भग्नो महाराज कृपे शारद्वतो युधि ।
अश्वत्थामाप्यपायासीत् पाण्डवेयाद्रथान्तरम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा शार-
द्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम् । रथ एव महेश्वासः सकृपं पर्य-
देवयत् ॥ १२ ॥ अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनञ्चेदमब्रवीत् । पश्य-
न्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान् ॥ १३ ॥ कुलान्तकरणो
पापे जातमात्रे सुयोधने । नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपां-
सनः ॥ १४ ॥ अस्माद्भिः कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम् । तदिदं
समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ १५ ॥ तत्कृते ह्यथ पश्यामि शर-

बहुतसे बाणोंकी चोट लगनेसे उनके शरीरमें बड़ीभारी वेदना
होनेलगी ॥ ८ ॥ हे राजन् ! कुन्तीपुत्रके बाणोंके प्रहारसे शार-
द्वान्के पुत्र कृपाचार्यको जब बहुत ही वेदना हुई, तब वे रथकी
बैठकमें बैठगए और मूर्छित होगए ॥ ९ ॥ कृपाचार्यका सारथि
उनको बाणके प्रहारसे विह्वल हुआ देखकर " यह तो मरगए "
ऐसा समझ उनको रथमेंसे बाहर लेगया ॥ १० ॥ हे महाराज !
एकसाथ कृपाचार्य मूर्छित होगए, यह देखकर अश्वत्थामा रथमें
अर्जुनको छोड़ दूसरे रथमें बैठकर तहाँसे दूर भागगया ॥ ११ ॥
महायन्त्रधारी अर्जुन अपने बाणके प्रहारसे कृपाचार्यको रथमें
मूर्छित पड़ा देखकर अपने रथमें बैठा २ ही उनके लिए शोक
करनेलगा १२ और आँखोंमें आँसू भर उतरेहुए मुखसे यह कहने
लगा, कि-इस कुलनाशक पापी दुर्योधनके उत्पन्न होते ही महा-
युद्धिमान् विदुरने घृतराष्ट्रसे कहा था कि-इस कुलपांसनको यम-
लोकमें भेज दो, तो अच्छा हो ॥ १३ ॥ १४ ॥ क्योंकि-इस
बालकसे कुरुवंशके मुख्य २ पुरुषोंको बड़ाभारी भय होगा उन

तत्पगतं गुरुम् । धिगस्तु ज्ञात्रमाचारं धिगस्तु बलपीरुपम् ॥१६॥
को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुहेत मादृशः । अपिपुत्रो ममाचार्यो
द्रोणस्य परमः सखा ॥१७॥ एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्राण-
पीडितः । अक्रामयानंन मया विशिखैरदितो भृशम् ॥१८॥ अत्रसी-
दन् रथोपस्थे प्राणान् पीडयतीव मे । पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्य-
दितेन च ॥ १९ ॥ अभ्यस्तो बहुभिर्वाणैर्दशधर्मगतेन वै । शोच-
यत्येष नियतं भूयः पुत्रवधादि माम् २० कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य
कृष्ण यथा गतम् । उपाकृत्य वै तु विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः २१
मयच्छन्तीह ये कामान् देवत्वमुपयांति ते । ये तु विद्यामुपादाय
गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ॥ २२ ॥ प्रन्ति तानेव दुष्टं चास्ते वै निरय-

सत्यवादीकी बात आज स्पष्ट रीतिसे सामने है १५वा ! दुर्योधनके
कारणसे ही मैं अपने गुरुको शरशय्यापर सोतेहुए देखता हूँ ।
ज्ञानियके धमको धिक्कार है । ज्ञानियके बल पुरुषार्थको धिक्कार
है ॥ १६॥ सुभ्रसरीखा कौन पुरुष ब्राह्मण जातिके आचार्यसे
द्रोह करेगा । कृपाचार्य मेरे गुरु हैं, द्रोणके मित्र हैं और अपि-
पुत्र हैं ॥ १७ ॥ हा ! वे कृपाचार्य ही मेरे बाणसे पीडित होकर
रथके भीतर मूर्छित पड़ेहुए हैं, मैं इनको मारना नहीं चाहता था,
तो भी मैंने बाण मारकर इनको बहुत ही पीडित किया है १८
बाणोंकी पीड़ासे यह रथके भीतर पड़े हैं, इनका पडना मेरे
प्राणोंको बहुत ही दुःखी कर रहा है । मैं पुत्रशोकसे सन्तप्त हो रहा
था और बाणोंकी वेदनासे पीड़ा पारहा था, ऐसी दुर्गतिमें होने
के कारण मैंने गुरुजीके ऊपर बहुतसे बाण छोड़े, इससे यह अपने
रथमें मूर्छित हो कृपणकी समान पड़े हैं, हे कृष्ण ! तूम् इनकी
ओरको देखो तो, मैं अभिमन्युके मरणसे दुःखी हूँ, उस दुःखको
यह और बढ़ा रहे हैं, जो गुरुओंसे विद्या पढ कर उनकी इच्छाओं
को पूरी करते हैं, वे महापुरुष देवयोनि पाते हैं, परन्तु जो गुरु-

भूरिश्रवसमाहवे । यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाश्वान् जनार्दन ३१
न सौमदत्तोः पदवीं गमयेत् सात्वतं वृषः । एवमुक्तो महाबाहुः
केशवः सव्यसाचिना ॥ ३२ ॥ प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्त-
मिदं वचः । अलमेव महाबाहुः कर्णयैकोऽपि पाण्डव ॥ ३३ ॥
किम्पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः । न च तावत् क्षमः पार्थ
कर्णेन तव सङ्गरः ॥ ३४ ॥ प्रव्वलन्ती महोत्केच तिष्ठत्यस्य हि
वासवी । त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥ ३५ ॥ अतः
कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथा तथा । अहं ज्ञास्यामि कान्तेय काल-
मस्य दुरात्मनः । यत्रैनं विशिखैस्तीक्ष्णैः पातयिष्यसि भूतले ३६
धृतराष्ट्र उवाच । योऽसौ कर्णेन वीरस्य बाणैर्यस्य समागमः । हते

रथकी ओरको चढ़ा चला आरहा है ॥ २६ ॥ ३० ॥ यह भूरि-
श्रवाके मरणको सह नहीं सका है, इसकारण यह जिस ओरको
बढ़ रहा है, उस ओरको घोड़े हॉकिये ॥ ३१ ॥ जिससे कि-यह
कर्ण, सात्यकिको भूरिश्रवाके पास (यमलोकमें) न पहुँचा सके
महाशुज श्रीकृष्ण अर्जुनकी इस बातको सुन समयानुसार यह
बात कहनेलगे, कि-“हे पाण्डुपुत्र ! यह अकेला ही कर्णके लिए
बहुत है और उसके पास पञ्चालराजके दो पुत्र हैं, तो फिर
क्या चिन्ता है ? और हे पार्थ ! अभी कर्णके साथ तुम्हारा लड़ना
ठीक नहीं है ॥ ३२-३४ ॥ उसके पास इन्द्रकी दी हुई बड़ी भारी
उल्काकी समान प्रदीप्त एक शक्ति है, हे शत्रुओंके वीरोंको नष्ट
करनेवाले अर्जुन ! उस शक्तिको वह तुम्हारे लिए ही रखकर
उसकी पूजा किया करता है ॥ ३५ ॥ इसलिये कर्ण जैसे जारहा
है तैसे ही उसे सात्यकिकी ओरको बढ़ने दो, हे कान्तेय ! जब
में इस दुष्टात्माको मारनेके लिए समय बताऊँ, उस समय तुम
इसको तीक्ष्ण बाण मारकर भूमिमें गिरादेना ॥ ३६ ॥ धृतराष्ट्रने
कहा, कि-हे सञ्जय ! भूरिश्रवा और जयद्रथके मारे जाने पर जो

च भूरिश्रवसि सैंधवे च निपातिते ॥३७॥ सात्यकिश्चापि विरथः
 कं समाखुहवात्रयम् । चक्ररत्नौ तु पाञ्चालयो तन्ममात्रक्ष्व संजय ३८
 सञ्जय उवाच । हन्त तं वर्त्तयिष्यामि यथावृत्तं महारणे । शुश्रूषस्व
 स्थितो भूत्वा दुराचरितमात्मनः ॥ ३९ ॥ पूर्वमेव हि कृष्णस्य
 मनोगतमिदं प्रभो । विजेतव्यो यथा वीरः सात्यकिर्सापिदक्षिणा ४०
 अतीतानागते राजन् स हि वेत्ति जनार्दनः । ततः सूतं समाहूय
 दारुकं सन्दिदेश ह ॥ ४१ ॥ रथो मे युज्यतां कल्यमिति राज-
 न्महाबलः । न हि देवा न गन्धर्वा न यत्तोरगराक्षसाः ॥ ४२ ॥
 मानवा वा विजेतारः कृष्णयोः सन्ति केचन । पितामहपुरोगोश्च
 देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ॥ ४३ ॥ तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं तु
 तत्राथा । सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाभ्युद्यतं युधि ॥ ४४ ॥ दध्मौ

यह दृष्टिपूर्वशी वीर सात्यकिका कर्णके साथ युद्ध हुआ था ३७
 उस युद्धमें तो सात्यकि रथहीन था, फिर वह कौनसे रथपर चढ़ा
 था और चक्ररत्नक दोनों पञ्चालकुमार भी कौनसे रथमें बैठे
 थे, यह मुझे सुना ॥ ३८ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि-जैसे २
 यह महायुद्ध हुआ, उस सबका वर्णन मैं तुमसे करता हूँ तुम स्थिर
 होकर अपने अन्यायके परिणामरूप युद्धको सुनो ॥ ३९ ॥ हे प्रभो!
 श्रीकृष्ण अपने मनमें इस बातको पहिले ही जानते थे. कि-
 इसप्रकार भूरिश्रवा सात्यकिको जीतलेगा ॥ ४० ॥ क्योंकि-
 हे राजन् ! वह श्रीकृष्ण भूत भविष्यत् और वर्तमान कालकी सब
 बातें जानते हैं, इसलिये उन्होंने अपने सारथि दारुकको बुला
 कर कहा, कि-॥ ४१ ॥ मातःकाल ही मेरे रथको जोतकर तैयार
 रखना, हे राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुनको न देवता, न गंधर्व
 न यक्ष, न सर्प, न राक्षस और न कोई मनुष्य ही जीत सकते
 हैं, पितामह आदि देवता और सिद्ध उनके इस अतुल प्रभावको
 जानते हैं, अब तुम युद्धके वर्णनको सुनो, श्रीकृष्णने सात्यकिको

शंखं महानादमार्पभेणाथ माधवः । दारुकोऽनेत्य सन्देशं श्रुत्वा
 शंखस्य च स्वनम् ॥ ४५ ॥ रथपन्वानयत्तास्मै सुवर्णोन्मिलनकैत-
 नम् । स केशवस्यानुमते रथं दारुकसंयुतम् ॥ ४६ ॥ आरुराट
 शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसन्निभम् । कामगैः शैव्यमुग्रीवमेवपुष्प-
 वलाहकैः ॥ ४७ ॥ हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः । युक्तं
 समारुह्य च तं विमानमतिमं रथम् ॥ ४८ ॥ अभ्यद्रवत् राधेयं
 प्रवपन् सायकान् बहून् । चक्ररक्षावपि तदा युधामन्युत्तमोजसो ४९
 वनञ्जयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीयतुः । राधेयोऽपि महाराज शर-
 नपि समुत्सृजन् ॥ ५० ॥ अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धो रणे शैन्यमच्युतम् ।
 नैव दैवं न गन्धर्वं नासुरोरगराक्षसम् ॥ ५१ ॥ तादृशं भुवि नो
 युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत । उपारमन् तत्सैन्यं सरधारवनरद्वि-

रथहीन और कर्णको तयार हो चढ़कर आते देखकर अपने
 महाध्वनि करनेवाले शंखको ऋषभ स्वरसे बजाया, उस शङ्खके
 नादको सुनकर दारुकको श्रीकृष्णके संदेशकी याद आगयी ४२-४५
 और वह गरुडकी ध्वजासे शोभायमान रथको सात्यकिके लिए
 ले आया, श्रीकृष्णकी सलाहसे सात्यकि सुवर्णके आभूषणोंवाले
 महावेगवान् घोड़ोंमें श्रेष्ठ शैव्य, मुग्रीव, मेघपुष्प और वलाहक
 नामक इच्छानुसार चलनेवाले घोड़ोंसे जुते और जिसमें दारुक
 बैठा हुआ था ऐसे अग्नि और सूर्यकी समान प्रकाशवान् रथमें
 बैठ गया, विमानकी समान उस रथमें बैठकर सात्यकि बहुतसे
 बाण छोड़ता हुआ कर्णकी ओरको दौड़ा, अर्जुनके दोनों चक्र-
 रक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा भी अर्जुनके रथके पाससे चल
 कर कर्णके ऊपर टूटपड़े, हे महाराज ! राधाका पुत्र कर्ण भी
 क्रोधमें भर बाण बरसाता हुआ सात्यकिके ऊपर टूटपड़ा, हमने
 ऐसा युद्ध आकाशमें न देवताओंमें सुना, न गन्धर्वोंमें सुना
 और न राक्षसोंमें सुना तथा पृथ्वी पर मनुष्योंमें भी नहीं

पम् ॥ ५२ ॥ तयोर्दृष्ट्वा महागज कर्म सम्मूढचेतसः । सर्वे च सम्-
पश्यन्त तद्युद्धमतिमानुपम् ॥ ५३ ॥ तयोर्नृवरयो राजन् सारथ्यं
दारुकस्य च । गतप्रत्यागतावृत्तैर्मण्डलैः सन्निवर्त्तनैः ॥ ५४ ॥
सारथेस्तु रथस्तस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः । नभस्तलगताश्चैव
देवगन्धर्वदानवाः ॥ ५५ ॥ अतीवावहिता द्रष्टुं कर्णशैनेययो
रणान् । मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ स्पर्द्धिनौ शुष्मिण्यौ रणे ॥ ५६ ॥
कर्णश्चामरसङ्काशो युयुधानश्च सात्यकिः । अन्योऽन्यं तौ महाराज
शरवर्षैर्वर्षताम् ॥ ५७ ॥ प्रमथाथ शिनेः पाँत्रः कर्णं सायकवृष्टिभिः ।
अमृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसन्धयोः ॥ ५८ ॥ कर्णः शोक-
समाविष्टो मढोरग इव श्वसन् । स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव
चक्षुषा ॥ ५९ ॥ अभ्यधावत वेगेन पुनः पुनररिन्दम । तन्तु

सुना, हे महाराज ! उनके पराक्रमको देखकर रथ,
हाथी, घोड़े और मनुष्यों सहित सारी सेना शान्त पड़ गई
और हे राजन् ! सबके सब योधा भौचक्केसे होकर उन दोनोंके
अलौकिक युद्धको देखनेलगे, उन दोनोंके अलौकिक कर्म और
कश्यपगोत्री सारथि दारुकके आगेको बढ़ना, पीछेको हटना,
लौटना, मण्डलाकारसे घूमना आदि गतिघोसे सारथिकर्मको
देखकर आकाशमें स्थित हो देव, दानव और गन्धर्व आश्चर्यमें
होगए और कर्ण तथा सात्यकिके युद्धको अधिक सावधानी
से देखने लगे, हे महाराज ! मित्रोंके लिए रणमें परा-
क्रम करनेवाले क्रोधी और परस्पर स्पर्धा रखनेवाले देवताओंकी
समान कर्ण और सात्यकि एक दूसरेके ऊपर बाणोंकी वर्षा
करनेलगे ॥ ५६-५७ ॥ क्रुद्धवंशी भूरिश्रवा और जलसन्धके
मरणको न सहकर कर्ण सात्यकिको बाणोंसे घायल करने
लगा ॥ ५८ ॥ हे शत्रुमर्दन ! शोकमें भरकर सर्पकी समान श्वास
बोड़ताहुआ कर्ण अपने नेत्रसे मानो सात्यकिको भस्म ही कर

सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ६० ॥ मरुता शस्त्रैरेण
 गजः प्रतिगजो यथा । तौ समेत्य नरव्याघ्रौ व्याघ्राविषं तरस्विनौ ६१
 अश्वयोऽन्यं सन्ततज्ञाते रणेऽनुपमविक्रमौ । ततः कर्णे शिनेः पौत्रः
 सर्वपारसवैः शरैः ॥ ६२ ॥ विभेदं सर्वगान्धेयु पुनः पुनरिन्दमः ।
 सारबिष्चास्य भल्लेन रथनीहादपातयत् ॥ ६३ ॥ अश्वं च चतुरः
 रथेतान् निजघ्ने निशितैः शरैः । क्षित्वा ध्वजं रथं चैव क्षतञ्चा
 पुष्पपर्षथ ॥ ६४ ॥ चकार विरथं कर्णं तत्र पुत्रस्य पश्यतः । ततो
 विपनसो राजंस्तादकास्ते मद्भारथाः ॥ ६५ ॥ वृषसेनः कर्णमुतः
 शन्यो मद्भाषिपस्तथा । द्रोणपुत्रश्च शौनेयं सर्वतः पर्यत्रारयन् ॥ ६६ ॥
 ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन । तथा सात्यकिना धीरे

डालेगा, इसप्रकार उसकी ओरको बारम्बार देखरहा था, सात्यकि
 उसको क्रोधमें भरा देखकर जैसे हाथी हाथीके साथ युद्ध करता
 है तैसे ही बड़ी भारी बाणवर्षा करता हुआ उसके साथ लड़ने
 लगा, रणमें अनुपम पराक्रमी और सिंहभी समान बंगवान् वे
 दोनों नरव्याघ्र एक दूसरेके पर प्रहार करनेलगे, हे अरिन्दम !
 तदनन्तर सात्यकि बारम्बार ठोस लोहेके बने बाण मारकर कर्णके
 सकल अङ्गोंको घायल करने लगा और उसने भल्ल मारकर
 कर्णके सारथीको रथकी बैठकपरसे नीचे गिरा दिया ५६-६३
 और उसके चार श्वेत घोड़ोंको भी तीव्र बाणोंसे मार डाला,
 हे पुरुषसत्तम ! फिर उसने तुम्हारे पुत्रके सामने ही कर्णकी
 ध्वजा और रथके संक्रुद्धों टुकड़े करके उसको रथहीन कर दिया,
 हे राजन् ! तब तुम्हारे पुत्रोंका चित्त अनमनासा होगया और
 कर्णके पुत्र वृषसेन, मद्भाराज शन्य तथा द्रोणपुत्र अरु-
 त्थामाने चारों ओरसे सात्यकिको घेर लिया, उस समय चारों
 ओर गडगड़ी फैल गई, इसलिये कुछ भी मालूम नहीं होता था,
 सात्यकिके हाथसे इसप्रकार धीरे कर्णके रथहीन होजाने पर

विरथं मृतणे कृते ॥६७॥ शशाकारस्ततो राजन् सर्वसैन्येषु चाव-
 षत् । कर्णोपि विरथो राजन् सात्वतो न कृतः शरैः ॥ ६८ ॥
 दुर्योधनरथं तूर्णमाकरोह विनिःस्वसन् । मानयंस्तव पुत्रस्य बान्धा-
 त्प्रभृति सौहृदम् ॥ ६९ ॥ कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपाल-
 यन् । तथा तु विरथं कर्णं पुत्रान् ये तव पार्थिव ॥ ७० ॥
 दुःशासनमुखान् शूरान्नावधीत् सात्यकिर्वशी । रक्षन् प्रतिज्ञां
 भीमेन पार्थेन च पुरा कृतां ॥७१॥ विरथान् विहतांश्चक्रे न तु
 प्राणैर्व्ययोजयत् । भीमसेनेन तु वधः पुत्राणाम्ते प्रतिश्रुतः ॥७२॥
 अनुद्यते च पार्थेन वधः कर्णस्य संभ्रुतः । वधे त्वकुर्वन् यत्नं ते तस्य
 कर्णमुत्वास्तदा ॥ ७३ ॥ नाशवन्नुवंस्ततो हन्तुं सात्यकिं प्रवरा-
 रथाः । द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवाभ्ये महारथाः ॥७४॥ निर्जिता
 धनुषकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः । काक्षता परलोकम् च धर्मराजस्य

हे राजन् ! सब सेनाओंमें बड़ा भारी शशाकारमचगया, हे राजन् !
 सात्यकिके बाणोंसे रथहीन हुआ कर्ण कि-जो तुम्हारे पुत्रको
 बालकपनेसे मित्र मानता था और जिसने तुम्हारे पुत्रको राज्य
 दिलानेकी प्रतिज्ञा की थी, वह कर्ण गहरे २ सौ स लेता हुआ
 शीघ्रतासे दुर्योधनके रथ पर चढ़गया, हे राजन् ! भीमसेन और
 अर्जुनकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये सात्यकिने रथरहित हुए
 कर्ण तथा दुःशासन आदि तुम्हारे पुत्रोंका वध नहीं किया ६४-७१
 भीमसेनने तुम्हारे पुत्रोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी और दूसरी
 बारके धूनमें अर्जुनने कर्णको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, इसलिये
 सात्यकिने उनको रथहीन करके व्याकुल तो किया परन्तु प्राण
 नहीं लिये और कर्ण आदि धोष्ठ २ रथियोंने सात्यकिको मारनेके
 लिए यत्न किया परन्तु उसको मार न सके, धर्मराजका हित करना
 चाहनेवाले और परलोकके अभिलाषी वीरतामें कृष्ण और
 अर्जुनकी समान सात्यकिने एक धनुषसे ही अश्वत्थामा, कृत्-

ष प्रियम् ॥ ७५ ॥ कृष्णयोः सहस्रो वीर्यं सात्यकिः शत्रुतापनः ।
 जितवान् सर्वसैन्यानि सावकानि हसन्निव ॥ ७६ ॥ कृष्णो वापि
 भवेत्लोकं पार्थो वापि धनुर्द्धरः । शौनेयो वा नरव्याघ्रश्चतुर्थो नोप-
 लभ्यते ॥ ७७ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । अजयं रथमास्थाय वासुदेवस्य
 सात्यकिः । विरथं कृतवान् कर्णं वासुदेव समोद्युधि ॥ ७८ ॥ दारु-
 केण सपायुक्तः स्वबाहुवन्तदपितः । कञ्चिदग्न्यं समारुहः सात्यकिः
 शत्रुतापनः ॥ ७९ ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलं वासि भाषि-
 तुम् । असह्यं तमहं मन्ये तन्मयाचक्ष्व सञ्जय ॥ ८० ॥ सञ्जय
 उवाच । मृणु राजन् यथा दृष्टं रथपत्न्यं महामतिः । दारुकस्यानु-
 जन्तून् कञ्चनाविधिकदिपनम् ॥ ८१ ॥ आयसैः कान्चनैश्चापि

वर्मा और सैंकड़ों श्रेष्ठ क्षत्रियोंका तथा तुम्हारी सब सेनाओंको
 हँसते २ जीतलिया ॥ ७२-७६ ॥ संसारमें श्रीकृष्ण और अर्जुन
 तथा नरव्याघ्र सात्यकिको छोड़कर ऐसा धनुषधारी चौथा नहीं
 है ॥ ७७ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-वासुदेवकी समान युद्धमें परा-
 क्रम करनेवाला अपने शत्रुबलका घमण्ड रत्ननेवाला सात्यकि
 दारुक सारथिवाले श्रीकृष्णके अजेय रथपर बैठकर कर्णको रथ-
 हीन करनेके अनन्तर भी क्या उस ही रथ पर बैठारहा अथवा
 वह शत्रुतापन दूसरे रथ पर बैठगया था ॥ ७८ ॥ ७९ ॥
 हे संजय ! मैं यह सब सुनना चाहता हूँ, तू क्या कहनेमें चतुर
 है, मैं सात्यकिको असह्य मानता हूँ, इसलिये तू उसके युद्धका
 वर्णन कर ॥ ८० ॥ संजयने उत्तर दिया, कि-हे राजन् ! इस
 युद्धमें जो कुछ हुआ उसको मैं तुमसे यथावत् कहता हूँ, सुनिये
 हे राजन् ! दारुकके छोटे भाईने मैद्यकी समान गम्भीर और बड़ी
 भारी घनघनाहट करताहुआ तथा सब सामग्रीसे भराहुआ रथ
 सात्यकिके पास लाकर खड़ा करदिया श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार
 उस रथको अनेकों प्रकारके आभूषणोंसे सजाया गया था, उसके

पट्टैः सन्नद्धकूर्वरम् । तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम् ८२
 अश्वैर्वैतजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः । सैन्यवैरिदुसंकाशीः सर्व-
 शब्दातिगोहृदैः ॥ ८३ ॥ चित्रकाञ्चनसन्नादैर्वाजिमुज्यैर्विशाम्भते ।
 घण्टाजालाकुल्लरवं शक्तितोमरविद्युत् ॥ ८४ ॥ युक्तं साग्रापिके-
 र्द्रव्यैर्वहुशस्त्रपरिच्छदैः । रथं सम्पादयामास मेघगम्भीरनिः-
 स्वनम् ॥ ८५ ॥ तं समारुह्य शौनेयस्त्व सैन्यमुपाव्रजन् । दारुकोपि
 यथा कामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥ ८६ ॥ कर्णस्यापि रथं राजन्
 शंखगोक्षीरपाण्डुरैः । चित्रकाञ्चनसन्नादैः सदस्वैर्वेगवत्तरैः ॥ ८७ ॥
 हेमकक्ष्याध्वजोपतं क्लृप्तपन्नपताकिनम् । अग्रयं रथं सुयन्तारं बहु-
 शस्त्रपरिच्छदम् ॥ ८८ ॥ उपाजहुस्तमास्थाय कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्भि-
 र्हाँचमै सोनेके और लोहेके पत्तर जड़ेहुए थे, रथ पर हजारों
 फुल्लियोंसे नकासीका काय होरहा था, उसके ऊपर सिंहके
 चिन्हवाली ध्वजा फहरारही थी ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ यह रथ सोनेके
 आभूषणोंसे सजाहुआ था, चन्द्रमाशी समान सफेद, रत्नके अपनी
 दिनहिनाटसे सब शब्दोंको टुकड़ेनेवाले, दृढ़शरीर, सोनेके विविध
 प्रकारके कवचोंसे शोभायमान बढ़िया जातिके पवनकी समान
 वेगवाले और सिन्धु देशमें उत्पन्न हुए सुन्दर घोड़े उस रथमें
 जुतरहे थे, घंटियोंकी झनकारसे वह रथ गरज रहा था ! शक्ति
 और तोमररूप विजलीकी चमकसे चमकरहा था, युद्धके अनेकों
 और बहुतसे शस्त्रोंसे भराहुआ मेघकी समान गम्भीर शब्द कर
 रहा था ॥ ८०-८५ ॥ सात्यकि उसके ऊपर बैठकर तुम्हारी
 सेनापर झूटा और दारुक भी इच्छानुसार श्रीकृष्णके पास
 चला गया ॥ ८६ ॥ और हे राजन् ! कौरव भी शक्र और गो-
 दुष्यकी समान रत्न दण्डोंके तथा सुवर्णकी चित्र विचित्र झूलों
 वाले वेगवान् श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते सुवर्णके पत्तरकी ध्वजावाले,
 चन्द्रोंसे भरे श्रेष्ठ सारथिवाले और बहुतसे शस्त्रोंसे युक्त, श्रेष्ठ

पुनः । एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८६ ॥ भूय-
श्चापि निबोध त्वं तथापनयजं क्षयम् । एकत्रिंशत्तत्र मुता भीमसे-
नेन पातिताः ॥ ८७ ॥ दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम् ।
शतशो निहता शूराः सात्वेनार्जुनेन च ॥ ८८ ॥ भीष्मं प्रमुखतः
कृत्वा भगदत्तञ्च मारिष । एवमेव क्षयो वृत्तो राजन् दुर्मन्त्रिते
तव ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णसात्यकि-
युद्धे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च संयुगे । किं
वै भीमस्तदाकार्षीत्तन्ममावक्ष्य सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच ।
विरथो भीमसेनो वै कर्णश्चाकशान्यपीडितः । अमर्षवशमापन्नः
फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ पुनः पुनस्तूवरक मूढ औदरिकेति

रथको कर्णके लिए लेआए, उसमें बैठकर कर्ण भी शत्रुओंकी
ओरको दौड़ा, तुमने जो कुछ मुझसे वृक्षा, वह सब मैंने तुम्हें
सुनादिया ॥ ८७-८८ ॥ अब अपने अन्यायसे उत्पन्न हुए
और संहारको भी सुनो, तुम्हारे इकतीस पुत्रोंको भीमसेनने मार
झाला ८७ हे राजन् ! सात्यकि और अर्जुनने चित्रयोधी दुर्मुखको,
भीष्मको और भगदत्तको मुहाने पर लाकर तुम्हारे सहस्रों
वीरोंका संहार किया था, हे राजन् ! तुम्हारी दुर्नीतिके कारण
इसप्रकार बड़ा भारी संहार हुआ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ एकसौ
सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४७ ॥

धृतराष्ट्रने वृक्षा, कि-हे संजय ! जब पाण्डवोंके और मेरे
वीरोंकी ऐसी दशा थी, उस समय भीमने क्या किया, वह मुझे
सुना ॥ १ ॥ संजयने उत्तरदिया कि-हे राजन् ! भीमका रथ
दृढ़गया और कर्णने उसको वाणीरूप शल्यसे घायल करदिया,
तब उसने खिन्न होकर अर्जुनसे यह वान कही, कि-॥ २ ॥

च । अकृतास्त्रक मायोत्सीर्वालिर्संग्रापकातर ॥ ३ ॥ इति मामब्रवीत्
कर्णः पश्यतस्ते धनञ्जय । एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽस्मि
भारत ॥ ४ ॥ एतद् व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया । ययैत-
न्मम कौन्तेय यथा तव न संशयः ॥ ५ ॥ तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरे-
तद्वचनं मम । यथा भवति तत् सत्यं तथा कुरु धनञ्जय ॥ ६ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्यामितविक्रमः । ततोऽर्जुनोऽब्रवीत्
कर्णं किञ्चिदभ्येत्य संयुगे ॥ ७ ॥ कर्ण कर्ण वृषाष्ट्रे मृतपुत्रात्मसं-
स्तुत । अधर्मयुद्धे शृणु मे यस्त्वं वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ८ ॥ द्विविधं
कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ । तौ चाप्यमित्थौ शपेय वासव-
स्यापि युध्यतः ॥ ९ ॥ मृमूर्षुर्गुं युधानेन विरथो विकलेन्द्रियः । मदध्य-

देखो भाई ! कर्ण तुम्हारे सामने मुझसे चार २ ओ नपुंसक !
ओ मूढ़ ! ओ बड़पेट ! ओ शस्त्राचलानेमें मूढ़ ! ओ बालक !
ओ रणभीरु ! तू जड़ना छोड़ बैठ, ऐसी बातें कह कर मुझे
तिकातिका रहा है, इसलिये मैं इसको मारना चाहता हूँ,
हे भरतवंशी महाबाहु धनञ्जय ! मैं तुझसे इतना ही कहता हूँ,
कि—मैंने जो तुम्हारे साथ व्रत धारण किया है, उसको तुम जानते
ही हो इसलिये वह व्रत जैसे मेरा है वैसे ही तुम्हारा भी है, इसमें
सन्देह नहीं है ॥ ३-५ ॥ इसलिये हे नरश्रेष्ठ ! तू इसका वध करने
के लिये मेरे वचनको याद कर तथा ऐसा प्रणाम कर, कि—जिससे
मेरी बात सच्ची होजाय ॥ ६ ॥ भीमशी बातझो सुनकर परम-
पराक्रमी अर्जुन, युद्धमें जराएक आगे बढ़कर कर्णके पासको
गया और उससे कहने लगा, कि—॥ ७ ॥ “अरे ओ कर्ण ! ओ
कर्ण ! आँखें होतेहुए भी तू अन्धा है, अरे मृतपुत्र ! केवल तेरे
पक्षवाले ही तेरी प्रशंसा करते हैं, परन्तु ओ अधर्मयुद्धि ! इस
समय मैं तुझसे जो बात कहता हूँ, उसको सुन ॥ ८ ॥ युद्धमें
शूरीका दो प्रकारका काम होता है—या तो शत्रुको जीतले या

स्त्वमिति ज्ञात्वा जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ १० ॥ यहच्छ्रया
रणे भीमं युध्यमानं महाबलम् । कथंचिद्विरथं कृत्वा यत्नं रुक्म-
भापथाः ॥ ११ ॥ अधर्मस्त्वेष सुमहाननार्यचरितं च तत् । नारिं
जित्वा विफथ्यन्ते न च जल्पन्ति दुर्वचः ॥ १२ ॥ न च कञ्चन
निन्दन्ति सन्तः शूरा नरर्षभाः । त्वन्तु प्राकृतविज्ञानस्तत्तद्ददसि
सूतज ॥ १३ ॥ बहवद्भयमकण्यं च चापलादपरीक्षितं । युध्यमानं
पराक्रान्तं शूरमार्यव्रते रतम् ॥ १४ ॥ यद्वोचोऽमियं भीमं नैनत्
सत्यं वचस्तव । पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च ॥ १५ ॥
विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे । न च त्वां परुषं किञ्चि-

हार जाय हे राधाके पुत्र । युद्ध करनेमें जय होगी या पराजय
इसका निश्चय तो इन्द्रको भी नहीं हुआ ॥ ६ ॥ तू रणमें रथ-
हीन होगया था, तेरी इन्द्रियें घबड़ाहटमें पड़गयी थीं और तेरे
मरनेका अवसर आ ही लगा था, तो भी तेरी मृत्यु अर्जुनके हाथ
है, यह विचार कर ही युयुधानने तेरा पराजय करके ही तुझे
जीना छोड़ दिया है ॥ १० ॥ दैवयोगसे फिर रणमें लड़ते हुए
महाबली भीमसेनके साथ तेरा मुँचैटा होगया, तूने जैसे तैसे उसके
रथको तोड़ उसे रथहीन कर दिया, फिर तूने उसको गालियें
दीं ॥ ११ ॥ यह तेरा बड़ा अधर्म (अपराध) है और भले आद-
मियोंकेसा काम नहीं है, सज्जन और वीर महापुरुष शत्रुओंका
पराजय करके अधिक नहीं बोलते हैं—हलकी बातें नहीं कहते हैं
तथा किसी की निन्दा भी नहीं करते हैं, परन्तु हे सूतपुत्र ! तू
गमारबुद्धि है, इसलिये तू चंचलतासे बिना विचारे ऐसी असज्जत
(अट्ट सट्ट) बातें कर रहा है, कि—जिनको सहा नहीं जासकता,
तूने रणमें सब सेनाके श्रीकृष्णके और मेरे सामने, युद्ध करने
वाले, पराक्रमी, वीर और आर्यव्रतधारी भीमको अभिय वचन
कहे हैं (गालियें दी हैं) ॥ १४-१५ ॥ तूने भीमसेनसे बहुतसी

दुक्तवान् पाण्डुनन्दनः ॥ १६ ॥ यस्मात्तु बहुरुक्तञ्च श्रावितस्ते
 वृधोदरः । परोक्षं यच्च सौमित्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥ १७ ॥ तस्मा-
 दस्यावलोपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि । त्वया तस्य धनुर्विद्यन्मा-
 त्पनाशाय दुर्मते ॥ १८ ॥ तस्माद्दध्योऽसि मे मूढ सभृत्समृन्वा-
 धवः । कुरु त्वं सर्वकृत्यानि पदत्तं भयमागतम् ॥ १९ ॥ इन्तास्मि
 वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे । ये चान्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिगोहेन
 मां वृषाः ॥ २० ॥ तौरच सर्वान् हनिष्यामि सत्येनायुधमालये ।
 त्वाञ्च मूढाकृतप्रज्ञमभिमानिनमाहवे ॥ २१ ॥ दृष्ट्वा दुर्योधनो
 मन्दो भृशं तप्स्यति पातितम् । अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णमुत्-
 स्य तु ॥ २२ ॥ पदान् मुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा । तस्मि-

कहवी बातें कही हैं, परन्तु पाण्डुपुत्र भीमसेनने तो तुम्हे रणमें
 बहुत बार रथहीन कर देने पर भी तुम्हमे एक भी तीखी बात
 नहीं कही थी । ॥ १६ ॥ और, मेरे पीछे मेरे पुत्र अभिमन्युको
 भी तुमने मार डाला है ॥ १७ ॥ अतः इस गर्व तथा अपराधका
 फल तुम्हे थोड़े ही समयमें मिलेगा, अरे ओ दुर्बुद्धि ! तूने अभि-
 मन्युके धनुषको काट डाला था, उसको भी तू अपने नाशके लिये
 ही समझ ॥ १८ ॥ हे मूढ़ ! इन अपराधोंके कारण मैं तेरे
 सेवक, पुत्र और वान्धवोंसहित तुम्हे मार डालूँगा, तुम्हसे जो हो
 सके, कर ले अब तेरे ऊपर बड़ा भारी भय आपहुँचा है ॥ १९ ॥
 रणभूमिमें मैं तेरे सामने ही तेरे पुत्र वृषसेनको मार डालूँगा उस
 समय दूसरे जो कोई भी राजे मूर्खतासे मेरे सामने लड़नेको
 आवेंगे ॥ २० ॥ उन सबोंका भी मैं संहार कर डालूँगा, यह बात
 मैं शत्रुकी शपथ खाकर कहता हूँ, हे मूढ़ ! तुम्ह मूढ़बुद्धि और
 बड़ेभारी अभिमानकी मरादुआ देखकर मन्दबुद्धि दुर्योधन बहुत
 ही सन्तप्त होगा ॥ इसप्रकार अर्जुनने कर्णके पुत्रको मारनेकी
 प्रतिज्ञा की, कि-॥ २१-२२ ॥ रथियोंने बड़ा भारी तुमुल शब्द

न्नाकुलसंग्रामे वर्त्तमाने महाभये ॥ २३ ॥ मन्दारिणः सहस्रांशु-
रस्तं गिरिमुपाद्रवत् । ततो राजन् हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थि-
तम् ॥ २४ ॥ तीर्णप्रतिज्ञां धीमत्सुं परिपश्यैनमव्रजीत् । दिष्टया
सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया ॥ २५ ॥ दिष्टया
विनिहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः । धार्तराष्ट्रवत्प्रपश्य देवसेनापि
भारत ॥ २६ ॥ सीदेत समरे जिष्णो नात्र कार्या विचारणा ।
न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन् पुरुषं पञ्चवित् ॥ २७ ॥ त्वद्वत्
पुरुषव्याघ्र य एतद्योधयेद्बलम् । महाप्रभावा बहवस्तव तुल्याधि-
कापि वा ॥ २८ ॥ समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात् ।
ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धाः नाभ्यवर्त्तन्त दंशिताः ॥ २९ ॥ तव
वीर्यं बलञ्चैव रुद्रशक्तान्तकोपमम् । नेदृशं शक्नुयात् कश्चिद्रणे

किया, तदनन्तर महाभयङ्कर और व्याकुलता भरा संग्राम होने
लगा ॥ २३ ॥ इतनेमें ही सूर्यकी किरणोंका प्रकाश मन्द पड़ने
लगा और वह अस्ताचल पर चलेगये, तदनन्तर हे राजन् !
अपनी प्रतिज्ञाके पार उतरेहुए और संग्रामके मुहानेपर खड़ेहुए
अर्जुनको श्रीकृष्णने आलिङ्गन कर कहा, कि—हे अर्जुन ! यह
बहुत अच्छाहुआ कि—तूने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करली २४-२५
तूने पापी वृद्धक्षत्र और उसके पुत्रको मारडाला, यह बहुत अच्छा
किया, हे भरतवंशी अर्जुन ! यह धृतराष्ट्रके पुत्रकी सेना ऐसी
बलवान है, कि—रणमें देवसेना भी इससे भिडकर खिन्न होजा-
यगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये, हे पुरुषव्याघ्र ! मैं
विचार करता हूँ तो मेरे ध्यानमें तेरे सिवाय ऐसा एक भी व्यक्ति
नहीं आता जो इस सेनासे मुचेंटा लेसके, कौरवसेनामें धृत-
राष्ट्रके पुत्रके कारणसे तेरी समान और तुझसे भी अधिक बली,
बड़े प्रभावशाली बहुतसे राजे इकठे हुए हैं, परन्तु वे कवचधारी
कोधी राजे भी तुझको देखकर तेरे सामने नहीं आये २६-२९

कर्तुं पराक्रमम् ॥ ३० ॥ यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः ।
 हवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ॥ ३१ ॥ वर्द्धयिष्यामि
 भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विपत्रं । तमर्जुनः प्रत्युवाच मसादात्तव
 माधव ॥ ३२ ॥ प्रतिशेयं मया तीर्णं त्रिबुधैरपि दुस्तरं । अना-
 श्वर्धो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव ॥ ३३ ॥ त्वत्प्रसादान्मर्ही
 कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः । तव प्रभावो वाष्ण्येय तवैव विजयः
 प्रभो ॥ ३४ ॥ वर्द्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन । एवमुक्तस्ततः
 कृष्णः शनकैर्वाहयन् हयान् । दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं
 महत् ॥ ३५ ॥ कृष्ण उवाच । प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितश्च मह-

तेरा वीर्य और बल रुद्र, इन्द्र तथा यमराजकी समान है, कोई
 भी मनुष्य रणमें तेरी समान पराक्रम नहीं करसकता ॥ ३० ॥
 हे शत्रुतापन ! तूने आज जैसा पराक्रम किया है, ऐसा पराक्रम
 किसीने भी नहीं किया है, इस आनन्दमें मैं तुझे वधाई देता
 हूँ, और जब तू बान्धवोंसहित दुष्टात्मा कर्णको मारहालेगा, तब
 मैं शत्रुओंको जीतनेवाले और जिसके शत्रु मारे गए होंगे, ऐसे
 तुझे फिर वधाई दूँगा यह वचन सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णको
 उत्तर दिया, कि—हे माधव ! आपकी कृपासे ही मैं प्रतिज्ञाको
 पूरी करसका हूँ, क्योंकि—ऐसी प्रतिज्ञाको देवता भी कठिनतासे
 ही पूरी कर सकते थे, हे केशव ! तुम जिनके ऊपर प्रसन्न
 हो जाओ उनकी विजय होनेमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है ३१-३२
 राजा युधिष्ठिर भी आपके प्रसादसे ही सम्पूर्ण पृथ्वीके राजा
 होंगे, यह भी हे वृष्णिवंशी ! आपका ही प्रभाव है, तथा यह
 तुम्हारी ही विजय है ॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन ! आपको इसप्रकार
 ही हमारी सदा वृद्धि करनी चाहिये, अर्जुनकी बात सुनकर
 श्रीकृष्ण घोड़ोंको धीरे २ बड़ा अर्जुनको भयङ्कर और क्रूर
 रणसंग्राम दिखाते हुए कहनेलगे, कि—विजय तथा प्रशंसनीय

यशः । पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्रच्छरेर्हताः ॥ ३६ ॥ विक्लीर्ण-
शस्त्राभरणा विपन्नारवरथदिपाः । सञ्चिन्नभिन्नमर्पाणो
वैक्लव्यं परमं गता ॥ ३७ ॥ सप्तत्या गतसत्त्वाश्च ममया परया
युनाः । सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः ॥ ३८ ॥ तेषां
शरैः स्वर्णपुंखैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः । बाहूनैरायुधैश्चैव संपूर्णा
पश्य मेदिनीम् ॥ ३९ ॥ धर्मभिश्चर्मभिर्धरैः शिरोभिश्च रुक्णदलैः ।
उष्णीषैश्च कुटैः स्रग्भिश्चूडामणिभिरंधरैः ॥ ४० ॥ कण्ठसूत्रैश्च दैध-
निकैरपि च सुप्रभैः । अन्यैश्चाभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ४१ ॥
अनुकर्षैरुपासंगैः पताकाभिर्ध्वजैस्तथा । उपस्करैरधिष्ठानैर्गोपाद-
ण्डकवन्धुरैः ॥ ४२ ॥ चक्रैः मण्डितैश्चित्रैश्चैरथ बहुधा रणे ।

यश पानेकी इच्छासे शूर राजे युद्ध करके, तेरे बाणोंसे मरकर
इस रणभूमिमें सोरहे हैं, उनको तू देख ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इनके
शस्त्र और गहने बिखरे पड़े हैं (यह भी तू देख) (देख यह)
घोड़े, रथ तथा हाथी नष्ट भ्रष्ट होगए हैं, इनके मर्मस्थल छिन्न
होगए हैं इस कारण इन सिसकते हुए और मरेहुए योधाओंको
देखकर बड़ी विकलता होती है, मरेहुए राजे अपनी यतीभारी
कान्तिके कारण जीवितसे ही दीखरहे हैं ॥ ३८ ॥ इनके सुवर्ण
की पूँछवाले नानाप्रकारके बाणोंसे और अनेकोंप्रकारके शस्त्रों
से, बाहन तथा आयुधोंसे रणभूमि खचाखच भररही है इसकी
ओर तू दृष्टि डाल ॥ ३९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कवच, ढाल,
माला, कृण्डलोंवाले मस्तक, पगड़ी, मुकुट और पुष्पमाला,
वस्त्र और गलेके हार, नाजूबन्द और कान्तिवाले निष्क तथा
दूसरे विचित्र गहनोंसे यह भूमि शोभा पारही है ॥ ४० ॥ ४१ ॥
और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन ! दूटेहुए रथके नीचेके ढाँच,
उपासङ्ग, पताका, ध्वजा, उपस्कर, अधिष्ठान तथा ईपाके काठ
तथा रणमें टूटकर गिरेहुए अनेकों प्रकारके पहिये, धुगी, जुए,

युगैर्षोक्त्रैः कलापैश्च धनुर्भिः सायकैस्तथा ॥ ४३ ॥ परिस्तोमैः
 कुथाभिश्च परिघैरंकुशैस्तथा । शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तूणैः शूलैः
 परश्वधैः ॥ ४४ ॥ प्रांसैश्च तोमरैश्चैव कुन्तैर्यष्टिभिरेव च । शत-
 ग्रीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैः परशुभिस्तथा ॥ ४५ ॥ मूसलैर्मुद्गरै-
 र्श्चैव गदाभिः कुणपैस्तथा । सुवर्णविकृताभिश्च कशाभिर्भरत-
 र्षभ ॥ ४६ ॥ घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां भाण्डैश्च विविधैरपि ।
 स्रग्भिश्च नानाभरणैर्वस्त्रैश्चैव महाधनैः ॥ ४७ ॥ अपविट्टैर्वर्मा
 भूमिभूहैर्घोरैश्च शारदी । पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो
 हताः ॥ ४८ ॥ पृथिवीपुण्यहाद्वैः सुप्ताः कान्तामिव मियाम् ।
 हमांश्च गिरिकूटभान्नागानैरावतोपमान् ॥ ४९ ॥ क्षरतः शोणितं भूरि
 शस्त्रच्छेददरीमुखैः । दरांमुखैरिव गिरीन् गैरिकाम्बुपरिस्रवान् ५०
 तांश्च बाणहतान् धीर पश्य निष्टनतः क्षिता । हयांश्च पतितान्

लगाम, कलाप धनुष, बाण, परिस्तोम, कुथा(भूल) अंकुश, शक्ति,
 भिन्दिपाल, भाये, शूल, फरसे, प्रास, तोमर, कुन्त, लकड़ी, शतग्री
 भुशुण्डी, तखवार, फरसे, मूसल, मुगदर, गदो, कुणप, सोनेकी
 (लकड़ीवाले) चालुक, हाथियोंके अनेकों प्रकारके घण्टे और
 पात्रोंसे, और बाणोंसे फटेहुए बहुमूल्य वस्त्र और टूटे फूटे बहु-
 मूल्य गहनोंसे पृथिवी, नक्षत्रोंसे भरीहुई शरद् ऋतुकी रात्रिकी
 समान शोभा पारदी है, ये भूमिपति(राजे)भूमिकेलिये (रण)भूमिमें
 मारे गए, अब ये मिय स्त्रीभी समान भूमिका आतिङ्गन करके
 सोरहे हैं और हे धीर अर्जुन ! पर्वतके शिखरकी समान और पेरा-
 वतकी समान ये हाथी तेरे बाणोंसे घायल हो पृथ्वीमें पड़े २ गर्जना
 कर रहे हैं, इनको तू देख, पर्वत जैसे गुफारूपी मुखमेंसे गेरुको
 बहावा है तैसे ही तेरे शस्त्रोंके प्रहारसे घायल हो ये घायरूप
 गुफाओंके मुखोंसे ते रक्तको बहार रहे हैं, और ये सुवर्णके आभूषणों
 से शोभायमान छोड़े मरकर रणभूमिमें पड़े हैं, इनकी ओर तू दृष्टि

पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान् ॥ ५१ ॥ गन्धर्वनगराकारान्नयोरुच
निहतेश्वरान् । छिन्नध्वजपताकाक्षान् विचक्रान् हतसारथीन् ५२
निकृत्तक्लृवरयुगान् भग्नेपाबन्धुरान् प्रभो । पश्य पार्थ हनान् भूमौ
विमानोपमदर्शनान् ॥ ५३ ॥ पर्त्तोश्च निहतान् वीर शतशोऽय
सहस्रशः । धनुर्धृतश्चर्मभृतः शयानान् रुधिरोक्षितान् ॥ ५४ ॥
महीमालिंग्य सर्वाङ्गैः पाशुध्वस्तशिरोरुहान् । पश्य योधान्महाबाहो
त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान् ॥ ५५ ॥ निपातितद्विपरयवाजिसंकुलमसृग्-
सापिशितसमृद्धकर्दमम् । निशाचरश्ववृकपिशाचमोदन महीतलं
नरवर पश्य दुर्दृशम् ॥ ५६ ॥ इदं महत्त्वयुपपद्यते प्रभो रणाजिरे
कर्म यशोऽभिवर्द्धनम् । शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे महाहवे जन्तुपि

दे॥४२-५१॥जिनके सारथि तथा स्वामी मारेगए हैं और जिनकी
ध्वजा, पताका, धुरे तथा पहिये तिचर वित्तर होगए हैं, ऐसे इन
गन्धर्व नगरोंकी समान रथोंको भी देख, इन रथोंकी टेकड़ियें
जुए ईपा तथा टूट बन्धान कट फट गए हैं हे पार्थ ! रणभूमिमें
विमानोंकी समान दीखते हुए इन रथोंकी ओर भी तू दृष्टि
ढाल५२-५३हे अर्जुन ! सैंकड़ों और सहस्रों धनुर्धर और ढालंगाले
योधा रणभूमिमें मरण पाकर रुधिरमें लथड पथड हो सोरहे हैं
और हे महाभुज ! देखा देख ! तरे बाणोंसे अङ्ग घायल होकर
पृथ्वीमें गिरजानेके कारण जिनके केश धूलसे सनगए हैं ऐसे
इन पृथ्वीको आलिङ्गनकर सोतेहुए योधाओंको देख ! ॥५४-५५॥
और हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! इस कठिनतासे देखने योग्य रणभूमिभी
और तू देख ! यह मारेहुए हाथी घोड़े और गिराएहुए रथोंसे
खचाखच भररही है, इसमें रुधिर, बसा और मांसकी बड़ीभारी
कीच धोरही है, निशाचर, श्वान और भेड़िये और पिशाच ऐसी
भूमिबो देखकर हर्षित होते हैं ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! रणभूमिमें
यशबो बढ़ानेवाला बड़ाभारी काम तुम्हें और दैत्य तथा

दैत्यदानवान् ॥ ५७ ॥ सञ्जय उवाच । एवं सन्दर्शयन् कृष्णो
रणभूमिं किरीटिने । रवैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यना-
दयत् ॥ ५८ ॥ सन्दर्शयन्नेव किरीटिनेऽरिहा जनार्दनस्तामरि-
भूमिमञ्जसा । अजातशत्रुं समुपैत्य पाण्डवं निवेदयामास हतं
जयद्रथम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युद्धभूमि-
दर्शने अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

सञ्जय उवाच । ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
वचन्दे संप्रहृष्टात्मा हते पार्थेन संधवे ॥ १ ॥ दिष्ट्या बर्हसि राजेन्द्र
हतशत्रुर्नरोत्तम । दिष्ट्या निस्तीर्णवार्चैव प्रतिज्ञामनुजस्तव ॥ २ ॥
स त्वेवमुक्तः कृष्णेन हृष्टः परपुरञ्जयः । ततो युधिष्ठिरो राजा रथा-

दानवोंका संहार करनेकी इच्छावाले देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्रको ही
शोभा देता है अर्थात् तीसरा और कोई भी ऐसा काम नहीं कर
सकता ॥ ५७ ॥ ॥ सञ्जयने कहा कि-शत्रुओंका संहार करने
वाले श्रीकृष्ण इसप्रकार रणभूमिको दिखातेहुए और हर्षमें भरे
हुए अपने योद्धाओंके साथ पांचजन्य शंखको बजाते हुए
अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके पास आये और उनसे जयद्रथके
मारे जानेका समाचार निवेदन किया ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ एकसौ
अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४८ ॥

संजयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! कुन्तीपुत्र अर्जुनने सिंधुदेशके
राजा जयद्रथको मारड़ाला तब श्रीकृष्ण मनमें प्रसन्न होतेहुए
धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास गएऔर उनको प्रणाम करके बोले कि १
हे नरश्रेष्ठ राजेन्द्र ! तुम्हारे भाग्यसे ही तुम्हारी दिन २ बढती
होती है, हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारे शत्रुके नाश होनेकी मैं तुम्हें बधाई
देता हूँ और तुम्हारे सौभाग्यसे तुम्हारा छोटा भाई अर्जुन
प्रतिज्ञामें उत्तीर्ण हुआ है ॥ २ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जब

दाप्लुत्य भारत ॥ ३ ॥ पर्यञ्जनादा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।
 प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमनभम् ॥ ४ ॥ अत्रवीद्रासुदेवञ्च
 पाण्डवञ्च धनञ्जयम् प्रियमेतद्गुणश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन ॥ ५ ॥
 नान्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षु रूढधेरिव । अत्यद्भुतमिदं कृष्ण
 कृतं पार्थेन धीमता ॥ ६ ॥ दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ
 महारथौ । दिष्ट्या च निहतः पापः सैन्धवः पुरुषधमः ॥ ७ ॥
 कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता । त्वया गुप्तेन गोविन्द
 घ्नता पापं जयद्रथम् ॥ ८ ॥ किंतु नात्यद्भुतं तेषां येषां नस्त्वं समा-
 श्रयः । न तेषां दुष्कृतं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ९ ॥
 सर्वलोकगुरुर्येषां त्वन्नाथो मधुमुदन । त्वत्पसादाद्धि गोविन्द वयं

श्रीकृष्णने इसप्रकार कहा तब शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले
 युधिष्ठिर प्रसन्न हुए और रथपरसे नीचे उतर श्रीकृष्ण तथा
 अर्जुनसे मिले, इस समय उनके नेत्रोंमें आनन्दके कारण आँसू
 उमड़ रहे थे, वह अपने श्वेत कमलकी सगान गोरी कान्तिवाले
 मुखको वस्त्रसे पोंछते २ वासुदेव और धनञ्जयसे बोले कि-
 हे कमलजनन ! आपके मुखसे इस शुभ समाचारको सुन कर
 समुद्रके पार जानेकी इच्छावाला जैसे समुद्रके किनारेको न
 पावे, तैसे ही मेरे हर्षका कुछ ठिकाना नहीं है, हे कृष्ण ! बुद्धिमान्
 अर्जुनने यह अत्यद्भुत काम किया है ॥ ३-६ ॥ यह बहुत
 अच्छा हुआ कि-आज मैं तुम दोनों महारथियोंको युद्धके बोझसे
 अक्षत छूटा हुआ देखता हूँ, और पुरुषोंमें नीच मिथुराजको परा
 हुआ सुन रहा हूँ ॥ ७ ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी रक्षामें रहकर
 अर्जुनने पापी जयद्रथको पार मुझे परम प्रसन्न किया है, यह
 काम भी बड़ा अच्छा हुआ ॥ ८ ॥ हमें तो आपका सहारा है,
 अतः इस कामके होनेसे हमको आश्चर्य नहीं होता, हे मधुमुदन !
 तीनों लोकोंके गुरु आप हमारे नाथ हैं हे गोविन्द ! इसलिये

जेष्मामहे रिपून् ॥ १० ॥ स्थितः सर्वात्मना नित्यं प्रियेषु च हितेषु च ।
 त्वां चैवास्माभिराश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ॥ ११ ॥ सुरैरिवामुर-
 वधे शक्रं शक्रानुनाहवे । असंभाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन ॥ १२ ॥
 त्वदबुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः । बाल्यात् मभृति ते कृष्ण
 कर्माणि श्रुत्वानहम् ॥ १३ ॥ अमानुपाणि दिव्यानि महाति च
 बहूनि च । तदैवाज्ञासिपं शत्रून्हतान्माप्तां च मेदिनीं ॥ १४ ॥
 त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणारिसूदन । सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा
 दैत्यान् सहस्रशः ॥ १५ ॥ त्वत्प्रसादधृषीकेश जगत् स्थावरजङ्ग-
 मम् । स्ववर्त्मनि स्थितं वीर-जपहोमेषु वर्त्तते ॥ १६ ॥ एकार्ण-
 वमिदं पूर्वं सर्वमासीत्तमोमयम् । त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत् प्राप्तं

हम आपकी कृपासे शत्रुओंका पराजय ही करेंगे ॥ १० ॥ क्यों
 कि—आप सदा सब प्रकारसे हमारा प्रिय और हित करनेमें लगे
 रहते हैं, हे इन्द्रके छोटे भाई ! देवताओंने असुरोंका नाश करते
 समय जैसे इन्द्रका आश्रय ले अस्त्रोंका उपयोग किया था, ऐसे
 ही हमने आपका आश्रय पा-रणमें अस्त्रोंको उठाया है ॥ ११ ॥
 और हे जनार्दन ! देवताओंसे भी न हो सके ऐसा जो काम
 अर्जुनने किया है वह आपकी बुद्धिके बलसे ही किया है हे कृष्ण !
 बाल्यावस्थासे ही जबसे मैंने आपके अमानुषिक और दिव्य बहुत
 से कर्म सुने हैं तबसे ही मैं समझ गया, कि—हम शत्रुओंको मारेंगे
 और पृथ्वीको अपने अधीन करेंगे ॥ १२—१४ ॥ हे शत्रुनाशन !
 इन्द्रने भी आपकी कृपासे प्राप्तहुए पराक्रमसे सहस्रों दैत्योंका
 संहार कर देवराजकी पदवी पाई है ॥ १५ ॥ हे अतीन्द्रिय वीर !
 आपकी कृपासे स्थावर तथा जङ्गमरूप जगत् अपने २ धर्ममार्गमें
 रहकर जप होम आदि कर्म करता है ॥ १६ ॥ हे महाभुज
 श्रीकृष्ण ! पहिले यह जगत् अन्धकारसे ढका हुआ था और जलसे
 भरा हुआ था, वह आपकी कृपासे जगतरूपको प्राप्त हुआ है १७

नरोत्तम ॥ १७ ॥ स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमव्ययम् । ये
 पश्यन्ति हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १८ ॥ पुराणं परमं
 देवं देवदेवं सनातनम् । ये प्रपन्नाः सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हि-
 चित् ॥ १९ ॥ अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् । ये भक्ता-
 स्त्वां हृषीकेश दुर्गाद्यतितरन्ति ते ॥ २० ॥ परं पुराणं पुरुषं
 पराणं परमञ्च यत् । प्रपद्यतस्तत् परमं परा भूतिर्विधीयते ॥ २१ ॥
 गायन्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते । तं प्रपद्य महात्मानं भूति-
 मश्नाम्यनुत्तमाम् ॥ २२ ॥ परमेश परेशं श तिर्यगीश नरेश्वर ।
 सर्वेश्वरेश्वरेशो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥ त्वमीशेशेश्वरेशान
 प्रभो वर्धस्व माधव । प्रभवोऽप्ययसर्वस्य सर्वात्मन् पृथुलोचन २४
 धनञ्जयसखा यश्च धनञ्जयहितश्च यः । धनञ्जयस्य गोप्ता तं

हे हृषीकेश! जो सब लोकोंके स्रष्टा तथा अव्ययरूप आपका दर्शन
 करते हैं, वे किसी दिन भी मोहमें नहीं पड़ते ॥ १८ ॥ जो पुराणमूर्ति,
 देवदेव, सनातनमूर्ति और देवताओंके गुरु आपकी शरणमें आते हैं
 उनको मोह कभी नहीं होता ॥ १९ ॥ आदि अन्तश्च न्य संसारको
 उत्पन्न करने वाले और अव्यय आपको जो भजते हैं वे दुःखोंके
 पार होजाते हैं ॥ २० ॥ और जो मनुष्य पुराणपुरुष, परात्पर ऐसे
 परमात्माके स्वरूपकी शरण लेता है वह सम्पत्तिको पाता है ॥ २१ ॥
 जिनकी चारों वेद स्तुति करते हैं और जो वेदोंमें गाये जाते हैं उन
 महात्माका शरण लेकर मैं अनुपम ऐश्वर्यको भोगता हूँ ॥ २२ ॥
 तुम परमेश हो ! तुम परेश हो ! तुम पृथ्वीश्वर हो ! तुम नरेश्वर
 हो ! तुम सर्वेश्वर हो ! तुम ईश्वरके ईश्वर हो ! तुम ईश हो !
 तुम पुरुषोत्तम हो, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ हे माधव !
 तुम ईश हो ! ईश्वरेश्वर हो ! ईशान हो ! हे प्रभो ! तुम्हारी वृद्धि हो !
 तुम सबको उत्पन्न करनेवाले और नष्ट करनेवाले हो ! तुम
 सर्वात्मन् हो ! तुम विशालनेत्र हो ! ॥ २४ ॥ तुम अर्जुनके

प्रपद्ये मुखमेधते ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयः पुराणपिश्रितज्ञस्तत्रानघ ।
 माहात्म्यमनुभावञ्च पुरा कीर्तितवान् मुनिः ॥ २६ ॥ असितो
 देवलश्चैव नारदश्च महातपाः । पितामहश्च मे व्यासस्त्वामाहु-
 र्विधिमुत्तमम् ॥ त्वं तेजस्त्व परं ब्रह्म त्वं सत्यं त्वं महत्तपः ॥ २७ ॥
 त्वं श्रेयस्त्वं यशश्चाग्रथं कारणं जगत्स्तथा । त्वया सृष्टमिदं सर्वं
 जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ २८ ॥ प्रलये समनुभाप्ते त्वां वै निविशते
 पुनः । अनादिनिधनं देवं विश्वस्येशं जगत्पते ॥ २९ ॥ धातारः
 मज्जमव्यक्तमाहुर्वेदविदो जनाः । भूतात्मानं महात्मानमनन्तं विश्व-
 तोमुखम् ॥ ३० ॥ अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम् ।
 नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोनिं हरिं
 विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम् । परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परञ्च

सखा हो ! और अर्जुनके हितैषी तथा रक्षक हो, मनुष्य आपकी
 शरण ले मुख पाता है ॥ २५ ॥ २५ ॥ हे निर्दोष ! आपके
 चरित्रको जाननेवाले पुरातन अपि मार्कण्डेय मुनिने पहिले
 आपके माहात्म्य और प्रभावका वर्णन किया था ॥ २६ ॥ और
 असित, देवल, महातपस्वी नारद और मेरे पितामह व्यासजीने
 आपका परमात्मारूपसे वर्णन किया है, तुम तेजःस्वरूप हो ! तुम
 परब्रह्म हो ! सत्य हो ! तथा महातपोमूर्ति हो ॥ २७ ॥ तुम श्रेय
 हो ! यश हो ! तथा जगत्के मुख्य कारण हो ! तुमने ही स्था-
 वर जङ्गमात्मक जगत् रचा है ॥ २८ ॥ हे जगत्के स्वामिन ! जब
 प्रलयका समय निकट आता है उस समय सकल जगत् फिर
 आदि अन्तरहित, विश्वके स्वामी आपमें प्रवेश करजाता है २९
 वेदवेत्ता मनुष्य आपको धाता, अजन्मा, अव्यक्त, भूतात्मा,
 महात्मा, अनन्त और विश्वतोमुख कहते हैं ॥ ३० ॥ तुम
 गुह्यादिके कारण हो ! जगत्के पति हो ! नारायण हो ! परमदेव
 हो ! परमात्मा हो ! ईश्वर हो ! ज्ञानके कारणरूप हरि हो !

यत् ॥ ३२ ॥ एवमादिगुणानान्ते कर्मणां दिवि चेह च । अतीतभूत-
 भव्यानां संख्याता नात्र न विद्यते ॥ ३३ ॥ सर्वतो रत्तणीयाः स्म
 शक्रेणैव दिवौकसः । यैस्त्वं सर्वगुणोपेतः सुहृन् उपपादितः ३४
 इत्येव धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशः । अनुरूपमिदं वाक्यं मत्पु-
 त्राय जनार्दनः ॥ ३५ ॥ भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च ।
 साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥ ३६ ॥ अयं च पुरुष-
 व्याघ्र त्वदनुध्यः न संवृतः । हत्वा योधसदंस्त्राणि न्यहन् जिष्णुर्ज-
 यद्रथम् ॥ ३७ ॥ कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवासंभ्रमेऽपि च । शीघ्र-
 तामोघबुद्धित्वे नास्ति पार्थसमः क्वचित् ॥ ३८ ॥ तदयं भरतश्रेष्ठ
 आता तेऽयं यदजुनः । सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिंधुगजशिरोऽ-

विष्णु हो ! सुमुत्तु पुरुषोंके परम आश्रयरूप हो ! परमपुराण पुरुष
 और पुरातनरूप हो ! देवता भी आपके स्वरूपको नहीं जान
 सकते ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे परमात्मन ! आपके पृथ्वी, और
 स्वर्गमेंके भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके गुणोंकी गिनती
 करनेवाला कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ ऐसे सर्वगुणसम्पन्न आपको
 हमने अपना सम्बन्ध और भित्र बनाया है, अतः इन्द्र जैसे देव-
 ताओंकी रक्षा करता है, तैसे ही आप हमारी सर्वत्र रक्षा करिये ३४
 धर्मराजने महायशस्वी श्रीकृष्णसे इसप्रकार कहा, तब श्रीकृष्णने
 उनके अनुरूप वचनोंमें उत्तर देतेहुए कहा कि- ॥ ३५ ॥ आपकी
 उग्र तपश्चर्यासे, परमधर्मसे, साधुतासे, तथा सरलतासे, पापी
 जयद्रथका नाश हुआ है ॥ ३६ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! अर्जुनने
 तुम्हारी रक्षामें रहकर सहस्रों योधाओंका नाश कर जयद्रथको
 मार डाला ॥ ३७ ॥ इस संसारमें काम करनेमें, भुजबलमें, धैर्यमें
 शीघ्रतामें तथा अमोघ बुद्धिमें, अर्जुनसा दूसरा पुरुष कहीं भी
 नहीं है ॥ ३८ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ! आपके
 ऐसे इस भाई अर्जुनने आज रणमें शत्रुओंकी सेनाको नाश कर

हरत् ॥३६॥ ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशां पते । प्रमृज्य
वदनं तस्य पर्याशवासयत प्रभुः ॥ ४० ॥ अतीव सुमदत् कर्म कृत-
वानसि फाल्गुन । असह्यं चाविपक्षञ्च देवैरपि संवासवैः ॥ ४१ ॥
दिष्ट्या निस्तीर्णभारोऽसि निहतारश्च शत्रुहन् । दिष्ट्या सत्या
प्रतिशेयं कृता इत्वा जयद्रथम् ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्म-
राजो महायशः । स्पर्शं पुण्यगन्धेन पृष्टे हस्तेन पार्थिवः ४३
एवमुक्तौ महात्मानौ तदां केशवपाण्डवौ । तावन्नुतां तदा कृष्णौ
राजानं पृथिवीपतिम् ॥४४॥ तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा
जयद्रथः । उर्यर्णञ्चपि सुमहद्भारं राष्ट्रबलं रणे ॥ ४५ ॥ हन्यन्ते
निहताश्चैव विनश्यन्ति च भारत । तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः

सिंधुराजके मस्तकको काटडाला है ॥ ३६ ॥ हे घृतराष्ट्र ! इस
प्रकार वार्तालाप होनेके पीछे युधिष्ठिरने अर्जुनका आलिङ्गन कर
उसके मुख पर हाथ फेर उसको शांत किया ॥ ४० ॥ और
कहा कि-हे अर्जुन ! तूने इन्द्रसहित देवताओंसे न बन सकने
वाला अति असह्य और बड़ा भारी काम किया है ॥ ४१ ॥
हे शत्रुओंका संहार करनेवाले ! तू संग्रामके भारसे छूटगया और
तूने शत्रुओंका संहार किया और तूने प्रतिज्ञा पूरीकी यह भी
तूने अपने योग्य ही काम किया है ॥ ४२ ॥ इसप्रकार अर्जुनकी
प्रशंसा करके महायशस्वी धर्मराज युधिष्ठिर अपने पवित्र गन्ध
वाले हाथसे अर्जुनकी पीठ सहलाने लगे ॥ ४३ ॥ राजा युधि-
ष्ठिरके वचन सुनकर महात्मा कृष्ण और अर्जुनने उस ही
समय पृथ्वीपति युधिष्ठिरसे कहा कि-॥ ४४ ॥ हे महाराज !
हमने जयद्रथको नहीं मारा है, परन्तु वह पापी राजा आपकी
क्रोधाग्निसे ही भस्म होगया है और हम भी आपकी कृपासे ही
इस युद्धमें कौरवसेनाको लाँघ आये हैं ॥ ४५ ॥ तथा हे शत्रुओं
का संहार करनेवाले भरतवंशी राजन् ! यह कौरव भी आपके

शत्रुमूदन ॥ ४६ ॥ त्वां हि चक्षुर्हणं वीर कोपयित्वा सुयोधनः ।
 सभिन्नवन्धुः सपरे प्राणास्त्यज्यति दुर्मतिः ॥ ४७ ॥ तत्र क्रोधहन्तः
 पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः । शरतन्पगतः शंते भीष्मः क्रुद्धोऽसि ॥ ४८ ॥
 दुर्लभो हि जयस्तेषां संग्रामे गिषुवातिनाम् । याता मृत्युश्च ते ये
 येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव ॥ ४९ ॥ राज्यं प्राणाः श्रियः पुत्राः
 सौरुषानि विविधानि च । अचिरात्तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि
 मानद ॥ ५० ॥ विनष्टान् कौरवान् मन्ये सपुत्रपशुवान्धवान् ।
 राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे परन्तप ॥ ५१ ॥ ततो भीष्मे महा-
 बाहुः सात्यकिश्च महारथः । अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणः क्षत-
 विक्षतौ ॥ ५२ ॥ क्षितावास्तां महेश्वासौ पाञ्चाल्यपरिवारितौ ।

क्रोधसे दग्ध होकर मारे गए हैं और मारे जावेंगे ॥ ४६ ॥ हे वीर !
 दुर्मति सुयोधनने दृष्टि डालने मात्रसे भस्म कर देनेवाले आपको
 क्रोधित किया है, अतः वह रणमें भिन्न तथा बान्धवोंसहित मारा
 जायगा ॥ ४७ ॥ पहिले जिनको देवताओंको हराना भी दुःसह
 था ऐसे इस कुलके पितामह भीष्म भी आपकी क्रोधाग्निसे भस्म
 हो शरशय्या पर सो रहे हैं ॥ ४८ ॥ हे पांडुपुत्र धर्मराज ! तुम
 जिन शत्रुनाशकोंके ऊपर क्रोध करते हो उनको रणमें विजय
 मिलना दुर्लभ है और वे मृत्युके हाथमें फँस जाते हैं ॥ ४९ ॥
 हे मान देने वाले राजन् ! तुम जिनके ऊपर क्रोध करते हो, उनका
 राज्य, प्राण, लक्ष्मी, पुत्र तथा नानाप्रकारके सुख शीघ्र ही नष्ट
 होजाते हैं ॥ ५० ॥ हे परन्तप ! राजधर्ममें परायण आप जवने
 कौरवोंके ऊपर सदा क्रोधमें भरे रहते हैं, तबसे ही मैं पुत्र, पशु
 और बान्धवोंसहित कौरवोंको नष्ट हुआ मानता हूँ ॥ ५१ ॥
 इसप्रकार श्री कृष्णके कह चुकने पर बाणोंके प्रहारसे विभ्रंश
 महाधनुर्धारी महाशूज शूर भीमसेन तथा सात्यकिने गुरु और
 बड़े धर्मराजों दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पाञ्चाल-

तौ दृष्ट्वा मुदितो वीरौ प्राञ्जली समुपस्थितौ ॥ ५३ ॥ अभ्यनन्दत
 कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यको । दिष्ट्या पश्यामि वां शूरां विमुक्तौ
 सैन्यसागरात् ॥ ५४ ॥ द्रोणग्राहदुरार्धपात् हादिक्यमकरालयात् ।
 दिष्ट्या विनिर्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥ ५५ ॥ युवां
 विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे । दिष्ट्या द्रोणो जितः
 संख्ये हादिक्यश्च महाबलः ॥ ५६ ॥ दिष्ट्या विकर्णिभिः
 कर्णो रणे नीतः पराजयम् । विमुखश्च कृतः शल्यो युवाभ्यां
 पुरुपर्षभौ ॥ ५७ ॥ दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात् पुनरागतौ ।
 पश्यामि रथिनां श्रेष्ठानुभौ युद्धविशारदा ॥ ५८ ॥ मम
 वाक्यकरो वीरौ मम गौरवयन्त्रितौ । सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ

राजके पुत्रोंके साथ राजा युधिष्ठिरके पास पृथ्वी पर बैठगए,
 राजा युधिष्ठिर अपने सामने हाथ जोड़कर बैठेहुए शूर भीमसेन
 तथा सात्यकिको देख कर प्रसन्न हुए और उन दोनोंको अभि-
 नन्दन देतेहुए बोले कि-तुम दोनों शूरोंको द्रोणरूपी ग्राहोंसे
 दुरार्धर्ष, हादिक्यरूपी-मगरमच्छसे दुस्तर कौरवसेनारूपी समुद्रसे
 छूटाहुआ देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ, युद्धमें तुमने पृथ्वीके
 राजाओंका पराजय किया, यह बहुत अच्छा किया ॥ ५३-५५ ॥
 तुम दोनोंको युद्धमें विजयी हुआ देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती
 है, तुमने रणमें महाबलवान् द्रोण तथा कृतवर्माका पराजय किया
 यह बहुत अच्छा किया ॥ ५६ ॥ हे महापुरुषों ! तुम दोनोंने
 रणमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे कर्णका पराजय किया और शल्यको
 रणमेंसे भगादिया, यह काम भी बहुत अच्छा किया ॥ ५७ ॥
 मैं युद्धकुशल तुम दोनों महारथियोंको संग्राममेंसे लौटकेहुए देखकर
 परमप्रसन्न हुआ हूँ ॥ ५८ ॥ मेरी आज्ञानु-
 सार बर्ताव करनेवाले और मेरे गौरवको बढ़ानेमें तत्पर रहनेवाले
 तुम दोनों वीर पुरुषोंको कौरव सेनारूपी समुद्रके पारगए देख

दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ५६ ॥ समरश्लाघिनीं वीरं संग्राये-
ष्वपराजितौ । मम वाक्यसमौ चैव दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ६०
इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन् युयुधानवृकोदरौ । सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ
हर्षाद्वाष्पं मुमोच ह ॥ ६१ ॥ ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद्विशा-
म्पते । पाण्डवानां रणो हृष्टं युद्धाय तु मनो दधे ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे
एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

सञ्जय उवाच । सैन्ये निहते राजन् पुत्रस्वव सृयोधनः ।
अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विपञ्चमे ॥ १ ॥ दुर्मना निःस्व-
सन्तुष्टं भग्नदंष्ट्र इवोरगः । आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्तंत्तिं परा-
मगात् ॥ २ ॥ दृष्ट्वा तत् कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत् ।

कर, मैं प्रसन्न हुआ हूँ ॥ ५६ ॥ युद्धसे आनन्द पानेवाले, युद्धमें
अजित तथा मेरे वाक्यके दूसरे रूपा, तुम दोनोंको देखकर मैं प्रसन्न
होरहा हूँ ६० हे राजन् ! इसप्रकार पांडुके पुत्र धर्मराजने, पुरुषोंमें
व्याघ्रसमान सात्यकिसे, तथा भीमसेनसे कहकर उनका आलि-
ङ्गन करा, तदनन्तर उनके नेत्रोंमें हर्षके मारे आँसू भर आये ६१
हे राजन् ! इसप्रकार विजय पानेके पीछे रणमें रहनेवाले पांडव
सब सेनाके बीचमें हर्षित हो (फिर) युद्ध करनेके लिये मनमें
विचार करनेलगे ॥ ६२ ॥ एकसाँ उडङ्वासवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! रणमें सिन्धुराजका
भरण होनेसे, सब लोकोंका अपराध करनेवाला तुम्हाग पुत्र
दुष्ट दुर्योधन रोने लगा और दीन बनगया तथा वह शत्रुओंका
पराजय करनेमें निरुत्साह होगया, वह मनमें खेद करनेलगा,
टूटी हुई ढाढ़वाले सर्पकी समान फुँकारें भरनेलगा और महा-
दुःखी होगया ॥ १ ॥ २ ॥ अर्जुन, भीमसेन और सात्यकिने
युद्धमें अपनी सेनाका बड़ा भारी संहार करडाला, यह देखकर

जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे ॥ ३ ॥ स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः । अमन्यतार्जुनसप्तो न योद्धा भुवि विद्यते ॥ ४ ॥ न द्रोणो न च राधेयो नारदत्थामा कृपो न च । कुहस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिषा ॥ ५ ॥ निर्जित्य हिरण्ये पार्थः सर्वान्मम महारथान् । अवधीत्सैन्यध्वं संख्ये न च कश्चिदवारयत् ॥ ६ ॥ सर्वथा हतमेवेदं पाण्डवैर्मै महद्वलम् । न ह्यस्य विद्यते ज्ञाता साक्षादपि पुरन्दरः ॥ ७ ॥ यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः । स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः ॥ ८ ॥ यस्य वीर्यं समाश्रित्य शर्म याचन्तमच्युतम् । तृणवत्तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ॥ ९ ॥ एवं कलान्तमना राजन्नुपायात् द्रोण-

तुम्हारा पुत्र दीनसा होगया उसका वर्ण फीका पड़गया, तथा उसके नेत्र आँसुओंसे भरगए, उस समय वह अपने मनमें विचारने लगा कि-इस पृथ्वीमें अर्जुनकी समान कोई योधा नहीं है ३-४ हे राजन् ! और उसने समझा कि-जब अर्जुन क्रोधमें भरजाता है उस समय उसके सामने द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा अथवा कृपा-चार्य इनमेंसे कोई भी खड़ा नहीं रह सकता ॥ ५ ॥ अर्जुनने रणमें मेरे सब महारथियोंका पराजय कर सिन्धुराजको मार डाला, उस समय उसको कोई भी न रोक सका ॥ ६ ॥ कौरवोंका सेनादल भी सर्वथा नष्ट होगया है ! साक्षात् इन्द्र भी इसको पाण्डवोंसे नहीं बचा सकता ॥ ७ ॥ मैंने संग्राममें जिसका आश्रय ले शस्त्रयुद्ध करनेका विचार किया था, उस कर्णको भी हराकर अर्जुनने जयद्रथको मार डाला ॥ ८ ॥ जिसके पराक्रमके ऊपर आधार रखकर मैंने सन्धि करनेके लिए आये हुए श्रीकृष्ण को तिनकेकी समान समझा था उस कर्णको भी अर्जुनने युद्धमें हरा दिया ॥ ९ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इसप्रकार मनमें खिन्न होता हुआ, सब लोकोंका अपराध करनेवाला तुम्हारा पुत्र द्रोण

भीक्षुत्तुम् । आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ १० ॥
 ततस्तत् सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत् । परान् विजयश्चापि
 धार्तराष्ट्रान्निमज्जतः ॥ ११ ॥ दुर्योधन उवाच । पश्य मूर्धाभि-
 पिक्तानामाचार्य कदनं महत् । कृत्वा प्रमुखतो भीष्मं शूरं मम
 पितामहम् ॥ १२ ॥ तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः ।
 पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रपभिवर्त्तते ॥ १३ ॥ अपरश्चापि
 दुर्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना । अर्क्षोहिणीं सप्त हत्वा हनो राजा
 जयद्रथः ॥ १४ ॥ अस्मद्विजयकागानां सुहृदामुरकारिणाम् ।
 गन्तास्मिं कथमानुष्यं गतानां यमसादनम् ॥ १५ ॥ ये मदर्थं परी-
 षन्ते वसुधां वसुधाधिपाः । ते हित्वा वसुधैरव्यं वसुधाप्रविशे-
 रते ॥ १६ ॥ सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम् । अश्व-
 को देखनेके लिये चला ॥ १० ॥ और उनसे, अर्जुनने कौरव-
 सेनाका बड़ा भारी संहार कर डाला है, यह बात तथा पाण्डवों
 की उन्नति तथा कौरवोंकी अवनति विषयक सब वृत्तान्त कहने
 लगा ॥ ११ ॥ दुर्योधनने कहा कि-हे आचार्य-! मेरे शूरवीर
 पितामह भीष्मप्रमुख सर्व मूर्धाभिपिक्त राजाओंका संहार हो गया
 है इसको तुम देखो ! ॥ १२ ॥ यह लोभी शिखण्डी मेरे पिता-
 महका नाश करके अपने मनमें बहुत ही सन्तुष्ट हुआ है और
 सब पाञ्चाल राजाओंके साथ सेनाके मुहाने पर खड़ा है ॥ १३ ॥
 तथा अर्जुनने सात अर्क्षोहिणी सेनाका नाश करके गदापराक्रमी
 और दुराधर्ष आपके शिष्य जयद्रथको मार डाला है ॥ १४ ॥
 इसके अतिरिक्त हमारी विजय चाहने वाले, हमारे सम्बन्धी जो
 हमारे साथ उपकार करते थे, वे मरकर यमलोकको पधार गए ।
 हाय ! जिन्होंने युद्धमें मेरे लिये अपने प्राणोंको त्याग दिया,
 उनके अणुसे, मैं कैसे छूट सकूँगा ॥ १५ ॥ जो पृथ्वीपति राजे
 मेरे लिये पृथ्वीको चाहते थे, वे राजे आज पृथ्वीके ऐश्वर्यको छोड़

मेघसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥ १७ ॥ मम लुब्धस्य पापस्य
 तथा धर्मापचायिनः । व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ।
 कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुढः । विवरं नाशकदातुं मम
 पार्थिवसंसदि ॥ १८ ॥ योऽहं रुधिरसिक्तांगं राक्षसं मध्ये पिता-
 महम् । शयानं नाशकं ज्ञातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥ २० ॥ तं
 मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम् । किं वक्ष्यति हि दुर्हर्षः समेत्य
 परलोकजित् ॥ २१ ॥ जलसन्धं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम् ।
 मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणोस्त्यक्त्वा महारथम् ॥ २२ ॥ काम्बोजं निहतं
 दृष्ट्वा तथालम्बुपमेव च । अन्यान् बहूँश्च सुहृदो जीवितार्थोऽथ को

कर पृथ्वी पर लम्बे होकर सोरहे हैं ॥ १६ ॥ रे ! मैं वांस्तवमें नीच-
 पुरुष हूँ, क्योंकि—इसप्रकार मित्रोंका संहार करानेके पीछे मैं सदस
 अश्वमेधयज्ञ करके भी अपनी आत्माको पवित्र न कर सकूँगा ॥ १७ ॥
 मैं लोभी, पापी तथा धर्मका नाश करने वाला हूँ, क्योंकि—विजय
 चाहनेवाले राजे मेरे लिये पराक्रम करते हुए यमलोकको सिधार
 गए हैं ! ॥ १८ ॥ वांस्तवमें मैं आचारसे भ्रष्ट होगया हूँ और
 सगे सम्बन्धियोंसे मैंने द्रोह किया है, अरेरे ! राजाओंकी सभामें
 पृथ्वीने फटकर मुझे समा क्यों नहीं लिया ॥ १९ ॥ राजाओंके
 मध्यमें रुधिरसे सने हुए शरीरवाले, रणमें मरण पाकर शर-
 शय्या पर सोनेवाले भीष्मपितामहकी मैं रक्षा न कर सका ॥ २० ॥
 परलोकमें विराजनेवाले दुराधर्ष भीष्मपितामह अनार्य, मित्रोंसे
 द्रोह करनेवाले मुझसे स्वर्गमें मिलेंगे, तब वे क्या कहेंगे ॥ २१ ॥
 सात्यकिके मारे हुए महाधनुषधारी जलसंधकी ओर तो देखो !
 यह शूरवीर महारथी प्राणोंकी परवाह न कर, केवल मेरे लिये
 ही लड़नेको आया था ॥ २२ ॥ और काम्बोजराजयो, राजा
 अलम्बुषको तथा दूसरे बहुतसे स्नेही राजाओंको मरा हुआ देख
 कर मेरे मनमें विचार उठता है कि—तेरे जीवित रहनेसे क्या

मम ॥ २३ ॥ व्यापञ्चन्तो हताः शूरा मदर्थे येऽपराङ्मुखाः । यत-
माना परं शक्त्या विजेतुमहितान्मम ॥ २४ ॥ तेषां गत्वाद्गान्-
त्रयमद्य शक्त्या परन्तप । तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनापनु-५
सत्यन्ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृताम्बर । इष्टापूर्त्तेन च शपे वीर्येण
च भुतैरपि ॥ २६ ॥ निहत्य तात्रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डुभिः
सह । शान्तिं लब्ध्वास्मिं तेषां वा रणे गन्ता सलोकनाम् ॥ २७ ॥
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः । हता मदर्थे संग्रामे युध्य-
मानाः किरीटिना ॥ २८ ॥ न हीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनु-
पस्कृताः । श्रेयो हि पाण्डुन्मन्यन्ते न तथास्मान्महाभुज ॥ २९ ॥
स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसन्धेन संयुगे । भवानुपेक्षां कुरुते शिष्य-

लाभ ॥ २३ ॥ मेरे लिये लड़नेवाले आरपीछेको पैर न रखने
वाले शूर मेरे शत्रुओंको हरानेका बड़ा प्रयत्न करते २ रणमें
मारोगए ॥ २४ ॥ अतः हे परन्तप ! अब मैं यमुना नदीके जलसे
उन मेरे हुए स्नेही राजाओंको वृत्तकर उनके अणुमेंसे छूटना
चाहता हूँ ॥ २५ ॥ हे सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठगुरु द्रोण ! मैं
तुम्हारे सामने बाणझो, कुआँ, पराक्रम और पुत्रोंकी शपथ खाकर
प्रतिज्ञा करता हूँ कि— ॥ २६ ॥ “मैं रणभूमिमें सम्पूर्ण पाञ्चाल
राजाओंको और पाण्डवोंको मारकरही शान्ति पाऊँगा, नहीं तो
मेरे लियेजो महापुरुष संग्राममें लड़ते हुए अर्जुनके हाथसे मरकर
जहाँ गए हैं, तहाँ उनके पास मैं भी जाऊँगा और उनके लोकों
को प्राप्त होऊँगा ॥ २७-२८ ॥ हे महाभुज ! मेरे सहायक भी
अब रक्षा न मिलनेसे मेरे पास खड़ा होना नहीं चाहते, रे ! दह
जैसा पाण्डवोंका कल्याण चाहते हैं, तैसा हमारा कल्याण नहीं
चाहते ॥ २९ ॥ (अधिक क्या कहूँ) तुम (स्वयं भी) शिष्य
होनेके कारण अर्जुनकी ओरसे उपेक्षा (लापरवाही) करने दो,
युद्धमें सत्यप्रतिज्ञावाले तुमने स्वयं ही हमारा नाश किया है ॥ ३० ॥

त्वादर्जुनस्य हि ॥ ३० ॥ अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकी-
 र्षवः । कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥ ३१ ॥ यो
 हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः । मित्रार्थे योजयत्येनं
 तस्य सोऽर्थोऽवसीदति ॥ ३२ ॥ तादृग्रूपं कृतमिदं मम कार्यं सुदृढमैः ।
 मोहान्बलुब्धस्य पापस्य जित्स्य घनभीहतः ॥ ३३ ॥ हतो जयद्रथो
 राजा सौमदत्तिश्च वीर्यवान् । अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ
 वशालयः ॥ ३४ ॥ सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः ।
 हता मदर्थं संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ ३५ ॥ न हि मे जीवि-
 तेनार्थस्तावृते पुरुषर्षभान् । आचार्यः पाण्डुपुत्रायामनुजातु नो
 भवान् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्यो-
 धनानुतापे पञ्चाशदधिकशतमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

इसकारण ही रणमें हमारी विजय चाहनेवाले सब राजाओंका
 संहार हुआ है, इस समय तो मैं कर्णको ही हमारी विजय चाहने
 वाला और हितैषी देखता हूँ ॥ ३१ ॥ जो मन्दबुद्धिवाला पुरुष
 मित्रको बिना पहिचाने ही उसको अपने हितके काममें लगा देता
 है, उस मनुष्यका कार्य नष्ट होजाता है ॥ ३२ ॥ मैं मोहके कारण
 लोभी, पापी, कपटी हूँ तथा धन चाहता हूँ और मेरे परमस्नेही
 मित्रोंने भी मेरे कामको ऐसा ही बताया है ॥ ३३ ॥ जयद्रथ,
 पराक्रमी भूरिश्रवा, अभीषाह, शूरसेन, शिवि और वशाति राजे
 मेरे लिये युद्ध करते २ अर्जुनके हाथसे रणमें मारे गए, अतः अब
 मैं ने महापुरुष जहाँ गए हैं तहाँ ही जाना चाहता हूँ ॥ ३४-३५ ॥
 उन महापुरुषोंके बिना मेरे अकेले जीनेसे क्या लाभ है, अतः
 हे पाण्डुपुत्रोंके आचार्य ! अब आप हमें जानेकी आज्ञा दीजिये ३६
 एकसौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाविना ।
तथैव भूरिश्रवसि किमासीदो मनस्तदा ॥१॥ दुर्योधनेन च द्रोण-
स्तथोक्तः कुरुसंसदि । किमुक्तवान् परं तस्मै तन्मयाचक्ष्व सञ्जय २
सञ्जय उवाच । निष्ठानको महानासीत् सैन्यानां तव भारत । सैन्यं
निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३ ॥ मन्त्रितं तव पुत्रस्य नै सर्व-
मवमेनिरे । येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षयाः ॥ ४ ॥ द्रोण-
स्तु तद्वचः श्रुत्वा तव पुत्रस्य दुर्मनाः ध्यात्वा मुहूर्तं राजेन्द्र भृश-
मार्षोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥ द्रोण उवाच । दुर्योधन किमेवं मां वाक्श-
रैरपि कृन्तसि । अजय्यं सततं संख्ये द्रुवाणं सव्यसाविनम् ॥६॥
एतेनैवाजुनं ज्ञातुमलं कौरव संयुगे । यच्छिरण्यवपीडनीयं

धृतराष्ट्रने बुझा कि-हे तात सञ्जय । युद्धमें अर्जुनने जयद्रथको
मार डाला और भरिश्रवा भी मारा गया, तब तुम्हारे मनमें क्या
क्या विचार उठे थे ? तथा दुर्योधनने कौरवोंकी सभाके बीचमें
द्रोणाचार्यको इसप्रकार बातचीत की, तब उन्होंने क्या उत्तर दिया
था, वह मुझे सुना ॥ १-२ ॥ सञ्जयने कहा कि-हे भरतवंशी
राजन् ! सिन्धुराज तथा राजा भूरिश्रवाको मारा हुआ देखकर,
तुम्हारी सेनामें बड़ा भारी कुहराम मचने लगा ॥३॥ और तुम्हारे
पुत्रके सकल विचारोंका राजाओंने अनादर किया, क्योंकि-
उसके (अष्ट.) विचारसे ही सहस्रों क्षत्रिय नष्ट होगए ॥४॥
अब दुर्योधनने गुरु द्रोणाचार्यसे ऐसी बातें कहीं, तब द्रोणाचार्य
चित्तमें दुःखी होने लगे और दो घड़ी तक चित्तमें विचार करने
के पीछे खिन्न होकर कहने लगे ॥ ५ ॥ द्रोण बोले कि-“ओ
दुर्योधन ! तू इसप्रकार वागवाण मारकर मुझे क्यों बाँधता है ?
मैं तुझसे सदा ही कहा करता हूँ, अर्जुन युद्धमें जीतनेमें आने
वाला नहीं है ॥ ६ ॥ हे दुर्योधन ! सुकृष्णारी अर्जुनकी रजामें
रक्तकर शिखरिणीने रणमें भीष्मको मार डाला इस बातसे ही तू

पाल्यमानः किरीटिना ॥ ७ ॥ अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देव-
दानवैः । तदैवाज्ञासिपमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ८ ॥ यः पुंसां
त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि । तस्मिन्नपतिते शूरे किं शेषं पथु-
पास्महे ॥ ९ ॥ यान् स्म तान् ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि ।
अज्ञान्न तेऽज्ञा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥ १० ॥ त एते
व्रन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः । तांस्तदाख्यायमान-
स्त्वं विदुरेण न बुद्धवान् ॥ ११ ॥ यास्ता विजयतश्चापि विदु-
रस्य महात्मनः । धीरस्य नाचो नाश्रौपी । क्षेमाय वदतः शुभाः १२
तदिदं वर्त्तते घोरमागतं वैशसं महत् । तस्यावमानाद्वाक्यस्य दुर्यो-
धनकृते तव ॥ १३ ॥ योऽनम्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम् ।

अर्जुनको भली भाँति पहिचान ले (कि-वह कैसा पराक्रमी
है ?) ॥ ७ ॥ जबले मैंने देवता और राजासोंसे भी न मारे
जासकनेवाले भीष्मको रणमें गिरतेहुए देखा है तबसे मुझे
इस भरतवंशी राजाओंकी सेनाके वचनेकी आशा नहीं रही है ॥ ८ ॥
हम तीनों लोकोंमें जिनको पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, वे शूर
भी रणमें मारे गए तो फिर औरोंकी क्या आशा रखें ॥ ९ ॥
हे तात ! शकुनिने कौरवोंकी सभामें जो फाँसे फँके थे, वह फाँसे
नहीं थे, परन्तु वे तो शत्रुओंको पीडा देनेवाले तीक्ष्ण बाण
थे ॥ १० ॥ हे तात ! कुन्तीपुत्रके फँके हुए जो बाण अब
हमारा नाश कर रहे हैं इन बाणोंकी बात जब जुआ आरम्भ
हुआ था तब विदुरने तुझसे कही थी कि-पाश बाण वनजावेंगे
परन्तु तू इस बातको समझा ही नहीं ॥ ११ ॥ धीरा महात्मा
विदुरने अन्तमें विजयी हुए तुझसे, तेरे कल्याणके लिये हितकारी
वचन कहे थे, परन्तु तूने वे वचन सुने ही नहीं ॥ १२ ॥ विदुरके
वचनोंका अनादर करनेसे हे दुर्योधन ! तेरे कारणसे आज हमारा
बड़ा भारी संहार हो रहा है ॥ १३ ॥ जो मूढ़ पुरुष अपने हितैषी

स्वमतं कुरुते मूढ स शोच्यो न चिरादिव ॥ १४ ॥ यच्च न पश्य
मानानां कृष्णामानस्य यत् सभाम् । अनर्हती कुले जार्ता सर्वधर्मा-
नुचारिणीम् ॥ १५ ॥ तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं मामगिदं महत् ।
नो चेत्पापं परे लोके त्वमर्ह्येथास्ततोऽधिकम् ॥ १६ ॥ यच्च तान्
पाण्डवान् द्यूते विपमेण विजित्य ह । प्राब्राजयस्तदारण्ये रौर-
वाजिनवाससः ॥ १७ ॥ पुत्राणां चैतेर्पा धर्ममाचरतां सदा ।
दुह्येत् को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणजुवः ॥ १८ ॥ पाण्ड-
नामयं कोऽस्त्वया शकुनिना सह । आहूतो धृतराष्ट्रस्य सम्पत्ते
कुरुसंसदि ॥ १९ ॥ दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्द्धितः ।
क्षत्रुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाभ्यस्तः पुनः पुनः ॥ २० ॥ यत्ताः सर्वे

और यथार्थवक्ता पुरुषोंके हितकारक वचनोंका अनादर करके
अपने विचारके अनुसार बर्ताव करता है, वह थोड़ेही समयमें
दुःख पाता है ॥ १४ ॥ अरे ! गान्धारीके पुत्र ! सभामें लानेके
अयोग्य सब प्रकारसे धर्मोंका आचरण करनेवाली कुलीन
द्रौपदीको चोटी पकड़वाकर तूने हमारे सामने सभाके बीचमें
खिचड़वाते हुए मँगाया था, उस अधर्मका ही यह बड़ा भारी
फल तुझे मिला है, यदि उसका फल तुझे इस लोकमें नहीं
मिलता, तो इससे अधिक दण्ड तुझे परलोकमें भोगना पड़ता ॥ १५ ॥
और जुएमें कपटसे पाण्डवोंको हराकर, उनको रुग्णकी खाल
पहिराकर वनमें निकाल दिया ॥ १७ ॥ उसका फल तुझे आज
मिला है, पाण्डव मेरे पुत्रवी समान हैं और सदा धर्मका आचरण
करते हैं, मेरे सिवा दूसरा कौनसा नीच ब्राह्मण उनसे ईर्ष्या
करेगा ? ॥ १८ ॥ शकुनिके दिखानेसे और धृतराष्ट्री सम्पत्तिसे
तूने भी कौरवोंकी सभामें पाण्डवोंके कोपवो भोल लेलिया
था ॥ १९ ॥ और दुःशासन भी तेरे साथ ही लगाहुआ था,
और कर्णेने उसको बढ़ाया था और तूने विदुरके वचनोंका अना-

पराभूताः पर्यवारयताञ्जुनम् । सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये
 कथं हतः ॥ २१ ॥ कथञ्च त्वयि कर्णे कृपे च शल्ये च जीवति ।
 अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्यबोजगमेत् ॥ २२ ॥ युध्यन्तः
 सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते । सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये
 कथं हतः ॥ २३ ॥ मय्यैव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि ।
 आशंसत परित्राणमर्जुनात् स महीपतिः ॥ २४ ॥ ततस्तस्मिन्
 परित्राणमलङ्घयति फाल्गुनात् । न किञ्चिदपि पश्यामि जीवित-
 स्थानमात्मनः ॥ २५ ॥ मज्जन्तमिव चात्मानं घृष्टद्युम्नस्य किन्विपे ।
 पश्याम्यहत्वा पञ्चालान् सह तेन शिखण्डिना ॥ २६ ॥ तन्मां
 किमपितप्यन्त वाक्गुरुरेव कृन्तसि । अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा
 त्राणाय भारत ॥ २७ ॥ सौवर्णं सत्यसन्धस्य ध्वजमग्निष्कारिणः ।

द्वारकरके बारम्बार कोपानलको मकटाया था ॥ २० ॥ सब
 योवा तयार होकर सिन्धुराजका आश्रयकर अर्जुनको चारों ओरसे
 घेर रहे थे तो भी उनका पराजय कैसे हुआ ? और सबोंके बीच
 में अर्जुनने जयद्रथको कैसे मार डाला ॥ २१ ॥ हे दुर्योधन ! तेरे
 कर्णके, कृपाचार्यके, शल्यके और अश्वत्थामाके जीवित होने पर
 भी जयद्रथ कैसे मारा गया ॥ २२ ॥ हे दुर्योधन ! जयद्रथ अर्जुन
 से अपनी रक्षाकी आशा, मेरे और तेरे ऊपर बाँधे बैठा
 था ॥ २३ ॥ परन्तु वह अर्जुनसे अपनेको बचा नहीं सका, अतः
 मुझे अपने जीवनके लिये भी कोई स्थान दिखाई नहीं देता २४
 मैं भी जब तब तक शिखण्डी सहित पञ्चालराजाओंको न मार
 लूँगा, तब तक मैं अपनेको घृष्टद्युम्नके पागमें डूबा हुआ समझता
 हूँ ॥ २५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! मैं सिन्धुराजका रक्षा करनेकर
 भी उसकी रक्षा न कर सका (इस शोकसे मैं जल रहा हूँ) उसको
 तु त्राणीरूप अस्त्रोंसे क्यों बाँधे डालता है ॥ २६ ॥ सत्य प्रति-
 दाताले तथा उत्तम कर्म करनेवाले भीष्मपितामहकी सुवर्णकी

अपश्यन् युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥ २८ ॥ मध्ये महा-
 रथानाञ्च यत्राह्नयत सैन्धवः । हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शोभे तत्र
 मन्यसे ॥ २९ ॥ कृप एव च दुर्हर्षो यदि जीवति पार्थिव । शो-
 नागात् सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहम् ॥ ३० ॥ यत्रापश्यं
 हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै । दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म
 दुष्करम् ॥ ३१ ॥ अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः । न ते
 वसुन्धरास्तीति तदाहं चिन्तये नृप ॥ ३२ ॥ इमानि पाण्डवानां च
 सृञ्जयानां च भारत । अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यथ मारिप ३३
 नाहत्वा सर्वपञ्चालान् कवचस्य विमोक्षणम् । कर्त्तास्मि समरे
 कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥ ३४ ॥ राजन् ज्ञूया युगं मे त्वमश्व-

ध्वजा इस युद्धमें तुझे दिखाई नहीं देती, फिर भी तू अब विजय
 की आशा कैसे रखता है ॥ २८ ॥ जिस युद्धमें महारथियोंके
 बीचमें रक्षित सिंधुराज और भूरिश्रवा मारे गये, तहाँ तू औरोंके
 वचनेकी आशा कैसे करता है ॥ २९ ॥ महाबलवान् एक कृपा-
 चार्य अकेले अभी तक जीते हैं, वह अभी सिंधुराजके मार्गसे
 नहीं गये हैं, इसलिये मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ३० ॥ परन्तु
 हे कुरुराजपुत्र ! तेरी और तेरे छोटे भाई दुःशासनकी दृष्टिके
 सामने महादुष्कर कर्म करनेवाले तथा संग्राममें इन्द्र आदि देव-
 ताओंसे भी न मारे जा सकनेवाले भीष्मको जवसे मैंने मरा हुआ
 देखा है, तबसे हे राजन् ! मेरे मनमें निश्चय हो गया है, कि-यह पृथ्वी
 तेरे पास नहीं रहसकती ॥ ३१-३२ ॥ हे भरतकुलोत्पन्न राजन् !
 पाण्डवोंको तथा सृञ्जयोंकी सेनाएँ इकट्ठी होकर आज मेरे
 ऊपर चढ़ी आरही हैं ॥ ३३ ॥ हे धृतराष्ट्रके कुँवर ! आज मैं
 सकल पाण्डवोंको मारे बिना अपने शरीर परसे कवचको नहीं
 उतारूँगा तथा रणमें तेरा हित करूँगा ॥ ३४ ॥ हे राजन् दुर्यो-
 धन ! तू रणमें जा कर मेरे पुत्र अश्वत्थामासे कहना, कि-तू

स्थानान्माहवे । न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता ॥ ३५ ॥
यच्च पित्रानुशिष्टोसि तद्वचः परिपालय । आनृशंस्ये दमे सत्ये
चार्जवे च स्थिरो भव ॥ ३६ ॥ धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थादप्य-
पीडयन् । धर्मप्रधानकार्याणि कुर्यात्वेति पुनः पुनः ॥ ३७ ॥
चक्षुर्मनोभ्यां सन्तोष्या विप्राः पूज्याश्च शाक्ततः । न चैषां विमियं कार्यं
ते हि बह्विशिखोपमाः ॥ ३८ ॥ एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरि-
सूदन । रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शल्यपीडितः ॥ ३९ ॥ त्वञ्च
दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि धारय । रात्रावपि च योत्स्यन्ति
संरब्धा कुरुसृञ्जयाः ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः

अपने प्राणोंकी रक्षा करता हुआ सोमकोंका जहाँ तक बने तहाँ
तक संहार करना, उन्हें जीवित मत छोड़ना ॥ ३५ ॥ और
कहना कि—तेरे पिताने तुझै जिस बातकी आज्ञा दी है—उनके
वचनोंका तू पालन करना; दया, दम, सत्य तथा सरलताको
स्थिरतासे धारण करना, धर्म, अर्थ और काममें कुशल रहना,
धर्ममें तथा अर्थमें बाधा न पड़े, तैसे वर्तना करना, तथा धर्मको
मुख्य गिनकर सब काम करना, यह मैंने तुझसे बहुत
बार कहा है (तदनुसार वर्तना करना) ॥ ३६—३७ ॥
तू नेत्र तथा मनसे ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट रखना, शक्तिके अनुसार
उनका सत्कार करना, परन्तु उनके मनको अच्छा न लगनेवाला
काम न करना, क्योंकि—वे अग्निकी शिखाकी समान होते हैं ३८
(इसप्रकार कहनेके पीछे द्रोण दुर्योधनसे कहनेलगे कि—) हे
शत्रुनाशक राजन! तूने मुझै वाग्वाण मारकर पीडित किया है, अतः
अब मैं महारणमें संग्राम करनेके लिये शत्रुकी सेनाओंमें प्रवेश
करता हूँ ॥ ३९ ॥ हे दुर्योधन ! तुझमें शक्ति हो तो तू इस
सेनाकी रक्षा करना, क्योंकि—क्रोधमें भरेहुए कौरव तथा सृञ्जय
राजे रात्रिमें भी युद्ध करेंगे, अतः उनसे तू सावधान रहना ४०

पाण्डवसृञ्जयान्। सुष्णन् क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामित्रांशुमानः ?

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणाचार्ये

एकपञ्चाशदधिकशतमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

सञ्जय उवाच । ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रबोदितः । अमर्ष-

वशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥१॥ अन्नवीच्य तदा कर्णं पुत्रो

दुर्योधनस्तत्र । पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना ॥ २ ॥

आचार्यविहितं व्यूहं भित्वा देवैः मुहुर्भिदम् । तत्र व्यायच्छमानस्य

द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥ मिपतां योधमुख्यानां सन्धवो विनि-

पातितः । पश्य राधेय राजानः पृथिव्यां प्रवरा युधि ॥४॥ पार्थे-

नैकेन निहताः सिंहेनैवेतरे मृगाः । मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य

च महात्मनः ॥ ५ ॥ अन्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह ।

इसप्रकार दुर्योधनको उपदेश देकर, सूर्य जैसे नक्षत्रोंके तेजको

हरे, तैसे क्षत्रियोंके तेजको हरतेहुए द्रोणाचार्य पाण्डवों और

सृञ्जयोंके सामने लड़नेके लिये चलदिये ॥ ४१॥ एकसी इक्या-

वनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५१ ॥ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् ! द्रोणाचार्यके इसप्रकार कहने

पर तुम्हारा पुत्र क्रोधमें भरगया और उसने अपने मनमें मुहु करनेकी

ठानली ॥ १ ॥ और उसने उस समय कर्णसे कहा, कि-हे कर्ण !

दृष्टि तो डाल । श्रीकृष्णकी सहायतावाले मुकुटधारी अर्जुनने

द्रोणाचार्यका व्यूह-जिसको देवता भी नहीं भेदसकते थे-उसको

तोड़डाला है, तथा तेरे, महात्मा द्रोणके और मुख्यपर राजाओंके

सामने उसने सिंधुराजको भी मारडाला है, हे राधापुत्र कर्ण !

सिंह जैसे साधारण मृगोंका संहार करडाले-तैसेही शकेले

अर्जुनसेही रणभूमिमें गारेगये वड़े-राजे पड़े हैं, इनको तो न

देख ! मैंने तथा द्रोणाचार्यने बड़ा प्रयत्न किया, तो भी इन्द्रपुत्र

अर्जुनने मेरी सेनाका संहार करडाला और अब थोड़ीसीही

कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः ॥ ६ ॥ भिन्नात्सुदु-
भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे । प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा, सैन्धव-
मर्जुनः ॥ ७ ॥ पश्य राधेय पृथ्वीशान् पृथिव्या पातितान्वहून् ।
पार्थेन निहतान्संख्ये महेन्द्रोपमविक्रमान् ॥ ८ ॥ अनिच्छतः कथं
वीर द्रोणस्य युधि पाण्डवः । भिन्नात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानस्य
शुष्मिणः ॥ ९ ॥ दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः ।
ततोऽस्य दत्तवान् द्वारमयुद्धेनैव शत्रून् ॥ १० ॥ अभयं सैन्धव-
स्यः दौ दत्त्वा द्रोणः परन्तपः । प्रादात् किरीटिने द्वारं पश्यन्नि-
गुणतां मयि ॥ ११ ॥ यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान् प्रति ।
प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाभविष्यज्जनक्षयः ॥ १२ ॥ जयद्रथो जीवि-

सेना वाकी वची है, इस युद्धमें द्रोणाचार्य यदि पुष्कल प्रयत्न
करते तो अर्जुन (चाहे जितना) परिश्रम करने पर भी उस
अतीव दुर्भेद्य व्यूहको कभीभी तोड़ नहीं सकता था । परन्तु
द्रोणाचार्य ढीले पढ़गये और अर्जुनने सिन्धुराजको मारकर
अपनी प्रतिज्ञा पूरी करली ॥ २-७ ॥ हे कर्ण ! अर्जुनने रण-
भूमिके ऊपर इन्द्रसरीखे बहुतसे राजाओंको मारकर पृथिवीमें
सुलादिया ॥ ८ ॥ हे वीर ! द्रोण युद्धमें क्रोधमें आकर प्रयत्न
करते और हमारी ओरकी विरुद्धताका त्याग कर देते तो अर्जुन
अतिकठिनतासे भेदे जा सकनेवाले चक्रव्यूहको कैसे तोड़ सकता
था ! ॥ ९ ॥ परन्तु महात्मा आचार्य नित्य अर्जुनके ऊपर प्रेम-
भाव रखते हैं, इससे हे शत्रुहन्ता कर्ण ! इन्होंने युद्ध न कर अर्जुन
को व्यूहमें घुमनेके लिये मार्ग दे दिया था ॥ १० ॥ रे ! मेरे
दुर्भाग्यको तो देखो ! परन्तप द्रोणाचार्यने सिन्धुराजको अभय-
वचन दिया था, तो भी अर्जुनको सेनामें घुसने दिया ॥ ११ ॥
आचार्यने यदि प्रथमसे ही सिन्धुराजको घर जानेकी आज्ञा दी
होती तो निःसंशय मनुष्योंका (इतना बड़ा) संहार नहीं

तार्थी गच्छमानो गृहान् प्रति । मयानार्येण संरुद्धो द्रोणान् प्राप्त्वा-
भयं सत्ते ॥ १३ ॥ अद्य मे भ्रान्तः क्षीणश्चित्रसेनादयो गृधि ।
भीमसेन समासाद्य पश्यमानो दुरात्मनाम् १४ कर्ण उवाच । आचार्य
मा विगर्हस्व शक्त्यासौ युध्यते द्विजः । यथावत् यथोत्साहं त्यक्त्वा
जीवितमात्मनः ॥ १५ ॥ यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ।
नात्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथञ्चन ॥ १६ ॥ कृती दत्तो
युवा शूरः कृताहो लघुविक्रमः । दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानर-
लक्षणम् ॥ १७ ॥ कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः । गांडीव-
मजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १८ ॥ प्रवर्षन्निशितान् बाणान्
बाहुद्रविणदर्पितः । यदर्जुनोऽभ्ययाद् द्रोणमुष्णं हि तस्य तत् १९

होता ॥ १२ ॥ हे मित्र ! जयद्रथ तो जीते रहनेकी लालसासे
घर जानेको उद्यत होगया था, परन्तु मुझ जैसे अनार्यने
आचार्यसे अभयदान दिलवाकर उसको घर जानेसे रोका था १३
हाय ! आजके युद्धमें हम सब दुरात्माओंके नेत्रोंके सामने
चित्रसेन आदि मेरे भाई भीमसेनके साथ लड़कर मारेगये ॥ १४ ॥
यह सब सुनकर कर्णने कहा कि—तुम आचार्यका अपमान मत
करो, यह ब्राह्मण अपने प्राणोंकी भी परवाह न कर अपनी
शक्ति भर युद्ध करते हैं ॥ १५ ॥ श्वेत घोड़ोंवाला अर्जुन
आचार्यका उत्सङ्गन करके हमारी सेनामें घुसगया, इसमें आचार्य
का कुछ भी दोष नहीं है ॥ १६ ॥ युद्धकुशल, बुद्धिमान, तरुण शूर-
वीर, अस्त्रों से जाननेवाला, कुतर्सेपराक्रम करनेवाला, अभेद्य कवच
पहिरनेवाला पराक्रमी, और भुजवक्रका अभिमान रखनेवाला
अर्जुन दिव्य अस्त्रोंसे तथा शस्त्रोंसे भरेहुए, वानरके चिन्ह वाली
ध्वजामे अलंकृत और जिसके अस्त्रोंकी लगामें श्रीकृष्णके हाथमें
थीं—ऐसे रथमें बैठकर, गाण्डीव धनुषको हाथमें लेकर, बाणोंकी
बर्षा करता हुआ द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़आया, इसमें कुछ आश्चर्य

आचार्यः स्थविरो राजन् शीघ्रयाने तथाऽन्तमः । वाहुव्यायाम-
चेष्टायामशक्तस्तु नराधिप ॥ २० ॥ तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः
कृष्णसारथिः । तस्मादोषं न पश्यामि द्रोणस्यानेन हेतुना ॥ २१ ॥
अजय्यान् पाण्डवान्मन्ये द्रोणेनास्त्रविदा मृधे । तथा ह्येनमतिक्रम्य
प्रविष्टः श्वेतवाहनः ॥ २२ ॥ दैवादिष्टोऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते
कचित् । यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन ॥ २३ ॥
सैन्यघो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम् । परं यत्नं कुर्वताञ्च त्वया
सार्धं रणाजिरे ॥ २४ ॥ हत्वास्माकं पौरुषं वै देवं पश्चात् करोति
नः । सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ॥ २५ ॥ दैशोप-
सृष्टः पुरुषो यत् कर्म कुरुते कचित् । कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन

नहीं है ॥ १७-१६ ॥ हे राजन् ! आचार्य अवस्थामें बृद्ध और
शीघ्रतासे चलनेमें असमर्थ हैं, तथा दोनों हाथोंको शीघ्रतासे
चलानेमें भी असक्त हैं, इससे ही श्वेत घोड़ोंवाला और कृष्ण
जिसके सारथी हैं, वह अर्जुन द्रोणका उल्लंघन कर सेनामें
घुसगया था, इसमें मैं द्रोणाचार्यका कुछ दोष नहीं देखता २०-२१
रणमें द्रोणाचार्यका पराजय करनेकी शक्ति पाण्डवोंमें नहीं है
ऐसा मैं जानता था, तब भी अर्जुन उनको लाँचकर सेनामें घुस
गया ॥ २२ ॥ इससे मुझे प्रतीत होता है कि-हमारा पराजय
दैवेच्छासे हुआ है और इसमें द्रोणाचार्यका जरा सा भी दोष
नहीं है, हे दुर्योधन ! हमने भी तेरे साथमें रहकर रणमें बड़ा
भारी प्रयत्न किया और शक्तिके अनुसार लड़े, तब भी अर्जुनने
युद्धमें सिन्धुराजको मार डाला, अतः इस विषयमें मारवधको ही
मुख्य समझना चाहिये ॥ २३-२४ ॥ हम सदा कपटसे तथा
पराक्रमसे कार्य करनेके लिये पुरुषार्थ किया करते हैं, परन्तु दैव
हमारे पुरुषार्थका नाश करके, उसको पीछेको ढकेल देता है २५
भाग्यहीन मनुष्य किसी समय जिसर कामको करता है, मारवध

विनिपात्यते ॥ २६ ॥ यत् कर्त्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
तत् कार्यमदिशङ्केन सिद्धिर्देवे प्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥ निकृत्वा वंचिताः
पार्था विपयोगैश्च भारत । दग्धा जतुगृहे चैव धूनेन च परा-
जिताः ॥ २८ ॥ राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव कागनम् । यत्नेन
च कृतं तत्तद्देवेन विनिपातितम् ॥ २९ ॥ युध्यस्व यत्नमास्थाय देवं
कृत्वा निरर्थकम् । यत्तत्तव तेपाञ्च देवं मार्गेण यास्यति ३० न
तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् । दुष्कृतं तव वा धीर बुद्ध्या-
हीनं कुरुद्वह ॥ ३१ ॥ देवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।

उसके प्रसन्न (सब) कामको नष्ट कर देता है ॥ २६ ॥ अतः
मनुष्यको उद्योगी बनकर, जो काम करना हो, उसको निःसन्देह
सदा करते जाना चाहिये, परन्तु कार्यकी सिद्धिका आधार तो
देवके ही ऊपर है ॥ २७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! हमने पाण्डवोंको
कपट करके छला, मारनेके लिये विष दिया, लाजा भवनमें भस्म
कर दिया और धूममें हरा दिया, राजनीतिके आधार पर बहुत
समय तक वनमें भेज दिया, इसप्रकार प्रयत्नपूर्वक जोर भी कार्य
करे, उन सब कामोंको प्रारब्धने निरर्थक कर डाला ॥ २८-२९ ॥
परन्तु तुम देवको निरर्थक समझो और यत्नके ऊपर आधार
रखकर युद्ध करो, तुम तथा वे-दोनों प्रयत्न करोगे तो तुम दोनोंका
प्रारब्ध अपने-२ मार्ग पर चला जावेगा अर्थात् दोनोंमेंसे एकको
विजय मिलेगी ॥ ३० ॥ हे कुर्बंशी राजन् दुर्योधन ! पाण्डवोंने
बुद्धिपूर्वक कोई सत्कार्य किया हो, यह तो मुझे कुछ मीन
नहीं होता, तथा तूने भी-विचार करे बिना पराजय पानेवाला-
कोई दूषित कार्य किया हो यह भी मुझे दिखाई नहीं देता, तुम
दोनोंने उचित परिश्रम किया है ॥ ३१ ॥ परन्तु सबके सत्कार्य
और असत्कार्यमें देव ही प्रमाणभूत है, मनुष्य जब निद्रावश
होकर अचेतन अवस्थामें चेष्टाशून्य होकर पड़ा होता है, तब भी

अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥ ३२ ॥ बहूनि तव
सैन्यानि योधाश्च बहवस्तव । न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धम-
वर्त्तत ॥ ३३ ॥ तैरल्पैर्वहवो यूयं क्षयं नीताः महारिणः । शङ्के
दैवस्य तत् कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥ ३४ ॥ सञ्जय उवाच ।
एवं सम्भाषमाणानां बहु तत्सञ्जनाधिप । पाण्डवानामनीकानि
समदृश्यन्त संयुगे ॥ ३५ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं व्यतिपत्तरथद्विपम् ।
तावकानां परैः सार्द्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि पुनर्युद्धारम्भे
द्विपश्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

समाप्तञ्च जयद्रथवधपर्व ।

उसका प्रारब्ध तो जागता ही रहता है ॥ ३२ ॥ तेरी सेना भी
बहुत है और योधा भी बहुत हैं, इतनी सेना और इतने योधा
पाण्डवोंके पास नहीं है तब भी दोनोंमें युद्ध आरंभ होगया और
उनके योधाओंने तेरे योधाओंका संहार करवाला, इससे मुझे
सन्देह होता है कि यह सब प्रारब्धकी ही लीला है और प्रारब्धने
ही हमारे पुरुषार्थका नाश करदिया है ॥ ३३-३४ ॥ सञ्जय कहता
है कि-हे राजन् ! इसप्रकार कर्ण और दुर्योधन बहुतसी बातें
कर रहे थे, इतनेमें ही रणभूमिके ऊपर पाण्डवोंकी सेना दिखाई
दी ॥ ३५ ॥ और हे राजन् ! तुम्हारे अन्यायके कारण तुम्हारे
पुत्रोंका शत्रुओंके साथ युद्ध होनेलगा, इस युद्धमें सहस्रों हाथी-
सवार और घोड़सवार एक दूसरेके सामने डटकर युद्ध करने
लगे ॥ ३६ ॥ एक सौ वावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५२ ॥*

जयद्रथवधपर्व समाप्त ।

अथ यदोक्तञ्चतुर्थपर्व ।

सञ्जय उवाच । नहुदीर्घं गजानीकं दत्तं तव जनाधिप । पाद-
सेनापतिकम्य योधयामास सर्वतः ॥ १ ॥ पञ्चवालाः कौरवाश्चैव
योधयन्तः परस्परम् । यमराष्ट्राय मदते परलोकाय दीक्षिताः ॥ २ ॥
शूराः शूरैः समागम्य शरत्तामरशक्तिभिः । विष्पशुः समरेऽन्योऽन्यं
निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥ ३ ॥ रथिनां रथिभिः सार्द्धं रुधिर-
सावदारुणम् । प्रावर्त्तत महद्गुहं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४ ॥ वार-
णाक्ष महाराज समासाद्य परस्परम् । विपाणैरर्दयामातुः सुसं-
क्रुद्धा मदोन्मदाः ॥ ५ ॥ हयारोहान् हयारोहाः प्रासशक्तिपरस्परैः ।
विभिद्वस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६ ॥ पत्तयश्च पद्मावाहो
शतशः शस्त्रपाणयः । अन्योऽन्यमार्दयन् राजन्नित्यं यत्ताः परा-
क्रमे ॥ ७ ॥ गोत्राणां नामधेयानां कुलानाञ्चैव मारिष । श्रव-

यदोक्तञ्चतुर्थपर्व ।

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! (प्रारम्भमें ही)
आपकी बड़ीहुई हस्तिसेना पाण्डवोंकी सेनाको दबाकर चारों
ओर लड़नेलगी ॥ १ ॥ पाञ्चवाल राजे और कौरव राजे दड़े
भारी यमलोकमें जानेके लिये परलोककी दीक्षा लेकर परस्पर
लड़नेलगे ॥ २ ॥ शूर शूरोंके साथ भिड़कर बाण, तोमर और
शक्तियोंसे एक दूसरेको घोंघरकर उनको यमलोकमें भेजनेलगे ३
रथी रथियोंसे भिड़ एक दूसरेको मारकर रुधिरके पतनाले नहा
देते थे इसप्रकार वह बड़ाभारी दारुण युद्ध होनेलगा ॥ ४ ॥
हे महाराज ! कोधमें भरेहुए मदगत्त दायी एक दूसरेके सामने
आ दाँतोंसे मारनेलगे ॥ ५ ॥ घुड़सवार भी तुमुत्त युद्धमें बड़ाभारी
यश पानेकी इच्छासे घोड़ेसवारोंके शरीरोंको प्राण, शक्ति और
तोमर मारकर चीरनेलगे ॥ ६ ॥ हे महाशुभ राजन् ! सहस्रों
शस्त्रधारी पैदल पराक्रम करनेके लिये सावधान होकर दारुण

णाद्धि विजानीमः पञ्चालान् कुरुभिः सह ॥ ८ ॥ तेऽन्योऽन्यं
समरे योधाः शरशक्तिपरवधैः । प्रैषयन् परलोकाय विचरन्तो
ह्यभीतवत् ॥ ९ ॥ शरा दश दशो राजंस्तेषां युक्ताः सहस्रशः ।
न भ्राजन्ते यथातत्त्वं भास्करेऽस्तं गतेऽपि च ॥ १० ॥
तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेषु भारत । दुर्योधनो महाराज व्यव-
गाहत तद्भलम् १ सैन्धवस्य वधेनैव धृशं दुःखसमन्वितः । मर्षव्य-
मिति सञ्चिन्त्य प्राविशच्च द्विपद्भलम् २ नादयन् रथघोषेणकम्पय-
न्निवमेदिनीम् । अभ्यवर्त्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १३ ॥
स सन्निपातस्तुमुलस्तस्य तेषाञ्च भारत । अभवत् सर्वसैन्याना-
मभावकरणो महान् ॥ १४ ॥ यथा मध्यन्दिने सूर्यं प्रतपन्तं गभ-

एक दूसरेको पीड़ित करनेलगे ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें
योधा कुल और गोत्रोंके नाम सुना रहे थे, उसके सुनाई देनेसेही
पाञ्चाल राजे और राजाओंके साथ लड़ रहे हैं यह प्रतीत होता
था ॥ ८ ॥ योधा परस्परमें बाण शक्ति और तोमरका महार
कर एक दूसरेको यमलोकमें भेज रहे थे और निर्भय पुरुषकी
समान रणमें घूमते थे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! उनके छोड़े हुए सहस्रों
बाणोंसे दशों दिशाएँ भर गई थीं, इसकारण—सूर्यास्त होनेपर
जैसे कुछ दिखाई नहीं देता है तैसे—कुछ भी दिखाई नहीं देता
था ॥ १० ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! पाण्डवोंके योधा इसप्रकार
जूम रहे थे, कि—दुर्योधन उसकी सेनाको हिलोडनेलगा ॥ ११ ॥
उसको सैन्धवके वधसे बड़ा भारी दुःख हो रहा था अतः वह (एक
दिन) मरना ही है, यह विचार कर शत्रुसेनामें घुस गया (था) १२
तुम्हारा पुत्र रथकी भूतकारसे पृथिवीको भूतभूतनाता हुआ और
कँपाता हुआ पाण्डवोंकी सेनामें अर्प पड़ा ॥ १३ ॥ तुम्हारे
पुत्रका पाण्डवोंकी सेनाके साथ तुमुल युद्ध होनेलगा, इस समय
सब सेनाओंमें बड़ा भारी संहार हो रहा था ॥ १४ ॥ दुपहरियामें

स्तिभिः । तथा तव सुतं मध्ये प्रनपन्तं शराविधिः ॥ १५ ॥ न
 शोकुर्भ्रातरं युद्धे पाण्डवाः समुदीक्षितुम् । पलायनकृतोत्साहा
 निरुत्साहा द्विपञ्चजे ॥ १६ ॥ पर्यधावन्त पञ्चाला वध्यमाना
 महात्मना । रुक्मपुंस्त्रैः मसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
 अर्घ्यमानाः शरैस्तूर्णैः न्यपतन् पाण्डुसैनिकाः । न तादृशं रणे
 कर्म कृतधन्तस्तु तावकाः ॥ १८ ॥ यादृशं कृतवान् राजा पुत्र-
 स्तव विशम्पते । पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे १९
 नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्पुष्कलपङ्कजा । क्षाणतोषानिलाकम्भिर्वा
 दतत्विडिष पद्मिनी ॥ २० ॥ वभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य
 तेजसा । पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत ॥ २१ ॥ भीम-
 सेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन् । स भीमसेनं दशभिर्मार्त्रीपुत्रां

किरणोंसे तपातेहुए सूर्यकी समान, बाणोंकी ज्वालाओंसे नाप
 देतेहुए अपने भाई दुर्योधनको, पाण्डव न देखसके, वे शत्रुओंको
 जीतनेका उत्साह छोड़ भागना चाहनेलगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ तब
 तुम्हारा धनुषधारी पुत्र महात्मा दुर्योधन सुवर्णकी पूँछवाले और
 तीक्ष्ण फलकेवाले बाण पाञ्चालोंके मार्गनेलगा, इससे वे पाञ्चाल
 भी डरसे चारों ओर भागनेलगे और दुर्योधनके शरणोंके प्रहारसे
 पीड़ा पाकर पाण्डवोंके सैनिकरणमें टपाटप गिरनेलगे, हे राजन् !
 तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने जैसा कर्म किया, ऐसा कर्म किसी भी
 योधाने नहीं किया था, हाथी जैसे चारों ओर खिलेहुए कमलोंसे
 शोभायमान दीखती हुई पुष्करिणीको मथ डाले और पवन तथा
 सूर्यके पराभवसे जैसे पुष्करिणी (बावड़ी) शुष्क होकर निम्न
 हो जाय, तैसे ही पाण्डवोंकी सेना भी तुम्हारे पुत्रके नेत्रसे निम्न
 होगई, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रको पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने
 देखकर ॥ १७-२१ ॥ भीमसेनको आगे करके पाञ्चाल राजे
 उसके ऊपर दूटपड़े, इस मारकाटमें तुम्हारे पुत्रने भीमसेनके दश

त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २२ ॥ विराटद्रुपदौ पद्भिः शतेन च शिखण्डि-
नम् । धृष्टद्युम्नञ्च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥ २३ ॥ कैकेयाश्चैव
चेदीश्व बहुभिर्निशितैः शरैः । सात्वतं पञ्चभिर्विध्वा द्रौपदेयां-
स्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २४ ॥ घटोत्कचञ्च सपरे विध्वा सिंह इवान-
दत् । शतशश्चापरान् योश्चान् स्रष्टिषांश्च महारथो ॥ २५ ॥ शरैर-
वचकर्त्तृभिः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ॥ सा तेन पाण्डवी सेना बध्यमाना
शिलीमुखैः ॥ २६ ॥ तत्र पुत्रेण संग्रामे विदुद्राव नराभिष । तं
तपन्तमिवादित्यं कुरुराजं महाहवे ॥ २७ ॥ नाशकन् वीक्षितुं
राजन् पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः । ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राज-
सत्तम ॥ २८ ॥ अभ्यधावत् कुरुपतिं तत्र पुत्रं जिघांसया । तावुभौ
युधि कौरव्यौ समीपतुररिन्दमौ ॥ २९ ॥ स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ

माद्रीके पुत्रोंके तीन, विराट तथा द्रुपदके छः, शिखण्डोंके सौ,
धृष्टद्युम्नके सत्तर, धर्मपुत्रके सप्त और कैकेय तथा चेदिराजाओंके
बहुतसे बाण मारे, और फिर पाँच बाणोंसे सात्वतिको बंध
डाला और द्रुपदके पुत्रोंके भी तीन चार बाण मारे ॥ २२-२४ ॥
पीछेसे बाणोंका प्रहार कर घटोत्कचको बंध सिंहकी समान
बड़ी भारी गर्जना की, वह इतने पर भी रुका नहीं, परन्तु
कुपित हुआ काल जैसे शत्रुसेनाका संशार कर डालता
है, तैसे ही कोपमें भरे हुए दुर्योधनने महासंग्राममें
दूसरे सहस्रों हाथीसवार तथा घुड़सवारोंको तीक्ष्ण बाण मारकर
काटडाला ॥ २५ ॥ २६ ॥ जब दुर्योधन इसप्रकार युद्धमें बाणों
के प्रहारोंसे पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगा, तब पाण्डवों
की सेना रणमेंसे भागने लगी, हे महाराज ! इस संग्रामके समय
पाण्डवोंके योधा सूर्यकी समान तप्तहुए तुम्हारे पुत्रभी और
देख भी नहीं सकते थे ऐसी दशा देखकर राजा युधिष्ठिरको
क्रोध आगया और वे तुम्हारे पुत्रको मारनेके लिये उसकी ओर

दुर्योधनयुधिष्ठिरौ । ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः सन्ननयवामः ॥ ३० ॥
 विव्याध दशभिस्त्वर्णं ध्वजं चिच्छेद चेष्टया । इन्द्रोत्तं विभिद्यैव
 ललाटे जघिनवान् नृप ॥ ३१ ॥ सारथिं दधितं राज्ञः पाण्डवस्य
 महात्मनः । धनुश्च पुनरन्येन चक्रतास्य महारथः ॥ ३२ ॥ चतु-
 र्भिश्चतुरश्रैश्च बाणैर्विव्याध वाजिनः । ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेष-
 पादिव कार्मुकम् ॥ ३३ ॥ अन्यदादाय वेगेन शौर्यं प्रत्यदारयत् ।
 तस्य तान्निघ्नतः शत्रून् रुक्मपृष्ठं महद्भुजः ॥ ३४ ॥ भल्लाभ्यां
 पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद भारत । विव्याध चैनं दशभिः
 सम्यगस्तौ शितैः शरैः ॥ ३५ ॥ गर्भं भित्वा तु ते सर्वे संलग्नाः
 क्षितिमाविशन् । ततः परिहृता योधाः परिचत्रुर्गुधिष्ठिरम् ॥ ३६ ॥

वदे, युद्धभूमिमें पराक्रमी कुस्वंशी अरिदमन दुर्योधन तथा युधि-
 ष्ठिर अपना २ स्वार्थ साधनेके लिये लड़नेलगे, दुर्योधनने नभी
 हुई गाँठवाले दश बाण मारकर युधिष्ठिरके भाथेको भेद डाला
 और एक बाण मारकर उनकी ध्वजाको काटकर तीन बाण
 इन्द्रसेनके मस्तकमें मारे ॥ २७-३१ ॥ तदनन्तर महारथी दुर्यो-
 धनने, महात्मा पाण्डुके पुत्र धर्मराजके प्रिय सारथीके एक बाण
 मारा और एक बाण मारकर उनके धनुषको काटडाला ॥ ३२ ॥
 और चार बाण मारकर उनके चारों ओरोंको घायल करदिया
 इससे राजा युधिष्ठिरको बड़ा क्रोध चढ़ा, तब उन्होंने पलक
 मारने मात्रमें दूसरा धनुष ले ॥ ३३ ॥ बड़े वेगसे आगे बढ़ने
 हुए दुर्योधनको अटकाया और भल्ल नामक दो बाण मारकर
 शत्रुओंका संहार करनेवाले दुर्योधनके मुखर्णकी पीठवाले धनुष
 के तीन टुकड़े करहाले और पीछेसे तेजकिये हुए दश बाण
 उसके मारे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वे सब बाण दुर्योधनके मर्मस्थानों
 को फोड़कर पृथ्वीमें घुस गए, तदनन्तर हवापूरका नाश करनेके
 लिये देवताओंने जैसे इन्द्रको घेरलिया था, तैसे ही सब यो-

पुत्रहत्यै यथा देवाः परिघ्नन्तुः पुरन्दरम् । ततो युधिष्ठिरो राजा तत्र
पुत्रस्य मारिष । शरं च सूर्यरश्म्याभमत्पुग्रपनिवारणम् ॥ ३७ ॥ हा
हतोऽसीति राजानमुक्त्वा मुञ्चन् युधिष्ठिरः । स तेनाकर्णमुक्तेन विद्धो
बाणेन कौरवः ॥ ३८ ॥ निपसाद रथोपस्थे भृशं समूढचेतनः ।
ततः पाञ्चालसैन्यानां भृशमासीद्व्रवो महान् । हतो राजेति राजेन्द्र
तत्र शब्दोऽभवन्महान् ॥ ३९ ॥ बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र
भारत ॥ ४० ॥ अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे । हृष्टो दुर्यो-
धनश्चापि दृढमादाय कार्मुकम् ॥ ४१ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति राजानं द्रुयन्
पाण्डवमभ्ययात् । प्रत्युद्ययुश्च त्वरिताः पाञ्चाला जयगृद्धिनः ४२
तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् कुरुसत्तमम् । चण्डवातोदधुतान्मे-

युधिष्ठिरके चारों ओर खड़े होगए, इससमय राजा युधिष्ठिरने
“अभी तुम्हे मारता हूँ” यह कहकर धनुषको घान तक खेंचा
और सूर्यकी किरणकी समान चमकता हुआ, महा उग्र पीछेको
न फिरनेवाला बाण तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके मारकर उसको वींघ
ढाला ॥ ३६-३८ ॥ उस बाणकी चोटसे तुम्हागा पुत्र अचेत
हो रथकी बैठक पर बैठगया, इस समय हे राजेन्द्र ! पाञ्चाल-
राजे प्रसन्न हो चारों ओर कोलाहल करनेलगे कि-“ राजा
मारा गया, राजा मारा गया” उस समय बाणोंकी उग्र ध्वनिएँ
और कोलाहल ही सुनाई पड़ता था ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसमकार
कोलाहल मचनेपर द्रोण तहाँ शीघ्रतासे आगए, वनके दीखते ही
दुर्योधनने भी स्वस्थ होकर दूसरा दृढ़ धनुष हाथमें लिया ॥ ४१ ॥
और “खड़ा रह ! खड़ा रह !!” कहकर पाण्डुपुत्र धर्मराजके
पीछे पड़ा, इतनेमें ही विजयाभिलाषी पाञ्चाल राजे झपट कर
दुर्योधनके पास पहुँचगए ॥ ४२ ॥ सूर्य बड़ेभारी पर्वत परसे उदय
होकर सन्मुख आते हुए बादलोंका नाश करनेके लिये जैसे
आमने जाता है, तैसे ही कुरुश्रेष्ठ राजा दुर्योधनकी रक्षा करनेके

यान् निघ्नत्रश्मिमुचो यथा ॥ ४३ ॥ ततो राजन्महानासीत्
संग्रामो भूस्वर्द्धनः । तावकानां परेषाञ्च समेतानां युयुत्सया ४४
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्यो-
धनपराभवे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । यत्तदा प्रविशत् पाण्डूनाचार्यः कृपितो दत्तो ।
उक्त्वा दुर्योधनं मन्दं मम शास्त्रातिगं सुनम् ॥ १ ॥ प्रविश्य विच-
रन्तञ्च रथे शूरमवस्थितम् । कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः सम-
वारयन् ॥ २ ॥ केऽरक्षन् दक्षिणञ्चक्रमाचार्यस्य महाहवे । के
चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शस्त्रवान् बहून् ॥ ३ ॥ के चास्य पृष्ठतोऽ-
न्वासन् वीरा वीरस्य योधिनः । के पुरस्तादवर्त्तन्त रथिनस्तस्य
शश्ववः ॥ ४ ॥ मन्ये तानस्पृशञ्छीतमतिवेलमनार्त्तवम् । मन्ये ते

लिये द्रोणाचार्य पाण्डवोंके सामने बड़े ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! युद्ध
करनेकी इच्छासे, एक स्थान पर एकत्रित हुए तुम्हारे योधाओं
और शत्रुके सैनिकोंमें उस ही समय महासंग्राम आरम्भ होगया,
इस मारकाटमें बहुतसे योधाओंका संहार होगया ॥ ४४ ॥ एकसी
तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५३ ॥ छ ॥ छ

धृतराष्ट्रने बूझा कि-हे सज्जय ! कोपमें भरेहुए द्रोणाचार्य
मेरी आज्ञाका उद्वलङ्घन करनेवाले मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे कितने
ही बचन कहकर बड़ेभारी धनुषको धारणकर पाण्डवोंकी सेना
में चारों ओर घूमनेलगे, तब पाण्डवोंने उनको कैसे रोका था १-२
महासंग्राममें आचार्यके दाहिने पहियेकी रक्षा कौन करता था और
बहुतसे शत्रुओंका संहारमें करने लगेहुए द्रोणके रथके चारों पहिये
की रक्षा कौन कर रहा था ॥ ३ ॥ और शूर द्रोणाचार्य जिस
समय रणमें युद्ध कर रहे थे, तब कौन २ वीर पुरुष उनके पीछे
की ओर खड़े होकर उनकी रक्षा कर रहे थे और कौन २ शत्रु
उन महारथी द्रोणके सामने खड़े होगए थे ? ॥ ४ ॥ मुझे मतीत

समवेपन्त गावो वै शिशिरे यथा ॥ ५ ॥ यत् प्राथिशन् महेष्वासः
 पञ्चालानपराजितः । नृत्यन् स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृताम्बरः व
 निर्दहन् सर्वसैन्यानि पञ्चालानां रथपथः । धूमक्रेतुरिवः क्रुद्धः
 कथं मृत्युमुपयिवान् ॥ ७ ॥ सञ्जय उवाच । सायान्दे सैन्यं हत्वा
 राज्ञा पार्थः समेत्य च । सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाभ्यधाव-
 ताम् ॥ ८ ॥ तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः ।
 पृथक् चमूभ्यां संसक्तौ द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ९ ॥ तथैव नकुलो
 धीमान् सहदेवश्च दुर्जयः । धृष्टद्युम्नः सहानीको विराटश्च सक्-
 कयः ॥ १० ॥ मत्स्याः शान्वाः ससेनाश्च द्रोणमेव ययुर्धुधि । द्रुप-
 दश्च तथा राज । पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ११ ॥ धृष्टद्युम्नपिता

होता है कि-द्रोणके सामने खड़े होनेमें तो बिना शिशिर ऋतु
 के भी उनको सरदी लगने लगी होगी और जादोंमें ठण्डसे
 काँपती हुई गौआँकी समान वे काँपने लगे होंगे ॥ ५ ॥ द्रोणाचार्य
 बड़े भारी धनुषको धारण करनेवाले, अजेय और सकल शस्त्र
 धारियोंमें श्रेष्ठ थे, रथमार्गों पर नृत्य करते थे, शत्रुसेनामें घुस
 जानेवाले थे और उन महारथीने क्रुपित हुए अग्नि की समान
 पाञ्चाल राजाओंकी सब सेनाओंको भस्म कर डाला था,
 ऐसे महारथी रथमें किस प्रकार मारे गए ॥ ६ ॥ ७ ॥
 सञ्जयने उत्तर दिया, कि-हे राजन् ! सायंकालमें सिंधुराजका
 नाश करनेके अनन्तर महाधनुषधारी अर्जुन और सात्यकि धर्म-
 राजसे मिलकर द्रोणके सामने लड़नेके लिए गए ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर
 और भीमसेन भी अलग-अलग सेनाओंको साथमें लेकर युद्धमें द्रोणके
 सामने पहुँच गए, बुद्धिमान् नकुल, दुर्जय सहदेव, सेनासहित
 धृष्टद्युम्न, केकय राजाओंसहित राजा विराट, मत्स्य तथा शान्व
 राजे भी सेनाओंको साथमें ले इस युद्धमें द्रोणके ऊपर चढ़ दौड़े
 तथा धृष्टद्युम्नके पिता द्रुपद भी द्रोणके ऊपर ही भपटे महाधनुष

राजन् द्रोणमेवाभ्यवर्त्तत । द्रौपदेया महेश्वासा राक्षसश्च घटो-
त्कचः ॥ १२ ॥ ससैन्यास्ते न्यवर्त्तन्त द्रोणमेव महायुनिम् । प्रभ-
द्रकाश्च पञ्चालाः पट्टसहस्राः महारिणः ॥ १३ ॥ द्रोणमेवाभ्यव-
र्त्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् । तथेतरे नरन्याघ्राः पाण्डवानां
महारथाः ॥ १४ ॥ सहिताः संन्यवर्त्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम् ।
तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु पुरुषर्षभ ॥ १५ ॥ यभूव रजनी
घोरा भीरूणां भयवर्द्धिनी । योधानामशिवा घोरा राजन्नन्तर-
गामिनी ॥ १६ ॥ कुञ्जरारवमनुष्याणां माणान्तकरणी
तदा । तस्यां रजन्यां घोरायां नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ॥ १७ ॥
न्यवेदयन्भयं घोरं सज्जालकत्रलैर्मुखैः । उल्लासचापघटयन्त
शंसन्तो विपुलं भयम् ॥ १८ ॥ विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्या-

धारी द्रुपदके पुत्र और राजस घटोत्कच भी अपनी सेनाको
साथमें ले महाकान्तिवान् द्रोणके ऊपर चढ़ाई करने लगे, तथा
छः सहस्र प्रभद्रक और पञ्चालराजे भी शिखण्डीको मुहानेमें
करके द्रोणके ही ऊपर चढ़े इस ही प्रकार पाण्डवोंके दूसरे महा-
रथी और चढ़े शूर भी इकट्ठे होकर ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोण पर ही
भूषण, दोनों पक्षके वीरोंके युद्ध करनेके लिये चढ़ाई करने पर
हे राजन् ! तुरन्त ही, डरपोकोंके डरको बढ़ानेवाली, योधाओंका
अकल्याण करनेवाली, भयङ्कर कालके समीप पहुँचानेवाली, हाथी,
घोड़े और मनुष्योंका संहार करनेवाली, भयङ्कर रात्रि आरम्भ
होगई, इस समय चारों ओर रोती हुई और मुखमेंसे अग्नि उगलती
हुई गीदड़ियोंके कर्कशस्वर कानोंमें पड़ने लगे, भयकी सूचना देने
वाले अतिदारुण उल्लू भी विशेषतः कौरवोंकी सेनामें चोलते हुए
दीखे, हे राजन् ! भेरी तथा मृदंगोंकी बड़ी भारी ध्वनिसे, हाथि-
योंकी चिंघाड़से, घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा उनके पैर रखनेके
आघातसे, सेनामें चारों ओर अतिदुःख कोलाहल होरहा था,

मतिदारुणाः । ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान् ॥ १६ ॥
 भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च । गजानां वृंहितैश्चापि
 तुरङ्गाणाञ्च हेषितैः ॥ २० ॥ खुरशब्दनिनादेश्च तुमुलं सर्वतोऽ-
 भवत् । ततः समभवद्युद्धं सन्ध्यायामतिदारुणम् ॥ २१ ॥ द्रोणस्य
 च महाराज सृञ्जयानाञ्च सर्वशः । तपसा ज्ञातुने लोके न माज्ञा-
 यत किञ्चन ॥ २२ ॥ सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन च ।
 नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २३ ॥ नापश्याम
 रजो भौमं कश्मलेनाभिसंवृताः । रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य
 पर्वते ॥ २४ ॥ घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पततामभूत् । मृदङ्गान-
 कनिर्हादैर्भर्भरैः पटहैस्तथा ॥ २५ ॥ चीत्कारैर्हेषिताकारैः सर्वमेवा-
 कुलं विभो । नैव स्वे न परे राजन् माज्ञायन्त तभोवृते ॥ २६ ॥ उन्मत्त-
 मिव तत्सर्वम्बभूव रजनीमुखे । भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन

रात्रिके आरम्भ (संध्या) के समय हे राजन् ! द्रोण तथा सृञ्जय
 राजाओंमें बड़ा भयङ्कर युद्ध होने लगा, इस समय सारे संसारमें
 अंधकार छा जानेके कारण कुछ भी दिखाई नहीं देता था ६-२२
 सेनाकी धमधमाहटसे चारों ओर धूलके गुबार उड़ रहे थे, उसके
 साथ मनुष्य, हाथी तथा घोड़ोंका रुधिर मिल गया ॥ २३ ॥ उस
 समय चित्तमें ग्लानि आनेसे हमसे वह धूल देखी न गई,
 रात्रिके समय पर्वत परके बाँसोंके वनमें अग्नि लंगनेसे बाँसके
 जलनेके चटचट शब्दकी समान एक दूसरे पर पड़तेहुए
 प्रकाशवान् शस्त्रोंका खटाखट शब्द हो रहा था, सम्पूर्ण
 रणक्षेत्र सेनाओंके मृदङ्ग, नगाड़े, निर्हाद, भर्भर, पटह आदिके
 शब्दोंसे और घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा फुँकारोंसे भर रहा था,
 हे राजन् ! उस समय अंधकारके कारण रणमें अपना और
 पराया पहिचाननेमें नहीं आता था ॥ २४-२६ ॥ इस कारण
 सब सेना पागलसी हो रही थी, इस रात्रियुद्धमें रुधिरके प्रवाहोंसे

प्रणाशितम् ॥२७॥ शतकौम्भश्च कवचैर्भूषणैश्च तपोऽभ्यगात् ।
 ततः सा भारती सेना मणिद्वैपविभूषिता ॥ २८ ॥ घोरियासीन्
 सनत्तवा रजन्यां भरतर्षभ । गोपायुवल्संगुष्टा शक्तिध्वजसमा-
 कुला ॥२९॥ वारणाभिरुवा घोरा च्चंद्रितोत्कृष्टनादिना । ततो-
 ऽभवन्मशङ्कदस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥३०॥ समावृण्वन्दिशः सर्वा
 महेन्द्राग्निःस्वनः । सा निशीथे महाराज सेनादृश्यत भारती ३१
 भङ्गदैः कुण्डलीनिष्कैः शस्त्रैश्चैवावभासिता । तत्र नागा रथाश्चैव
 जाम्बूनदनिभूषिताः ॥ ३२ ॥ निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव स-
 विधुतः । ऋष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टिशाः ॥ ३३ ॥ सम्प-
 तन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाग्रयः । दुर्योधनपुरोहितानां रथ-
 नागवलाहकाम् ॥ ३४ ॥ वादित्रघोषस्तनितां चापदिगुहध्वज-
 पृथ्वी परसे धूल उडना वन्द होगया और सुवर्णके कवच तथा
 गहनोंसे अंधेरा दूर होनेलगा, हे भरतवंशी राजन् ! उस रात्रिमें
 मणि तथा तथा सुवर्णसे सजी हुई सेना नक्षत्रोंवाले आकाशकी
 समान शोभा दे रही थी उसमें गौदह और बल बोलरहे थे
 और रणभूमि शक्ति और ध्वजाओंसे भरी हुई थी ॥२७॥२८॥
 और हाथियोंकी चित्राड और शूर्णोंकी दहाडोंसे गुंजाररही थी,
 इसप्रकार सेनामें मुननेवालोंके रुएँ खड़े करनेवाले घोर शब्द
 होनेसे सब दिशाएँ भरींसी जानी थीं, हे महाराज । इसप्रकार
 आधी रात्रिके समय बड़ी भारी गर्जना करती हुई, वाङ्मन्द, कुण्डल
 निष्क तथा शस्त्रोंसे दिपती हुई भारती सेना रणमें घूमती हुई
 दिखाई देती थी, उस सेनामें सुवर्णके कवच तथा आभूषणोंसे
 सजेहुए हाथी, रथ विजलीवाली घनघटाकी समान दीखते थे
 तथा एक दूसरेके ऊपर पड़ती हुई, ऋष्टि, शक्ति, गदा, बाण, मुसल प्रास
 तथा पट्टिश अग्नि की समान चमकतेहुए प्रतीत होते थे, दुर्योधन-
 रथ पुरवैयावाली, रथ तथा हाथीरूप मेघोंसे भरपूर, बाजोंकी

वृताम् । द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ॥ ३५ ॥
 शरधारास्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् । घोरां विस्मापनीमुग्रां
 जीवितच्छिदमस्रवाम् ॥ ३६ ॥ तां प्राविशन्नतिभयां सेनां युद्ध-
 चिकीर्षवः । तस्मिन्नात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिते ॥ ३७ ॥
 भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्द्धने । रात्रियुद्धे महाघोरे वर्त्त-
 माने सुदारुणे ॥ ३८ ॥ द्रोणमभ्यद्रवन्क्रुद्धाः सहिताः पाण्डुसञ्जयाः ।
 ये ये प्रमुखतो राजन्नावर्त्तन्त महारथाः ॥ ३९ ॥ तान् सर्वान्
 विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् । तानि नागसहस्राणि
 रथानामयुतानि च ॥ ४० ॥ पदातिहयसंघानां प्रयतान्यवृद्धानि
 च । द्रोणेनैकेन नाराचैर्निर्भिन्नानि निशामुखे ॥ ४१ ॥ छ ॥

ध्वनिसे गाजती हुई, धनुषरूप बिजलियोंसे छाईहुई, द्रोण तथा
 पाण्डवरूपी जल वरसातेहुए मेघवाली, तलवार-शक्ति तथा
 गदारूपी वज्रवाली, बाणरूपी जलधाराको वरसाती हुई, अस्त्र-
 रूपी पवनसे भरी, अतिशीतलता और उष्णतावाली, विस्मयजनक,
 उग्र, प्राणोंका नाश करनेवाली, जिसमें तैरना कठिन है ऐसी महा-
 भयङ्कर सेनामें विजयाभिलाषी महावीर पुरुष युद्ध करनेको घुसपड़े,
 तब वड़ेभारी कोलाहलसे गाजताहुआ डरपोकोंको डरानेवाला,
 शूरोंको हर्षित करनेवाला महाघोर तथा अतिदारुण रात्रियुद्ध
 होनेलगा, इस रात्रियुद्धमें क्रुपितहुए पाण्डव और सञ्जयोंने इकट्ठे
 होकर द्रोणाचार्य पर चढ़ाई की थी, उस (सेना) में जो जो
 महारथी सेनाके मुहाने पर खड़े थे, उन सबको अकेले द्रोणा-
 चार्यने रात्रिके आरम्भमें ही बाण मारकर रणमेंसे भगादिया था
 कितनोंहीको स्वर्गलोकमें भेजदिया था, सदस्रों हाथीसवारोंको
 काट डाला था, दश सहस्र रथियोंको दश लाख और एक अब्ज
 पैदलोंको तथा बहुतसी घुड़सवारोंकी कम्पनियोंको काटडाला
 था ॥ ३९-४१ ॥ एकसौ चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन् प्रविष्टे दुर्द्धर्षे सृञ्जयानमिनोजसि ।
 अपृथग्माणे संस्थे का वोऽभूद्वै मतिस्तदा ॥ १ ॥ दुर्योधनं तथा
 पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम । यत्प्रानिशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्य-
 पद्यत ॥ २ ॥ निहते सन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव ह । यदाभ्य-
 गान्महातेजाः पञ्चालानपराजितः ॥ ३ ॥ किमपन्यत दुर्द्धर्षे प्रविष्टे
 शत्रुतापने । दुर्योधनस्तु किं कृत्यं मात्तकालमपन्यत ॥ ४ ॥ के-
 च तं वरदं वीरमप्युर्द्विजसत्तमम् । के चास्य पृष्ठतोऽगच्छन्वीराः
 शूरस्य युध्यतः ॥ ५ ॥ के पुरस्तादयुध्यन्त निघ्नन्तः शान्नवानरणे ।
 मन्येऽहं पाण्डवान् सर्वान् भारद्वाजशराद्वितान् ॥ ६ ॥ शिशिरे
 कम्पमाना वै कृशा गाव इव प्रभो । प्रविरय स महेश्वासः पञ्चा-

धृतराष्ट्रने वृक्ता कि-हे संजय ! अपारपराक्रमी, कोधी, अप-
 राधको न सहनेवाले, असह्य पराक्रमी द्रोणाचार्य जब सृञ्जयों
 के ऊपर टूटपड़े तब तुम्हारे मनमें क्या विचार उठा था ? १ मेरी
 आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले मेरे पुत्र दुर्योधनको उसके दोष दिखा
 कर, जब अगाधपराक्रमी द्रोण पाण्डवोंकी सेनामें घुसगए, तब
 अर्जुनने क्या किया था ? २ शूरवीर भूरिश्रवा तथा सिन्धुराजकी
 मृत्युके पीछे, महातेजस्वी, असह्य पराक्रमी, शत्रुको तपानेवाले,
 अपराजित द्रोणाचार्य जब पाञ्चाल राजाओंकी सेनामें घुसे तब
 दुर्योधनने कौनसा कार्य करना यथोचित समझा था ॥ ३ ॥ ४ ॥
 कौन रणेश, वरदान देनेवाले तथा ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ शूर द्रोणाचार्य
 के पीछे (उनकी सहायता करनेके लिये) गए थे, और कौन
 वीर पुरुष संग्राम करनेहुए द्रोणके पीछे खड़े थे ? ५ ॥ शत्रुओं
 का संहार करनेवाले कौन २ वीर पुरुष रणके मुहानेपर खड़े
 थे, हे समर्थ सृञ्जय ! मेरा विचार है कि-जाड़ेमें दुर्बल गौ जंमे
 ठण्डसे काँपती हैं, तैसे ही सब पाण्डव भी द्रोणके वालोंके महार
 से काँपते होंगे, तब भी महाधनुषधारी, शत्रुओं की हित करने

लानरिमर्दनः । कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवाम् ॥७॥
 सर्वेषु योधेषु च सङ्गतेषु राज्ञी समेतेषु महारथेषु । संलोट्यमानेषु
 पृथग्विधेषु के वस्तुदानीं मतिपन्त आसन् ॥ ८ ॥ हताश्चैव विव-
 क्ताश्च पराभूताश्च संसदि । रथिनो विरथाश्चैव कृतान् युद्धेषु
 मामकान् ॥ ९ ॥ तेषां संलोट्यमानानां पाण्डवैर्हतचेतसाम् ।
 अन्धे तमसि गगनानामभयत् का मतिस्तदा ॥ १० ॥ प्रहृष्टाश्चा-
 षुदग्राश्च संतुष्टाश्चैव पाण्डवान् । शंससीह प्रहृष्टाश्च विप्रनष्टा-
 श्चैव मामकान् ॥ ११ ॥ कथमेपां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम् ।
 प्रकाशमभवद्रात्रौ कथं कुरुषु सञ्जय ॥ १२ ॥ सञ्जय उवाच ।
 रात्रियुद्धे तदा राजन् वर्त्तमाने सुदारुणे । द्रोणमभ्यद्रवन् सर्वे

वाले और पुरुषोंमें व्याघ्रसमान द्रोणाचार्य रणमें कैसे मारे गए ?
 जब रात्रिमें सब क्षत्रिय इकट्ठे होगए और भिन्न २ सेनाएँ एक
 दूसरीके साथ लड़ने लगीं, उस समय तुम्हारी सेनाके कौन २
 योधा विचारमें पड़ गये थे ॥ ८ ॥ तू कहता है कि—हमारे
 योधा युद्धमें मारे गए और घायल होगए थे, हार गए थे और
 रथी रथरहित हो गए थे, उस समय मैं तुम्हसे नूझता हूँ
 कि—पाण्डवोंके पीटने पर अचेत हुए और घबराहटमें पड़े हुए
 मेरे योधा जब बड़े भारी दुःखमें डूब गए, तब उनके मनमें कैसे
 विचार आए थे ॥ ९ ॥ १० ॥ तूने अभी मुझसे कहा है कि—
 पाण्डव प्रसन्न अति उदार मनवाले और हर्षित हो रहे थे और
 मेरे पुत्र अप्रसन्न (खिन्न) हो रहे थे और रणमेंसे भाग गए ११
 फिर हे संजय ! रणमें सामने आ लड़नेवाले पाण्डवोंने रात्रिमें
 कौरवोंके सामने किसप्रकार प्रसिद्ध युद्ध किया था यह मुझे
 सुना ॥ १२ ॥ संजयने उत्तर दिया कि—हे राजन् ! दोनों सेनाओं
 में महादारुण रात्रियुद्ध चल रहा था कि—सब पाण्डव सोमक
 राजाओंकी साथमें ले द्रोण की ओर बढ़े ॥ १३ ॥ और उनके

पाण्डवाः सह सोमकैः ॥१३॥ ततो द्रोणः कंकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य
चात्मजान् । सम्प्रेषयत् प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥१४॥ तस्य
प्रमुखतो राजन्येऽवर्तन्त महारथाः । तान् सर्वान् प्रेषयामास पितृ-
लोकं स भारत ॥१५॥ प्रमथ्यन्तं तदा वीरं भानुद्वानं महारथम् ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिवी राजा प्रतापवान् ॥ १६ ॥ तमापनन्तं
सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम् । विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपार-
शवैः शितैः ॥१७॥ तं शिविः प्रतिविव्याध त्रिशद्भिः कृद्गुणैः ।
सारथिञ्चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥१८॥ तस्य द्रोणो
हयान् हत्वा सारथिञ्च महात्मनः । अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः
कायादपोहरत् ॥ १९ ॥ ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽ-

साथ युद्ध करने लगे, द्रोणाचार्यने सप्त और वेगवाले बाण मार
कर कंकय राजाओंको तथा धृष्टद्युम्नके सब पुत्रोंको यमलोकमें
भेज दिया और हे भरतवंशी राजन् । और जो महारथी उनके
सामने खड़े थे उन सर्वोंको भी बाणोंके प्रहारसे गमसदनमें
पहुँचा दिया ॥१४—१५॥ इस प्रकार महारथी द्रोणाचार्यको
शत्रुओंका नाश करते देख कर प्रतापो राजा शिवि कोपमें भर
कर उनसे लड़नेको आया ॥१६॥ द्रोणने सामने चढ़ कर आते
हुए पाण्डवोंकी सेनाके महारथी राजा शिवि को देख उसको
दोस लोहे के फलकों वाले तेज किये हुए दश बाण मार कर
घायल कर दिया ॥१७॥ तब शिविने उनको तेज किये हुए,
कंकपत्नीके परोंकी पूछवाले तीस बाण मारकर घायल कर डाला
और मुसकरा कर भल्ल नामक बाण मार द्रोणके सारथिको रथ
से नीचे गिरा दिया ॥१८॥ तब द्रोणाचार्यने महात्मा शिविके
घोड़ोंको तथा सारथीको मार डाला और उसके धड़ परसे उसके
टोप वाले मस्तकको काट कर नीचे गिरा दिया ॥१९॥ इनमें
ही दुर्योधनने द्रोणाचार्यके पास द्वारा सारथी भेजा, वह आकर

दिशत् । स तेन संगृहीतारवः पुनरभ्यद्रवद्रिपून् ॥ २० ॥ कलिङ्गा-
नामनीकेन कलिङ्गस्य सुतो रणे । पूर्वं पितृवधात् क्रुद्धो भीमसेन-
मुपाद्रवत् ॥ २१ ॥ स भीमं पञ्चभि बध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विशोकं त्रिभिरानर्च्छद् ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ २२ ॥ कलिङ्गानान्तु
तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः । रथाद्रथमभिद्रुत्य मुष्टिना निजघान
ह ॥ २३ ॥ तस्य मुष्टिहतस्याजौ पाण्डवेन बलीयसा । सर्वाण्य-
स्थीनि सहसा प्रापतन् वै पृथक् पृथक् ॥ २४ ॥ तं कर्णो भ्रात-
रश्वास्य नामृण्यन्तः परन्तप । ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविपो-
पमैः ॥ २५ ॥ ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः । ध्रुव-
ञ्चास्पन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ॥ २६ ॥ स तथा पाण्डु-

द्रोणके घोड़े हाँकने लगा, तब द्रोण फिर शत्रुओंकी ओर
धँसे ॥ २० ॥ कलिंग देशका राजा अपने पिताके मरणके कारण
पहिलेहीसे क्रोधमें भर रहा था, वह अपने कलिंगोंके साथ इस
युद्धमें भीमसेनकी ओर बढ़ा ! ॥ २१ ॥ उसने पहिले सपाटेमें पाँच
तथा पीछेसे सात बाण भीमसेनके मारे, परन्तु भीम जरा भी
खिन्न नहीं हुआ, फिर एक और तीन बाण भीमके मारकर
उस की ध्वजाको काट डाला ॥ २२ ॥ तुरत ही भीमसेन
क्रोधमें भरगया और अपने रथ परसे क्रुद्धकर कलिंगराजके रथ
पर चढ़गया और कलिंगके योधाओंमें श्रेष्ठ शूरवीर कलिंगराजके
मुखके मारनेलगा ॥ २३ ॥ इस युद्धमें बलवान् भीमसेनके मुक्कीकी
मारसे कलिंगराजकी हड्डियें अलग-अलग पड़ीं ॥ २४ ॥ परन्तु हे परन्तप !
यह बात उसके भाई तथा कर्णसे न देखी गई, वे शीघ्र ही भीमके
ऊपर जहरीले सपोंकी समान तीक्ष्ण बाण बरसानेलगे ॥ २५ ॥
भीमसेन शत्रुके रथके ऊपरसे नीचे उतर (कलिंगराजके भाई)
ध्रुवके रथपर चढ़गया और तलाऊपर बाण छोड़तेहुए ध्रुवको
मुखके मारकर यमसदनमें भेजदिया और पीछे उसके रथ परसे

पुत्रेण बलिनाभिहतोऽपतत् । तं निहत्य महाराज भीमसेनो पश-
 वलः ॥ २७ ॥ जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवानदन् । जयरा-
 मथाक्षिप्य नदन् सव्येन पाणिना ॥ २८ ॥ तलेन नाशयामास
 कर्णस्यैवाग्रतः स्थितः । कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवा-
 सृजत् ॥ २९ ॥ ततस्तामेव जग्राह प्रहसन् पाण्डुनन्दनः । कर्णा-
 यैव च दुर्धर्पश्चित्तेपार्जो वृकोदरः ॥ ३० ॥ तामापतन्तीञ्चिच्छेद
 शकुनिस्तैलपायिना । एतत् कृत्वा महन् कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः ३१
 पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम् । तमायान्तं जियासन्तं
 भीमं क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३२ ॥ न्यवारयन्महाबाहुन्तव पुत्रा
 विशाम्पते । महता शरवर्षेण छादयन्तो महारथाः ॥ ३३ ॥ दुर्म-
 दस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे । सारथिञ्च हयांस्रचैव शर-
 निन्ध्रे यमक्षयम् ॥ ३४ ॥ दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्यावचक्रमे ।

उत्तर पड़ा, हे महाराज ! इसप्रकार उसका नाश करनेके पीछे
 महाबली भीमसेन जयरातके रथके ऊपर चढ़गया और बारंबार
 सिंहकी समान गर्जना करके जयरातको दाहिने हाथका एक रेंपटा
 देकर मारडाला फिर वह तहाँसे क्रुद्धकर कर्णके रथके पास पहुँच
 गया, तब कर्णने भीमके सोनेकी शक्ति मारी ॥ २९-३० ॥ परन्तु
 पाण्डुपुत्र भीमने हँसते २ उसको हाथमें पकड़ लिया फिर असम
 पराक्रमी भीमने वह शक्ति कर्णके ही मारी तब ॥ ३० ॥ कर्णके
 ऊपर आती हुई शक्तिके शकुनिने, तेल पिलायाहुआ बाण मार
 कर, टुकड़े करडाले, अद्भुतपराक्रमी भीम रणमें महापराक्रम करके
 अपने रथमें चढ़ बैठा फिर तुम्हारी सेना पर झपटा क्रोधमें भरे
 यमराजकी समान मारतेहुए भीमको आते देख ॥ ३१-३२ ॥
 हे राजन् ! तुम्हारे महारथी पुत्र बाण मारकर उस महाबाहु
 भीमको आगे बढ़नेसे रोकनेलगे ॥ ३३ ॥ तब भीमने हँसनेका सा
 हँसकर बाण मारकर दुर्मदके सारथि तथा घोड़ोंको यमसदनमें भेज

तावेकरथमारुढौ आतरौ परतापनौ ॥ ३५ ॥ संग्रामशिरसो मध्ये
भीमं द्वावप्यधावताम् । ययाम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ३६
ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवात्मजौ । रथमेकं समारुह्य भीमं
वाणैरविध्यताम् ॥ ३७ ॥ ततः कर्णश्च भिषतो द्रौणोर्दुर्योधनस्य
च । कृपस्य सोमदत्तस्य बाल्हीकस्य च पाण्डवः ॥ ३८ ॥ दुर्मदस्य
च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम् । पादमहारेण धरां प्रावेशयद्-
रिन्दमः ॥ ३९ ॥ ततः सुतौ ते बलिनी शूरी दुष्कर्णदुर्मदौ मृष्टि-
नाहत्य संक्रुद्धौ ममईचननर्द च ॥ ४० ॥ ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा
भीमं नृपावुचन् । रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु युध्यति ॥ ४१ ॥ एव-
मुक्त्वा पलायन्ते सर्वे भारतपार्थिवाः विसंज्ञा वाहयन् वाहान्न च द्वौ

दिया, तुरन्त ही दुर्मद रथ परसे कूदकर अपने भाई दुष्कर्णके
रथ पर चढ़गया, फिर एक रथमें बैठे हुए वे दोनों भाई-तारका-
सुरपर जैसे वरुण और मित्र भूषण थे, तैसे-रणभूमिके शिरपर
खड़े हुए भीमकी ओर भूषण ॥ ३४-३६ ॥ उसके पास पहुँच
एक रथमें बैठे हुए तुम्हारे पुत्र दुर्मद और दुष्कर्ण भीमके वाण
भौंकने लगे ॥ ३७ ॥ तब अरिदमन भीमने क्रोधमें भर, कर्ण,
अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त और बाल्हीकके सामने
लात मारकर वीर दुर्मद और दुर्मर्षणके रथको पृथ्वीमें घुसेड़
दिया ॥ ३८-३९ ॥ फिर क्रोधमें भर तुम्हारे दोनों बलशाली
पुत्र दुष्कर्ण और दुर्मदको घूँसोंसे मारकर मार डाला और फिर
बड़ी भारी गर्जना की, इस सब वृत्तान्तको देख तुम्हारी सेनामें
हाहाकार मचगया, भीमको देखकर (तहाँ खड़े हुए सब) राजे
कहने लगे, कि-अरे ! (यह भीम नहीं है परन्तु) भीमका रूप
धारणकर भगवान् रुद्र धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे लड़ रहे हैं ॥ ४०-४१ ॥
हे भरतवंशी राजन् ! इस प्रकार कहते-र सब राजे घबड़ाकर रणमेंसे
वाहनोंको भगाने लगे, उस समय तहाँ इतनी उलझीड़ होगई थी

सह धावतः ॥ ४२ ॥ ततो बले भृशलुलिते निशामुखे वृषजितो
 नृपट्टपभैरवकोदरः । महाबलः कमलविबुद्धलोचनो युधिष्ठिरं वृषति-
 मपूजयद्गुह्यं ॥ ४३ ॥ ततो ययौ द्रुपदविगाढकेकया युधिष्ठिरश्चापि
 परां मुदं ययुः । वृकोदरं भृशमनुपूजयंश्चे ते यथान्तके प्रतिनि-
 हते हरं सुराः ॥ ४४ ॥ ततः सुतास्ते वरुणात्मजोपमा रूपांश्चिताः
 सह गुरुणा महात्मना । वृकोदरं सरथपदातिवृज्जरा युयुत्सवो
 भृशमभिपर्यवारयन् ॥ ४५ ॥ ततोऽभवत्सिमिरधनैरिवावृत्तं महाभयं
 भयदमतीव दारुणम् । निशामुखे वृषवलगृध्रभोदनं महात्मनां
 नृपवरं युद्धमदभुतम् ॥ ४६ ॥ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५५

कि-दो जने भी साथ २ नहीं दौडते ॥ ४२ ॥ भीमने रात्रियुद्धमें
 शत्रुसेनाका अच्छी तरह संहार कर डाला, यह देखकर चढ़े २
 राजे उसकी प्रशंसा करनेलगे, तब जिसके नेत्र झिलगदे थे ऐसे
 महाबलवान् भीमसेनने राजा युधिष्ठिरकी भलीप्रकार सेवा वजार्ह
 (पूजाकी) थी ॥ ४३ ॥ तदनन्तर नकुल, सहदेव, द्रुपद, विराट्,
 केकय राजे और युधिष्ठिर अतिप्रसन्नहुए, और अन्धकासुरका
 नाश करने पर जैसे देवताओंने शंकरकी प्रशंसा की थी, नैसे
 ही कीरवोंका नाश करनेसे वे भीमसेनकी बड़ी प्रशंसा करने
 लगे ॥ ४४ ॥ तदनन्तर तुम्हारे पुत्र क्रोधमें भरगए और युद्ध करने
 की इच्छासे वे अपने महात्मा गुरुको साथ ले भीम पर भापटे
 और उन्होंने रथ, पैदल और हाथियोंसे भीमसेनको चारों ओरसे
 घेरलिया ॥ ४५ ॥ हे महाराज ? इस समय मेघवी समान गाढ़
 अन्धकारमे भरी हुई भयङ्कर रात्रि (के समय) का आरम्भ
 होने पर दोनों ओरके महात्माओंके बीचमें, महादारुण, भेडिये,
 गीध और कौओंको प्रसन्न करनेवाला और भीरुओंको भयभीत
 करनेवाला अद्भुत युद्ध चलनेलगा ॥ ४६ ॥ एक सौ पचपनवीं
 अध्याय समाप्त ॥ १५५ ॥

सञ्जय उवाच । प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा ।
 सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ क्षत्रधर्मः
 पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः । तं त्वं सात्वत सन्त्यज्य दस्युधर्मे
 रतः कथम् ॥ २ ॥ पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके ।
 क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद्वरेण ॥ ३ ॥ द्वावेव किल वृष्णीनां
 तत्र ख्यातौ महारथौ । प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वञ्चैव युधि सात्वतः
 कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन छिन्नबाहवे । नृशंसम्पतनीयञ्च तादृशं
 कृतवानसि ॥ ४ ॥ कर्मण्यतस्य दुर्वृत्तं फलं प्राप्नुहि संयुगे । अद्य
 छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा ॥ ५ ॥ शपे सात्वत
 पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च । अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीर-

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! सात्यकिने अनशन व्रत धारण
 कर बैठेहुए सोमदत्तके पुत्र (भूरिश्रवा) को मार डाला था, अतः
 वह (सात्यकिको देख) क्रोधमें भरकर कहनेलगा कि-॥ १ ॥
 हे सात्वत ! पहिले महात्माओंने और देवताओंने जो क्षत्रियका
 धर्म बताया है, उस धर्मका उल्लंघनकर तूने डॉंकुओंका सा काम
 कैसे करा ॥ २ ॥ हे सात्यकि ! क्षत्रियधर्मको पालनेवाला बुद्धिमान
 मनुष्य लडनेसे पराङ्मुखहुए, दीन बनेहुए और शत्रुओंको त्याग
 देनेवाले पुरुषको रणमें कभी मारेगा क्या ? ॥ ३ ॥ हे सात्यकि !
 युद्धके विषयमें तो वृष्णिवंशोत्पन्न दो ही महारथी प्रसिद्ध हैं, एक
 तो महाभुज प्रद्युम्न और दूसरा तू ॥ ४ ॥ अर्जुनने मेरे पुत्रका
 सीधा हाथ काट डाला तब वह अनशन व्रत धारण कर युद्धको
 छोड़ बैठा था, तब भी तुझ जैसे योधाने क्रूर और नरकमें डालने
 वाला कर्म कैसे किया अर्थात् उसको कैसे मार डाला ॥ ५ ॥
 अरे दुराचारी ! अब तू भी अपने कर्मके फलको भोग, अरे मूढ़ !
 आज मैं रणमें पराक्रम करके तेरे मस्तकको उड़ा दूँगा ॥ ६ ॥
 अरे सात्यकि ! मैं दो पुत्रोंकी, मुझे जो प्रिय है उसकी तथा अपने

मानिनम् ॥ ७ ॥ अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना समृताञ्जम् ।
न हन्यान्नरके घोरे पतेयं वृष्णिर्वासन ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वा तु
संकुटुः सोमदत्तो महाबलः । दध्मौ शङ्गं च नारेण सिंहनादं
ननाद च ॥ ९ ॥ ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो महाबलः । सात्य-
किर्भृशसंकुटुः सोमदत्तामघात्रवीत् ॥ १० ॥ कौरवेय न मे प्रासः
कथञ्चिदपि विद्यते । त्वया सार्द्धमधान्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन ११
यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि । तथापि न व्यया
काचित्त्वयि स्यान्मम कौरव ॥ १२ ॥ युद्धसारेण वाक्येन असतां
सम्पत्तेन च । नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया ॥ १३ ॥
यदि तेऽस्ति युष्टसाध मया सह नराधिप । निर्दयो निशितैर्वार्यैः

पुण्यकी सौगंध खाकर कहता हूँ कि-अरे ! वृष्णिवंशमें कलंक
रूप ! आजकी ही रात्रिमें, यदि पृथापुत्र तेरी रक्षा नहीं करेगा
तो मैं शूरताका दम भरनेवाले तुझको तेरे पुत्र और भाइयों-
सहित न मार डालूँ तो मैं घोर नरकमें पहुँचूँ ॥ ७-८ ॥ इसप्रकार
कह बड़े भारी कोपमें भरे हुए सोमदत्तने ऊँचे स्वरसे शङ्ग बजाया
और सिंहकी समान गर्जना की ॥ ९ ॥ उसकी गर्जनाको सुन
कमलके पत्रकी समान नेत्रवाला, सिंहकी समान कड़ी डाढ़वाला
और जिसके पास पहुँचा न जा सके ऐसे सात्यकिको बड़ा विकट
क्रोध चढ़ा, वह सोमदत्तसे बोला कि—॥ १० ॥ अरे कुरुवंशी
राजन् ! तेरे साथ अथवा दूसरों के साथ युद्ध करनेमें मुझे जरा
भी भय नहीं लगता है ॥ ११ ॥ तू यदि सब सेनासे भी रक्षित
होकर युद्ध करेगा, तो भी तू मुझे जग भी पीड़ा न दे सकेगा १२
तैसे ही तू युद्ध के सारभूत और दुर्जेनों के सिद्धान्तरूप दुर्वाक्य
मुझसे कहेगा तो भी क्षत्रियधर्मका पालन करने वाले मुझ न
डरा नहीं सकेगा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! यदि आज तेरी धरे साथ युद्ध
करनेकी इच्छा ही हो तो तू निर्दय होकर मेरे ऊपर तेज किये हुए

प्रहर प्रहरामि ते ॥ १४ ॥ हतो भूरिश्रवा राजंस्तव पुत्रो महा-
 रथः । शलश्चैव तथा वीरो भ्रातृव्यसनकर्षितः ॥ १५ ॥ त्वाञ्चा-
 प्यद्य वधिष्यामि सपुत्रं सह बान्धवम् । तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौर-
 वोऽसि महाबलः ॥ १६ ॥ यस्मिन् दानं दमः शौचमहिंसा हीर्ष्यतिः
 क्षमा । अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे ॥ १७ ॥ मृदङ्ग-
 केतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा । सकर्णसौबलः संख्ये विना-
 शमुपयास्यसि ॥ १८ ॥ शपेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्त्तेन चैव ह । यदि
 त्वां समुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ॥ १९ ॥ अपयास्यसि
 चेत्पक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि । एवमाभाष्य चान्योऽन्यं क्रोध-
 संरक्तलोचनौ ॥ २० ॥ प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्तुं पुरुषसत्तमी ।

बाण बरसा, तब मैं निर्दय हो तेरे ऊपर तीक्ष्ण बाण मारूँगा १४
 क्योंकि—तेरा वीर पुत्र महारथी भूरिश्रवा रणमें मारा गया है तथा
 शल और वृषसेन भी भाईके मरणसे खिन्न हो रणमें मरगए
 हैं ॥ १५ ॥ और मैं आज तुझको भी भाई तथा पुत्रोंसहित मार
 डालूँगा, यदि अब तू रणमें दृढ़तासे डटा रहेगा, तो मैं तुझे महा-
 रथी और कौरवोंमें श्रेष्ठ राजा मानूँगा ॥ १६ ॥ राजा युधिष्ठिरमें
 शम, दम, शौच, अहिंसा, लज्जा, धैर्य तथा क्षमा, इतनी बातें सदा
 रहती हैं ॥ १७ ॥ इन मृदङ्गके चिन्हवाली ध्वजासे शोभित राजा
 युधिष्ठिरके तेजसे तेरा पहिले ही नाश होचुका है, तो भी आज
 तू कर्ण तथा शकुनिके साथ प्रत्यक्षरूपसे रणमें मरणा पावेगा १८
 क्रोधमें भरा हुआ मैं अब तुझ जैसे पापीको पुत्रोंसहित न मार डालूँ तो
 मुझे कृष्णजी अर्जुनकी तथा इष्टापूर्व (यज्ञ, याग तथा वाग्वही, छुआ
 खुदवानेके पुण्यकर्म) की सौगंध है ॥ १९ ॥ मैं तुझसे इतनाही कहता
 हूँ कि—यदि तू रणको छोड़कर भाग जावेगा तो तू निःसंदेह मृत्युके
 मुखमेंसे छूट सकेगा” इस प्रकार आपसमें भाषण करनेके पीछे,
 क्रोधसे लाल रनेभोंवाले वे महारथी एक दूसरे पर बाण बरसाने लगे,

ततो रथसहस्रेण हयानामयुतेन च ॥ २१ ॥ दुर्योधनः सोमदत्तं
परिवार्य समन्ततः । शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रधृतां वरः २२
बुधर्षात्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः । श्यालस्तन मदावाह-
वज्रसंहननो युवा ॥ २३ ॥ साग्रं शतसहस्रन्तु हयानां तस्य धीमनः ।
सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात् पर्यरक्षत ॥ २४ ॥ रज्यमाणश्च
यलिभिश्छादमामास सात्यकिम् । तं छाद्यमानं विशित्वैर्दृष्ट्वा सन्नत-
पर्वभिः ॥ २५ ॥ धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात् क्रुद्धः मृग्य गच्छतीश्वरम् ।
चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः ॥ २६ ॥ आसीद्राजन
बलौघानामन्योऽन्यमभिनिघ्नताम् । विव्याध सोमदत्तश्च सात्वतं
नवभिः शरैः ॥ २७ ॥ सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत् क्रुष्टपृष्ठवम् ।
सोऽतिविह्वो बलवता समरे दृढघन्विना ॥ २८ ॥ रथोपस्थं सपा-

इस समय दुर्योधन सहस्र रथ तथा दश सहस्र हाथीसवारोंको ले
सोमदत्तको घेरकर उसकी रक्षा कर रहा था, सकल शस्त्रधारियोंमें
श्रेष्ठमहामुज, वज्रकी सनान दृढ़ शरीरवाला, तरुण अवस्थावाला
तुम्हारा साला शकुनि भी क्रुद्ध हो, पुत्र, पौत्र तथा इन्द्रकी
समान बलवान् भाइयोंको साथ ले लड़नेके लिये आया था, उस
बुद्धिमानके एक लाख घुड़सवार महाधनुषधारी सोमदत्तकी चारों
ओरसे रक्षा कर रहे थे ॥ २०-२४ ॥ बलवान् योधाओंसे रक्षित
सोमदत्तने, नमी हुई गाँठ वाले बाण मारकर सात्यकीको छा
दिया, यह देख धृष्टद्युम्न कोधमें भर बड़ी भारी सेनाको साथमें
ले उसके सामने लड़नेके लिये चढ़ आया, हे राजन् ! आँधीके
झपाटेसे समुद्र उथल पुथल हो जैसे शब्द करता है तैसे ही पर-
स्पर प्रहार करती हुई सेनाओंका शब्द हो रहा था; सोमदत्तने
सात्यकिको नौ बाण मारकर वीथ डाला ॥ २५-२७ ॥
तब सात्यकिने भी नौ बाण मारकर उस क्रुष्टवंशमें श्रेष्ठ
सोमदत्तको घायल कर डाला, बलवान् और दृढ़ धनुष वाले

साद्य मुणोह गतचेननः । तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्स्वरया-
 न्वितः ॥ २६ ॥ अपोवाह रणाद्भीवीरं सोमदत्तं महारथम् । तं
 विसर्शं समालक्ष्य युयुधानशराहितम् ॥ २७ ॥ अभ्यवधावत्ततो
 द्रोणो यदुवीरजिघांसया । तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ३१
 परिवन्नुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम् । ततः प्रवृत्ते युद्धं द्रोणस्य
 सह पाण्डवैः ॥ ३२ ॥ बलेरिव सुरैः पूर्वं त्रैलोक्यजयकांतया ।
 ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत् ॥ ३३ ॥ भारद्वाजो
 महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम् । सात्यकिर्दशभिर्बाणैर्विशस्या
 पार्षतं शरैः ॥ ३४ ॥ भीमसेनञ्च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा ।
 सहदेवं तथाष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३५ ॥ द्रौपदेयान्
 महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः । विराटं मत्स्यमष्टाभिर्दुपदं

सात्यकिके बाण ऐसी जोरसे लगे कि—सोमदत्त मूर्छित हो
 रथकी गद्दीपर गिरपड़ा; वीर और महारथी सोमदत्तको
 मूर्छित हुआ देखकर उसका सारथी उसको एकदम रणमें से
 बाहर ले गया; इस प्रकार सात्यकिके बाणोंके प्रहारसे सोमदत्त
 को दुःखित तथा मूर्छित हुआ देखकर यदुवंशमें वीर सात्यकि
 को मारनेके लिये द्रोणाचार्य चढ़ आये, द्रोणको चढ़कर आता
 देख युधिष्ठिर आदि योधा यदुवीरकी रक्षा करनेके लिये उसके
 आस पास घिरकर खड़े होगए और देवताओंने पहिले तीनों
 लोकोंका राज्य पानेकी इच्छासे जैसे बलिके साथ युद्ध किया
 था तैसे ही पाण्डव द्रोणसे लड़ने लगे, द्रोणाचार्यने बाणों की
 चौखार कर पाण्डवोंकी सेनाको ढकदिया ॥ २८-३३ ॥ फिर
 महातेजस्वी द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको बाणोंके प्रहारसे बाँध
 डाला, सात्यकिक दश बाण मारे, धृष्टद्युम्नके बीस बाण
 मारे ॥ ३४ ॥ और भीमसेनके नौ, नकुलके पाँच, सहदेवके आठ
 और शिखण्डीके सौ बाण मारे ॥ ३५ ॥ इसके पीछे बड़ी २

दशभिः शरैः ॥ ३६ ॥ युधामन्युं त्रिभिः पद्भिर्लक्ष्मीमसमाहवे ।
अन्यांश्च सैनिकान् विध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥ ते
वध्यमाना द्रोणेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः । प्राद्रवन् वै भयाद्राजन्
सार्त्तनादा दिशो दश ॥ ३८ ॥ फान्यमानन्तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा
द्रोणेन फाल्गुनः । किञ्चिदागतसरम्भो गुहं पार्थोऽभ्ययाद्
द्रुतम् ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा द्रोणस्तु धीमत्पुत्रमभिधावन्तमाहवे । सन्ध-
यर्चत तत्सैन्यं पुनर्योधिष्ठिरं नृप ॥ ४० ॥ ततो युद्धमभूद् भूयो
भारद्वाजस्य पाण्डवः । द्रोणस्तव सुतै राजन् सर्वतः परिवारितः ४१
व्यधत् पाण्डुसैन्यानि तूत्तराशिमिवानलः । तं ज्वलन्तमिवा-
दित्यं दीप्तानलसमश्रुतिम् ॥ ४२ ॥ राजन्ननिशमत्यन्तं दृष्ट्वा
द्रोणं शरार्चिचपम् । मण्डलीकृतधन्वानं तपन्तमिव भास्करम् ४३

धुजाओं वाले द्रोणने द्रौपदीके पुत्रोंके पाँच बाण मारे, चिराटके
आठ बाण मारे और द्रुपदके दश बाण मारे ॥ ३६ ॥ युधामन्युके
तीन बाण मारे और उत्तमौजाके छः बाणमारे तथा दूसरे योधा-
ओंको बाणोंका प्रहार कर घायल कर दिया, फिर वे युधिष्ठिर
के सामने धँसे ॥ ३७ ॥ और हे राजन् ! उनके योधाओंके
ऐसे तीव्र बाण मारे कि — वे भयंकर चीसे मारते हुए भयसे
दर्शो दिशाओंमेंको भागने लगे ॥ ३८ ॥ अपनी सेनाको इस
प्रकार भागते देख अर्जुनको कुछ क्रोध चढ़ा और तब वह गुरु
द्रोणाचार्यके सामने लड़नेके लिये आया ॥ ३९ ॥ द्रोणाचार्य
अपनी ओर अर्जुनको धँसता देख युधिष्ठिरकी सेनाको भी
खदेड़ने लगे ॥ ४० ॥ और फिर एक बार द्रोणाचार्य पाण्डवों
के सामने लड़ने लगे, हे राजन् ! अग्नि जैसे सूर्यके डेरको जला
कर भस्म कर डालती है, तैसे ही तुम्हारे पुत्रोंसे घिरे हुए द्रोणा-
चार्य पाण्डवोंकी सेनाका संसार कर रहे हैं, हे राजन् प्रका-
शित सूर्यकी समान तथा प्रज्वलित अग्निकी समान फाल्गुन वाले

दहन्तमहितान् सैन्ये नैनं कश्चिदवारयत् । यो यो हि ममुखे तस्य
तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः ॥४४॥ तस्य तस्य शिरश्छित्त्वा ययुर्द्रोण-
शराः क्षितिम् । एवं सा पाण्डवी सेना बध्यमाना महात्मना ४५
महुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः । सम्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा
द्रोणेन निशि भारत ॥४६॥ गोविंदमद्रक्षीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं
प्रति । ततो रजतगोक्षीरकुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥ ४७ ॥ चोदया-
मास दाशार्हो हयान् द्रोणरथं प्रति । भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं
द्रोणाय फाल्गुनम् ॥ ४८ ॥ स्वसारथिमुवाचेदं द्रोणानीकाय मा
वह । सोऽपि तस्य वचा श्रुत्वा विशोकोऽवाहयद्वयान् ॥ ४९ ॥
पृष्ठतः सत्यसन्धस्य जिष्णोर्भरतसन्तम । तौ दृष्ट्वा आतरीं यचौ

बाणरूपी ज्वालासे प्रकाशित धनुषको पाण्डवोंको रथसे घुमाने
वाले, और तपते हुए सूर्यकी समान शत्रुओंको बाल कर भरप
करते हुए द्रोणाचार्यको देख, सेनामेंका कोई भी योधा उनको
देख न कर सका, जो पुरुष द्रोणके सामने आ खड़ा होता था
उस योधाके मस्तकको काट द्रोणाचार्यके बाण पृथिवीमें घुंस
जाते थे, महात्मा द्रोण पाण्डवोंकी सेनाको मारने लगे, उस
समय अर्जुनके सामने ही पाण्डवोंकी सेना भयभीत हो फिर भागने
लगी, रथमें द्रोण पाण्डवोंकी सेनाको भगा रहे हैं यह देख
कर ॥ ४१-४६ ॥ अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा कि—तुम मेरे
रथको द्रोणके रथके समीप ले चलो” तुरन्त ही दार्शहिवंशोत्पन्न
श्रीकृष्णने, चाँदी, गोदुग्ध, कुन्द और चन्द्रपाकी समान स्वेत
कान्ति, वाले घोड़ोंको द्रोणके रथके सामनेको हाँका, भीमसेनने
भी अर्जुनको द्रोणके रथकी ओर जाते देख कर ॥४७-४८॥
अपने सारथी विशोकसे पुकार कर कहा कि—“अरे ! ओ
सारथि ! हमारे रथको द्रोणाचार्यके पास लेचल” भीमसेनके
इन वचनोंको सुन सारथि आनन्दमें भर गया और उसने हे भरत-

द्रोणानीकमभिद्रुनौ ॥ ५० ॥ पञ्चालाः सृजया मत्स्याक्षे-
दिकारूपकोशलः । अन्वगच्छन्महाराज केकयाय मद्राभ्याः ५१
ततो राजन्नभृद् घोरः संग्रामो लोमहर्षतः । ५२ ॥ वीमन्नुर्वृत्तिशं
पार्श्वसुचारञ्च दृकोदरः । मद्रभ्या रथवृन्दाभ्यां वलं नष्टु-
स्तथ ॥ तौ दृष्ट्वा पुन्यव्याघ्रौ भीमसेनश्चनञ्जयो ॥ ५३ ॥ वृष्टु-
म्नोऽभ्ययाद्राजन् सात्वतिकं महाबलः । चण्डशानाभिपन्नानां वृ-
धोनामिव स्वलः ॥ ५४ ॥ आसीद्राजन् वक्षोऽशनां नदान्योऽप-
भिघ्नताम् । सौमदत्तिवधात् क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्वतिपादवे ५५
द्रौणिरभ्यद्रवद्राजन्वधाय कृतगिरिवरः । तपोपतनं संप्रेक्ष्य भीमे-
यस्य रथं गति ॥ ५६ ॥ भीमसैनिः सुतं जुहुः प्रत्यभिपन्नवारयन् ।

सत्तम ! सत्यप्रतिष्ठा वाले अर्जुनके पीछे भीमके रथके पीछेकी
हाँका है महाराज । इस प्रकार सजे हुए दोनों भाइयों ने द्रोण
की सेनांशु और बढ़ते देखकर पाञ्चाल, सृजय मत्स्य, चेदि,
कारूप, केकय तथा कोशल देशके गवर्ग्य राजाओंकी सेनाएँ
भी उन दोनोंके पीछे चलनेलगी ॥ ४६-५१ ॥ हे राजन् !
इतनेमें ही दोनों पक्षोंमें रुएं खड़े करनेवाला महाभयङ्कर संग्राम
आरम्भ होगया, अर्जुनने दाये भाग पर और भीमने बायें भाग
पर घेरा डालकर, दो बड़ेभारी रथोंके सुखोंको ले लुन्कारी
सेनाको घेरलिया, हे राजन् ! दोनों पुन्यव्याघ्रोंको लडते देख
कर महाबली वृष्टुम्न तथा सात्वतिक चट्वाये, इस समय मचण्ड
वायुके आघातसे हिलारें खातेहुए सद्रुद्रका जैसा घृष्ट शब्द दोनों
है, तैसही परस्पर युद्ध करती हुई सेनाओंके मनुष्योंका कोलाहल
होनेलगा, भूरिश्रवाके वधसे अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध चढरहा था,
उसने रथमें सात्वतिको लडता देख, उसने नाश करनेका मनमें
विचार किया और उसको नष्ट करनेके लिये उस पर चढ़ आया,
अश्वत्थामाको शनिके पीछे सात्वतिक पर रूपमने देखा ५२-५६

काष्ठायिसं महाघोरमृत्तचर्म परिच्छदम् ॥ ५७ ॥ महान्तं रथ-
मास्थाय त्रिशन्नन्त्वान्तरान्तरम् । विक्षिप्तयन्त्रसन्नाहं महामेघौघ-
निस्वनम् ॥ ५८ ॥ युक्तं गजनिभैर्बाह्वैर्न हयैर्नापि वारणैः । विक्षिप्त-
पक्षचरणविवृताक्षेण कूजता ॥ ५९ ॥ ध्वजेनोत्थितदण्डेन शृङ्ग-
राजेन राजितम् । लोहिताद्रपताकन्तु अन्त्रमालाविभूषितम् ॥ ६० ॥
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम् । शूलमुद्गरधारिण्या शूल-
पादपहस्तया ॥ ६१ ॥ रक्षसां घोररूपाणामर्क्षोहिण्या समारुतः ।
तन्मध्यतमहाचापं निशम्य व्यथिता नृपाः ॥ ६२ ॥ युगान्तकाल-
समये दण्डहस्तमिवान्तकम् । ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भया-
वहम् ॥ ६३ ॥ दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शंकुकर्णं महाहनुम् । ऊर्ध्वकेशं

भीमसेनके पुत्र घटोत्कचको बड़ा क्रोध आया, उसने शत्रुको आगे
बढनेसे रोका, वह आठ पहियेवाले एक बड़े भारी रथमें बैठा था, घटो-
त्कचका रथ लोहेका बना हुआ था, महाभयङ्कर था, उस पर रीछका
चमड़ा मड़ा हुआ था, वह तीस नल्व लम्बा चौड़ा था, उसमें युद्धके
यंत्र और कवच भर रहे थे, तथा वह महामेघकी समान गर्जना
कर रहा था, हाथी, या घोड़े नहीं, किन्तु विचित्र प्रकारके हाथि-
योंकी समान पिशाच उसमें जुतरहे थे, उसके रथके ऊँचे ध्वज-
दण्डपर एक गिद्ध आँखे फाड़े हुए, पाँव और पैरोंको फटफटाता
हुआ शब्द कर रहा था, रथके ऊपर रक्तसे भीनी हुई पताका
फहरा रही थी और आँतहियोंके द्वार उसकी शोभा बढ़ा रहे
थे, ऐसे महारथमें बैठकर वह अश्वत्थामाके सामने लढनेके लिये
आया ॥ ५७-६० ॥ उसके चारों ओर त्रिशूज मृद्गर, पर्वत तथा
वृक्षोंको हाथमें ले भयङ्कर राक्षसोंकी एक अर्क्षोहिणी सेना चल
रही थी, घटोत्कच प्रलयकालके यमकी समान राथमें दण्डा
पकड़ रहा था, वह हाथमेंके धनुष को मण्डालाकारसे घुमाता २
सेनाके सम्मुख चलने लगा तब कौरव राजे बबडागए, घटोत्कचका

विष्णुवत्तं दीप्तमप्यं निम्निनोदरम् ॥ ६४ ॥ महाश्वभ्रमलद्वारं
 किरीटमध्वनमृद्धं चम् । आसने सन्निभानां व्याजाननविमान-
 कम् ॥ ६५ ॥ वीर्य दीप्तमिवायानं विपुविज्ञोपकारिणम् । तमु-
 पनमरावापं राजसंभ्रं यदोन्मत्तम् ॥ ६६ ॥ भयादिना मन्त्रतोम-
 नत्र पुत्रस्य नादिनोः । नायना क्षोभितोवत्तां महं बोध्यं न द्वितीयं ॥ ६७
 यदोन्मत्तमृद्धं सिद्धनादेन भोगिनाः । मत्समवृत्तं मृत्तं विज्य-
 मुत्तं नरा भूयम् ॥ ६८ ॥ नलोन्मत्तमृद्धं न्यथेमासीत्तत्र समन्ततः ।
 मन्त्रावाताविद्यन्ते विद्वत्ताः राजसंभ्रं तिर्था ॥ ६९ ॥ स्वायसानि
 च यथाणि भुजुत्ताः सागवोमराः । यन्मन्त्रविद्याः श्रुताः शतकृपाः
 पट्टिनामरा ॥ ७० ॥ यदुपनिर्वाद्य दृष्टा यदं नराधिपाः ।

शरीर परेके दिग्वरती समान ऊंचा था, उसके कपड़ों देखनेसे
 मनमें हर नैद जाता था। उसकी दाढ़ें बड़ी विकराल थीं और
 मुख मग्न था, ज्ञान मूढकेने भे, ओंठी बहुत बड़ी थी, केश खड़े
 हुए थे, नेत्र दमकने भे, मुख मनमा रहा था, पैर नीचेको लटक रहा
 था, गलेमें मोरी मञ्जर लट्ठा था, ज्ञान मुकुटमें दके हुए थे, इससे वह
 सब लोगोंको मुख धाड़े हुए ज्ञानकी मञ्जर मनीन होना था अतः
 राजाओंके मनमें भी उसकी देखने ही परेडाहट होने लगती थी,
 ऐसे राजाओंके राजा यदोन्मत्तको ज्ञान देख, सुभित हुई, भैरव
 नाभी भीर नरोंमें ऊंचा बड़ा ही दृढ़ तथा जेमें पवनमे आनाममे
 सुनर होजाती है, जेमें ही सुमारे पुनकी सेना भी भयमे पीड़ित
 हो चुका होनेवाली ॥ ६४-६७ ॥ यदोन्मत्तने सेनामें पैर धरने ही
 सिद्धी समान मज्जना की, उस मज्जनाने हरकर हाथी, मृत्तनेकमे
 भीर मनुष्य अपि न होनेसे ॥ ६८ ॥ मन्त्रावाता होनेसे राजाओंका
 चम बड़ने लगा, नर ने राजामें मन्त्रों ही बरीभावी बाँझार करने
 लगे ॥ ६९ ॥ सेनामें नारी आरमे लोहेके चक्र, भुजुगदी, मास,
 गोमर, शूल, तथा दृष्टि निरन्तर पड़नेलगे ॥ ७० ॥ उस

तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन्दिशः ॥ ७१ ॥ तत्रैकोऽस्रवल-
शलापी द्रोणिर्मानी न विव्यथे । व्यधमच्च शरैर्मयां घटोत्कचवि-
निर्मिताम् ॥ ७२ ॥ विहतायान्तु मायायामपर्षी स घटोत्कचः ।
विसंसर्ज्ज शरान् घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥ ७३ ॥ भुजगा
इव वेगेन दन्तीकं क्रोधमूर्च्छिताः । ते शरा रुधिरात्ताङ्गा भित्वा
शारद्वतीसुतम् ॥ ७४ ॥ विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुंखाः
शिलाशिताः । अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ।
घटोत्कचमतिक्रुद्धं विभेद दशभिः शरैः ॥ ७५ ॥ घटोत्कचोऽति-
विह्वस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ॥ ७६ ॥ चक्रं शतसहस्रारमगृह्णा-
द्व्यथितो भृशम् । जुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रधिभूषितम् ७७

अति भयङ्कर उग्र रणको देख तुम्हारे पक्षके राजे, तुम्हारे पुत्र
तथा कर्ण भी खिन्न हो दशों दिशाओंमें भाग निकले ॥ ७१ ॥
उस समय तुम्हारी सेनाका, अस्रवलमें जिसने बड़ा नाम पाया था
ऐसा मानी एक अश्वत्थामा ही तहाँ खड़ा रहा और उसने अपने
बाण छोड़कर घटोत्कचकी मायाका नाश करवाला ॥ ७२ ॥
अपनी मायाको नष्ट हुई देखकर घटोत्कच क्रोधमें भरगया और
अश्वत्थामाके घोर बाण मारे वे घोर बाण, अश्वत्थामाके शरीरमें
घुसगए ॥ ७३ ॥ जैसे क्रोधमें भरेहुए सर्प बमईमें घुसजाते हैं,
तैसे ही वे धुवर्णकी पूँछवाले, पत्थर पर घिसकर तेज कियेहुए
बाण अश्वत्थामाके शरीरको भेदकर रुधिरसे रंगेहुए ही पृथ्वीमें
घुसगये, तब तो फुर्तीले हाथवाला प्रतापी अश्वत्थामा क्रोधमें
भरगया ॥ ७४-७५ ॥ और उसने क्रोधमें भरेहुए घटोत्कचके
दश बाण मारे, अश्वत्थामाके मारेहुए बाणोंसे मर्मस्थलोंके बहुत
ही घायल हो पीड़ा पाने पर उसने सहस्र अरोंवाला, बीचमें लुर
लगाहुआ, बालसूर्यकी समान प्रकाशवान्, मणि तथा हारोंसे
सुन्दर दीखताहुआ एक चक्र हाथमें उठाया और अश्वत्थामाको

अश्वत्थामानि स चित्रेण भीमसेनचित्रासया । वेगेन महतागच्छ-
 त्रिभिर्वा द्रोणिना चरैः ॥ ७८ ॥ अभात्यस्तेषु सत्पुण्यस्तान्मोक्ष-
 पदं ह । यद्येकनाभस्तद्वर्णं हृद्वा दत्तं निपातितम् ॥ ७९ ॥
 द्रोणिं प्राप्यदयस्त्वमीः स्वर्गाभिरुचिर्वा भान्तरम् । यद्येकचतु-
 शोपातं विन्द्यात्तन्मोक्षोपपन्नः ॥ ८० ॥ द्रोणेन द्रोणिमावाप्तं प्र-
 क्षालयित्वा द्वाभ्याम् । यद्येकं भीमसेनस्य शरीरं वृज्जनपर्वणा ॥ ८१ ॥
 यथा वेगेन प्राप्यनिमित्तिरेवगिरिवाहतः । अश्वत्थामा त्वत्तं भ्रान्तो
 रद्रोणेन्द्रेन्द्राधिकमः ॥ ८२ ॥ ध्वजगीर्जेन नाखेन चिच्छेदाञ्जन-
 पर्वणः । द्वाभ्यान्तु न्यक्नारी त्रिभिर्दिनाभ्य त्रिदण्डकम् ८३ घटु-

मारनेरी इत्यादि उसके ऊपर पीठा, अश्वत्थामाने उस चक्रको
 वेगसे शरभी और आधा देल, बाण मारकर उसके टुकड़े २ कर
 दाले ॥ ७८-७९ ॥ और भाग्यहीन मनुष्यके संकल्पकी समान
 कार्य होता, वह चक्र घटवटावाहुला पृथ्वी पर थापडा, घटो-
 न्कनने अपने चक्रको पृथ्वी पर पटा देल, राहु जैसे सूर्यको दक
 दे, तैम वाण मारकर अश्वत्थामाको दक दिया, अश्वत्थामा उसके
 सामनेको चला कि-इनेमें ही दृढ़कर गिरेहुए अञ्जनपर्वतकी
 समान गीरवाला श्रीमान् यद्येकचक्रका पुत्र और भीमसेनका
 र्वाय अञ्जनपर्वत अश्वत्थामाके सामने आगया और महागिरि
 (मेरुपर्वत) जैसे पर्वतके मार्गको रोकदे, जैसे ही उसने आगेको
 बढ़ने हुए अश्वत्थामाको बाण मार कर आगे बढ़नेसे रोक
 दिया ॥ ७९-८१ ॥ उस समय वह, विष्णु और इन्द्रकी समान
 पराक्रमी अश्वत्थामा, मेघमण्डल द्वारा जलकी मृत्तलभार खाने
 वाले मेरुपर्वतकी समान क्षोभा पाने लगा, वह शत्रुके बाणोंकी
 दृष्टिसे जरा भी नहीं घबड़ाया ॥ ८२ ॥ उसने एक बाण मार
 कर अञ्जनपर्वतकी चरना काट डाली, दो बाणोंमें रथके दोनों
 सारथियोंको मार डाला, तीन बाणोंमें उसके त्रिदण्डकको काट

रेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुो हवान् । विरथस्योद्यतं हस्ताद्भूमि-
न्दुभिराचितम् ॥ ८४ ॥ विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधा-
करोः । गदा हेमाङ्गदा राजंस्तूर्णं हृदिभ्विसूनुना ॥ ८५ ॥ आस्यो-
त्तिप्ता शरैश्चापि द्रौणिनाहत्य पातिता । ततोऽन्तरिक्षमुत्सृत्य
कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ८६ ॥ ववर्पाञ्जनपर्वा स द्रुमवर्पं नभस्त-
लात् । ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि ॥ ८७ ॥ मार्गणै-
रभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः । सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे द्रैम-
विभूषिते ॥ ८८ ॥ महीगत इवात्पुत्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः । तमय-
स्मयन्मार्णं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ८९ दधानाञ्जनपर्वाणं महेश्वर
इवान्धकम् । अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम् ॥ ९० ॥

हाला॥८९॥ एक बाणसे धनुषको काट डाला, चार बाणोंसे उसके
चारों घोड़ोंको मार डाला और फिर रथरहित हुए अञ्जनपर्वा
के हाथमेंकी सुवर्णकी फुल्लियोंसे शोभामान तलवारके बाण मार
कर दो टुकड़े कर डाले; तुरतही घटोत्कचके पुत्रने हेमाङ्गदा नाम
वाली गदा ले ली और उसको फिरा कर अश्वत्थामाके मार।
अश्वत्थामाने बाण मार कर उसके भी टुकड़े कर डाले, तब वह
गदा नीचे गिर गई, यह देख अञ्जनपर्वा कालमेघकी समान
गरजतार आकाशमेंको उड़ा और तहाँसे वृत्तोंकी वृष्टि करने
लगा; अश्वत्थामा आकाशमें स्थित सूर्य जैसे फिरणासे मेघोंको
भेद डाले तैसेही बाण मार कर आकाशमें स्थित घटोत्कचके
पुत्रको भीधनेलगा तब तो वह आकाशमेंसे नीचे उतर आया और
पृथ्वी पर खड़ेहुए अपने सुवर्णके रथ पर चढ़ बैठा ॥८४-८८॥
इस समय घटोत्कचका पुत्र अञ्जनपर्वा, पृथ्वीमेंके अञ्जनपर्वतकी
समान (कालाशुच) दीखता था, उस समय जैसे महेश्वरने
अन्धकासुरको मारडाला था तैसे अश्वत्थामाने भी ठोस लोहेके
घने कवचके दूकेहुए महाबली भीमके पोते अञ्जनपर्वाको मार

द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात् प्रज्वलिताङ्गदः । ग्राह वाक्यमसं-
 भ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ॥ ६१ ॥ दहन्तं पाण्डवानीकं
 वनमग्निपिवोच्छ्रितम् । घटोत्कच प्रवाच । तिष्ठ तिष्ठ न मे
 जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ॥ ६२ ॥ त्वामद्य निहमिष्यामि
 क्रौञ्चमग्निमुतो यथा । अश्वत्थामोवाच । गच्छ वत्स सहान्यैस्त्वं
 युध्यस्वामरविक्रम ॥ ६३ ॥ न तु पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः
 प्रवादितुम् । कामं खलु न मे रोषो हैडम्बं विद्यते त्वयि ॥ ६४ ॥
 भिन्तु रोषाद्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत । सञ्जय उवाच ।
 श्रुत्वैवं क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ६५ ॥ अश्वत्थामा-
 नमायस्तो भैमसेनिरभाषत । किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवा-

डाला ॥ ८६-६० ॥ अश्वत्थामाने मेरे चलवान् पुत्रको मारडाला
 यह देखकर, चमकतेहुए वाजुवन्द पहिरनेवाला घटोत्कच बड़ेभारी
 क्रोधमें भर शारद्वतीके पुत्र अश्वत्थामाके सामने आया और
 बढ़ताहुआ अग्निजैसे घास फूसको जला देता है तैसे पाण्डवोंकी
 सेनाका संहार करतेहुए वीर अश्वत्थामाको आगे बढ़नेसे रोक
 कर इसप्रकार कहनेलगा, घटोत्कचने कहा कि-अरे ओ द्रोणपुत्र !
 खड़ा रह ! खड़ा रह ॥ तू मेरे सामनेसे जीताहुआ नहीं जा
 सकेगा ॥ ६१-६२ ॥ अग्निपुत्रने जैसे क्रौंचका नाश किया था,
 तैसे ही मैं भी तेरा नाश कर डालूँगा अश्वत्थामाने कहा कि-अरे
 देवताओंकी समान चलवान् वत्स ! तू यहाँसे चला जा और
 किसी दूसरेके साथ युद्ध कर ॥ ६३ ॥ हे हिडिम्बाके पुत्र ! पुत्रका
 पिताके साथ लड़ना अनुचित समझा जाता है, हे पुत्र ! मुझै तेरे
 ऊपर कुछ भी क्रोध नहीं है ॥ ६४ ॥ और जो मनुष्य क्रोधके वशमें
 होजाता है वह अपना नाश अपने आप करलेता है, सञ्जयने कहा
 कि-हे धृतराष्ट्र ! इस समय क्रोधसे लाल ताल नेत्रोंवाला और
 पुत्रशोकसे खिन्न हुआ भीमका पुत्र, अश्वत्थामाके कथनको सुन

हवे ॥६६॥ यन्मा भीमसे वाग्भिरसदेतद्वचस्तव । भीमात् खलु-
 समुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ॥ ६७ ॥ पाण्डवानामहं पुत्रः
 संमरेष्वनिवर्त्तिताम् । रत्तसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बलेऽहं
 तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि । युद्धश्रद्धामहं तेऽथ
 विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ६८ ॥ इत्युक्त्वा रोपनाम्नाक्षो राक्षसः
 सुमहाबलः । द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥ १०० ॥
 रथात्तमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः । रथिनामृगं द्रौणि धारा-
 भिरिव तोषदः ॥ १०१ ॥ शरदृष्टिं शरैर्द्रौणिरप्राप्तान्तां व्यशात-
 यत् । ततोऽन्तरिक्षे वाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥ १०२ ॥
 अथास्त्रसंघातकूर्तर्विस्फुलिङ्गैस्तदा बभौ । विभावरीमुखे व्योम
 खद्योतैरिव चित्रितम् ॥ १०३ ॥ निशम्य निहता पायां द्रौणिना
 कर क्रोधमै भर गया और कहने लगा कि अरे अश्वत्थामा ! क्या
 मैं रणमें पामरोंकी समान कायर हूँ कि-जो तू मुझे वचनोंसे डगाना
 चाहता है, तेरे ये शब्द अनुचित हैं, मैं भीमसे कौरवकुलमें उत्पन्न
 हुआ हूँ ॥ ६७ ॥ और युद्धमें पीछेको न हटने वाले पाण्डवोंका
 पुत्र हूँ, ९८ राक्षसोंका राजा हूँ और रावणकी समान बलवान्
 हूँ अरे द्रोणपुत्र ! तू खड़ा रह । खड़ा रह !! तू मेरे पाससे जीवित
 न जा सकेगा, आज मैं तेरे युद्धविपक्ष चाचको दूर कर दूँगा
 इस प्रकार कह कर क्रोधसे लाल ताल नेत्रों वाला महाबल-
 शाली राक्षस, क्रोधमें भरा हुआ सिंह जैसे हाथों पर दौड़े,
 तैसेही अश्वत्थामाके ऊपर झपटा ॥६८-१००॥ और जैसे मेघ
 मूसलधार जल बरसावे तैसे ही घटोत्कच भी रथके चक्रकी
 समान वाण महारथी अश्वत्थामाके मारने लगा ॥ १०१ ॥
 अश्वत्थामाने भी उसके सामने वाणोंकी दृष्टि कर उसकी वाण-
 दृष्टिको अधवीचमें ही काट डाला, इस समय मानों आकाशमें
 वाणोंका युद्ध हो रहा हो इस प्रकार वाण परस्परमें टकराते

रणमानिना । घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ॥ १०४ ॥
 सोऽभवद्विरिरित्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः । शूलप्रासासिमुसलजल-
 प्रस्रवणो महान् ॥ १०५ ॥ तमञ्जनगिरिप्रख्यं द्रौणिर्दृष्ट्वा मही-
 धरम् । प्रपतद्भिश्च बहुभिः शस्त्रसंघैर्न विव्यथे ॥ १०६ ॥ ततो
 हसन्निव द्रौणिर्वज्रसमुदैरयत् । स तेनास्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्रः
 क्षिप्रं व्यनश्यत् ॥ १०७ ॥ ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रा-
 युधो दिवि । अश्मपट्टिभिरित्युग्रो द्रौणिं प्राच्छादयद्रणे ॥ १०८ ॥
 अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदाम्बरः । व्यधमत् द्रोणतनयो
 नीलमेघं समुत्थितम् ॥ १०९ ॥ स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य

थे ॥ १०२-१०३ ॥ और सायंकालके समय उड़ते हुए पट्टी-
 जनोंसे जैसे आकाश दमकने लगता है, तैसे ही परस्पर टकराते
 हुए अस्त्रोंसे उत्पन्न हुई चिनगारियोंसे आकाश शोभित होरहा
 था ! ॥ १०३ ॥ (देखते देखतेमें ही) घटोत्कचकी रणमें रची
 हुई मायाका अश्वत्थामाने नाश कर डाला उसी समय घटोत्कच
 ने अदृश्य हो दूसरी माया रची ॥ १०४ ॥ वह दृष्टोंसे लदा
 हुआ अनेक शिखरों वाला एक उन्नत और महान् पर्वत बन गया
 और पहाड़मेंसे जैसे जलके अनेकों झरने बहते हैं तैसेही त्रिशूल,
 प्रास, तलवार तथा भूसलोंके बहुतसे झरने बहने लगे ॥ १०५ ॥
 काले काजलकेसे पर्वतमेंसे अनेकों शस्त्रधाराओंको निकलती
 देखकर अश्वत्थामा कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥ १०६ ॥
 परन्तु उसने हँसते २ उस पर्वत पर वज्रास्त्र मारा, तुरन्त ही
 अञ्जनपर्वतके टुकड़े २ होगए ॥ १०७ ॥ उग्र घटोत्कच उस ही
 समय इन्द्रायुध वाले श्याम मेघका स्वरूप धारण कर आकाशमें
 पहुँचकर खड़ा होगया और पत्थरोंको बरसाकर रणमें अश्व-
 त्थामाको चारों ओरसे ढकदिया ॥ १०८ ॥ तब अस्त्रवेत्ताओंमें
 श्रेष्ठ अश्वत्थामाने धनुषके ऊपर वायव्यास्त्र चढ़ाया और आकाश

सर्वशः । शते रथसहस्राणां जघान द्विपदाम्बरः ॥ ११० ॥ स दृष्ट्वा
 पुनरायान्तं रथेनायतकोर्मुकम् । घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्यहु-
 भित्तम् ॥ १११ ॥ सिंहशार्दूलसदृशैर्मचद्विरद्विक्रमैः । गज-
 स्थैश्च रथस्थैश्च बाजिपृष्ठगतैरपि ॥ ११२ ॥ विकृतास्यशिरोश्रीवे-
 ह्निहिम्बानुचरैः सह । पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः ११३
 नानाशस्त्रधरैर्वीरैर्नानाकवचभूषितैः । महाबलैर्भीमरवैः संरम्भोद्-
 वृत्तलोचनैः ॥ ११४ ॥ उपस्थितैस्ततो युद्धे राक्षसैर्युद्धदुर्मदैः ।
 विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिणरघवात् ॥ ११५ ॥ तिष्ठ दुर्यो-
 धनाद्य त्वं न कार्यः सम्भ्रमस्त्वया । सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थि-
 वैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ ११६ ॥ निहनिष्याम्यमित्रांस्ते तव नास्ति परा-

में प्रकाशित होतेहुए श्याममेघ के मार उसके टुकड़े २ करदिये १०६
 और बाणोंकी वृष्टिकर सब दिशाओंको ढक दिया तथा एक
 लाख रथियोंका संहार कर डाला ॥ ११० ॥ फिर सिंह तथा
 शार्दूलकी समान मंदमत्त और मंदमत्त हाथीकी समान पराक्रमी
 हाथी, रथ और घोड़ोंके ऊपर बैठे हुए वेडौल मुख, मस्तक तथा
 कण्ठ वाले हिहिम्बा पुत्रके राक्षस सेवक जो इन्द्रकी समान
 पराक्रमी थे पौलस्त्य, यातुधान तथा तामस नामवाले थे अनेक
 प्रकारके शस्त्र और कवचोंको पहिर रहे थे और जो शूरवीर,
 महाबली, भयंकर शब्द कर आँखोंको फाड़ २ कर देख रहे थे,
 ऐसे युद्ध करनेको तयार युद्धदुर्मद राक्षसोंको साथमें ले घटो-
 त्कच बड़ाभारी धनुष ले रथमें बैठा और अश्वत्थामासे लड़नेको
 चला, उसको देख तुम्हाग पुत्र उदास होगया, उस समय अश्व-
 तथामा बोला कि— ॥ १११—११५ ॥ हे दुर्योधन ! तुम खड़े रहो
 (खड़े २ तमाशा देखो) घबड़ाओ मत ! मैं तुम्हारे शत्रु इन शूर-
 वीर भाइयोंको इन्द्रकी समान पराक्रमी राजाओं सहित नष्ट कर
 डालूँगा, तुम्हारी हार नहीं होगी, यह मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा

जयः । सत्यं ते प्रतिजानामि पर्याश्वामय वाहिनीम् ॥ ११७ ॥
 दुर्योधन उवाच । न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत्ते महदिदं मनः । अस्मासु
 च परा भक्तिस्त्वयि गौतमिनन्दन ॥ ११८ ॥ सञ्जय उवाच ।
 अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततः सौवल्म्यव्रवीत् । वृतं शतसहस्रेण रथानां
 रणशोभिनाम् ॥ ११९ ॥ षष्ठ्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धन-
 ङ्गजयम् । कर्णश्च वृषसेनश्च कृपः नीलस्तथैव च ॥ १२० ॥
 उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्रः सुतापनः । दुःशासनो निकुम्भश्च
 कुण्डभेदी पराक्रमः ॥ १२१ ॥ पुरञ्जयो दृढरथः पताकी हेम-
 कम्पनः । शल्यारुणोन्द्रसेनाश्च सञ्जयो विजयो जयः ॥ १२२ ॥
 कमलान्नः परक्राथी जयधर्मा सुदर्शनः । एते त्वामनुयास्यन्ति
 पत्नीनामयुतानि पट् ॥ १२३ ॥ जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मरा-

करता हूँ, परन्तु तू सेनाको ढाँढस बँधा ॥ ११६--११७ ॥
 दुर्योधनने कहा कि-हे गौतमीनन्दन ! तुम जो ऐसा मनोभाव
 प्रकट करते हो, इसमें कुछ अचरज नहीं है, क्योंकि-तुम हमसे
 बड़ा प्रेम रखते हो ॥ ११८ ॥ सञ्जयने कहा कि-इस प्रकार
 अश्वत्थामासे बात चीत कर दुर्योधनने सुबलपुत्र शकुनिसे कहा
 कि-अजी मामाजी ! तुम रणमें शोभा देनेवाले साठ हजार रथों
 को लेकर सहस्रों रथी राजाओंसे लड़तेहुए अर्जुनके ऊपर हल्ला
 करो, कर्ण, वृषसेन, कृप, नील, उत्तर दिशाके राजे, कृतवर्मा,
 शत्रुको सन्ताप देने वाला पुरुमित्र, दुःशासन, निकुम्भ, पराक्रमी
 कुण्डभेदी, पुरञ्जय, दृढरथ, पताकी, हेमकम्पन, शल्य, आरुणि
 इन्द्रसेन, सञ्जय, जय, विजय, कमलान्न, परक्राथी, जयवर्मा और
 सुदर्शन-ये योधा और साठ हजार पैदल तुम्हारे पीछे २ (सहा-
 यताके लिये) आवेंगे ॥ ११९-१२३ ॥ हे मामाजी ! तुम
 जहाँ धनञ्जय लड़ रहा है, तहाँ जाओ, और इन्द्र जैसे असुरों
 का संहार करे, तैसे तुम भीम, नकुल, सहदेव तथा धर्मराजका

जञ्च मातुल । असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा त्वयि मे स्थिता १२४
 दारितान् द्रौणिना बाणैर्भृशं विक्षतविग्रहान् । जहि मानुल कौन्ते-
 यानसुरानिव पावकिः ॥ १२५ ॥ एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव
 सौबलः । पिप्रोपुस्ते सुतान्नाजन् दिधत्तुश्च त्र पाण्डवान् ॥ १२६ ॥
 अथ प्रवृत्ते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे । विभावर्ष्यां सुतुमुलं शक्र-
 प्रह्लादयोरिव ॥ १२७ ॥ ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गोतिमोऽसुतम् ।
 जघानोरसि संक्रुद्धो विपाग्निप्रतिमैर्ददौ ॥ १२८ ॥ स तैरभ्याहतो
 गाढं शरैर्भोमसुतेरितैः । प्रचचाल रथोपस्थे वातोद्भूत इव द्रुमः १२९
 भूयश्चाञ्जलिकेनाथ मार्गणेन महाप्रभम् । द्रौणिहस्तस्थितश्चापं
 चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥ १३० ॥ ततोऽन्यद् द्रौणिरादाय धनुर्भरिस्सहं

नाश करो, मैं विजयकी आशा तुम्हारे ही ऊपर रखते हुए हूँ १२४
 हे मामाजी ! जैसे स्वामि कान्कियेने असुरोंका संहार किया था,
 तैसे ही तुम अश्वत्थामाके बाण लगनेसे जिनके शरीर जर्जर होरहे
 हैं ऐसे कुन्तीपुत्र पाण्डवोंका संहार करो ॥ १२५ ॥ इस प्रकार
 तुम्हारे पुत्रने सुबलपुत्र शकुनिसे कहा, तब हे राजन् !
 तुम्हारे पुत्रोंको प्रसन्न करनेकी इच्छासे तथा पाण्डवोंका
 संहार करनेकी इच्छासे शकुनि तुरत ही पाण्डवोंसे युद्ध करनेके
 लिये चला ॥ १२६ ॥ इन्द्र तथा प्रह्लादका जैसे पुराने
 समयमें युद्ध मचा था, तैसे ही रात्रिके समय अश्वत्थामा
 तथा राक्षसोंमें तुमुल युद्ध चलने लगा ॥ १२७ ॥ क्रोधमें भरे
 हुए घटोत्कचने विप और अश्विकी समान अत्यन्त दृढ़ दशबाण
 अश्वत्थामाकी छातीमें मार उसको बीध डाला ॥ १२८ ॥ उसके
 बाणोंके प्रहारसे, वायुसे जैसे विशाल वृक्ष काँप उठे, तैसे अश्व-
 त्थामा काँप उठा ॥ १२९ ॥ घटोत्कचने अञ्जलिक नामक बाण
 मारकर, अश्वत्थामाके हाथमेंके बड़ी कान्ति वाले धनुषको काट
 डाला ॥ १३० ॥ तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भारको सह सकने

महत् । वर्षपुं विशिखांस्तीक्ष्णान् वारिधारा इवाम्बुदः ॥ १३१ ॥
 ततः शारद्वतीपुत्रं प्रेषयामास भारत । सुवर्णपुं खाञ्जत्रुघ्नान् खच-
 रान् खचरं प्रति ॥ १३२ ॥ तद्वाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
 सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ १३३ ॥ विधम्य राक्ष-
 सान् वाणैः साश्वसूतरयद्विपान् । ददाह भगवान् बहिर्भूतानीव
 युगक्षये ॥ १३४ ॥ स दग्ध्वात्तौहिणीं वाणैर्नैऋतीं रुक्वे भृशम् ।
 पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ १३५ ॥ युगान्ते सर्व-
 भूतानि दग्ध्वेव वसुरुत्वरणः । रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवा-
 हितान् ॥ १३६ ॥ तदा घटोत्कचः क्रुद्धो रक्षसां भीमकर्मणाम् ।

बाला दूसरा धनुष उठाया और मेघ जैसे जलको बरसावे तैसे
 घटोत्कचके ऊपर तीक्ष्ण वाणोंकी झड़ी लगादी ॥ १३१ ॥ तदनन्तर
 हे भरतवंशी राजन् ! शारद्वतीका पुत्र अश्वत्थामा सुवर्णकी पूँछ
 वाले शत्रुओंको मारनेवाले आकाशचारी वाणोंको आकाशमें फिरने
 वाले (घटोत्कच) के ऊपर फैकने लगा ॥ १३२ ॥ उस समय
 उन वाणोंके प्रहारसे पीड़ित हुआ स्थूल वक्षस्थल वाले राक्षसों
 का झुण्ड, सिंहोंसे भँझोड़े जाते हुए मदमत्त हाथियोंके झुण्ड
 की समान व्याकुल होने लगा ॥ १३३ ॥ अश्वत्थामाने वाणों
 के प्रहारसे घोड़े, सारथि रथ और हाथियों समेत राक्षसोंको
 धुँगलकर प्रलयके समय भगवान् अग्नि जैसे प्राणियोंको बाल
 कर भस्म करै तैसे उनको भस्म कर दिया ॥ १३४ ॥ और हे
 राजन् ! जैसे पहिले भगवान् शङ्कर त्रिपुरासुरको भस्म कर स्वर्ग
 में शोभा पारहे थे, तैसे ही अश्वत्थामा भी राक्षसोंकी अदौहिणी
 सेनाको भस्म कर रणमें शोभा पारहा था ॥ १३५ ॥ प्रत्नण्ड
 अग्नि प्रलयकालके समय सकल भूतोंको भस्म कर जैसे शोभा
 पाता है, तैसे ही जीतने वालोंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुम्हारे
 शत्रुओंको नष्ट कर दिपने लगा ॥ १३६ ॥ यह देखकर घटो-

द्रौणिं हतेति महतीं चोदयामास ताञ्चयमूम् ॥ १३७ ॥ घटोत्कचस्य
 तामाज्ञां प्रतिगृह्णाथ राक्षसाः । दंष्ट्रोञ्ज्वला महावक्त्रा घोररूपा
 भयानकाः ॥ १३८ ॥ व्याचानना घोरजिह्वाः क्रोधताम्रक्षणा
 भृशम् । सिंहनादेन महता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ १३९ ॥
 हन्तुमभ्यद्रवन् द्रौणिं नानाप्रहरणायुधाः । शक्तीः शतघ्नीः
 परिधानशनीः शूलपट्टिशान् ॥ १४० ॥ खड्गान् गदा
 भिन्दिपालान् मुसलानि परश्वधान् । पासान्सौस्तोमरांश्च
 कणपान् कम्पनाञ्छितान् ॥ १४१ ॥ शूतान् भुशुण्ड्यश्मगदा-
 स्थूणान्काष्णार्पसांस्तथा । मुद्गरांश्च महाघोरान् समरे शत्रु-
 दारणान् ॥ १४२ ॥ द्रौणिमूर्धन्यसंत्रस्ता राक्षसा भीमविक्रमाः ।
 चित्तिपुः क्रोधताम्राक्षाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४३ ॥ तच्छ-
 वर्षं सुमहद् द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि । पतमानं समीक्ष्याथ योधास्ते

त्कचको बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने भयङ्कर कर्म करनेवाले राजासों
 की बड़ी भारी सेनासे कहा कि तुम अश्वत्थामाको मार डालो ॥ १३७
 घटोत्कचकी आज्ञाको पाकर चमकती हुई डाढ़ वाले, बड़े २ मुख
 वाले, भयङ्कर रूपवाले, भयानक मुख फाड़े हुए, भयानक जीभ
 वाले, क्रोधसे ताँवेका समान लाल ताल नेत्र वाले राजास बड़ी
 भारी सिंहगर्जना कर पृथ्वीको गुंजारते हुए, नानाप्रकारके
 शस्त्रोंको हाथमें उठा अश्वत्थामाको मारनेके लिये झपटे और
 वे भयङ्करपराक्रमी राजास रोपसे ताँवेकी समान लाल २ नेत्र
 कर निर्भयतासे अश्वत्थामाके मस्तक पर शक्ति; शतघ्नी, परिघ,
 अशनि, शूल, पटे, खड्ग, गदा, भिन्दिपाल-मुसल, फरसे, पाश
 तलवार, तोमर, तीक्ष्ण और मोटे २ कणप, कम्पन भुशुण्डी,
 पत्थर, गदा, खूँटे और रणमें शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले
 लोहेके महाभयङ्कर मुगदरोंको मारने लगे ॥ १३८-१४३ ॥
 अश्वत्थामाके शिर पर शस्त्रोंकी बड़ी भारी वौजार होते देख

व्यथितां भवन् ॥१४४॥ द्रोणपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तस्तद्वर्षं घोरमुच्छ्रि-
तम् । शरैर्विध्वंसयामास वज्रकल्पैः शिलाशितैः ॥१४५॥ ततोऽ-
न्यैर्विशिखैस्तूर्णैः स्वर्णपुंखैर्महामनाः । निजघ्ने राक्षसान् द्रौणि-
दिव्यास्त्रपतिमन्त्रितैः ॥१४६॥ तद्वायौ रक्षितं युयुं रक्षसां वीर-
वत्तसाम् । सिंहैरिव वभौ मर्त्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१४७॥
ते राक्षसाः सुसंकुद्धा द्रोणपुत्रेण ताडिताः । क्रुद्धाः सम्प्राद्ववं
द्रौणि जिघांसन्तो महाबलाः ॥१४८॥ तत्राद्भुतमिमं द्रौणि-
र्दशयामास विक्रमम् । अशक्यं कर्तुं मन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥१४९॥
यदेको राक्षसीं सेनां क्षणाद् द्रौणिर्महास्त्रवित् । दंदाहं ज्वलित-
वर्णैः राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥१५०॥ स हत्वा राक्षसानीकं रराज

तुम्हारे योधा मनमें खिन्न होने लगे ॥१४४॥ परन्तु महापराक्रमी
अश्वत्थामाने पथरपर घिसकर तेज कियेहुए वज्रकी समाज
तेज बाण मारकर राक्षसोंकी फैली हुई बाणोंकी बौझारोंको
नष्ट कर डाला ॥१४५॥ तदनन्तर बड़े मन बाले अश्वत्थामाने
शीघ्र ही सुवर्णकी पूँछ वाले बाणोंको दिव्य अस्त्रोंके मंत्रसे
अभिमन्त्रित कर राक्षसोंको मारना आरम्भ कर दिया; उसके
प्रहारसे स्थूल वचाःस्थल वाले राक्षसोंको झुण्ड बड़ा ही व्याकुल
होगया और सिंहोंके उपद्रवसे घबड़ाई हुई हाथियोंकी धाँगी
समान भौचका रह गयी ॥१४६॥१४७॥ जब महाबली अश्व-
त्थामा तला ऊपर बाण छोड़ राक्षसोंको पीडित करने लगा;
तब वे तमोगुणी बलवान् राक्षस बड़े क्रोधमें भरगए और क्रोधमें
भर अश्वत्थामाको मारनेके लिये उस पर टूटपड़े ॥१४८॥
हे भरतवंशी राजन् ! उस समय अश्वत्थामाने ऐसा अद्भुत परा-
क्रम करके दिखाया कि-ऐसा पराक्रम किसी प्राणीसे नहीं हो
सकता ॥१४९॥ बड़े २ अस्त्रोंको जानने वाले अश्वत्थामाने
अकेले ही राक्षसराजके सामने प्रज्वलित बाण मारकर राक्षसी

अतितीव्रं महद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः । योधानां प्रीतिजननं द्रौणेऽथ
 भरतर्षभ ॥ १६४ ॥ ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः ।
 पङ्क्तिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमाव्रजत् ॥ १६५ ॥ ततो भीमा-
 त्मजं रक्तो घृष्टद्युम्नञ्च सानुगम् । अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरु-
 त्कृष्टविक्रमः ॥ १६६ ॥ तत्राद्वयुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
 अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ १६७ ॥ निमेषान्तरमात्रेण
 साश्वसूतरथद्विपान् । अर्जुनोऽर्जुनीं राक्षसानां शितैर्वाणैरशा-
 तयत् ॥ १६८ ॥ मितो भीमसेनस्य हृदिम्ब्रेः पार्पतस्य च । यम-
 योद्धर्मपुत्रस्य विजयस्याज्युतस्य च ॥ १६९ ॥ प्रगाढमञ्जोगति-
 भिर्नाराचैरथ ताडिताः । निपेतुर्द्विरदा भूमौ विशृङ्गा इव पर्वताः १७०

(स्पर्श वाले) बाण मार कर काटनेलगे ॥ १६३ ॥ हे भरतवंशमें
 श्रेष्ठ राजन् ! इस प्रकार उन दोनों नरसिंहोंमें अतितीव्र महायुद्ध
 छिड़ा था, इस युद्धसे योधा और अश्वत्थामा (दोनोंही) प्रसन्न
 होरहे थे ॥ १६४ ॥ जब इस प्रकार युद्ध चल रहा था कि-
 भीमसेन एक सहस्र रथ, तीसरी हाथीसवार और छः सहस्र
 घुड़सवारोंको ले तहाँ आधमका ॥ १६५ ॥ परन्तु सुखपूर्वक
 लड़ने वाला धर्मात्मा अश्वत्थामा घटोत्कच और अनुचरों
 सहित घृष्टद्युम्नके साथ लड़े ही चला गया ॥ १६६ ॥ और
 हे भरतवंशी राजन् ! उसने किसी प्राणीसे भी न बन
 सकनेवाला ऐसा अद्भुत कर्म किया कि-भीमसेन, घटो-
 त्कच, घृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, अर्जुन तथा श्रीकृष्णके सामने
 निमेषमात्रमें ही तीव्र बाण मार कर छोड़े, सारथि, रथ तथा
 हाथियोंसे भरी राक्षसोंकी अर्जुनोऽर्जुनी सेनाका संहार कर
 दात्ता ॥ १६७-१६९ ॥ फिर शीघ्रगामी बाण दृढ़तासे मारकर
 हाथियोंका भी संहार करने लगा, उस समय वे हाथी शिखरों
 वाले पर्वतोंकी समान पृथिवीपर गिरते थे ॥ १७० ॥ इधर उधर

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचरद्भिरितस्ततः । रराज वसुधा कीर्णा
 विसर्पद्भिरिवोगैः ॥ १७१ ॥ क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृच्छत्रैः
 क्षितिर्वभौ । द्यौरिवोदितचन्द्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥ १७२ ॥
 प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् । छत्रहंसावलीजुष्टां
 फेनचापरपालिनीम् ॥ १७३ ॥ कङ्कशृङ्गमहाग्राहां नैकायुधभूपा-
 कुलाम् । विस्तीर्णगजपाषाणां हताश्वमकराकुलाम् ॥ १७४ ॥
 रथक्षिप्रमहावमां पताकारुचिरदुभाम् । शरमीनां महारौद्रां मास-
 शक्यट्टिडुण्डुभाम् ॥ १७५ ॥ मञ्जामांसमहापंकां कवन्धावर्जितोदु-
 पाम् । केशशैवलकल्मषां भीरुणां कश्मलावहाम् ॥ १७६ ॥
 नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसम्भवाम् । शोणितौघमहावेगां

लुढकती हुई हाथियोंकी कटी हुई सूडोंसे भरी हुई पृथ्वी, जैसे
 सर्प घूमरहे हों तैसे शोभा पाने लगी ॥ १७१ ॥ और पृथ्वीपर
 गिरे सुनर्लकी दण्डी वाले राजाओंके वस्त्रोंसे रणभूमि, प्रलय-
 कालके समय उदय हुए सूर्य, चन्द्रमा तथा तथा नक्षत्रों वाले
 आकाशकी समान शोभा पारही थी ॥ १७२ ॥ अश्वत्थामाने
 रणमें ध्वजारूप में डकवाली भेरीरूप कछुएवाली, छत्ररूप हंसों
 की लंघारसे सेवित, चामररूप फेन और तरङ्गों वाली, कङ्क और
 गीधरूप बड़े २ नाकोंवाली, और नानाप्रकारके आयुधरूप
 मख्खोंवाली, इधर उधर पड़ेहुए हाथीरूप पत्थरों वाली, मरेहुए
 घोड़ेरूप मगरों वाली, रथरूप बंजरवाली, पताकाररूप बड़े २ सुन्दर
 वृक्षवाली, बाणरूपी मच्छीवाली, देखने वालोंके लिये महामय-
 ङ्कर, मांस, शक्ति ऋष्टिरूप जलसर्पोंसे भरीहुई, मञ्जा और
 मांसरूपी कीचड़वाली, घड़रूप डोंगी वाली, केशरूप सिवारसे
 विचित्र रंगकी प्रतीत होनेवाली डरपोकोंको डरानेवाले, मरेहुए
 योधाओंके शरीरोंमेंसे निकलेहुए रुधिरसे उत्पन्नहुई रक्तधी
 तरङ्गोंमें और योधाओंके आर्तनादसे गूँजती हुई, रक्तकी तले

द्रौणिः प्रावर्त्तयन्नदीम् ॥ १७७ ॥ यो धार्तरवर्निर्घोषां क्षतजोमि-
समाकुलाम् । श्वापदातिमहाघोरां यमक्षयमहोदधिम् ॥ १७८ ॥
निपात्य राक्षसान् बाणैर्द्रौणिर्हैडिम्बिमादयत् । पुनरप्यतिसंक्रुद्धः
सर्वकोदरपार्षतान् ॥ १७९ ॥ स नाराचगणैः पार्थान् द्रौणि-
र्विध्वा महाबलः । जघान सुरथं नाम द्रुपदस्यात्मजं विभुः ॥ १८० ॥
पुनः शत्रुञ्जयं नाम द्रुपदस्यानुजं रणे । बलानीकं जयानीकं
जयाश्वक्चाभिजघिनवान् ॥ १८१ ॥ श्रुताह्वयं च राजेन्द्र द्रौणि-
र्निन्ये यमक्षयम् । त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुद्गैर्हममालिनम् १८२
जघान स पृथग्रं च चन्द्रसेनञ्च मारिष । कुन्तिभोजसुताश्चासौ दश-
भिर्दश जघिनवान् ॥ १८३ ॥ अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः सन्धायोग्र-
मजिह्वगम् । सुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ॥ १८४ ॥ यम-
दण्डोपमं षोडशदिशः शु घटोत्कचम् । स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्ष-

ऊपर आतीहुई लहरोंसे भयंकर, कुत्ते और सियार आदि पशुओं
से भरीहुई यमराजके समुद्रकी समान महाभयंकर नदी बहा
दी ॥ १७३-१७८ ॥ द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने बाणोंसे राक्षसों
का नाश करना आरंभ करदिया, घटोत्कचको पीडित करना
आरम्भ किया, इतने पर भी वह थमा नहीं किन्तु महाबलवान्,
व्यापक अश्वत्थामाने बड़े भारी क्रोधमें भर फिर नाराच नामके
बाण मार भीमके अनुचरोंको और पाण्डवोंको भी धडाँटा, और
द्रुपदके पुत्र सुरथको, शत्रुञ्जयको, बलानीकको, जयानीकको,
जयाश्वक तथा श्रुताह्वयको मारकर यमलोकमें भेज दिया, इसके
पीछे सुन्दर पूँछ वाले सुवर्णके तीन बाण मारकर पृथग्र तथा
चन्द्रसेनको मारडाला और दश बाणोंसे कुन्तिभोजके दश पुत्रों
को भी मारडाला ॥ १७९-१८३ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! अश्व-
त्थामाने बड़े भारी क्रोधमें भर, सरलतासे जाने वाला यमदण्डकी
समान उग्र और घोर बाण धनुषपर चढ़ाया और धनुषको

सस्य महाशरः ॥ १८५ ॥ विवेश वसुधां शीघ्रं सपुङ्खः पृथिवी-
पते । तं हतं पतितं ज्ञात्वा घृष्टवृम्नो महारथः ॥ १८६ ॥ द्रौणेः
सकाशाद्राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम् । तथा पराङ्मुखवृषं सैन्यं
यौधिष्ठिरं नृप ॥ १८७ ॥ पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह ।
पूजितः सर्वलोकैश्च तत्र पुत्रैश्च भारत ॥ १८८ ॥ अथ शर-
शतभिन्नकृत्तदेहैर्हन्पतितैः क्षणदाचरैः समन्तात् । निधनमुपगतै-
र्वभूव भूमिर्गिरिशिखरैरिव दुर्गमातिरौद्रा ॥ १८९ ॥ तं सिद्ध-
गन्धर्वपिशाचसंघा नागा सुपर्णा पितरो वयांसि । रत्नोगणा भूत-
गणाश्च द्रौणिमपूजयन्नप्सरसः सुराश्च ॥ १९० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि अश्व-
त्थामयुद्धे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

कान्तक खैचकर वह बाण घटोत्कचकी छातीमें मारा, वह बाण
उसके हृदयको फोड़ पूँछसहित पृथ्वीमें घुस गया, तब घटोत्कच
रथमेंसे पृथ्वीपर गिरपड़ा, यह देख उसको मराहुआ मान महां-
रथी घृष्टवृम्न ने अश्वत्थामाके सामनेसे अपने बड़े भारी रथको
पीछेको फिराया, तदनन्तर जिसमेंके राजे भागने लगे हैं, ऐसी
राजा युधिष्ठिरकी सेनाका पराजय कर शूरवीर द्रोणपुत्र अश्व-
त्थामाने गर्जना की, उस समय सब मनुष्य और तुम्हारे पुत्रोंने
उसकी बड़ी भारी पूजा की ॥ १८४-१८८ ॥ इस समय अश्व-
त्थामाने सैंकड़ों बाण मारकर राज्ञसोंके शरीरोंको काटडाला था,
मारकर गिरेहुए राज्ञसोंसे पृथ्वी खचाखच भररही थी, इससे
इधरउधर पड़े पर्वतके शिखरोंसे जैसे पृथ्वी दुर्गम और भयंकर होगई
हो तैसी प्रतीत होती थी ॥ १८९ ॥ सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, सर्प,
गरुड, पितर, पक्षी, राज्ञस, भूतोंके समूह, अप्सरा और
देवताओंने अश्वत्थामाका पराक्रम देख उसकी बड़ी प्रशंसा
की ॥ १९० ॥ एकसौ छपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५६ ॥

सञ्जय उवाच । द्रुपदस्यात्मजान् दृष्ट्वा कुन्तिभोजमुतांस्तथा ।
 द्रोणपुत्रेण निहताजः क्षत्तसारचः सङ्गक्षः ॥ १ ॥ युधिष्ठिरो भीम-
 सेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो
 दधुः ॥ २ ॥ सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवो महता शर-
 वर्षेण छादयामास भारत ॥ ३ ॥ ततः समभवद्बुद्धमतीव भयवर्धनम् ।
 त्वदीयानां परेषाञ्च घोरं विजयकान्तिणाम् ॥ ४ ॥ तं दृष्ट्वा समु-
 पायान्तं रुक्मपुङ्गवः शिलाशितैः । दशभिः सात्त्वतस्यार्थं भीमो
 विव्याध सायकैः ॥ ५ ॥ सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत ।
 सात्त्वतस्त्वभिसंकुद्धः पुत्राभिभिरभिप्लुनम् ॥ ६ ॥ वृद्धं वृद्धगुणै-
 र्युक्तं ययातिमिव नाहुपम् । विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनि-
 पातनैः ॥ ७ ॥ शक्त्या चैनं विनिर्मिथ पुनर्विव्याध सप्तभिः ।

सञ्जयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! अश्वत्थामाने राजा द्रुपदके
 तथा कुन्तिभोजके पुत्रोंका और सहस्रों राक्षसोंका संहार कर
 डाला, यह देखकर युधिष्ठिर, भीमसेन, पृथुपुत्र धृष्टद्युम्न और
 सात्यकिने तयार होकर फिर लड़नेका विचार किया ॥ १-२ ॥
 हे भरतवंशी राजन् ! राजा सोमदत्त सात्यकिको रणमें देखे फिर
 क्रोधमें भरगया, उसने बड़ी भारी बाणवर्षा कर सात्यकिको ढक
 दिया ॥ ३ ॥ इस समय तुम्हारे और शत्रुपक्षके सोधार्थोंमें बड़ा
 भयानक युद्ध होनेलगा ॥ ४ ॥ इस समय भीमने विजयाभिलाषी
 सोमदत्तको सामने आता देखकर, सात्यकिकी रक्षा करनेके
 लिये, पत्थरपर घिसेहुए सुवर्णकी पूछताले दशबाण उसके मारे
 सोमदत्तने सात्यकिके सौ बाण मारे तब सात्यकिको उसके ऊपर
 क्रोध आगया और उसने पुत्रशोकसे खिन्न हुए, वृद्धके गुणोंसे
 भरपूर तथा नहुषके पुत्र ययातिकी समान शीलसम्पन्न वृद्ध सोम-
 दत्तको, वज्रकी समान तीक्ष्ण प्रहार करनेवाले दशबाण मार कर
 उसको भीषण ६-७ इसप्रकार शक्तिके अनुसार उसको भीषण

ततस्तु सात्यकेरथे भीमसेनो नम्रं दृढम् ॥ ८ ॥ मुमोच परिघं
घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि । सात्वतोऽप्यग्निसङ्काशं मुमोच शर-
मुत्तमम् ॥ ९ ॥ सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि । युग-
पत् पेततुर्वीरे घोरौ परिघपार्श्वौ ॥ १० ॥ शरीरे सोमदत्तस्य
स प्रपात महारथः । व्यामोहिते तु तनये बाह्वीकस्तमुपाद्रवत् ११
विष्टजञ्जरवर्षाणि कालवर्षीय तोयदः । भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे
बाह्वीकं नवभिः शरैः ॥ १२ ॥ प्रपीडन्यमहात्मानं विव्याध रण-
मूर्धनि । प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि ॥ १३ ॥
निचखान महाबाहुः पुरन्दर इवाशनिम् । स तथाभिहतो भीमश्च-
कम्पे च मुमोह च ॥ १४ ॥ प्राप्य चेतश्च बलवान् गदामश्वै-
ससर्ज ह । सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्वीकस्य शिरोऽहरत् ॥ १५ ॥
स प्रपात इतः पृथ्व्यां घञ्जाहत इवाद्रिराट् । तस्मिन् विनिहते वीरे

फिर उसको सात बाण मारकर घायल कर डाला, तदनन्तर
भीमसेनने सात्यकिका प्रत्त ले एक नया तथा दृढ़ परिघ सोमदत्त
के मस्तक पर मारा और इसी समय क्रोधमें भरेहुए सात्यकिने
भी सुन्दर पर लगा हुआ अग्निकी समान अतितीक्ष्ण एक श्रेष्ठ
बाण सोमदत्तके हृदयमें मारा, ये घोर बाण और परिघ उस वीरके
ऊपर एकसाथ पड़े इससे वह महारथी मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर
पड़ा, पुत्रको मूर्छित देख बाह्वीक भीमके ऊपर दौड़ा ८-११ और जल
धरसाते हुए मेघकी समान बाणोंकी वृष्टि करनेलगा, तब भीमने
सात्यकिके कारण बाह्वीकको भी रणके मुहाने पर दश बाण
मारकर घींघडाला, तब तो प्रतीपके पुत्र बाह्वीकको क्रोध आगया
और इन्द्र जैसे वज्रका प्रहार करे; तैसे महाबुज बाह्वीकने भीमके
वक्षस्थलमें शक्ति मारी, शक्तिके प्रहारसे भीम काँपकर मूर्छित
होगया ॥ १२-१४ ॥ परन्तु थोड़ी ही देरमें भीम सावधान होगया
और उसने बाह्वीकके मस्तक पर गदा मार उसके मस्तकको तोड़

वाल्मीके पुरुषपर्वम् ॥ १६ ॥ पुत्रास्तेऽभ्यर्क्षन् भीमं दश दाशरथेः
समाः । नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः ॥ १७ ॥ दृढः सुहस्तो
विरजाः प्रमाथ्युग्रोऽनुयाप्यपि । तान् दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृहे
भारसाधनान् ॥ १८ ॥ एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु ।
ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः ॥ १९ ॥ चण्डशत-
प्रभन्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः । नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान्निहत्य
तयात्मजान् ॥ २० ॥ कर्णस्य दयितं पुत्रं दृपसेनमवाक्रिन्त् ।
ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ॥ २१ ॥ विव्याध
भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद्गली । ततः सप्त रथान् धीरः श्यालानां
तव भारत ॥ २२ ॥ निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोधयत्

हाला ॥ १५ ॥ वज्रके प्रहारसे महापर्वत जैसे पृथ्वीके ऊपर गिर
पड़ता है, तैसे ही वाल्मीकि भी गदाके प्रहारसे मरण पा पृथ्वीमें
ढह पड़ा, हे पुरुषश्रेष्ठ ! वाल्मीकि के मरनेपर रामचन्द्रकी समान
पराक्रमी तुम्हारे नागदत्त, दण्डरथ, महाभुज अयोभुज, दृढ़, सुहस्त,
विरज, प्रमाथी, उग्र और अनुयायी नामक दश पुत्र बाणोंकी
वृष्टि कर उसको पीड़ित करने लगे, भीमसेन युद्धके संकटको
सहने वाले उनको देखकर क्रोधमें भरगया और उनसे लड़नेके
लिये मजबूत हथियार लिये ॥ १६-१८ ॥ और उसने तुम्हारे प्रत्येक
पुत्रके मर्मभागमें एक २ बाण मारकर उनको मारहाला, तब वे
बल और प्राणरहित होकर, प्रचण्ड वायुके झोंकेसे हिलाहुआ
वृक्ष जैसे पर्वतके शिखर परसे गिर पड़े तैसे रणभूमिमें गिरपड़े
इसप्रकार भीमने दश बाणोंका प्रहार कर तुम्हारे दश पुत्रोंको
मारहाला, फिर कर्णके पुत्र दृपसेनके ऊपर भीमसेनने बाण
बरसाना आरम्भ करदिया ॥ १९-२० ॥ (यह देख) कर्ण
का भाई प्रसिद्ध वृकरथ भीमके बाण मारने लगा, तब बलवान्
भीम उसकी ओर धँसा ॥ २१ ॥ और हे भरवंतशी राजन् ! उस

अमर्यन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ॥ २३ ॥ शकुनेभ्रातरो वीरा
गवान्नः शरभो विशुः । सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महा-
रथाः ॥ २४ ॥ अभिद्रुत्य शरेस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन् । स ताड्य-
मानो नाराचैर्दृष्टिवैर्गैरिवाचलः ॥ २५ ॥ जघान पञ्चभिर्बाणैः
पञ्च चातिरथान्वली । तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरान् विसेलुर्नृप-
सत्तमाः ॥ २६ ॥ ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवानीकमशातयत् । मिषतो
कुम्भयोनेश्च पुत्राणां तव चानघ ॥ २७ ॥ अम्बष्ठान्मालवान्
शूरांस्त्रिगर्तान् स शिवीनपि । ग्राहिणोऽमृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे
युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥ अभीषाद्वान् शूरसेनान् बाल्हीकांश्च वशाति-
कान् । निहृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २९ ॥

शूरने तुम्हारे वीर और महारथी सालोंको बीस मारकर मार डाला
और शतचन्द्रका नाश कर डाला ॥ २३—२४ ॥ महारथी
शतचन्द्रको मरा देख कर शकुनिके भाई वीर गवान्न, सरल, विशु,
सुभग और भानुदत्त, ये पाँचों इस बातको सह न सके और
वे भीमके उपर चढ़ कर उस पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे,
भीमकी जलधाराएँ जैसे पर्वतपर पड़ती हैं, तैसे ही बाणधाराएँ
भीमपर पड़ने लगीं, तब बलवान् भीमसेनने पाँचोंको बाण मार
कर मार डाला इस प्रकार उन शूरोंको मरते देख कर बड़े २
राजे घबड़ाहटमें पड़ गए ॥ २४—२६ ॥ फिर युधिष्ठिरको
क्रोध चढ़ा तब उन्होंने द्रोणाचार्य और तुम्हारे पुत्रके सामने
सुहानेकी सेनाका संहार करना आरंभ कर दिया ॥ २७ ॥ क्रो-
धमें भरे हुए युधिष्ठिरने अम्बष्ठ, मालव, शूर, त्रिगर्त, और शिवि
राजाओंको युद्धमेंसे यमलोकको रवाना कर दिया ॥ २८ ॥ इतना
ही नहीं किन्तु अभीषादोंको, शूरसेनोंको, बाल्हीकोंको तथा
वशातिकोंको काट कर रणभूमिको लोहू और मांसकी कीचड़कर
रणभूमिको किचोदी बना दिया ॥ २९ ॥ और शूरवीर तथा महा योधा

योधियान् मालवाजान् मद्रकौरव गणान् युधि । प्राहिणोद्यमलो-
काय शूरान् वाणैर्युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥ इताहरत गृहीत विध्यत
व्यवकुन्तत । अभवत्तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ३१ ॥ सैन्यानि
द्रावयन्तन्तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् । चोदितस्तव पुत्रेण सायकै-
रभ्यवाकिरत् ॥ ३२ ॥ द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पाण्ड-
वम् । विव्याध सोऽपि तद्विव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्नवान् ॥ ३३ ॥
अस्मिन्नस्त्रे त्रिनिहते भारद्वाजो युधिष्ठिरे । वारुणं याम्यमाग्रं यं
त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ॥ ३४ ॥ चित्तेषु परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डु-
नन्दनम् । क्षिप्तानि क्षिप्यमानानि तानि चास्त्राणि धर्मजः ३५
जघानास्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन् । सत्यां चिकीर्षमाणातु
प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः ॥ ३६ ॥ प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यञ्च

मालवा और मद्रदेशके राजाओंको मृत्युलोकमें पहुँचा दिया ३०
इस समय राजा युधिष्ठिरके रथके आस पास, मारो, पकड़ो,
कैद करो, घायल करो काट डालो, इस प्रकार तुमुल शब्द होरहा
था ॥ ३१ ॥ परन्तु राजा युधिष्ठिर तुम्हारी सेनाको भगाए ही जाते
थे, यह देखकर तुम्हारे पुत्रने द्रोणचार्यसे युधिष्ठिर पर वाण
बरसानेके लिये कहा ॥ ३२ ॥ द्रोणने वायव्यास्त्र मारा युधिष्ठिरने भी
क्रोधमें भर बैसा ही दिव्य अस्त्र मार उनके अस्त्रको काट डाला ३३
युधिष्ठिरने द्रोणके अस्त्रको नष्ट कर डाला, तब तो द्रोणाचार्य
बहुत ही खिसियागए और उनके नाश करनेकी इच्छासे उनके
ऊपर वारुणास्त्र, याम्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, त्वाष्ट्र, सावित्रास्त्र नामक
वाण मारे, परन्तु महाबाहु धर्मराज इससे जरा भी नहीं डरे,
उन्होंने उन अस्त्रोंके ऊपर अस्त्र मारकर, द्रोणके छोड़ेहुए, छोड़े
जातेहुए तथा फेंके जातेहुए अस्त्रोंके टुकड़े २ कर डाले, यह देख
कर कुम्भसे उत्पन्नहुए, तुम्हारे पुत्रके हितैषी द्रोणाचार्यने हे भरत-
राज ! युधिष्ठिरका वध करनेकी अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके

भारत । जिघांसुर्धर्मतनय तव पुत्रहिते रतः ॥ ३७ ॥ पतिः कुरूणां
गजसिंहगामी विशालवक्त्राः पृथुलोहिताक्षः । प्रादुरश्चकारास्त्रमहीन-
तेजा माहेन्द्रमन्यत् स जघान तेन ॥ ३८ ॥ विहन्यमानेष्वस्त्रेषु
द्रोणः क्रोधसमन्वितः । युधिष्ठिरवधं प्रेषुर्ब्राह्मणस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥
ततो नाज्ञाशिपं किञ्चिद् घोरेण तमसाहते । सर्वभूतानि च त्रासं
परं जग्मुर्विशाम्पते ॥ ४० ॥ ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधि-
ष्ठिरः । ब्रह्मास्त्रैणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ४१ ॥ ततः
सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ । द्रोणपार्थौ महेश्वासौ सर्वयुद्ध-
विहारदौ ॥ ४२ ॥ ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् ।
व्यधमत् क्रोधताम्राक्षो वायव्याक्षेण भारत ॥ ४३ ॥ ते हन्यमाना

लिये इन्द्रास्त्र तथा प्राजापत्यास्त्रको प्रकट किया ॥ ३४ ॥ ३७ ॥
कुरुकुलनायक, सिंह तथा हाथीकी समान गतिवाले, विशाल
वक्त्रःस्थलवाले, विशाल और रक्त नेत्रवाले महातेजस्वी युधिष्ठिरने
उनके सामने माहेन्द्र नामक अस्त्र प्रकट कर उनके इन्द्रास्त्रके टुकड़े
कर डाले ॥ ३८ ॥ राजा युधिष्ठिर जब उनके अस्त्रोंके टुकड़े
करनेलगे, तब तो द्रोणाचार्य बड़े क्रोधमें भरगए और उन्होंने
युधिष्ठिरको मारनेके लिये उनके ब्रह्मास्त्र मारा, हे राजन् ! ब्रह्मा-
स्त्रके मारते ही चारों ओर अन्धकार फैल गया सब अन्धे हो गए
और सबोंके मनमें बड़ा भय बैठ गया ॥ ३९-४० ॥ परन्तु हे
राजन् ! युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्रको अपने सामने आता देखकर उसके
सामने ब्रह्मास्त्र मारकर द्रोणके अस्त्रको पीछेको लौटा दिया ॥ ४१ ॥
यह देखकर तुम्हारे मुख्य २ योधा, मनुष्योंमें श्रेष्ठ, सकल युद्धोंमें
कुशल तथा महाधनुषधारी द्रोण और धर्मराजकी प्रशंसा करने
लगे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर द्रोणाचार्य धर्मराजको छोड़, राजा द्रुपदकी
सेनाके पीछे पड़े और क्रोधसे लाल २ नेत्र करके वायव्यास्त्र मार
द्रुपदकी सेनाका संहार करनेलगे ॥ ४३ ॥ पश्चाल देशके राजे

द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्वन् भयात् । पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च
महात्मनः ॥ ४४ ॥ ततः किरीटी भीमश्च सहसा संग्ववर्षताम् ।
महदभ्यां रथवंशाभ्यां प्रतिगृह्य वलं तदा ॥ ४५ ॥ वीभत्सुर्दक्षिणं
पार्श्वमुत्तरञ्च वृकोदरः । भारद्वाजं शरीयाभ्यां महदभ्यामभ्य-
वर्षताम् ॥ ४६ ॥ कैकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च गह्वीजसाः ।
अन्वगच्छन्महाराज मत्स्यारश्च सह सात्वतैः ॥ ४७ ॥ ततः सा
भारती सेना बध्यमाना किरीटिना । तमसा निद्रया चैव पुनरेव
व्यदीर्यत ४८ द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तत्र सुतेन च । नाशक्यन्त
महाराजा योधा वारयितुं तदा ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि द्रोण-
युधिष्ठिरयुद्धे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

सञ्जय उवाच । उदीर्यमाणं तं दृष्ट्वा पाण्डवानां मदङ्गलम् ।

द्रोणाचार्यके भयसे भीमसेन तथा महात्मा अर्जुनके सामनेही मागने
लगे ॥ ४४ ॥ तब अर्जुन और भीम एक साथ बड़ीभारी रथसेनाको
साथमें ले द्रोणसे लड़नेके लिये उनके सामने पहुँच गए, दाहिनी
ओरसे अर्जुन और बाई ओरसे भीम द्रोणाचार्य पर बड़ीभारी बाण
वर्षा करते हुए टूटपड़े ४५-४६ हे महाराज ! इस समय महायलबान्
केकय, सृञ्जय, पाञ्चाल, मत्स्य और सात्वत भी उसके साथ लड़ने
के लिये टूटपड़े ॥ ४७ ॥ अर्जुनने बाण मारकर कौरवोंकी सेनाका
संहार करना आरंभ करदिया तब निद्रा और अन्धकारके कारण
(भी.) कौरवसेनाका नाश होने लगा ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! द्रोण
और आपके पुत्रोंने पाण्डवपक्षके योधाओंको रोकनेका बड़ा
प्रयत्न किया परन्तु वे उनको आगे बढ़नेसे रोक न सके ॥ ४९ ॥
एकसौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५७ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! पाण्डवोंकी सेनाको उभार
खाती हुई देखकर दुर्योधनने समझा कि-हम अब इस सेनाको

अविसंहाञ्च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥१॥ अयं स कालः
सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल । त्रायस्व समरे कर्णं सर्वान् योधा-
न्महारथान् ॥ २ ॥ पञ्चालैः कैकयैर्मत्स्यैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृत्तान् समन्तात् संक्रुद्धैर्निश्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ३ ॥ एते नदन्ति
संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः । शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां
रथप्रजाः ॥४॥ कर्ण उवाच । परित्रातुमिहं प्राप्तो यदि पार्थ पुर-
न्दरः । तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥ ५ ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत । हन्तास्मि पाण्डु-
तनयान् पञ्चालाश्च सगागतान् ॥ ६ ॥ जन्यन्ते प्रतिदास्यामि
वासवस्यैव पाश्र्वकिः । प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव ७

पीछेको न हटा सकेंगे, अतः उसने कर्णसे कहा कि—॥१॥ हे मित्र-
वत्सल ! अब अनीका समय आनलगा है, यह ही समय मित्रता
दिखानेका है, अतः हे कर्ण ! अब तू युद्धमें मेरे सब योधाओंकी
रक्षा कर ॥२॥ मेरे महारथी योधा, बड़े ही क्रोधमें भरेहुए और
सर्पोंकी समान फुंकारे मारतेहुए पाञ्चाल, मत्स्य, कैकय और
महारथी पाण्डवोंसे घिर गए हैं, (देख ! देख ॥) यह विजय-
शाली पाण्डव और पाञ्चालोंके बहुतसे महारथी हर्षमें आकर
गर्जना कर रहे हैं ॥३-४॥ दुर्योधनकी ऐसा बात सुनकर कर्ण
धोला कि—इस लड़ाईमें यदि इन्द्र भी अर्जुनकी रक्षा करनेके
लिये आवेगा तो भी मैं उसका शीघ्र ही पराजय करूँगा और
पीछे अर्जुनका नाश करूँगा ॥ ५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुम
घबड़ाओ मत ! मैं तुम्हारे सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि—मैं
इकला ही इकट्ठेहुए सकल पाण्डव और पाञ्चाल राजाओंका
नाश कर डालूँगा ! ॥ ६ ॥ और अग्नि जैसे इन्द्रको विजय
दिलवाई थी, तैसे ही मैं तुम्हको विजय दिलवाऊँगा, मैं तुम्हारा
हित करनेके लिये ही जीवन धारण कर रहा हूँ ॥ ७ ॥ सब

(१००८) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौअष्टावनवौ]

सर्वेपामेव पार्थानां फाल्गुनो बलवत्तरः । तस्यामोघां विमोक्षयामि
शक्तिं शक्रविनिर्मिताम् ॥ ८ ॥ तस्मिन् हते महेष्वासे भ्रातर-
स्तस्य मानद । तच्च वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः ६
मयि जीवन्ति कौरव्य विपादं मा कृथा क्वचित् । अहं जेष्यामि
समरे सहितान् सर्वपाण्डवान् १० पञ्चालान् कैकयाश्चैव वृष्णीं-
श्चापि समागतान् । बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदि-
नीम् ॥ ११ ॥ सञ्जय उवाच । एवं ब्रुवाणं कर्णन्तु कृपः शार-
द्रतोऽब्रवीत् । समयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥ १२ ॥
शोभनं शोभनं कर्णं सनाथः कुरुपुङ्गवः । त्वया नाथेन राधेय
वधसा यदि सिध्यति ॥ १३ ॥ बहुशः कथ्यते कर्णं कौरवस्य
समीपतः । न तु ते विक्रमः कश्चिद् दृश्यते फलमेव वा ॥ १४ ॥

पाण्डवोंमें अर्जुन बलवान् है, अतः मैं इन्द्रकी दी हुई अमोघ
शक्ति उसके ही मारूँगा और उससे वह मरजायगा ॥८॥ और
हे मानदेनेवाले राजन् ! उस महाधनुषधारीकी मृत्यु होनेके पीछे
उसके भाई या तो हमारे अधीन होजायेंगे या वनको चले
जावेंगे ॥६॥ कुरुवंशी राजन् ! मैं जब तक जीरहा हूँ तब तक तू
अपने मनमें कुछ भी खेद न कर, क्योंकि-मैं रणभूमिमें इकट्ठेहुए
सब पाण्डवोंका पराजय भी करूँगा ॥ १० ॥ और रणभूमिमें
इकट्ठेहुए पाञ्चाल,कैकय और वृष्णि राजाओंके बाण मार उनके
टुकड़े टुकड़े कर यह पृथिवी तुम्हारे अधीन करूँगा ॥ ११ ॥
सञ्जयने कहा कि-कर्ण इसप्रकार कह रहा था कि-इतनेमें ही
महाभूमि कृपाचार्यने हँसी करनेके ढङ्गसे सूतपुत्रसे कहा कि-१२
हे कर्ण ! तूने बड़ा अच्छा विचार किया है, क्योंकि-तेरे बड़े वननेसे
कुरुपुङ्गव दुर्योधन सनाथ हुआ है, परन्तु हे राधापुत्र ! तेरे कहने
मात्रसे ही काम बनजाय तो यह ठीक हो ॥१३॥ तू इस कौरव-
सेनाके सामने बहुत बकवाद किया करता है, परन्तु तेरा पराक्रम

समागमः पाण्डुमुतैर्दृष्टे बहुशो युधि । सर्वत्र निर्जितश्चासि
पाण्डवैः सूतनन्दन ॥ १५ ॥ हियमाणे तदा कर्णं गन्धर्वैः
धृतराष्ट्रजे । तदायुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकोऽग्रे पलायिथाः ॥ १६ ॥
विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः । पार्थेन निर्जिता युद्धे
त्वञ्च कर्णं सहायुजः ॥ १७ ॥ एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य
रणाजिरे । कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान् सर्वपाण्डवान् ॥ १८ ॥
अनुवन् कर्णं युध्यस्व कथमे बहु सूतज । अनुवावा विक्रमेद्यस्तु
तद्वै सत्पुरुषव्रतम् ॥ १९ ॥ गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवा-
फलम् । निष्फलो दृश्यसे, कर्णं त्वञ्च राजा न बुध्यते ॥ २० ॥
तावद् गर्जसि राधेय यावत् पार्थ न पश्यसि । आरात् पार्थ हि
ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं पुनः ॥ २१ ॥ त्वमनासाद्य तान् बाणान्

या उसका फल तो मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता ॥ १४ ॥ युद्धमें
पाण्डवोंके साथ तेरा अनेकवार समागम हुआ है यह मैंने देखा है,
परन्तु समागमके सब अवसरों तू पर पाण्डवोंसे हारा ही है ॥ १५ ॥
हे कर्ण ! जब गन्धर्व धृतराष्ट्रके पुत्रोंको कैद करके लिये जाते थे,
तब सेनाओंने तो युद्ध किया था, परन्तु तू तो तहाँसे पलायन नमः
ही करगया था ॥ १६ ॥ हे कर्ण ! विराट नगरमें सब कौरव
इकट्ठे थे उस समय (अकेले) अर्जुनने युद्धमें कौरवोंको, तुझे
और तेरे छोटे भाईको हरा दिया था ॥ १७ ॥ तुझमें तो रणमें
अकेले अर्जुनको भी जीतनेकी शक्ति नहीं है, तो फिर तू कृष्ण-
सहित सकल पाण्डवोंको जीतनेका हौसला कैसे करता है ? ॥ १८ ॥
अरे ! तू बहुत बोलना छोड़ दे और चुपचाप युद्ध कर, बिना कहे
मुने युद्ध करना यह सत्पुरुषोंका व्रत है ॥ १९ ॥ हे सूतपुत्र ! शरद्वृष्टि
के मेघकी गर्जना जैसे निष्फल होती है, तैसे ही तेरी गर्जना भी
निकम्बी है, परन्तु राजा इस बातको समझता नहीं ॥ २० ॥ हे राधापुत्र !
जब तक अर्जुन दिखाई नहीं देता है, तब तक ही तू गाजता है अर्जुन

फाल्गुनस्य विगर्जसि । पार्थसायकविद्वस्य दुर्लभं गर्जितं तव २२
 बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः । धनुषा फाल्गुनः
 शूः कर्णः शूरो मनोरथैः ॥ २३ ॥ तोपितो येन रुद्रोऽपि कः
 पार्थ प्रतिघातयेत् । एवं स रुपितस्तेन तदा शारद्वतेन ह ॥ २४ ॥
 कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाब्रवीत् । शूराः गर्जन्ति सततं
 प्राहृषीव बलाहकाः ॥ २५ ॥ फलञ्चाशु प्रयच्छन्ति वीजमुद्धं
 क्षिताविव । दोषमत्र न पश्यामि शराणां रणमूर्धनि ॥ २६ ॥
 तच्चद्विकथ्यमानानां भारञ्चोद्वहतां युधि । यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा
 हि व्यवस्यति ॥ २७ ॥ दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ।
 व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ॥ २८ ॥ हत्वा पाण्डु-

को देखनेके पीछे तेरा गर्जना दुर्लभ होजायगा ॥ २१ ॥ अर्जुनके
 बाणोंके प्रहारका अनुभव न होनेसे तू गर्ज रहा है और अर्जुनके
 बाणोंसे विंध जानेपर तेरा गर्जना कठिन होजायगा ॥ २२ ॥
 क्षत्रिय बाहुशूर होता है, ब्राह्मण वाक्-शूर होता है, अर्जुन
 धनुषशूर है और कर्ण तो मनोरथशूर है ॥ २३ ॥ जिसने
 शिवको भी पराक्रम दिखा कर प्रसन्न किया है उस अर्जुनको
 कौन मार सकता है ? शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने इस प्रकार कह
 कर कर्णको बहुत ही कुपित किया ॥ २४ ॥ तब महायोधा
 कर्णने कृपाचार्यसे कहा कि-शूर वर्षा ऋतुके मेघकी समान सर्वदा
 गरजते रहते हैं ॥ २५ ॥ और ऋतुमें बोये हुए बीजकी समान शीघ्र
 ही फल देते हैं रणके मुहाने पर रणके भारको उठाने वाले-शूर
 बोलते हैं, इसमें मेरी समझमें कुछ दोष, नहीं है मनुष्य जिस
 भारको उठानेका मनमें विचार करके उसके लिये प्रयत्न करता
 है, दैव अवश्य ही उसकी सहायता करता है, मैं व्यवसायको
 अपना साथी बना अन्तःकरणसे रणके भारको उठाऊँगा और
 युद्धमें कृष्ण तथा सात्यकिसहित पाण्डुपुत्रोंका नाश करनेके

सुतानाजौ सकृष्णान् सहसात्त्वतान् । गर्जामि यद्यहं विप्र
तव किन्तत्र नश्यति ॥ २६ ॥ वृथा शूरा न गर्जन्ति
शारदा इव तोयदाः । सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति
पण्डिताः ॥ २७ ॥ सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्ण-
पाण्डवौ । उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम ॥ २८ ॥
पश्य त्वं गर्जितस्यास्य फलं मे विप्र साधुगान् । हत्वा पाण्डुसुता-
नाजौ सकृष्णान् सह सात्त्वतान् । दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं
इतकण्टकाम् । कृप उवाच । मनोरथप्रलापो मे न ग्राह्यस्तव
सूतन ॥ २९ ॥ सदा क्षिपति वै कृष्णौ धर्मराजञ्च पाण्डवम् ।
ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥ ३० ॥ देवगन्धर्वयक्षाणां
मनुष्योरगराक्षसाम् । दंशितानामपि रणेऽप्यजेयौ कृष्णपाण्डवौ ३१

पीछे (जय) गर्जना करूँगा ? तो हे विप्र ! इसमें तुम्हारा क्या
विगड़ता है ? ॥ २६-२८ ॥ शूर शत्रु ऋतुके मेघधी समान वृथा
गर्जना नहीं करते हैं ; परन्तु अपनी सामर्थ्यको पहिलेसे ही
जान कर पीछेसे गर्जते हैं ॥ २९ ॥ हे गौतमवंशी कृप ! मैं आज
रणमें तयार खड़े हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनका पराजय करनेका
मनमें उत्साह करता हूँ और इस लिये ही गर्जता हूँ ॥ ३० ॥
हे विप्र ! तुम मेरी इस गर्जनाके फलको देखो ! मैं रणमें कृष्ण
और सात्यकिसहित पाण्डवोंको मार कर यह निष्कण्टक पृथ्वी
दुर्योधनको सौंपूँगा ॥ ३१ ॥ कृपाचार्यने कहा कि—अरे कर्ण !
यह तेरी चाईकी समान बकवाद किसी कामकी नहीं है ! तू सदा
कृष्णकी तथा पाण्डुपुत्र धर्मराजकी निन्दा किया करता है ॥ ३२ ॥
युद्धकुशल वे दोनों जने जहाँ पर हैं, तहाँ ही विजय है, कवचधारी
श्रीकृष्णका तथा अर्जुनका संग्राममें देव, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य,
उरग और राक्षस भी पराजय करनेकी शक्ति नहीं रखते; तो
फिर दूसरेकी तो बात ही क्या ! ॥ ३३-३५ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर

ब्राह्मण्यः सत्यवाग्दान्तो गुरुदैवतपूजकः । नित्यं धर्मरतश्चैव कृता-
स्त्रश्च विशेषतः ॥ ३६ ॥ धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भ्रातरश्चास्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ॥ ३७ ॥ गुरुवृत्तिरताः
प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः । सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः
महारिणः ॥ ३८ ॥ धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः ।
चन्द्रसेनो रुद्रसेनः कीर्तिधर्मा ध्रुवोऽधरः ॥ ३९ ॥ वसुचन्द्रो दामचन्द्रः
सिंहचन्द्रः सुतेजनः । द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ४०
येपामर्थाय संयतो मत्स्यराजः सहानुजः । शतानीकः सूर्यदत्तः
श्रुतानीको श्रुतध्वजः ॥ ४१ ॥ वलानीको जयानीको जयाश्वो
रथवाहनः । चन्द्रोदयः समरथो विराटभ्रातरः शुभाः ॥ ४२ ॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च राज्ञसश्च घटात्कचः । येपामर्थाय युध्यन्ते न तेषां
विद्यते क्षयः ॥ ४३ ॥ एते चान्ये च बहवो गणाः पाण्डुसुतस्य

ब्राह्मणोंके रक्षक, सत्यवादी, दान्त, गुरु और देवताओंके पूजक
हैं, धर्मके ऊपर सदा प्रेम रखते हैं, प्रायः सब ही अस्त्रोंको जानते हैं,
धीर और कृतज्ञ हैं, उनके भाई भी बलवान् हैं और सब प्रकारकी
अस्त्रविद्याओंमें कुशल, बुद्धिमान्, नित्य धर्मात्मा, यशस्वी, बन्धु
वाले, इन्द्रकी समान पराक्रमी और बड़ा प्रेम करने वाले योद्धा हैं;
उनकी सहायता करनेके लिये धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रुमुखका
पुत्र, जनमेजय, चन्द्रसेन, रुद्रसेन, कीर्तिधर्मा, ध्रुव, अधर, वसु-
चन्द्र, दामचन्द्र, सिंहचन्द्र, सुतेजन, द्रुपदराजके पुत्र तथा अस्त्रोंके
बड़े भारी विद्वान् राजा द्रुपद आदि सब डटे खड़े हैं ॥ ३६-४० ॥
उनके काममें सहायता करनेके लिये छोटे भाई सहित राजा
मत्स्य, शतानीक, सूर्यदत्त, श्रुतानीक, श्रुतध्वज, वलानीक, जयानीक
जयाश्व, रथवाहन, चन्द्रोदय, समरथ, राजा विराटके सद्गुणी
भाई, नकुल, सहदेव द्रौपदीके पुत्र, राज्ञस घटात्कच आदि आये
हैं और वे युद्ध कर रहे हैं, अतः पाण्डवोंका कभी भी नाश नहीं

वै । कामं खलु जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४४ ॥ सयज्ञ-
 राक्षसगणं सभूतशुजगद्विषम् । निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वति भीम-
 फाल्गुनौ ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद् घोरचक्षुषा ।
 अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ॥ ४६ ॥ कथं तान् संयुगे
 कर्णं जेतुमुत्सहसे परान् । महानपनयस्त्वेषस्तव नित्यं हि सूतज ४७
 यस्त्वमुत्ससे योद्धुं समरे शौरिणा सह । सञ्जय उवाच । एव-
 मुक्तस्तु राधेयः प्रहसन् भरतर्षभ ॥ ४८ ॥ अब्रवीच्च तदा कर्णो
 गुरुं शारद्वतं कृपम् । सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् पाण्डवान् प्रति
 यद्वचः ॥ ४९ ॥ एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै ।
 अजेयाश्चरणे पार्था देवैरपि सवासवैः ॥ ५० ॥ सदैत्ययज्ञगन्धर्वैः

होसकता ॥ ४१-४३ ॥ ये तथा और बहुतसे पाण्डुपुत्रके अनु-
 चर सहायताके लिये आये हैं, भीम तथा अर्जुन चाहें तो देव
 असुर, मनुष्य, यज्ञ, राक्षस, भूत, सर्प और हाथियोंसहित सब
 जगत्का अस्त्रके बलसे ही सम्पूर्ण रीतिसे संहार कर डालें ४४।४५
 और राजा युधिष्ठिर जो चाहें तो केवल अपनी घोर दृष्टिसे ही
 पृथ्वीको बालकर भस्म कर डालें, हे कर्ण ! जिनके लिये अप-
 मेय बलवाले श्रीकृष्ण कवच पहनकर खड़े हैं, ऐसे पाण्डवोंको
 युद्धमें जीतनेका तू कैसे हौसला करता है, हे सूतपुत्र ! तू सदा
 युद्धमें श्रीकृष्णके साथ लड़नेका उत्साह करता है, तो यह तेरी
 सदाकी बड़ी भारी भूल है, सञ्जयने कहा कि-हे भरतवंशमें
 श्रेष्ठ राजन् ! इसप्रकार कृपाचार्यने कर्णसे कहा, तब राधापुत्र
 कर्ण हँसा और शरद्धान्तके पुत्र गुरु कृपाचार्यसे कहने लगा, कि-
 “हे ब्रह्मन् ! तुमने पाण्डवोंके विषयमें जो कुछ कहा वह सत्य
 है ॥ ४६-४९ ॥ तुमने जो बातें बताईं, उनके अतिरिक्त और
 भी बहुतसे गुण पाण्डवोंमें हैं, और दैत्य, गन्धर्व, पिशाच, सर्प
 राक्षस और इन्द्रसहित देवता भी रणमें पाण्डवोंका पराजय

पिशाचोरगराक्षसैः । तथापि पार्थान् जेष्यामि शक्त्या वासव-
 दत्तया ॥ ५१ ॥ ममाप्यभोगा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज । एतया
 निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥ ५२ ॥ हते तु पाण्डवे कृष्णे
 भ्रातरश्चास्य सोदराः । अनर्जुना न शक्यन्ति महीं भोक्तुं कथ-
 ङ्क्वन् ॥ ५३ ॥ तेषु सर्वेषु नष्टेषु पृथिवीयं ससागरा । अय-
 स्नात् कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥ ५४ ॥ मृनीतरिह
 सर्वार्था सिध्यन्ते नात्र संशयः । एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि
 गौतम ॥ ५५ ॥ त्वन्तु वृद्धश्च विप्रश्च अशक्तश्चापि संयुगे । कृत-
 स्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ५६ ॥ यद्येवं वक्ष्यसे भूयो
 ममामियमिह द्विज । ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ५७
 यच्चापि पाण्डवान् विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे । भीषयन् सर्व-

नहीं करसकते (यह भी मैं जानता हूँ) तो भी मुझे इन्द्रने जो
 शक्ति दी है, उस शक्तिसे मैं पाण्डवोंका पराजय करूँगा,
 हे ब्रह्मन् ! मुझे इन्द्रने अमोघ शक्ति दी है, उस शक्तिसे मैं रणमें
 अर्जुनको मार डालूँगा ॥ ५०-५२ ॥ और अर्जुनका मरण
 होनेके पीछे अर्जुनके भाई, अर्जुनके बिना किसी प्रकारभी पृथ्वी
 पर राज्य नहीं कर सकेंगे ॥ ५३ ॥ उन सर्वोंका नाश होनेके
 पीछे समुद्रपर्यन्तकी समस्त पृथ्वी कौरवोंके हाथमें आजावेगी ५४
 हे गौतम ! इस संसारमें सब कार्य उत्तम प्रकारकी युक्तियोंसे ही
 सिद्ध होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है, और मैं भी इस बातको
 अच्छी तरह समझकर ही गरजता हूँ ॥ ५५ ॥ और तुम्हारे
 लिए कहूँ तो तुम तो जन्मसे ही ब्राह्मण हो, अवस्थायें वृद्ध हो,
 युद्ध करनेमें असमर्थ हो और पाण्डवोंके ऊपर प्रेम रखते हो,
 इस मोहके कारण ही तुम मेरा अपमान करते हो ॥ ५६ ॥
 परन्तु देख ओ ब्राह्मण ! अबसे आगेको तू जो मेरा इसप्रकार
 अपमान करेगा तो मैं तेरी जीभको तलवारसे काट लूँगा ॥ ५७ ॥

सैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥ ५८ ॥ अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथा-
वद् ब्रुवतो द्विज । दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ॥ ५९ ॥
दुःशासनो वृषसेनो मद्वराजस्त्वमेव च । सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा
द्रौणिर्विंशतिः ॥ ६० ॥ तिष्ठेयुर्दक्षिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः ।
जयेदेतान्नरः को हि शक्रतुन्यत्रलोऽप्यरिः ॥ ६१ ॥ शूराश्च हि
कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः । धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे
सुरानपि ॥ ६२ ॥ एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधाथिनः ।
जयमाकांक्षमाणा वै कौरवेयस्य दक्षिताः ॥ ६३ ॥ दैवायत्तमहं मन्ये
जपं सुबलिनमपि । यत्र भीष्मो महाबाहुः शंते शरशताचितः ॥ ६४ ॥
विकर्णश्चित्रसेनश्च बाल्हीकश्च जयद्रथः । भूरिश्रवा जयश्चैव

अरे दुर्बुद्धि ! ओ विम ! तू युद्धमें पाण्डवोंकी स्तुति करना
चाहता है और कौरवोंकी सब सेनाको भयभीत करना चाहता
है, परन्तु इस विषयमें मैं तुझसे सत्य बात कहता हूँ सुन !
दुर्योधन, द्रोण, शकुनि, दुर्मुख, दुःशासन, वृषसेन, मद्वराज,
सोमदत्त, भूरी, अश्वत्थामा, विंशतिये सब युद्धकुशल योधा कवच
धारण कर जहाँ खड़े होजायें, तहाँ इन्द्रकी समान भी बलवान्
कौनसा पुरुष इनका पराजय करनेकी शक्ति रखता है ५८-६१
रे ! अपने शूर, अस्त्रनिपुण, बलवान्, स्वर्गको पानेकी उत्कण्ठा
वाले, रणके धर्मको जाननेवाले और युद्धकुशल योधा रणमें
देवताओंका भी नाश करडालें ऐसे हैं ॥ ६२ ॥ वे योधा शरीर पर
कवच धारण करके, दुर्योधनकी विजय दिलानेकी इच्छासे पाण्डवों
का वध करनेके लिये रणमें खड़े रहेंगे ॥ ६३ ॥ परन्तु विजय
होना न होना तो प्रारब्धके अधीन है, मैं तो रणमें बलवान्की
विजय भी दैवाधीन ही मानता हूँ, क्योंकि—जहाँ पर महाशुज
भीष्म, सैकड़ों बाणोंसे घायल होकर अभीर रणमें पड़े हैं ६४
विकर्ण, चित्रसेन, बाल्हीक, जयद्रथ, भूरिश्रवा, जय, जलसंध,

जलसन्धः सुदक्षिणः ॥ ६५ ॥ शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च
वीर्यवान् । एते चान्ये च बहवो देवैरपि च दुर्जयाः ॥ ६६ ॥ निहता
समरे शूराः पाण्डवैर्वलवत्तराः । किमन्यदैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषा-
धमा ॥ ६७ ॥ यश्चैतान् स्तौपि सततं दुर्योधनरिपून् द्विज । तेषामपि हताः
शूरा शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६८ ॥ क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां
पाण्डवैः सह । प्रभावं नात्र पश्यामि पाण्डवानां कथञ्चन ॥ ६९ ॥
यस्तान् बलवतो नित्यं मन्यसे हि द्विजाधम । यतिष्येऽहं परं
शक्त्या योद्धुं तैः सह संयुगे ॥ ७० ॥ दुर्योधनहितार्थाय जयो देवे
प्रतिष्ठितः ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षटोत्कचवधपर्वणि कृपकर्ण-
वाक्ये अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

सञ्जय उवाच । तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम् ।

सुदक्षिण, महारथी शल, पराक्रमी भगदत्त आदि राजे तथा दूसरे
राजे, कि-जिनको देवता भी कठिनातासे जीत संकते थे ॥ ६५-६६
उन महाबलवान् और शूर राजाओंका भी पाण्डवोंने संहार कर
डाला है, तो ओ पुरुषाधम ! इसमें तू दैवयोगके सिवाय और क्या
समझता है ? ॥ ६७ ॥ ओ ब्राह्मण ! तू बारंवार दुर्योधनके शत्रुओंकी
ही प्रशंसा करता है, परंतु उनके भी तो सैंकड़ों और सहस्रों योधा मारे
गए हैं ॥ ६८ ॥ मैं तो इस युद्धमें पाण्डवोंका किसी प्रकारका भी
प्रभाव नहीं देखता, क्योंकि कौरव और पाण्डव दोनोंकी सेनाओंका
एकसा ही संहार हुआ है ॥ ६९ ॥ तो भी हे अधम ब्राह्मण ! तू हमेशा
उनको बलवान् मानता है, अतः मैं भी दुर्योधनका हित करनेके
लिये यथाशक्ति पाण्डवोंके सामने लड़नेका उद्योग करूँगा और
विजय तो प्रारब्धाधीन है ॥ ७० ॥ एकसौ अठ्ठावनवाँ अध्याय समाप्त
सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! कर्णने कठोर वचन कहकर
मेरे मामाका अपमान किया, यह देखकर अश्वत्थामा तलवार

खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिर्भ्यपतद् द्रुतम् ॥१॥ ततः परमसंकुलः
 सिंही मरामिव द्विपम् । प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्य-
 यात् ॥ २ ॥ अश्वत्थामोवाच । यदर्जुनगुणास्तध्यान् कीर्त्तयानं
 नराधम । शूरं द्वेषात् सुदुबुद्धे त्वं भर्त्सयसि पातुलम् ॥ ३ ॥
 विकृत्यमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम् । दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न
 कञ्चिद्वर्णयन्मूढे ॥ ४ ॥ क्व ते वीर्यं क्व चास्त्राणि यस्त्रां
 निर्जित्य संपुगे । गाण्डीवधन्वा हतवान् प्रेक्षतस्ते जयद्रथम् ॥ ५ ॥
 येन साक्षान्महादेवः समरे योधितः पुरा । तमिच्छसि वृथा जेतुं
 सूताधम मनोरथैः ॥ ६ ॥ यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रधृतां वरम् ।
 जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥ ७ ॥ लोकैक-

उठाकर वेगके साथ कर्णके ऊपर झपटा ॥ १ ॥ और कुरुराज
 दुर्योधनके सामने ही, बड़ेभारी क्रोधमें भर, सिंह जैसे मदमत्त
 हाथीसे कहे तैसे अश्वत्थामा कर्णसे कहनेलगा कि—॥ २ ॥ अरे
 ओ नराधम ! अरे ओ दुष्टबुद्धि कर्ण ! मेरे शूर मामा अर्जुनके
 गुणों की सच्ची ही प्रशंसा कर रहे हैं परन्तु तू (अर्जुनके ऊपर)
 द्वेष रखनेके कारण उनका तिरस्कार करता है ॥ ३ ॥ आज तू
 बड़ेभारा घमण्डमें भर शूरताके कारण सब लोकोंमें इक्कड़ धनुष-
 धारी नामसे प्रसिद्ध अर्जुनकी निन्दा करता है और किसीको
 भी (अपनी समान) नहीं गिनता है ॥ ४ ॥ परन्तु गाण्डीव-
 धनुषधारी अर्जुनने जब तेरा पराजय कर, तेरे सामने ही जयद्रथको
 मार डाला, उस समय तेरा पराक्रम कहाँ गया था, और तेरे अस्त्र
 कहाँ गये थे ? ॥ ५ ॥ ओ अधम कर्ण ! जिसने पहले युद्धमें
 साक्षात् महादेवके साथ युद्ध किया है, उसको पराजय करनेका
 तू वृथा ही मनोरथ करता है ॥ ६ ॥ इन्द्र, देवता और दैत्य इकट्ठे
 होकर भी, श्रीकृष्णके साथमें रहते हुए सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ
 अर्जुनका पराजय नहीं कर सकते ॥ ७ ॥ तो फिर हे दुष्टबुद्धिवाले

वीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे । किम्पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैर्भिर्व-
 ल्लुधाधिपैः ॥ ८ ॥ कर्णं पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम । एष
 तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । तम-
 यतन्तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम् । न्यवारयन्महातेजाः कुपश्च
 द्विपदाम्बरः ॥ १० ॥ कर्ण उवाच । शूरोऽयं समरयत्नाधी दुर्म-
 तिश्च द्विजाधमः । आसादयतु मर्द्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम ॥ ११ ॥
 अश्वत्थामोवाच । तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते ।
 दर्पमुत्थितमेतरो फान्मुनो नाशयिष्यति ॥ १२ ॥ दुर्योधन उवाच ।
 अश्वत्थामन् प्रसीदस्व चन्तुमर्हसि मानद । कोपः खलु न कर्त्तव्यः
 सूतपुत्रं कथञ्चन ॥ १३ ॥ त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्राजे च

सूत ! संसारमें वीरतामें इक्कड़ गिने जातेहुए अजित अर्जुनको
 तू इन प्राकृत (साधारण) योधाओंके साथमें रहकर युद्धमें कैसे
 जीत सकेगा ॥ ८ ॥ ओ दुर्बुद्धि नराधम कर्ण ! खड़ा रह और
 देख कि-अभी मैं स्वयं तेरे धड़ परसे तेरे मस्तकको उतार लेता
 हूँ ॥ ९ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! फिर अश्वत्थामा वेगसे
 कर्णकी ओर धँसा तब तुरन्त ही स्वयं राजा दुर्योधनने और
 महातेजस्वी कृपाचार्यने उसको पकड़ लिया ॥ १० ॥ कर्ण जोला
 हे राजन् ! यह दुर्बुद्धि द्विजोंमें नीच शूर ब्राह्मण संग्रामकी हामी
 भरनेवाला है, इसको तू पछाड़ दो, भले ही यह आज मेरे परा-
 कर्मका स्वाद चख ले ॥ ११ ॥ अश्वत्थामाने कहा, कि-“अरे
 दुर्बुद्धि कर्ण ! हम तो तेरे अपराधको सहन करते हैं, परन्तु अर्जुन
 तेरे वढ़ेहुए गर्वको उतारेगा” ॥ १२ ॥ दुर्योधनने कहा, कि-हे
 मान देनेवाले अश्वत्थामा ! क्रोधको दूर करके प्रसन्न हो ! आपको
 तो अपराधकी क्षमा देनी ही उचित है ! कर्णके ऊपर किसीप्रकार
 भी कोप करना आपको उचित नहीं है ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ !
 मैंने तुम्हारे, कर्णके, कृपाचार्यके, द्रोणके, सुचलपुत्रके तथा मद्र-

सौवले । महत्-कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसन्धाम ॥ १४ ॥ एते
ह्यभिमुखा सर्वे राधेयेन युयुत्सवः । आयान्ति पाण्डवाः ब्रह्मन्ना-
हयन्तः सयन्ततः ॥ १५ ॥ सञ्जय उवाच । प्रसाद्यमानस्तु ततो
राज्ञा द्रौणिर्महामनाः । प्रससाद महाराज क्रोधवेगसमन्वितः १६
ततः क्रुप उवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः । सौम्यस्वभावाद्वाजेन्द्र-
क्षिप्रमागतपार्दवः ॥ १७ ॥ क्रुप उवाच । तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः
सूतान्मज सुदुर्मते । दुर्पुष्टिसक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति १८
सञ्जय उवाच । ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
अजगमुः सहिताः कर्णो तर्जयन्तः समन्ततः ॥ १९ ॥ कर्णोऽपि
रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान् । कौरवाग्रैः परिवृतः शक्रो देव-
गणैरिव ॥ २० ॥ पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुषलमाश्रितः । ततः

राजके ऊपर ही इस महाकार्यका भार रक्खा है, अतः हम घेलेसे
रहो । ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! ये सब पाण्डव लड़नेकी इच्छासे
श्रीकृष्णको साथमें लेकर राधाके पुत्र कर्णके साथ लड़नेको चढ़े
चले आते हैं और चारों ओरसे हमें बुलारहे हैं ॥ १५ ॥ सञ्जयने
कहा कि-इसप्रकार दुर्योधनने अश्वत्थामाको भीठीर बातें कहकर
प्रसन्न किया, तब क्रोधमें भराहुआ अश्वत्थामा शान्त होगया १६
और हे राजन् ! वड़े उदार मनवाले कृपाचार्य भी शान्तस्वभाव
होनेके कारण तुरन्त ही कोमल होकर कहनेलगे ॥ १७ ॥ कृपा-
चार्यने कहा कि-अरे दुर्बुद्धि कर्ण ! हम तो तेरे अपराधको सहे
लेते हैं, परन्तु अर्जुन तेरे वड़ेहुए धमएडका नाश करेगा । ॥ १८ ॥
सञ्जयने कहा कि-हे राजन् ! (इसप्रकार भगवा हो रहा था
कि-) यशस्वी पाण्डव और पञ्चाल इकट्ठे होकर कर्णका तिर-
स्कार करतेहुए उसके ऊपर टूटपड़े ॥ १९ ॥ तब पराक्रमी,
तेजस्वी और महारथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण भी धनुषको लेकर देवताओं
से घिरेहुए इन्द्रकी समान, श्रेष्ठ ५ कौरव योधाओंको साथमें

प्रवृत्ते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ॥ २१ ॥ भीषणं सुमहाराज
 सिंहनादविराजितम् । ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यश-
 स्विनः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथानदन् । अयं
 कर्णः कुनः कर्णस्तिष्ठ कर्णं महारणे ॥ २३ ॥ युध्यस्व सद्विदोऽ-
 स्माभिर्दुरात्मन् पुरुषाधम । अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोध-
 दीप्तेक्षणाव्रुवन् ॥ २४ ॥ हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः ।
 सर्वैः पार्थिवशादूर्त्तैर्नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ २५ ॥ अत्यन्तवैरी
 पार्थानां सततं पापपूरुषः । एष मूलं क्षत्र्यानां दुर्योधनमते
 स्थितः ॥ २६ ॥ व्रतैर्नमिति जल्पन्तः क्षत्रियाः समुपाद्रुवन् । महता
 शरवर्षेण व्यादयन्तो महारथाः ॥ २७ ॥ वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्ड-
 वेयेन चोदिताः । तांस्तु सर्वैस्तथा दृष्ट्वा धावमानान्महाबलान् २८

ले, अपने भुजबलके भरोसे पर, रणके मुहाने पर उठ गया, तब
 हे महाराज ! कर्णका पाण्डवोंके साथ महाभङ्गुर युद्ध होनेलगा,
 वह सिंहकी दहाड़ोंकी समान थोधाध्योंकी गर्जनाओंसे शोभा पा
 रहा था, हे राजन् ! यशस्वी पाण्डवाल और पाण्डव राजे महा-
 भुज कर्णको देखकर गर्जना कर जोरसे बोल उठे, कि—“कर्ण
 यह है ! कर्ण कहाँ है ! अरे कर्ण ! खड़ा रह ! खड़ा रह ॥
 अरे ओ पुरुषाधम ! ओ दुरात्मा ! हमारे साथ युद्ध कर”
 दूसरे राजे भी कर्णको देखकर लाल लाल आँखें फरके
 बोल उठे कि—“ओले मनवाला सूतपुत्र कर्ण यह है, सब राज-
 सिंघ इकट्ठे होकर इसको नष्ट करडालो, इसके जीवित रहनेसे
 कुछ लाभ नहीं है ॥ २०—२६ ॥ यह पाण्डवोंका कट्टर वैरी है,
 सदा पापी पुरुष है, अनर्थोंका मूल है और दुर्योधनके मत्तके
 अनुसार चलता है ॥ २७ ॥ अतः इसको मारडालो ! मारडालो ॥”
 इसप्रकार कहते हुए महारथी क्षत्रिय पाण्डवोंकी प्रेरणासे कर्णको
 मारनेके लिये उसके ऊपर दूढ़ पड़े तथा चारों ओरसे बाण

न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत । दृष्ट्वा संहारकल्पतमुद्धृतं
सैन्यसागरम् ॥ २६ ॥ पिप्रोषुस्तत्र पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः ।
सायकौघेन बलवान् क्षिप्रकारी महाबलः ॥ २७ ॥ वारयामास
तत् सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ । ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवः समवा-
रयन् ॥ २८ ॥ धनुं पि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्या यथा पुरा ॥ २९ ॥ शरवर्षन्तु
तत् कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम् । शरवर्षेण महता समन्ताद्ब-
किरस्मभो ॥ ३० ॥ तद्युद्धमभवत्तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम् । यथा
देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥ ३१ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम
सूतपुत्रस्य लाघवम् । यदेनं सर्वतो यथा नाप्नुवन्ति परे युधि ॥ ३२ ॥

वरसाकर दिशाओंको ढक दिया, सूतपुत्र कर्ण सब महारथियों
को अपने ऊपर धँसकर आते देखकर मनमें खिन्न नहीं हुआ
और भयभीत भी नहीं हुआ, उसने धैर्य धरकर पहिले तो उछलते
हुए सेनारूपी महासागरको देखा ॥ २८ ॥ २६ ॥ और पीछे
तुम्हारे पुत्रोंका हित करनेवाले, संग्राममें विजय करनेवाले बड़े
फुर्तीले कर्णने बाणोंकी वृष्टिकर चारों ओर बढती हुई शत्रुसेना
को आगे बढनेसे रोक दिया ॥ ३०-३१ ॥ इससमय दैत्य जैसे
इन्द्रके साथमें लड़े, तैसे ही सैकड़ों सहस्रों और राजे धनुषोंको
उछालते २ कर्णके साथ लडनेलगे ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! कर्णने
बाणोंकी बड़ीभारी वर्षाकर (पाण्डवपक्षके) राजाओंकी चारों
ओरसे की हुई बाणोंकी वर्षाका नाश कर डाला ॥ ३३ ॥ राजे
एक दूसरेका पराजय करनेकी इच्छासे (वेगसे) लडनेलगे, उनका
युद्ध देवासुर नामक युद्धमें इन्द्र तथा देवताओंके बीचमें हुए युद्ध
की समान तुमुलरीतिसे होनेलगा ॥ ३४ ॥ हम तो युद्धमें सूतपुत्र
की अति अद्भुत चपलताको देखते ही रह गए, इस महायुद्धमें सब
राजे इकट्ठे होकर भी अकेले कर्णको वशमें न कर सके ॥ ३५ ॥

विषार्थं च शरीरघास्तान् पार्थिवानां महारथः । युगेष्वीपासु ह्येषु
 रथेषु च हयेषु च ॥ ३६ ॥ आत्मनापाङ्क्तान् घोरान् राक्षसां
 माहिणोऽश्वरान् । ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ३७
 वभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावाः शीतादिता इव । हयानां बध्यमानानां
 गजानां रथिनां तदा ॥ ३८ ॥ तत्र तत्राभ्यप्रेक्षाम संधाम् कर्णेन
 ताडितान् । शिरोभिः पतितै राजन् बाहुभिश्च समन्ततः ॥ ३९ ॥
 आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम् । हतैश्च हन्यमानैश्च
 निहनुनद्भिश्च सर्वशः ॥ ४० ॥ यभ्रवायोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम् ।
 दुर्योधनस्ततो राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ४१ ॥ अश्वस्वामा-
 नमासाद्य ततो वाक्यमुवाच ह । युध्यतेऽस्मी रणे कर्णो दंशितः
 सर्वपार्थिवैः ॥ ४२ ॥ पश्येतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम् ।

महारथी कर्ण राजाओंके बाणोंको हटाकर, अपने नाम वाले
 बाण उनके रथोंकी ईपा, जुए, छत्र, ध्वजा और घोड़ोंपर बरा-
 बर बरसाये ही जाता था, उसके शीघ्रतासे आते हुए बाणोंकी
 मारसे राजे पीडा पाकर व्याकुल होगए ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और
 भीतसे पीडा पाती हुई गौओंकी समान, इधर उधर भागने, लगे,
 हाथी, घुड़सवार और रथी भी कर्णके बाणोंके प्रहारसे घबडा
 कर टेढ़े सीधे भागतेहुए दीखनेलगे, सामने आकर लड़नेवाले
 शूरोंके मस्तकोंसे और भुजाओंसे पृथ्वी ढक गई थी, मारे गए
 और मारे जातेहुए तथा चीखते हुए योधाओंसे रणभूमि यमपुरीकी
 समान भयङ्कर प्रतीत होती थी राजा दुर्योधन कर्णके उस समय
 के पराक्रमको देखकर अश्वत्थामाके पास गया और उससे कहने
 लगा कि—“यह कर्ण सब राजाओंसे रक्षित होकर रणमें लड
 रहा है, इसको तुम देखो ॥ ३८-४२ ॥ स्वामी कार्तिकेयके
 बाणोंसे जैसे असुरोंकी सेना भाग जाती है, तैसे ही कर्णके
 बाणोंकी मारसे पीडा पाकर पाण्डवोंकी सेना रणमेंसे भाग

कार्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥४३॥ दृष्ट्वा निर्जितां
सेनां रणो कर्णेन धीमता । अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघां-
सया ॥४४॥ तद्यथा पश्यमानानां सूतपुत्रं महारथम् । न हन्यात्
पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४५ ॥ ततो द्रौणिः कृपः
शक्यो हार्दिक्यश्च महारथः । प्रयुद्युस्तदा पार्थ सूतपुत्रपरी-
प्सया ॥ ४६ ॥ आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूनिष ।
बीभत्सुरपि राजेन्द्र पञ्चालैरभिसंवृतः ॥ ४७ ॥ प्रयुद्यथौ तदा
कर्णं यथा वृत्रं पुरन्दरः । धृतराष्ट्र उवाच । सर्वथं फाल्गुनं
दृष्ट्वा काष्ठांतकयोपमम् ॥ ४८ ॥ द्रुपदोऽस्पृद्धस्त च पार्थेन नित्य-
मेव महारथः ॥ ४९ ॥ आशंसते च बीभत्सुमवजेतुं सुदक्षिणः ।

रही है, इसकी ओर तुम देखो ? ॥४३॥ बुद्धिमान् कर्णेन रणमें
मेरी सेनाका पराजय किया यह देखकर अर्जुन, कर्णको मारने
की इच्छासे उसके ऊपर चढ़ा चला आता है ॥४४॥ अतः अर्जुन
हमारे सामने सूतपुत्र महारथी कर्णको न मारसके, ऐसी युक्ति
करो" ॥ ४५ ॥ दुर्योधनकी बात सुनकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य,
शक्य और महारथी हार्दिक्य आदि योधा, इन्द्र जैसे दैत्यसेना
के ऊपर चढ़ाई करे तैसे अर्जुनको चढकर आते देखकर, कर्ण
की रक्षा करनेके लिये अर्जुनकी ओर बढ़े ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र !
इन्द्रने जैसे वृत्रासुरके ऊपर चढ़ाई की थी तैसे ही अर्जुन भी
पाञ्चाल राजाओंसे घिरकर कर्णके ऊपर चढ़ा था ॥ ४७ ॥
धृतराष्ट्रने बुझा कि-हे सञ्जय ! क्रोधमें भरेहुए और प्रलयकी
समान भयङ्कर प्रतीत होते हुए अर्जुनको देखकर जो महारथी कर्ण
सदा अर्जुनसे स्पर्धा करता है और जो अच्छी दक्षिणा देने
वाला कर्ण नित्य ही अर्जुनको जीतनेकी इच्छा रखता है, उस-
ने सदाके वैरी अर्जुनको एकाएकी अपने ऊपर चढकर आते
देखकर क्या किया ? सञ्जयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! अर्जुनको

स तु सं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ॥ ५० ॥ कर्णो वै क-
र्त्तनः सूत किमन्यत् प्रत्यपश्यत । सञ्जय उवाच । आयान्तं पांडवं
दृष्ट्वा गजः प्रतिगजं यथा ॥ ५१ ॥ असम्भ्रान्तो रणो कर्णः प्रत्यु-
दीयात् धनञ्जयम् । तपापतन्तं वेगेन स्वर्णपुंखैरजिह्वगैः ॥ ५२ ॥
छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं पारैः । स कर्णं शरजालेन
छादयामास पाण्डवः ॥ ५३ ॥ ततः कर्णो सुसंरब्धः शरैस्त्रिभि-
रविध्यत । तस्य तज्जलाघत्रं दृष्ट्वा नामुश्यते महाबलः ॥ ५४ ॥
तस्मै बाणाञ्जिह्वाधीतान् प्रदीप्ताग्रानजिह्वगान् । प्राहिणोत् सूत-
पुत्राय विशतं शत्रुतापनः ॥ ५५ ॥ विव्याध चैनं संरम्भात् बाणे-
नैकेन धीर्यवान् । सन्ये भुजाग्रं बलवान्नाराचेन हसन्निव ५६
तस्य विद्वस्य वेगेन कराच्चापं पपात ह । पुनरादाय तच्चापं निमे-
षाद्धान्महाबलः ॥ ५७ ॥ छादयामास बाणौघैः फालगुनं कृत-

सामने आते हुए देखकर, हाथी जैसे शत्रु हाथीकी ओर धँसे,
तैसे ही कर्ण भी निर्भय हो अर्जुनकी ओर धँसा, अर्जुनने वेग
से धँसकर आते हुए सूर्यपुत्रको सीधे जानेवाले बाण मारकर
ढक दिया, तैसे ही कर्णने भी अर्जुनको बाण मारकर ढकदिया
पुनः अर्जुनने कर्णके ऊपर बाणोंकी वृष्टिकर उसको ढकदिया
॥ ४८-५३ ॥ कर्णको बड़ा क्रोध चढ़ा उसने अर्जुनके तीन
बाण मारे, परन्तु महाबली अर्जुन, कर्णकी उस फुर्तीको सह
नहीं सका, शत्रुको तपानेवाले अर्जुनने, कर्णके ऊपर पंथर पर
घिसकर तेज किये हुए तथा चमकते हुए फलके वाले सरलगाभी
तीनसौ बाण मारे ॥ ५४-५५ ॥ फिर पराक्रमी अर्जुनने क्रोधमें
भर मुस्कराकर कर्णके हाथपर एक पेसा बाण मारा कि-५६
उसके बाणके प्रहारसे कर्णके हाथका धनुष पृथ्वी पर गिरपड़ा,
तब तो महाबलवान् कर्णने आधे निमेषमें ही दूसरा धनुष हाथमें
ले लिया ॥ ५७ ॥ और फुर्तीले हाथवाले मनुष्यकी समान बाणोंकी

दस्तवत् । शरद्वृष्टिस्तु तां मुक्तां सतपुत्रेण भारता॥५८॥व्यघमच्छर-
वर्षेण स्मयन्निव धनञ्जया । तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव॥५९॥
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ॥तदद्भुतमभूद्युद्धं कर्णपादण्डवा-
योर्मध्ये६०॥कुद्वयोर्वासिताहेतोर्वन्ययोगजयोरिव । ततः पार्थो महे-
ष्वासो हृष्टा कर्णस्य विक्रमम्६१॥प्रष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरया-
न्वितः । अश्वान् चतुरो भल्लैरनयद्यमसादनम्६२॥सारथेश्च शिरः
कायादहनच्छत्रुतापनः । अथैनं क्षिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम्६३॥
विन्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः । हताश्वान् तथात्तूर्ण-
मवसृत्य नरर्षभः ॥६४॥ आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ।
स जुन्नोऽजुर्नवाणौघैराचितः शल्यको यथा ॥६५॥ जीवितार्थ-

वृष्टिकर अर्जुनको ढकदिया, हे भरतवंशी राजन ! अर्जुनने कर्णकी
बाणवृष्टिका संहार करवाला और मुस्कराहटके साथ बाण मार
कर उसको पीडित करने लगा, हे भरतवंशी राजन ! वे दोनों महा-
धनुर्धर एक दूसरेका संहार करनेकी इच्छासे एक दूसरेके सामने
लड़कर एक दूसरेको बाणोंसे ढकनेलगे, एक ऋतुमती हथनीके
लिये जैसे दो मदमत्त और क्रोधमें भरेहुए हाथी लड़ें तैसे ही
कर्ण तथा अर्जुनके बीचमें महा-अद्भुत युद्ध आरंभ होगया॥५८-६०॥
इस युद्धमें अर्जुनने कर्णके पराक्रमको देख लिया और बड़ी कुतीसे
बाण मारकर कर्णकी मुठ्ठीमेंके धनुषको काटवाला और भालेके
प्रहारसे उसके चारों ओरोंको भी यमलोकमें भेजदिया ६१-६२
तथा सारथिके भी मस्तकको छेदवाला, फिर शत्रुको त्रास
देनेवाले अर्जुनने धनुष, घोड़े और सारथिरहित कर्णके दुसरा
कर चार बाण मारे नरशूर कर्ण, सारथि और घोड़े मरे कि-
रथमेंसे नीचे उतर पड़ा और बाणोंके प्रहारसे पीड़ा पाताहुआ
कृपाचार्यके रथ पर चढ़गया, अर्जुनके बाण लगनेसे उसका शरीर
चिरगया था और सेईके शरीरकी समाप्त उसके सारे शरीरमें

मभिप्रेषुः कृपस्य रथमारुहत् । राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरत-
र्षभ ॥ ६६ ॥ धनञ्जयशरैर्जुन्नाः प्राद्वन्त दिशो दश । द्रवत-
स्तान् समालोक्य राजा दुर्योधनो नृपः ॥ ६७ ॥ निवर्त्तयामास तदा
वाक्यञ्चेदमुवाच ह । अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठन् वृत्रियर्षभाः ६८
एव पार्थवधायाहं स्वयं गच्छामि संयुगे । अहं पार्थ हनिष्यामि
सपञ्चालान् ससोपकान् ॥ ६९ ॥ अद्य मे युध्यमानस्य सह
गाण्डीवधन्वना । द्रव्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ७०
अद्य मद्राणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः । द्रव्यन्ति समरे योधाः
शत्रुभानामिवायतीः ॥ ७१ ॥ अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः ।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रव्यन्ति युधि सैनिकाः ॥ ७२ ॥ जेष्याम्यद्य
रणे पार्थ सायकैर्नतपर्वभिः । तिष्ठन् समरे वीरा भयं त्यजत

बाण शुभ रहे थे, इसलिये वह अपने प्राण बचानेकी इच्छासे
कृपाचार्यके रथ पर चढ़ गया, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! कर्णकी
हार हुई देखकर तुम्हारे योधा अर्जुनके बाणोंसे छिन्न भिन्न हो
दशों दिशाओंमेंको भागनेलगे, हे राजन् ! दुर्योधन उनको दौड़ता
देखकर उनको पीछेको लौटानेके लिये चिल्लाकर कहनेलगा कि-
अरे ! शूर क्षत्रियों ! भागो मत ! भागो मत !! खड़े रहो ! खड़े
रहो !! ॥ ६३-६८ ॥ मैं स्वयं ही अर्जुनको मारनेके लिये जाता
हूँ, मैं रणमें पाञ्चालराजाओंका, सोमकराजाओंका तथा पाण्डवोंका
नाश करूँगा ॥ ६९ ॥ मलयके समय जैसे कालका पराक्रम देखनेमें
आता है, तैसे ही आज मैं अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा और
पाण्डव मेरे पराक्रमको देखेंगे ॥ ७० ॥ आज मैं रणमें सहस्रों
बाणोंकी वृष्टि करूँगा, उस वृष्टिको योधा रणसंग्राममें जैसे टीढ़ी
दल गिरता हो इसप्रकार देखेंगे ॥ ७१ ॥ चौपासेमें जैसे मेघकी
धाराएँ दिखाई देती हैं, तैसे ही मैं भी धनुष धारण कर आज
बाणोंकी वर्षा करूँगा, उसको सैनिक भलेप्रकार देखेंगे ॥ ७२ ॥

फाल्गुनात् ॥ ७३ ॥ न हि मदीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति ।
 यथा वेला समासाद्य सागरो मकरालयः ॥ ७४ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ
 राजा सैन्येन महता दृतः । फाल्गुनं प्रति संरब्धः क्रोधसंरक्त-
 लोचनः ॥ ७५ ॥ तत्प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा । अश्व-
 स्थापानपासाद्य वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥ ७६ ॥ एष राजा महाबाहु-
 रमर्षी क्रोधमूर्च्छितः । पतङ्गवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्धुमिच्छति ७७
 या न्नः पश्यमानानां प्राणान् पार्थेन संगतः । न जह्यात् पार्थिव-
 श्रेष्ठस्तावद् वारय कौरवम् ॥ ७८ ॥ यावत् फाल्गुनबाणानां गोचरं
 नाधिगच्छति । कौरव्यः पार्थिवो वीरस्तावद्धारय संयुगे ॥ ७९ ॥
 यावत् पार्थशरैर्वीरैर्निर्मुक्तोरगसन्निभैः । न भस्मी क्रियते राजा

आज मैं नभी हुई गाँठवाले बाणोंसे रणमें अर्जुनके सामने लड़कर
 उसका पराजय करूँगा, अतः हे शूरा ! तू रणमें खड़े रहो और
 अर्जुनके भयको छोड़ दो ॥ ७३ ॥ जिसमें मगर मच्छ रहते हैं
 ऐसा समुद्र जैसे किनारेको पाकर आगेको नहीं बढ़सकता, तैसे
 ही अर्जुन भी मेरे पराक्रमको नहीं सह सकेगा ॥ ७४ ॥ इस
 प्रकार कहकर क्रोधसे लाल २ नेत्रोंवाला राजा दुर्योधन सेना-
 सहित अर्जुनकी ओरको धँसा, शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य, महाभुज
 दुर्योधनको आगे बढ़ते देखकर अश्वत्थामाके पास आये और
 उससे कहनेलगे, कि— ७५—७६ ॥ बड़ी २ भुजाओंवाला यह
 राजा क्रोधके वशमें होजानेके कारण बेभान (बेहोश) होरहा
 है अतः पतंगकी समान अर्जुनके सामने लड़नेको जारहा है ! ७७
 गुरुपोंमें व्याघ्रसमान दुर्योधन हमारे सामने अर्जुनके साथ लड़ते २
 मर न जाय, उससे पहिले ही उसके पास जाकर तू उसको लड़ने
 से रोक ! ॥ ७८ ॥ नहीं तो कुलवंशोत्पन्न वीर दुर्योधनकी अर्जुन
 के बाणोंकी मारसे आज ही मृत्यु होजावेगी, उसका नाश न
 हो उससे पहिले ही तू उसको आगे बढ़नेसे रोक ! ॥ ७९ ॥ अरे !

तावद्युद्धान्निवर्त्यताम् ॥ ८० ॥ अयुक्तमिव पश्यामस्तिष्ठत्स्वस्मासु
मानद । स्वयं युद्धाय यद्राजा पार्थ यात्यसहायवान् ॥ ८१ ॥
दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरवस्य किरीटिनी । युध्यमानस्य समरे
शादूलेनेव हस्तिनः ॥ ८२ ॥ मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृता-
म्बरः । दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत ॥ ८३ ॥ मयि
जीवति गान्धारे न युद्धं कर्तुमर्हसि । मामनादृत्य कौरव्य तव
नित्यं हितैषिणम् ॥ ८४ ॥ न हि ते सम्भ्रमः कार्य्यः पार्थस्य
विजयं प्रति । अहमावारयिष्यामि पार्थ तिष्ठ सुयोधन ॥ ८५ ॥
दुर्योधन उवाच । आचार्य्यः पाण्डुपुत्रान् वै पुत्रवत् परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥ मम वा मन्द-
भाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि । धर्मराजमियार्थम्वा द्रौपद्या वा

अर्जुनके मारेहुए कैंवलीरहित सर्पकी समाने चमकतेहुए बाण,
इस राजाको बालकर भस्म न करै इतने समयमें ही तू इस दुर्यो-
धनको युद्धमेंसे पीछेको लौटाल ॥ ८० ॥ हे मानदाता ! हमारे
जीतेहुए दुर्योधन स्वयं अकेला लड़नेको जाय, यह मुझे
अनुचित लगता है ॥ ८१ ॥ सिंहके साथ हाथी लड़े, उसमें हाथी
जीता रहे, यह मैं दुर्लभ ही समझता हूँ ॥ ८२ ॥ इसमकार
मामाने कहा तव शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने दुर्योधनके पास
जाकर उससे कहा कि—॥ ८३ ॥ हे कुरुकुलमें श्रेष्ठ ! हे गांधारीके
पुत्र ! मैं जब तक जीता हूँ, तब तक तुम्हें—मुझ हितैषीका
अनादर कर अकेला लड़ना उचित नहीं है ॥ ८४ ॥ तथा तुम
अर्जुनको जीतनेके विषयमें सन्देह भी न करो, हे दुर्योधन ! तुम
खड़े रहो, मैं अभी अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोकता हूँ ॥ ८५ ॥
दुर्योधनने उत्तर दिया कि—हे द्विजश्रेष्ठ ! आचार्य भी पाण्डुपुत्रोंकी
पुत्रकी समान रक्षा करते हैं और तुम भी सदा उनकी ओरसे
लापरवाहीभी रखते हो ! ॥ ८६ ॥ वासुदेवमें मेरे मन्दभाग्यके

न विद्म तत् ॥ ८७ ॥ धिगस्तु मम तुभ्यस्य प्रकृते सर्वबान्धवाः ।
 सुखकामाः परं दुःखं प्राप्नुवन्ति पराजिताः ॥ ८८ ॥ को हि
 शस्त्रभृतां श्रेष्ठो महेश्वरसमो युधि । शत्रुं न क्षपयेच्छक्नो यो न
 स्याद्गौतमीसुतः ॥ ८९ ॥ अश्वत्थामन् मसीदस्व नाशयैतान्ममा-
 हितान् । तवास्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः ॥ ९० ॥
 पञ्चालान् सोमकारश्चैव जहि द्रौणे सहाजुगान् । वयं शेषान्
 हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ९१ ॥ एते हि सोमका विप्र
 पञ्चालाश्च यशस्विनः । मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्नि-
 वत् ॥ ९२ ॥ तान् धारय महाबाहो केकयाश्च नरोत्तम । पुरा
 कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ९३ ॥ अश्वत्थाम-

कारण तुम्हारा पराक्रम भी मन्द है ! धर्मराजको प्रिय लगनेके
 लिये अथवा द्रौपदीको अच्छा लगे इसलिये तुम मन्दरीतिसे
 पराक्रम करते होगे, इनमेंसे (क्या बात है) यह मैं कुछ भी नहीं
 समझ सकता, धिक्कार है मुझ जैसे राज्यके लोभी पर कि-
 जिसके लिये सुख भोगने योग्य और अजेय मेरे सब बन्धु परम
 दुःख पारहे हैं ॥ ८७-८९ ॥ शस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, महेश्वरकी
 समान बलवान् तथा शक्तिसम्पन्न कौनसा पुरुष शत्रुका नाश
 नहीं करेगा, भला ऐसा तो एक गौतमीपुत्र ही है कि-अर्जुनका
 नाश नहीं करता है ! हे अश्वत्थामा ! तुम मेरे ऊपर क्रुश करके
 मेरे शत्रुओंको मारडाको जहाँ तुम्हारे शस्त्रका प्रहार हो तहाँ पर
 देवता और दानव भी नहीं टिक सकते (तो फिर पाण्डवोंकी
 क्या बात है) ॥ ९० ॥ हे द्रोणाचार्यके पुत्र ! पाञ्चाल तथा
 सोमक राजाओंको उनकी सेनासहित समाप्त कर दो, और बाकी
 बचे हुएोंको हम तुम्हारी रक्षामें रहकर अपनी शरणमें पहुँचा
 देंगे ॥ ९१ ॥ हे विप्र ! ये यशस्वी सोमक तथा पाञ्चाल राजे
 क्रोधमें आकर दावानलकी समान मेरी सेनामें घूमते हैं ॥ ९२ ॥

स्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिन्दम । आदौ वा यदि वा पश्चात्त-
वेदं कर्म ब्राह्मणं ॥ ६४ ॥ त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां
वधाय वै । करिष्यसि जगत् कृत्स्नमपञ्चालं किलोद्यतः ॥ ६५ ॥
एवं सिन्धुव्रुवन्वाचो भविष्यति च तथाथा । तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र-
पञ्चालान् जहि सानुगान् ॥ ६६ ॥ न तेऽस्त्रगौचरे शक्ताः स्थातुं
देवाः सवासवाः । किमु पार्थाः सपञ्चालाः सत्यमेतद्वचो मम ६७
न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सोमकैः । वलाद्योभयितुं
वीर सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ६८ ॥ गच्छ गच्छ महाबाहो न नः
कालात्ययो भवेत् । इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ॥ ६९ ॥

अतः हे महाशुभ्र विप्र ! तुम पहिले उनको और कैक्योंको रोको,
वे अर्जुनकी रक्षामें रहकर हमारी सेनाका संहार कर रहे हैं (यह
शुभ्रसे देखा नहीं जाता) ॥ ६३ ॥ हे अरिन्दम अश्वत्थामा !
तुम शीघ्रतासे इनके सामने जाओ ! हे महाराज ! आदिमें या अन्तमें
यह कार्य तुम्हें ही करना होगा ॥ ६४ ॥ हे महाशुभ्र विप्र ! तुम
पाञ्चाल राजाओंका नाश करनेके लिये ही जन्मे हो, अतः तुम
तत्पर होकर पाञ्चालराजाओंका नाश करो ॥ ६५ ॥ हे पुरुष-
व्याघ्र ! तुम पाञ्चालोंका और उनके अनुचरोंका नाश करो,
आकाशवाणीने भी ऐसा ही कहा था और होगा भी ऐसा ही ६६
इन्द्रसहित देवता भी तुम्हारे वाणोंके महारको नहीं सहसकते,
तब पाञ्चाल और पाण्डवोंकी तो बात ही क्या ? यह बात मैं
तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ६७ ॥ हे वीर ! सोमक राजे तथा पाण्डव
संग्राममें तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी शक्ति नहीं रखते, यह बात
मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ६८ ॥ हे महाबाहु ब्राह्मण ! अब तुम
लड़नेके लिये जाओ ! (जल्दी) जाओ ॥ अपना समय व्यर्थ न
जावे इसका तुम ध्यान रखना । रे ! देखो ! अपनी सेना अर्जुनके
वाणोंसे दुःखी हो रणभूमिमेंसे भाग रही है, हे महाशुभ्र ! हे मान

शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा । निग्रहे पाण्डुपुत्राणां
पञ्चालानाञ्च मानद ॥ १०० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधार्वाणि दुर्योधनवाक्ये
एकोनपष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

सञ्जय उवाच । दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः । चकारा-
रिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा । प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्र-
मिदं वचः ॥ १ ॥ सत्यमेतन्महाबाहो यथा वंदमि कौरव । प्रियां
हि पाण्डवा नित्यं मम चापि पितृश्च मे ॥ २ ॥ तथैवावां प्रियां
तेषां न तु युद्धे कुरुद्रह । शक्तिततस्तां त युध्यामस्तपक्त्वा प्राणान-
भीतवत् ॥ ३ ॥ अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च ।
निमेषात् पाण्डवीं सेनां क्षपयेयुर्नृपोत्तम ॥ ४ ॥ ते चापि कौरवीं

देने योग्य ब्राह्मण ! तुम ही अपने दिव्य अस्त्रोंसे पाण्डुके पुत्रोंको
और पाञ्चाल राजाओंको ठीक कर सकते हो ! ॥ ६६-१०० ॥

एकसौ वनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५६ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! दुर्योधनके इसप्रकार कहने
पर युद्धदुर्मद अश्वत्थामाने इन्द्र जैसे दैत्योंका नाश करनेका
प्रयत्न करे तैसे शत्रुओंके नाश करनेका प्रयत्न आरम्भ किया
और तुम्हारे पुत्रसे कहा, कि— ॥ १ ॥ हे महाशुन दुर्योधन !
तुमने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है, मुझे और मेरे पिताको
पाण्डव सदा प्रिय हैं ॥ २ ॥ और पाण्डव भी हम दोनोंके ऊपर
सदा स्नेह रखते हैं, परन्तु युद्धके समय वे और हम (यह) प्रेम-
भाव नहीं रखते, हे तात ! उस समय तो हम प्राणोंका मोह
छोड़ शक्तिके अनुसार लड़ते हैं ॥ ३ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! मैं, कर्ण,
शल्य, कृपाचार्य और कृतवर्मा ये एक क्षण भरमें ही पाण्डवोंकी
सेनाका नाश कर सकते हैं ॥ ४ ॥ और हम न हों तो हे महाशुन
राजन् ! वे (भी) आधे निमेषमें ही कौरवोंकी सेनाका संहार

सेनां भिमेपात् कुरुसत्तम । क्षपयेयुर्महाबाहो यदि न स्याम संयुगे ॥
 युध्यतां पाण्डवान् शक्त्या तेषां चास्मान् युयुत्सतां । तेनस्तेजः
 समासाद्य प्रशमं याति भारत ॥ ६ ॥ अशक्या तरसा जेतुं पाण्ड-
 वानामनीकिनी । जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीषि ते ॥ ७ ॥
 आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः । किमर्थं तव
 सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥ ८ ॥ त्वन्तु लुब्धतमो राजन्नि-
 कृतिशश्च कौरव । सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे ह
 मन्ये त्वं कुरिसितो राजन् प्राप्तात्मा पापपूरुषः । अन्यानपि स नः
 क्षुद्रः शङ्कसे पापभावितः ॥ १० ॥ अहन्तु यज्ञमास्थाय त्वदर्धं
 त्यक्तजीवितः । एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुसत्तम ॥ ११ ॥
 योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्द्धं हनिष्यामि वरान् वरान् । पञ्चालैः सह

करडालें ॥ ५ ॥ परन्तु हे भरतवंशी राजन् ! परस्पर युद्ध करते
 हुए उनकी और हमारा दोनोंका तेज तेजसे मिलकर शान्त
 होजाता है ॥ ६ ॥ अतः पाण्डव जब तक जीवित हैं तब तक
 उनकी सेनाका पराजय होना असम्भव है, यह मैं तुमसे सत्य
 कहता हूँ ॥ ७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! पाण्डव समर्थ हैं और
 अपने राज्यके लिये लड़ रहे हैं, अतः वे तेरी सेनाका संहार क्यों
 न करेंगे ॥ ८ ॥ और हे कुरुवंशी राजन् ! तू (तो) महालोभी,
 क्रपटी, किसीका विश्वास न करनेवाला तथा अभिमानी है, इस
 कारण तुझे हमारे ऊपर सन्देह होता है ॥ ९ ॥ और हे राजन् !
 मैं जानता हूँ कि—तू खोटा है, पापी और पापरूप है, इसलिये ही
 हे क्षुद्र पुरुष ! तू दूसरोंको भी वैसा ही—पापी—समझता है ॥ १० ॥
 हे कुरुपुत्र ! तेरा हित करनेके लिये मैं रणमें—मरने तक—प्रयत्न-
 पूर्वक लड़ता रहूँगा, मैं अब संग्राममें जाता हूँ और वहाँ शत्रुओंसे
 लड़ूँगा, तथा हे शत्रुदमन राजन् ! तेरी प्रसन्नताके लिये
 पञ्चाल, सोमक, केकय और पाण्डवोंके साथ युद्ध करूँगा और

योत्सपामि सोमकैः कैऋयैस्तथा ॥ १२ ॥ पाण्डवेयैश्च संग्रामे
 स्वत्प्रियार्थमरिन्दम। अद्य मद्भाणनिर्द्धारचेदिपञ्चालसोमकाः १३
 सिंहेनेवार्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः। अद्य धर्मसुतो राजा
 दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ॥ १४ ॥ अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह
 सोमकैः। आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वा
 विनिहतान् संख्ये पञ्चालान् सह सोमकैः। ये मां युद्धे प्रया-
 स्यन्ति, तान् हनिष्यामि भारत ॥ १६ ॥ न हि ते वीर मोक्ष्यन्ते
 मद्भाहन्तरमागताः। एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव ॥ १७ ॥
 अभ्यवर्त्तत युद्धाय द्रावयन् सर्वधन्विनः। चिकीर्षुस्तत्र पुत्राणां
 प्रियं प्राणभृताम्बरः ॥ १८ ॥ ततोऽब्रवीत् सकैकेयान् पञ्चालान्
 गौतमीमुत्रः। प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः ॥ १९ ॥

मुख्य २ योधाओंका रणमें पराजय करूँगा और जैसे सिंहके डरसे
 गौएँ चारों ओरको भागने लगती हैं तैसे ही मेरे वाणोंके महारोंसे
 आज पाञ्चाल तथा सोमक राजे चारों ओरको भागने लगेंगे
 और धर्मपुत्र युधिष्ठिर आज सारे संसारको अश्वत्थामामय देखेंगे
 और सोमक राजाओंसहित खिन्न होजावेंगे ॥ ११-१५ ॥
 हे भरतवंशी राजन् ! जो राजे युद्धमें पाञ्चाल और सोमक राजा-
 ओंको मरेहुए देखकर मेरे साथ लड़नेको आवेंगे, उनको भी मैं
 मार डालूँगा ॥ १६ ॥ हे वीर राजन् ! वे मेरी भुजाओंके बलसे
 पीड़ित होने पर बच नहीं सकेंगे-इसप्रकार तुम्हारे पुत्रसे कहकर
 सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ महाभुज अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्रका हित करने
 की इच्छासे, सब धनुषधारियोंको भगाता हुआ युद्ध करनेके लिये
 चढ़ा ॥ १७-१८ ॥ उस समय गौतमीपुत्र अश्वत्थामाने कैकेय
 और पाञ्चालराजाओंसे कहा, कि-अरे महारथियों ! तुम सब
 मेरे (शरीरके) ऊपर बाण चलाओ, और स्थिर होकर अपनी
 शस्त्र चलानेकी कुर्तीको दिखाओ ॥ १९ ॥ अश्वत्थामाकी इस

स्थिरीभूताश्च युध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम् । एवमुक्तास्तु ते
 सर्वे शस्त्रहृष्टीरपातयन् ॥ २० ॥ द्रौणिं प्रति महाराज जलं जल-
 धरा इव । तान्निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोययत् ॥ २१ ॥
 प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो । ते हन्यमाना समरे
 पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ २२ ॥ परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त
 दिशो दश । तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरान् पञ्चालान् सह सोम-
 कान् ॥ २३ ॥ धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद्युधि । ततः
 काञ्चनधिग्राणां सचलाम्बुदनादिनाम् ॥ २४ ॥ वृतः शतेन
 शूराणां रथानामभिवर्तिनाम् । पुनः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो
 महारथः ॥ २५ ॥ द्रौणिमित्यब्रवीद्वाक्यं दृष्ट्वा योधान्निपातितान् ।
 आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहतैस्तव ॥ २६ ॥ समागच्छ मया
 सार्द्धं यदि शूरोऽसि संयुगे । अहं त्वां निहतृप्स्यामि तिष्ठेदानीं

बातको छुनकर सब महारथी मेघ जैसे पानी बरसावें तैसे अश्व-
 रथामाके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करनेलगे, अश्वरथामाने उनके
 सामने बाण कर उनके बाणोंके टुकड़े करहालें और पाञ्चाल,
 सोमक, पाण्डव और धृष्टद्युम्नके सामने ही दश वीर योधाओंको
 मारहाला ॥ २०-२२ ॥ इसप्रकार अश्वरथामाके पीड़ित करने
 पर वे पाञ्चाल और सोमक योधा अश्वरथामाको छोड़ कर
 भागनेलगे, हे राजन् ! शूर पाञ्चाल और सोमक राजाओंको
 रणमेंसे भागता देखकर पाञ्चालराजके महारथी पुत्र धृष्टद्युम्नने
 अश्वरथामाके ऊपर धावा किया, उस समय धृष्टद्युम्नके साथमें
 मेघकी समान गंभीर गर्जना करने वाले रथोंमें बैठे हुए पीछेको
 पैर न देने वाले सौ शूर चल रहे थे ॥ २३-२५ ॥ रणभूमिमें
 अपने योधाओंको मारे गए देख कर उसने अश्वरथामासे कहा
 कि—“अरे ओ आचार्यके मूर्ख पुत्र ! इन(दूसरे योधाओंको)मारने
 से तुझे क्या मिलेगा” ॥ २६ ॥ तू यदि वास्तवमें शूर हो तो

ममाग्रतः ॥ २७ ॥ ततस्तमाचार्यमुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् । मर्म-
भिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ ॥ २८ ॥ ते तु पंक्तीकृता
द्रौणि शरा विविशुराशुगाः । स्वमपुंखा मसन्नाग्राः सर्वकायाव-
दारणाः ॥ २९ ॥ मध्वर्थिन इवोदासा अभरा पुष्पितं द्रुमम् ।
सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाक्रान्त इवोरगः ॥ ३० ॥ मानी द्रौणि-
रसम्भ्रान्तो शरपाणिरभाषत । धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा महूर्त्तं प्रति-
पालय ॥ ३१ ॥ यावत्सर्वं निश्चितैर्भक्तैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।
द्रौणिरवमयाभाष्य पार्षतं परवीरहा ॥ ३२ ॥ बादयाभास बाणौघैः
समन्ताल्लघुहस्तवत् । स मध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ॥ ३३ ॥
द्रौणि पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत्तदा । न जानीषे प्रतिज्ञां मे

रणमें मेरे साथ लड़; अरे ! तू मेरे सामने आकर खड़ा हो मैं
तुझे अभी मारे डालता हूँ ॥ २७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! रण-
भूमिमें इस प्रकार कहकर प्रतापी धृष्टद्युम्न आचार्यपुत्रके तीक्ष्ण
बाण मारने लगा ॥ २८ ॥ मध्वत्त भौरे मधु पानेके लालचसे
जैसे पुष्पमाले वृक्षोंमें प्रवेश करै तैसे सुवर्णकी पूँछ वाले, चम-
कते हुए फलकेवाले और सारे शरीरको फाड़ डालने वाले वे
पंक्तिबद्ध बाण अश्वत्थामाके शरीरमें घुसने लगे; उनसे अश्व-
त्थामाका शरीर बहुत ही घायल होगया तब पैरसे दबने पर सर्प
जैसे क्रोधमें भर जाता है, तैसे ही अश्वत्थामा क्रोधमें भर गया,
फिर अभिमानी अश्वत्थामा हाथमें धनुष ले शान्तमनसे बोला
कि—“हे धृष्टद्युम्न ! तू क्षण भर विश्राम ले ले ॥ २९-३० ॥ मैं
अभी तेज करे हुए बाण मार कर तुझे यमके मन्दिरमें भेजे देता
हूँ” इस प्रकार शत्रुओंका संहार करने वाले अश्वत्थामाने धृष्ट-
द्युम्नसे कहा और फिर पुनः हाथ वालेकी समान बाणोंकी
वृष्टि कर उसको चारों ओरसे ढक दिया; अश्वत्थामाके बाणोंसे
पीड़ित होने पर युद्धदुर्मद धृष्टद्युम्न उसके वागवाण पारते हुए

विमोत्पत्तिं तथैव च ॥ ३४ ॥ द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं
 सुदुर्मते । ततस्त्वाहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे ॥ ३५ ॥
 इमान्तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते । निहत्य पितरं तेऽद्य तत-
 स्त्वामपि संयुगे ॥ ३६ ॥ नेष्यामि प्रेतलोकाय एतन्मे मनसि
 स्थितम् । यस्ते पार्थेयु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ॥ ३७ ॥
 तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन्निमोक्षये । यो हि ब्राह्मण-
 मृतसृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ॥ ३८ ॥ स वध्यः सर्वलोकस्य यथा
 त्वं पुरुषाधमः । इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ॥ ३९ ॥
 क्रोधमाहारयक्षीत्रं तिष्ठ तिष्ठेति चान्वीत् । निर्दहन्निव चक्षुर्म्यां
 पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ॥ ४० ॥ आदयामास च शरैर्निःश्वसन्सुरगो

कहने लगा कि—“अरे ब्राह्मण ! तू मेरी प्रतिज्ञा और उत्पत्तिको
 नहीं जानता है ! ॥ ३२-३४ ॥ अरे दुर्मति ! मैं पहिले द्रोणको
 मार डालूँगा और पीछेसे तुझको भी अवश्य मार डालूँगा।
 परन्तु द्रोण अभी जीवित है; अतः अभी मैं तेरा नाश नहीं
 करूँगा, आज रातमें प्रातःकाल होनेसे पहिले ही मैं तेरे
 पिताको मार डालूँगा, और फिर युद्धमें ॥ ३५-३६ ॥ तुझको
 मारकर यमलोकमें भेजदूँगा, यह मेरे मनका संकल्प है, अतः तू जहाँ
 तक चाहै तहाँतक पाण्डवोंके ऊपर द्वेष और कौरवोंके ऊपर भक्ति
 प्रकट करले, परन्तु तू मेरे हाथसे जीता नहीं बचेगा, जो ब्राह्मण
 ब्राह्मणके धर्मको त्यागकर क्षत्रियके धर्म के अनुसार चलता है, वह
 अधम पुरुष सब लोकोंका वधपात्र गिना जाता है” धृष्टद्युम्नने
 अश्वत्थामासे ऐसे तीक्ष्ण वचन कहे ॥ ३७-३९ ॥ उनको सुनकर
 अश्वत्थामाने क्रोधमें भरकर कहा, कि—“अरे ओ ! खड़ा रह !
 खड़ा रह !” इसप्रकार कहकर वह दोनों नेत्रोंको फाड़ धृष्टद्युम्न
 को भस्म करडालेगा तिसप्रकार उसकी ओर देखनेलगा ॥ ४० ॥
 फिर उसने सर्पकी समान साँस खेंचकर बाणोंकी दृष्टिसे धृष्टद्युम्न

यथा । स ज्ञाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ॥ ४१ ॥ सर्व-
पाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः । नाकम्पत महाबाहुः स्ववीर्यं
समुपाश्रितः ॥ ४२ ॥ सायकाश्चैत्र विविधानश्वत्थाम्नि
मुमोव ह । तौ पुनः सन्ववर्त्तेतां प्राणघ्नतापणे रणे ॥ ४३ ॥
निपीडयन्तो बाणौघैः परस्परममर्षणौ । उत्सृजन्तौ महेष्वासौ
शरदृष्टीः समन्ततः ॥ ४४ ॥ द्रौणिपार्षतयोर्बुद्धं घोररूपं भयान-
कम् । दृष्ट्वा सम्पूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥ ४५ ॥ शरौघैः
पूरयन्तौ तावाकाशं प्रदिशस्तथा । अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत्
कृत्वा भरैस्तमः ॥ ४६ ॥ नृत्यमानाविवरणे मण्डलीकृत-
कास्तुको । परस्परवधे यत्तौ सर्वभूतभयङ्करौ ॥ ४७ ॥ अयुध्येतां
महाबाहु चित्रं लघु च सुष्ठु च । सम्पूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः

को ढकदिया, तो भी हैं राजश्रेष्ठ ! पाञ्चालोंकी सेनासे घिरा
हुआ महारथी और महाभुज धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाके बाणोंकी
मारसे जरा भी नहीं डिगा, परन्तु वह भी अपने पराक्रमसे
अश्वत्थामाके ऊपर अनेक प्रकारके बाण बरसाने लगा, इसप्रकार
वे दोनों वीर पुरुष बाणरूपी दाँव लगाकर युद्धभूत खेलने
लगे ॥ ४१-४३ ॥ वे दोनों महाधनुषधारी योधा क्रोधमें भरकर
एक दूसरेके ऊपर बाणदृष्टि करने लगे ॥ ४४ ॥ सिद्ध चारण तथा
आकाशचारी देवता अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्नके इस समयके
भयानक घोर युद्धको देखकर उनकी पशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥
वैसे ही वे दोनों बाणोंके समूहसे आकाश व दिशाओंको छाने लगे
इससे तहाँ अंधकार फैल गया तब वे (उस अंधकारमें) अदृश्य
होकर लड़ने लगे ! ॥ ४६ ॥ दोनों वीर रणमें धनुषको गोलाकार
कर नृत्य करते हैं तैसे फिरने लगे और दूसरेको मारनेका अवसर
दूँ देने लगे और सब प्राणियोंको भयंकर दीखतेहुए वे दोनों महा-
भुज विचित्र प्रकारकी फुर्तीसे भरे होनेके कारण मनोहर लगे

सहस्रशः ॥ ४८ ॥ तौ मनुद्वौ रणे दृष्ट्वा वने वन्मौ गजाविधौ ।
 उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥ ४९ ॥ सिंहनादरवारचा-
 सन् दध्म्यः शंखाश्च सैनिकाः । वादिश्राव्यभ्यर्वादन्तं शतशोऽय
 सहस्रशः ॥ ५० ॥ तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरुणां भयवर्द्धनैः ।
 मुहुर्त्तमपि तद्युद्धं समरूपं तदाभवत् ॥ ५१ ॥ ततो द्रौणिर्महाराज
 पार्षतस्य महात्मनः । धनुर्ध्वजं तथा छत्रं तथोभौ पार्ष्णिसारपी ५२
 सूतमश्वाश्च चतुरो निहत्याभ्यद्रवद्गणे । पञ्चालांश्चैव तान् सक्तान्
 शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५३ ॥ व्यद्राघयदनेयात्मा शतशोऽय सह-
 स्रशः । ततः प्रविच्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वा
 द्रौणोर्ग्रहत्कर्म वासवस्येव संपुगे । शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां

इस प्रकार युद्ध करने लगे, उस समय रणमें खड़े हुए सहस्रों मुख्य योधा उनकी युद्धकलाको देख उनकी प्रशंसा कर रहे थे ४७-४८ जैसे दो जंगली हाथी लड़ते हों, तैसे रणमें उक्त दोनोंको लड़ते देखकर दोनों सेनाओंमें बड़ा भारी हर्ष फैल गया ॥ ४९ ॥ इस समय दोनों सेनाओंमें सिंहनाद होने लगा, योधा शंख बजाने लगे और सैकड़ों तथा सहस्रों वाजे बजने लगे ॥ ५० ॥ भीरुओंके डरको बढ़ानेवाला वह तुमुल युद्ध एक मुहूर्त तक एकसा चला, हे महाराज ! इस लड़ाईमें अश्वत्थामाने महात्मा धृष्टद्युम्नकी ध्वजाको, धनुषको, छत्रको, पार्ष्वरत्नको, सारथिको और चारों घोड़ोंको मार डाला, फिर उदार मनवाले अश्वत्थामाने शीघ्रतासे आगेको बढ़कर नमीहुई गाँठवाले बाण मारकर रण मेंसे सैकड़ों और सहस्रों पाञ्चाल राजाओंके सैनिकोंको भगा दिया, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इस समय पाण्डवोंकी सेना बड़ा दुःख पाने लगी ॥ ५१-५४ ॥ तब पाञ्चालोंमें महारथी धृष्टद्युम्नने, युद्धमें अश्वत्थामाके इन्द्रकी समान पराक्रमको देखकर सौ बाण मारकर सौ योधाओंके मस्तकोंको काट डाला और

अध्याय] * भाषानुवाद-सहित * (१०३६)

महारथः ॥ ५५ ॥ त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा चीनं वै नरप-
मानं । द्रौणिद्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च परयतः ॥ ५६ ॥ नाभ-
यामास पञ्चालान् भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः । ते वध्यमानाः
पञ्चालाः समरं सह सञ्जयैः ॥ ५७ ॥ अगच्छन् द्रौणिमुत्सृज्य
विप्रकीर्णरथध्वजाः । साजित्वा समरं शत्रून् द्रोणपुत्रो महारथः ५८
ननाद सुमहाचावं तपान्ते जलदो यथा । स निहत्य बहून् शूरान-
श्वत्थामो व्यरोचत । युगान्ते सर्वभूतानि प्रदहन्निव पावकः ५९
सम्पूज्यमानो युधि कौरवैर्निर्मित्य संख्येऽरिगणान् सहस्रशः ।
व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान् यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान्निहत्य वै ६०
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि अश्वत्थाम-
पराक्रमे षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

सञ्जय उवाच । ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः ।

तीक्ष्ण तीन बाण मारकर तीन महारथियोंके प्राण लेलिये, अश्व-
त्थामाने भी द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न और महारथी अर्जुनके देखतेहुए
असंख्य पाञ्चालोंको मार डाला और उनके रथ तथा ध्वजाओंको
तोड़ डाला (यह दशा देख कर) पाञ्चाल और सञ्जय अश्वत्थामाके
सामनेसे भागनेलगे, तब गरमोंके पीछे जैसे मेघ गर्जे तैसे द्रोणपुत्र
अश्वत्थामा रणमें शत्रुओंका पराजय कर बड़ी भारी गर्जना करने
लगा, प्रलयके समय भस्म कर चुकने पर जैसे शंकर शोभा पाने
लगते हैं, तैसे ही उस समय अश्वत्थामा भी बहुतसे शूरोंका
संहार कर दिप निकला, युद्धमें शत्रुओंको हरानेके पीछे जैसे इन्द्र
शोभा पाता है तैसे ही युद्धमें सहस्रों शत्रुओंका पराजय कर
प्रतापी द्रोणपुत्र भी शोभा पाने लगा और कौरव योधा उसकी
प्रशंसा करने लगे ॥ ५५-६० ॥ एकसौ साठवाँ अध्याय समाप्त १६०

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! ऐसी स्थिति होने पर पांडु-
पुत्र युधिष्ठिरने तथा भीमसेनने चारों ओरसे द्रोणके पुत्रको घेर

द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १ ॥ ततो दुर्योधनो
 राजा भारद्वाजेन संवृतः । अभ्ययात् पाण्डवान् संख्ये ततो युद्ध-
 मवर्त्तत ॥ २ ॥ घोररूपं महाराज भीरुर्णा भयवर्द्धनम् । अम्बुष्ठा-
 न्मालवान् चङ्गाञ्छिवीस्त्रैगर्त्तकानपि ॥ ३ ॥ प्राहिणोन्मृत्युलो-
 काय गणान् क्रुद्धो वृकोदरः । अभीपादान् शूरसेनान् क्षत्रियान्
 युद्धदुर्मदान् ॥ ४ ॥ निकृत्य पृथिवीञ्चक्रे भीमः शोणितकर्द-
 माम् । यौधेयान्नद्रिजात्राजन् मद्रकान्मालवानपि ॥ ५ ॥ प्राहि-
 णोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः । प्रगाढमञ्जोगतिभिर्निरा-
 चैरभिताडिताः ॥ ६ ॥ निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विभृङ्गा इव पर्वताः ।
 निकृन्तौर्हस्तिहस्तैश्च चेष्टमानैरितस्ततः ॥ ७ ॥ रराज वसृधा कीर्णा
 विसर्पद्भिरिवोरगैः । क्षिप्तैः कनकचित्रैश्च नृपञ्चत्रैश्च भूर्वभौ ॥ ८ ॥

लिया, तब दुर्योधन द्रोणाचार्यके साथ पाण्डवों पर चढ़ आया
 और उनमें युद्ध होने लगा, यह युद्ध भयङ्कर तथा डरपोकोंके डरको
 बढ़ाने वाला था; क्रोधमें मरे हुए भीमसेनने इस युद्धमें अम्बुष्ठ,
 मालव, वंग, शिवि और त्रैगर्त आदि राजाओंको मार कर यम-
 लोकमें भेज दिया और अभीपाह, शूरसेन तथा दूसरे युद्धमत्त
 क्षत्रिय राजाओंका संहार कर, उनके मांस और रक्तकी कीचसे
 पृथिवीको कीचड़वाली कर दिया, हे राजन् ! दूसरी ओर अर्जुन
 ने भी पहाड़ी-योधाओंको, मद्रदेशके राजाओंको, तथा मालवके
 राजाओंको तेज किये हुए बाण मार कर यमपुरीके लिये
 बिदा कर दिया, फिर हाथियोंके ऊपर भी उतावली गतिवाले
 बाणोंके कठोर महार करने लगा, तब वे हाथी दो शिखर वाले
 पर्वतोंकी समान मर २ कर भूमिमें गिरने लगे, उन हाथियोंकी
 कटी हुई सूँडे पृथिवीमें इधर उधर लुढ़क रही थीं, वे मानो
 पृथिवीमें सर्प फिर रहे हों ऐसी मतीत होती थी और सुवर्णसे
 विचित्र दीखते हुए राजाओंके टंढे तिरछे पड़े हुए छत्रोंसे भरी हुई

द्यौरिवादित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षणे । हतः प्रहरताभीतावि-
ध्यत व्यवकृन्तत ॥ ६ ॥ इत्यासीत्तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं
प्रति । द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ॥ १० ॥ व्य-
पत्तान्महाबायुर्मेषानिव दुरत्ययः । ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः
माद्वन् भयात् ॥ ११ ॥ पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महा-
त्मनः । किरीटी भीमसेनश्च सहसा संन्यवर्त्तताम् ॥ १२ ॥ महता
रथवंशेन परिशृङ्ख बलं महत् । बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरन्तु वृको-
दरः ॥ १३ ॥ भारद्वाजं शरीषाभ्यां महद्भयामभ्यवर्षताम् । तौ
तथा सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ॥ १४ ॥ अन्वगच्छ-
न्महाराज मत्स्याश्च सह सोमकैः । तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः
प्रहारिणः ॥ १५ ॥ महत्या सेनया राजन् जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ।

रणभूमि सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहोंसे भरेहुए आकाशकी समान
शोभा पारही थी इस समय द्रोणके रथके पास "मारो ! मारो !!
निर्भय होकर इनको बीधडालो ! काटडालो" इसप्रकार भयङ्कर
ध्वनि होरही थी, यह सुनकर द्रोणको बड़ा क्रोध चढ़ा; तब
प्रचण्ड पवन जैसे मेघोंको बखेर दे तैसे उन्होंने वायव्यास्त्र पार
कर योधाओंका संहार करडाला, द्रोणाचार्यके प्रहारसे विन्न
होकर, भीम तथा अर्जुनके सामने ही पाञ्चालराजे, भयभीत हो
रणमेंसे भागनेलगे ॥ १-१२ ॥ यह देखकर अर्जुन और भीम
बड़ीभारी रथसेना और बड़ीभारी साधारण सेनाको साथमें
लेकर एक दम द्रोणके ऊपर चढ़आये और बाईं ओरसे बीभत्सु
और दाईं ओरसे भीम द्रोणाचार्यके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने
लगे, हे महाराज ! इनको इसप्रकार लड़ते देखकर महाबली
सृञ्जय, पाञ्चाल, सोमक और मत्स्यराजे ये सब इकट्ठे होकर
पीछेको लौटे और भीम तथा अर्जुनकी सहायताके लिये आगए
दूसरी ओर तुम्हारे पुत्रके प्रहारथी योधा भी बड़ीभारी सेनाको

ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ॥ १६ ॥ तमसा
निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत । द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव
युनेन च ॥ १७ ॥ नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ।
सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दीर्यमाणा महाचमूः ॥ १८ ॥ तमसा संवृते
लोके व्यद्रवत् सर्वतो मुखी । उत्सृज्य शतशो बाह्यास्तत्र केचिन्न-
राधिपाः । व्यद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
संकुलयुद्धे एकपष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

सञ्जय उवाच । सोमदत्तन्तु संप्रेक्ष्य विधुन्वानं महद्भुजः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वद ॥ १ ॥ न ह्यहन्वा
रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलं । निर्वर्षिष्ये रणात् मृत सत्यमेतद्वचो
मम ॥ २ ॥ ततः सम्प्रेषयद्यन्ता सैन्धवांस्तान्मनोजवान् । तुङ्ग-

साथमें लेकर द्रोणकी सहायता करनेको दौड़ आये, अर्जुन
कौरवोंकी सेनाका संहार करनेलगा और सेना अँधेरेके
कारण (और) निद्रासे घिरी हुई होनेके कारण नष्ट होनेलगी,
हे महाराज ! द्रोण और आपके पुत्रने अपने योधाओंको भागने
से रोका तो भी वे योधा रुके नहीं तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके
वाणोंसे कटती हुई महासेना अँधेरेसे छाई हुई रणभूमिमें चारों
ओरको भागनेलगी, उस समय बहुतसे राजे भयभीत हो सहस्रों
बाहनोंको तहाँ ही छोड़कर चारों ओर भाग गए ॥ १३-१६ ॥
एकसौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६१ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा-कि हे धृतराष्ट्र ! सात्यकिने सोमदत्तको बड़ा
भारी धनुष घुमाते हुए देखकर अपने सारथिसे कहा कि, हेमन्त !
तू मुझें सोमदत्तके पांस लेचल ॥ १ ॥ महाबली शत्रु सोमदत्तको
मारने विना मैं रणमेंसे पीछेको नहीं लौटूँगा; मेरी इस बातको
तू सत्य समझ ॥ २ ॥ अपने रथस्वामीके वचनको सुन कर

मास्त्रंस्ववर्णान् सर्वशस्त्रातिगात्रणे ॥ ३ ॥ तेऽवहन् युयुधानस्तु
मनोमारुतरंहसः । यथेन्द्रं हरयो राजन् पुरा दैन्यवधोद्यतम् ॥ ४ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं रथसं रणे । सोमदत्तो महाराज ह्यस-
म्भ्रान्तो न्यवर्त्तत ॥ ५ ॥ विमुञ्चञ्चद्वरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टि-
मान् । द्वादशमास शैनेयं भास्करं जलदो यथा ॥ ६ ॥ असम्भ्रा-
न्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् । द्वादशमास बाणैर्धैः समन्ता-
द्भरतर्षभ ॥ ७ ॥ सोमदत्तस्तु तं पृष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् ।
सात्यकिश्चापि तं राजन्नविध्यत् सायकैः शितैः ॥ ८ ॥ ताव-
न्योऽन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ । सुपुण्यौ पुष्पसमये पुष्पि-
ताविव िशुकौ ॥ ९ ॥ रुधिरोज्जितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णिण्यशस्करो ।

सारथिने मनकी समान वेग वाले, शंखकी समान श्वेत वर्ण
वाले तथा एक क्षणमें ही सब शब्दोंको दवा देने वाले सिंधुदेशी
घोड़ोंको रणमें बढाया ॥ ६ ॥ वे वेगवान् घोड़े-दैत्योंका वध करने
के लिये उद्यत इन्द्रको जैसे दिव्य घोड़े (राक्षसोंके समीप)
ले गए थे, तैसे-सात्यकिको शीघ्रतासे सोमदत्तके पास ले गए ४
महाबाहु सोमदत्त, रणभूमिमें कोपमें भरे हुए सात्यकिको अपने
ऊपर चढ़ कर आता देख कर धीरज धर कर उसके सामने
गया ॥ ५ ॥ और मेघ जैसे जलकी वृष्टि करके सूर्यको ढंक दे,
तैसे उसने बाणोंकी वृष्टि कर सात्यकिको ढंक दिया ॥ ६ ॥
सोमदत्तने साठ बाण मार कर सात्यकिकी छातीको चीर डाला,
तब सात्यकिने सोमदत्तके तेज किये हुए बाण मारे ॥ ७-८ ॥
दोनों महात्माओंके शरीर बाणोंके प्रहारोंसे घायल होगए और
उन दोनोंका सारा शरीर लोह लुहान होगया, इस समय कुरु-
वंशी सोमदत्त और वृष्णिवंशी सात्यकि, वसन्तऋतुमें खिले हुए
पुष्पोंवाले टेमूके वृक्षोंकी समान दिपते थे, एक दूसरेको अशिकी
ज्वालासे जालते हों तैसे रक्तवृष्टि की क्रांतिसे रक्त करते हुए वे

परस्परपवेक्षतां दहन्तान्निव लोचनैः ॥ १० ॥ रथमण्डलभागेषु
चरन्तान्निरर्पदन्तौ । घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवांश्चुदौ ॥ ११ ॥
शरस्सम्भिन्नगात्रौ तौ सर्वतः शकृल्लीकृतौ । श्वाविधाविव राजेन्द्र
दृश्येतां शरविज्ञतौ ॥ १२ ॥ सुवर्णपुंस्त्रैरिपुभिराचितौ तौ व्यरा-
जताम् । खद्यौतैरावृतौ राजन् प्रावृषीव वनस्पती ॥ १३ ॥ सम्प-
दीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तैर्महारथौ । अदृश्येतां रणे क्रुद्धाबुक्काभि-
रिव कुञ्जरौ ॥ १४ ॥ ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद बाधघस्य महद्धनुः ॥ १५ ॥ अथैनं पञ्च-
विंशत्या सायकानां समर्पयत् । त्वरमायस्त्वंराकाले पुनश्च
दशभिः शरैः ॥ १६ ॥ अथान्यद्धेनुगदाय सात्यकिर्वेगवचनम् ।

दोनों एक दूसरेके सामने खड़े थे, रथको मण्डलाकारसे घुमाते
हुए शत्रुओंका संहार करने वाले वे दोनों योधा, जल बरसाते
हुए मेघोंकी समान भयंकर रीतिसे बाण छोड़ रहे थे ॥ १०-११ ॥
हे राजेन्द्र! उनके शरीर बाणोंके प्रहारोंसे घायल होरहे थे और
शरीरके अङ्गोंके टुकड़े २ हो गए थे अतः वे दोनों योधा बाणोंसे
बिधे हुए सेई की समान दीखते थे ॥ १२ ॥ दोनोंके शरीरमें
सुवर्णकी पूँछ वाले बाण गुप्त रहे थे, इस कारण वे चारों ओर
से पतंगोंसे घिरे हुए दो वृत्तोंकी समान शोभा पारहे थे, दोनों
महारथियोंके शरीर बाणोंके प्रहारसे प्रज्वलित से होउठे थे, तथा
वे दोनों महारथी रणमें मशालें दागनेसे क्रोधित हुए हाथियोंकी
समान प्रतीत होते थे ॥ १३-१४ ॥ हे महाराज! फिर महारथी
सोमदत्तने अर्धचन्द्राकार बाण मार कर मधुकुलमें उत्पन्न हुए
सात्यकिके महाधनुषको काट डाला ॥ १५ ॥ और बड़ी
शीघ्रतासे सात्यकिके पैँसीस बाण मारे ॥ १६ ॥ हे महाराज !
सात्यकिने भी बड़े वेगवाला दूसरा धनुष लेकर पाँच बाण
सोमदत्तके मारे फिर मुस्कराते हुए सात्यकिने भन्त नामक

पञ्चभिः सायकैस्तूर्ण्यं सोमदत्तमविध्यत् ॥ १७ ॥ ततोऽपरेण
भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् । बाह्यीकस्य रणे राजन् सात्यकिः
प्रहसन्निव ॥ १८ ॥ सोमदत्तस्त्वसम्भ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम् ।
शौनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ १९ ॥ सात्वतोऽपि
रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः । धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण
शितेन ह ॥ २० ॥ अथैनं स्वमपुङ्गवानां शतेन नतपर्वणाम् ।
आचिनोद्वहुधा राजन् भग्नदंष्ट्रमिवोरगम् ॥ २१ ॥ अथान्यद्वनु-
रादाय सोमदत्तो महारथः । सात्यकिं ब्रूयामास शरवृष्ट्या महा-
बलः ॥ २२ ॥ सोमदत्तन्तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः ।
सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत् ॥ २३ ॥ दशभिः
सात्वतस्यार्थे भीमोऽहन् बाह्मिकात्मजम् । सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तो
भीममार्च्छच्छितैः शरैः ॥ २४ ॥ ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो
नवं दृढम् । सुपोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि ॥ २५ ॥ तमा-

वाणसें सोमदत्तकी सुनहरी ध्वजाको काटडाला ॥ १७ ॥
वह ध्वजा तुरन्त ही पृथिवीमें गिर गई, यह देखकर सोमदत्तने
सात्यकिके पच्चीस वाण मारे ॥ १८-१९ ॥ तब सात्यकिने
कोपमें भरकर रणमें भल्ल तथा क्षुरप नामक तेज कियेहुए वाण
मारकर धनुर्धर सोमदत्तके धनुषको काटडाला ॥ २० ॥ और
दाँत रहित हाथीकी समान अशक्त हुए सोमदत्तके नमीहुई गौँठ
वाले और सुवर्ण की पूँछवाले सौ वाण वेगसे मारे ॥ २१ ॥ महा-
बलवान् सोमदत्तने दूधरा धनुष लिया और वाणोंकी वृष्टि कर
सात्यकिको दृढ़दिया, क्रोधमें भरेहुए सात्यकिने भी सोमदत्तको
बीँधडाला, फिर सोमदत्त भी उसको वाण मारकर अच्छी प्रकार
रगड़ने लगा ॥ २२-२३ ॥ इनमें ही भीमने सात्यकिका पक्ष
लिया और सोमदत्तके दश वाण मारे, फिर सोमदत्तने सावधान
होकर भीमके तेज वाण मारे ॥ २४ ॥ फिर सात्यकिने नशा दृढ़

पतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम् । द्विधा चिच्छेद समरे महसन्निव
कौरवः ॥ २६ ॥ स पपात द्विधा छिन्न आयसः परिघो महान् ।
महीधरस्येव महच्छिखरं वज्रदारितम् ॥ २७ ॥ ततस्तु सात्यकी
राजन् सोमदत्तस्य संयुगे । धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापञ्च
पञ्चभिः ॥ २८ ॥ ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्ण्यं तास्तुरगोत्तपान् । समीपं
प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ २९ ॥ सारथेश्व शिरः कायात्
भल्लेनानतपर्वणा । जहार नरशार्दूलः महसञ्चिन्निपुङ्गवः ॥ ३० ॥
ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् । मुमोच सात्वतो राजन्
स्वर्णपुंखं शिलाशितम् ॥ ३१ ॥ स विमुक्तो बलवता शैनेयन शरो-
चामः । घोरस्तस्थोरसि विभो निपपाताशु भारत ॥ ३२ ॥ सोऽति-
विह्वो बलवता सात्वतेन महारथः । सोमदत्तो महाराज पपात च

और वज्रकी समान भयङ्कर एक परिघ सोमदत्तकी छातीमें मारा २५
पुरुवंशी (सोमदत्त) ने मुस्कुरा कर अपनी ओर वेगसे आते हुए
उस परिघके दो टुकड़े कर डाले, तब वज्रके महारसे जैसे पर्वतकी
शिखर टूटकर पृथ्वी पर गिरपड़े तिसप्रकार लोहेका वह बड़ा
भारी परिघमें पृथिवीमें दो टुकड़े होकर गिरपड़ा ॥ २६-२७ ॥
तदनन्तर हे राजन् ! सात्यकिने भल्ल नामक बाण मारकर उसके
हाथके मौजोंको काट डाला ॥ २८ ॥ और फिर चार बाण मारकर
उसके उचाम जातिके चारों घोड़ोंको भी मार डाला ॥ २९ ॥ इसके
पीछे मनुष्योंमें सिंहकी समान सात्यकिने हँसते २ नभी हुई गँठ
वाला बाण मारकर उसके सारथिके मस्तकको उड़ा दिया ॥ ३० ॥
हे राजन् ! फिर बलवान् सात्यकिने, प्रज्वलित होते हुए अग्निकी
समान स्वर्णकी पूँछवाला और शिला पर घिसा हुआ महाघोर
बाण सोमदत्तकी छातीमें बड़े-वेगसे मारा, वह घोर बाण सोमदत्त
की छातीमें घुस गया ॥ ३१-३२ ॥ हे महाराज ! सात्यकिने
महाभी तथा महाभुज सोमदत्तको बाणोंसे घायल किया कि-

ममार च ॥ ३३ ॥ तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोपदत्तं महारथाः । महता
शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३४ ॥ ज्ञायमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधि-
ष्ठिरः । पाण्डवाश्च महाराजं सह सर्वैः प्रभद्रकैः । महत्या सेनया
साहं द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ ३५ ॥ ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्ताव-
कानां महावल्लभम् । शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥
सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् । अभिदुद्राव वेगेन
क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३७ ॥ ततः सुनिश्चितैर्बाणैः पार्थं विव्याध
सप्तभिः । युधिष्ठिगेऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः ॥ ३८ ॥ सो-
ऽतिविह्वो महाबाहुः सृक्किणीं परिसंलिहन् । युधिष्ठिरस्य चिच्छेद
ध्वजं कामुकमेव च ॥ ३९ ॥ स छिन्नधन्वा विरथस्त्विराकाले
नृपोत्तम । अन्यदादत्त वेगेन कामुकं समरे ददम् ॥ ४० ॥ ततः

वह मरकर पृथिवीमें दह गया ॥ ३३ ॥ सोपदत्तको मरा हुआ देख
कर तहाँ खड़े हुए कौरवपक्षके महारथी बाणोंकी बौछार करते
हुए सात्यकिके ऊपर टूट पड़े ॥ ३४ ॥ उन्होंने उसके ऊपर असंख्य
बाण बरसाकर उसको ढक दिया, यह देखकर युधिष्ठिर आदि पांडव
और सब प्रभद्रक बड़ी भारी सेनाको साथमें लेकर द्रोणके सामने
धँसे ॥ ३५ ॥ और क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यके सामनेको
बाण मारकर तुम्हारी बड़ी भारी सेनाको भगा दिया ॥ ३६ ॥
युधिष्ठिरको सेनाको भगते देख द्रोणाचार्य क्रोधसे लाल २ नेत्र
कर तुरन्त ही उनके ऊपर झपटे ॥ ३७ ॥ और तेज किये हुए
सात बाण उनकी छातीमें मारे, युधिष्ठिरके भी नेत्र क्रोधसे लाल २
होगए और उन्होंने पाँच बाण मारकर द्रोणको बीध डाला ॥ ३८ ॥
महाभुज द्रोणाचार्य बाणोंके महारसे घायल होगए और वेदनाके
कारण जवाड़े चाटने लगे, उन्होंने बाण मारकर युधिष्ठिरकी ध्वजा
और धनुषको काट डाला ॥ ३९ ॥ अपना धनुष कटा कि-राजा
युधिष्ठिरने तुरन्त ही दूसरा मजबूत धनुष उठाकर द्रोण, उनके

शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः । साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुत-
मिवाभवत् ॥ ४१ ॥ ततो मुहूर्त्तं व्यथितः शरघातमपीडितः ।
निपसाद रथोपस्थे द्रोणो ब्राह्मणपुङ्गवः ॥ ४२ ॥ प्रतिलभ्य ततः
संज्ञां मुहूर्त्तादि द्विजसत्तमः । क्रोधेन महताविष्टो वायव्यास्त्रमत्रा-
सृजत् ॥ ४३ ॥ असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो धनुरादाय वीर्यवान् ।
तदस्त्रमस्त्रेण रणे स्तम्भयामास भारत ॥ ४४ ॥ चिच्छेद च
धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः । अथान्यद्दनुरादाय द्रोणः क्षत्रिय-
मर्दनः ॥ ४५ ॥ तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः । ततोऽ-
ध्वीद्वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिरः महाबाहो
यत्त्वा वक्ष्यामि तच्छृणु । उपारमस्व युद्धं त्वं द्रोणाद्भरतसत्तम ४७
यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे । नानुरूपमहं मन्ये । युद्धमस्य

सारथि और ध्वजा पर लगातार एक सहस्र त्राण मारे, उनका
पह कार्य बड़ा ही आश्चर्यजनक था ॥ ४०-४१ ॥ हे भरतवंशमें
श्रेष्ठ राजन् ! युधिष्ठिरके बाणोंके महारसे द्रोणाचार्य दो घड़ी तक
मूर्छित हो रथकी बैठकमें पड़े रहे, जब भात आया तब ब्राह्मणश्रेष्ठ
द्रोणने बड़े ही क्रोधमें भर युधिष्ठिरके वायव्यास्त्र मारा, परन्तु
हे भरतवंशी राजन् ! पराक्रमी राजा युधिष्ठिर इससे घबड़ाये नहीं,
उन्होंने अपने धनुषको खैचकर वायव्यास्त्रके सामने अपना वायव्य
अस्त्र मारकर सामनेसे आतेहुए वायव्यास्त्रको अटका दिया ४२-४४
और द्रोणके महाधनुषके भी टुकड़े कर डाले, तब क्षत्रियमर्दन
द्रोणने दूसरा धनुष उठाया ॥ ४५ ॥ कुरुवंशमें श्रेष्ठ धर्मराजने
भल्ल नामक बाण मारकर उसके भी टुकड़े कर डाले, इतनेमें
वासुदेवने कुन्तीपुत्र धर्मराजसे कहा, कि— ॥ ४६ ॥ हे महाशुभ्र
युधिष्ठिर ! तुम मेरा कहना सुनो ! हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तुम
युद्धमें द्रोणाचार्यसे मत लड़ो, क्योंकि वह तुमको युद्धमें कैद
करनेके लिये सदा प्रयत्न करते रहते हैं, अतः उनके साथ तुम्हारा

त्वया सह ॥४८॥ योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एवैनं हनिष्यति ।
परिवर्ज्यं गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥ ४९ ॥ राजा राजा हि
योद्धव्यो नाराज्ञा युद्धमिष्यते । तत्र त्वं ब्रज कौन्तेय हस्त्यश्वरथ-
संवृतः ॥५०॥ यावन्मात्रेण च मया सहायेन घनञ्जयः । भीमश्च
नरशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ॥ ५१ ॥ वासुदेववचः श्रुत्वा
धर्मराजो युधिष्ठिरः । गृह्णन् चिन्तयित्वा तु ततो दाक्षणाहावम् ५२
प्रायाद् द्रुतमपित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः । विनिघ्नन्स्तावकान्
योधान् प्यादितास्य इवान्तकः ॥ ५३ ॥ रथघोषेण महता नाद-
यन् वसुधांतलम् । पर्जन्य इव घर्षान्ते नादयन्वै दिशो दश ॥५४॥

लड़ना मैं उचित नहीं समझता ॥ ४७॥४८ ॥ जिसने उनका
नाश करनेके लिये जन्म लिया है (उसको ही लड़नेदो)
वह पुरुष ही उनका नाश करेगा , तुम युद्धको छोड़कर जहाँ
दुर्योधन खड़ा है उस ओर जाओ ॥ ४९ ॥ राजाको तो राजाके
साथ ही लड़ना चाहिये, दूसरोंसे लड़ना उचित नहीं है; अतः
हे कुन्तीपुत्र ! अर्जुन और महारथियोंमें सिंहकी समान भीम-
सेन, मेरी सहायतासे कौरवोंसे युद्ध कर रहे हैं, अब तुम हाथी,
घोड़े तथा रथोंसे घिर कर दुर्योधनके साथ लड़नेके लिये
जाओ ॥ ५०-५१ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर वासुदेवके वचन सुनकर,
दो एक घड़ीतक विचार करने लगे, फिर जहाँ पर झुल फाड़े
हुए कालकी समान शत्रुओंका नाश करने वाला भीमसेन खड़ा २
तुम्हारे योधियोंका संहार कर रहा था तहाँ जानेकी युधिष्ठिरने
तयारी की और वर्षाश्रुतुमें मेघ जैसे दशों दिशाओंको गुंजार देता
है तैसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, रथकी बड़ी भारी झनकारसे पृथ्वीको
गुंजारते हुए, शत्रुओं का संहार करनेमें लगे हुए भीमकी ओर
चले और द्रोणाचार्य इस रात्रिमें पाण्डवोंके और पाञ्चाल

भीमस्य निघ्नतः शत्रून् पाष्णिं जग्राह पाण्डवः । द्रोणोऽपि
शत्रून् पञ्चालान् व्यधमद्रजनीमुखे ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि सोमदत्त-
वधे द्विपष्ठचधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

सञ्जय उवाच । वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयानके । तमसा
संवृते लोके रजसा च महीपते ॥ १ ॥ नापश्यन्त रणे योधाः
परस्परमवस्थिताः । अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद्वद्वधे महत् ॥ २ ॥
नरनागाश्वमयनं परमं लोमहर्षणम् । द्रोणकर्णकृपा वीरा भीम-
पार्षतसात्यकाः ॥ ३ ॥ अभ्योऽन्यं क्षौभयांमासुः सैन्यानि नृप-
सत्तम । वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात्तैर्महारथैः ॥ ४ ॥ तमसा
संवृते चैव समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः । ते सर्वतो विद्रवंतो योधा विध्वस्त-

राजाओंके योधाओंका संहार करने लगे ॥ ५२—५५ ॥ एकसौ
बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६२ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा कि—अन्धकार और धूलसे पृथ्वी ढक रही
थी उस समय दोनों ओर ऐसा भयंकर युद्ध हो रहा था
कि—॥ १ ॥ रणभूमिमें खड़े हुए योधा एक दूसरेको देख भी
नहीं सकते थे, वीर क्षत्रिय योधा अपना नाममात्र कहनेसे और
अनुमानसे ही हाथी, घोड़े और पदातियों का संहार कर
रोमाञ्चजनक युद्ध कर रहे थे, वह युद्ध अब जोर पकड़ने लगा,
हमारे पक्षके वीर द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य और शत्रुपक्षके भीमसेन,
पृपुत्र पृष्ठयुष्मन् और सात्यकि ॥ २ ॥ ३ ॥ ये बहुतसे शूर युद्धमें
प्रवृत्त होकर एक दूसरेकी सेनाओंको क्षुब्ध करते थे, हे नृप-
सत्तम ! सेनाएँ धूल तथा अन्धकारसे ढक गई और चारों ओर
से महारथियोंके हाथसे नष्ट होने लगीं, तब वीर दिशाओंमेंको
भागने लगे, उनके नेत्र बिहल होगए और वे चारों ओर दौड़ने
लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ उनमें बहुतसे योधा मर गये; तुम्हारे पुत्रके

चेतनाः ॥५॥ अहंन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे । महारथ-
सहस्राणि जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥६॥ अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य
तव मन्त्रिते । ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागोपाश्च भारत । व्यमु-
ह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥ ७ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । तेषां
संलोड्यमानानां पाण्डवैर्निहतौजसाम् । अन्धे तमसि मग्नानामा-
सीत् किं वो मनस्तदा ॥ ८ ॥ कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्यस्य
या पुनः । वभूव लोके तमसा तथा सञ्जय संवृते ॥ ९ ॥ सञ्जय
उवाच । ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै ।
सेनागोप्तृनथादिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥ १० ॥ द्रोणं
पुरस्ताज्जघने तु शल्यस्तथा द्रौणिः कृतवर्मा सौबलश्च ।

अन्यायके कारण, गाढ़ अंधकार होनेसे दिङ्मूढ़ बनेहुए
सहस्रों महारथी सहस्रों महारथियोंके हाथसे मारे गए ॥ ६ ॥
अन्धेरेसे रणभूमि भर गई, उस समय सेनाएँ और सेनापति बड़ी
भारी बबड़ाहटमें पड़ गए थे ॥ ७ ॥ धृतराष्ट्रने बुझा कि-हे संजय !
पाण्डवोंने हमारे पक्षके योधाओंको इस प्रकार दुःखी करके
पराक्रमहीन कर डाला, तब गाढ़ अंधकारमें खड़े हुए तुम्हारे
मनमें उस समय कैसे २ विचार उठे थे तथा मरे और पाण्डव
पक्षके योधाओंको गाढ़ अंधकारसे भरी हुई पृथ्वीपर किस प्रकार
प्रकाश मिला था; यह मुझे बता ॥ ८-९ ॥ सञ्जयने उत्तर
दिया कि-हे महाराज ! दुर्योधनने सब सेनापतियोंको आज्ञा
देकर मरनेसे बची हुई सब सेनाओंको पीछे व्यूहरचनासे खड़ी
कर दिया ॥ १० ॥ उस व्यूहके मुहाने पर द्रोण, पित्रले भागमें
शल्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और शकुनि खड़े होगए और राजा
दुर्योधन उस रात्रिमें अपने आप चारों ओर घूम कर सब
सेनाकी रक्षा कर रहा था, शत्रुके ऊपर चढ़ाई करनेसे पहिले उसने

स्वयंश्च सर्वाणि वलानि राजन् राजाभ्ययाद्रोपयन् वै निशायाम् ११
 उवाच सर्वाश्च पदातिसंवान् दुर्योधनः पार्थिव सान्त्वपूर्वम् । उत्सृज्य
 सर्वे परमायुधानि गृहीत हस्तैर्ज्वलितान् प्रदीपान् ॥ १२ ॥ ते
 चोदिताः पार्थिवसन्नेहेन ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् । देवर्षि-
 गन्धर्वसुरर्षिसंघा विद्याधराश्चाप्सरसां गणाश्च ॥ १३ ॥ नागाः
 सयन्तोरगकिरन्तराश्च हृष्टा दिविस्था जगृहुः प्रदीपान् । दिग्दैवते-
 भ्यश्च समापतन्तोऽहश्यन्तः प्रदीपाः समुगन्धितैलाः ॥ १४ ॥ विशेष
 तो नारदपर्वताभ्यां सञ्चोध्यमानाः कुरुपुङ्गवार्थम् । सा चैव भूयो
 ध्वजिनी विभक्ता व्यरोचताग्निप्रभया निशायाम् ॥ १५ ॥ महा-
 धनैराभरणैश्च दीप्तैः शस्त्रैश्च दिव्यैरभिसम्पतद्भिः । रथे रथे पञ्च
 विदीपिकास्तु प्रदीपिकास्तत्र गजे त्रयश्च १६ प्रत्येकमेकश्च महाम-
 दीपः कृतस्तु तैः पाण्डवकौरवेयैः क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा व्या-

पैदलोंको धीरज देकर कहा कि—“तुम सब आयुधोंको छोड़
 कर हाथोंमें जलती हुई मशालें उठा लो” ॥११—१२॥ महा-
 राज दुर्योधनकी आज्ञा होते ही पैदलोंने प्रसन्न होकर हाथमेंके
 श्रेष्ठ शस्त्रोंको छोड़ कर प्रज्वलित दीपकोंको उठा लिया, कौरव
 पाण्डवोंके इस युद्धको देखनेके लिये आये हुए देवर्षि विद्याधर,
 गन्धर्व अप्सरा ॥१३॥ नाग, यक्ष, सर्प किन्नर और दिक्पाल
 भी नारद और पर्वत मुनिके सूचना देने पर सुगन्धित तैलके
 दीपकोंको लेकर आकाशमें खड़े हो गए ॥ १४ ॥ दीपकोंकी
 कान्तिसे रात्रिके समय विभागानुसार खड़ी हुई कौरवोंकी सेना
 बहुमूल्य आभूषणोंसे तथा आकाशमें चलते हुए चमकीले दिव्य
 शस्त्रोंके प्रकाशसे बहुत ही दिपने लगी कौरवोंने प्रत्येक रथके पास
 पाँच २ और प्रत्येक हाथीके सामने तीन २ दीपक रखे
 थे ॥१५—१६॥ प्रत्येक घोड़ेके पास एक खड़े दीपकका प्रबन्ध किया
 गया था इस प्रकार दीपकोंसे तुम्हारी सेना झलझल रही थी १७

दीपयन्तो ध्वजिनीं तवाशु ॥१७॥ सर्वान्तु सेनां व्यतिसेव्यमानाः
 पदातिभिः पावकतैलहस्तैः । प्रकाशयमाना ददृशुर्निशायां यथा-
 न्तरीक्षे जलदास्तडिद्धिः । १८ ॥ प्रकाशितायान्तु ततो ध्वजिन्यां
 द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन् समन्तात् । रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा मध्य-
 गतः सूर्य इवांशुमाली ॥ १९ ॥ जाम्बूनदेष्वभरणेषु चैव निष्केषु
 शुद्धेषु शरासनेषु । पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य प्रतिप्रभास्तत्र तदा
 बभूवुः ॥ २० ॥ गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा रथेषु शक्त्यश्च
 विवर्त्तमानाः । प्रतिप्रभारश्मिभिराजमीढः पुनः पुनः सञ्जनयन्ति
 दीपान् ॥२१॥ छत्राणि बालव्यजनानि स्रङ्गा दीप्ता महोल्काश्च
 तथैव राजन् । व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला व्यायच्छतां तत्र तदा
 विरेजुः ॥ २२ ॥ अस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं दीपप्रभाभिश्च
 तदा बलन्तत् । प्रकाशितञ्चाभरणप्रभामिभृशं प्रकाशं नृपते

पैदल हाथमें तैलके, दीपके लेकर रथ आदिके आगे २ चलते
 थे, अतः आकाशमें बिजली चमकने पर जैसे मेघ शोभा पाते हैं,
 तैसे ही दीपकोंसे वे योधा शोभा पारहे थे ॥ १८ ॥ कौरवोंकी
 सेनामें मशालोंसे प्रकाश होगया, उस समय द्रोण सुवर्णका कवच
 पहिर कर चारों ओर अपने प्रतापको दिखा रहे थे, वह सेनाके
 मध्यमें किरणमाली सूर्यकी समान शोभा पारहे थे ॥ १९ ॥
 सुवर्णके आभूषणोंमें, जाजूबन्दोंमें, चमकते हुए धनुषोंमें, पानी
 पिलाए हुए शस्त्रोंमें अग्निका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था २० लोहेकी
 गदायें, चमकते हुए परिघ और रथशक्तिएँ योधाओंके हाथोंमें
 घूम रही थीं, उनके प्रतिबिम्बकी किरणोंसे अनेकों दीपकोंका
 भान होता था ॥ २१ ॥ युद्ध करने वाले योधाओंके रणभूमिमें
 लड़ते हुए छत्र, बालोंके पंखे, चमकती हुई तलवारें, बड़े दीपक
 और सुवर्णकी मालाएँ इस समय टेढ़ी तिरछी गिर कर शोभा
 पारहीं थी ॥ २२ ॥ और शस्त्रोंकी कान्तिसे, दीपकोंके प्रकाशसे

वभूव ॥ २३ ॥ पीतानि शस्त्राण्यसृग्क्षितानि । वीरावधूतानि
तनुच्छदानि । दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र तपात्यये विष्णुदिवा-
न्तरिक्षे ॥ २४ ॥ प्रकम्पितानामभिघातवेगैरभिघ्नताञ्चापततां जवेन ।
ध्वजाण्यकाशान्त तदा नराणां वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥ २५ ॥
महावने दारुमये प्रदीप्ते यथा प्रभा भास्करस्यापि मश्येत् । तथा
तदासीत् ध्वजिनी प्रदीप्ता महाभया भारत भीमरूपा ॥ २६ ॥ तत्
संप्रदीप्तं बलमस्मदीयं निशम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव । सर्वेषु सैन्येषु
पदातिसंघानचोदयंस्तेऽपि चक्रुः प्रदीपान् ॥ २७ ॥ गजे गजे सप्त-
कृताः प्रदीपा रथे रथे चैव दश प्रदीपाः । द्वोवश्वपृष्ठे परिपार्व-
तोऽन्ये ध्वजेषु चान्ये जघनेषु चान्ये ॥ २८ ॥ सेनासु सर्वासु च

तथा आभूषणोंकी कान्तिसे प्रकाशित होती हुई सेना बहुत ही
दमक रही थी ॥ २३ ॥ चौमासेमें जैसे विजली चमके, तैसे ही पानी
पिलायेहुए शस्त्र तथा रक्तसे भरेहुए वीरपुरुषोंके शरीरोंके कवच
भलभल्लाते हुए कान्ति फैलारहे थे ॥ २४ ॥ मारके वेगसे काँपते
हुए, सामने प्रहार करनेवाले और चढ़ाई करनेवाले योधायोंके मुख
वायुसे काँपतेहुए बड़े-कमलोंकी समान दीखते थे ॥ २५ ॥
लकड़ीसे भरेहुए महावनके जल उठने पर सूर्यकी कान्ति जैसे नि-
स्तेज होजाती है, तैसे ही हमारी महाभयङ्कर सेना भी उस घोर
रात्रिमें दीपकोंसे बहुत ही प्रदीप्त होरही थी ॥ २६ ॥ दीपकोंके
कारण हमारी सेनाको बहुत ही प्रकाशित होतीहुई देखकर, पांडवों
ने भी तुरन्त ही पैदलोंको दीपक जलानेकी आज्ञा दी, उन्होंने सब
सेनाओंमें दीपक बाल दिये ॥ २७ ॥ उनकी सेनामें प्रत्येक
हाथीके पास सात-दीपकोंका प्रबन्ध किया गया था, प्रत्येक
रथके आगे दश-दीपक बाले गए थे तथा प्रत्येक घोड़ोंकी पीठ
पर दो-दीपक रखे गए थे, बहुतसे दीपक दोनों भुजाओं
पर, बहुतसे दीपक ध्वजाके आगे और बहुतसे दीपक पीछेकी

पार्श्वतोऽन्ये पश्चात् पुरस्ताच्च समन्ततश्च । मध्ये तथान्ये ज्वलि-
ताग्निहस्ता व्यदीपयन् पाण्डसुतस्य सेनाम् ॥२६॥ मध्ये तथान्ये
ज्वलिताग्निहस्ताः सेनाद्वयेऽपि स्म तदा विचेरुः । सर्वेषु सैन्येषु
पदातिसंघाः सम्मिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ॥ ३० ॥ व्यदीपयंस्ते-
ध्वजिनीं प्रदीप्तास्तथा बलं पाण्डवेण भिगुप्तम् । तेन प्रदीप्तेन तथा
प्रदीप्तं बलं तवासीद्बलवद्भजेन ॥३१॥ भाः कुर्वता भानुमता गृहेण
दिवाकरेणामिनिवाभितप्तम् । तयोः प्रभाः पृथिवीपन्तरिक्षं सर्वा
व्यतिक्रम्य दिशश्च वृद्धाः ॥ ३२ ॥ तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं
बभूव तेषां तव चैव सैन्यम् । तेन प्रकाशेन दिवं गतेन सम्बो-
धिता देवगणाश्च राजन् ॥ ३३ ॥ गन्धर्वयक्षाः सुरसिद्धसंघाः
समागमन्त्संरसश्च सर्वाः । तद्देवगन्धर्वसमाकुलञ्च यत्तासुरेन्द्रा-

और रखे गये थे ॥२८॥ बहुतसे पैदल हाथमें बलतेहुए दीपक
लेकर सम्पूर्ण सेनाके पार्श्वभागमें चलते थे, तथा बहुतसे आगे
चलते थे और बहुतसे पीछेकी ओर चलते थे तैसे ही बहुतसे
चारों ओर घूमरहे थे और बहुतसे सेनाके मध्यभागमें खड़े थे,
इसप्रकार पाण्डवोंने अपनी सेनाको दीपकोंसे प्रदीप्त कर दिया २६
इससमय कितने ही योधा दोनों सेनाओंके बीचके भागमें फिर रहे
थे, इस लड़ाईके समय दोनों सेनाओंके पैदल, हाथीसवार, हाथी
और घुड़सवार एक दूसरेके साथ मिल गए थे ॥३०॥ उन जगमग
करतेहुए दीपकोंने पाण्डवोंकी सेनाको जगमगा दिया, तुम्हारी
बलवती सेना भी दीपकोंसे जगमगा रही थी, दोनों ओरके
दीपकोंकी कान्ति, वृद्धि पाकर पृथ्वी आकाश, अन्तरिक्ष और
सब दिशाओंमें भर गई ॥३१॥ दीपकोंके प्रकाशसे तुम्हारी तथा
पाण्डवोंकी सेनामें बड़ा प्रकाश फैल रहा था, और हे राजन् !
स्वर्ग तक पहुँचेहुए उन दीपकोंके प्रकाशसे देवता, गन्धर्व, सिद्ध,
यक्ष और अप्सराओंके समूहोंको भी कौरव पाण्डवोंके युद्धकी

पसरसांगयैश्च ॥३४॥ इतैश्च योषैर्दिवमारुहद्विरायोधनं दिव्य-
कल्पं बभूव । रथाश्वनागांकुलदीपदीप्तं संरब्धयोधं हतविद्रुता-
श्वम् ॥३५॥ महद्वलं व्यूढनराश्वनागं सुरासुरव्यूहसमं बभूव ।
तच्छक्तिसंघाकुलचण्डवातं महारथाभ्रं गजवाजिघोषम् ॥ ३६ ॥
शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं निशि प्रवृत्तं रथदुर्दिनं तत् । तस्मिन्महाग्नि-
प्रतिमो महात्मा सन्तापयन् पाण्डवान् विप्रमुख्यः । गभस्तिगि-
र्मध्यगतो यथाको वपात्यये तद्वदभून्नरेन्द्र ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दीपो-
द्योतने त्रिपष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

खबर होगई, इस कारण वे भी युद्ध देखनेके लिये तहाँ आये, इस समय जो शूर रणमें मरण पाते थे, वे सीधे स्वर्गको जाते थे, देवता, गन्धर्व, राक्षस और अप्सराओंकी टोलियोंसे रणक्षेत्र भरगया था, इस कारण रणभूमि देवभूमिकी समान शोभा पारही थी, रात्रिके समय हाथी, घोड़ोंसे भरपूर, दीपकोंसे प्रकाशित होताहुआ, क्रोधमें भरेहुए योधाओंवाला, भरेहुए और भांगतेहुए योधाओंसे भराहुआ, हाथी, घोड़े और रथोंकी व्यूह रचनावाला बड़ा भारी सेनादल देवासुरव्यूहकी समान दीखता था, हे राजेन्द्र ! इस रात्रियुद्धमें रथरूपी दुर्दिन होगया था, योधाओंके समुदायरूप शक्तिकी आँधी चलरही थी, महारथीरूप बादल घिर कर आरहे थे, घोड़ोंकी हिनहिनाहट और हाथियोंकी चिंघाडरूप गर्जनाएँ होरही थीं, शस्त्रोंके समूहकी महारूप वृष्टि होरही थी, रुधिररूपी जलकी धाराएँ बरस रही थीं, शरद अंतुमें किरणमाली सूर्य जैसे दूसरोंको तपाता है, तैसे ही ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ बड़ेभारी अग्निकी समान महात्मा द्रोणाचार्य पाण्डवोंको तपा रहे थे ॥३२-३७॥ एकसौ तरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६३ ॥

सञ्जय उवाच । प्रकाशिते तदा लोके रजसा तपसावृते । समा-
जगुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥ १ ॥ ते समेत्य रणो राजन्
शस्त्रमासासिधारिणः । परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥ २ ॥
प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समन्ततः । रत्नाचितैः स्वर्णदण्डै-
र्गन्धतैलावसिञ्चितैः ॥ ३ ॥ देवगन्धर्वदीपाद्यैः प्रभाभिरधिको-
ज्वलैः । विरराज तदा भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥ ४ ॥ उल्काशतैः
प्रज्वलितै रणभूमिर्विराजत । दहमानेव लोकानामभावे च वसु-
न्धरा ॥ ५ ॥ व्यदीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृत्ता वृक्षाः इवावधुः ॥ ६ ॥ असञ्जन्तः तदा
वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक् । नागा नागैः समाजगमुस्तुरगा हय-
सादिभिः ॥ ७ ॥ रथा रथिवरैरेव समाजगमुर्मुदा युताः । तस्मिन्

सञ्जयने कहा कि—हे राजन् धृतराष्ट्र! दीपकोंके प्रज्वलित होतेही
धूल तथा अंधेरेसे भरी हुई रणभूमिमें प्रकाशही प्रकाश फैल गया
और एक दूसरेका अपराध करनेवाले दोनों सेनाओंके वीर योधा
प्रास, तलवार आदि शस्त्र लेकर एक दूसरेको मारनेके लिये
रणभूमिमें आकर एक दूसरेके सामने टकटकी बाँधकर देखने
लगे ॥ १-२ ॥ हे भरतवंशी राजन्! रत्नोंसे जड़े, सुवर्णकी दीपटों
पर रक्ते हुए, सुगन्धित तेलके सहस्रों झपझपाते हुए तथा
देवता और गंधर्वोंसे अधिक कान्ति वाले दीपकोंसे रणभूमि
नक्षत्रोंसे शोभा पाने वाले आकाशकी समान दिपने लगी ३-४
जगत्के प्रलयके समय पृथ्वी जैसे जलती हुई दिखाई देती है,
तैसे ही जलती हुई प्रशालोंके प्रकाशसे झल झलाती हुई रणभूमि
दिप रही थी; वर्षाकालमें पतंगोंसे भरे हुए वृक्ष जैसे शोभा पाते हैं,
तैसे ही चारों ओर जलते हुए दीपकोंसे सकल दिशाएँ भी प्रकाशित
होरही थीं ॥ ५-६ ॥ हे राजन्! तुम्हारे पुत्रकी आज्ञा होने पर
वस राजिमें वीर पुरुष पृथक् २ वीरपुरुषोंके साथ युद्ध करनेलगे;

रात्रिमुखे घोरे पुत्रस्य तव शासनात् ॥ ८ ॥ चतुरङ्गस्य सैन्यस्य
सम्पातश्च महान्भूत् । ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकि-
नीम् ॥ ९ ॥ व्यधमच्चरया युक्तः क्षपयन् सर्वपार्थिवान् । धृतराष्ट्र
उवाच । तस्मिन् प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ १० ॥
अमृज्यमाणे दुर्दुर्षे किं व आसीन्मनस्तदा । किमप्यन्त सैन्यानि
प्रविष्टे परतापने ॥ ११ ॥ दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालमपन्यत ।
के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्युररिन्दमाः ॥ १२ ॥ द्रोणश्च के व्यर-
क्षन्त प्रविष्टे श्वेतवाहने । केऽरक्षन् दक्षिणञ्चक्रं के च द्रोणस्य
सव्यतः ॥ १३ ॥ के पृष्ठतोऽन्वरक्षन्त वीरा वीरस्य युध्यतः । के
पुरस्तादगच्छन्त निघ्नतः शात्रवान् रणे ॥ १४ ॥ यत् प्राविश-

हाथीसवार हाथीसवारोंके साथ, घुडसवार घुडसवारोंके साथ,
रथी रथियोंके साथ और पैदल पैदलोंके साथ लड़नेलगे, चतुर-
ङ्गिनी सेनामें बड़ाभारी संहार होनेलगा, हे महाराज । इस समय
अर्जुन वेगमें भरगया और वह कौरवोंकी सेना तथा कौरवोंके
सब राजाओंका संहार करनेलगा ॥ ७-९ ॥ धृतराष्ट्रने वृष्ठा,
हे सञ्जय ! कोपमें भरेहुए किसीकी न सहनेवाले दुर्योधन अर्जुनने
जब मेरी सेनामें प्रवेश किया, तब तुम्हारे मनमें कैसेर विचार उठे
थे और शत्रुओंका दमन करनेवाला अर्जुन जब तुम्हारी सेनामें
घुसगया तब तुमने क्या किया था ॥ १०-११ ॥ दुर्योधनने भी
उस समय क्या करनेका विचार किया था, युद्धमें शत्रुओंका
दमन करनेवाले कौनर शूर उस शूरवीरके सम्मुख गये थे ॥ १२ ॥
अर्जुनके सेनामें घुसजाने पर द्रोणके दायें तथा बायें पहियेकी रक्षा
कौन र कररहे थे ॥ १३ ॥ जब द्रोण रणके मुहाने पर खड़े हो
शत्रुओंका संहार कररहे थे तब कौनर वीर उनके पीछे रहकर
उनकी पीठरक्षा करते थे और रणमें शत्रुओंका संहार करनेवाले
द्रोणके रथके आगे कौनर वीरपुरुष चलते थे ॥ १४ ॥ महाधनुर्धर

न्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः । नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमा-
 गेषु वीर्यवान् ॥ १५ ॥ यो ददाह शरैर्द्रोणः पञ्चालानां रथ-
 ब्रजान् । धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ १६ ॥ अव्य-
 ग्रानेव हि परान् कथयस्यपराजितान् । हृष्टानुदीर्णान् संग्रामे न
 तु सञ्जय मामकान् ॥ १७ ॥ हताश्चैव विदीर्णाश्च विप्रकीर्णाश्च
 शंससि । रथिनो विरथाश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ १८ ॥
 सञ्जय उवाच । द्रोणस्य मतमाज्ञाय शोद्धकामस्य तां निशाम् ।
 दुर्योधनो महाराज वर्यान् भ्रातनभापत ॥ १९ ॥ कर्णं च वृष-
 सेनश्च मद्राजं च कौरव । दुर्धर्षं दीर्घबाहुञ्च ये च तेषां पदा-
 नुगाः ॥ २० ॥ द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्तन्तु पृष्ठतः ।
 हार्दिक्यो दक्षिणञ्चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ॥ २१ ॥ त्रिगर्त्ता-

पराक्रमी और अजित द्रोणाचार्य, रथोंके मण्डलमें नृत्य करते हैं।
 तैसे शीघ्रतासे पांचाल राजाओंकी सेनामें पहुँच गए और उन्होंने
 कोपमें आकर धूमकेतुकी समान बाण मारकर पाञ्चाल राजाओं
 के रथियोंको जलाकर भस्म कर डाला, तो भी द्रोणाचार्य रणमें
 कैसे पारे गए ! हे सूत ! तू संग्राममें जैसे शत्रुपक्षके योधाओंको
 धैर्यवाले, विजयी, प्रसन्न मनवाले तथा अभ्युदयवाले कहकर उन
 का वर्णन करता है, तैसे मेरे पक्षके योधाओंका वर्णन नहीं करता,
 किन्तु मेरे योधाओंको तो तू नष्टहुए कटकर मारे गए और विदीर्ण
 हुए कहता है तथा कहता है कि—रथी रथरहित होगये, अतः जो
 सच्ची बात हो उसको शुरुसे कह ॥ १५—१८ ॥ सञ्जयने कहा,
 कि—हे महाराज ! दुर्योधनने उस रात्रिमें युद्ध करनेकी इच्छावाले
 द्रोणाचार्यको मत लेकर अपनी अधीनतामें रहनेवाले भाइयोंसे
 तथा कर्णसे, वृषसेनसे, मद्राजसे, महाबाहु दुर्धर्षसे तथा उनके
 सेवकोंसे कहा कि—“तुम बड़ी सावधानीके साथ युद्ध करनेमें लग
 जाओ और द्रोणाचार्यको पीछेसे रक्षा करो, कृतवर्मा द्रोणके

नाञ्च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः । तान्श्चैव पुरतः सर्वान्पुत्रस्ते
समचोदयत् ॥ २२ ॥ आचार्यो हि सुसंयतो भृशं यत्ताश्च
पाण्डवाः । तं रक्षथ सुसंयता निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ॥ २३ ॥
द्रोणोऽपि बलवान् युद्धे क्षिप्रहस्तः प्रतापवान् । निर्जयेत् त्रिदशान्
युद्धे किमु पार्थान् ससोमकान् ॥ २४ ॥ ते यूयं सहिताः सर्वे
भृशं यत्ता महारथाः । द्रोणं रक्षत दुर्हर्षं धृष्टद्युम्नान्महारथात् २५
पाण्डवेयेषु योधेषु योधं पश्याम्यहं न तम् । यो योधयेद् रणे
द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते शुमान् ॥ २६ ॥ तस्मात्सर्वामना मन्ये भार-
द्वाजस्य रक्षणम् । स गुप्तः पाण्डवान् हन्यात् सृञ्जयान्श्च ससो-
मकान् ॥ २७ ॥ सृञ्जयेषु च सर्वेषु निहतेषु च मृगुखे । धृष्टद्युम्नं

रथके दायें पहियेकी और शल्य बायें पहियेकी रक्षा करे" १६-२१
फिर निर्गत देशके शूरवीर महारथियोंमेंसे जो मरते वचगए थे
उन सबको भी दुर्योधनने द्रोणके रथके आगे रहनेकी आज्ञा
दी ॥ २२ ॥ तदनन्तर द्रोणाचार्य और पाण्डव लड़नेके लिये
भली भाँति तयार होगए, तब तुम्हारे पुत्रने योधाओंसे कहा,
कि-द्रोण जिस समय रणमें शत्रुओंका संहार करें उस समय
बड़ी सावधानीसे उनकी रक्षा करना ॥ २३ ॥ द्रोणाचार्य बलशाली
और प्रतापी हैं तथा उनका हाथ फुर्तीला है, वे युद्धमें देवताओं
का भी पराजय कर सकते हैं, फिर उनके सामने सोमक और
पाञ्चाल तो किस गिनतीमें हैं ? ॥ २४ ॥ मुझे तुमसे यही कहना
है, कि-तुम सब महारथी तत्पर और इकट्ठे होकर पांचालदेशी
राजाओंमेंके महारथी धृष्टद्युम्नसे द्रोणकी रक्षा करना ॥ २५ ॥
मैं पाण्डवोंकी सेनामें धृष्टद्युम्नके सिवाय किसी भी ऐसे राजाको
नहीं देखता, जो युद्धमें द्रोणके सामने लड़सके ॥ २६ ॥ अतः आप
सब सावधान होकर द्रोणकी रक्षा करियेगा, मैं समझता हूँ.
कि-उनकी रक्षा करनेसे, वे पाण्डव, सोमक और सृञ्जयवंशी

रणे द्रौणिर्घातयिष्यत्यसंशयम् ॥ २८ ॥ तथार्जुनं रणे कर्णो
विजेष्यति महारथः । भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः २९
शेषांश्च पाण्डवान् योधाः प्रसभं हीनतेजसः । सोऽयं मम जयो
व्यक्तो दीर्घकालं भविष्यति ॥ ३० ॥ तस्माद्ब्रूत संग्रामे द्रोण-
मेव महारथम् । इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ३१ ॥
व्यादिदेश तदा सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे । ततः प्रवृत्ते युद्धं
रात्रौ भरतसत्तम ॥ ३२ ॥ उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया ।
अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनश्चापि कौरवाः ॥ ३३ ॥ नानाशस्त्र-
समावायैरन्योऽन्यं पर्यपीडयन् । द्रौणिः पाञ्चालराजानं भारद्वा-
जश्च सृञ्जयान् ॥ ३४ ॥ द्वादयाञ्चक्रिरे संख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणाञ्च भारत ॥ ३५ ॥ आसी-

राजाओंका संहार करसकेंगे ॥ २७ ॥ रणके घुहाने पर खड़े होकर
द्रोणाचार्य सब सृञ्जयोंका नाश करेंगे, तब अश्वत्थामा युद्धमें
धृष्टद्युम्नका नाश कर डालेगा, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ २८ ॥
महारथी कर्ण अर्जुनका नाश करेगा और युद्धकी दीक्षा लेने
वाला मैं भीमसेनका नाश करूँगा, बाकी बचे हुए तेजोहीन पाण्ड-
वोंका (हमारे) योधा शीघ्रतासे नाश कर डालेंगे, इसमें संदेह
नहीं है, इस प्रकार प्रत्यक्षरीतिसे तो चिरकालतक हमारी ही विजय
रहेगी ॥ २९-३० ॥ अतः अब तुम युद्धभूमिमें महारथी द्रोणा-
चार्यकी रक्षा करो- हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इस प्रकार कहकर
तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने सेनाको लड़नेके लिये आज्ञा दी, हे भरतवंशमें
श्रेष्ठ राजन् ! तब उस रात्रिके दारुण अंधकारमें सेनाओंमें परस्पर
विजयकी इच्छासे घोर युद्ध होने लगा ॥ ३१-३३ ॥ इस युद्धमें अर्जुन
भाँति २ के अस्त्रोंसे कौरवोंकी सेनाको पीड़ित करने लगा और
कीरव भी नानाप्रकारके शस्त्रोंसे अर्जुनको पीड़ित करने लगे;
अश्वत्थामा पांचाल राजाओंके ऊपर और द्रोणाचार्य सृञ्जय राजा-

न्निष्ठानको घोरो निघ्नतामितरेतरम् । नैवास्माभिर्न पूर्वैश्च दृष्ट-
पूर्वन्तथाविधम् ३६ श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद्रौद्रं भयानकम् ॥ ३७ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
संकुलपुद्धे चतुःपञ्च्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

सञ्जय उवाच । वर्त्तमाने तथा रौद्रे रात्रियुद्धे विशाम्पते ।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ अत्रवीत् पाण्डवाश्चैव
पञ्चालाश्च ससोमकान् । अभिद्रवत् संयात द्रोणमेव जिघांसया
राज्ञस्ते वचनाद्राजन् पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा । द्रोणमेवाभ्यवर्त्तत
नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ २ ॥ तं तु ते प्रतिगर्जन्तः प्रत्युघाता-
स्त्वमर्पिताः । यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वञ्च संयुगे ॥ ४ ॥
कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् । द्रोणं प्रति समायान्तं
मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५ ॥ शैनेयं शरवर्षाणि विमुजन्तं सप-

ओंके ऊपर नमेहुए पर्व वाले बाणोंकी दृष्टि कर उनके ढकनेलगे
और हे भरतवंशी राजन् ! परस्पर युद्ध करते हुए पाण्डव और
पांचाल राजे तथा कौरव रणभूमिके ऊपर संहारसूचक घोर शब्द
करने लगे, यह युद्ध ऐसा भयानक हुआ था, कि-ऐसा युद्ध न
हमने पहिले कभी देखा था और न सुना था ॥ ३४-३७ ॥
एकसौ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६४ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! पाणियोंका संहार करने वाला,
भयंकर तथा रौद्ररात्रियुद्ध चलनेलगा, उस समय धर्मपुत्र युधिष्ठिरने
पांचाल, पाण्डव तथा सोमकोंको आज्ञा दी, कि-तुम द्रोणका
नाश करनेके लिये उनपर एकदम दृष्टपड़ो ॥ १-२ ॥ हे राजन् ! युधि-
ष्ठिरके वचनको सुनकर जो त्रमे भरेहुए पांचाल तथा सृञ्जय राजा-
ओंने शक्ति, उत्साह और सत्त्व(मानसिकबल)से द्रोणके ऊपर चढ़ाई
की ३-४ मददच हाथी जैसे हाथीके ऊपर भपटता है, तैसे ही युधिष्ठिर
ने द्रोणके ऊपर धावा किया, तब हृदीकपुत्र कृतवर्मा उनके सामनेको

न्ततः । अभ्ययात् कौरवो राजन् भूरिः संग्राममूर्धनि ॥ ६ ॥ सह-
देवमयायान्तं द्रोणलिप्सुं महारथम् । कर्णो वैकर्त्तनो राजन् वार-
यामास पाण्डवम् ॥ ७ ॥ भीमसेनमथायान्तं व्यादितास्यमिवा-
न्तकं । स्वयं दुर्योधनो युद्धे प्रतीपं मृत्युमाब्रजत् ॥ ८ ॥ नकुलञ्च
युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् । शकुनिः सौबलो राजन् वारया-
मास सत्वरः ॥ ९ ॥ शिखण्डिनमथायान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
कृपः शारद्वतो राजन् वारयामास सयुगे ॥ १० ॥ प्रतिबिन्ध्यमथाया-
न्तं मयूरसदृशैर्हयैः । दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत् ॥ ११ ॥
भीमसेनिमथायान्तं मायाशतविशारदम् । अश्वत्थामा महाराज
राज्ञसं संन्यवारयत् ॥ १२ ॥ द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानु-

बद्धा ॥ ५ ॥ कुरुकुमार भूरिने संग्रामके मुहानेपर खड़े होकर चारों
ओर बाण बरसाते हुए सांत्यकिके ऊपर धावा किया ॥ ६ ॥ महा-
रथी पाण्डुपुत्र सहदेव द्रोणको शिक्ता (दण्ड) देनेके लिये बढ़ने
लगा, हे राजन् ! सूर्यपुत्र कर्ण उसके सामने गया और उसको
आगे बढ़नेसे रोकने लगा ॥ ७ ॥ मुख फाड़ेहुए कालकी समान
भीमसेन लड़नेके लिये चढ़आया, उसकी ओर राजा दुर्योधन स्वयं
ही उस कालखप शत्रुसे लड़नेके लिये रणमें उद्यत होगया ॥ ८ ॥
हे राजन् ! बहुतही फुर्तीला सुबलका पुत्र शकुनि योधाओंमें श्रेष्ठ
तथा सब युद्धोंमें कुशल नकुलको रणमेंसे पीछेको हटानेके लिये
बढ़ा ॥ ९ ॥ हे राजन् ! शरद्वानके पुत्र कृपाचार्यने, रणभूमिमें
रथपर बैठकर लड़नेके लिये आतेहुए महारथी शिखण्डीको रोका
और उसके सामने युद्ध करनेलगे ॥ १० ॥ हे महाराज ! राजा प्रतिबिन्ध्य
मयूरकी समान नीले बर्णके घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर लड़नेके लिये
आयाथा उसके सामने दुःशासनने सावधान होकर टकराली और
उसको रोका ॥ ११ ॥ हे महाराज ! सैकड़ों माया जानने वालों भीम-
सेनका पुत्र घटोत्कच चढ़ आया, उसको अश्वत्थामाने आगे

गम् । वारयामास समरे द्रोणमेष्टुं महारथम् । विराटं द्रुतमायान्तं
द्रोणस्य निधनं प्रति । मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत १४
शतानीकमथायान्तं नाकुलिं रभसं रणे । चित्रसेनो करोधाष्टु शरै-
र्द्रोणपरीप्सया ॥ १५ ॥ अर्जुनन्तु युधां श्रेष्ठं प्राद्ववन्तं महारथम् । अलं-
चुषो महाराज राज्ञसेन्द्रो न्यवारयत् ॥ १६ ॥ ततो द्रोणं महेश्वासं
निघ्नं शात्रवाज्रणे । धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत् १७
तथान्यान् पाण्डुपुत्राणां समायातान्महारथान् । तावका रथिनो
राजन् वारयामासुरोजसा ॥ १८ ॥ गजारोहा गजैस्तूर्ण्यं सन्नि-
पत्य महामृधे । योधयन्तश्च मृद्नन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥
निशीथे तुरगा राजन् द्रावयन्तः परस्परम् । प्रत्यदृश्यन्त वेगेन पक्ष-
वदनेसे रोका ॥ २० ॥ वृषसेनने युद्धमें द्रोणाचार्यको पकड़नेके लिये
सेनासहित चढ़कर आते हुए राजा द्रुपदको आगे बढ़नेसे रोका
और हे भरतवंशी राजन् ! राजा विराट द्रोणाचार्यका नाश करने
के लिये चढ़आया था, उसको क्रोधमें भरेहुए मद्रराजने आगे
बढ़नेसे रोका था ॥ १३-१४ ॥ नकुलपुत्र शतानीक शीघ्रतासे
द्रोणचार्यका नाश करनेके लिये बढ़रहा था, उसको चित्रसेनने बाण
मारकर रोकदिया ॥ १५ ॥ हे महाराज ! योधाओंमें श्रेष्ठ अर्जुन
सेनाका संहार करनेके लिये चढ़ आया, उसको राज्ञसराज अलं-
चुषने रोकना आरंभ कर दिया ॥ १६ ॥ महाधनुषधारी द्रोण
हथमें भर सेनाका संहार करने पर पिल पड़े, उनको पांचालपुत्र
धृष्टद्युम्नने बाधा दी थी ॥ १७ ॥ तथा पाण्डवोंकी ओरके दूसरे
जो २ महारथी लड़नेको आये थे उनको तुम्हारी ओरके महा-
रथियोंने बलपूर्वक रोक रक्खा था ॥ १८ ॥ महासंग्राममें हाथी
सवार हाथीसवारोंके ऊपर एकाएकी धावाकर लड़रहे थे और
सैकड़ों तथा सहस्रों व्यक्तियोंका संहार कररहे थे ॥ १९ ॥
हे राजन् ! पंखवाले पर्वत जैसे वेगसे आपसमें लड़कर एक

वन्तो यथाऽद्वयः ॥ २० ॥ सादिनः सादिभिः साढे पाशशक्त्यु-
 ष्ठिपाणयः । समागच्छन्महाराज विनदन्तः पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥
 नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम् । गदाभिर्मुसलैश्चैव
 नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ २२ ॥ कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधि-
 ष्ठिरम् । वारयामास संक्रुद्धो ब्रह्मेलेषोद्वृत्तमर्णवम् ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर-
 स्तु हार्दिक्यं विध्वा पञ्चभिराशुगैः । पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठ
 तिष्ठेति चान्नवीत् ॥ २४ ॥ कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ।
 धनुश्चिच्छेद भल्लेन तञ्च विव्याध सप्तभिः ॥ २५ ॥ अथान्य-
 द्दुरादाय धर्मपुत्रो महारथः । हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाहोरसि
 चार्पयत् ॥ २६ ॥ माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष । प्राक-

दूसरेको भगाते है, तैसे ही अर्धरात्रिमें चले जातेहुए घुडसवार भी
 वेगसे एक दूसरेके साथ लड़ रहे थे और एक दूसरेको भगाते हुए
 दिखाई देते थे ॥ २० ॥ हे महाराज ! घुडसवार प्रास, शक्ति
 और ऋष्टियोंको हाथमें लेकर पृथक् २ गर्जना करतेहुए आपने
 सामने लड़ रहे थे ॥ २१ ॥ बहुतसे पैदल भी गदा, मूसल
 तथा नानाप्रकारके शस्त्रोंको लेकर परस्पर युद्ध करते थे ॥ २२ ॥
 किनारे जैसे बहतेहुए समुद्रको रोक लेते हैं तैसे ही कोपमें भरे
 हुए हृदीकके पुत्र कृतवर्माने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको आगे बढ़नेसे
 रोका ॥ २३ ॥ कि-युधिष्ठिरने पाँच बाण कृतवर्माके मारे और
 पुनः बीस बाण मारकर कहा, कि-“अरे कृतवर्मा खड़ा रह !
 खड़ा रह ॥ कहाँको भागे जाता है” यह सुनकर कृतवर्माको बड़ा
 क्रोध बढ़ा, उसने भल्ल नामक बाण मारकर युधिष्ठिरके धनुषको
 काट डाला, फिर सात बाण मारकर उनको बाँध डाला ॥ २४ ॥ महारथी
 युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर कृतवर्माकी छाती और दोनों
 भुजाओं पर बीस बाण मारे ॥ २५ ॥ इसप्रकार धर्मपुत्रने रणके
 ऊपर कृतवर्माको बाणोंकी मारसे बाँध डाला, तब वह काँप उठा

स्पत च रोपेण सप्तभिश्चाव्यच्छरैः ॥ २७ ॥ तस्य पार्थो धनु-
 श्छित्त्वा हस्ताघापं निकृत्य तु । प्राहिणोन्निशितान् भल्लान्
 पञ्च राजञ्छिताशितान् ॥ २८ ॥ ते तस्य कवचं भित्त्वा
 हेमचित्रं महाधनम् । प्राविशन् धरणीं भित्त्वा वन्मीकमिव
 पन्नगाः ॥ २९ ॥ अक्षोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय क्रामुकम् ।
 विव्याध पाण्डवं पण्डित्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ३० ॥ तस्य
 शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोत्तमाम् । चित्तेषु भरतश्रेष्ठ रथे
 न्यस्य महद्भुजः ॥ ३१ ॥ सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेदिता ।
 निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद्वरणीतलम् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नेव
 काले तु शूरा पार्थो महद्भुजः । हार्दिक्यं ह्यादयामास शरैः सन्नत-
 पर्वभिः ॥ ३३ ॥ ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी । व्यश्व-

और हे राजन् ! उसने क्रोधमें भरकर धर्मपुत्रके सात बाण मारे २७
 युधिष्ठिरने उसके धनुष तथा गौजोंको काटहाला और शिला पर
 घिसकर तेज कियेहुए पाँच बाण उसके ऊपर छोड़े ॥ २८ ॥ वे
 बाण सुवर्णके बनेहुए बहुमूल्य कृतवर्माके कवचको फोड़कर,
 सर्प जैसे बिलमें घुसें, तैसे पृथिवीमें घुसगये ॥ २९ ॥ कृतवर्माने
 निमेषमात्रमें ही दूसरा धनुष उठालिया और साठ बाण युधिष्ठिरके
 और नौ बाण उनके सारथिके मारे ॥ ३० ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ
 राजन् ! उदार मनवाले पाण्डुपुत्र धर्मराजने महाधनुषको रथमें
 रखदिया और कृतवर्माके ऊपर सर्पकी समान उत्तम शक्तिका
 प्रहार किया ॥ ३१ ॥ पाण्डुपुत्रकी मारी हुई शक्ति सुवर्णसे जड़ी
 हुई थी और बड़ीभारी थी, वह शक्ति कृतवर्माके हाथमें घावकर
 पृथिवीमें घुस गई ॥ ३२ ॥ फिर धर्मराजने दूसरा धनुष उठाया
 और नगी हुई गाँठवाले बाण मारकर हृदीकफे पुत्र कृतवर्माको
 हकदिया ॥ ३३ ॥ तब वृष्णियोंमें श्रेष्ठ शूर महारथी कृतवर्माने
 आधे निमेषमें ही युधिष्ठिरको रथ, छोड़े और सारथिशून्य कर

सूतरथञ्चक्रे निमेषाद्वायुधिष्ठिरम् ॥ ३४ ॥ ततस्तु पाण्डवो
ज्येष्ठः खड्गचर्म समाददे । तदप्यस्य शितैर्भस्मैर्व्यधन्माधवो
रणे ॥ ३५ ॥ तोमरन्तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् । अमै-
षीत् समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥ तमापतन्तं
सहसा युधिष्ठिरभुजच्युतम् । द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः
स्मयन्निव ॥ ३७ ॥ ततः शरशतेनाजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् ।
कवचञ्च रणे क्रूद्वो बाणजालैरवाकिरत् ॥ ३८ ॥ हार्दिक्यशर-
सञ्छन्नं कवचं तन्महाधनम् । व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवा-
म्बरात् ॥ ३९ ॥ स छिन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरादितः ।
अपयातो रथात्तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४० ॥ कृतवर्मा तु निर्जित्य
धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महारथः ॥ ४१ ॥

ढाला ॥ ३४ ॥ रथरहित हुए पाण्डुके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरने ढाल
तथा तलवार हाथमें ठा ली, परन्तु कृतवर्माने उसके भी टुकड़े
करढाले, तदनन्तर युधिष्ठिरने सुवर्णके दण्डेवाला भयङ्कर तोमर
लेकर शीघ्रतासे कृतवर्माके मारा ३५ ॥ ३६ परन्तु कृतवर्माका हाथ
अस्त्रविद्यामें बढाहुआ था, इस कारण युधिष्ठिरके हाथमेंसे छूट
कर वह तोमर जैसे एकाएकी उसके ऊपर बढा कि उसने हँसते-
उसके टुकड़े करढाले ! ॥ ३७ ॥ और लड़ते २ क्रोधमें भरकर
धर्मपुत्र युधिष्ठिरके सौ बाण मारकर उनके कवचको छिन्न भिन्न
करढाला, उस समय हे भरतवंशी राजन् ! आकाशमेंसे जैसे
पृथिवीके ऊपर नक्षत्र गिरपड़े, तैसे ही बाणोंके प्रहारसे युधिष्ठिर
का कवच चूरा हो पृथिवी पर गिरपड़ा ॥ ३८-३९ ॥ धर्मराजका
रथ टूटगया, कवच छिन्न भिन्न होगया और बाणोंके प्रहारोंसे
उनको पीडा होनेलगी, तब वह रणमेंसे एकदम भागगए और
कृतवर्मा धर्मात्मा युधिष्ठिरका पराजय करनेके पीछे महात्मा
द्रोणाचार्यके चक्रव्यूहकी रक्षा करनेलगा ॥ ४० ॥ ४१ ॥

सञ्जय उवाच । भूरितु सपरे राजन् शैनेयं रथिनाम्बरम् ।
 आपतन्नामपासेधत् प्रवणादिव कुञ्जरम् ॥ १ ॥ अथैनं सात्यकिं
 क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः । विव्याध हृदये तस्य प्रासवत्तस्य
 भोषितम् ॥ २ ॥ तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् । दश-
 भिर्निशितैस्तीक्ष्णैरपविध्यद् भुजान्तरे ॥ ३ ॥ तावन्योऽन्यं महाराज
 ततच्चाते शरैर्भृशम् । क्रोधसंरक्तनयनौ दृढे विस्फार्य कामुको ॥ ४ ॥
 तयोरासीन्महाराज शरद्वष्टिः सुदारुणा । क्रुद्धयोः सायकमुचोर्धमा-
 न्तकनिकाशयोः ॥ ५ ॥ तावन्योऽन्यं शरै राजन् प्रच्छाद्य स-
 चस्थितौ । मुहूर्त्तञ्चैव तद्युद्धं समरूपमिवाभवत् ॥ ६ ॥ ततः क्रुद्धो
 महाराज शैनेयः प्रहसन्निव । धनुश्चिच्छेद सपरे कौरव्यस्य मदा-
 त्मनः ॥ ७ ॥ अथैनं छिन्नधन्वान नवभिर्निशितैः शरैः । विव्याध
 हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥ सोऽतिविहो बलवता

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! भूरिने ढलकाववाले
 स्थानसे नीचेको उतर कर आतेहुए हाथीकी समान रणमें चढ़
 कर आतेहुए सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोक ॥ १ ॥ और
 कोपायमान होकर तीक्ष्ण कियेहुए पाँच बाण उसकी छातीमें मारे
 तब सात्यकिके शरीरमेंसे रक्त चूने लगा ॥ २ ॥ इसके पीछे
 उसने और दश तीक्ष्ण बाण सात्यकिकी छातीमें मारेइहे महा-
 राज ! क्रोधसे लाल २ नेत्रकर, उन दोनों लडाकोंने धनुषको टंकार
 कर एक दूसरेके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करना आरंभ कर
 दिया, हे महाराज ! यमकी समान वे दोनों क्रोधमें भरकर बाण छोड़
 कर एक दूसरे पर अतिदारुण शस्त्रोंकी दृष्टि कर रहे थे ४-५ और एक
 दूसरेको बाणोंसे ढ़करहे थे एक मुहूर्ततक तो यह युद्ध समान रीतिसे
 चला, परंतु पीछेसे कोपमें भरेहुए सात्यकिने मुस्कराकर महात्मा
 भूरिके धनुषको काट डाला, उसका धनुष काटनेके पीछे तुरत ही
 उसकी छातीमें नौ बाण तेज मार कर उससे कहा कि-“अरे खडा

शत्रुणा शत्रुतापनः । धनुरन्यत् समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ६
 स विधवा सात्वतं वाणैस्त्रिभिरेव विशाम्पते । धनुश्चिच्छेद भल्लेन
 सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १० ॥ जिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः
 क्रोधमूर्च्छितः । प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११ ॥
 स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् । लोहिताङ्ग इवा-
 काशादीप्तरश्मिर्पटच्छया ॥ १२ ॥ तन्तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा
 महारथः । अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥ १३ ॥ तिष्ठ
 तिष्ठेति त्रिभाष्य सात्यकिं स नराधिप । अभ्यवर्षच्छरौघेण मेहं
 वृष्ट्या यथाम्बुदः ॥ १४ ॥ तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति ।
 घटोत्कचोऽब्रवीद्राजन्नादं मुक्त्वा महारथः ॥ १५ ॥ तिष्ठ तिष्ठ

रह । खड़ा रह ॥ अब कहाँको भागे जाता है ? ॥ ६-८ ॥ इस
 प्रकार वाली शत्रुने भूरिको बाण मारकर घायल किया तब शत्रुको
 तपाने वाले भूरिने दूसरा धनुष लेकर, उसके ऊपर बाणोंको चढ़ा
 सात्यकिको मारना आरंभ किया, हे राजन् ! सात्यकिके तीन
 बाण मारनेके पीछे मुस्करा कर उसने उसके धनुषके भल्ल नामक
 तीक्ष्ण बाण गार कर दो टुकड़े कर डाले ६-१० हे महाराज ! धनुष
 फटने पर सात्यकिको क्रोध चढ़ा और वह चिढ़ गया तब उसने
 भूरिकी विशाल छातीमें महावेगवाली शक्ति मारी ॥ ११ ॥ तुरंत
 ही भूरिका शरीर फट गया तब प्रकाशवाला चमकता हुआ मंगल
 का तारा जैसे दैवेच्छासे पृथ्वी पर गिर पड़े तैसे महारथी भूरि
 रथके ऊपरसे पृथ्वीमें लुढ़क पड़ा ॥ १२ ॥ उस शूरको मरा हुआ
 देखकर महारथी अश्वत्थामाने एकदम सात्यकिके ऊपर चढ़ाई
 की और ॥ १३ ॥ जोरसे कहा कि—“अरे ! सात्यकि ! अब तू कहाँको
 भागे जाता है खड़ा रह ! खड़ा रह ॥” इसप्रकार सात्यकिको
 युद्धका निमन्त्रण देकर, मेघ जैसे मेरुपर्वत पर जलकी वृष्टि करता
 है, तैसे ही उसने उसके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करना आरंभ कर

न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि । एष त्वां निहनिष्यामि महिषं
 पश्यमुखो यथा ॥१६॥ युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।
 इत्युक्त्वा रोपताम्राक्षो राक्षसः परनीरहा ॥ १७ ॥ द्रौणिमभ्य-
 द्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी । रथाक्षमानैरिपुभिरभ्यवर्षद् घटो-
 त्कचः ॥ १८ ॥ रथिनामृषभं द्रौणि धाराभिरिव तोयदः । तां
 बाणवृष्टिमप्राप्तां शरैराशीविषोपमैः ॥ १९ ॥ शानयामास समरे
 तरसा द्रौणिकस्त्वयन् । ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मभिर्मभेदिरशुगैः २०
 समाचिनोद्राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिन्दमम् । स शरैराचितस्तेन
 राक्षसो रणमूर्द्धनि ॥ २१ ॥ व्यकाशत महाराज स्वाविच्छल-

दी, कोपमें भरेहुए अश्वत्थामाको सात्यकिके रथके ऊपर चढ़कर
 आताहुआ देखकर महारथी घटोत्कच गर्जना करता हुआ बोल
 उठा, कि—अरे ओ द्रोणपुत्र ! खड़ा रह ! खड़ा रह !! तू अब
 मेरे सामनेसे जीताहुआ नहीं जाने पावेगा, स्वामी कार्तिकेयने
 जिस प्रकार महिषासुरको मार डाला था उस ही प्रकार मैं भी
 तेरा नाश कर डालूँगा ॥१४—१६॥ आज रणाङ्गणमें तेरे युद्धके
 चात्रको पूरा करदूँगा इतना कहकर शत्रुका संहार करनेवाले
 राक्षसने जोधसे लालर आँखे कर लीं, और सिंह जैसे बड़ेभारी
 हाथीके ऊपर झपटे तैसे घटोत्कच अश्वत्थामाके सामने दौड़ा
 और मेघघटा जैसे जलकी धाराओंको बरसाने तैसे घटोत्कच
 महारथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाके ऊपर धुरेकी समान मोटे बाणों
 की वृष्टि करने लगा, अश्वत्थामाने मुस्करा कर उसके सामने
 बिपैले सपोंकी समान बाण छोड़कर उसके बाणोंकी वृष्टिका
 देखते२में नाश कर डाला और सौ मर्मभेदी तीक्ष्ण बाण मारकर
 शत्रुओंका दमन करनेवाले राक्षसराज घटोत्कचको अच्छी तरह
 चौंधाला रणके मुहाने पर खड़ा हुआ राक्षसराज घटोत्कच
 बाणोंसे ज़िद गया—इससे वह शललोंसे भरेहुए सेईकी समान

क्षितो यथा । ततः क्रोधसमाविष्टो भीमसेनिः प्रतापवान् ॥ २२ ॥
 शरैरवचकृतोऽर्धद्रौणि वज्राशनिप्रभैः । क्षुरप्रैर्द्वन्द्वैश्च नाराचैः
 सशिलीमुखैः ॥ २३ ॥ वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चाभ्यवीर्यवत् । तां
 शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ॥ २४ ॥ पतन्तीमुपरि क्रुद्धो
 द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः । सुदुःसर्हा शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः २५
 व्यथयत् स महातेजा महाभ्राणीव मासतः । ततोऽन्तरिक्षे बाणानां
 संग्रामोऽन्य इवोभवत् ॥ २६ ॥ घोररूपो महाराज योधानां हर्ष-
 वर्द्धनः । ततोऽस्त्रसंघर्षकृतैर्विस्फुल्लिगैः समन्ततः ॥ २७ ॥ वभौ
 निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् । स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः
 मञ्जद्य सर्वतः ॥ २८ ॥ नियार्थं तत्र पुत्राणां राक्षसं समवा-

दीखता था, महाप्रतापी भीमके पुत्र घटोत्कचने क्रोधमें भरकर
 वज्र तथा शक्तिकी समान कान्तिवाले उग्र बाण, क्षुरप्र (उत्तरेके
 आकारवाले) बाण, अर्धचन्द्राकार बाण, नाराच, शिलीमुख
 (पेंदककेसे मुखवाले) बाण, वाराहकर्ण, नालीक (नलके समान
 पोले और लम्बे) बाण और विकर्ण आदि बाणोंकी वृष्टि कर
 अश्वत्थामाको बीधडाला, महावज्रकी समान भयङ्कर गर्जना
 करतीहुई शस्त्रोंकी अटल वृष्टि अपने ऊपर पड़ने लगी तो भी
 अश्वत्थामाके मनमें जरा भी घबड़ाहट या पीड़ा नहीं हुई, परंतु पवन
 जैसे बादलोंकी बड़ीर घटाओंको छिन्न भिन्न करदेता है, तैसे
 ही महातेजस्वी अश्वत्थामाने भी-जिसको सहन करना कठिन
 था-ऐसी बाणोंकी वृष्टिका-दिव्यास्त्रके मंत्रोंसे अभिमन्त्रित किये
 हुए घोर बाण मारकर नाश करडाला, हे महाराज ! इस समय
 आकाशमें उड़तेहुए बाण, योधाओंके हर्षको बढ़ातेहुए विलक्षण
 रीतिसे भयङ्कर युद्ध कर रहे थे, अर्थात् आपसमें टकरातेहुए उन
 बाणोंकी टकरसे उत्पन्न होतीहुई चिनगारियें आकाशमें चारोंओर
 फैल रही थीं-इससे सायंकालके समय उड़तेहुए पटबीजनोंसे जैसे

(१०७२) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौष्टियासठवां]

किरत् । ततः प्रवृत्ते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ॥ २६ ॥ विगाढे रज-
नीमध्ये शकप्रहादयोरिव । ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमा-
ह्वे ॥ ३० ॥ जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसन्निभैः । स
तैरभ्यायतैर्बिद्धो राक्षसेन महाबलः ॥ ३१ ॥ तत्राल समरे द्रौणि-
र्वातनुन्न इव द्रुमः । स मोहमनुसंप्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ३२
ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप । हतं स्म मेनिरे सर्वं
तावकास्तं त्रिशाम्पते ॥ ३३ ॥ तन्तुं दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमा-
ह्वे । पञ्चान्ताः सृज्योश्चैव सिद्धनादं प्रचकिरे ॥ ३४ ॥ प्रति-
लभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महारथः । धनुः प्रपीड्य वामेन करे-
णामित्रकर्षणः ॥ ३५ ॥ सुभोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।

आकाश छा जाय-सैसे उज चिनगारियोंसे आकाश भर रहा था
अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्रका हित करनेके लिये राक्षसके ऊपर
बाणोंकी बड़ीभारी वृष्टि करने लगा और उसने दिशाओंको बाणों
से भर दिया, कुछ समयके पीछे फिर घोर अंधकारसे भरी आधी
रात होने पर प्रहाद और इन्द्रके युद्धकी समान, राक्षस और
अश्वत्थामामें (वेगसे) युद्ध चलने लगा, जब घटोत्कचने लड़ते २
कोथमें भरकर कालकी समान दश तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाको
बीच डाला; तब आधीके भोंकेसे हिलते हुए वृक्षकी समान
अश्वत्थामा भी रणमें काँप उठा, वह क्षण भरमें मूर्छित हो ध्वजा
का दण्डा पकड़ रथमें बैठ गया ॥ १७-३२ ॥ हे राजन् !
अश्वत्थामाको मूर्छित हुआ देखकर तुम्हारी सब सेना तथा
तुम्हारे सब पुत्र हाहाकार करने लगे और शत्रुपक्षके पाञ्चाल
राजे और सृज्य राजे हर्षनाद करने लगे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कुछ देर
पीछे शत्रुसंहारकारक अश्वत्थामाको ध्यान हुआ; उसने धनुषके
ऊपर बाण चढ़ा कर उसको दायें हाथसे कान तक खेंचा
और यमदंडकी समान वह महाभयंकर बाण तुरत घटोत्कचके

यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ॥ ३६ ॥ स भित्त्वा हृदयं
तस्य राक्षसस्य शरोक्षमः । विवेश वसुधासुग्रः सपुंखः पृथिवी-
पते ॥ ३७ ॥ सोऽतिविह्वो महाराज रथोपरंथ उपाविशत् । राक्ष-
सेन्द्रः स बलवान् द्रौणिना रणशालिना ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा विमूढं
हैदिम्बं सारथिस्तं रणान्जिरात् । द्रौणोः सकाशात् सम्भ्रान्तस्त्वं-
पनिन्ये स्वरान्वितः ॥ ३९ ॥ तथा तु समरे विध्वा राक्षसेन्द्रं घटो-
त्कचम् । ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ४० ॥ पूजित-
श्च पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत । वपुषाति प्रजज्वालं मध्यान्हे
भास्करो यथा ॥ ४१ ॥ भीमसेनन्तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ ४२ ॥ तं भीम-
सेनो दशभिः शरैर्विव्याप भारत । दुर्योधनोऽपि विशत्या शराणां
प्रत्यविध्यत ॥ ४३ ॥ तौ सायकैः प्रतिजन्नावदृश्येतां रणान्जिरे ।

मारा ॥ ३५-३६ ॥ हे राजन् । वह सुन्दर पूँछवाला उग्रबाण
राक्षसकी छातीको चीर पृथ्वीमें घुस गया ॥ ३७ ॥ रणकुशल
अश्वत्थामाने बलवान् राक्षसराजकी छातीको चीर डाला, तब वह
मूर्छित हो रथकी बैठकमें गिर पड़ा ॥ ३८ ॥ घटोत्कच, मूर्च्छित
होगया यह जानकर उसका सारथी घबड़ा गया और वह उसको
अश्वत्थामाके सामनेसे तुरत ही दूर ले गया ॥ ३९ ॥ युद्धमें राक्षस-
राज घटोत्कचको घायल करनेके पीछे महारथी अश्वत्थामाने बड़ी
भारी गर्जना की ॥ ४० ॥ तुम्हारे पुत्रोंने तथा सब योधाओंने
उसकी प्रशंसाकी तब मध्याह्नकालमें जैसे सूर्य प्रकाशित होता है;
तैसे उसका शरीर अतीव प्रकाशित होने लगा ॥ ४१ ॥ घटोत्कचको
मूर्च्छा आनेके पीछे भीम द्रोणके रथकी ओर तुम्हारी सेनामेंको
होकर जा रहा था, तब राजा दुर्योधनने इसके ऊपर तीव्र बाण
छोड़े, भीमसेनने दुर्योधनके दश बाण मारे और दुर्योधनने उसके
भीम बाण मारे ॥ ४२-४३ ॥ आकाशमें मेघोंसे ढके हुए सूर्य

मेघजालप्रतिच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करी ॥ ४४ ॥ व्रतो दुर्योधनो
 राजा भीमं विव्याध पद्मिभिः । पञ्चभिर्भस्त्रश्रेष्ठं त्रिष्टं त्रिष्टेति
 चाब्रवीत् ॥ ४५ ॥ तस्य भीमो धनुश्छित्वा ध्वजञ्च दशभिः शरैः ।
 विव्याध फौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४६ ॥ ततो दुर्योधनः
 क्रुद्धो धनुस्त्र्यम्बहस्तरम् । गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शिखी-
 शरैः । अपीदयद्रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४७ ॥ निहत्य
 तान् शरान् भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् । फौरवं पञ्चविंशत्या
 क्षुद्रकाणां समर्पयत् ॥ ४८ ॥ दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य
 पारिष । क्षुरमेण धनुश्छित्वा दशभिः प्रत्यविष्यत् ॥ ४९ ॥
 अधान्यद्वज्रादाय भीमसेनो महाबलः । विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्त-
 भिर्निशितैः शरैः ॥ ५० ॥ तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं विच्छेद लघु-

और चंद्रमा जैसे फीकी कान्तिवाले दीखें तैसे ही बाणोंसे ढके हुए
 वे दोनों योधा भी फीकी कान्तिवालेसे दीखते थे ॥ ४४ ॥ हे भरत-
 वंशमें श्रेष्ठ राजन् ! दुर्योधनने भीमके पाँच बाण मार कर कहा
 कि—“कहाँ जाता है । खड़ा रह खड़ा रह ॥ ४५ ॥ यह सुन भीमने
 दश बाण मार दुर्योधनके धनुष और ध्वजाको काट डाला; फिर
 दुर्योधनके नमी हुई गाँठ वाले नभमें बाण मारे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार
 से दुर्योधनको बड़ा क्रोध चढ़ा, भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधनने दूसरा
 बड़ा भारी धनुष ले भीमको सब धनुषधारियोंके सामनेही सजे
 हुए बाणमार कर अच्छी तरह पीड़ित किया ॥ ४७ ॥ परन्तु भीमने
 दुर्योधनके धनुषमेंसे छूटते हुए बाणोंका नाश कर डाला और
 क्षुद्रक नामक पञ्चीस बाण दुर्योधनके मारे, हे राजन् ! तब दुर्यो-
 धनको बड़ा क्रोध चढ़ा उसने क्षुरम नामक बाण मारकर भीमके
 धनुषको काट डाला और भीमके दश बाण मारे ॥ ४८-४९ ॥ महा-
 बली भीमसेनने दूसरा धनुष ले कर तेज किये हुए सात बाण
 मार कर दुर्योधनको शीघ्रतासे दीख डाला ॥ ५० ॥ और फुर्तीले

हस्तवत् । द्वितीयञ्च तृतीयञ्च चतुर्थ पञ्चमन्तथा ॥५१॥ आत्मा-
मात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत् । तव पुत्रो महाराज जित-
काशी मदोत्कटः ॥ ५२ ॥ स तथा विद्यमानेषु काष्ठैकेषु पुनः
पुनः । शक्तिश्चित्तोप समरे सर्वपारशवी शुभाम् ॥५३॥ मृत्यो-
रिव स्वसारं हि दीप्तां बन्दिशिखामिव । सीपन्तमिव कुर्वन्तो मम-
सोमिसमप्रभाम् ॥ ५४ ॥ अप्राप्तामैव तां शक्तिं त्रिधा विच्छेद-
कौरवः । पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः ॥५५॥
ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महामभाम् । विज्ञेयाविध्य वेगेन
दुर्योधनरथं प्रति ॥ ५६ ॥ ततः सा सहसा बाह्यास्तव पुत्रस्य
संयुगे । सारथिञ्च गदां गुर्वीं ममर्द्दास्य रथं पुनः ॥५७॥ पुत्रस्तु

हाथ वाले पुरुषभी समान भीमके धनुषको भी दुर्योधनने काट
ढाला, भीमसेनने दूसरा धनुष लिया उसको भी दुर्योधनने काट
ढाला; तीसरा, चौथा, पाँचवाँ इसप्रकार जैसे भीमसेन नया धनुष
लेता गया तैसे तुम्हारा विजयी पुत्र उसको काटता गया ॥५१-५२॥
इस प्रकार दुर्योधन भीमके धनुषके बारंबार टुकड़े २ करने लगा;
तब भीमने सुन्दर आकार वाली, कालकी पहिनकी समान,
अग्निकी लपलपाती हुई लपटकी समान आकाशके मस्तक प्रदेशमें
सीपन्तकी रचना कर (बाल गूँथ) रही हो, तैसे दीखती हुई,
अग्निकी समान कान्तिवाली ठोस लोहेकी शक्ति दुर्योधनके
ऊपर फैली ॥५३-५४॥ यह शक्ति अभी प्राप्तमें न पहुँची थी
कि-इतनेमें ही दुर्योधनने सब धनुष्योंके और महात्मा भीमसेनके
सामने उसके टुकड़े २ करढाले ॥ ५५ ॥ हे महाराज ! तब तुरंत
ही भीमने बड़ी भारी कान्तिवाली बड़ी मोटी गदा उठाई और
वेगसे दुर्योधनके रथके ऊपर फैली ॥ ५६ ॥ उस महागदाका
प्रहार होते ही, युद्धमें तुम्हारे पुत्रके रथ, घोड़े और सारथिका
चूरा २ होगया ॥ ५७ ॥ तब तुम्हारा पुत्र दुर्योधन भीमसे बरकर

(१०७३) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौद्धितासठवाँ]

तव राजेन्द्र भीमाद्भीतः पणश्य च । आसुरो ह रथं चान्यं नन्द-
कस्य महात्मनः ५८ ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् । सिंह-
नादं महच्चक्रं तर्जयन्निशि कौरवान् ॥ ५९ ॥ तावकाः सैनिका-
श्चापि मेनिरे निहतं नृपम् । ततो विचक्रुः सुः सर्वे हाहेति च सप-
न्ततः ॥ ६० ॥ तेषान्तु निनदं श्रुत्वा व्रस्तानां सर्वयोधिनाम् ।
भीमसेनस्य नादञ्च श्रुत्वा राजन्महात्मनः ॥ ६१ ॥ ततो युधि-
ष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् । अभ्यवर्त्तत वेगेन यत्र पार्थो
वृकोदरः ॥ ६२ ॥ पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्च विशाम्पते ।
सर्वोद्योगेनाभिजगुर्द्रोणमेव युयुत्सया ॥ ६३ ॥ तत्रासीत् सुमदयुद्धं
द्रोणस्याथ परैः सह । घोरे तपसि मग्नानां निम्नतामितरेतरम् ६४
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्यो-
धनापयाने षट्पष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

जुपचाप महात्मा नन्दकके रथ पर चढ़ गया ५८ तब भीमने तुम्हारे
महारथी पुत्रको मारा हुआ समझ लिया और कौरवोंका अपमान
करता हुआ बड़ा भारी सिंहनाद करने लगा ॥ ५९ ॥ और तुम्हारे
सब योधा रथके टूटनेके साथ ही दुर्योधन मारा गया—यह समझ
कर चारों ओरसे हाहाकार करने लगे ॥ ६० ॥ हे महाराज !
तुम्हारे सब योधा भयभीत होगए तथा आर्तनाद करने लगे, यह
सुनकर तथा महात्मा भीमकी गर्जनाको सुनकर राजा युधिष्ठिरको
भी शंका हुई कि—क्या जाने दुर्योधन मारा ही गया हो ! उस
समय पाण्डुके बड़े पुत्र हर्षमें भरकर जहाँ हर्षमें भरा पृथापुत्र भीमसेन
खड़ा था तहाँ दौड़ते २ गए ॥ ६१—६२ ॥ फिर पाञ्चाल, केकय,
मत्स्य और सृञ्जय आदि सब राजे बड़े प्रयत्नसे युद्ध करनेकी
इच्छासे द्रोणके ऊपर चढ़ गए ॥ ६३ ॥ तब द्रोण और सामने चढ़
कर आतेहुए शत्रुओंमें भयंकर अँधेरेमें बड़ा घोर युद्ध होने
लगा ॥ ६४ ॥ एकसौ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६६ ॥

सञ्जय उवाच । सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेम्सु महारथम् । कर्णो
वैकर्त्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १ ॥ सहदेवस्तु राधेयं विध्वा
नवभिराशुमैः । पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥ तं
कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् । सज्यञ्चास्य धनुः शीघ्रं
विच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ३ ॥ ततोऽन्यद्भनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रताप-
वान् । कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमित्राभवत् ॥ ४ ॥ तस्य कर्णो
हयान् हत्वा शरैः सन्नतपर्वभिः । सारथिञ्चास्य भल्लेन द्रुतं निन्ये-
यमक्षयम् ॥ ५ ॥ विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे । तद-
प्यस्य शितैर्त्राणैर्व्यधमत् महसन्निव ॥ ६ ॥ ततो गुर्वी महाघोरा
हेमचित्रा महागदा । प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्त्तनरथं प्रति ॥ ७ ॥ तामा-
पतन्ती सहसा सहदेवेन प्रेषिताम् । व्यष्टम्यच्छरैः कर्णो भूमौ
बैनामपातयत् ॥ ८ ॥ गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।

सञ्जयने कहा कि—हे भरतवंशी राजन् ! वैकर्त्तन कर्णने, युद्धमें
द्रोणाचार्यको पकड़नेके लिये चढ़कर आतेहुए सहदेवको रोका ।
सहदेवने कर्णके नौ और नमीहुई गाँठवाले दूसरे दश बाण
मारे ॥ २ ॥ कर्णने नमीहुई गाँठवाले सौ बाण सहदेवके मारे
और फुर्तीले हाथवाले पुरुषकी समान तुरन्त ही सहदेवके तयार
कियेहुए धनुषको काटडाला ॥ ३ ॥ प्रतापी माद्रीपुत्रने तुरन्त ही
दूसरा धनुष लेकर कर्णके बीस बाण मारे, यह देखकर सब
अचरजमें आगए ॥ ४ ॥ फिर कर्णने नमीहुई गाँठवाले बाण मार
सहदेवके घोटोंको मारडाला और सारथिको भाला मारकर तुरन्त
यमलोकमें भेज दिया ॥ ५ ॥ सहदेव रथरहित होगया, तब उसने
हाथमें ढाल तलवार ले ली, कर्णने हँसते-उसके भी टुकड़े-रेकर
डाले, सहदेवने क्रोधमें भरकर भयङ्कर, सुवर्णकी पत्तरसे जड़ी हुई,
एक मोटी गदा कर्णके रथके ऊपर फेंकी, परन्तु कर्णने बाण मारकर
अपनी ओर आती हुई उस उदाको रोककर उसको पृथिवीके

शक्तिञ्चिच्छेप कर्णाय तामप्यस्याच्छिनच्छरैः ॥१६॥ ससंभ्रमं तत-
स्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमार । सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यव-
स्थितम् ॥१७॥ रथचक्रं प्रगृह्णाजौ मुमोषाधिरथि प्रति । तदापतद्दे-
सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ॥१८॥ शरैरनेकसाहस्रैरच्छिनत्सूत-
नन्दनः । तस्मिंश्छिन्ने रथांगे तु सहदेवस्तु मारिष ॥ १९ ॥
ईषादण्डकयोक्त्रांश्च युगानि विविधानि च । हस्त्यङ्गानि तथा-
एषांश्च मृतांश्च पुरुषान् बहून् ॥ २० ॥ चित्तेप कर्णमुद्दिश्य कर्ण-
स्तान् व्यथमच्छरैः । स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः २४
वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं गतौ । तमभिद्रुस्य राधेयो मुह-
र्त्ताञ्जरतर्पणम् ॥ २५ ॥ अग्रवीत् प्रहसन् वाक्यं सहदेवं विशांते ।
मा युध्यस्व रणे धीर विशिष्टैरथिभिः सह ॥ २६ ॥ सहशैयुध्य

ऊपर तोड़ फोड़ कर गिरा दिया ॥ १६-८८ ॥ गदाको नष्ट हुई
देखकर सहदेवने कर्णके ऊपरः ग्रीष्मतासे शक्तिका प्रहार किया,
कर्णने बाण मारकर उसके भी टुकड़े करवाले ॥१६॥ तुरंत सहदेव
रथके ऊपरसे नीचे उतर पड़ा, और हाथमें रथका पहिया लेकर
रणमें सामने खड़ेहुए कर्णके रथ पर फैंका, वह पहिया कालचक्र
की समान ऊँचा उछल कर ऊँची कर्णके रथपर गिरनेकी हुआ
कि-॥१७-१८॥ इतनेमें ही महात्मा कर्णने सहस्रों बाण मारकर
उस पहियेके टुकड़े करवाले ॥१९॥ फिर सहदेव ईषादण्ड, रांस,
धुरे, और भरेहुए हाथियोंके अंग, भरेहुए घोड़े और बहुतसे
योधाओंकी न्हाशें उठार कर कर्णके मारनेलगा, उनके भी कर्णने
बाण मारकर टुकड़े करवाले, अब माद्रीपुत्र आयुधरहित होगया
तथा बाणोंकी प्रहार होने पर लड़ते रुकगया, तब वह रणमेंसे
भागगया, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तब कर्ण उसके पीछे दौड़ा
और खिलखिलाहटके साथ हँसकर सहदेवसे कहा, कि-“अरे
ओ अधीर ! अबसे तू अपनेसे विशिष्ट(बड़े)प्रहारथियोंसे रणमें न

माद्रेय वचो मे नाभिःशङ्खियाः । अथैनं धनुषोमेण तुदन् भुयोऽन्न-
 बीदधः ॥ १७ ॥ एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह । तत्र
 वा गच्छ माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वा तु तं
 कर्णो रथेन रथिनाम्बरः । प्रायात् पाण्डुचालपाण्डनां सैन्यानि
 प्रहसन्निव ॥ १९ ॥ वर्षं प्राप्तुं माद्रेयं नावधीत् समरेऽरिहा ।
 कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन् सत्यसन्धो महायशाः ॥ २० ॥ सह-
 देवस्ततो राजन्विमनाः शरपीडितः । कर्णवाकशरतप्तश्च जीवि-
 तान्निरविद्यत ॥ २१ ॥ आरुरोह रथं चापि पाण्डवस्य महा-
 त्मनः । जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥ २२ ॥ विराटं
 सहसेनन्तु द्रोणार्थं ब्रह्ममागतम् । मद्राजः शरौघेण छादयामास

लडना और रे माद्रीपुत्रालडना तो अपनी बराबरीवाले योधाओं
 से लडना, मेरे इस कहने पर तुम्हें शंका नहीं करनी चाहिये ॥
 इसप्रकार कह उसके धनुषकी अनी चुभाकर फिर उससे कहने
 लगा ॥ १७-१७ ॥ हे माद्रीके पुत्र ! रणमें अर्जुन जहाँ कौरवोंके
 साथ लड़ रहा है तहाँ तू शीघ्रतासे भाग जा अथवा तेरे मनमें
 आवे तो तू घरको भाग जा ॥ १८ ॥ इसप्रकार सहदेवको ताना
 मारकर महारथी कर्ण पाञ्चाल तथा पाण्डवोंकी सेनाको भस्म
 करता हो तैसे उनकी ओर गया ॥ १९ ॥ हे राजन् ! उस समय
 कर्ण माद्रीके पुत्र सहदेवको मारना चाहता तो मार डालता, परंतु
 शत्रुओंका नाश करनेवाला महायशस्वी कर्ण सत्यप्रतिशावाला
 था, उसने कुन्तीको दिये हुए वचनको यादकर सहदेवको मारा
 नहीं ॥ २० ॥ हे राजन् ! सहदेव बाणोंके प्रहारसे तथा कर्णके
 वचनरूपी बाणोंके प्रहारसे खिन्न होकर मनमें बड़ा सन्ताप करने
 लगा, इस समय उसको अपने जीवन पर भी अरुचि होगई २१
 कर्णके सामनेसे भागकर वह महारथी, महात्मा पाण्डुचालके पुत्र
 जनमेजयके रथ पर चढ़गया ॥ २२ ॥ इतनेमें ही राजा विराट

धन्विनम् २३ तयोः समभवद्युद्धं समरे दृष्टधन्विनोः । यादृशं त्वभवद्वा-
जन् जम्भवासवयोः पुरा ॥ २४ ॥ मद्राजो महाराज विराटं वाहिनी
पतिम् । आजन्ते त्वरितस्तूर्णं शतेन नवपर्वणाम् २५ प्रतिविन्याष-
तं राजा नवभिर्निशितैः शरैः ॥ पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूपर्यव शतेन
हु ॥ २६ ॥ तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः । स्रगं श्वजञ्च
समरे शराभ्यां संन्यपातयन् ॥ २७ ॥ हताश्वासु रथात्तूर्णमव-
प्लुत्य महारथः । तस्थौ विस्फारयन्श्चापं विमुञ्चन्निशिताञ्च-
रान् ॥ २८ ॥ शतानीकस्तु तं दृष्ट्वा आतरं हतवाहनम् । रथेना-
भ्यपतच्छर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २९ ॥ शतानीकमवायान्तं
मद्राजो महामृधे । विशिखैर्वहुभिर्विध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ३०

सेनाको साथमें ले द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़ आया, मद्राजने बाणों
की बड़ी भारी वृष्टि कर धनुषधारी विराटको ढक दिया ॥ २३ ॥
और पहिले जम्भासुर तथा इन्द्रमें जैसे युद्ध हुआ था वैसे युद्ध
उन दोनों दृष्ट धनुषवालोंमें हुआ ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इस
युद्धमें मद्राजने उत्तरोत्तर फुर्तीसे सेनापति राजा विराटको नयी
हुई गाँठवाले सौ बाण मारे ॥ २५ ॥ राजा विराटने तेज किये
हुए नौ, तिहत्तर तथा सौ इसप्रकार उत्तरोत्तर मद्राजके बाण
मारे ॥ २६ ॥ फिर मद्राजने बाण मारकर उसके रथके चारों
घोड़ोंको मार डाला, दो बाण मारकर रथमें उसके सारथिको
मार डाला तथा उसकी श्वजाको पृथिवी पर गिरा दिया, उस ही
समय महारथी राजा विराट, जिसके घोड़े मारे गए थे ऐसे रथमेंसे
नीचे कूद पड़ा और पृथिवीके ऊपर खड़ा होकर धनुषपर वंकार दे
तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा ॥ २७-२८ ॥ अपने भाईको रथरहित और
भूमि पर खड़ा होकर लड़ते देख शतानीक सब मनुष्योंके सामने
रथ लेकर उसकी सहायना करनेको दौड़ आया ॥ २९ ॥ मद्राजने
शतानीकको चढ़कर आते देख, इस महासंग्राममें उसको पुष्कल

तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः । आरुरोह रथं तूर्णं तमेव
 ध्वजमालिनम् ॥ ३१ ॥ ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः ।
 मदराजरथं तूर्णं आदयामास पत्रिभिः ॥ ३२ ॥ ततो मद्राधिपः
 क्रुद्धः शरेण नतपर्वणा । आजघानोरसि दृढं विराटं बाहिनीप-
 तिम् ॥ ३३ ॥ सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् । कश्मलं
 चाविशत्तीव्रं विराटो भरतर्षभ ॥ ३४ ॥ सारथिस्तमपोवाह समरे
 शरविक्षतम् । ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत ॥ ३५ ॥
 वध्यमाना शरशतैः शल्येनाहवशोभिना । तां दृष्ट्वा द्रवतीं सेनां
 वासुदेवधनञ्जयौ ३६ प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः ।
 तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन् राज्ञसेन्द्रो हलम्बुधः ॥ ३७ ॥ अष्टचक्रसमा-

वाण मारकर यमलोकमें भेजदिया ॥ ३० ॥ वीर बन्धुके मरणके
 पीछे महारथी विराट, तुरन्त ही उसके ध्वजावाले रथमें बैठगया
 (शोकसे) उसमें दुगना बल आगया और वह क्रोधसे आँखें
 फाड़ मद्राजके रथके ऊपर तुरन्त ही बाणोंका छुट्टि कर उसको
 टकनेलगा, मद्राजको भी बड़ा क्रोध चढ़ा उसने सेनापति राजा
 विराटकी छातीमें नपी हुई गोंठवाला दृढ़ बाण मारा ॥ ३१-३३ ॥
 हे भरतवंशमें श्रेष्ठ महाराज ! उस बाणके दृढ़ प्रहारसे राजा विराट
 बहुत ही घायल होगया और बड़ीभारी वेदना शानके कारण
 रथकी बैठकमें गिरपड़ा, राजा विराट मूर्छित हुआ कि हे महाराज !
 उसका सारथि बाणसे घायल हुए राजा विराटको रणमेंसे दूर
 लेगया (इस विजयसे) रणके ऊपर शोभा पातेहुए मद्रदेशके
 राजा शल्यने, राजा विराटकी सेनाके सैकड़ों बाण मारना आरंभ
 करदिये, तब उसकी बड़ीभारी सेना भी रणमेंसे भागनेलगी !
 हे राजेन्द्र ! कृष्ण तथा अर्जुन रणमेंसे राजा विराटकी सेनाको
 भागती हुई देखकर शल्यके सामने गये, तब हे राजन् ! अलम्बुध
 नामवाला राजासोंका राजा घोड़ोंकी समान मुखवाले भयङ्कर

युक्तगास्थाय प्रवरं रथम् । तुरङ्गवदनैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ३८
लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमान्यविभूषितम् । काष्ण्यायसमयं घोरमृत्त-
चर्मतमावृतम् ॥ ३९ ॥ रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता ।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥ ४० ॥ स वधो राजसो
राजन् भिन्नाञ्जनचयोपमः । रुरोधार्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवा-
द्रिराट् ॥ ४१ ॥ किरन्वाणगणात्राजन् शतशोऽर्जुनमूर्धनि । अति-
तीव्रं महद्युद्धं नरराक्षसयोस्तदा ॥ ४२ ॥ द्रष्टृणां प्रीतिजननं
सर्वेषां तत्र भारत । गृध्रकाकवलोलूककङ्कगोपायुर्हर्षणम् ॥ ४३ ॥
तमर्जुनः शतेनैव पणिणां समताडयत् । नवभिश्च शितैर्वाणैर्ध्वज-

दिखावके पिशाचोंसे जुतेहुए आठ पहिचेवाले वड़ेभारी राजरथमें
बैठकर उन दोनोंके सामने लड़नेके लिये पढ़ाया ॥ ३८-३८ ॥
उसके रथके ऊपर रक्तसे भीती हुई ध्वजा फहरा रही थी, लाल
पुष्पोंकी मालासे उसके रथको सजाया गया था, फौलादकी
पत्तरे उसके रथ पर जड़ रहीं थीं और उसके ऊपर रीछका चपड़ा
मढ़ाहुआ था, उसकी ऊँचे दण्डेवाली ध्वजामें विचित्र पंखोंवाला
शोभायमान गिद्धराज चोंचको फाड़कर क्रूर शब्द करता हुआ
बैठा था—इस कारण उसका रथ भयङ्कर दीखता था ॥ ३९-४० ॥
वह राजस जैसे श्यामगिरिमेंसे एक टुकड़ा टूटकर गिरपड़ा हो तैसे
श्याम रङ्गका था, वह रणमें आया और पर्वतराज हिमाचल जैसे
सामनेसे आतेहुए पवनको रोक दे, तैसे उसने सन्मुख आतेहुए
अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोका ॥ ४१ ॥ और उसके मस्तक पर
सहस्रों बाणोंकी वृष्टि फरहाली, मनुष्य और राजसमें महाप्रचण्ड
युद्ध आरम्भ होगया ॥ ४२ ॥ उस युद्धको देखकर हे भरतवंशी
राजन् ! सब दर्शक तथा गिद्ध, कौए, बल्ल, उल्लू, कंक और
गीदड़ बलिदानकी आशासे परमप्रसन्न हुए ॥ ४३ ॥ हे भरतवंशी
राजन् ! अर्जुनने इस युद्धमें राजसके सौ बाण मारे और सजे

चिच्छेद भारत ॥ ४४ ॥ सारथिञ्च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवे-
णुक्म् । धनुरेकैव चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४५ ॥ पुनः
सज्यं कृतञ्चापं तदप्यस्य द्विधाच्छिनत् । विरथस्योद्यतं स्वहृगं
शरेणास्य द्विधाऽकरोत् ॥ ४६ ॥ अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरत-
र्षभ । पार्थोविध्यद्राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्वज्रयात् ॥ ४७ ॥ तं
विजित्याजुं नस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ । किरञ्छ्वरगणाव्राजन्
नरवारणवाजिषु ॥ ४८ ॥ तदध्यमात्ता महाराज पाण्डवेन यशस्विना ।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्या वातजुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४९ ॥ तेषु तूत्सा-
द्यमानेषु फाल्गुनेन महात्मना । सम्प्राद्वज्रत्वं सर्वं पुत्राणान्ते-
विशाम्पते ॥ ५० ॥ सप्तषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

हुए नौ बाण मारकर उसके ध्वजाको काट डाला ॥ ४४ ॥ फिर
तीन बाण सारथिके मारे, तीन त्रिवेणुमें मारे और एक बाण
मारकर उसके धनुषको काट डाला और चार बाणोंसे उसके
चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ ४५ ॥ तुरन्त ही उस राक्षसने दूसरा
धनुष ठीक किया, उसके भी अर्जुनने दो टुकड़े कर डाले, रथ-
रहित हुआ राक्षस तलवार उठाकर अर्जुनके सामने दौड़ा, अर्जुनने
बाण मारकर उसके भी दो टुकड़े कर डाले ॥ ४६ ॥ तदनन्तर
हे भरतवंशी राजन् ! अर्जुनने तेज किये हुए चार बाण राक्षस-
राजके मारे, तब तो वह भयभीत हो रणमेंसे भाग गया ॥ ४७ ॥
इस प्रकार राक्षसका पराजय कर अर्जुन तुरन्त ही द्रोणकी ओर
लड़नेको गया और हमारे पैदल, हाथी और घोड़े आदिके ऊपर
बाणोंकी वृष्टि करने लगा, हे महाराज ! यशस्वी अर्जुन हमारे
सैनिकोंको मारने लगा कि पवनसे उखाड़े हुए वृक्ष जैसे पृथिवी
पर गिर पड़े, तैसे तुम्हारे सैनिक भी पृथिवीके ऊपर गिरने लगे
और सारी सेना रणमेंसे भाग गई ॥ ४८-५० ॥ एकसौ सर-
सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६७ ॥ * ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । शतानीकं शरैस्तीक्ष्णैर्निर्दहन्तञ्चमृन्तव ।
 चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १ ॥ नाकुलिरिचित्रसेनन्तु
 विध्वा पञ्चभिराशुगैः । स तु तं प्रतिविष्याथ दशभिर्नि-
 शितैः शरैः ॥ २ ॥ चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि ।
 नवभिर्निशितैराजञ्छरैर्विव्याध वक्षसि ॥ ३ ॥ नाकुलिस्तस्य विशि-
 खैर्वर्म सन्नतपर्वभिः । गात्रात् सञ्चयावयामास तदद्भुतमिवाभ-
 वत्प्रसोपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप । उत्सृज्य काले राजेन्द्र
 निर्मोकमिव पन्नगः ॥ ४ ॥ ततोस्य निशितैर्वाणैर्व्वजं चिच्छेद
 नाकुलिः । धनुश्च महाराज यतमानस्य संयुगे ॥ ५ ॥ स द्विन्न-
 धन्वा विरथो विवर्मा च महारथः । धनुरन्यन्महाराज जग्राहा-
 रिबिदारणम् ॥ ७ ॥ ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नतपर्वभिः ।

सञ्जयने कहा कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! नकुलका पुत्र (शतानीक)
 बाणोंका प्रहार कर तुम्हारी सेनाका फुर्तीसे संहार करने लगा,
 उसको तुम्हारे पुत्र चित्रसेनने रोका । नकुलके पुत्रने चित्रसेनके
 शीघ्रगामी पाँच बाण मारे, तब उसने भी उसके दश तीक्ष्ण बाण
 मारे ॥ २ ॥ हे महाराज ! चित्रसेनने फिर शतानीककी छातीमें
 नौ तेज बाण मारे ॥ ३ ॥ नकुलके पुत्रने नमी हुई गोंठवाले
 बहुतसे बाण मारकर चित्रसेनके शरीरके ऊपरके कवचको काट
 डाला । यह कार्य बड़ा अचरज करनेवाला हुआ था ॥ ४ ॥ हे राजन् !
 इस समय कवचशून्य हुआ, तुम्हारा पुत्र चित्रसेन रणमें—जैसे
 कैचलीरहित सर्प खड़ा हो—तैसे शोभा पारदा था, कवचरहित
 होने पर भी आपका पुत्र विजयके लिये प्रयत्न करने लगा, तब
 नकुलके पुत्रने तेज किये बाण मारकर उसके रथकी ध्वजा तथा
 धनुषको काट डाला ॥ ५ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे महारथी पुत्र
 चित्रसेनका धनुष कट गया और कवच गिरा कि—उसने शत्रुका
 संहार करनेके लिये दूसरा महाधनुष उठाया ॥ ६-७ ॥ भरत-

शरैर्विव्याध नवभिर्भरतानां महारथः ॥ ८ ॥ शतानीकोऽथ संक्रुद्ध-
 चित्रसेनस्य भारतः । जघान चतुरो बाहान् सारथिञ्च महाबलः ।
 अवसृत्य रथात्तस्माच्चित्रसेनो महारथः । नाकुलिं पञ्चविंशत्या
 शराणामार्दयद्वली ॥ १० ॥ तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो
 रणो । अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चार्षं रत्नपरिष्कृतम् ॥ ११ ॥ स
 क्षिन्नधन्वा विरथो हतारवो हतसारथिः । आरुरोह रथं शीघ्रं
 हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥ १२ ॥ द्रुपदन्तु सहानीकं द्रोणप्रेम्सुं
 महारथम् । वृषसेनोऽभ्ययात्तूर्णं किरञ्छरशतैस्तदा ॥ १३ ॥ यज्ञ-
 सेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम् । षष्ठ्या शराणां विव्याध बाहो-
 ररसि चानघ ॥ १४ ॥ वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम् ।
 बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनांतरे ॥ १५ ॥ तावुभौ
 शरानुन्नाजौ शरकण्टकितौ रणे । व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ

वंशके महारथी चित्रसेननेकोपके वशमें होकर रणमें नकुलके पुत्रके
 तेज किये हुए नौ बाण मारे ॥ ८ ॥ इससे शतानीक क्रोधमें भर
 गया; उसने चित्रसेनके चारों घोड़ोंको तथा सारथिको मार डाला ।
 तुरतही महाबली और महारथी चित्रसेन रथपरसे उतर पड़ा और
 उसने नकुलके पुत्रके पञ्चीस बाण मारे ॥ १० ॥ नकुलके पुत्रने
 अर्धचन्द्राकार बाण मारकर, बाण छोटते हुए चित्रसेनके रत्नोंसे
 शोभित धनुषके टुकड़े कर डाले ॥ ११ ॥ धनुषका, घोड़ोंका
 सारथिका तथा रथका नाश होने पर चित्रसेन महात्मा कृतत्रमार्के
 रथ पर चढ़ गया ॥ १२ ॥ राजा द्रुपद द्रोणको एकड़नेके लिये
 सेनाको साथमें ले बड़े, उनके साथने वृषसेन चढ़ गया और वह
 द्रुपदके ऊपर सैंकड़ों बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १३-१४ ॥
 और हे निर्दोष राजन् ! यज्ञसेनने रणमें महारथी कर्णके पुत्र वृष-
 सेनकी दोनों भुजाओंपर और छाती पर साठ बाण मारे १५
 इस प्रकार परस्पर बाणोंके प्रहारोंसे दोनोंके शरीरोंमें घाव हो

शल्ललैरिव ॥ १६ ॥ रुक्मपुंखैरजिह्वाग्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
रुधिरौघपरिवल्लन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ १७ ॥ तपनीयनिभौ
चित्रौ कल्पवृक्षाविवद्भुतौ । किंशुकाविव पुष्पाढ्यौ प्रकाशतां
रणाजिरे ॥ १८ ॥ वृषसेनस्ततो राजन् द्रुपदं नवभिः शरैः । विध्वा-
विध्वाध सप्तत्या पुनश्चान्यैस्त्रिभिः शरैः ॥ १९ ॥ ततः शरसह-
स्राणि त्रिमुञ्चन् विवभौ तदा । कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण
इवाम्बुदः ॥ २० ॥ द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ २१ ॥ सोऽन्यत्
कार्मुकमादाय रुक्मनदं नवं दृढम् । तूणाद्राकृष्य विमलं भल्लं
पीतं शितं दृढम् ॥ २२ ॥ कार्मुके योजयित्वा तं द्रुपदं सन्निरीक्ष्य

गए और बाण गुभ जानेसे दोनोंके शरीर काँटेवालेसे होगए,
तब वे अपने काटोंसे व्याप्त सेईकी समान शोभा पाने लगे, इस
महासंग्राममें दोनोंके कवच पुनर्णकी पूँछ वाले और चमकते हुए
फले वाले बाणोंसे छिन्न भिन्न होगए थे और वे दोनों लोह
लुहान होरहे थे, इससे वे दोनों महापुरुष रणभूमिके ऊपर विचित्र
प्रकारके सूर्यकी समान तथा अद्भुत कल्पवृक्षकी समान और प्रफु-
ल्लितहुए टेम्बूके वृक्षकी समान दीखते थे १६-१८हे राजन्! वृष-
सेनने यज्ञसेनके नी और सत्तर बाण मारे और फिर दुसरा कर
तीन२ बाण मारे, हे महाराज! फिर उसने जल बरसाते हुए मेघकी
समान द्रुपदके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगादी, उस समय जल
बरसाते हुए मेघकासा दृश्य दिखाई देरहा था ॥ १९-२० ॥
इसप्रकार अनेक महार होनेसे राजा द्रुपदको क्रोध आगया उसने
पानी पिलाये हुए तथा तेज कियेहुए भल्ल नामक बाण मास्कर
वृषसेनके धनुषको काट डाला ॥ २१ ॥ तुरन् ही वृषसेनने सोनेसे
मढ़ा हुआ, नया और मजबूत धनुष उठा लिया, और पानीदार
निर्मल तेज किया हुआ बाण भाथेमेंसे खेंच कर धनुष पर चढ़ाया

च । आकर्णपूर्णं सुमुचे त्रासयन् सर्वसोमकान् ॥ २३ ॥ हृदयं
तस्य भित्त्वा च जगाम वसुधातलम् । कश्मलं प्राविशद्राजा वृष-
सेनशराहतः ॥ २४ ॥ सारथिस्तमपोवाह स्पर्शन् सारथिचेष्टितम् ।
तस्मिन् प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे ॥ २५ ॥ ततस्तु द्रुपदा-
नीकं शरैरिद्धन्मृतनुच्छदम् । सम्प्राद्रवत्तदाराजन् निशीथे भैरवे
सति ॥ २६ ॥ प्रदीपैर्हिरपरित्यक्तैः प्रज्वलद्भिः समन्ततः । व्यराजत
महाराज वीताभ्राद्यौरिव ग्रहैः ॥ २७ ॥ तथाद्गदैर्निपतितैर्व्य-
राजत वसुन्धरा । प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २८ ॥
ततः कर्णमुतास्त्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रवुः । यथेन्द्रमयविज्रस्ता

फिर धनुषको कान तक खेंच, राजा द्रुपदको लच्य कर उसके
ऊपर छोड़ दिया, उस समय सब सोमकवंशी राजे त्राहि २ कर
उठे ॥ २२ ॥ ॥ २६ ॥ वृषसेनका बाण द्रुपदकी छातीको बीच
पृथ्वीमें घुस गया उस समय राजा द्रुपद वृषसेनके बाणकी वेदना
से मुझित हो गया ॥ २४ ॥ तब सारथि अपने कर्तव्यका विचार
करके उसको रणमेंसे दूर लेगया हे राजेंद्र ! जिस समय
पाञ्चाल देशी महारथी राजा द्रुपद रणमेंसे हटा कि-बाणोंके
महारोंसे जिससे कवच चिर रहे थे ऐसी राजा द्रुपदकी सेना, भय-
कर आधी रातके बीचमें रणमेंसे भाग गई ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥
हे राजन् ! इस समय योधाओंके हाथोंमेंसे फैंके हुए दीपक चारों
ओर बल रहे थे, इस कारण जैसे बादलोंसे रहित
आकाश तारोंसे शोभा पाता है तैसे ही पृथ्वी दीपकोंसे
शोभा पारही थी ॥ २७ ॥ पृथ्वीके ऊपर मरे हुए राजाओंके
बाजूबन्द पड़े हुए थे, हे महाराज ! इस लिये जैसे वर्षा-
कालमें विजलियोंसे आकाश दमक उठे तैसे पृथ्वी उन बाजू-
बन्दोंसे दिपरही थी ॥ २८ ॥ पहिले समयमें तारकासुरके संग्राममें,
इन्द्रके भयसे जैसे दानव भयभीत होकर भाग गए थे तैसे ही सोमक

दानवास्तारकामये ॥ २६ ॥ तेनार्घ्यमानाः संग्रामे द्रवमाणाश्च
सोमकाः । व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरिव भासिताः ॥ ३० ॥
तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रो व्यरोचत । मध्यन्दिनमनुभासो
घर्माशुरिव भारत३१तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च । एक एव
ज्वलन्तस्थो वृषसेनः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥ स विजित्य रणे शूरान्
सोमकानां महारथान् । जगाम त्वरितो राजन् यत्र राजा युधि-
ष्ठिरः ॥ ३३ ॥ प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून् । दुःशा-
सनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः ॥ ३४ ॥ तयोः समागमो राज-
श्वित्ररूपो बभूव ह । व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव ३५
प्रतिविन्ध्यन्तु समरे कुर्वाणं कर्म दारुणम् । दुःशासनस्त्रिभिर्बाणे-

राजे भी वृषसेनके दरसे भागने लगे २६हे महाराज ! इस युद्धमें
कर्णके पुत्रने सोमकोंको ऐसा पीड़ित किया कि-वे राजे मज्जलित
होते हुए दीपकोंके प्रकाशमें स्पष्ट रीतिसे भागते हुए मालूम होते
थे ॥ ३० ॥ इस समय हे भरतवंशी राजन् ! कर्णका पुत्र संग्राममें
शत्रुओंका पराजय कर मध्यान्हके सूर्यकी समान दिपरदा था ३१
शत्रुपक्षमें, तुम्हारे पक्षमें और दूसरे सहस्रों राजाओंके मध्यमें
प्रतापी वृषसेन बस एक ही तेजस्वी (पराक्रमी) प्रतीत होता
था, युद्धमें शूरवीर राजाओंका पराजय करनेके पीछे वह महा-
रथी जहाँ राजा युधिष्ठिर युद्ध कर रहेथे, तहाँ पहुँच गया । ३२-३३
और तुम्हारा महारथी पुत्र दुःशासन क्रोधमें भरकर शत्रुओंका
संहार करते हुए प्रतिविन्ध्यकी ओर गया ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! उन
दोनोंका समागम मेघरहित स्वच्छ आकाशमें बुद्ध तथा सूर्यका
समागम जैसे विचित्र प्रतीत हो; तैसे विचित्र प्रतीत होता था ॥ ३५ ॥
जब प्रतिविन्ध्य युद्धमें महाभयंकर कर्म करने लगा, तब तुम्हारे धनुष-
धारी महाभुज पुत्र दुःशासनने उसके ललाटमें तीन बाण मार
कर, उसको अच्छी तरह घायल किया; इस समय तीन बाण

ललाटे समविध्यत ॥ ३६ ॥ सोऽतिविद्वा बलवता तव पुत्रेण
धन्विना । विरराज महाबाहुस्त्रिमृङ्गः इव पर्वतः ॥ ३७ ॥ दुःशासनस्तु
समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः । नवभिः सायकैर्विध्वा पुनर्विन्ध्याध
सप्तभिः ३८ तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान् कर्म दुष्करम् । प्रतिविन्ध्य-
हयानुग्रैः पातयामास सायकैः ॥ ३९ ॥ सारथिञ्चास्य भल्लेन
ध्वजश्च समपातयत्तरथञ्च तिलशो राजन् व्यधमत्तस्य धन्विनः ४०
पताकाश्च सतूणीरा ररमीन् योक्त्राणि च प्रभो । विच्छेद तिलशः
कुदः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४१ ॥ विरथः स तु धर्मात्मा धनु-
ष्पाणिरवस्थितः । अयोधयत्तव सुतं किरञ्जरशतान् बहून् ॥ ४२ ॥
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य विच्छेद तनयस्तव । अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्न-

ललाटमें घुस जानेसे प्रतिविन्ध्य तीन शिखर वाले पर्वतकी समान
दीखता था ॥ ३६-३७ ॥ महारथी प्रतिविन्ध्यने नौ बाण और
फिर दूसरे सात बाण मार कर दुःशासनको घायल किया ॥ ३८ ॥
और हे भरतवंशी राजन् ! इस युद्धमें तुम्हारे पुत्रने भी महाकठिन
कर्म किया कि- तुम्हारे पुत्रने उग्र बाण मार कर प्रतिविन्ध्यके
घोड़ोंको मार डाला, भल्ल नामक बाण मार कर उसके सारथिको
मार डाला और ध्वजाको पृथ्वीमें गिरा दिया फिर उसने उस
धनुर्धरके रथके तिलरकी बराबर टुकड़े कर डाले; हे महाराज !
कोणायमान हुए तुम्हारे पुत्रने नमीहुई गाँठवाले बाण मार कर
पताकाके, भाथेके, रासोंके और जोतोंके भी तिलकी बराबर
टुकड़े कर डाले ३९-४१ धर्मात्मा प्रतिविन्ध्य रथरहित हो गया;
उसके हाथमें केवल एक धनुष ही रह गया, तथापि वह तुम्हारे
पुत्रके साथ लड़ता ही रहा और उसके ऊपर सहस्रों बाणोंकी वृष्टि
कर डाली ॥ ४२ ॥ तुम्हारे पुत्रने क्षुरप्र नामक बाण मार कर
उसके उस धनुषको भी काट डाला और दश बाण मार कर प्रति-
विन्ध्यको अच्छी तरह रगड़ा इतनेमें ही उसके महारथी भाई अपने

धन्वानमार्हयत् ॥ ४३ ॥ तं दृष्ट्वा विरभं तत्र आतरोऽस्य महारथाः ।
अभ्यवर्त्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह ४४ अप्लुतः स ततो यानं
सुतसोमस्य भास्वरम् । धनुर्दृश महाराज विन्याध तनयं तव ४५ ततस्तु
तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव । अभ्यवर्त्तन्त संग्रामे महत्या सेनया
वृताः ॥ ४६ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं तव तेषाञ्च भारत । निशीथे
दारुणे काले यगराष्ट्रविबर्द्धनम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षटोत्पञ्चदशपर्वणि शता-

नीकादियुद्धे अष्टपष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

सञ्जय उवाच । नकुलं रथसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीम् तव ।
अभ्ययात् सौवलः क्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतवैरी
तु तौ शूरावन्योन्यवधकान्निणौ । शरैः पूर्णायतोत्सर्पैरन्योऽन्यम-
भिजघ्नतुः ॥ २ ॥ यथैव नकुलो राजन् शरवर्षाण्यमुञ्चत । तथैव

भाईको रथरहित हो लड़ता देखकर, बड़ी भारी सेनाको साथमें ले
बड़े ही वेगसे उसकी रक्षा करनेके लिये दौड़ आये ४३-४४ तब
प्रतिविध्य सुतसोमके रथ पर चढ़ बैठा और हाथमें धनुष, ले तुम्हारे
पुत्रके बाण मारने लगा ॥ ४५ ॥ इस ही प्रकार तुम्हारे पुत्रके
सब योधा भी बड़ी भारी सेनाको साथमें ले तुम्हारे पुत्रको घेर
कर प्रतिविध्यके साथ लड़नेके लिये चढ़ आये ॥ ४६ ॥ इस
प्रकार तुम्हारे तथा उन राजाओंके बीचमें मध्यरात्रिके समय यम-
लोककी वृद्धि करने वाला दारुण युद्ध होने लगा ॥ ४७ ॥ एकसौ
अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६८ ॥

सञ्जयने कहा कि- हे भरतवंशी राजन् ! जब नकुल क्रोधमें
भर कर तुम्हारी सेना संहार करने लगा, तब सुवलका पुत्र शकुनि
उसके सामने लड़नेके लिये आया और "खड़ा रह ! खड़ा रह ॥
इस प्रकार, कह कर वे दोनों वैरी परस्पर वध करनेकी इच्छासे
धनुषको पूर्णरीतिसे खेंचकर बड़े २ बाणोंको छोड़ एक दूसरेको

सौबलश्चापि शिवां सन्दर्शयन् युधि॥३॥ तावुभौ समरे शूरो शर-
कण्टकिनौ तदा । व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव॥४॥
रुक्मपुंखैरजिह्वाग्रैः शरैः क्षिन्नतनुच्छदौ । रुधिरौघपरिविलिन्नौ
व्यभ्राजेतां महामृषेऽतपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविव द्रुमौ । किंशु-
काविव चोत्फुल्लौ प्रकाशते रणाजिरे ॥ ६ ॥ तावुभौ समरे शूरो
शरकण्टकिनौ तदा । व्यभ्राजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली ७
सुजिह्वां प्रेक्षमाणौ तौ राजन् विवृतलौचनौ । क्रोधरक्तान्तनयने-
निर्दहन्तौ परस्परम् ॥ ८ ॥ श्यालस्तव सुसंकुटो माद्रीपुत्रं हस-
न्निव । कर्णनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ह ॥ ९ ॥ नकुलस्तु

मारने लगे ॥ १-२ ॥ हे राजन् ! नकुल जैसे बाणोंकी वृष्टि कर
रहा था, तैसेही शकुनि भी युद्धभूमिमें अपनी अस्त्रसंबन्धी चतुराईको
दिखाता हुआ, उसके ऊपर बाणोंकी वृष्टि कर रहा था ॥ ३॥
हे महाराज ! इस समय उन दोनोंके शरीरमें बाण इस प्रकार
गुभ गए थे कि- वे काटोंसे लदे हुए वृक्षोंकी समान दीखते थे
और शललोंसे घिरी हुई सेई जैसे शोभा पावे, तैसे शोभा पा रहे
थे ॥ ४ ॥ और उस महासंग्राममें दोनोंके शरीर सोनेकी पूँछवाले
और सीधेफलों वाले बाणोंके प्रहारसे चिरकर लोहलुहान हो
गए थे, वे रणभूमिमें चमकते हुए सुवर्णके कल्पवृक्षोंकी समान
अथवा प्रफुल्लित टेसूके वृक्षोंकी समान दीखते थे अथवा हे महा-
राज ! उन दोनोंके सारे शरीरमें बाण गुभजानेके कारण, काटोंसे
घिरा हुआ शाल्मलि (सेमल) का वृक्ष जैसे दीखे, तैसे
वे दोनों दीख रहे थे ॥ ५-७ ॥ वे तिरछी दृष्टिसे एक दूसरेके
सामने देख रहे थे, आँखें फाड़े हुए खड़े थे, उनके नेत्रोंके कोण
क्रोधसे लाल २ हो रहे थे-इस प्रकार वे दोनों एक दूसरेको भस्मसा
कर रहे थे ॥ ८ ॥ क्रोधमें भरे हुए तुम्हारे साले शकुनिने मुस्करा
कर माद्रीके पुत्रकी छातीमें कर्ण नामक एक तीक्ष्ण बाण मार

भृशं विदुः श्यालेन तय धन्विना । निपसाद रथोपस्थे कश्मल-
 ङ्घ्राविशन्महत ॥ १० ॥ अत्यन्तवैरिणं दृष्टं दृष्ट्वा शत्रुं तथागतम् ।
 ननाद शकुनिस्तत्र तपान्ते जलदो यथा ॥ ११ ॥ प्रतिलभ्य ततः
 संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः । अभ्ययात् सौवर्ला भूयो व्यासानन-
 इवान्तकः ॥ १२ ॥ संक्रुद्धः शकुनिं पट्या विव्याध भरतर्षभ ।
 पुनश्चैनं शतेनैव नाराचानां स्तनान्तरे ॥ १३ ॥ ततोऽस्य सशर-
 ङ्घ्रापं मुष्टिदेशे द्विधाच्छिनत् । ध्वजञ्च त्वरितं ह्रित्वा रथाद्-
 मावपातयत् ॥ १४ ॥ विशिखेन च तीक्ष्णेन पीतेन निशितेन च ।
 ऊरु निभिद्य चेकेन नकुलः पाण्डुनन्दनः ॥ १५ ॥ श्येनं सपत्नं
 व्याधेन पातयामास तं तदा । सोतिविद्धो महाराज रथोपस्थ

कर उसको बहुतही घायल कर डाला, इससे सहदेवको बड़ी
 पीडा होने लगी और वह रथकी बैठकमें मूर्छित होकर गिर
 पड़ा ॥ ६-१० ॥ अपने घमण्डी बैरीकी ऐसी दुर्दशा देखकर,
 शकुनि-वर्षा ऋतुके मेघकी समान एकदम गर्ज उठा ॥ ११ ॥
 जब पाण्डुपुत्र नकुलकी मूर्छा हटी, तब वह कालकी समान
 नेत्र फाड़कर क्रोधमें भर शकुनिके सामने गया और हे भरतवंशी
 राजन्! उसने शकुनिके साठ बाण मारे और फिर नाराच नामक
 सौ बाण उसकी छातीमें मारे ॥ १२-१३ ॥ और फिर एक
 बाणसे उसकी मुट्ठीमें थमेहुए धनुषको बाणके साथ ही काटडाला
 इसके पीछे उसकी ध्वजाको काटकर रथ परसे पृथिवीमें गिरा
 दिया और फिर तीक्ष्ण तथा पानीदार एक बाण मारकर
 शकुनिकी दोनों जंघाओंको चीरडाला और फिर व्याध जैसे पद्म
 धाले बाजके पंखोंको काटकर उसको पृथिवी पर गिरा देना है, तैसे
 ही उसको रथमें मूर्छित करदिया हे महाराज! शकुनि भी बाणोंके
 प्रहारसे मूर्छित हो रथकी बैठकमें बैठ गया और कामी मनुष्य
 जैसे कामिनीका आलिंगन करे तैसे ध्वजाके दण्डको लिपटगया,

उपाविशत् ॥ १६ ॥ ध्वजयष्टिं परिकलशय कामिनीं कामुको यथा ।
 तं विसृजं निषतितं दृष्ट्वा श्यालं तवानघ ॥ १७ ॥ अपोवाह रथे-
 नाशु सारथिध्वजिनीमुखात् । ततः सञ्चक्रुशुः पार्था ये च तेषां
 पदानुगाः ॥ १८ ॥ निर्जिजय चरणे शत्रून् नकुलः शत्रुतापनः ।
 अब्रवीत् सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वद ॥ १९ ॥ तस्य तद्व-
 चनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य सारथिः । प्रायात्तेन तदा राजन् येन द्रोणो
 व्यवस्थितः ॥ २० ॥ शिखण्डिनन्तु समरे द्रोणमेप्सु महाबलम् ।
 कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्यगच्छत् सवेगितः ॥ २१ ॥ गौतमं द्रुत-
 मायान्तं द्रोणान्तिकमस्मिन्दमः । विव्याध नवभिर्बाणैः शिखण्डी
 महसन्निव ॥ २२ ॥ तपाचार्यो महाराज विध्वा पञ्चमिराशुगैः ।
 पुनर्विव्याध विशत्या पुत्राणां प्रियकृत्तव ॥ २३ ॥ महद्युद्धं तयो-

तुम्हारे सालेको वेदीश हुआ देखकर उसका सारथि उसके रथको
 तुरन्त ही सेनाके मुहाने परसे दूर ले गया, यह देखकर पांडवोंने
 और उसके अनुयायी योधाओंने हर्षमें भरकर बड़ा कोलाहल
 मचाया ॥ १४-१८ ॥ शत्रुको तपानेवाले नकुलने शत्रुका पराजय
 करनेके पीछे क्रोधपूर्वक अपने सारथिसे कहा कि-अरे सारथि !
 तू मेरे रथको अब द्रोणकी सेनाकी ओर ले चल हे राजन् !
 अपने महारथीका वचन सुनकर जहाँ द्रोणाचार्य खड़े थे तहाँ
 नकुलका सारथि उसके रथको ले गया ॥ १९-२० ॥ हे राजन् !
 दूसरी ओर शरद्वानके पुत्र कृपाचार्यने भी सावधान होकर द्रोणको
 कैद करना चाहते हुए शिखण्डीके ऊपर फुर्तीसे धावा किया २१
 तब शिखण्डीने मुस्करा कर, शीघ्रतासे धँसकर आते हुए अरिदमन
 कृपाचार्यके और शत्रुको दमन करनेवाली द्रोणाचार्यकी सेनाके
 भल्ल नामके नौ बाण मारे ॥ २२ ॥ तब तुम्हारे पुत्रका हित करने
 वाले गौतमपुत्र कृपाचार्यने पच्चीस बाण शिखण्डीके मारे तब-
 देवासुरसंग्राममें शम्बरसुर और इन्द्रमें जैसा भयंकर युद्ध चला था

(१०६४) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौउनहत्तरवाँ]

रासीद् घोररूपं भयानकं यथा देवासुरे युद्धे शम्बरामराजयोः २४ ।
शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ । मेघाविव तपापाये धीरौ
समरदुर्मदौ ॥ २५ ॥ प्रकृत्या घोररूपं तदासीद् घोरतरं पुनः ।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधानां युद्धशालिनाम् ॥ २६ ॥ कालरात्रि-
निभा चासीद् घोररूपा भयावहा । शिखण्डी तु महाराज गौत-
मस्य महदनु ॥ २७ ॥ अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सत्रिशिखं तथा ।
तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्चक्तिञ्चिक्षेप दारुणाम् ॥ २८ ॥ रुक्मद-
ण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमाज्जिताम् । तामापतन्तीं चिच्छेद शिख-
ण्डी बहुभिः शरैः ॥ २९ ॥ सापतमेदिनीं दीप्तौ भासयन्ती गङ्गा-
प्रभा । अथान्यद्वनुरादाय गौतमो रथिनाम्बरः ॥ ३० ॥ प्राच्छा-

वसीप्रकार उन दोनोंमें महाभयानक तुष्टुल युद्ध होने लगा २३-२४
जैसे वर्षा ऋतुमें दो मेघ आकाशको भर दें, तैसे ही युद्धमत्त
और शूर उन दोनों महारथियोंने भी बाणोंसे आकाशको छा
दिया, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! स्वाभाविकरीतिसे यह युद्ध
भयंकर लगता था और रणमें लड़नेवाले योधाओंको तो यह रात्रि
कालरात्रिकी समान भयंकर हो गई थी, हे महाराज! इस समय युद्ध
करतेहुए शिखण्डीने अर्धचन्द्रार बाणका प्रहारकर कृपाचार्यके सजे
हुए और बाण चढ़ेहुए बड़ेभारी धनुषको काटडाला, तब कृपा-
चार्य क्रोधमें भरगए और उन्होंने शिखण्डीके एक दारुण शक्ति
मारी, शिखण्डीने बहुतसे बाण मारकर सुवर्णके दण्डवाली,
नोकदार और कारीगरकी साफकी हुई, सामने आती हुई उस
शक्तिके टुकड़े कर डाले ॥ २५-२६ ॥ तब झलझलाती हुई
कान्तिवाली वह शक्ति चूरा कर होकर पृथिवीमें गिरपड़ी, शक्तिके
नष्ट होने पर कृपाचार्यने दूसरा धनुष उठाया और हे महाराज !
तेज क्रियेहुए बाणोंकी वृष्टिकर उसको छा दिया महारथी शिख-
ण्डी कृपाचार्यके बाणोंसे पराभूत होकर रथमें बैठगया, हे राजन् !

दयच्छित्तैर्नाणैर्महाराज शिखण्डिनम् । स ह्यध्यमानः समरे गौतमेन
यशस्विना ॥ ३१ ॥ व्यसीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनाम्बरः ।
सीदन्तञ्चैनमालोक्य कृपः शारदतो युधि ॥ ३२ ॥ आजघ्ने बहु-
भिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत । विमुखं तं रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनि महा-
रथम् ॥ ३३ ॥ पश्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः । तथैव
तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ॥ ३४ ॥ महत्या सेनया सार्द्धं
ततो युद्धमवर्त्तता रथानाञ्चैव रणे राजन्नन्योऽन्यमभिधावताम् ॥ ३५ ॥
बभूव तुमुलः शब्दो मेघानामिव भारत । द्रवतां सादिनाञ्चैव
गजानाञ्च विशाम्पते ॥ ३६ ॥ अन्योऽन्यं निघ्नतां राजन् कर-
मायोधनं वभौ ॥ पत्नीनां द्रवतां चैव पादशब्देन मेदिनी ॥ ३७ ॥
अकम्पत महाराज भयस्तूस्तेन चांगना । रथिनो रथमारुह्य प्रव्रुता
वेगवत्तरम् ॥ ३८ ॥ अयुक्तान् बहवो राजन् शलभान् वायसा

युद्धमें उसको निःसन्न हुआ देखकर उसको मारनेकी इच्छासे
कृपाचार्य उसको ऊपर तडातड बाण बरसाने लगे, तब तो यज्ञसेनका
कुमार महारथी शिखण्डी रणमेंसे भाग गया, पश्चाल राजे और
सोमक राजे उसको रणमेंसे भागते देखकर उसको चारों ओरसे
घेरकर खड़े होगए और तुम्हारे पुत्र सेनाओंको साथमें ले ब्राह्मण-
श्रेष्ठ कृपाचार्यको चारों ओरसे घेरकर खड़े होगए, तब महारथी
एक दूसरेके साथ फिर युद्ध करने लगे ॥ ३०-३५ ॥ अस्तव्यस्त
दौडते हुए घुड़सवार तथा हाथीसवार मेघकी गर्जनाकी समान
तुमुल शब्द कर उठे ॥ ३६ ॥ उन योधाओंकी भूपा भूपासे रणक्षेत्र
भयंकर दीखता था, हे महाराज ! युद्धमें इधर उधर दौडते
हुए योधाओंकी पदध्वनिसे पृथिवी भयभीत स्त्रीकी समान काँप
उठी, कौए जैसे कीड़ोंको पकड़ लेते हैं, तैसे षड़े ही वेगमें
भरे हुए रथमें बैठकर दौडते हुए रथी शत्रुपक्षके रथियोंको पकड़-
ने लगे, मद टपकानेवाले हाथी, मद टपकाने वाले हाथियोंके साथ

इव । तथा गजानं प्रभिन्नाङ्गानं सुप्रभिन्ता महागजाः ॥ ३६ ॥
 तस्मिन्नेव पदे यत्तां निशृण्वन्ति स्म भारत । सोदीप्तादिनमासाद्य
 पचायश्च पदातिनम् ॥ ४० ॥ समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नाति-
 चक्रुः । धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्त्ततामपि ॥ ४१ ॥ बभूव
 तत्र सैन्यानां शब्दः सुविपुलो निशि । दीप्यमानाः मदीपाश्च
 रथवारणवाजिषु ॥ ४२ ॥ अहरयन्तः महाराज महोष्का इव
 खाच्छ्रुताः । सा निशा भरतश्रेष्ठ मदीपैस्वभासिता ॥ ४३ ॥
 दिवसप्रतिगा राजन् बभूव रणमूर्धनि । आदित्येन यथा व्याप्तं
 तमो लोके प्रणश्यति ॥ ४४ ॥ तथा नष्टं तमोऽधोरं दीपैर्दीप्तिरित-
 स्ततः । दिवञ्च पृथिवीञ्चैव दिशश्च मदिशस्तथा ॥ ४५ ॥ रजसां
 तमसा व्याप्ता द्योतिताः प्रभया पुनः । शस्त्राणां कवचानाञ्च मणी-

लहने लगे, परस्पर क्रोधमें भरे हुए घुड़सवार घुड़सवारोंके
 साथ युद्ध करने लगे और शत्रुओंको आगे बढ़नेसे रोकने लगे,
 हे राजन् ! इस प्रकार रात्रिके युद्धमें भागते हुए तथा पीछेको हटते
 हुए योधाओंने बड़ा दुन्दुभचा रक्खा था, हे महाराज रथ, हाथी
 तथा घोड़ोंकी सेनाओंमें प्रज्वलित होते हुए दीपक आकाशमेंसे
 गिरती हुई उल्काओंकी समान दीखते थे, रणके मुहानेपर दीपकों
 से प्रकाशित होती हुई बड़े धोररात्रि दिनकी समान प्रका-
 शित होरही थी, सूर्यके झलझलाते हुए प्रकाशसे जैसे
 जगत्का अन्धकार दूर होजाता है, तैसे ही आस पास
 प्रकाशित होते हुए दीपकोंसे रणभूमिका अंधेरा दूर होगया था;
 आकाश, पृथ्वी, दिशा और विदिशाएँ जो अन्धकार और धूल
 से ढँक गई थीं, वे दीपकोंकी कान्तिसे फिर प्रकाशित
 होगई, दीपकोंकी कान्तिसे महात्मा पुरुषोंके अस्त्र, कवच
 और मणियोंकी कान्ति भी फीकी पड़ गई थी, हे भरतवंशी
 राजन् ! रात्रिका समय था, भयंकर युद्ध और उसके साथमें कोला-

नाञ्च महात्मनाम् ॥ ४६ ॥ अन्तर्दधुः प्रयाः सर्वा दीप्तैस्तैरवभा-
सिताः । तस्मिन् कोलाहले युद्धे वर्त्तमाने निशामुखे ॥ ४७ ॥ न
केचिद्दिदुरात्मानमयमस्मीति भारत । अवधीत् समरे पुत्रं पिता
भरतसत्तम ॥ ४८ ॥ पुत्रश्च पितरं मोहात् सखायञ्च तथा सखा
स्वस्तीयं मातुलश्चापि स्वस्तीयश्चापि मातुलम् ॥ ४९ ॥ स्वे स्वान्
परे स्वकीयांश्च निजघ्नस्तत्र भारत । निर्मर्यादमभूद्राजन् राज्ञौ
भीरुभयानकम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षटोत्कचवधार्वाणि रात्रिसंकुलयुद्धे
ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

सञ्जय उवाच । तस्मिन् सुतमुल्ले युद्धे वर्त्तमाने भयावहे । धृष्ट-
द्युम्नो महाराज द्रोणमेवाभ्यवर्त्तत ॥ १ ॥ सन्दधानो धनुःश्रेष्ठं
व्यां विकर्षन् पुनः पुनः । अभ्यद्रवत् द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् २

इल मच रहा था और उस समयके अन्धकारके कारण मनुष्य
अपनेको भी नहीं पहिचान पाते थे कि—“मैं कहा हूँ और कौन
हूँ !” एक दूसरेको न पहिचाननेसे पिता पुत्र पर, पुत्र पिता पर,
मित्र मित्र पर, मामा भाँजे पर और भाँजा मामा पर महार कर
रहा था ॥ ३७-४६ ॥ योद्धा अपने पत्निका तथा शत्रुपत्निका
परस्पर संहार कर रहे थे, इसप्रकार रात्रिके समय मर्यादाहीन
और भयभीतोंको भयभीत करनेवाला भयंकर युद्ध चल रहा
था ॥ ५० ॥ एकसौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६६ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज ! अत्यन्त तुमुल और भयंकर
युद्ध चल रहा था, उस समय धृष्टद्युम्नने द्रोणके ऊपर धावा करने
का निश्चय किया, उसने धनुषके ऊपर डोरी चढ़ाई और उसको
बारम्बार खेंचता हुआ द्रोणका वध करनेकी इच्छासे द्रोणके सुवर्णसे
मढ़े हुए रथकी ओर बढ़ा, पाञ्चाल राजे भी द्रोणका संहार
करनेके लिये धृष्टद्युम्नको चढ़कर जाता देखकर पाण्डवोंके साथ

धृष्टद्युम्नमथायान्तं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया । परिवर्धुर्महाराजः
 पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥ तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्य-
 सचामम् । पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररंक्षुर्द्रोणमाहवे ॥ ४ ॥ बला-
 र्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निष्ठागुखे । वातोद्भूतौ जुब्धसन्धौ
 भैरवौ सागराविव ॥ ५ ॥ ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पंचभिः
 शरैः । विष्याथ हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद चक्षतं द्रोणः पञ्चविंशत्या
 विद्धो भारत संयुगे । चिच्छेदान्येन भल्लेन धनुस्त्र्यं महास्वनम् ७
 धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो द्रोणेन भरतर्षभ । उत्ससर्ज च धनुः शीघ्रं
 सन्दश्य दशनच्छदम् ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः
 प्रतापवान् । आददेऽन्यद्वनुः श्रेष्ठं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ॥ ९ ॥
 विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात् परवीरदा । द्रोणस्यान्तकरं घोरं
 व्यसृजत् सायकं ततः ॥ १० ॥ स विस्फोटो बलवता शरो घोरो

द्रोणके रथके चारों ओर इकट्ठे होगए, आचार्यश्रेष्ठ द्रोणको घिरा
 हुआ देखकर तुम्हारे पुत्र सावधान होगए, वे चारों ओरसे रणमें
 द्रोणकी रक्षा करनेलगे ॥ १-४ ॥ पवनसे उछलते हुए तथा
 जिनमेंके जलचर माणी जुब्ध होरहे हों ऐसे दो भयंकर समुद्रोंकी
 समान, कौरव पाण्डवोंके दो सेनासागर रात्रिके समय परस्पर
 रिलमिल गए ॥ ५ ॥ हे महाराज ! युद्ध आरम्भ होते ही पांचाल-
 राजके पुत्रने द्रोणकी छातीमें पाँच बाण मारकर सिंहकी समान
 गर्जना की ॥ ६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! द्रोणने इसके ऊपर
 पचीस बाण छोड़े और भल्ल नामके बाणसे धृष्टद्युम्नके बड़ाभारी
 ध्वनि करतेहुए धनुषको काटडाला ॥ ७ ॥ प्रतापी धृष्टद्युम्न द्रोणके
 हाथसे घायल होनेके कारण क्रोधमें भरगया, उसने कटेहुए धनुष
 को तुरन्त ही छोड़कर, ओठ पीस, द्रोणका नाश करनेकी इच्छासे
 दूसरा श्रेष्ठ धनुष उठाया और उस पर भयंकर बाण चढ़ा, कर्ण-
 पर्यन्त खेचकर द्रोणका अन्त करनेके लिये उन पर छोड़ा ८-१०

महामृधे । भासयामास तत् सैन्यं दिवाकर इवोदितः ॥ ११ ॥
 तन्तु दृष्ट्वा शरं घोरं देवान्धर्वदानवाः । स्वस्त्यस्तु समरे राजन्
 द्रोणायेत्यब्रुवन् वचः ॥ १२ ॥ तन्तु सायकमायान्तमाचार्यस्य
 रथं प्रति । कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १३ ॥
 स छिन्नो बहुधा राजन् सूनपुत्रेण धन्विना । निपपात
 शरस्तूर्णं निर्विषो भुजगो यथा ॥ १४ ॥ धृष्टद्युम्नं ततः
 कर्णो विव्याध दशभिः शरैः । पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणश्च
 सप्तभिः ॥ १५ ॥ शल्यतु दशभिर्भलैस्त्रिभिर्दुःशासन-
 स्तथा । दुर्योधनस्तु विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥ १६ ॥
 पांचालयं त्वरिताविध्यन् सर्व एव महारथाः । स विदुः सप्तभि-
 वीरैर्द्रोणत्राणार्थमाहवे ॥ १७ ॥ सर्वानसंभ्रमाद्राजन्प्रत्यविद्व्यत्

बलवान् धृष्टद्युम्नके छोड़ेहुए उस घोर बाणने, उदय होतेहुए
 सूर्यकी समान उनकी सेनामें प्रकाश फैलादिया ॥११॥ हे राजन् !
 उस समय भयंकर बाणको आताहुआ देखकर युद्ध-देखनेके लिये
 आयेहुए देवता, गन्धर्व और मनुष्य कहनेलगे, कि—“द्रोणका
 कन्याण हो” ॥१२॥ धृष्टद्युम्नके छोड़ेहुए बाणको द्रोणके रथकी
 ओर सराटके साथ आतेहुए देखकर कर्णने फुर्तीले पुरुषकी
 समान सासनेसे बाण मारकर उस बाणके टुकड़े कर डाले ॥१३॥
 धनुषधारी कर्णने धृष्टद्युम्नके बाणके अच्छी प्रकार टुकड़े कर डाले
 कि—वह बाण विषहीन सर्पकी समान पृथिवीमें जा गिरा ॥१४॥
 तदनन्तर कर्णने दश, अश्वत्थामाने पाँच, द्रोणने सात, शल्यने
 दश, दुःशासनने तीन, दुर्योधनने बीस और शकुनिने पाँच बाण
 मारे—इसप्रकार सब महारथियोंने फुर्तीसे बाण मारकर धृष्टद्युम्नको
 बीध डाला, इस महायुद्धमें सात भयंकर महारथियोंने द्रोणका पक्ष ले
 कर बाणोंसे धृष्टद्युम्नको बीध डाला था १५—१७ परन्तु हे राजन् !
 धृष्टद्युम्न जरा भी नहीं घबड़ाया उसने द्रोणको, अश्वत्थामाको,

त्रिभिस्त्रिभिः । द्रोणं कर्णं च द्रौणिं च विव्याध तनयं तव १८
 तैर्दृभिन्ना धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे । विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्ण-
 मेकैको रथिनां वरः ॥ १९ ॥ द्रुपसेनन्तु संक्रुद्धो राजन् विव्याध
 पत्रिणा । त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाववीत् ॥ २० ॥
 स तु तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः । स्वर्णपुङ्खैः
 शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि ॥ २१ ॥ भग्नलेनान्येन तु पुनः
 सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम् । निचकर्त्त शिरः कायाद् द्रुपसेनस्य वीर्य-
 वान् ॥ २२ ॥ तच्छिरो न्यपतद् धूमो सन्दर्ष्टाष्टपुटं रणैः ॥ महा-
 वातसमुद्भूतं पक्वं तालफलं यथा ॥ २३ ॥ तारु च विध्वा पुनर्योधान्
 वीरः मुनिशितैः शरैः । राधेयस्याच्छिन्नत् भग्नलैः कार्मुकं चित्र-
 योधिनः ॥ २४ ॥ न तु तन्ममूषे कर्णो धनुषश्छेदनं तदा । निकर्त्त-

कर्णको, और तुम्हारे पुत्रको तीन २ बाणोंसे बीच डाला ॥ १८ ॥
 इतनेमें ही उनमेंके प्रत्येक महारथियोंने-पुनः धृष्टद्युम्नके सीधे जाने
 वाले तीन २ तीक्ष्ण बाण मारे ॥ १९ ॥ और द्रुपसेनने पहिले
 एक और फिर तीन बाण मार कर धृष्टद्युम्नसे कहा कि-“सदा
 रह । कहाँको भागे जाता है” ॥ २० ॥ तब धृष्टद्युम्नने उसके
 ऊपर सरलगायी, मुनदरी पूँछ वाले और पत्थर पर घिस कर
 तेज किये हुए और युद्धमें प्राणोंका अन्त करने वाले तीन बाण
 मारे और पीछेसे पराक्रमी धृष्टद्युम्नने भल्ल नामका बाण मार कर
 द्रुपसेनके धड़ परसे कुण्डलोंसे उज्ज्वल मतीव होते हुए उसके
 मस्तकको काँट डोला, नव ओटवो दवाता हुआ वह मस्तक-पवन
 के आघातसे पका हुआ तालका फल जैसे पृथ्वी पर गिर पड़े
 जैसे रणयुद्धिके ऊपर गिर पड़ा ॥ २१—२३ ॥ द्रुपसेनको
 मारने के पीछे उस वीरने तेज किये हुए बाणोंसे फिर
 दूसरे योद्धाओंको बायल करना आरंभ कर दिया और भल्ल
 नामक बाण मार कर विचित्र रीतिसे युद्ध करने वाले कर्णके

नमिवात्पुग्री लांगूलस्य महाहरिः ॥ २५ ॥ सोऽन्यद्वतुः समादाय
क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन । अभ्यवर्षच्छरीरेण धृष्टद्युम्नं महाबलम् २६
दृष्ट्वा कर्णन्तु संरब्धं ते वीराः पदवर्षभाः । पांचान्यपुत्रं त्वरिताः
परिवव्रुर्जिघांसया ॥ २७ ॥ पण्णां योधप्रवीराणां तावकानां
पुरस्कृतम् । मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममस्महि ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नेव
काले तु दाशार्हो विकिरन् शरान् । धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः
प्रत्यपद्यत ॥ २९ ॥ तमायान्तं महेष्वासं सात्वतं युद्धदुर्मदम् । राघेयो
दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्वगैः ३० तं सात्यकिर्महाराज विव्याध
दशभिः शरैः । पश्यतां सर्ववीराणां मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ३१
स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः । आसीत् समागमो

धनुषको काट डाला ॥ २४ ॥ महावानर जैसे अपनी बड़ी भारी
पूँछके नाशको न सहसके तैसे कर्ण भी अपने धनुषके कटनेको
सह न सका ॥ २५ ॥ उसने क्रोधसे लाल २ नेत्रकर साँस खेंचते २
दूसरा धनुष उठाया और महाबली धृष्टद्युम्नके ऊपर बाणोंकी
वृष्टि करना आरम्भ कर दी ॥ २६ ॥ कर्णको क्रोधमें भरा हुआ
देखकर कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन, द्रोण, शल्य और शकुनि इन
छः महारथियोंने धृष्टद्युम्नको मारनेकी इच्छासे उसको चारों
ओरसे घेरलिया ॥ २७ ॥ तुम्हारे छः महावीररथियोंके बीचमें
धृष्टद्युम्न जैसे पड़ा कि—हम तो उसको कालके मुखमेंही पड़ा हुआ
समझनेलगे ! इस समय दाशार्हकुलमें उत्पन्न हुए सात्यकिने
देखा कि—शत्रुओंने धृष्टद्युम्नको घेरलिया है, तब वह तडातड
बाण बरसाता हुआ तहाँ पर धँस आया ॥ २८—२९ ॥ युद्ध करनेमें
प्रवीण महाधनुषधारी सात्यकिको आता हुआ देखकर कर्णने
उसके दश बाण मारे ॥ ३० ॥ और हे महाराज ! सात्यकिने भी
कर्णके दश बाण मारे तथा सब वीरोंको सुनाते हुए कहा कि—
“अब भागना मत खड़े रहना” ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! उस समय

राजन् बलिवासवयोरिव ॥ ३२ ॥ त्रासयन्त्रयोपेण क्षत्रियान्
क्षत्रियर्षभः । राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ३३ ॥
कम्पयन्निव घोपेण धनुषो वसुधां बली । मृतपुत्रो महाराज
सात्यकिं प्रत्ययोषयत् ॥ ३४ ॥ विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः
क्षुरैरपि । कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविध्यत ॥ ३५ ॥ तथैव
युधुधानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो युधि । अभ्यर्तपच्चरैः कर्णं तद्युद्धम-
भवत् समम् ॥ ३६ ॥ तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः ।
सात्यकिं निव्यधुस्तूर्णं समन्ताग्निशिताः शरैः ॥ ३७ ॥ अस्त्रै-
रस्त्राणि सम्भार्य तेषां कर्णस्य वा विभो । अविध्यत् सात्यकिः
क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे ॥ ३८ ॥ तेन घाणेन निर्विद्धो वृषसेनो

बलवान् सात्यकि तथा मृतपुत्र महात्मा कर्णमें होता हुआ युद्ध बलि
और इन्द्रके युद्धकी समान प्रतीत होता था ॥ ३२ ॥ इस युद्धमें
क्षत्रियश्रेष्ठ सात्यकिने रथकी भूनभूनाहटसे क्षत्रियोंकी मयभीत
करदिया और कमलकी समान नेत्रों वाली कर्णको बाण मार कर
बीध डाला ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! वज्रशाली कर्ण वज्रकी टंकार-
ध्वनिसे पृथ्वीको काँपता हुआ सात्यकिके सामने लड़ने लगा ३४
और विपाठ, कर्णिक, नाराच, वत्सदन्त तथा क्षुर नामक सहस्रों
बाण मार कर सात्यकिको बीध डाला ॥ ३५ ॥ उस वृष्णि-
वंशमें श्रेष्ठ सात्यकिने भी युद्धमें कर्णके ऊपर बाणोंकी वृष्टि की
थी दोनोंमें समान रीतिसे युद्ध हो रहा था ॥ ३६ ॥ हे महाराज !
इस युद्धमें तुम्हारे पुत्र तथा कवचधारी कर्णपुत्र भी सात्यकिके ऊपर
चारों ओरसे तीक्ष्ण बाण मारते थे ॥ ३७ ॥ कर्णपुत्रके बाणोंके
महारसे, हे राजन् ! सात्यकि बड़े क्रोधमें भरगया; उसने अस्त्र मार
कर तुम्हारे पुत्रोंके, कर्णके तथा कर्णके पुत्रके छोड़े हुए बाणोंको
पीछेकी हटा दिया और दूसरा बाण मार कर वृषसेनकी छाती
चीर डाली ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! सात्यकिका बाण लगने ही

विशाम्पते । न्यपतत् स रथे मूढो धनुस्तस्य वीर्यवान् ॥ ३६ ॥
ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम् । पुत्रशोकाभिसन्तप्तः
सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥ ४० ॥ पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो
महारथः । विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः ॥ ४१ ॥
स कर्णं दशभिर्विध्वा वृषसेनञ्च पञ्चभिः । सहस्तावापधनुषी
तयोश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ४२ ॥ तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रु-
भयङ्करे । युयुधानमविध्येतां समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ४३ ॥ वर्त्त-
माने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये । अतीव शुश्रूवे राजन् गांडीवस्य
महास्वनः ॥ ४४ ॥ श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निःस्व-
नम् । स्रुतपुत्रोऽब्रवीद्राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ४५ ॥ एष
सर्वाञ्चमू हत्वा मुख्याश्चैव नरर्षभान् । कौरवांश्च महेश्वासो

पराक्रमी वृषसेन हाथमेंसे धनुषको छोड़ रथमेंही मूर्छित हो गिर
पड़ा ॥ ३६ ॥ अपने महारथी पुत्रको मरा हुआ समझ कर
कर्णको बड़ा क्रोध चढ़ा, तब वह सात्यकिको बाण मार कर
पीडित करने लगा ॥ ४० ॥ कर्ण महारथी सात्यकिको जैसे
पीडित करता था तैसे २ सात्यकि भी वेगसे उसके ऊपर बाण
मार कर उसको दुःख देने लगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार बहुत समय
तक युद्ध चलता रहा, फिर सात्यकिने कर्णके दश और (मूर्छासं-
लते हुए) वृषसेनके सात बाण मारे और उसके दोनों हाथोंके
मौजे तथा धनुषको काट डाला ॥ ४२ ॥ तब उन दोनों (पिता
और पुत्र) ने शत्रुको भयंकर लगने वाले दो धनुष ठीक किये और
फिर चारों ओरसे सात्यकिके ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ४३
हे महाराज ! वीरोंका संहार करने वाला महायुद्ध चल रहा था,
इतनेमेंही दूरसे गाण्डीव धनुषकी टंकार तथा भ्रमन्मनाहट सबके
कानोंमें पड़ने लगी हे महाराज ! गाण्डीव और रथकी ध्वनिको
सुनकर कर्णने दुर्योधनसे कहा कि-॥ ४४—४५ ॥ हमारी

विचित्रन्तुत्तमं धनुः ॥ ४६ ॥ पार्थो विजयते तत्र गाण्डीवनिनदो
महान् । श्रूयते रथनिर्घोषो वासवस्येव नर्दतः ॥ ४७ ॥ करोति
पाण्डवो व्यक्तं कर्मोपयिकमात्मनः । एषा विदार्यते राजन्बहुधा
भारती घ्नूः ॥ ४८ ॥ विप्रकीर्णान्यनेकानि नावतिष्ठन्ति कर्हि-
चित् । बातेनेव समुद्रधूतमभ्रजालं विदीर्यते ॥ ४९ ॥ सच्यसाचि-
ममासाद्य भिन्ना नौरिव सागरे । द्रवतां योधमुख्यानां गाण्डीव-
मेषितैः शरैः ॥ ५० ॥ विद्वानां शतशो राजन् श्रूयते निःस्वनो
महान् । शृणु दुम्भुभिनिर्घोषमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ ५१ ॥ निशीथे
राजशादूलस्तनयित्नोरिवाम्बरे । हाहाकाररवारचैव सिंहनादाश्च
शृण्वकलान् ॥ ५२ ॥ शृणु शब्दान् बहुविधानर्जुनस्य रथं प्रति ।

सकल सेनाके मुख्य २ धीरोंका तथा कौरव राजाओंका
संहार कर और अपनी विजय कर महाधनुषधारी अर्जुन अपने
श्रेष्ठ धनुषको टंकार रहा है, उसको सुनो ! उस दिशामें अर्जुनकी-
इन्द्रकी गर्जनाकी समान, गर्जना-गाण्डीवकी टंकारध्वनि तथा
रथकी घनघनाहट होरही है ॥ ४६-४७ ॥ प्रकट होता है कि-
अर्जुन अपने स्वरूपके योग्य कर्म कर रहा है और (देखो २) यह
भारतीय सेना विदीर्ण होरही है, पवन जैसे बादलोंको बखेर
डोलता है, तैसे ही अर्जुनने भी हमारी बहुतसी सेनाओंको बखेर
दिया है (देखो २) वे कहीं पर भी खड़ी नहीं होतीं ॥ ४८-४९ ॥
कदाचित् कोई योधा उससे लड़नेको जाता है तो वह जैसे समुद्रमें
छोटीसी डोंगी नष्ट होजाती है, तैसे अर्जुनके पास जाते ही
नष्ट होजाता है, और हे राजन् ! गाण्डीव धनुषमेंसे छूटहुए
बाणोंसे बिंध कर भागतेहुए बड़े-सेकड़ों योधाओंकी चीखें
सुनाई आरही हैं, उनके भी हे राजसिंह ! तुम सुनो ॥ और
आकाशमें अर्धरात्रिके समय मेघ जैसे गर्जना करते हैं, तैसे दुन्द-
भिषोंकी गडगडाहट सुनाई देरही है उसको भी सुनो ! और

अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिः सात्वताम्बरः ॥ ५३ ॥ इह
 चेष्टन्त्यते लक्ष्यं कृत्स्नान् जेष्यामहे परान् । एष पाञ्चालराजस्य
 पुत्रो द्रोणेन सङ्गतः ॥ ५४ ॥ सर्वतः संवृतो योधः शूरैश्च रथसत्तमैः ॥
 सात्यकि यदि हन्याम धृष्टद्युम्नञ्च पार्षतम् ॥ ५५ ॥ असंशयं
 महाराज ध्रुवो नो विजयो भवत् । सौमद्रवदिभौ वीरौ परिश्रयं
 महारथौ ॥ ५६ ॥ प्रयतामो महाराज निहतुं वृष्णिपार्षतौ ।
 सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत ॥ ५७ ॥ संसक्तं
 सात्यकिं ज्ञात्वा बहुभिः कुरुपुङ्गवैः । तत्र गच्छन्तु बहवः मवरा-
 रथसत्तमाः ॥ ५८ ॥ यावत् पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्ब-
 द्धम् । ते त्वरन्महेशूराः शराणां घोक्षणे भृशम् ॥ ५९ ॥ यथा

हे राजन् ! अर्जुनके रथकी ओर बहुतसा होहल्ला, सिंहनाद तथा
 अनेक प्रकारके शब्द हो रहे हैं उनको भी सुनो ! इस समय सात्वत-
 वंशमें श्रेष्ठ सात्यकि ही हमारे बीचमें खड़ा है ॥ ५०-५३ ॥ अतः
 हम जो पहले सात्यकिको मार डालेंगे तो सब शत्रुओंका पराजय
 कर सकेंगे, पाञ्चालराजका पुत्र धृष्टद्युम्न भी शूर और महारथी
 योधाओंसे घिरकर द्रोणाचार्यके सामने लड़ रहा है, उसको भी
 जीतनेकी आवश्यकता है, इस ही समय यदि हम सात्यकि और
 धृष्टद्युम्नको मार डालेंगे तो हे महाराज! हमारी विजय अवश्य होगी,
 अतः हे महाराज ! हम इन दोनों वीर महारथियोंको अभिमन्यु
 की समाज चारों ओरसे घेर लें और इन वृष्णिवंशी तथा पृषदंशी
 वीरोंके नाश करनेका प्रयत्न करें, तब ही हमें जय मिलेगी !
 हे भारतवंशी राजन् ! अर्जुन द्रोणकी सेनासे लड़ रहा है, अतः
 वह "सात्यकि बहुतसे शत्रुओंसे घिर गया है" यह जाने उससे
 पहिले ही तुम शूर वीर बड़े-२ महारथियोंको लेकर उसके सामने
 जाओ और उसके ऊपर फुर्तीसे बाणोंकी वृष्टि करो (कि-यह
 द्रोणके साथ युद्ध करनेमें लगाने और इस ओर सात्यकिकी

त्किं ब्रजत्येष परकीकाय माधवः । तथा कुह महाराज सुनीत्या
 सुमयुक्तया ॥ ६० ॥ कर्णस्य पतमाङ्गाय पुत्रस्ते प्राह सौवलयम् ।
 यथेन्द्रः समरे राजन् प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥ ६१ ॥ वृता सह-
 स्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्तिनाम् । रथैश्च दशसाहसैर्वृता याहि धन-
 ऋणयम् ॥ ६२ ॥ दुःशासनो दुर्विपहः सुबाहुर्दुष्पवर्षणः । एते
 त्वामनुपास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥ ६३ ॥ जहि कृष्णो
 महाबाहो धर्मराजञ्च मातुल । नकुलं सहदेवञ्च भीमसेनं
 तथैव च ॥ ६४ ॥ देवानामिव देवेन्द्रे जयाशा स्वयि
 मे स्थिता । जहि मानुल कौन्तेयानसुरानिव पाषाणिः ॥ ६५ ॥
 एवमुक्तो ययौ पार्थान् तव पुत्रेण सौवलयः । महत्या सेनया सार्द्धं
 सह पुत्रैश्च ते विभो ॥ ६६ ॥ प्रियार्थं तव पुत्रस्य दिधत्तु पाण्डु-

सहायता करनेको न आसके) हे महाराज ! तुम ऐसी राजनीतिका
 उपयोग करो कि-जिससे सात्यकिका मरण हो ॥ ५४-६० ॥
 हे राजन् ! कर्णका विचार सुननेके पीछे, इन्द्र जैसे यशस्वी विष्णु
 से रणमें कहे तैसे तुम्हारे पुत्रने शकुनिसे कहा कि-“अभी मामाजी!
 तुम दश सहस्र अद्वियल हाथीसवार और दश सहस्र रथियोंको
 लेकर इस ही समय अर्जुनके ऊपर चढ़ जाओ ॥ ६१-६२ ॥
 अपनी सहायताके लिये तुम दुःशासन, दुर्विपह, सुबाहु, दुष्पव-
 र्षणको तथा बहुतसे पैदलोंको साथमें लेलो हे महाभुज मामाजी !
 तुम कृष्णको, अर्जुनको, युधिष्ठिरको, नकुलको, सहदेवको तथा
 भीमसेनको मार डालो ॥ ६४ ॥ देवताओंको जैसे देवराज इन्द्रके
 ऊपर विजयका भरोसा होता है तैसे ही मेरी विजयके आधार भी
 तुम ही हो ! अग्निपुत्र स्वामी कार्तिकेयने जैसे असुरोंका संहार
 करा था, तैसे ही हे मामाजी ! तुम पाण्डवोंका संहार कर डालो ! ६५
 तुम्हारे पुत्रने शकुनिसे इसप्रकार कहा, तब हे राजन् ! शकुनि
 तुम्हारे पुत्रोंका प्रिय करनेके लिये तुम्हारे (दूसरे) पुत्रोंको तथा

नन्दनान् । ततः प्रवृत्ते युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ६७ ॥ प्रयाते
 सौबले राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् । बलेन महता युक्तः सूत-
 पुत्रस्तु सात्वतम् ॥ ६८ ॥ अभ्ययात्त्वरितो युद्धे किरन् शरशतान्
 बहून् । समेत्य पार्थिवाः सर्वे सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ६९ ॥ भार-
 द्वाजस्ततो गत्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति । महद्युद्धं तदासीत्तु द्रोणस्य
 निशि भारत । धृष्टद्युम्नेन शूरेण पाञ्चाल्यैश्च महाद्भुतम् ॥ ७० ॥
 इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
 संकुलयुद्धे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

सञ्जय उवाच । ततस्ते प्राद्रवन्सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः । अमुष्य-
 प्राणा संरक्ष्या युयुधानरथं प्रति ॥ १ ॥ ते रथैः कल्पितै राजन्
 हेमरत्नविभूषितैः । सादिभिरच गजैश्चैव परिवद्भुः समन्ततः ॥ २ ॥

बड़ीभारी सेनाको साथमें लेकर पाण्डवोंका संहार करनेके लिये
 चढ़ा, और (जहाँ अर्जुन घूमरहा था) तहाँ जाकर तुम्हारे
 पुत्रोंको साथमें ले पाण्डवोंसे लड़नेलगा ॥ ६६-६७ ॥ हे राजन् !
 सुषलपुत्र शकुनिने लड़नेके लिये (पहिले) पाण्डवोंकी सेना पर
 धावा किया, फिर बड़ीभारी सेनाको ले सूतपुत्र कर्ण एकसाथ
 सात्यकि पर झपटा और कुर्तीसे उसक ऊपर बाण छोड़नेलगा,
 हे राजन् ! और सब राजाओंने भी सात्यकिको चारों ओरसे
 घेरलिया, हे राजन् ! द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्न पर धावा किया,
 मध्यरात्रिके समय द्रोणाचार्यका शूरवीर धृष्टद्युम्न और पाञ्चाल-
 राजाओंके साथ महा अद्भुत युद्ध आरम्भ होगया ॥ ६८-७० ॥
 एकसौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७० ॥

सञ्जयने कहा, कि हे राजन् धृतराष्ट्र ! युद्ध करनेमें मदमत्त
 सब योधा सात्यकिके प्रहारोंको सह न सके वे क्रोधमें भर कुर्तीके
 साथ सात्यकिके रथकी ओर दौड़े ! उन्होंने सुवर्ण और चाँदीसे
 सजेहुए रथोंसे, घुड़सवारोंसे, हाथियोंसे चारों ओरसे सात्यकिको

अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः । सिंहनादं महत् कृत्वा
 तर्जयन्ति स्म सात्यकिम् ॥ ३ ॥ तेऽभ्यवर्षच्छरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं
 सत्यविक्रमम् । त्वरमाणा महावीरा माधवस्य वधैर्पिणः ॥ ४ ॥
 तान् दृष्ट्वापततस्तूर्ण्यं शीनेयः परवीरहा । मत्स्यगृह्णान्महाबाहुः ममृ-
 ष्वन्नं विशिखान् बहून् ॥ ५ ॥ तत्र वीरो महेश्वासः सात्यकि-
 र्युद्धदुर्मदः । निचकर्त्त शिरास्पृगैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६ ॥
 हस्तिहस्तान् हयग्रीधान् बाहूनपि च सायुधान् । क्षुरमैः शातया-
 मास तावकानान्तु माधवा ॥ ७ ॥ पतितैश्चामरैश्चैव श्वेतद्वयैश्च
 भारत । वभूव धरणी पूर्णा नक्षत्रैर्धीरिव प्रभो ॥ ८ ॥ एतेषां
 युयुधानेन वध्यतां युधि भारत । वभूव तुमुलः गन्धः प्रेतानामिव
 कन्दताम् ॥ ९ ॥ तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुधरा । रात्रिः

घेरलिया और वसुधे आसपास घेरा डालकर तुम्हारे महारथी सिंह
 की समान गर्जना करने लगे तथा सात्यकिका तिरस्कार करने लगे २-३
 तुम्हारे महावीर योधा सात्यकिको मारने की इच्छासे सत्यपराक्रमी
 सात्यकिके ऊपर फुर्तीसे तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥
 शत्रुओं का संहार करने वाले महाशुभ सात्यकिने, शत्रुओं की ओरसे
 आते हुए बाणों को भेल लिया. और उनके ऊपर बहुतसे बाण
 छोड़ने लगा ५ शूरवीर और महाधनुषधारी युद्धदुर्मद सात्यकि, नमी
 हुई गाँठ वाले उग्र बाणोंसे शत्रुओंके मस्तकोंको छेदने लगा ॥ ६ ॥
 वह तुम्हारे हाथियोंकी सूँडोंको, घोड़ोंके मस्तकोंको, योधाओंकी
 आयुधसहित भुजाओंको, क्षुरम जातिके बाण मार कर काँटने
 लगा ॥ ७ ॥ उस समय हे राजन् ! नक्षत्रोंसे जैसे आकाश शोभा
 पाता है तैसे इधर उधर पड़े हुए चमर और श्वेतद्वयोंसे पृथ्वी शोभा
 पा रही थी ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! युद्धमें सात्यकिके
 सामने युद्ध करने वाले योधा प्रेतोंकी समान आक्रन्द
 कर (रो) रहे थे ॥ ९ ॥ उस आक्रन्दसे सारी पृथ्वी

समभवच्चापि घोररूपा भयोवहा ॥ १० ॥ दीर्घमाणं बलं दृष्ट्वा
 युयुधानं शराहतम् । श्रुत्वा तु विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणे ११
 सुतस्तवाव्रवीद्राजन् सारथिं रथिनाम्बरः । यत्रैष शब्दस्तत्रारवारचो-
 दयेति पुनः पुनः ॥ १२ ॥ तेन संचोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्त-
 मान् । सुतः संचोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ १३ ॥ ततो दुर्यो-
 धनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः । शीघ्रहस्तरिचत्रयोधौ युयुधान-
 मुपाद्रवत् ॥ १४ ॥ ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः शोणितभोजनैः ।
 दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत ॥ १५ ॥ दुर्योधनस्तेन
 तथा पूर्वमेवाहितः शरैः । शौनेयं दशभिर्चाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः १६
 ततः समभवद्युद्धं तुमुलं भरतर्षभ । पञ्चालानाञ्च सर्वेषां भरता-
 नाञ्च दारुणम् ॥ १७ ॥ शौनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं महारथम् ।

गुँजरही थी, वह समय मध्यरात्रिका था ॥ १० ॥ रोमाञ्च
 खड़े करनेवाली भयङ्कर अर्धरात्रिमें सात्यकिके बाणोंके प्रहारसे
 तुम्हारी सेनामें भागड पड़ी हुई देखकर तथा बड़े भारी आक्रन्दको
 सुनकर, तुम्हारा महारथी पुत्र सारथिसे कहने लगा, कि—“जहाँ
 पर यह शब्द हो रहा है, तहाँ मेरे रथको ले चल” ॥ ११-१२ ॥
 दुर्योधनकी आज्ञा होते ही सारथिने सात्यकिके रथकी ओर
 घोड़ोंको हाँका ॥ १३ ॥ दृढ़ धनुषधारी, दुःख सहन करनेवाले,
 फुर्तीले हाथवाले और विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले दुर्योधनने
 सात्यकिके ऊपर धावा किया ॥ १४ ॥ सात्यकिने भी धनुषको
 भली भाँति खेंचकर रुधिरका भोजन करनेवाले बारह बाण
 दुर्योधनके मारे ॥ १५ ॥ इसप्रकार दुर्योधनको आते ही बाण
 मारकर पीड़ित किया, तब दुर्योधन क्रोधमें भरगया और उसने
 दश बाण मारकर सात्यकिको बँध डाला ॥ १६ ॥ तदनन्तर
 हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! पाञ्चाल राजे और सब भरतवंशी
 राजाओंमें दारुण और तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया ॥ १७ ॥ इस

सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत ॥ १८ ॥ ततोऽस्य
बाहान् समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम् । सारथिञ्च रथात्तूर्णं पातया-
मास पत्रिणा ॥ १९ ॥ हताश्वे तु रथे तिष्ठन् पुत्रस्तव विशाम्पते ।
मुमोच निशितान् बाणाञ्छैनेयस्य रथं प्रति ॥ २० ॥ शरान्
पञ्चाशतस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत् । चिच्छेद समरे राजन् प्रेपि-
तांस्तनयेन ते ॥ २१ ॥ अथापरेण भन्त्लेन मुष्टिदेशे महद्व्रुत् ॥ चिच्छेद
तरसा युद्धे तव पुत्रस्य माधवः ॥ २२ ॥ विरथो विधनुष्करश्च सर्व-
लोकेश्वरः प्रभुः । आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ २३ ॥
दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव बाहिनीम् । द्रावयामास विशिग्वै-
र्निशामध्ये विशाम्पते ॥ २४ ॥ शकुनिश्चाजुर्न राजन् परिवार्य
समन्ततः । रथैरनेकसाहसैर्गजैश्चापि सहस्रशः ॥ २५ ॥ तथा

युद्धमें सात्यकि क्रोधमें भर रहा था उसने तुम्हारे पुत्रकी छातीमें
अस्सी बाण मारे थे ॥ १८ ॥ पीछेसे तुम्हारे पुत्रके घोड़ोंको
मार डाला था, तथा उसके सारथिको भी बाणके प्रहारसे तुरन्त
ही रथके ऊपरसे पृथिवीमें गिरा दिया था ॥ १९ ॥ तो भी हे राजन् !
तुम्हारा पुत्र घोड़ेरहित रथ पर बैठा हुआ सात्यकिके रथके ऊपर
तेज किये हुए बाण मारे ही जाता था ॥ २० ॥ तुम्हारे पुत्रके
छोड़े हुए पचास बाणोंको सात्यकिने कुर्तीले हाथ वाले पुरुषकी
समान, इस युद्धके समय शीघ्रतासे काट डाला ॥ २१ ॥ फिर
सात्यकिने भल्ल नामक बाणसे तुम्हारे पुत्रके हाथमेंके धनुषको
मुष्टिप्रदेशमेंसे काट डाला ॥ २२ ॥ और जब राजा दुर्योधन रथ
और धनुषरहित होगया तब वह कृतवर्माके रथ पर चढ़ बैठा ॥ २३ ॥
हे राजन् ! दुर्योधन पीछेको हटा कि—सात्यकिने बाण मार कर
मध्यरात्रिके समय तुम्हारे सेनादलको भगा दिया ॥ २४ ॥ शकुनि
चारों ओरसे लाखों घुड़सवार और लाखों हाथीसवारोंको ले
अर्जुनको घेर उसके ऊपर नानाप्रकारके बाणोंकी बौछार कर

इयसहस्रैश्च नानाशस्त्रैरवाकिरत् । ते महास्त्राणि सर्वाणि विकिर-
न्तोऽर्जुनं प्रति ॥ २६ ॥ अर्जुनं योधयन्ति स्म क्षत्रियाः काल-
चोदिताः । तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ॥ २७ ॥
प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन् विपुलं क्षयम् । ततस्तु समरे शूरः
शकुनिः सौचलस्तदा ॥ २८ ॥ विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं मह-
सन्निव । पुनश्चैव शतेनास्य संकरोध महारथम् ॥ २९ ॥ तम-
र्जुनस्तुः विंशत्या विव्याध युधि भारत । अथेतरान् महेष्वासां-
स्त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ॥ ३० ॥ निवार्य तान् बाणगणैर्धुधि राजन्
धनञ्जयः । निजघ्ने तावकान् योषान् वज्रपाणिस्त्रिवासुरान् ॥ ३१ ॥
भुजैश्छिन्नैर्महाराज हस्तिहस्तोपमैर्मृधे । समाकीर्ण्य मही भाति
पञ्चास्यैरिव पन्नगैः ॥ ३२ ॥ शिरोभिः सफिरीटैश्च मुनसै-

रहा था, तैसेही कालसे प्रेरित क्षत्रिय भी अर्जुनके ऊपर बढ़े-
र अस्त्रोंका प्रहार करते हुए युद्ध करते थे, अर्जुनने सहस्रों रथ,
हाथी और घोड़ोंको आगे बढ़नेसे रोक़ा और परिश्रमपूर्वक उनका
संहार करने लगा, जब शकुनिने धीरे-धीरे हँसते हुए अर्जुनके ऊपर
तीक्ष्ण बाण मारना आरंभ कर दिया और सौ बाण मार कर
उसके महारथको आगे बढ़नेसे रोक़ दिया ॥ २५-२६ ॥ तब
हे भरतवंशी राजन् ! अर्जुनने शकुनिके बीस बाण मारे और दूसरे
धनुषधारियोंके तीन-चार बाण मारे ॥ ३० ॥ और हे राजन् ! इन्द्र
जैसे असुरोंका संहार करे, तैसे अर्जुन शत्रुओंके बाणोंको आनेसे
रोक़ तुम्हारे योद्धाओंके सामने बाण मारता था ॥ ३१ ॥ हे राजन् !
रणभूमि हाथियोंकी सूड़ोंकी समान (मोटी-र) भुजाओंसे भर गई
थी उस समय वह पाँच मुख वाले सर्पोंसे भरी हुईसी दीखनी
थी ॥ ३२ ॥ और मुकुट वाले, सुन्दर नासिकाओंवाले, सुन्दर
कुण्डलोंवाले, ओठोंको काटते हुए, क्रोधमें भरे हुए, फटी हुई
आँखोंवाले, प्रिय बोलने वाले, पदक तथा चूड़ामणि धारण करने

श्चारुकुण्डलीः । सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैस्तथैवोद्धृतलोचनैः ॥ ३३ ॥
निष्कचूडामणिधरैः क्षत्रियाणां प्रियम्बदैः । पङ्कजैरिव विन्यस्तैः
पर्वतैर्विवर्धौ मही ॥ ३४ ॥ कृत्वा तत् कर्म वीभत्सुर्ग्रमुग्रपराक्रमः ।
विन्याध शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३५ ॥ अतादृषदु-
ल्लूकं च त्रिभिरेव तथा शरैः । उलूकस्तु तथा विद्धो वासुदेवमता-
दृषत् ॥ ३६ ॥ मनाद च महानादं पूरयन्निव मेदिनीम् । अर्जुनः
शकुनेश्चापं सायकैरञ्जिनद्वये ॥ ३७ ॥ निन्ये च चतुरो बाहान्
यमस्य सदनं प्रति । ततो रथादवप्लुत्य सौवलो भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशाम्पते । तावेकरथमारुढौ पितापुत्रौ
महारथौ ॥ ३९ ॥ पार्थ सिषिचतुर्बाणैर्मिरि मेघाविवोत्थितौ ।
तौ तु विभ्वा महाराज पाण्डवो निशितैः शरैः ॥ ४० ॥ विद्रावयं-

वाले, क्षत्रियोंके मस्तक रणमें इधर उधर लुढ़क रहे थे, उनके
कारण कमलोंवाले पर्वतोंसे जैसे पृथ्वी शोभा पाती है, तैसे ही
रणभूमि शोभा पा रही थी ॥ ३३-३४ ॥ इस प्रकार उग्र परा-
क्रम करने वाले अर्जुनने उग्र कर्म करके नहीं हुई गाँठवाले पाँच
बाण फिर शकुनिके मारे ॥ ३५ ॥ और तीन बाण उलूकके मारे,
उलूकने वासुदेवके बाण मारा और घड़ी भारी गर्जना कर पृथ्वीको
गुंजार दिया, इस युद्धमें अर्जुनने बाण मार कर शकुनिके धनुष
को काट डाला और उसके चारों घोड़ोंको यमपुरीमें भेज दिया,
हे भरतवंशमें श्रेष्ठ ! शकुनि रथमेंसे नीचे उतर पड़ा और उलूक
के रथ पर चढ़ बैठा, महारथी पिता पुत्र एक रथमें बैठ कर मेघ
जैसे पर्वतके ऊपर जल बरसावे, तैसे अर्जुनके ऊपर फिर बाणोंकी
वृष्टि करने लगे, हे महाराज ! अर्जुनने उन दोनोंको तेज बाण
मारकर बंध डाला और सैकड़ों बाणोंका प्रहार कर तुम्हारी
सेनाको भगाने लगा, इस समय पवनसे जैसे बादल चारों ओर
को छिन्न भिन्न हो जाँय, तैसे हे राजन् ! तुम्हारी सेना भी छिन्न

स्तव चम्पू शतशोऽथ सहस्रशः । अनिलेन यथाभ्राणि विच्छि-
न्नानि सपन्ततः ॥ ४१ ॥ विच्छिन्नानि तथा राजन् बलान्या-
सन् विशान्पते । तद्वत् भरतश्रेष्ठ बध्यमानं तदा निशि ॥ ४२ ॥
मदुद्राव दिशः सर्वा वीक्षमाणं भयाहितम् । उत्सृज्य बाहान् समरे
चोदयन्तस्तथापरे ॥ ४३ ॥ संभ्रान्ताः पर्यवर्तन्त तिरमस्तमसि
दारुणे । निजित्य समरे योधास्तावकान् भरतर्षभ ॥ ४४ ॥ दध्म-
तुमुदितौ शंखौ बासुदेवधनञ्जयौ । धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं
विध्वा त्रिभिः शरैः ॥ ४५ ॥ चिच्छेद धनुषस्तूर्णं ज्यां शितेन
शरेण ह । तन्निधाय धनुर्भूमौ द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४६ ॥
आददेज्यद्धनुः शूरो वेगवत् सारवत्तरम् । धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो
विध्वा सप्तगिराशुगैः ॥ ४७ ॥ सारथिं पञ्चभिर्बाणैर्विन्याध
भरतर्षभ । तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ४८ ॥
व्यथमत् कौरवीं सेनामासुरीं मघवानिव । बध्यमाने बले

भिन्न होकर भागने लगी और भयभीत हुई कौरवोंकी सेना सब
दिशाओंको निहारती हुई भाग रही थी, इस समय कितने ही
तो रणमें बाहनोंको छोड़ कर भाग रहे थे और बहुतसे
घबड़ा कर दारुण अधरेमेंको भाग रहे थे, हे भरतवंशी
राजन्, ! तुम्हारे योधाओंको रणमें जीतकर श्रीकृष्ण
तथा अर्जुन हर्षमें भर कर शंख बजाने लगे; दूसरी ओर धृष्टद्युम्नने
भी तीन बाणोंसे द्रोणको बाँध डाला ॥ ३६-४५ ॥ तीक्ष्ण करे
हुए बाणोंसे तुरत ही उसके धनुषकी डोरीको काट डाला तब
क्षत्रियोंका संहार करने वाले द्रोणने धनुषको पृथ्वी पर फेंक
कर ॥ ४६ ॥ वेग तथा बलवाला दूसरा धनुष उठाया और
शीघ्रगामी सात बाण धृष्टद्युम्नके पारे ॥ ४७ ॥ तथा पाँच बाण
उसके सारथिके पारे, परन्तु महारथी धृष्टद्युम्नने उन बाणोंको
बाण मार कर अपने पास आनेसे रोक दिया ॥ ४८ ॥ और

(१११४) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौवहत्तरवाँ]

तस्मिंस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ ४६ ॥ प्रावर्त्तत नदी घोरा
शोणितौघतरङ्गिणी । उभयोः सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ५०
यथा वैतरणी राजन् यमराष्ट्रं प्रति प्रभो । द्रावयित्वा तु
तत् सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥ अभ्यराजत तेजस्वी
शक्रो देवगणेष्विव । अथ दधर्महाशंखान् धृष्टद्युम्नशिख-
ण्डिनौ ॥ ५२ ॥ यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः । जित्वा
राजसहस्राणि तावकानां महारथाः ५३ सिंहनादरवांश्चक्रुः पांडवा
जितकाशिनः । पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च रणोत्कटाः ॥ तथा
द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशाम्पते ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
संकुलयुद्धे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

सञ्जय उवाच । विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा बध्यमानं महात्मभिः ।

इन्द्र जैसे आसुरी सेनाका संहार कर डाले तैसे कौरवोंकी सेनाका
संहार कर डाला, हे राजन् । जब धृष्टद्युम्न तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाका
संहार कर रहा था उस समय वैतरिणी नदी जैसे यमनगरीवी
ओरको बहती है, तैसेही उन दोनों सेनाओंके बीचमें मनुष्य,
घोड़े और हाथियोंके रुधिरके प्रवाह वाली भयंकर नदी बह रही
थी, प्रतापी धृष्टद्युम्न तुम्हारी सेनाको भगानेके पीछे, देवताओंके
संग्रहमें जैसे इन्द्र शोभा पावे तैसे तेजस्वी योधाओंके बीचमें
शोभा पा रहा था तुम्हारी सेनाका पराजय करनेके पीछे धृष्टद्युम्नने
तथा शिखण्डीने अपने २ शंख बजाये ॥ ४६-५२ ॥ तथा हे राजन् ।
मदसे उत्कट हुए विजयी सात्यकि, भीमसेन, नकुल, सहदेव आदि
महावही पाण्डव, तुम्हारे पुत्र दुर्योधन, कर्ण, वीर द्रोण तथा
अश्वत्थामाके सामने ही सिंहकी समान गर्जना करने लगे ५३-५४
एकसौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सञ्जयने कहा कि- हे राजन् । महात्मा पाण्डवोंसे अपनी सेनाका

क्रोधेन महताविष्टः पुत्रस्तत्र विशाम्पते ॥ १ ॥ अभ्येत्य सहसा कर्णं
 द्रोणञ्च जयताम्बरम् । अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमन्वशीतर
 भवद्भ्यामिह संग्रामः क्रूराभ्यां सम्पवर्तितः । आहवे निहतं दृष्ट्वा
 सैन्धवं सव्यसाचिना ॥ ३ ॥ निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम
 बाहिनीम् । भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः ॥ ४ ॥ यद्यहं
 भवतस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि । आवां पाण्डुसुतान् संख्ये
 जेष्याम इति मानदौ ॥ ५ ॥ तदैवाहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनु-
 सम्मतम् । नाकस्त्रिषमिदं पार्थिवैर्योधविनाशनम् ॥ ६ ॥ यदि
 नाहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ । युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण
 सुविक्रमौ ॥ ७ ॥ वाक्यतोदेन तौ वीरौ मणुनौ तनयेन ते ।

संहार होता हुआ देखकर तथा अपनी सेनाको भागती हुई देख
 कर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको बड़ा क्रोध चढ़ा ॥ १ ॥ वाक्यवेत्ता
 दुर्योधनने एकाएक महाविजयी कर्ण तथा द्रोणके पास जाकर
 क्रोधमें भर उन दोनोंसे कहा कि—॥ २ ॥ अर्जुनने रणभूमिमें
 सिधुराजका नाश कर डाला; तबसे ही तुम दोनोंने कोपमें भर
 कर युद्धका (द्वेषपूर्वक) आरंभ किया है ॥ ३ ॥ परन्तु इस समय
 तो पाण्डवी सेना ही हमारी सेनाका संहार कर रही है इस बातको
 तुम (शत्रुओंको) हरानेमें समर्थ होकर भी अशक्तकी समान कैसे
 देख रहे हो ? ॥ ४ ॥ हे मानद वीरों ! तुम्हें यदि मेरा इस प्रकार
 ही त्याग करना था तो तुम्हें उस समय मुझसे यह न कहना
 चाहिये था कि—हम पाण्डुके पुत्रोंको जीत लेंगे । ॥ ५ ॥ तैसे ही
 मैं भी उस समय ही तुम्हारे कथनको सुन कर, पाण्डवोंके साथ
 वीरपुरुषोंके विनाश करनेवाला वैर नहीं बाँधता ॥ ६ ॥ हे पुरुष-
 श्रेष्ठों ! यदि अब भी तुम मेरा त्याग करना न चाहते हो तो तुम
 दोनों युद्ध करके अपने स्वरूपके योग्य पराक्रम करके दिखाओ ॥ ७ ॥
 इस प्रकार तुम्हारे पुत्रके वाणीरूप कोड़ेसे विंधकर वे दोनों

प्रावर्त्तयेतां तौ युद्धं घटिताविधं पन्नगौ ॥ ८ ॥ ततस्तौ रथिनां
 श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्द्धरौ । शैनेयप्रमुखान् पार्थानभितुष्टुवत् रणे ६
 तथैव सहिताः पार्थाः स्येन सैन्येन संवृताः । अभ्यवर्त्तन्त तौ वीरौ
 नर्दमानौ सुहृर्गुहः ॥ १० ॥ अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनि-
 पुङ्गवम् । अधिव्यवर्त्तरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृताम्बरः ॥ ११ ॥ कर्णश्च
 दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तत्र सप्तभिः । दशथिवृपसेनश्च सौवल्हश्चापि
 सप्तभिः ॥ १२ ॥ एते कौरवसंकन्दे शैनेयं पर्यवाकिरन् । दृष्ट्वा च
 समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवौ चमूम् ॥ १३ ॥ विव्यधुः
 सोमक्रास्तूष्णं समन्ताञ्छरदृष्टिभिः । तत्र द्रोणोऽहरत् प्राणान् क्षत्रि-
 याणां विशाम्पते ॥ १४ ॥ रश्मिभिर्भास्करो राजन्तमासीव सम-
 न्ततः । द्रोणेन वध्यमानानां पञ्चालानां विशाम्पते ॥ १५ ॥

योधा पैरसे दवे हुए सर्पकी समान पाण्डवोंके साथ युद्ध करने
 को उद्यत होगए ॥ ७ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ तथा सब लोकोंमें
 धनुषधारी वे दोनों वीर रणमें सात्यकिप्रमुख पाण्डवोंके ऊपर
 चढ़ गए और पाण्डवपक्षके सात्यकिप्रमुख पाण्डव भी बड़ी भारी
 सेनाको साथमें ले गर्जना करते हुए उन दोनों पुरुषोंके ऊपर
 वेगसे दूटपड़े ॥ ८-१० ॥ महाधनुषधारी तथा सब धनुषधारियोंमें
 श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने कोपमें भरकर सात्यकिके दश बाण मारे ॥ ११ ॥
 तथा कर्णने दश, तुम्हारे पुत्रने सात, वृषसेनने दश और सुवल-
 पुत्र (शकुनि) ने भी सात बाण मारे ॥ १२ ॥ रणभूमिमें चारों
 ओरसे सबने सात्यकिको घेरलिया, युद्धमें द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी
 सेनाका संहार करनेलगे, यह देखकर सोमक राजे चारों ओरसे
 द्रोणके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करके उनको मारनेलगे, हे राजन् !
 सूर्य जैसे चारों दिशाओंमें किरणोंको फैलाकर चारों ओरसे
 तिमिरपटलको दूर करदेता है, तैसे ही द्रोण भी चारों ओर
 बाण मारकर, क्षत्रियोंका प्राण हरण कर उनको युद्ध करनेसे दूर

शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम् । पुत्रानन्ये पितनन्ये भ्रात-
नन्ये च मातुलान् ॥ १६ ॥ भागिनेयान् वयस्याश्च तथा सम्ब-
न्धिबान्धवान् । वत्सज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितेऽसवः १७
अपरे मोहिता मोहात्तमेवाभिमुखा ययुः । पाण्डवानां वले योधाः
परलोकं गताः परे ॥ १८ ॥ तथा सा पाण्डवी सेना पीड्यमाना
महात्मना । निशि सम्प्राद्रवद्राजन् विसृज्योल्काः सहस्रशः १९
पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याच्युतस्य च । यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्ष-
तस्य च पश्यतः ॥ २० ॥ तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन ।
कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते विद्रुताः परे ॥ २१ ॥ द्रवमाणन्तु तत्

भगानेलगे, हे राजन् ! द्रोण पाञ्चाल राजाओंको मारते थे और
पाञ्चाल राजे प्रहारकी वेदनासे डकरारहे थे तथा उनके डकरानेका
तुमुल शब्द हमारे कानोंमें पड़ रहा था, इस युद्धमें कितने ही जीवित
रहनेकी इच्छासे पुत्रोंको त्याग कर; कितने ही पिताओंको त्याग
कर, कोई मामाओंको छोड़कर, कोई भांजेको छोड़कर, कोई
मित्रको त्याग कर, कोई सम्बन्धीको त्याग कर तथा कोई बान्धवों
को त्याग कर कुर्तोंके साथ रणभूमिमेंसे भागते हुए दिखाई देते
थे ॥ १३-१७ ॥ और कितने ही घबड़ाहटसे अन्धेसे होकर
द्रोणके ही सामनेको (मरनेके लिये) दीडते थे, पाण्डवोंके
बहुतसे योधा तो इस युद्धमें दौड़ भाग करते हुए ही मारे गए थे २०
और दूसरी ओरकी पाण्डवोंकी सेनाने भी महात्मा द्रोणके प्रहारसे
खिन्न होकर उस रात्रिमें भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल,
सहदेव, युधिष्ठिर तथा धृष्टद्युम्नके सामने ही हाथमेंकी सहस्रों
मशालोंको पृथिवीमें फेंक पलायन करना आरंभ कर दिया १९-२०
इस समय सारा जगत् अन्धकारमय हो रहा था, कुछ भी दिखाई
नहीं पड़ता था-केवल कौरवोंकी सेनाके दीपकोंके प्रकाशमें
भागते हुए शत्रु ही दिखाई पड़ते थे ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जब पाण्डवों

सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ । जघनतुः पृष्ठतो राजन् किरन्ती साय-
कान् बहून् ॥ २२ ॥ षड्वालेषु प्रभयेषु क्षीयमाणेषु सर्वतः । जनार्दनो
दीनमनाः प्रत्यभाषत फाल्गुनम् ॥ २३ ॥ द्रोणकर्णौ महेष्वासा-
वेतौ पार्षतसात्यकी । पञ्चालांश्चैव सहिषीं जघनतुः सायकैर्भृशम् २४
एतयोः शरचर्पेण प्रभग्ना नां महारथाः । त्रार्यमाणौपि वीरान्तेषु
पृतना नावतिष्ठते ॥ २५ ॥ तान्तु विद्रवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवा-
र्जुनौ । मा विद्रवत विव्रस्ता भयं त्यजन पाण्डवाः ॥ २६ ॥ तावत्तां
सर्वसैन्यैश्च व्यूहैः सम्प्रगुदायुधैः । द्रोणञ्च मृतपुण्ड्रञ्च प्रयतातः
प्रवाधितुम् ॥ २७ ॥ एतौ हि बलिनां शूरौ कृतास्त्रौ जित-

की सेना भागने लगी तब महारथी द्रोण और कर्ण उनके पीछे
पड़, बहुतसे बाण छोड़कर उनका संहार करने लगे ॥ २२ ॥ जब
इसप्रकार पाण्डवोंकी सेनामें भागद पड़रही थी, तो उसमेंसे बहुतसे
मारे गए, तब श्रीकृष्णने दीनमनसे अर्जुनसे कहा कि-॥ २३ ॥
“हे अर्जुन ! महाशत्रुपथारी कर्णने तथा द्रोणने इकट्ठे होकर
धृष्टद्युम्नके, सात्यकिके तथा पाञ्चालराजाओंके बहुतसे बाण मारे
हैं ॥ २४ ॥ और उनके बाणोंके प्रहारसे हमारे महारथी (ऐसे
ढर गए हैं कि) रणमेंसे भाग रहे हैं, वे हमारे रोकने पर भी नहीं
रुकते ॥ २५ ॥ इसप्रकार वार्तालाप करनेके पीछे श्रीकृष्ण और
अर्जुनने भागती हुई सेनाकी ओर जोरसे पुकार कर कहा कि-
“अरे ओ ! पाण्डवसेनाके योधाओं ! तुम भयभीत होकर भागो
मत ! भयको छोड़ दो (और खड़े रहा) ॥ २६ ॥ मैं तथा अर्जुन,
इन सब सैनिकोंका-जिसमें अच्छी प्रकारसे आयुध उठर रहे हों
ऐसा व्यूह रचकर, द्रोण तथा कर्णको दण्ड देनेका अभी प्रयत्न
करते हैं, ये दोनों योधा बलवान्, शूरवीर अस्त्रविद्यामें कुशल
तथा विजयलक्ष्मीसे शोभायमान हैं, और उनके ऊपर हमारे
सैनिकोंने लापरवाही दिखाई है, तो भी हम आजभी रात्रिमें

काशिनौ । उपेक्षितौ तव बलैर्नाशयेतां निशामिमाम् ॥ २८ ॥ तयोः
संवदतोरेवं भीमकर्मा महाबलः । आयाद वृकोदरः शीघ्रं पुनरा-
वर्त्य बाहिनीम् ॥ २९ ॥ वृकोदरमथायान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः ।
पुनरेवाब्रवीद्राजन् हर्षयन्निव पाण्डवम् ॥ ३० ॥ एष भीमो
रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः । अभ्यवर्चत वेगेन द्रोणकणौ
महारथौ ॥ ३१ ॥ एतेन सहितो युध्य पञ्चालैश्च महारथैः । आश्वा-
सनार्थं सैन्यानां सर्वेषां पाण्डुनन्दन ॥ ३२ ॥ तनूस्तौ पुरुषव्या-
घ्राभौ पाण्डवभाधरौ । द्रोणकणौ समास धिष्ठितौ रणमूर्धनि ३३
सञ्जय उवाच । ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरवत् महत् । ततो
द्रोणश्च कर्णश्च परान् प्रमुदतुर्बुधि ॥ ३४ ॥ स संप्रहार-
स्तुमुक्तो निशि प्रत्यभवन्महान् । यथा सागरयो राजन् चन्द्रोदय-

उनका नाश ही करवा लेंगे ॥ २७-२८ ॥ इसप्रकार सेनाको धीरज
देनेके पीछे वे शान्त हुए कि-इतनेमें ही अर्जुन कर्म करनेवाला
महाबलशाली भीमसेन भागती हुई सेनाको पीछेको लौटा कर
तुरन्त ही पीछेको फिरा ॥ २९ ॥ श्रीकृष्ण भीमसेनको आता-
देखकर अर्जुनको प्रसन्न करते हुए फिर बोले, कि- ३० ॥
“युद्धमें सदा आनन्दमें भर पराक्रम करनेवाला भीमसेन सोमक
राजाओंसे तथा पाण्डवी सेनासे घिरकर महारथी द्रोण तथा
कर्णके सामने वेगसे हल्ला ले जा रहा है, अतः हे अर्जुन ! तू
पाञ्चाल महारथियोंके साथमें रहकर सब सेनाओंको ढाढस देनेके
लिये युद्ध कर” फिर पुरुषोंमें व्याघ्रसमान श्रीकृष्ण तथा अर्जुन,
द्रोण तथा कर्णके ऊपर चढ़े और रणके मुहाने पर जाकर खड़े
होगए ॥ ३१-३२ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! तुरन्त ही
युधिष्ठिरकी बड़ीभारी सेना भी पीछेको फिरकर रणभूमिमें आकर
खड़ी होगई, और द्रोण तथा कर्ण युद्धमें फिर शत्रुओंका संहार
करनेलगे ३४ ॥ सेहे राजन् ! इससमय चंद्रमाके उदय होनेसे वृद्धि पाते

समुद्रयोः ॥ ३५ ॥ तत उत्प्लव्य पाण्डुयां प्रदीपांस्तत्र वाहिनी ।
 युयुधे पाण्डवैः सार्द्धं घ्नन्मत्तत्रदसंकुता ॥ ३६ ॥ रजसा तगसा चैव
 संवृते भृशदारुणो । केवलां नामपात्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ३७
 अभूयन्त हि नामानि श्रोत्र्यमाणानि पार्थिवैः । मठरद्भिर्महाराज
 स्वयम्बर इवाहवे ॥ ३८ ॥ निःशब्दमासीत् सहसा पुनः शब्दो
 महानभूत् । क्रुद्धानां युध्यमानानां जयतां जीयतामपि ॥ ३९ ॥
 यत्र यत्र स्पृहयन्ते प्रदीपाः कुरुपुङ्गवाते शूरास्तत्र तत्र स्म निपतन्ति
 पतङ्गवत् ४० तथा संयुध्यमानानां विगाढाभूमहानिशा । पाण्डवा-
 नाञ्च राजेन्द्र कौरवाणाञ्च सर्वशः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
 संकुलपुद्धे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

हुए दो समुद्र जैसे रात्रिमें युद्ध कर रहे हों, तैसे वे दोनों योधा
 रात्रिमें महातुमुल युद्ध करने लगे ॥ ३५ ॥ तुम्हारी सेना भी
 दीपकोंको हाथोंमेंसे फँक कर अलग २ होकर उन्मत्तकी समान
 पाण्डवोंसे युद्ध करने लगी ॥ ३६ ॥ इस समय अंधकार और धूल
 से पृथ्वी ढक रही थी, वह देखनेमें अतिदारुण लगती थी, विजया-
 भिलापी योधा केवल नाम और गोत्र छुनकर ही एक दूसरेसे लड़
 रहे थे ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! जैसे स्वयम्बरमें राजे अपना २
 नाम बोल रहे हों, तैसे लड़ाके अपना नाम बोलकर शत्रुओं पर
 प्रहार करते थे, तब प्रतीत होता था कि—ये कौन हैं ॥ ३८ ॥
 एकाएक शब्द बन्द होजाता था और पीछे हारते हुए विजयी
 और क्रोधमें भरे हुए योधाओंका महाशब्द सुनाई पड़ता था ॥ ३९ ॥
 हे कुरुश्रेष्ठ ! जहाँ २ दीपक दीखते थे, तहाँ २ योधा पतंगोंकी
 समान दौड़कर पहुँच जाते थे ॥ ४० ॥ हे राजेन्द्र ! कौरव तथा
 पाण्डव जिस समय युद्ध कर रहे थे, उस समय महानिशा गाढ़
 स्थितिमें आगई थी, अर्थात् ठीक आधी रात होगई थी ॥ ४१ ॥

सञ्जय उवाच । ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्श्वतः परवीरहा । आज-
घानोरसि शरैर्दशभिर्मभेदिभिः ॥ १ ॥ प्रतिविज्याध तं तूर्णं धृष्ट-
द्युम्नोऽपि मारिष । दशभिः सायकैस्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् २
तावन्न्योऽन्यं शरैः संख्ये सञ्ज्याध सुमहारथैः । पुनः पूर्णायतोत्सष्टै-
र्विव्यधा ते परस्परम् ॥ ३ ॥ ततः पाञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य
संयुगे । सारथिञ्चतुरश्वश्वान् कर्णो विज्याध सायकैः ॥ ४ ॥
कामुकमवरञ्चापि चिच्छेद निशितैः शरैः । सारथिञ्चास्य भल्लेन
रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याश्वानपीपिषत् ॥ ६ ॥ विद्वश्च बहु-
भिस्तेन शरैराशीविषोपमैः । ततो युधिष्ठिरानीकं षट्श्यामेवान्व-

सञ्जयने कहा कि-तदनन्तर शत्रुओंका नाश करने वाले महा-
रथी कर्णने रणभूमिके ऊपर धृष्टद्युम्नको देख कर उसकी छातीमें
दश मर्मभेदी बाण मारे ॥ १ ॥ और हे राजन् ! धृष्टद्युम्नने भी
उत्साहमें भर कर्णके दश बाण मारे, और कहा कि-अरे ओ !
खड़ा रह ! खड़ा रह !! भागता है क्या ? ॥ २ ॥ इस प्रकार बात-
चीत होने पर दोनों महारथी धनुषोंको कान तक खेंच एक दूसरे
के ऊपर बाणोंका प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥ कर्णने पाञ्चालराजाओं
में श्रेष्ठ धृष्टद्युम्नके सारथीको तथा उसके चारों घोड़ोंको बाण
मार कर बीध डाला ॥ ४ ॥ और दूसरा तीक्ष्ण करा हुआ बाण
मार कर धृष्टद्युम्नके बड़े भारी धनुषको काट डाला और भल्ल
नामके बाणसे उसके सारथीको रथकी बैठक परसे उड़ा दिया ।
इस प्रकार रथका, घोड़ोंका तथा सारथीका नाश होनेसे धृष्टद्युम्न
अकेला होगया, तब उसने भयङ्कर परिघ मारकर कर्णके घोड़ोंको
मार डाला ॥ ५ ॥ ६ ॥ कर्णने भी विषैले सर्पकी समान बहुतसे
बाण मारकर धृष्टद्युम्नको बीध डाला, तब धृष्टद्युम्न पाँव २ चलता
हुआ ही युधिष्ठिरकी सेनामें पहुँच गया ॥ ७ ॥ और सहदेवके रथमें

पश्यत ॥ ७ ॥ आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष । मयातुकामः
कर्णाय पारितो धर्मसलुना ॥ ८ ॥ कर्णस्तु सुमहातेजाः सिंहनाद-
विमिश्रितम् । धनुःशब्दं पृथक्के दध्मौ तारेण चाम्बुजम् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा विनिर्जितं युद्धे पार्षतं ते महारथाः । अमर्षवशमापन्नाः
पञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १० ॥ सूतपुत्रवधार्थाय शस्त्राण्यादाय
सर्वशः । प्रययुः कर्णमुद्दिश्य मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ११ ॥
कर्णस्यापि रथे बाहानन्यान् सूतोऽभ्ययोजयत् । शंखवर्णान्
महावेगान् सैन्धवान् साधुवाहिनः ॥ १२ ॥ लब्धलक्ष्यस्तु
राधेयः पञ्चालानां महारथान् । अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मघ
वृत्राचलम् ॥ १३ ॥ सा पीडयमाना कर्णेन पञ्चालाना-
मनीकिनी । सम्पाद्रवत् सुसम्प्रस्ता सिंहेनेवार्दिता मृगी ॥ १४ ॥

बैठ कर फिर कर्णके ऊपर चढ़ाई करनेको तयार होगया, परन्तु
युधिष्ठिरने उसको आगे बढ़नेसे रोका ॥८॥ फिर महातेजस्वी कर्णने
सिंहनाद करके धनुषको टंकारा और वेगसे शंखको बजाया ॥९॥
कर्णने धृष्टद्युम्नका पराजय किया, यह देखकर सोमकवंशके और
पाञ्चालवंशके महारथी राजे क्रोधसे तमतमा उठे ॥ १० ॥ और
मृत्युके भयको त्याग अनेक प्रकारके आयुध ले कर्णको पारनेके
लिये, उसकी ओर धँस गए, कर्णके सरधिने भी कर्णके रथमें,
शंखकी समान-श्वेत वर्णके, तीव्र वेगवाले, सिंधुदेशमें उत्पन्न हुए
उत्तम गति वाले, नये घोड़ोंको जोड़कर रथको तयार किया था,
जैसे मेघपण्डित पर्वतके ऊपर वृष्टि करता है तैसे कर्णने इस नये
रथमें बैठे २ सावधान हो पाञ्चाल राजाओंकी सेनाके ऊपर
बाणोंकी वृष्टि करना आरंभ करी कि-॥ ११-१३ ॥ सिंहसे
पीड़ा पाकर बिहल हिरनी जैसे भाग जाती है तैसे ही
पाञ्चालोंकी महासेना भी कर्णके प्रहारसे भयभीत हो रणमेंसे
भागनेलगी ॥ १४ ॥ (पुनः) योधा घोड़ोंके ऊपरसे हाथियोंके

पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले । रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त
 ततस्ततः ॥ १५ ॥ योवमानस्य योधस्य क्षुरप्रैश्च महामृधे । बाहू
 चिच्छेद कर्णः शिरश्चैव सकृदण्डलम् ॥ १६ ॥ ऊरू चिच्छेद
 चान्यस्य गजस्थस्य विशाम्पते । वाजिपृष्ठगतस्यापि भूमिष्ठस्य च
 मारिष ॥ १७ ॥ नाज्ञासिपुर्धावमाना वद्मो-ये महारथाः । सञ्चि-
 न्नान्यात्मगात्राणि वाहनानि च संयुगे ॥ १८ ॥ ते वध्यमानाः
 समरे पञ्चात्ताः सृज्जयैः सह । तृणमस्पन्दनाक्वापि स्रुतपुत्रं स्म
 मेतिरे ॥ १९ ॥ अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचेतसम् । कर्ण-
 येनाभ्यगम्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥ २० ॥ तान्यनीकानि
 भग्नानि द्रवमाणानि भारत । अभ्यद्रवद् द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिर-
 ष्कारान् ॥ २१ ॥ अवैद्यमाणास्त्वन्योन्यं सुसंभूढा विचेतसः ।
 नाशकद्वन्द्वनवस्थातुं काल्यमाना महात्मना ॥ २२ ॥ कर्णेनाभ्या-

ऊपरसे तथा रथोंके ऊपरसे रणमें जहाँ तहाँ गिरते हुए दिखाई
 देनेलगे ॥ १५ ॥ कर्ण भी युद्धमें भागतेहुए योधायोंकी भुजाओंको
 और उनके कुण्डलोंसे शोभायमान मस्तकोंको काटनेलगा, हाथी-
 सवारोंकी, घुड़सवारों और पैदलोंकी जाँघें क्षुरप्र नामके बाणोंसे
 काटी जा रही थीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस समय बहुतसे महारथी
 रणमेंसे भाग रहे थे वे अपने अगोंकी पीछा और बाहनोंको भूल
 गये थे इसप्रकार वे भानरहित होगये थे ॥ १८ ॥ इस युद्धमें कर्णके
 बाणोंसे घायलहुए पाञ्चाल और सृज्जय राजे पत्ता खडकते ही
 “अरे ! कर्ण आगया” यह समझ कर (डरजाते थे) ॥ १९ ॥
 अपनी सेनाका भी कोई योधा भानरहित होकर दौड़ता था, तो
 वे उसको ही कर्ण मानते थे और उसके भयसे डरकर रणभूमिमेंसे
 भागने लगते थे ॥ २० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इसप्रकार पाँड़वोंकी
 सेनामें भागड़ पड़ गई और पाण्डवी सेना भागनेलगी, तब कर्ण
 शीघ्रतासे उसके पीछे पड़, उस पर बाणोंकी दृष्टि करनेलगा २१

इतां राजन् पञ्चालाः परमेष्ठिभिः । द्रोणेन च दिशः सर्वा वीच्य-
माणाः प्रदुद्रुवुः ॥ २३ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य चिद्रुतम् ।
अपयाने मतिं कृत्वा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ पश्य कर्ण
महोष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम् । निशीथे दारुणे फाले तपन्त-
मिव भास्करम् ॥ २५ ॥ कर्णसायकनुन्नानां फोशतामेव निस्वनः ।
अग्निशं श्रूयते पार्थ त्वद्वन्धूनामनाथवत् ॥ २६ ॥ यथा विसृजत-
श्चास्य सन्दधानस्य चाशुगान् । पश्यामि नान्तरं पार्थ क्षपयि-
ष्यति नो ध्रुवम् ॥ २७ ॥ यदत्रानन्तरं कार्यं प्राप्तकालं प्रपश्यसि ।
कर्णस्य वधसंपुक्तं तत् कुरुष्व धनञ्जय ॥ २८ ॥ एवमुक्तो महा-
राज पार्थः कृष्णमथाब्रवीत् । भीमो कुन्तीसुतो राजा राधे-

महात्मा द्रोण और कर्णने बड़े-२ बाणोंसे पाञ्चालराजाओंको
मारना आरम्भ कर दिया, तब पाञ्चाल राजे भानरहित हो अन्यन्त
मूढ़ होकर एक दूसरेके सामने देखनेलगे, वे रणमें खड़े न रह
सकनेके कारण जिस ओरको मुख उठा उसी ओरको भागने
लगे ॥ २२-२३ ॥ अपनी सेनाको भागती हुई देखकर राजा
युधिष्ठिर भी भागनेका विचार करनेलगे, उन्होंने अर्जुनसे कहा,
कि-“हे अर्जुन ! इस हमारे सामने खड़े हुए धनुषधारी कर्णको
देख ! यह इस आधी रातके समय तपतेहुए सूर्यकी समान
दिखाई दे रहा है ॥ २४-२५ ॥ हे अर्जुन ! हमारे सम्बन्धी भी
कर्णके बाणोंसे विंधकर अनाथकी समान विलाप कर रहे हैं, उनकी
यह दारुण ध्वनि सुनाई आ रही है, उसको भी सुन ! ॥ २६ ॥
हे पार्थ ! कर्ण जब शीघ्रगादी बाणोंको चढ़ा कर छोड़ता है,
तब वह कब चढ़ाता है और कब छोड़ता है, यह मैं देख भी नहीं
पाता, वह ऐसा फुर्तीला है, अतः मुझे मतीत होता है कि-वह अवश्य
ही हमारा नाश कर डालेगा, अतः इस समय कर्णका वध करनेके
लिये जो काम तुझको उचित लगे सो कर ॥ २७-२८ ॥ हे राजन् !

यस्याद्य विक्रमात् ॥ २६ ॥ पवङ्गते प्राप्तकालं कर्णानीके
पुनः पुनः । भवान् व्यवस्यतां शीघ्रं द्रवते हि वरूथिनी ॥ २७ ॥
द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन । कर्णेन त्रास्यमानानामव-
स्थानं न विद्यते ॥ २८ ॥ पश्यामीह तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
द्रवमाणान्नयोदारान् किरन्तं निश्चितैः शरैः ॥ २९ ॥ नैनं
शचयामि संसोढुं चरन्तं रणमूर्धनि । प्रत्यक्षं दृष्ट्वा शार्दूल
पादस्पर्शमिवोरगः ॥ ३० ॥ स भर्वास्तत्र यात्वा शु यत्र कर्णो
महारथः । अहमेनं वधिष्यामि मां वैष मधुसूदन ॥ ३१ ॥ श्रीवासु-
देव उवाच । पश्यामि कर्णं क्रौन्तेय देवराजमिवाहवे । विचरन्तं
नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥ ३२ ॥ नैतस्यान्योऽस्ति समरे प्रत्यु-

इसप्रकार युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा, उस समय अर्जुन श्राकुष्ण
से कहने लगा कि—राजा युधिष्ठिर आज कर्णका पराक्रम देखकर
डर गए हैं ॥ २६ ॥ कर्णकी सेनाने वारम्बार धावा किया है अतः
अब हमें समयानुसार इसके लिये शीघ्र ही उद्योग करना चाहिये,
क्योंकि हमारी सेना भयभीत होकर भाग रही है ॥ २७ ॥ हे मधुसूदन !
हमारे योधा द्रोणके बाणोंसे विंध गए हैं और कर्णसे त्रास खारहे
हैं, इसलिये हमारी सेनामें भागड पड रही है और सेनापति रणमें
खड़े भी नहीं रहने पाते ॥ २८ ॥ और यह कर्ण भागते हुए महा-
रथियोंके तेज किये हुए बाण मार रहा है और रणमें निर्भय पुरुष
की समान घूम रहा है, यह मैं देख रहा हूँ ॥ २९ ॥ हे वृष्णि सिंह !
सर्पजैसे चरणस्पर्शको नहीं सह सकता, तैसे ही मैं रणके मुहाने
पर अपनी आँखोंके सामने इसको घूमते हुए नहीं देख सकता;
अतः जहाँ महारथी कर्ण खड़ा है, तहाँ आप शीघ्रतासे मुझको
चलिये हे मधुसूदन ! या तो मैं उसको मार डालूँगा, या वह ही मुझको
मार डालेगा ॥ ३० ॥ श्रीवासुदेव बोले कि—हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! मैं
युद्धमें फिरते हुए अपमानुषिक पराक्रमी नरव्याघ्र कर्णको इन्द्रकी

धाता धनञ्जय । श्रुते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद्वा घटोत्कचात् ३६
 न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवानथ । समागमं महाबाहो सूत-
 पुत्रेण संयुगे ॥ ३७ ॥ दीप्यमाना मण्डोन्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
 त्वदर्धञ्च महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३८ ॥ रचयते शक्तिरेषा
 हि रौद्रं रूपं विभर्ति च । घटोत्कचस्तु राधेयं मत्पुत्र्यातु महा-
 बलः ॥ ३९ ॥ स हि भीमेन वलिना जातः सुरपराक्रमः ।
 तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्पाशुशशि च ॥ ४० ॥ सत-
 तञ्चालुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः । विजेष्यति रणे कर्णमिति
 मे नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः पुष्कर-
 लोचनः । आजुहावाथ तद्रक्षस्तच्चासीत् प्रादुरग्रतः ॥ ४२ ॥ कवची

समान पराक्रमी सम्भक्ता हूँ ॥ ३५ ॥ हे पुरुषव्याघ्र धनञ्जय !
 संग्राममें तेरे या राक्षस चटोत्कचके अतिरिक्त कोई भी मनुष्य
 इसके साथ नहीं लड़ सकता ॥ ३६ ॥ परन्तु हं निर्दोष अर्जुन !
 सूतपुत्रसे मुचैदा लेने का यह समय तेरे योग्य हो यह मैं नहीं
 सम्भक्ता ॥ ३७ ॥ क्योंकि—उसके पास इन्द्रकी दी हुई बड़ी भारी
 चल्काकी समान भलभलाती हुई शक्ति है, वह शक्ति हे महाशुभ !
 सूतपुत्र कर्णने तेरे नाशके लिये सैन रक्खी है । इस शक्तिका
 रूप भयंकर है । अतः इस समय महाबली घटोत्कच भले ही कर्ण
 के साथ लड़नेको जाय ॥ ३८-३९ ॥ वह बलवान् है, बली भीम-
 सेनका पुत्र है, देवताओंकी समान पराक्रमी है और उसके पास
 दिव्य, राक्षसी और आसुरी तीनों प्रकारके शस्त्र हैं । और वह
 तेरे ऊपर नित्य प्रेम करता है और तेरा हित चाहता है, इससे
 ब्रह्म युद्धमें अवश्य ही कर्णका पराजय करेगा, इसमें मुझमें संदेह
 नहीं है ॥ ४०-४१ ॥ श्रीकृष्णके ऐसे कथनको सुन कर महाशुभ
 और कमलकी समान नेत्र वाले अर्जुनने घटोत्कचको बुलाया,
 कि—वह राक्षस कवच, बाण, धनुष और खड्ग आदि शस्त्रोंसे

सशरः खड्गी सधन्वा च विशाम्पते । अभिवाञ्छ ततः कृष्णं
पांडवञ्च धनञ्जयम् । अब्रवीच्च तदा कृष्णमयमस्म्यनुशाधि माम् ४३
ततस्तं मेघसङ्काशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम् । अभ्यभाषत हैडिम्बि
दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ ४४ ॥ वासुदेव उवाच । घटोत्कच विजा-
नीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक । मासो विक्रमकालोयं तव नान्यस्य
कस्पचित् ॥ ४५ ॥ स भवान् मज्जमानानां बन्धूनां त्वं सवो भव ।
विविधानि तत्रास्त्राणि सन्ति माया च राज्ञसी ॥ ४६ ॥ पश्य
कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी । काल्यमाना यथा गावः
पालेन रणमूर्धनि ॥ ४७ ॥ एष कर्णो महेष्वासो मतिमान् दृढ-
विक्रमः । पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥ ४८ ॥

तयार होकर अर्जुनके समीपमें आकर खड़ा होगया, उसने
श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको प्रणाम किया, फिर श्रीकृष्णकी ओर
देखकर कहा कि—यह मैं तुम्हारे पास आया हूँ तुम मुझै क्या
आज्ञा देते हो ॥ ४२-४३ ॥ तत्र दाशार्हकुलोत्पन्न श्रीकृष्णने हँस
कर, मेघकी समान रयाम भलभल्लाते हुए मुखवाले, चमकते हुए
कुण्डलोंवाले हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचसे प्रसन्नमुखसे कहा ४४
वासुदेव बोले कि—“बेटा घटोत्कच ! मैं तुझसे एक बात कहता हूँ
तू उस पर ध्यान दे, आज तेरे पराक्रम दिखानेका समय आलगा
है, तेरी समान पराक्रम किसी दूसरेसे नहीं होसकता ॥ ४५ ॥
अतः तू रणसागरमें डूबते हुए सम्बंधियोंको नौका रूप बन कर
उद्धार कर क्योंकि तेरे पास अनेक प्रकारके शस्त्र हैं
और राज्ञसी माया भी है ॥ ४६ ॥ हे घटोत्कच !
जैसा गौओंको हाँक देता है तैसे ही कर्णने भी
रणमें पाण्डवोंकी सेनाको हाँक दिया है ॥ ४७ ॥ और
महाधनुषधारी दृढ़पराक्रमी कर्ण, अब भी पांडवोंकी सेनामेंके
बड़े २ क्षत्रियोंका संहार कर रहा है ॥ ४८ ॥ बाणोंकी महावृष्टि

किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः । नाशकनुवन्त्यवस्थातुं
पीड्यमानाः शराचिषा ॥ ४६ ॥ निशीथे सूतपुत्रेण शरदर्पेण
पीडिताः । एते द्रवन्ति पञ्चालाः सिंहेनेवादिता मृगाः ॥ ५० ॥
एतस्यैव प्रवृत्तस्य सूतपुत्रस्य संगुणे । निपेद्वा विद्यते नान्यस्त्वामृते
भीमविक्रम ॥ ५१ ॥ स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहात्मनः ।
मातुलानां पितृणाञ्च तेजसोऽस्त्रबलस्य च ॥ ५२ ॥ एतदर्थं हि
हिडिम्बे पुत्रानिच्छन्ति मानवाः । कथं नस्तारये दुर्गात् स त्वं तारय
बान्धवान् ॥ ५३ ॥ इच्छन्ति पितरः पुत्रान् स्वार्थहेतोर्घटोत्कच ।
इह लोकात् परे लोके तारयिष्यन्ति ये हिताः ॥ ५४ ॥ तव ह्यत्र
बलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः । संग्रामे युध्यमानस्य सततं भीम-

करने वाले और दृढ धनुष-वाले कर्णके बाणोंकी ज्वालासे पीड़ा
पाकर थोड़ा रणमें खड़े भी नहीं होसकते ॥ ४६ ॥ और कर्णने
आधीरातमें बाणोंकी वृष्टि कर, सिंह जैसे मृगोंको पीड़ित करता
है तैसे ही पाञ्चालराजाओंको पीड़ित कर बहुत ही खिन्न किया
है; इस कारण वे लड़ाईके मैदानमेंसे भागे जाते हैं ॥ ५० ॥ हे
भयङ्कर पराक्रमी ! इसप्रकार कर्णका पराक्रम रणभूमिमें बहुत
बढ़ गया है और उसको रोकनेवाला तुम्हारे सिवाय और कोई
नहीं दिखाई देता ॥ ५१ ॥ अतः हे महाशुन घटोत्कच ! तू
अपने मामाओंके तथा चाचाओंके पराक्रम और अस्त्रके बलके
अनुरूप पराक्रम करके दिखा ॥ ५२ ॥ हे हिडिम्बाके पुत्र ! मनुष्य
पुत्रोंको इस लिये ही चाहते हैं कि—दुःख पड़नेपर वह हमें उसमें
से उबारें । अतः तू अपने पिता तथा चाचा आदि सम्बन्धियों
को दुःखमेंसे उबार ॥ ५३ ॥ और हे घटोत्कच ! हितकर पुत्र
इस लोकमें तथा परलोकमें हमारा उद्धार करेगा, इस स्वार्थके
कारण ही पिता पुत्रोंको चाहते हैं; अतः उनकी इच्छाओंको तू
सफल कर ॥ ५४ ॥ हे भीमके पुत्र ! तू संग्राममें जैसे लगातार

नन्दन ॥ ५५ ॥ पाण्डवानां प्रभयानां कर्णेन निशि सायकैः ।
 मञ्जतां धार्तराष्ट्रेषु भव पारं परन्तप ॥ ५६ ॥ रात्रौ हि राक्षसा-
 भूयो भवन्त्यमितविक्रयाः । बलवन्तः सुदुर्धर्षाः शूरा विक्रान्त-
 चारिणः ॥ ५७ ॥ जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे । पार्था
 द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ५८ ॥ सञ्जय उवाच ।
 केशवस्य वचः श्रुत्वा वीमत्सुरपि राक्षसम् । अभ्यभाषत कौरव्य-
 घटोत्कचपरिन्दमम् ॥ ५९ ॥ घटोत्कच भवार्चय दीर्घबाहुश्च
 सात्यकिः । मतौ मे सर्वसैन्येषु भीमसेनस्तु पाण्डवः ॥ ६० ॥
 स भवान् यातुं कर्णेन द्वैरथं संयुगे निशि । सात्यकिः पृष्ठतो गोप्ता
 भविष्यति महारथः ॥ ६१ ॥ जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहा-

युद्ध करने लगेगा कि-इतनेमें ही रात्रिका समय होनेसे, तेरा बल
 भयङ्कर होजायगा और तेरी मायामें भी दुस्तर हो जावेगी ५५
 हे परन्तप घटोत्कच ! आज रात्रिमें कर्णेने पाण्डवों (की सेना)
 को बाणोंसे वीध डाला है और पाण्डव कौरवसेनामें डूब रहे हैं-
 हार रहे हैं-उनको तू पार उतार ॥ ५६ ॥ राक्षस रात्रिमें अत्यन्त
 बलवान्, दुराधर्ष, शूर तथा पराक्रमी होजाते हैं ॥ ५७ ॥ अतः
 तू आज आधीरातमें माया फैला कर धनुषधारी कर्णका नाश
 कर और धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव द्रोणको मारगे ५८ संजयने कहा
 कि-हे कुरुवंशोत्पन्न धृतराष्ट्र! कृष्णका कहना सुनकर यजुमानने भी
 राक्षस घटोत्कचसे कहा कि-५९ 'हे घटोत्कच ! (यै) रात्रिआका
 दमन करनेवाले तुझको, महाशुज सात्यकिको तथा अपने भाई
 भीमसेनको सब सेनाओंमें मुख्य मानता हूँ ६० अतः तू रणभूमिमें
 जाकर आज रातमें कर्णके साथ द्वैरथ नामक युद्धसे युद्ध कर;
 इस समय महारथी सात्यकि, तेरे पीछेके भागमें रहकर तेरी रक्षा
 करेगा; पहिले इन्द्रने कार्तिकस्वामीकी सहायतासे जैसे तारका-
 सुरको मारा था, तैसे ही सात्यकिकी सहायता लेकर रणमें शूर-

यवान् । यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्नवान् ॥ ६२ ॥
घटोत्कच उवाच । अलमेवास्मि कर्णाय द्रोणायास्तच्च भारत ।
अन्येषां क्षत्रियाणां वै कृतास्त्राणां महात्मनाम् ॥ ६३ ॥ अथ
दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि । यं जनाः सम्प्रवक्ष्यन्ति
यावन्नूमिर्धरिष्यति ॥ ६४ ॥ न चात्र शूरान्योक्ष्यामि न भीतान्न
कृताञ्जलीन् । सर्वानेव वक्षिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥ ६५ ॥
सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा महाबाहुर्द्विडम्बिः परवीरहा । अभ्य-
यात्तुमुले कर्णं तव सन्यं विधीयन् ॥ ६६ ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धः
दीपास्यं दीप्तमूर्द्धजम् । प्रहसन् पुरुषव्याघ्रः प्रतिग्राह्यं सूतजः ६७
तयोः समभवद्युद्धं कर्णाराक्षसयोर्मृधे । गर्जतो राजशार्दूल शक्र-
प्रह्लादयोरिव ॥ ६८ ॥ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

वीर कर्णका तू भी नाशकर ॥ ६१-६२ ॥ यह सुनकर घटोत्कच
बोला कि-हे भरतवंशी राजन् ! मैं अकेला ही कर्ण, द्रोण तथा
दूसरे अस्त्रनिपुण महात्मा क्षत्रियोंके लिये पूरा पढ़ूँ ऐसा हूँ,
मुझे किसी दूसरेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ६३ ॥ आज रात्रिमें
सूतपुत्रके साथ मैं ऐसा युद्ध करूंगा कि-मनुष्य जब तक पृथ्वीके
ऊपर रहेंगे तब तक मेरे युद्धका स्मरण करेंगे ॥ ६४ ॥ मैं राक्षसी
धर्मका आश्रय लेकर इस युद्धमें शूरोको, डरपोकोको और प्रणाम
करते हुआको भी नहीं छोड़ूँगा, परन्तु सबका संहार ही कर
ढालूँगा ॥ ६५ ॥ सञ्जयने कहा कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! इस
प्रकार कह कर शत्रुपक्षके वीरोंका संहारकर्ता, महाभुज द्विडम्बा
का पुत्र, तुम्हारी सेनाको भयभीत करता हुआ, रणभूमिमें कर्णके
सामने तुम्हल युद्ध करनेके लिये धँसा ॥ ६६ ॥ पुरुषोंमें व्याघ्र-
समान सूतपुत्रने, अपने सामने आते हुए, कोपमें धरे, प्रदीप्त मुख
वाले और चमकते हुए केशोंवाले घटोत्कचका हँसते २ सामना
किया ६७ तदनन्तर हे राजसिंहारणमें गर्जना करतेहुए कर्ण तथा
राक्षसके बीचमें इन्द्र और प्रह्लादकी समान महायुद्ध होने लगा ६८

सञ्जय उवाच । दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन् सुतपुत्ररथं मति ।
 आयातं तु तथा युक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥ १ ॥ अग्नवीक्ष्य
 पुत्रस्ते दुःशासनमिदं वचः । एतद्रत्नो रथो तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य
 विक्रमम् ॥ २ ॥ अभियाति द्रुतं कर्णं तद्वारय महारथम् । वृत्तः
 सैन्येन महता याहि यत्र महाबली ॥ ३ ॥ कर्णो वैकर्त्तनो युद्धे राक्ष-
 सेन युयुत्सति । रक्ष कर्णं रथे यत्नो वृत्तः सैन्येन मानद ॥ ४ ॥
 मा कर्णं राक्षसो घोरः प्रमादान्नाशयिष्यति । एतस्मिन्नन्तरे राजन्
 जटामुरसुतो बली ॥ ५ ॥ दुर्योधनमुपागम्य प्राह महरताम्बरः ।
 दुर्योधन तवामित्रान् प्रख्यातान् युद्धदुर्मदान् ॥ ६ ॥ पाण्डवान्
 हन्तुमिच्छामि त्वयाज्ञप्तः सहानुगान् । जटामुरो मम पिता रक्षसां

सञ्जयने कहा कि—हे राजन् ! संग्राममें कर्णका नाश करने
 के लिये घटोत्कच चढ़ आया, यह देख तुम्हारे पुत्रने दुःशासनसे
 कहा कि—‘हे मानद ! युद्धमें कर्णका पराक्रम देखकर यह राक्षस
 उसके ऊपर धँसा चला आता है, अतः तू इस महाबली राक्षसको
 आगे बढ़नेसे रोक और जहाँ महाबली कर्ण खड़ा है तहाँ तू बड़ी
 भारी सेनाको साथ लेकर जा और वैकर्त्तन कर्ण राक्षसके सामने
 लड़ना चाहता है उसकी तू सावधान होकर बड़ीभारी रक्षाकर ३-४
 हमारे प्रमादसे यह घोर राक्षस इस कर्णका नाश न कर सके,
 इसकी तू सम्हाल रख इस प्रकार वार्तालाप चल रहा था कि—
 जटामुरका महाबली पुत्र अलम्बुष दुर्योधनके पास आकर बोला
 कि—‘हे दुर्योधन ! तुम्हारा आशासे, युद्ध करकेमें मदमत्त तुम्हारे
 प्रख्यात शत्रु पाण्डवोंका, उनके सेवकों सहित मैं नाश करना चाहता
 हूँ, मेरा पिता जटामुर राक्षसोंका नायक था, उसको इन नीच
 पाण्डवोंने कितने ही वर्ष पहिले रत्नोन्न नामक मंत्रोंसे मार डाला है,
 अतः मैं इन शत्रुओंके रक्तरूप जलकी अञ्जलिसे तथा मांससे अपने
 पिताका तर्पण कर उनको तृप्त करना चाहता हूँ; अतः हे राजेन्द्र !

आमणीः पुरा ॥ ७ ॥ प्रयुज्य कर्म रत्नोष्ठं क्षुद्रैः पाथैः निपातितः ।
तस्यापचितिमिच्छाभिः शत्रुशोणितपूजया ॥ ८ ॥ शत्रुमांसैश्च राजेन्द्र
मामनुज्ञातुमर्हसि । तमब्रवीत्ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ॥ ९ ॥
द्रोणकर्णादिभिः सार्द्धं पर्याप्तोऽहं द्विपञ्चजे । त्वन्तु गच्छ मया-
ज्ञसो जहि युद्धे घटोत्कचम् । राक्षसं क्रूरकर्माणं रत्नोमानुपस-
म्भवम् ॥ १० ॥ पाण्डवानां हितं नित्यं हस्त्यश्वरथघातिनम् ।
वैद्यायगतं युद्धे प्रेषयेद्यमसादनम् ॥ ११ ॥ तथेत्युक्त्वा महाकायः
समाहूय घटोत्कचम् । जाटासुरिभ्यमसेति नानाशस्त्रैश्चाकिरत् ॥ १२ ॥
अलम्बुपञ्च कर्णश्च कुरुसैन्यश्च दुस्तरम् । हैडिम्बिः प्रमगायैको
महाबातोऽम्बुदानिव ॥ १३ ॥ ततो मायाबलं दृष्ट्वा रक्षस्तूर्णमलम्बुपः ।
घटोत्कचं शरनातैर्नानालिंगैः समाकिरत् ॥ १४ ॥ विध्वा तु बहु-

तुप सुभै इस कामको करनेकी आज्ञा दो ॥ १५-८ ॥ यह सुनकर
दुर्योधन प्रसन्न हुआ और उससे कहने लगा कि-मैं तो द्रोण
तथा कर्ण आदिकी सहायतासे अपने शत्रुओंका नाश करनेमें
समर्थ हूँ ॥ ९ ॥ परन्तु (तेरी इच्छा है तो) मेरी आज्ञासे तू युद्धमें
क्रूर कर्म करनेवाले राक्षस तथा मनुष्य-इस प्रकार मिश्र जातिमेंसे
उत्पन्न हुए घटोत्कचको युद्धमें संहार कर ॥ १० ॥ यह राक्षस
पाण्डवोंका हितैषी है हमारे हाथी, घोड़े तथा रथोंका नाश करता
है तथा, आकाशमें इसकी गति है, इसको युद्धमें लड़ कर यमलोक
में भेज दे ॥ ११ ॥ दुर्योधनकी आज्ञा होते ही, "तथास्तु" कह कर
महाशरीरवाले जाटासुरके पुत्रने भीमके पुत्रको लड़नेको बुलाया
और उसके ऊपर अनेकों प्रकारके बाणोंकी वृष्टि करना आरंभ
कर दी ॥ १२ ॥ महापवन जैसे मेघोंको बल्लेरे डालता है तैसे ही
हिडिम्बाका पुत्र अकेला घटोत्कच ही अलम्बुप पर, कर्ण पर तथा
दुस्तर कौरवसेना पर प्रहार करने लगा ॥ १३ ॥ राक्षस अलम्बुप
भी तुरन्त ही घटोत्कचकी मायाको देख कर उसके ऊपर अनेक

भिर्बाणैर्भैमसेनि महाबलः । व्यद्रावयच्छरव्रातैः पाण्डवाना-
मनीकिनीम् ॥ १५ ॥ तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि भारत ।
निशीथे विप्रकीर्यन्ते वातनुन्ना घना इव ॥ १६ ॥ घटोत्कचशरै-
र्नुन्ना तथैव तत्र बाहिनी । निशीथे प्राद्रवद्राजन्तुत्सृज्योत्काः
सहस्रशः ॥ १७ ॥ अलम्बुषस्ततः क्रुद्धो भैमसेनि महामधे । आजघ्ने
दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १८ ॥ तिक्रशस्तस्य संवाहं स्रुतं
सर्वायुधानि च । घटोत्कचः प्रचिच्छेद प्रणदंश्चाति दारुणम् १९
ततः कर्णं शरव्रातैः कुरुंश्चापि सहस्रशः । अलम्बुषं चाभ्यवर्षन्मेघो मेरु-
मिवाचलम् ॥ २० ॥ ततः सञ्चलुभे सैन्यं कुरुणां राक्षसादितम् ।
उपयुपरि चान्योऽन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥ २१ ॥ जाटासुरिर्महा-

प्रकारके बाणोंकी वृष्टि करने लगा, उसने घटोत्कचके ऊपर नाना
प्रकारके बाण छोड़े और पाण्डवोंकी सेनाको भी बाण मार कर
भगाना आरंभ किया, हे भरतवंशी राजन् ! पवन जैसे वादलोंको
बखेर देता है, तैसे उसने पाण्डवोंकी सेनाको बखेर दिया १४-१६
हे राजन् ! तैसे ही घटोत्कचने तुम्हारी सेना पर बाणों
का प्रहार किया, इस कारण वह सहस्रों मशालोंको फैंककर
मध्य-रात्रिके समय रणभूमिमेंसे भागने लगी, कौरवोंकी सेनाको
भागती हुई देख कर अलम्बुष क्रोधमें भर गया और महाहस्तीके
ऊपर जैसे अंकुश मारे जाँय तैसे उसने घटोत्कचके दश बाण
मारे ॥ १७-१८ ॥ तब घटोत्कचने अतिदारुण गर्जना कर
उसके वाहनोंके, सारथिके तथा रथके और आयुधोंके तिल तिल
की बराबर टुकड़े कर डाले ॥ १९ ॥ तदनन्तर वर्षाऋतुमें जैसे
मेरुपर्वत पर वृष्टि हो तैसे घटोत्कचने कर्णके ऊपर तथा दूसरे
सहस्रों कुरुवंशी राजाओंके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करना आरम्भ
कर दी ॥ २० ॥ राक्षसके दुःख देनेसे कौरवोंकी सेनामें बड़ी
भारी गड़गड़ मच गई और उनकी चतुरङ्गनी सेना उत्तरोत्तर

राज विरथो हतसारथिः । घटोत्कचं रणे क्रुद्धो मुष्टिनाभ्यहनद्
 ददम् ॥ २२ ॥ मुष्टिनाभ्याहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः । क्षिति-
 कम्पे यथा शैलः सघृक्षस्तृणशुल्भवान् ॥ २३ ॥ ततः स परि-
 घाभेन द्विद्वसंधनेन बाहुना । जाटामुरिं भैमसेनिरवभीन्मुष्टिना
 भृशम् ॥ २४ ॥ तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस्तूर्णं हृदिह्रस्वराक्षिपत् । द्वाभ्यां
 भुजाभ्यां संयुल निष्पिपेप महीतले ॥ २५ ॥ जाटामुरिर्मोक्षयित्वा
 आत्मानं च घटोत्कचात् । पुनरुत्थाय वेगेन घटोत्कचमुपाद्रवत् २६
 अलम्बुपांऽपि विक्षिप्य समुत्क्षिप्य च राज्ञसम् । घटोत्कचं रणे
 रोपानिष्पिपेप महीतले ॥ २७ ॥ तयोः सगभवद्युद्धं गर्जनोत्तिका-
 ययोः । घटोत्कचालम्बुपयोस्तुमुलं लोमदर्पणम् ॥ २८ ॥ विशेष-
 यन्तावन्योऽन्यं मायाभिरतिमानिनौ । युयुधाते महावीर्याविन्द्र-

आपसमें संहार करने लगी ॥ २१ ॥ जटामुरका पुत्र रथ तथा
 सारथिरहित होगया तब उसने क्रोधमें भरकर घटोत्कचके ऊपर
 मुट्टी बाँधकर कठिन प्रहार किया ॥ २२ ॥ मुट्टीका प्रहार होते
 ही-भुक्म्पके समय वृक्ष, वृण और लताओं सहित पर्वत जैसे
 काँप उठता है तैसे ही घटोत्कच काँप उठा ॥ २३ ॥ उसने शत्रुओं
 का संहार करने वाले परिघकी समान मोटे, हाथकी मुट्टी बाँधकर
 जोरसे जटामुरके पुत्रकी छातीमें गाँगी ॥ २४ ॥ और फिर पीछेसे
 क्रोधमें भरेहुए हिडिम्बाके पुत्रने इन्द्रध्वजकी समान ऊँचे दोनों
 हाथोंसे जटामुरके पुत्रको पृथ्वीके ऊपर पटककर अच्छी प्रकार
 रगड़ना आरंभ कर दिया ॥ २५ ॥ जटामुरका पुत्र अलम्बुप
 घटोत्कचके हाथमेंसे अपनेको छुड़ाकर ठीक हुआ और फिर वेग
 से घटोत्कचके ऊपर दौड़ा और राज्ञस घटोत्कचको उठा, रोपसे
 रणभूमिमें पटक कर रगड़ने लगा ॥ २६-२७ ॥ मोटी काया
 वाले घटोत्कच और अलम्बुप गर्जना कर युद्ध करने लगे, उनका
 तुमुल युद्ध रूप खड़े करनेवाला था ॥ २८ ॥ बड़े ही मायावी

वैरोचनाविव ॥ ३६ ॥ पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गुरुतत्तको ।
 पुनर्मेघमहावातो पुनर्वज्रमहाचलो ॥ ३७ ॥ पुनः कुञ्जरशार्दूलौ
 पुनः स्वर्मानुभास्करो । एवं मायाशतसृजावन्योऽन्यवधकाक्षिणी ३१
 भृशचित्रमयुध्येतामलम्बुषघटोत्कचौ । परिघैश्च गदाभिरच प्राप्त-
 मुद्रपट्टिशैः ॥ ३२ ॥ मुसलैः पर्वताग्रैश्च तावन्योऽन्यं निजघ्नतुः ।
 हयाभ्याञ्च गजाभ्याञ्च रथाभ्यां च पदातिभिः ॥ ३३ ॥
 युयुधाते-महामायौ रत्तसां प्रवतौ युधि । ततो घटोत्कचो राजन्न-
 लम्बुषघेप्सया ॥ ३४ ॥ उत्पपात भृशं क्रुद्धः श्येनवन्निपपात
 च । गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बुषम् ॥ ३५ ॥ उद्यम्य
 न्यवधीद्धूमौ मयं विष्णुरिवाहवे । ततो घटोत्कचः खड्गमुदगृह्या-

और पराक्रमी अलम्बुष और घटोत्कच, इन्द्र और विरोचनपुत्र
 बलिकी समान मायासे भरे युद्धको करते थे, वे एक दूसरेसे
 बढना चाहते थे ॥ २६ ॥ वे क्षणमें अग्नि और समुद्र बन जाते
 थे, क्षणमें गरुड़ तथा तत्तक बन जाते थे, क्षणमें मेघ तथा पवन
 बन जाते थे, क्षणमें वज्र तथा महापर्वत बन जाते थे, क्षणमें राहु
 तथा सूर्य बन जाते थे, क्षणमें हाथी तथा सिंह होजाते थे-इस
 प्रकार सैकड़ों माया कर घटोत्कच तथा अलम्बुष एक दूसरेको
 मारनेके लिये भली प्रकार चित्रयुद्ध कर रहे थे, और वे परिघ,
 गदा, पाश, मुगदर, पट्टिश, मूसल और पर्वतोंके शिखरोंसे एक
 दूसरेको मारते थे, तदनन्तर वे दोनों महाराक्षस घुड़सवार, हाथी-
 सवार, रथी और पैदल बन कर परस्पर लड़ने लगे (इसप्रकार
 थोड़े समय लड़नेके) पीछे हे राजन् ! घटोत्कच कोपमें भरमया
 और अलम्बुषका नाश करनेकी इच्छासे बड़े शरीरवाले राक्षस-
 राज अलम्बुषको उठाकर आकाशमें ऊपरको उड़ा और
 वाजकी समान फिर नीचे आकर विष्णुने जैसे मयको
 पृथ्वीपर दे पटका था, तैसे अलम्बुषको ऊपरको उठा कर पृथ्वी

द्भुतदर्शनम् ॥३६॥ रौद्रस्य कांयाद्धि शिरो भीमं विकृतदर्शनम् ।
स्फुरतस्तस्य समरे नदतश्चाति भैरवम् ॥३७॥ निचकर्च महाराज
शत्रोरमितविक्रमः । शिरस्तच्चापि संगृह्य केशेषु रुधिरोक्षितम् ३८
ययौ घटोत्कचस्तूर्णं दुर्योधनरथं प्रति । अभ्येत्य च महाबाहुः
स्मयमानः स राज्ञसः ॥ ३९ ॥ शिरो रथेऽस्य निक्षिप्य विकृता-
ननमूर्द्धजम् । प्राणदद्भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४० ॥
अब्रवीच्च ततो राजन् दुर्योधनमिदं वचः । एष ते निहतो बन्धु-
स्त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः ॥ ४१ ॥ पुनर्द्रष्टासि कर्णस्य निष्ठामेतां
तथात्मनः । स्वधर्ममर्थं कामञ्च त्रितयं योभिवाञ्छति ॥ ४२ ॥
रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं ब्राह्मणं स्त्रियम् । तिष्ठस्व तावत् सुप्रीतो
यावत् कर्णं बधाम्यहम् ॥ ४३ ॥ एवमुक्त्वा ततः प्रायात् कर्णं प्रति

पर देपटका, फिर (शीघ्रही) अद्भुत दिग्बाव वाली तलवार
म्यानमेंसे निकाल ली और भयंकर दिखाववाले घृद्धमें तड़फड़ाते
हुए और भयंकर रीतिसे ढकराते हुए शत्रु अलम्बुपके भयंकर
और विकृताकृतिवाले मस्तकको घटोत्कचने काट डाला फिर
अगाधपराक्रमी महाभुज घटोत्कच उस रक्तसे भीगे हुए मस्तकको
चोटीमेंसे पकड़कर अभिमानके साथ दुर्योधनके राजरथकी ओर
गया और विकराल मुख तथा केशोंवाले उस मस्तकको दुर्योधनके
रथमें डाल कर चौमासेमें जैसे मेघ गडगडावे तैसे भयंकर गर्जना
करता हुआ दुर्योधनसे कहने लगा कि-तूने इसको पराक्रम देख
लिया(देख) तेरे इस सहायक बन्धुको मैंने मार डाला है ३०॥४१
अब तू कर्णकी तथा अपनी भी ऐसी ही दशा देखेगा ! जो
मनुष्य धर्म, अर्थ, काम इन तीन वस्तुओंको पाना चाहता हो,
उसको खाली हाथ ब्राह्मण, राजा और स्त्रीके पास नहीं जाना
चाहिये, अतः ले मैं तुझे यह भेंट देता हूँ ! और मैं जब तक
कर्णको मारूँ तब तक तू अत्यन्त प्रसन्न होकर यहाँ ही खड़ा

नरेश्वर । किरञ्जराणांस्तीक्ष्णान् रुषितो रणमूर्धनि ॥ ४४ ॥
ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् । विस्मापनं महाराज नर-
राक्षसयोर्मृधे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलम्बुष-
वधे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । यत्तद्वैकर्त्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
निशीथे समसज्जेतां तद्युद्धमभवत् कथम् ॥ १ ॥ कीदृशञ्चाभवद्रूपं
तस्य घोरस्य रक्षसः । रथश्च कीदृशस्तस्य हयाः सर्वायुधानि च २
किम्प्रमाणा हयास्तस्य रथकेतुर्द्वन्द्वस्तथा । कीदृशं वर्म चैवास्य
शिरस्त्राणञ्च कीदृशम् ॥ ३ ॥ पृष्ठस्त्वमेतदाचक्ष्व कुशलो ह्यसि
सञ्जय । सञ्जय उवाच । लोहिताक्षो महाकायस्ताम्रास्यो निम्नि-
तोदरः ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुः शङ्कुकर्णो महाहनुः । आक-

रहता ॥ ४२-४३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कहनेके पीछे घटो-
त्कच कर्णकी ओरको कूँच कर रथके मुहाने पर खड़ा
होकर क्रोधमें भर तीक्ष्ण बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ ४४ ॥ और
हे महाराज ! मनुष्यों और राक्षसोंके बीचमें घोर, भयानक और
विस्मयजनक युद्ध होने लगा ॥ ४५ ॥ एकसौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय ! आधी रातके समय सूर्यपुत्र
कर्ण तथा घटोत्कच आपने सामने लड़ रहे थे, उनका युद्ध किस-
प्रकार हुआ था ? ॥ १ ॥ उस घोर राक्षसका रूप, उसका रथ,
उसके घोड़े तथा उसके सब आयुध कैसे थे ? ॥ २ ॥ उसके घोड़ोंकी
आकृति कैसी थी ? उसके रथकी ध्वजा और उसका धनुष कितना
बड़ा था तथा उसका कवच कैसा था और उसका टोप कैसा
था ? ॥ ३ ॥ यह सब मैं तुझसे बूझता हूँ इसका तू मुझे उत्तर
दे, क्योंकि-तू कथा कहनेमें प्रवीण है, सञ्जयने कहा, कि-हे
राजन् ! घटोत्कचकी आँखें रक्तवर्णकी थीं, काया प्रचण्ड थी,

एतद्वारितास्यथ तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान् ॥ ५ ॥ सुदीर्घताम्र-
जिह्वोष्ठो लम्बभ्रूः स्थूलनासिकः । नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्मा
भयङ्करः ॥ ६ ॥ महाकायो महाबाहुर्महाशीर्षो महादलः । विकृतः
पक्ष्पस्पर्शो विकचोद्वृद्धपिण्डकः ॥ ७ ॥ स्थूलफिगूढनाभिश्च
शिथिलोपचयो महान् । तथैव हस्ताभरणी महापायोऽङ्गदी तथा
उरसा धारयन्निष्कमग्रिमांतां यथाचलः । तस्य हेमपयश्चित्रं बहु-
रूपाङ्गणोभितम् ॥ ८ ॥ तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्धन्यशोभत ।
कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम् ॥ १० ॥ धारयन् विपुलं

मुख ताम्बूके रङ्गका था, पेट पतला था, मस्तकके केश खड़े हुए
थे, डाढ़ी और मूँछ रयाम रङ्गकी थीं, कान शंकुकी समान थे,
कंधे मोटे थे, मुख कान तक फटा हुआ था, ढाढ़ें तीक्ष्ण थीं,
उसके दाँतके अग्रभाग तीक्ष्ण थे और आगेके चार दाँत मोटे
और ऊँचे उठे हुए थे, जीभ और थोठ लम्बी और लाल रङ्गकी
थी, भ्रुकुटि लम्बी थी, नासिका स्थूल थी, शरीर रयाम रङ्गका
था, कण्ठ लाल रङ्गका था, शरीर पर्वतका समान ऊँचा और
भयंकर दिखावका था, शरीर और भुजा विशाल थीं, मस्तक मोटा
था, उसका शरीर बलशाली; विकराल, कड़ी खान्तवाला और
अत्यन्त दृढ़ था, जंघाका ऊपरी भाग भयंकर था और मोँससे
भरा हुआ था, उसके नितम्ब भी बड़े मोटे थे, उसकी नाभि भी
छिगी हुई थी, उसके ललाटमें केश आ रहे थे वह हाथमें बाजूबन्द
पहर रहा था और महापायावी था ॥ ४-८ ॥ पर्वत जैसे अपने
शिखरके ऊपर दावानल धारण करता है, तैसे ही वह अपने
बलःस्थल पर सुवर्णकी मालाको धारण कर रहा था, उसके मस्तक
पर सुवर्णका चमकता हुआ मुकुट था, उसमें जड़े हुए रत्नोंके
कारण वह मुकुट रत्नोंसे जड़ी हुई वन्दनवारकी समान दीखता
था, उसके दोनों कानोंमें लाल सूर्यकी समान दो कुण्डल थे

कास्यं कवचञ्च महाप्रथम् । किङ्किणीशतनिर्घोषं-रक्तध्वजपता-
किनम् ॥ ११ ॥ अक्षचर्मावनद्वाङ्गं नन्वमात्रं महारथम् । सर्वा-
युधवरोपेतमास्थितं ध्वजमालिनम् ॥ १२ ॥ अष्टचक्रसमायुक्तं
मेघगम्भीरनिःस्वनम् । मत्तमातङ्गसङ्काशा लोहिताक्षा विभीषणाः १३
कामवर्णजवा युक्ता बलवन्तः शतं हयाः । बहन्तो राक्षसं घोरं
बलवन्तो जितश्रमाः ॥ १४ ॥ विपुलाभिः सटाभिस्ते हेषमाणा
मुहुर्मुहुः । राक्षसोऽस्य विरूपाक्षः सुतो दीप्तास्यकुण्डलः ॥ १५ ॥
रश्मिभिः सूर्यरश्म्याभैः सञ्जग्राह ह्यात्रणो । स तेन सहितस्त-

और गलेमें सुवर्णकी शुभमाला पड़ी हुई थी ॥ ६-१० ॥ उसने
अपने शरीरके ऊपर बड़ा भारी कवच पहन रक्खा था-यह कवच
कौंसीकी बना हुआ था और बड़ी कान्तिवाला था, राक्षस घटो-
त्कच, सैकड़ों घूघुहओंसे घनघनाहट करते हुए, रक्तवर्णकी ध्वजा
पताकासे अलंकृत एक बड़े भारी रथमें बैठा था, उसका रथ
रीछके चमड़ेसे चारों ओरसे मढ़रहा था और वह चारसौ हाथ
लम्बा और चौड़ा था और अनेक प्रकारके आयुधोंसे भरा हुआ
था, ऊपरके भागमें फहराती हुई ध्वजाओंसे शोभित था-उसमें
आठ पहिये थे और वह चलते समय मेघके गर्जनेकी समान गंभीर
गर्जना करता था, पदमत्त हाथीकी समान रक्तवर्णके नेत्र वाले,
भयंकर आकृतिवाले, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला इच्छानु-
सार वेगवाले बड़े २ अयाल वाले, परिश्रमको नगिननेवाले,
वाले बारम्बार हिनहिनाहट करते हुए सौ घोड़े उसके रथमें जुत
रहे थे, वे वेगसे उसके रथको रणमें चला रहे थे, उसके सारथिका
नाम विरूपाक्ष था, उसकी आँखें भयंकर थीं मुख विकराल था
और कुण्डल तेज थे उस सारथिने रणमें-सूर्यकी किरणोंकी
समान कान्तिवाली रासोंसे घोड़ोंको पकड़ रक्खा था, सूर्य जैसे
अरुणके साथ बैठते हैं तैसे ही घटोत्कच अपने सारथिके साथ

स्थावररुणेन यथा रविः ॥ १६ ॥ संसक्त इव चाश्रेण यथाद्रिर्महता
महात् । दिवस्पृक् सुमहाकेतुः स्यन्दनेऽस्य समुच्छ्रितः ॥ १७ ॥
रक्तोत्तमांगः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः । वासवाशनिनिर्घोर्षं दृढ-
ज्यपति विलिपन् ॥ १८ ॥ व्यक्तं क्लिष्कुपरीणाहं द्वादशारति-
कामुक्तं । रथाक्षमात्रैरिषुभिः सर्वाः प्राञ्चादयन् दिशः ॥ १९ ॥
तस्यां वीरापहारिण्यां निशायां कर्णमभ्ययात् । तस्य विलिपतश्चापं
रथे विष्टभ्य- तिष्ठनः ॥ २० ॥ अश्रयत धनुर्घोषो विस्फूर्जित-
मिघाशनेः । तेन विनाश्यमानानि तत्र सैन्यानि भारत ॥ २१ ॥
समक्रम्पन्त सर्वाणि सिन्धोरिव महोर्मयः । तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य
विरुपाक्षं विभीषणम् ॥ २२ ॥ उत्समयन्निव राधेयस्त्वरमाणोऽभ्य-
चारयत् । ततः कर्णोऽभ्ययादेनमस्यन्नस्यन्तमन्तिकात् ॥ २३ ॥

वैश्या था ॥ ११-१६ ॥ महापर्वत जैसे महामेघसे मिला हुआ
दीखता है, तैसे ही उस रथके ऊपर गगनका चुम्बन करती हुई
बड़ी भारी ध्वजा फहरा रही थी ॥ १७ ॥ और उस ध्वजाके
ऊपर लाल रंगके मस्तक वाले मांसको खाते हुए महाभयंकर गिद्ध
पक्षीका चिन्ह बन रहा था, ऐमे रथमें बैठा हुआ घटोत्कच एक
हाथ चौड़े और वारह अरति लम्बे धनुषको लेकर उसके ऊपर
मगधून डोरी चढ़ा इन्द्रके वज्रकी समान टंकार ध्वनि
करने लगा फिर रथकी धुरीकी समान बाणोंके प्रहारोंसे
सब दिशाओंको ढक वीर पुरुषोंका संहार करने वाली उस
रानिमें कर्णके सापने लड़नेको धँसा, पहिले तो रथको खड़ा कर
धनुषको टंकारने लगा; उससमय उस धनुषकी टंकार वज्रध्वनिकी
समान सुनाई पड़ने लगी, इससे हे भरतवंशी राजन् ! समुद्रकी लहरों
की समान तुम्हारी सेना-रणमें गगनसे काँपने लगी, भयंकर नेत्रोंवाले
और भयंकर आकार वाले उस घटोत्कचको चढ़ कर आते देख कर्ण
ने अधिमानके साथ, शीघ्रतासे उसके सापने चढ़ाई कर उसको आगे

मातङ्गमिव मातङ्गो युथर्वम इवर्षभम् । स सन्निपातस्तुमुलस्तयो-
 रासीद्विशास्पते । कर्णराक्षसयो राजन्निन्द्रशम्बरयोरिव ।
 तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिःस्वने ॥ २५ ॥ प्राञ्छा-
 दयेतामन्योऽन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः । ततः पूर्णायतोत्प्लष्टैः
 शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥ न्यवारयेतामन्योऽन्यं कांस्ये निर्भिद्य
 चर्मणी । तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २७ ॥ रथ-
 शक्तिभिरन्योऽन्यं विशिखैस्तौ ततक्षतुः । संचिच्छदन्तौ च गात्राणि
 सन्दधानौ च सायकान् ॥ २८ ॥ दहन्तौ च शरोत्क्रामिर्दुष्प्रेक्ष्यौ
 च बभूवतुः । तौ तु विक्षतसर्वाङ्गौ शोणितौघपरिप्लुतौ ॥ २९ ॥
 विभ्राजेता यथा वारि स्रवन्तौ गैरिकाचलौ । तौ शराग्रविभिन्नागौ

बढ़नेसे रोका और बाण छोड़ने वाले घटोत्कचके सामने बाण
 फेंकने लगा, हे राजन् ! हाथी जैसे हाथीके साथ लड़ता है, साँड
 जैसे साँडोंके झुण्डके प्रधान साँडसे लड़ता है तैसे उन दोनोंमें
 तुमुल युद्ध होने लगा ॥ १८-२४ ॥ हे राजन् ! इन्द्र और शम्बर-
 राक्षसमें जैसे युद्ध हुआ था, तैसे कर्ण और राक्षसमें युद्ध छिड़
 गया, दोनों महारथी बड़े वेग वाले और भयंकर शब्द करते हुए
 धनुषोंको लेकर एक दूसरे पर बाण धरसा एक दूसरेको दकने
 लगे, धनुषको कान तक खेंच, नमी हुई गाँठ वाले बाण मार एक
 दूसरेके कवचोंको तोड़ कर, दो सिंह जैसे नखोंसे युद्ध करते हैं
 जैसे बड़े २ हाथी दाँतोंसे लड़ते हैं, तैसे वे दोनों योधा परस्पर रथ-
 शक्तियोंसे और बाणोंसे एक दूसरेको मारने लगे, तथा बाणोंसे
 एक दूसरेके शरीरको काटने लगे, बाणरूपी उल्कापात कर एक
 दूसरेको भस्म करने लगे, उस समय उन दोनोंकी ओर देखना
 भी कठिन होगया, उन दोनोंके सारे शरीर घायल होगए थे और
 उनके धाधोंमेंसे रक्त वह निकला—तब जैसे गेरुके पर्वतमेंसे गेरु
 टपकता है—तैसे वे दोनों दीखते थे, महाक्रान्ति वाले वे दोनों

निर्मिन्दन्तौ परस्परम् ॥ २६ ॥ नाकम्पयेतामन्योऽन्यं यतमानौ
महाद्युती । तत् प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाभवत् ॥ २७ ॥
प्राणयोर्दीव्यतो राजन् कर्णराक्षसयोर्मृधे । तस्य सन्दधतस्तीक्ष्णान्
शरांश्चासक्तपस्पतः ॥ २८ ॥ धनुर्घोषेण विव्रस्ताः स्वे परे च
तदाभवन । घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप ॥ २९ ॥
प्रादुश्चक्रे ततो दिव्यमस्त्रमस्त्रविदाम्बरः । कर्णेन सम्भितं दृष्ट्वा
दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः ॥ ३० ॥ प्रादुश्चक्रे ततो मायां राक्षसीं पाण्डु-
नन्दनः । शूलमुद्गरधारिण्या शूलपादपदस्तया ॥ ३१ ॥ रक्षसां
घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः । तमुद्यतमहाचापं दृष्ट्वा ते व्यथिता
नृपाः ॥ ३२ ॥ भूतान्तकमिवायान्तं कालदण्डोग्रधारिणम् । घटो-

युद्धके लिये प्रयत्न कर रहे थे और एक दूसरेके शरीरोंको बाणों
की नोकोंसे वीध रहे थे, तो भी वे एक दूसरेको रणमें कँपा नहीं
सकते थे—यह रात्रियुद्ध बहुत समय तक ऐसा चला कि—बहु समय
एक वर्षकी समान प्रतीत हुआ ॥ २५-३१ ॥ हे राजन् ! कर्ण
और घटोत्कच प्राणोंका दाँव लगा कर युद्धरूपी जुआ खेलने
लगे, घटोत्कच तीक्ष्ण बाणोंको चढ़ाता था और बिना झटकेहुए
उन बाणोंको छोड़ता चला जाता था, उस समय उसके धनुषकी
ध्वनिसे मित्रों (पाण्डवों) के और शत्रुओं (कौरवों) के योधा-
व्रस्त होगए, कर्ण घटोत्कचसे आगे न बढ़ सका, तब हे राजन् !
अस्त्रवेत्ताओंमें कुशल कर्णने दिव्यास्त्रको प्रकट कर उस राक्षसकी
ओर ताना, यह देख कर राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कचने राक्षसी माया
प्रकट की ॥ ३२-३४ ॥ वह त्रिशूल, मुद्गर, पर्वत तथा वृत्तोंको
धारण करनेवाली राक्षसोंकी महासेनासे घिर कर प्राणियोंका
संहार करने वाले उग्र दण्डधारी कालकी समान बड़े भारी धनुषको
खींच कर्णके सामनेको दौड़ा ॥ ३५ ॥ घटोत्कचको कालकी समान
धँस कर आते देख, हमारे पक्षके वीर राजे घबड़ा गए ॥ ३६ ॥

त्कचप्रमुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ॥ ३७ ॥ प्रसुप्तवर्गजा मूत्रं
 विव्यथुश्च नरा भृशम् । ततोऽश्मवृष्टिरस्युग्रा महत्यासीत् समन्ततः ३८
 अर्द्धरात्रेऽधिकबलैर्विमुक्ता राक्षसैर्भृशम् । आयसानि च चक्राणि
 भृशुण्व्यः शक्तितोमराः ॥ ३९ ॥ पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः
 पट्टिशास्तथा । तदुग्रमतिरौघश्च दृष्ट्वा युद्धं नराधिप ॥ ४० ॥ पुत्राश्च
 तत्र योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः । तत्रैकोस्त्रबलश्लाघी कर्णो
 मानी न विव्यथे ॥ ४१ ॥ व्यधमत् स शरैर्मार्या घटोत्कचविनि-
 मिताम् । मायार्या तु प्रदीणायाममर्षाच्च घटोत्कचः ॥ ४२ ॥
 विससर्ज शरान् घोरान् सूतपुत्रन्त आविशन् । ततस्ते रुधि-
 राभ्यक्ता भित्वा कर्णं महोदये ॥ ४३ ॥ त्रिविशुद्धरणीं बाणाः
 संक्रुद्धा इव पन्नगाः । सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ४४

उस समय घटोत्कचने संग्रामभूमिमें सिंहकी समान गर्जना की
 उसको सुन हाथी भयभीत हो मूत्र करनेलगे मनुष्य अतीव खिन्न
 होगए और आधो रातके समय राक्षसोंकी महाबल वाली सेना
 हमारी सेना पर पत्थर, लोहेके चक्र, तोमर, भृशुण्डी, शक्ति, शतघ्नी
 तथा पट्टिशोंकी तला ऊपर अत्यन्त उग्र वृष्टि करनेलगी ३७-३८
 हे राजन् ! उस महाभयंकर और अति उग्र युद्धको देखकर तुम्हारे
 योधा खिन्न होकर रणमेंसे भागगए, उस समय अस्त्रविद्या और
 बलमें प्रशंसा पाने योग्य केवल अभिमानी कर्ण ही तहाँ अचल
 खड़ा रहा, वह शत्रुओंसे कुछ भी नहीं डरा था ॥ ४०-४१ ॥
 फिर कर्णने बाण मारकर घटोत्कचकी रची हुई मायाका नाश
 करवाला, अपनी मायाके नष्ट होने पर घटोत्कच सूतपुत्र कर्णके
 ऊपर क्रोधमें भर भयंकर बाणोंका प्रहार करनेलगा ॥ ४२ ॥
 तब रक्तसे रंगेहुए वे बाण कर्णके शरीरको फोड़कर कुपित हुए
 सर्पोंकी समान भूमिमें घुसगए ॥ ४३ ॥ तब फुर्तीले हाथवाले
 महाप्रतापी कर्णने कोपायमान होकर घटोत्कचके दश बाण मार

(११४४) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौपिचत्वारिंशो]

घटोत्कचमतिक्रम्य विभेद दशभिः शरैः । घटोत्कचो विनिर्मिन्नः
सूतपुत्रेण मर्मसु ॥ ४५ ॥ चक्रं दिव्यं सहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो
भृशम् । क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम् ॥ ४६ ॥ धित्ते-
पाधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया । प्रविद्धमतिवेगेन विक्षिप्तं
कर्णसायकैः ॥ ४७ ॥ अभिगम्यस्येव सङ्कुलस्तन्मोघमपनन्दुवि ।
घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ४८ ॥ कर्णं प्राचञ्चा-
दयद्वाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् । सूतपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपे-
न्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ४९ ॥ घटोत्कचरथं तूर्णं द्वादयामास पत्रिभिः ।
घटोत्कचेन क्रुद्धेन गदा हेमाङ्गदा तदा ॥ ५० ॥ क्षिप्त्वा भ्राम्य
शरैश्चापि कर्णेनाभ्याहतापनत् । ततोन्तरिक्षगुत्पत्य फाल-

कर उसके मर्मस्थानोंको चीँघडाला ॥ ४४ ॥ उस महारसे
भीमका पुत्र अत्यन्त खिन्न होगया और उसने क्रोधमें भर अधि-
रथके पुत्रका नाश करनेकी इच्छासे सहस्र अरेवाले क्षुरकी समान
तीखी धारवाले, उदय होते हुए सूर्यकी समान दमकते हुए, मणि
तथा रत्नोंसे अलङ्कृत एक दिव्य चक्रको लिया और कर्णके
रथकी ओर ताककर उसके ऊपर फैका ४५-४६ तब कर्णने उसके
सामने बाण मारकर तुरन्त ही उसके टुकड़े करवाले, तब वह
चक्र भाग्यहीन मनुष्यके मनोरथकी समान पृथ्वी पर गिरपड़ा ४७
अपने मारेहुए चक्रको पृथ्वीके ऊपर गिराहुआ देखकर घटोत्कच
बड़े भारी क्रोधमें भरगया और उसने राहु जैसे सूर्यको ढक देता
है तैसे बाण मारकर कर्णको ढकदिया ॥ ४८ ॥ परन्तु रुद्र, इन्द्र
और विष्णुकी समान सूतपुत्रने धैर्य धारण कर फुर्तीसे बाण
मार घटोत्कचके रथको ढकदिया ॥ ४९ ॥ उस समय घटोत्कचने
कापमें भर हेमाङ्गदा नामकी गदा घुमाकर कर्णके ऊपर फैकी,
कर्णसे उसको भी बाण मारकर तोड़ डाला और वह पृथ्वीके
ऊपर गिरपड़ी ॥ ५० ॥ फिर बड़े शरीरवाला घटोत्कच आकाश-

मेघ इवोन्नदन् ॥ ५१ ॥ प्रवदर्थ महाकायो द्रमवर्षं नभस्तलात् ।
 ततो मायाविनं कर्णो भीमसेनस्रुतं दिवि ॥ ५२ ॥ मार्गयोरधि-
 विव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः । तस्य सर्वान् हयान् हत्वा संखिद्य
 शतधा रथम् ॥ ५३ ॥ अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव दृष्टमान् ।
 न तस्यासीदनिभिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ॥ ५४ ॥ सोऽदृश्यत
 मूहूर्त्तेन स्वाधिच्छलिततो यथा । न हयान्न रथं तस्मिन् ध्वजं न
 घटोत्कचम् ॥ ५५ ॥ दृष्टवन्तः स्म समरे शरौघैरभिसंवृतम् । स
 तु कर्णस्य तदिव्यमस्त्रमस्त्रेण शातयन् ॥ ५६ ॥ मायायुद्धेन मायावी
 स्रुतपुत्रमयोचयत् । सोऽयोधेस्तदा कर्णं मायाया लाघवेन च ॥ ५७ ॥
 अलक्ष्यमाणानि दिवि शरजालानि चापतन् । भीमसेनिर्महामायो
 मेका ऊँचा उडा और प्रलयकालके मेघवी समान गर्जन करके
 आकाशमेंसे वृत्तोंकी दृष्टि करनेलगा ५१ तब सूर्य जैसे मेघके ऊपर
 किरणोंका प्रहार करता है, तैसे कर्ण भीमके मायावी पुत्र घटो-
 त्कचके ऊपर बाणोंका प्रहार करनेलगा ५२ और घटोत्कचके घोड़ों
 को मार डाला और उसके रथके सैकड़ों टुकड़े कर डाले फिर वह
 मेघ जैसे जल बरसाता है तैसे बाणोंकी दृष्टि करनेलगा ५३ इस
 समय घटोत्कच इतना घायल हो गया, कि-उसके शरीरमें दो
 अंगुल स्थान भी घावरहित नहीं बचा ॥ ५४ ॥ एक मूहूर्तमें ही
 सेई जैसे अपने कांटोंसे दीखने लगती है, तैसे बाणोंसे गुंभा हुआ
 घटोत्कचका शरीर दीखनेलगा, इस युद्धमें घटोत्कच, उसके घोड़े,
 रथ और ध्वजा-इतने बाणोंसे ढूँक गए कि-देखनेवालोंको इन
 मेंका कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥ ५५-५६ ॥ फिर मायावी
 घटोत्कचने दिव्य अस्त्रोंसे कर्णके दिव्य अस्त्रोंको काट डाला और
 मायामय युद्धकर कर्णसे लड़नेलगा ॥ ५७ ॥ घटोत्कच उस समय
 राक्षसी मायासे अस्त्रविद्याकी फुर्ती दिखाता हुआ लड़ रहा था
 और अदृश्य होकर आकाशमेंसे बाण छोड़ रहा था ॥ ५८ ॥ और

मायया कुरुसत्तम ॥५८॥ विचचार महाकायो मोक्षयन्निव भारत ।
 स तु कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभानि च ॥ ५९ ॥ अग्रसत्
 सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया । पुनश्चापि महाकायः सच्छि-
 न्नः शतधा रणे ॥ ६० ॥ हतसन्त्रो निरुत्साहोः पतितः खाद्व्य-
 दश्यन् । हतं तं मन्यमाना स्म प्रणोदुः कुरुपुङ्गवाः ॥ ६१ ॥ अथ देहै-
 र्नवैरभ्येदिक्षु सर्वास्त्रहरयत् । पुनश्चापि महाकायः शतशीर्यः शतो-
 दराः ॥ ६२ ॥ व्यहरयत् महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः । अंगुष्ठमात्रो
 भूत्वा च पुनरेव स राज्ञस्य ॥ ६३ ॥ सागरोर्मिरिवोद्भूतस्तिर्यग्-
 ध्वमवर्त्तत । वसुधां दारयित्वा च पुनरप्यु न्यमज्जत ॥ ६४ ॥
 अहरयत् तदा तत्र पुनरुन्मज्जितोऽन्यतः । सोऽवन्तीर्य पुनस्तस्थौ

हे कुरुवंशी महाराज ! वह भारी शरीरवाला भामपुत्र जा बड़ा
 मायावी था, वह मायासे योधाओंको दिङ्मूढ़ करता हुआ रणमें
 घूमनेलगा, वह मायासे बुरे रूपवाला अशुभ मुख बनाकर कर्णके
 दिव्य अस्त्रोंको निगल जाता था, परन्तु कर्णने पुनः पुनः
 घटोत्कचके बाण मारकर उसको घायल करवाला था ५९-६०
 घटोत्कच सहस्रों घाव होने पर उत्साह तथा बलरहित हो
 आकाशमेंसे नीचे गिरपड़ा, तब कौरवोंके बड़े-राजे उसको
 मराहुआ समझ कर बड़ीभारी गर्जना करनेलगे, परन्तु देखते-
 ही उस घटोत्कचमें मानो दूसरेअनेकों नये शरीर धारण करलिये
 हों इसप्रकार सब दिशाओंमें दिखाई देनेलगा और उस ही समय
 सैकड़ों माया, सौ पेट, बड़ी २ भुजाएँ और बड़ाभारी शरीर करके
 मैनाक पर्वतकी समान योधाओंकी दृष्टिमें पड़ा थोड़ी ही देरमें वह
 राजस अंगूठेकी समान होगया और फिर रणभूमिमें दिखाई
 देने लगा ॥ ६१-६३ ॥ और सगुडकी लहरोंकी समान उबलने
 लगा और ऊपर नीचे उबाल मारनेके पीछे पृथ्वीको फाड़ कर
 पानीमें घुस गया और तहाँसे फिर दूसरे स्थानसे निकल कर

रथे हेमपरिष्कृते ॥ ६५ ॥ क्षितिं खञ्च दिशञ्चैव माययाभ्येत्य
 दंशितः । गत्वा कर्णरथाभ्याशं विचलत्कुण्डलाननः ॥ ६६ ॥
 प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं विशाम्यते । तिष्ठेदानीं क्व मे
 जीवनं सूतपुत्रं गमिष्यसि ॥ ६७ ॥ युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि
 रणाजिरे । इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो रक्तः क्रूरपराक्रमः ॥ ६८ ॥
 उत्पपातान्तरीक्षञ्च जहास च सुविस्तरम् । कर्णमभ्यहनञ्चैव
 गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ६९ ॥ रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटो-
 त्कचः । रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयद् ॥ ७० ॥ मार-
 वृष्टिञ्च तां कर्णो दूरात् मासामशाययत् । हृष्टो च विद्वत् मायां
 कर्णेन भरतर्षभ ॥ ७१ ॥ घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः

पुनः आकाशमें ऊपरको चढ़ गया, तहाँसे नीचे उत्तर आया और
 कवच तथा कुण्डलधारी घटोत्कच, फिर छुवर्णसे मढ़े हुए रथमें
 बैठकर मायाके मभावसे पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओंमें दौड़-
 भागकर फिर कर्णके रथके पास आकर खड़ा हो गया और
 धैर्यपूर्वक सूतपुत्र कर्णसे कहने लगा कि-अरे ओ सूतपुत्र !
 अब खड़ा रह ! तू मेरा अपमान कर जीता हुआ कहाँ रह
 सकेगा ॥ ६४-६७ ॥ मैं रणाङ्गणमें तेरे युद्धके चावको आज
 दूर कर दूँगा ! इस प्रकार कहकर लाल २ नेत्रवाला और क्रूर
 पराक्रमवाला वह राज्ञस विशाल आकाशमें ऊपरको उड़ा और
 खड़खड़ाहटसे हँसकर, केसरी जैसे हाथीके ऊपर महार करता है
 तैसे वह घटोत्कच कर्णके ऊपर शस्त्रोंका महार करने लगा ॥ ६८ ॥
 मेव जैसे पर्वत पर जल बरसाता है; तैसे ही घटोत्कचने महारथी
 कर्णके ऊपर रथके धुरेकी समान बाणोंकी वृष्टि करना आरम्भ
 कर दी ॥ ७० ॥ तब कर्णने बाण मारकर दूरसे उसकी बाण-
 वृष्टिको दूर कर डाला और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उसकी
 मायाका भी संहार कर डाला, तुरत ही घटोत्कचने अदृश्य होकर

धुनः । सोमवह्निरिरस्त्युच्चः शिखरैस्तत्सङ्कटैः ॥ ७२ ॥ शूल-
प्रसासिमुसलप्रलपस्रवणो महान् । तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो रथा
महीधरम् ॥ ७३ ॥ प्रपातैरायुधान्युद्ग्राह्यद्वहन्तं न चुक्षुभे । समय-
न्निष ततः कर्णो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ७४ ॥ वतः सोऽश्रेण
शैलेन्द्रो विजित्सो वै व्यनश्यत । ततः स तोयदो भूत्वा नीलाः
सेन्द्रायुधो दिवि ॥ ७५ ॥ अश्मवृष्टिभिरत्युग्रः मृतपुत्रमवाकिरत् ।
अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदाम्बरः ॥ ७६ ॥ व्यधमत् काल-
मेघं तं कर्णो वैरुर्त्तनो वृषः । स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य
सर्दशः ॥ ७७ ॥ जयानास्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम् । ततः
प्रहस्य सप्ररे भैमसेनिर्महावज्रः ॥ ७८ ॥ प्रादुश्रक् महामाया कर्णो

दूसरी नई माया रची, वह वृत्तोसे भरपूर और शिखर वाला
एक महापर्वत बन गया और वह महान् पर्वत ही कर्णके ऊपर
त्रिशूल, प्रास, खड्ग और मूसलोंकी वृष्टि करने लगा ॥ ७१ ॥ ७२ ॥
परन्तु कर्ण अञ्जनके ढेरकी समान दीखता था और प्रवाह रूप
से आयुधोंकी वृष्टि करते हुए इस पर्वतको देखने पर जरा भी
नहीं घबड़ाया, उसने मुस्कराकर उस पर्वतके ऊपर दिव्य-अस्त्र
मारा कि-उस समय ही उस महापर्वतके टुकड़े २ होगए ७३ ॥ ७४
फिर वह महाभयङ्कर राक्षस आकाशमें गया और इन्द्रधनुष वाले
श्याम मेघका रूप धारण कर कर्णके ऊपर पत्थरोंकी वृष्टि करने
लगा ॥ ७५ ॥ तब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मृतपुत्र कर्ण कि-मिस
को वृष भी कहते हैं, उसने धनुषके ऊपर वायव्यास्त्र चढाकर
उस आलमेघके टुकड़े २ करडाले ॥ ७६ ॥ और दूसरे बाण छोड़
कर आकाशके सब कोनों को ढकदिया और हे महाराज ! घटो-
त्कचके मारे हुए अस्त्रोंका नाश करडालो ॥ ७७ ॥ तुरत ही महा-
बलशाली भीमके पुत्रने रणाङ्गणमें हँसकर महारथी कर्णके सामने
महामाया प्रकटकी ॥ ७८ ॥ महारथी घटोत्कच भी सिंहशार्दूल

मति महारथम् । स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेन रथिनाम्बरम् ॥ ७१ ॥
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राज्ञसर्वहुभिर्दृष्टम् । सिंहशार्दूलसदृशैर्मन्त्र-
मातङ्गविक्रमैः ८० गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा । नानाशस्त्र-
भरैर्योरैर्नाताकवचभूषणैः ॥ ८१ ॥ वृत्तं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्गिरि-
वासवम् । दृष्ट्वा कर्णो महेश्वासो योषयाभासं राज्ञसम् ॥ ८२ ॥
घटोत्कचस्ततः कर्णं विध्वा पञ्चभिरशुभैः । ननाद भैरवं नादं
भीषयन् सर्वपार्थिवान् ॥ ८३ ॥ भूयश्चाञ्जलिकेनाथ समा-
ग्लगणं महत् । कर्णहस्तस्थितञ्चापं विच्छेदाशु घटो-
त्कचः ॥ ८४ ॥ अथान्यदनुरादाय दृढम्भारसहं महत् ।
विचर्कषं बलात् कर्णं इन्द्रायुधनिबोच्छ्रितम् ॥ ८५ ॥ ततः कर्णो
महाराजं प्रेषयामास सायकान् । सुवर्णपुष्पाच्छत्रुधनान् खेचरान्

और मदमत्त हाथियोंकी समान पराक्रमी रथ और घोड़ोंके ऊपर
बैठेहुए और अनेक प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेवाले अनेक
प्रकारके कवचोंसे शोभायमान, भयंकर और क्रूर कर्म करनेवाले
बहुतसे राजाओंको साथ लेकर रथमें सत्रार होकर कर्णके सामने
लड़नेके लिये धँस आया, कर्णने भी पवनसे घिरेहुए इन्द्रकी समान
आतेहुए घटोत्कचको देखकर उसके सामने युद्ध करना आरम्भ
कर दिया ॥ ७६-८२ ॥ इस समय घटोत्कचने कर्णको पाँच
बाण मार कर बीध डाला और सब राजाओंको डरीता हुआ
सा भयंकर हुंकारें भरने लगा ॥ ८३ ॥ तदनन्तर उसने अञ्ज-
लिक नामक बाण मार कर कर्णके हाथमें स्थित बहुतसे बाणों
वाले धनुषके देखते २ टुकड़े २ कर डाले ॥ ८४ ॥ कर्णने अत्यंत
दृढ़ और भार सहनेवाला बड़ा भारी दूसरा धनुष लिया, इन्द्र
धनुषकी समान उस ऊँचे धनुषको खेचकर हे महाराज ! उससे
कर्ण सुवर्णकी पूँछवाले और शत्रुओंका संहार करनेवाले आकाश
चारी बाण राजाओंके ऊपर फैकने लगा ॥ ८५॥ ८६ ॥ तब पवनमें

राक्षसान् प्रति ॥ ८६ ॥ तद्वाणैरर्द्धितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
 सिंहेनेर्द्धितं वन्यं गजानामाकुलं कुक्षम् ॥ ८७ ॥ विधम्य राक्ष-
 सान् वाणैः सारथसूतगजान् विभुः । ददाह भगवान् बहिर्भूता-
 नीव युगक्षये ॥ ८८ ॥ स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे मृतनन्दनः ।
 पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ ८९ ॥ तेषु राजसह-
 स्रेषु पाण्डवेषु मारिष । नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति
 पार्थिव ॥ ९० ॥ ऋते घटोत्कचाद्राजन् राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ।
 भीमवीर्यवलोपेतात् क्रुद्धाद्वैवस्वतादिव ॥ ९१ ॥ तस्य क्रुद्धस्य
 नेत्राभ्यां पावकः समजायत । महोल्काभ्यां यथा राजन् साक्षिणः
 स्नेहविन्दयः ९२ तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् । रथमा-

रहनेवाली हाथियोंकी धाँग जैसे सिंहसे पीड़ा पाकर व्याकुल
 हो जाती है, तैसे ही स्थूल वक्षःस्थलवाले राक्षसोंके कुपड़ने भी
 भी कर्णके वाणोंके महारोंसे बड़ी पीड़ा पाई ॥ ८७ ॥ इसप्रकार
 समर्थ कर्णने वाण मारकर हाथी, घोड़े और सारथियों सहित
 राक्षसोंका संहार कर डाला, प्रलयके समय जैसे अग्नि भगवान्
 सब प्राणियोंका संहार कर डालते हैं, तैसे ही कर्णने भी सबको
 भस्म कर डाला ॥ ८८ ॥ और पहिले त्रिपुरासुरका नाश करनेके
 पीछे भगवान् शंकर जैसे कैलासमें शोभा पारहे थे, तैसे ही इस
 समय राक्षसोंका संहार करके सुतपुत्र कर्ण भी रणभूमिमें शोभा
 पाने लगा ८९ और उस समय पाण्डवोंमेंके सहस्रों वीर राजाओंमेंसे
 घटोत्कचको छोड़ कर दूसरा कोई भी राजा ऐसा न था कि—जो
 कर्णको देख सके, केवल महाबली बलसम्पन्न और कोपमें
 भरेहुए कालकी समान भीमका पुत्र अकेला राक्षसराज घटो-
 त्कच ही उसके सामने देखता हुआ रणमें खड़ा था ॥ ९० ॥ ९१ ॥
 मशालमेंसे जैसे आगके साथ तेजकी बूँदें गिरती हैं, तैसे ही
 कोपमें भरेहुए घटोत्कचकी आँखोंमेंसे अग्निकी चिनगारियाँ निकल

स्वाय च पुनर्मायया निर्मितं तदा ॥ ६३ ॥ युक्तं गजनिभैर्वाहैः
पिशाचवदनैः खरैः । स सूनमब्रवीत् क्रुद्धः सूतपुत्राय मां वह ६४
स ययौ घोररूपेण रथेन रथिनीं वरः । द्वैरथं सूनपुत्रेण पुनरेव
विशाम्यते ॥ ६५ ॥ स चित्तोप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः ।
अष्टचक्रा महाघोरामशनीं रुद्रनिर्मिताम् ॥ ६६ ॥ द्वियोजनसमु-
त्सेधां योजनायामविस्तराम् । आयसीं निचिनां शूलैः कदम्बमिव
केसरैः ॥ ६७ ॥ तामवप्लुत्य जग्राह कर्णो न्यस्य रथे धनुः । चित्तोप
चैर्ना तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे ॥ ६८ ॥ साश्वसूतध्वजं यानं
भस्म कृत्वा महाप्रभा । विवेश वसुधां भित्वा सुरास्तत्र विसि-

रही थी ॥ ६२ ॥ (कर्णका पराक्रम देखकर) घटोत्कचने हाथ
मसले और ओठको दबाया तथा मायासे दूसरे रथको बनाया,
उसमें पिशाचकी समान मुख माले तथा हाथीकी समान दीखते
हुए गधे जुते हुए थे, उसने उस रथमें बैठकर क्रोधमें भर अपने
सारथिसे कहा कि—“अरे चल । तू मुझे कर्णके सामने शीघ्र ही
ले चल” ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार आज्ञा दे भयं-
कर रथमें बैठाहुआ महारथी घटोत्कच कर्णके सामने लड़नेको
गया ॥ ६५ ॥ उस राक्षसने क्रोधमें भरकर आठ चक्र वाली,
दो योजन ऊंची और एक योजन लम्बी, केशरी (परांगों से युक्त
कदम्बके पुष्पोंकी समान शूलोंसे जड़ी हुई तथा शंकरकी बनाई
हुई ठोस लोहेकी महाभयंकर शक्ति कर्णके ऊपर फैंकी, कर्ण
तुरत ही रथमेंसे कूद पड़ा और उसने हाथमेंके धनुषको फैंक
उस शक्तिको (हाथसे) पकड़ लिया और उस शक्तिको उस
राक्षसके रथके सामने ही फैंका, परन्तु उस महाप्रभावशाली
शक्तिके रथपर पड़नेसे पहिले ही घटोत्कच अपने रथ परसे कूद
पड़ा—इतनेमें ही वह शक्ति राक्षसके सारथि, अश्व और ध्वजाको
भस्म कर पृथ्वीमें घुस गई, कर्णके ऐसे कर्मको देख देवता भी

स्मियुः ॥ ६६ ॥ कर्णेन्तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा । यद-
 वप्लुत्य वज्राह देवसृष्टां महाशनिम् ॥ १०० ॥ एवं कृत्वा रणे
 कर्ण आरुहो ह रथं पुनः । ततो मुमोच विशिखान् सूतपुत्रः पर-
 न्तपः ॥ १०१ ॥ अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद । यद-
 कार्पीक्षदा कर्णः संग्रामे भीमदर्शने ॥ १०२ ॥ स हन्यमानो नाराच-
 धाराभिरिव पर्वतः । गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥ १०३ ॥
 एवं स वै महाकायो मायया लाघवेन च अस्त्राणि तानि दिव्यानि
 जघान रिपुसूदनः ॥ १०४ ॥ निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन
 रत्नसा । असम्भ्रान्तस्ततः कर्णस्तद्रत्नः प्रत्ययोभयत् ॥ १०५ ॥
 ततः क्रुद्धो महाराज भैमसेनिर्महाबलः । चकार बहुधात्मानं भीष-

आरच्य करनेलगे ॥ ८३-८६ ॥ और सब प्राणी उस समय
 कर्णकी प्रशंसा करनेलगे कि—“कर्णने रथसे नीचे उतर कर महा-
 देवकी बनाई हुई महाशक्तिको अनायास ही हाथसे पकड़लिया,
 इसलिये वह धन्य है ! धन्य है !” ॥ १०० ॥ परन्तु कर्ण ऐसा
 महापराक्रम कर फिर रथपर चढ़ बैठा और घटोत्कचके ऊपर
 बाणोंकी वृष्टि करनेलगा ॥ १०१ ॥ हे मान देनेवाले राजन् !
 उस समय भयंकर दीखनेवाले संग्राममें कर्णने जैता पराक्रम
 दिखाया था; ऐसा पराक्रम कर्णके अतिरिक्त दूसरा कोई भी
 नहीं करसकता ॥ १०२ ॥ मेघ जैसे पर्वतके ऊपर जलकी
 मूसलधार चर्पा करता है, तैसे ही कर्ण भी राज्ञसके ऊपर बाणों-
 की वृष्टि करनेलगा तब घटोत्कच फिर गन्धर्व नगरकी समान
 अदृश्य होगया ॥ १०३ ॥ फिर मायाधारी शत्रुसंहारक राज्ञस
 घटोत्कच मायासे और फुर्तीसे कर्णके अनेक प्रकारके दिव्य
 अस्त्र मारने लगा ॥ १०४ ॥ वह राज्ञस माया कर कर्णके नाना
 प्रकारके दिव्य अस्त्र मार रहा था, परन्तु कर्ण इससे डरा नहीं
 और निहंर हो उसके सामने युद्ध करने लगा १०५ हे महाराज !

याणो महारथान् ॥ १०६ ॥ ततो दिग्भ्यः समापेतुः सिंहव्याघ्र-
 तरत्तवः । अग्निजिह्वास्तु भुजगा विहगाश्चाप्ययोमुखाः ॥ १०७ ॥
 आकीर्यमाणो विशिखैः कर्णचापच्युतैः शरैः । नागराडिव दुष्पे-
 क्ष्यस्त्रैवान्तरधीयत ॥ १०८ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधाना-
 स्तथैव च । शालाघृकाश्च बहवो वृकाश्च विकृताननाः ॥ १०९ ॥
 ते कर्णं भक्षयिष्यन्तः सर्वतः समुपाद्रवन् । अथैनं वाग्मिस्त्राभि-
 स्त्रासयान्चकिरे तदा ॥ ११० ॥ उद्यतैर्बहुभिर्घोरैरायुधैः शोणि-
 तोत्तितैः । तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध चाशुगैः ॥ १११ ॥
 प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनास्त्रेण-राक्षसीम् । आजघान ह्या-
 नस्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ११२ ॥ ते भग्ना भिन्नाङ्गाश्च छिन्न-
 पृष्ठाश्च सायकैः । वसुधामन्वपद्यन्त पर्यतस्तस्य रत्तसः ॥ ११३ ॥

फिर कोपमें भरे हुए महाबली घटोत्कचने अपनी मायासे अनेकों
 रूप धारण किये और महारथियोंको डराने लगा दिशाओंमेंसे
 सिंह, व्याघ्र, तरत्तु और अग्निकी समान लपलपाती हुई जीभ
 वाले सर्प और लोहेके मुखवाले पत्नी कौरवी सेनाके महारथियोंके
 सामने धँसने लगे ॥ १०६-१०७ ॥ तब कर्ण धनुष खेंच उन पर
 बाण छोड़ने लगा, वे बाण धनुषोंमेंसे छूटकर घटोत्कचके ऊपर
 पड़ते थे तब घटोत्कच नागराजकी समान दुष्पेक्ष्य हो गया और
 तहाँ ही अन्तर्धान होगया ॥ १०८ ॥ और मायावी पिशाच,
 राक्षस, यातुधान, कुत्ते तथा भयंकर मुखवाले नाहर कर्णका नाश
 करनेकी इच्छासे कर्णकी ओर दौड़े और गाली देकर तथा लोह
 टपकाते हुए भयंकर आयुधोंको उठाकर कर्णको त्रास देने लगे,
 कर्णने उनमेंसे प्रत्येकको बहुतसे बाण मार कर वीध डाला और
 दिव्य अस्त्र मार कर राक्षसी सेनाका संहार कर डाला, फिर
 अच्छी प्रकारसे नमी हुई गाँठ वाले बाण राक्षसके घोड़ोंके मारे
 घोड़ोंकी पीठ उधड़ गई, उनके घाव होगए और वे घटोत्कचके

(११५४) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौषष्ठ्योत्तरार्ध]

स भगवाणो हैचिम्बिः कर्णं वैकर्त्तनं ततः । एष ते विदधे मृत्युरि-
त्युक्तवान्तरधीयत ॥ ११४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचपर्वणि रात्रियुद्धे कर्ण-
घटोत्कचयुद्धे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

सञ्जय उवाच । तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने कर्णराक्षसयोर्मध्ये ।
अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्त्तत ॥ १ ॥ महत्या सेनया
युक्तो दुर्योधनमुपागमत् । राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवा-
रितः ॥ २ ॥ नानारूपधरैर्वैरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् । तस्य ज्ञानिर्हि
विक्रान्तो ब्राह्मणादो वक्रो हतः ॥ ३ ॥ किर्पीरश्च महातेजा हिडि-
म्बश्च तथा सखा । स दीर्घकालाध्युषितः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४ ॥
चिन्नायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीमपाहवे । स मत्त इव मातङ्गः
संकुद्ध इव चोरगः ॥ ५ ॥ दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद्युद्धतालसः ।

सामने ही निश्चेष्ट हो पृथ्वी पर गिरपड़े ॥ १०६-११३ ॥ इस
प्रकार हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचकी मायाका नाश हुआ कि-वह
‘मैं अभी तेरा नाश करता हूँ’ यह कर मृतपुत्र कर्णके सामनेसे
अन्तर्धान होगया ॥ ११४ ॥ एकसौषष्ठ्योत्तरार्ध अध्याय समाप्त १७५

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! इस प्रकार कर्ण और
घटोत्कचमें युद्ध चल रहा था, उस समय घटोत्कचका (मातृपक्षका)
सम्बन्धी, राक्षसराज महापराक्रमी अलायुध, पहिले वैरका स्मरण
कर बड़ीभारी सेनाके साथ दुर्योधनके पासमें आया, उस राक्षसके
पास नानाप्रकारके रूप धरनेवाले, शूरवीर परन्तु लुरूप सहस्रों
राक्षस घूमरहे थे, पहिले भीमने ब्राह्मणोंका भक्षण करनेवाले
उसके सम्बन्धी वक्र राक्षसको, महातेजस्वी किर्पीरको तथा हिडि-
म्बासुरको मार डाला था, उनका वैर निकालनेके लिये आजके
रात्रियुद्धमें भीमका नाश करनेकी इच्छासे वह राक्षस चढ़ आया
था ॥ १-५ ॥ वह मदमत्त हाथीकी समान और कोपमें भरेहुए

विदितं ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः ॥ ६ ॥ हिडिम्बवक-
किर्मीरा निहता मम बान्धवाः। परामर्षश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः
पुरा ॥ ७ ॥ किमन्यद्राक्षसानन्यानस्मात् परिभूय ह । तमहं सगणं
राजन् सवाजिरथकुञ्जरम् ॥ ८ ॥ हैडिम्बञ्च सहामात्यं हन्तुम-
भ्यागतः स्वयम् । अद्य कुन्तीसुतान् सर्वान् वासुदेवपुरोगमान् ६
हत्वा सम्भक्षयिष्यामि सर्वैरनुचरैः सह । निवारय बलं सर्वं वयं
योत्स्याम पाण्डवान् ॥ १० ॥ तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधन-
स्तदा । प्रतिगृह्याब्रवीद्वाक्यं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ११ ॥ त्वां
पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान् । न हि वैरान्तमनसः
स्थास्यन्ति मम सैनिकाः ॥ १२ ॥ एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा

सर्पकी समान था, वह युद्ध करनेके लिये बड़ा उत्साह दिखा रहा
था, रणभूमिमें जहाँ दुर्योधन खड़ा था, तहाँ आकर वह बोला
कि—“हे महाराज ! तुम जानते ही हो कि—भीमने पहिले मेरे
बान्धव हिडिम्बको, वकको और किर्मीरको मार डाला है, और तो
वया उसने हिडिम्बाका शील भी बिगाड़ा है । ॥ ६-७ ॥ रे !
उसने हम सबोंका तिरस्कार कर यह काम किया है, अतः हे राजन् !
मैं स्वयं घोड़े, रथ, हाथी पैदल और मंत्रियोंसहित हिडिम्बाके
पुत्रके नाश करनेकी आज्ञा माँगनेके लिये आपके पास आया हूँ,
आज मैं वासुदेवप्रधान सब पाण्डवोंको तथा घटोत्कचको उसके
अनुचरोंसहित मारकर खाजाऊँगा, अतः तुम अपनी सेनाको
रणमेंसे पीछेको हटा लो, आज हम राक्षस ही पाण्डवोंके साथ
लड़ेंगे” ॥ ८-१० ॥ उस राक्षसकी इस बातको सुनकर दुर्योधन
प्रमन्नहुआ और उसने अपने भाइयोंके सामने उससे कहा,
कि—॥ ११ ॥ “हम तुमको तुम्हारी राक्षससेनासहित अग्रणी
बनाकर पाण्डवोंके साथ लड़ेंगे, क्योंकि—मेरे सैनिकोंके मनमें भी
वैरशि जल रहा है, अतः वे शान्त होकर नहीं बैठेंगे” ॥ १२ ॥

राक्षसपुङ्गवः । अभ्ययात्त्वरितो भीमं सहितः पुरुषादकैः ॥ १३ ॥
दीप्यमानेन वपुषा रथेनादित्यवर्चसा । तादृशेनैव राजेन्द्र यादृ-
शेन घटोत्कचः ॥ १४ ॥ तस्याप्यतुलनिर्घोषो बहुतोरणचित्रितः
ऋक्षचर्मवन्द्वांगो नज्वमात्रो महारथः ॥ १५ ॥ तस्यापि तुरगाः
शीघ्रा हस्तिकायाः स्वरस्वनाः । शतं युक्ता महाकाया मांसशोणित-
भोजनाः ॥ १६ ॥ तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः । तस्यापि
सुमहत्चापं दृढज्यं कनकोज्ज्वलम् ॥ १७ ॥ तस्याप्यक्षसमा घाणा
रुक्मपुंखाः शिलाशिताः । सोऽपि वीरो महाबाहुर्धैर्यवान् स घटो-
त्कचः ॥ १८ ॥ तस्यापि गोमायुवलाभिगुप्तो बभूव केतुर्ज्वलना-

“अच्छा ऐसा ही करो” यह कहकर राक्षसोंका राजा अलायुध
राक्षसोंको अपने साथ लेकर उतावला २ घटोत्कचके सामने लड़ने
का गया १३ हे राजेन्द्र ! जैसे घटोत्कच तेजस्वी था तैसे ही यह
राक्षस भी तेजस्वी था, घटोत्कच सूर्यकी समान एक तेजस्वी रथमें
बैठा था तैसे ही सूर्यकी समान तेजस्वी रथमें अलायुध भी बैठा
था ॥ १४ ॥ अलायुधके रथकी घनघनाहट बहुत होती थी, बहुतसे
तोरणोंके कारण उसका रथ विचित्र दीखता था, वह रीछके
चमड़ेसे चारों ओरसे मढ़ा हुआ था और वह रथ चारसौ हाथ
मोटा था ॥ १५ ॥ और उसमें सौ घोड़े जुत रहे थे यह घोड़े
शीघ्रतासे चलनेवाले थे, उनका शरीर हाथीकी समान मोटा था, वे
घोड़े तीक्ष्ण हिमहिनाहट करने वाले और मांस तथा रुधिरका
भोजन करने वाले थे, उसके रथकी घनघनाहट महामेघकी समान
होती थी, उसका धनुष मोटा, दृढ़ प्रत्यञ्चा वाला और सुवर्णकी
समान उज्ज्वल था ॥ १६-१७ ॥ शिलाके ऊपर घिसकर तेज
किये हुए और सुवर्णकी पूँछ वाले उसके बाण भी रथके धुरे
की समान लम्बे थे, जैसे घटोत्कचके पास युद्धसाग्री भरपूर थी
तैसे ही महाशुन शूर राक्षस अलायुध भी सापग्रीसे लैस था १८

कृतुल्यः । स चापि रूपेण घटोत्कचस्य श्रीमत्तमो व्याकुलदीपिता-
स्यः ॥ १६ ॥ दीप्ताङ्गो दीप्तकिरीटमाली बद्धस्रगुष्णी निबद्ध-
खड्गः । गदी भुशुण्डी मुसली बली च शरासनी वारणतुल्य-
वर्ष्मा ॥ २० ॥ रथेन तेनानलवर्चसा तदा विद्रावयन् पाण्डव-
वाहिनीं ताम् । रराज संख्ये परिवर्त्तमानो विद्युन्माली मेघ इवा-
न्तरिक्षे ॥ २१ ॥ ते चापि सर्वे प्रवरा नरेन्द्रा महाबलाः बर्हिण-
श्चर्मिणश्च । हर्षान्विता युयुधुस्तत्र राजन् समन्ततः पाण्डव-
योधवीराः ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुध-
युद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

सञ्जय उवाच । तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्षाणमाहवे । हर्षमा-

उसके रथका ध्वजदण्ड गीदड़ोंकी सेनासे रक्षित तथा अग्नि और
सूर्यकी समान भलभलाती हुई कान्ति वाला था रूपमें वह
घटोत्कचसे पहकर था, परन्तु क्रोधके कारण उसका मुख व्याकुल
सा तथा अग्निकी समान लाल दीखता था ॥ १६ ॥ वह हाथोंमें
चमकते हुए बाजूबन्द पहर रहा था माथे पर चमकता हुआ मुकुट
धारण किये हुए था, उसके कण्ठमें पुष्पोंकी माला पड़ी हुई थी,
मस्तकपर पगड़ी बँध रही थी, कमरमें तलवार लटक रही थी, गदा
भुशुण्डी, मुसल, हल इतने शस्त्र उसके पास रखे हुए थे, उसका
शरीर हाथीकी समान था ॥ २० ॥ वह जिस समय अग्निकी
समान रथमें बैठ पाण्डवोंकी सेनाको भगाने लगा, उस समय वह
आकाशमें घूमता हुआ मेघ जैसे विजलीसे शोभा पाता है-तैसे
रणमें घूमता हुआ शोभा पारहा था २१ हे राजन् ! पाण्डवपक्षके
महाबलवान् शूर राजे हर्षमें भरकर उसके साथ चारों ओरसे युद्ध
करने लगे ॥ २२ ॥ एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७६ ॥
सञ्जयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! रणमें भयंकर कर्म करने वाले

हारयाञ्चक्रुः कुरवः सर्व एव ते ॥ १ ॥ तथैव तव पुत्रास्ते दुर्यो-
धनपुरोगमाः । अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुं कामा इवार्णवम् ॥ २ ॥
पुनर्ज्जातमित्रात्मानं मन्वानाः पुरुषर्षभाः । अलायुधं राक्षसेन्द्रं
स्वागतेनाभ्यपूजयन् ॥ ३ ॥ तस्मिंस्त्वमानुषेऽयुद्धे वर्त्तमाने भया-
वहे । कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणमतिदर्शने ॥ ४ ॥ उपमैत्रन्त
पञ्चालाः स्मयमानाः सराजकाः । तथैव तावका राजन् वीक्ष्य-
माणास्ततस्ततः ॥ ५ ॥ चुक्रुशुर्नदमस्तीति द्रोणद्रोणिक्लृपादयः । तत्
कर्म दृष्ट्वा सम्भ्रान्ता हैहिम्बस्य रणजिरे ॥ ६ ॥ सर्वमादिशन्म-
भवद्वाहाभूतमचेतनम् । तव सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते ७
दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य कर्णमार्तिं परां गतम् । अलायुधं राक्षसेन्द्र-
माहूयेदमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ एष वैकर्त्तनः कर्णो हैहिम्बेन समा-

अलायुधको सेनासहित चढ़ते हुए देख कर सब कौरव योधा
हर्षमें भर गए ॥ १ ॥ और समुद्रको तरनेकी इच्छावाले नौका-
रहित मनुष्य जैसे नौका मिल जानेपर सन्तोष पाते हैं, तैसे
ही तुम्हारे पुत्र दुर्योधन आदि उस राक्षसकी सहायता मिलने पर
अपना नया जन्म हुआ समझने लगे और उन राक्षसोंका आगत
स्वागत करने लगे ॥ २ ॥ ३ ॥ इस समय कर्ण और घटोत्कचमें
महाभयंकर, दारुण और अमानुषिक रात्रियुद्ध चल रहा था, उस
युद्धको देख कर राजा युधिष्ठिर तथा पाञ्चालराजे आश्चर्यमें पड़
गए तुम्हारे पक्षके योधा-हमारा पक्ष नहीं बचेगा-यह कहने लगे
और द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि योधा घटोत्कचके
कर्मको देखकर घबराहटमें पड़ गए ॥ ४-६ ॥ हे महाराज! तुम्हारी
सारी सेना डरके मारे भानरहित होगई थी, यह हाहाकार करने लगी
और कर्णके जीवनसे निराश होगई ॥ ७ ॥ दुर्योधनने कर्णको
बड़े भारी संकटमें पड़ा हुआ देख कर राक्षसोंके राजा अलायुधसे
कहा कि ॥ ८ ॥ “यह भूतपत्र कर्ण हिडिम्बाके पुत्रके साथ लड़

गतः । कुर्वते कर्म सुमहद्यदस्यौपयिकं मृधे ॥ ६ ॥ पश्यैतान् पार्थि-
वान् शूरान् निहतान् भैमसेनिना । नानाशस्त्रैरभिहतान् पादपा-
निव दन्तिना ॥ १० ॥ तत्रैष भागः सपरे राजमध्ये मया कृतः ।
तवैवानुपते वीर तं विक्रम्य निवर्हय ॥ ११ ॥ पुरा वैकर्त्तनं कर्ण-
मेव पापो घटोत्कचः । मायाबलमुपाश्रित्य मां हन्याच्छत्रुकर्षण १२
एवमुक्तः स राजा तु राक्षसस्तीव्रविक्रमः । तथेत्युक्त्वा महाबाहु-
र्घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ १३ ॥ ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि
प्रभो । प्रत्यग्नित्रमुपायान्तं मर्दयामास मार्गणैः ॥ १४ ॥ तयोः सम-
भयद्युद्धं क्रुद्धयो रक्षसेन्द्रयोः । मत्तयोर्वासिताहेतोर्द्विपयोरिव
कानने ॥ १५ ॥ राक्षसादिप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनाम्बरः । अभ्य-

रहा है और रणमें अपनी शक्तिके अनुसार बड़ा भारी पराक्रम
दिखा रहा है ॥ ६ ॥ तथा हाथी जैसे वृत्तोंका संहार करता है,
तैसे ही घटोत्कच भी अनेक शस्त्रोंसे बड़े २ शूरोंका संहार कर
रहा है, इसकी ओर तुम देखो ॥ १० ॥ हे शत्रुओंका संहार करने
वाले राक्षसराज ! यह पापी घटोत्कच इस समय अपनी मायाके
बलका आश्रय कर वैकर्त्तन कर्णको दुःख दे रहा है ! हे शूर ! तुने
मुझसे अपना विचार कहा है, इससे ही मैंने भी तुम्हें इस युद्धमें
शामिल कर (मिला) लिया है, अतः तूभी संग्राममें भाग ले,
और पराक्रम कर घटोत्कचका नाश कर” ॥ ११-१२ ॥ इस
प्रकार दुर्योधनने कहा तब महाभयंकर पराक्रमी तथा महाबुद्धि
अलायुधने बहुत अच्छा कहकर घटोत्कचके ऊपर चढ़ाई की १३
हे राजन् ! घटोत्कच भी शत्रुको सामने आता देख कर कर्णको
छोड़ कर बाणोंके पहारोंसे अलायुधको पाड़ित करने लगा ॥ १४ ॥
वनमें जैसे दो मत्त हाथी एक हथिनीके लिये युद्ध करते हैं,
तैसे ही कोपमें भरे हुए वे दोनों राक्षसेन्द्र एक दूसरेके साथ युद्ध
करने लगे ॥ १५ ॥ युद्धमें राक्षससे छूटा हुआ महारथी कर्ण

द्रवक्षीमसेनं रथेनादित्यवर्चसा ॥ १६ ॥ तमायान्तमनादृत्य दृष्ट्वा प्रस्तं
घटोत्कचम् । अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवाम्पतिम् ॥ १७ ॥
रथेनादित्यवपुषा भीमः प्रहरताम्बरः । किरन् शरौघान् प्रयथा-
बलायुधरयं प्रति ॥ १८ ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदालायुधः
प्रभो । घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समादधत् ॥ १९ ॥ तं भीमः
सहसाम्भेत्य राज्ञसान्तकरः प्रभो । सगणं राज्ञसेन्द्रं तं शरवर्षैर-
वाकित् ॥ २० ॥ तथैवालायुधो राजन् शिलाधीर्तरजिह्मगैः ।
अभ्यवर्षत कौन्तेय पुनः पुनरिन्दमः ॥ २१ ॥ तथा ते राज्ञसाः
सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन् । नानाप्रहरणा भीमास्त्रत्सुतानां जयै-
षिणः ॥ २२ ॥ स ताड्यमानो बहुभिर्भीमसेनो महाबलः । पञ्चभिः

सूर्यकी समान भलभल्लाते हुए तेजस्वी रथके ऊपर चढ़ कर
भीमकी सेनाकी ओर गया ॥ १६ ॥ परन्तु सिंह जैसे बैलको
दबोच लेता है, तैसे अलायुधने रणमें घटोत्कचको सपाटेमें लेलिया
है-यह देख कर भीमने कर्णका अनादर किया, अर्थात् वह उसके
सामने लड़नेको नहीं गया ॥ १७ ॥ परन्तु वह सूर्यका समान चमकते
हुए रथमें बैठ बाणोंकी वृष्टि करता हुआ अलायुधके रथकी ओर
अपने रथको बढ़ाने लगा ॥ १८ ॥ हे राजन् ! अलायुधने भीमको
आता देख कर उससे ही समय घटोत्कचको छोड़ कर भीमको
रणके लिये निमन्त्रण दिया ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! राज्ञसका संहार करने
वाला भीमसेन अलायुधके ऊपर एकाएक हल्ला लेगया
और उसके ऊपर तथा उसके अनुचरोंके ऊपर बाणोंकी
वृष्टि करने लगा ॥ २० ॥ हे अरिदमन राजन् ! अलायुध
भी पथर पर विसंकर तेज कियेहुए और सरलतासे जानेवाले
बाण तला ऊपर कुन्तीपुत्रके ऊपर बरसाने लगा ॥ २१ ॥
तथा तुम्हारे पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले सब भयङ्कर राज्ञस भी
अनेक प्रकारके आयुध लेकर भीमके सामने लड़नेको दौड़ गए ॥ २२ ॥

पञ्चभिः सर्वास्तानविध्यच्छितैः शरैः ॥ २३ ॥ ते युध्यमाना
भीमेन राक्षसाः क्रूरयुद्धयः । विनेदुश्च महानादान् दुद्रुवुश्च दिशो
दश ॥ २४ ॥ तांस्त्रास्यमानान् भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम् ।
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत् ॥ २५ ॥ तं भीमसेनः समरे
तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः । अलायुधस्ततस्तांस्तान् भीमेन विगिखा-
त्रणे ॥ २६ ॥ चिच्छेद् कांश्चित् समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत् ।
स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ॥ २७ ॥ गदाश्विक्तेप
वेगेन वज्रपातोपमां तदा । तामापतन्तीं वेगेन गदां ज्वालाकुलां
ततः ॥ २८ ॥ गदया ताडयामास सा गदा भीममाब्रजत् । स
राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २९ ॥ तानप्यस्याकरो-
न्मोघान् राक्षसो निशितैः शरैः । ते चापि राक्षसाः सर्वे रजन्त्या

और वे सब राक्षस महाबलवान् भीमसेन पर बाणोंका प्रहार
करने लगे, भीमने उन सबोंके पाँच २ तीक्ष्ण बाण मारे २३तब
भीमके प्रहारसे क्रूर राक्षस व्याकुल होकर तुमुलनाद करते हुए
चारों ओर भागने लगे ॥ २४ ॥ भीमसेनसे डर कर राक्षस भाग
रहे हैं, यह देखकर महाबली राक्षस अलायुध फुर्तीके साथ भीम-
सेनके रथकी ओर दौड़ा और उसके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने
लगा ॥ २५ ॥ भीमसेन भी रणमें उसके ऊपर तीक्ष्ण धार वाले
बाण मारने लगा, तब इस युद्धमें भीमके मारे हुए पृथक् २ बाणों
मेंसे कितने ही बाणोंको उसने काटडाला और कितने ही बाणोंको
फुर्तीसे हाथमें पकड़ लिया, तब भयंकर पराक्रमी भीमसेनने उस
राक्षसराजकी ओर देख कर वज्रपातकी समान तीक्ष्ण पात वाली
गदा फेंकी, अपनी ओर आती हुई अग्निज्वालाकी समान प्रज्वलित
होती हुई भीमकी गदाको राक्षसने उसके ऊपर अपनी गदा मार
कर भीमकी ओरही धकेल दिया, फिर भीमसेन राक्षसराजके ऊपर
बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ २६-२९ ॥ तब राक्षसराजने तेज

भीमरूपिणः॥३०॥शासनाद्राक्षसेन्द्रस्य निजानुरथ कुञ्जरान् ।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः ॥ ३१ ॥ न
शांतिं लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः । तं दृष्ट्वा तु महाघोरं वर्त्त-
मानं महाहवम्॥३२॥अत्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमिदं वचः ।
पश्य भीमं महाबाहुं राक्षसेन्द्रवशङ्कनम् ॥ ३३ ॥ पदगस्यानुगच्छ
त्वं मा विचारय पाण्डव । धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यु-
यौजसौ ॥ ३४ ॥ सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः ।
नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीचान् ॥ ३५ ॥ इतरात्राक्षसान्
घ्नन्तु शासनात्तव पाण्डव । त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुर-
स्कृताम् ॥ ३६ ॥ नरव्याघ्र महाबाहो महद्भि भयमागतम् । एव-
मुक्ते तु कृष्णेन यथोद्दिष्टा महारथाः ॥ ३७ ॥ जग्मुर्वकर्त्तनं

कियेहुए बाण मारकर भीमके बाणोंको निष्फल करदिया । जैसे
अलायुध लड़ रहा था, तैसे ही उस राक्षसराजकी आज्ञासे दूसरे
भयंकर आकृतिवाले राक्षस भी इस रात्रिमें इस युद्धके समय रथ
हाथी तथा घोड़ोंका संहार करनेलगे, तब पाञ्चाल राजे, सृञ्जय
राजे घुड़सवार तथा बड़े हाथीसवार राक्षसोंकी मारसे बड़े ही
पीडित होगए, वे बहुत ही घबड़ागए थे, तब कपलनयन श्रीकृष्णने
इस महाभयंकर संग्रामको देखकर अर्जुनसे कहा, कि "हे अर्जुन !
महाशुज भीमसेन राक्षसराज अलायुधके फन्देमें पड़ गया है, इसकी
ओर तू ध्यान दे ॥३०-३३॥ हे पाण्डुपुत्र ! नू इस समय इसकी
सहायता करनेके लिये जा और कुछ विचार मत कर, हे अर्जुन !
तेरी आज्ञासे महारथी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, युधामन्यु, उत्तमोजा
और द्रौपदीके महारथी पुत्र कर्णके ऊपर चढ़ाई करेंगे, नकुल,
सहदेव तथा पराक्रमी युयुधान तेरी आज्ञासे राक्षसोंका संहार
करेंगे और हे महाशुज अर्जुन ! जिस सेनाके मुख पर द्रोण खड़े
हैं, उस सेनाको तू रणमें पीछेको हटा दे, क्योंकि-हे नरव्याघ्र !

कर्णं राक्षसाश्चैव ताञ्जणे । अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषो-
पमैः ॥ ३८ ॥ धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् । हयां-
श्चैव शितैर्वाणैः सारथिञ्च महाबलः ॥ ३९ ॥ जघान् मिषतः
संख्ये भीमसेनस्य राक्षसः । सोऽवतीर्य रथोपस्थादुताश्वो हत-
सारथिः ॥ ४० ॥ तस्मै शुर्वीं गदां घोरां विनदन्नुत्ससर्ज ह ।
ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम् ॥ ४१ ॥ गदया राक्षसो
घोरो निजघान तनाद च । तद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भया-
वहम् ॥ ४२ ॥ भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामुग्रां परामृशत् । तयोः
समभवद्युद्धं तुमुलं नररक्षसोः ॥ ४३ ॥ गदानिपातसंहादैर्भुवं
क्रम्पयतोर्भृशम् । गदाविमुक्ती तौ भूयः समासाद्येतरतरम् ॥ ४४

हथारे ऊपर बड़ीभारी आपत्ति पड़नेवाली है इसप्रकार श्रीकृष्णने
अर्जुनसे कहा, तब (पाण्डव पक्षके) महारथी राजे सूर्ययुत्र कर्णके
ऊपर चढ़ गए और दूसरे योधा राक्षसोंसे लड़नेके लिये गए,
इतने समयमें तो प्रतापी राक्षसराजने धनुषकी डोरीको कानतक
खेँच विपैले सपोंकी समान वाण मारकर भीमके धनुषको काट
डाला, फिर उस महाबलवान् राक्षसने भीमके सामने ही तीक्ष्ण
वाण मारकर उसके घोड़ोंका और सारथिका भी नाश कर
डाला ॥ ३४-३९ ॥ घोड़े और सारथिके नष्ट होते ही भीमसेन
तुरन्त ही रथ परसे उतर पड़ा और महागर्जना की, फिर उसने
बहुत ही भारी भयंकर गदा राक्षसके ऊपर फेंकी और उस महा-
भयंकर राक्षसराजने भी बड़ीभारी झनझनाहटके साथ आती
हुई उस गदाके ऊपर अपनी गदा फेंककर बड़ीभारी गर्जना की,
भीमसेन राक्षसराजका ऐसा महाभयंकर और घोर कर्म देखकर
मनमें प्रसन्न हुआ और तुरन्त ही हाथमें दूसरी गदा उठा ली,
धनुष्य और राक्षसके बीचमें महाभयंकर गदायुद्ध होने लगा ४०-४३
इस युद्धमें दोनों योधा एक दूसरेके ऊपर गदाका महार कर उसकी

(११६४) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौअठहत्तरवाँ]

मुष्टिभिर्वज्रसंहादैरन्योऽन्यमभिजघ्नतुः । रथचक्रैर्युगैरक्षरधिष्ठा-
नैरुपस्करैः ॥४५॥ यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुरमर्षणौ । तौ वित्त-
रन्तौ रुधिरं समासाद्येतरतरम् ॥४६॥ मत्ताविव महानागौ चक्रुपाते
पुनः पुनः । तदपश्यदृष्वीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ॥ ४७ ॥
स भीमसेनरक्षार्थं हिडिम्बि प्रत्यचोदयत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अला-
युधयुद्धे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

सञ्जय उवाच । संदश्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात् ।
वामुदेवोऽब्रवीद्राजन् घटोत्कचमिदं वचः ॥ १ ॥ पश्य भीमं महा-

ध्वनिसे पृथ्वीको बड़े वेगसे कँपारहे थे, इस प्रकार गदायुद्ध करनेके
पीछे वे दोनों मुष्टियुद्ध करनेलगे ॥ ४४ ॥ इस युद्धमें मुक्कोंके
शब्द वज्रके कडाकेकी समान होते थे, मुष्टियुद्ध होनेके पीछे
ईपामें भरेहुए वे दोनों योधा रथके पहिये, जुए, धुरे, रथकी
टेकडियें तथा दूसरे उपस्कर जो कुछ समीपमें पड़ा हुआ दीखता
था उसको ही उठाकर दूसरेपर फेंकनेलगे, उससमय उन दोनोंके
शरीरोंमेंसे रुधिर निकलरहा था, फिर वे दोनों महामदमत्त
हाथीकी समान युद्ध करनेलगे और बारम्बार एक दूसरेको
खेंचनेलगे, उससमय वे दोनों मदमत्त हाथियोंकी समान दीखते
थे, यह सब युद्ध पाण्डवोंके हितैषी हृषीकेश श्रीकृष्ण रणभूमिमें
खड़ेहुए देखरहे थे ॥४५-४७॥ उन्होंने भीमसेनकी रक्षा करनेके
लिये हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचको लडनेके लिये आज्ञा
दी ॥ ४८ ॥ एकसौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७७ ॥

सञ्जयने कहा, कि हे राजन् ! श्रीकृष्णने रणमें खड़े रहकर
राक्षसराजने भीमसेनको किस प्रकार दबा लिया है, यह समीपमें
खड़ेहुए घटोत्कचको बताया और कहा कि-हे बड़ीशुजा और बड़ी
भारी कान्तिवाले घटोत्कच ! सब सेनाओंके और तेरे सामने इस

बाहो रत्नसा ग्रस्तमाहवे । पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महा-
 युते ॥ २ ॥ स कर्णं त्वं समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम् । जहि
 क्षिप्रं महाबाहो पश्चात् कर्णं वधिष्यसि ॥ ३ ॥ स बाष्पेयवचः
 श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान् । युयुधे राक्षसेन्द्रेण वकभ्रात्रा घटो-
 त्कचः ॥ ४ ॥ तयोस्तु तुमुलं युद्धं बभूव निशि रत्नसोः । अला-
 युधस्य चैवोग्रं हैडिम्बस्य च भारत ॥ ५ ॥ अलायुधस्य योधास्तु
 राक्षसान् घोरदर्शनान् । वेगेनापततः शूरान् प्रगृहीतशरासनान्
 आत्तायुधः सुसंकुद्धो युयुधानो महारथः । नकुलः सहदेवश्च विभि-
 दुर्निशितैः शरैः ॥ ७ ॥ सर्वैश्च समरे राजन् किरीटी क्षत्रिय-
 र्षभान् । परिचित्तेषु वीर्यमयैः सर्वतः प्रक्षिपन् शरान् ॥ ८ ॥ कर्णश्च
 समरे राजन् व्यद्रावयत पार्थिवान् । धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन्
 पाञ्चालानां महारथान् ॥ ९ ॥ तान् वध्यमानान् दृष्ट्वा तु भीमो

राक्षसराजने रणमें भीमसेनको अपने सपाटेमें ले लिया है,
 इसको ओर लो दृष्टि कर ! ॥१-२॥ हे महायुध ! इस समय तू
 कर्णके साथ लड़ना छोड़ दे और राक्षसराज अलायुधका शीघ्र
 ही संहार कर, फिर कर्णको मारना ! ॥३॥ पराक्रमी घटोत्कच
 श्रीकृष्णका कहना सुनकर वकके भाई राक्षसराज अलायुधके
 साथ लड़नेको गया ॥४॥ और हे भरतवंशी राजन् ! अलायुध
 तथा हैडिम्बापुत्र घटोत्कच इन दोनों राक्षसोंमें रात्रिके समय
 अत्यन्त तुमुल तथा उग्र युद्ध होनेलगा ॥५॥ दूसरी ओर क्रोधमें
 भरेहुए आयुधधारी महारथी सात्यकि, नकुल और सहदेव तीक्ष्ण
 बाणोंको छोड़ सामने आतेहुए और भयंकर दिखाववाले अला-
 युधके राक्षस योधाओंको नष्ट करनेलगे ॥ ६-७ ॥ अर्जुन चारों
 ओर बाण मारकर रणभूमिमें लड़तेहुए सब बड़े योधाओंका
 संहार करनेलगा ॥८॥ और हे राजन् ! कर्ण भी धृष्टद्युम्न तथा
 शिखण्डी आदि पाञ्चाल महारथियोंको बाण मारकर रणभूमिमें

(११६६) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौअठहत्तरवाँ

भीमपराक्रमः॥ अभ्ययात्वरितः कर्णं विशिखान् विकिरन् रणो १०
ततस्तेप्याययुर्हत्वा राज्ञसान् यत्र सूतजः । नकुलः सहदेवश्च
सात्यकिश्च महारथः ॥ ११ ॥ ते कर्णं योधयामासुः पञ्चाला
द्रोणमेव तु । अलायुधस्तु संकुद्धो घटोत्कचमरिन्दमम् । परिघेना-
तिकायेन ताडयामास मूर्धनि ॥ १२ ॥ स तु तेन प्रहारेण भैम-
सेनिर्यहाव्रलः । ईषन्मूर्च्छितमात्मानं संस्तम्भयत वीरवान् ॥ १३ ॥
ततो दीप्ताग्निसङ्काशां शतघण्टामलंकृताम् । चित्तेषु समरे तस्मै
गदां काञ्चनभूषिताम् १४सां हयांश्च रथं चास्य सारथिञ्च महा-
स्वना । चूर्णयामास वेगेन विस्मृष्टा भीमकर्मणा ॥ १५ ॥ स
भग्नहयचक्राक्षादिशीर्षध्वजकूबरात् । उत्पपात रथात्तूर्णं गायामा-

से भगाने लगा ॥ १६ ॥ भयंकर पराक्रम करनेवाला भीम पाश्चात्तोंको
नष्ट होतेहुए देखकर फुर्तीसे कर्णके सामने लड़नेको दौड़ आया
और उसके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १० ॥ महारथी नकुल
सहदेव तथा सात्यकि राजाओंका संहार कर जहाँ कर्ण लड़ रहा
था, तहाँ आकर कर्णके साथ लड़नेलगे और पाञ्चाल राजे द्रोणके
सामने लड़नेलगे, घटोत्कचके सामने लड़तेहुए अलायुधको बड़ा
क्रोध चढ़ा तब उसने शत्रुको पीड़ित करनेवाले घटोत्कचके मस्तक
पर एक बड़े परित्रका प्रहार किया । ॥ ११-१२ ॥ उस प्रहारसे
घटोत्कचको कुछ मूर्छा आगई परन्तु उसने महाबलवान्
होनेसे अपने शरीरको गिरने नहीं दिया ॥ १३ ॥ और सावधान
होकर प्रज्वलित अग्निकी समान भलभल्लाती हुई, सौ फुल्लियों
वाली, सुवर्णसे मढ़ी हुई तथा सजाई हुई गदा अलायुधके ऊपर
वेगसे फेंकी ॥ १४ ॥ भयंकर कर्मा करनेवाले घटोत्कचके द्वारा
वेगसे फेंकी हुई और बड़ीभारी भनभनाहट करती हुई उस
गदासे अलायुधके घोड़े, सारथि और रथका चूगर हो गया १५
जब रथ, घोड़े पहिये धुरे, ध्वजा तथा टेढ़डियोंका चूरा २ हो गया,

स्थाय राक्षसीम् ॥ १६ ॥ स समास्थाय मायान्तु वर्ष वर्ष रुधिरं बहु ।
 विद्युद्भिभ्राजितञ्चासीत्तिमिराभ्राकुलं नभः ॥ १७ ॥ ततो वज्र-
 निपाताश्च साशनिस्तनयित्नवः । महाश्चटचटाशब्दस्तत्रासीच्च
 महाहवे ॥ १८ ॥ तां प्रेक्ष्य महतीं मायां राक्षसो राक्षसेन तु ।
 ऊर्ध्वमुत्पत्य हैदिम्बिस्तां मायां माययावधीत् ॥ १९ ॥ सोऽपि-
 वीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि । अश्मवर्षं मुतुमुलं विस-
 सर्ज घटोत्कचे ॥ २० ॥ अश्मवर्षं स तद् घोरं शरवर्षेण वीर्यवान्
 दिक्षु विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २१ ॥ ततो नानाप्रह-
 रणैरन्योन्यमभिवर्षताम् । आयसैः परिघैः शूलैर्गदामुसलमुद्गरैः २२
 पिनाकैः करवालैश्च तोमरप्रासकम्पनैः । नाराचैर्निशितैर्भञ्ज-
 शरैश्चक्रैः परश्वधैः । अयोगुडैर्भिन्दिपालैर्गोशीर्षोलूखलैरपि २३

तब वह राक्षस तुरन्त ही स्थलसे नीचे उतर पड़ा और राक्षसी
 मायाको धारण कर आकाशमेंको उड़ा ॥ १६ ॥ और अपनी
 मायाके प्रभावसे पृथ्वीके ऊपर बहुतसी धूल और रक्त बरसाने
 लगा, तुरत आकाशमें विजलिये चमकनेलगी, तुमुल मेघमण्डलोंसे
 आकाश छागया, आकाशमेंसे रणभूमिके ऊपर वज्र गिरनेलगे,
 शक्तियोंके साथ बादल गरजनेलगे, बड़े-कडाके होनेलगे १७-१८
 राक्षस घटोत्कचने उस राक्षसकी महामायाको देखकर, उसके
 सामने नई माया उत्पन्न की, उससे उसकी मायाका नाश कर
 डाला ॥ १९-॥ मायावी घटोत्कचने मेरी मायाको नष्ट करडाला
 यह देखकर मायावी राक्षस अलायुध घटोत्कचके ऊपर पत्थरोंकी
 तुमुल वृष्टि करनेलगा ॥ २० ॥ परन्तु पगाकपी घटोत्कचने बाणोंकी
 वृष्टि कर पत्थरोंकी भयंकर वृष्टिको नष्ट करडाला, यह कर्म
 अद्भुत था ॥ २१ ॥ फिर वे दोनों एक दूसरेके ऊपर अनेकों
 प्रकारके आयुधोंकी वृष्टि करनेलगे, उस महायुद्धमें दोनों राक्षस
 योधा, लोहेके परिघ, विशूल, गदा, मूसल, मुगदर, पिनाक,
 तलवार, तोमर, प्रास, कम्पन, नाराच तीक्ष्ण भञ्ज, बाण, चक्र,

उत्पाटय च महाशालं विविधैर्जगतीरुहैः । शपीपीलुकदम्बैश्च
चम्पकैश्चैव भारत ॥ २४ ॥ इंगुदीवदरोभिश्च कोविदारैश्च
पुष्पितैः । पलाशैररिमेदैश्च प्लक्षान्यग्रोवपिप्पलैः ॥ २५ ॥
महद्भिः संयुगे तस्मिन्नन्योऽन्यमभिजग्नतुः । विविधैः पर्वताग्रैश्च
नानाधातुभिराचितैः ॥ २६ ॥ तेषां शब्दो महानासीद्वज्राणां भिद्य-
तामिव । युद्धं तत्राभवद् घोरं भैम्यलायुधयोर्नृप ॥ २७ ॥ हरी-
न्द्रयोर्यथा राजन् वालिसुग्रीवयोः पुरा । तौ युध्वा विविधैर्मोर्नरा-
युधैर्विशिखैस्तदा ॥ २८ ॥ प्रगृह्य निशितां खड्गावन्यो-
न्यमभिपेततुः । तावन्योऽन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहोवली ।
भुजाभ्यां परिसृहीतां महाकायौ महाबली ॥ २९ ॥ अभि-
न्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप । रुधिरञ्च महाकायावति-

फरसे, अयोगुड, भिन्दिपाल, गोशीर्ष उलूखल, पृथ्वीमेंसे उखाड
कर निकालेहुए शमी, पीलु, कदम्ब, चम्पा, इमली, बेर, पुष्पित,
कोविदार, साल, अरिमेद, वड़, पीपल, सेमर आदि वृक्ष तथा
अनेक प्रकारकी धातुओंवाले महापर्वतोंके शिखर आदि लेकर
प्रहार करनेलगे २२-२६ इस समय एक दूसरेसे भिडतेहुए उनका
वज्रोंके शब्दकी समान शब्द होरहा था, हे राजन् ! घटोत्कच
और अलायुधमें जो युद्ध होरहा था, ॥ २७ ॥ वह युद्ध पूर्वकालमें
हुए बानरराज वालि और सुग्रीवके बीचमें हुए युद्धकी समान
था, इसप्रकार उन्होंने अनेक प्रकारके घोर आयुधोंसे तथा बाणोंसे
आपसमें युद्ध किया, फिर वे दोनों योधा तादृण खड्ग लेकर
आपसमें लड़नेलगे ॥ २८ ॥ खड्गयुद्ध करनेके पाछे दोनों बलशाली
और बड़े शरीरवाले वे दोनों योधा समीपमें जा एक दूसरेकी
चोटी पकड कर युद्ध करनेलगे, फिर परस्पर गुथ्यप्रगुथ्यी करने
लगे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! उन दोनोंके शरीर पसीनेसे भीग रहे थे
उनके शरीरोंमेंसे पसीनेके झरने निकल रहे थे और अतिवृष्टिके

दृष्टानिवाम्बुदौ ॥ ३० ॥ अथाभिपत्य वेगेन समुद्राम्य च राक्ष-
सम् । बलेनाक्षिप्य हैडिम्निश्चकर्त्तास्य शिरो महत् ॥ ३१ ॥
सोऽपहत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम् । ततः सुतुमुलं नादं
ननाद सुमहाबलः ॥ ३२ ॥ हतं दृष्ट्वा महाकायं वक्रजातिगिरिन्द-
मम् । पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान् विनेदरे ॥ ३३ ॥
ततो भेरीसहस्राणि शंखानामयुतानि च । अवादन्य पाण्डवेया-
स्तस्मिन् रक्षसि पातिते ॥ ३४ ॥ अतीव सा निशा तेषां बभूव
विजयावहा । विद्योतमाना विबधौ समन्तादीपमालिनी ॥ ३५ ॥
अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः । दुर्योधनस्य प्रमुखे चित्तोप-
गतचेतसः ॥ ३६ ॥ अथ दुर्योधनो दृष्ट्वा हतं वीरमलायुधम् ।

समय जैसे दो मेघ बरसते हैं, तैसे ही बड़े भारी शरीर
वाले उन दोनों योधाओंके शरीरोंमेंसे रुधिर गिर रहा
था ॥ ३० ॥ फिर घटोत्कचने देगसे दौडकर उस राक्षसको
पकड़ लिया और दोनों हाथोंसे पकड़ ऊपरको उसको अच्छी
प्रकार घुमाया और फिर वेगसे पृथ्वीके ऊपर पटक दिया फिर
महाबलशाली घटोत्कचने कुण्डलोंसे शोभायमान दीखतेहुए
उसके बड़ेभारी मस्तकको काटकर महाभयंकर गर्जना की ३१-३२
बड़े भारी शरीर वाले बकासुरके भाई अलायुधको मरा हुआ
देख कर पाञ्चाल तथा पाण्डव राजे रणके ऊपर सिंहनाद करने
लगे ॥ ३३ ॥ तथा युद्धमें राक्षसका नाश हुआ देख कर पाण्डवों
के योधा हर्षमें भर गए और सहस्रों भेरी तथा शंख बजाने लगे ३४
इस प्रकार दीपकोंसे प्रकाशित होती हुई वह शोभायगी रात्रि
पाण्डवोंके लिये जय देने वाली हुई ॥ ३५ ॥ फिर महाबलवान्
घटोत्कचने मरे हुए राक्षस अलायुधके मस्तकको हाथसे उठाया
और बिहल हुए दुर्योधनके सामने फेंक दिया ॥ ३६ ॥ और
हे राजन्! अलायुधके मस्तकको देख कर अलायुधको मरा हुआ

यधूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत ॥ ३७ ॥ तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं
भीमसेनमहं युधि । हन्तेति स्वयमागम्य स्परतः वैरमुत्तमम् ॥ ३८ ॥
ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः । जीवितश्चिरकालं हि
भ्रातृणामित्यमन्यत ॥ ३९ ॥ स तं दृष्ट्वा त्रिनिहतं भीमसेनात्मजेन
वै । प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवाभ्यमन्यत ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
अलायुधवधे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

सञ्जय उवाच । निहत्यालायुधं रत्नः महृष्टात्मा घटोत्कचः ।
ननाद विविधान्नादान् वादिन्याः प्रमुञ्चे स्थितः ॥ १ ॥ तस्य तं
तुमुलं शब्दं श्रुत्वा कुञ्जरकम्पनम् । तावकानां महाराज भयमा-
सीत् मुदारुणम् ॥ २ ॥ अलायुधविपक्तः तु भीमसेनि महाबलम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पञ्चालान् समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥ दशभिर्दश-

जान राजा दुर्योधन सेनासहित वडा ही खिन्न हुआ ३७
वह राजस अपने वैरका स्पर्ण कर दुर्योधनके पास आया था,
उसने दुर्योधनके सामने प्रतिज्ञा की थी कि—“मैं भीमको मार
ढालूँगा ॥ ३८ ॥ इससे दुर्योधनने समझा था कि—वह भीमको
अवश्य ही मार डालेगा और यह भी समझा था कि—अब मेरे
भाई चिरकाल तक जीवित रहेंगे ॥ ३९ ॥ परन्तु जब घटोत्कचने
अलायुधको मार डाला, तब दुर्योधनने समझा कि—भीमकी प्रतिज्ञा
पूरी ही होगी ॥ ४० ॥ एक सी अटहत्तरवां अध्याय समाप्त १७०

सञ्जयने कहा कि हे राजन् धृतराष्ट्र ! अलायुध राजसको मार
कर घटोत्कच मनमें प्रसन्न हुआ और तुम्हारी सेनाके सामने आ
हाथियोंको भी कैदा देने वाली महाभयंकर गर्जना करने लगा,
उसको सुनकर तुम्हारी सेनाके मनमें बडा भारी भय बैठ गया १-२
महाबलवान् भीमसेनका पुत्र घटोत्कच जिस समय अलायुधके
साथ लड़नेमें लग रहा था उस समय महाभुज कर्णने पञ्चाल

भिर्बाणैर्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ । दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विभेद नत-
 पर्वभिः ॥ ४ ॥ ततः परमनाराचैर्धुधामन्युत्तमौजसौ । सात्यकिं
 च रथोदारं कम्पयामास मार्मणैः ॥ ५ ॥ तेषामप्यस्यतां संख्ये
 सर्वेषां सव्यदक्षिणम् । मण्डलाभ्येव चापानि व्यदृश्यन्त जना-
 धिप ॥ ६ ॥ तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह । मेघाना-
 मित्र घर्मान्ते बभूव तुमुलो निरि ॥ ७ ॥ ज्यानेमिघोषस्तनयित्नु-
 मान्वै धनुस्तडिन्मण्डलकेतुशृङ्गः । शरीषवर्षाकुलवृष्टिर्माश्च संग्राम-
 मेघः स बभूव राजन् ॥ ८ ॥ तदद्भुतं शैल इवाप्रकम्पो वर्षं महा-
 शैलसमानसारः । बिध्वंसयामास रणो नरेन्द्र वैकर्त्तनः शत्रुगणा-
 बमर्दा ॥ ९ ॥ तोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैः शितैः शरैः काञ्चनचित्र-

राजाओंके ऊपर धावा किया था ॥ ३ ॥ उसने धृष्टद्युम्नके और
 शिखण्डीके नमी हुई गाँठवाले बहुत ही लम्बे और दृढ़ दशर-
 षाण मारे थे ॥ ४ ॥ तथा धुधामन्युको, उत्तमौजाको और महारथी
 सात्यकिको दूसरे बड़े बाणोंसे वीध कर कँपा दिया था ॥ ५ ॥
 हे राजन् ! तैसे ही पाण्डवपक्षके सकल योधा भी दाई और बाई
 ओरसे बाणोंका प्रहार करते थे उस समय वे बाण मण्डलाकार
 दीखते थे ॥ ६ ॥ वर्षाञ्चतुर्षु मेघ जैसे गर्जना करता है, तैसे ही
 इस समय योधाओंकी धनुषोंकी प्रत्यञ्चाओंका हाथकी तालियों
 का और रथोंके पहियोंका तुमुल शब्द हो रहा था ॥ ७ ॥ हे राजन् !
 प्रत्यञ्चा तथा रथके पहियोंके शब्दरूपी गर्जनावाला, धनुष, ध्वजा
 और पताकारूपी विजलीवाला, बाणोंके समूहरूप जलकी धारा
 वाला, रणसंग्रामरूपी मेघ चढ़ आया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उससमय
 महापर्वतकी समान बलवान् और शत्रुओंका संहार करनेवाले
 सूर्यपुत्र कर्णने रणभूमिमेंसे-पर्वत जैसे ढगमगाये बिना मेघको
 पीछेको लौटा देता है तैसे ही शत्रुओंकी बाणवृष्टिको पीछेको
 हटा दिया था ॥ ९ ॥ महात्मा कर्ण कि-जो तुम्हारे पुत्रोंका हित

पुंस्त्वैः । ऋत्रून्यपोहन् समरे महात्मा वैकर्त्तनः पुत्रहिते रतस्ते ॥ १० ॥
 संक्लिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचिच्चीक्षणैः शरैरदितभिन्नदेहाः ।
 केचिद्विस्मृता विहयश्च केचिद्वैकर्त्तनेनाशु कृता बभूवुः ॥ ११ ॥
 अविन्दमानास्त्वथ शर्म संख्ये यौधिष्ठिरं ते बलमभ्यपद्यन् । तान्
 प्रेक्ष्य भग्नान् विभुस्वीकृतांश्च घटोत्कचो रोपमतीव चक्रे ॥ १२ ॥
 आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं रथोत्तमं सिंहवत्संननाद । वैकर्त्तनं
 कर्णमुपेत्य चापि विन्याध वज्रप्रतिमैः पृथक्कैः ॥ १३ ॥ तौ कर्णि-
 नाराचशिलीमुखैश्च नालीकदण्डाशनिवत्सदन्तैः । वराहकर्णैः
 सविपाठशृङ्गैः क्षुरप्रवर्पैश्च विनेदतुः खम् ॥ १४ ॥ तद्वाणवर्पावृत-
 मन्तरिक्षं तिर्यग्गताभिः समरे रराज । सुवर्णपुंखज्वलितप्रभाभि-

करनेमें लगा हुआ था, उसने सुवर्णकी पूँछवाले, तीक्ष्ण किये हुए, वज्रकी समान घायल करनेवाले बाणोंसे रणमें शत्रुओंका संहार करना आरम्भ कर दिया ॥ १० ॥ कर्णने बाण छोड़नेकी फुर्तीसे, बहुतांकी ध्वजाओंको छिन्न भिन्न कर डाला कितनोंहीके शरीरोंको काट डाला, कितनोंहीको रथ, सारथि और घोड़े रहित कर दिया ॥ ११ ॥ इस युद्धमें जब पाण्डवोंके योधा अपना बचाव न कर सके, तब वे युधिष्ठिरकी सेनामें घुस गए, इस प्रकार अपनी सेनाको रणसे विमुख हो भागती हुई देखकर घटोत्कचको बड़ा क्रोध बढ़ा ॥ १२ ॥ तब वह सुवर्ण तथा रत्नोंसे जड़े हुए होनेके कारण विचित्र दीखते हुए श्रेष्ठ रथमें बैठकर सिंहकी समान दहाड़ता हुआ सूर्यपुत्र कर्णके सामनेको बढ़ा और उसके वज्रकी समान तीक्ष्ण बाण मारने लगा ॥ १३ ॥ दोनों योधाओंने वणि, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दण्ड, आसन, वत्सदन्त, वराहकर्ण, विपाठ, शृंग और क्षुरग नामक बाणोंकी एक दूसरेके ऊपर बृष्टि कर आकाशको छा दिया ॥ १४ ॥ मजाओंके ऊपरको फेंके हुए विचित्र प्रकारके पुष्पोंसे जैसे आकाश शोभा पाता है, तैसे ही

विचित्रपुष्पाभिरिव प्रजाभिः ॥ १५ ॥ समाहितावपन्निप्रभा-
वायन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः । तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्-
दर्श तस्मिन् समरे विशेषम् ॥ १६ ॥ अतीव तं चित्रमतुल्यरूपं
बभूव युद्धं रविभीषसूनुवोः । समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं दिवीव
राहेशुभतोः प्रपत्तम् ॥ १७ ॥ सञ्जय उवाच । घटोत्कचं यदा
कर्णो न विशेषयते नृपाततः प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदाम्बरः १८
तेनास्त्रेणावधीतस्य रथं सहयसारथिम् । विरथश्चापि हैडिम्बिः
क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १९ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन्नन्तर्हिते तूर्णं
कूटयोधिनि राक्षसे । मामकैः प्रतिपन्नं यत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय २०
सञ्जय उवाच । अन्तर्हितं राक्षसं तं विदित्वा सम्प्राक्रोशन् क्रुवः
सर्व एव । कथं नायं राक्षसः कूटयोधी हन्यात् कर्णं समरे दृश्य-

सुवर्णकी पूछोंसे तेजस्वी कान्ति वाले तिरछे छूटते हुए बाणोंसे
झाया हुआ आकाश शोभा पारहा था ॥ १५ ॥ दोनों योधा
अनुपम प्रभाववाले थे और सावधान थे, वे एक दूसरेके ऊपर
उत्तम-प्रकारके अस्त्रोंका प्रहार कर रहे थे, इस युद्धमें दोनों वीरों
मेंसे कोई भी दूसरेसे विशेष बली प्रतीत नहीं होता था ॥ १६ ॥
स्वर्गमें राहु और सूर्यके बीचमें जैसे शस्त्रोंके प्रहारसे भयङ्कर
और प्रपत्त युद्ध होता है, तैसे ही सूर्यके और भीमके पुत्रमें
अत्यन्त विचित्र और भयङ्कर युद्ध होनेलागा ॥ १७ ॥
सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! जब कर्ण घटोत्कचके साथ युद्ध
करनेमें उससे अधिक नहीं (प्रकाशित हुआ) बढ़ा, तब अस्त्र-
वेत्ताओंमें श्रेष्ठ कर्णने उग्र अस्त्र प्रकट किया ॥ १८ ॥ और उससे
उसके रथ, सारथी और घोड़ोंका नाश कर डाला, रथरहित होते
ही घटोत्कच अदृश्य होगया ॥ १९ ॥ धृतराष्ट्रने ब्रूभा, कि-
हे सञ्जय ! मायासे युद्ध करनेवाले घटोत्कचके उस ही समय
अदृश्य होजाने पर मेरे योधाओंने क्या किया ? यह मुझसे कह २०

मानः ॥ २१ ॥ ततः कर्णो लघुचित्राभ्रयोध्री सर्वा दिशः व्या-
वृणोद्वाणजालैः । न वै किञ्चित्पापतत्तत्र भूतं तपोभृते सायकै-
रन्तरिक्षे ॥ २२ ॥ नैवाददानो न च सन्दधानो न चेपुध्रीः
स्पृश्यमानः कराग्रैः । अदृश्यद्वै लाघवात् मूनपुत्रः सर्वैर्वाणैश्छा-
दयानोऽन्तरिक्षम् ॥ २३ ॥ ततो मायां विहितमन्तरिक्षे घोरां भीमां
राक्षसीं दारुणेन । तां पश्यामो लोहिताभ्रप्रकाशां देदीप्यन्तीमग्नि-
शिखामिवोग्राम् ॥ २४ ॥ ततस्ततो विद्युतः प्रादुरासन्नुल्काश्चापि
ज्वलिताः कौरवेन्द्र । घोषश्चास्याः प्रादुरासीत् सुघोरः सहस्रशो
मदभां दुन्दुभीनाम् ॥ २५ ॥ ततः शराः प्रापन् रुक्मपुंखाः

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! राक्षसराजको अदृश्य हुआ जान
कर, सब कौरव कोलाहल कर बोल उठे, कि-“मायासे युद्ध
करनेवाला यह राक्षस युद्धमें प्रत्यक्ष दर्शन देकर कर्णको मार
हालेगा” ॥ २१ ॥ इसप्रकार कौरव दुंदु मचारहे थे, इतनेमें ही
कुर्तीले हाथवाले और विचित्र प्रकारसे अस्त्रयुद्ध करना जानने
वाले कर्णने बाण छोड़कर सब दिशाओंको ढकदिया, उन बाणोंसे
आकाशमें घोर अंधकार होगया, कर्णके बाण मारने पर भी उसके
सामने कोई प्राणी नहीं गिरा ॥ २२ ॥ जब कर्ण कुर्तीसे सम्पूर्ण
आकाशको बाणोंसे छारहा था उससमय वह कब बाण लेता था,
कब बाणको चढाता था और कब हाथके अग्रभागसे भाथेका
स्पर्श करता था, यह कुछ नहीं दीखता था ॥ २३ ॥ (थोड़े ही
समयमें) आकाशमें घटोत्कचकी प्रकट कीहुई दारुण और भयंकर
मायाको हमने देखा, वह माया लाल रङ्गके बादलों की समान थी
और अग्निकी उग्र शिखाकी समान भूलभूलाकी हुई दीखती
थी ॥ २४ ॥ हे कौरवराज ! उस मायाके प्रकट होनेके पीछे
आकाशमें विजलियें चमकनेलगीं, जलती हुई उल्काएँ गिरनेलगीं,
सहस्रों दुन्दुभियोंकी अतितुमुल ध्वनि होनेलगी ॥ २५ ॥ तदनन्तर

शक्त्यष्टिप्रासमूसलान्यायुधानि । परश्वधारतैलधौताश्च खडगाः
 प्रदीप्ताग्नाः पट्टिशास्तोमराश्च ॥ २६ ॥ मयूखिनः परिघा लोह-
 वद्धा गदाश्चित्रा शितधाराश्च शूलाः । गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाः
 शतघ्न्यश्च प्रादुरासन् समन्तात् ॥ २७ ॥ महाशिलारचापतस्तत्र
 तत्र सहस्रशः साशनपश्च वज्राः । चक्राणि चानेकशतक्षुराणि
 प्रादुर्बभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥ २८ ॥ तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां
 प्रासष्टिवज्राशनिमुद्गराणाम् । वृष्टिं विशालां ज्वलितां पतन्तीं
 कर्णः शरौघैर्न शशाक हन्तुम् ॥ २९ ॥ शराहतानां पततां हयानां
 वज्राहतानाञ्च तथा गजानाम् । शस्त्राहतानाञ्च महारथानां महा-
 न्निनादः पततां बभूव ॥ ३० ॥ सुभीमनानां विधशस्त्रपातैर्घटोत्कचे-
 नाभिहतं समन्तात् । दुर्योधनं तद्धलमार्तरूपमावर्तमानं ददृशे भ्रम-

सुवर्णकी पूँछवाले बाण आकाशमेंसे गिरनेलगे, शक्ति, ऋष्टि,
 प्रास, मूसल, फरसे, तेलसे घिसी हुई तलवारें, चमकती हुई धार
 वाले तोमर, पट्टिश, चमकते हुए परिघ, लोहेसे जड़ी हुई विचित्र
 गदायें, तीली धारवाले शूल, सुवर्णकी पत्तारोंसे जड़ी हुई बड़ी-
 गदायें, और शतघ्नियें—इसप्रकार नानाप्रकारके अस्त्र चारों ओरसे
 पड़नेलगे ॥ २६-२७ ॥ और बड़ी-सहस्रों शिलायें, शक्तियें,
 वज्र, चक्र तथा अग्निकी समान तेजस्वी सहस्रों क्षुर आकाशमेंसे
 गिरनेलगे ॥ २८ ॥ शक्ति, पाषाण, परशु, प्रास, तलवार और
 वज्र तथा मुद्गरोंसे प्रदीप्त होती हुई बड़ी भारी वृष्टि होनेलगी,
 कर्णने बाणोंके प्रहारसे उन सबोंको रोकनेका प्रयत्न किया,
 परन्तु वह उनको रोक न सका ॥ २९ ॥ बाणोंके प्रहारोंसे पृथ्वी
 पर गिरते हुए घोड़े, वज्रकी मारसे नीचे गिरते हुए हाथी और
 शिलाओंके प्रहारसे नीचे गिरते हुए महारथियोंका बड़ा भारी संहार
 रणभूमिमें होनेलगा ॥ ३० ॥ घटोत्कच नानाप्रकारके महामयक्षुर
 अस्त्रोंसे दुर्योधनकी सेनाको कूटनेलगा, तब दुर्योधनकी सेनाके

रात् ॥ ३१ ॥ हाहाकृतं सम्परिवर्त्तमानं संकीयमानश्च विपश्य-
रूपम् । ते त्वार्यभावात् पुरुषप्रवीराः पराङ्मुखा नो बभूवुस्तदा-
नीम् ॥ ३२ ॥ तां राक्षसीं घोरतरां सुभीमां वृष्टिं महाशस्त्रमयीं
पतन्तीम् । दृष्ट्वा बलौघाश्च निपात्यमानान् महद्भयं तव पुत्रान्
विवेश ॥ ३३ ॥ शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वाः सुभीमनादाः शतशो
नदन्ती । रक्षोगणान्नर्हेतरचापि वीक्ष्य नरेन्द्र योधा व्यथिता
बभूवुः ॥ ३४ ॥ ते दीप्तजिह्वानलतीक्ष्णदंष्ट्रा विभीषणाः शैल-
निकाशकायाः । नभोगताः शक्तिविपक्तहस्ता मेघा व्यमुञ्चन्निव
वृष्टिमुग्राम् ॥ ३५ ॥ तौरादतास्ते शरशक्तिशूलैर्गदाभिस्त्रैः परि-
घैश्च दीप्तैः । वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैश्चतुर्दिशः मथिताश्च
पेतुः ॥ ३६ ॥ शूता भुशुगुड्योश्मगुडाः शतघ्न्यः स्धूणाश्च काष्णी-

कितने ही योधा आतुर हो इधर उधर भगनेलगे, हाहाकार करने
लगे चारों ओर चकर काटनेलगे तथा बहुत ही खिन्न होगए,
परन्तु इस संकटके समय भी आर्यपुरुषोंने पीठ नहीं दिखाई
थी ॥ ३१-३३ ॥ इस समय राक्षसने रणमें वड़े अस्त्रीकी वृष्टि
करना आरंभ कर दी थी, उससे तुम्हारी सेनाका संहार होने
लगा, यह देख कर तुम्हारे योधा अत्यन्त भयभीत होगए ॥ ३३ ॥
इस समय लपलपाती हुई अग्निकी समान जीभ वाली सैंकड़ों
गीदड़ियें भयंकर शब्द कर रही थीं और राक्षसोंके झुण्ड गर्जना
कर रहे थे, हे राजेन्द्र ! उनको सुनकर योधाओंके मन उदास
होगए ॥ ३४ ॥ प्रज्वलित जिह्वावाले अग्निकी समान प्रचण्ड ढाढ़
वाले, भयंकर आकृति वाले, पर्वताकार तथा हाथोंमें शक्ति धारण
करने वाले आकाशचारी भयंकर राक्षस मेघोंकी समान शस्त्रोंकी
भयंकर वृष्टि करने लगे ॥ ३५ ॥ उन बाण, शक्ति, शूल, गदा,
तीक्ष्ण परिघ, चमकते हुए वज्र, बाण, शक्ति, शतघ्नी और चक्रोंके
प्रहारसे कौरव योधा मर कर रणभूमिमें गिरने लगे ॥ ३६ ॥

यसपट्टनद्धाः । तेऽवाकिरंस्तव पुत्रस्य सेनां ततो रौद्रं कश्मलं
प्रादुरासीत् ॥ ३७ ॥ विकीर्णान्त्रो निहतैक्तामाङ्गैः सम्भगनाङ्गाः
शिशियरे तत्र शूराः । छिन्ना हयाः कुञ्जराश्चाविभग्नाः सञ्चूर्णि-
ताश्चैव रथाः शिलाभिः ॥ ३८ ॥ एवं महच्छत्रवर्षं सृजन्तस्ते
यातुधाना भुवि घोररूपाः । माया सृष्टास्तत्र घटोत्कचेन नामुञ्चन्
वै याचमानं न भीतम् ॥ ३९ ॥ तस्मिन् घोरे कुरुवीरावमर्दं कालो-
त्सृष्टे क्षत्रियाणामभावे । ते वै भग्नाः संहसा व्यद्रवन्त प्राक्रोशन्तः
कौरवाः सर्व एव ॥ ४० ॥ पलायध्वं कुरुवो नैतदस्ति सेन्द्रा
देवा ध्नन्ति नः पाण्डवार्थे । तथा तेषां मज्जतां भारतानां तस्मिन्
द्वीपः सूतपुत्रो बभूव ॥ ४१ ॥ तस्मिन् संक्रन्दे तुमुले वर्त्तमाने

राक्षस तुम्हारे पुत्रकी सेनाके ऊपर त्रिशूल, भुशुण्डी, अशमशुद्ध
काले लोहेसे मढ़ी हुई बड़ी २ शतघ्नियोंका प्रहार करते थे, इससे
तुम्हारी सेना उदास और किंकर्तव्यविमूढ़सी होगई ॥ ३७ ॥
शूरोके शरीरोंमेंसे आँते बाहरको निकल पड़ी थीं, खोपड़ियें फूट
गई थीं, शरीर उधड़ गए थे और वे मर कर रणभूमिमें लुढ़क
रहे थे, कटे हुए हाथियोंकी और घोड़ोंकी लाथें स्थान २ पर
दीखती थीं और शिलाओंकी मारसे स्थोंका चूरा २ होगया
था ॥ ३८ ॥ इस प्रकार भयंकर राक्षसोंने पृथ्वीमें शस्त्रोंकी बड़ी
भारी वृष्टि कर सेनाका संहार कर डाला था, घटोत्कचकी रची हुई
माया इस समय किसी प्रार्थना करने वाले और भयभीतको भी
नहीं छोड़ती थी ॥ ३९ ॥ इस प्रकार विपरीत समयके कारण
कौरव वीरोंका संहार होने लगा, क्षत्रियोंकी हार होने लगी, तब
सब कौरवयोधा भागते हुए सेनासे कहने लगे कि-दौड़ो !
भागो ! यह सेना नहीं है, किन्तु इन्द्र आदि देवता पाण्डवोंका
पत्त ले हमारा नाश कर रहे हैं !" इसप्रकार जिल्लाते हुए योधा
रणमेंसे भागनेलगे, इस समय भयंकर संकटमें डूबे हुए कौरव

सैन्ये भग्ने लीयमाने कुरूणाम् । अनीकानां प्रविभागे प्रकाशे न
ज्ञायन्ते कुरवो नेतरे वै ॥ ४२ ॥ निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपे सर्वा
दिशः प्रेक्षमाणाः स्म शून्याः । तां शस्त्रवृष्टिगुरसा गाहमानं कर्ण-
ञ्चैकं तत्र राजन्नपश्यम् ॥ ४३ ॥ ततो वाणैरावृणोदन्तरिक्षं
दिव्यां मायां योधयन्नाक्षसस्य । हागान् कुर्वन् दुष्करञ्चार्यकर्म
नैवामुह्यत् संयुगे मृतपुत्रः ॥ ४४ ॥ ततो भीताः समुर्देक्षन्त कर्णं
राजन् सर्वे सैन्धवा बाह्लिकाश्च । असंमोहं पूजयन्तोऽस्य संख्ये
सम्पश्यन्तो वै विजयं राक्षसस्य ॥ ४५ ॥ तेनोत्पृष्टा चक्रयुक्ता
शतघ्नी समं सर्वाश्चतुरोऽश्वान् जघान । ते जानुभिर्जगतीमन्व-

राजाओंकी, एक कर्ण ही द्वीप घनकर रक्षा करता था ॥ ४०-४१ ॥
इस प्रकार संकुल युद्ध होनेसे कौरवसेना पिटनेके कारण भागने
लगी, सेनाके तिरिीं विरिी होनेके कारण कौरव और पाण्डव एक
दूसरेको पहिचान नहीं सकते थे ॥ ४२ ॥ सेनाने भी भयंकर रीतिसे
संहार होनेके कारण मर्यादा छोड दी थी, उस समय आँख पटा
कर देखने पर सब दिशाएँ शून्याकार प्रतीत होती थीं, उस समय
हे राजन् ! अकेला मृतपुत्र कर्ण ही शस्त्रोंकी वृष्टि को अपने वक्षःस्थल
पर झेलता हुआ रणमें डटा हर्ष दिखाई देता था ॥ ४३ ॥
फिर अतुल्य कर्णने युद्धमें होती-हुई वाणोंकी वृष्टिसे न घबडा कर
श्रेष्ठ पुरुषोंकी समान काम किया, कि-राक्षसकी दिव्य मायाके
सामने युद्ध करके वाणोंकी वृष्टिसे आकाशको छादिया ॥ ४४ ॥
इस समय हे राजन् ! सिन्धुदेशी तथा वाल्हीकदेशी राजे रणमें
राक्षसकी विजय देखकर कर्णके धीरजकी प्रशंसा करते थे, परन्तु
भयभीत होकर कर्णकी ओर ही देख रहे थे ॥ ४५ ॥ इतनेमें ही
राक्षसने एक चक्रवाली शतघ्नी कर्णके चारों घोड़ोंके ऊपर फेंकी,
शक्तिके प्रहारसे कर्णके घोड़ोंकी आँखें, दाँत और जीभ बाहरको
निकल पड़ी और वे प्राणरहित हो भूमिमें घुटने टेककर गिर

पथन् गतासवो निर्देशनाक्षिजिह्वाः ॥ ४६ ॥ ततो हता-
 श्वादवस्त्वा यानादन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्ववत्सु । दिव्ये चास्त्रे
 मायया वध्यमाने नैत्राद्युह्यच्चितन्यन् प्राप्तकालम् ॥ ४७ ॥
 ततोऽब्रुवन् कुरवः सर्व एव कर्णं दृष्ट्वा घोररूपाश्च मायाम् ।
 शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्यं नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः ४८
 करिष्यतः किञ्च नो भीमपार्थो तपन्तमेनं जहि पापं निशीथे ।
 यो नः संग्रामाद् घोररूपादिमुञ्चेत् स नः पार्थान् सबलान् योध-
 येत ॥ ४९ ॥ तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं शक्त्या जहि त्वं दत्तया
 वासवेन । मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा रात्रियुद्धे कर्णं नैशुः
 सधोधाः ॥ ५० ॥ स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे दृष्ट्वा राजं-
 स्वास्पमानं वलञ्च । महत् श्रुत्वा निनदं कौरवाणां मणिं दध्रे

गये ॥ ४६ ॥ रथके घोड़े मरे कि-कर्ण मनमें खिन्न होकर रथमें से
 नीचे उतर पड़ा और कौरव भागने लगे, तो भी कर्ण घबड़ाया
 नहीं, परन्तु समयोचित विचार करने लगा, कि—(अब क्या करना
 चाहिये) ॥ ४७ ॥ तदनन्तर घटोत्कचकी भयंकर मायाको देखकर
 सब कौरव कर्णसे कहने लगे, कि—‘ हे कर्ण ! (इन्द्रकी दी हुई)
 अपनी शक्तिसे अब तू घटोत्कचका नाश कर, इन सब कौरवोंको
 राक्षसकी मायासे नाश हुआ जाता है ॥ ४८ ॥ भीम और अर्जुन
 हमारा क्या करेंगे ? तू इस आधी रातके समय प्रबल हुए पापी
 राक्षसको मार डाल, हममेंसे जो पुरुष इस घोर संग्राममेंसे हमको
 बचावेगा, उस पुरुषके साथ ही हम सेनासहित पाण्डवोंसे युद्ध कर
 सकेंगे ॥ ४९ ॥ अतः आज तू मध्यरात्रिके समय—इन्द्रने तुझे
 जो शक्ति दी है—उससे इस भयंकर राक्षसको मार डाल, हे कर्ण !
 आजके रात्रियुद्धमें इन्द्रकी समान बलवान् सब कौरव योधाओंसहित
 नष्ट होनेसे बच जाँय, ऐसा उपाय कर ॥ ५० ॥ समय आधी रात्रिका
 था, राक्षस कर्णके ऊपर प्रहार कर रहा था, सिना भी ज़रत हो रही

(११८०) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौउन्नासीवां

शक्तिमोक्षाय कर्णः ॥ ५१ ॥ स वै क्रुद्धः सिंह इवात्यमर्षी
नामर्षयन् प्रतिघातं रणसौ । शक्तिं श्रेष्ठां वैजन्तीमसर्वा समाददे
तस्य वधं चिह्नीपन् ॥ ५२ ॥ यासौ राजन्निहिता वर्षपूगान् वधा-
याजौ सत्कृता पाण्डवस्य । यां वै प्रादात् सूतपुत्राय शकः शक्तिं
श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निनाय ॥ ५३ ॥ तां वै शक्तिं लेलिहानां मदीर्षां
पाशैर्मुक्तामन्तकस्येव जिह्वाम् । मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोष्कां
वैकर्त्तनः प्राहिणोद्राक्षसाय ॥ ५४ ॥ तामुत्तमां परकायावहन्त्रीं
दृष्ट्वा शक्तिं बाहुसंस्थां ज्वलन्तीम् । भीतं रक्षो विप्रदुद्राव राजन्
कुत्वात्मानं विन्ध्यनून्यप्रमाणम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा शक्तिं कर्णवाह-
न्तरस्थां नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र । दधुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्

थी और कौरव बड़े वेगसे रोरहे थे—यह देखकर कर्णने राजसके
शक्ति मारनेका विचार किया ॥ ५१ ॥ वह सिंहकी समान बड़े
भारी क्रोधमें भरगया और इस युद्धमें शत्रुकी मारामारको न
सहसका, उस ही समय उसने शत्रुका नाश करनेके लिये वैजयन्ती
नामकी असल शक्ति हाथमें ली ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! यह शक्ति
कर्णने रणमें अर्जुनको मारनेके लिये बहुत वर्षोंसे सन्मानपूर्वक
अपने पास रख छोड़ी थी, और इन्द्रने दो कुण्डल कर्णसे लेकर
उनके वदलेमें उसको यह शक्ति दी थी ॥ ५३ ॥ मृत्युकी संगी
बहिनकी समान, प्रज्वलित उष्काकी सगान, पाशोंसे घिरी हुई,
कालवी जिह्वाकी समान वह शक्ति कर्णने घटोत्कचके मारी ॥ ५४ ॥
हे महाराज ! दूसरेके शरीरको चीर डालनेवाली, प्रज्वलित अग्निकी
समान इस इन्द्रकी दी हुई उत्तम शक्तिको कर्णने जिस समय
छोड़नेके लिये हाथमें लिया, उस समय घटोत्कच भयभीत हो
विध्याचलकी समान शरीर बनाकर रणमेंसे भागा ॥ ५५ ॥ अधिक
क्या ? उस शक्तिको कर्णके हाथमें स्थित देखकर अन्तरिक्षमें
खड़ेहुए प्राणी भी चीत्कार करउठे, प्रचण्ड पवन साँयरे करता

सुनिर्घाता चाशनिर्गो जगाम ॥ ५६ ॥ सा तां पार्या भस्म कृत्वा
ज्वलन्ती भित्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य । ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना
निशायां नक्षत्राणामन्तराण्याविशे ॥ ५७ ॥ स निर्भिन्नो विविधैः
शस्त्रपूगैर्दिव्यैर्नागैराक्षसैर्मानुषैश्च । नदन्नादान् विविधान् भैरवांश्च
प्राणानिष्टांस्त्याजितः शक्तशक्त्या ॥ ५८ ॥ इदञ्चान्यच्चित्रमा-
श्चर्यरूपं चकारासौ कर्म शत्रुक्षयाय । तस्मिन् काले शक्तिनिर्भिन्न-
मर्मा बभौ राजन् शैलमेघप्रकाशः ॥ ५९ ॥ ततोन्तरिक्षादपद्रतासुः
स राक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः । अवाकिशरा-स्तब्धगात्रो विजिह्वो
घटोत्कचो महदास्थाय रूपम् ॥ ६० ॥ स तद्रूपं भैरवं भीमकर्मा
भीमं कृत्वा भैमसेनिः पपात । हतोऽप्येवं तव सैन्यैकदेशम-
पोथयत् स्वेन देहेन राजन् ॥ ६१ ॥ पतद्रक्षः स्वेन

हुआ चलनेलगा और पृथ्वीको भेदकर वज्र भीतर घुसगया ५६
इस समय कर्णकी पारी हुई प्रज्वलित अग्निकी समान वह शक्ति
घटोत्कचकी सारी प्रायाको भस्म कर और उसके हृदयको अच्छी
प्रकार चीर कर प्रज्वलित होती हुई ऊपरको उड़ी और नक्षत्र-
प्रण्डलमें समागई ॥ ५७ ॥ और राक्षस घटोत्कचने अनेकों
प्रकारके दिव्य अस्त्रोंके, हाथियोंके, मनुष्योंके तथा राक्षसोंके
सामने लड़कर विविध प्रकारकी भयंकर गर्जनायें करते-इन्द्रकी
शक्तिके प्रहारसे अन्तमें अग्ने मिथ प्राणोंको छोड़ दिया ॥ ५८ ॥
शक्तिके प्रहारसे घटोत्कचके मर्मस्थल भिद्गए थे, तब भी उसने
शत्रुओंका नाश करनेके लिये अतिआश्चर्यजनक मूर्ति धारण
की थी, हे राजन ! वह पर्वतकी समान और मेघकी समान बन
गया था ॥ ५९ ॥ जिसका शरीर स्तब्ध होगया था जीम टूट
पड़ा था और जिसका शरीर चिरगया था ऐसा राक्षसराज
घटोत्कचमोटा और महाभयंकर शरीर बनाकर आकाशमेंमे पृथ्वीके
ऊपर गिरा और गिरते-उसने अपने शरीरसे सेनाके एक भाग

(११८२) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौअस्सीवाँ]

कायेन तूर्णमतिप्रमाणेन विवर्द्धता च । मियं कुर्वन् पाण्डवानां
गतासुरचौहिणीं तव तूर्णं जघान ॥ ६२ ॥ ततो मिश्राः प्राण-
दन् सिंहनादैः शंखा भेर्यो मुरजारचानकारच दग्धा मायां निहतं
राक्षसञ्च दृष्ट्वा हृष्टो प्राणदन् कौरवेयाः ॥ ६३ ॥ ततः कर्णः
कुरुभिः पूज्यमानो यथा शको वृत्रवधे मरुद्भिः । अन्वारुदस्तत्र
पुत्रस्य यानं हृष्टश्चापि प्राविशत् तत् स्वसैन्यम् ॥ ६४ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटो-
त्कचवधे एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

सञ्जय उवाच । हृदिम्बि निहतं दृष्ट्वा विकीर्णमिव पर्वतम् ।
बभूवुः पाण्डवाः सर्वे शोकवाष्पाकुलेक्षणाः ॥ १ ॥ वासुदेवस्तु
हर्षेण महताभिपरिप्लुतः । ननाद सिंहनादं वै पर्यष्वजत फाल्गुनं र-

को दवाकर उसका कचरा करवाला ॥ ६०-६१ ॥ उस राक्षसने
मरते समय अपना शरीर बहुत बड़ा कर लिया था, और पाण्डवोंका
हित करनेके लिये तुम्हारी अचौहिणी सेनाके ऊपर गिरकर उसका
एकसाथ नाश करवाला था ॥ ६२ ॥ कौरव राक्षसी मायाका नाश
हुआ देखकर तथा राक्षसको मरा हुआ देखकर हर्षका कोलाहल
करने लगे और योधाओंके सिंहनादोंके साथ भेरी, शङ्ख, मुरज
तथा नगाड़े बजाने लगे ६३ और जैसे वृत्रासुरको मार डालनेके
बाद देवताओंने इन्द्रकी पूजा की थी, तैसे ही कौरवोंने घटोत्कचके
मारे जाने पर कर्णकी पूजा की और कर्ण तुम्हारे पुत्रके रथमें
बैठकर प्रसन्न होता हुआ अपनी सेनामें जा पहुँचा ॥ ६४ ॥ एकसौ
अन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८६ ॥

सञ्जयने कहा, कि--हे राजा धृतराष्ट्र ! जैसे पहाड़
एकसाथ खिसक पड़ता है, तैसे ही हिडिम्बाके पुत्र
घटोत्कचको मरा हुआ देखकर सब पाण्डवोंकी आँखोंमें
शोकके आँसू भर आये ॥ १ ॥ केवल श्रीकृष्णको ही बड़ी प्रसन्नता

स विनश्य महानादमभीषन् सन्नियम्य च । ननर्त्त हर्षसम्ब्रीतो
 वातोद्धूत इव द्रमः ॥ ३ ॥ ततः परिव्रज्य पुनः पार्थमास्फोट्य
 चासकृत् । रथोपस्थगतो धीमान् पाणदत् पुनरच्युतः ॥ ४ ॥
 महष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलः । अर्जुनोऽथाब्रवीद्राज-
 न्नातिहृष्टामना इव ॥ ५ ॥ इतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन ।
 शोकस्थाने तु संप्राप्ते हैदिम्बस्य वधेन तु ॥ ६ ॥ विष्णुस्वामीह
 सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम् । वयञ्च भृशमुद्रिग्ना हैदिम्बेस्तु
 निपातनात् ॥ ७ ॥ नेतव् कारणमल्पं हि भविष्यति जनार्दन ।
 तदद्य शंस मे पृष्ठः सत्यं सत्यवताम्बर ॥ ८ ॥ यद्येतन्न रहस्यते
 वक्तुमर्हस्यरिन्दम । धैर्यस्य वैकृतं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ ९ ॥

हुई और उन्होंने सिंहकी समान गरजकर अर्जुनको हृदयसे लगा
 या ॥ २ ॥ फिर बड़ी जोरसे गर्जना की और घोड़ोंकी रासोंको
 ठीक २ पकड़ेहुए, जैसे वायुसे वृत्त हिलने लगता है तैसे ही हर्षसे
 झूमने और नाचनेलगे ॥ ३ ॥ और रथकी बैठक पर बैठे बुद्धिमान्
 श्रीकृष्णने अर्जुनको फिर हृदयसे लगाया, उन्होंने बारम्बार
 अर्जुनकी पीठको थपकोड़ा और बारम्बार गर्जना करनेलगे ॥ ४ ॥
 हे राजन् ! महाबली अर्जुन ! श्रीकृष्णको मनमें प्रसन्न हुआ जान
 कर अपने मनमें जराएक खिन्न हुआ और उनसे कहनेलगा,
 कि—॥ ५ ॥ हे मधुसूदन ! घटोत्कचके मारेजानेसे इस समय शोक
 होना चाहिये, ऐसे समय आप जो प्रसन्न हो रहे हैं, यह अनुचित
 है ॥ ६ ॥ घटोत्कचको मारा गया देखकर हमारे योधा-रणमेंसे भागे
 जा रहे हैं तथा घटोत्कचके मारे जानेसे हम भी बहुत ही घबड़ा
 गये हैं ॥ ७ ॥ तथापि हे सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ कृष्ण ! आप प्रसन्न
 हो रहे हैं, इसका साधारण कारण नहीं होसकता, इसलिये इसका
 कारण मुझे अभी बताइये ॥ ८ ॥ हे शत्रुदमन श्रीकृष्ण ! वह
 यदि गोयनीय न हो तो मुझे आज ही बतलाइये, क्योंकि—हमारे

समुद्रस्येव संशोषं मेरोरिव विसर्पणम् । तथैतदद्य मन्येहं तव कर्म
जनार्दन ॥ १० ॥ वासुदेव उवाच । अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मे त्वं
धनञ्जय । अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ ११ ॥ शक्तिं
घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते । कर्णं निहहमेवाजौ विद्धि
सद्यो धनञ्जय ॥ १२ ॥ शक्तिहस्तं पुनः कर्णं न लोकेऽस्ति पुमा-
निह । य एनमभितस्तिष्ठेत् कांसिकेयमिवाहवे ॥ १३ ॥ दिष्ट्या-
पनीतकवचो दिष्ट्यापहतकुण्डलः । दिष्ट्या विध्वंसिता शक्तिरमो-
घास्य घटोत्कचे ॥ १४ ॥ यदि हि स्यात् सकवचस्तथैव स्यात्
सकुण्डलः । सामरानपि लोकास्त्रीनेकः कर्णो जयेद्रणे ॥ १५ ॥
वासवो वा कुर्वेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः । यमो वा नोत्सहेत्

पन्नका क्षय होनेसे आप प्रसन्न हो रहे हैं, यह देखकर हमारा तो
धीरज छूटा जाता है ॥ १० ॥ हे जनार्दन ! आपका आजका वरत्तान
मुझे समुद्र के सूखने की समान और मेरुपर्वत के ढगमगाने की समान
मालूम होता है ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण ने कहा, कि-हे धनञ्जय ! मुझे
बड़ा ही हर्ष होता है और मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ है ! इसके
कारण को तू सुन (और अपने मन की चिन्ता को त्यागकर प्रसन्न
हो) ॥ ११ ॥ महाकान्तिवाले कर्ण को इन्द्र ने जो शक्ति दी थी,
उसको निष्फल करके घटोत्कच ने कर्ण को ही मार डाला, ऐसा समझ
जैसे रण में स्वामिकार्त्तिकेय के सामने कोई भी पुरुष खड़ा नहीं
हो सकता था, तैसे ही कर्ण भी जब तक उस शक्तिको हाथ में लेकर
रण में खड़ा रहता तब तक जगत् में कोई पुरुष भी उसके सामने
खड़ा नहीं हो सकता था १२ १३ इन्द्र ने उसका कवच और कुण्डल
हरलिये थे, वह हमारे लिये बड़ा ही अच्छा किया और घटोत्कच ने
उसकी शक्तिको निकम्मी कर डाला, यह भी अच्छा ही हुआ है १४
यदि कर्ण कवच और कुण्डलों के साथ लड़ने को आता तो वह
अकेला ही देवताओं सहित त्रिलोकी को जीत लेता ॥ १५ ॥ इन्द्र,

कर्ण रणे प्रतिसमासितम् ॥ १६ ॥ गाण्डीवमुद्यम्य भवांश्चक्र-
ञ्चाहं सुदर्शनम् । न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथा युक्तं नरर्षभम् ॥ १७ ॥
त्वद्वितार्थन्तु शक्रेण मायापहतकुण्डलः । विहीनकवचश्चायं कृतः
परपुरञ्जयः ॥ १८ ॥ उत्कृत्य कवचं यस्मात् कुण्डले विमले च
ते । प्रादाच्छक्राय कर्णौ वै तस्माद्वैकर्त्तनः स्मृतः ॥ १९ ॥ आशी-
विष इव क्रुद्धो जृम्भितो मन्मतेजसा । तथाय भाति कर्णौ मे
शान्तज्वाले इवानलः ॥ २० ॥ यदा प्रभृति कर्णाय शक्तिर्वा
महात्मना । वासवेन महाबाहो सिता पासौ घटोत्कचे ॥ २१ ॥
कुण्डलाम्बा निमायाय दिव्येन कवचेन च । तां प्राप्यामन्यत
वृषः सततं त्वां हतं रणे ॥ २२ ॥ एवमृतोऽपि शक्योऽयं हन्तुं नान्येन

कुवेर, जल्लोका स्वामी वरुण अथवा स्वयं यमराज भी रणमें कर्णके
सामने खड़े नहीं रह सकते थे ॥ १६ ॥ कवच, कुण्डल और शक्तिके
साथ कर्ण रणमें आकर खड़ा होजाता तो तू गाण्डीव धनुषको
तानकर और मैं सुदर्शन चक्रको धारण करके कर्णको रणमें नहीं
जीत सकते थे ॥ १७ ॥ इसलिये इन्द्रने तेरा हित करनेको माया
रचकर, शत्रु पर विजय पानेवाले कर्णसे कवच और कुण्डल
लेलिये ॥ १८ ॥ कर्णने जन्मकालसे ही अपने शरीरमें लगेहुए
कवच और निर्मल कुण्डलको उतार कर इन्द्रको देदिया था । इस
लिये ही वह वैकर्त्तन कहलाता है ॥ १९ ॥ जैसे कोपमें भरा हुआ
विषधर सर्प मन्त्रके प्रभावसे निस्तेज होजाता है, अथवा लपट
शान्त होजाने पर अग्नि जैसा दीखने लगता है तैसे ही आज
कर्ण दीखता है ॥ २० ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! इन्द्रने कर्णको उसके
दिव्य कवच और कुण्डलको बदलेमें जबसे शक्ति दी थी और
जो शक्ति इस समय उसने घटोत्कचके मारी है, उस शक्तिको
पाकर कर्ण सदा ही तुझे रणमें मराहुआ मानता था ॥ २१-२२ ॥
और हे निर्दोष पुरुषव्याघ्र ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ

केनचित् । ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन चानघ ॥ २३ ॥
 ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः । रिपुष्वपि दयावाञ्छ
 तस्मात् कर्णो वृषः स्मृतः ॥ २४ ॥ युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्यो-
 द्यतशरासनः । केसरीव वने 'मर्द्दन्मातङ्ग इव यूथपान् ॥ २५ ॥
 विमदान् रथशार्दूलान् कुरुते रणमूर्धनि । मध्यङ्गत इवादित्यो यो
 न शक्यो निरीक्षितुम् ॥ २६ ॥ त्वदीयः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यै-
 र्महात्मभिः । शरजालसहस्रांशुः शरदीव दिवाकरः ॥ २७ ॥
 सपान्ते जलदो यद्वत् शरधाराः चरन्मुहुः । दिव्यास्त्रजलदः कर्णः
 पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २८ ॥ त्रिदशैरपि चास्यद्भिः शरवर्षं सम-

कि-आज कर्णके पास शक्ति नहीं रही है तो भी तेरे सिवाय
 दूसरा कोई भी उसको नहीं मारसकता ॥ २३ ॥ कर्ण ब्राह्मणोंका
 भक्त, सत्यवादी, तपस्वी, व्रतधारी तथा शत्रुओंके ऊपर भी दया
 करनेवाला है, इसलिये वह वृष (धर्म) कहलाता है ॥ २४ ॥
 यह महाबाहु युद्ध करनेमें चतुर है, और इसका धनुष नित्य तयार
 ही रहता है, जैसे वनमें केसरी सिंह दहाडता है तैसे ही यह भी
 रणमें गरजा करता है और जैसे मदमत्त हाथी यूथपतियोंका
 नाश करडालता है तैसे ही यह भी रणके मुहाने पर खड़ा होकर
 रथीरूप सिंहोंका नाश करडालता है, हे पुरुषोंमें व्याघ्रसमान
 अर्जुन ! जैसे शरद् ऋतुमें मध्यान्हकालके सूर्यको कोई देख नहीं
 सकता है, तैसे ही तेरे पक्षके मुख्य २ महात्मा योध्रा भी हजारों
 बाणरूप किरणोंवाले कर्णके सामनेको नहीं देख सकते,
 (फिर उसको युद्धमें तो जीत ही कैसे सकते हैं ?) जैसे चौमासेमें
 मेघ बारंबार जलको बरसाया करता है तैसे ही दिव्य अस्त्ररूप
 जलकी वर्षा करने वाला कर्ण मेघकी समान वर्षा करने वाला
 है ॥ २५-२८ ॥ देवता चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करें और
 दैत्य चारों ओरसे मांस तथा रुधिरकी वर्षा करें तब भी इस कर्णको

न्ततः । अशक्यस्तदयं जेतुं स्रवज्जिर्मासशोणितम् ॥ २६ ॥ कव-
चेन विहीनश्च कुण्डलाभ्यां च पाण्डव । सोऽथ मानुषतां प्राप्तो
विमुक्तः शक्रदत्तया ॥ ३० ॥ एको हि योगोऽस्य भवेद्दधाय छिद्रे
ह्येनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम् । कृच्छ्रप्राप्तं रथचक्रे निप्रग्ने हन्याः पूर्वं त्वन्तु
संज्ञां विचार्य ॥ ३१ ॥ न ह्युद्यतास्त्रं युधि हन्यादजट्यमप्येकवीरो
बलभित् स्रवज्जः । जरासन्धश्चेदिराजो महात्मा महाबाहुश्चैक-
लव्यो निषादः ॥ ३२ ॥ एकैकशो निहताः सर्व एते योगैस्तैस्तै-
स्त्वद्धितार्थं मयैव । अथापरे निहता राक्षसेन्द्रा हिडिम्बकिर्मीर-
वकप्रधानाः अलायुधः परचक्रावमर्द्दी घटोत्कचश्चोश्रकर्मा तरस्वी ३३

नहीं जीतसकते ॥ २६ ॥ हे अर्जुन ! यह कर्ण, कवच और कुण्डलोंसे
रहित तो कभीका होगया था और आज इन्द्रकी दी हुई शक्तिको
खो बैठनेसे यह साधारण मनुष्यसा होगया है (अब इसमें दैवी
शक्ति नहीं रही) ॥ ३० ॥ इस कर्णको मारनेका केवल एक ही
उपाय है—द्वैरथ युद्धके समय इसके रथका पहिया पृथिवीमें घुस
जायगा, उस समय यह विह्वल और दुःखी होगा, तब ही तू
सावधान होकर मेरे किये हुए सङ्केतके अनुसार इसको मार
ढालना ॥ ३१ ॥ क्योंकि—किसीके जीतनेमें न आनेवाला कर्ण
जिस समय शस्त्र उठाकर युद्धमें खड़ा होगा, उस समय वीरोंमें
अग्रणी, बल दैत्यको मारनेवाला इन्द्र यदि हाथमें वज्र लेकर
चला आवे तो वह भी इसको नहीं मारसकेगा ॥ ३२ ॥ हे अर्जुन !
मैंने तेरे हितके लिये पहले महात्मा महाबाहु जरासन्ध, चेदिराज
शिशुपाल और भिल्लराज एकलव्य आदि वीरोंको एकत्र करके
अनेकों उपायोंसे मारढाला है, इसीप्रकार राक्षसराज हिडिम्ब,
किर्मीर, वक, शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाले अलायुध और उग्र
कर्म करनेवाले वेगवान् घटोत्कच आदि राक्षसोंको अनेकों उपायोंसे
मरवाढाला है ॥ ३३ ॥ एकसौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८० ॥

अर्जुन उवाच । कथमस्मद्विदितार्थं ते कैश्च योगैर्जनार्दन । जरा-
सन्धप्रभृतयो घातिताः पृथिवीश्वराः ॥ १ ॥ वासुदेव उवाच ।
जरासन्धश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः । यदि स्युर्न हताः पूर्वं
मिदानीं स्युर्भयङ्कराः ॥ २ ॥ दुर्योधनस्तानवश्यं वृणुयाद्रथसत्त-
मान् । तेऽस्मासु नित्यविद्विष्टाः संश्रयेयुश्च कौरवान् ॥ ३ ॥ ते
हि वीरा महेश्वासाः कृताश्वा दृढयोधिनः । धार्तराष्ट्रचमू-
कृत्स्ना रक्षेयुरमरा इव ॥ ४ ॥ सूतपुत्रो जरासन्धश्चेदिराजो निपा-
दजः । सुयोधनं समाश्रित्य जयेयुः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥ योगैरपि
हता येऽस्ते तन्मे शृणु धमञ्जय । अजय्या हि विना योगैर्मृधे ते
दैवतैरपि ॥ ६ ॥ एकैको हि पृथक् तेषां समस्तां सुरवाहिनीम् ।

अर्जुनने कहा कि-हे जनार्दन ! आपने जरासन्ध आदि
राजाओंको हमारे हितके लिये किन उपायोंसे और किसप्रकार
मारा था ? ॥ १ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि-हे अर्जुन ! महाबली
जरासन्ध, चेदिदेशका राजा शिशुपाल और महाबली एकलव्य
को यदि मैंने पहिले न मार डाला होता तो ये इस समय तेरे लिये
महाभयदायक होते ॥ २ ॥ दुर्योधन इस समय उन महारथी
राजाओंको अपने यहाँ निमंत्रण देकर बुलाता और वे हमारे
नित्यके बैरी होनेके कारण कौरवोंकी सहायता भी करते ॥ ३ ॥
वे बड़े वीर, महाधनुषधारी, शस्त्रविद्यामें चतुर और बड़े भारी
योधा थे, वे देवताओंकी समान चारों ओरसे कौरवोंकी सेनाकी
रक्षा करते, बला कर्ण, जरासन्ध, शिशुपाल और एकलव्य दुर्यो-
धनका आश्रय लेकर सब पृथिवीको वशमें कर लेते, (ऐसे परा-
क्रमी थे) ॥ ४-५ ॥ हे धमञ्जय ! इस कारणसे ही मैंने उनका
नाश किया है, उनको मारनेमें मैंने जो जो युक्तियें रची थीं,
उनको मैं तुझसे कहता हूँ सुन, क्योंकि-ऐसी युक्तियोंके बिना
देवता भी रणमें उनका पराजय नहीं कर सकते थे ॥ ६ ॥

योधयेत् समरे पार्थ लोक्पाजाभिराज्ञताम् ॥ ७ ॥ जरासन्धो हि
 रूषितो रौहिणेयमघर्षितः । अस्मद्वधार्थञ्चिन्तेषु गदां वै सर्वघाति-
 नीम् ॥ ८ ॥ सीमन्तमिव कुर्वाणां नभसः पावकप्रभाम् । अदृ-
 श्यतापतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाऽग्निः ॥ ९ ॥ तामापतन्ती दृष्ट्वैव
 गदां रोहिणिनन्दनः । प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवाप्तुजत् १०
 अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा प्रापतद्भुवि । दारयन्ती धरां देवीं कम्प-
 यन्तीव पर्वतान् ॥ ११ ॥ तत्र सा राज्ञसी घोरा जरा नाम्नी सुविक्रमा ।
 संदधे सा हि संजातं जरासन्धमरिन्दमम् ॥ १२ ॥ द्वाभ्यां जातो हि
 मातृभ्यामर्द्धदेहः पृथक् पृथक् । जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्ध-

हेअर्जुन ! मैंने तुझे जिन राजाओंके नाम गिनाये हैं, उनमेंका एक २
 योधा भी रणभूमिमें लोक्पालोंकी रक्षा की हुई संपूर्ण देवसेनाके
 साथ लड़सकता था ॥ ७ ॥ एक समय बलदेवजीने जरासन्धका
 अपमान किया, इससे जरासन्धको क्रोध आगया, जैसे इन्द्र वज्रका
 प्रहार करता है, तैसे ही हमारा नाश करनेके लिये उसने सबका
 संहार करनेवाली गदा हमारे ऊपर फेंकी, तब तो मानो आकाशमें
 सीमन्तरचना करती हो इसप्रकार आकाशमार्गसे दौड़ी आती हुई
 अग्निकी समान धकधकाती हुई वह गदा हमारे ऊपर गिरती हुई
 देखनेमें आयी ॥ ८-९ ॥ उस गदाको अपने ऊपर गिरती हुई
 देखकर रोहिणीनंदन बलदेवजीने उस गदाका नाश करनेके लिये
 स्थूणाकर्ण नामका अस्त्र छोड़ा ॥ १० ॥ उसके प्रहारसे गदाके
 टुकड़े २ होगये, और वह गदा पृथिवीको फाड़े डालती हो तथा
 पर्वतोंको ढगमगाये देती हो, इसप्रकार अड्डड्ड करती हुई पृथिवी
 पर गिरपड़ी ॥ ११ ॥ वह गदा जहाँ गिरी थी उस स्थान पर जरा
 नामकी एक महाबलवाली भयानक राज्ञसी बैठी थी वह गदाके
 तथा शस्त्रों प्रहारसे पुत्रों और संबंधियों सहित मरगयी,
 इस राज्ञसीने ही जन्मके समय जरासन्ध-को जोड़ा था,

स्ततोऽभवत् ॥ १३ ॥ सा तु भूमिं गता पार्थ हता समुतबान्धवा ।
 गदया तेन चास्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी ॥ १४ ॥ विनाभूतः
 स गदया जरासन्धो महामृधे । निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनं-
 जय ॥ १५ ॥ यदि हि स्याद्गदापाणिर्जरासन्धः प्रतापवान् ।
 सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥ १६ ॥ त्वद्विता-
 र्थञ्च नैपादिर्गुणेन वियोजितः । द्रोणेनाचार्यकं कृत्वा व्यघ्रना
 सत्यविक्रमः ॥ १७ ॥ स तु बद्धांगुलिप्राणो नैपादिर्दृढविक्रमः ।
 अतिमानी वनचरो बभौ राम इवापरः ॥ १८ ॥ एकलव्यं हि

जरासन्धको जोड़नेके विषयमें यह बात कही जाती है,
 कि—जरासन्धका जन्म दो माताओंसे हुआ था और जन्मके
 समय वह जुड़े २ दो टुकड़ोंके आकारमें उत्पन्न हुआ
 था, जरा राक्षसीने उन दोनों टुकड़ोंको इकट्ठे करके जोड़दिया
 था, उससे जरासन्ध हुआ था, हे अर्जुन ! गदाने जरा राक्षसी
 का और नाशकारी स्थूणाकर्ण धारणने गदाका नाश कर
 दिया ॥ १२-१४ ॥ इसप्रकार जरासन्धके गदा और राक्षसी
 दोनोंसे हीन हो जाने पर भीमसेनने महासंग्राममें तेरे सामने ही
 उसको मारडाला ॥ १५ ॥ हे धनञ्जय ! यदि इस समय जरा
 सन्ध जीवित होता और हाथमें गदा लेकर युद्धमें लड़नेको
 चढ़ आता तो हे नरोत्तम ! इन्द्रादि देवता भी रणमें उसका नाश
 नहीं करसकते थे ॥ १६ ॥ और मैंने कपटसे द्रोणाचार्यको एक
 लव्यका गुरु बनाकर, उनके द्वारा सत्यपराक्रमी भिल्लपुत्र एक-
 लव्यका अँगूठा कटवा डाला था, इसमें भी तेरा ही हित भराहुआ
 है, वह दृढपराक्रमी और महा अभिमानी भिल्लपुत्र हाथोंमें चमड़े
 के भोजे पहनकर वनमें घूमा करता था और वह दूसरे रामकी
 समान तीजस्त्री था, हे अर्जुन ! यदि एकलव्यका अँगूठा ठीक
 होता तो युद्धमें देवता, दानव, राक्षस तथा नाग उसका किसी

सांगुष्ठपशक्ता देवदानवाः । स राज्ञसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि
 कर्हिचित् ॥ १६ ॥ किमु मानुषमात्रेण शक्यः स्यात्प्रतिवीक्षितुम् ।
 दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम् ॥ २० ॥ त्वद्धितार्थन्तु
 स मया हतः संग्राममूर्ध्नि । चेदिराजरच विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहत-
 स्तव ॥ २१ ॥ स चाप्यशक्यः संग्रामे जेतुं सर्वैः सुरासुरैः ।
 वधार्थं तस्य जातोऽहमन्येषाञ्च सुरद्विषाम् ॥ २२ ॥ त्वत्सहायो
 नरन्याग्रं लोकानां हितकाम्यया । हिडिम्बवक्त्रकिर्पीरा भीमसेनेन
 पात्तिताः ॥ २३ ॥ रावणेन सममाणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः । हत-
 स्तथैव मायावी हैडिम्बेनाप्यलायुधः ॥ २४ ॥ हैडिम्बश्चाप्युपायेन
 शक्त्यो कर्णेन घातितः । यदि ह्येनं नाहनिष्यत् कर्णः शक्त्या

प्रकार नाश नहीं कर सकते थे, तब मनुष्य तो उसकी ओरको
 आँख उठाकर देख भी कैसे सकते थे ? उसकी मुठी दृढ़ थी,
 वह स्वयं बाण छोड़नेमें चतुर था और रातदिन बाण छोड़ा
 करता था, ऐसे भिल्लराजका भी तेरे हितके लिए ही मैंने रणके
 मुहाने पर नाश किया था, और तेरे हितके लिये तेरे सामने
 पराक्रमी चेदिराज शिशुपालको भी मैंने मार डाला था १७-२०
 उसको भी संग्राममें सब देवता और दानव नहीं जीत सकते थे,
 उसका और देवताओंके द्वेषी दूसरे दैत्योंका संहार करनेके लिये
 तथा मनुष्योंका हित करनेके लिये मैंने अवतार लिया है, और
 तेरा सहायतासे मैंने सबका नाश कर डाला है, ऐसे ही रावणकी
 समान महाबली और ब्राह्मणोंसे तथा यज्ञोंसे द्वेष करनेवाले
 हिडिम्बासुर, वक्त्र, किर्पीर आदिको भी भीमसेन मार डाला है,
 मायावी अलायुधको घटोत्कचने मार डाला ॥ २१-२४ ॥ और
 कर्णके द्वारा युक्तिसे शक्तिका प्रहार कराकर मैंने घटोत्कचका
 नाश कराया है, यदि कर्ण महासंग्राममें घटोत्कचका नाश नहीं
 करता तो मुझे भीमके पुत्र घटोत्कचका नाश करना पड़ता,

महामुधे ॥ २५ ॥ मया बध्योऽभविष्यत् स भैमसेनिर्यतोत्कचः ।
मया न निहतः पूर्वमेव युष्मत्प्रियेऽस्य ॥ २६ ॥ एष हि ब्राह्मण-
द्वेपी यज्ञद्वेपी च राक्षसः । धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेवं निपा-
तितः ॥ २७ ॥ व्यसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयाऽनघ ।
ये हि धर्मस्य लोप्तागो बध्यास्ते मम पाण्डव ॥ २८ ॥ धर्मसंस्था-
पनार्थं हि प्रतिज्ञैषा मया कृता । ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः
भीष्टृतिः क्षमा ॥ २९ ॥ यत्र तत्र रमेनित्यमहं सत्येन ते शपे ।
न विषादस्त्वया कार्यः कर्णे वैकर्त्तनं मति ॥ ३० ॥ उपदेक्ष्याम्यु-
पायं ते येन तं प्रसहिष्यसि । दुर्योधनञ्चापि रणे हनिष्यति ह्यको-
दरः ॥ ३१ ॥ तस्य चापि बधोपायं वक्ष्यामि तव पाण्डव । बध्नुते
तुमुलस्त्वेव शब्दः परचमं मति ॥ ३२ ॥ विद्वन्ति हि सैन्यानि

मैंने जो आजके दिन तक घंटोत्कचको महीं मारा था उसका
कारण यही था, कि-तुम्हें बुरा न लगे ॥ २५-२६ ॥ घंटोत्कच
ब्राह्मणोंका द्वेपी, यज्ञोंका द्वेपी, धर्मका लोप करनेवाला और
पापात्मा था, इसलिये ही मैंने उसका नाश कराया है ॥ २७ ॥
और हे निर्दोष अर्जुन ! इन्द्रने कर्णको जो शक्ति दी थी वह
भी इस उपायसे निरर्थक करादी है, क्योंकि-हे पाण्डव ! जो
पुरुष धर्मका नाश करता है, मैं उसका नाश करदेता हूँ ॥ २८ ॥
और धर्मही स्थापना करनेकी मेरी अचल प्रतिज्ञा है, मैं संत्यक्ती
शपथ खाकर कहता हूँ, कि-जहाँ ब्रह्म सत्य, दया, शौच, धर्म,
लज्जा, लक्ष्मी, धैर्य और क्षमा बसते हैं तहाँ मेरा नित्य निवास
रहता है, अब तुम्हें सूर्यपुत्र कर्णके नाशके लिये मनमें खेद नहीं
करना चाहिये ॥ २९-३० ॥ जिस युक्तिसे तू रणमें कर्णको
मारसकेगा, वह उपाय मैंने रच रक्खा है, ऐसे ही भीमसेन भी
रणमें दुर्योधनका नाश करसकेगा ॥ ३१ ॥ हे अर्जुन ! उसको
मारनेकी युक्ति भी मैं तुम्हें बनावज्जा, परन्तु इस समय शब्द

त्वदीयानि दिशो दश । लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमू-
तव । दहत्येष च वः सैन्यं द्रोणः प्रहरताम्बरः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि षटोत्कचवधपर्वणि कृष्णवाक्ये

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । एकवीरवधे मोघा शक्तिः सूताभजे यदा ।
कस्मात् सर्वान् समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान् ॥ १ ॥ तस्मिन्
हते हता हि स्युः सर्वे पाण्डवसृज्जयाः । एकवीरवधे कस्मा-
द्युद्धे न जयमादधे ॥ २ ॥ आहूतो न निवर्त्तेयमिति तस्य महाव्रतम् ।
स्वयं मार्गयितव्यः स सूतपुत्रेण फाल्गुनः ॥ ३ ॥ ततो द्वैरथमानीय
फाल्गुनं शक्रदत्तया । न जघान वृषः कस्मात्तन्ममाचक्ष्व-

शत्रुकी सेनामें बढता चला जारहा है ॥ ३२ ॥ तेरी सेना दशों
दिशाओंमेंको भागरही है, कौरव ताक २ कर तेरी सेनाका नाश
कर रहे हैं, यह बडेभारी योधा द्रोणाचार्य तेरी सेनाका संहार कर
रहे हैं, इधरको देख ॥ ३३ ॥ एकसौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त

धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय ! जब कर्णकी शक्ति एक ही
पुरुषका नाश करनेके अनन्तर निष्फल होजानेवाली थी तो
फिर उसने और सब योधाओंको छोड अर्जुनके ऊपर ही
मारकर उससे काम क्यों नहीं लिया ? ॥ १ ॥ यदि कर्णने
अर्जुनको मारडाला होता तो सब पाण्डव और सृज्जय अवश्य
ही मारेजाते, तो फिर उसने एक वीर अर्जुनका ही नाश करके
विजय क्यों नहीं प्राप्त की ? ॥ २ ॥ तू कहेगा, कि-अर्जुन
लडनेके लिये आता नहीं था तो इसके उत्तरमें मैं कहता हूँ, कि-
अर्जुनका यह महाव्रत है कि-यदि कोई भी उसको लडनेके
लिये बुलावे तो वह रणमें पीछेको नहीं हटता है अर्थात् अवश्य
ही लडनेको आता है, इसलिये सूतपुत्र कर्णने यदि अर्जुनको
लडनेके लिये बुलाया होता तो वह लडनेको आता ही ॥ ३ ॥

सञ्जय ॥ ४ ॥ नूनं बुद्धिविहीनश्चाप्यसहायश्च मे सुतः । शत्रु-
भिर्व्यसितः पापः कथं नु स जयेदरीन् ॥ ५ ॥ या ह्यस्य परमा
शक्तिर्जयस्य च परायणम् । सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यसिता च
घटोत्कचे ॥ ६ ॥ कुरुष्वेया हस्तगतं हिमेत्फलां बलीयसा । तथा
शक्तिरभोघा सा भोघीभूता घटोत्कचे ॥ ७ ॥ यथा वराहस्य शुनश्च
युद्धे तयोरभावे श्वपचस्य लाभः । अन्ये विद्वन् वासुदेवस्य तद्वद्युद्धे
लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥ ८ ॥ घटोत्कचो यदि हन्याद्वि कर्णं
परो लाभः स भवेत्पाण्डवानाम् । वैकर्त्तनो वा यदि तं निहन्या-
त्तथापि कृत्यं शक्तिनाशात् कृतं स्यात् ॥ ९ ॥ इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद्

उस समय हे सञ्जय ! कर्णने द्विरथ युद्ध करनेके लिये अर्जुन
को निमंत्रण देकर इन्द्रक दीहुई शक्तिसे उसको क्यों नहीं माग ४
परन्तु हाय ! मेरा पुत्र अवश्य ही बुद्धिहीन है, उसका कोई
सच्चा सहायक नहीं है, वह शत्रुओंके धोखेमें आगया है और पापी
है, वह शत्रुओंके ऊपर विजय कैसे पासकता है ? ॥ ५ ॥ वास्तव
में जो कर्णकी महाशक्ति गिनीजाती थी, जिसके ऊपर कर्णको
विजयका भरोसा था, वह शक्ति कृष्णने घटोत्कचके ऊपर फिकवा
कर निष्फल करवाली है. वास्तवमें टुपटे हाथवाले मनुष्यके
हाथमें आयेहुए फलको जैसे बलवान् मनुष्य लेजाता है तैसे ही
कर्णकी अमोघ शक्तिको कृष्णने युक्तिसे छीनलिया है, वह शक्ति
अमोघ बलवाली थी, परन्तु घटोत्कचके ऊपर प्रयोग करनेसे
अब बेकार होगयी ! हे विद्वन् ! जहाँ सूकर और कूकर लडते
हैं तहाँ दोनोंका मरण होजाने पर जैमे चाण्डालका लाभ होता
है, ऐसे ही मेरी समझमें कर्ण और घटोत्कचके युद्धसे श्रीकृष्णका
लाभ हुआ है—यदि घटोत्कच कर्णको मारडालेगा तो पाण्डवोंका
परमलाभ होगा और कदाचित् कर्ण उसको मारडालेगा तोभी उसकी
शक्ति क्षीण होजानेसे पाण्डवोंका काम बनेगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार

विचार्य घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे । अघातयद्वासुदेवो नृसिंहः प्रियं
 कुर्वन् पाण्डवानां हितञ्च ॥ १० ॥ सञ्जय उवाच । एतच्चि-
 कीर्षितं ज्ञात्वा कर्णस्य मधुसूदनः । नियोजयामास तदा द्वैरथे
 राज्ञसेश्वरम् ॥ ११ ॥ घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः ।
 अमोघायां विधातार्यं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ १२ ॥ तदैव कृत-
 कार्या हि वयं स्याम कुरुद्वह । न रक्षेद्यदि कृष्णस्तं कर्णात् पार्थ
 महारथम् ॥ १३ ॥ साश्वध्वज्जरथः संख्ये धृतराष्ट्र पतेद्भुवि । विना
 जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १४ ॥ तैस्तैरुपायैर्बहुभी-
 रक्ष्यमाणः स पार्थिव । जयत्यपिमुखाञ्जयन्न पार्थः कृष्णेन पा-
 लितः ॥ १५ ॥ सविशेषास्त्वमोघायाः कृष्णोऽरक्षत पाण्डवं ।

बुद्धिसे विचार कर, बुद्धिमान् और मनुष्योंमें सिंहसमान श्रीकृष्ण
 ने पाण्डवोंका हित और प्रिय करनेके लिये कर्णके हाथसे घटो-
 त्कचको मरवादिया है (और कर्णकी शक्ति निष्फल करदी
 है) ॥ १० ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! शक्तिसे अर्जुन
 को मार डालूँगा, ऐसे कर्णके कर्त्तव्यको जानकर ही महाबुद्धि-
 मान् मधुसूदन श्रीकृष्णने उस अमोघ शक्तिका नाश करानेके
 लिये महापराक्रमी राज्ञसराज घटोत्कचको, द्वैरथयुद्धमें नियत
 किया था, परन्तु हे राजन् ! इस सबका कारण तुम्हारा अन्याय
 ही है ॥ ११-१२ ॥ यदि श्रीकृष्ण रणमें महारथी कर्णसे अर्जुन
 की रक्षा नहीं करते तो उसी समय हम अपने काममें विजय
 पाजाते ॥ १३ ॥ हे धृतराष्ट्र ! यदि योगेश्वर श्रीकृष्ण उसकी
 सहायतामें नहीं होते तो अर्जुन अवश्य ही रथ, घोड़े और
 ध्वजाके सहित रणमें मारा जाता ॥ १४ ॥ हे राजन् ! ऐसे २
 अनेकों उपायोंसे श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षा कर रहे हैं, इसलिये
 ही अर्जुन रणके मुहाने पर खड़ा होकर शत्रुओंको जीनलेता
 है ॥ १५ ॥ और श्रीकृष्णने ही विशेषकर कर्णकी अमोघ शक्ति

हन्यात् त्रिप्रं हि कौंतेयं शक्तिर्वृक्षमिवाशनिः ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । विरोधी च कुपन्त्री च प्राज्ञमानी ममात्मजः । यस्यैव सप्तिकान्तो बध्नोपायो जयं प्रति ॥ १७ ॥ स चा कर्णो महाबुद्धिः सर्वशस्त्रभृताम्बरः । न मुक्तवान् कथं सूत तामघोषां धनञ्जये १८ तत्रापि सप्तिकान्तमेतद्वाच्यगणे कथम् । एनमर्थं महाबुद्धे यत्त्वया नाबोधितः ॥ १९ ॥ सञ्जय उवाच । दुर्योधनस्य शकुनेर्मम दुःशासनस्य च । रात्रौ रात्रौ भवत्येषा नित्यमेव समर्थना २० श्वः सर्वसैन्यमुत्सृज्य जहि कर्णं धनञ्जयम् । मेघ्यवत् पाण्डुपञ्चालानुपभोक्ष्यामहे ततः ॥ २१ ॥ अथवा निहते पार्थे पाण्डवान्यतमन्ततः । स्थापयेद्यदि चाण्यस्तस्मात् कृष्णो हि हव-

मेंसे अर्जुनको बचाया है, नहीं तो जैसे वज्र वृक्षका नाश कर-
 डालता है तैसे ही वह शक्ति अर्जुनका नाश करडालती ॥ १६ ॥
 धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय! मेरा पुत्र विरोध करनेवाला है, उसके
 भन्त्री दुष्ट हैं और वह स्वयं बुद्धिमान्नीका घमण्ड रखता है, इन
 सब कारणोंसे ही घटोत्कचका नाश अर्जुनका विजयरूप होगया
 है ॥ १७ ॥ तो हे सूत! मैं यह वृक्षता हूँ, कि-सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ
 महाबुद्धिमान् कर्णने किस कारणसे अर्जुनके ऊपर यह अमोघ
 शक्ति नहीं मारी? १८ हे सञ्जय! तू भी इस बातको कैसे भूलगया?
 हे महाबुद्धिमान् सञ्जय! तूने भी यह बात कर्णको क्यों नहीं
 जतायी? १९ सञ्जयने उत्तर दिया, कि- हे राजम्! दुर्योधन,
 शकुनि, मैं तथा दुःशासन हर एक रातमें नित्य ही कर्णसे प्रार्थना
 किया करते थे, कि- ॥ २० ॥ हे कर्ण! तू फलसब योधाओंको
 छोड़कर केवल अर्जुनका ही नाशकर तो हम पाण्डवोंको तथा
 पञ्चाल योधाओंको दासकी समान अपने काममें लासकेंगे २१
 यदि ऐसा न करे तो, क्योंकि- अर्जुनके मारे जाने पर कदाचित्
 वृष्णिवंशी कृष्ण पाण्डवोंमेंसे किसी दूसरेको राज्यसिंहासन पर

ताम् २२ कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्धतः । शाखा
 इवेतरे पार्थाः पञ्चाला पत्रसंशिताः ॥ २३ ॥ कृष्णाश्रयाः कृष्णवलाः
 कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः । कृष्णः परायणञ्चैर्पा ज्योतिषामिव
 चन्द्रमाः ॥ २४ ॥ तस्मात् पर्णानि शाखाश्च स्कन्धञ्चोत्सृज्य सूतजः ।
 कृष्णं हि विद्धि पाण्डूनां मूलं सर्वत्र सर्वदा ॥ २५ ॥ हन्याद्यदि हि
 दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम् । कृत्स्ना वसुमती राजन् वशे तस्य न
 संशयः ॥ २६ ॥ यदि हि स निहतः शयीत भूमौ यदुकुलपाण्डव-
 नन्दनो महात्मा । ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा सगिरिसमुद्रवना
 वशं ब्रजेत ॥ २७ ॥ सा तु बुद्धिः कृताप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे ।
 अममेये हृषीकेशे युद्धकाले त्वमुह्यत ॥ २८ ॥ अर्जुनञ्चापि राधे-

वैठालदे, इसलिये तू कृष्णको ही मार डाल ॥ २२ ॥ क्योंकि—
 पाण्डवरूप वृत्तकी जड़ श्रीकृष्ण है, अर्जुन उस वृत्तका गुद्धारूप
 है, दूसरे पाण्डव शाखारूप हैं और पांचाल राजे उसके पत्ते
 हैं ॥ २३ ॥ जैसे नक्षत्रोंको चन्द्रमाका परम आश्रय है तैसे ही
 पाण्डवोंको श्रीकृष्णका परम आश्रय है, श्रीकृष्ण पाण्डवोंका
 बल है, श्रीकृष्ण पाण्डवोंके स्वामी हैं और श्रीकृष्ण ही पाण्डवों
 का परम आश्रयस्थान हैं ॥ २४ ॥ इसलिये हे सूतपुत्र ! तू पत्ते,
 शाखा और गुद्देको छोड़ दे और कृष्णको पाण्डवोंकी मूल जान
 (और उसको ही मार डाल) ॥ २५ ॥ हे राजन् ! यदि कर्णने
 लड़ाईमें वृष्णिवंशी यदुनन्दन श्रीकृष्णको मार डाला होता तो
 निःसन्देह सब पृथिवी दुर्योधनके वशमें आगयी होती २६ हे राजन् !
 यदि यदुनन्दन महात्मा श्रीकृष्ण पर कर रणमें सोगये होते तो
 पर्वत, समुद्र और वनोंके सहित सब पृथिवी निःसन्देह तुम्हारे
 वशमें होजाती ॥ २७ ॥ कर्णने भी जाग्रत रहने वाले प्रमादरहित,
 देवताओंके पति, हृषीकेश श्रीकृष्णके ऊपर इन्द्रकी दी हुई शक्तिके
 मानेका विचार किया था, परन्तु युद्धके समय न जाने उसको

योत्सदा रक्षति केशवः । न ह्येनमैच्छत् प्रमुखे सौतेः स्थाप-
यितुं रणे ॥२६॥ अन्यांश्चास्मै रथोदारानुपास्थापयदक्षयुतः ।
अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां कुर्यामिति प्रभो ॥ ३० ॥ यश्चैवं
रक्षते पार्थ कर्णात्कृष्णो महामनाः । आत्मानं स कथं राजन्न
रक्षेत् पुरुषोत्तमः ॥ ३१ ॥ परिचिन्त्य तु पश्यामि चक्रायुधपरि-
न्दमम् । न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यो जयेत जनार्दनम् ॥ ३२ ॥
सञ्जय उवाच । ततः कृष्णं महाबाहुं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
पप्रच्छ रथशार्दूलः कर्णं प्रति महारथः ॥ ३३ ॥ अयञ्च प्रत्ययः
कर्णं शक्तिश्चापि विक्रमा । किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फाल्गुने
तदा ॥ ३४ ॥ वासुदेव उवाच । दुःशासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च

कैसा मोह होजाता था, कि-वह सब बात भूल जाता था ॥ २८ ॥
श्रीकृष्ण भी नित्य कर्णसे अर्जुनकी रक्षा करते थे और संग्राममें
कर्णके सामने उसको खड़ा रखना नहीं चाहते थे ॥ २९ ॥ हे
राजन् ! 'मैं इसकी अमोघ बलवाली शक्तिको किसप्रकार निष्फल
करूँ' ऐसे विचारसे श्रीकृष्ण दूसरे बड़े २ महारथियोंको कर्णके
सामने लड़नेको भेजते थे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! जो बड़े मनवाले
श्रीकृष्ण इस प्रकार अर्जुनकी कर्णसे रक्षा करते थे वह पुरुषोत्तम
अपनी रक्षा क्यों नहीं करते ? ॥ ३१ ॥ चक्र धारण करनेवाले
तथा शत्रुओंका दमन करनेवाले श्रीकृष्णके विषयमें विचार करके
जब मैं चारों ओरको दृष्टि डालता हूँ तो त्रिलोभीमें ऐसा कोई भी
पुरुष नहीं देखता, कि-जो-उनको जीतसके ॥ ३२ ॥ सञ्जयने
कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! 'कर्णन घटोत्कचको मारडाला, उसके
बाद सत्यपराक्रमी और महारथियोंमें सिंहसमान सात्यकीने महा-
बाहु श्रीकृष्ण से झुका कि-कर्णका निश्चय था कि-यह शक्ति
अर्जुनके मारूँगा और कर्णके पास अमोघ पराक्रमवाली
शक्ति थी तो भी कर्णने अर्जुनके वह शक्ति क्यों नहीं मारी ? ॥ ३३-३४

ससन्धवः । सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः ॥ ३५ ॥
 कर्णं कर्णं महेश्वास रणेऽमितपराक्रम । नान्यस्य शक्तिरेषा
 ते मोक्तव्या जयतां वर ॥ ३६ ॥ ऋणे महारथात् कर्णं कुन्ती-
 पुत्राद्भनञ्जयात् । स हि तेषामप्रियशा देवानामिव वासवः ३७
 तस्मिन् विनिहते पार्थे पाण्डवाः सृञ्जयैः सह । भविष्यन्ति हता-
 त्मानः सुरा इव निरश्रयः ॥ ३८ ॥ तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन
 शिनिपुङ्गव । हृदि नित्यन्तुर्कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः ॥ ३९ ॥
 अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधाम्बर । ततो नावासृजच्छक्तिं
 पाण्डवे श्वेतवाहने ॥ ४० ॥ फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिन्त-
 यतोऽनिशम् । न निद्रा न च मेहर्षो मनसोऽस्ति युधाम्बर ॥ ४१ ॥

इसका उत्तर देते हुए श्रीकृष्णने कहा, कि-दुःशासन, कर्ण, शकुनि,
 सिंधुदेशका राजा जयद्रथ ये सब दुर्योधनको आगे करके सदा
 रात्रिमें युद्ध करनेका विचार किया करते थे और कर्णसे कहते थे,
 कि-हे धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, कर्ण! तू रणमें अपार पराक्रम करनेवाला
 है, हे विजय पाने वालोंमें श्रेष्ठ ! तू महारथी कुन्तीनन्दन अर्जुनके
 सिवाय दूसरेके ऊपर इस शक्तिको कभी न छोड़ना, जैसे देवताओंमें
 इन्द्र बड़ा भारी यश पाने वाला है, ऐसे ही पाण्डवोंमें अर्जुन
 बड़ा यशस्वी है ॥ ३५-३७ ॥ और कुन्तीपुत्र अर्जुनके मारे जानेसे
 पाण्डव और सृञ्जय मुख्य अश्विरहित देवताओंकी समान नष्ट
 हो जायँगे ॥ ३८ ॥ हे सात्यकी ! दुर्योधन आदिकी ऐसी बातें
 सुनकर कर्णने प्रतिज्ञा की थी, कि-अच्छा मैं ऐसा ही करूँगा,
 इसलिये उसके हृदयमें नित्य गाण्डीवधनुषधारी अर्जुनको मारनेका
 विचार उठता रहता था ॥ ३९ ॥ परन्तु हे श्रेष्ठ योधा ! मैंने ही
 कर्णको मोहित किया था, इसलिये वह श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनके
 इन्द्रकी दी हुई शक्ति न मार सका ॥ ४० ॥ हे महायोधा ! कर्ण
 अर्जुनका काल है, नित्य ऐसा विचार उठनेके कारण मुझे रात्रिमें

घटोत्कचे व्यसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुङ्गव । मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं
 पश्याम्यद्य धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥ न पिता न च मे माता न यूयं
 भ्रातरस्तथा । न च प्राणास्तथा रक्षया यथा वीभत्सुराहवे ॥ ४३ ॥
 त्रैलोक्यराज्याद्यत्किञ्चिद्भवेदन्यत् सुदुर्लभम् । नेच्छेयं सात्वताहं
 तद्दिना पार्थ धनञ्जयम् ॥ ४४ ॥ अतः महर्षेः सुमहान् युयुधानाद्य-
 मेऽभवत् । मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थ धनञ्जयम् ॥ ४५ ॥ अतश्च
 प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः । न हान्यः समरे रात्रौ शक्तः कर्णं
 प्रवाधितुम् ॥ ४६ ॥ सञ्जय उवाच । इति सात्यकये प्राह तदा
 देवकीनन्दनः । धनञ्जयहिते युक्तस्तत्पिये सततं रतः ॥ ४७ ॥

नींद भी नहीं आती थी तथा मेरा मन भी प्रसन्न नहीं रहता
 था ॥ ४४ ॥ परन्तु हे शिनिपुङ्गव सात्यकी ! आज उसकी शक्तिको
 घटोत्कचके ऊपर पड़नेसे निष्फल हुई देखकर अब मैं समझता हूँ,
 कि—अर्जुन कालके मुखमेंसे वचन गया है ४२ मैं जिस प्रकार रणमें
 अर्जुनकी रक्षा करना आवश्यक समझता हूँ तैसी माता पिताकी,
 तुम्हारी, भाइयोंकी और अपने प्राणोंकी रक्षा करना भी योग्य
 नहीं समझता ४३ तथा हे सात्यकी ! तीनों लोकोंके राज्यकी अपेक्षा
 भी यदि कोई वस्तु अत्यन्त दुर्लभ हो तो उस दूसरी वस्तुको
 भी मैं अर्जुनके बिना नहीं चाहता (अर्थात् मुझे अर्जुनसे अधिक
 प्यारी कोई वस्तु नहीं है) ४४ इसलिये हे सात्यकी ! आज मानो
 मरकर फिर जी उठा हो ऐसे कुन्तीनन्दन अर्जुनको देखकर मुझे
 बड़ा हर्ष हो रहा है ४५ और इस कामके लिये ही मैंने युद्धमें कर्णके
 सामने राक्षस घटोत्कचको भेजा था, उस राक्षसके सिवाय दूसरा
 कोई भी रात्रिके समय रणभूमिमें कर्णको नहीं दबासकता था (और
 इन्द्रकी दी हुई कर्ण की शक्तिको निष्फल नहीं करसकता था) ४६
 सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! सदा अर्जुनका प्रिय और हित
 करनेवाले देवकीनन्दन श्रीकृष्णने उस समय सात्यकीको इस
 प्रकार उत्तर दिया ॥ ४७ ॥ एकसौ वयासीवाँ अध्याय समाप्त १८२

धृतराष्ट्र उवाच । कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेः सौबलस्य च ।
 अपनीति महता तव चैव विशेषतः ॥ १ ॥ यदि जानीथ तां
 शक्तिमेकद्वीं सततंरणे । अनिद्वार्यामसह्याश्च देवैरपि सवासवैः २
 सा किमर्थं तु कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा । न देवकीमुते मुक्तां
 फाल्गुने वापि सञ्जय ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । संग्रापाद्विनि-
 वृत्तानां सर्वेषां नो विशाम्यते । रात्रौ कुरुकुलश्रेष्ठ मन्त्रोऽयं सम-
 जायत ॥ ४ ॥ प्रभातकाले श्वोभूते केशवाधार्जुनाय वा । शक्ति-
 रेषा विमोक्तव्या कर्णं कर्णेति नित्यशः ॥ ५ ॥ ततः प्रभातसमये
 राजन् कर्णस्य दैवतैः । अन्येषाञ्चैव योधानां सा बुद्धिर्नाश्यते
 पुनः ॥ ६ ॥ दैवमेव परं मन्ये यत् कर्णो हस्तसंस्थया । न जघान
 रणे पार्थ कृष्णं वा देवकीमुतम् ॥ ७ ॥ तस्य हस्तस्थिता शक्तिः

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे तात ! कर्णेने, दुर्योधनने, सुबलपुत्र
 शकुनिने और विशेष करतूने भी महाअग्न्याय किया है ॥ १ ॥
 जब तुम सब जानते थे, कि-जिसको इन्द्र आदि देवता भा पीछे नो
 नहीं लौटा सकते ऐसी यह असह्य शक्ति रणमें केवल एकका ही
 नाश करसकती है ॥ २ ॥ तो फिर जब युद्ध होनेलगा, उस समय
 कर्णेने कृष्णके या अर्जुनके ऊपर उसका प्रयोग क्यों नहीं
 किया ? ॥ ३ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि-हे कुरुकुलमें श्रेष्ठ राजन् !
 रणभूमिमेंसे लौट आने पर हम सबोंका रात्रिमें यही विचार हुआ
 करता था और कहा करते थे, कि-हे कर्ण ! कल प्रातःकाल होते
 ही तू कृष्णके या अर्जुनके शक्ति मारता ॥ ४-५ ॥ परन्तु
 हे राजन् ! प्रभात होते ही देवता फिर कर्णकी तथा दूसरे योद्धानोंकी
 बुद्धिका नाश करदेते थे ॥ ६ ॥ कर्णेने हाथमें ली हुई शक्तिसे
 रणमें खड़ेहुए अर्जुनको या कृष्णको नहीं मोटा इसमें मैं तो दैवको
 ही मुख्य मानता हूँ ॥ ७ ॥ कालरात्रिकी समान भयानक और तयार
 रहनेवाली शक्ति कर्णके हाथमें विद्यमान थी, तो भी उसकी बुद्धिको

कालरात्रिरिवोद्यता । दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान् ८
 कृष्णे वा देवकीपुत्रे मोहितो दैवमायया । पार्थे वा शक्रकल्पे वै
 वधार्थं वासवीं प्रभो ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । दैवेनोपहता यूयं स्वयुद्धया
 केशवस्य च । गता हि वासवी हत्वा तृणभृतं घटोत्कचम् ॥ १० ॥
 कर्णश्च मम पुत्रश्च सर्वे चान्ये च पार्थिवाः । तेन वै दुष्प्रणी-
 तेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥ भूय एव च मे शंस यथा युद्ध-
 मवर्त्तत । कुरूणां पाण्डवानाञ्च हैडिम्बो निहते तदा ॥ १२ ॥ ये
 च तेऽभ्यद्रवन् द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः । सृञ्जयाः सह
 पञ्चालैस्तेऽप्यकुर्वन् कथं रणम् ॥ १३ ॥ सोमदत्तैर्वाह द्रोणमा-
 चान्तं सैन्धवस्य च । अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं दक्षि-

दैवने ही पलट दिया था और वह दैवी-मायासे मोहित हो गया
 था इसलिये ही हे राजन् ! देवकीनन्दन श्रीकृष्णके ऊपर अथवा
 इन्द्रकी समान शक्तिमान् अर्जुनके ऊपर उनका नाश करनेके
 लिये इन्द्रकी दी हुई शक्तिका कर्णने प्रहार नहीं किया (और
 क्या कहा जाय ?) ॥ ८-६ ॥ धृतराष्ट्रने चूका, कि-हे सञ्जय !
 दैवके कारणसे अथवा कृष्णकी मपञ्च भरी बुद्धिसे या तुम्हारी
 ही अपनी बुद्धिसे तुम्हारा नाश हुआ है और इन्द्रकी दी हुई
 शक्ति तृणसमान घटोत्कचका नाश करके चली गयी ॥ १० ॥
 इस दुदैवके कारणसे ही कर्ण मेरे, सब पुत्र तथा दूसरे राजे रणमें
 मारे जायेंगे ॥ ११ ॥ अब मुझे यता, कि-हिडिम्बाके पुत्रके मारे
 जाने पर कौरव और पाण्डवोंमें किसप्रकार युद्ध चलता रहा
 था ? ॥ १२ ॥ पाण्डव, सृञ्जय और पाञ्चाल राजे अपनी सेनाओंको
 व्यूहमें रचकर द्रोणाचार्यके सामने लड़नेको दौड़े थे, यता उस
 समय उन्होंने द्रोणाचार्यके सामने पड़कर किसप्रकार युद्ध किया
 था ? ॥ १३ ॥ जब द्रोणाचार्य सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाके तथा
 सिधुराजके मारे जानेसे क्रोधमें भरकर जीवनकी भी परवाह न

नीम् ॥ १४ ॥ जम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
 कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणमस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः ॥ १५ ॥ आचार्य ये च
 तेऽरत्तन् दुर्योधनपुरोगमाः । द्रौणिकर्णकृपास्तात ते बाहुर्वन् किमा-
 हवे ॥ १६ ॥ भारद्वाजं जिघांसन्तौ धनञ्जयवृकोदरौ । समाच्छ्व-
 न्मामका युद्धे कथं सञ्जय शंस मे ॥ १७ ॥ सिन्धुराजवधेनेमे
 घटोत्कचवधेन ते । अमर्षिताः सुसंरब्धा रणञ्चक्रुः कथं निशि १८
 सञ्जय उवाच । हते घटोत्कचे राजन् कर्णेन निशि राक्षसे-
 प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥ १९ ॥ आपतत्सु च वेगेन
 बध्यमाने बलैऽपि च । विगाढायां रजन्याञ्च राजा दैन्यं परङ्गतः २०

करतेहुए, जवाड़ोंको चाटतेहुए व्याघ्रकी समान और मुख फाड़े
 हुए कालकी समान सेनामें घुसगये और बाणोंकी वर्षा करने
 लगे, उस समय पाण्डव सृञ्जय और पाञ्चालोंने द्रोणाचार्यके
 सामने पड़कर किसप्रकार चढ़ाई की और टकर ली थी ? १४-१५
 और हे तात ! मुझे बता, कि-दुर्योधन आदि, मेरे पुत्र अश्वत्थामा
 कर्ण तथा कृपाचार्य रणमें द्रोणाचार्यकी रक्षा कर रहे थे, उससमय
 उन्होंने युद्धमें कैसा पराक्रम दिखाया था ? ॥ १६ ॥ हे सञ्जय !
 मुझे बता, कि-मेरे पुत्रोंने तथा योधाओंने द्रोणाचार्यको मार
 डालना चाहनेवाले भीम और अर्जुनके साथ रणमें किसप्रकार
 युद्ध किया था ? ॥ १७ ॥ और सिन्धुराज जयद्रथके मारे जानेसे
 कौरव तथा घटोत्कचके मारेजानेसे पाण्डव कोषमें भरकर आधी
 रात्रिके समय रणमें किसप्रकार लड़े थे ? ॥ १८ ॥ सञ्जयने कहा,
 कि-हे राजन् ! जब रात्रिके समय कर्णने राक्षस घटोत्कचको
 मार डाला तब तुम्हारे युद्ध करना चाहनेवाले योधा हर्षमें भरकर
 गर्जना पर गर्जना करनेलगे वेगके साथ दौड़नेलगे और पाण्डवोंकी
 सेनाका नाश करनेलगे, वह घोर अन्धकारसे भरा आधी रातका
 समय था, उस समय राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दीन बनगये और

अब्रवीच्च महाबाहुभीमसेनमिदं वचः । आवारय महाबाहो
धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥ २१ ॥ हैडिम्बस्य च घातेन मोहो मामा-
विशन्महान् । एवं भीमं समादिरय स्वरथे समुपाविशत् ॥ २२ ॥
अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः । करणलं प्रादिशद्
घोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २३ ॥ तं तथाव्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो
वचनमब्रवीत् । गा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ २४ ॥
वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे । उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व बह-
गुर्वी धुरं विभो ॥ २५ ॥ त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये
भवेत् । श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥ निमृज्य
नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत् । विदिता मे महाबाहो धर्माणां
परमा गतिः ॥ २७ ॥ ब्रह्महत्याफलं तस्य यः कृतं नावबुध्यते ।

महाबाहु युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा, कि-हे महाशुज भीम !
कौरवोंकी सेना इपारी सेनाका संहार कररही है, इसलिये उसको
पीछेको हटा ॥ १६-२० ॥ मैं तो घटोत्कचके मारेजानेसे घबड़ा
गया हूँ, इसलिये अब युद्धसे कुछ नहीं होसकेगा, भीमसेनसे ऐसा
कहकर राजा युधिष्ठिर रोते हुए तथा बारम्बार लम्बे साँस छोड़ते
हुए अपने रथमें जा बैठे और कर्णके महापराक्रमको देखकर
बड़े ही खिन्न होगये ॥ २१-२३ ॥ उस समय श्रीकृष्ण राजा
युधिष्ठिरको इस प्रकार खिन्न हुआ देखकर कहने लगे, कि-
हे कुन्तीके पुत्र ! तुम खेद न करो, हे भरतसत्तम ! तुम सरीखे
महापुरुषको साधारण मनुष्यकी समान विकल नहीं होना चाहिये,
महाराज ! उठो खड़े होजाओ, युद्ध करो ! और महारणकी धुरा
व्यूहारणकरो ॥ २४ ॥ २५ ॥ यदि तुम घबड़ाजाओगे तो विजय
समय न सन्देह ही रहेगा, कृष्णकी इस बातको सुनकर धर्मराज
था ? ॥ दोनों हाथोंसे अपने दोनों नेत्रोंको पोंछढाला और
सिंधुराजके कि-हे महाबाहो ! मैं धर्मोंके परम रहस्यको समझता

अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना ॥ २८ ॥ बालेनापि
सता तेन कृतं सद्यं जनार्दन । अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेत-
वाहनम् ॥ २९ ॥ असौ कृष्ण महैष्वासः काम्यके मामुपस्थितः ।
उषितश्च सहास्माभिर्यावन्नासीद्वनञ्जयः ॥ ३० ॥ गन्धमादनयात्रायां
दुर्गेभ्यश्च स्म तारिताः । पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महा-
त्मना ॥ ३१ ॥ आरम्भाच्चैव युद्धानां यदेष कृतवान् प्रभो । मदर्थे
दुष्करं कर्म कृतं तेन महाहवे ॥ ३२ ॥ स्वभावाद् या च मे प्रीतिः सह-
देवे जनार्दन । सैव मे परमा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥ ३३ ॥
भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे । तेन विन्दामि वाष्ण्येय
कश्मलं शोकतापितः ॥ ३४ ॥ पश्य सैन्यानि वाष्ण्येय द्राव्यमा-

हं ॥ २६-२७ ॥ जो मनुष्य अपने ऊपर कियेहुए उपकारोंको नहीं
जानता है उसको ब्रह्महत्याका पाप लगता है, हे जनार्दन ! महात्मा
घटोत्कच बालक था, तब भी जब हम वनमें रहते थे और अर्जुन
अस्त्र लेनेको स्वर्गमें गया था, उस समय उसने हमारी सहायता की
थी ॥ २८ ॥ २९ ॥ तथा हे कृष्ण ! जबतक अर्जुन हमारे पास नहीं
आया तबतक यह महाधनुषधी काम्यक वनमें आकर हमारे पास
रहा था ॥ ३० ॥ और हम गन्धमादन पर्वतकी यात्रा करनेगये
थे, उस समय उसने हमें कष्टोंमेंसे उवारा था तथा मार्गमें थकगये
तब उसने द्रौपदीको अपनी पीठ पर चढालिया था ॥ ३१ ॥
और हे प्रभो ! वह युद्ध करनेमें प्रवीण था, उसने युद्ध किये थे
और इस लड़ाईमें भी उसने मेरे लिये बड़ा कठिन पराक्रम किया
है ॥ ३२ ॥ हे जनार्दन ! मेरी सहदेवके ऊपर जैसी स्वाभाविक
प्रीति है, ऐसी ही प्रीति राक्षसराज घटोत्कचके ऊपर भी थी ३३
वह महाबाहु मेरा परमभक्त था, मैं उसको प्यारा था और वह
मुझे प्यारा था, इसलिये हे वृष्णिगवंशी कृष्ण ! उसके मारे जानेसे
मुझे बड़ा ही शोक होरहा है और इसलिये ही मैं खिन्न होरहा

एषां कौरवैः । द्रोणकर्णौ च संयत्तौ पश्य युद्धे महारथी ॥३५॥
निशीथे पाण्डवं सैन्यमेतत् सैन्यममर्दितम् । गजाभ्यामिव मत्स्य-
भ्यां यथा नलवनं महत् ॥ ३६ ॥ अनादृत्य बलं बाहोर्भीमसेनस्य
माधव । चित्रास्त्रताञ्च पार्थस्य विक्रान्ति स्म कौरवाः ॥ ३७ ॥
एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः । निहत्य राक्षसं युद्धे
हृष्टा नर्दन्ति संधुगे ॥ ३८ ॥ कथं यास्मासु जीवत्सु त्वयि चैव
जनार्दन । हैडिम्बिः प्राप्तवान् मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः ॥ ३९ ॥
कदर्शीकृत्य नः सर्वान् पश्यतः सव्यसाचिनः । निहतो राक्षसः
कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः ॥ ४० ॥ यदाभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्र-
दुरात्मभिः । नासीत्तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥ ४१ ॥
निरुद्धाश्च नयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना । निमित्तमभवद् द्रोणः

हूँ ॥३४॥ हे दृष्टिगवंशी कृष्ण ! कौरव हमारी सेनाओंको रणमें से
भगारहे हैं, वह देखो और महारथी कर्ण तथा द्रोणाचार्य, उद्यत
होकर युद्धमें कैसे घूमरहे हैं, उनको भी देखिये ॥ ३५ ॥ जैसे
महामदमत्त दो हाथी बड़ेभागी नलके वनको कुचल कर चूरा कर
डालते हैं तैसे ही कौरवोंकी सेना हमारी सेनाको बहुत ही कुचल
रही है ॥ ३६ ॥ हे माधव ! कौरव भीमसेनके बाहुबलका तथा
अर्जुनके विचित्र आयुधोंका अनादर करके देखो कैसा पराक्रम
कर रहे हैं ? ॥३७॥ यह द्रोण, कर्ण और राजा दुर्योधन रणमें
राक्षस घटोत्कचको मारकर हर्षसे लड़तेहुए रणभूमिमें कैसे गाज
रहे हैं ? यह भी देखिये ॥३८॥ हे जनार्दन ! हमारे और तुम्हारे
जीतेहुए हैडिम्बाका पुत्र घटोत्कच कर्णके साथ लड़ताहुआ कैसे
मारागया ? ॥३९॥ हे कृष्ण ! हम सर्वोंका अनादर करके महा-
बली घटोत्कचको कर्णने अर्जुनके सामने ही मारडाला है ॥४०॥
हे कृष्ण ! जिस समय दुष्टात्मा कौरवोंने अभिमन्युको मारा था,
उस समय तो रणमें महारथी अर्जुन था ही नहीं ॥ ४१ ॥ और

सपुत्रस्तत्र कर्मणि ॥ ४२ ॥ उपदिष्टो बधोपायः कर्णस्य गुरुणा
 स्वयम् । न्यायच्छत्रश्च खड्गेन द्विषा खड्गञ्चकार ह ॥ ४३ ॥
 व्यसने वर्त्तमानस्य कृतवर्मा वृशंसवत् । अश्वान् जघान सहसा
 तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ४४ ॥ तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं यद्य-
 पातयन् । अल्पे च कारणे कृष्ण हतो गाण्डीवधन्वना ॥ ४५ ॥
 सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तत्तु नातिमियं मम । यदि शत्रुबधो न्याय्यो
 भवेत् कर्तुञ्च पाण्डवैः ॥ ४६ ॥ द्रोणकर्णौ रणे पूर्वं हन्तव्या-
 विति मे मतिः । एतौ मूलं हि दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ ॥ ४७ ॥
 एतौ रणे समासाद्य समाश्वस्तः सुयोधनः । यत्र बध्यो भवेद्
 हमे तो सिंधुराज जयद्रथने रोकरक्ता था, इसलिये ही द्रोणाचार्यने
 तथा अश्वत्थामाने उसको मारवाडाला था ॥ ४२ ॥ और गुरु
 द्रोणाचार्यने अपने आप ही अभिमन्युको मारहालनेका उपाय
 कर्णको बताया था, कर्णने तलवारका महार करके युद्ध करतेहुए
 अभिमन्युकी तलवारके दो टुकड़े करहाले थे और अभिमन्यु
 तलवारसे भी हीन होयगा था ॥ ४३ ॥ इस सङ्कटके समयको
 अवसर पाकर कृतवर्माने क्रूरकी समान अभिमन्युके रथके घोड़ोंको,
 दोनों करवटोंके रत्तकोंको और सारथिको मारहाला था ॥ ४४ ॥
 तथा दूसरे बड़े २ धनुषधारी योधाओंने सुभद्राके पुत्रको युद्धमें
 घेरकर मारहाला था, इसमें अकेले जयद्रथका ही बड़ा भारी अपराध
 नहीं था, तो भी गाण्डीवधनुषधारी अर्जुनने एक जरासे कारणके
 लिये जयद्रथको मारहाला, यह मुझे अच्छा नहीं लगा, तो भी
 यदि शत्रुओंको मारहालना नीतिके अनुकूल माना जाता हो तो
 मेरी समझमें पाण्डवोंको पहले इस लड़ाईमें कर्णको और द्रोणा-
 चार्यको मारहालना चाहिये था, क्योंकि—हे पुरुषश्रेष्ठ ! ये दोनों
 ही हमारे दुःखका मूल-कारण हैं ॥ ४५—४७ ॥ और दुर्योधन
 रणमें इन दोनोंकी सहातासे निर्भय होकर प्रसन्न रहता है, जहाँ

द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः ॥ ४८ ॥ तत्रावधीन्महाबाहुः सैन्धवं दूर-
वासिनम् । अदश्यन्तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः ॥ ४९ ॥
ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णं जिघांसया । भीमसेनो महा-
बाहुर्द्रोणानीकेन सङ्गतः ॥ ५० ॥ एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो
युधिष्ठिरः । स विस्फार्य महच्चापंशंखं प्रधाप्य भैरवम् ॥ ५१ ॥ ततो
रथसहस्रेण गजानाञ्च शतैस्त्रिभिः । वाजिभिः पञ्चसाहसैः पञ्चालैः
सभद्रकैः ॥ ५२ ॥ वृतः शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्व-
यात् । ततो भेरीः समाजघ्नुः शंखान् दध्मुश्च दंशिताः ॥ ५३ ॥
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः । ततोऽज्वीन्महाबाहु-
र्वासुदेवो धनञ्जयम् ॥ ५४ ॥ एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो
युधिष्ठिरः । जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते ॥ ५५ ॥

द्रोणाचार्य तथा अनुचरों सहित सूतपुत्र कर्ण मारने योग्य थे तहाँ
उनको न मारकर महाबाहु अर्जुनने दूर रहनेवाले सिन्धुराजको
मारवाला, परन्तु धर्मानुसार विचार किया जाय तो सूतपुत्र कर्ण
मारने योग्य है ॥ ४८-४९ ॥ इसलिये हे वीर कृष्ण ! मैं स्वयं कर्णको
मारनेके लिये जाऊँगा और महाबाहु भीमसेन द्रोणाचार्यकी
सेनाके साथ लड़ रहा है, भले ही लड़ता रहे ॥ ५० ॥ ऐसा कहते
राजा युधिष्ठिर बड़े भारी धनुष पर टङ्कार देकर भयानकरूपसे
शङ्खनाद करते हुए शीघ्रताके साथ कर्णके साथ लड़नेको चल
दिये ॥ ५१ ॥ इस समय शिखंडी एक हजार रथ, तीन हजार
हाथी, पाँच हजार घोड़े तथा सभद्रक और पांचाल देशके योधाओंको
साथमें लेकर राजा युधिष्ठिरके पीछे गया, युधिष्ठिर आदि कवच-
धारी पाण्डवोंके तथा पांचालोंके योधा भेरी और शङ्ख बजाने लगे,
इसी समय महाबाहु वासुदेवके पुत्र श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा,
कि-५२-५४ यह युधिष्ठिर सूतपुत्र कर्णको मारनेके लिये क्रोधमें
भरकर बड़ी शीघ्रतासे उसके साथ लड़नेको जा रहा है, परन्तु इनको

एवमुक्त्वा हवीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत् । दूरं प्रयान्तं राजानम-
न्वगच्छज्जनार्दनः ॥ ५६ ॥ तं दृष्ट्वा सहसा यान्तं सूतपुत्रजिघां-
सया । शोकोपहतसङ्कुलं दह्यमानमिवाग्निना ॥ ५७ ॥ अभिग-
म्याब्रवीद्व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । व्यास उवाच । कर्णमासाद्य
संग्रामे दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ५८ ॥ संव्यसाचिवश्चाकांक्षी
शक्तिं रक्षितवान् हि सः । न चागाद् द्वैतं जिष्णुर्दिष्ट्या तेन महा-
रणे ॥ ५९ ॥ सृजेतां स्पर्द्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वतः ।
वध्यमानेषु चास्त्रेषु पीडितः सूतनन्दनः ॥ ६० ॥ वासवीं समरे
शक्तिं ध्रुवं मुञ्चेद्युधिष्ठिर । ततो भवेत्ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम ॥
दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद । वासवीं कारणं कृत्वा

अकेला छोड़ना ठीक नहीं है ५५ अर्जुनसे ऐसा कहकर हवीकेश
श्रीकृष्णने घोड़ोंको शीघ्रताके साथ हाँका और दूर पहुँचे हुए
राजा युधिष्ठिरको पकड़लिया ॥ ५६ ॥ इतनेमें ही शोकके कारण
जिनका ऐसा सङ्कुल हुआ था और मानो अग्निसे जल रहे हो ऐसे
सन्तप्त हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिरको सूतपुत्र कर्णका नाश करनेके लिये
वेगसे दौड़तेहुए देखकर व्यासजी उनके पास गये और युधिष्ठिरसे
कहनेलगे ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा, कि-अर्जुन संग्राममें कर्णके
साथ युद्ध करने पर भी जीवित है, यह बहुत ही अच्छा हुआ
है ॥ ५८ ॥ कर्णने अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे शक्ति रख
छोड़ी थी, परन्तु अर्जुन महारणमें उसके साथ द्वैत युद्ध करनेको
नहीं आया, यह भी अच्छा ही किया ॥ ५९ ॥ हे युधिष्ठिर ! दोनों
स्पर्धा करनेवाले योग्य चारों ओरको दिव्य अस्त्रोंका प्रहार करते
और जब अस्त्रोंका नाश होजाता तब सूतपुत्र कर्ण अकुला कर
अवश्य ही इंद्रकी दी हुई शक्तिको रणमें छोड़ता तो हे भरत-
सत्तम युधिष्ठिर ! उससे तुम महादुःखमें आपड़ते ॥ ६०-६१ ॥
इसलिये हे सम्मान करनेवाले राजन ! कर्णने युद्धमें राक्षस

कालेनोपहतो ह्यसौ ॥ ६२ ॥ तथैव करणाद्रक्तो निहतं ताता
संयुगे । मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥ ६३ ॥ प्राणि-
नामिह सर्वेषामेया निष्ठा युधिष्ठिर । भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थि-
वैश्च महात्मभिः ॥ ६४ ॥ कौरवान् रामरे सर्वान्प्रतिघुध्यस्व
भारत । पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति ॥ ६५ ॥ नित्यञ्च
पुरुषव्याघ्र धर्ममेव विचिन्तय । आनृशंरयं तपो दानं क्षमां सत्यञ्च
पाण्डव ॥ ६६ ॥ सेवेथाः परमप्रीतो यतो धर्मस्ततो जयः । इत्यु-
क्त्वा पाण्डवं व्यासस्तत्रैवान्तराभीयत ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
व्यासवाक्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

॥ समाप्तञ्च घटोत्कचवधपर्व ॥

घटोत्कचको मारडाला, यह भी बहुत अच्छा हुआ और कालने
ही इन्द्रकी शक्तिसे उसका नाश कराया है, उसका नाश शक्तिसे
ही रचा गया था ॥ ६२ ॥ हे तात ! यह राजस रणमें तुम्हारे
हितके लिये ही मरा है, इसलिये हे भरतसचप राजन् ! तुम क्रोध
न करो और शोकको त्याग दो ॥ ६३ ॥ सब प्राणियोंकी अन्तमें
यही गति होनी है, इसलिये हे भरतवंशी राजन् ! तुम सब महात्मा
भाइयोंके और राजाओंके साथ रहकर इस लड़ाईमें कौरवोंके साथ
युद्ध करो, हे तात ! आजसे पाँचवें दिन सब राज्य तुम्हारे वशमें
हो जायगा ॥ ६४ ॥ हे पुरुषोंमें व्याघ्रसमान युधिष्ठिर ! तू नित्य
धर्मका ही मनन कर और दयालुता, तप दान, क्षमा तथा सत्यका
परम प्रेमसे सेवन कर 'यतो धर्मस्ततो जयः' जहाँ धर्म होता है
उधरकी ही जय होती है, इस प्रकार धर्मराजसे कहकर भगवान्
व्यासजी तहाँ ही अन्तर्धान होगये ॥ ६६—६७ ॥ एक सौ
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८३ ॥ छ ॥

अथ द्रोणवधपर्व ।

सञ्जय उवाच । व्यासेनैवमथोक्तस्तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
स्वयं कर्णवधाद्वीरो निवृत्तो भरतर्षभ ॥ १ ॥ घटोत्कचे तु निहते
सुनपुत्रेण तां निशाम् । दुःखामर्षवशं प्राप्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः २
दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमून्तव । धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भ-
योनिं निवारय ॥ ३ ॥ त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुता-
शनात् । सशरः कवची खड्गी धन्वी च परतापनः ॥ ४ ॥ अभि-
द्रव रणे हृष्टो न च ते भीः कथञ्चन । जनमेजयः शिखण्डी च
दौष्ट्यं खिद्यं यशोधरः ॥ ५ ॥ अभिद्रवन्तु संहृष्टा कुम्भयोनिं सम-
न्ततः । नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ६ ॥ दुपदश्च
विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ । सात्यकिः केकैयाश्चैव पांडवश्च

द्रोणवधपर्व ।

सञ्जय कहता है, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! व्यासजी की
वात सुनकर वीर धर्मराज युधिष्ठिरने स्वयं कर्णको मारनेका विचार
छोड़ दिया ॥ १ ॥ और उस रातमें कर्णने घटोत्कचको मार डाला
था, इसलिये दुःख और क्रोधके वशमें हुए युधिष्ठिरने, भीमसेन
को तुम्हारी बड़ीभारी सेना को भगाते हुए देखकर धृष्टद्युम्नसे कहा,
तू रणमें द्रोणाचार्यको पीछेको हटा ॥ २॥३ ॥ तू द्रोणाचार्यका
नाश करनेके लिये बाण, कवच, तलवार और धनुषके सहित
अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ है और तू शत्रुको सन्ताप देनेवाला है ४
इसलिये प्रसन्न होता हुआ द्रोणाचार्यके सामने जा, तू किसी
प्रकारका डर न कर और जनमेजय, शिखण्डी दुष्ट्यं खका पुत्र
यशोधर, नकुल सहदेव द्रौपदीके पुत्र और प्रभद्रक योधा हर्षमें
भरेहुए चारों ओरसे द्रोणके ऊपर चढ़ाया करें ॥ ५ ॥ ६ ॥ और
द्रुपद, विराट, उसके भाई और पुत्र, सात्यकी, केकय राजे और
पाण्डुपुत्र अर्जुन भी द्रोणका नाश करनेको शीघ्र ही द्रोणके ऊपर

धनञ्जयः ॥७॥ अभिद्रवन्तु वेगेन कुम्भयोनिजिघांसया । तथैव
रथिनः सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किञ्चन ॥ ८ ॥ पादाताश्च रणे द्रोणं
पातयन्तु महारथम् । तथाज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महारमना ६
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिवधिप्सया । आगच्छतस्तान् सहसा
सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ १० ॥ प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्र-
भृताम्बरः । ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ ११ ॥
अभ्यद्रवत् ससंकुट इच्छन् द्रोणस्य जीवितम् । ततः प्रवृत्ते युद्धे
श्रान्तवाङ्मनसैनिकम् ॥ १२ ॥ पाण्डवानां कुरुणां च गर्जतामित-
रेतरम् । निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे ॥ १३ ॥ नाभ्य-
जानन्त समरे काञ्चिच्चेष्टां महारथाः । त्रियामा रजनी चैव घोररूपा
भयानका ॥ १४ ॥ सइत्ययामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ।
वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः ॥ १५ ॥ अर्द्धराजिः

चढ़ायी, करें, सत्र रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल भी
महारथी द्रोणके ऊपर चढ़ायी करके उनका नाश करें, इसप्रकार
महात्मा पाण्डवपुत्र धर्मराजके आज्ञा देते ही पाण्डवोंके सब योधा
द्रोणका नाश करनेके लिये बड़े वेगसे धावा लेकर गये और
शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य पूर्ण प्रयत्नके साथ एकायकी
सन्मुख आतेहुए पाण्डवोंके सामनेको दौड़े और राजा दुर्योधन
द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेकी इच्छासे क्रोधमें भरकर सब राजसमाजके
सहित पाण्डवोंके ऊपर को दौड़ा, परस्पर हुंकार करते पाण्डव
और कौरवोंमें फिर युद्ध आरम्भ होगया, हे महाराज ! इस समय
योधा और वाहन थकगये थे, बड़े महारथी भी निद्राके वशीभूत
होजानेसे अन्धसे हुए थक रहे थे और अब क्या करना चाहिये,
यह बात उनकी समझमें नहीं आती थी हजारों प्राणियोंका संहार
करनेवाली तीन पहरकी वह घोर अन्धकारवाली रात्रि आपसमें
युद्ध करते और विशेषरूपसे घायल हुए तथा निद्राके कारण

समाजशो निद्रान्धानां विशेषतः । सर्वे ह्यासन् निरुत्साहाः क्षत्रिया-
दीनचेतसः ॥ १६ ॥ तत्र सैन्ये परेषाञ्च गतास्त्रा विगतेष्वः ।
ते तदा पौरयन्तश्च हीमन्तश्च विशेषतः ॥ १७ ॥ स्वधर्ममनु-
पश्यन्तो न जहुः स्वामनी किनीम् । शस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रा-
न्धाः शेरते जनाः ॥ १८ ॥ गजेष्वन्ये रथेष्वन्ये हयेष्वन्ये च
भारत । निद्रान्धा नो बुबुधिरि कांचिच्चेष्टां नराधिप ॥ १९ ॥
तानन्ये समरे योधा प्रेषयन्ति यमक्षयम् । स्वप्नायमानास्त्वपरे परा-
नतिविचेतसः ॥ २० ॥ आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परा-
नपि । नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्राधास्ते महारणे ॥ २१ ॥
अस्माकन्तु महाराज परेभ्यो बहो जनाः । योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो

अन्धेसे बनेहुए योधाओंको हजारों पहरकेसी मालूम होरही थी,
जब आधी रात बीत गयी तब सब क्षत्रिय योधा निद्रासे अन्धे
होगये, उनका उत्साह जाता रहा और हृदयमें हीनता छागयी ७-१६
तुम्हारे और शत्रुओंके योधाओंके पास बाण नहीं रहे थे, तो भी
वे विनीत होनेके कारण अपने क्षत्रियधर्मको याद करके सेनाको
छोड़कर नहीं गये थे, किन्तु ऐसी दशामें भी वे लड़ ही रहे थे,
कितने ही साधारण मनुष्य निद्रासे घिरजानेके कारण अस्त्रोंको
दूर फेंकर सोगये थे ॥ १७-१८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कितने
ही योधा रथों पर, कितने ही हाथियों पर और कितने ही घोड़ोंके
ऊपर निद्रासे अन्धे होकर सो रहे थे, अब क्या करना चाहिये,
यह उनको सूझता ही नहीं था ॥ १९ ॥ उस समय सामनेवाले
योधा रणमें निद्राके वशीभूतहुए तथा अचेत पड़ेहुए उन योधाओंको
यमलोकमें भेज रहे थे २० निद्रासे अन्धे हुए कितने ही योधा महा-
रणमें अनेकों बकवादें कर रहे थे और गड़बड़ीमें अपने पक्षका,
दूसरोंका तथा स्वयं अपना भी नाश कर रहे थे २१ निद्राके कारण
जिनके लाजर नेत्र हो रहे थे ऐसे हमारे बहुतसे योधा, शत्रुओंके

निद्रासंरक्तलोचनाः ॥२२॥ संसर्पन्तो रणे केचिन्निन्द्रान्धास्ते पर-
स्परम् । जघ्नः शूरा रणे शूरास्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ २३ ॥
हन्यमानमथात्मानं परेभ्यो बहवो जनाः । नाभ्यजानन्त समरे
निद्रया मोहिता भृशम् ॥२४॥ तेपामेतादृशीं चेष्टां विशाय पुरुष-
र्षभः । उवाच वाक्यं वीभत्सुरुच्चैः सन्नादयदिशः ॥ २५ ॥
श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्व एव सबाहनाः । तमसा च वृते
सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥ २६ ॥ ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत
सैनिकाः । निमीलयत चात्रव रणभूमौ मुहूर्त्तकम् ॥ २७ ॥ ततो
चिनिद्रा विश्रान्ताश्चन्द्रगस्युदिते पुनः । संसाधयिष्यथान्योन्यं
संग्रामं कुरुपाण्डवाः ॥ २८ ॥ तद्वचः सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य विशा-

साथ लड़ना ही चाहिये, ऐसा विचार कर रणमें खड़े रहे थे २२
कितने ही वीर योधा निद्रासे अन्धे हो जाने पर भी उस घोर अन्ध-
कारमें दौड़कर शत्रुओंका नाश कर रहे थे ॥ २३ ॥ और कितने
ही योधा तो रणभूमिमें निद्रासे ऐसे अन्धे बन गये थे कि शत्रु
उनको मारते थे तो भी उनको कुछ मालूम नहीं होता था ॥ २४ ॥
इस समय पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन योधाओंकी ऐसी दश को देखकर
ऊँचे स्वरसे दिशाओंको गुञ्जारता हुआ कहने लगा कि—॥२५॥
अरे योधाओं ! तुम सब तथा तुम्हारे वाहन भी थक गये हैं तुम्हें
निद्राने घेर लिया है और अन्धकारसे तथा बड़ी भारी धूलिसे सेना
ढक गयी है अर्थात् तुम एक दूसरेको देख भी नहीं सकते हो २६
इसलिये हे योधाओं ! तुम मेरा कहना मानो तो अब लड़ना
बन्द कर दो और दो घड़ी को इस रणभूमिमें ही सेजाओ ॥२७॥
तुम जब थकावटसे रहिन होकर जागो और आकाशमें चन्द्रमाका
उदय हो जाय, तब कौरव और पाण्डव फिर परस्पर युद्ध करने
लग जा ॥ २८ ॥ हे राजन् ! धर्मार्त्ता अर्जुनकी वान सन धर्मवेत्ता
योधाओंने मानली आपसमें एक दूसरेको बुलाने लगे और हे कर्ण

म्पते । अरोचयन्त सैन्यानि तदा चान्योन्यमब्रुवन् ॥ २६ ॥
 चुक्रुशुः कर्णं कर्णेति राजन् दुर्योधनेति च । उपारमत पाण्डूनां
 विरता हि वरूथिनी ॥ २७ ॥ तथा विक्रोशमानस्य फाल्गुनस्य तत-
 स्ततः । उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत ॥ २८ ॥ तामस्य
 वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः । सर्वसैन्यानि चाक्षुद्रां प्रहृष्टाः
 प्रत्यपूजयन् ॥ २९ ॥ तत् सम्पूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत ।
 मुहूर्त्तमस्वपन्नाजन् श्रान्तानि भरतर्षभ ॥ ३० ॥ सा तु सम्प्राप्य
 विश्रामं ध्वजिनीं तव भारत । सुखमाप्तवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूज-
 यत् ॥ ३१ ॥ त्वयि वेदास्तथास्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ । धर्म-
 स्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चानघा ॥ ३२ ॥ यच्चाश्वस्तास्तवेच्छामः

हे कर्ण ! हे दुर्योधन ! इसप्रकार कहनेलगे कि-पाण्डवोंकी थकी
 हुई सेना विश्राम ले रही है, इसलिये अब हमारी थकी हुई सेनाको
 भी विश्राम करना चाहिये, ऐसे ही दूसरी ओर अर्जुन भी अपनी
 सेनासे विश्राम लेनेके लिये ऊँचे स्वरसे कहने लगा, इसलिये
 हे भरतवंशी राजन् ! पाण्डवोंकी तथा तुम्हारी दोनोंकी सेना विश्राम
 लेने लगी ॥ २६-३१ ॥ महात्मा अर्जुनकी इस गौरव भरी बातकी
 देवता, महर्षि तथा सब सेनाओंने हर्षके साथ सराहना की । ३२ ।
 और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! सब सेनायें अर्जुनकी दयाभरी
 बातको मानकर थकजानेके कारण थकावटको दूर करनेके लिये
 दो घड़ी निद्रा लेनेको तयार होगयीं ॥ ३३ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ
 राजन् ! तुम्हारी थकी हुई सेना भी विश्राम मिल जानेसे अर्जुनकी
 प्रशंसा करनी हुई कहने लगी, कि- ॥ ३३ ॥ हे महाबाहु अर्जुन !
 हे निर्दोष राजन् ! वेद, अस्त्र, बुद्धि, पराक्रम और धर्म तुझमें
 ही रहते हैं और तू प्राणियोंके ऊपर दया करता है ॥ ३४ ॥
 हे अर्जुन ! हम शान्ति पाकर सुखी हुए हैं, इसलिये हम ईश्वरसे
 प्रार्थना करते हैं, कि-तेरा कल्याण हो, हे वीर अर्जुन ! तेरे

शर्म पार्थ तदस्तु ते । मनसरच प्रियानर्थान् वीर क्षिप्रवामुहि३६
इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः । निद्रया समवाप्तितास्तूष्णी-
मासन् विशाम्यते॥३७॥ अश्वपृष्ठेषु चाप्यन्ये रथनीडेषु चापरे । गज-
स्कंधगताश्चान्ये शेरते चापरे क्षितौ । ३८॥ सायुधाः सगदाश्चैव सखद्वाः
सपरश्वधाः । सपासकश्चाश्चान्ये नराः सुप्ताः पृथक् पृथक् ॥३९॥
गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूर्रेणुगुण्ठितैः । निद्रान्धा वसुधाश्चकु-
र्वाणनिःश्वासशीतलाम् ॥४०॥ सुप्ताः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो
महीतले । विकीर्णा गिरयो यद्वन्निरवसद्भिर्महोरगैः ॥४१॥ सपां च
विपमाञ्चक्रुः खुराग्रैर्विकृतां महीम् । हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते
केसरालम्बिभिर्युगैः ॥ ४२ ॥ सुपुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता बाहेषु

पनके मतोरथ श्रीघ्न ही पूरे हों ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार
महारथी योधा अर्जुनकी प्रशंसा करते२ निद्राके वशमें होकर
गुपचुप सोगये ॥ ३७ ॥ कितने ही घोड़ोंकी पीठ पर, कितने ही
रथोंमें, कितने ही हाथियोंके कंधों पर और कितने ही पृथ्वी पर
सोगये और कितने ही योधा हथियारोंके सहित, कितने ही हाथमें
गदा लियेहुए कितने ही तलवारके साथ, कितने ही फरसेके साथ,
कितने ही पास और कितने कवचके सहित अलग२ पृथिवी पर
सोगये ॥३८॥३९॥ निद्रासे अन्ये बनेहुए हाथी भी सर्पके शरीरकी
समान और पृथिवीकी धूलिसे सनीहुई मूँडसे नासिकाके द्वारा
साँस लेकर तनीहुई पृथिवीको शीतल करनेलगे ॥ ४० ॥ पृथिवी
पर सोये हुए तथा साँसें छोड़तेहुए वे हाथी इस समय लंबी २
फुङ्कारें भरतेहुए बड़े सगोंगले अलग२ बड़ेहुए पहाड़ोंसे दीखते थे४१
सुनहरी सामवाले घोड़ोंने बस रणकी सपाट भूमियां खुरके अग्र-
भागसे खोदकर ऊँचीनीची और वेडौल करडाला, हे राजेन्द्र ! रथोंमें
जुतेहुए वे घोड़े श्रीपाके वालों पर लटकती हुई डोरियोंके साथ
रणभूमिमें सोगये, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इसप्रकार अत्यन्त

सर्वशः । एवं हयाश्च नागाश्च योनाश्च भरतर्षभ । युद्धादिरस्य
सुषुपुः श्रमेण महतान्विताः ॥ ४३ ॥ तत्तथा निद्रया मग्नमधोऽं
प्रास्वपद् भृशम् । कुशलैः शिन्धिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिदानीन्तम् ४४
ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः परस्परं सायकविक्षताङ्गाः । कुम्भेषु
लीनाः सुषुपुर्गजानां कुचेषु लया इव कामिनीनाम् ॥ ४५ ॥ ततः
कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपांडुना । नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री
दिगलंकृता ॥ ४६ ॥ दशशतक्षककुन्दरिनिःसृतः किरणकेशर-
भासुरपिञ्जरः । तिमिरवारणयूथविदारणः समुदियादुदयाचल-
केसरी ॥ ४७ ॥ हरदृषोत्तमगात्रसमद्युतिः स्मरशरासनपूर्णसम-
प्रभः । नववधूस्मितचारुमनोहरः प्रविष्टतः कुमुदाकरबान्धवः ४८

थकेहुए घोड़े हाथी और योधा युद्धसे विराम पाकर रणभूमिमें
सो गये थे ॥४२॥४३॥ सेना जिस समय निद्रामें मग्न होकर कुछ
भी चेतन हो इसप्रकार खूब निद्रा लेने लगी, उस समय मानो चतुर
कारीगरोंने चित्रपट पर अद्भुत चित्र बना दिया हो, ऐसी शोभा पाने
लगी ॥४४॥ कुण्डलधारी तरुण क्षत्रिय, कि-जिनके शरीर परस्परके
बाणोंसे घायल हो रहे थे, वे मानो कामिनियोंके कुचोंसे चिपटकर
सो रहे हों इसप्रकार हाथियोंके कुम्भस्थलोंसे चिपट कर रणमें
सो रहे थे ॥४५॥ दो घड़ी बीतजाने पर स्त्रीके कपोलतलकी समान
पाण्डुरवर्ण, नेत्रोंको आनन्द देनेवाला तथा कुमुदिनीको खिलाने
वाला चन्द्रमा पूर्वदिशाको शोभा देता हुआ उदय हुआ ॥ ४६ ॥
किरणरूप सटा (ग्रीवाके केश) से चमकता, पीले रङ्गका, अन्ध-
काररूप हाथियोंके टोलेका नाश करनेवाला, उदयाचलका केसरी
सिंहरूप चन्द्रमा पूर्वदिशारूप गुफामेंसे प्रकट हुआ ॥४७॥ और
शङ्करके वृषभकी समान तथा कामदेवके पुष्पधनुषकी समान पूर्ण
स्वैत वर्ण, नववधूके हास्यकी समान सुन्दर, कुमुदिनीके बान्धव
तथा मनोहर भगवान् चन्द्रमा आकाशमें राज्य करने लगे ॥ ४८ ॥

ततो मुहूर्त्तार्द्धगवान् पुरस्ताच्छशलक्षणाः । अरुणं दर्शयामास
 ग्रसन ज्योतिःप्रभां प्रभुः ॥ ४६ ॥ अरुणस्य च तस्यानुजातरूप-
 समप्रभम् । रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमिवास्मजत् ॥ ५० ॥
 उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः । पर्यगच्छञ्जनैः सर्वा
 दिशः खञ्ज्व क्षितिं तथा ॥ ५१ ॥ ततो मुहूर्त्तार्द्धुवनं ज्योतिर्भूत-
 मिवाभवत् । अपरुणमप्रकाशश्च जगामाशु तमस्तथा ॥ ५२ ॥
 प्रतिप्रकाशिते लोके दिवामभूते निशाकरे । विचेरुर्न विचेरुश्च राज-
 न्नक्तञ्चरास्ततः ॥ ५३ ॥ बोध्यमानन्तु तत्सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य
 रश्मिभिः । बुबुधे शतपत्राणां वनं सूर्याशुभिर्यथा ॥ ५४ ॥ यथा
 चन्द्रोदयोद्भूतः क्षुभितः सागरोऽभवत् । तथा चन्द्रोदयोद्भूतः

एकमुहूर्तमें ताराओंके तेजको ग्रसते हुए तथा मृगलाञ्छनके अग्र-
 भागमें लालिमाको दिखातेहुए सकल शुभ लक्षणोंवाले भगवान्
 चन्द्रदेव पूर्वदिशामें उदय होगये ॥ ४६ ॥ उन महान् चन्द्रदेवने
 रुपहली रङ्गके बड़ेभारी किरणमण्डलको धीरे२ आकाशमें फैलाना
 आरम्भ करदिया ॥ ५० ॥ और चन्द्रमाकी किरणें अपनी कान्तिसे
 अन्धकारको दूर करके धीरे२ दिशाओंमें, कोनोमें, आकाशमें
 और पृथिवी पर फैलगयीं ॥ ५१ ॥ इस कारण दो घड़ीमें सब
 जगत् प्रकाशमय होगया और अन्धकार नामरहित होकर तुरन्त
 भागगया ॥ ५२ ॥ इसप्रकार चन्द्रमाके उदय होने पर सब जगत्में
 दिनकी समान उजाला होगया, उस समय निशाचरोंका सञ्चार
 वन्द होगया तथा कितने ही निशाचर फिरते भी थे, हे महाराज !
 सूर्यकी किरणोंकी कान्तिसे जैसे कमलोंका वन खिलजाता है
 तैसे ही चन्द्रमाकी किरणोंसे सेना जागउठी ॥ ५३-५४ ॥ जैसे
 समुद्र चन्द्रमाको देख क्षुब्ध होकर उछलने लगता है तैसे ही सेना-
 रूप समुद्र भी चन्द्रमाका उदय होने पर उभरउठा ॥ ५५ ॥ और

स बभूव चलाण्वः ॥ ५५ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं पुनरेव विशां पते ।

लोके लोकविनाशाय लोकं परमयीप्सताम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि रात्रियुद्धे सैन्यनिद्रायां

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

सञ्जय उवाच । ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्येदमब्रवीत् ।

अमर्षवशमापन्नो जनयन् हर्षतेजसी ॥ १ ॥ दुर्योधन उवाच ।

न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः । सपत्ना ग्लानमनसो

लब्धलक्षां विशेषतः ॥ २ ॥ यत्तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियका-

म्यया । तत एते परिश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥ ३ ॥

सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च । भवता पान्यमानास्ते

विवर्द्धन्ते पुनः पुनः ॥४॥ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि ब्राह्मादीनि

च यान्यपि । तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! पवित्र लोकोंको पानेकी इच्छावाले योधाओंने पृथ्वीके

लोगोंका संहार करनेके लिये फिर युद्धका आरम्भ करदिया ॥५॥

एकसौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८४ ॥ ❀ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! जब सेना सोरही थी

उस समय दुर्योधन द्रोणाचार्यके पास गया और क्रोधमें भरकर

द्रोणको हर्ष तथा बल उत्पन्न करताहुआ बोला ॥१॥ दुर्योधनने

कहा, कि-हे महाराज ! शत्रु थक गये हैं, उनका उत्साह भङ्ग होगया

है और वे विशेष कर हमारे दौंवमें आगये हैं, इसलिये अब आप

उनको विश्राम करते हुए सहन न करिये अर्थात् उनकी मारकाट

आरम्भ करदीजिये ॥ २ ॥ हम आज दिन तक जो २ बातें सहते

चले आरहे हैं वह केवल इसलिये, कि-आपको बुरा न लगे, ये

बलवान् पाण्डव लड़ते २ थकगये हैं और तेज तथा बलसे सर्वथा

हीन होगये हैं, परन्तु आपकी रक्षासे ये बार २ बढनाते हैं ३-४

ब्रह्मास्त्र आदि जो दिव्य अस्त्र हैं वे सब विशेष कर आपके ही

न पाण्डवेषां न वयं नान्ये लोके धनुर्द्वराः। युध्यमानस्य ते तुल्याः
 सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥ असुरासुरगन्धर्वनिर्माळोकान् द्विजो-
 त्तम । सर्वास्वविद्धवान् हन्यादिव्यैरस्त्रैर्न संशयः ॥ ७ ॥ स
 भवान् मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान् विशेषतः । शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य
 मम वा मन्दभाग्यताम् ॥ ८ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुद्धर्षितो द्रोणः
 कोपितश्चात्मजेन ते । समन्युरब्रवीद्राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ९ ॥
 स्थविरः सन् परं शक्त्या घटे दुर्योधनाह्वे । अतः परं मया
 कार्यं क्षुद्रं विजयगृहिना ॥ १० ॥ अस्त्रविदं सर्वो हन्तव्योऽ-
 स्त्रविदा जनः । यद्भवान् मन्यते चापि शुभं वा यदि वाशुभम् ११
 तद्वै कर्त्तास्मि कौरव्य वचनात्तत्र नान्यथा । निहत्य सर्वपञ्चालान्

पास है, इस जगत्में पाण्डव, हम और दूसरे कोई भी धनुषधारी
 युद्ध करनेमें आपकी समान नहीं है, यह मैं आपसे सत्य कहता
 हूँ ॥ ४-६ ॥ हे श्रेष्ठ ब्रह्माण ! आप सब अस्त्रोंको जानते हैं,
 इसलिये तुम दिव्य अस्त्रोंसे सुर, असुर और गन्धर्वोंसहित तीनों
 लोकोंका नाश करसकते हो, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥
 परन्तु शिष्यभावके कारणसे अथवा मेरे मन्दभाग्यवश अपनेसे
 अत्यन्त भतभीत हुए पाण्डवोंको तुम मारते नहीं हो, किन्तु उनकी
 करतूतोंको सहते ही रहते हो ॥ ८ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् !
 इसप्रकार तुम्हारे पुत्रने द्रोणाचार्यको मसन किया और क्रोध
 भी दिलाया तब उन्होंने क्रोधमें भरकर दुर्योधनसे कहा, कि-
 हे दुर्योधन ! मैं बूढ़ा हूँ, तो भी युद्धमें शक्तिके अनुसार अच्छे
 प्रकारसे लड़ता हूँ, मैं सब अस्त्रोंको जानता हूँ, परन्तु विजयवी
 इच्छासे इन अस्त्रोंको न जाननेवाले सब योद्धाओंको यदि उन
 अस्त्रोंसे मारडालूँ तो इससे बढ़कर क्षुद्रकर्म मेरे लिये और कोई
 नहीं होगा, भला या बुरा जिस किसी भी कामको करनेके लिये
 तू मुझे अनुमति देगा ॥ १०-११ ॥ उस कार्यको हे कुरुवंशी ! मैं

युद्धे कृत्वा पराक्रमम् ॥१२॥ विमोक्षये कवचं राजन् सत्येनायुध-
मालभे । मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं श्रान्तमाहवे ॥ १३ ॥
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव । तं न देवा न गन्धर्वा
न यक्षा न च राज्ञसाः ॥ १४ ॥ उत्सहन्ते रणे जेतुं कुपितं
सन्वसाचिनम् । खाण्डवे येन भगवान् प्रत्युद्योतः सुरेश्वरः १५
सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना । यक्षा नागास्तथा दैत्या
ये चान्ये बलगर्विताः ॥१६॥ निहताः पुरुषेन्द्रेण तच्चापि विदितं
तव । गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादधो जिताः ॥ १७ ॥ यूयं
तैर्हियमाणाश्च मोक्षिता दृढधन्वना । निघातकवचाश्चापि देवानां
शत्रवस्तथा ॥ १८ ॥ सुरैरवध्याः संग्रामे तेन वीरेण निर्जिताः ।

करूँगा उसके विरुद्ध नहीं करूँगा, मैं रणमें सब पांचाल राजाओंका
नाश करके पराक्रम दिखानेके बाद ही अपने कवचको उतारूँगा,
इस विषयमें मैं तुझसे सत्य वचन कहकर अपने हाथमें हथियार
छाता हूँ, परन्तु हे महाबाहु दुर्योधन ! तू जो यह समझता है कि-
अर्जुन युद्धमें थक गया है ॥१२-१३॥ मैं तुझे उसका पराक्रम सत्य-
भावसे बताता हूँ तू उसको सुन अर्जुन जब रणमें क्रोधमें भरजाता है
उस समय देवता, गन्धर्व, यक्ष और राजस भी उसको नहीं जीत
सकते, खाण्डववनमें महात्मा अर्जुन भगवान् इन्द्रके सामने पड़ा
था ॥१४-१५॥ और बाणोंका प्रहार करके इन्द्रको वर्षा करनेसे
रोकदिया था और उस महापुरुषने बलसे घमण्डमें भरेहुए यक्ष,
नाग और दूसरे दैत्योंका भी नाश किया था, यह तुम्हें मालूम
ही है, जब चित्रसेन आदि गन्धर्व तुमको पकड़ कर लियेजाते थे
उस समय भी दृढ़ धनुषधारी अर्जुनने उनको जीतलिया था और
तुम्हें उनके हाथसे छुटालिया था, और देवताओंके शत्रु निघात-
कवच आदि, कि-जिनको देवता भी नहीं मारसकते थे उनको
भी इस वीर पुरुषने जीतलिया था और हिरण्यपुरमें रहनेवाले

दानवानां सहस्राणि विरथपुत्रवासिनाम् ॥ १६ ॥ विजिग्ये
 पुरुषग्याघः स शक्यो मानुषैः कथम् । मृत्यन्तञ्चैव ते सर्वं यथा
 बलमिदं तव ॥ २० ॥ क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टमानं विशाम्पते ।
 सञ्जय उवाच । तं तथा वै प्रशमन्तमर्जुनं क्षुपितस्तदा ॥ २१ ॥
 द्रोणं तव सुतो राजन् पुनरेवेदमब्रवीत् । अहं दुःशासनः कर्णः
 शकुनिर्मातुलथ मे ॥ २२ ॥ हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये द्वैधी कृत्वाद्य
 भारतीम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव ॥ २३ ॥
 अन्ववत्तं राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत् । को हि गाण्डीव-
 धन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २४ ॥ अक्षयं क्षपयेत् कश्चित्
 क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम् । तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः २५
 नासुरो रगरक्षसि क्षपयेयुः सहायुधम् । मूढास्त्वेवं प्रमायन्ते यानी-

हजारों दानवोंको ॥ १६-१६ ॥ इस पुरुषसिंहने हरा दिया था,
 फिर उसको मनुष्य तो जीत ही कैसे सकते हैं ? हे राजन् ! हम
 सबोंके वशोग करने पर भी अर्जुनने तेरे सामने तेरी सब सेनाका
 नाश कर डाला है, सञ्जयने कहा है, कि-हे राजन् ! द्रोणाचार्य
 इसप्रकार अर्जुनकी प्रशंसा करनेलगे, उस समय तुम्हारा पुत्र कोपमें
 भर गया २०-२१ और हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र द्रोणाचार्यसे फिर यह
 बात कहनेलगा, कि-मैं दुःशासन, कर्ण और मेरा मामा शकुनि २२
 आज भारती सेनाके दो भाग करके एक भागको अपने साथ ले
 जायँगे और अर्जुनको मार डालेंगे, दुर्योधनकी इस बातको सुनकर
 द्रोणाचार्यने मुसकराते हुए ॥ २३ ॥ राजा दुर्योधनसे कहा, कि-तू
 ठीक कहता है परमात्मा तेरा मङ्गल करे, तेजसे जलते हुएसे गाण्डीव
 धनुषधारी क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ अविनाशी अर्जुनका कौनसा क्षत्रिय
 नाश करसकता है ? कुवेर, इन्द्र, यम, वरुण तथा असुर, नाग
 और राक्षस भी आयुधधारी अर्जुनका पराजय नहीं करसकते,
 इस लिये हे भरतवंशी राजन् ! जैसी बातें तू कर रहा है ऐसी बातें

मान्यास्य भारत ॥२६॥ युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान् को ब्रजेद्
 गृहान् । त्वं तु सर्वाभिशङ्कित्वाग्निष्ठुरः पापनिश्चयः ॥ २७ ॥
 श्रेयसस्त्वद्विते युक्तास्तत्तद्वक्तुमिहेच्छसि । गच्छ त्वमपि कौन्तेय-
 मात्पार्थे जहि मा चिरम् ॥ २८ ॥ त्वमप्याशंससे युद्धं कुलजः
 क्षत्रियो ह्यसि । इमान् किं क्षत्रियान् सर्वान् घातयिष्यस्यनागसः २९
 त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयार्जुनम् । एष ते मातुलः प्राज्ञः
 क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ३० ॥ दुर्धृत्तदेवी गान्धारः प्रयात्वर्जुनमाहवे ।
 एषोऽक्षकुशलो जिह्वो द्यूतकृत् कैतवः शठः ॥ ३१ ॥ देविता
 निकृतिप्राज्ञो युद्धे जेष्यति पाण्डवान् । त्वया कथितमत्यर्थं कर्णेन
 सह हृष्टवत् ॥ ३२ ॥ असकृच्छून्यवन्मोहाद् धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
 अहञ्च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ॥ ३३ ॥ पाण्डुः

मुखे किया करते हैं ॥ २४-२६ ॥ युद्धमें अर्जुनके सामने लड़ने
 को निकला हुआ कौनसा पुरुष कुशलके साथ अपने घरको लौट
 कर जा सकता है ? और तेरे लिये कहूँ तो तू पापी, निष्ठुर और
 सबके ऊपर शङ्का करनेवाला है ॥ २७ ॥ तथा जो तेरा कन्याण
 करना चाहते हैं उनको तू निष्कारण ही उलाहना देता है; तू
 कुलीन क्षत्रिय है और युद्ध करनेकी अभिलाषा रखता है, परन्तु
 तू इन निरपराधी सब क्षत्रियोंका संहार क्यों करना चाहता है ?
 इस वैरका मूल कारण तो तू ही है, इसलिये तू ही कुन्तीपुत्र
 अर्जुनके सामनेलड़नेको जा और हे गान्धारीके पुत्र! यह तेरा मामा,
 कि-जो बुद्धिमान्, क्षत्रियके धर्मका पालन करनेवाला, कपटसे
 खेलनेवाला शठ, कपटी तथा फाँसे फँकनेमें चतुर कहलाता है,
 उसको अर्जुनके सामने रणका जुआ खेलनेको भेज, वह कपटी,
 ज्वारी और फाँसे फँकनेमें चतुर है, इस लिये वह युद्धमें पाण्डवों
 को हरादेगा! तूने कर्णके साथ रहकर मुखतावश, धृतराष्ट्रके सुनते
 हुए बड़े ही हर्षसे चारोंबार बुद्धिहीनकी समान बड़े आदेशके

पुत्रान् हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः । इति ते कथ्यमानस्य श्रुतं
संसदिसंसदि ॥ ३४ ॥ अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग्भव तैः सह । एष
ते पाण्डवः शत्रुरविशंकोऽग्रतः स्थितः ॥ ३५ ॥ क्षत्रधर्ममवेक्षन्
श्लाघ्यस्तव वधो जयात् । दत्तं धुक्तमधीतञ्च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सि-
तम् ॥ ३६ ॥ कृतकृत्योऽनृणश्चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम् ।
इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्त्तत यतः परे । द्वैधीकृत्य ततः सेनां
युद्धं समभवत्तदा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणदुर्योधन-
संभाषणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

सञ्जय उवाच । त्रिभागमात्रशेषायां राज्यं युद्धमवर्त्तत । कुरूणां
पाण्डवानाञ्च संहृष्टानां विशाम्पते ॥ १ ॥ अथ चन्द्रप्रभां सुष्ण-

साथ कहा था, कि-हे तात ! मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन
तीनों जने इकट्ठे होकर युद्धमें पाण्डवोंको मार डालेंगे, वीचसभामें
तुझे ऐसी बढेर करते हुए मैंने सुना है ॥ २८-३४ ॥ इसलिये अब तू
उनको साथमें लेकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर और कही हुई बातको
सच्ची कर, यह तेरा शत्रु पाण्डुपुत्र अर्जुन निःशङ्क होकर लड़ने
के लिये सामने खड़ा है ॥ २५ ॥ तू क्षत्रियके धर्मकी ओरको
देखकर लड़नेको तयार होना, तू अर्जुनके हाथसे मारा जाय, यह
जीत होनेसे अच्छा है, तूने दान किया है, ऐश्वर्य भोगा है, वेद
शास्त्र पढ़े हैं और यथेष्ट वैभव भी पाया है, इससे तू कृतकृत्य
ऋणरहित और सुखी है, इसलिये अब तू निडर होकर पाण्डुपुत्र
के साथ युद्ध कर, इतना कहकर सेनाको दो भागोंमें बाँटकर,
जिधर शत्रु खड़े थे, वधरको द्रोणाचार्यने कूच कर दिया और उस
समय फिर युद्धका आरंभ होगया ॥ ३६-३७ एक सौ पिचासीवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १८५ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! जब रात्रिके तीन भाग बीतगये

न्नादित्यस्य पुरःसरः । अरुणोऽभ्युदयान्वक्त्रे ताम्रोऽकुर्वन्निवा-
म्बरम् ॥ २ ॥ पांच्यां दिशि संहस्तांशोरुणेनारुणीकृतम् ।
तापनीयं यथा चक्रं भ्राजते रविमण्डलम् ॥ ३ ॥ ततो रथाश्चांशव-
मनुष्ययानान्युत्सृज्य सर्वे कुरुपाण्डुयोधः । दिवाकरस्याभिसुखे-
जपन्तः सन्ध्यागताः प्राञ्जलयो वभूवुः ॥ ४ ॥ ततो द्वैधी कृते-
सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान् । अभ्यद्रत् सपञ्चालान् दुर्योधन-
पुरोगमः ॥ ५ ॥ द्वैधीकृतान् कुरुन् दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
सपत्नान् संव्यतः कृत्वा अपसव्यमिमं कुहं ॥ ६ ॥ स माधव-
मनुजाय कुरुष्वेति धनञ्जय । द्रोणकर्णौ महेश्वासौ संव्यतः पर्य-
वर्त्तत ॥ ७ ॥ अभिप्रायन्तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरञ्जयः । आजि-

और एक भाग शेष रहा, उस समय हर्षमें भरे हुए कौरव और पांडवोंमें युद्धका आरंभ होगया । थोड़ी ही देरमें चंद्रमाकी प्रभाको चुगकर आकाशको लाल करता हुआ अरुण सूर्यसे पहले उदित होगया ॥ २ ॥ और फिर अरुणका लाल किया हुआ सूर्यमण्डल सुनर्णके पहियेकी समान पूर्व दिशामें दिप निकला-स्पष्ट-प्रभात होगया ॥ ३ ॥ कौरव और पाण्डव रथ, घोड़े तथा पालकियोंको जोड़कर प्रातःकालकी सन्ध्या वन्दन करनेके लिये सूर्यके सामने दोनों हाथ जोड़कर खड़े होगये और जप करने लगे ॥ ४ ॥ प्रातःकालका सन्ध्यावन्दन पूरा होजाने पर कौरवोंकी सेना दो भागोंमें बँटगई, द्रोणाचार्यने दुर्योधनको अगुया करके पांचाल, सोमक और पाण्डवोंके घोड़ाओंके ऊपर चढ़ाई की उस समय मधुवंशी श्रीकृष्णने कौरवोंकी सेनाको दो भागोंमें बँटी हुई देखकर धनञ्जयसे कहा, कि-शत्रुओंको बाँई ओर रखकर द्रोणाचार्यको रथकी दाई ओर रख ॥ ५ ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि-बहुत अच्छा ऐसा ही करिये, ऐसा कहकर महाधनुषधारी द्रोण चार्य तथा कर्णकी बाँई ओर धनञ्जय घूमने

शीर्षगतं पार्थ भीमसेनोऽभ्युवाच ह ॥ ८ ॥ भीमसेन उवाच ।
अर्जुनार्जुन वीभत्सो मृगुष्वैतद्वचो मम । यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य
कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥ अस्मिन्नेवेदागते काले श्रेयो न प्रति-
पत्स्यसे । असम्भावितरूपस्त्वं मृत्युशंसं करिष्यसि ॥ १० ॥ सत्य-
श्रीधर्मयशसां वीर्येणानृत्यमामुहि । भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ अप-
सव्यमिमान् कुरु ॥ ११ ॥ सञ्जय उवाच । स सव्यसाची भीमेन
चोदितः केशवेन च । कर्णद्रोणावविक्रम्य समन्तात् पर्यवारयत् १२
तमान्निशीर्षमायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षवान् । पराक्रान्तं पराक्रम्य ततः
क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ १३ ॥ नाशकुन्तवन् वारयितुं बर्हृमानपिवानलम् ।
अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौत्रलः ॥ १४ ॥ अभ्यवर्ष-

लगा ॥ ७ ॥ उस समय शत्रुके नगरको जीतने वाला भीमसेन,
जो श्रीकृष्णके अभिप्रायको समझगया था वह युद्धके अग्रभागमें
खड़ेहुए कुन्तीपुत्र अर्जुनसे कहने लगा ॥ ८ ॥ भीमसेनने कहा, कि-
हे महाबाहु अर्जुन ! मेरी बातको ध्यान देकर मृग, क्षत्रियाणी
जिस कामके लिये पुत्रको उत्पन्न करती है, उस कामको करनेका
यह समय आगया ॥ ९ ॥ इस लिये यदि तू इस हाथ लगेहुए
समय पर कल्याणकारी काम नहीं करेगा तो तेरे स्वरूपकी
अप्रतिष्ठा होगी और तू बड़ा ही क्रूर कर्म करेगा ॥ १० ॥ अब तो
तू पराक्रम करके सत्य, लक्ष्मी, धर्म और यश प्राप्त कर, शत्रुकी
सेनाका संहार कर और कौरवोंको रथकी दाहिनी ओर लेआ ११
सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! इस प्रकार भीमसेनने तथा
श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा तब सव्यसाची अर्जुन कर्ण और
द्रोणको लाँघकर चारोंओरसे शत्रुओंको घेरने लगा ॥ १२ ॥
अर्जुन रणके मुहाने पर आकर पराक्रमसे बड़े २ क्षत्रियोंका संहार
करने लगा और बड़े २ क्षत्रिय भी, जैसे बढते हुए अग्निको रोकना
कठिन हो जाता है तैसे ही अर्जुनको आगे बढनेसे नहीं रोकसके,

ध्वजरातैः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् । तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रवि-
 दाम्बरः ॥ १५ ॥ कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत् । अस्त्रै-
 र्त्राणि संवार्य लघुहस्तो जितेन्द्रियः ॥ १६ ॥ सर्वानविध्यन्निशितैर्दश-
 भिर्दशभिः शरैः । उद्धूता रजसो वृष्टिशरवृष्टिस्तथैव च ॥ १७ ॥
 तमश्च घोरं शब्दश्च तदा समभवन्महान् । न घूर्नि भूमिर्न दिशः
 प्राज्ञायन्त तथागते ॥ १८ ॥ सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवा-
 भवत् । नैत्र तेन ह्ययं राजन् प्राज्ञासिस्म परस्परम् ॥ १९ ॥ उदं-
 शेन हि तेन स्म समयुध्यन्त पार्थिवाः । विरथा रथिनो राजन्
 समासाद्य परस्परम् ॥ २० ॥ केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु
 ज । हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनस्तथा ॥ २१ ॥ जीवन्त

तदनन्तर दुर्योधन कर्ण और सुबलका पुत्र शकुनि ॥ १३-१४ ॥
 कुन्तीनन्दन अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, परन्तु बड़े-
 अस्त्रोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उन सबोंके अस्त्रोंको तुच्छ
 कर डाला हे राजेन्द्र ! फुरतीले हाथवाले धनञ्जयने सामनेसे
 अस्त्र छोड़कर वैरियोंके अस्त्रोंको पीछेको हटादिया और सब
 योधाओंको दश २ बाण मारकर वींघडाला, इस समय धूलिकी
 और बाणोंकी वर्षा होने लगी ॥ १५-१७ ॥ चारों ओर घोर
 अन्धकार छागया, महाभयानक शब्द होने लगा, आकाश, पृथ्वी
 और दिशाओंका दीखना बन्द होगया ॥ १८ ॥ सेनादलके कारण
 से उड़ीहुई धूलिके द्वारा सब योधा मूढ और अन्धेसे होगये और
 हे राजन् ! उस समय हम तथा पाण्डव एक दूसरेको पहचान नहीं
 सकते थे ॥ १९ ॥ इस लिये रथहीन हुए राजे अनुमानसे तथा रथोंमें
 बैठे हुए राजे अपने नामोंको जतानेसे एक दूसरेको पहचान कर
 आमने सामनेसे जुटेहुए लड़ रहे थे तथा एक दूसरेके केश, कवच
 और भुजाओंको पकड़कर लड़ रहे थे, कितने ही रथी जिनके घोड़े
 और सारथी मरगये थे वे जीवित होकर भी डरके मारे युद्ध न करते

इव तत्र स्म व्यदृश्यन्त भयादिताः । हतान् गजान् समाश्लिष्य पर्व-
तानिव वाजिनः ॥ २२ ॥ गतसत्त्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः ।
ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामाबुत्तरां दिशम् ॥ २३ ॥ अतिष्ठदाहवे
द्रोणो विधूमोऽग्नि रिवज्ज्वलन् । तमाजिशीर्पादेकांतमपक्रांतं निशम्य
तु ॥ २४ ॥ समकल्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते । आज-
मानं श्रिया युक्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २५ ॥ दृष्ट्वा द्रोणं परं
त्रेसुथोर्मर्मलुथ भारत ॥ २५ ॥ आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव
वारणम् ॥ २६ ॥ नैनमाशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा । केचि-
दासन्निरुत्साहाः केचित् क्रुद्धा मनस्विनः ॥ २७ ॥ विस्मिता-
श्चाभवन् केचित् वेत्तिदासन्नमर्षिताः । हस्तेर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यङ्गि-

हुए पडे थे इसलिये वे मरेहुएसे मालूम होते थे, कितने ही घोड़ोंके
साथ कितने ही योधा पहाड़ोंकी समान दीखनेवाले हाथियोंसे चिपट
कर मरे हुएसे दीखते थे इस समय द्रोणाचार्य संग्रामभूमिमेंसे उत्तर
दिशा की ओर धुँएरहित धक २ जलतेहुए अग्निकी समान जाकर
खड़े होगये ॥ २०-२४ ॥ पाण्डवोंकी सेना द्रोणाचार्यको रणके
मुहाने परसे दूर गढ़े हुए देखकर काँपनेलगी, हे भरतवंशी राजन् !
अत्यन्त शोभायमान तथा प्रज्वलित हुए अग्निकी समान तेजस्वी
द्रोणाचार्यको देखकर कितने ही बैरी भयभीत होगये, कितने ही
भागनेलगे, कितने ही अत्यन्त खिन्न होगये और जैसे दानव
इन्द्रको जीतनेकी इच्छा नहीं करसकते हैं नैसे ही मद टपकानेवाले
हाथीकी समान मदमत्त और रणमें बैरीकी सेनाको लड़नेके लिये
निमन्त्रण देनेवाले द्रोणाचार्यका पराजय करनेकी कोई इच्छा ही
नहीं करते थे, जब द्रोणाचार्यको देखते क्षण ही कितने ही निरुत्साह
होगये थे तो कितने ही मनस्वी (दिलेर) योधा कोपमें थी भरगये
थे २५ २७ कितने ही आश्चर्यमें होरहे थे, कितने ही उनको सह ही
नहीं सकते थे, कितने ही राजे हथेलियोंसे हथेलियोंको मलरहे थे.

षन्नराधिपाः ॥ २८ ॥ अपरे दशनैरोष्ठानदशनं क्रोधमूर्च्छिताः ।
 व्याजिपन्नायुधान्यन्ये ममदुश्चापरे भुजान् ॥ २९ ॥ अन्ये चाभ्य-
 पतन् द्रोणं त्यक्त्वात्मानो महौजसः । पञ्चालास्तु विशेषेण
 द्रोणसायकपीडिताः ॥ ३० ॥ समसज्जन्त रज्जेन्द्र समरे भृश-
 वेदनाः । ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रतिययू रणे ॥ ३१ ॥ तथा
 तरन्त संग्रामे भृशं परमदुर्जयम् । द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव
 विशाम्पते ॥ ३२ ॥ चेदयश्च महेश्वासा द्रोणमेवाभ्ययु-
 र्युधि । तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥
 त्रिभिर्द्रोणोऽहस्त्राणांस्ते हता न्यपतन्भुवि । ततो द्रोणोऽ-
 जययुद्धे चेदिकैकेयसृज्जयान् ॥ ३४ ॥ मत्स्यांश्चैत्राजयत् कृत्स्नान्
 भारद्वाजो महारथान् ॥ ३४ ॥ ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवा-
 सृजत् ॥ ३५ ॥ द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे । तं

कोई क्रोधके आवेशमें आकर दाँतोंसे ओठोंको चवारहे थे, कोई
 आयुधोंको घुमारहे थे और कितने ही भुजदण्डों पर थपकी देरहे
 थे ॥ २८-२९ ॥ कितने ही महाबली योधा प्राणोंकी परवाह न
 करके द्रोणाचार्यके सामनेको झपटे चले जा रहे थे, हे राजेन्द्र !
 द्रोणाचार्यके बाणोंकी मारसे पंचाल राजाओंको बड़ी पीडा होरही
 थी, तो भी वे इस भयंकर युद्धमें लड़नेको तयार हो रहे थे, विराट
 तथा द्रुपद युद्धमें दुर्जय द्रोणके सामने लड़नेको जा चढ़े, द्रुपदके
 तीन पौत्र और महानुषधारी चेदि देशके राजे भी युद्धमें द्रोणके
 साथ लड़नेको निकले थे, इस युद्धमें द्रोणाचार्यने तयार कियेहुए
 तीन कठोर बाण मारकर द्रुपदके तीनों पौत्रोंके प्राण ले लिये,
 तब तो वह पृथ्वी पर ढहपड़े, तदनन्तर द्रोणाचार्यने युद्धमें चेदी,
 केकय सृज्जयोंका पराजय किया ॥ ३०-३४ ॥ और मत्स्यदेशके
 महारथी राजाओंका भी पराजय किया, फिर क्रोधमें भरेहुए
 राजा द्रुपद तथा राजा विराट् ये दोनों द्रोणाचार्यके ऊपर बाणोंकी

निहत्येपुत्रवर्षन्तु द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३६ ॥ तौ शरैश्छादयामास
 विराटद्रुपदावुभौ । द्रोणेन ह्यद्यमानौ तौ क्रुद्धौ संग्राममूर्ध्नि ३७
 द्रोणं शरैर्विव्यधतुः परमं क्रोधमास्थितौ । ततो द्रोणो महाराज
 क्रोधामर्षसमन्वितः । ३८ ॥ भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां चिच्छेद धनुषी
 तयोः । ततो विराटः क्रुपितः समरे तोमरान् दश ॥ ३९ ॥ दश
 चिक्षेप च शरान् द्रोणस्य वधकान्तया । शक्तिञ्च द्रुपदो योरापा-
 यसीं स्वर्णभूषिताम् ॥ ४० ॥ चिक्षेप भुजगेन्द्राभां क्रुद्धो द्रोण-
 रथं प्रति । ततो भल्लैः सुनिशितैश्छित्त्वा तांस्तोमरान्दश ॥ ४१ ॥
 शक्तिं कनकवैदूर्यां द्रोणश्चिच्छेद सायकैः । ततो द्रोणः सुपीता-
 भ्यां भल्लाभ्यामर्ममर्दनः ॥ ४२ ॥ द्रुपदञ्च विराटञ्च प्रेषया-
 मास मृगयवे । हतं विराटे द्रुपदे कैकेयेषु तथैव च ॥ ४३ ॥ तथैव

मारामार करनेलगे, क्षत्रियोंका संहार करनेवाले द्रोणने उनके
 बाणोंकी वर्षाको छिन्न भिन्न करडाला ॥ ३५-३६ ॥ और
 बाणोंसे विराट तथा द्रुपद दोनोंको ढकदिया, तब तो ये दोनों
 बड़े कोपमें भरगये और लडते-२ द्रोणके बाण मारनेलगे, तब द्रोण
 क्रोधमें तथा अमर्षमें भरगये और उन्होंने बड़े ही तेज भल्ल नामके
 दो बाण मारकर उन दोनोंके धनुषोंको काटडाला, इससे विराटबो
 चडा ही क्रोध आया उसने और दश तोमर तथा दश बाण द्रोणको
 मारडालनेकी इच्छासे मारे, द्रुपदने भी क्रोधमें भरकर सोनेके
 पत्तरसे जडकर सजायी हुई भुजगेन्द्रकी समान ठोस लोहेकी शक्ति
 द्रोणके रथपर मारी, द्रोणने अच्छे प्रकारसे तेज कियेहुए भल्ल
 जातिके बाणोंसे तोमरोंका और सोनेसे तथा वैदूर्यसे जडी हुई
 शक्तिका चूगर करडाला और फिर शत्रुका मर्दन करनेवाले
 द्रोणाचार्यने अच्छे पानीदार भल्ल जातिके दो बाण मारकर
 द्रुपदबो और विराटको मारडाला, इसप्रकार, विराट द्रुपद कैकेय-
 राजे चेदिगजे, मत्स्यगज, पाञ्चालगजे तथा द्रुपदके तीन वीर पौत्र

चेदिमत्स्येषु पञ्चालेषु तथैव च । हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च
नप्तृषु ॥ ४४ ॥ द्रोणस्य कर्म तद् दृष्ट्वा क्रोपदुःखसमन्वितः ।
शशाप रथिना मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ४५ ॥ इष्टापूर्त्ताचाथा
ज्ञात्राद् ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु । द्रोणो यस्याद्य मुच्येत यं वा
द्रोणः पराभवेत् ॥ ४६ ॥ इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्म-
ताम् । आयाद् द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा ॥ ४७ ॥
पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् पाण्डवैः सह । दुर्योधनश्च कर्णश्च
शकुनिश्चापिः सौबलः ॥ ४८ ॥ सोदर्याश्च यथामुख्यास्तेऽरक्षन्
द्रोणमाहवे । रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं सर्वैस्तैस्तु महारथैः ॥ ४९ ॥
यतमानास्तु पञ्चाला न शोकः प्रतिवीक्षितुम् । तत्राक्रध्यद्भीमसेनो
धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ५० ॥ स एनं वाग्भिरग्राभिस्ततक्ष पुरुष-

ये सब युद्धमें मारेगये, द्रोणके ऐसे घोर पराक्रमको देखकर बड़े
मनवाले धृष्टद्युम्नको बड़ा ही क्रोध आया और दुःख भी हुआ,
इसलिये उसने रथियोंके बीचमें शपथ खायी, कि—आज द्रोण मेरे
हाथमेंसे बचजाय अथवा वह मेरा तिरस्कार करे तो मेरा यागयज्ञका
फल, वापी कूप खुदवानेका पुण्य, ज्ञात्रधर्मका पुण्य तथा अग्नि-
रूप ब्राह्मणमेंसे उत्पन्न हुआ होनेके कारण मेरा जो ब्रह्मतेज है
वह सब नष्ट होजाय ॥ ३७-४६ ॥ इसप्रकार सब धनुषधारियोंके
बीचमें प्रतिज्ञा करके वीर शत्रुओंका संहार करनेवाला पंचालराज
का पुत्र धृष्टद्युम्न सेनाको साथमें ले द्रोणाचार्यके ऊपर जाचढ़ा ४७
एक और पंचाल राजे पाण्डवोंके साथमें रहकर द्रोणाचार्यके
बाण मारनेलगे और दूसरी ओर दुर्योधन, कर्ण, सुबलका पुत्र
शकुनि तथा दूसरे मुख्य कौरव भाई रणमें द्रोणाचार्यकी रक्षा
करनेलगे, पंचालोंने उनको भगा देनेका बहुत ही उद्योग किया,
परन्तु वे उनकी ओरको दृष्टि भी नहीं करसके, हे राजन् ! इससमय
भीमसेनको धृष्टद्युम्नके ऊपर क्रोध आगया ॥ ४८-५० ॥ और

पमः । भीमसेन उवाच । द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवि-
चामः ॥ ५१ ॥ कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेतास्त्रिमवस्थितम् । पितृ-
पुत्रवधं प्राप्य पुमान् कः परित्यालयेत् ॥ ५२ ॥ विशेषतस्तु शपथं
शपित्वा राजसंसदि । एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा ५३
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा । पुरा करोति निःशेषां
पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ५४ ॥ स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव
ब्रजाम्यहम् । इत्युक्त्वा प्राविशत् क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः ५५
शरैः पूर्णायतोत्पृष्टैर्द्राव्यंस्तव वाहिनीम् । धृष्टद्युम्नोऽपि पांचाल्यः
प्रविश्य महतीञ्चमूम् ॥ ५६ ॥ आससाद रणे द्रोणं तदासीत्तुमुलं
महतम् । नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ५७ ॥ यथा सूर्यो-

वह महापुरुष तीखे वचनोंसे धृष्टद्युम्नको उलाहना देता हुआ कहने
लगा, भीमसेन बोला, कि-तू राजा द्रुपदके कुलमें उत्पन्न हुआ
है और सब प्रकारके अस्त्रोंको जाननेमें बड़ा ही प्रवीण है, तो
फिर तेरे सिवाय दूसरा कौनसा क्षत्रिय पुरुष सामने खड़े हुए
शत्रुको नहीं मारेगा तथा कौनसा पुरुष, पिता तथा पुत्रको मार
ढालनेवालेको पाकर भी उसको जीता छोड़देगा ? ॥ ५१-५२ ॥
और इस पर भी जिसने राजसभाके बीचमें प्रतिज्ञा की हो ऐसा
पुरुष तो शत्रुको कैसे जाने देगा ? यह द्रोण बहते हुए अग्निकी
समान तेजस्वी दीख रहे हैं और बाण तथा धनुषरूप ईंधनसे भरपूर
हैं-ऐसे द्रोण आज तेजसे क्षत्रियोंको भस्म करे डालते हैं और
सामने खड़ी हुई पाण्डवोंकी सेनाका संहार कर रहे हैं ५३-५४
इसलिये अब तुम खड़े हो कर मेरा पराक्रम देखो, मैं द्रोणाचार्यके
सामने जाता हूँ, इतना कहकर क्रोधमें भरा हुआ भीमसेन कान-
पर्यन्त पूर्णरीतिसे धनुषको खेंचकर बाणोंके प्रहारसे तुम्हारी
सेनाको भगाता २ द्रोणाचार्यकी सेनामें जाघुसा तथा पांचालका
पुत्र धृष्टद्युम्न भी महासेनामें घुसकर द्रोणाचार्यके सामने जा पहुँचा

दये राजन् समुत्पिबजोऽभवन्महान् । संसक्तान्येव चादृश्यन् रथ-
वृन्दानि मारिष ॥ ५८ ॥ हतानि च विशीर्णानि शरीराणि शरी-
रिणाम् । केचिदन्यत्र गच्छन्तः पथि चान्यैरुपद्रताः ॥ ५९ ॥

विमुखाः पृष्ठतरचान्ये ताड्यन्ते पार्श्वतः परे । तथा संसक्तयुद्धन्त-
दभवद् भृशदारुणम् । अथ सन्ध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत ६०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे

षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

सञ्जय उवाच । ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि । संध्या-
गतं सहस्रांशुपादित्पमुपतस्थिरे ॥ १ ॥ उदिते तु सहस्रांशौ तप्त-
काञ्चनसमभे । प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्चत ॥ २ ॥ इन्द्रानि

और सूर्योदयके समय जैसा पहले किसी दिन भी नहीं देखा था
और न पहले कभी सुना था ऐसा महाघोर युद्ध रणभूमिमें होने
लगा, हे श्रेष्ठ राजन् ! सेना बड़ी आपत्तिमें आपड़ी और रथियोंके
टोलेके टोले एक दूसरेके साथ युद्ध करतेहुए दीखनेलगे ॥ ५५-५८ ॥

शरीरधारियोंके मरणको प्राप्त हुए शरीर रणभूमिमें ऐसे टेढ़ेबेढ़े
पड़े थे, कि-वे पैरोंकी ठोकरें लगनेसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर
जा पड़ते थे और मार्गमें उनको दूसरे मृत शरीरोंकी टकरें लगती
थी ॥ ५९ ॥ कितने ही रणमेंसे पीछेकी मुख करके भागनेलगे,

उनके ऊपर पीछेसे मार पड़नेलगी, इसप्रकार गड़बड़ी पड़कर बड़ा
दारुण युद्ध होनेलगा; इतनेमें ही एक क्षणमें पूर्ण रीतिसे सूर्योदय
होगया ॥ ६० ॥ एकसौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८६ ॥

सञ्जयने कहा, कि हे महाराज ! सहस्र किरणोंसे शोभायमान
सूर्यनारायण उदय होगये हैं; यह जानकर रणभूमिमेंके कौरव
और पाण्डव कवच पहरे हुए सूर्यकी उपासना करनेलगे ॥ १ ॥

थोड़ी ही देरमें तपेहुए सुवर्णकी समान कान्तिवाले सूर्यका पूर्ण
उदय होगया अर्थात् सब जगत्में प्रकाश होगया; हे भारत ! फिर

यानि तत्रासन् संसक्तानि पुरोदयात् । तान्येवाभ्युद्यते सूर्ये सम-
सञ्जन्त भारत ॥ ३ ॥ रथैर्हया हयैर्नागाः पादातैश्चापि कुञ्जराः ।
हया हयैः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः ॥ ४ ॥ रथा रथैरि-
भैर्नागैश्चैव भरतर्षभ । संयुक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः सन्न्यसत-
त्रणे ॥ ५ ॥ ते राज्ञौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा ।
क्षुत्पिपासापरीताङ्गाः विसंज्ञा बहवोऽभवन् ॥ ६ ॥ शंखभेरीमृद-
ङ्गानां कुञ्जराणाञ्च गर्जताम् ॥ ७ ॥ विस्फारितविकृष्टानां कामु-
काणाञ्च कूजताम् ॥ ७ ॥ शब्दः समभवद्राजन् दिवस्पृक् भरतर्षभ ।
द्रवताञ्च पदातीनां शस्त्राणां पततामपि ॥ ८ ॥ हयानां हेषता-
ञ्चैव रथानां विनिवर्त्तताम् । क्रोशतां गर्जताञ्चैव तदासीत्सुमुलं
महत् ॥ ९ ॥ विवृद्धस्तुमुलः शब्दो ग्रामगच्छन्महार्हतदा । नाना-

भयंकर युद्ध होनेलगा ॥ २ ॥ सूर्योदयसे पहले जो जिनके साथ
द्वन्द्वयुद्ध करनेमें लगेहुए थे, वे फिर उन ही योधाओंके साथ युद्ध
करनेमें लगगये, घुडसवार रथियोंके साथ, हाथीसवार घुडसवारोंके
साथ, कोई पैदल हाथीसवारोंके साथ और कोई पैदल पैदलोंके
साथ युद्धमें कभी इकट्ठे होकर और कभी अलग-अलग होकर भयंकर
युद्ध करनेलगे ॥ ३-५ ॥ हे महाराज ! इन योधाओंमेंसे बहुतसोंने
रातमें अपनी शक्ति भर युद्ध किया था, वे दिनमें सूर्यकी धूपसे
घबड़ागये थे और भूख तथा प्याससे खिन्न और अचेतसे होरहे
थे ॥ ६ ॥ तले ऊपर शङ्खोंका, भेरियोंका, मृदङ्गोंका, चिंघाटतेहुए
हाथियोंका, धनुषोंके खेंचनेका तथा छोड़नेका शब्द, दौड़तेहुए
पैदलोंकी पुकार, मारेहुए शस्त्रोंका शब्द, घोड़ोंकी हिनहिनाहट,
इधर उधरकों दौड़तेहुए रथोंकी घरघराहट ये सब इकट्ठे होकर
इतना कोलाहल बढगया था, कि-बह आकाशमें पहुँचकर दिशाओं
और कोनोंको भरताहुआ बहुत ही गूँजरहा था ॥ ७-९ ॥
हे महाराज ! इस समय अनेकों प्रकारके शस्त्रोंसे जिनके शरीर

सुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः ॥ १० ॥ भूमावभ्रूयत महा-
स्तदासीत् कृपणं महत् । पततां पतितानाञ्च पत्यश्वरथहस्तिनाम् ॥ ११ ॥
तेषु सर्वेष्वनीकेषु व्यतिसक्तेष्वनेकशः । स्वे स्वान् जघ्नुः परे
स्वांश्च स्वान् परे च परान् परे ॥ १२ ॥ वीरबाहुविसृष्टाश्वयोधेषु
च गजेषु च । राशयः प्रत्यदृश्यन्त वाससां नेजनेष्विव ॥ १३ ॥
उद्यतप्रतिविद्धानां खड्गानां वीरबाहुभिः । स एव शब्दस्त्रुगो
वाससां निज्यतामिव ॥ १४ ॥ अथासिभिस्तथा खड्गैः तोमरः
सपररवधैः । निकृष्टयुद्धं संसक्तं महादासीत् सुदारुणम् ॥ १५ ॥
गजाश्वकायप्रभवां नरदेहप्रवाहिनीम् । शस्त्रमस्त्यसुसम्पूर्णां मांस-

धायल होगये थे ऐसे गिरेहुए और गिराये जातेहुए पैदल, रथी,
घुडसवार और हाथीसवार जिधर तिरथको अज्ञोंको फँकतेहुए
चीखें मार रहे थे, उनका आर्तस्वर रणभूमिमें सुनायी आरहा था
और इस दृश्यको देखनेवालोंको बड़ा ही शोक होता था १०-११
सब सेनायें आपसमें बहुत ही रिजभिल गई थीं कौरव अपने ही
सैनिकोंको मारनेलगे और पांडव अपने योधाओंको मारनेलगे
पाण्डव कौरवोंको मारनेलगे और कौरव पांडवोंको मारनेलगे,
वीर पुरुषोंके हाथमेंकी घूमतीहुई तलवार योधाओंके और
हाथियोंके ऊपर पड़रही थी जो कल धोनेके पटलों पर पड़ते
हुए वस्त्रोंकी समान मालूम होती थी ॥ १२॥ १३ ॥ और वस्त्रोंको
धोनेके समय जैसा शब्द होता है तैसा ही शब्द वीर पुरुषोंके
हाथोंमेंसे उठती हुई और शत्रुओंके ऊपर पड़ती हुई तलवारोंका
हारहा था १४ जिस समय योधा बहुत ही समीप आगये उस
समय एकधारी तलवारें, तोमर और फरसोंमें दोनोंमें महादारुण
युद्ध होनेलगा, वीर पुरुषोंने रणभूमिमें हाथी और घोडोंके शरीर
मेंसे रुधिर ती नदी बहादी, उस नदीमें मनुष्योंकी न्हासें तैरने
लगीं, वह नदी शस्त्ररूप मल्लियोंसे भरी हुई थी तथा उसमें मांस

(१२३६) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौसत्तासीवौ]

शाणितकर्द्वाम् ॥ १६ ॥ आर्चनादस्वनवतीं पताकावस्त्रफेनि-
लाम् । नदीं प्रावर्त्तयन् वीराः परलोकौघगामिनीम् ॥ १७ ॥
शरशयत्पार्दिताः क्लान्ता रात्रिमृढान्पचेतसः । विष्टभ्य सर्वगा-
त्राणि व्यतिष्ठन् गजवाजिनः ॥ १८ ॥ बाहुभिः कवचैरिचत्रैः
शिरोभिरचारुकुण्डलैः । युद्धोपकरणैश्चैव तत्र तत्र चकाशिरैः १९
क्रव्यादसधैः सपाकीर्णैर्मृतैर्दमृतैरपि । नासीद्रथपथस्तत्र सर्वमा-
योधनं प्रति ॥ २० ॥ मञ्जस्तु चक्रेषु रथान् सत्त्वमास्थाय वाजिनः ।
कथञ्चिदवहन श्रान्ता वेपमानाः शरादिताः ॥ २१ ॥ कुलसत्त्व-
बलोपेता वाजिनो वारणोपमाः । विह्वलं तूर्णमुद्भ्रान्तं सभयं
भारतातुरम् ॥ २२ ॥ बलमासीत्तदा सर्वमृते द्रोणाजुर्नावुभौ ।

और रुधिरकी कीच मची हुई थी, घवडायेहुए मनुष्योंके शब्दोंसे
वह नदी गाजरही थी तथा पताका और शस्त्र उसमें फागसे दीखते
थे और यमलोक उस नदीकी सीमा थी, हे महाराज ! हाथी और
घोड़े आदि वाहन रात्रियुद्धमें बाणोंकी और शक्तियोंकी मारसे
घवडागये थे और सब अङ्गोंको सकोड कर खड़े हुए थे १५-१८मरे
हुए योधाओंके हाथ भाँते २के कवच, मस्तक, कुण्डल और युद्धकी
सामग्री आदि जहाँ तहाँ पड़ेहुए थे, इसकारणसे मांसाहारी माणी
तथा मरेहुए और अधमरे पड़ेहुए योधाओंसे रणभूमि लवालव
धर रही थी, इस कारण सकल रणभूमिमें रथोंके लिये चलनेको
भी मार्ग नहीं रहा था ॥ १९-२० ॥ रथके पहिये रुधिरकी नदियों
में डूब रहे थे, तो भी बाणोंकी मारसे पीड़ा पाकर काँपते और
थके हुए हाथियोंकी समान उत्तम कुलवाले, बलवान् तथा उत्साही
घोड़े जोर लगाकर रथोंको जैसे तैसे खींच रहे थे, हे भरतवंशी
राजन् ! उस समय द्रोण और अर्जुनको बोड़कर बायीं सच मेना
विह्वल, भयभीत उच्चाट खाई हुई और आतुर होगयी थी द्रोण
और अर्जुन ये दोनों ही अपने पत्तके घवडायेहुए पुरुषोंके आधार

तावेवास्तां नित्यनं तात्रार्त्तायनमेव च ॥ २३ ॥ तावेवान्ये समासाद्य
जग्मुर्वैवस्वतक्षयम् । आविश्रमभङ्गत् सर्वं कौरवाणां मद्भक्तम् २४
पञ्चालानाञ्च संसक्तं न प्राज्ञायत किञ्चन । अन्तर्काकीडसदृशं
भीरुणां भयवर्द्धनम् ॥ २५ ॥ पृथिव्यां राजवंशानामुत्थिते
महति क्षये । न तत्र कर्णं न द्रोणं नार्जुनं न युधिष्ठिरम् ॥ २६ ॥
न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिम् । न च दुःशा-
सनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ॥ २७ ॥ न कृपं मदराजं वा कृत-
वर्माणमेव च । न चान्यान्नेव चात्मानं न क्षितिं न दिशस्तथा २८
पश्याम राजन् संसक्तान् सैन्येन रजसा वृत्तान् । संभ्रांति तुमुले
घोरे रजोमेघे समुत्थिते ॥ २९ ॥ द्वितीयामित्र सम्प्राप्तापमन्यन्त
निशां तदा । न ज्ञायन्ते कौरवेया न पञ्चाला न पाण्डवाः ३०

रूप और वैरियोंका संहार करने वाले थे ॥ २१-२२ ॥ दोनों
पक्षके योधा उन दोनों पक्षके साथ युद्ध करके यमलोकको जारहे
थे, इस लड़ाईमें कौरवोंकी बड़ी भारी सेना भयभीत होगई थी
तथा पांचालोंका बड़ाभारी सेनादल भी भयभीत होगया था, लड़ते
समय कुब्र भी देखनेमें नहीं आता था, कालकी कीड़ाकी समान
और डरपोकोंके भयको बढ़ानेवाला होकर यह युद्ध चल रहा था,
इसमें राजवंशी पुरुषोंका बड़ा संहार हो रहा था, इस समय धूलिरूप
भयानक और घोर मेघ आकाशमें चढ़ आया अर्थात् धूलिका पटल
उड़ाने लगा, इसलिये द्रोण, कर्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर भीमसेन,
नकुल, सहदेव, पांचालकुमार शृष्ट्युम्न, सात्यकि, दुःशासन,
अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि, कृपाचार्य, मददेशका राजा शल्य
कृतवर्मा या मैं अपने आपको भी स्पष्ट रीतिसे नहीं देख सकते थे,
योधा अपने आपको तथा दूसरे योधाओंको अथवा पृथ्वी,
दिशायें और कोने आदि किसीको भी नहीं देख सकते थे, इस
समय ऐसा मालूम होता था, कि प्राणों फिर रात्रि होगयी, कौरव

न दिशो द्यौर्न चोर्वी च न समं त्रिपमं तथा । हस्तसंस्पर्शमापन्नान्
परान् वाप्यथ वा स्वकान् ॥ ३१ ॥ न्यपातर्यस्तदा युद्धे नराः स्म
विजयैषिणः । उद्धूतत्वाच्च रजसः प्रसेकाच्छोणितस्य च ३२
प्रशशाम रजो भौमं शीघ्रत्वादनिलस्य च । तत्र नागा हया योधा
रथिनोऽथ पदातयः ॥ ३३ ॥ पारिजातवनानीव व्यरोचन्नु-
धिरोक्षिताः । ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा ॥ ३४ ॥
पाण्डवैः समसज्जन्त, चतुर्भिश्चतुरो रथाः । दुर्योधनः सह भ्रात्रा यमा-
भ्यां समसज्जत ॥ ३५ ॥ वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चार्जुनः ।
तद् घोरं महदाश्चर्यं सर्वे प्रैक्षन्त सर्वतः ॥ ३६ ॥ रथर्षभाना-
मुग्राणां सन्निपातममाजुषम् । रथमार्गैर्विचित्रैस्ते विचित्ररथसंकु-
लम् ॥ ३७ ॥ अपश्यन्नथिनो युद्धं विचित्रञ्चित्रयोधिनाम् । यत-

पांचाल या पाण्डव भी धूलिके कारणसे पहचानमें नहीं आते थे,
योधा दिशायें, आकाश, पृथ्वी, और ऊँचा, नीचा भी नहीं मालूम
होता था, परन्तु विजय चाहनेवाले योधा युद्धमें अपने वा पराये
जिनके भी हाथका स्पर्श होजाता था उनको ही युद्धमें मार डालते
थे, थोड़ी देर बाद पवन बड़े जोरसे चलने लगा, धूलि उड़ने लगी,
दूसरी ओर रुधिरका छिड़काव होनेसे पृथ्वी परकी धूलि दब गई
थी तथा हाथी, घोड़े, योधा रथी और पैदल जो रुधिरमें न्हागये
थे वे पारिजातके वनकी समान शोभा पाने लगे, दुर्योधन कर्ण,
द्रोण तथा दुःशासन ये चार महारथी चार पाण्डव महारथियोंके
साथ युद्ध करनेलगे, दुर्योधन अपने भाई दुःशासनके साथ रहकर
नकुल और सहदेवके साथ युद्ध करनेलगा ॥ ३४-३५ ॥ कर्ण
भीमसेनके साथ और द्रोणाचार्य अर्जुनके साथ लड़नेलगे, उनके
महाघोर और आश्चर्यजनक युद्धको सब योधा चारों ओरसे देखने
लगे, ये महारथी उग्ररवभाववाले थे और विचित्र प्रकारके रथोंकी
गतियोंसे अलौकिक युद्ध कर रहे थे, यह युद्ध उनके प्रकारके रथोंसे

मानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीत्सवः ॥ ३८ ॥ जीमूता इव घर्मान्ते
 शरवर्षैरवाकिरन् । ते रथान् सूर्यसङ्काशानास्थिताः पुरुषवर्षाः ३९
 अशोभन्त महामेघाः शारदाश्चलविद्युतः । योधास्ते तु महाराज
 क्रोधावर्षसमन्विताः ॥ ४० ॥ स्पर्द्धिनश्च महेश्वासाः कृतयत्ना
 धनुर्द्धराः । अभ्यगच्छन्तथान्योऽन्यं मत्ता गजवृषा इव ॥ ४१ ॥
 न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजन्ननागते । यत्र सर्वेण युगपद्व्य-
 शीयन्त महारथाः ॥ ४२ ॥ बाहुभिरवरणैश्छिन्नैः शिरोभिरच
 सकुण्डलैः । कामु कैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ ४३ ॥
 नालीकैः क्षुदनाराचैर्नखरैः शक्तिगोमरैः । अन्यैश्च विविधाकारैः
 धौतैः महरणोत्तमैः ॥ ४४ ॥ विचित्रैर्विविधाकारैः शरीरावरणै-
 रपि । विचित्रैश्च रथैर्भयैर्हतैश्च गजवाजिभिः ॥ ४५ ॥ शून्यैश्चैव

संकुल था, दूसरे रथी उस विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले योधाओंके
 विचित्र युद्धको देख रहे थे, वे भी एक दूसरेका पराजय करना चाहते
 थे, बड़े पराक्रमी थे, जीतनेके लिये उद्योग कर रहे थे और जैसे
 चौमासेमें मेघ जल बरसाता है तैसे ही वे भी बाणोंकी वर्षा कर रहे
 थे और सूर्यकी समान चमकते हुए रथोंमें बैठे थे, इसकारण वे
 चञ्चल विजलियों वाले शरद ऋतुके मेघकी समान शोभा पारहे थे,
 हे महाराज ! क्रोध तथा असहनशीलता वाले और स्पर्द्धा करने
 वाले महाधनुषधारी योधा मदमत्त बड़े रक्षाधियोंकी समान आपसमें
 युद्ध कर रहे थे ॥ ३६-४१ ॥ हे राजन् ! जबतक समय नहीं आता
 है तबतक देहपात नहीं होता है, इसकारण सब महारथी एक साथ
 ही नहीं मारे जाते थे ॥ ४२ ॥ हे राजा धृतराष्ट्र ! रणभूमिमें कटे
 हुए बाहु, चरण, कुण्डलों वाले मस्तक, धनुष, बाण प्रास, छोटे र
 बाण, तीक्ष्ण शक्तियें, तोमर, और भी अनेकों प्रकारके
 तयार किये हुए बहुमूल्य आयुध, विचित्र और नानाप्रकारके
 बव, टूटे हुए भौति र के रथ, मरे हुए हाथी, घोड़े, भिनके

(१२४०) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसीसत्तासीवाँ

नगाकारैर्हतयोधध्वजै रथै। अमनुष्यैर्हस्तैस्तेः कृष्यमाणैरितस्ततः॥४२॥
 वानापमानैरसकृदतवीरैरलंकृतैः। व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनि-
 पातितैः॥४७॥ छत्रैराभरणैर्वस्त्रैर्गान्धैश्च समुगन्धिभिः। हारैःकिरीटै-
 र्मुकुटैरुष्णीपैः किङ्कणीगणैः॥४८॥ उरस्थैर्मणिभिर्निष्कैश्चूडामणि-
 भिरैव च। आसीदायोधनं तत्र नभस्तांरागणैरिव॥४९॥ ततो दुर्यो-
 धनस्यासीन्नकुलेन समागमः। अपर्पितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनामर्पितस्य
 च॥५०॥ अपसव्यञ्चकाराव माद्रीपुत्रस्तवात्मजम्। किरञ्ज-
 रशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत्॥५२॥ अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृ-
 व्येनात्यमर्पिणा। नामृष्यत् तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः॥५२॥
 पुत्रस्तत्र महाराज राजा दुर्योधनः द्रुतम्। ततः प्रतिचिहीर्षन्तमप-
 सव्यन्तु ते सुतम्॥५३॥ न्यवारयत् तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्ग-

रथी मरगये थे और जिनकी ध्वजायें टूटगयी थीं ऐसे पहाड़ोंकी
 समान आकारवाले सूने रथ, सवारोंसे शून्य पड़े हुए और
 जिधर तिधरको खेंचतान करते हुए, पवनकी समान वेगसे बारबार
 दौड़तेहुए और जिनके वीर सवार मरगये थे ऐसे सजेहुए घोड़े,
 चंदर, वखतर, ध्वजा, छत्र, गहने, सुगन्धित पुष्प, हार,
 मुकुट पगडियें घूँघरू छातीपर पहरनेकी मणियोंकी मालायें
 और चूड़ामणि आदि रणभूमिमें पड़े थे, उनसे रणभूमि
 ऐसी शोभा पारही थी, जैसे तारागणोंसे आकाश शोभा पाता
 है॥४३-४९॥ फिर क्रोधी और असहनशील दुर्योधनने क्रोधी
 असहनशील नकुलके साथ युद्ध करना आरम्भ करदिया॥५०॥
 हे महाराज ! माद्रीके पुत्र नकुलने तुम्हारे पुत्रको वायें भाग पर
 लाडाला और उसके ऊपर सैंकड़ों वाणोंकी वर्षा करके गरजने
 लगा॥५१॥ अत्यन्त असहनशील चाचाके पुत्रने युद्धमें मुझे वाई
 ओर लाडाला, इस बातको दुर्योधन सह नहीं सका, इसलिये वह
 नकुलको अपनी वाई ओर लानेके लिये उद्योग करनेलगा, परन्तु

अध्याय] * भाषानुवाद सहित * (१२४१)

वित् । स सर्वतो निघायनं शरजालेन पीडयन् ॥ ५४ ॥ त्रिमुखं
नकुलञ्चके तत्सैन्याः समपूजयन् । तिष्ठ तिष्ठेति नकुलो वभाषे
तनयं तव । संस्पृश्य बहुदुःखानि तव दुर्मन्त्रितेन च ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि नकुल-

युद्धे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच । ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत् । रथ-
वेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १ ॥ तस्यापतत एवाशु
भल्लेनाभिन्नकर्षणः । पाद्रीसुतः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमच्छि-
नत् ॥ २ ॥ नैनं दुःशासनः सूतं नापि कथनं सैनिकः । कृत्तो-
त्तमाङ्गमाशुत्वात् सहदेवेन बुद्धवान् ॥ ३ ॥ यदा त्वसंगृहीतत्वात्

युद्धकी अनेकों रीतियें जाननेवाले तेजस्वी नकुलने, अपने वाम
भागमें लाना चाहनेवाले तुम्हारे पुत्रको ऐसा करनेसे सब औरसे
रोकदिया और बाणोंकी मारसे पीड़ित करके उसको रणसे त्रिमुख
करदिया, यह देखकर सब सैनिक उसके पराक्रमकी प्रशंसा
करनेलगे, दुर्योधनको रणमेंसे त्रिमुख हुआ देखकर नकुलने अपने
ऊपर पड़े हुए सब दुःखोंको याद करके उससे कहा कि—अरे ओ
दुर्योधन ! खड़ा रह, खड़ा रह, अब कहाँको भागा जाता है ?
यह सब तेरे कपट भरे विचारोंका परिणाम है ॥ ५२-५५ ॥
एकसौ सत्तासीत्राँ अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥ ❀ ॥

सञ्जयने कहा, कि—तदनन्तर क्रोधमें भरा हुआ दुःशासन रथके
प्रचण्ड वेगसे पृथ्वीको मानो कम्पायमान करता हो, इसप्रकार
सहदेवके सामनेको दौड़ा ॥ १ ॥ तब शत्रुका नाश करने वाले
सहदेवने तुरन्त भल्ल नामका बाण मार कर सामनेसे आते हुए
दुःशासनके सारथीका मुकुटसहित शिर काटडाला ॥ २ ॥
सहदेवने ऐसी फुरतीसे सारथीका शिर काटा, कि—दुःशासनके वा
उसके किसी सैनिकको मालूम ही नहीं हुआ ॥ ३ ॥ परन्तु घोड़ोंको

प्रयान्त्यश्वा यथासुखम् । ततो दुःशासनः मृतं युयुधे गतचेतसम् ४
स हयान् सन्निगृह्णाजौ स्वयं हयविशारदः । युयुधे रथिनां श्रेष्ठो
लघु चित्रञ्च सृष्टु चा॥५॥ तदस्यापूजयन् कर्म स्ये परे चैव संयुगे ।
हतसूनरथनाजौ व्यचरद्यदभीतवत् ॥६॥ सहदेवस्तु तानश्वास्ती-
क्ष्णौर्बाणैरवाक्रिरत् । पीड्यपानाः शरैश्चाशु प्राद्वंस्ते ततस्ततः ७
स रश्मिषु विपक्तत्वादुत्ससज्ज शरासनम् । धनुषा कर्म कुर्वन्तु
रश्मींश्च पुनरुत्सृजत् ॥ ८ ॥ छिद्रेषु तेषु तं बाणैर्मार्द्रीषुत्रोऽप्यवा-
क्रिरत् । परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्नरमवापतत् ॥ ९ ॥ वृको-
दरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितः । आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नन्

थामनेवाला कोई न होने से वे स्वतंत्र होकर भागनेलगे तब ही
दुःशासनको मालूम हुआ, कि- सारथी मारागया है॥४॥ फिर
योधायोंमें श्रेष्ठ अश्वशिक्षाके शास्त्रमें प्रवीण दुःशासनने इस
लड़ाईमें घोड़ोंकी रासोंको पकड़ लिया और फुरतीके साथ
विचित्र रीतिसे रणभूमिमें युद्ध करने लगा तथा सारथीरहित
हुए रथको रणमें लाकर निर्भय पुरुषकी समान रणभूमिमें घूमने
लगा, उसके इस कामकी हमारे और वीरगजके योधा भी प्रशंसा
करने लगे ॥ ५॥ ॥ सहदेवने दुःशासनके घोड़ोंके तीक्ष्ण बाण
मारे तब तो उसके घोड़े घबड़ागये और तुरन्त रणभूमिमें देहेदेहे
भागनेलगे ॥ ७ ॥ दुःशासनने धनुषको नीचे फेंककर घोड़ोंकी रासों
पकड़लीं और घोड़ोंको भागनेसे रोका, उसने डोरियें छोड़दीं
और फिर धनुषवाण छोड़ने लगा, परन्तु दुःशासन जिस समय
घोड़ोंको थामनेके लिये रासोंको पकड़ रहा था उस समय उस
अवसरसे लाभ उठाकर सहदेव उसके बाण मारता रहा था, यह
देखकर तुम्हारे पुत्रकी रक्षा करनेकी इच्छासे कर्ण बीचमें आकर
खड़ा होगया ॥ ८॥ ॥ भीमसेन भी सहदेवकी रक्षा करनेके
लिये सावधान होगया और कानतक धनुषको खेंच कर्णकी दोनों

बाहोरुरसि चानदत् ॥१०॥ स निवृत्तस्ततः कर्णः संवद्वित इवो-
रगः । भीममावारयामास विकिरन्निशिताब्जरात्र ॥११॥ ततोऽ-
भूत्तुमुल्ल युद्धं भीमराधेयस्तदा । तौ वृषाविव नर्दन्तौ विवृत्तनय-
नावुभौ ॥ १२ ॥ वेगेन महतान्योऽन्यं संरब्धावभिपेततुः । अभि-
संश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः ॥ १३ ॥ विच्छिन्नशरपात-
त्वात् गदायुद्धमवर्त्तत । गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम् १४
विभेद शतधा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् । ततो भीमस्य राधेयो गदा-
माविध्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥ अवाप्तजद्रथे तान्तु विभेद गदया
गदाम् । ततो भीमः पुनर्गुर्वी विक्षेपाधिरथेर्गदाम् ॥ १६ ॥ तां
गदां बहुभिः कर्णः सुपुंखैः सुप्रवेजितैः । मत्प्रविध्यत् पुनश्चायैः

भुजाओंके बीचमें तथा छातीमें भल्ल नामके तीन बाण मारकर
गरजने लगा ॥ १० ॥ फिर पैरसे दबेहुए सर्पकी समान कर्ण
पीछेको लौटा और उसने तेज कियेहुए बाणोंकी वर्षा करके
भीमसेनको प्रहार करनेसे रोकदिया ॥ ११ ॥ इस समय भीमसेन
और कर्णमें महाघोर युद्ध चलने लगा, क्रोधमें भरेहुए वे दोनों
योधा आँखें फाड़कर साँड़ोंकी समान गरजते हुए बड़े वेगसे
आपसमें लड़ने लगे, जब लड़ते २ उन दोनों रणकुशल योधाओंके
बाण निबडगये तब वे दोनों योधा गदायें लेकर लड़ने लगे, हे
राजन् ! उनमें भीमसेनने गदा मार कर कर्णके रथके छत्रीके
टुकड़े २ करडाले, भीमसेनने यह काम बड़ा ही अद्भुत किया था
तदनन्तर पराक्रमी कर्णने भीमसेनकी गदाको पकड़लिया और
फिर वही भीमसेनके रथके ऊपरको फेंकी, तब भीमसेनने सामने
से दूसरी गदा मार कर उस गदाके टुकड़े २ करडाले तथा
और एक गदा कर्णके मारी ॥ १२-१६ ॥ कर्णने सुन्दर पंखों
वाले और बड़े ही वेगवाले बहुतसे बाण उस गदाके मारे उनसे
वह मंत्रसे किली हुई नागन जैसे पीछेको हटजाती है तैसे

सा भीमं पुनराव्रजत् ॥१७॥ व्यालीव मन्त्राभिहता कर्णवाणैरभि-
 द्रुता । तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः ॥ १८॥ पपात
 सारथिश्चास्य मुमोह गदया हतः । स कर्णं सायकानघौ व्यसृजत्
 क्रोधमुच्छ्रितः ॥१९॥ तैस्तस्य निशितैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनो महाबलः ।
 चिच्छेद् परवीरहनः प्रहसन्निव भारत ॥ २० ॥ ध्वजं शरासन-
 ज्चैव शरावापश्च भारत । कर्णोऽप्यन्यद्भुतगुणं हेमपृष्ठं दुरासदम् २१
 ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः । ऋत्तवर्णान् जघानाशु
 तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २२ ॥ स विपन्नरथो भीमो नकुलस्या-
 प्लुतो रथम् । हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिन्दमः ॥ २३ ॥
 तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमपृथ्येतां महारथौ । आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र
 कुतप्रहरणौ युधि ॥ २४ ॥ लघुसन्धानयोगाभ्यां रथयोश्चरणेन

ही भीमसेनकी ओरको पीछेको हटगयी और उस गदाकी
 चोटसे भीमसेनकी बड़ी ध्वजा टूटकर भूमि पर गिरगयी तथा
 सारथीको मूर्छा आगयी, इसप्रकार पराक्रम करनेके अमन्तर
 क्रोधमें भरेहुए भीमने कर्णके आठ बाण मारे ॥ १७-१९ ॥
 हे भरतवंशी राजन् ! महावीर वैरीका संहार करनेवाले महाबली
 भीमने मुख मलका कर तेज कियेहुए तीक्ष्ण बाण मार कर्णकी
 ध्वजा, धनुष और भाथेको काटडाला, फिर कर्णने भी सुवर्णकी
 पीठवाला दूसरा दुरासद धनुष लिया और रथको तोड़नेके बाण
 मारकर भीमसेनके ऋत्तवर्णके घोड़ोंको, दोनों करबटोंके रत्तकोंको
 और सारथीको शीघ्र ही मारडाला ॥ २०-२२ ॥ घोड़े तथा
 सारथीके मारेजानेसे रथ रुकगया तब वैरीको दवानेवाला भीमसेन
 जैसे सिंह पर्वतके शिखर पर चढ़जाता है तैसे ही नकुलके रथके
 ऊपर चढ़गया ॥ २३ ॥ हे राजेन्द्र ! दूसरी ओर महारथी गुरु
 शिष्य द्रोणाचार्य और अर्जुन भी एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते
 हुए विचित्र युद्ध कर रहे थे ॥२४॥ दोनों महारथी बड़ी कुर्तीसे

च । मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षुषि च मर्नासि च ॥ २५ ॥ उपा-
रमन्त ते सर्वे योधा भरतसत्तम । अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद्युद्धं गुरु-
शिष्ययोः ॥ २६ ॥ विचित्रान् पृथनामध्ये रथमार्गानुदीर्य तौ । अन्यो-
ऽन्यमपसव्यं तु कर्तुं वीरौ तदेषतुः ॥ २७ ॥ पराक्रमन्तयोर्योधा
ददृशुस्ते सुविस्मिताः । तयोः समभवद्युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत २८
आमिषार्थं महाराजं गगने श्येनयोरिव । यद्यच्चकार द्रोणस्तु
कुन्तीपुत्रजिगीषया ॥ २९ ॥ तत्तत्प्रतिजघानांशु प्रहसंस्तस्य पांडवः ॥
यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवं स्म विशेषितुम् ॥ ३० ॥ ततः
प्रादुश्चकारास्त्रमस्त्रमार्गविशारदः । ऐन्द्रं पाशुपतं त्वाष्ट्रं वाय-
व्यमथ वारुणम् ॥ ३१ ॥ मुक्तं मुक्तं द्रोणचापाच्चजघान धन-

वाणोंको चढ़ाना, छोड़ना और रथोंको मण्डलाकारसे घुमाना आदि
क्रियाओंसे मनुष्योंके नेत्रोंको और मनको मोहित कर रहे थे २५
और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! दूसरे योधा रणमें खड़े २ गुरु
शिष्यके पहले कभी न देखे हुए युद्धको देख रहे थे ॥ २६ ॥ इस
समय दोनों वीर सेनाके मध्यमें रथोंको अनेकों चालोंसे फिरा
रहे थे और एक दूसरेको दाहिने भाग पर ले आनेकी इच्छा
कर रहे थे और ऐसे दोनोंके युद्धको देखकर दूसरे योधा आश्चर्यमें
होरहे थे, हे महाराज ! मांसके लिये आकाशमें जैसे दो बाज
पत्नी लड़ मरते हैं तैसे ही राज्यके लिये द्रोण और अर्जुन
महायुद्ध कर रहे थे, इस युद्धमें द्रोणाचार्य कुन्तीपुत्र अर्जुनका
पराजय करनेके लिये जो २ युक्तियें रच रहे थे, उन युक्तियोंको
अर्जुन तुरन्त ही हँसकर तोड़ फोड़ डालता था, इसप्रकार जब
द्रोणाचार्य अर्जुनसे नहीं बढ़सके ॥ २७-३० ॥ तब अस्त्रोंको
जाननेवाले द्रोणाचार्यने अर्जुनके क्रमसे जैसे २ ऐन्द्र, पाशुपत,
त्वाष्ट्र, वायव्य और वारुण अस्त्र मारना आरम्भ किये तैसे २
अर्जुन भी उनके अस्त्रोंको काटने लगा और जैसे २ अर्जुन विधि-

ऊजयः । अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः ॥ ३२ ॥
ततोऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर्द्रोणः पार्थमवाक्रियत् । यद्यदस्त्रं स पार्थाय
प्रयुङ्क्ते विजिगीषया ॥ ३३ ॥ तस्य तस्य विघाताय ततः द्वि-
कुरुतेऽर्जुनः । स बध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथानिधि ॥ ३४ ॥
अर्जुनेनार्जुनं द्रोणो मनसैवाभ्यपूजयत् । मेने चात्मानमधिकं
पृथिव्यामधिभारत ॥ ३५ ॥ तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविज्ञयः
परन्तपः । वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम् ॥ ३६ ॥
यतमानोऽर्जुनं प्रीत्या प्रत्यवारयदुत्समयन् । ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च
गन्धर्वाश्च सहस्रशः ॥ ३७ ॥ ऋषयः सिद्धसंघाश्च व्यदृश्यन्त
दिदक्षया । तदप्सरोभिराकीर्णं यत्तगन्धर्वसंकुलम् ॥ ३८ ॥ श्रीम-

पूर्वक अस्त्रोंको काटनागया तैसे२ द्रोणाचार्य अर्जुनके परम दिव्य
अस्त्र मारते गये, अर्जुनने उन परम दिव्य अस्त्रोंका भी नाश
करवाना, इसप्रकार अर्जुनको जीतलेनेकी इच्छासे द्रोणाचार्य
अर्जुनके ऊपर जिन२ अस्त्रोंका प्रयोग करते थे, उन२ अस्त्रोंका
नाश करनेके लिये अर्जुन उद्योग करता था, अर्जुनने मेरे दिव्य
अस्त्रोंका नाश करदिया, यह देखकर द्रोणाचार्य अपने मनमें
अर्जुनकी प्रशंसा करनेलगे और हे भरतवंशी राजन ! मेरा शिष्य
पृथिवी पर सब अस्त्रवेत्ताओंकी अपेक्षा बढ़कर निकला है, यह
देखकर परन्तप द्रोणाचार्य अपनेको श्रेष्ठ माननेलगे, फिर अर्जुन
महात्मा पुरुषोंके बीचमें द्रोणाचार्यको पीछे हटानेका उद्योग करने
लगा और द्रोणाचार्य भी प्रेममे मन्द२ हँसतेहुए अर्जुनको पीछेको
हटानेका उद्योग करनेलगे, इनसमय द्रोण और अर्जुनके युद्धको देखने
की इच्छासे आकाशमें हजारोंदेवता, गन्धर्व, ऋषि और सिद्धोंके समूह
आकर खड़े होगये थे, उनसे, अप्सराओंसे, यक्षोंसे और गंधर्वांसे
आकाश आयाहुआ था, इसलिये जैसे घनघटाओंसे पूरे रीतिमे
भराहुआ आकाश शोभापाना है तैमे ही शोभा पागहा था हेराजन !

दाकाशमभवत्सूयो मेवाकुलं यथा । तत्र स्मान्तर्हिता वाचो विच-
रन्ति पुनः पुनः ॥ ३६ ॥ द्रोणपार्थस्तत्रोपेता व्यूथयंत नराधिप ।
विमुञ्च्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वालयत्सु दिशो दश ॥ ४० ॥ अत्रुवंस्तत्र
सिद्धाश्च ऋषयश्च समागताः । नैवेदं मानुषं युद्धं नासुरं न च
राक्षसम् ॥ ४१ ॥ न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम् ।
विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ॥ ४२ ॥ अतिपाण्डव-
माचार्यो द्रोणञ्चाप्यतिपाण्डवः । नानयोरन्तरं द्रष्टुं शक्यमन्येन
केनचित् ॥ ४३ ॥ यदि रुद्रो द्विधा कृत्य युध्येतात्मानमात्मना ।
तत्र शक्योपमा कर्तुमन्यत्र न तु वर्त्तने ॥ ४४ ॥ ज्ञानमेकस्थमा-
चार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे । शौर्यमेकस्थमाचार्ये बलं शौर्यञ्च
पाण्डवे ॥ ४५ ॥ नेमौ शक्यौ महेष्वासौ रणे क्षपयितुं परैः ।

इस समय द्रोण तथा अर्जुनकी स्तुतिरूप आकाशवाणियों भी
सुनायी आरही थीं छोड़ेहुए अस्त्रोंसे दशों दिशायें जलरही
थीं ॥ ३१-४० ॥ उस समय युद्ध देखनेको इकट्ठेहुए सिद्ध तथा
ऋषि कह रहे थे, कि-यह युद्ध मानुषी, आसुरी, राक्षसी, दैवी
या गान्धर्वी नहीं है-~~कि-यह युद्ध मानुषी, आसुरी, राक्षसी, दैवी~~
ब्रह्मयुद्ध है और यह युद्ध
विचित्र तथा आश्चर्यजनक है और हमने ऐसा युद्ध पहले कभी
देखा ही नहीं था तथा सुना भी नहीं था ॥ ४१-४२ ॥ द्रोणाचार्य
अर्जुनकी अपेक्षा अधिक बलवान् हैं और अर्जुन द्रोणाचार्यसे
बड़ा जारहा है, ऐसे इन दोनोंके अन्तरको दूसरा कोई मनुष्य
नहीं जानसकता ॥ ४३ ॥ कदाचित् शिव अपने शरीरके दो भाग
करके युद्ध करें तो उनको इन दोनोंकी समान कहा जासकता है,
परन्तु और किसी जगह इसकी उपमा नहीं दीजासकती ॥ ४४ ॥
यदि द्रोणाचार्यमें एक ज्ञान है तो अर्जुनमें ज्ञान और योग दोनों
हैं, यदि द्रोणाचार्यमें शूरताकी अवधि (हद) है तो अर्जुनमें
बल और शूरता दोनों रहते हैं ॥ ४५ ॥ इसलिये शत्रु इन दोनों

इच्छुपानौ पुनरिषौ हन्येतां सापरं जगत् ॥४६॥ इत्यनुवन्महा-
 राज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ । अनादितानि भूतानि प्रकाशानि च
 सर्वशः ॥ ४७ ॥ ततो द्रोणो ब्राह्ममखं प्रादुश्चक्रे महामनिः ।
 सन्तापयन् रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥ ४८ ॥ ततश्चचाल
 पृथिवी सपर्वतवनद्रमा । वर्षा च विषयो वायुः सागराश्चापि
 चुलुभुः ॥ ४९ ॥ ततस्त्रासो महानासीत् कुरुपाण्डवसैन्ययोः । सर्वपा-
 ण्यैव भूतानामुद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥ ५० ॥ तत पार्थोऽप्यसम्भ्रान्त-
 स्तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान् । ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततः सर्वमशीश-
 मत् ॥ ५१ ॥ यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वा । तदा
 संकुलयुद्धेन तद्युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥ ५२ ॥ नाशायत ततः किञ्चित्

महाभयपधारियोंको युद्धमें नहीं मार सकते, यदि यह दोनों चाहें तो
 देवताओं सहित जगत्का संहार कर सकते हैं ॥ ४६ ॥ महाराज धृतराष्ट्र !
 इस प्रकार उन दोनों महात्मा पुरुषोंको देखकर स्पष्ट दीखनेवाले
 और अदृश्य होकर विद्यमान रहनेवाले सब प्राणी कह रहे थे ॥ ४७ ॥
 इतनेमें ही महाबुद्धिमान् द्रोणाचार्यने ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया, वह
 पर्वत और वनवृक्षों सहित पृथिवी काँपनेलगी, अतितीक्ष्ण पवन
 चलनेलगा और समुद्र भी खलभला लड़े ॥ ४८ ॥ द्रोणाचार्यने
 ब्रह्मास्त्रको लेकर ज्यों हा ऊपरको किया, कि—उसी समय कौरव
 पाण्डवोंकी सेना तथा सब प्राणियोंमें हाहाकार मच गया ॥ ५० ॥
 हे ! राजेन्द्र ! तदनन्तर अर्जुनने धीरज धरकर सामनेसे ब्रह्मास्त्र
 मार द्रोणाचार्यके ब्रह्मास्त्रका नाश कर दिया, उस समय सर्वत्र
 शान्ति फैल गयी ॥ ५१ ॥ परन्तु उन दोनोंमेंसे एकका विजय
 होता हुआ देखनेमें नहीं आया, तदनन्तर दोनों ओरके योधा
 रिलमिल कर लड़नेलगे ॥ ५२ ॥ और हे राजन् ! फिर द्रोण
 तथा अर्जुनमें घोर युद्ध होनेलगा, उस समय मेघमण्डलोंकी सगन

पुनरेव विशास्यते । प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्मध्ये ॥ ५३ ॥
शरजालैः समावीर्णैः येषजालैरिवाम्बरे । न स्म सम्पतते कश्चि-
दन्तरिक्षचरस्तदा ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलधुद्धे

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

सञ्जय उवाच । तस्मिंस्तदा वर्त्तमाने नराश्वगजसंज्ञये । दुःशा-
सनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधत् ॥ १ ॥ स तु रुक्मरथासक्तो
दुःशासनशरार्दितः । अमर्षाच्च पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत् ॥ २ ॥
क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सह सारथिः । नादृश्यत महाराज
पार्षतस्य शरैश्चितः ॥ ३ ॥ दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य
महात्मनः । नाशकत् प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः ॥ ४ ॥
स तु दुःशासनं वाणैर्विधुस्वीकृत्य पार्षतः । किरञ्जरसहस्राणि

वाणोंके समूहोंसे आकाश छागया, इसलिये कुछ भी नहीं दीखता
था और उस समय आकाशमें एक भी पत्ती नहीं उड़ रहा
था ॥ ५३-५४ ॥ एकसौ अठ्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८८ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज ! हाथी, घोड़े तथा मनुष्योंका
संहार करनेवाला यह युद्ध होरहा था, उस समय दुःशासन
धृष्टद्युम्नके साथ लड़नेलगा ॥ १ ॥ उसने सोनेके रथोंमें बैठेहुए
धृष्टद्युम्नके खूब ही वाण मारे, इससे धृष्टद्युम्नको बड़ी पीड़ा हुई
तब उसने क्रोधनै भरकर तुम्हारे पुत्रके घोड़ोंके ऊपर वाणोंकी
वर्षा करना आरम्भ करदी ॥ २ ॥ और एक ही क्षणमें धृष्टद्युम्नके
वाणोंके नीचे सारथी, ध्वजा और रथसहित दुःशासन ढकगया,
जिससे वह दीखना बन्द होगया ॥ ३ ॥ और हे राजेन्द्र ! महात्मा
धृष्टद्युम्नके वाणोंके समूहके पहारसे घबड़ा कर वह उसके सामने
खड़ा भी नहीं रहसका, किंतु रणमेंसे भागगया ॥ ४ ॥ धृष्टद्युम्नने
वाण मारकर दुःशासनको रणमेंसे भगादिया, फिर रणमें हजारों

द्रोणमेवाभ्ययाद्रणे ॥५॥ अभ्यपद्यत हार्दिकयः कृत्वर्मा त्वनन्त-
रम् । सोदर्याणां त्रयश्चैव तत्रैनं पर्यभारयन् ॥ ६ ॥ तं यमौ पृष्ठ-
तोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ । द्रोणायाभिमुखं यान्तं दीप्यमानमि-
वानलम् ॥ ७ ॥ सम्पहारमकुर्वन्ते सर्वे च मुपहारथाः । अमर्षिताः
सत्त्ववन्तः कृत्वा परणमग्रतः ॥८॥ शुद्धात्मानः शुद्धवृत्ता राजन्
स्वर्गपुरस्कृताः । आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः ॥९॥ शुक्ला-
भिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिप । धर्मयुद्धमयुध्यन्त प्रेप्तन्तो
गतिमुत्तमाम् ॥ १० ॥ न तत्रासीदधर्मिष्ठमशस्त्रं युद्धमेव च ।
नात्र कर्णो न नालीको न लिप्तो न च वस्तिकः ॥ ११ ॥ न
सूचीकपिशो नैत्र न गत्रास्थिर्गजास्थिजः । इपुगासीन्न संश्लिष्टो

बाणोंकी वर्षा करता हुआ धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने जा
चढ़ा ॥५॥ बीचमें हृदीकका पुत्र कृत्वर्मा सामने आया, कृत्वर्माको
धृष्टद्युम्नने तथा उसके दो सगे भाइयोंने चारों ओरसे घेरलिया ६
और द्रोणाचार्यके सामने लड़नेको जातेहुए अग्रिकी समान तेजस्वी
धृष्टद्युम्नभी रक्षा करनेके लिये पीछे २ आते हुए नकुल तथा
सहदेवने भी उसको चारों ओरसे घेरलिया ॥७॥ फिर असह-
शील और मानसिक बलवाले सब महारथी मृत्युको आगे करके
वैरियोंके साथ युद्ध करनेलगे ॥८॥ हे राजन् ! शुद्ध अन्तःकरणवाले
शुद्ध आचरणवाले, पवित्र कुलमें उत्पन्न हुए, अतिपवित्र कर्म
करनेवाले और बुद्धिमान वे योधा स्वर्ग और उत्तम प्रकारकी
निर्मल कीर्तिको पानेकी इच्छासे तथा परस्पर वैरियोंका पराजय
करनेकी इच्छासे आर्यपुरुषोंके योग्य युद्ध करने लगे ॥९-१०॥
इस समय जो युद्ध हो रहा था वह धर्मानुकूल और शुद्ध था और
यह युद्ध किसी प्रकार भी पलीन वा निन्दाका पात्र नहीं था,
इस युद्धमें कर्णों वाण, नालीक वाण, विषमें बुझाये हुए वाण,
बंस्ती वाण, सूचीवाण, कपिश वाण बेलकी हठ्ठीके वाण,

न पूतिर्न च जिह्वागः ॥ १२ ॥ ऋजून्येव हि शुद्धानि सर्वे शस्त्रा-
 रणधारयन् । सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्त्तिमेव च ॥ १३ ॥ तदा-
 सीत्तुमुलं युद्धं सर्वदोषविवर्जितम् । चतुर्णां तत्र योधानां तैस्त्रिभिः
 पाण्डवैः सह ॥ १४ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु तान् दृष्ट्वा तव राजनूथर्वमान् ।
 यमाभ्यां वारितान् वीरान् शीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥ निवारि-
 तास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः । समसञ्जन्त चत्वारो वाताः पर्व-
 तयोरिव ॥ १६ ॥ द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथाभ्यां रथपुङ्गवौ । समा-
 सक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं
 ब्रजन्तं युद्धदुर्मदम् । यमाभ्यां तांश्च ससक्तास्तदन्तरमुपाद्रवत् ॥ १८ ॥
 दुर्योधनो महाराज किरञ्जोष्णितभोजनान् । तं सात्यकिः शीघ्रतरं

संश्लिष्ट (दो दाँत वाले) बाण, पूति (मैले शल्यवाले) बाण
 तथा तिरछे जानेवाले बाण नहीं बरते गये थे ॥ ११-१२ ॥
 किन्तु सर्वोंने सीधे जानेवाले शुद्ध शस्त्र धारण किये थे और वे
 सब आर्ययुद्ध करके कीर्त्ति पाना चाहते थे ॥ १३ ॥ हे महाराज !
 इस समय तुम्हारे चार योधाओंका पाण्डवोंके तीन योधाओंके
 साथ सकल दोषोंसे रहित घोर युद्ध हुआ था ॥ १४ ॥
 हे राजन ! नकुल और सहदेवने तुम्हारे महारथी वीरोंको आगे
 बढ़नेसे रोक दिया, यह देखकर शीघ्रतासे अस्त्रोंका प्रयोग करने
 वाला धृष्टद्युम्न शीघ्र ही द्रोणाचार्यके सामने लड़नेको आगे
 बढ़ा ॥ १५ ॥ फिर तुम्हारे रोके हुए वीर जैसे पवन पहाड़ोंके
 सामने जोर लगाते हैं, तैसे ही पुरुषसिंह नकुल और सहदेवके
 साथ जुटगये ॥ १६ ॥ महारथी नकुल और सहदेव एक २ होकर
 तुम्हारे दो योधाओंके साथ लड़ने लगे, उस समय धृष्टद्युम्न
 द्रोणाचार्यकी ओरको जाने लगा ॥ १७ ॥ हे महाराज ! दुर्योधनने
 देखा, कि-पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने लड़नेको
 जा रहा है और नकुल तथा सहदेव मेरे चारों महारथियोंको

(१२५२) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौनवासीवाँ]

पुनरेवाभ्यवर्त्तत ॥ १६ ॥ तौ परस्परमासाद्य समीपे कुरुमाधवौ ।
हसमानौ नृशार्दलावभीतौ समसज्जताम् ॥ २० ॥ वाङ्मये वृत्तानि
सर्वाणि प्रीयमाणौ विचिन्त्य तौ । अन्योऽन्यं प्रेक्षमाणौ च हस-
मानौ पुनः पुनः ॥ २१ ॥ अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं सम-
भाषत । प्रियं सखायं सततं गर्हयन् वृत्तामात्मनः ॥ २२ ॥ धिक् क्रोधं
धिक् सखे लोभं धिक् मोहं धिगमर्षितम् । धिगस्तु ज्ञात्रमाचारं धिगस्तु
बलमौरसम् ॥ २३ ॥ यत्र मोघमभिसन्धत्से त्वाञ्चाहं शिनिपुङ्गव । त्वं
हि प्राणैः प्रियतरो ममाहञ्च सदा तवा ॥ २४ ॥ स्मरामि तानि सर्वाणि
वाङ्मयवृत्तानि यानि नौ । तानि सर्वाणि जीर्णानि साम्प्रतं नौ
रणाजिरे ॥ २५ ॥ किमन्यत्क्रोधलोभाभ्यां युद्धमेवाद्य सात्वत ।

रोक कर उनके साथ लड़ रहे हैं, इसलिये मैं बीचमें जाऊँ, ऐसा
विचार कर रुधिर पीनेवाले बाणोंकी वर्षा करता हुआ
दुर्योधन बीचमें चढ़ आया, परन्तु उसको रोकनेके लिये
शीघ्रतासे तहाँको फिर दौड़ आया ॥ १८-१९ ॥ दुर्योधन और
सात्यकि जो सिंहकी समान बलवान् थे वे निर्भय होकर आमने
सामने हँसते हुए लड़ने लगे ॥ २० ॥ बालकपनके अपने सब
चरित्रोंको याद करके प्रसन्न होने लगे और बारंवार एक दूसरे
को देखकर गर्वमें आकर फूलने लगे ॥ २१ ॥ राजा दुर्योधन बारं-
वार अपने आचरणकी निन्दा करता हुआ प्यारे मित्र सात्यकिसे
कहने लगा कि- ॥ २२ ॥ हे मित्र ! मेरे क्रोधको, लोभको, मोहको,
असह्यशीलताको, ज्ञात्र आचरणको तथा मानसिक बलको धिक्कार
है । ॥ २३ ॥ हे शिनिपुङ्गव ! आजके युद्धमें तू मेरे ऊपर
प्रहार कर रहा है और मैं तेरे ऊपर प्रहार कर रहा हूँ, परन्तु तू
मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है और मैं भी सदा तुझे प्राणों
से अधिक प्यार करता हूँ, परन्तु हम दोनोंके सब बालचरित्रोंको
इस समय याद करता हूँ तो रणभूमिमें ऐसा मालूम होता है कि-

तं तथा वादिनं राजन् सात्वतः प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥ प्रहसन् विशि-
खांस्तीक्ष्णानुद्यम्य परमास्त्रवित् । नेयं सभा राजपुत्र न वाचार्य-
निवेशनम् ॥ २७ ॥ यत्र क्रीडितमस्माभिस्तदा राजन् समागतैः ।
दुर्योधन उवाच । क्व सा क्रीडा गतास्माकं बाल्ये त्रै शिनिपुङ्गव २८
क्व च युद्धमिदम्भूयः कालो हि दुरतिक्रमः । किन्तु नो विद्यते
कृत्यं धनेन धनलिप्सया ॥ २९ ॥ यत्र युध्यामहे सर्वे धनलोभात्
समागताः । सञ्जय उवाच । तं तथा वादिनं तत्र राजानं सात्वतोऽ-
ब्रवीत् ॥ ३० ॥ एवं वर्त्त सदा क्षात्रं युध्यन्तीह गुरुनपि । यद्यहं ते
प्रियो राजन् जहि मां माचिरं कृयाः ॥ ३१ ॥ त्वत्कृते मुकुतल्लोकान्

वे सब जीर्ण हो गये ॥ २४-२५ ॥ आज जो युद्ध हो रहा है,
इस युद्धमें क्रोध तथा लोभके सिवाय और क्या कारण है ? दुर्यो-
धनकी इस बातको सुनकर महाअस्त्रवेत्ता सात्यकिने तीक्ष्ण वाण
जड़ाये और हँसते-दुर्योधनसे कहा कि-अरे राजपुत्र ! यह कोई
सभा नहीं है तथा किसी आचार्यका घर भी नहीं है, कि-जहाँ
हम इकट्ठे होकर खेला करते थे, दुर्योधनने कहा कि-हे सात्यकी !
हम बालकपनमें खेलते फिरते थे, वह खेलकूद कहाँ गया ? और
हमको यह युद्ध करनेके लिये कहाँसे आगया ! वास्तवमें कालकी
गतिको रोकना बड़ा कठिन है ! अरे ! हमें इस धनसे और धनके
लोभसे क्या काम है ? ॥ २६-२९ ॥ जिस धनके लिये वा लोभ
के लिये हम सब इकट्ठे होकर लड़ रहे हैं, सञ्जय कहता है, कि-
हे राजन् ! इस प्रकार दुर्योधनने कहा, तब उस राजासे सात्यकीने
कहा, कि- ॥ ३० ॥ क्षत्रियोंका आचरण ऐसा ही होता है, कि-
वे गुरुजनोंके साथ भी युद्ध करते हैं इसलिये हे राजन् ! यदि मैं
तुझें प्यारा हूँ तो तू मेरे ऊपर पहले प्रहार कर, विलम्ब न
कर ॥ ३१ ॥ हे भरतसत्तम ! मैं तेरे कारणसे पुण्यवानोंके स्वर्गादि
लोकोंमें पहुँचूँगा ! तुझमें जितनी शक्ति और जितना बल हो

गच्छेयं भरतर्षभ । या ते शक्तिर्वलं यच्च तत्क्षिप्रं मयि दर्शया ॥ ३२ ॥
 नेच्छामि तदहं द्रष्टुं नित्राणां व्यसनं महत् । इत्ये व्यक्तमाभाष्य
 प्रतिभाष्य च सात्यकिः ३३ अभ्ययात्तूर्णमभ्यग्रा दयां नाकुरुतात्मनि ।
 तमायान्तं महाबाहुं प्रत्यगृह्णात्तवात्मजः ॥ ३४ ॥ शरैश्चावाकि-
 रद्वाजन् शूनेयं तनयस्तव । ततः प्रवृत्ते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ३५
 अन्योऽन्यं क्रुद्धयोर्धोरं यथा द्विरदसिंहयोः । ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः
 सात्वतं युद्धदुर्मदम् ॥ ३६ ॥ दुर्योधनः प्रत्यविध्यत् कुपितो दशभिः
 शरैः । तां सात्यकिः प्रत्यविध्यत् तथैवावाकिरच्छरैः ॥ ३७ ॥ पञ्चा-
 शता पुनश्चानौ त्रिशतां दशभिश्च ह । सात्यकिस्तु रणे राजन्
 महसंस्तनयस्तव ॥ ३८ ॥ आकर्णपूर्णैर्निशितैर्विष्याथ त्रिशता
 शरैः । ततोऽस्य सशरञ्चापं क्षुरप्रेण द्विधाकरोत् ॥ ३९ ॥ सोऽ-
 न्यत्र कामुकमादाय लघुइस्तस्ततो दृढम् । सात्यकिर्व्यसृच्चापि शर-

उस सबको तू मेरे ऊपर शीघ्र ही दिखा ॥ ३२ ॥ क्योंकि मैं
 मित्रोंके ऊपर पड़नेवाले महादुःखको देखना नहीं चाहता, इस
 प्रकार स्पष्ट उत्तर देकर निर्भय सात्यकी अपने प्राणोंकी भी परवाह
 न करके तुरन्त ही उसके सामने लड़नेके लिये आकर खड़ा हो
 गया, हे महाराज ! जब महाबाहु सात्यकी लड़नेके लिये सामने
 आकर खड़ा होगया, उस समय तुम्हारा पुत्र उसके ऊपर बाणों
 की वर्षा करने लगा, तुरन्त ही कोपमें भरे हुए हाथी तथा सिंह जैसे
 आपसमें महाघोर युद्ध करते हैं तैसे ही कोपमें भरे हुए इन दोनों
 क्रुद्धंशी और मधुवंशी योधाओंमें घोर युद्ध होने लगा, कोपमें भरे
 हुए दुर्योधनने बड़े लंबे दश बाण युद्धदुर्मद सात्यकीके मारे सात्यकि
 ने उसके पचास और फिर चालीस बाण मारे, हे राजन् ! तुम्हारे
 पुत्रने हँसते २ धनुषको कानतक खेंचकर सात्यकीके तीस बाण
 मारे और क्षुरप नामके बाणसे उसके बाण चढ़े हुए धनुषके दो
 टुकड़े कर डाले ॥ ३३-३९ ॥ तब फुरतीले हाथवाले सात्यकीने

श्रेणीं सुतस्य ते ४० ॥ तापोपतन्तीं सहसा शरश्रेणीं जिघांसया
 त्रिच्छेद बहुधा राजा तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ४१ ॥ सात्यकिश्च
 त्रिसप्तत्या पीडयामास वेगितः । स्वर्णपुंखैः शिलाधौतैराकर्ण-
 पूर्णनिःसृतैः ॥ ४२ ॥ तस्य सन्दधतश्चेषून् संहितेषु च कार्मुकम् ।
 अस्त्रिनत् सात्यकिस्तूर्णं शरैश्चैवाप्यवीविधत् ॥ ४३ ॥ स गाढ-
 विदो व्यथितः प्रत्यपायाद्रथान्तरे । दुर्योधनो महाराज दाशार्ह-
 शरपीडितः ॥ ४४ ॥ समाश्वस्य तु पुनस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात् ।
 विसृजन्निपुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥ ४५ ॥ तथैव सात्यकिर्वा-
 णान् दुर्योधनरथं प्रति । सततं व्यसृजद्राजस्तत्संकुलमवर्त्तता ॥ ४६ ॥
 तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च शरीरेषु । अग्नेरिव महाकक्षैः

दूसरा दड़ धनुष हाथमें लिया और तुम्हारे पुत्रके ऊपर बाणोंकी
 वर्षा करने लगा ॥ ४० ॥ एकायकी अपने ऊपर पड़ती हुई बाणों
 की वर्षाका नाश करनेके लिये राजा दुर्योधनने उसके बहुतसे
 टुकड़े कर डाले, उस समय मनुष्योंने बड़ा कोलाहल मचा डाला
 था ॥ ४१ ॥ उसने वेगमें आकर सानपर धरकर तेज किये हुए,
 धनुषको कानतक खेंचकर छोड़े हुए तथा सोनेके पंखोंवाले तिहत्तर
 बाण मारकर सात्यकीको घबड़ा दिया ॥ ४२ ॥ फिर दुर्योधनने
 धनुष पर बाण चढ़ाकर तयार किया, कि-सात्यकीने तुरन्त बाण
 चढ़ाये हुए उसके धनुषके टुकड़े कर डाले और बाण मार कर
 दुर्योधनको भी बीध दिया ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! सात्यकीके प्रबल
 प्रहारसे तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको भी बड़ी ही पीडा हुई, वह खिन्न
 होकर दूसरे रथमें जा बैठा और सावधान होकर फिर सात्यकी
 के सामने लड़नेको आया और सात्यकीके रथके ऊपर बाण छोड़ने
 लगा ॥ ४४-४५ ॥ ऐसे ही सात्यकीने भी दुर्योधनके रथके
 ऊपर बारम्बार बाणोंकी वर्षा कर डाली और दोनोंमें घोर युद्ध
 होने लगा ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें जो बाण छोड़े गये थे

शब्दः समभवन्नगहा ॥ ४७ ॥ तयोः शरसहस्रैश्च संच्छन्नं वसु-
धातलयम् । अगम्यरूपञ्च शरैराकाशं समपद्यत ॥ ४८ ॥ तत्रा-
प्यधिकमालिङ्ग्य साधवं रथसत्तमम् । क्षिप्रमभ्यपतत्कर्णः परीप्सं-
स्तनयं तव ॥ ४९ ॥ न तु तं मर्षयापास भीमसेनो महाव्रतः ।
सोऽभ्ययात्त्वरितः कर्णं व्यसृजन्सायकान् बहून् ॥ ५० ॥ तस्य
कर्णः गितान् बाणान् प्रतिहन्य हसन्निव । धनुः शरांश्च विच्छेद-
सूतञ्चाभ्याहनच्छरैः ॥ ५१ ॥ भीमसेनस्तु संकुद्धो गदामादाय
पाण्डवः । धनुर्ध्वजञ्च सूतञ्च सम्प्रमर्दाहवे रिपोः ॥ ५२ ॥
रथचक्रञ्च कर्णस्य वभञ्ज स महाव्रतः । भग्नचक्रे रथेऽतिष्ठद-
कम्पः शैलराडिव ॥ ५३ ॥ एकचक्रं रथं तस्य तमूहुः सुचिरं दयाः ॥

वे जब दूसरे योधाओंके ऊपर पड़ते थे, उस समय जैसे अग्नि
के बड़े भारी वनको जलाने पर महाशब्द होता है तैसे ही बड़ा
भारी भडभड शब्द हो रहा था ॥ ४७ ॥ उन दोनों योधाओंके
सहस्रों बाणोंसे पृथ्वी ढकगयी तथा आकाश भी छागया, इस
कारण विलकुल दीखना ही बन्द होगया ॥ ४८ ॥ महारथी
सात्यकीको बंदा हुआ जानकर कर्ण तुरन्त ही तुम्हारे पुत्रकी रक्षा
करनेको आपहुँचा ॥ ४९ ॥ इस बातको महाव्रती भीमसेन न
सहसका, वह शीघ्र ही कर्णके ऊपर चढ़ आया और कर्णके बहुत
से बाण मारने लगा ॥ ५० ॥ कर्णने भी हँसते-उसके तेज किये
हुए बाणोंको, धनुषको तथा अन्य बाणोंको और सारथीको भी
बाणोंसे छिन्न भिन्न करदिया ॥ ५१ ॥ तुरन्त ही पाण्डुपुत्र भीम-
सेनको क्रोध चढ़आया और उसने हाथमें गदा लेकर लड़ते-शत्रुकी
ध्वजाका, धनुषका और सारथीका संहार करडाला ॥ ५२ ॥ फिर
महाव्रती भीमसेनने कर्णके रथके एक पहियेको तोड़डाला, ज्योंही
रथका पहिया टूटा, कि-रथ अटक गया परन्तु कर्ण रणमें हिमा-
लयकी समान अटल होकर खड़ा ही रहा ॥ ५३ ॥ सूर्यके एक

एकचक्रपिनाकस्य रथं सप्त हयाः यथा ॥ ५४ ॥ अमुष्यमाणः
कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत । चित्रिधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च
संयुगे ॥ ५५ ॥ भीमसेनस्तु संक्रुद्धः सूतपुत्रमयोधयत् । संकुले
वर्त्तमाने तु राजा धर्मसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥ पञ्चालानां नरव्याघ्रा-
न्मत्स्यांश्चैव नरर्षभान् । ये नः प्राणाः शिरो ये च ये नो योधा
महारथाः ॥ ५७ ॥ त एते प्रार्त्तराष्ट्रेषु विपक्ताः पुरुषर्षभाः । किं
तिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः ॥ ५८ ॥ तत्र गच्छन् यत्रैते
युध्यन्ते मामका रथाः । तत्र धर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ५९
जयन्तो वध्यमानाश्च गतिमिष्टां गमिष्यथ । जित्वा वा बहुभिर्य-
शौर्यजध्वं भूरिदक्षिणैः ॥ ६० ॥ इता वा देवसाद्भूत्वा लोकान्

चक्रवाले रथको जैसे उसके सात घोड़े खेंचते हैं तैसे ही कर्णके
भी एक पहियेवाले रथको उसके घोड़ोंने लड़ाईके मैदानमें बहुत
देर तक खेंचा ॥ ५४ ॥ कर्ण भीमसेनकी इस करतूतको सह नहीं
सका, वह अनेकों बाणोंसे तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे भीमसेन
के साथ रणमें लड़ने लगा ॥ ५५ ॥ भीमसेनभी बड़ेही कोपमें
भरगया और कर्णके साथ जोरसे लड़ने लगा, इस प्रकार युद्ध
चलरहा था, कि-इतनेमें ही धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने कोपमें भर
पाँचालराजाओं और मत्स्यराजाओंमें श्रेष्ठ नरव्याघ्र योधाओंसे
कहा, कि-मेरे प्राणरूप, मेरे मस्तकरूप, मेरे महारथी महाश्रेष्ठ
योधा तो कौरवोंके साथ लड़ रहे हैं तो तुम सब बेखबर
मूढ़ोंकी समान यहाँ क्यों खड़े हो ? ॥ ५६—५८ ॥
तुम सब चिन्ताको त्याग दो क्षत्रियधर्मका सम्मान करके जहाँ
मेरे महारथी लड़ रहे हैं तहाँ पहुँच जाओ ॥ ५९ ॥ विजय पातेमें
यदि तुम सारे भी जाओगे तो तुम्हें स्वर्गलोक मिलेगा और यदि
विजय पागये तो बहुतसी दक्षिणावाले अनेकों यज्ञ करोगे, उसमें
भी स्वर्ग पाओगे ॥ ६० ॥ मरण पाओगे तो देवता-वसन्त

प्राप्स्यथ पुष्कलान् । ते राज्ञा चोदिता वीरो योत्स्यमाना महा-
रथाः ॥ ६१ ॥ क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य त्वरिता द्रोणमभ्ययुः । पाञ्चाला-
स्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥ भीमसेनपुराणा-
श्चाप्येकतः पर्यवारयन् । असंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयो जिह्वा महा-
रथाः ॥ ६३ ॥ ययौ च भीमसेनश्च प्राकोशं स्ते धनञ्जयम् । अभि-
दवाज्जुनं क्षिप्रं कुरुन् द्रोणादपानुद ॥ ६४ ॥ तत एनं हनिष्यन्ति
पञ्चाला हतरक्षिणम् । कौरवेर्गोस्तनः पार्थः सहसा समुपाद्रवत् ६५
पञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् । मम दुस्तरसा वीराः
पञ्चमेऽहनि भारत ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलधुजे
जननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

पवित्र लोकमें चाओगे, इसप्रकार धर्मराजने वीर और महारथी
योधाओंसे लड़नेके लिये कहा, कि-ये महारथी क्षत्रियधर्मका
पूर्णरीतिसे सम्मान करके शीघ्र ही द्रोणाचार्यके सामने लड़नेको
जा पहुँचे एक ओर पांचाल राजे द्रोणाचार्यके तेज कियेहुए बाण
मारनेलगे और दूसरी ओरसे भीमसेन आदि योधा द्रोणाचार्यको
मारनेलगे, इस समय पाण्डवोंके पक्षमें तीन कुटिल महारथी योधा
थे, नकुल, सहदेव तथा भीमसेन इन तीनोंने अर्जुनको पुकार कर
कहा, कि-अरे अर्जुन ! तू शीघ्र ही धावा कर और द्रोणाचार्यकी
रक्षा करतेहुए कौरवोंको द्रोणाचार्यसे अलग करदे ॥ ६१-६४ ॥
वस उसी समय पंचाल राजे रक्तकरहित हुए द्रोणाचार्यको मार
ढालेंगे, इस पुकारको सुनकर धनञ्जय, कौरवोंके ऊपर चढ़ आया ६५
और हे भरतवंशी राजन् ! द्रोणाचार्य पाँचवें दिन धृष्टद्युम्न आदि
पंचाल राजाओंके ऊपर वेगसे चढ़ाया करके उनको पीड़ा देने
लगे ६६ ॥ एकसौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८६ ॥

सञ्जय उवाच । पञ्चालानां ततो द्रोणस्त्वकरोत् कदनं महत् ।
 यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥ १ ॥ द्रोणास्त्रेण
 महाराज वध्यमानाः परे युधि । नात्र सन्त रणे द्रोणात् सत्त्वन्तो
 महारथाः ॥ २ ॥ युध्यमाना महाराज पञ्चालाः सृज्यास्तथा ।
 द्रोणमेवाभ्ययुर्गुह्ये शोधयन्तो महारथाः ॥ ३ ॥ तेषान्तु छात्रमा-
 नानां पञ्चालानां समन्ततः । अभवद्भैरवो नादो वध्यतां शर-
 वृष्टिभिः ॥ ४ ॥ वध्यमानेषु संग्रामे पञ्चालेषु महात्मना । उदीर्य-
 माणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान् भयमाविशत् ॥ ५ ॥ दृष्टाश्वनरयोधानां
 विपुलञ्च क्षयं युधि । पाण्डवेया महाराज नाशशंसुर्जन्यं तदा ६
 कश्चिद् द्रोणो न नः सर्वान् क्षण्येत्परमास्त्रवित् । समिद्धः शिशि-

सञ्जयने कहा कि-हे महाराज धृतराष्ट्र ! द्रोणाचार्यको बड़ा
 ही क्रोध आया और जैसे पहले कुपितहुए इन्द्रने दानवोंका नाश
 किया था, तैसे ही द्रोणाचार्य भी रणमें पांचाल राजाओंका बड़ा
 भारी संहार करनेलगे ॥ १ ॥ हे महाराज ! युद्धमें द्रोणाचार्यके
 अस्त्रसे घायल हुए महारथी पांचाल और सृज्य रणको तरनेमें
 असमर्थ थे, तो भी हे महाराज ! वे युद्ध करते-२ द्रोणाचार्यके सामने
 बराबर आगेको ही बढ़ते चलेगये ॥ २-३ ॥ और उनके बढ़नेके
 अनुसार ही द्रोणाचार्य भी बाणोंकी वर्षा करके पांचालोंको चारों
 ओरसे ढकनेलगे तथा बाणोंका प्रहार करनेलगे, पांचाल योधा
 इस लड़ाईमें भयानक रूपसे गरजनेलगे ॥ ४ ॥ तो भी महात्मा
 द्रोण रणमें पांचालोंका संहार करते ही रहे, इस लड़ाईमें द्रोणा-
 चार्यके अस्त्र बराबर बढ़ते ही रहे इससे पाण्डव डरगये ॥ ५ ॥
 इस युद्धमें घोड़ोंका, मनुष्योंका तथा योधाओंका बड़ा संहार
 होनेलगा, यह देखकर पाण्डवोंने इस समय विजयकी आशा छोड़
 ही दी ॥ ६ ॥ वे विचारमें पड़गये, कि-परम असूत्रवेत्ता द्रोणाचार्य
 कहीं हम सबोंका ही नाश तो नहीं कर डालेंगे ? जैसे कि-बस न

रापाये दहनं कृत्तमिवानलः ॥ ७ ॥ न चैनं संयुगे कश्चित् समर्थः
 प्रतिवीक्षितुम् । न चैनमर्जुनो जातु प्रतिषृध्येत धर्मवित् ॥ ८ ॥
 त्रस्तान् कुन्तीसुतान् दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान् । मतिमान् श्रेयसे
 युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ नैप युद्धेन संग्रामे जेतुं शक्यः
 कथञ्चन । सधनुर्धन्विनां श्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः ॥ १० ॥ न्यस्त-
 शस्त्रस्तु संग्रामे शक्यो हन्तुं भवेन्नुपिः । आस्थीयतां जये योगो धर्म-
 मुत्सृज्य पाण्डवाः ॥ ११ ॥ यथा नः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ।
 अश्वत्थाम्नि हते नैप युध्येदिति मतिर्मम ॥ १२ ॥ तं हतं संयुगे
 कश्चिदस्मै शंसतु मानवः । एतन्नारोचयद्राजन् कुन्तीपुत्रो धन-

श्रुतुमें बढाहुआ अग्नि घासके ढेरको जलाकर भस्म करडालना
 है ॥ ७ ॥ इस युद्धमें कोई भी योधा द्रोणाचार्यके सामनेको देख
 भी नहीं सकता है और धर्मदेत्ता अर्जुन तो इनके सामने कभी
 लड़ेगा ही नहीं ॥ ८ ॥ ऐसी बातें होरही थीं, कि-इतनेमें ही
 पाण्डवोंका कन्याण करनेवाले बुद्धिमान् श्रीकृष्णने, पाण्डवोंको
 द्रोणके प्रहारसे भयभीत हुआ देखकर अर्जुनसे कहा, कि-
 हे धनञ्जय ! धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य जबतक धनुष लेकर
 रणमें घूमेंगे तबतक इन्द्रसहित देवता भी युद्धमें इनका किसीप्रकार
 भी तिरस्कार नहीं करसकेंगे ॥ ९-१० ॥ परन्तु जब वह रणभूमिमें
 ही शस्त्रोंको छोड़देंगे तब ही योधा उनको मारसकेंगे, इसलिये
 हे पाण्डवों ! तुम धर्मको एक ओर रखकर उनका पराजय करनेके
 लिये उपाय खोजकर निकालो ॥ ११ ॥ कि-जिससे सोनेके रथ
 वाले द्रोणाचार्यको युद्धमें हम सबोंका नाश करनेका अवसर न
 मिले, मैं समझता हूँ, कि-अश्वत्थामाके मरणके समाचारको
 जानने पर द्रोणाचार्य हमारे साथ नहीं लड़ेंगे ॥ १२ ॥ इसलिये
 कोई मनुष्य रणमें जाकर द्रोणाचार्यसे कहे, कि-‘अश्वत्थामा
 रणमें मारागया’ हे राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुनको यह बात अच्छी

जनयः ॥ १३ ॥ अन्ये त्वरोन्नयन् सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ।
 ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम् ॥ १४ ॥ जघान गदया
 राजन्नश्वत्थामानमित्युत । परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रशर्मणः १५
 भीमसेनस्तु सत्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे । अश्वत्थामा हत इति शब्द-
 मुच्चैश्चकार सः ॥ १६ ॥ अश्वत्थामेति हि गजः ख्यातो नाम्ना
 हतोऽभवत् । कृत्वा मनसि तं भीमो मिथ्या व्याहृतवांस्तदा ॥ १७ ॥
 भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत् परमाप्रियम् । मनसा सन्नगात्रोऽभू-
 द्यथा सैकतमम्भसि ॥ १८ ॥ शङ्कमानः स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्व-
 मुतस्य वै । हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत ॥ १९ ॥ स
 लब्ध्वा चेतनां द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसत् । अनुचिन्त्यात्मनः

नहीं लगी ॥ १३ ॥ और सर्वोको यह बात अच्छी मालूम हुई
 और युधिष्ठिरने तो इस बातको बड़ी कठिनतासे स्वीकार किया,
 हे राजन् ! तदनन्तर महाबाहु भीमसेनने अपनी सेनामें जो वैरि-
 योंका नाश करनेवाला, मालवेके राजा इन्द्रवर्माका अश्वत्थामा
 नामका भयानक हाथी था, उसको गदा मारकर मार डाला १४-१५
 और फिर रणमें जहाँ द्रोण खड़े थे तहाँ जाकर, लज्जित होता
 हुआ ऊँचे स्वरसे कहने लगा, कि—“अश्वत्थामा मारा गया” १६।
 भीमसेनने अश्वत्थामा नामसे प्रसिद्ध हाथीको मार डाला था और
 उसने भी उस समय मनमें उस हाथीका ही ध्यान रखकर यह
 मिथ्या बात कही थी ॥ १७ ॥ परन्तु भीमसेनके अत्यन्त अप्रिय वचन
 को सुनकर जलमें पड़ा हुआ रेता जैसे ठण्डा पड़ जाता है तैसे ही
 द्रोणाचार्यका मन और शरीर ठंडा होकर सुन्न हो गया १८। परन्तु
 वह अपने पुत्रके शरीरके बलका जानते थे, इसलिये उनको सन्देह
 हुआ, कि—यह बात मिथ्या है, इसलिये वह अपने धीरजसे चत्ता-
 यमान नहीं हुए ॥ १९ ॥ (क्षणभरमें) सावधान होकर उन्होंने
 विचारा, कि—मेरे पुत्रका पराक्रम वैरियोंसे नहीं सहा जा सकता,

पुत्रमविपक्षमरातिभिः ॥ २० ॥ स पार्ष्णतमभिद्रुत्य जिघांसु-
मृत्युमात्मनः । अवाकिरत् सहस्रेण तीक्ष्णानां कङ्कपत्रि-
णाम् ॥ २१ ॥ तं विंशतिसहस्राणि पञ्चालानां रथर्षभाः । तथा
चरन्तं संग्रामे सर्वतो व्यकिरन् शरैः ॥ २२ ॥ तैः शरैराचितं
द्रोणं नापश्याप महारथम् । भास्करं जलदै रुद्धं वर्षाण्विव विशा-
म्पते ॥ २३ ॥ विधूय तान् बाणगणान् पञ्चालानां महारथः ।
प्रादुश्चक्रे ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परन्तपः ॥ २४ ॥ वधाय तेषां
शूराणां पञ्चालानामपर्वितः । ततो व्यरोचत द्रोणो विनि-
घ्नन्सर्वसैनिकान् ॥ २५ ॥ शिरास्यापातयच्चापि पञ्चालानां
महामृधे । तथैव परिधाकारान् बाहून् कनकभूषणान् ॥ २६ ॥ ते

फिर वह मारा कैसे जासकता है ? ॥ २० ॥ और अपना नाश
करना चाहनेवाले अपनी मृत्युरूप धृष्टद्युम्नके सामने लड़नेको
जा चढ़े और कङ्कपत्नीके पराजितवाले एकहजार बाणोंकी वर्षा कर
ढाली ॥ २१ ॥ शत्रुपक्षमेंसे बीस हजार पांचाल महारथियोंने भी
इस महासंग्राममें बाणोंकी वर्षा करतेहुए और रथमें घूमतेहुए
द्रोणाचार्यके ऊपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करढाली ॥ २२ ॥
हे राजन् ! उस समय जैसे वर्षाकालमें मेघोंसे ढकाहुआ सूर्य नहीं
दीखता है तैसे ही बाणोंके जालमें ढकेहुए द्रोणाचार्यको भी दृग
देख नहीं सकते थे ॥ २३ ॥ फिर शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले
महारथी द्रोणाचार्यने ईर्ष्याके वशमें होकर पांचालोंके बाणोंका नाश
करढाला और उन वीरने पांचालोंका नाश करनेके लिये ब्रह्मास्त्र
को प्रकट किया, उस समय सब सैनिकोंका संहार करनेवाले
द्रोणाचार्य रथमें बड़े ही तेजस्वी दीखरहे थे ॥ २४-२५ ॥ महात्मा
द्रोण महासंग्राममें पांचालोंके शिरोंको तथा लोहके दण्डोंकी समान
विशाल और सोनेके आभूषणोंवाले भुजदण्डोंको काटकर पृथ्वी
पर टपाटप गिरानेलगे ॥ २६ ॥ और जैसे पवनके आवाजेसे

वध्यमानाः स्वरे भारद्वाजेन पार्थिवाः । मेदिन्यामन्वकीर्यन्
 वातमुन्ना इव द्रुमाः ॥ २७ ॥ कुञ्जराणाञ्च पततां हयानाञ्चैव
 भारत । अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्ममा ॥ २८ ॥ हत्वा
 त्रिंशतिसाहस्रान् पञ्चालानां रथव्रजान् । अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधू-
 मोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ २९ ॥ तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रताप-
 वान् । वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ३० पुनः पञ्चशतान्
 मत्स्यान् षट्साहस्रांश्च सृञ्जयान् । हस्तिनामयुतं हत्वा जघाना-
 श्वायुतं पुनः ॥ ३१ ॥ क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम् ।
 ऋषयोऽभ्यागमस्तूर्णं हव्यवाहपुगोगमाः ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रो
 जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः । वशिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं

वृत्त दूटकर भूमि पर गिर पड़ता है तैसे ही द्रोणके हाथसे
 मरनेवाले राजे भी पृथिवी पर गिरकर बिखर रहे थे ॥ २७ ॥
 और हे भरतवंशी राजन् ! रणमें हाथियोंकी तथा घोड़ोंकी
 बहुतसी न्हासें भी गिर रही थीं, इसकारण रणभूमिमें
 मांस और रुधिरकी कीच होरही थी, इसलिये तहाँ चलना भी
 कठिन होरहा था ॥ २८ ॥ धुँएँरहित अग्निकी समान दमकतेहुए
 द्रोणाचार्यने रणमें खड़े होकर पांचालोंके बीस हजार रथियोंका
 संहार करहाला ॥ २९ ॥ और तदनन्तर फिर क्रोधमें भरकर
 भल्ल जातिका बाण मार कर रणमें लड़ते हुए वसुदानका शिर
 धड़से जुदा करदिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर पाँच सौ मत्स्य राजाओं
 का, छ हजार सृञ्ज्योंका दश हजार हाथियोंका तथा दश हजार
 घोड़ोंका लड़ते २ क्षण भरमें ही संहार करहाला ॥ ३१ ॥ इस
 प्रकार क्षत्रियोंका नाश करनेके लिये रणमें द्रोणको तयार खड़ा
 देखकर अग्नि आदि ऋषि उनको ब्रह्मलोकमें लिवाजानेकी इच्छासे
 उनके पास आये, इनमें विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम,
 वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, सिकता, पृश्नि, गर्ग, सूर्यकी किरणोंको

निनीयतः ॥३३॥ सिकताः पृथगो गगां बालखिल्या मरीचिपाः ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव सूक्ष्माश्चान्ये महर्षयः ॥ ३४ ॥ त एनमब्रुवन्
सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम् । अधर्मतः कृतां युद्धं समयो निधनस्य
ते ॥ ३५ ॥ न्यस्यायुधं रणे द्रोण समीच्यास्मानिह स्थितान् ।
नानाः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुमिदार्हसि ॥ ३६ ॥ वेदवेदाङ्गविद्वषः
सत्यधर्मरतस्य ते । ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥३७॥
त्यजायुधममोघेपो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते । परिपूर्णश्च कालस्ते
वस्तुं लोकेऽथ मानुषे ॥ ३८ ॥ ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा अन-
स्त्रज्ञा नरा भुवि । यदेतदीदृशं विम कृतां कर्म तु साधु तत् ॥३९॥
न्यस्यायुधं रणे विम द्रोण मा त्वं चिरं कृथाः । मा पापिष्ठनरं कर्म
करिष्यसि पुनर्द्विज ॥ ४० ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा भीमसेन-

पीकर रहने वाले बालखिल्य भृगु, अङ्गिरा और अन्य भी सूक्ष्म
(दिव्य) महर्षि थे, वे सव रणमें देदीप्यमान दीखते हुए द्रोणा-
चार्यसे कहने लगे, कि-हे द्रोण ! तुम अधर्मसे युद्ध कर रहे हो,
अब तुम्हारे मरणका समय समीप ही आगया है ॥ ३२-३५ ॥
इसलिये अब तुम रणमें आयुधोंको त्यागदो और हम खड़े हैं,
हमारी ओरको देखो, आपको अब इससे अधिक क्रूर कर्म नहीं
करना चाहिये ॥ ३६ ॥ तुम वेद और वेदाङ्गोंको जानते हो,
सत्यधर्ममें लगे रहते हो, विशेष कर ब्राह्मण हो, इसलिये आपको
ऐसा काम करना उचित नहीं है, ॥ ३७ ॥ तुम्हारे बाण अमोघ
हैं, इसलिये अब तुम आयुधोंको छोड़दो और सनातनधर्मका आच-
रण करो, इस मनुष्यलोकमें रहनेका तुम्हारा समय पूरा होगया
है ॥ ३८ ॥ हे विम ! तुमने पृथिवीपर ब्रह्मास्त्रसे अनजान मनुष्योंको
ब्रह्मास्त्र मार कर भस्म कर डाला है, यह काम करना तुम्हें उचित
नहीं है, ॥ ३९ ॥ इसलिये हे विम द्रोण ! अब तुम युद्ध करना
बन्द करके शस्त्रोंको त्यागदो, हे द्विज ! अब तुम ऐसा पापिष्ठ

वचश्च तत् । धृष्टद्युम्नञ्च सम्प्रेक्ष्य रणे स विपनाभवत् ॥ ४१ ॥
 सन्दिह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । अहतं वा हतं वेति
 पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ४२ ॥ स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो
 वक्ष्यतेऽनृतम् । त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थं कथञ्चन ॥ ४३ ॥
 तस्मात् परिपप्रच्छ नान्यं कञ्चिद् द्विजर्षभः तस्मिस्तस्य हि सत्याशा
 बाल्यात् प्रभृति पाण्डवे ॥ ४४ ॥ ततो निष्पाण्डवाभुर्वी करि-
 ष्यन्तं युधां पतिम् । द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽन्न-
 वीत् ॥ ४५ ॥ यद्यर्द्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः । सत्यं
 व्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति ४६ स भवांस्त्रातु नो द्रोणात्

कर्म फिर कभी न करना ॥ ४० ॥ अधिपियोंकी इस बातको सुनकर
 और भीमसेनकी बातको भी याद करके धृष्टद्युम्नकी ओरको
 देखते हुए द्रोणको मन युद्धमेंसे उदासीन होगया ॥ ४१ ॥ द्रोण
 अपने पुत्रके मरणके विषयमें सन्देहमें पड़जानेके कारण खिन्न
 होगये थे, इस कारण मेरा पुत्र मरगया है या जीवित है? इस बातको
 कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे बूझने लगे ॥ ४२ ॥ द्रोणको निश्चय था,
 कि-यदि त्रिलोकीका ऐश्वर्य मिलता हो तब भी राजा युधिष्ठिर
 कभी मिथ्या नहीं बोलेंगे ॥ ४३ ॥ इस कारण द्रोणाचार्यने
 दूसरे किसीसे न बूझकर युधिष्ठिरसे ही बूझनेका विचार किया,
 द्रोणाचार्यको यह निश्चय था, कि-धर्मराज युधिष्ठिर बाल्यावस्थासे
 ही सत्यवादी है ॥ ४४ ॥ परन्तु श्रीकृष्णने जब जाना कि-
 महारथी द्रोण पृथिवी पर पाण्डवोंका नाम भी नहीं रहने देंगे तो
 वह धर्मराजसे कहनेलगे कि-यदि द्रोणाचार्य कोधमें भरकर
 अभी आधे दिन तक और युद्ध करते रहेंगे तो मैं सत्य
 कहता हूँ, कि-तुम्हारी सेनाका सर्वनाश ही होजायगा ॥ ४५ ॥
 इसलिये तुम द्रोणाचार्यसे हमारी रक्षा करो, किसी अवसर
 पर मिथ्या बोलना सत्यसे भी श्रेष्ठ माना जाता है, प्राणियोंके

सत्याञ्जयायोऽनृतं वचः। अमृतं जीवितस्यार्थे वदन्नस्पृश्यतेऽनृतैः४७
तयोः सन्वदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम्॥४८॥ श्रुत्वाँव ते महाराज
वधोपायं महात्मनः। ग्राहमानस्य ते सेनां गान्धर्वस्येन्द्रवर्मणः॥४९॥
अश्वत्थामेति विक्रान्तो गजः शक्रगजोपमः। निहतो युधि विक्रम्य
ततोऽहं द्रोणमब्रुवम्॥५०॥ अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्त्तस्वाह-
वादिति। नूनं नाश्रद्धाद्वाक्यमेव मे पुरुषर्षभः॥५१॥ स त्वं
गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः। द्रोणाय निहतं शंस राजन्
शारद्वतीपुत्रम्॥५२॥ त्वयोक्तो नैव युध्येत जातु राजन् द्विज-
र्षभः। सत्यवान् हि त्रिलोकेऽस्मिन् भवान् ख्यातो जनाधिप५३

प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये कदाचित् असत्य बोलना पड़े तो
उस असत्यबोलने वालेको पातक नहीं लगता है ॥४७॥ श्रीकृष्ण
और धर्मराज इस प्रकार बातें कर रहे थे, कि—इतनेमें भीमसेनने
यह कहा, कि—हे महाराज युधिष्ठिर ! तुम्हारी सेनाके ऊपर चढ़ायी
करके आनेवाले महात्मा द्रोणको मारडालनेका उपाय मुझे याद
आगया था, उसके अनुसार ही मैंने काम किया है, मालवेके
राजाको जो अश्वत्थामा नामका हाथी इन्द्रके हाथीकी समान
प्रसिद्ध था, उसको मैंने युद्धमें पराक्रम करके मारडाला है और
फिर मैंने द्रोणाचार्यके पास जाकर उनसे कहा, कि—४८-५०।
हे ब्रह्मन् ! अश्वत्थामा रणमें मारागया है, इसलिये तुम रणमेंसे
पीछेको लौटजाओ, परन्तु उन महापुरुषने मेरी बातका विश्वास
नहीं किया और अश्वत्थामा मरा है या नहीं, यह बात आपसे
चुम्कना चाहते हैं ॥ ५१ ॥ इसलिये हे राजन् ! अब आप
विजय चाहनेवाले श्रीकृष्णकी बातका मान रखकर द्रोणाचार्य
से कहदीजिये, कि—अश्वत्थामा मारागया ॥ ५२ ॥
हे राजन् ! तुम उनसे अश्वत्थामाके मरणका समाचार कहोगे,
कि—फिर वह ब्राह्मण कदापि युद्ध नहीं करेंगे, क्योंकि—हे राजन् !

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः । भावित्वाच्च महाराज
 वक्तुं समुपचक्रमे ॥५४॥ तपतथ्यभये मशो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
 अव्यक्तमब्रवीद्राजन्हतः कुञ्जर इत्थुत ॥५५॥ तस्य पूर्व रथः पृथ्व्यां
 चतुरंगुलमुच्छ्रितः । बभूवैवन्तु तेनोक्ते तस्य बाहाः स्पृशन्महीम् ५६
 युधिष्ठिरस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः । पुत्रव्यसनसन्तप्तो
 निराशो जीवितेऽभवत् ॥ ५७ ॥ आगस्कृतमिवात्मानं पांडवानां
 महात्मनाम् । ऋषिवाक्येन मन्वानः श्रुत्वा च निहतं सुतम् ॥५८॥

तुम त्रिलोकीमें सत्यवादी कहलाते हो (इस लिये वह तुम्हारी
 बातको असत्य नहीं मानेंगे) ५३ ॥ हे महाराज ! भीमकी और
 श्रीकृष्णकी बात सुनकर भारीके कारण असत्यभाषणके भयमें
 डूबजाने पर भी विजय चाहने वाले राजा युधिष्ठिर ऐसा कहने
 को तयार होगये और जब द्रोणाचार्यने अश्वत्थामाके मरणके
 विषयमें प्रश्न किया तब कहा कि-अश्वत्थामा मारा गया, फिर
 धीरेसे जिसमें किसीको सुनायी न आवे इसप्रकार कहा कि-
 “नरो वा कुञ्जरो वा” अर्थात् न जाने मनुष्य न जाने हाथी,
 पहले युधिष्ठिरका रथ पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचा रहताथा, वह इस
 असत्यभाषणके करते ही पृथ्वी पर घिसट कर चलने लगा
 और उनके घोड़े भी पृथ्वी पर चलते हुए रथको घसीटने
 लगे ॥ ५४-५६ ॥ और द्रोणाचार्य युधिष्ठिरसे पुत्रके मरणका
 समाचार सुनते ही शोक सन्तापमें डूबगये, उन्होंने अपने जीवन
 की आशा छोड़दी ॥ ५७ ॥ और ऋषियोंके कहनेसे अपनेको
 महात्मा पाण्डवोंका अपराधी मानने लगे, पुत्रके मरणका समा-
 चार पाकर उनका मन उचाट खागया, बड़े ही खिन्न होगये और
 हे राजन् ! द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नकी ओर देखा तो सही
 परन्तु शत्रुओंका दमन करने वाले द्रोणाचार्य जैसा पहले लड़

विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च । योद्धुं नाशक्नुवद्राजन्
यथा पूर्वमरिन्दमः ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि युधिष्ठिरासत्यकथने
नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

सञ्जय उवाच । तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् । पञ्चाल-
राजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्वत् ॥ १ ॥ य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण
द्रुपदेन महामखे । लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात् २
सधनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिःस्वनम् । दृढज्यमजरं दिव्यं शरां-
श्वाशीविपोपमान् ॥ ३ ॥ सन्दधे कर्णुं के तस्मिंस्ततस्तपनलोपमम् ।
द्रोणं जिघांसुः पांचान्यो महाज्वालमिवानलम् ॥ ४ ॥ तस्य
रूपं शरस्यासीदनुज्वापण्डलान्तरे । द्योततो भास्करस्येव घनाति
परिवेपिणः ॥ ५ ॥ पार्षतेन परामुष्टं ज्वलन्तमिव तदनुः । अन्त-
रहे धे, वैसा अब युद्ध नहीं करसके ॥ ५८ ॥ ५६ ॥ एकसौ
नवभैवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६० ॥

सञ्जयने कहा कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! द्रोणाचार्यको बड़े ही
घबड़ाएहुये और शोकसे विन्नमनहुए देखकर पांचालराजके
पुत्र धृष्टद्युम्नने बड़े जोरमें भरकर उनके ऊपर धावा किया ॥ १ ॥
इसही धृष्टद्युम्नको राजा द्रुपदने महायज्ञमें अग्निका पूजन करके
प्रसन्न हुए अग्निदेवसे द्रोणका नाश करनेके लिये पाया था ॥ २ ॥
उसने बड़ी २ लपटोंवाले अग्निकी समान प्रकाशमान द्रोणको पारने
की इच्छासे दृढ़प्रत्यश्वावाले और मेघकी समान गंभीर गर्जनावाले
विजयी धनुषको हाथमें लिया और उसके ऊपर विषधर सर्पकी
समान अजर तथा दिव्य बाण चढ़ाया ॥ ३-४ ॥ इस समय
धनुषकी प्रत्यश्वाके मण्डलमेंका बाण, शरद ऋतुके आकाशमंडल
में प्रकाशवान् सूर्यकी समान चमक रहा था ॥ ५ ॥ मानो जलरहा
हो, ऐसी तमतमाती हुई कान्तिवाला धनुष जिस समय धृष्टद्युम्नने

कालमनुमासं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः ॥ ६ ॥ तमिषु संवृतं तेन
भारद्वाजः प्रतापवान् । दृष्ट्वा मन्यत देहस्य कालपर्यायमाग-
तम् ॥ ७ ॥ ततः मयस्नयातिष्ठदाचार्यस्तस्य वारणो । न चास्या-
स्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन्महात्मनः ॥ ८ ॥ तस्य त्वहानि क्त्वारि
क्षपा चैकास्यतो गता । तस्य चान्हस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पत-
त्त्रिणः ॥ ९ ॥ स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन चार्दितः । विविधा-
नाञ्च दिव्यानामस्त्राणामप्रसादतः ॥ १० ॥ उत्सृष्टकामः शस्त्राणि
विप्रवाक्यप्रचोदितः । तेजसा पूर्यमाणस्तु युयुधे न यथा पुरा ११
भूयश्चान्यत् समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः । शरांश्च ब्रह्मदण्डा-
भान् धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १२ ॥ ततस्तं शरवर्षेण महता समचा-

हाथमें लिया, उस समय सैनिक समझनेलगे, कि-अब हमारा
अन्तकाल समीप ही आगया है ॥ ६ ॥ भरद्वाजके पुत्र प्रतापी
द्रोणाचार्य भी उस बाणको चढ़ाया हुआ देखकर यह समझनेलगे,
कि-अब मेरे शरीरका समय आपहुँचा है ॥ ७ ॥ धृष्टद्युम्नके
बाणको रोकनेके लिये द्रोणाचार्यने अस्त्रोंका स्मरण किया, परन्तु
हे राजेन्द्र ! उन महात्माके अस्त्र प्रकटहुए ही नहीं ॥ ८ ॥ हे राजन् !
द्रोणाचार्य चार दिन और एक रात्रि तक बराबर तले ऊपर
बाणोंकी वर्षा करते रहे थे, पाँचवें दिनके तीन भाग (पहर)
बीतगये तबतक लड़ते रहे, इसके बाद उनके अस्त्र निचड़गये ९
वह पुत्रशोकसे पीड़ित होरहे थे और इसलिये ही दिव्य अस्त्रोंका
स्मरण करने पर भी वे प्रकट नहीं हुए थे तथा ऋषियोंके वाक्यका
स्मरण करके शस्त्रोंको त्यागदेना चाहा, इसलिये पहलेकी समान
पराक्रमसे लड़ भी नहीं सके थे ॥ १०-११ ॥ तथापि वह फिर
अङ्गिरस नामका दिव्य धनुष तथा ब्रह्मदण्डकी समान बाण लेकर
धृष्टद्युम्नके सामने लड़नेलगे ॥ १२ ॥ और उन्होंने क्रोधमें भरकर
अन्तके युद्धमें बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके न सहनेवाले धृष्ट-

किरत् । व्यशातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ १३ ॥
 शरांश्च शतधा चास्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः । ध्वजं धनुश्च निशितैः
 सारथिञ्चाभ्यपातयत् ॥ १४ ॥ धृष्टद्युम्नः प्रहस्यान्यत् पुनरादाय कामु-
 कम् । शितेन चैनं बाणेन प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ १५ ॥ सोऽति-
 विद्धो महेष्वासो संभ्रान्त इव संयुगे । भल्लेन शितधारेण चिच्छेदास्य
 पुनर्धनुः ॥ १६ ॥ यच्चास्य बाणविकृतं धनूंषि च विशाम्पते । सर्वं
 चिच्छेद दुर्हर्षो गदां खड्गञ्च वर्जयन् ॥ १७ ॥ धृष्टद्युम्नं च विव्याध
 नवभिर्निशितैः शरैः । जीवितान्तकरः क्रुद्धः क्रुद्धरूपः परन्तपः ॥ १८ ॥
 धृष्टद्युम्नोऽथ तस्याश्वान् स्वरथाश्वैर्महारथः । व्यामिश्रयदमेयात्मा
 ब्रह्ममस्त्रमुदीरयन् ॥ १९ ॥ तैर्मिश्रा बह्वशोभन्त जवना वात-
 रंहसाः । पारावतसवर्णाश्वाः शोणाश्च भरतर्षभ ॥ २० ॥ यथा

द्युम्नको बीधडाला ॥ १३ ॥ सामनेसे बाण मारकर धृष्टद्युम्नके
 बाणोंके हजारों खण्ड कर डाले और तेज कियेहुए बाण मार
 कर उसकी ध्वजा, धनुष और सारथिको भी काट डाला ॥ १४ ॥
 तब धृष्टद्युम्नने हँसकर दूसरा धनुष लेलिया और उनकी बीच छातीमें
 तेज कियाहुआ बाण मारा ॥ १५ ॥ महाधनुषधारी द्रोणाचार्यके
 बड़ी ही चोट आयी, तब भी वह युद्धमें जरा भी न घबड़ा कर
 अटल खड़े रहे और तीखी धारवाला भल्ल नामका बाण मारकर
 धृष्टद्युम्नके धनुषको फिर काट डाला ॥ १६ ॥ हे परन्तप राजन् !
 क्रोधमूर्ति दुर्गधर्ष द्रोणने धृष्टद्युम्नकी गदा, तलवार, बाण और
 धनुष इन सबको काट डाला तथा उसका नाश करनेके लिये उसके
 तेज कियेहुए भी बाण मारे ॥ १७-१८ ॥ अमेयात्मा, महारथी
 धृष्टद्युम्न अपने रथके घोड़ोंको द्रोणके रथके घोड़ोंके पास ले गया
 और द्रोणके ब्रह्मास्त्र मारनेको तयार हो गया ॥ १९ ॥ हे भरतवंशी
 राजन् ! उस समय इकट्ठेहुए कबूतरोंकेसे रङ्गके तथा लाल रङ्गके
 उन दोनों योद्धाओंके पवनवेगी तथा शीघ्रगामी घोड़े बड़े ही

सविद्युतो मेघा नदन्तो जलदागमे । तथा रेजुर्महाराज विमिश्रा रण-
मूर्धनि ॥ २१ ॥ ईषावन्धं चक्रवन्धं रथवन्धं तथैव च । प्राणाशयदमे-
यात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ॥ २२ ॥ स क्षिन्नधन्वा पाञ्चाल्यो निकृत्त-
ध्वजसारथिः । उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत् ॥ २३ ॥
तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः । निजघान शरै-
र्द्रोणः क्रुद्धः सत्यपराक्रमः ॥ २४ ॥ तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन
निहतां शरैः । विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रञ्च भानुमत् ॥ २५ ॥
असंशयं तथा भूतः पाञ्चाल्यः साध्वमन्यत । वधमाप्ताचार्य-
मुख्यस्य प्राप्तकालं महात्मनः ॥ २६ ॥ ततः स रथनीडस्थं
स्वरथस्य रथेषया । अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रञ्च भानुमत् २७
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथः । इयेष वक्तो भैक्षुश्च

शोभायमान दीखरहे थे और जैसे वर्षाकालमें विजलीवाला मेघ
गरजता है तैसे ही वे घोड़े भी रणके मुहाने पर हिनहिना रहे
थे ॥ २०-२१ ॥ बड़े मनवाले द्रोणाचार्यने ईषावन्ध, चक्रवन्ध
और रथवन्धको काट डाला ॥ २२ ॥ उसके धनुषको काट डाला,
ध्वजाको और सारथीको भी काट डाला, इस प्रकार वीर धृष्टद्युम्नको
सङ्कटमें ला डाला, धृष्टद्युम्नने गदा उचकाकर द्रोणाचार्यके मारी २३
सत्यपराक्रमी महारथी द्रोण क्रोधमें भरगये और तीखे बाण मार-
कर उसकी गदाके खण्ड २ कर डाले ॥ २४ ॥ नरोंमें व्याघ्र समान
धृष्टद्युम्नने देखा, कि-द्रोणाचार्यने बाण मारकर गदाके खण्ड २
कर डाले हैं तब तो पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नने सौ फुल्लियोंवाली
चमकती हुई निर्मल तलवार बाहर निकाली और यह समझा,
कि-मुख्य आचार्य महात्मा द्रोणाचार्यके वधका समय समीप
आ गया है ॥ २५-२६ ॥ महादुष्कर कर्म करनेकी इच्छासे सौ
फुल्लियोंवाली चमकती हुई तलवार ऊँची करके धृष्टद्युम्न अपने
रथकी ईषापरसे द्रोणाचार्यके रथकी ईषापर चला गया और रथकी

भारद्वाजस्य संयुगे ॥ २८ ॥ सोऽतिष्ठ युगमध्ये वै युगसन्नहनेषु च ।
जघनार्द्धेषु क्षाश्वानां तत् सैन्याः समपूजयन् ॥ २९ ॥ तिष्ठतो
युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः । नापश्यदन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवा-
भवत् ॥ ३० ॥ क्षिप्रं रथेनस्य चरतो यथैवापि पृष्ठदिनः । तद्वदा-
सीदभीक्षारो द्रोणपार्षतयो रणे ॥ ३१ ॥ तस्य पारावतानश्व-
त्रथशक्त्या पराभिनत् । सर्वानेकैकशो द्रोणो रक्तानश्वान्विवर्ज-
यन् ॥ ३२ ॥ ते हता न्यपतन् भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः । शोणास्तु
पर्यमुच्यन्त रथबन्धादिशाम्पते ॥ ३३ ॥ तान् हयान्निहतान्
दृष्ट्वा द्विजाग्रेण स पार्षतः । नामृष्यत युष्मां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महा-
रथः ॥ ३४ ॥ विरथः स गृहीत्वा तु खड्गं खड्गभृताम्बरः ॥ द्रोणम-

छत्रीमें बैठेहुए द्रोणाचार्यके पास पहुँचकर उनकी छातीको चीर
ढालना चाहनेलगा ॥ २७-२८ ॥ वह जुएके मध्यभागमें, घोड़ोंके
कन्धोंपर तथा जाँघोंके आधेभाग पर खड़ा होगया, उसकी इस
फुरतीको देखकर सैनिक उसकी सराहना करनेलगे ॥ २९ ॥
धृष्टद्युम्न जुएके किनारे पर तथा लाल घोड़ोंकी पीठपर इसमकार
खड़ा था, कि-द्रोणाचार्यको उसके मारनेका अवसर ही नहीं मिला,
उसका यह काम बड़े अचरजका हुआ था ॥ ३० ॥ जैसे दो बाज
मांसकी इच्छासे आपसमें मारापार करते हैं तैसे ही रणभूमिमें
द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें चोटें होनेलगीं ॥ ३१ ॥ द्रोणाचार्यने
रथशक्ति मारकर धृष्टद्युम्नके कन्धतरकेसे रङ्गके सब घोड़ोंको
मारढाला और अपने लाज रङ्गके घोड़ोंको वनालिथा ३२ हेराजन् !
धृष्टद्युम्नके घोड़े मरकर पृथिवी पर गिरगये और द्रोणके लाल
रङ्गके घोड़े रथके बन्धनमेंसे छुटगये ॥ ३३ ॥ महात्मा द्रोणाचार्यने
मेरे घोड़ोंको मारढाला यह देखकर योधाओंमें श्रेष्ठ मानाजानेवाला
महारथी धृष्टद्युम्न इस बातको सह नहीं सका ॥ ३४ ॥ रथसे
हीन हुआ खड्गधारियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न तुरन्त ही तलवार लेकर

भ्यपतद्राजन् वैनतेय इवोरगम् ॥३५॥ तस्य रूपं बभौ राजन् भार-
द्राजं जिघांसतः । यथा रूपं पुरा विष्णोर्हिरण्यकशिपोर्वधे ॥३६॥
स तदा विविधान् मार्गान् प्रवरारचैकविंशतिम् । दर्शयामास कौरव्य
पार्षतो विचरन्नये ॥ ३७ ॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमासुतं प्रसृतं
सृतम् । परिवृत्तं निवृत्तञ्च खड्गं चर्म च धारयन् ॥३८॥ संपातं
समुदीर्णञ्च दर्शयामास पार्षतः । भारतं कौशिकञ्चैव सात्वतं चैव
शिक्षया । ३९॥ दर्शयन्नचरद्युद्धे द्रोणस्यान्तचिकीषेया । चरतरतस्य
तन्मार्गान् विचित्रान् खड्गचर्मिणः ॥४०॥ व्यस्मयन्त रणे योधा
देवताश्च समागताः । ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ॥४१॥
खड्गञ्चर्म च सम्बधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः । ये तु वैतस्तिका नाम

जैसे गरुड साँपके ऊपर दौड़ता है तैसे ही द्रोणचार्यके ऊपरको
दौड़ा ॥३५॥ हे राजन् ! उस समय जैसे पहले हिरण्यकशिपुका
वध करते समय विष्णु भगवानने शोभा पायी थी तैसे ही इस
समय धृष्टद्युम्न भी शोभा पाने लगा ॥३६॥ हे कुरुवंशी राजन् !
धृष्टद्युम्न इस समय तलवार और ढाल लेकर द्रोणको मारनेके
लिये रणमें कूदता हुआ फिरने लगा उसने भ्रान्त (तलवारको
गोलाकारसे घुमाना) उद्भ्रान्त (हाथ ऊँचा करके तलवारको
घुमाना) आविद्ध (अपने शरीरके आसपास तलवारको गोला-
कारसे घुमाना) आसुत (वैरीको दवानेके लिये जाना) प्रसृत
(तलवारकी नोकसे वैरीके शरीरको छूना) सृत (वैरीको
धोखा देकर उसके शरीर पर शस्त्र मारना) परिवृत्त (वैरीको
दायें बायें करवटमें पहुँचना) निवृत्त (पीछेको पैर करके घूमना)
संपात (सोमनेसे प्रहार करना) समुदीर्ण (लड़ाईमें अपनी
अधिकता दिखाना) भारत (अङ्ग प्रत्यङ्ग भागोंमें घूमना) कौशिक
(विचित्र रूपसे तलवारको घुमाकर दिखाना) और सात्वत
(छुपकर ढाल पर तलवारका प्रहार करना) आदि मुख्य हकीस

शरां ह्यासन्नयोधिनः ॥४२॥ निहृष्टयुद्धे द्रोणस्य नान्येषां सन्ति ते शराः । ऋते शारद्वनात् पार्थाद्व द्रौण्यैर्वैकर्त्तनात्तथा ॥४३॥ प्रद्युम्न-युधुधानाभ्यामभिपन्नयोश्च भारत । अथास्येषु सपाधत्त दृढं परम-सम्मतम् ॥ ४४ ॥ अन्तेवासिनमाचार्यो निर्घासुः पुत्रसम्पितम् । तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुङ्गवः ॥ ४५ ॥ पश्यन्स्तत्र पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः । ग्रस्तमाचार्यमुत्थयेन धृष्टद्युम्न-ममोचयत् ॥ ४६ ॥ चरन्तं रथमार्गेषु सात्यकिं सत्यविक्रमम् । द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्यापि च भारत ॥ ४७ ॥ अपश्यतां महा-

प्रकारकी तलवारको घुमानेकी कलायें भी शिक्षाके अनुसार दिखाई थीं और रणमें ढाल तलवार लेकर विचित्र रीतिसे बहुत ही घूमा था, उसको रणभूमिमें घूमते देखकर दर्शकरूपसे इकट्ठे हुए देवता और योधा बड़े ही आश्चर्यमें हो रहे थे, परन्तु द्रोणाचार्यने वितस्त नामके एक विलस्त लंबे हजार बाण मारकर धृष्टद्युम्नकी शतचन्द्र नामकी तलवारके तथा ढालके खंडर कर डाले, वितस्त नामके बाण सभीपसे युद्ध करनेके काममें उपयोगी होते हैं, वे बाण द्रोणाचार्यके पास थे, हे भरतवंशी राजन् ! द्रोण, अर्जुन, अश्वत्थामा, कर्ण, प्रद्युम्न, युधुधान और अभिमन्युके सिवाय दूसरे किसीके पास ऐसे बाण नहीं थे, द्रोणने वे बाण मारकर धृष्टद्युम्नको पीड़ित करना आरम्भ कर दिया और फिर अपने शिष्य तथा पुत्रसमान धृष्टद्युम्नको ठौर मार डालनेकी इच्छासे अत्यन्त मान्य दृढ़ बाण धनुष पर चढ़ाया, परन्तु इतनेमें ही सात्यकीने दश तेज बाण मारकर उस बाणके खण्ड २ कर डाले ॥३७-४५॥ और तुम्हारे पुत्र दुर्योधन तथा कर्णके सामने द्रोणाचार्यके घत्रहाइयें डाले हुए धृष्टद्युम्नको बचा दिया ॥४६॥ हे भरतवंशी राजन् ! इस समय सत्यपराक्रमी सात्यकी, द्रोण, कर्ण तथा कृपाचार्यके बीचमें रथकी चालें दिखाता हुआ घूम रहा

त्मानो विश्वक्सेनधनञ्जयौ । अपूजयेतां वाष्ण्यं ब्रुवाणौ साधु-
साध्विति ॥ ४८ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वेषां युधि निघ्नन्तमच्यु-
तम् । अभिपत्य ततः सेनां विश्वक्सेनधनञ्जयौ ॥ ४९ ॥ धन-
ञ्जयस्ततः कृष्णमब्रवीत् पश्य केशव । आचार्यरथमुख्यानां मध्ये
कीडन्मधूदहः ॥ ५० ॥ आनन्दयति मां भूयः सात्यकिः सत्य-
विक्रमः । माद्रीपुत्रौ च भीष्मञ्च राजानञ्च युधिष्ठिरम् ॥ ५१ ॥
यच्छिन्नयानुद्धतः सन् रणे चरति सात्यकिः । महारथानुपकीडन्
कृष्णीनां कीर्तिवर्धनः ॥ ५२ ॥ तमेते प्रतिनन्दन्ति सिद्धाः सैन्याश्च
विस्मिताः । अजेयं समरे दृष्ट्वा साधु साध्विति सात्वतम् । योधा-
श्रोमयतः सर्वे कर्मभिः समपूजयन् ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलधुदे

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

था ॥ ४७ ॥ रथके भागीमें घूमते तथा युद्धमें सर्वोंके दिव्य अस्त्रोंको
तह करतें हुए धैर्यधारी सात्यकीको देखकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन
धन्य धन्य कहकर उसको धन्यवाद दे रहे थे, श्रीकृष्ण और अर्जुन
सेनाके समीपमें आगये तथा अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि-
हे केशव! शत्रुओंका संहार करनेवाला मधुवंशी सात्यकी द्रोणाचार्य
आदिके रथोंके आगे घूम रहा है, और युधे, धर्मराजको, भीष्मको,
नकुलको तथा सहदेवको आनन्द दे रहा है (इसको देखिये)
जिस शिक्षासे नम्रतानाता और कृष्णवंशकी कीर्तिको बढ़ाने
वाला सात्यकी महारथियोंको खिलाता हुआ रणमें खूब घूम रहा
है ॥ ४८-५२ और ये सिद्ध पुरुष तथा सेनायें अचरजमें होकर
रणमें सात्यकीको अजेय समझते हुए, ठीक है, ठीक है, कहकर
धन्यवाद दे रहे हैं और दोनों ओरके योधा सात्यकिके पराक्रमोंकी
सराहना कर रहे हैं, यह देखकर युधे बड़ा ही हर्ष होता है ५३
एक सौ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६१ ॥

सञ्जय उवाच । सात्वतस्य तु तत्कर्म दृष्ट्वा दुर्योधनादयः ।
 शैनेयं सर्वतः क्रुद्धा वारयामासुरञ्जसा ॥ १ ॥ कृपः कर्णोऽथ
 समरे तव पुत्राश्च मारिष । शैनेयं त्वरयाभ्येत्य विनिघ्नन् निशितैः
 शरैः ॥ २ ॥ युधिष्ठिरस्ततो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ । भीम-
 सेनश्च बलवान् सात्वतं पर्यवारयन् ॥ ३ ॥ कर्णश्च शरवर्षेण
 गौतमश्च महारथः । दुर्योधनादयश्चैव शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ४ ॥
 तौ वृष्टिं सहसा राजन्नुत्थितां घोररूपिणीम् । वारयापास शैनेयो
 योधयस्तान्महारथान् ॥ ५ ॥ तेषामस्त्राणि दिव्यानि संहितानि
 महात्मनाम् । वारयामास विधिवद्विष्णुस्त्रैर्महामृधे ॥ ६ ॥ क्रू-
 मायोधनं जज्ञे तस्मिन् राजसमागमे । रुद्रस्त्वैव हि क्रुद्धस्य निघ्नत-

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! दुर्योधन आदि योधा सात्वत-
 वंशी वीर पुरुषके पराक्रमको देखकर तुरन्त क्रोधमें भूगये और
 उन्होंने चारों ओरसे शिनिके पौत्र सात्यकीको घेरलिया ॥ १ ॥
 हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रोंने, कृपाचार्यने और कर्णने इस लड़ाईमें
 शीघ्रतासे सात्यकिके ऊपर धावा किया और उसके तेज किये
 हुए बाण मारने लगे ॥ २ ॥ यह सब देखकर राजा युधिष्ठिर
 नकुल, सहदेव और बलवान् भीमसेन, सात्यकीकी रक्षा करनेके
 लिये उसके चारों ओर आगये ॥ ३ ॥ और जैसे २ पाण्डव
 सात्यकीकी रक्षा करनेके लिये चारों ओर घूमनेलगे, तैसे २ कर्ण,
 महारथी कृपाचार्य और दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्र बाणोंकी वर्षा
 करके सात्यकीको ढकने लगे ॥ ४ ॥ परन्तु हे राजन् ! सात्यकीने
 उन सब महारथियोंके साथ लड़ाई कर, अपने ऊपर होनेवाली
 बाण-वर्षासे एकसाथ छिन्नभिन्न करवाली ॥ ५ ॥ उस महा-
 संग्राममें उन महात्माओंके छोड़े हुए अनेक प्रकारके दिव्य अस्त्रोंको
 पीछेको हटादिया ॥ ६ ॥ जैसे पहले कोपमें भरेहुए रुद्रने पशुओंको
 संहार किया था तैसे ही इस समय राजाओंने आपसका संहार

स्तान् पशुन् पुरा ॥ ७ ॥ हस्तानामुत्तमाङ्गानां कामुकाणाञ्च
 भारत । छत्राणांश्चापविद्धानां चामराणाञ्च सञ्चयैः ॥ ८ ॥ राशयः
 स्म व्यदृश्यन्त तत्र तत्र रणाजिरे । भयनकै रथैश्चापि पतितैश्च
 महाभुजैः ॥ ९ ॥ सादिभिश्च हतैः शूरैः सङ्कीर्णा वसुधाभवत् ।
 पाणपातनिकृत्तास्तु योधास्ते कुरुसचाम ॥ १० ॥ चेष्टन्तो विवि-
 धाश्चेष्टा व्यदृश्यन्त महाहवे । वर्त्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरो-
 पमे ॥ ११ ॥ अब्रवीत् क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः । अभि-
 द्रवत संयत्ताः कुम्भयोनिं महारथाः ॥ १२ ॥ एषो हि पार्षतो
 वीरो भारद्वाजेन सङ्गतः । घट्ते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य
 नाशने ॥ १३ ॥ यादृशानि हि रूपाणि दृश्यन्ते स्म महारणे ।
 अद्य द्रोणञ्च संकृद्धः पातयिष्यति पार्षतः ॥ १४ ॥ ते यूयं
 सहिता भूत्वा युध्यध्वं कुम्भसम्भवम् । युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सज्ज-

करडाला ॥ ७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! रणभूमिमें कटे हुए हाथ,
 शिर, घनुष, बाणोंसे टूटे पड़े हुए छत्रोंके तथा चामरोंके ढेर-
 टूटे हुए रथोंके पहिये, टूटी पड़ी हुई बड़ी २ ध्वजायें, मरे हुए
 घुडसवार और शूरोंमे रणभूमि खचाखच भर गई थी, हे कुरुवंशमें
 श्रेष्ठ राजन् ! बाणोंके महारोंसे कटे हुए योधा रणभूमिमें अनेकों
 प्रकारकी चेष्टायें करते हुए दीख रहे थे, इस प्रकार देवासुर संग्राम
 की समान महाघोर युद्ध चल रहा था, उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने
 लड़नेवाले क्षत्रियोंसे कहा, कि हे महारथियों ! तुम सब रणमें तयार
 होकर द्रोणाचार्यके ऊपर धावा बोल दो ॥ ८-१२ ॥ वीर धृष्टद्युम्न
 द्रोणाचार्यके साथ युद्ध कर रहा है, वह द्रोणाचार्यको नाश करनेके
 लिये यथाशक्ति उद्योग कर रहा है ॥ १३ ॥ और उसके रूपको देखकर
 मालूम होता है, कि-कोपमें भरा हुआ धृष्टद्युम्न आज रणमें द्रोणा-
 चार्यको अवश्य ही मार डालेगा ॥ १४ ॥ इसलिये तुम सब इकट्ठे
 होकर द्रोणके साथ लड़ो, युधिष्ठिरके ऐसी आज्ञा देते ही सज्ज

यानां महारथाः ॥ १५ ॥ अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजं जिघां-
 सवः । तान् समापततः सर्वान् भारद्वाजो महारथः ॥ १६ ॥
 अभ्यवर्त्तत वेगेन मर्त्तव्यमिति निश्चितः । प्रयाते सत्यसन्धे तु
 समकम्पत मेदिनी ॥ १७ ॥ बभ्रुर्वाताः सनिर्घातास्त्रासयाना वरू-
 थिनीम् । पपात महती चोन्का आदित्याग्निश्चरन्त्युत ॥ १८ ॥
 दीपयन्ती उभे सेने शंसंतीव महद्भयम् । जज्वलुश्चैव शस्त्राणि
 भारद्वाजस्य मारिप ॥ १९ ॥ रथाः स्वनन्ति चात्यर्थं हयारचा-
 श्रूयपातयन् । हतौजा इव चाप्यासीद्भारद्वाजो महारथः ॥ २० ॥
 प्रास्फुरन्नयनञ्चास्य वापवाहुस्तथैव च । विमनस्कोऽभवद्युद्धे दृष्ट्वा
 पार्षतमग्रतः ॥ २१ ॥ ऋषीणां ब्रह्मवादानां स्वर्गस्य गमनं प्रति ।
 सुयुद्धेन ततः प्राणानुत्सृष्टुमुपचकमे ॥ २२ ॥ ततश्चतुर्दिशं सैन्यै-

राजाओंके महारथी तयार होगये और द्रोणका नाश करनेकी
 इच्छासे उनके सामने जाडटे, सत्य प्रतिज्ञा वाले महारथी द्रोणा-
 चार्य भी प्राण देनेका निश्चय करके उन महारथियोंके सामने लड़ने
 को आगये, इस समय पृथ्वी डगमगाने लगी, वज्रकी समान घोर
 शब्द करते हुए तीखे पवन सेनाको भय देते हुए चलने लगे, सूर्य-
 मण्डलमेंसे बड़े-उके निकल कर पृथ्वी पर गिरने लगे १५-१८
 उन्होंने दोनों सेनाओंमें उजाला करदिया और द्रोणाचार्यके शस्त्र
 महाभय दिखाते हुए प्रज्वलित होउठे रथोंकी बड़ी भारी धरधराहट
 होने लगी, घोड़ोंकी आँखोंमेंसे आँसू टपकने लगे और महारथी
 द्रोणाचार्य मानो बलरहित होगये हों ऐसे दीखने लगे ॥ १९ ॥
 उनकी बाईं आँख और बायाँ हाथ फड़कने लगा तथा रणभूमि
 में धृष्टद्युम्नको देखकर वह उदास होगये ॥ २१ ॥ वह ऋषियोंके
 वेद समान वचनोंको याद करके स्वर्गमें जानेके लिये उत्तम प्रकार
 के युद्धसे प्राण त्यागनेको तयार हो गए ॥ २२ ॥ इतनेमें ही
 उस द्रुपदके पुत्रकी सेनाने द्रोणको चारों ओरसे घेर लिया और

दुर्पदस्योभिसंवृतः । निर्दहन् क्षत्रियब्रातान् द्रोणः पर्यचरद्रणो २३
हत्वा विंशतिसाहस्रान् क्षत्रियानरिमर्दनः । दशशुतानि तीक्ष्णा-
ग्रैरवधीद्विशिखैः शितैः ॥२४॥ सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूमोऽग्नि-
रिव ज्वलन् । क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममस्त्रं समास्थितः ॥ २५ ॥
पाञ्चाल्यं त्रिरथं भीमो हतसर्वायुधं बलम् । सुविपण्यं महात्मानं
त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ २६ ॥ ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्य-
मरिमर्दनः । अब्रवीदभिसम्प्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिक्रात् ॥ २७ ॥
न त्वदन्य इहाचार्यं योद्धुस्तुसहते पुमान् । त्वरस्व प्राग्बधायैव
त्वयि भारः समाहितः ॥ २८ ॥ स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभार-
सहं धनुः । अभिपत्याददे क्षत्रियायुधप्रवरं दृढम् ॥२९॥ संरन्धश्च

द्रोणभी क्षत्रियोंके टोलोंका संहार करते हुए रणमें धूमने लगे २३
वैरियोंका संहार करने वाले द्रोणने इस लड़ाईमें बाण मारकर
बीस हजार क्षत्रियोंका संहार कर डाला तथा एक हजार हाथियों
को तेज बाणोंसे मार डाला ॥२४॥ इस समय द्रोणाचार्य रणमें
उद्यत होकर निर्धूम अग्निकी समान दमक रहे थे, जब उन्होंने
क्षत्रियोंका संहार करनेके लिये ब्रह्मास्त्र उठाया ॥ २५ ॥ उस
समय महात्मा धृष्टद्युम्न रणमें बिना रथके खड़ा था, उसके सब
आयुध निबडगये थे और वह बहुत ही उदास हो रहा था (परन्तु
इस अनीके समय) भीमसेन दौड़ा उसके पास आ पहुँचा ॥ २६ ॥
और धृष्टद्युम्नको अपने रथमें बैठा ले कर, समीपमें ही बाणोंकी
वर्षा करते हुए द्रोणाचार्यकी ओरको देखकर धृष्टद्युम्नसे कहा,
कि-॥ २७ ॥ हे धृष्टद्युम्न ! तेरे सिवाय दूसरा कोई पुरुष भी
द्रोणाचार्यके साथ नहीं लड़सकता, अब तू शीघ्रतासे इनका नाश
कर, द्रोणाचार्यको मारनेका भार तेरे ऊपर ही है ॥ २८ ॥ भीम
की इस बातको सुनकर महाबाहु धृष्टद्युम्नने क्रोधसे भरकर, सब
भारको सहने वाला, दृढ़ और वेगवाला धनुष हाथमें लिया और

शरानस्यन् द्रोणं दुर्वारणं रणे । विवारयिषुराचार्य शरवर्षैरवा-
 किरत् ॥ ३० ॥ तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ सरब्धौ रणशोभिनौ ।
 उदीरयेतां ब्राह्मणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ॥ ३१ ॥ स महा-
 स्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद्रणे । निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भार-
 द्वाजस्य पार्षतः ॥ ३२ ॥ स वशातीर शिबीरचैव बाह्लिकान् कौर-
 वानपि । रक्षिष्यमाणान् संग्रामे द्रोणं व्यधमदक्षुतः ॥ ३३ ॥
 धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् गभस्तिभिरिवांशुमान् । वभौ प्रच्छादय-
 न्नाशाः शरजालैः समन्ततः ॥ ३४ ॥ तस्य द्रोणो धनुश्छित्वा
 विध्वा चैनं शिलीमुखैः । मर्माण्यभ्यहनद्गुणः स व्यथां परमाप-
 गात् ॥ ३५ ॥ ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याश्लिष्य तं रथम् ।
 शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ यदि नाम न

जिनको युद्धमें पीछेको नहीं हटाया जासकता था ऐसे द्रोणको
 रणमेंसे पीछेको हटानेकी इच्छासे उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना
 आरम्भ कर दिया ॥ २९-३० ॥ क्रोधमें भरे और रणमें दिपते
 हुए वे दोनों योधा एक दूसरेके ब्रह्मास्त्र मार रहे थे ॥ ३१ ॥
 हे महाराज ! धृष्टद्युम्नने वहे २ अस्त्रोंका प्रहार करके इस मारा-
 मारमें द्रोणाचार्यको ढक दिया और उनके सब अस्त्रोंके खंड २ कर
 डाले ॥ ३२ ॥ तथा वसाती, शिबी, बाह्लीक और कौरव, जो कि-
 संग्राममें द्रोणाचार्यकी रक्षा कर रहे थे उनके भी बाण मारे ३३
 हे राजन् ! इस समय दशों दिशाओंको बाणोंसे ढकता हुआ
 धृष्टद्युम्न किरणोंसे दिशाओंको उज्ज्वल करते हुए सूर्यकी
 समान प्रकाशित हो रहा था ॥ ३४ ॥ फिर द्रोणाचार्यने बाण
 मारकर धृष्टद्युम्नके धनुषको काट डाला, और उसके मर्मस्थानों
 को घायल कर दिया इससे उसको बड़ा पीड़ा होने लगी ॥ ३५ ॥
 फिर दृढ क्रोध वाले भीमसेनने द्रोणके रथके पास जाकर धीरेसे
 यह बात कही, कि-हे आचार्य ! यदि अस्त्रविद्यामें चतुर नीच

युध्येरब्धिक्षिता ब्रह्मबन्धवः । स्वकर्मभिरसन्तुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं
 ब्रजेत् ॥ ३७ ॥ अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः । तस्य च
 ब्राह्मणो मूलं भवान् हि ब्रह्मविचामः ॥ ३८ ॥ शत्रूपाकवन्म्लेच्छ-
 गणान् हत्वा चान्यान् पृथग्विधान् । अज्ञानान्मूढवद् ब्रह्मन् पुत्र-
 दारधनेप्सया ॥ ३९ ॥ एकस्यार्थे बहून् हत्वा पुत्रस्याधर्मविधया ।
 स्वकर्मस्थान् विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम् ॥ ४० ॥ यस्यार्थे
 शास्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि । स चाद्य पतितः शेते पृष्टेना-
 वेदितस्तव ॥ ४१ ॥ धर्मराजस्य तद्वाक्यं नाभिश्छिदुर्महसि । एव-
 मुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद्वनुः ॥ ४२ ॥ सर्वाण्यस्त्राणि

ब्राह्मण अपने काममें असन्तुष्ट होकर न लड़ें तो इस प्रकार
 क्षत्रियोंका नाश न हो ॥ ३६-३७ ॥ सकल माणियोंकी हिंसा न
 करना, इसको शास्त्रवेत्ता महान् धर्म मानते हैं, ब्राह्मण उस अहिंसा
 धर्मकी मूल हैं और आप तो उन वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो अर्थात्
 ब्रह्मज्ञान करानेका काम आपके अधीन है ॥ ३८ ॥ परन्तु
 हे ब्राह्मण ! तुमने तो पुत्र और स्त्रीके लिये धन इकट्ठा करनेकी
 इच्छासे चाण्डालकी समान, अपने २ धर्मपर चलने वाले अनेकों
 म्लेच्छोंको तथा अनेकों राजाओंको मूढकी समान मोहके बशमें
 होकर मार डाला है ॥ ३९ ॥ एक पुत्रके लिये अधर्मसे भरी हुई
 विद्याके द्वारा अर्थात् क्षत्रियवृत्तिसे क्षत्रियधर्मका वर्तव्य करनेवाले
 क्षत्रियोंको तुमने मार डाला है और मार डालनारूप हिंसाको तुम
 अपना धर्म मान बैठे हो, इस बातसे तुम्हें लज्जा क्यों नहीं
 आती ? ॥ ४० ॥ तुम जिसके लिये शस्त्र उठाकर लड़ रहे हो,
 जिसके लिये जीर रहे हो, वह तो आज मराहुआ पृथ्वी पर सो
 रहा है जिसकी तुम्हें खबर भी नहीं है ॥ ४१ ॥ धर्मराजने तुमसे
 यही बात कही थी, कि-जिस पर तुम्हें सन्देह नहीं करना चाहिये
 था, भीमसेनके ऐसा कहने पर धर्मात्मा द्रोणाचार्यने धनुषको

धर्मात्मा हातु तामोऽभ्यभाषत । कर्णं कर्णं महेश्वास कृपं दुर्योध-
नेति च ॥ ४३ ॥ सग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीन्मयेष पुनः पुनः । पाण्ड-
वेभ्यः शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्थजाम्यहम् ॥ ४४ ॥ इति तत्र महा-
राज प्राक्रोशद् द्रोणिमेव च । उत्पृज्य च रणे शस्त्रं रथोपरस्थे निवि-
श्य च ॥ ४५ ॥ अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान् । तस्य
तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥ सशरं तद्धनुर्वीरं
संन्यस्यास्थ रथे ततः । खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्य-
यात् ॥ ४७ ॥ हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च । द्रोणं
तथा गतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशङ्गतम् ॥ ४८ ॥ हाहाकारं भृशञ्चक्रु-
रहो धिगिति चाब्रुवन् । द्रोणोऽपि शस्त्रायुत्पृज्य परम साख्य-
मास्थितः ॥ ४९ ॥ तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः ।

नीचे डाल दिया ॥ ४२ ॥ फिर भरद्वाजके पतिजात्मा पुत्र, सब
शस्त्रोंके त्याग देनेकी इच्छासे कहने लगे, कि-हे कर्ण !
ओ कर्ण ! और हे कृप ! हे दुर्योधन ! तुमसे वार-कहता हूँ, कि-
तुमसंग्रामके लिये उद्योग करो और पाण्डवोंकी ओरसे तुम्हारा
कल्याण हो, मैं अब शस्त्रोंका त्याग करता हूँ ॥ ४३ ४४ ॥ हे महा-
राज! महापुत्रधारी द्रोणाचार्यने ऐसा कहकर हाथमेंके शस्त्रको फेंक
दिया, फिर वह अश्वत्थामा का नाम लेकर पुगारने लगे और रथ
धी बैठक पर योग साधनेके लिये चित्तको स्थिर करके बैठ गये ४५
और सब प्राणियोंको अभयदान दिया, प्रतापी धृष्टद्युम्नने द्रोणा
चार्यके इस अवसरसे लाभ उठाया, हाथमेंके घोर धनुषको रथमें
डाल दिया और नङ्गी तलवारले कूदकर रथमेंसे नीचे उतर पडा
तथा एक सण्टेमें द्रोणाचार्यके पास जा पहुँचा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥
धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको घेर लिया, यह देखकर मनुष्य तथा दूसरे
प्राणी हाहाकार करने लगे ॥ ४८ ॥ और धृष्टद्युम्नको धिक्कारके
वचन कहने लगे, इतर महातेजस्वी द्रोणाचार्यने 'तथास्तु' कह शस्त्र-

पुराणं पुरुषं विष्णुं जगाम मनसा परम् ५० ध्रुवं किञ्चित् समुन्नाम्य
विष्टम्पं डरमग्रतः। निमीलितान्नः सत्त्वतो निक्षिप्य हृदि धारणम् ५१
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः। स्मरित्वा देवदेवेश-
मन्तरं परमं प्रभुम् ॥ ५२ ॥ दिवमाक्रामदाचार्यः साक्षात् सद्भि-
दुराक्रमाम्। द्रौ सूर्याविति नो बुद्धिरासीत्स्मिस्तथा गते ॥ ५३ ॥
एकाग्रमिव चामीच्च ज्योतिर्भिः पूरितं नभः। समपद्यत चार्काभे
भारद्वाजदिवाकरे ॥ ५४ ॥ निमेषमात्रेण च तज्ज्योतिरन्तरधी-
यत। आसीत् किलकिलाशब्दः महृष्टानां दिवौकसाम् ॥ ५५ ॥
ब्रह्मलोकं गते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते। वयमेव तदाद्राक्ष्ये पञ्च

को त्यागकर ज्ञानस्वरूपका आश्रय किया और योगके बलसे तेजो-
मय मूर्ति धारण करके सनातन पुराणपुरुष विष्णुका मनमें ध्यान
करने लगे ॥ ४६ ॥ ५० ॥ ज्योतिःस्वरूपा महायशस्वी द्रोणाचार्यने
अगले भागमेंसे सुखको जरा ऊँचा किया, वक्षःस्थलको स्थिर
किया, आँखें भीचलीं और अन्तःकरणमेंके विषयोंको दूरकरके
हृदयमें धीरज धर, सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्त्ता, देवदेवेश,
ॐकाररूपा, एकाक्षर परब्रह्मका स्मरण करके पूर्वोक्त अप्रिमण्डली
के साथ, सत्पुरुषोंको भी दुर्लभ ऐसे स्वर्ग-लोकमें पाण्डव
और कौरवोंके गुरु द्रोणाचार्य पधारगये, हे महाराज ! ज्योतिः-
स्वरूप द्रोण जिस समय स्वर्गको जानेलगे उस समय आकाशमें
मानो दो सूर्य उदय हो रहे हों ऐसा हमारे देखनेमें आया सूर्य भी
समान तेजस्वी द्रोणरूपा सूर्य जिस समय आकाशकी ओरको जाने
लगे, उस समय तेजसे भराहुआ आकाश तेजोमय होगया
था ॥ ५१-५४ ॥ द्रोणके मरणके समय सूर्यका प्रकाश अधिक
था, परन्तु निमेषमात्रमें सूर्यका प्रकाश अदृश्य होगया, द्रोणाचार्य
ब्रह्मलोकमें चलेगये, धृष्टद्युम्न मृत होगया, देवता मनमें बड़े ही
प्रसन्न होकर हर्ष और गर्जना करने लगे, हे महाराज ! योगयुक्त

मानुषयोनयः ॥ ५६ ॥ योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमाद्भुतम् ।
 अहं धनञ्जयः पार्थो कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ५७ ॥ वासुदेवश्च
 बाष्पेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः । अन्ये तु सर्वे नापश्यन् भारद्वाजस्य
 धीमतः ॥ ५८ ॥ महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः । ब्रह्म-
 लोकं महद्दिव्यं देवगुह्यं हि तत्परम् ॥ ५९ ॥ गतिं परमिकां प्राप्त-
 मजानन्तो नृयोनयः । नापश्यन् गच्छमानं हि तं सार्द्धमृषिपुङ्गवैः ६०
 आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकमरिन्दमम् । वितुर्नागं शरव्रातै-
 र्न्यस्तायुधमस्रक्चारम् ॥ ६१ ॥ धिक्कृतः पार्षनस्तन्तु सर्वभूतैः
 परामृशत् । तस्य मूर्ध्ना नमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहतः ॥ ६२ ॥
 किञ्चिदब्रुवतः कायाद्विचकर्त्तासिना शिरः । हर्षेण महता युक्तो
 भारद्वाजे निपातिते ॥ ६३ ॥ सिंहनादरवञ्चक्रे भ्रामयन् खड्ग-

महात्मा द्रोणाचार्य जिस समय परमगतिको प्राप्त हुए उस समय
 सब मनुष्योंमें केवल मैं, कुन्तीका पुत्र अर्जुन, शारद्वानके पुत्र
 कृपाचार्य, वृष्णिपुत्र वासुदेव, और धर्मपुत्र युधिष्ठिर इन पाँच ही
 मनुष्यजातिके पुरुषोंको उनकी दर्शन हुआ था, जिनको देवता भी
 नहीं जानसके ऐसे परब्रह्मके लोकमें जानेवाले योगयुक्त बुद्धिमान्
 द्रोणाचार्यकी महिमाको दूसरा कोई पुरुष भी नहीं जानसका था,
 शत्रुओंका दमन करनेवाले आचार्य द्रोण परमगतिको प्राप्त होगये,
 इस बातको न जाननेवाले मनुष्य, द्रोणाचार्य योगबलसे महान्
 ऋषियोंके साथ ब्रह्मलोकको चलेगये यह नहीं देखसके थे ५५-६०
 इस समय धृष्टद्युम्नने बाणोंसे बिंधेहुए, शस्त्रोंको त्याग देनेवाले
 और रुधिर टपकानेवाले द्रोणके शरीरको पकड़लिया, इस बातको
 देखकर सब लोग उसको धिक्कार देनेलगे ॥६०॥ फिर धृष्टद्युम्नने
 बाण और बाणीरहित हुए द्रोणाचार्यके मस्तकको पकड़कर तलवार
 से काटलिया और बड़े हर्षमें भरगया तथा रणभूमिमें तलवारको
 घुमाता २ सिंहकी समान गर्जना करनेलगा, द्रोणाचार्यका शरीर

माहवे । आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ॥६४॥ त्वत्कृते
व्यचरत् संख्ये स तु षोडशवर्षभत् । उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो
धनञ्जयः ॥ ६५ ॥ जीवन्तमानयाचार्य मा वधीद्रुपदात्मज । न
हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह ॥ ६६ ॥ उत्क्रोशन्नर्जुन-
श्चैव सानुक्रोशस्तमाद्रवत् । क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च
सर्वशः ॥ ६७ ॥ धृष्टद्युम्नोऽवधीद् द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् ।
शोणितेन परिक्लिन्नो रथाद्भूमिमापतत् ॥ ६८ ॥ लोहिताङ्ग
इन्द्रादित्यो दुर्दर्पः समपद्यत । एवं तं निहतं संख्ये ददृशे सैनिको
जनः ॥ ६९ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु तद्राजन् भारद्वाजशिरोऽहत् । ताव-
कानां महेश्वासः प्रमुखे तत्समाक्षिपत् ॥ ७० ॥ ते तु दृष्ट्वा शिरो
राजन् भारद्वाजस्य तावकाः । पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतो

श्याम रङ्गका था, कानों तक के बाल सफेद होगये थे और पिचासी
वर्षकी अवस्था थी, तो भी वह तुम्हारे लिये युद्धमें सोलह वर्षके
पुरुषकी समान घूमते थे, जिससमय धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यको मारनेको
उद्यत हुआ उस समय महाभुज अर्जुनने कहा था, कि-अरे द्रुपदकुमार!
तू आचार्यको जीता हुआ पकड़ ले आना, मारना नहीं, सैनिकोंने
भी जोरसे पुकारकर कहा था, कि-तू आचार्यको मारना नहीं !
मारना नहीं ॥६२-६६॥ अर्जुन तो चिल्लाता २ धृष्टद्युम्नके पीछे
भी दौड़ा, इसप्रकार अर्जुन और दूसरे राजे चिल्लाते ही रहगये
और धृष्टद्युम्नने रथमें बैठे हुए महात्मा द्रोणको मार डाला, द्रोण
रुधिरसे भीग कर रथमेंसे नीचे गिर पड़े ॥६७-६८॥ उस समय
द्रोण लाल २ शरीरवाले सूर्यकी समान अपने तेजसे चौंथाये देते
थे, योधाओंने इसप्रकार रणमें द्रोणको मरा हुआ देखा ॥ ३६ ॥
द्रोणके मर जाने पर महाभुजधारी धृष्टद्युम्नने उनके मस्तकको
उछाल कर तुम्हारे पुत्रोंके सामने फेंक दिया ॥ ७० ॥ तुम्हारे पुत्र
और योधा द्रोणाचार्यके मस्तकको देखकर भागनेको तयार होगये

दिशः ॥ ७१ ॥ द्रोणस्तु दिव्यस्थाय नक्षत्रपथमाविशत् ।
अहमेव तदाद्राक्षं द्रोणस्य निधनं वृत् ॥ ७२ ॥ ऋपेः प्रसादात्
कृष्णस्य सत्यवत्याः सुतस्य च । विधुमामिह संयान्तीषुज्ज्वा
प्रज्वलितामिव ॥ ७३ ॥ अपश्याम दिवं स्तब्धं गच्छन्तं तं महा-
द्युतिम् । हते द्रोणे निरुत्साहाः कुरुपाण्डवसृज्जयाः ॥ ७४ ॥
अभ्यद्रवन्महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यता निहता द्रुतभूयिष्ठाः संग्रामे
निशितैः शरैः ॥ ७५ ॥ तावका निहते द्रोणे गतासन इवामवन् ।
पराजयमथावाप्य परत्र च गच्छन्त्यम् ॥ ७६ ॥ उभयेनैव ते धीना
नात्रिदन् धृतिमात्मनः । अन्विच्छन्तः शरीरन्तु भारद्वाजस्य
पार्थिवः ॥ ७७ ॥ नान्वगच्छन्महागान कवन्धायुतसंकुले । पांडवारस्तु

और चारों दिशाओंमेंको भागनेलगे ॥ ७१ ॥ हे राजन् । द्रोण
आकाशमें जाकर नक्षत्रोंके मार्गमें प्रविष्ट होगए, उनको सत्यवतीके
पुत्र व्यासजीके प्रसादसे मैंने देखा था, धुएँसे रहित प्रज्वलित
हुआ ऊका जैसे आकाशमेंको जाता है तैसे ही महाकान्तिवाले
द्रोणाचार्यको मैंने आकाशमें जातेहुए देखा था द्रोण ज्योंही रणमें
गिरे, कि-कौरव, पाण्डव और सृज्ज्योंका उत्साह भङ्ग होगया ७२-७४
और वे सब बड़े वेगसे भागनेलगे, सेनामें भागड पडगयी, इस
संग्राममें तेज कियेहुए बाणोंके प्रहारसे तुम्हारे पक्षके बहुतसे योधा
मारेगये थे और अधमरोंकी तो कुछ ठीक ही नहीं थी ॥ ७५ ॥
और मरते-र बचेहुए योधा द्रोणाचार्यके मारेजाने पर प्राणहीनसे
होगये, एक तो तुम्हारे योधाओंकी हार होगयी थी दूसरे उन्होंने
रणमेंसे भागजानेके कारण अपना परलोक भी नष्ट करडाता था,
इसप्रकार दोनों लोकसे भ्रष्ट होजानेके कारण वे बड़ीभारी घबडा-
हटमें पडगये थे, हे महाराज! नीर राजाओंने द्रोणाचार्यके शरीरको
पानेकी इच्छा की परन्तु हजारों लाखों धड़ोंसे भरी हुई रणभूमि
मेंसे वे द्रोणके शरीरको ढूँढने पर भी नहीं पासके, दूसरी ओर

जयं लब्ध्वा परत्र च महद्यतः ॥ ७८ ॥ बाणशंखराशचक्रः सिंह-
नादाश्च पुष्कलान् । भीमसेनस्ततो राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षितः ॥ ७९ ॥
वरुथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम् । अग्रशीघ्रं तदा भीमः
पार्षितं शत्रुनापनम् ॥ ८० ॥ भूयोऽहं त्वां विजयिनं परिष्वज्यामि
पार्षित । सूतपुत्रे हते पापे धार्तराष्ट्रे च संयुगे ॥ ८१ ॥ एतावदु-
क्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः । बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पया-
मास पाण्डवः ॥ ८२ ॥ तस्य शब्देन विव्रस्ताः माद्रवंस्तावका
युधि । क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥ ८३ ॥ पाण्डवास्तु
जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन् विशापते । अरिज्ञेयञ्च संग्रामे तेन ते
सुखमाप्नुवन् ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणे द्रोणवधपर्वणि द्रोणवधे

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

॥ समाप्तञ्च द्रोणवधपर्व ॥

पाण्डव इस लोकमें जय और परलोकमें महान् यश पाकर धनुषों के
टङ्कार और सिंहनाद करने लगे, दोनों सेनादल शोकमें और
हर्षमें डूब गये थे, हे राजन् ! इस समय भीमसेन और धृष्टद्युम्न
सेनाके बीचमें खड़े होकर आपसमें आलिङ्गन करते हुए हर्षमें भर
कर नाच रहे, इसके बाद भीमसेनने वैरियोंको सन्ताप देनेवाले
धृष्टद्युम्नसे कहा, कि—॥ ७९—८० ॥ हे धृष्टद्युम्न ! जब पापी कर्ण
और दुर्योधन रणमें मरकर गिरेंगे तब फिर मैं तुझ विजय पाने
वालेको इसप्रकार ही छातीसे लगाऊँगा ॥ ८१ ॥ इतना कहकर
महाहर्षमें भरे हुए भीमसेनने दोनों भुजदंडोंको ठोककर उसके शब्दसे
पृथिवीको कम्पायमान कर दिया ॥ ८२ ॥ उसके भुजदण्डों के शब्दको
सुनकर तुम्हारे पक्ष के योधा भयभीत होगये और क्षत्रियधर्मको
त्यागकर रणमेंसे भाग निकले ॥ ८३ ॥ और पाण्डव वैरियोंको
संहार करके तथा विजय पाकर प्रसन्न हुए और उनको परमसुख
प्राप्त हुआ ॥ ८४ ॥ एकसौ बानवेंवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६२ ॥

अथ नारायणस्त्रयीक्षपच ।

सञ्जय उवाच । ततो द्रोणं हते राजन् कुरवः शस्त्रपीडिताः ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः ॥ १ ॥ उदीर्णाश्च परान्
दृष्ट्वा कम्पमानाः पुनः पुनः । अश्रुपूर्णेक्षणास्त्रता दीनास्त्वासन्
विशाम्यते ॥ २ ॥ भिचेनसो हतोत्साहाः कश्मलाभिदूर्ताजसः ।
आर्त्तस्वरेण महता पुत्रान्ते पर्यवारयन् ॥ ३ ॥ रजस्वला वेषमाना
वीक्षमाणा दिशो दश । अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षो पुरा
हते ॥ ४ ॥ स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव । अशक्नु-
वन्नवस्थातुमपायात्तनयस्त्वय ॥ ५ ॥ क्षुत्पिपासापरिमृजानास्ते योधा-
स्तव भारत । आदित्येनेव सन्तप्ता भृशं विमनसोऽभवन् ॥ ६ ॥

नारायणस्त्रयीक्षपच

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! रणमें द्रोणाचार्यके
मारेजानेके बाद शस्त्रोंसे पीड़ा पायेहुए तथा जिनके शूर मारेगये
थे ऐसे कौरव बड़ा ही शोक करनेलगे ॥ १ ॥ वैरिोंकी वृद्धिको
देखकर बारम्बार कम्पायमान होनेलगे, उनकी आँखें आँधुओंसे
भरगयीं, वे भयभीत होगये, भानशून्य और उत्साहहीन होगये,
दुःखके मारे उनका ओज नष्ट होगया और तुम्हारे पुत्रके चारों
ओर खड़ें हों घबड़ाकर रोनेलगे ॥ २-३ ॥ पहले हिरण्याक्षके मारे
जाने पर जैसे दैत्य धुल्लिसे मलीन होकर काँपते और दशों दिशाओं
को देखतेहुए गला रुंधकर रोनेलगे थे, वही दशा कौरवोंकी होगयी
वे भयभीत हुए छोटे २ मृगोंकी समान तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको
चारों ओरसे घेरकर खड़े होगये, परन्तु तुम्हारा पुत्र दुर्योधन
रणमें खड़ा न रहसकनेके कारण तहाँसे भागगया ॥ ४ ॥ ५ ॥
हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारे योधा भूख और प्याससे बहुत ही
घबड़ा रहे थे और मानो सूर्यकी तेजीसे झुलस गये हों इसप्रकार
सन्ताप होनेसे बहुत ही खिन्न होगये थे ॥ ६ ॥ सूर्यका पतन,

भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम् । विपर्यासं यथा संभोर्वास-
वस्येव निर्जयम् ॥ ७ ॥ अमर्षणीयं तद् दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पात-
नम् । त्रस्तरूपतरा राजन् कौरवाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ८ ॥ गान्धार-
राजः शकुनिस्त्रस्त्रस्त्रस्तरैः सह । हतं स्वमरथं श्रुत्वा प्राद्रवत्
सहितो रथैः ॥ ९ ॥ वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम् ।
परिशृङ्खलमहासेनां सूतपुत्रोऽपयाद्भयात् ॥ १० ॥ रथनागाश्व-
कलिलां पुरस्कृत्य तु वाहिनीम् । मद्राणामीश्वरः शल्यो वीक्ष्य-
माणोऽपयाद्भयात् ॥ ११ ॥ हतमवीरैर्भूयिष्ठैश्चरैर्वहुपदातिभिः ।
वृत्तः शारद्वतोऽगच्छत् कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ॥ १२ ॥ भोजानीकेन
शिष्टेन कलिङ्गारद्वान्दिकैः । कृतवर्मा वृत्तो राजन् प्रायात् सु-
जवनैर्द्वैः ॥ १३ ॥ पदातिगणसंयुक्तस्त्रस्तो राजन् भयाद्वितः ।

समुद्रका सूखना, समुद्रका डगमगाना और इन्द्रका पराजय जैसे
सह नहीं होसकता ऐसे ही द्रोणाचार्यका मरण असह था यह
देखकर कौरवपक्षके योधा बड़े ही घबड़ाये और डरके मारे भाग
गये ॥ ७-८ ॥ सुवर्णके रथमें बैठनेवाले द्रोणाचार्य रणमें मारेगये,
यह सुनकर गान्धार देशका राजा शकुनि भी डरगया और
भयभीत हुए रथियोंके साथ रणमेंसे भागगया ॥ ९ ॥ सूतपुत्र कर्ण
भी रणमें आखें मीचकर भागती हुई पताकावाली बड़ी भारी सेनाको
साथ लेकर डरके मारे भागगया ॥ १० ॥ मद्रराज शल्य भी रथ,
हाथी और घोडोंसे भरी हुई सेनाको आगे करके (आसपासको)
देखताहुआ रणमेंसे भागगया ॥ ११ ॥ जिसमेंके बहुतसे वीर
पुरुष मारेगये थे ऐसी बहुतसी पताकाओंवाली महासेनासे घिरे
हुए कृपाचार्य भी 'बहुत बुरा हुआ' 'बहुत बुरा हुआ' ऐसा कहते
हुए रणमेंसे भागगये ॥ १२ ॥ कृतवर्मा भी मरनेसे बची हुई
भोजकी, कलिङ्गकी, अरिष्टकी और वाहीरकी सेनासे घिरकर
बड़े वेगवाले घोडोंसे जुते रथमें बैठकर रणमेंसे भागगया ॥ १३ ॥

उलूकः प्राद्रवत्तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १४ ॥ दर्शनीयो
युवा चैव शौर्येण कृतलक्षणः । दुःशासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद्
गजसंहतः ॥ १५ ॥ रथानामयुतं गृह्य त्रिसाहस्रैश्च दन्तिनः ।
वृपसेनो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १६ ॥ गजाश्वरथ-
संयुक्तो वृत्तश्चैव पदातिभिः । दुर्योधनो महाराज प्रायात्तत्र
महारथः ॥ १७ ॥ संशप्तकगणान् गृह्य हतशेषान् किरीटिना ।
सुशर्मा प्राद्रवद्वाजन् दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १८ ॥ गजान् रथान्
समारुह्य व्युदस्य च हयान् जनाः । प्राद्रवन् सर्वतः संख्ये दृष्ट्वा
रुक्मरथं हतम् ॥ १९ ॥ त्वरयन्तः पितृनन्ये भ्रातृनन्येऽथ मातु-
लान् । पुत्रानन्ये वयस्याश्च प्राद्रवन् कुरवस्तथा ॥ २० ॥ चोद-

हे राजन् ! राजा उलूक भी रणमें द्रोणको मरा हुआ देखकर
भयभीत हो गया और वह भी पैदल सेनाके साथ रणमेंसे भाग
गया ॥ १४ ॥ देखने योग्य, तरुण अवस्थाका, शूरोंके लक्षणों
वाला, दुःशासन भी द्रोणाचार्यके मारे जानेसे बहुत ही घबड़ा गया
और हाथियोंकी सेनाके सहित भाग निकला ॥ १५ ॥ द्रोण
मारे गये, यह देखकर वृपसेन भी दश हजार रथ और तीन हजार
हाथियोंके साथ रणमेंसे फुरतीसे भाग गया ॥ १६ ॥ हे महाराज !
महारथी दुर्योधन भी हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेनाके साथ रण
मेंसे भाग गया ॥ १७ ॥ सुशर्मा भी रणमें द्रोणाचार्यको गिरा हुआ देख
कर, अर्जुनकी मारकाटमेंसे बचे हुए संशप्तकगणोंको साथ लेकर रण
मेंसे भाग निकला और द्रोणको रणमें मरा हुआ देख कितने ही
हाथियों पर चढ़कर भाग गये और कितने ही घोड़ोंको रणमें ही
छेड़कर भाग गये ॥ १८-१९ ॥ और कौरवोंके कितने ही घोषा पिताओं
से रणमेंसे भागनेके लिये शीघ्रता करके भाग रहे थे, कितने ही भाइयों
से शीघ्रता करनेको कहते हुए भाग रहे थे कोई कुरुवंशी मामाओंसे,
कोई पुत्रोंसे और दूसरे पित्रोंसे शीघ्र ही भागनेको कहते हुए उस

येन्तश्च सैन्यानि स्वस्तीर्याश्च तथा परे । सम्बन्धिनस्तथा चान्ये
प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ २१ ॥ प्रकीर्णकेशा विध्यस्ता न द्वावेकत्र
धावतः । नेदमस्तीति मन्वाना हतोत्साहा हतौजसा ॥ २२ ॥
उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो । अन्योऽन्यं ते समाक्रो-
शान् सैनिका भरतर्षभ ॥ २३ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्रा-
वतस्थिरे । धुर्यानुम्युच्य च रयाद्भुतसूतात्स्वलंकृतान् ॥ अधिरुह्य
हयान् योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥ २४ ॥ द्रवमाणे तथा सैन्ये
त्रस्तरूपे हतौजसि । प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात् २५
तस्यासीत् सुमहद्युहुं शिखण्डिममुखैर्गणैः । प्रभद्रकैश्च पञ्चालै-

समय भागे जा रहे थे ॥ २० ॥ कितने ही सेनाओंको भागनेकी
प्रेरणा कर रहे थे कोई भानजोंसे भागने को कह रहे थे और कोई
सगे संबन्धियोंको भागनेकी प्रेरणा करते हुए दशों दिशाओंको
भाग रहे थे ॥ २१ ॥ इस समय योधाओंके शरीर घायल हो
रहे थे और शिरोंके बाल खुल गये थे, रणमें इतने अधिक
योधा थे कि परन्तु-दो जनोंको एक साथ भागना कठिन होरहा
था, उत्साह और सामर्थ्यसे हीन हो रहे थे, और वे सब समझ
रहे थे, कि-बस अब ये प्राण गये ॥ २२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे
योधाओंमेंसे कितने ही कवचोंको उतार कर भाग रहे थे और
आपसमें चिल्ला २ कर कह रहे थे कि-खड़े रहो, ! खड़े रहो ॥
परन्तु वे स्वयं रणभूमिमें खड़े नहीं रहसके थे, कितनेही रथी
अपने सारथियोंके मारेजानेके कारण अपने सजे हुए रथोंमेंसे
घोड़ोंको खोल कर उनके ऊपर सवार हो पैरोंकी एडियोंसे उनको
हॉकनेमें लगे हुए थे ॥ २३-२४ ॥ इस प्रकार तुम्हारी सेना
सामर्थ्यहीन तथा भयभीत होकर भागने लगी थी, उस समय
जैसे नाका नदीके प्रवाहके सामनेको चढ़कर जाता है, तैसे ही
अश्वत्थामाने वैरियोंके ऊपर धावाकिया ॥ २५ ॥ और उसका

श्वेदिभिश्च सकेकयैः ॥ २६ ॥ हत्वा बहुविधाः सेनाः पाण्डूनां
युद्धदुर्मदः । कथञ्चित्सङ्क्रान्तमुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः ॥ २७ ॥
द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम् । दुर्योधनं समासाद्य द्रोण-
पुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २८ ॥ किमियं द्रवते सेना वस्तरूपेव भारत ।
द्रवमाणाञ्च राजेन्द्र नानस्थापयसे रणे ॥ २९ ॥ त्वञ्चापि न
यथा पूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप । कर्णप्रभृतयश्चमे नावतिष्ठन्ति
पार्थिव ॥ ३० ॥ अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाद्रवत्तदा । कञ्चित्
क्षेमं महाराज तव सैन्यस्य भारत ॥ ३१ ॥ कस्मिन्निदं हते राजन्
रथासिंहे बलं तव । एतावस्थां सम्प्राप्तं तन्मयाचक्ष्व कौरव ३२
तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम् । घोरप्रियमाख्यातुं

शिखण्डी आदि योधाओंके समूहोंके साथ, प्रभटक, पाञ्चाल,
चेदी तथा केकयोंके साथ बड़ा युद्ध हुआ ॥ २६ ॥ गदप्रत्त हाथीकी
समान पराक्रमी अश्वत्थामा युद्धमें सदेनमत्तकी समान घूमरहा
था, वह पाण्डवोंकी बड़ाभारी सेनाका संहार करनेके अनन्तर
बड़ी कठिनतासे सङ्क्रान्तमेंसे छूटा ॥ २७ ॥ परन्तु जब उसने अपनी
सेनाको भी भागनेको और भागती हुई देखा, तब उसने दुर्योधनके
पास जाकर बूझा, कि-॥ २८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारी
यह सेना भयभीत हुई सी घबड़ाकर क्यों भाग रही है ? हे राजेन्द्र !
रणमेंसे भागती हुई सेनाको तुम रोकते क्यों नहीं हो ? ॥ २९ ॥
हे राजन् ! तुम पहलेकी समान उत्साही क्यों नहीं मालूम होते
और हे राजन् ! यह कर्ण आदि योधा भी क्यों नहीं जम रहे
हैं ? ॥ ३० ॥ दूसरे युद्धोंके समय तो सेना इस प्रकार कभी नहीं भागती
थी ? तो हे भरतवंशी महाबाहु राजन् ! तुम्हारी सेनाकी कुशल
तो है ? ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! महारथियोंमेंसे सिंहकी समान
कौनसे योधाके मरणसे ऐसी दशा हुई है, यह मुझे बताइये ३२
दुर्योधनने अश्वत्थामाकी यह बात सुनी, परन्तु तुम्हारा पुत्र टूटी

नाशक्रांतं पार्थिवर्षभः ॥ ३३ ॥ भिन्ना नौरिव ते पुत्रो मग्नः शोक-
महाणवे । बाष्पेणापिहतो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ॥ ३४ ॥
ततः शारद्वतं राजा सन्वीडमिदमब्रवीत् । शंसात्र भद्रन्ते सर्वं
यथा सैन्यमिदं द्रुतम् ॥ ३५ ॥ अथ शारद्वतो राजन्नार्त्तिमार्च्छन्
पुनः पुनः । शर्शस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥ ३६ ॥
कृप उवाच । वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम् । प्रावर्त्त-
याम संग्रामं पञ्चवालैरेव केवलम् ॥ ३७ ॥ ततः प्रवृत्ते संग्रामे
विमिश्राः कुरुसोमकाः । अन्योऽन्यमभिगर्जन्तः शस्त्रैर्देहानपात-
यन् ॥ ३८ ॥ वर्त्तमाने तथा युद्धे क्षीयमाणेषु संयुगे । धार्तरा-
ष्ट्रेषु संकुद्धः पिता तेऽस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥ ततो द्रोणो ब्राह्म-
मस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः । न्यहनच्छात्रवान् भल्लैः शतशोऽथ सह-

हुई नौकाकी समान शोकसागरमें डूबरहाथा, इसलिये अश्वत्थामा
से महाभयानक अभिय समाचार नहीं कहसका, वह रथमें बैठे
हुए अश्वत्थामाको देखकर चौधार आँसू बहने लगा ३३-३४
फिर दुर्योधनने कृपाचार्यके सामने जाकर लज्जाके साथ कहा,
कि-तुम्हारे कल्याण हो ! जिस कारणसे यह सेना भागरही है,
वह सब कारण अश्वत्थामाको अता दीजिये ॥ ३५ ॥ यह सुनकर
शरद्वानके पुत्र कृपाचार्य बारंवार खिन्न होते हुए अश्वत्थामासे
द्रोणाचार्यके मरणका वृत्तान्त कहने लगे ॥ ३६ ॥ कृपाचार्यने
कहा कि-पृथ्वी पर महारथी द्रोणाचार्यको ही अग्रणी करके हम
केवल पाँचवालोंके साथ संग्राम कर रहे थे ॥ ३७ ॥ संग्राम आरंभ
हुआ, कि-कौरव और सोमक इकट्ठे होगये और गर्जना करते
हुए शस्त्रोंसे एक दूसरेके शरीरोंको काटकर गिराने लगे ३८
इस युद्धमें हजारों कौरव योधा मारे गये, तब तुम्हारे पिता क्रोध
में भरकर शत्रुओंकी सेनाके ब्रह्मास्त्र मारनेको तयार होगये !
और ब्रह्मास्त्रको प्रकट करके उन्होंने रणमें भल्ल नामके बाणोंसे

स्रशः ॥ ४० ॥ पाण्डवाः कैकया मत्स्याः पञ्चालाश्च विशेषतः ।
संख्ये द्रोणरथं प्राप्य व्यनशन् कालचोदिताः ॥ ४१ ॥ सहस्रं
नरसिंहानां द्विमाहस्रञ्च दन्तिनाम् । द्रोणो ब्रह्मास्त्रयोगेन प्रेषया-
मास मृत्यवे ॥ ४२ ॥ आकर्ण्यपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ४३ ॥ क्रियमानेषु
सैन्येषु बध्यमानेषु राजसु । अमर्षवशमापन्ताः पञ्चाला विमुखा-
भवन् ॥ ४४ ॥ तेषु किञ्चित्प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित् । दिव्य-
मस्त्रं विक्रवाणो बभूवार्क इवोदितः ॥ ४५ ॥ स मध्यं प्राप्य पांडूनां
शररश्मिः प्रतापवान् । मध्यं गत इवादित्यो दुष्प्रेक्ष्यते पिताऽभ-
वत् ॥ ४६ ॥ ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणैव विराजता । दग्धवीर्या

सैकड़ों और सहस्रों शत्रुओंको काटहाला ॥ ३६ ॥ ४० ॥ पाण्डव,
कैकय, मत्स्य और विशेष कर पंचाल राजे—इस प्रकार जो जो
राजे कालकी प्रेरणासे द्रोणके रथके समीप आते थे वे सब
मारे जाते थे ॥ ४१ ॥ इस युद्धमें द्रोणने ब्रह्मास्त्र मार कर एक
हजार बड़े योधाओंका और दो हजार हाथियोंका संहार कर
हाला था ॥ ४२ ॥ जिनके कानोंतकमें झुर्रियें पड़गयी थीं जिनका
शरीर श्याम था और अवस्था पिचासी वर्ष की थी ऐसे द्रोण
वृद्ध होकर भी सोरह वर्षके तरुण पुरुषकी समान रणमें घूमरहे
थे ॥ ४३ ॥ इनके संहारसे सेनायें खिन्न होगयीं और राजाओंका
संहार होनेलगा, यह देखकर पञ्चाल देशके राजे घबड़ा कर
रणमेंसे भागनिकले ॥ ४४ ॥ पंचाल राजे रणमेंसे भागनेलगे
और उनमें जरा एक भागड़ पड़ी उसी समय शत्रुओंको जीतने
वाले द्रोणने दिव्य अस्त्रको प्रकट किया, उस समय वह रणमें
उदय हुए सूर्यकी समान दिप रहे थे ॥ ४५ ॥ वायुरूप-किरण-
धारी और प्रतापी तुम्हारे पिता द्रोण जिस समय पाण्डवोंकी सेनाके
मध्यमें खड़े थे, उस समय मध्याह्नकालके सूर्यकी समान उनकी ओर

निरुत्साहा बभूवुर्गतचेतसः ॥ ४७ ॥ तान् दृष्ट्वा पीडितान् वालै-
द्रोणेन मधुसूदनः । जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥
नैष जातु नरैः शक्यो जेतुं शस्त्रभृताम्बरः । अपि वृत्रहणा संख्ये
रथयूथपयूथपः ॥ ४९ ॥ ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः ।
यथा वः संयुगे सर्वान्न हन्यादुक्मवाहनः ॥ ५० ॥ अश्वत्थाम्नि
हते नैष युध्येदिति मतिर्मम । हतं तं संयुगे कश्चिदाख्यात्वस्मै मृषा
नरः ॥ ५१ ॥ एतन्नारोचद्राक्यं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । अरोच-
यंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ ५२ ॥ भीमसेनस्तु सर्वोद-
मब्रवीत् पितरं तत्र । अश्वत्थामा हत इति तं नाबुध्यत ते पिता ५३

को देखना भी कठिन होरहा था ॥ ४६ ॥ सूर्यकी समान दमकते हुए
द्रोणाचार्य शत्रुओंको भस्म करने लगे, तब तो शत्रुओंका पराक्रम
नष्ट होगया, उत्साह भङ्ग होगया और वे अचेतसे होगये ॥ ४७ ॥
विजय चाहनेवाले श्रीकृष्णने देखा कि द्रोण वालोंसे शत्रु पाण्डवों
की सेनाको दुःख दे रहे हैं, इसलिये उन्होंने पाण्डवोंसे कहा
कि- ॥ ४८ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और महारथियोंके स्वामी
द्रोणाचार्यको मनुष्य कभी जीत नहीं सकते, अधिक क्या कहूँ,
रणमें इन्द्रभी इनका पराजय नहीं कर सकता ॥ ४९ ॥ इसलिये
हे पाण्डवों ! यदि तुम्हें विजय प्राप्त करनी हो तो धर्मको छोड़ो,
जिससे, कि-द्रोणाचार्य तुम सबोंका रणमें नाश न कर सकें ५०
मेरी समझमें अश्वत्थामाके मारे जानेका समाचार सुनकर द्रोण
रणमें नहीं लड़सकेंगे, इस लिए कोई पुरुष द्रोणको भूठी खबर
सुनावे, कि-अश्वत्थामा रणमें मारा गया, यह विचार सबको तो
अच्छा लगा, परन्तु कुन्तीपुत्र अर्जुनको अच्छा नहीं लगा, और
युधिष्ठिरने भी इस बातको बड़ी कठिनाईसे माना ॥ ५१-५२ ॥
फिर भीमसेनने तुम्हारे पिताके पास जाकर लज्जित होतेहुए कहा
कि-अश्वत्थामा रणमें मारागया, परन्तु तुम्हारे पिताने उसके

स शङ्कमानस्वन्मिथ्या धर्मराजमपृच्छन् । इदं वाप्यदत्तं वोजी त्वां
 पिता पुत्रवत्सलः ॥ ५४ ॥ तपश्चरन्मये ममो जये सक्तो युधि-
 छिरः । अश्वत्थामानपायोधे इतं दृष्ट्वा महागजम् ॥ ५५ ॥ भीमेन
 गिरिवर्षमाणं मालवस्येन्द्रवर्मणः । उग्रपुत्रस्तदा द्रोणमुच्चैरिद-
 मुवाच ह ॥ ५६ ॥ यस्म्यर्थे शस्त्रपादत्से यमवेक्ष्य च जीवसि ।
 पुत्रस्ते दयितो नित्यं सोऽश्वत्थामा निपातिनः ॥ ५७ ॥ शते
 विनिहतो भूपौ वने सिंहशिगुपेया । जानन्नप्यनृत्स्याथ दोषान्
 स द्विजसत्तमम् ॥ ५८ ॥ अव्यक्तमवरोद्राजा हवः कुञ्जर इत्पुनश्च
 स त्वां विनतमाकन्दे श्रुत्वा सन्तापपीडितः । नियम्य दिव्यान्व-
 स्त्राणि नायुध्यत यथा पुरा ॥ ६० ॥ तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकातुर-

कहनेके ऊपर विश्वास नहीं किया ॥ ५३ ॥ उन्होंने, भीमकी
 बात मिथ्या है, इस सन्देहमें होकर धर्मराजसे वृक्षा, कि-अश्व-
 त्थामा रणमें मारागया या जीवित है ? ॥ ५४ ॥ इसी बीचमें
 भीमसेनने युद्धमें, मालवके राजा इन्द्रवर्मके पहाड़की समान काया
 वाले अश्वत्थामा नामके हाथीको मार डाला; उसको राजा युधि-
 छिरने देखा था इसलिये एक ओर असत्यभाषणके भयमें डूब
 जारहे थे, परन्तु दूसरी ओर विजय चाहते थे, इतनेमेंही भीमसेनने
 द्रोणके पास जा चिन्ता कर कहा, कि-अरे द्रोणाचार्य ! तुम
 जिसके लिये अस्त्र धारण कियेहुए हो और जिसका मुख देख
 कर जीवन बिताते हो वह तुम्हारा प्यारा पुत्र अश्वत्थामा तो
 युद्धमें मारागया, और जैसे वनमें मराहुआ सिंहका बच्चा पड़ा
 होता है तैसे ही वह मरकर रणभूमिमें पड़ा है ॥ ५५-५८ ॥
 इस पर द्रोणाचार्यने इस बातकी सत्यताके विषयमें धर्मराजसे
 वृक्षा, युधिछिर जानते थे कि-मिथ्याभाषणमें बड़ा दोष है, तो
 भी उन्होंने जिसमें स्पष्ट न मालूम हो, ऐसे शब्दोंमें कहा कि-
 "नरो वा कुञ्जरो वा" युधिछिरकी बात सुनकर द्रोण तुम्हें रणमें

मचेतसम् । पाञ्चालाराजस्य सुतः क्रूरकर्पा समाद्रवत् ॥ ६१ ॥
 तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः । दिव्यान्पस्त्राण्यथो-
 त्सृज्य रणे प्राय उपाविशत् । ततोऽस्य केशान् सव्येन गृहीत्वा
 पाणिना नदा । पार्श्वतः क्रोशमानानां वीराणामञ्छिनच्छिरः ६३
 न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन् । तथैव चार्जुनो बाहा-
 दवस्तूनामाद्रवत् ॥ ६४ ॥ उद्यम्य त्वरितो बाहुं ब्रुवाणश्च पुनः
 पुनः । जीवन्तमानयाचार्यं मा नधीरिति धर्मवित् ॥ ६५ ॥ तथा
 निवार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च । हत एव नृशंसेन पिता तव
 नार्षभ ॥ ६६ ॥ सैनिकाश्च ततः सर्वे प्राद्रवन्त भयार्हिताः ।

मारागया सुनकर शोक सन्तापसे भस्म होने लगे और अपने दिव्य
 अस्त्रोंको बन्द कर दिया तथा पहलेकी समान युद्ध करना रोक
 दिया ॥ ५९ ॥ ६० ॥ द्रोणाचार्यको परमखिन्न, शोकातुर और
 अचेत देखकर, क्रूर कर्म करने वाला पंचालराजका पुत्र बड़े
 वेगसे द्रोणाचार्यके सामने आपहुँचा ॥ ६१ ॥ लोकव्यवहारमें
 निपुण द्रोणने भी यह मेरा नाश करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है,
 ऐसा समझकर दिव्य अस्त्रोंको त्यागदिया और रणभूमिमें योग
 धारणासे चित्तको स्थिर करके वह अपने रथमें बैठगये ॥ ६२ ॥
 धृष्टद्युम्न द्रोणके रथपर चढ़ गया और बायें हाथसे उनके शिरके
 केश पकड़ लिये, उस समय वीर योधा चिल्लाते ही रहगये और
 उसने तलवारसे द्रोणका शिर काटलिया ॥ ६३ ॥ उस समय
 सब योधा पुकारकर कहरहे थे, कि-द्रोणको मारना नहीं! मारना
 नहीं ॥ और धर्मवेत्ता अर्जुन तो रथमेंसे नीचे उतर पड़ा, और तेरे
 पिताका शिर काटनेसे रोकनेके लिये उसके पीछे भी दौड़ा था
 और अपना हाथ ऊँचा करके बारबार कहरहा था, कि-तू आचार्य
 को जीवित ही पकड़ला, मारे मत ॥ ६४ ॥ इस प्रकार कौरवोंके
 और अर्जुनके रोकने पर भी हे पुरुषश्रेष्ठ! क्रूर धृष्टद्युम्नने तेरे

वयञ्चापि निरुत्साहा हते पितरि तेऽनघ ॥ ६७ ॥ सञ्जय उवाच ।
तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे । क्रोधमाहारयत्तीव्रं पदाहन
इवोरगः ॥ ६८ ॥ ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष ।
यथेधनं महत्प्राप्य प्राज्वलद्गव्यवाहनः ॥ ६९ ॥ तलं तलेन
निष्पिप्य हन्तैर्दन्तानुपास्पृशत् । निःश्वसन्तुरगो यद्वल्गोहिताक्षो
ऽभवत्तदा ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्व-
त्थामक्रोधे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन मञ्जय ।
ब्राह्मणं पितरं वृद्धमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १८ ॥ मानवं नारु-
णाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रञ्च वीर्यवान् । ऐन्द्रं नारायणञ्चैव यस्मिन्नित्यं

पिताको मारहाला, इस लिये ॥ ६६ ॥ हे निर्दोष अश्वत्थामा !
हम सब तथा सेनाके लोग भयभीत और उत्साहहान होजानेके
कारण रणमेंसे भागरहे हैं ॥ ६७ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजा
धृतराष्ट्र ! रणमें खड़े हुए अश्वत्थामाने अपने पिताके मरणका
समाचार सुना, उस समय वह लातसे मारे हुए सर्पकी समान
क्रोधमें भरगया ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! जैसे बहुतसा ईधन पाकर
अग्नि धधक उठता है ऐसे ही रणमें खड़ा हुआ अश्वत्थामा इस
समय क्रोधसे बहुत ही तमतमा उठा ॥ ६९ ॥ उसकी आँखें लाल
लाल होगयीं, वह सर्पकी समान फुझारें भरनेलगा, दोनों हाथोंमें
हथेलियोंकी मसलने लगा और दाँतोंसे दाँतोंको पीसने लगा ७०
एक सौ तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६३ ॥

धृतराष्ट्रने बुझा, कि-हे सञ्जय ! बूढ़े तथा ब्रह्मण जातिके मेरे
पिता द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नने अधर्मसे मारहाला, यह सुनकर
अश्वत्थामा क्या बोला ! ॥ १८ ॥ जो द्रोणाचार्य मानवास्त्र, अग्न्यस्त्र,
नारुणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, और नारायणस्त्रको जानते थे, उन

प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ तनयमेष धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे । श्रुत्वा
निहतमाचार्यं सोऽश्वत्थामा क्रियव्रवीत् ॥ ३ ॥ येन रामादवाप्येह
धनुर्वेदं महात्मना । प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि पुत्राय गुण-
काक्षिणा ॥ ४ ॥ एकमेव हि लोकेस्मिन्नात्मनी गुणवत्तरम् । इच्छन्ति
पुरुषा पुत्रं लोके नान्यं कथञ्चन ॥ ५ ॥ आचार्याणां भवत्येव
रहस्यानि महात्मनाम् । तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायानुगताय
वा ॥ ६ ॥ स शिष्यः प्राप्य तत्सर्वं सविशेषञ्च सञ्जय । शूरः
शारद्वीपुत्रः संख्ये द्रोणादनन्तरः ॥ ७ ॥ रामस्य तु सप्तः शस्त्रे
पुरन्दरसप्तो युधि । कार्त्तवीर्यसप्तो वीर्यं बृहस्पतिसप्तो मतौ ॥ ८ ॥

धर्मके प्रेमी द्रोणाचार्यको रणमें धृष्टद्युम्नेने अधर्मसे मार डाला, यह
सुनकर पराक्रमी अश्वत्थामाने क्या कहा ? ॥ २ ॥ ३ ॥ उन
महात्माने तो परशुरामसे धनुर्वेद सीखकर अपने पुत्रको भी
अपने समान ही गुणवान् बनानेकी इच्छासे उसको दिव्य अस्त्र
सिखाये थे ? ॥ ४ ॥ हे सञ्जय ! पुरुष इस जगत्में पुत्रको ही
अपनेसे भी अधिक गुणवान् बनाना चाहता है, किसी दूसरेको
उससे अधिक देखना नहीं चाहता ॥ ५ ॥ महात्मा आचार्योंके
पास जो कुछ रहस्य (गुरुलक्ष्य) होता है, वह सब वे पुत्रको
अथवा प्रेमपात्र शिष्योंको बतलाते हैं ॥ ६ ॥ हे सञ्जय ! वीर
अश्वत्थामा द्रोणाचार्यका पुत्र भी है और शिष्य भी है तथा उसने
अपने पितासे विशेषरूपसे अस्त्रविद्याका सब रहस्य सीखा है,
इसलिये उसने अपने पिता तथा गुरु द्रोणाचार्यके मरणका समा-
चार सुनकर क्या उत्तर दिया ? ॥ ७ ॥ द्रोणाचार्य शस्त्र धारण
करनेमें रामकी समान, युद्ध करनेमें इन्द्रकी समान, पराक्रममें कार्त्त-
वीर्यकी समान, बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान, स्थिरतामें पर्वतकी
समान, तेजमें अग्निकी समान, अवस्थामें बरुण, गंभीरतामें सागर
की समान क्रोधमें विषधर सर्पकी समान थे वह जगत्में मुख्य रथी,

(१३००) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौचौरानवेवाँ]

महीधरसमः स्थैर्ये तेजसाग्रिसमो युवा । समुद्र इव गाम्भीर्यं क्रोधे
चाशीविषोपमः ॥६॥ स रथी प्रथमो लोके दृढवन्त्रा जितवलमः ।
शीघ्रोऽनिल इवाकन्दे चरन् क्रुद्ध इवान्तकः ॥ १० ॥ अस्याना-
येन संग्रामे धरण्यभिनिषीडिता । यो न व्यथति संग्रामे वीरः
सत्यपराक्रमः ॥ ११ ॥ वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदे च पारगः ।
महोदधिरिवाक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा ॥ १२ ॥ तमधर्मेण
धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे । श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किम-
ब्रवीत् १३ धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युः सृष्टस्तेन महात्मना । यथा द्रोणस्य
पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत् ॥ १४ ॥ तं नृशंसेन पापेन क्रूरेणा-
दीर्घदर्शिना । श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १५ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रधोतपर्वणि
धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्णावत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

दृढ धनुषधारी, रोगरहित, अस्त्रोंका प्रयोग करनेमें फुरतीले, गर्जना
करनेमें वायुकी समान तथा कालकी समान क्रोधी थे उन्होंने
संग्राममें बाणोंके प्रहार करके पृथ्वीको बड़ा ही पीड़ित किया
था वह वीर और सत्यपराक्रमी पुरुष रणमें युद्ध करते समय जरा
भी खिन्न नहीं होते थे वह वेदमें प्रवीण, व्रतधारी धनुर्विद्यामें पार-
गामी और दशरथके पुत्र रामकी समान पराक्रमी तथा महासागरकी
समान अक्षोभ्य थे—१२ ऐसे धर्मनिष्ठ द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नने
अधर्मसे मार डाला, यह सुनकर अश्वत्थामाने क्या कहा था १३
पांचालके राजा यज्ञसेनका पुत्र जैसे द्रोणका नाश करनेके लिये
उत्पन्न हुआ था, ऐसे ही महात्मा द्रोणने भी धृष्टद्युम्नका नाश
करनेके लिये अश्वत्थामाको उत्पन्न किया था, उस अश्वत्थामा
ने क्रूर, पापी, भयङ्कर और धृष्टद्युम्नको, आचार्यका नाश कर
डालनेकी बात सुनकर क्या कहा था, वह मुझे सुना ॥ १४—१५ ॥
एकसौ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६४ ॥

सञ्जय उवाच । छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा ।
 वाष्पेणापूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभा ॥ १ ॥ तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र
 वपुर्दीप्तमदृश्यत । अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये ॥ २ ॥
 अश्रुपूर्णं ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः । उवाच कोपान्निःश्वस्य
 दुर्योधनमिदं वचः ॥ ३ ॥ पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपा-
 यिज्ञः । धर्मध्वजवतां पापं कृत् तद्विदितं मम ॥ ४ ॥ अनार्यं सृष्ट-
 शंसञ्च धर्मपुत्रस्य मे श्रुतम् । युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवौ जयपरा-
 जयौ ॥ ५ ॥ द्वयमेतद्भवेद्राजन् वधस्तत्र प्रशस्यते । न्यायवृत्तवधो
 यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत् ॥ ६ ॥ न स दुःखाय भवति तथा
 दृष्टो हि स द्विजैः । गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः ७

सञ्जयने कहा, कि-हे नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! पापी धृष्टद्युम्नने
 पिता द्रोणाचार्यको कपटसे मार डाला, यह समाचार सुनकर अश्व-
 तथामा क्रोधमें भर रोने लगा ॥ १ ॥ और हे राजेन्द्र ! मलयके
 समय प्राणियोंका संहार करना चाहनेवाले यमराजका शरीर जैसा
 तप्तमाता हुआ दीखता है तैसे ही क्रोधमें भरेहुए अश्वत्थामाका
 शरीर प्रदीप्त दीखने लगा ॥ २ ॥ अश्वत्थामाने आँसुओंसे भरे
 नेत्रोंको बार-बार पोंछतेहुए कोपके साथलंबे साँस लेकर दुर्योधनसे
 यह बात कही, कि-॥ ३ ॥ हे दुर्योधन ! मेरे पिताने रणमें हाथमेंसे
 शस्त्र डालदिये थे, तो भी क्षुद्र लोगोंने और धर्मध्वज धृष्टद्युम्नने
 उनको मार डाला ! ओः ! उसके इस अनार्य, क्रूर और पापकर्मको
 मैंने जानलिया तथा युधिष्ठिरने जो अनार्य और क्रूर कर्म किया है
 उसको भी मैंने सुनलिया ! हे राजन् ! युद्ध करनेवालोंकी रणमें
 जीन या हार दोनोंमेंसे एक होता ही है, रणमें योधाओंका युद्ध
 करतेहुए यदि नीतिके अनुसार मरण होनाय तो वह उत्तम
 माना जाता है ४-६ उसके लिये दुःख नहीं होता है, ऐसा प्राचीन
 पण्डित कहते हैं, हे पुरुषव्याघ्र ! मेरे पिता रणमें मरण पाकर

न शोच्यः पुरुषव्याघ्र यस्तदा निधनं गतः । यत्तु धर्मप्रवृत्तः सन्
 केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ८ ॥ पर्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि
 कुन्तति । मयि जीवति यत्तातः केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ९ ॥ कथ-
 मन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् । कामात् क्रोधादया-
 ज्ञानाद्दर्पाद्बाल्येन वा पुनः ॥ १० ॥ विधर्मकाणि कुर्वन्ति तथा
 परिभवन्ति च । तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम् ? अवज्ञाय
 च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना । तस्यानुबन्धं द्रष्टामां धृष्टद्युम्नः
 सुदारुणम् ॥ १२ ॥ अकार्यं परमं कृत्वा मिथ्यातादी स पाण्डवः ।
 यो ह्यसौ छद्मनाचार्यं शस्त्रं संन्यासयत्तदा १३ तस्याद्य धर्मराजस्य
 भूमिः पास्यति शोणितम् । शपे सत्येन कौरव्य इष्टापूर्त्तेन चैव ॥ १४

अवश्य ही स्वर्गमें गये हैं ॥ ७ ॥ इसलिये उनके मरणके लिये
 मुझे शोक नहीं करना चाहिये, परन्तु मेरे पिता धर्मके अनुसार
 दत्ताव करनेवाले थे, तो भी उस दुष्ट पापीने सब योधाओंके
 सामने मेरे पिताके केश पकड़कर खेंचे, यह बात मेरे धर्मस्थानोंको
 काटरही है, मैं जीवित बैठा हूँ, तो भी वैगीने मेरे पिताके केश
 पकड़कर खेंचे ! तो अब दूसरे पिता पुत्रोंको किसलिये चाहेंगे ?
 जैसे मनुष्य कामपे, क्रोधसे, हर्षसे अथवा अज्ञानमें अधर्म करता
 है अथवा दूसरेका तिरस्कार करता है, ऐसे ही क्रूर कर्म करनेवाले
 दुष्टात्मा धृष्टद्युम्नने भी मेरा अपमान करके वास्तवमें बड़े अधर्मका
 काम किया है ! धृष्टद्युम्न भी अब इस कर्मके अतिदारुण फलको
 अवश्य ही भोगेगा ॥ ८-१२ ॥ और धर्मराजने भी असत्य बोल
 कर बड़ा ही बुरा काम किया है, उन्होंने भी उस समय कपटसे
 आचार्यको धोखा देकर उनके हाथमेंसे शस्त्र डलवा दिये थे १३
 इसलिये अब यह पृथ्वी धर्मराजके रुधिरको पियेगी हे कौरववंशी
 राजन ! मैं सत्यकी तथा बाबड़ी कुए आदि इष्टापूर्त्तकी शपथ
 खाकर कहता हूँ, कि-मैं सकल पाँचालोंका नाश किये बिना

अहन्ता सर्वपञ्चालान् जीवेयं न कथञ्चन । सर्वोपायैर्यतिष्यमि
 पञ्चालानामहं वधे ॥ १५ ॥ धृष्टद्युम्नञ्च समरे हन्ताहं पाप-
 कारिणम् । कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन च ॥ १६ ॥
 पञ्चालानां वधं कृत्वा शान्तिं लब्धास्मि कौरवाः । यदर्थं पुरुषव्याघ्र
 पुत्रानिच्छान्ति मानवाः । ॥ १७ ॥ प्रेत्य चेह च सम्प्राप्तास्त्रा-
 यन्ते महतो भयात् । पित्रा तु मम सावस्था प्राप्ता निर्वन्धुना
 यथा ॥ १८ ॥ मयि शल्यप्रतीकाशे पुत्रे शिष्येऽत्र जीवति । धिक्
 मयास्त्राणि दिव्यानि धिक्वाहू धिक्पराक्रमम् ॥ १९ ॥ यं स्म
 द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहणमाप्नवान् । स तथाहं करिष्यामि यथा
 भरतसत्तम ॥ २० ॥ परलोकं गनस्यापि भविष्याम्यनृणः पितुः ।

कदापि जीवित नहीं रहूँगा, अब आगेको सकल उपायोंसे उनका
 नाश करनेके लिये उद्योग करूँगा ॥ १४-१५ ॥ कोमल या क्रूर
 (अच्छा या बुरा, धर्मका या अधर्मका) हर एक काम करके मैं
 रणभूमिमें पायी धृष्टद्युम्नको मार डालूँगा ॥ १६ ॥ हे कुस्वशी
 राजे ! सकल पांचाल राजाओंका नाश करनेके बाद ही मैं
 शान्त होकर बैठूँगा, हे पुरुषसिंह ! मनुष्य इस जगत्में जिस
 कामके लिये पुत्रको चाहते हैं, वह यही है, कि-इस लोकमें तथा
 मरनेके बाद स्वर्गलोकमें गये हुए पितरोंकी महाभयसे रक्षा करें,
 परन्तु यहाँ तो उससे उल्टा ही काम हुआ है मैं पहाडकी समान
 ऊँचा पुत्र और शिष्य जीता बैठा हूँ तो भी मेरे पिताकी पुत्रहीन
 पिताकीसी दुर्दशा हुई ! इस दशामें मेरे दिव्य अस्त्रोंको, दोनों
 भुजइएहोंको और पराक्रमको धिक्कार है ॥ १७-१८ ॥ मुझ सरीखे
 पुत्रके होते हुए भी मेरे पिताके केश खिचनेका अवसर आया, इस
 लिये हे भरतसत्तम ! अब मैं ऐसा काम करूँगा, कि-जिससे
 परलोकवासी हुए अपने पिताके ऋणसे छूट जाऊँ, आर्यपुरुषोंको
 अपनी प्रशंसा कभी नहीं करनी चाहिये, परन्तु आज अपने

(१३०४) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौषिचानवेवां

आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित् स्तुतिरात्मनः ॥ २१ ॥ पितृर्व
धर्ममृष्यस्तु वक्ष्याम्यथेह पौरुषम् । अथ पश्यन्तु मे वीर्यं पांडवाः
सज्जनाद्वेनाः ॥ २२ ॥ मृदूनतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ।
न हि देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः ॥ २३ ॥ अथ शक्ता
रणे जेतुं रथस्थं मां नरपथाः । मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्नर्जुना-
द्वास्त्रवित् क्वचित् ॥ २४ ॥ अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवा-
शुमान् । प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः ॥ २५ ॥ भृश-
मिष्वसनादथ मत्प्रयुक्ता महाहवे । दर्शयन्तः शरा वीर्यं प्रमथि-
ष्यन्ति पाण्डवान् ॥ २६ ॥ अथ सर्वा दिशो राजन् धाराभिरिव
संकुलाः । आवृताः पत्रिभिस्त्रीक्ष्णैर्दृष्टारो मामकैरिह ॥ २७ ॥
विकिरञ्छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान् । शत्रून्निपातयिष्यामि

पिताका मरण मुझसे सहा नहीं जाता इसलिये ही मैं उसके आवेशमें
अपना पराक्रम तुम्हें कहकर सुनाता हूँ, आज मैं रणमें की संव
सेनाका संहार करके प्रलयकालका स्वरूप दिखाऊँगा और कृष्ण
तथा पाण्डव भी आज मेरे शारीरिक बलको अच्छे प्रकारसे
देखलें ! मैं जिस समय रथमें बैठकर रणमें जाऊँगा, उस समय
देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस तथा महापुरुष मेरा पराजय नहीं
कर सकेंगे, क्योंकि-इस लोकमें मुझसे वा अर्जुनसे बढ़कर अस्त्र-
विद्याका जाननेवाला कोई नहीं है ॥ २०-२४ ॥ जैसे किरणोंवाले
पदार्थोंमें सूर्य तेजस्वी है, तैसे ही प्रकाशवान् पदार्थोंमें मैं तेजस्वी
हूँ मैं सेनामें खड़ा होकर दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करूँगा ॥ २५ ॥
और आज अतिशीघ्रतासे छोड़ेहुए मेरे बाण महारणमें अपना
पराक्रम दिखातेहुए पाण्डवोंका संहार करदालेंगे ॥ २६ ॥ और
हे राजन् ! आज मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे ढकीहुई दिशायें
जलकी धाराओंसे भरी हुई सी दीखेंगी ॥ २७ ॥ जैसे महापवन
वृत्तोंका संहार करदालता है, तैसे ही मैं रणमें चारों ओरको

महाबात इव दुमान् ॥ २८ ॥ न हि जानाति बीभत्सुस्तदस्त्वं न जनार्दनः । न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥ न पार्श्वतो दुरात्मासौ न शिखण्डी न सात्यकिः । यदिदं मम कौरव्य सकल्यं सनिवर्त्तनम् ॥ ३० ॥ नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् । उपहारः पुरा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थितः ॥ ३१ ॥ तं स्वयं प्रतिगृह्णाथ भगवान् स वरं ददौ । वव्रे पिता मे परममस्त्रं नारायणं ततः ॥ ३२ ॥ अथैनमब्रवीद्राजन् भगवान् देव-सत्तमः । भविता स्वत्सपो नान्यः कश्चिद्युधि नरः क्वचित् ॥ ३३ ॥ न त्विदं सहसा ब्रह्मन् प्रयोक्तव्यं कथञ्चन । न ह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्त्तते ॥ ३४ ॥ न चैतच्छक्यते शातुं कं हि वध्ये-

वाण मारकर चारों ओरसे भयंकर स्वरवाले शत्रुओंका संहारकर डालूंगा ॥ २८ ॥ हे दुर्योधन ! नारायणास्त्रको छोड़नेकी और लौटा लेनेकी विद्या तुझे आती है, यह अस्त्र अर्जुन, कृष्ण, भीमसेन, नकुल, सहदेव, राजा युधिष्ठिर, दुष्टात्मा धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सात्यकी इनमेंसे किसीके भी नहीं आता है ॥ २९-३० ॥ पहले मेरे पिताने विधिपूर्वक नारायणदेवको प्रणाम करके वेदमन्त्रोंसे उनकी पूजा की थी ॥ ३१ ॥ तब भगवान् नारायणने स्वयं उनके ऊपर अनुग्रह करके उनसे वर माँगनेका कहा था, तब मेरे पिताने भगवान् नारायणसे नारायणास्त्र नामके परमअस्त्रकी याचना की थी ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् नारायणने स्वयं उनके ऊपर प्रसन्न होकर कहा था, कि-युद्धमें कोई भी मनुष्य तुम्हारी-समान नहीं होगा, लो तुम्हें मैं यह अस्त्र देता हूँ ॥ ३३ ॥ परन्तु हे ब्राह्मण ! इस अस्त्रको तू किसीके ऊपर बिना विचारे एकायकी न छोड़ना, क्योंकि-यह अस्त्र बैरीका नाश किये बिना पीछेको नहीं लौटता है ॥ ३४ ॥ तथा हे समर्थ द्रोण ! यह अस्त्र रणमें किसका नाश करेगा, यह भी कोई नहीं जान सकता, यह

दिति प्रभो । अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैतत् प्रयोजयेत् ३५
 अथ संख्ये रथस्यैव अस्त्राणाञ्च त्रिसर्जनम् । प्रयाचतोऽच
 शत्रूणां गपनं शरणस्य च ॥ ३६ ॥ एते प्रशमने योगा मदास्त्रस्य
 परन्तप । सर्वथा पीडितो हिंस्यादवध्यान् पीडयन्नये ॥ ३७ ॥
 तज्जग्राह पिता मद्यमव्रवीच्चैव स प्रभुः । त्वं वधिष्यसि दिव्यानि
 शस्त्रवर्षाण्यनेकशः ॥ ३८ ॥ अनेनास्त्रेण संग्रामे तेजसा प्रज्वलि-
 ष्यसि । एवमुक्त्वा स भगवान् दिवपाचक्रमे प्रभुः ॥ ३९ ॥ एत-
 न्नारायणादस्त्रं तत् प्राप्तं पितृवन्धुना । तेनाहंपाण्डवांश्चैव पञ्चाला-
 न्मत्स्यकेकयान् ॥ ४० ॥ विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवासुरान् ।
 यथा यथाहमिच्छेयं तथा भूत्वा शरा मम ॥ ४१ ॥ निपतेयुः सपत्नेषु

अस्त्र तो अवध्यका भी नाश करहालता है, इसलिये एकायकी
 इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे परन्तप ! यह महा
 अस्त्र रणमें रथहितका, शस्त्रको त्यागनेवालेका, मेरी रक्षा करो
 ऐसी प्रार्थना करनेवालेका और शरणागत वैरीका नाश नहीं करता
 है, किन्तु स्वयं गिर जाता है, इसलिये मनुष्य जब महाभयानक
 पीडामें आपड़े तब ही वह रणमें सर्वथा अवध्य पुरुषको भी अच्छे
 प्रकारसे पीडित करके इस नारायणास्त्रसे उसका नाश करे ३६-३७
 ऐसा कहकर मेरे पिताको नारायण अस्त्र दिया था, मेरे
 समर्थ पिताने उनसे नारायणास्त्र लेकर उसका प्रयोग करना
 उन्होंने मुझे सिखादिया था, नारायणने मेरे पिताको अस्त्र देकर
 कहा था, कि—तू इस अस्त्रसे संग्राममें दूसरे सब अस्त्रोंका संहार
 करसकेगा तथा महासंग्राममें अग्निकी समान तेजस्वी होकर दिपने
 लगेगा, इतना कहकर भगवान् नारायण स्वर्गमें चलेगये ३८-३९
 यह नारायणास्त्र मुझे अपने पितासे मिला है और इस अस्त्रसे,
 जैसे इन्द्र रणमें असुरोंको भगादेता है तैसे ही मैं पांडव, पांचाल,
 मत्स्य और केकय राजाओंको रणमेंसे भगादूंगा, हे भरतवंशी

विक्रमत्स्वपि भारत । यथेष्टमश्वपर्वेण प्रवर्षिष्ये रणे स्थितः ४२
 अयोमुखैश्च विहगैर्द्रात्रयिष्ये रथोत्तमान् । परश्वधांश्च विविशानुत्स-
 च्येऽहमसंशयम् ॥ ४३ ॥ सोहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः ।
 शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥ ४४ ॥ मित्रब्रह्म-
 गुरुद्वेषी जाल्मकः सुविगर्हितः । पाञ्चालापसदश्चाद्य न मे जीवनं
 विपोक्ष्यते ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्त्तत वाहिनी ।
 ततः सर्वे महाशंखान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः ॥ ४६ ॥ भेरीश्चाभ्यहनन्
 हृष्टा दिण्डिमार्च सहस्रशः । तथा ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपी-
 ङिता ॥ ४७ ॥ स शब्दस्तुमुलः खं द्वां पृथिवीञ्च व्यनादयन् ।
 तं शब्दं पाण्डवाः श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ४८ ॥ समेत्य रथिनां

राजन् ! मैं जैसा करना चाहूँगा, उसप्रकार ही मेरे बाण, वैरी
 चाहे जैसा पराक्रम करेंगे, तब भी उनके ऊपर पड़ेंगे और मैं
 रणमें खड़ा होकर अपनी इच्छानुसार पत्थरोंकी वर्षा भी
 करूँगा ॥ ४०-४२ ॥ और आकाशचारी लोहेके मुखवाले बाण
 मारकर महारथियोंको रणमेंसे भगादूँगा और मैं तेज कियेहुए
 फरसे भी वैरियोंके ऊपर अवश्य छोड़ूँगा ॥ ४३ ॥ और नारा-
 यणास्त्र नामका महाअस्त्र मारकर पाण्डवोंका अपमान करता
 हुआ शत्रुओंका संहार करूँगा ॥ ४४ ॥ मित्र, ब्राह्मण और गुरुओं
 से द्रोह करने वाला, धूर्त अत्यन्त निन्दाका पात्र और पंचालोंमें
 अधम धृष्टद्युम्न भी मेरे पाससे बचकर नहीं जायगा ॥ ४५ ॥
 अश्वत्थामाकी ऐसी बातोंको सुनकर उसकी सेना उसके चारों
 ओर आकर खड़ी होगयी, उस सेनामेंके पुरुष हर्षमें भरकर बड़े-
 शह्र हजारों भेरी तथा हजारों दिण्डिम बजाने लगे तथा घोड़ोंकी
 टापें और रथोंके पहियोंकी धारसे पीड़ित होकर पृथ्वी गाजने
 लगी, उन सर्वोंके इकट्ठे हुए तुमुत्त शब्दने आकाश और पृथ्वी
 को भरकर गुञ्जार दिया, मेघकी गर्जनाकी समान इस ध्वनिने।

(१३०८) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौखियानवेवाँ

श्रेष्ठाः सहिताश्चाप्यमन्त्रयन् । तथोक्त्वा द्रोणपुत्रोऽपि वायुं प-
स्पृश्य भारत ॥४६॥ प्रादुश्चकार तदिव्यमस्त्रं नारायणं तदा ॥५०॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्व-
त्थामक्रोधे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

सञ्जय उवाच । प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे प्रभो ।
प्राचात् सपृषतो वायुरनन्त्रे स्तनयितुमान् ॥ १ ॥ चचाल पृथिवी
चापि जुक्षभे च महोदधिः । प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च गंतुं तत्र समुद्रगाः २
शिखराणि व्यशीर्यन्त गिरीणां तत्र भारत । अपसव्यं मृगाश्चैव
पाण्डुपुत्रान् प्रचक्रिरे ॥ ३ ॥ तपसा चावकीर्यन्त सूर्यश्च कलुषो-
ऽभवत् । सम्पतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि महृष्टवत् ॥ ४ ॥ देव-
दानवगन्धर्वास्त्रस्ताश्चासन् विशाम्पते । कथं कथाभवत्तीव्रा हृष्टा
तद्व्याकुलं महत् ॥५॥ व्यथिताः सर्वराजानस्त्रस्ताश्चासन् विशा-

सुनकर रथियामें श्रेष्ठ पाण्डव इकट्ठे होकर विचार करने लगे,
(कि-इस कोलाहलका क्या कारण है ?) हे भरतवंशी राजन् !
द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने दुर्योधनसे ऐसा कहकर जलसे आच-
मन किया और नारायणअस्त्र नामके दिव्य अस्त्रको प्रकट
किया ॥ ४६-५० ॥ एक सौ पिचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१६५॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! जब नारायणास्त्र प्रकट
होगया उससमय बादलोंसे हीन स्वच्छ आकाशमें मेघकी गर्जना
होने लगी १ पृथ्वी काँप उठी, महासागर खलभला उठा, समुद्रकी
ओरको जानेवाली नदियें पीछेको अपने स्रोतोंकी ओरको उलटी
बहनेलगीं, हे भरतवंशी राजन् ! पर्वतोंके शिखर टूट कर नीचेको
खिसकने लगे, हिरन पाण्डवोंकी सेनाके बाई ओरको जानेलगे ३
चारों ओर अन्धकार फैल गया, सूर्य मलिन होगया, मांसाहारी
प्राणी बड़े हर्षमें भरगये तथा रणमेंको आने लगे, महान् नाराय-
णास्त्रको देखकर देवता, दावन और गन्धर्व भयभीत होगये और

म्पते । तद् दृष्ट्वा घोररूपन्तु द्रोणैरस्त्रं भयावहम् ॥६॥ धृतराष्ट्र उवाच ।
निवर्त्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे । मृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वध-
ममृष्यता ॥ ७ ॥ कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे । को मन्त्रः
पाण्डवेष्वंसीत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ८ ॥ सञ्जय उवाच । मागेव
विद्वतां दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् युधिष्ठिरः । पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वा-
ञ्जु नमथाम्रवीत् ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर उवाच । आचार्य्ये निहते द्रोणे
धृष्टद्युम्नेन संयुगे । निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे ॥ १० ॥
नाशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो धनञ्जय । आत्मत्राणे मतिं कृत्वा
माद्रवन् कुरवो रणात् ॥ ११ ॥ केचिद् भ्रान्तै रथैस्तूर्ण्य निहतैः
पार्थिव्यन्तृभिः । विपताकध्वजच्छत्रैः पार्थिवाः शीर्णकूवरैः ॥ १२ ॥

क्या कुत होकर कहने लगे, अब कैसी करें ? ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे राजन् !
और सब राजे भी अश्वस्थामाके भयानक अस्त्रोंको देख कर
भय तथा त्रास पागये ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय !
अश्वस्थामा अपने पिताके वधको नहीं सहसका और शोकसे बहुत
ही सन्ताप पाकर उसने अपनी सेनाओंको पीछेको लौटाया और
कौरवोंने पांडवोंके ऊपर चढ़ाया करदी उस समय पाण्डवोंने
धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये क्या विचार किया था, यह मुझे सुना ॥ ८ ॥
सञ्जयने उत्तर दिया, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! राजा युधिष्ठिरने
तुम्हारे पुत्रोंको पहलेसे ही भागते हुए देखा था, तो भी जब
उन्होंने कौरवी सेनाका घोर शब्द सुना, तब राजा युधिष्ठिरने अर्जुन
से यह बात बूझी कि-॥ ९ ॥ हे अर्जुन ! जैसे इन्द्रने होथमें वज्र
लेकर वृत्रासुरको मार डाला था, तैसे ही धृष्टद्युम्नने भी होथमें तल-
वार लेकर रणमें द्रोणको मार डाला, इससे कौरव उदास हो
गये थे और रणमें विजयकी आशा छोड़कर अपनी रक्षा करनेका
विचार करते-भाग गये थे १०-११ उस समय सब रथोंकी ध्वजायें,
छत्र, पताकायें ढाँच आदि टूट गये थे, पृष्ठरक्षक और सारथी मर

(१३१०) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौद्वियानवेवाँ]

भग्ननीडैराकुलाश्वैः मारुहान्यान् विचेतसः । भीताः पादैर्हयान्
केचित् त्वरयन्तः स्वयं रथान् ॥ १३ ॥ भयात्तयुगचक्रैश्च व्या-
कुप्यन्त समन्ततः । रथान्विशीर्णान्मुत्सृज्य पद्भिः केचिच्च विद्रुताः १४
हयपृष्ठगताश्चान्ये कृप्यन्तेऽर्धच्युतासनाः । गजस्कन्धैश्च संरयूता ना-
राचैश्चलितासनाः ॥ १५ ॥ क्षरात्तैर्विद्रुतैर्नागैर्हताः केचिद्दिशो दश ।
विशस्त्रकषचाश्चान्ये बाह्वनेभ्यः क्षितिङ्गताः ॥ १६ ॥ संद्विन्ना नेमि-
भिरश्चैव मृदिताश्च हयद्विपैः । क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायन्ते परे
भयात् ॥ १७ ॥ नाभिजानन्ति चान्योऽन्यं कश्मलाभिहतौजसः ।
पुत्रान् पितॄन् सखीन् भ्रातॄन् समारोप्य दृढक्षतान् ॥ १८ ॥ जलेन
क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि । अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते

गए थे, उनके भीतरी भाग, धुरी, पहिये और जुए भी टूटगए थे
कितने ही राजे उस समय वेगके साथ इधर उधरको दौड़ते हुए
रथों पर चढ़कर भागगए थे और कोई२ रथी टूटेहुए रथोंको छोड़
कर पैरोंके प्रहारसे घोड़ोंको हाँकते हुए रणमेंसे भाग गये थे और
कितनोंहीके घोड़ोंके ऊपरसे आधी काठी खिसकगयी थीं तो भी
वे उस दशामें ही घोड़ों पर बैठेहुए रणमेंसे भागे चले जारहे थे,
कितने ही वीर पुरुष अपने पत्तके बाणोंके प्रहारसे आसनों परसे
गिरपड़े थे और हाथियोंके कन्धोंसे चिपटे हुए थे और तेज बाणोंके
प्रहारोंसे पीड़ा पाकर भागते हुए हाथी उनको दशों दिशाओंमेंको
खेंचकर लेगये थे और इस समय शस्त्रोंसे तथा कवचोंसे हीन
हुए अनेकों वीर पुरुष बाहनों परसे पृथ्वी पर गिरगये थे और
रथोंके पहियोंसे कट गए थे और हाथियोंके तथा घोड़ोंके
पैरोंसे कुचलगये थे, कितने ही दुःखके कारण सामर्थ्यहीन
होगये थे और एक दूसरेको न पहचाननेके कारण ओ
बाप ! अरे बेटे ! इस प्रकार चिन्ताते हुए भयभीत होकर
रणमेंसे भागरहे थे और कितने ही योधा अत्यन्त घायल हुए

द्रोणे द्रुतं वल्लम् ॥ १६ ॥ पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे ।
 हयानां हेषतां शब्दः कुञ्जराणां च वृंहताम् ॥ २० ॥ रथनेमि-
 स्वनैश्चात्र विमिश्रः श्रूयते महान् । एते शब्दा भृशं तीव्राः प्रवृत्ताः
 कुरुसागरे ॥ २१ ॥ मुहुर्मुहुर्दूरिष्यन्ते कम्पयन्त्यपि मामकान् ।
 य एष तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ २२ ॥ सेन्द्रानप्येष
 लोकांस्त्रीन् ग्रसेदिति मतिर्मम । मन्ये वज्रधरभ्येष निनादो भैरव-
 स्वनः ॥ २३ ॥ द्रोणे हते कौरवार्थं व्यक्तमभ्येति वासवः । प्रहृष्ट-
 रोमकूपाश्च संविन्ना रथपुङ्गवाः ॥ २४ ॥ धनञ्जय गुरुं श्रुत्वा तत्र
 नादं विभीषणम् । क एष कौरवान् दीर्णानवस्थाप्य महारथः २५

पिता, पुत्र भाई, और मित्र आदिको रणमेंसे दूसरे स्थान पर
 लेजाकर उनके शरीरों परसे कवच उतार उनके ऊपर जल छिड़क
 रहे थे, हे अर्जुन ! द्रोणके मारे जाने पर ऐसी दशामें पड़कर
 कौरवोंकी सेना रणमेंसे भागगयी थी ॥ १२-१६ ॥ वह सेना
 अब पीछेको कैसे लौट रही है ? इस बातको यदि तू जानता हो
 तो सुझे बता, घोड़े दिनहिना रहे हैं, हाथी चिंघाड़ रहे हैं, रथके
 पहियोंकी घरघराहट होरही है, इन सबोंका मिलाहुआ यह महा-
 शब्द सुनायी आरहा है, कौरवोंके सेनासागरमें बड़े ही तीव्र
 शब्द होरहे हैं ॥ २०-२१ ॥ ये शब्द बारम्बार होरहे हैं और मेरे
 योधाओंको कम्पायमान किये देते हैं, यह ऐसा तुमुल शब्द सुनायी
 आरहा है, कि-सुनकर रोमाश्च खड़ेहुए जाते हैं, मुझे तो ऐसा
 प्रतीत होता है, कि-यह शब्द इन्द्रसहित तीनों लोकोंको निगल
 जायगा, मेरी समझमें तो यह भयानक शब्द इन्द्रका ही सुनायी
 आरहा है ॥ २२-२३ ॥ मैं समझता हूँ, कि-द्रोणाचार्यके मारे
 जानेसे कौरवोंका पक्ष लेकर राजा इन्द्र प्रकटरूपसे चढ़कर आरहा
 है, हे अर्जुन ! महाभयानक और बड़ीभारी गर्जनाको सुनकर
 हमारे महारथियोंके रोमाश्च खड़े होगये हैं और वे घबड़ागये हैं,

निवर्त्तयति युद्धार्थं मृधे देवेश्वरो यथा । अर्जुन उवाच । उद्यम्या-
त्मानमुग्राय कर्मणे वीर्य्यमास्थिताः ॥ २६ ॥ धमन्ति कौरवाः शंखान्
यस्य वीर्य्यमुपाश्रिताः । यत्र ते संशयो राजन् न्यस्तशस्त्रे गुरो
हते ॥ २७ ॥ धार्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति हि । हीमन्तं
तं महाबाहुं मत्तद्विरदगामिनम् ॥ २८ ॥ व्याघ्रास्यमुग्रकर्माणं कुरु-
णामभयङ्कुरम् । यस्मिन् जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम् २९
ब्राह्मणेभ्यो महाहैभ्यः सोऽश्वत्थामैष गज्जति । जातमात्रेण वीरेण
येनोच्चैःश्रवसा इव ॥ ३० ॥ द्वेपता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकला-
स्त्रयः । तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतं नाम तस्याकरोत्तदा ॥ ३१ ॥ अश्व-
त्थामेति सोऽजीष शूरो नदति पाण्डव । यो ह्यनाथ इवाक्रम्य पार्षतेन

यह इन्द्रकी समान कौनसा महारथी भागतेहुए कौरवोंको खड़ा
रखकर युद्ध करनेके लिये पीछेको लौटा रहा है? अर्जुनने कहा,
कि-हे महाराज! जिन्होंने शस्त्र त्याग दिये थे ऐसे गुरु द्रोणाचार्यके
रणमें मारेजाने पर भागतेहुए कौरवपक्षके योधाओंको खड़ा रख
कर कौन सिंहनाद कर रहा है, ऐसा आपको जो सन्देह हुआ है
वह ठीक है, कौरव जिसके पराक्रमका अवलम्ब लेकर महाउग्र
कर्म करनेको तयार हो बड़े जोरसे शङ्ख बजार रहे हैं, उस मदमत्त
हाथीकी समान चाल चलनेवाले, लज्जाशील, उग्रकर्म करनेवाले,
व्याघ्रकेसे मुखवाले, महाबाहु और कौरवोंको अभय देनेवाले
पुरुषकी बात मैं तुम्हें सुनाता हूँ, जिसके जन्मके समय उसके
पिताने एक हजार गौएँ बड़ी योग्यतावाले पूजनीय ब्राह्मणोंको
दानमें दी थीं वह महात्मा अश्वत्थामा गरज रहा है, जिस वीरने
जनपके समय उच्चैःश्रवा घोड़ेकी समान हिनहिनाहट करके पृथ्वीको
तथा तीनों लोकोंको कम्पायमान कर दिया था, उसको सुनकर
किसी अदृश्य रहनेवाले प्राणीने उसका नाम अश्वत्थामा रखवा
या, हे युधिष्ठिर! वह वीर अश्वत्थामा ही गरज रहा है, ऋष्ट्युम्नने

हतस्तदा ॥ ३२ ॥ कर्मणा सुदृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः । गुरुं
मे यत्र पाञ्चान्यः केशपत्ते परामृशत् ॥ ३३ ॥ तन्न जातु क्षमेद् द्रौणि-
ज्जानन् पौरुषमात्मनः । उपचीर्णो गुरुमिध्या भवता राज्यकार-
णात् ॥ ३४ ॥ धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान् कृतः । चिरं
स्थास्यति चाकीर्त्तिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३५ ॥ रामे वालिवधा-
द्यद्देवं द्रोणे निपातिते । सर्वधर्मोपपन्नोऽयं मम शिष्यश्च पांडवः ३६
नायं वक्ष्यति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि । स सत्यकंजुकं नाम
प्रविष्टेन ततोऽनृपम् ॥ ३७ ॥ आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर
इत्युत । ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ॥ ३८ ॥ आसीत्
सुविहलो राजन् यथा दृष्टस्त्रया विभुः । स तु शोकसमाविष्टो

द्रोणाचार्यको अनाथकी समान केग पकड़ कर बड़ी ही क्रूरताभरी
रीतिसे मार डाला है, इसलिये अब अश्वत्थामा पिताके वैरका
बदला लेनेके लिये, नाथ (हिमायती) की समान आकर खड़ा हुआ
है, धृष्टद्युम्न ने मेरे गुरुकी चोटी पकड़ कर उनको पटक दिया था,
उस अपराधको, अपने पराक्रमको जाननेवाला अश्वत्थामा कभी
नहीं सहसकेगा, तुम धर्मको जानते हो, तो भी तुमने राज्यके
लोभवश गुरुसे मिथ्या बात कही, यह तुमने धर्मको जाननेवाले
बन कर बड़ा भारी अधर्म किया है, इसलिये जैसे वालिके वधसे
रामकी सचराचर लोकमें अपकीर्त्ति हुई है, ऐसे ही द्रोणको
मरवा देनेके कारण तुम्हारी भी सचराचर त्रिलोकीमें चिरकाल
तक अपकीर्त्ति ही रहेगी, यह पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर सब धर्मोंको
जाननेवाला है और मेरा शिष्य है तथा मिथ्या नहीं बोलता है,
यह विचार कर द्रोणाचार्यने तुम्हारा विश्वास किया था, परन्तु
तुमने सत्यके कञ्चुक (चोगे) में अर्थात् सत्यके आभासयुक्त
असत्यमें प्रवेश करके आचार्यसे कह दिया, कि-‘नरो वा कुञ्जरो
वा’ इस पर समर्थ द्रोणाचार्य ममता और चेतनारहित होगये,

विमुखः पुत्रवत्सलः ॥ ३६ ॥ शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शस्त्रेण
घातितः । न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ॥ ४० ॥ रक्त-
त्विदानीं सापात्यो यदि शक्नोति पार्षतम् । ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण
क्रद्धेन हतबन्धुना ॥ ४१ ॥ सर्वे वयं परित्रातुं न शक्यामोऽथ पार्ष-
तम् । सौहादं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः ॥ सोऽप्य केशग्रहं
श्रुत्वा पितुर्धृदयति नो रणे ॥ ४२ ॥ विक्रोशमाने हि मयि भृश-
माचार्यगृहिणि । अपाकीर्य स्वयं धर्मं शिष्येण निहतो गुरुः ४३
यदागतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरञ्च नः । तस्येदानीं विकारोऽयम-
धर्मोयं कृतो ममान् ॥ ४४ ॥ पितेव नित्यं सौहादीत् पितेव हि
च धर्मतः । सोऽन्यकालस्य राज्यस्य कारणाद्धातितो गुरुः ॥ ४५ ॥

उन्होंने रथमेंसे शस्त्र ढालदिये और पुत्रके ऊपर प्रेम रखनेवाले
द्रोण पुत्रके शोकसे अचेत और विह्वल होगये, उस समय उनको
मैंने देखा था, इसप्रकार तुमने सनातनधर्मको त्यागकर शस्त्रोंका
त्याग करनेवाले गुरुको अधर्मसे मरवाढाला है, इसलिये अब यदि
तुम मंत्रियोंसहित धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेकी शक्ति रखते हो तो
उसकी रक्षा करो, क्योंकि-पिताके मरणसे कोपमें भरेहुए अश्व-
त्थामाने उसके ऊपर चढ़ाई करके उसको घेरलिया है ॥ २४-४१ ॥
हम सब तो आज धृष्टद्युम्नकी रक्षा कर नहीं सकेंगे, जो अश्वत्थामा
सब प्राणियोंके ऊपर प्रेम करनेवाला है और दिव्य पुरुष है वह
आज पिताकी चोटी खेंचनेकी बात सुनकर रणमें हम सबोंको
जलाकर भस्म करढालेगा ॥ ४२ ॥ आचार्यके ऊपर प्रेम रखनेवाला
मैं बार-बार निषेध करता रहा, तो भी शिष्यने अपने धर्मको त्याग
कर गुरुको मारझाला ॥ ४३ ॥ इस सबका कारण यह है कि-
हमारी बहुतसी आयु बीतगई, थोड़ीसी शेष रही है, उसके कारण
से अब हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं रही है, उस विकारके कारणसे
ही हमने यह महा अधर्म किया है ॥ ४४ ॥ जो गुरु सदा हमारे

धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च विशाम्पते । विष्टा पृथिवी सर्वा
सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥ ४६ ॥ सम्प्राप्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतः
सततं परैः । अदृणीत सदा पुत्रान्ममेवाभ्यधिकं गुरुः ॥ ४७ ॥
अवेक्षमाणस्त्वां मां च न्यस्तास्त्रचाहवे हतः । न त्वेनं युध्यमानं वै
हन्यादपि शतकतुः ॥ ४८ ॥ तस्याचार्यस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्यो-
पकारिणः । कृतो हनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लघुबुद्धिभिः ॥ ४९ ॥
अहो वत महत्यापं कृतं कर्म मुदारुणम् । यद्वाज्यसुखलोभेन
द्रोणोऽयं साधु घातितः ॥ ५० ॥ पितृन् भ्रातृन् सुतान् दारान्
जीवितञ्चैव वासविः । त्यजेत् सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येवं हि मे
गुरुः ॥ ५१ ॥ स मया रायङ्कामेन हन्यमानो ह्युपेक्षितः । तस्मा-

ऊपर पिताकी समान प्रेम रखते थे और धर्मसे अपना पुत्र समझते
थे उन गुरुको अपने थोड़ेसे दिनोंके राज्यके लिए मरवा दिया । ४५
हे राजन् ! धृतराष्ट्रने भीष्म तथा द्रोणको, उनकी सेवामें लगे रहने
वाले पुत्रों सहित सब पृथ्वी अर्पण कर दी थी ॥ ४६ ॥ शत्रुओं
ने उनको ऐसी उत्तम आजीविका देकर सदा ही उनका बड़ा
अच्छा आदर सत्कार किया था, तो भी गुरु द्रोणाचार्य मुझे अपने
पुत्रसे अधिक मानते थे ॥ ४७ ॥ वह गुरु रणमें पुत्रके मरणको
सुनकर शस्त्रोंको त्याग तुम्हारी तथा मेरी ओरको देखते हुए
बैठ गए थे, तो भी उनको मार डाला गया, यदि वह युद्ध करते
तो इन्द्र भी उनको नहीं मार सकता था ॥ ४८ ॥ हमारा उपकार
करनेवाले और वृद्ध अवस्थाके आचार्यका लोभबुद्धिवाले हम
अनार्योंने राज्यके लोभवश द्रोह किया है ॥ ४९ ॥ ओ ! हमने
बड़ा ही दारुण और पापकर्म किया है ! हमने राज्यसुखके लोभ
में पढ़कर सद्गुणी द्रोण गुरुका नाश किया है ॥ ५० ॥ मेरे गुरु
द्रोण यह जानते थे, कि—मेरा शिष्य अर्जुन मेरे ऊपर प्रेम रखता है,
इस लिए मेरे कारणसे पुत्र, भाई, पिता, सगे सम्बन्धी और प्राणों

दर्वाक्षिरा राजन् प्राप्तोऽस्मि नरकं प्रभो ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणं वृद्ध-
माचार्यं न्यस्तशस्त्रं महामुनिम् । घातयित्वाद्य राज्यार्थं मृतं श्रेयो
न जीवितम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अर्जुन-
वाक्ये पणवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

सञ्जय उवाच । अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः ।
अप्रियं वा प्रियं वापि महाराज धनञ्जयम् ॥ १ ॥ ततः क्रुद्धो
महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत । कुत्सयन्निव्र कौन्तेयमर्जुनं भरत-
प्रेमः ॥ २ ॥ मुनिर्यथारण्यगतो भाषते धर्मसंहितम् । न्यस्तदण्डो
यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ ३ ॥ क्षत्रज्ञाता क्षताञ्जीवन्

तकको त्यागदेगा ॥ ५१ ॥ परन्तु मैं तो राज्यके लालचमें लिपट
कर उन गुरुका नाश होते हुए देखता रहा इस लिए हे राजन् !
अब मैं औंधे मुँह होकर नरकमें पड़ूँगा ॥ ५२ ॥ ओ ! मेरे गुरु
ब्राह्मण और वयोवृद्ध तिसपर भी आचार्य, उसपर भी शस्त्रोंको
त्याग देनेवाले ऐसे महामुनि गुरु द्रोणाचार्यको राज्यके लिए
मरवाकर अब मेरा जीवित रहने की अपेक्षा मरजाना अच्छा
है ॥ ५३ ॥ एकसौ छियानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६६ ॥

सञ्जय कहता है कि—हे महाराज ! अर्जुनकी इस बातको
सुनकर तहाँ खड़े हुए महारथियोंने अर्जुनसे भला या घुरा कुछ
भी नहीं कहा ॥ १ ॥ परन्तु हे भरतसत्तम ! महाबाहु भीमसेन
अर्जुनकी इस बातको सुनकर क्रोधमें भरगया और अर्जुनकी
निन्दा करताहुआ कहनेलगा कि—॥२॥ हे कुन्तीनन्दन ! जङ्गलमें
रहनेवाला मुनि जैसे धर्मका उपदेश करता है अथवा दण्डको
त्यागनेवाला उत्तम व्रतधारी ब्राह्मण जैसे धर्मका उपदेश करता
है तैसे ही तू भी धर्मका उपदेश करनेलगा है, (यह क्या लीजा
है ?) ॥३॥ जो क्षत्रिय भयमेंसे अपनी और दूसरेकी रक्षा करता

क्षन्ता स्त्रीष्वथ साधुषु । क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः
 श्रियः ॥ ४ ॥ स भवान् क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्बहः । अवि-
 पश्चिद्यथा वाचं व्याहरन्नाद्य शोभसे ॥ ५ ॥ पराक्रमस्ते कौन्तेय
 शक्रस्येव शचीपतेः । न चातिवर्त्तसे धर्मं वेत्तामिव महोदधिः ६
 न पूजयेत्त्वां को न्वद्य यत्त्रयोदशवार्षिकम् । अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा
 धर्ममेवाभिकांक्षसे ॥ ७ ॥ दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्त्तते ।
 आनुशंस्यञ्च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत ॥ ८ ॥ यत्तु धर्म-
 प्रवृत्तांस्व हृतं राज्यमधर्मतः । द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय
 शत्रुभिः ॥ ९ ॥ वनं प्रव्राजिताश्च स्म वल्कलाजिनवाससः । अन-
 र्हमाणास्तं भावं त्रयोदश समाः परैः ॥ १० ॥ एतान्यमर्षस्थानानि

हैं, स्त्रियोंके और सत्पुरुषोंके ऊपर क्षमा करता है वह क्षत्रिय
 थोड़े ही समयमें पृथ्वी, धर्म, यश और लक्ष्मीको पाता है ॥ ४ ॥
 कुलका उदय करनेवाला तू भी क्षत्रियोंके गुणोंसे युक्त है तो भी
 मूर्खकेसी बातें क्यों कर रहा है ? इससे इस समय तेरी शोभा
 नहीं है ॥ ५ ॥ तेरा पराक्रम इन्द्रकी समान है, और जैसे समुद्र
 किनारेको नहीं लाँघता है तैसे ही तू धर्मका उल्लङ्घन नहीं करता
 है ॥ ६ ॥ परन्तु तेरे वर्षके क्रोधको पीठगीछे करके तू धर्मको
 ही चाहता है तो आज कौन तेरी पूजा नहीं करेगा ? ॥ ७ ॥ हे
 अचल स्वभाववाले अर्जुन ! तेरा मन स्वधर्मके अनुसार चलता
 है और तेरी बुद्धि नित्य दयालु है, यह बड़ी अच्छी बात है ॥ ८ ॥
 परन्तु हम धर्मके अनुसार वर्त्ताव करते थे, तब भी वैरियोंने
 अधर्मसे हमारा राज्य छीनलिया, सभामें द्रौपदीको लाकर उसका
 अपमान किया ॥ ९ ॥ हमने वनवासका कोई अपराध नहीं किया
 था तो भी वैरियोंने हमें वृत्तोंकी छाल और मृगचर्म उड़ाकर तेरे
 वर्षके लिये वनको निकाल दिया, हे निर्दोष अर्जुन ! ये सब बातें
 सहने योग्य नहीं थीं, तो भी मैंने सहलीं, यह सब वैरियोंने क्या

मर्षितानि मयानघ । क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥ ११ ॥
 तमधर्ममपाकष्टं स्मृत्वाद्य सहितस्त्वया । सानुबन्धान् हनिष्यामि
 क्षुद्रान् राज्यरानहम् ॥ १२ ॥ त्वया तु कथितं पूर्वं युद्धायाभ्या-
 गता वयम् । घटोमहे यथाशक्ति त्वन्तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥ १३ ॥
 धर्ममन्विच्छसि शातुं मिथ्यावचनमेव ते । भयादिनानामस्माकं
 वाक्ता यर्पाणि कुन्तसि ॥ १४ ॥ वपन् ब्रणे क्षारमिव क्षतानां
 शत्रुकर्पण । विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितम् ॥ १५ ॥
 अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकाः सन्न बुध्यसे । यत्त्वमात्मानमस्मांश्च
 प्रशंस्यान्न प्रशंससि ॥ १६ ॥ त्रासुदेवे स्थिते चापि द्रोणपुत्रं प्रशं-
 ससि । यः कलां पोटशीं पूर्णां धनञ्जय न तेऽर्हति ॥ १७ ॥ स्व-

क्षत्रियधर्ममें रहकर किया था, ऐसे वैरियोंको कियेहुए अधर्मको
 याद करके आज मैं तो तुम्हें साथमें लियेहुए, अपना राज्य छीन
 लेनेवाले क्षुद्र वैरियोंको उनके सहायकोंकेसहित मारहालूँ गा ॥ १०-१२
 पहले तूने कहा था, कि-हम युद्धके लिये इकट्ठे हुए हैं और शक्तिके
 अनुसार युद्धके लिये उद्योग भी करेंगे, वही तू आज हमारी निन्दा
 कर रहा है ॥ १३ ॥ और धर्मकी बातें करता है ! तथा तूने जो
 पहले कहा था, उसको आज तू ही मिथ्या कर रहा है, हे वैरियोंका
 संहार करनेवाले अर्जुन ! हम इस समय भयभीत होगये हैं और
 घायल होगये हैं, इस दशामें जैसे कोई घावमें लवण लगादेता है तैसे
 ही तू बाणीसे हमारे धर्मस्थानोंको काट रहा है, तेरी बाणीरूप
 छुरेसे हमारा हृदय चिराजाता है ॥ १४-१५ ॥ तू धार्मिक होकर
 भी इस बड़ेभारी अधर्मको नहीं संभ्रमता है, क्योंकि-तुम्हें अपनी
 और हमारी प्रशंसा करनी चाहिये, परन्तु तू प्रशंसा नहीं कर
 रहा है ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण खड़े हैं और इनके सामने ही तू द्रोणपुत्र
 अश्वत्थामाकी प्रशंसा कर रहा है, परन्तु अश्वत्थामा तो तेरा
 सोलहवाँ भाग भी नहीं है ॥ १७ ॥ और हे धनञ्जय ! तुम्हें अपने

यमेनात्मनो दोषान् ब्रूवाणः किन्न लज्जसे । दारयेयं महीं क्रोधा-
द्विकिरेयञ्च पर्वतान् ॥ १८ ॥ आविध्यैतां गदां गुर्वी धीर्मा कांचन-
मालिनीम् । गिरिप्रकाशान् क्षितिजान् भञ्जेयमनिलो यथा ॥ १९ ॥
ब्रावयेयं शरैश्चापि सैन्धवान् देवान् समागतान् । सराक्षसगणान्
पार्थः सासुरोरगमानवान् ॥ २० ॥ स त्वमेवम्बिधं जानन्
भ्रातरं मां नरर्वभ । द्रोणपुत्राञ्जयं कर्तुं नार्हस्यमितविक्रम २१
अथवा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वे सहोदरैः । अहमेनं गदापाणिर्जेष्वा-
म्येको महारणे ॥ २२ ॥ ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथा-
ब्रवीत् । संकुटुम्बिव गर्जन्तं हिरण्यकशिपुर्हरिम् २३ धृष्टद्युम्न नवाच ।
बीभत्सो विप्रकर्षाणि विदितानि मनीषिणाम् । याजनाध्यापने दानं

दोष कहते हुए लज्जा क्यों नहीं आती है ? यदि मैं क्रोध करूँ
तो पृथिवीको चीर डालूँ, पहाड़ोंको तोड़ गिरा दूँ ॥ १८ ॥ और
भयानक तथा सुवर्णकी मालावाली इस बड़ी भारी गदाको घुमा
कर पवनकी समान पहाड़से मोटे-र वृक्षोंको भी तोड़ डालूँ ॥ १९ ॥
अथवा इन्द्रके सहित आये हुए देवताओंको, राक्षसोंके गणोंको,
असुरोंको, नागोंको, और मनुष्योंको भी चाणोंकी वर्षा करके
भगासकता हूँ ॥ २० ॥ हे अपार पराक्रमी अर्जुन ! तुम अपने
सहोदर भाईको ऐसा पराक्रमी जानकर अश्वत्थामासे जरा भी
नहीं डरना चाहिये २१ हे बीभत्स ! तू और सब भाइयोंके सहित
यहाँ ही बैठ रह, अबेला मैं ही हाथमें गदा लेकर महासंग्राममें
अश्वत्थामाका पराजय करूँगा ॥ २२ ॥ भीमसेनके ऐसा कहने
पर पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नने बड़े ही क्रोधमें भरकर गर्जना
करते हुए जैसे विष्णुसे हिरण्यकशिपुने कहा था तैसे अर्जुनसे
कहा ॥ २३ ॥ धृष्टद्युम्न बोला कि—हे अर्जुन ! अपि मुनियोंने
ब्राह्मणोंके कर्म इस प्रकार कहे हैं—यज्ञ कराना, पढ़ाना, दान
करना, यज्ञकरना, दान लेना और छठा वेद पढ़ना, इन छहों कर्मों

तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥ २४ ॥ पष्ठमध्ययनं नाम तेषां कस्मिन् प्रति-
 ष्ठितः । इतो द्रोणो मया यत्तत् किं मां पार्थ विगर्हसे ॥ २५ ॥
 अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षत्रधर्ममुपाश्रितः । अपानुषेण हस्त्यस्वान-
 स्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत् ॥ २६ ॥ यथा मायां प्रयुञ्जानमसहं ब्राह्मण-
 ब्रुवम् । माययैव निह्नयाद्यो न युक्तं तत्र पार्थ किम् ॥ २७ ॥
 तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रोणाय नारुपाः कुरुते भैरवं नादं
 तत्र किं मम दीयते ॥ २८ ॥ न चान्द्रामिदं मन्त्रे यद् द्रोणियुर्दृष्टसंया-
 घातयिष्यति कौरव्यान् परित्रातुमशक्नुवन् ॥ २९ ॥ यच्च मां
 धार्मिको भूत्वा ब्रवीषि गुरुघातिनम् । तदर्थमहमुत्पन्नः पाञ्चा-
 ल्यस्य सुतोऽनलात् ॥ ३० ॥ यस्य कार्यमकार्यं त्रा मुच्यतः स्यात्

मैंसे द्रोणमें कौनसा कर्म था, कि-जिसके लिये उनके मारहालने
 पर तू मेरी निन्दा करता है २४-२५ वह अपने धर्ममेंसे भ्रष्ट हो
 गये थे, उन्होंने क्षत्रियको धर्म स्वीकार करलिया था और वह
 दिव्य अस्त्रोंसे हमें मार रहे थे तथा क्षुद्र कर्म करनेवाले थे ॥ २६ ॥
 मायाका प्रयोग करनेवाले, असह और अपनेको ब्राह्मण कहलाने
 वाले पुरुषको हे अर्जुन । यदि कोई माया (कपट) से ही मार
 डाले तो इसमें अनुचित क्या है ? ॥ २७ ॥ ब्राह्मणधर्मसे रहित
 हुए द्रोणको मैंने मांडाला इससे अश्वत्थामा को धमें होकर भया-
 नक रूपसे गरज रहा है इसमें मेरी क्या हानि है ? ॥ २८ ॥ यह
 अश्वत्थामा कुरुवंशके राजाओंकी रक्षा नहीं कर सकेगा, किन्तु
 युद्धके भिषसे कौरवोंका नाश कगडालेगा, इसमें मुझे आश्चर्य नहीं
 मालूम होता ॥ २९ ॥ और दूसरे (द्रोणके वधरूप) कामको
 करनेके लिये ही मैं, अग्निमेंसे द्रुपदके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ हूँ,
 फिर तुम धर्मनिष्ठ होकर मुझसे क्यों कहते हो, कि-तू गुरुका
 घात करनेवाला है ? ॥ ३० ॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष युद्ध करते
 समय रणमें कार्य अकार्य दोनोंको समान मानता हो, उसको तुम

समं रणे । ब्राह्मणं तं कथं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनञ्जय ॥ ३१ ॥
 यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद् ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्द्धिनः । सर्वोपायैर्न स
 कथं बध्यः पुरुषसत्तामः ॥ ३२ ॥ विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां
 विषोपमम् । जानन् धर्मार्थतत्त्वज्ञं किं मामर्जुन गर्हसे ॥ ३३ ॥
 वृशंसः स मयाक्रम्य रथ एव निपातितः । तं मामनिन्द्यं वीभत्सो
 किमर्थं नाभिनन्दसे ॥ ३४ ॥ कालानलसमं पार्थ ज्वलनार्क-
 विषोपमम् । भीमं द्रोणशिरशिखन्नं न प्रशंससि मे कथम् ॥ ३५ ॥
 योऽसौ ममैव नान्यस्य बाधवान् युधि जघ्निवान् । ह्निवापि तस्य
 मूर्धानं नैवास्मि विगतज्वरः ॥ ३६ ॥ तच्च मे कुन्तते मयं यन्न तस्य
 शिरो मया । निषादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥ ३७ ॥

ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय कैसे कहते हो ॥ ३१ ॥ जो पुरुष क्रोधमें
 भरकर ब्रह्मास्त्र मारता हुआ ब्रह्मास्त्रके न जाननेवालेका नाश
 करता है ऐसे महापुरुषको सकल उपायोंसे क्यों नहीं मारना
 चाहिये ? ॥ ३२ ॥ हे धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले अर्जुन !
 धर्मके ज्ञाता धर्मरहित पुरुषको विषकी समान कहते हैं,
 यह जानते हुए भी तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो ? ॥ ३३ ॥
 उस क्रूर योधाको मैंने रथमें ही दबाकर मार डाला है, इसके लिये
 हे अर्जुन ! तुम्हें मेरी सराहना करनी चाहिये, उसके बदलेमें तुम
 मेरी निन्दा क्यों करते हो ? ॥ ३४ ॥ मैंने कालाग्निकी समान
 तथा अग्नि, सूर्य और विषकी समान द्रोणके भयानक मस्तकको
 काट डाला है तो भी प्रशंसा करने योग्य मेरे कामकी तुम प्रशंसा
 क्यों नहीं करते ? ॥ ३५ ॥ उन्होंने दूसरेके नहीं, मेरे ही भाइयोंका
 संहार किया है इसलिये उनका शिर काटलेने पर भी अभीतक
 मेरा शोकज्वर शान्त नहीं हुआ है ॥ ३६ ॥ तुमने जैसे जयद्रथ
 के शिरको काटकर निषादके देशमें डाल दिया था तिस प्रकार मैंने
 द्रोणके शिरको निषादके देशमेंको नहीं उछाला यह बात मेरे

अथावधश्च शत्रूणामधर्मः श्रूयतेऽर्जुन । क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं
हन्याद्धन्येत वा पुनः ॥ ३८ ॥ स शत्रुनिहता संख्ये मया धर्मण
पाण्डव । यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा ॥ ३९ ॥
पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः । मया शत्रो हते कर्मसु
पापे धर्मं न मन्यसे ॥ ४० ॥ सम्बन्धावनतं पार्थ न मां त्वं वदतु-
मर्हसि । स्वगाजकृतसोपानं निषण्णमिव दन्तिनम् ॥ ४१ ॥ क्षमामि
ते सर्वमेव वाग्व्यतिक्रममर्जुन । द्रौपद्या द्रौपदेयानां कृते नान्येन
हेतुना ॥ ४२ ॥ कुलक्रमागतं वैरं ममाचार्येण विश्रुतम् । तथा
जानात्ययं लोको न युयं पाण्डुनन्दनाः ॥ ४३ ॥ नानृती पांडवो

धर्मस्थानों में खटकती है ॥ ३७ ॥ हे अर्जुन ! मैंने सुना है,
कि-शत्रुको न मारना अधर्म है क्योंकि-क्षत्रियोंका तो यही धर्म
है, कि-रणमें वैरीको मार डालना अथवा वैरीके हाथसे मर
जाना ॥ ३८ ॥ हे पाण्डव ! तुमने जैसे अपने पिताके मित्र वीर
भगदत्तको मार डाला था, तैसे ही मैंने भी रणमें धर्मके अनुसार
वैरीका नाश किया है ॥ ३९ ॥ तुम जो भीष्म पितामहका रणमें
नाश करके यह समझ रहे हो, कि-हमने धर्मका काम किया है,
तब मैंने जो पापी वैरीको मार डाला, इससे धर्म क्यों नहीं समझते
हो ? ॥ ४० ॥ हे अर्जुन ! जैसे हाथी, अपने शरीरको सोपान
(पैड़ी) रूप बनाकर नम्रतासे बैठजाता है तैसे ही मैं तुम्हारे
सामने सम्बन्धके कारण नम्र होकर बैठा हूँ, इसलिये मुझे
उत्ताहना देना तुम्हें उचित नहीं है ॥ ४१ ॥ हे अर्जुन ! द्रौपदी
के लिये और द्रौपदीके पुत्रोंके लिये ही मैं तुम्हारे सब कठोर
वचनोंका सहन किये चला जा रहा हूँ, इसमें और कोई (मेरी
निवृत्तता या भय) कारण नहीं है ॥ ४२ ॥ द्रोणाचार्यके साथ
कुलपरम्परासे मेरा द्रोह चला आता था, यह बात प्रसिद्ध है तथा
सब लोग जानते हैं, परन्तु तुम पाण्डव इस बातको नहीं

ज्येष्ठो नाहं वाऽधार्मिकोऽर्जुन । शिष्यद्रोही हतः पापो युध्वस्य
वितयस्तव ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणस्त्रमोक्षपर्वणि धृष्ट-

द्युम्नवाक्ये सप्तमवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । साक्षा वेदा यथान्यायं येनाधीता महात्मना ।
यस्मिन् साक्षादनुर्वेदो हीनिषेवे प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥ यस्य प्रसा-
दात् कुर्वन्ति कर्माणि पुनर्पथाः । अगानुषाणि संग्रामे देवैरसु-
कराणि च ॥ २ ॥ तस्मिन्नाकुरुष्वि द्रोणे समक्षं पापकर्मणा ।
नीचात्मना-वृशंमेन जुद्धेण गुरुवाणिना ॥ ३ ॥ नामर्पन्तत्र कुर्वन्ति
धिकक्षत्रं धिगमर्पिनाम् । पार्थाः सर्वे च राजानः पृथिव्या ये धनु-
र्हाराः ॥ ४ ॥ श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं तन्मयाचक्ष सञ्जय ।

जानते । ॥ ४३ ॥ इसतिथे हे अर्जुन ! तुम्हारे बड़े भाई युधि-
ष्ठिर मिथ्यावादी नहीं हैं और मैं भी अधर्मी नहीं हूँ, शिष्योंसे
द्रोह करनेवाला पापी द्रोण अपने कर्म के ही कारण रणमें नारायण
अब तुम युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी ॥ ४४ ॥ एक सौ
सत्तावनवैश्व अध्याय समाप्त ॥ १६७ ॥ ख ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! जिस महात्मा पुरुषने अर्जुनके
सहित वेद पढ़े थे, जिस लज्जाशील महात्मामें धनुर्वेद साक्षात्
रूपसे रहना था, जिनकी कृपासे महात्मा पुरुष ऐसे अमानुषी
कर्म करते हैं, कि-जिनको देवता भी नहीं करसकते, वह द्रोण चिल्लाते
रहे और सब क्षत्रियोंके सामने पापी, नीच, क्रूर और जुद्धचित्त
धृष्टद्युम्नने गुरु द्रोणको मार डाला, तो भी किसी क्षत्रियने उसके ऊपर
क्रोध नहीं किया, ऐसे क्षत्रियपुत्रको धिक्कार है और उनके सहिष्णुने
पर धिक्कार है, परन्तु हे सञ्जय ! तू मुझे यह तो बता, कि-कुन्ती
को सब पुत्रोंने और पृथिवीके दूसरे धनुषधारी राजाओंने द्रोणको
मारने का सभावार सुनकर धृष्टद्युम्नको क्या कहा था ? सञ्जयने

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचाः क्रूरकर्मणः ॥ ५ ॥
तूष्णीं बभूवुराजानः सर्वे एव विशाम्पते । अर्जुनस्तु कटाक्षेण
जिह्वं विप्रेक्ष्य पार्षतम् ॥ ६ ॥ सवाष्पपतिनिःश्वस्य धिग्धिगित्येव
चाब्रवीत् । युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णस्तथापरे ॥ ७ ॥ आसन्
सुव्राडिता राजन् सात्यकिस्त्वब्रवीदिदम् । नेहास्ति पुरुषः कश्चिद्य
इमं पापपूरुषम् ॥ ८ ॥ भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम् ।
एते त्वां पाण्डवाः सर्वे कुत्सयन्ति विवत्सया ॥ ९ ॥ कर्मणा तेन
पापेन श्वपाकं ब्राह्मणा इव । एतत् कृत्वा महत् पापं निन्दितः
सर्वसाधुभिः ॥ १० ॥ न लज्जसे कथं वक्नुः समितिं प्राप्य
शोभनाम् । कथञ्च शतधा जिह्वा न ते मूर्धा च दीर्यते ॥ ११ ॥
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाधर्मेण पात्यसे । वाच्यस्त्वमसि पार्थश्र

कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! क्रूर कर्म करने वाले धृष्टद्युम्नकी
वात सुनकर राजे चुप रहें, उस समय अर्जुन धृष्टद्युम्नकी ओर
को तिरछी आँखसे देखने लगा, और आँसू बहाता तथा साँसें
लेताहुआ कहनेलगा, कि-धिकार है ! धिकार है ! दूसरी
ओर युधिष्ठिर, भीम नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण तथा दूसरे राजे
बहुत ही लज्जित हुए, यह देखकर हे राजन् ! सात्यकीने
इस प्रकार कहा, कि-यहाँ ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है, कि-
जो इस पापी और अमङ्गल वात कहते हुए नराधमको भट्ट मार
डाले ? (अरे द्रुपदके पुत्र !) ये सब पाण्डव तेरे पापके कारणसे
जैसे ब्राह्मण चाण्डालकी निन्दा करता है, तैसे ही तेरे स्वरूपको
जाननेकी इच्छासे तेरी निन्दा करते हैं, ऐसा महापाप करके
तू सब महात्मा पुरुषोंमें निन्दाका पात्र हुआ है ॥ १-१० ॥
श्रेष्ठ पुरुषोंकी सभामें बैठकर तुझे ऐसा कहते हुए लज्जा
क्यों नहीं आती ! ? अरे ! तेरी जीभके सैंकड़ों टुकड़े क्यों नहीं
होजाते ? और तेरी खोपड़ी क्यों नहीं फटजोती ? ॥ ११ ॥ अरे

सर्वैश्चान्धकवृष्णिभिः ॥ १२ ॥ यत् कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे
जनसंसदि । अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन् ॥ १३ ॥
बध्यस्त्वं न त्वयार्थोऽस्ति मुहूर्तपि जीवता । कस्त्येतद् व्यवसेदा-
र्यस्त्वदन्यः पुरुषाधमः ॥ १४ ॥ निगृह्य केशेषु बधं गुरोर्धर्मात्मनः
सनः । सप्तावरे तथा पूर्वं बान्धवास्ते निमज्जिताः ॥ १५ ॥ यशसा
च परित्यक्तास्त्वां प्राप्य कुलपांसनम् । उक्तवांश्चापि यत् पार्थे
भीष्म प्रति नरर्षभ ॥ १६ ॥ तथान्तो विहितस्तेन स्वयमेव महा-
त्मना । तस्यापि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः ॥ १७ ॥
नान्यः पाञ्चालपुत्रेभ्यो विद्यते भुवि पापकृत्तम् । स चापि सृष्टः

छुद्र ! तू गुरुकी निन्दा करता है, इसलिये अधर्मसे तेरा अधःपात
क्यों नहीं होता है ? पाण्डव तथा अन्धक और वृष्णिवंशके सब
राजाओंको तेरी निन्दा करनी ही चाहिये ॥ १२ ॥ क्यों कि-तू
पापकर्म कर मनुष्योंकी सभामें आप ही अपनी प्रशंसा करता है तथा
ऐसा खोटा काम करके उलटी गुरुकी निन्दा करता है ॥ १३ ॥
इसलिये तेरे दो घड़ीको भी जीवित रहनेसे कोई लाभ नहीं है,
तुझे मार ही डालना चाहिये, अरे अधम पुरुष ! तेरे सिवाय और
कौनसा आर्य पुरुष ऐसा नीच काम करेगा ॥ १४ ॥ तूने तो धर्मात्मा
श्रेष्ठ गुरुकी छोटी पकड़कर उनको मार डाला है, इससे तूने
अपने सात बीते हुए पूर्वजोंको और सात आगेको होने वाले
वंशधरोंको नरकमें डुबो दिया है ॥ १५ ॥ और तुझसरीखे
कुलको कलङ्क लगानेवालेके संबन्धसे उनका यश नष्ट होगया है,
अरे उत्तम पुरुष ! तूने भीष्मके विषयमें जो अर्जुनको ताना मारा
है, सो भीष्मने तो स्वयं ही इस प्रकार अपनी मृत्यु बनाली थी
और सत्य कहा जाय तो उनको भी तेरे महापापी सहोदर भाई
(शिखण्डी) ने ही मारा है ! इस पृथिवी पर पांचालके पुत्रोंके
सिवाय दूसरा कोई भी पुरुष पाप करनेवाला नहीं है (अर्थात्

पित्रा ते भीष्मस्यान्तकरः किल ॥ १८ ॥ शिखण्डी रक्षितस्मेन
स च मृत्युर्महात्मनः । पञ्चालाश्चलिताः धर्मात् जुद्रा मित्रगुरु-
दुःखः ॥ १९ ॥ त्वां प्राप्य सहस्रोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः । पुन-
श्चेदीदृशीं वाचं मत्समीपे वदिष्यसि ॥ २० ॥ शिरस्ते पोथयिष्यामि
गदया नञ्ज ह्वया । त्वाञ्च ब्रह्महृणं दृष्ट्वा जनः सूर्यमयेक्षते २१
ब्रह्महत्या हि ते पापं प्रायश्चित्तार्थमात्मनः । पाञ्चालक सुदुष्टं च
ममैव गुरुमग्रतः ॥ २२ ॥ गुरुर्गुरुं च भूयोऽपि क्षिपन्नेवेह लज्जसे ।
निष्ठ निष्ठ सहरवैकं गदापानमिमं मम ॥ २३ ॥ तव चापि सहि-
ष्येहं गदापाताननेकशः । सात्वतेनैवमाक्षितः पार्षतः परुषाक्षरम् २४
संरब्धं सात्यकिं प्राह संक्रुहुः प्रहसन्निव । धृष्टद्युम्न उवाच ।

पाप करनेका ठेका पांचालके पृत्रोंने ही ले रक्खा है) मेरे पितानेही
उसको भी भीष्मका नाश करनेके लिये उत्पन्न किया था ॥ १६-१८ ॥
तेरे पिताने शिखण्डीको पालकर बड़ा किया, और वही महात्मा
भीष्मका काल था, सब महात्मा पुरुषोंके धिक्कार दिये हुए तुझे
और तेरे भाईको पुत्ररूपसे उत्पन्न करके लुद्वृद्धि तथा मित्र और
गुरुओंसे द्रोह करनेवाले पांचालराजे धर्मसे अष्ट होगये हैं, तूने
आज कहा सो कहा, परन्तु अब आगेको यदि तू मेरे सामने ऐसी
बात कहेगा तो मैं बज्रभी समान गदा मारकर तेरी खोपड़ीके
टुकड़ेकर डालूँगा, तूने ब्रह्महत्याकर महापाप किया है इसलिये
लोग तुझपरिखे हत्यारोंके देखकर प्रायश्चित्तके लिये सूर्यनारायण
का दर्शन करते हैं, अरे दुराचारी पांचालपुत्र ! मेरे गुरुके ही
सामने, मेरे गुरुके गुरुकी चारभार निन्दा करतेहुए तुझे लज्जा
नहीं आती ? अरे खड़ा रह, खड़ा रहा मेरी गदाकी एक चोटके
सहता जा ॥ १९-२३ ॥ और मैं भी तेरी गदाकी बहुतसी चोटों
को सहूँगा, इस प्रकार सात्यकीने तीखे वचनासे धृष्टद्युम्नका
तिरस्कार किया तब तो धृष्टद्युम्न क्रोधमें भरगया और उसने क्रोध

श्रूयते श्रूयते चेति क्षम्यते चेति माधव ॥ २५ ॥ सदानार्यो शुभः
साधुः पुरुषं क्षेममिच्छति । क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति
क्षमाम् ॥ २६ ॥ क्षमावन्तं हि पापात्मा जिनोऽपमिति मन्यते ।
स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः ॥ २७ ॥ आकेशा-
ग्रान्नखाग्रश्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि । यत् स भूरिश्वराखिल-
भुजाः प्रायगतस्तव्या ॥ २८ ॥ वार्यमाणेन निहतस्ततः पापतरं तु
किम् । गाहमानो मया द्रोणो दिव्येनास्त्रेण संयुगे ॥ २९ ॥
त्रिसृष्टशस्त्रो निहतः किन्तत्र क्रूर दुष्कृतम् । अप्रुध्यमानं यस्त्वार्जो
तथा प्रायगतं मुनिम् ॥ ३० ॥ छिन्नबाहुं परैर्हन्त्यात् सात्यके स

भरेहुए सात्यकीसे हँसतेहुएकीसी सूरत बनाकर कहा,
धृष्टद्युम्न बोला, कि तूने जो कुछ कहा, यह सब शब्द मैंने सुन
लिये ! और हे मधुवंशी ! इस सबकी मैं तुझे क्षमा करता हूँ, क्यों
कि—जो पुरुष अनार्य और पापी होता है, वह सदा सत्पुरुषोंका
तिरस्कार करना चाहा करता है, जगत्में क्षमाकी प्रशंसा होती है,
परन्तु पापी पुरुष क्षमा करनेके योग्य नहीं होता है । २४-२६ ।
क्योंकि—पापी पुरुष क्षमा करनेवालेको सम्भ्रमता है, कि—मैंने इस
को जीतलिया है । (इसलिये ही मैं तुम्हें उत्तर देता हूँ कि—) तू
क्षुद्र आचरण बाला नीचचित्त और नखसे शिखा तक पापकर्मका
निश्चय रखनेवाला है, धिक्कारका पात्र है । फिर भी तू दूसरेसे
अनुचित शब्द कैसे कहता है ? भूरिश्वरका हाथ कटगया था,
वह युद्धको छोड़कर अन्नजलको त्याग मरनेका निश्चय करके बैठ
गया था, उसको तूने दूसरोंके निषेध करने पर भी मारडाला,
इससे अधिक पापकर्म और कौनसा होगा ? द्रोणाचार्य युद्धमें
दिव्य अस्त्रोंसे हमारी सेनाका संहार कर रहे थे और कदाचित्
उन्होंने हथियार डालदिये थे उससमय उनको मैंने मारडाला,
तो इसमें अरे क्रूर ! मैंने पाप क्या किया ? जो मनुष्य, रामें,

कथं वदेत् । निहत्य त्वां पदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान् ३१ ।
 किन्तु तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः । त्वया पुनरनार्येण पूर्वं
 पार्थेन निजितः ॥ ३२ ॥ यदा तदा हतः शूरः सौमदन्तिः प्रता-
 पवान् । यत्र यत्र च पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते वमूम् ॥ ३३ ॥
 क्रिञ्चरसहस्राणि तत्र तत्र ब्रजाम्यहम् । स त्वमेवं विथं कृत्वा
 कर्म चाण्डालघत् स्वयम् ॥ ३४ ॥ वक्तुमर्हसि वक्तव्यः कस्मात्त्वं
 परुषायथ । कर्त्ता त्वं कर्मणो ह्यस्य नाहं वृष्णिकुलाधमः ॥ ३५ ॥
 पापानाञ्च त्वमावासः कर्मणां मा पुनर्वद । जोषमास्व न मां भूयो
 वक्तुमर्हस्यनः परम् ॥ ३६ ॥ अधरोच्चारमेतद्धि न मां त्वं वक्तु-

दूसरोंने जिसका हाथ काटहाला हो ऐसे अनशन व्रतधारी मुनिको
 मारहालता है ऐसा मनुष्य, हे सात्यकी ! दूसरेको उलाहना कैसे
 देसकता है ? यदि तू महापुरुष था तो जिस समय पराक्रमी
 भूरिश्रवाने लात मार कर तुझे पृथिवी पर पटक कर घसीटा था,
 उस समय तूने उसको क्यों नहीं मारा? परन्तु जब अर्जुनने मनापी
 और वीर भूरिश्रवाको पहले जीतलिया, तब पीछेसे तूने उसको
 मारकर अपना अनार्यपना (नीचपन) ही दिखाया है, परन्तु मैं
 तो, जहाँ २ द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको भगाते थे, तहाँ २ जाकर
 हजारों बाणोंकी वर्षा करता था, तूने तो स्वयं मेरा बताया हुआ
 चाण्डालकेसा काम किया है, इसलिये तूही निंदाका पात्र है, तो भी
 मुझे तीखे वचन क्यों कह रहा है ? अरे वृष्णिकुलाधम सात्यकी !
 तू ही ऐसे खोटे काम किया करता है, मैं तो कभी नहीं करता
 हूँ ॥ २७-३५ ॥ तू तो पापकर्मोंका घर है, इसलिये चुपका
 बैठा रह, अब आगेको तू मुझसे कुछ न कहना, तूने मुझे भली-
 बुरी चाहे सो बातें कही हैं, परन्तु अब आगेको मूर्खतावश मुझसे
 ऐसी तीक्ष्ण बातें कहेगा तो मैं बाण मारकर तुझे यमलोकमें भेज
 दूँगा, अरे ओ मूर्ख ! ध्यान रख कि-केवल धर्मसे ही बैरीको

महसि । अथ वक्ष्यसि मां गौर्याद् भूयः परुषमोदशम् ॥ ३७ ॥
 गमयिष्यामि वाणैस्त्रां युद्धे वैपस्वनक्षयम् । न चेवं मूर्खधर्मेण
 केवलमेव शक्यते ॥ ३८ ॥ तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु चाद-
 शम् । वञ्चितः पाण्डवः पूर्वमधर्मेण युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥ द्रौपदी च
 परिक्लिष्टा तथाधर्मेण सात्यके । प्रजाजिता वनं सर्वे पाण्डवाः सह
 कृष्णया ॥ ४० ॥ सर्वस्वमपकृष्टञ्च तथाधर्मेण वालिश । अधर्मे-
 णापकृष्टश्च मद्राजः परैरितः ॥ ४१ ॥ अधर्मेण तथा बालः
 सौभद्रा विनिपातितः । इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरञ्जयः ४२
 भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः । एवं परैराचरितं पाण्डवे-
 यैश्च संयुगे ॥ ४३ ॥ रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत । दुर्ज्ञेय-
 स परो धर्मस्तथाऽधर्मश्च दुर्विदः ॥ ४४ ॥ युध्यस्व कौरवैः सादृ-

नहीं जीता जा सकता, कौरवोंने भी ऐसा ही अधर्माचरण किया
 है, उसको तू सुन, पहले उन्होंने अधर्मसे पांडुपुत्र युधिष्ठिरको जुरमें
 जीतलिया था ॥ ३६-३७ ॥ और हे सात्यकी ! मेरी वहिन द्रौपदीका
 भी अधर्मसे ही दुःखी किया था, सब पांडवोंको द्रौपदीके सहित
 वनवासमें भेज दिया था तथा हमारी सहायताके लिये आतेहुए मद्र-
 राजको भी इन्होंने अधर्मसे ही अपने पक्षमें लेलिया था ॥ ४०-४१ ॥
 उन्होंने अधर्मसे ही सुभद्राके बालक पुत्र अभिमन्युको मार डाला
 और इससे भी अधिक अधर्म हमारी ओरसे वैरियोंके नगरोंको
 जीतनेवाले भीष्मजीको मार डालनेमें हुआ ॥ ४२ ॥ तथा तू अपने
 को धर्मज्ञ समझता है तो भी तूने अधर्मसे भूरिश्रवाको मार डाला
 इसप्रकार वैरीपक्षवाले तथा पाण्डव धर्मको जानते थे तो भी
 उन्होंने विजयआनेके लिये अधर्मका काम किया है, हे सात्वतवंशी
 सात्यकी ! जैसे परमधर्मको जानना कठिन है तैसे ही अधर्मको
 जानना भी बड़ा कठिन है ॥ ४३-४४ ॥ इसलिये तू कौरवोंके
 साथ युद्ध कर, यमपुरीमें जानेका काम न कर, सज्जनने कहा, कि-

मा गाः पितृनिवेशनम् । सज्जय उवाच । एवमादीनि वाक्यानि
क्रूराणि परुषाणि च ॥ ४५ ॥ श्रावितः सात्यकिः श्रीमानाकम्पित
इवाभवत् । तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्रान्तः सात्यकिरत्वादने गदाम् ४६
विनिःश्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः । ततोभिपत्य पांचान्यं
संरम्भेणेदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ न त्वां वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां
वधन्तमम् । तमापतन्तं सहसा महाबलमर्षणम् । ४८ ॥ पाङ्चा-
ल्यायाभिसंकुटुमन्तकायान्तकोपमम् । चोदितो वासुदेवेन भीम-
सेनो महाबलः ॥ ४९ ॥ अश्रुत्य रथात्तूर्णं बाहुभ्यां समवार-
यत् । द्रवमाणं तथा कुटुं सात्यकिं पाण्डवो बली ॥ ५० ॥
प्रस्यन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात् । स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ
भीमेन शिनिपुङ्गवः ॥ ५१ ॥ निगृहीतः पदे पष्ठे बलेन बलिना-

धृष्टद्युम्नने इसप्रकार सात्यकीको तीखे और कठोर वचन सुनाये,
उनको सुनकर सात्यकी काँप उठा, उसकी आँखें क्रोधके मारे
लालताल होगयीं, उसने सर्पकी समान लम्बा साँस लेकर धनुषको
हाथमेंसे नीचे डाल दिया और हाथमें गदा उठाली फिर धृष्टद्युम्नके
सामने जा क्रोधके साथ यह बात कही, कि-४५-४७में तुझसे तीखे
वचन नहीं कहता, किन्तु तू वध करने योग्य है, इसलिये तुझे
मारे डालता हूँ, इसप्रकार महाबली, असहनशील और कालकी
समान महाक्रोधमें भरेहुए सात्यकीको धृष्टद्युम्नके ऊपर एकायकी
चढ़ाहुआ देखकर श्रीकृष्णके कहनेसे महाबली भीमसेन तुरन्त
रथमेंसे नीचे उतर पड़ा और दोनों हाथोंसे सात्यकीको आगे
बढ़नेसे रोकलिया ४८-५०तो भी सात्यकी क्रोधमें भराहुआ बड़े
जोरसे दौड़ा, महाबली भीमसेन उसके पीछे दौड़ा और छठे पंगपर
सात्यकीको पकड़कर आगे बढ़नेसे रोकता तथा भूमिपर दोनों पैर
जमाकर उसको पकड़ लिया सहदेव भी तुरन्त रथमेंसे नीचे उतर पड़ा
और बली भीमके पकड़ेहुए सात्यकीसे मधुर वाणीमें कहनेलगा,

स्वरः । अवस्था रथात्तुर्णं धियमाणं बलीयसा ॥ ५२ ॥ उवाच
 शल्लङ्घया वाचा सहदेवो विशाम्यते । अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्र-
 मन्यन्न विद्यते ॥ ५३ ॥ परमन्धकवृष्णिभ्यः पञ्चालेभ्यश्च मारिष ।
 तथैत्रान्धकवृष्णीनां तथैव च विशेषतः ॥ ५४ ॥ कृष्णस्य च तथा-
 स्मत्तो मित्रमन्यन्न विद्यते । पञ्चालानाञ्च वाण्येय समुद्रन्तां
 विचित्रताम् ॥ ५५ ॥ नान्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णायः ।
 स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च तथा भवान् ॥ ५६ ॥ भवन्तश्च यथा-
 स्माकं भवताञ्च तथा वयम् । स एवं सर्वधर्मद्व मित्रधर्ममनुस्म-
 रन् ॥ ५७ ॥ नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात्मशास्य शिनिपुङ्गव । पार्ष-
 तस्य क्षम त्वं वै क्षमतां पार्षतश्च ते ॥ ५८ ॥ वयं क्षमयितारश्च क्रिम-
 न्यत्र शमाद्भवेत् । प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ॥ ५९ ॥
 पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत् । मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं

किं हे मधुवंशी पुरुषव्याघ्र ! अन्धक राजे, वृष्णिवंशके राजे और
 पांचाल राजे इन सबसे अधिक हमारा और कोई मित्र नहीं है ५१-५४
 तथा अन्धकवंशी, वृष्णिवंशी और श्रीकृष्णका हमसे अधिक कोई
 मित्र नहीं है ॥ ५५ ॥ इसी प्रकार पांचाल राजे भी पृथ्वी पर समुद्र
 पर्यन्त खोजेंगे तब भी उनको वृष्णि और अन्धकोंकी समान कोई
 मित्र कहीं भी नहीं मिलेगा ॥ ५६ ॥ जैसे तुम हमारे मित्र हो और
 हम जैसे तुम्हारे मित्र हैं, ऐसे ही धृष्टद्युम्न भी तुम्हारा मित्र है
 और तुम इसके मित्र हो, हे सात्यकी ! तुम सब धर्मको जाननेवाले
 हो, इसलिये मित्रके धर्मको याद करके अपने क्रोधको शान्त करो
 और धृष्टद्युम्नको क्षमा करो ॥ ५७-५८ ॥ हम क्षमा कर रहे हैं,
 क्षमासे अधिक और क्या होसकता है ? हे राजन् ! जब सहदेवने
 इस प्रकार सात्यकीको शान्त कर दिया तब ॥ ५९ ॥ पांचाल राजका
 पुत्र धृष्टद्युम्न हँसता हुआ इस प्रकार कहने लगा, कि-हं भीम ! युद्ध
 करनेके पदमें भरे हुए सात्यकीको छोड़ दो, छोड़ दो ॥ ६० ॥ जैसे

भीमयुद्धमदान्वितम् ॥ ६० ॥ आसादयत् मामेव धराधरमिवा-
 निलः । यावदस्य शितैर्वायोः संरम्भं विनयाम्यहम् ॥ ६१ ॥
 युद्धश्रद्धाञ्च कौन्तेय जीवितञ्चास्य संयुगे । किन्तु शक्यं मया
 कर्तुं कार्यं यदिदमुद्यतम् ॥ ६२ ॥ सुमहत् पाण्डुपुत्राणामायान्त्येते
 हि कौरवाः । अथवा फाल्गुनः सर्वान् वारयिष्यति संयुगे ६३
 अहमप्यस्य मूर्ध्नि पातयिष्यामि सायकैः । मन्यते छिन्नबाहुं मां
 भूरिश्रवसमाश्रवे ॥ ६४ ॥ उत्सृजेनमहञ्चैनमेव मां वा हनिष्यति ।
 शृण्वन् पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिः सर्पवत् श्वसन् ॥ ६५ ॥
 भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली । तौ वृषाविव नर्दन्तौ
 बलिर्नो बाहुशालिर्नो ॥ ६६ ॥ त्वरया वामुदेवश्च धर्मराजश्च
 मारिपुः । यत्नेन महता वीर्ये वारयामासतुस्ततः ॥ ६७ ॥

पवन पहाड़के पास पहुँचता है तैसे ही इसको मेरे पास पहुँचने दो,
 मैं अभी तेज़ बाण मारकर इसके घमण्डको दूर किये देता हूँ ॥ ६१
 इतना ही नहीं किन्तु इसके युद्धके चावको नष्ट करके इसके
 जीवनको भी समाप्त किये देता हूँ और ये कौरव, पाण्डवोंके ऊपर
 चढ़कर आ रहे हैं, यह बड़ा भारी काम मुझे सौंपा गया है, यह
 काम मैं इसको मार डालनेके पीछे करूँगा अथवा इन सर्वोंको
 युद्धमें अर्जुन ही रोकलेगा ॥ ६२-६३ ॥ और मैं भी बाणोंके
 प्रहारसे इसके शिरको काट गिराऊँगा, यह मुझे युद्धमें दुष्ट
 भूरिश्रवा समझ रहा है ! ॥ ६४ ॥ अब इसको छोड़ दो तो हम
 युद्ध करें, इस युद्धमें या तो मैं ही इसको मारे डालता हूँ, नहीं तो
 यही मुझे मार डालेगा, चलवान् सात्यकी पांचालराजकुमारकी इन
 बातोंको सुनकर साँप भी समान फुड्कारें भरने लगा, और भीमकी
 दोनों भुजाओंके बीचमें बँधा हुआ था, तो भी उनमेंसे छूटनेका
 बारम्बार उद्योग करने लगा, दोनों बली और भुजबल रखनेवाले
 थे ये साँड़की समान गरजने लगे ॥ ६५-६६ ॥ तब श्रीकृष्ण और

निवार्य परमेष्वसौ क्रोधसंरक्तलोचनौ । युयुत्सुनपरान् संख्ये
प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्न-
सात्यकिकोपे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

सञ्जय उवाच । ततः स कदनञ्चक्रे रिपूणां द्रोणनन्दनः ।
युगान्ते सर्वभूतानां कालसृष्ट इवान्तकः ॥ १ ॥ ध्वजद्रुमं शस्त्रभृद्
हतनागमहाशिलम् । अश्वकिम्पुरुषाकीर्णं शरासनलतावृतम् २
कव्यादपत्तिसङ्घुष्टं भूतयत्तगणाकुलम् । निहत्य शात्रवान् भलैः
सोऽस्त्रिनोद्देहपर्वनम् ॥ ३ ॥ ततो वेगेन महता विनश्य स नरर्षभः ।
प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवात्मजम् ॥ ४ ॥ यस्माद्युध्यन्तमा-
चार्य धर्मकञ्चुकमास्थितः । मुञ्च शस्त्रमिति माह कुन्तीपुत्रो युधि-

युधिष्ठिरने बड़े परिश्रमसे उन दोनों वीरोंको शान्त किया । ६७।
इसप्रकार क्रोधसे लाल २ आँखोंवाले महाप्रनुषधारी दोनों वीर
पुरुषोंको लड़नेसे रोककर पाण्डवपक्षके बड़े २ क्षत्रिय रणभूमिमें
लड़नेकी इच्छासे वैरियोंके सामने जाडो। ६८॥ एकसौ अठानवेवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १६८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! तदनन्तर जैसे कालका
रचाहुआ अन्तक प्रलयके समय सब प्राणियोंका संहार करता
है, ऐसे ही अश्वत्थामा वैरियोंका संहार करनेलगा ॥ १ ॥ उसने
भल्लजातिके बाणोंसे वैरियोंका संहार करके, शरीरोंका एक ऐसा
पहाड़ बनादिया, कि-जिसमें ध्वजायें ही वृक्ष थे, शस्त्ररूप शिखर
थे, जिसके ऊपर मांसाहारी राज्ञसरूप पक्षियोंके शब्द छेरहे थे
और जिसमें प्राणिरूप यज्ञोंके गण भरेहुए थे ॥ २॥ ३॥ तदनन्तर
महात्मा अश्वत्थामाने बड़ी गर्जना करके फिर तुम्हारे पुत्रको
अपनी प्रतिज्ञा सुनायी ॥ ४ ॥ धर्ममें ढकेहुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने
युद्धमें घूमते हुए आचार्यसे कपट ही बात कह कर उनसे अस्त्र

धिरः ॥ ५ ॥ तस्मात् सम्पश्यतस्तस्य द्वावपिप्यामि वाहिनीम् ।
विद्राव्य सर्वान् हन्तास्मि जाल्मं पाञ्चान्यमेव तु ॥ ६ ॥ सर्वाने-
तान् हनिष्यामि यदि योत्स्यन्ति मां रणे । सत्यं ते प्रतिजानामि
परिवर्त्तय वाहिनीम् ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु वाहिनीं पर्यव-
र्त्तयत् । सिंहनादेन महता व्यपोह्य सुमहद्भयम् ॥ ८ ॥ ततः समा-
गमो राजन् कुरुपाण्डवसेनयोः । पुनरेवाभवत्तीव्रः पूर्णसागरयो-
रिव ॥ ९ ॥ संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः । उदग्राः
पाण्डुपञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च ॥ १० ॥ तेषां परमहृष्टानां
जयमात्प्रनि पश्यताम् । संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद्विशाम्भते ११
यथा शिलोच्चयैः शैल्यः सागरैः सागरो यथा । प्रतिहन्येत राजेन्द्र

छुडवादिये ॥ ५ ॥ इसलिये मैं उनके सामने ही उनकी सेनाको
रणमेंसे पीछेको भगादूँगा और सर्वोंको भगा देनेके बाद पापी
धृष्टद्युम्नको मारडालूँगा ॥ ६ ॥ यदि ये सब इकट्ठे होकर मेरे
सामने लड़नेको आवेंगे तो मैं निःसन्देह इन सर्वोंको मारडालूँगा,
मैं तेरे सामने यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ, इसलिये तू फिर सेनाको
बैरीके सामने लेचल ॥ ७ ॥ अश्वत्थामाकी इन बातोंको सुन
तुम्हारे पुत्रने निर्भय होकर सिंहकी समान गर्जना की
और अपनी सेनाको फिर रणमें लेआया ॥ ८ ॥
और जैसे लवालव भरे हुए दो महासमुद्रोंका आपसमें मेल होता
है तैसे ही कौरव और पाण्डवोंकी फिर महा भयानक भेट हो
गयी ॥ ९ ॥ कौरव द्रोणाचार्यके पुत्रसे स्थिर होकर आवेशमें
भर गये थे, पाण्डव तथा पांचाल द्रोणाचार्यके मारेजानेसे सन्तप्त
हो उठे ॥ १० ॥ हे राजन् ! दोनों पक्षके योधा हमारी ही विजय
होगी, ऐसा मानकर बड़े हर्षमें भर गये थे, फिर दोनों पक्षके योधा
घमण्डमें भरकर बड़े वेगसे लड़ने लगे ॥ ११ ॥ जैसे पर्वत पर्वत
के सामने लड़ रहा हो जैसे समुद्र समुद्रके सामने युद्ध कर रहा हो

तथासन् कुरुपाण्डवाः ॥ १२ ॥ ततः शंसदसहस्राणि भेरीणामयु-
तानि च । अवाद्यन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः ॥ १३ ॥ यथा
निर्मथ्यमानस्य सागरस्य तु निःस्वनः । अभवत्तस्य सैन्यस्य सुप-
हानञ्जुतोपमः ॥ १४ ॥ मादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा ।
अभिसन्धाय पांडुना पञ्चालानाञ्च वाहिनीम् ॥ १५ ॥ मादु-
रासस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः । पाण्डवान् क्षपयिष्यन्तो
दीप्तास्याः पन्नगा इव ॥ १६ ॥ ते दिशः खञ्ज सैन्यञ्च समा-
वृण्वन् महाहवे । मुहूर्त्ताद्भास्करस्येव राजन् लोके गभस्तयः १७
तथापरे द्योतमाना ज्योतीर्षीवामलाम्बरे । मादुरासन्महाराज
काष्णायिसमया गुडाः ॥ १८ ॥ चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतज्यो
बहुला गदाः । चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः १९
शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव पुरुषर्षभ । दृष्टान्तरिक्षमाविष्टाः पांडु-

ऐसे ही कौरव पाण्डव आपसमें युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ कौरव
और पाण्डवोंके योधा बड़ेही हर्षमें भरकर हजारों शङ्ख और हजारों
भेरियों बजाने लगे ॥ १३ ॥ जैसे मथेजातेहुए महासागरका शब्द
होता है ऐसे ही उस समय तुम्हारी सेनाका बहुत बड़ा और
अद्भुत शब्द होने लगा ॥ १४ ॥ फिर अश्वत्थामाने पाण्डवोंकी
और पांचालोंकी सेनाको ताककर नारायणास्त्र प्रकट किया १५
तुरन्त उसमेंसे बलते हुए मुखोंवाले साँपोंकी समान मदीस मुखों
वाले सहस्रों बाण पाण्डवोंका संहार करनेके लिये आकाशमें दीखने
लगे ॥ १६ ॥ और हे राजन् ! जैसे सूर्यकी किरणें एक महूर्त
मात्रमें दिशाओं और आकाशमें भरजाती हैं तैसे ही उन बाणोंने
भी दिशाओंको, आकाशको और सेनाको ढकदिया ॥ १७ ॥
और उसी समय आकाशमें जैसे तारागण चमकने लगते हैं तैसे
ही महातेजस्वी लोहेके गोले चतुश्चक्र द्विचक्र, शतश्री, गदायें,
सूर्यके मण्डलके आकारके तथा जिनके इधर उधर छुरे बनेहुए थे

पञ्चालसृञ्जयाः ॥ २० ॥ यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महा-
 रथाः । तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्द्धत जनाधिप ॥ २१ ॥ वध्य-
 मानास्तथास्त्रेण तेन नारायणेन वै । दहमानानलेनेव सर्वतोऽभ्य-
 दिता रणे ॥ २२ ॥ यथा हि शिशिरापाये दहेत् कर्त्तुं हुताशनः ।
 तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो ॥ २३ ॥ आपूर्यमाणो-
 नास्त्रेण सैन्ये क्षीयति च प्रभो । जगाम परमं त्रासं धर्मराजो
 युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥ द्रवमाणं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम् ।
 मध्यस्थताञ्च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥ धृष्टद्युम्न
 पलायस्व सह पाञ्चालसेनया । सात्यके त्वञ्च गच्छस्व वृष्णयन्धक-
 वृतो महान् ॥ २६ ॥ वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः

ऐसे चक्र प्रकट होने लगे पाण्डव और पांचाल राजे आकाशको
 शस्त्रोंसे भरा हुआ देखकर हे राजन् ! घबड़ाहटमें पड़गये १८-२०
 हे राजन् ! इस समय पाण्डवोंके महारथी जैसे २ युद्ध करनेलगे
 तैसे २ नारायणास्त्र बढने लगा ॥ २१ ॥ नारायणास्त्रसे मार खाते
 हुए पाण्डव-पक्षके योधा, जैसे अग्निसे जलजाने पर दुःखी होते
 हों, तैसे ही इस लड़ाईमें चारों ओरसे दुःखी होने लगे ॥ २२ ॥
 हे राजन् ! जैसे गरमीके दिनोंमें अग्नि घासके ढेरको जलाकर
 भस्म करडालता है, तैसे ही वह नारायणास्त्र भी पाण्डवोंकी
 सेनाको जलाकर भस्म करनेलगा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जिस समय
 वृद्धि पायेहुए नारायणास्त्रसे सेनाका संहार होने लगा, उस समय
 धर्मराज युधिष्ठिर बड़ा ही भय खाने लगे ॥ २४ ॥ वह अपनी
 सेनाको अचेत होकर रणमेंसे भागती हुई देखकर तथा अर्जुनको
 उदासीनरूपसे रणभूमिमें खड़ाहुआ देखकर इस प्रकार कहने
 लगे, कि- ॥ २५ ॥ हे धृष्टद्युम्न ! तू पांचालोंकी सेनाको लेकर
 भागजा ! भागजा ! अरे सात्यकी ! तू भी वृष्णि और अन्धकुलके
 राजाओंको लेकर चलाजा ॥ २६ ॥ अब धर्मात्मा श्रीकृष्णसे

क्षेमम् । श्रेयो ह्युपदिशत्येव लोकस्य किमुनात्पनः ॥ २७ ॥ संग्रामस्तु न कर्त्तव्यः सर्वसैन्यान् ब्रवीमि वः । अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् २८ भीष्मद्रोणाण्येवं तीर्त्वा संग्रामे भीरुदुस्तरे । विमज्जिष्यामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे ॥ २९ ॥ कामः संप्रयतामस्य बीभत्सोराशु सां प्रति । कल्याणवृत्तिराचार्यो मया युधि निपातिता ॥ ३० ॥ येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः । समर्थैर्वहुभिः क्रूरैर्घातितो नाभिपालितः ॥ ३१ ॥ येनाविब्रुवतामश्नन् तथा कृष्णां सभां गता । उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं निवृज्यते ॥ ३२ ॥ जिघांसुर्घातैराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फाल्गुनम् ।

जो कुछ होसकेगा सो करलेंगे, जो सब जगत्को कल्याणका उपदेश देते हैं वह अपना कल्याण क्यों नहीं करेंगे ? मैं सब सेनादलोंसे कहता हूँ, कि-तुम युद्ध न करो और मैं तो अपने भाइयोंके सहित अग्रिमें प्रवेश करके जलमरूंगा ॥ २७-२८ ॥ डरपोक जिसके पार नहीं पहुँच सकते ऐसे इस संग्राममें भीष्म तथा द्रोणरूप सागरको तरजानेके अनन्तर अररस्थामासरीखे गौके खुरके-गढ़में मैं अपनी सेनासहित डूबजाऊँगा ॥ २९ ॥ भले ही राजा दुर्योधनके मनकी कामनायें आज मेरे सामने ही सफल हों, क्योंकि-मैंने ही अपना कल्याण करनेवाले आचार्यको युद्धमें मरवा दिया है ॥ ३० ॥ जिन आचार्यने युद्ध न जाननेवाले सुभद्राके बालक पुत्र अभिमन्युको युद्ध करनेमें समर्थ बहुतसे क्रूर योधाओंके द्वारा मरवा डाला था और उसकी रक्षा नहीं की थी ॥ ३१ ॥ जिस समय द्रौपदी अप्रतिष्ठाके साथ सभामें लायीगयी थी, और दासी बनायी जा रही थी उस समय उसके पश्न करने पर जिन द्रोणाचार्यने और अश्वत्थामाने उसकी उपेक्षाकी थी ॥ ३२ ॥ जिन आचार्यने दूसरे सब योधाओंके थकजाने पर अर्जुनको मारनेकी इच्छावाले दुर्योधनकी, सिन्धुराजक रक्षा करनेके लिये, कवच

कवचेन तथा गुप्तः रक्षार्थं सैन्धवस्य च ॥ ३३ ॥ येन ब्रह्मास्त्र-
विदुषा पञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः । कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला
विनिपातिताः ॥ ३४ ॥ येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद्वयमधर्मतः ।
निवार्यमाणेनास्त्राभिरनुगन्तुं तदेपिताः ॥ ३५ ॥ योऽसावत्यन्त-
मस्माद्यु कुर्वाणः सौहृदं परम् । हतस्तदर्थे परणं गमिष्यामि सन्धान-
वः ॥ ३६ ॥ एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः । निवार्य
सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि
बाहेभ्यश्चावरोहत । एष योगोऽत्र विहितः प्रतिघाते महात्मनः । ३८
द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत । एवमेतन्न वो हन्या-

पहराकर रक्षा की थी ॥ ३३ ॥ जिन ब्रह्मास्त्रको जाननेवाले
आचार्यने, मेरी विजयके लिये उद्योग करतेहुए सत्यजित् आदि
पांचाल राजाओंको एक साथमें मार डाला था ॥ ३४ ॥ जब हमको
अधर्मके द्वारा राज्यमेंसे वनमें निकाल दिया था, और विदुर
आदि हमारे पक्षके मनुष्योंने कौरवोंसे ऐसा करनेका निषेध
क्रिया था, उस समय जिन आचार्यने कौरवोंको निषेध
न करके संमति दी थी, शोक है (कहा जाता है) कि—
आचार्य हमारे ऊपर बड़ा प्रेम रखते थे और इसलिये ही
वह मारेगये । इसलिये मुझे भी अब बान्धवोंसहित मरजाना
चाहिये । ॥ ३५-३६ ॥ कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर इस प्रकार
द्रोणाचार्यके विषयमें (कटाक्षसे) बातें कर रहे थे इतनेमें ही
श्रीकृष्ण, शीघ्र ही दोनों भुजाओंसे सेनाको पीछेको हटाकर कहने
लगे, कि—हे योद्धाओं ! तुम बाहनों परसे नीचे उतर पड़ो और
शस्त्रोंको एक साथ नीचे डाल दो महात्मा पुरुषोंने नारायणास्त्रके
निवारणके लिये यही उपाय बताया है (कि—उसके सामने नहीं
पड़ना चाहिये) ॥ ३७-३८ ॥ तुम सब हाथी, घोड़े और रथों
परसे नीचे उतर पड़ो हाथोंमेंके शस्त्रोंको नीचे डाल दो, ज्यों ही

दस्त्रं भूमौ निरायुधान् ॥ ३६ ॥ यथा यथा हि युध्यन्ते योधाः
 ह्यस्त्रमिदं प्रति । तथा तथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः ॥ ४० ॥
 निक्षेप्यन्ति च शस्त्राणि बाहनेभ्योऽवरुह्य ये । तान्नैतदस्त्रं
 संग्रामे निहनिष्यति मानवान् ॥ ४१ ॥ ये त्वेत् प्रतियोत्स्यन्ति
 मनसापीह केचन । निहनिष्यति तान् सर्वान् रसातलगतानपि ४२
 ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वामुदेवस्य भारत । ईषुः सर्वे समुत्सृष्टुं
 मनोभिः करणेन च ॥ ४३ ॥ तत् उत्सृष्टुकामास्ताञ्छस्त्राण्या-
 लोच्य पाण्डवः । भीमसेनोऽब्रवीद्राजन्निदं संहर्षयन् वचः ॥ ४४ ॥
 न कथञ्चन शस्त्राणि प्रोक्तव्यानीह केनचित् । अहमाचारयि-
 ष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः ॥ ४५ ॥ गदयाप्यनया गुर्व्या ह्येवमि-
 ग्रहया रणे । कालवत् प्रहरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं त्रिशतयन् ॥ ४६ ॥

तुम शस्त्रहीन होकर पृथ्वी पर खड़े होजाओगे, कि-फिर नारा-
 णास्त्र किसीको नहीं मारेगा ॥ ३६ ॥ किन्तु ज्यों २
 योधा इस नारायणास्त्रके सामने युद्ध करेंगे त्यों २ कौरव तुमसे
 विशेष बलवान् होते चले जायेंगे ॥ ४० ॥ परन्तु जो बाहनों परसे
 उतर कर शस्त्रोंको नीचे डालदेंगे उन मनुष्योंको नारायणास्त्र
 नहीं मारेगा ॥ ४१ ॥ जो कोई योधा इस अस्त्रके सामने लड़नेका
 मनमें भी विचार करेंगे वे रसातलमें होंगे तो तहाँ भी उन सर्वोंको
 नारायणास्त्र मारडालेगा ॥ ४२ ॥ हे भरतवंशी राजन् । सब
 योधाओंने श्रीकृष्णकी इस बातको सुनकर मनसे और हाथोंमेंसे
 शस्त्रोंको त्याग देनेका विचार करलिया ॥ ४३ ॥ सब योधाओंको
 अस्त्रोंको त्यागनेके लिये उद्यत हुए देखकर भीमसेनने सर्वोंको
 प्रसन्न करते हुए कहा कि-कोई भी किसी प्रकार भी शस्त्रोंको नहीं
 डालना, मैं अकेला ही बाणोंकी मारसे अश्वत्थामाके अस्त्रको
 रोकदूँगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु इस सेनेकी
 खोलवाली बड़ी भारी गदासे युद्धमें अश्वत्थामाके अस्त्रोंके टुकड़े २

(१३४०) * महाभारत-द्रोणपर्व * [एकसौनित्यानवेवाँ]

न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह । यथैव सवितुस्तुल्यं
ज्योतिरन्यन्न विद्यते ॥ ४७ ॥ पश्यतेमौ हि मे बाहू नाग-
राजकरोपमौ । समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य निपातने ॥ ४८ ॥
नागाद्युतसम्प्राणो हृदमेको नरेष्विह । शक्रां यथाऽप्रतिद्वन्द्वो दिवि
देवेषु विश्रुतः ॥ ४९ ॥ अद्य पश्यतु मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयो-
र्युधि । ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वा रणे ॥ ५० ॥ यदि
नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते । अद्यैतत् प्रतियोत्स्यामि
पश्यत्तु कुरुपाण्डुषु ॥ ५१ ॥ अर्जुनार्जुन वीर्यतो न न्यस्यं
गायिहवं त्वया । शयाङ्कस्येव ते पङ्क्तौ नैर्मल्यं पातयिष्यति ॥ ५२ ॥
अर्जुन उवाच । भीम नारायणास्त्रं मे गोपु च ब्राह्मणेपु च ।

करडालूंगा और कालकी समान उसके शरीर पर भी प्रहार
करूँगा ॥ ४६ ॥ जैसे सूर्य की समान दूसरा तेज नहीं होता है,
तैसे ही इस जगत् में मेरी समान पराक्रमी कोई भी पुरुष नहीं
है ॥ ४७ ॥ बड़े हाथीके सूँठकी समान मेरे इन भुजदण्डोंको
देखो, जो हिमालय पर्वतको भी तोड़ सकते हैं ॥ ४८ ॥
जैसे स्वर्ग में देवताओं में इन्द्र इकड़ कहलाता है तैसे ही
दशहजार हाथियोंकी समान बलवान् में मनुष्यों में अद्वितीय
हूँ मेरी बराबरी करनेवाला दूसरा कोई है ही नहीं ॥ ४९ ॥
अश्वत्थामाके प्रकाशमान जलते हुए अस्त्रको रोकनेके लिये आज
मैं युद्ध में अपने बहुत मोटे खभे वाले भुजदण्डको पराक्रमको
दिखाऊँगा, उसको तुम सब देखना ॥ ५० ॥ यद्यपि जो नारा-
यणास्त्रके सामने लड़सके ऐसा कोई भी नहीं है, तो कौरवपाण्डवों
की दृष्टिके सामने आज मैं इसके सामने पड़कर युद्ध करूँगा ५१
हे अर्जुन ! हे अर्जुन ! तू अपने गाण्डीव धनुषको नीचे न डाल
देना, नहीं तो जैसे चन्द्रमामें कलङ्क लग गया है तैसे ही इस पङ्क्तु
का कलङ्क तेरी निर्पञ्चताको नष्ट करदेगा ॥ ५२ ॥ जब भीमसेनने

एतेषु गाण्डिवं न्यस्यमेतद्धि त्राशुत्तमम् ॥ ५३ ॥ एवमुक्तस्ततो
भीमो द्रोणपुत्रमरिन्दमम् । अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ५४
स एनमिषुजालेन लघुत्वाच्छीघ्रविक्रमः । निमेषमात्रेणासाद्य
कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ॥ ५५ ॥ ततो द्रौणिः प्रहस्यैनं द्रवन्तम-
भिमाष्य च । अवाकिरत् प्रदीप्ताग्रैः शरैस्तैरभिमन्त्रितैः ॥ ५६ ॥
पन्नगैरिव दीप्तास्यैर्मर्मभिन्निरलं रणे । अवकीर्णोऽभवत्पार्थः स्फु-
ल्लिगैरिव काञ्चनैः ॥ ५७ ॥ तस्य रूपमभूद्राजन् भीमसेनस्य
संयुगे । खद्योतैरावृतस्येव पर्वतस्य दिनक्षये ॥ ५८ ॥ तदस्त्रं द्रोण-
पुत्रस्य तस्मिन् प्रति समस्यति । अवर्द्धत महाराज यथाग्निरनिलो-

ऐसा कहा, उस समय अर्जुनने उत्तर दिया, कि-हे भीम !
मेरा उत्तम व्रत है, कि-नारायणास्त्र, गौ और ब्राह्मणके सामने
गाण्डीव धनुषको नीचे डाल दूंगा (अर्थात् मैं नारायणास्त्रके सामने
लड़नेको नहीं जाऊँगा) ॥ ५३ ॥ अर्जुनके ऐसा कहने पर भीमसेन,
वैरियोंका दमन करने वाले अश्वत्थामाके सामने मेघ की समान
गर्जना करनेवाले तथा सूर्यकी समान कान्तिवाले रथमें बैठकर लड़ने
को गया ॥ ५४ ॥ और निमेषमात्रमें उसके सामने पहुँचकर
फुरतीले पराक्रम वाजा भीमसेन भट्ट अश्वत्थामाके ऊपर बाणों
की वर्षा करने लगा ॥ ५५ ॥ अश्वत्थामाने भी खूब हँसकर,
लड़नेको चढ़कर आये हुए भीमसेनके साथ बातकी और फिर
जलती हुई अनावाचे बाणोंकी मंत्र मँढ़कर उसके ऊपर वर्षा
करना आरम्भ करदी ॥ ५६ ॥ उन बाणोंके मुख सपोंकी समान
जलरहे थे और रणमें ऐसे मालूम होते थे मानों मुखोंमेंसे आग
उगल रहे हैं, ऐसे सुवर्णके पतङ्गोंकी समान प्रतीत होनेवाले बाणों
से भीमसेन ढकगया ॥ ५७ ॥ इस लड़ाईमें भीमसेनका स्वरूप रात्रि
में चमकते हुए पटव्रीजनोंसे घिरे हुए पर्वतकी समान होगया
था ॥ ५८ ॥ हे महाराज ! भीमसेन नारायणास्त्रके सामने बाण

द्धतः ॥ ५६ ॥ आबद्धपानशालाचयः तदस्त्रं भीमविक्रमम् । पाण्डु-
सैन्यमृते भीमं सुमहद्भयमाविशत् ॥ ६० ॥ ततः शस्त्राणि दिव्यानि
समुत्सृज्य महीतले । अश्वारोहन् रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च
सर्वशः ॥ ६१ ॥ तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु ब्राह्मेभ्यश्च्युतेषु च । तदस्त्रं
वीर्यविपुलं भीममूर्धन्यथापतत् ॥ ६२ ॥ हाहाकृतानि भूतानि
पाण्डवाश्च विशेषतः । भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तदा ६३
इति श्रीमहाभारते नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि पाण्डवसैन्यास्त्रत्यागे
नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

सञ्जय उवाच । भीमसेनं समाकीर्णं दृष्ट्वास्त्रेण धनञ्जयः ।
तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत् ॥ १ ॥ नालक्षयत तत् कश्चि-
द्धारुणास्त्रेण संवृतम् । अर्जुनस्य लघुत्वाच्च संवृतत्वाच्च तेजसः २

छोड़ रहा था, उस समय अश्वत्थामाका नारायणास्त्र, जैसे पवन
से अग्नि बढ़ता है तैसे बढ़ता चला जाता था ॥ ५६ ॥ भयङ्कर
पराक्रमवाले उस नारायणास्त्रको बढ़ते हुए देखकर भीमसेनके
सिवाय पाण्डवोंकी सेनाके सब योधाओंको भय लगने लगा ६०
सब योधा रथोंपरसे, हाथियोंके ऊपरसे और घोड़ोंके- ऊपरसे
नीचे उतर पड़े और सर्वोंने अग्ने २ शस्त्र नीचे भूमिपर डालदिये
जब सब योधा बाढ़नों परसे नीचे उतर पड़े और उन्होंने अपने
शस्त्रोंको नीचे फेंकदिया, उस समय वह महापराक्रमी अस्त्र भीम-
सेनके मस्तकपर आपड़ा और उससे ढके हुए भीमसेनका दीखना
बंद होगया, तब सब लोग तथा पाण्डव हाहाकार करनेलगे ६१-६३
एक सौ निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६६ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! भीमसेनको नारायणास्त्रसे
ढकाहुआ देखकर अर्जुनने उस अस्त्रके तेजका नाश करनेके लिये
भीमसेनको वारुणास्त्रसे ढादिया ॥ १ ॥ अर्जुनका हाथ बढ़ा ही
फुरतीला था और तेजसे भीमसेन ढकाहुआ था, इसलिये अर्जुन

साश्वसूनरथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्रसंवृतः । अघ्रावग्निरिव न्यस्तो
ज्वालामाली सुदुर्दृशः ॥ ३ ॥ यथा रात्रिज्ञे राजन् ज्योतीष्य-
स्तंगिरिं प्रति । समापेतुस्तथा बाणा भीमसेनरथं प्रति ॥ ४ ॥ स
हि भीमो रथश्चास्य हयाः सूतश्च मारिष । संवृता द्रोणपुत्रेण
पावकान्तर्गताभवन् ॥ ५ ॥ यथा जग्ध्वा जगत्कृत्स्नं समये सच-
राचरम् । गच्छेदग्निर्विभोरास्यं तथास्त्रं भीममावृणोत् ॥ ६ ॥ सूर्य-
मग्निं प्रविष्टः स्याद्यथा चाग्निं दिवाकरः । तथा प्रविष्टं तत्तेजो न
प्राज्ञायत पाण्डवम् ॥ ७ ॥ विकीर्णमस्त्रं तद् दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति ।
उदीर्यमाणं द्रौणिञ्च निष्प्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ८ ॥ सर्वसैन्यं च पांडूनां

ने जो वारुणास्त्रसे भीमसेनको ढका यह किसीके देखनेमें नहीं
आया ॥ २ ॥ अश्वत्थामाके नारायणास्त्रसे घांड़े, सारथी और
रथसहित भीमसेन ढकगया था और वह ज्वालारूप मालावाले
अग्निमें रहनेकी समान अत्यन्त अदृश्य होगया था, हे राजन् !
प्रातःकाल होने पर जैसे ताराओंका समूह अस्ताचल पर्वतकी
ओरको जाता है तैसे ही अश्वत्थामाके बाण भीमसेनके रथकी
ओरको चले जा रहे थे ॥ ३ ॥ ५ ॥ हे राजन् ! भीमसेन, उसका
रथ, घोड़े, सारथी इन सबोंको अश्वत्थामाने अस्त्रोंसे ढकदिया
था, इसलिये सब आगके भीतर आपड़े ॥ ५ ॥ जैसे प्रलयकालमें
अग्निस्थावर जङ्गम सब जगत्को जलाकर परमात्माके मुखमें प्रवेश
कर जाता है तैसे ही नारायणास्त्रने भी भीमसेनके रथके चारों
ओर प्रवेश किया (घेरलिया) था ॥ ६ ॥ जैसे अग्नि सूर्यमें
और सूर्य अग्निमें इसप्रकार प्रवेश कर जाता है, कि-कोई जानने
ही नहीं पाता, ऐसे ही नारायणास्त्रका तेज भीमसेनमें प्रवेश कर
गया ॥ ७ ॥ अश्वत्थामाने भीमसेनके रथके ऊपर नारायणास्त्र
मारा, यह देखकर तथा युद्धमें दूसरा जिसका सामना करनेवाला
नहीं है ऐसे अश्वत्थामाको जोशमें आया हुआ देखकर पाण्डवोंके

न्यस्तशस्त्रमचेतनम् । युधिष्ठिरपुगेर्गाश्च विष्णुर्वास्तान्महारथानह
 अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती । अत्रप्लुत्य रथादीरौ
 भीममाद्रवतां तदा ॥१०॥ ततस्तद् द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलस-
 म्भवम् । विगाह्य तौ सुबलिनौ मायामाविशतां तदा ॥११॥ न्य-
 स्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नादहतुः सोऽस्त्रजोऽनलः । वारुणास्त्रप्रयोगाच्च
 वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः १२ ततश्चकृपतुर्भीमं सर्वशस्त्रायुधानि च । नारा-
 यणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात् ॥ १३ ॥ आकृष्यमाणः
 कौन्तेयो वदत्येव महारथम् । वर्धते चैव तद् घोरं द्रोणेशस्त्रं मुहु-
 र्जयम् ॥ १४ ॥ तमब्रवीद्वीद्वीद्रासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन । वार्य-
 माणोऽपि कौन्तेय यद्युद्धान्न निवर्त्तसे ॥१५॥ यदि युद्धेन जेषाः स्यु-

सब योधाओंने अचेत होकर हाथोंमेंके शस्त्र फेंकदिये और युधि-
 स्थिर आदि सब महारथी रथमेंसे भागनेलगे, यह देखकर महा-
 कान्तिवाले वीर अर्जुन तथा श्रीकृष्ण एकसाथ रथमेंसे नीचे
 कूदपड़े और शीघ्रतासे भीमसेनके रथकी ओरको दौड़े ॥८-१०॥
 और वह दोनों बलवान् मायासे अश्वत्थामाके नारायणास्त्रके
 तेजमें समागये ॥ ११ ॥ इस समय अर्जुन और श्रीकृष्णने शस्त्र
 त्याग दिये थे, वारुणास्त्रका प्रयोग किया था और वे दोनों पराक्रमी
 थे, इसलिये नारायणास्त्रकी अग्नि उन दोनोंको जला नहीं सकी १२
 (भीमसेनके पास जाकर) नारायणास्त्रकी शान्तिके लिये कृष्ण
 और अर्जुनने जोरावरी भीमसेनके सब शस्त्र खेंचना आरम्भ
 कर दिये और उसको रथमेंसे नीचे उतारने लगे ॥१३॥ परन्तु
 भीमसेनने शस्त्र नहीं छोड़े और रथमेंसे नीचे भी नहीं उतरा
 किन्तु वह बड़ी जोर से गर्जना करनेलगा और उस गर्जनाके
 साथ ही साथ अश्वत्थामाका महादुर्जय और घोर नारायणास्त्र
 भी बढनेलगा ॥१४॥ तब श्रीकृष्णने भीमसेनसे कहा, कि-अरे
 ओ भीम ! यह क्या करता है ? रोकने पर भी तू युद्धमेंसे पीछेको

रिमे कौरववन्दनाः । वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः ॥ १६ ॥
 रथेभ्यस्त्ववतीर्णाः स्मः सर्व एव हि तावकाः । तस्मात्त्वमपि कौन्तेय
 रथान्तर्णमयाक्रम ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद्भूमिवर्त-
 यत् । निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥ १८ ॥ यदा-
 पकृष्टः स रथान्वासितश्चायुधं भुवि । ततो नारायणास्त्रं तत् प्रशा-
 न्तं शत्रुतापनम् ॥ १९ ॥ सञ्जय उवाच । तस्मिन् प्रशान्ते विधिना
 तेन तेजसि दुःसहे । बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च २०
 प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः । वाहनानि महृष्टानि
 प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये ॥ २१ ॥ व्यपोढे च ततो घोरे तस्मिन्तेजसि
 भारत । बभौ भीमो निशापाये धीमान् सूर्य इन्दोदितः ॥ २२ ॥

नहीं हटता है, यदि युद्धसे ही कौरवोंको जीतना हो तो हम तथा
 ये महापुरुष भी युद्ध करनेको तयार हैं ॥ १५-१६ ॥ परन्तु यहाँ
 हटका काम नहीं है (चालका काम है) तेरे पक्षके सब योधा
 रथोंमेंसे नीचे उतर पड़े हैं, इसलिये हे भीम ! तू भी भट्ट रथमेंसे
 नीचे उतर पड़ ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्णने भीमसेनको
 रथमेंसे नीचे उतार दिया, इस समय भीमसेन सर्पकी समान फुङ्कारें
 भर रहा था और उसके नेत्र क्रोधके मारे लाललाल होरहे थे ॥ १८ ॥
 परन्तु भीमे ज्योंही रथमेंसे नीचे उतरपड़ा और अपने शस्त्रोंको
 नीचे डाला, कि-उसी समय वैरीको सन्ताप देनेवाला नारायणास्त्र
 शान्त पड़गया १९ सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! हम
 रीतिसे नारायणास्त्रका दुःसह तेज शान्त पड़गया, सब दिशाओं
 और कोने निर्मल होगये ॥ २० ॥ शान्तिकारी पवन चलनेलगे,
 पशु पक्षी परम शान्त होगये और हाथी घोड़े आदि वाहन भी
 प्रसन्न होगये २१ हे भरतवंशी राजन् ! उस घोर अस्त्रका तेज
 शान्त पड़जाने पर जैसे प्रातःकालके समय उदय हुआ सूर्य शोभा
 पाता है तैसे ही बुद्धिमान् भीम शोभा पानेलागा ॥ २२ ॥ पाँदवाँकी

हतशेषं बलं तत्तु पाण्डवानामतिष्ठत् । अस्त्रव्युत्तरमादृष्टं तव
 पुत्रजिघांसया ॥२३॥ व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा ।
 दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाब्रवीत् ॥२४॥ अश्वत्थामन् पुनः
 शीघ्रमस्त्रमेतत् प्रयोजय । अवस्थिता हि पञ्चालाः पुनरेव जय-
 पिणः ॥ २५ ॥ अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष ।
 सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥ नैतदावर्त्तते
 राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते । आवृतं हि निवर्त्तत प्रयोक्तारं न संशयः २७
 एष चास्त्रमतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान् । अन्यथा विहितः संख्ये-
 क्षयः शत्रोर्ज्जनाधिप ॥ २८ ॥ पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयान्
 मृत्युर्न निर्जयः । जिजिंताश्चारयो होते शस्त्रोत्सर्गान्मृतो-

मरते २ बची हुई सेना, शस्त्रके शान्त होजाने पर तुम्हारे पुत्रका
 नाश करनेके लिये फिर हर्षमें भरगयी ॥ २३ ॥ इसप्रकार वह
 अस्त्र शान्त होगया और पाण्डवोंकी सेनामें फिर व्यवस्था होगयी,
 हे महाराज ! उस समय दुर्योधनने अश्वत्थामासे कहा, कि-हे
 अश्वत्थामा ! ॥२४॥ तू शीघ्र ही इस अस्त्रका प्रयोग फिरकर,
 क्योंकि-यह पांचाल विजयकी इच्छासे हमारे साथ लड़नेको तयार
 होकर खड़े हैं ॥ २५ ॥ तुम्हारे पुत्रने अश्वत्थामासे कहा, तव
 अश्वत्थामाने बड़ी दीनताभरा श्वास छोडकर राजा दुर्योधनसे
 कहा, कि-॥ २६ ॥ इस अस्त्रका दो बार प्रयोग नहीं होसकता
 और यदि दो बार इसका प्रयोग कियाजाय तो वह निष्फल
 जाता है तथा यह अस्त्र उलटा प्रयोग करनेवालेके ही ऊपर आकर
 पडता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं है ॥२७॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णने
 इस अस्त्रको निष्फल कर दिया है, क्योंकि-वह यदि इसका उपाय
 नहीं बतलाते तो यह अस्त्र वैरीका संहार ही करडालता ॥२८॥
 युद्धमें पराजय या मरण दो ही बातें होती हैं, उनमें पराजयसे
 मरण अच्छा मानाजाता है ! हमने वैरियोंको जीतलिया है और

पपाः ॥ २६ ॥ दुर्योधन उवाच । आचार्यपुत्र यद्येतत् द्विरस्त्रं न
प्रयुज्यते । अन्यैर्गुरुणा वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदाम्बर ॥ ३० ॥ त्वयि
दिव्यानि चास्त्राणि त्र्यम्बके चामितौजसि । इच्छतो हि न मुच्येत
क्रुद्धो ह्यपि पुरन्दरः ॥ ३१ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन्नस्त्रे प्रति-
हते द्रोणे चोपधिना हते । तथा दुर्योधनोक्तो द्रौणिः किमकरोत्
पुनः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वा पार्याश्व संग्रामे युद्धाय समुपस्थितान् । नारा-
यणास्त्रनिर्मुक्ताश्चरतः पृतनामुखे ॥ ३३ ॥ सञ्जय उवाच ।
जानन् पितुः स निधनं सिंहलांगूलकेतनः । सक्रोधो भयमुत्सृज्य
सोऽभिद्रवाव पार्षतम् ॥ ३४ ॥ अभिद्रुत्य च विंशत्या जुद्रकाणां
नरर्षभ । पञ्चभिश्चातिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ३५ ॥ धृष्ट-

जब उन्होंने शस्त्र डालदिये तो उनको मरा हुआ ही समझियो ॥ २६ ॥
दुर्योधनने कहा, कि-हे अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा ! यदि
इस अस्त्रका प्रयोग दो बार न होसकता हो तो दूसरे अस्त्रोंसे
चैरियोंको मारो, क्योंकि-इन्होंने गुरु द्रोणाचार्यको मारडाला
है ॥ ३० ॥ तुम्हारे पास तथा अपार शक्तिवाले श्रीशङ्करके पास
बहुतसे दिव्य अस्त्र हैं, यदि तुम चाहो तो कोपमें भराहुआ इन्द्र
भी तुम्हारे हाथसे छूटकर नहीं जासकता ॥ ३१ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा,
कि-हे सञ्जय ! द्रोणको कपटसे मार डाला गया और नारायणास्त्र
निष्फल होगया तथा दुर्योधनने अश्वत्थामासे यह बात कही,
इसके बाद नारायणास्त्रकी भ्रष्टसे बचेहुए पाण्डव युद्ध करनेके
लिये सेनाके मुहाने पर आकर खड़े होगये, उस समय उनको
देखकर अश्वत्थामाने फिर क्या किया ! ॥ ३२-३३ ॥ सञ्जयने
उत्तर दिया, कि-जिसकी ध्वजामें सिंहकी पूँछका चिह्न है ऐसा
अश्वत्थामा, अपने पिताको मारागया सुनकर क्रोधमें भरगया
और निर्भय होकर धृष्टद्युम्नके सामने लड़नेको दौड़ा ॥ ३४ ॥
और हे श्रेष्ठपुरुष ! जुद्रक नामके बीस बाण तथा दूसरे पाँच बाण

द्युम्नस्ततो राजन् ज्वलन्तमिव पावकम् । द्रोणपुत्रं चतुःपृष्ठा
 राजन् विव्याध पत्रिणाम् ॥ ३६ ॥ सारथिञ्चास्य विंशत्या स्वर्ण-
 पुद्गैः शिलाशितैः । हयांश्च चतुरोऽविध्यञ्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ३७
 विध्वा विध्वानदद द्रौणिं कम्पयन्निव मेदिनीम् । आददे सर्व-
 लोकस्य प्राणानिव महारणेऽहं पार्पितस्तु वली राजन् कृतास्त्रः
 कृतनिश्चयः । द्रौणिमेवाभिद्रुद्राव मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ३८ ॥
 ततो वाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्द्धनि । अवाप्तजदमेयात्मा पांचा-
 ल्यो रथिनाम्बरः ॥ ४० ॥ तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं ह्लादयामास
 पत्रिभिः । विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४१ ॥ द्वाभ्यां
 च सुविष्टाभ्यां क्षुराभ्यां ध्वजकामुर्धके । छित्त्वा पाञ्चालराजस्य
 षडे वंगसे मारकर धृष्टद्युम्नको घायल करदियो ॥ ३५ ॥ हे राजन् !
 धृष्टद्युम्नने भी जलतेहुए अग्निकी समान तेजस्वी अश्वत्थामाके
 तिसरेसठ बाणों मारे ॥ ३६ ॥ फिर सोनेके पुरोंवाले और शिला
 और घिसकर तेज कियेहुए बीस बाण उसके सारथीके मारे और
 तेज कियेहुए चार बाण उसके चारों घोड़ोंके मारे ॥ ३७ ॥ धृष्टद्युम्न
 अश्वत्थामाको बाणोंसे घायल करताहुआ गर्जना करता जाता
 था तथा पृथ्वीको कम्पायमान कर रहा था, इसप्रकार वह ऐसा
 युद्ध करने लगा, कि—मानो सब ही लोगोंके प्राणोंको हरलेगा ३८
 धृष्टद्युम्न वलवान्, अस्त्रविद्यामें कुशल और दृढ़ निश्चयवाला
 था वह इस समय मृत्युको पीछेको हटाकर अश्वत्थामाके
 सामने लड़नेको गया ॥ ३९ ॥ महाबली और महा-
 रथी धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना
 आरम्भ कर दी ॥ ४० ॥ तब अश्वत्थामाने भी अपने पिताकी
 मृत्युको याद करके लड़ते २ कोपमें भरेहुए धृष्टद्युम्नके दश बाण
 मारे ॥ ४१ ॥ और फिर क्षुर जातिके दो बाण मार कर उसकी
 ध्वजा और धनुषको काटवाला तथा दूसरे दो बाण मार कर

द्रौणिर्मन्यैः समार्दयत् ॥ ४२ ॥ अश्वमूत्ररथञ्चैनं द्रौणिश्चक्र
महाहवे । तस्य चानुचरान् सर्वान् क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः ॥ ४३ ॥
ततः प्रदुद्रुवे सैन्यं पञ्चालानां विशाम्पते । सम्भ्रान्तरूपमार्त्तञ्च
परस्परमुदैक्षत ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा तु विमुखान् योधान् धृष्ट्युम्नञ्च
पीडितम् । शैनेयोऽवोदयच्छूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ ४५ ॥
अष्टभिर्निशितैर्वाणैः सोऽश्वत्थामानमार्दयत् । विशत्या पुनरा-
हत्य नानारूपैरमर्षणः ॥ ४६ ॥ विव्याध च तथा मृतं चतुर्भिश्च-
तुरो हयान् । धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ४७ ॥
स सारथं व्यधमच्चापि रथं हेमपरिष्कृतम् । हृदि विव्याध समरे
विशता सायकैर्भृशम् ॥ ४८ ॥ एवं स पीडितो राजन्श्वत्थामा

बहुत ही पीडित किया ॥ ४२ ॥ इस प्रकार बहुतसे बाण मार
कर रणमें धृष्ट्युम्नको घोड़े, सारथी और रथसे हीन कर दिया
और फिर क्रोधमें भर कर उसके सब अनुचरोंको बाण मारकर
भगा दिया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! इस समय पांचालोंकी सेना
बड़ी ही व्याकुल होगयी तथा एक दूसरेको देखे बिना ही भाग
निकली ॥ ४४ ॥ सैनिकोंको रणमेंसे भागते हुए देखकर तथा
धृष्ट्युम्नको दुःखी होते देखकर सात्यकीने तुरन्त ही अपने
रथको अश्वत्थामाके रथके सामनेको दौड़ाया ४५ और वड़े क्रोध
में आकर अश्वत्थामाके पास जा पहले आठ और फिर भिन्न २
जातिके बीस बाण उसके मारे ॥ ४६ ॥ फिर सारथीको घायल किया
किया और तदनन्तर चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको घायल
किया और फिर सावधान होकर कसीले हाथवाले पुरुषकी समान
अश्वत्थामाके धनुष और ध्वजाको उड़ा दिया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर
उसके सोनेसे सजे हुए घोड़ों वाले रथको उड़ा दिया (तोड़ डाला)
और उसकी छातीमें जोरसे बीस बाण मारे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार
महाबली अश्वत्थामाको बाणोंके प्रहारोंसे पीडित करने लगा और

महाबलः । शरजालैः परितुतः कर्तव्यं नान्वपद्यत ॥ ४६ ॥ एवं
 गते गुरोः पुत्रे तव पुत्रो महारथः । कृपकर्णादिभिः सार्धं शरैः
 सात्वतमावृणोत् ॥ ४७ ॥ दुर्योधनस्तु विश्लथा कृपः शारदत-
 स्त्रिभिः । कृतवर्माथ दशभिः कर्णः पञ्चाशता शरैः ॥ ४८ ॥
 दुःशासनः शतैव वृषसेनश्च सप्तभिः । सात्यकिं विज्यधुस्तूर्णं
 समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ४९ ॥ ततः स सात्यकी राजन् सर्वानेव
 महारथान् । विरथान् विमुखाश्चैव क्षणैर्वाकरोन्मुप ॥ ५० ॥
 अश्वत्थामा तु सम्प्राप्य चेन्ना भरतपुत्र । विमृश्यामास दुःस्वार्तो
 निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ ५१ ॥ अथो रथान्तरं द्रौणिः समा-
 रूढः परन्तपः । सात्यकिं चारयामास किरङ्करशतान् बहून् ॥ ५२ ॥
 तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य भारद्वाजमुतं रणे । विरथं विमुखाश्चैव पुन-

वह बाणोंके जालसे ढक गया, उस समय उसको नहीं सूझा, कि
 क्या करना चाहिये ४६ गुहपुत्र अश्वत्थामाकी ऐसी दशा होगयी,
 उस समय तुम्हारा महारथी पुत्र, कृपाचार्य और कर्ण आदिके
 साथमें हो सात्यकीके बाण मारने लगा ॥ ४७ ॥ दुर्योधनने बीस
 कृपाचार्यने तीन, कृतवर्माने दश, कर्णने पचास, दुःशासनने सौ
 और वृषसेनने सात इस प्रकार भिन्न २ महारथियोंने चारों ओर
 से तेज किये हुए बाण एकसाथ मारकर सात्यकीको घायल कर
 दिया ॥ ४८-४९ ॥ परन्तु हे राजन् ! सात्यकीने एक क्षणमें
 उन सब महारथियोंके रथहीन करके रणमें विमुख कर दिया ५०
 इतनेमें ही अश्वत्थामाको भान आया, वह दुःखसे आतुर होकर
 लंबे साँस लेता हुआ बारंबार विचार करने लगा, कि—अब क्या
 करना चाहिये ! ॥ ५१ ॥ परन्तप अश्वत्थामा फिर दूसरे रथ पर
 सवार होकर सात्यकीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके उसको लहने
 से रोकने लगा ॥ ५२ ॥ इस संग्राममें अश्वत्थामा ज्यों ही आया
 कि—महारथी सात्यकीने फिर रथके टुकड़े करके उसको रणमें से

रथके महारथः ॥ ५६ ॥ ततस्ते पाण्डवा राजन् दृष्ट्वा सात्यकि-
विक्रमम् । शंखशब्दान् शृशं चक्रुः सिंहनादाश्च नेदिरे ॥ ५७ ॥
एवं तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः । जघान वृषसेनस्य
त्रिसाहस्रान् महारथान् ५८ अयुतं दन्तिनां सार्धं कृपस्य निजघान
सः ॥ पञ्चायुतानि चारवानां शकुनेर्निजघान ५९ ततो द्रौणिर्महाराज
रथमारुह्य वीर्यवान् सात्यकिं प्रति संक्रुद्धः प्रययौ तद्वधेऽस्य ६०
पुनस्तमागतं दृष्ट्वा शैनेयो निशितैः शरैः । अदारयत् क्रूरतरैः
पुनः पुनरिन्दम ॥ ६१ ॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिंगै-
रमर्षणः । युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ६२ ॥
शैनेयाभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यवातिनीम् । न चेनं त्रास्यसि
मया अस्तमात्मानमेव च ॥ ६३ ॥ शपेत्पनाहं शैनेय सत्येन

त्रिमुख करदिया ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! पाण्डव सात्यकीके ऐसे
पराक्रमको देखकर बारम्बार शङ्खोंकी ध्वनि और गर्जनार्थे कर
रहे थे ॥ ५७ ॥ पराक्रमी सात्यकीने अश्वत्थामाको रथसे हीन
कर देनेके बाद वृषसेनके तीन हजार महारथियोंको मार डाला ५८
कृपाचार्यके पन्द्रह हजार हाथियोंको मार डाला तथा शकुनिके पचास
हजार घोड़ों को मार डाला ॥ ५९ ॥ हे महाराज ! इतनेमें ही
पराक्रमी अश्वत्थामा रथमें बैठकर क्रोधमें भरे हुए सात्यकीको मार
डालनेकी इच्छासे उसके सामने आडटा ॥ ६० ॥ हे अरिदमन
राजन् ! अश्वत्थामाको फिर चढ़कर आया हुआ देखकर सात्यकी
ने तेज किये हुए बड़े ही उग्र वाण उसके तले ऊपर मारना
आरम्भ करदिये ॥ ६१ ॥ महाधनुषधारी और असहनशील
अश्वत्थामाको सात्यकीने बहुतसे वाण मार कर वीधदिया, तब
उसने हँसकर सात्यकीसे कहा, कि-६२ हे सात्यकी ! तू आचार्यके
मारने वालेका पक्ष करता है, यह मैं जानता हूँ, परन्तु मैंने तुझे
घेरलिया है, इसलिये अब तू उसकी तथा अपनी रक्षा नहीं कर

तपसा तथा । अहत्वा सर्वपञ्चालान् यदि शान्तिमहं लभे ॥ ६४ ॥
 यद्वलं पाण्डवयानां वृष्णीनामपि यद्वलम् । कियतां सर्वमेवेह
 निहनिष्यामि सोमकान् ॥ ६५ ॥ एवंमुक्त्वा कर्कशम्भाभं सुतीक्ष्णं
 तं शरोत्तमम् । व्यसृजत् सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः । दद
 स तं निर्भिद्य तेनास्तः सायकः सशरावरम् । विवेश वसुधां भित्वा
 श्वसन् विलम्बिभोरगः ॥ ६७ ॥ स भिन्नकवचः शूरस्तोत्रादित
 इव द्विपः । विमुच्य सशरञ्चापं भूरिव्रणपरिम्रवः ६८ सीदन् रुधिर-
 सिक्तरश्मिपथोपस्थउपाविशत् । मृतेनापहतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद्रागान्तरम् ६९
 अथान्येन सुपुङ्गेन शरेणानतपर्वणा । आजघान भुवोर्मध्ये घृष्ट-

सकेगा ६३ हे सात्यकी ! मैं अपने सात्यकी और तपकी शपथ खाकर
 कहता हूँ, कि-सब पांचाल राजाओंका नाश किये बिना घेन
 नहीं लूँगा ॥ ६४ ॥ पाण्डवोंकी और सोमक राजाओंकी जितनी
 भी सेना हो, उस सब सेनाको इकट्ठी करलो, परन्तु मैं सोमकोंका
 बीजनाश ही करडालूँगा ॥ ६५ ॥ ऐसा कहकर, जैसे इन्द्रने
 वृत्रासुरके ऊपर वज्रका पहार किया था तैसे ही अश्वत्थामाने बड़े
 तीखे और मूर्खकी किरणोंकी समान चमकते हुए बाण सात्यकी
 के ऊपर छोड़े ॥ ६६ ॥ अश्वत्थामाका मारा हुआ बाण सात्यकी
 के कवचसहित शरीरको फोड़कर जैसे साँप फुट्टारें भरता
 हुआ बिलमें घुसजाता है तैसे ही पृथिवीको फोड़कर भीतर घुस
 गया ॥ ६७ ॥ वीर सात्यकीके कवचके चिथड़े होगये, इसलिये
 वह भालेसे मारेहुए हाथीकी समान होगया, उसने हाथमेंसे धनुष
 नीचे डालदिया उसके घावोंमेंसे बहुतसा रुधिर टपकनेलगा ६८
 रुधिरमें भीगाहुआ सात्यकी वेदनासे दुःखित होता हुआ रथकी
 बैठक पर बैठगया, उस समय उसका सारथी तुरन्त उसको अश्व-
 त्थामाके सामनेसे दूसरे स्थान पर लेगया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर
 बैरियोंको सन्ताप देनेवाले अश्वत्थामाने अच्छी पूँछवाला और

द्युम्नं परन्तपः ॥७०॥ स पूर्वमतिविद्वश्च भृशं पश्चात् सुप्रदिनः ।
ससाद युधि पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम् ॥७१॥ तं नाग-
मित्रं सिंहेन दृष्ट्वा राजन् शरादिनम् । जवेनाभ्यद्रवञ्छूराः पञ्च
पाण्डवतो रथाः ॥७२॥ किरीटी भीमसेनश्च बृहत्क्षत्रश्च पौरवः ।
युवराजश्च चेदीनां मालवस्तु सुदर्शनः ॥ ७३ ॥ एते हाहाकृताः
सर्वे प्रगृहीतशरासनाः । वीरं द्रौणायनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन् ७४
ते विंशतिपदे यत्ता गुरुपुत्रमर्पणम् । पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणै-
रभ्यधनन् सर्वतः समम् ॥ ७५ ॥ आशीविषाभैः विंशत्या पञ्च-
भिश्च शितैः शरैः । चिच्छेद युगपद् द्रौणिः पञ्चविंशतिसाय-
कान् ॥ ७६ ॥ सप्तभिश्च शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिराद्वयत् । मालवं

नमे हुए पर्ववाला दूसरा बाण लेकर धृष्टद्युम्नकी दोनों भौंके बीच
में मारा ॥ ७० ॥ धृष्टद्युम्न पहलेसे ही बहुत घायल हो रहा था
और बादको भी अश्वत्थामाने उसको बहुत दी पीड़ा दी
थी, इस कारण वह निर्वल होगया था, तदनन्तर वह
ध्वजाके दण्डके सहारा लेकर रथमें बैठगया ॥ ७१ ॥
हे राजन् ! जैसे सिंह हाथीको पीड़ा देता है, तैसे ही अश्वत्थामा
धृष्टद्युम्नको बहुत ही पीड़ित करने लगा, यह देखकर पाण्डवोंकी
सेनामेंसे पाँच वीर महारथी बड़े वेगसे दौड़ आये ॥७२॥ धनञ्जय,
भीमसेन, पुरुवंशो बृहत्क्षत्र, चेदिका युवराज और मालवेका राजा
सुदर्शन ॥ ७३ ॥ इन सब महारथियोंने हो हो हो और हा हा हा
करतेहुए हाथमें धनुष लेकर वीर अश्वत्थामाको चारों ओरसे
घेरलिया ॥७४॥ और बीस पग पर दूर खड़ेहुए असनदशील
द्रोणपुत्रके उन सब महारथियोंने सावधान होकर एकसाथ पाँच
बाण मारे ॥ ७५ ॥ अश्वत्थामाने भी उनके ऊपरके विपथर
सर्पोंकी समान, तेज कियेहुए पचीस बाण मारकर उनके पचीसों
बाणोंको काटडाला ॥ ७६ ॥ और फिर अश्वत्थामाने पुरुवंशी

त्रिभिरेकेन पार्थ पट्भिर्द्व्यकोदशम् ॥ ७७ ॥ ततस्ते विष्यधुः सर्वे
 द्रौणि राजन्महारथाः । युगपच्च पृथक् चैव रुद्रमपु स्वैः शिला-
 शितैः ॥ ७८ ॥ युवराजश्च विंशत्या द्रौणि विव्याध परिभिः ।
 पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ७९ ॥ ततोऽर्जुनं
 पट्भिरथाजघान द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम् । भीमं दशाद्यैर्युव-
 राजं चतुर्भिर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां मालवं पौरवञ्च ॥ ८० ॥ मृतं विध्वा भीम-
 सेनस्य पट्भिर्द्वाभ्यां ह्रित्वा कर्णमुक्च ध्वजञ्च । पुनः पार्थ शर-
 वर्षेण विध्वा द्रौणिघोरं सिंहनादं ननाद ॥ ८१ ॥ तस्यास्पतः
 सुनिशितान् पीतधारान् द्रौणेः शरान् पृष्टतश्चाग्रतश्च । धरा वि-
 ह्वयौः प्रदिशो दिशश्चच्छन्ना वाणैरपवन् घोररूपैः ॥ ८२ ॥
 आसन्नस्य स्वरथं तीव्रतेजाः सुदर्शनस्येन्द्रकेतुपकाशौ । शुभो

राजाके सात, मालवराजके तीन, अर्जुनके एक और भीमके दस
 बाण मारे ॥ ७७ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर उन सब महारथियोंने
 एकसाथ तथा अलग-अलग सोनेके परोवाले और शिलापर घिसकर
 तेज कियेहुए बाण अश्वत्थामाके मारे ॥ ७८ ॥ चेदिके युवराजने
 अश्वत्थामाके बीस बाण मारे, अर्जुनने आठ बाण मारे और
 दूसरे सर्वोंने तीन-दो बाण मारे ॥ ७९ ॥ अश्वत्थामाने छः बाण
 अर्जुनके, दश बाण श्रीकृष्णके, पाँच बाण भीमके, चार बाण
 चेदिके युवराजके और दो बाण मातृवराजके तथा वृद्धसत्रके
 मारे ॥ ८० ॥ फिर भीमसेनके सारथीके छः बाण मारे, दो बाणोंसे
 उसके धनुनको और ध्वजाको काटहाला, फिर बाणोंकी वर्षा
 करके अर्जुनको घेरदिया और सिंहकी समान भयंकर गर्जना
 की ॥ ८१ ॥ अगले और पिछले भागमें पानी पिलाये हुए तीखी
 धारवाले बाणोंकी मारामार करतेहुए अश्वत्थामाके भयंकर
 बाणोंसे पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, दिशायें और कोने ढकगये ८२
 तीव्र-तेजवाले और इन्द्रकी समान बलवान् अश्वत्थामाने अपने

शिरश्चेन्द्रसमानवीर्यस्त्रिभिः शरैर्युगपत् सञ्चकर्त्त ॥ ८३ ॥ स
 पौरवं रथशक्त्याभिहत्य छित्वा रथं तिलशश्वास्य बालैः । छित्वा
 च बाहुं वरचन्दनाक्तौ भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त्त ॥ ८३ ॥
 पुनानमिन्दीवरदामवर्णञ्चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य । बालैस्त्वरा-
 वान् ज्वलिताग्निक्वपैर्विध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम् ॥ ८४ ॥
 मालवं पौरवञ्चैव युवराजञ्च चेदिपम् । दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोण-
 पुत्रेण पाण्डवः ॥ ८५ ॥ भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाश्रयत्
 परम् । ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः स क्रुद्धाशीविपोपमैः ॥ ८७ ॥ द्वाद-
 शमास समरे द्रोणपुत्रं परन्तपः । ततो द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं
 निहत्य तम् ॥ ८८ ॥ दिव्याथ निशितैर्वाणैर्भीमसेनममर्षणः ।
 ततो भीमो महाबाहुर्द्रौणेर्पुंषि महावज्रः ॥ ८९ ॥ जुरात्रेण धनु-

रथके पास खड़े हुए सुदर्शनकी इन्द्रकी ध्वजाकी समान प्रकाशवान्
 दोनों ध्वजाओंको तथा मस्तकको तीन बाण मारकर एकसाथ
 काट डाला ॥ ८३ ॥ फिर रथशक्तिसे दृढ़चक्रको मार डाला, बाणोंसे
 उसके रथके तिलर की समान खण्ड कर डाले, अच्छे प्रकारसे
 चन्दन लगी हुई दोनों बाहुओंको भी काट डाला और भल्ल नाम
 का बाण मारकर उसके शरीर परसे उसके शिरको उड़ा दिया ॥
 फिर कपजोंकी मालाकी समान कानिवाले चेदिदेशके तरुण
 युवराजको जोर लगाकर फुरतीये अग्निही समान प्रज्वलित बाण
 मारकर सारथी तथा घोड़ोंके सहित यमलोकमें भेज दिया ॥ ८४ ॥ अश्व-
 तथामाने मालवराज, पौरवराज और चेदिदेशके युवराजको अपने
 सामने मार डाला, यह देखकर पाण्डुपुत्र भीमसेनको बड़ा ही
 क्रोध चढ़ा, उसने क्रुपित हुए विषधर सर्पकी समान सँकड़ों बाण
 मारकर रणमें अश्वतथामाको ढक दिया, परन्तु अश्वतथामाने उसकी
 बाण वर्षाका नाश कर डाला ॥ ८५-८८ ॥ और फिर असह-
 शील अश्वतथामाने तेज बाणोंसे भीमसेनको बायल किया, महा-

शिक्षत्वा द्रौणिं विव्याध पत्रिणा । तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणपुत्रो
महामनाः ॥६०॥ अन्यत् काम्यं कपादाय भीमं विव्याध पत्रिभिः ।
तौ द्रौणिभीमौ समरे पराक्रान्तौ महाबलौ ॥ ६१ ॥ अवर्पतां
शरवर्षं वृष्टिमन्ताविचाम्बुदौ । भीमनामाङ्किना त्राणाः स्वर्णपुंखाः
शिलाशिनाः ॥ ६२ ॥ द्रौणिं सञ्छादयामासुर्मैघीघा इव भास्क-
रम् । तथैव द्रौणिनिर्मुक्तैर्भीमः सन्नतपर्वभिः ॥ ६३ ॥ अवाकी-
र्यत स क्षिप्रं शरैः शतसहस्रशः । सञ्छाद्यमानः समरे द्रौणिना
रणशालिना ॥ ६४ ॥ न विव्यथे महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततो भीमो महाबाहुः कार्त्तस्वरविभूषितान् ॥ ६५ ॥ नाराचान्
दश सम्प्रैषोद्यमदण्डनिभाञ्छितान् । ते जनुदेशमासाद्य द्रोण-
पुत्रस्य मारिपा ॥६६॥ निभिद्य विविशुस्तूर्णं वल्मीकमिव पन्नगाः ।

वली और महाबाहु भीमने तुरप नामके बाणोंसे अश्वत्थामाके
धनुषको काट डाला और उसको बाणोंसे बीँधकर बड़े मनवाले
अश्वत्थामाने फटेहुए धनुषको फेंकदिया ॥ ८६-६० ॥ और
दूसरा धनुष लेकर भीमसेनके बाण मारना आरम्भ करदिया,
इस समय रणमें महाबली और महाबाहु अश्वत्थामा तथा भीमसेन
जल बरसातेहुए दो मैघोंकी समान बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ।
भीमका नाम खुदेहुए, सोनेके परोवाले और स्पर्श पर धरकर
तेज कियेहुए बाण अश्वत्थामाको दक्षिणकार ढकनेलगे जैसे मैघके
पटल सूर्यको ढकते हैं । और दूसरी ओर अश्वत्थामाके मारेहुए
नमेहुए बाण भीमको ढकनेलगे ॥ ६१-६३ ॥ युद्धमें कुशल
अश्वत्थामाने सैंकड़ों और सहस्रों बाणोंसे भीमको ढकदिया, तो
भी उसके मनमें जरा भी दुःख नहीं हुआ, यह एक अद्भुत बात
हुई, तदनन्तर महाबाहु भीमने सोनेसे सजायेहुए और यमराजके
दण्डकी समान तेज दश बाण मारे, हे राजन् ! वे बाण अश्व-
त्थामाकी कण्ठ की हँसली में बीँधकर जैसे साँप बिलमें घुपजाता

सोऽनिविद्धो भृशं द्रौणिः पाण्डवेन महात्मना ॥ ६७ ॥ ध्वजयष्टिं
 सम्यश्चित्य न्यमीलयत लोचने । स मुहूर्त्तात् पुनः संज्ञां लब्ध्वा
 द्रौणिर्नराधिप ॥ ६८ ॥ क्रोधं परमपातरथौ समरे रुधिरोन्तितः ।
 दृढं सोऽभिहतस्तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ६९ ॥ वेगञ्चक्रे महा-
 बाहुभीमसेनरथं प्रनि । तत्र आकर्णपूर्णानां शराणां तिग्मतंज-
 साम् ॥ १०० ॥ शतमाशीविषाभानां प्रेषयामास भारत । भीमोऽपि
 समरश्लाघी तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥ १०१ ॥ तूर्णं प्राद्यजदुग्धाणि
 शरवर्षाणि पाण्डवः । ततो द्रौणिर्महाराज छित्त्वास्य विशिखै-
 र्धनुः ॥ १०२ ॥ आजघानोरसि क्रुद्धः पाण्डवं निशिनौ शरैः ।
 ततोऽन्यद्भनुरादाय भीमसेनोऽत्यमर्षणः ॥ १०३ ॥ विव्याध
 निशितैवाणैर्द्रौणिं पञ्चभिराहवोजीमूताविव घर्मान्ते तौ शरौघप्रच-

है तैसे ही तुरन्त उसकी हँसलीके भीतर बैठगये, महात्मा पांडुपुत्र
 भीमने अश्वत्थामाको खूब ही घायल किया, इससे उसकी आँखें
 मिचगयीं और वह ध्वजाके दण्डेका सहारा लेकर बैठगया, कुछ
 देर बाद जब उसको होश आया तब हे राजन् ! ॥ ६४-६८ ॥
 लोहलुहान हुआ अश्वत्थामा कि-जिसको भीमसेनने बहुत ही
 घायल करदिया था वह बड़े क्रोधमें भरकर वेगसे भीमसेनके
 रथकी ओरको दौड़ा और धनुषको कानतक खेंचकर तीक्ष्ण
 तेजवाले बिषधर सपोंकी-समान सौ बाण भीमसेनके मारे, हे भरत-
 वंशी राजन् ! युद्धमें प्रशंसा पानेवाला भीमसेन भी उसके पराक्रमका
 विचार करनेलगा और उसने भी तुरन्त उग्र बाणोंकी वर्षा करना
 आरम्भ करदी, हे महाराज ! अश्वत्थामाने क्रोध करके बाणोंसे
 भीमके धनुषको काटडाला ॥ ६९-१०२ ॥ और फिर क्रोधमें
 भरकर उसकी छातीमें तेज कियेहुए बाण मारे, भीमसेन इस
 बातको सह न सका और दूसरा धनुष लेकर तेज कियेहुए पाँच
 बाण अश्वत्थामाके मारे और फिर दोनोंजने जैसे चौमामें में

पिणौ ॥ १०४ ॥ अन्योन्यं क्रोधताम्राक्षौ द्यादयामासतुर्गुधि ।
तलशब्दैस्ततो घोरैस्त्रासयन्तौ परस्परम् ॥ १०५ ॥ अयुध्येतां
सुसंरब्धौ कृतप्रतिकृतौपिणौ । ततो विस्फार्य सुमहत्स्वार्पं स्वम-
विभूषितम् ॥ १०६ ॥ भीमं प्रैक्षत स द्रौणिः शरानस्यन्तमन्ति-
कात् । शरद्यहर्मध्यगतो दीप्ताविरिव भास्करः ॥ १०७ ॥ आद-
दानस्य विशिखान् सन्दधानस्य चाशुगान् । विकर्षतो मुञ्चतश्च
नान्तरं ददृशुर्जनाः ॥ १०८ ॥ अलातचक्रप्रतिमं तस्य मण्डलमा-
युधम् । द्रौणोरासीन्महाराज बाणान् विमृजतस्तदा ॥ १०९ ॥
धनुश्च्युताः शरास्तस्य शतशोऽथ सदस्रशः । आकाशे प्रत्यदृश्यन्त
शलभानामिवायतीः ॥ ११० ॥ ते तु द्रौणिधनुर्मुक्ताः शराद्देम-

वर्षा करते हैं तैसे ही एक दूसरेके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने
लगे ॥ १०३-१०४ ॥ और क्रोधसे लाल ताल आँखें करके
बाणोंसे एक दूसरेको ढकने लगे, हथेलियोंके घोर शब्दोंसे एक
दूसरेको त्रास देने लगे तथा एक दूसरेसे वदजा लेनेकी इच्छासे
बड़े ही क्रोधमें भरकर लड़ने लगे, इस प्रकार युद्ध करते-अश्व-
त्थामा मुख्यसे शोभायमान बड़े भारी धनुष पर टङ्कार दे रहा था
और समीपमें ही बाण छोड़ते हुए भीमसेनकी ओरको देखता जाता
था, इस समय अश्वत्थामा शरद् धनुर्में मध्याह्नमें तपनेवाले कान्ति-
मान् सूर्यकी समान दिपरहा था ॥ १०५-१०७ ॥ अश्वत्थामा
बाण लेता था, उनको चढ़ाता था, उसको खेंचता था और बाणों
को छोड़ता था, इन सब कामोंको वह किस समय करता है, इस
बातको लोग देख नहीं सकते थे ॥ १०८ ॥ हे महाराज ! अश्व-
त्थामा जिस समय बाणोंको छोड़ता था, उस समय उसका मण्डला-
कार धनुष घूमती हुई वरिंदीसा दीखता था ॥ १०९ ॥ उसके धनुष
मेंसे सैंकड़ों और सदस्रों बाण छूट रहे थे, वे आकाशमें पहुँचनेपर
टीडीदलसे मालूम होते थे ॥ ११० ॥ अश्वत्थामाके छोड़े हुए

विभूषिताः । अजस्रमन्त्रकीर्यन्त घोरा भीमरथं प्रति ॥ १११ ॥
 तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् । बलं वीर्यं प्रभावश्च व्यव-
 सायञ्च भारत ॥ ११२ ॥ तां समेवादिबोद्धूतां वाणदृष्टिं समं-
 ततः । जलदृष्टिं महाघोरां तपान्त इव चिन्तयन् ॥ ११३ ॥ द्रोण-
 पुत्रवधमेप्सुर्भीमो भीमपराक्रमः । अमुञ्चच्छरवर्षाणि प्रादृशीव वला-
 हकः ॥ ११३ ॥ तद्विक्रमपृष्ठं भीमस्य धनुर्घोरं महद्वर्णं । विकृप्य-
 माणं विवभौ शक्रचापमिवापरम् ॥ ११५ ॥ तस्माच्छराः प्रादु-
 रासञ्ज्यतशोऽथ सहस्रशः । सञ्ज्यादयन्तः समरे द्रौणिमाहवशोभि-
 नम् ॥ ११६ ॥ तयोर्विसृजतोरेवं शरजालानि मारिप । वायुर-
 प्यन्तरा राजन्नाशकनोत् स विसर्पितुम् ॥ ११७ ॥ तथा द्रौणि-

सुवर्णसे सजे भयानक वाण भीमके रथपर तड़पड़ने लगे १११-
 हे भरतवंशी राजन ! इस युद्धमें भीमसेनका अद्भुत पराक्रम, अद्भुत
 बल, अद्भुत वीरता, अद्भुत प्रभाव और अद्भुत व्यवसाय हमारे
 देखनेमें आया था ॥ ११२ ॥ जैसे चौपासेमें मेघोंमेंसे जलकी
 महाघोर वर्षा पड़ती है तैसे ही अश्वत्थामाके चारोंओरसे छूटते
 हुए वाणोंकी अद्भुत वर्षा होने लगी, उसको देखकर भीमसेन
 विचारमें पड़ गया ॥ ११३ ॥ फिर अश्वत्थामाको मार
 डालनेकी इच्छासे महापराक्रमी भीमसेन जैसे चौपासे में
 मेघ वर्षा करता है तैसेही वाण बरसाने लगा ॥ ११४ ॥ उस
 महारणमें सुवर्णकी पीठवाला महाभयानक भीमका धनुष जब
 भीमके हाथसे खिचता था, उस समय वह दूसरे इन्द्र धनुषकी
 समान शोभायमान मालूम होता था ॥ ११५ ॥ उस धनुषमेंसे
 सैकड़ों और सहस्रों वाण बाहर निकल कर युद्धमें दिसते हुए
 अश्वत्थामाको ढकरहे थे ॥ ११६ ॥ हे राजन ! दोनों जने ऐसी
 वाणवर्षा कर रहे थे, कि उसको बीचमेंको वायु भी निकल कर
 नहीं जासकता था ॥ ११७ ॥ हे महाराज ! अश्वत्थामा भी, सोने

महाराज शरान् इमविभूषितान् । तैलधौतान् प्रसन्नाग्रान् प्राहिणो-
 द्वधकाक्षया ॥ ११८ ॥ तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैर्कैकमशात-
 यत् । विशेषयन् द्रोणमुत्तं णिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ११९ ॥
 पुनश्च शरवर्षाणि घोराण्युग्राणि पाण्डवः । व्यसृजद् बलवान्
 क्रुद्धो द्रोणपुत्रवधेऽसया ॥ १२० ॥ ततोऽस्त्रमायया तूर्णं शरदृष्टिं
 निवार्य ताम् । धनुश्चिच्छेदभीमस्य द्रोणपुत्रो महास्त्रवित् १२१
 शरैश्चैनं सुबहुभिः क्रुद्धः संख्ये पराभिनत् । स ह्यिन्नधन्वा
 बलवान् रथशक्तिं सुदारुणाम् ॥ १२२ ॥ वेगेनाविध्य चित्तेप
 द्रोणपुत्ररथं मति । तामापतन्तीं सहसा महोल्काभां शितैःशरैः १२३
 चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन् पाणिनाघवम् । एतस्मिन्नन्तरे भीमो

से सजे, तेज किये हुए तीखी नोकवाले बाण भीमका नाश करने
 की इच्छासे छोड़ने लगा ॥ ११८ ॥ उस समय भीमसेनने सामने
 से बाण मारकर आकाशमार्गसे आते हुए अश्वत्थामाके एक २
 बाणके एक २ बाणसे तीन २ टुकड़े कर डाले और अश्वत्थामासे
 अधिक होकर गरज उठा, कि-खड़ा रह ! खड़ा रह ! ॥ ११९ ॥
 और फिर बलवान् भीमसेनने क्रोधमें भरकर अश्वत्थामाको मारने
 की इच्छासे बाणोंकी घोर और उग्र मार आरम्भ कर दी ॥ १२० ॥
 फिर बड़े भारी अस्त्रवेत्ता द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने अस्त्रकी
 मायासे तुरन्त भीमकी बाणवर्षाको रोक दिया, भीमके धनुषको
 काट डाला ॥ १२१ ॥ और बहुतसे बाण मार कर रणमें भीमको
 घायल कर दिया, अपना धनुष कट जाने पर बलवान् भीमने बड़ी
 दारुण रथशक्ति हाथमें ली और वह रथशक्ति बड़े जोरसे अश्व-
 त्थामाके रथ पर फेंकी, अश्वत्थामाने तेज किये हुए बाण मारकर
 बड़े भारी ऊकेकी समान एकायकी अपने ऊपर आती हुई उस
 रथशक्तिके टुकड़े २ कर डाले और अपने हाथकी फुरती सबको
 दिखलाई इतनेमें ही भीमने दृढ़ धनुष लेकर हँसते २ अश्वत्थामा

दृढमादाय काष्ठं कम् ॥ १२४ ॥ द्रौणिं विव्याध विशिखैः समय-
मानो वृकोदरः । ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिम् १२५
ललाटे दारयामास शरेणानतपर्वणा । सोऽतिविद्धो बलवता
द्रोणपुत्रेण सारथिः ॥ १२६ ॥ व्यामोहमगमद्राजन् रश्मीनुत्सृज्य
वाजिनाम् । ततोऽश्वः प्राद्वंस्तूर्णं मोहिते रथसारथी ॥ १२७ ॥
भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनाम् । तं दृष्ट्वा प्रदुर्गैरश्वैरप-
कृष्टं रणजिरात् ॥ १२८ ॥ दध्मौ प्रमुदितः शंखं बृहन्तपपरा-
जितः । ततः सर्वे च पञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ १२९ ॥
धृष्टद्युम्नरथं त्यक्त्वा भीताः सम्प्राद्वन् दिशः । तान् प्रभमांस्ततो
द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ १३० ॥ अभ्यवर्त्तत वेगेन काल-
यन् पाण्डुवाहिनीम् । ते बध्यमाना समरे द्रोणपुत्रेण क्षत्रियाः ।
द्रोणपुत्रमपाद्राजन् दिशः सर्वाश्च भेजिरे ॥ १३१ ॥ छ

के बहुतसे बाण मारे, तब हे महाराज ! अश्वत्थामाने भीमके
सारथीके ललाटको नमेहुए पर्ववाला बाण मारकर चीरदिया, इस
प्रकार बलवान् द्रोणपुत्रने सारथीको बहुत ही वीध डाला, तब तो
उसने घोड़ोंकी रासें हाथमेंसे छोडदीं, मूर्छित होगया, सारथीके
अचेत होते ही भीमसेनके घोड़े सब धनुषधारियोंके देखते हुए
इधर उधरको भागने लगे ॥ १२२-१२७ ॥ इस प्रकार घोड़े
भीमसेनको खेचकर रणमेंसे बाहर लेगये, उस समय अजिन अश्व-
त्थामाने अपना बड़ा शङ्ख बजाया और सब पांचाल राजे तथा
भीमसेन भयभीत होकर धृष्टद्युम्नके रथको छोड चारों ओरको
भागनिकले, अश्वत्थामाने भागतेहुए दोषाओंके पीछेऽगए छोडना
आरम्भ करदिये ॥ १२८-१३० ॥ और पाण्डवोंकी सेनाको
घबडाकर भगादिया, पाण्डवोंकी सेनाके राजेभी युद्धमें अश्वत्थामा
के हाथसे मार खानेलेगे और उसके भयसे चारों दिशाओंमेंको
भागनेलगे ॥ १३१ ॥ दोसौवाँ अध्याय समाप्त ॥ २०० ॥

सञ्जय उवाच । तत् प्रभयं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
 न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रजयेप्सया ॥ १ ॥ ततस्ते सैनिका
 राजन्नैव तत्रावतस्थिरे । संस्थाप्यमानां यत्नेन गोविन्देनार्जुनेन
 च ॥ २ ॥ एक एव च वीर्ययुः सोपकावयवैः सह । मत्स्यैरन्यैश्च
 सन्धाय कौरवान् संन्यवर्त्तत ॥ ३ ॥ ततो द्रुपदप्रियसिंहलग्न-
 केतनम् । सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ४ ॥
 या शक्तिर्यच्च विज्ञानं यद् वीर्यं यच्च पौरुषम् । धार्तराष्ट्रेषु या
 ग्रीतिः द्वेषोऽस्मास्तु च यच्च ते ॥ ५ ॥ यच्च भूयोस्ति तेजस्तत्
 सर्वं मयि प्रदर्शय । स एव द्रोणहन्ता ते दर्पं ह्येत्यति पार्षतः ६
 कालानलसमपर्ययं द्विपतामन्तकोपमम् । समासादय पाञ्चानन्यं
 माञ्चापि सह केशवम् । दर्पं नाशयिनास्म्यद्य तथोद्वृत्तरय संयुगे ७

सञ्जयने कहा, कि—हे राजा धृतराष्ट्र । अपार बलवाले अर्जुनने
 अपनी सेनामें भागद पडती देखकर अश्वत्थामाका पराजय
 करनेकी इच्छासे अपनी सेनाके भागनेसे रोका ॥ १ ॥ अर्जुन
 और श्रीकृष्ण दोनोंने सैनिकोंको खड़े रखनेका उद्योग किया,
 तो भी वे रणमें खड़े न रहसके ॥ २ ॥ तदनन्तर अर्जुनने सोमक
 वंशके राजे, माण्डलिक राजे, मत्स्यदेशके राजे तथा और भी
 कितने ही राजाओंको साथमें लेवाण मारकर कौरवोंको पीछेको
 हटादिया और तुरन्त ही अश्वत्थामाके समीपमें आकर महाधनुष-
 धारी अश्वत्थामासे कहा, कि—॥ ३-४ ॥ हे अश्वत्थामा ! तुममें
 जितनी शक्ति, जितना विज्ञान, जितनी वीरता, जितना पुरुषार्थ,
 धृतराष्ट्रके पुत्रोंपर जितनी प्रीति और हमारे ऊपर जितना द्वेष हो
 वह सब इस समय दिखलाओ ॥ ५ ॥ तुममें जितना तेज हो, उस
 सबका हमारे ऊपर व्यवहार करे, द्रोणको मारनेवाला धृष्टद्युम्न
 तुम्हारे सब गर्वका नाश करदेगा ॥ ६ ॥ प्रलयकालकी समान
 और वैरियोंके कालकी समान धृष्टद्युम्नके, मेरे और श्रीकृष्णके

धृतराष्ट्र उवाच । आचार्यपुत्रो भानाहो बलवांश्चापि संजय । प्रीति-
 र्धनञ्जनये चास्य प्रियश्चापि महात्मनः ॥ ८ ॥ न भूतपूर्वं बीभत्सो-
 वाक्यं परुषमीदृशम् । अथ कस्मात् स कौन्तेयः सखायं रूक्षमग्र-
 वीतं ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । युवराजे हते चैव वृद्धक्षत्रे च पौरवे ।
 इष्वस्त्रविधिसम्पन्ने मानवे च सुदर्शने ॥ १० ॥ धृष्टद्युम्नं सात्यकीं
 च भीमे चापि पराजितौ युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्र्मर्मण्यपि च घटिते ११
 अन्तर्भेदे च सञ्जाते दुःखं संस्पृश्य च प्रभो । अभूतपूर्वं बीभ-
 त्सोदुःखान्भयुरजायत ॥ १२ ॥ तस्मादनर्हमश्लीलमप्रियं द्रोणि-
 मवतीतु । मान्यमाचार्यतनयं रूक्षं कापुरुषं यथा ॥ १३ ॥ एवमुक्तः
 श्वसन् कोशान्महेष्वासतपो नृप । पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मभिदा

सामने लड़नेको आ जा, आज युद्धमें तेरी उद्धतताके सारे गर्वको
 उतार दूँगा ॥ ७ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय! आचार्यका पुत्र
 अश्वत्थामा सम्मानका पात्र है, बलवान् है और उसकी महात्मा
 अर्जुनके ऊपर प्रीति है ॥ ८ ॥ तो भी जैसा पहले कभी नहीं कहा
 था ऐसा तीव्र वाक्य सखा अर्जुनने अश्वत्थामासे किस लिये
 कहा ? ॥ ९ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि—चेदिदेशके युवराजको,
 पुरुवंशके वृद्धक्षत्रको तथा धनुष और बाणके प्रयोगमें चतुर मानवके
 राजा सुदर्शनको अश्वत्थामाने मारहाला, उसके अनन्तर ॥ १० ॥
 धृष्टद्युम्नको सात्यकीको और भीमसेनको हरादिया तब युधिष्ठिरके
 वाक्योंसे मर्मस्थानोंमें चोट लगनेसे ॥ ११ ॥ तथा पुत्र अभिमन्युके
 मरणकी याद आते ही हृदयमें असीप दुःख होनेके कारण अर्जुन
 को ऐसा क्रोध आया कि जैसा पहले कभी नहीं आया था १२
 इसलिये ही अर्जुनने आचार्यके माननीय पुत्र अश्वत्थामासे ऐसे
 अप्रिय और अनुचित वचन कहे, कि—जैसे तीक्ष्ण वचन किसी
 लुप्त पुरुषसे कहे जाते हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! अर्जुनके तीक्ष्ण
 और मर्मभेदी वचनोंको सुनकर महाधनुषधारी अश्वत्थामा क्रोधमें

गिरा ॥ १४ ॥ द्रौणिशत्रुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशेषतः । स
 तु यत्तो रथे स्थित्वा वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥ देवैरपि
 सुदुर्लभमस्त्रमाश्रेयमाददे । दृश्यादृश्यानरिगणानुद्दिश्याचार्य-
 नन्दनः ॥ १६ ॥ सोऽभिमन्युः शरं दीप्तं विधूममिव पावकम् । सर्वतः
 क्रोधमाविश्य चित्तेऽप परवीरहा ॥ १७ ॥ ततस्तुमुलमाकाशे शर-
 वर्षमजायत । पावकाच्चिचः परीतं तत् पार्थमेवाभिपुस्रुवे ॥ १८ ॥
 उल्काश्च गगनात् पेतुर्दिशश्च न चकाशिरे । तमश्च सहसा रौद्रं
 चमूमवतनार ताम् ॥ १९ ॥ रक्षांसि च पिशाचाश्च विनेदुरभिसद्गताः ।
 ववुश्चाशिशिरा वाताः सूर्यो नैव तताप च ॥ २० ॥ वायसाश्चापि
 चाकन्दन् दिक्षु सर्वासु भैरवम् । रुधिरञ्चाभिवर्षन्तो विनेदु-
 स्तोयदा दिवि ॥ २१ ॥ पक्षिणः पशवो गावो विनेदु-

आकर लम्बे र साँस लेने लगा और अर्जुन तथा कृष्णके ऊपर
 बड़े क्रोधमें होगया, फिर रथमें बैठ सावधान होकर आचमन
 किया और जिसको देवता भी न हटा सकें ऐसा अग्न्यस्त्र हाथमें
 लिया, उसको मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके दीखनेवाले तथा न
 दीखनेवाले सब दैरियोंको नष्ट करनेके लिये अग्निकी समान जलते
 हुए उस वाणको क्रोधमें भरकर दैरियोंके ऊपर छोड़ा १४-१७
 तुरन्त ही आकाशमेंसे वाणोंकी घोर वर्षा होनेलगी, चारों
 ओरको फैलाहुआ अस्त्रका तेज अर्जुनके ऊपर आपड़ा ॥ १८ ॥
 आकाशमेंसे ऊँके गिरनेलगे दिशाओंमें अन्धकार छागया और
 एकाएकी हुए उस अन्धकारने पाण्डवोंकी सेनाको ढकदिया १९
 राक्षस और पिशाच बड़े आवेशमें आकर गरजनेलगे, कम्पायमान
 करनेवाले पवन चलनेलगे सूर्यका तपना बन्द होगया, सब
 दिशाओंमें कौए भयानकरूपसे काँवर करनेलगे मेघ आकाशमेंसे
 रुधिरकी वर्षा करनेलगे, पक्षी, पशु और गौएँ धीरज रखने पर
 भी घबराहटमें पड़गये और जोरसे शब्द करनेलगे, मनको वशमें

श्चापि सुव्रताः । परमं प्रयतात्मानो न शान्तिमुपलभिरः ॥ २२ ॥
 भ्रान्तसर्वमहाभूतमावर्चितदिवाकरम् । त्रैलोक्यमभिसन्तप्तं ज्वरा-
 विष्टमिवाभवत् ॥ २३ ॥ अस्त्रतेजोऽभिसन्तप्ता नागा भूमिशया-
 स्तथा । निःश्वसन्तः समुत्पेतुस्तेजो घोरं मुमुक्षवः ॥ २४ ॥ जल-
 जानि च सत्त्वानि दह्यमानानि भारत । न शान्तिमुपजग्मुर्हि
 तप्यमानैर्जलाशयैः ॥ २५ ॥ दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यः स्वाद् भूमेः सर्वतः
 शरवृष्टयः । उच्चावचानि पेतुर्वै गरुडानिलरंहसः ॥ २६ ॥ तैः शरै-
 र्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगैः समाहताः । मदग्धाः शत्रवः पेतुरग्निदग्धाः
 इव द्रुमाः ॥ २७ ॥ दह्यमाना महानागाः पेतुर्व्यां समन्ततः ।
 नदन्तो भैरवान्नादान् जलदोषमनिःस्वनान् ॥ २८ ॥ अपरे मृदुता

रखनेवाले ब्रतधारी मुनिजन भी घबड़ागये ॥ २०-२२ ॥ सकल
 प्राणी चक्कर खाने लगे, सूर्य निस्तेज होगया और तीनों लोक
 ऐसे तपगये, कि-जैसे ज्वर चढाया हो ॥ २३ ॥ उस अस्त्रके
 तेजसे अत्यन्त ताप पायेहुए हाथी भी उसमेंसे बचनेकी इच्छासे
 साँस लेतेहुए पृथिवी पर लोटने लगे ॥ २४ ॥ जलाशयोंके गरम
 होजानेसे जलचर प्राणी भी जलने लगे, वे इतने अधिक तपगये,
 कि-उनको किसीप्रकार शान्ति ही नहीं मिलती थी ॥ २५ ॥
 दिशाओंमेंसे, कोनोंमेंसे, आकाशमेंसे और भूमिपरसे इसप्रकार
 चारों ओर छोटी बड़ी गरुड और पवनकी समान वेगसे वाणोंकी
 वर्षा होने लगी ॥ २६ ॥ अश्वत्थामाके वज्रकी समान वेगवाले
 वाणोंसे मरेहुए और अस्त्रके तेजसे झुलमेहुए बैरी अग्निसे
 जलेहुए वृक्षोंकी समान टूटकर पृथिवी पर गिरने लगे ॥ २७ ॥
 अस्त्रके तेजसे झुलसे हुए बड़े हाथी मेघकी समान भयानकरूपसे
 गरजतेहुए चारों ओरसे पृथिवी पर गिरने लगे ॥ २८ ॥ कितने ही
 हाथी पहले वनमें घूमते समय दावानलसे घिरकर जिसप्रकार
 दिशाओंमेंको भागते फिरे थे तिसप्रकार भयसे त्रस्त होकर रण-

नागा भयत्रस्ता विशांपते । त्रेष्टुर्दिशो यथापूर्वं वने दावाग्निसंघृताः ॥ २६ ॥
 द्रवाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष । अश्ववृन्दाः यदृश्यन्त
 रथवृन्दानि वा विभो ॥ ३० ॥ अपतन्त रथौघाश्च तत्र तत्र सह-
 स्रशः । तत्सैन्यं भयसंविशं ददाह युधि भारत ॥ ३१ ॥ युगान्ते
 सर्वभूतानि सम्बर्त्तक इवानलः । दृष्ट्वा तु पाण्डवो सेनां दह्यमानां
 महाहवे ॥ ३२ ॥ प्रहृष्टास्तावका राजन् सिंहनादान् विनेदिरे ।
 ततस्तूर्यसहस्राणि नानालिङ्गानि भारत ॥ ३३ ॥ तूर्णमाजघ्निर
 हृष्टास्तावका जितकाशिनः । कृत्स्ना ह्यज्ञौहिणी राजन् सभ्यसाची
 च पाण्डवः ॥ ३४ ॥ तपसा संघृते लोके नादृश्यन्त महाहवे ।
 नैवं नस्तादृशं राजन् दृष्टपूर्वं न च श्रतम् ॥ ३५ ॥ यादृशं द्रोण-
 पुत्रेण सुप्रसन्नमपिणा । अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्मणस्त्रमुदेत्यतः ॥ ३६ ॥

भूमिमें इधर उधरको भागनेलगे ॥ २६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ।
 दावानलसे जलेहुए वृत्तोंके शिखर जैसे दीखा करते हैं, तैसे ही
 घोड़ोंका तथा रथोंका समूह दीखनेलगा ॥ ३० ॥ हजारों रथ
 और रथी भी अग्न्यस्त्रसे जलकर रणमें गिरनेलगे हे भारत ।
 रणमें भयभीतहुआ सेनादल सुलग उठा ॥ ३१ ॥ और जैसे
 प्रलयके समय संवर्त्तक नामका अग्नि सब प्राणियोंको जलाकर
 भस्म करता है तैसे ही इस युद्धमें पाण्डवोंकी सेना भी अग्न्यस्त्रसे
 जलनेलगी, हे राजन् । तुम्हारे पुत्र यह देखकर अपनी विजय होनेके
 कारण बड़े भारी हर्षमें भरगये, वे सिंहकी समान गरजनेलगे,
 और नुरन्त अनेकों प्रकारके सहस्रों बाजे बजानेलगे, इस समय
 सब जगत् अन्धकारसे ढकगया था, इस कारण उस महायुद्धमें
 अर्जुन तथा उसकी अज्ञौहिणी सेना यह कुछ भी नहीं दीखता
 था, अश्वत्थामाने अर्पणमें आकर जैसा अस्त्र मारा वैसा अस्त्र
 पहले हमने न देखा था, न सुना था ॥ ३२-३५ ॥ फिर अर्जुनने सामने
 से सब प्रकारके अस्त्रोंका नाश करनेके लिये ब्रह्माका रचाहुआ

सर्वास्त्रप्रतिघाताय विहितं पञ्चयोनिना । ततो मुहूर्त्तादिव तत्तमो
व्युपशशाम ह ॥ ३७ ॥ प्रवचौ चानिलः शीतो दिशश्च विमला
बभूवुः । तत्राद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं हताम् ॥ ३८ ॥ अन-
भिशेयरूपाञ्च प्रदग्धामस्त्रतेजसा । ततो वीरौ महेश्वासी विमुक्तौ
केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥ सहितौ प्रत्यदृश्येतां नभसीव तपोनुदौ ।
ततो गाण्ढवीधन्वा च केशश्चक्षुःशतानुवौ ॥ ४० ॥ सपताकध्वज-
हयः सानुकर्षवरायुधः प्रवचौ स रथो मुक्तस्तावकानामभयङ्करः ४१
ततः किलकिलाशब्दः शङ्खभेरीस्वनैः सह । पाण्डवानां प्रहृष्टानां
क्षणेन समजायत ॥ ४२ ॥ हताविति तयोरासीत् सेनयोस्त्वयो-
र्मतिः । तरसाभ्यागतौ दृष्ट्वा विमुक्तौ केशवार्जुनौ ॥ ४३ ॥ ताव-

ब्रह्मास्त्र मारा, जिससे, कि-एक मुहूर्त्तमें ही अन्धकार शान्त हो
गया ॥ ३६-३७ ॥ शीतल पवन चलने लगा और दिशाये निर्मल
होकर प्रकाशित होने लगीं, फिर हमने तहाँ एक अद्भुत बात यह
देखी, कि-पाण्डवोंकी एक अक्षौहिणी सेना अग्न्यस्त्रके तेजसे
जलकर भस्म होगयी थी और अश्वत्थामाके अस्त्रके तेजसे जली
हुई उस सेनाका चिह्नतक नहीं मालूम होता था, अन्धकार दूर
होगया और महाधनुषधारी वीर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन, आकाशमें
बादलोंसे ढके हुए सूर्य और चन्द्रमाकी समान एक साथ दीखने
लगे श्रीकृष्ण और गाण्ढीव धनुषधारी अर्जुन दोनोंके शरीरों
पर जरा भी चोट नहीं आयी थी ॥ ३८-४० ॥ तथा पताका,
ध्वजा, छोड़े अनुकर्ष तथा उत्तम आयुधोंके सहित अर्जुनका रथ
भी सेनाके मध्यमें जोभा पारहा था, उसको देखकर हमारे पुत्र
दर्शन गये, दोनों सेनादल यह समझ रहे थे, कि-अर्जुन तथा
श्रीकृष्णका मरण होगया है, परन्तु अर्जुन और कृष्णकी एक
साथ एकाग्रकी अन्धकारमेंसे बाहर निकले हुए देखकर पाण्डव
हर्षमें भरगये और वे तुल्य ही शङ्ख तथा भेरियोंके शब्दोंके साथ

ज्ञानौ प्रमुदितौ दध्मत्तुर्वारिजोत्तमौ । दृष्ट्वा प्रमुदितान् पार्थास्त्वदीया
 व्यथिता भृशम् ॥ ४४ ॥ विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिः सु-
 दुःखितः । मुहूर्त्तं चिन्तयापास किन्त्वेतदिति पारिष ॥ ४५ ॥
 चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोरपरायणः । निःश्वसन दीर्घ-
 मुष्णश्च विमनाश्चाभवत्ततः ॥ ४६ ॥ ततो द्रौणिर्धनुर्न्यस्य रथात्
 प्रस्कन्ध वेगितः । धिक्पिक् सर्वमिदं मिथ्येत्युक्त्वा सम्पाद्रवद्
 रणात् ॥ ४७ ॥ ततः स्निग्धाम्बुदाभासं वेदावासमकल्पपम् ।
 वेदव्यासं सरस्वत्यावासं व्यासं ददर्श हृष्टं तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा
 स्थितं कुरुकुलोद्बह । सन्न कण्ठोन्नवीद्वाक्यमभिवाच सृदीनवत् ॥ ४८ ॥

आनन्दकी ध्वनियें करने लगे ॥ ४१-४३ ॥ और जराभी चोट न
 खाये हुए अर्जुन तथा श्रीकृष्ण हर्षमें आकर उत्तम शंखोंको
 बजाने लगे, इस समय तुम्हारे पुत्र पाण्डवोंको दर्पमें भरे हुए
 देखकर बड़े ही खिन्न होगये ॥ ४४ ॥ दोनों महात्माओंको
 अग्न्यस्त्रसे जरा भी चोट न खाये हुए देख अश्वत्थामाको भी बड़ा
 खेद हुआ और वह एक महीन भर यही विचार करता रहा, कि-
 यह बात क्या है ? ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार ध्यानमें और
 शोकमें डूबा हुआ अश्वत्थामा विचार करनेके अनन्तर गरम
 और गहरे साँस छोड़कर मनमें उदास होगया ॥ ४६ ॥ तुरन्त
 ही उसने हाथमेंके धनुषको नीचे फेंक दिया और एकावकी रथमें
 से नीचे उतरकर धिक्कार है ! धिक्कार है ! यह संव मिथ्या है !
 ऐसा कहकर रणभूमिसे भागने लगा ॥ ४७ ॥ परन्तु इनमें ही
 उसको स्निग्ध घनघटाकी समान कान्तिवाले, वेदके निवासस्थान,
 दोषरहित, वेदका विस्तार करनेवाले, सास्वती नदीके तटपर रहने
 वाले वेदव्यासजीका दर्शन हुआ ४८ कुरुकुलका उद्धार करनेवाले
 वेदव्यासजीको सामने खड़े हुए देखकर अश्वत्थामाने बड़े दीन
 पुरुषकी समान गद्गद कंठसे प्रणाम करके कहा, कि ४८ अहो व्यास

भो भो माया यहच्छा वा न विद्मः किमिदम्भवेत् ।
 अस्त्रन्तिवदं कथं मिथ्या मम कश्च व्यक्तिक्रमः ॥ ५० ॥ अधरो-
 त्तरमेतद्वा लोकानां वा पराभवः । यदिमौ जीवतः कृष्णौ कालो
 हि दुरतिक्रमः ॥ ५१ ॥ नासुरा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
 न सर्पा यक्षपतंगा न मनुष्याः कथञ्चन ॥ ५२ ॥ उत्सहन्तेऽन्यथा
 कर्तुमेतदस्त्रं मयेरितम् । तदिदं केवलं हत्वा शान्तमचौहिणीं
 उवाच ॥ ५३ ॥ सर्वघाति मया मुक्तपस्त्रं परमदारुणम् । केतेषां
 मर्त्यधर्माणौ नावधीन् केशवार्जुनौ ॥ ५४ ॥ एतन्मे ब्रूहि भगवन्
 मया पृष्ठो यथातथम् । श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन सर्वपेतन्महामुने ५५
 व्यास उवाच । महान्तमेतमर्थं मां यत्त्वं पृच्छसि विस्मयात् । तम्-

जी महाराज! इसको माया समझा जाय या दैवगति जाना जाय
 मेरी तो सगभ्रमें नहीं आता, कि-यह सब क्या हो रहा है? मुझसे
 क्या अपराध हुआ है जो मेरा नारायणात्मा मिथ्या हुआ ॥ ५० ॥
 यह जो कृष्ण और अर्जुन जीते बचगये, इससे प्रतीत होता है,
 कि-लोकमें उत्तमके अधम होनेका और अधमके उत्तम होनेका
 समय आगया है अथवा लोकोंके नाशका ही समय आगया है,
 निःसन्देह कालकी गतिको कोई नहीं रोकसकता । ॥ ५१ ॥ मैंने
 जो अस्त्र मारा था उसको तो असुर, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस,
 सर्प, यक्ष, मनुष्य इनमेंसे कोई भी किसी प्रकार भी मिथ्या करनेका
 उत्साह नहीं करसकता, ओः ! मेरा धक्ककाता हुआ अग्न्यस्त्र
 केवल एक अचौहिणी सेनाका ही नाश करके शांत होगया ५२-५३
 मेरा अस्त्र सबको नाश करनेवाला और बड़ा ही दारुण था वह
 इन मरणधर्मवाले कृष्ण और अर्जुनको क्यों नहीं मारसका ॥ ५४ ॥
 हे भगवन् ! आप मुझे इस घेरे प्रश्नका ठीकर उत्तर दीजिये, हे
 महामुने ! मैं सबके कारणको ठीकर सुनना चाहता हूँ । ५५ ॥
 व्यासजीने कहा, कि-तू आश्चर्यमें होकर जिस बातको पूछ रहा है,

वक्ष्यामि ते सर्वं समाधाय मनः शृणु ॥ ५६ ॥ योऽसौ नारायणो
नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः । अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्व-
कृत् ॥ ५७ ॥ स तपस्तीव्रपातस्थे शिशिरं गिरिमाश्रितः । ऊर्ध्व-
बाहुर्महातेजा ज्वलनादित्यसन्निभः ॥ ५८ ॥ पष्टिं वर्षसहस्राणि
तावन्त्येव शतानि च । अशोषयत्तदात्मानं वायुभक्तोऽम्बुजेक्षणः ५९
अथापरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततो न्यत् पुनर्मदत् । द्वावापृथिव्योर्विवरं
तेजसा समपूरयत् ॥ ६० ॥ स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदा-
भवत् । ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ ६१ ॥
ददर्श भृशदुर्दर्शं सर्वदेवेशमीश्वरम् । अणीयांसमण्यश्च वृहद्भ्यश्च
महत्तरम् ॥ ६२ ॥ रुद्रमीशानमृषभं हरं शम्भुं कपर्दिनम् ।

यह बहुत बड़ी बात है, मैं तुझे यह सब बात सुनाता हूँ, तू मनको
स्थिर करके सुन, श्रीनारायण भगवान् पूर्व पुरुषोंके भी पूर्वज हैं,
उन विश्वके कर्त्ता परमात्माने कार्य साधनेके लिये धर्मके पुत्र होकर
जगत्में अवतार लिया था ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उन अग्नि और सूर्यकी समान
महातेजस्वी तथा कमलकी समान नेत्रवाले भगवान् नारायणने
हिमालय पर्वत पर दोनों भुजाओंको ऊँची करके तीव्र तपस्या
करनी आरम्भ करदी, उन्होंने छियासठ हजार वर्षतक केवल
वायुका भक्षण करके शरीरको सुखाडाला ॥ ५८ ॥ ५९ ॥
फिर उससे भी दूने वर्षतक बड़ी भारी तपस्या करके
तेजसे आकाशको और पृथ्वीको भर दिया ॥ ६० ॥ हे तात !
जब तपस्या करके सिद्ध (ब्रह्म) होगये तब उनको विश्वके
ईश्वर, जगत्के कारणरूप, जगत्पति, सब देवताओंके स्तुति किये
हुए, छोटोंमें छोटे और बड़ोंसे भी बड़े भगवान् श्रीशङ्करका दर्शन
हुआ यह शंकर रुद्र नामसे प्रसिद्ध हैं, वह ईशान, वृषभ, हर, शम्भु
सबोंको चेतन करनेवाले, स्थावररूप जड़मरूप जगत्के परम अधि-
ष्ठानरूप, जिनका धारण कोई नहीं कर सकता, जिनकी सेवा

चेकिनानं परं योनिं तिष्ठतो गच्छतश्च ह ॥ ६३ ॥ दुर्वाणं दुर्दृशं
तिग्ममन्युं महात्मानं सर्वहरं प्रचेतसम् । दिव्यञ्चापमिषुधी चाद-
दानं हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यम् ॥ ६४ ॥ पिनाकिनं वज्रिणं दीप्त-
शूलं परश्वधिनं गदिनं स्वायतासिम् । शुभ्रं जटिलं मुसलिनं चन्द्र-
मौलिं व्याघ्राजिनं पग्निधिनं दण्डपाणिम् ॥ ६५ ॥ शुभाङ्गदं नाग-
यज्ञोपवीतं विश्वैर्गणैः शोभितं भूतसंघैः । एकीभूतं तपसां सन्नि-
धानं योतिगैः सुष्ठुतमिष्टवाग्भिः ॥ ६६ ॥ जलं दिशं खं क्षितिं
सूर्यचन्द्रौ तथा वाय्वग्नी प्रमिमाणं जगच्च । नालं द्रष्टुं यमजं भिन्न-
वृत्ता ब्रह्मद्विषट्मममृतस्य योनिम् ॥ ६७ ॥ यं पश्यन्ति ब्राह्मणाः
साधुवृत्ताः क्षीणे पापे मनसा वीतशोकाः । तं निष्ठपन्तं तपसा

करना बड़ा कठिन है तीक्ष्ण क्रोधवाले, उदार मनवाले, सबका
संहार करनेवाले, दिव्य धनुष और भायेको धारण करनेवाले,
सोनेका कवच पहरे, अनन्तपराक्रमी, पिनाक धनुषको धारण करने
वाले वज्र, चमकताहुआ त्रिशूल, फरसा, गदा और तलवारको
धारण करनेवाले, स्वेतवर्ण, शिर पर जटाओंको धारण करने
वाले जिनके मुकुटमें चन्द्रमा है व्याघ्राम्बरधारी, परिष धारण करने
वाले और हाथमें दण्डको धारण करनेवाले ॥ ६१-६५ ॥ और
कण्ठमें सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, सुन्दर वाज्यन्द
पहरेहुए गणोंसे और भूतोंसे शोभायमान एक स्वरूप, तपके
भण्डाररूप वृद्ध ब्राह्मणोंके द्वारा मधुर वाणीसे स्तुति कियेहुए,
पृथ्वी जल आकाश वायु दिशा सूर्य चन्द्रमा अग्नि तथा जगत्के
प्रमापक, अधर्माचरण करनेवाले मनुष्योंका तथा ब्रह्मद्वेषियोंका
संहार करनेवाले और मोक्ष देनेवाले हैं तथा असदाचारी मनुष्य
उन परमात्माका दर्शन नहीं पासकते ६६-६७ परन्तु सदाचारी
और शोकरहित ब्राह्मण पाप क्षीण होजाने पर जिनका दर्शन
पाते हैं ऐसे भगवान् शङ्करका जो नारायण भगवान् वासुदेव भक्त

धर्ममीढयं तद्भक्तो वै विश्वरूपं ददर्श । दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धि-
 देहैः संहृष्टात्मा सुसुदे वासुदेवः ॥ ६८ ॥ अक्षमालापरिचरितं ज्यो-
 तिषां परमं निधिम् । ततो नारायणो देवं ववन्दे विश्वसंभवम् ६९
 वरदं पृथुचार्वङ्ग्या पार्वत्या सहितं प्रभुम् । कीदृमानं महात्मानं भूत-
 संवगणैर्वृतम् ॥ ७० ॥ अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम् ।
 अभिवाद्याथ रुद्राय सद्योऽन्धकनिपातिते ॥ पद्माक्षरतं
 विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमानं ॥ ७१ ॥ श्रीनारायण उवाच ।
 त्वसम्भूता भूतकृतो वरेण्यं गोप्तारोऽस्य भुवनस्यादिदेव । आदि-
 श्येमां धरणीं येऽभ्यर्चन् पुरा पुराणीं तव देव सृष्टिम् ॥ ७२ ॥
 सुरासुरान्नागरक्षःपिशाचान्नरान् सुपर्णानथ गन्धर्वयक्षान् । पृथ-
 ग्विधान् भूतसंघान् सविश्वांस्त्वत्सम्भूतान् विद्व सर्वान्स्तथैव ।

थे वह, तपके प्रभावसे तेजसे दिपनेवाले, साक्षात् धर्ममूर्ति,
 जगत्के वन्दनीय और विश्वरूप श्रीशंकरका दर्शन कर सके,
 इससे उनको बड़ा हर्ष हुआ ॥ ६८ ॥ हे महाराज ! कमलकी समान
 नेत्रोंवाले नारायण ऋषि, तेजके निधानरूप, रुद्राक्षकी मालाको
 धारण करनेवाले विश्वको उत्पन्न करनेवाले, वरदान देनेवाले
 अतिमनोहारी अङ्गोंवाले, पार्वती देवीके साथ विहार करनेवाले,
 भूतगणोंसे घिरे, अजन्मा, ईशान, अव्यक्त, कारणात्मा महात्मा
 रुद्र शङ्करका दर्शन करके अन्धक दैत्यका नाश करनेवाले रुद्रदेव
 को प्रणाम करके विरूपाक्ष श्रीशङ्करकी भक्ति भावसे कमलकी
 समान नेत्रोंवाले नारायणदेव स्तुति करने लगे ॥ ६९-७१ ॥
 श्रीनारायणने कहा, कि—हे वरेण्य ! हे आदिदेव ! जो इस विश्वके
 रक्षक हैं, सब प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, देवगणोंके भी
 पूर्वज प्रजापति हैं, वह आपसे उत्पन्न होकर पृथ्वीमें प्रवेश करते
 हैं और तुम्हारी रचीहुई पुरातन सृष्टिको रचते हैं ॥ ७२ ॥ देव,
 असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, पक्षी आदि सब प्राणी आपसे

ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैत्तपान्यं पैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यञ्च तुभ्यम् ७३
 रूपं ज्योतिः शब्द आकाशवायुः स्पर्शः स्वाद्यं सलिलं गन्ध उर्वी।
 कालो ब्रह्मा ब्रह्म च ब्राह्मणश्च त्वत्संभूतं स्थारन्तु चेरिण्यु चेदम् ७४
 अद्भ्यस्तोका यान्ति यथा पृथक्त्वं ताभिरचैक्यं संज्ञये यान्ति
 भूयः । एवं विद्वान् प्रभवञ्चाप्ययञ्च मत्तग भवानां तव सायुज्य-
 मेति ॥ ७५ ॥ दिव्यावृत्तौ मानसौ द्वौ सुपर्णौ वाचा शाखाः
 पिप्पलाः सप्त गोपाः । दशान्ये ये पुर धारयन्ति त्वया छत्रास्त्वं
 हि तेभ्यः परो हि ॥ ७६ ॥ भूतं भव्यं भविता चाप्यधृष्यं त्वत्संभूता
 भुरनानीह विश्वाः । भक्तश्च मां भजमानं भजस्व मारीरिपो ममा-
 हिताहितेन ॥ ७७ ॥ आत्मानं त्वामात्मनानन्यबोधं विद्वानेवं

उत्पन्न होते हैं, इस बातको हम जानते हैं, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर
 चन्द्रमा आदि दिक्पाल और प्रजापति भी आपके प्रभावसे ही
 अपने-अधिकरोंके काम करते हैं शब्द, स्पर्श, रूप, ज्योति, स्वादु
 जल, पृथ्वी, गन्ध, आकाश, वायु, काल, ब्रह्मा, वेद और ब्राह्मण
 अर्थात् स्थावर जङ्गमरूप सब जगत् आपसे ही उत्पन्न होता
 है ॥ ७३-७४ ॥ और यह जगत् जैसे जलमेंसे उत्पन्न होकर
 जलमें ही लीन होजाता है तैसे ही यह सब जगत् भी प्रलयके
 समय आपमें ही लीन होजाता है, तत्त्वको जाननेवाले पण्डित
 इस प्रकार आपको प्राणिमात्रकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण
 जानकर आपके सायुज्यको पाते हैं ॥ ७५ ॥ हे देव ! आपने ही
 मानसरूप वृक्ष पर बैठनेवाले जीव तथा ईश्वर रूप दो पक्षी चार
 अश्वत्थ (वेद) और बहुतसी शाखाओंसे युक्त सप्तजोरूप
 (पाँच तत्त्व, मन और बुद्धि) फलके भोक्ता तथा द्रष्टा और सब
 शरीरका परिपालक दश इन्द्रिये इन सबोंको तुमही रचते हो,
 तो भी इन सबोंसे तुम परमात्मा भिन्न रहते हो ७६॥ तुम भूत,
 भविष्यत् और वर्तमान कालरूप हो ये सब लोक तुमसे ही

गच्छति ब्रह्म शुक्रम् । अस्तौषं त्वां तव सम्मानमिच्छन् विचि-
न्वन् वै सदृशं देववर्य ॥ सुदुर्लभान् देहि वरान् ममेष्टानभिष्टुतः
प्रविकार्षीरिच मायाम् ॥ ७८ ॥ व्यास उवाच । तस्मै भरानचि-
न्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृत् । अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छादपि-
संस्तुतः ॥ ७९ ॥ श्रीभगवानुवाच । मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्व-
योनिषु । अप्रमेयवलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ॥ ८० ॥ न
च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः । न पिशाचा न गन्धर्वा न
यक्षा न च राक्षसाः ॥ ८१ ॥ न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे
वियोनिजाः । न कश्चित्त्वाञ्च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति ८२ न

उत्पन्न हुए हैं, मैं तुम्हारा भक्त हूँ और तुम्हारा भजन करता हूँ
ऐसे मेरे ऊपर आप दया करिये तथा मेरे मनमें काम आदि अहित
करनेवाली वस्तुओंको उत्पन्न करके मेरा नाश न करिये, हे देव-
वर्य! तत्त्वदर्शी पुरुष आपको (आत्मस्वरूपको) अपने आत्मासे
अभिन्न जानकर निष्काम परब्रह्मको पा जाते हैं, मैं आपको
आत्मारूप जानकर केवल तुम्हारे समान होनेकी इच्छासे ही
तुम्हारी स्तुति करता हूँ. मेरे स्तुति किये हुए आप मुझे इच्छित
दुलभ वर दीजिये, मायाको धरे मतिकूल न होने दीजिये ॥ ७८ ॥
व्यासजीने कहा, कि-नारायण ऋषिके इस प्रकार स्तुति करने
पर पिनाकधनुषधात्री नीलकण्ठ अचिन्त्य स्वरूप शङ्करने पूज्य
तथा देवताओंमें मुख्य नारायणको वरदान दिया ॥ ७९ ॥ श्रीशङ्कर
भगवान्ने कहा, कि-हे नारायण ! तुम मेरी कृपासे ऐसे बलवान्
हो आगे, कि-मनुष्य, देवता और गन्धर्वोंकी जातिमें तुम्हारी
बराबरी कोई नहीं कर सकेगा ॥ ८० ॥ देवता असुर, चंडेर
नाग, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण नाग तथा सिंह व्याघ्र
आदि सब प्राणी इनमेंसे कोई भी युद्धमें तुम्हारे सामने आकर
टक्कर नहीं भेलसकेगा तथा युद्धमें देवता भी तुम्हारा पराजय नहीं

शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वायुना न चार्द्धेण न शुष्केण त्रसेन
 स्थावरैरेण चन्द्रकश्चित्तत्र रुर्ना कर्त्ता मत्प्रसादात् कथञ्चन । अपि
 वै समरं गत्वा भविष्यसि मयाधिकः ८४ एवमेते वरा लब्धा पुर-
 स्ताद् विद्धि शौरिणा । स एष देवश्चरति मांयया मोहयन् जगत् ८५
 तस्यैव तपसो जातं नरं नाम महाभुनिम् । तुल्यमेतेन देवेन त्वं
 जानीह्यर्जुनं सदा ॥ ८६ ॥ तावेतौ पूर्वदेवानां परमौ पठितावृषी ।
 लोकयात्राविधानार्थं सञ्जायेते युगे युगे ॥ ८७ ॥ तथैव कर्मणः
 कृत्स्नं महत्तपसोऽपि च । तेजो मय्युञ्ज विभ्रत्त्वं जातो राट्रो
 महाभुने ॥ ८८ ॥ स भवान् देहवान् प्राज्ञो ज्ञात्वा भवभयं जगत् ।
 अपाकर्षस्त्वमात्मानं नियमैस्तत् प्रियेप्सया ॥ ८९ ॥ शुभ्रं स तु

करसर्क्रे, मेरी कृपासे कोई भी पुरुष शस्त्रसे, वज्रसे, अग्निसे, वायुसे
 गीलेसे, सूखेसे, जड़भसे तथा स्थावरसे तुम्हें पीडा नहीं देसकता,
 तुम युद्धमें पहुँचजाने पर मुझसेभी अधिक बलवान् होजा
 ओगे ॥ ८१-८४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णने पहले ही शङ्करसे ये
 वरदान पालिये हैं और यह देव अपनी मायासे जगत्को मोहित
 करते हुए जगत्में विचरते हैं ॥ ८५ ॥ और यह जो अर्जुन है
 यह नारायणके तपसे ही उत्पन्न हुआ है, यह नर नामका महा-
 भुनि है और इसको तू नारायणकी समान ही जान ॥ ८६ ॥
 ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन देवताओंमें ये नर नारायण नामके
 दोनों ऋषि तपस्यामें पूर्ण हैं और ये लोकोंको पर्यादामें रखनेके
 लिये युग-रमें अवतार धारण करते हैं ॥ ८७ ॥ तथा हे महामतिमान्
 अश्वत्थामा! तूबड़ीभारी तपस्याके कारण, एवं धर्मकर्मसे तेज और
 कोपको धारण करनेवाले रुद्रका अंशावतार है ८८ ऐसा तू देवता
 की समान और अतिबुद्धिमान् है, तूने इस जगत्को शङ्कामय
 जानकर शङ्करको प्रसन्न करनेकी इच्छासे नियमोंके द्वारा पूर्वकाल
 में अपने शरीरको दुर्बल करवाला था ॥ ८९ ॥ हे मान

भवान् कृत्वा महापुरुषवि हम् । ईजिर्वास्त्वं जपैर्हामैरुपहारैश्च
 भानद ॥ ६० ॥ स तथा पूज्यमानस्ते पूर्वदेहेष्वतुपत् । पुष्कलांश्च
 वरान् प्रादाच्चवद्विद्वन् हृदि स्थितान् ॥ ६१ ॥ जन्मकर्मतपोभोगा-
 स्तयोस्तत्र स पुष्कलाः । ताभ्यां लिङ्गोऽर्चयतो देवस्त्वया चर्चायां
 युगे युगे ॥ ६२ ॥ सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चयति प्रभुम् । आत्म-
 योगाश्च तस्मिन् वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः ॥ ६३ ॥ एवमेवा-
 यजन् देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः । प्रार्थयन्ति परं लोके स्थाणुमेकं
 स सर्वकृत् ॥ ६४ ॥ स एष रुद्रभक्तरश्च केशवो रुद्रसम्भवः ।
 कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैव सनातनः ॥ ६५ ॥ सर्वभूतमयं
 ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभुः । तस्मिन्भ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभ-

देनेवाले अश्वत्थामा ! तूने तेजस्वी दिव्य शरीर धारण करके
 जप होम और वलिदानोंके द्वारा महापुरुष श्रीशङ्करका पूर्व जन्ममें
 यजन किया था और शङ्कर तेरे ऊपर प्रसन्न होगये थे और
 हे विद्वन् ! तुझे तेरे मनचाहे बहुतसे वरदान दिये थे ॥ ६०-६१ ॥
 श्रीकृष्ण और अर्जुनकी समान तेरे भी जन्म, कर्म और तप बहुत
 हैं, परन्तु उन दोनोंने मूढमशंगीरसे श्रीशङ्करकी उपासना की थी
 और तूने पतिमाके विषेँ युग २ में श्रीशङ्करका पूजन किया था ६२
 जो पुरुष प्रभु शङ्करके सर्वस्वरूपको जानकर लिङ्गमें उनका पूजन
 करता है उस पुरुषको सनातन आत्मज्ञानकी तथा सनातन शास्त्र
 ज्ञानकी प्राप्ति-होती है ॥ ६३ ॥ उसप्रकार विश्वके देवता, सिद्ध
 और परमन्त्रपि, अविकारी एक शङ्कर भगवान्का पूजन करके
 उनकी प्रार्थना करते हैं, क्यों कि-भगवान् शङ्कर सब जगत्को
 उत्पन्न करने वाले, पालन करने वाले और संहार करनेवाले हैं ६४
 यह श्रीकृष्ण रुद्रसे उत्पन्न हुए हैं और रुद्रके परमभक्त हैं, इस
 लिये सनातन श्रीकृष्णका यज्ञोंके द्वारा यजन करना चाहिये ६५
 और सब प्राणियोंकी उत्पत्तिका स्थान समझकर जो मनुष्य

ध्वजः ॥ ६६ ॥ सञ्जय उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्राण-
पुत्रो महारथः । नमश्चकार रुद्राय बहु मैने च केशवम् ॥ ६७ ॥
हृष्टरोमा च वश्यात्मा नमस्कृत्य महर्षये । वरूथिनीमभिप्रेक्ष्य त्र्य-
हारमकारयत् ॥ ६८ ॥ ततः प्रत्यवहारोऽभूत् पाण्डवानां विशाम्पते ॥
कौरवाणाञ्च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते ॥ ६९ ॥ युद्धं कृत्वा
दिनान् पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम् । ब्रह्मलोकं गता राजन्
ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ १०० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि व्यासवाक्ये
शतरुद्रीये एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन त्रैमामकाः
पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्तः परम् ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । तस्मि-

श्रीशङ्करके लिङ्गका पूजन करता है उसके ऊपर वृषभध्वज
श्रीशङ्कर अधिक प्रसन्न होते हैं ॥ ६६ ॥ सञ्जय कहता है, कि-
श्रीवेदव्यासजीकी इसवातको सुनकर महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने
रुद्रको नमस्कार किया और श्रीकृष्णको महान् पुरुष जाना ६७
व्यासजीसे इस प्राचीन वृत्तान्तको सुनकर मनको वशमें रखनेवाले
अश्वत्थामाके रोमाश्च खड़े होगये, उसने महर्षि वेदव्यासको नम-
स्कार किया और फिर सेनाकी ओर जाकर उसको छावनीकी
ओरको लौटनेकी आज्ञा दी ॥ ६८ ॥ युद्धमें द्रोणाचार्यके मारे
जानेके अनन्तर हे राजन् ! उदास हुए कौरवोंकी और पाण्डवोंकी
सेना अपनी २ छावनीमें चलीगयी ॥ ६९ ॥ इस प्रकार वेदके
पारगापी द्रोणाचार्य पाँच दिन तक युद्ध करते हुए एक अज्ञाहिणी
सेनाका संहार करके ब्रह्मलोकमें चले गये ॥ १०० ॥ दो सौ
एकवाँ अध्याय समाप्त ॥ २०१ ॥ छ ॥ छ

धृतराष्ट्रने पूछा कि-हे सञ्जय ! धृष्टद्युम्नने अतिरथी द्रोणा-
चार्यको युद्धमें मारहाला, उसके बाद मेरे पुत्रोंने और पाण्डवोंने

नन्तिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै । कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो
 धनञ्जयः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम् । यद-
 च्छया गतं व्यासं प्रपच्छ भरतर्षभ ॥ ३ ॥ अर्जुन उवाच । संग्रामे
 न्यहनं शत्रून् शौचैर्विमलैरहम् । अग्रतो लक्ष्ये यान्तं पुरुषं पावक-
 प्रभम् ॥ ४ ॥ ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते । तस्यां
 दिशि विशीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने ॥ ५ ॥ तेन भग्नानरीन् सर्वा-
 न्मद्भग्नान्मन्यते जनः । तेन भग्नानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुव्रजाम्य-
 हम् ॥ ६ ॥ भगवांस्तन्ममाचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः । शूलपाणि-
 र्मया दृष्टस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥ ७ ॥ न पद्भ्यां स्पृशते भूमिं न
 च शूलं विमुञ्चति । शूलाच्छूलसहस्राणि निपेतुस्तस्य तेजसा ॥

क्या किया, यह मुझे सुना ॥ १ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे
 भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् धृतराष्ट्र! पृष्ठद्युम्नने अतिरथी द्रोणाचार्यको
 मारहाला, उसके बाद कौरवोंकी सेनामें भागड पड़गयी, और
 अपनी विजय कराने वाले अति अद्भुत परिणामको देखकर
 अर्जुनने दैवेच्छासे तहाँ आये हुए व्यासजीसे वृक्षा ॥ २ ॥ ३ ॥
 अर्जुनने कहा, कि-हे महर्षे! जिस समय संग्राममें निर्मल बाणोंसे
 बैरियोंको मार रहा था, उस समय अग्निवी समान तेजस्वी एक
 पुरुषको मैं हर समय अपने आगे २ चलता हुआ देखा करता
 था ॥ ४ ॥ और हे महामुने ! वह पुरुष जलते हुए त्रिशूलको उठा
 कर जिस दिशामेंको चलाजाता था, उस दिशामें ही मेरे बैरी
 काँपकर पृथिवी पर गिरपड़ते थे ॥ ५ ॥ वास्तवमें तो वह पुरुष
 सेनाओंका संहार करता था, परन्तु लोग समझते थे अर्जुन सेना-
 ओंका संहार कर रहा है, परन्तु मैं तो केवल उसके पीछे ही जाता
 था ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! सूर्यकी समान तेजस्वी तथा हाथमें त्रिशूल
 लिये हुए जो पुरुष मेरे देखनेमें आया था वह महापुरुष कौन
 था ? ॥ ७ ॥ वह पैरोंसे पृथिवीको नहीं छूता था, किन्तु अधर

व्यास उवाच । प्रजापतीनां प्रथमं तेजसं पुरुषं प्रभुम् । भुवनं
भूभुवँ देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ६ ॥ ईशानं वरदं पार्थ दृष्ट्वा-
नास शङ्करम् । तं गच्छ शरणं देवं वरदं भुवनेश्वरम् ॥ १० ॥ महा-
देवं महात्मानमीशानं जटिलं विशुम् । त्र्यक्षं महाभुजं रुद्रं शिखिनं
वीरवाससम् ॥ ११ ॥ महादेवं हरं स्थाणुं वरदं भुवनेश्वरम् ।
जगत्प्रधानमजितं जगत्प्रीतिमधीश्वरम् ॥ १२ ॥ जगत्त्रयं निजगद-
द्वीपं जयिन् जगतो गतिम् । विश्वात्मानं विश्वसृजं विश्वमूर्तिं
यशस्विनम् ॥ १३ ॥ विश्वेश्वरं विश्वनरं कर्मणामीश्वरं प्रभुम् ।

ही चलता था और वह अपने हाथमेंसे त्रिशूलको नहीं छोड़ता
था तो भी उसके तेजके प्रभावसे उस त्रिशूलमेंसे हजारों त्रिशूल
उत्पन्न होते थे व्यासजीने कहा, कि—हे अर्जुन ! यह तो तुम्हें
श्रीशङ्करका दर्शन हुआ था, वह प्रजापति ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके
आधिकारण हैं, तेजोमय हैं, सकल शरीररूप पुरीमें शयन करते हैं
इसलिये ही अन्नर्यामी रूपसे सब जगत्का शासन करते हैं, वही
भूर्, भुवर्, स्वर्, इन तीनों लोकोंके शरीररूप हैं, सब लोकोंके
ईश्वर हैं और राजाकी समान बाहर रहकर भी सबको नियमों
में रखते हैं, वही सबके स्वाधी हैं और वरदान देनेवाले हैं, वही
तीनों भुवनोंके ईश्वर श्रीशङ्कर हैं तू उनकी शरण लो ॥ १० ॥
वह महादेव हैं, बड़े मनवाज हैं जटाधारी और व्याधक हैं, तीन
नेत्रवाले और महाबाहु हैं, रुद्र, शिखावाले और वल्कलवस्त्रधारी
हैं ॥ ११ ॥ सब जगत्का संहार करनेवाले, विकारसे रहित,
वरदान देनेवाले, चौदह लोकोंके ईश्वर, जगत्के कारण, किसी
के जीतनेमें न आनेवाले, आनन्ददायक, उपाधिरहित और चैनन्य
प्राप्त हैं ॥ १२ ॥ जगत्के कारणरूप, जगत्के बीजरूप, विजय
पानेवाले, जगत्की गति, विश्वके आत्मा, विश्वके रचनेवाले, विश्व
मूर्ति, यश पानेवाले विश्वके ईश्वर, विश्वके नेना, कर्मोंका फल

शम्भुं स्वयम्भुं भूतेशं भूतधन्यभवोद्भवम् ॥ १४ ॥ योगं योगे-
 श्वरं सर्वं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् । सर्वश्रेष्ठं जगच्छ्रेष्ठं वरिष्ठं परमेष्ठी-
 नम् ॥ १५ ॥ लोकत्रयविधातारमेकं लोकत्रयाश्रयम् । शुद्धात्मानं
 भवं भीमं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ १६ ॥ शाश्वतं भूधरं देवं सर्व-
 वागीश्वरेश्वरम् । सुदुर्जयं जगन्नाथं जन्ममृत्युजरातिगम् ॥ १७ ॥
 ज्ञानात्मानं ज्ञानगम्यं ज्ञानश्रेष्ठं सुदुर्विदम् । दातारञ्चैव भक्तानां
 प्रसादविहितान् वरान् ॥ १८ ॥ तस्य पारिपदा दिव्या रूपैर्ना-
 नाविधैर्विभो । वामना जटिला मुण्डा हस्वग्रीवा महोदराः ॥ १९ ॥
 महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तया परे । आननैर्विकृतैः पार्श्वैः
 पार्थ वेशैश्च वैकृतैः ॥ २० ॥ ईदृशीः स महादेवः पूज्यमानो महे-
 श्वरः । स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद्याति तेऽग्रतः ॥ २१ ॥

देनेवाले, कल्याणकर्ता, स्वयम्भू भूत, भविष्यत् और वत्तमानको
 उत्पन्न करनेवाले, योगरूपा, योगके ईश्वर, सब लोकपालोंके ईश्वर
 सभसे श्रेष्ठ, वरिष्ठ, परम स्थानमें रहनेवाले, तीनों लोकोंको धारण
 करनेवाले, तीनों लोकोंके आधार रूप, शुद्धस्वरूप, भवरूप, भया-
 नक मूर्ति, चन्द्रमाको मुकुटरूपसे धारण करनेवाले, सनातनमूर्ति
 पृथ्वीको धारण करनेवाले, सब वागीश्वरोंकेभी ईश्वर, अजित,
 जगत्के नाथ, जन्म मरण और जरासे रहित, ज्ञानमूर्ति, ज्ञानके
 द्वारा जाननेमें आने वाले चैतन्यरूपसे ही प्रशंसा करने योग्य, महा-
 कष्टसे जाननेमें आनेवाले और भक्तोंको अनुग्रह करके वर देनेवाले
 हैं ॥ १४-१८ ॥ उन व्यापक शङ्करके दिव्य पार्षद अनेकों रूपोंको धारण
 करने वाले हैं—कोई ठिगन, कोई जटाधारी, कोई शिखमुण्ड, कोई
 छोटी गभदनवाले, कोई बड़े पेटवाले ॥ १९ ॥ कोई महाकाय कोई बहुत
 लंबे कोई बड़े कानोंवाले, कोई विकर्ण मुखवाले और हे पार्थ
 कोई भयानक पैर तथा भयानक पोशाक वाले हैं ॥ २० ॥ ऐसे
 पार्षद महादेवजीकी पूजा किया करते हैं और हे तात ! उन

तस्मिन् घोरे सदा पार्थ संग्रामे लोमहर्षणे । द्रौणिर्णक्षपेर्गुप्ता
महेष्वासैः प्रहारिभिः ॥ २२ ॥ कत्वां सेनां तदा पाथं गतसापि
प्रधर्षयेत् । ऋते देवान्महेष्वासाद्बहुरूपाङ्गहेश्वरात् ॥ २३ ॥ स्थानु-
मुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतः स्थिते । न हि भूतं सपन्नेन त्रिषु
लोकेषु विद्यते ॥ २४ ॥ गन्धनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः ।
विमंशा इतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥ २५ ॥ तस्मै नमस्तु
कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि । ये चान्ये मानवा लोके ये च स्वर्ग-
जितो नराः ॥ २६ ॥ ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुपापतिम् ।
अनन्यभावेन सदा सर्वेशं समुपासते ॥ २७ ॥ इह लोके सुखं
प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम् । नमस्कुरुष्व कान्तेय तस्मै शान्ताय

तेजस्वी-शङ्करकी तेरे ऊपर बड़ी कृपा थी, इसलिये युद्धमें वह
तेरे आगे चला करते थे ॥ २१ ॥ हे अर्जुन ! महाध्यानक और
रोमाञ्च खड़े करनेवाले इस युद्धमें महाधनुषधारी अश्वत्थामा,
कर्ण और कृपाचार्यकी रक्षाकी हुई सेनाका महाधनुषधारी और
अनेकों रूपाधारण करनेवाले भगवान् शङ्करके सिवाय दूसरा
ऐसा कौन पुरुष है जो मनसे भी पराजय कर सके ? २२-२३
भगवान् शङ्कर आकर खड़े होजायँ तब ऐसा कौनसा पुरुष है जो
उनके सामने खड़ा होनेका साहस करसके ? त्रिलोकीमें उनकी
बराबरी करनेवाला कोई माणी नहीं है जब भगवान् शङ्कर कोप
करते हैं तब स्वर्गमें शत्रु उनकी गन्धमे भी मूर्च्छित और भरेहुए
होजाते हैं कान्ते लगते हैं और पृथिवी पर दह पड़ते हैं २४-२५
स्वर्गमें रहनेवाले देवता, स्वर्गको जीतनेवाले अनृप तथा दमन
साधारण मनुष्य, ये सब भगवान् शङ्करको प्रणाम करते हैं जो
भक्त अनन्यभावे से सदा सबके ईश्वर, वरदान देनेवाले और
कष्टपाण कर्ता, उपापति भगवान् शङ्करकी उपासना करने हैं वे
इस लोकमें सुख पाकर अन्तमें परमगतिको पाते हैं इसलिये

वै सदा ॥ २८ ॥ रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे । कपदिने
 करालाय हर्यक्षवरदाय च ॥ २९ ॥ याम्यायान्यक्तकेशाय सद्वृत्ते
 शङ्कराय च । काम्याय हरिनेत्राय स्थाण्वे पुरुषाय च ॥ ३० ॥
 हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च । भास्कराय सुतीर्थाय
 देवदेवाय रंहसे ॥ ३१ ॥ बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे ।
 उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुपे ॥ ३२ ॥ गिरिशाय
 प्रशान्ताय पतये चौरवाससे । हिरण्यवाहवे राजन्नुग्राय पतये
 दिशाम् ॥ ३३ ॥ पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः । वृत्ता-
 णाम्पतये चैव गवाञ्च पतये नमः ॥ ३४ ॥ वृत्तैरावृतकायाय
 सेनान्ये मध्यमाय च । स्रुहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ३५

हे कुन्तीनन्दन ! तू भी उन शास्त्रमूर्ति श्रीशंकरको सदा नमस्कार
 कर ॥ २९-२८ ॥ इन रुद्रदेवका कण्ठ श्यामवर्ण हैं, वह सूक्ष्ममे
 सूक्ष्म और महातेजस्वी हैं, जटाजूटवाले भयानकरूपधारी और
 कुबेरको वर देनेवाले हैं ॥ २९ ॥ कालमूर्ति, पायासे अनेकों प्रकारके
 रूप धारण करनेवाले, सद्चारी, भक्तोंका कल्याण करनेवाले
 कामना करनेयोग्य श्याम नेत्रोंवाले स्थाणु और पुरुष हैं ॥ ३० ॥
 हरिकेश, यजमान होनेपर मुण्ड रूप तप करनेसे दुर्वल, संसारसे
 तारनेवाले, सूर्यरूप उत्तम तीर्थरूप देवताओंके भी देवता और
 बड़े वेगवाले हैं ॥ ३१ ॥ अनन्तरूपधारी, उत्तम प्रकारके सब यज्ञों
 पर प्रेम रखनेवाले, चन्द्रमाके ऊपर प्रीति रखनेवाले, मन्त्रकपर
 मुकुट धारण करनेवाले, सुन्दर मुखवाले, हजारों नेत्रोंवाले और
 मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ पर्वतपर शयन करनेवाले
 पर शान्त, सबके पालक और बलवत्तत्वस्त्रोंको धारण करनेवाले
 हैं और हे राजन ! सुवर्णसे शोभित भुजाओंवाले, उग्ररूप और
 दिशाओंके स्वामी हैं ॥ ३३ ॥ उन पर्जन्यपति और भूतोंके पति
 को प्रणाम है, वृत्तोंके पति और गौओंके पतिको प्रणाम है ॥ ३४ ॥

बहुखाय विश्वस्य पतते मुञ्जवाससे । सहस्रशिरसे चैव सहस्र-
नयनाय च ॥ ३६ ॥ सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च । शरणं
गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ॥ ३७ ॥ उमापतिं विरूपाक्षं
दत्तयज्ञनिवर्हणम् । प्रजानाम्पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम् ३८
कपर्दिनं वृषावर्त्तं वृषनाभं वृषध्वजम् । वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृष-
र्षभम् ॥ ३९ ॥ वृषाङ्गं वृषभोदारं वृषभं वृषभोज्ञम् । वृषायुधं
वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम् ॥ ४० ॥ महोदरं महाकायं द्वीपिचर्म-
निवासिनम् । लोकेशं वरदं सुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणमियम् ॥ ४१ ॥

जिनका स्वरूप शरीरोंसे ढका हुआ है ऐसे सेनाओंके पति, अन्त-
र्यामी, हाथमें सुवेको धारण किये अध्वर्युरूप, देवरूप धनुषधारी
और परशुरामरूप हैं ॥ ३५ ॥ अनेकरूप विश्वपति मूँजका वस्त्र
धारण करनेवाले सहस्र मस्तकोंवाले और सहस्रों नेत्रवाले हैं ३६
हे अर्जुन ! तू सहस्र भुजा और चरणोंवाले, वरदान देनेवाले
और भुवनपति शंकरकी शरणमें जा ॥ ३७ ॥ उमापति, विरूप
नेत्रवाले दत्तके यज्ञके नाशक, प्रजाओंके पति शान्तमूर्ति, भूतोंके
पति, निर्विकार ॥ ३८ ॥ जटाजूटधारी, ब्रह्मादिको भी मायासे
भ्रमानेवाले, सब लोकोंके आश्रयदाता होनेसे उत्तम गर्भरूप,
नन्दीश्वरके ऊपर बैठनेवाले, तीनों लोकोंका संहार करनेमें समर्थ
धर्मके फलदाता होनेसे धर्मको ही श्रेष्ठ माननेवाले, कर्मका फल
देनेवाले और इन्द्रादिकोंमें श्रेष्ठ ॥ ३९ ॥ जिनकी ध्वजामें वृषभ
का चिह्न है, जो धर्माचरण करनेवालोंको बहुत फल देनेवाले हैं
उन धर्मसे साक्षात् दर्शन देनेवाले और जो वृषकी समान नेत्रों
वाले हैं उन उत्तम आयुधोंवाले, विष्णुरूप बाणवाले, धर्मरूप देह
को धारण करनेवाले, यज्ञके नियन्ता ॥ ४० ॥ अनेक कोटि ब्रह्मांडों
को उदरमें धारण करनेवाले, त्रिलोकीरूप बड़ी कायावाले वाया-
म्बर ओढ़नेवाले, तीनों लोकोंके ईश्वर, वरदान देनेवाले, सुण्ड-

त्रिशूलपाणि वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम् । पिनाकिनं खड्गधरं
 लोकानां पतिमीश्वरम् ॥ ४२ ॥ प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं
 धीरवाससम् । नमस्तरमै सुरेशाय यस्तु वैश्रवणः सखा ॥ ४३ ॥
 सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने । धनुर्द्धराय देवाय
 प्रियधन्वाय धन्विने ॥ ४४ ॥ धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय
 ते नमः । अग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च ॥ ४५ ॥ नमोऽस्तु
 बहुरूपाय नमोस्तु बहुधन्विने । नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं
 नमस्तस्मै तपस्विने ॥ ४६ ॥ नमोस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च
 वै नमः । वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ॥ ४७ ॥ मात-
 णाम्पतये चैव गणानाम्पतये नमः । गवाञ्च पतये नित्यं यज्ञानां
 पतये नमः ॥ ४८ ॥ अपाञ्च पतये नित्यं देवानां पतये नमः ।

मूर्त्ति ब्राह्मणोंके रक्षक ब्राह्मणोंके प्यारे ॥ ४१ ॥ हाथमें त्रिशूल
 धारण करनेवाले, वरदाता ढाल तलवारधारी, शम्भु, पिनाकधारी
 खड्गधारी लोकोंके स्वामी, जगत्पति ॥ ४२ ॥ शरणागतोंकी रक्षा
 करनेवाले और बलकलवस्त्रधारी शंकरकी मैं शरण लेता हूँ, जिनका
 सखा कुवेर है ऐसे देवताओंके पति शंकरको प्रणाम है ॥ ४३ ॥
 सुन्दर वस्त्रधारी, श्रेष्ठ व्रतधारी, सुन्दर पिनाक धनुषको धारण
 करनेवाले, पार्षदोंके ऊपर और धनुषके ऊपर प्रीति रखनेवाले
 धनुषकी प्रत्यञ्चारूप, धनुषरूप, धनुर्वेदके आचार्य, अग्र आयुधवाले
 और देवताओंमें श्रेष्ठ शंकरको नमस्कार है ॥ ४४-४५ ॥ अनंक
 रूपधारीको नमस्कार है बहुतसे धनुषधारी पार्षदोंवालेको नम-
 स्कार है, स्थाणुमूर्त्तिको नमस्कार है और उन तपस्वी शंकरको
 प्रणाम है ॥ ४६ ॥ त्रिपुरासुरका नाश करनेवालेको नमस्कार है
 भगदेवताके नेत्रोंका नाश करनेवालेको नमस्कार है, वनस्पतियों
 के और नरोंके पतिको नमस्कार है ॥ ४७ ॥ मातृकाओंके
 और नारोंके पतिको प्रणाम है, गणोंके पति और यज्ञोंके पति

पूष्णो दन्तविनाशाय व्यन्ताय वरदाय च ॥ ४६ ॥ नीलकण्ठाय
 पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः । कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्य
 धीमतः ॥ ५० ॥ तानि ते कीर्त्तयिष्यामि यथाश्रुतं यथाश्रुतम् । न
 सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः ॥ ५१ ॥ मुखमेधन्ति
 कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः । दत्तस्य यज्ञमानस्य विधिवत्संभृतं
 पुण्यं ॥ ५२ ॥ विव्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वत्तभवत्तदा । धनुषा
 बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥ ५३ ॥ ते न शर्म कुतः शान्तिं
 लेभिरे स्म सुरास्तदा । विद्रते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ५४
 तेन व्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः । बभूवुर्वशगाः पार्थ
 निपेतुश्च सुरासुराः ॥ ५५ ॥ आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चक्रम्पे च

शङ्करको नित्य प्रणाम है ॥ ४८ ॥ जलोंके स्वामी और देवोंके देवको
 नित्य नमस्कार है, पूपा देवताके दाँत तोड़नेवाले, त्रिनेत्र, वरदाता,
 नीलकण्ठ, पीले वर्णवाले, सुवर्णकी समान चमकते हुए, केशोंवाले
 श्रीशंकरको प्रणाम है, अब मैं तुझसे बुद्धिमान् महादेवजीके जो
 दिव्य कर्म हैं, जिस प्रकार मैंने सुने हैं और जैसी मेरी बुद्धि है,
 उसके अनुसार तुझसे कहता हूँ, सुन । श्रीशंकर जब कोप करतें
 हैं उस समय देवता, दैत्य, गन्धर्व और राक्षस पातालमें घुसजाते
 हैं तो भी मुखसे नहीं रहने पाते, पहले यज्ञ करनेवाले दत्तने
 विधिपूर्वक यज्ञ किया था ॥ ५०-५२ ॥ उसमें निमंत्रण न होनेसे
 शंकरको क्रोध आगया, उन्होंने निर्दयी हो धनुषमेंसे बाण छोड़
 कर दत्तको घायल कर दिया और फिर बड़ी गर्जना की थी ५३
 शंकरके क्रुद्ध होने पर उस समय देवता मुख वा शान्ति कैसे
 पासकते थे ? महेश्वरके कुपित होते ही यज्ञमें एकसाथ गड़बड़ी
 पड़गयी ॥ ५४ ॥ धनुषकी प्रत्यश्वासे तथा बाणकी हथेलीके शब्दसे
 सब लोक व्याकुल होगये और हे अर्जुन ! देवता तथा दानव
 सब घबड़ाकर गिरगये और शंकरके वशमें होगये ॥ ५५ ॥ बढ़ते
 हुए जल रुकगये, पृथिवी काँप उठी, पर्वत डगमगागये, दिशाएँ

वसुन्धरा । पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः ॥ ५६ ॥
 अन्धेन तपसा लोका न प्राकाशन्त संवृताः । जघ्नवान् सद्-
 सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः ॥ ५७ ॥ चुलुभ्यर्भयभीताश्च शान्तिञ्चक्रु-
 स्तथैव च । ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च मुखैः पिणः ॥ ५८ ॥ पूषाण-
 मभ्यद्रवत शङ्करः महसन्निव । पुरोडाशं भक्षयतो दशनान् वै व्य-
 शातयत् ॥ ५९ ॥ ततो निश्चक्रमुर्देवा वेषमाना नताः स्म ते । पुनश्च
 सन्दधे दीप्तान् देवानां निशिताञ्छरान् ॥ ६० ॥ सधूमान् स-
 स्फुलिङ्गाश्च विद्युत्तोयदसन्निभान् । तं दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे प्रणि-
 पत्य महेश्वरम् ॥ ६१ ॥ रुद्रस्य यज्ञभागञ्च विशिष्टं तेऽन्व
 कल्पयन् । भयेन त्रिदशा राजन् शरणञ्च प्रपेदिरेदस्तेन चैवाति-
 कोपेन स यज्ञः सन्धितस्तदा । भग्राश्चापि सुरा आसन् भीताश्चा-
 द्यापि तं प्रति ॥ ६३ ॥ अमुराणां पुराण्यासत्स्त्रीणि वीर्यवतां

और हाथी मोहमें पड़गये ॥ ५६ ॥ सब लोग गाढ़ अन्धकारसे
 ढाँजानेके कारण स्पष्टरूपसे दीखना बन्द होगये, श्रीशंकरने
 सूर्यके सहित सब तेजस्वी-पदार्थोंकी प्रभाका भी नाश करदिया ५७
 सब प्राणियोंको और अपनेको सुखी करनेकी इच्छावाले ऋषि भय-
 भीत होकर जोभमें पड़गये और शान्तिपाठके पढ़नेलगे ॥ ५८ ॥ फिर
 शंकर मानो हँसरहे हों इसप्रकार पुरोडाश खातेहुए पूषा देवताके
 सामनेको दौडगये और उसके दाँत तोड़डाले ॥ ५९ ॥ इस पर
 देवता काँपते 'आपको प्रणाम करते हैं' ऐसा कहतेहुए भागनेलगे,
 शंकरने धुएँ और चिनमारियोंवाले अग्निकी समान और विजली
 तथा मेघकी समान तेज किये और जलतेहुएसे बाण देवताओंकी
 ओरको चढ़ाये, यह देखकर सब देवताओंने महेश्वरको प्रणाम
 किया ॥ ६०-६१ ॥ रुद्रके लिये यज्ञमें अलग भाग निकाला और
 हे राजन् । जब वे भयके मारे शंकरकी शरणमें गये ॥ ६३ ॥ उसी
 समय श्रीशंकर शान्त होगये, तब उन्होंने उस यज्ञको पूरा किया
 था, देवता डरके मारे उस समय भागगये थे और अब तक वे

दिवि । आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत् ॥ ६४ ॥
 सौवर्णं कमलाक्षस्य तारकाक्षस्य राजतम् । तृतीयन्तु परं
 तेषां त्रिद्युन्मालिन आयसम् ॥ ६३ ॥ न शक्तस्तानि मघवा
 भेतुं सर्वायुधैरपि । अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ६६
 ते तमूर्चुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः । ब्रह्मदत्तवरा ह्येते प्रोरा-
 त्त्रिपुरवासिनः ॥ ६७ ॥ पीडयन्त्यधिकं लोकं यस्मात्ते वरदर्पिताः ।
 स्वहते देवदेवेश नान्यः शक्तः कथञ्चन ॥ ६८ ॥ हन्तुं दैत्या-
 न्महादेव जहि तांस्त्वं सुरद्विपः । रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः
 सर्वकर्मसु ॥ ६९ ॥ निपातयिष्यसे चैतान्सुरान् भुवनेश्वर । स
 तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया ॥ ७० ॥ गन्धमादन-
 विन्ध्यौ च कृत्वा वंशध्वजौ हरः । पृथ्वीं ससागरवनां रथं कृत्वा

शंकरसे भयभीत रहते हैं ॥ ६३ ॥ पहले तीन पराक्रमी असुर
 आकाशमें फिरा करते थे, उनका, लोहेका, चाँदीका और सोनेका
 ये तीन बड़े नगर थे ॥ ६४ ॥ इनमें कमलाक्ष नगर सोनेका,
 ताराक्षका चाँदीका और त्रिद्युन्मालीका नगर लोहेका था ॥ ६५ ॥
 इन्द्रमें भी यह शक्ति नहीं थी, कि-किसी असुर शस्त्रसे उन नगरोंको
 तोड़सके, इसकारण इन्द्रादि सब देवता दुःखित होकर रुद्रकी शरणमें
 गये और सर्वोंने महान्मा रुद्रसे कहा, कि-त्रिपुरके निवासी भयानक
 दैत्य ब्रह्माजीसे वरदान पाकर गर्वमें भरगये हैं, वे सब लोकोंकी
 बड़ा ही दुःख देते हैं, इसलिये हे देवदेवेश ! हे महादेव ! आपके
 सिवाय दूसरा कोई भी इन देवताओंके शत्रु दैत्योंको नहीं मार
 सकता, इसलिये आप इनका नाश करिये, हे रुद्र ! वे भयानक
 असुर सब कर्मोंमें पशुओंकी समान होंगे ॥ ६६-६९ ॥ इसलिये
 हे लोकनाथ ! आप इन असुरोंका संहार करिये, इसप्रकार
 देवताओंने शंकरसे कहा, तब शंकरने 'तथारतु' कहकर देवताओंका
 हित करनेकी इच्छासे गन्धमादन और विन्ध्याचलको रथके दोनों
 ओरकी छोटी ध्वजायें बनाकर सागर और वनोंसहित पृथ्वीको

तु शङ्करः ॥७१॥ अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः ।
चक्रं कृत्वा तु चन्द्राकौ देवदेवः पिनाकधृक् ॥ ७२ ॥ अणीकृत्वै-
लपत्रञ्च पुष्पदन्तञ्च त्र्यम्बकः । गृध्रं कृत्वा तु मलयमवनादञ्च
तक्षकम् ॥ ७३ ॥ योक्त्राङ्गानि च सत्त्वानि कृत्वा शर्वः प्रतापवान् ।
वेदान् कृत्वाथ चतुरश्वतुरोऽध्वान् महेश्वरः ॥ ७४ ॥ उपवेदान्
खलीनांश्च कृत्वा लोकत्रयेश्वरः । गायत्रीं मग्नहं कृत्वा सावित्रीं
च महेश्वरः ॥ ७५ ॥ कृत्वोकारं प्रतोदञ्च ब्रह्माणञ्चैव सारथिम् ।
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा च वासुकिम् ॥ ७६ ॥ विष्णुं
शरोक्षमं कृत्वा शल्यमग्निं तथैव च । वायुं कृत्वाथ वाजाभ्यां पुङ्ग-
वैवस्वतं यमम् ॥ ७७ ॥ विद्युन् कृत्वाथ निश्राणं मेरुं कृत्वाथ वै-
ध्वजम् । आरुह्य स रथं दिव्यं सर्वदेवमयं शिवः ॥ ७८ ॥ त्रिपुरस्य

रथ बनाया ॥७०-७१॥ त्रिदेव शंकरने नागराज शेषको रथकी
धुरीके स्थान पर रक्खा, चन्द्रमा और सूर्यको दोनों पहिये बनाया,
इलापत्रके पुत्रको तथा पुष्पदन्तको जुएके अन्तके वग्धन बनाया,
मलयाचलको रथका जुआ बनाया, तक्षकको तीन लकड़ियोंवाले
जुएके बाँधनेकी डोरी बनाया, सव प्राणियोंको रासोंके अङ्गोंके
स्थानमें नियत किया, चारों वेदोंको चार घोड़े बनाया, उपवेदोंको
लगामें बनाया, महेश्वरने गायत्री और सावित्रीको डोरी बनाकर
ओङ्कारको चायुक, ब्रह्माको सारथी, मन्दराचलको गाँडीन धनुष,
वासुकीको धनुषकी प्रत्यञ्चा, विष्णुको उत्तम बाण, अग्निके
बाणका फलक, वायुको दोनों ओरके पङ्क, वैवस्वत यमके बाणकी
पूँछ, विजलीको फलककी धार और मेरुके ध्वजा बनाया, इस
प्रकार सर्वदेवमय दिव्य रथको तयार किया, तदनन्तर अतुल-
पराक्रमी, असुरोंका संहार करनेवाले महान् योधा श्रीशंकर त्रिपुरका
वध करनेके लिये उस रथ पर सवार होगये, हे अर्जुन ! उस
समय तपको धन माननेवाले ऋषि और देवता उनकी स्तुति करने
लगे, विकाररहित भगवान् शंकरने माहेश्वर नामका व्यूह बनाया

वधार्थाय स्थाणुः प्रहरताम्बरः । अमुराणामन्तकरः श्रीमान्तुल-
विक्रमः ॥ ७९ ॥ स्तूयमानः सुरैः पार्थ ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
स्थानं मादेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः ॥ ८० ॥ अतिष्ठत
स्थाणुभृतः स सहस्रं परिवत्सरान् । यदा त्रीणि समेतानि अन्त-
रिक्षे पुराणि च ॥ ८१ ॥ त्रिपर्वणा विशल्येन तदा तानि विभेद सः ।
पुराणि न च तं शोकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ८२ ॥ शरं कालाग्रि-
संयुक्तं विष्णुंसोमसमायुतम् । पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याताः
प्रवीक्षितुम् ॥ ८३ ॥ बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः ।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यमब्रवीत् सुरान् ॥ ८४ ॥ अमु-
यतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः । बाहुं सवज्रं तं तस्य क्रुद्धस्या-
स्तम्भयत् प्रभुः ॥ ८५ ॥ प्रहस्य भगवांस्तूर्णं सर्वलोकोश्वरो विशुः ।
ततः संस्तम्भितभुजः शक्रो देवगणैर्वृतः ॥ ८६ ॥ जगाम ससुरातूर्णं

फिर एक हजार वर्ष तक उस रथमें स्थाणुरूपसे रहकर तीनों
पुरोंके इकट्ठे होनेकी बाट देखते रहे, जब तीनों नगर अन्तरिक्षमें
इकट्ठे हुए तब शंकरने तीन पर्ववाले और तीन शल्यवाले बाणसे
उन तीनों नगरोंको तोड़दिया, इस समय शंकरका ऐसा दिव्य
तेज था, कि-उसके सामनेको दानव आँख उठाकर देख भी न
सके ७२-८२ विष्णु और सोमके तेजसे भरा कालाग्रिकी समा-
बाण जिस समय उन तीनों नगरोंको जलाने लगा, उस समय देवी
उमा बालक पञ्चशिखको गोदीमें लेकर देखनेके लिये तहाँ
आयी थी और उसने देवताओंसे वृक्षा था, कि-इन तीनों नगरोंको
कौन जला रहा है ? ८३ ॥ ८४ यह सुनकर इन्द्रको अमृता उत्पन्न
हुई और वह वज्रका प्रहार करनेकी उद्यत होगया, तब सब
लोकोंके ईश्वर और समर्थ परमात्माने हँसकर क्रोधके आवेशमें
आयेहुए इन्द्रकी भुजाको जड़ बनादिया ॥ ८५ ॥ इन्द्रका हाथ
जड़ होते ही वह देवताओंको साथ लेकर तुरन्त अविनाशी वृक्ष-
देवकी शरणमें गया और देवताओंने दोनों हाथ जोड़ मस्तकसे

ब्रह्माणं प्रभुमन्ययम् । ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ ८७ ॥
 किमप्यङ्कगतं ब्रह्मन् पार्वत्या भूतमद्भुतम् । बालरूपधरं दृष्ट्वा नास्मा-
 भिरभिलक्षितः ॥ ८८ ॥ तस्माच्चां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै
 वयम् । अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरन्दराः ॥ ८९ ॥ तेषां
 तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्बरः । ध्यात्वा स शम्भुः भगवान्
 बालञ्चापिततेजसम् ॥ ९० ॥ उवाच भगवान् ब्रह्मा शक्रादींश्च
 सुरोत्तमान् । चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान् हरः ॥ ९१ ॥
 तस्मात् परतरं नान्यत् विञ्चिदस्ति महेश्वरात् । यो दृष्टो शुभया
 सार्द्धं शुभमाभिरमितद्युतिः ॥ ९२ ॥ स पार्वत्याः कृते देवः कुन-
 वान् बालरूपताम् । ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि ॥ ९३ ॥
 स एव भगवान् देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः । न सम्बुबुधिरै चैनं
 देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥ ९४ ॥ समजापतयः सर्वे बालार्कसदृशमभम् ।

प्रणाम करके ब्रह्माजीसे कहा कि-हे ब्रह्मदेव ! पार्वतीकी गोदीमें बालकका रूप धारण किये कोई अद्भुत पुरुष बैठा था, उसको हमने प्रणाम नहीं किया, इसलिये हम आपसे बुझना चाहते हैं कि-जिस बालकने युद्धके बिना ही क्रीड़ाभावमें हमारा तथा हमारे राजा इन्द्रका पराजय किया है वह कौन है ? ॥ ८६ ॥ ८८ ॥ ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उनकी बात सुन ध्यान धरकर देखा तो अगार तेजवाला वह बालक स्वयं भगवान् शङ्कर ही थे ॥ ९० ॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने उन श्रेष्ठ देवताओंसे कहा, कि- वह तो स्यांवर जन्म जगत्के प्रभु भगवान् शङ्कर ही थे ९१ इन महेश्वरसे श्रेष्ठ कोई भी देवता नहीं है, तुमने उमाके साथ जिस अगार कान्ति वाले बालकको देखा है, वह भगवान् शङ्कर थे, उन्होंने पार्वतीके लिये ही बालकका स्वरूप धारण किया था, इसलिये अब तुम मेरे साथ उन ही बालरूपधारी शङ्करकी शरण लो ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ वह भगवान् महादेव सब लोकोंके ईश्वर हैं, प्रभु हैं, परन्तु देवता उन भुवनपतिके

अथाभ्येत्य ततो ब्रह्मा हृष्टा च स महेश्वरम् ॥ ६५ ॥ अयं श्रेष्ठ
इति ज्ञात्वा ब्रह्मन्दे तं पितामहः । ब्रह्मोवाच । त्वं यज्ञो भुवनस्या-
स्य त्वं गतिस्त्वं परायणम् ॥ ६६ ॥ त्वम्भवस्त्वं महादेव त्वं धाम
परमं पदम् । त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्यावरजद्रूपम् ॥ ६७ ॥
भगवन् भूतभक्ष्येश लोकनाथ जगत्पते । प्रसादं कुरु शकस्य त्वया
क्रोधादितस्य वै ॥ ६८ ॥ व्यास उवाच । पश्योनेर्वचः श्रुत्वा ततः
पीतो महेश्वरः । प्रसादाभिमुखो भूत्वा अट्टहासमथाकरोत् ६९
ततः प्रसादयामासुरूपं रुद्रञ्च ते सुराः । अभवच्च पुनर्बाहुः
प्रकृतिस्थो हि वज्रिणः ॥ १०० ॥ तेषां प्रसन्नो भगवान् सप-
त्नीको वृषध्वजाः देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥ १ ॥
स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वः स सर्ववित् । स चेन्द्रश्चैव

स्वरूपको पहचान नहीं सके ६४ फिर ब्रह्माजीने सहित सब देवता
बालसूर्यकी समान कान्तिवाले महेश्वरके पास गये और ब्रह्माने महे-
श्वर शङ्करका दर्शन कर यही शङ्कर हैं ऐसा जानकर उनको प्रणाम
किया और फिर स्तुति करने लगे, ब्रह्माजीने कहा, कि-तुम
यज्ञरूप, तीनों लोकोंकी गति और परम आश्रयस्थान हो ६५ ॥ ६६
तुम भव, महादेव, परमधाम और परमपदरूप हो, इस स्थावर
जद्रूपरूप सब जगत्में तुमही व्याप रहे हो, हे भगवन् ! हे भूत, भविष्यत्
और वर्तमान कालके नेता ! हे लोकनाथ ! हे जगत्पति ! तुमने
क्रोध करके इन्द्रको पीड़ा दी है, अब इसके ऊपर प्रसन्न
हूजिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ व्यासजी कहते हैं, कि ब्रह्माजीकी इस बातको
सुनकर महेश्वर प्रसन्न हुए प्रसन्नताकी ओरको झुककर उन्होंने
अट्टहास किया ॥ ६९ ॥ फिर देवताओंने उमाको और रुद्रको प्रसन्न
किया और इन्द्रका जो हाथ सुन्न हो गया था फिर वह अच्छा
होगया ॥ १०० ॥ और दक्षके यज्ञका ध्वंस करनेवाले, देवताओंमें
श्रेष्ठ उमापति, भगवान् शंकर देवताओंके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ १ ॥
वह शंकर, रुद्र, शिव, अग्नि, सर्ववैत्ता, इन्द्र, वायु, अश्विनीकुमार

वायुश्च सोरिद्वनौ स च विद्युतः ॥ २ ॥ स भवः स च पर्जन्यः
महादेवः सनातनः । स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च
सः ॥ ३ ॥ स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो राज्यहानि च ।
मासार्द्धमासः ऋतवः सन्ध्ये सञ्चरत्सराणि च ॥ ४ ॥ धाता च
स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृन् । सर्वासां देवतानाञ्च
धारयत्यवपुर्वपुः ॥ ५ ॥ सर्वैर्देवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च
सः । शतधा सहस्रधा चैव तथा शतहस्रधा ॥ ६ ॥ द्वे तन् तस्य
देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः । घोरा चान्या शिवा चान्या ते
तन् बहुधा पुनः ॥ ७ ॥ घोरा तु या तनुस्तस्य सोऽग्निर्विष्णुः
स भास्करः । सौम्या तु पुनरेवास्य आपो ज्योतीर्पि चन्द्रमाः ॥ ८ ॥
वेदांगा सोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः । यदत्र परमं गुह्यं स

और विजलीरूप हैं ॥ २ ॥ वही भव, मेघ, सनातन महादेव हैं,
वही चन्द्रमा, वही सबके अधिपति, वही सूर्य और वही वरुण
हैं ॥ ३ ॥ वही काल, वही अन्तकरूप मृत्यु, वही यम रात्रि और
दिन हैं, वही मास, पक्ष, ऋतु, मघात और सायंकालकी सन्ध्या
तथा संचरत्सररूप हैं ॥ ४ ॥ वही धाता, विधाता, विश्वात्मा, विश्वके
कर्मोंके कर्त्ता तथा देहरहित होने पर भी सब देवताओंके शरीरों
को धारण करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ सब देवता उनकी एक प्रकारसे, बहुत
प्रकारसे, सैकड़ों प्रकारसे, हजारों प्रकारसे, और लाखों प्रकारसे
अनेकवार स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ उन महादेवकी दो मूर्तियोंको
वेदवेत्ता ब्राह्मण ही जानते हैं, एक मूर्ति घोरा (भयङ्कर) और
दूसरी शिवा (कल्याणकारिणी) है, ये दोनों मूर्तियाँ भी अनेकों
प्रकारकी हैं ॥ ७ ॥ अग्नि, और व्यापक सूर्य शंकरकी घोरमूर्ति
है और उसकी पूजा यातुधान करते हैं, चन्द्रमा, जल और ज्योति
उनकी सौम्यमूर्ति है ॥ ८ ॥ पुराण, वेद, वेदके अङ्ग, आत्म-
ज्ञानका निश्चय करनेवाले उपनिषद् इन सब ग्रन्थोंमें जो परमरहस्य
है वह महेश्वर देव ही हैं, अजन्मा भगवान् महादेवके ये और

था । तेन लिङ्गमस्यार्चयन्ति स्म तच्छाप्सुर्ध्वं समास्थितम् ॥ २५ ॥
 पूज्यमाने ततस्तस्मिन् मोदते स महेश्वरः । सुखी प्रीतश्च भवति
 प्रहृष्टश्चैव शङ्करः ॥ २६ ॥ तदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवतिस्थितम् ।
 स्थावरं जङ्गमञ्चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः २७ ॥ एकाक्षो जाज्वलन्नाग्ने
 सर्वतोऽक्षिः शोपि वा । क्रोधाद्यच्चाविशन्ल्लोकांस्तस्मात् सर्वं इति
 स्मृतः ॥ २८ ॥ धूर्जटाञ्च यत्तस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते । विश्वे-
 देवाश्च यत्तस्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥ २९ ॥ तिस्रो देवीर्यदा
 चैव त्रैलोक्ये भुवनेश्वरः । द्यामापः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकस्तु ततः
 स्मृतः ॥ ३० ॥ समेष्वयति यन्नित्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु । शिव-
 मिच्छन् मनुष्याणां तस्मादेव शिवः स्मृतः ॥ ३१ ॥ सहस्राक्षोऽ-

करती है, इसलिये वह महेश्वर नामसे प्रसिद्ध है ॥ २४ ॥ ऋषि,
 देवता, गन्धर्व और अप्सरायें ये सब उनके ऊपरके लोकमें रहने
 वाले लिङ्गका पूजन करते हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि—इन शंकरके लिङ्गकी
 पूजा करनेसे महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न और सुखी होते हैं ॥ २६ ॥
 यह स्थावर जङ्गमरूप जगत् तथा भूत भविष्यत् और वर्तमान
 रूप काल इन शंकरका रूप है इस प्रकार बहुतसे रूप होनेसे
 शंकर बहुरूपी कहलाते हैं ॥ २७ ॥ शंकरके सब स्थानोंमें नेत्र
 हैं तो भी उनका अत्यन्त जाज्वल्यमान अग्निरूप एकनेत्र हैं जो
 नेत्र क्रोधसे सबलोकमें प्रवेश करके सब जगत्का संहार करता है
 इसलिये वह 'सर्व' नाम से कहेजाते हैं ॥ २८ ॥ उनका स्वरूप
 क्रोधमय है इसलिये धूर्जट कहलाते हैं और विश्वदेवता उनमें
 रहते हैं इसलिये यह विश्वरूप कहलाते हैं ॥ २९ ॥ भुवनपति
 शंकर आकाश, जल और पृथिवी इन तीन देवियोंका अर्थात्
 स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकोंका पालन करते हैं,
 इसलिये त्र्यम्बक कहलाते हैं ॥ ३० ॥ वह सब लोगोंके कार्योंमें
 सब अर्थोंकी वृद्धि करते हैं और मनुष्योंका कल्याण करते

ब्रह्माणं प्रभुमन्ययम् । तेतं प्रणम्य शिरसा प्रोक्षुः प्रोज्जलयस्तदा ॥
 किमप्यङ्कगतं ब्रह्मन् पार्वत्या भूतमद्भुतम् । बालरूपधरं दृष्ट्वा तस्मा-
 धिरभिलक्षितः ॥ ८८ ॥ तस्मात्त्वां मण्डुमिच्छामो निर्जिता येन वै
 वयम् । अप्रुध्यता हि बालेन लीलया सपुरन्दराः ॥ ८९ ॥ तेषां
 तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्बरः । ध्यात्वा स शम्भुं भगवान्
 बालञ्चापिततेजसम् ॥ ९० ॥ उवाच भगवान् ब्रह्मा शक्रादींश्च
 पुरोत्तमान् । चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान् हरः ॥ ९१ ॥
 तस्मात् परतरं नान्यत् विज्जिदरित महेश्वरात् । यो दृष्टो गुणया
 सार्द्धं युष्माभिरपितद्युतिः ॥ ९२ ॥ स पार्वत्याः कृते देवः कृ-
 वान् बालरूपताम् । ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि ॥ ९३ ॥
 स एव भगवान् देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः । न सम्बुधुभिरे चेनं
 देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥ ९४ ॥ सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशमभम् ।

प्रणाम करके ब्रह्माजीसे कहा कि-हे ब्रह्मदेव ! पार्वतीकी गोदीमें बालकका रूप धारण किये कोई अद्भुत पुरुष बैठा था, उसको हमने प्रणाम नहीं किया, इसलिये हम आपसे बुझना चाहते हैं कि-जिस बालकने युद्धके बिना ही श्रीदापात्रमें हमारा तथा हमारे राजा इन्द्रका पराजय किया है वह कौन है ? ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उनही बात सुन ध्यान धरकर देखा तो अपार तेजवाला वह बालक स्वयं भगवान् शङ्कर ही थे ॥ ९० ॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने उन श्रेष्ठ देवताओंसे कहा, कि- वह तो स्वावर जड़म जगत्के प्रभु भगवान् शङ्कर ही थे ९१ इन महेश्वरसे श्रेष्ठ कोई भी देवता नहीं है, तुमने उमाके साथ जिस अपार कान्ति वाले बालकको देखा है, वह भगवान् शङ्कर थे, उन्होंने पार्वतीके लिये ही बालकका स्वरूप धारण किया था, इसलिये अब तुम मेरे साथ उन ही बालरूपधारी शङ्करकी शरण लो ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ वह भगवान् महादेव सब लोकोंके ईश्वर हैं, प्रभु हैं, परन्तु देवता उन भुवनपतिके

